श्रीवीरशासन-संघ-ग्रन्थमाला

श्रीयतिवृषभाचार्य-विरचित-चूर्णिसूत्र समन्वित

श्रीमद्भगवद्-गुणधराचार्य-प्रणीत

कसाय पाहुड सुत्त

सम्पादक, हिन्दी-अनुवादक, और प्रस्तावना-लेखक

पं० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
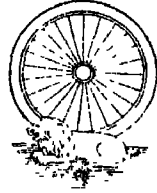
प्रकाशक

वीर शासन-संघ, कलकत्ता

वि० सं० २०१२]   द्वि० भाद्रपद, श्री वीर नि० सं० २४८१ [सितम्बर, ई० सन् १९५५

ŚRĪ VĪRA ŚĀSANA SANGHA SERIES

KAṢĀYA PĀHUḌA SUTTA

BY

GUṆADHARĀCHĀRYA

WITH

THE CHŪRṆĪ SŪTTRA OF YATIVṚṢABHĀCHĀRYA

TRANSLATED AND EDITED

BY

PANDIT HIRALAL JAIN

Sidhāntaśāstri, Nyāyatīrtha
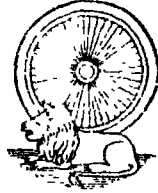
Published by

ŚRĪ VĪRA ŚĀSANA SANGHA

CALCUTTA, 1955

Vikram Samvat 2012—Bhādrapad Vira Nirvāna Samvat 2481

मंगलायरणं

जयइ धवलंगतेएणावूरियसयलभुवणभवणगणो ।
केवलणाणसरीरो अणंजणो णामओ चंदो ॥ १ ॥

तित्थयरा चउवीस वि केवलणाणेण दिट्ठसव्वट्ठा ।
पसियंतु सिवसरूवा तिहुवणसिरसेहरा मज्झं ॥ २ ॥

सो जयइ जस्स केवलणाणुज्जलदप्पणम्मि लोयालोयं ।
पुढपदिबिंबं दीसइ वियसियसयवत्तगब्भगउरो वीरो ॥ ३ ॥

अंगंगवज्झणिम्मी अणाइमज्झंतणिम्मलंगाए ।
सुयदेवयअंबाए णमो सया चक्खुमइयाए ॥ ४ ॥

णमह गुणरयणभरियं सुअणाणामियजलोहगहिरमपारं ।
गणहरदेवमहोवहिमणेयणयभंगभंगितुंगतरंगं ॥ ५ ॥

जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं ।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे ॥ ६ ॥

गुणहरवयणविणिग्गयगाहाणत्थोवहारिओ सव्वो ।
जेणज्जमंखुणा सो सणागहत्थी वरं देऊ ॥ ७ ॥

जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स ।
सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ ॥ ८ ॥

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं ।
दुसहपरीसहवसहं जइवसहं धम्मसुत्तपाढरवसहं ॥ ९ ॥

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ कसायपाहुडसुत्तको पाठकोंके हाथोंमें उपस्थित करते हुए आज मेरे हर्षका पारावार नहीं है। बहुत दिनोंसे मेरी प्रबल इच्छा थी कि मूल दि० जैन वाङ्मयके सर्व प्राचीन इन मूल आगमसूत्रोंको प्रकाशमें लाया जाय। स्वराज्य-प्राप्तिके पश्चात् भारत सरकार और प्राचीन इतिहासकारोंने देशकी प्राचीन भाषाओंमें रचित साहित्यके आधार पर प्राचीन संस्कृति और भारतीय इतिहासके निर्माणके लिए तथा अपने विलुप्त गौरवको संसारके समक्ष उपस्थित करनेके लिए प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज-शोध प्रारम्भ की। इस प्रकारके प्रकाशनोंसे भारतीय इतिहासके निर्माताओं और रिचर्स स्कालरोंको अपने अनुसन्धानमें बहुत कुछ सुविधाएं प्राप्त होंगी, इस उद्देश्यसे भी मूल आगम और उनके चूर्णिसूत्रोंको प्रकट करना उचित समझा गया।

भ० महावीरके जिन उपदेशोंको उनके प्रधान शिष्योंने जिन्हें कि साधुओंके विशाल गणों और संघोंको धारण करने और उनकी सार-संभाल करनेके कारण गणधर कहा जाता है, संकलन करके निबद्ध किया, वे उपदेश 'द्वादशाङ्ग श्रुत' के नामसे संसारमें विश्रुत हुए। यह द्वादशाङ्ग श्रुत कई शताब्दियों तक आचार्य-परम्पराके द्वारा मौखिक रूपसे सर्वसाधारणमें प्रचलित रहा। किन्तु कालक्रमसे जब लोगोंकी ग्रहण और धारणा शक्तिका ह्रास होने लगा, तब श्रुत-रक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर कुछ विशिष्ट ज्ञानी आचार्योंने उस विस्तृत श्रुतके विभिन्न अंगोंका उपसंहार करके उसे गाथासूत्रोंमें निबद्ध कर सर्वसाधारणमें उनका प्रचार जारी रखा। इस प्रकारके उपसंहृत एवं गाथासूत्र-निबद्ध द्वादशाग जैन वाङ्मयके भीतर अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ है कि कसायपाहुड ही सर्व प्रथम निबद्ध हुआ है। इससे प्राचीन अन्य कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं है।

भ० महावीरके विस्तृत और गंभीर प्रवचनोंको गणधरोंने या उनके पीछे होने वाले विशिष्ट ज्ञानियोंने सूत्ररूपसे निबद्ध किया। सूत्रका लक्षण इस प्रकार किया गया है—

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः॥

अर्थात् जिसमें थोड़ेसे असंदिग्ध पदोंके द्वारा सार रूपमें गूढ़ तत्त्वका निर्णय किया गया हो, उसे सूत्र कहते हैं।

इस प्रकारकी सूत्र-रचनाओंको आगममें चार प्रकारसे विभाजित किया गया है—

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च।
सुयकेवलिणा कहियं अभिन्नदसपुव्विणा कहियं॥ (सुत्तपाहुड)

अर्थात् गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्न-दशपूर्वी आचार्योंके वाक्योंको या उनके द्वारा रची गई रचनाओंको सूत्र कहते है।

उक्त व्यवस्थाके अनुसार पूर्वोके एक देशके वेत्ता होनेसे श्रीगुणधराचार्यकी प्रस्तुत कृति भी सूत्रसम होनेसे सूत्ररूपसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है। यही कारण है कि उस पर चूर्णिसूत्रोंके प्रणेता आ० यतिवृषभने कसायपाहुडकी गाथाओंको 'सुत्तगाहा' या 'गाहासुत्त' रूपसे अपनी चूर्णिमें उल्लेख किया है। स्वयं ग्रन्थकारने भी अपनी गाथाओंको 'सुत्तगाहा' के रूपमें निर्देश

किया है ⊛। जयधवलाकारने लिखा है—

गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम् ।
टीका श्रीवीरसेनीया शेषाः पद्धति-पंजिकाः ॥२९॥ (जयधवलाप्रशस्ति)

अर्थात् कसायपाहुडके गाथासूत्र तो सूत्ररूप हैं और उनके चूर्णिसूत्र वार्तिकस्वरूप हैं। श्रीवीरसेनाचार्य-रचित जयधवला टीका है। इसके अतिरिक्त गाथासूत्रोंपर जितनी व्याख्याएँ उपलब्ध हैं, वे या तो पद्धतिरूप हैं या पंजिकारूप हैं।

स्वयं जयधवलाकार प्रस्तुत ग्रंथके गाथासूत्रों और चूर्णिसूत्रोंको किस श्रद्धा और भक्तिसे देखते हैं, यह उन्हींके शब्दोंमें देखिए। एक स्थल पर शिष्यके द्वारा यह शंका किये जाने पर कि यह कैसे जाना? इसके उत्तरमें वीरसेनाचार्य कहते हैं—

"एदम्हादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्ढमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदम-लोहज्ज-जंबुसामियादि-आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहासरूवेण परिणमिय अज्जमंखु-णागहत्थीहिंतो जयिवसहमुहणयिचुण्णिसुत्तायारेण परिणद-दिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे। (जयध० आ० पत्र ३१३)

अर्थात् "विपुलाचलके † शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकरसे प्रगट होकर गौतम, लोहार्य और जम्बूस्वामी आदिकी आचार्य-परम्पराले आकर और गुणधराचार्यको प्राप्त होकर गाथास्वरूपसे परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्तीके द्वारा यतिवृषभको प्राप्त होकर और उनके मुख-कमलसे चूर्णिसूत्रके आकारसे परिणत दिव्यध्वनिरूप किरणसे जानते हैं।"

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि जो दिव्यध्वनि भ० महावीरसे प्रगट हुई, वही गौतमादिके द्वारा प्रसरित होती हुई गुणधराचार्यको प्राप्त हुई और फिर यह उनके द्वारा गाथारूपसे परिणत होकर आचार्यपरम्पराद्वारा आर्यमंक्षु और नागहस्तीको प्राप्त होकर उनके द्वारा यतिवृषभको प्राप्त हुई और फिर वही दिव्यध्वनि चूर्णिसूत्रोंके रूपमें प्रगट हुई, इसलिए चूर्णिसूत्रोंमें निर्दिष्ट प्रत्येक बात दिव्यध्वनिरूप ही है, इसमें किसी प्रकारके सन्देह या शङ्काकी कुछ भी गुंजायश नहीं है। प्रस्तुत कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रोंमें जिस ढंगसे वस्तुतत्त्वका निरूपण किया गया है उसीसे 'वह सर्वज्ञ-कथित है' यह सिद्ध होता है।

जैनोंके अतिरिक्त अन्य भारतीय साहित्यमें चूर्णि नामसे रचे गये किसी साहित्यका पता नहीं लगता। जैनोंकी दि० श्वे० दोनों परम्पराओंमें चूर्णिनामसे कई रचनाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु दोनों ही परम्पराओंमें अभी तक दिगम्बर आ० यतिवृषभसे प्राचीन किसी अन्य चूर्णिकारका पता नहीं लगा है।

प्रस्तुत कसायपाहुडपर आ० यतिवृषभकी चूर्णि पाठकोंके समक्ष उपस्थित है। इसके अतिरिक्त कम्मपयडी, सतक और सित्तरी नामक कर्म-विषयक तीन अन्य ग्रन्थों पर उपलब्ध चूर्णियां भी आ० यतिवृषभ-रचित हैं, यह इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें सप्रमाण सिद्ध किया गया है। उक्त चूर्णिवाले चारों ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. कसायपाहुडचूर्णि—आ० गुणधर-प्रणीत २३३ गाथात्मक कसायपाहुड-ग्रन्थमें

⊛ 'वोच्छामि सुत्तगाहा जयिगाहा जम्मि अत्थम्मि ॥ २ ॥
पंचेव सुत्तगाहा दंसणमोहस्स खवणाए ॥ ५ ॥
एदाओ सुत्तगाहाओ सुण अण्णा भासगाहाओ ॥ १० ॥ कसायपाहुड

† यह विहारप्रान्तके राजगिरिके समीपस्थ पर्वतका नाम है।

कषायोंकी विविध दशाओंका वर्णन करके उनके दूर करनेका मार्ग बतलाया गया है और यह प्रगट किया गया है कि किस कषायके दूर होनेसे कौन-सा आत्मिक गुण प्रगट होता है। इस पर आ० यतिवृषभने छह हजार श्लोक-प्रमाण चूर्णिसूत्र रचे हैं।

२. **कम्मपयडीचूर्णि**—आ० शिवशर्मने कर्मोंके बन्धन, संक्रमण, उद्वर्तना, अपवर्तना, उदीरणा, उपशामना, निधत्ति और निकाचित इन आठ करणोंका तथा कर्मोंके उदय और सत्त्व-का ४७५ गाथाओंमें बहुत सुन्दर वर्णन किया है, यह ग्रन्थ कम्मपयडी या कर्मप्रकृति नामसे प्रसिद्ध है। इस पर आ० यतिवृषभने लगभग सात हजार श्लोक-प्रमाण-चूर्णिकी रचना की है।

३. **सतकचूर्णि**—आठों कर्मोंके भेद-प्रभेद बताकर किस-किस प्रकारके कार्य करनेसे किस-किस जातिके कर्मका बन्ध होता है, इस बातका वर्णन मात्र १०० गाथाओंमें आ० शिव-शर्मने किया है, अतएव यह रचना 'सतक' या 'बन्ध-शतक' नामसे प्रसिद्ध है। इसपर दो चूर्णियोंके रचे जानेके उल्लेख ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं—लघुशतकचूर्णि और बृहच्छतकचूर्णि। बृहच्छतकचूर्णि अभी तक उपलब्ध नहीं है, अतएव वह किसकी कृति है, इस बारेमें अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। शतककी लघुचूर्णि मुद्रित हो चुकी है और वह तुलना करनेपर आ० यतिवृषभकी कृति सिद्ध होती है। इसका प्रमाण तीन हजार श्लोकके लगभग है।

४. **सित्तरीचूर्णि**—इसमें आठों मूल कर्मोंके तथा उनके उत्तर भेदोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंका स्वतंत्र रूपसे और जीवसमास-गुणस्थानोंके आश्रयसे विवेचन किया गया है और अन्तमें मोहकर्मकी उपशमविधि और क्षपणाविधि बतलाई गई है। उक्त सर्व वर्णन मात्र ७० गाथाओंमें किये जानेसे यह सित्तरी या सप्ततिका नामसे प्रसिद्ध है। इसके रचयिताका नाम अभी तक अज्ञात है। इसकी जो चूर्णि प्रकाशमें आई है, उसके रचयिताका नाम भी अभी तक अज्ञात ही है। किन्तु छान-बीन करने पर वह भी आ० यतिवृषभकी रचना सिद्ध होती है। सित्तरीचूर्णिका भी प्रमाण लगभग ढाई हजार श्लोकके है।

उक्त चारों चूर्णियां गद्यमें रची गई हैं, और उनकी भाषा प्राकृत ही है। सतक और सित्तरीचूर्णिमें जहाँ कहीं संस्कृतमें भी कुछ वाक्य पाये जाते है, पर वे या तो प्रक्षिप्त हैं, या फिर भाषान्तरित। यद्यपि ये चारों ही चूर्णियां अन्य आचार्य-प्रणीत ग्रन्थों पर रची जानेसे व्या-ख्यारूप हैं, तथापि उनमें यतिवृषभका व्यक्तित्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है और मूलके अतिरिक्त कई विषयोंका प्रकरणवश स्वतंत्रतापूर्वक विशिष्ट वर्णन किये जानेसे उनकी मौलिक आग-मिकताकी छाप भी पाठकके हृदयपर अंकित हुए विना नहीं रहती। चूर्णिसूत्रोंकी रचना-शैलीसे ही उनकी अति-प्राचीनता प्रमाणित होती है।

श्वेताम्बर भण्डारोंमें ऐसे कई प्राचीन दि० जैन ग्रन्थ सुरक्षित रहे हैं, जो कि अभी तकके अन्वेषित दि० भण्डारोंमें उपलब्ध नहीं हुए। जैसे सिंघी ग्रन्थमाला कलकत्तासे प्रकाशित अकलंकदेवका सभाष्य प्रमाणसंग्रह, सिद्धिविनिश्चयटीका, इत्यादि।

इस प्रकारके ग्रन्थोंमेंसे अनेक ग्रन्थोंपर श्वे० आचार्योंने टीकाएँ रच करके उन्हें अपनाया और पठन-पाठनके द्वारा सर्व-साधारणमें उनका प्रचार सुलभ रखा, इसके लिए दि० सम्प्रदाय उनका आभारी है। किन्तु दि० भण्डारोंमें उन ग्रन्थोंके न पाये जानेसे कई ग्रन्थोंके मूल रच-यिताओंके या तो नाम ही विलुप्त हो गए, या कई ग्रन्थ-प्रणेताओंके नाम संदिग्ध कोटिमें आगये, और कईयोंके नाम भी नामान्तरित हो गये।

ऐसे विलुप्त कई ग्रन्थकारोंकी कीर्तिको पुनरुज्जीवित करनेके लिए प्रस्तुत ग्रन्थ बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

आ० यतिवृषभकी स्वतंत्र कृतिके रूपसे तिलोयपण्णत्ती प्रसिद्ध है। इसमें तीनों लोकोंकी रचना, उसका विस्तार, स्वर्ग नरक, क्षेत्र, नदी, पर्वत और तीर्थंकरादि-सम्बन्धी कुछ विशिष्ट बातों आदिका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। तिलोयपण्णत्तीके अध्ययन करनेसे पता चलता है, कि उसके रचयिताने अपने समयमें प्राप्त होने वाले तत्तद्विषयक सर्व उपदेशोंका उसमें संग्रह कर दिया है। तिलोयपण्णत्तीकी रचना प्राय गाथाओंमें की गई है और स्थान-स्थानपर क्षेत्रादिके आयाम, विस्तार आदिको अंकोंमें भी दिखाया गया है। इसका परिमाण आठ हजार श्लोक है। ग्यारहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध सैद्धान्तिक आ० नेमिचन्द्रने इसीका सार खींच करके एक हजार गाथाओंमें त्रिलोकसार नामक ग्रन्थ रचा है जो कि अपनी संस्कृत और हिन्दी टीकाओंके साथ प्रगट हो चुका है।

चूर्णि क्या वस्तु है, इस बातपर प्रस्तावनामें बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है और यह बतलाया गया है कि श्रमण भ० महावीरके बीजपदरूप उपदेशके विश्लेषणात्मक विवरण की चूर्णि कहते हैं। इसीका दूसरा नाम वृत्ति भी है। यतिवृषभकी कसायपाहुडचूर्णि उक्त सर्व चूर्णियोंमें प्रौढ़ कृति है, वह टीका या व्याख्या रूप न होकर विवरणात्मक है, अतएव वह वृत्तिसूत्र या चूर्णिसूत्र नामसे प्रसिद्ध हुई है। वृत्तिसूत्रको आधार बना करके जो विशेष विवरण किया जाता है, उसे वार्त्तिक कहते हैं। वृत्तिसूत्रके प्रत्येक पदको लेकर जो व्याख्या की जाती है उसे टीका कहते हैं। वृत्तिसूत्रोंके केवल विषम पदोंकी निरुक्ति करके अर्थके व्याख्यान करनेको पंजिका कहते हैं। मूलसूत्र और उसकी वृत्ति इन दोनोंके विवरणको पद्धति कहते है। आ० इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारसे ज्ञात होता है कि कसायपाहुड पर आ० यतिवृषभ ने छह हजार श्लोक-प्रमाण चूर्णिसूत्र, उच्चारणाचार्यने बारह हजार उच्चारणावृत्ति, शामकुंडाचार्यने ४८ हजार श्लोकप्रमाण पद्धति, तुम्बुलूराचार्यने चौरासी हजार चूडामणि और आ० वीरसेन जिनसेन ने साठ हजार जयधवला टीका रची है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपलब्ध समस्त जैनवाङ्मयमेंसे कसायपाहुडपर ही सबसे अधिक व्याख्याएं और टीकाएं रची गई हैं। यदि उक्त समस्त टीकाओंके परिमाणको सामने रखकर मात्र २३३ गाथाओं वाले कसायपाहुडको देखा जाय, तो वह दो लाख श्लोक प्रमाणसे भी ऊपर सिद्ध होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ अपनी जयधवला नामक विशाल टीका और उसके अनुवादके साथ वर्षोंसे प्रकाशित हो रहा है तथा अभी उसके पूर्ण प्रकाशित होनेमें अनेक वर्ष और लगेंगे। इधर स्वराज्य-प्राप्तिके बाद २-३ वर्षोंसे प्राचीन प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यकी दिन पर दिन बढ़ती हुई मांगको देखकर कसायपाहुडके पूर्ण चूर्णिसूत्रोंको उनके हिन्दी अनुवादके साथ तुरन्त प्रगट करना उचित समझा गया।

श्री० पं० हीरालालजी शास्त्री इन सिद्धान्तग्रन्थोंके अनुवाद, सम्पादन, अनुसन्धान और परिशीलन में लगभग २५ वर्षोंसे लगे हुए हैं। उन्होंने कई वर्षोंके कठिन परिश्रमके पश्चात् कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंका उद्धार करके उनका संकलन और हिन्दी अनुवाद तैयार किया है। कसायपाहुड जैसे प्राचीन ग्रन्थपर आ० यतिवृषभके महत्वपूर्ण चूर्णिसूत्रोंको देखकर और उनकी महत्ताका अनुभव कर मैंने **श्रीवीरशासन-संघ कलकत्तासे** इसका प्रकाशन करना उचित समझा, और तदनुसार कसायपाहुड अपने चूर्णिसूत्र और हिन्दी अनुवादके साथ पाठकोंके कर-कमलोंमें उपस्थित है। पं० हीरालालजीने इसके अनुवाद और सम्पादनमें जो श्रम किया है, उसका अनुभव तो पाठक करेंगे, मैं तो यहां केवल इतना ही कहूँगा कि उन्होंने प्रूफ-संशोधन-में भी अत्यन्त सावधानी रखी है और यही कारण है कि कहीं पर भी कोई प्रूफ-संशोधन-सम्बन्धी अशुद्धि दृष्टिगोचर नहीं होती है।

आभार प्रदर्शन—

अब (अन्तमें) मैं सबसे पहले मेरी भावनाके अमर-सृष्टा, अनेक ग्रन्थोंके सम्पादक, प्राच्य-विद्या-महार्णव, सुप्रसिद्ध जैन विद्वान , वीरसेवामन्दिरके संस्थापक, वयोवृद्ध ब्र० जुगलकिशोरजी मुख्तारका आभार मानता हूँ, कि जिन्होंने सर्वप्रथम इन ग्रन्थोंका आरामें ६ मास बैठकर स्वाध्याय किया, एक हजार पेजके नोट्स लिए और तीनों सिद्धान्त ग्रन्थोंमें प्रस्तुत ग्रन्थको सर्वाधिक प्राचीन समझ कर प्रकाशित करनेका विचार कर श्री० पं० हीरालालजीसे अपना अभिप्राय व्यक्त किया, उनसे चूर्णिसूत्रोंका संग्रह कराकर उन्हें मूल ताडपत्रीय प्रतिसे मिलान करनेके लिए मूडबिद्री भेजा और उसका अनुवाद करनेको कहा । उन्होंने ही आजसे कई वर्ष पूर्व इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेके लिए मुझे प्रेरित किया था । ग्रन्थके टाइप आदिका निर्णय भी उन्होंने ही किया और प्रस्तावना लिखनेके लिए आवश्यक परामर्श एवं सूचनाएं भी उन्होंने ही दीं । तथा अस्वस्थ दशामें भी मेरे साथ बैठकर प्रस्तावनाको आद्योपान्त सुना और यथास्थान संशोधनार्थ सुझाव प्रस्तुत किये । यही क्या, जैन समाज एवं जैन साहित्य और इतिहासके निर्माणके लिए की गई उनकी सेवाएं सुवर्णाक्षरोंमें लिखी जानेके योग्य हैं । उन्हें मैं किन शब्दोंमें धन्यवाद दूं? मैं ही क्या, सारा जैनसमाज उनका सदा चिर-ऋणी रहेगा ।

ग्रन्थको बनारसमें छपाने, टाइपोंका निर्णय करने और समय-समय पर मुझे और पं० हीरालालजीको आवश्यक परामर्श देनेका कार्य काशी विश्वविद्यालयके बौद्धदर्शनाध्यापक श्री०पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने किया । भा० व० दि० जैन संघके प्रकाशन विभागके मंत्री श्री० पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने चूर्णिसूत्रोंके निर्णयार्थ जयधवलाकी संशोधित प्रेसकापी देनेकी उदारता प्रकट की । श्रीगणेशवर्णी जैन ग्रन्थमालाके मन्त्री श्री० पं०फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने संदिग्ध चूर्णिसूत्रोंके निर्णयार्थ समय-समयपर अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया और ग्रन्थ-सम्पादकको यथावश्यक सहयोग प्रदान किया । भारतीय ज्ञानपीठ काशीके व्यवस्थापक श्री० पं० बाबूलालजी फागुल्लने बनारसमें पं० हीरालालजीके ठहरनेकी तथा प्रेस और कागज आदिकी व्यवस्था की । उक्त कार्योंके लिए मैं बनारसकी उक्त विद्वच्चतुष्टयीका आभारी हूँ ।

डॉ०आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एम.ए. डी.लिट्, प्रोफेसर राजाराम कालेज कोल्हापुरने समय-समय पर आवश्यक सुझाव दिये और मुद्रित फार्मोंको देखकर उन्हें प्रकाशित करनेके लिए मुझे प्रोत्साहित किया, तथा अंग्रेजीमें विषय-परिचय लिखनेकी कृपा की । इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

श्रीमान् रा० सा० लाला प्रद्युम्नकुमारजी जैन रईस (तीर्थभक्तशिरोमणि स्व० ला० जम्बूप्रसादजीके सुयोग्य सुपुत्र) ने अपने पिताजीके द्वारा मंगाये हुए सिद्धान्तग्रन्थोंकी कनड़ी प्रतिलिपियोंकी नागरी कराई, जिससे कि उत्तरभारतमें इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका प्रचार सम्भव हो सका । उन्होंने पंडितजीको समय-समयपर धवल और जयधवलके प्रति-मिलान और अनुवाद करनेके लिए प्रति-प्रदान करनेकी सुविधा देकर अपनी सच्ची जिनवाणीकी भक्ति और उदारता प्रकट की । इस गर्मीके मौसममें—जब कि प्रस्तावनाका लिखना पण्डितजीके लिये सम्भव नहीं था, अपने पास मसूरीमें ठहरा कर उनके लिये सभी प्रकारकी आवश्यक सुविधा प्रदान की इस सबके लिए लालाजीको जितना धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है । विद्वत्परिषद्के शंका-समाधान विभागके मन्त्री श्री० ब्र० रतनचन्द्रजी मुख्तार (सहारनपुर) धर्मशास्त्रके मर्मज्ञ और सिद्धान्त-ग्रन्थोंके विशिष्ट अभ्यासी हैं । प्रस्तुत ग्रन्थके बहुभागका आपने उसके अनुवाद-कालमें ही स्वाध्याय किया है और यथावश्यक संशोधन भी अपने हाथसे प्रेसकापीपर किये हैं । ग्रन्थका

प्रत्येक फार्म मुद्रित होनेके साथ ही आपके पास पहुँचता रहा है और प्रायः पूरा शुद्धिपत्र भी आपने ही बनाकर भेजा है, इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं।

जब ग्रन्थ प्रेसमें दे दिया गया और ग्रन्थ-सम्पादकको अपने अनुवादके संशोधनार्थ मूल जयधवलके मुद्रित संस्करणकी आवश्यकता प्रतीत हुई, तब श्री १०८ आ० शान्तिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाके मंत्री श्रीमान् सेठ बालचन्द्र देवचन्द शाह बी० ए० बम्बईने स्वीकृति देकर और श्री० पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर सिवनी, सम्पादक-महाबन्धने उसकी प्रति प्रदान करके चूर्णिसूत्रोंके निर्णय और अनुवादके संशोधनमें सहायता दी है। इसके लिये हम आपके भी आभारी हैं।

सिद्धान्त-ग्रन्थोंके फोटो लेनेके लिये जब मैं २ वर्ष पूर्व मूडबिद्री गया, तब वहांके धर्मसंस्थानके स्वामी श्री १०८ भट्टारक चारुकीर्तिजी महाराजने, तथा सिद्धान्त-वसति-मन्दिरके ट्रस्टी श्री० धर्मस्थल जी हैगडे, श्री० एम० धर्मसाम्राज्यजी मंगलोर, श्री के० बी० जिनराजजी हैगडे, श्री० डी० पुट्टस्वामी सम्पादक-कनडी पत्र विवेकाभ्युदय मैसूर, श्री देवराजजी एम० ए० एल् एल् बी० वकील, श्री० धर्मपालजी सेट्टी मूडबिद्री और श्री० पद्मराज सेट्टीने फोटो लेनेकी केवल स्वीकृति ही नहीं प्रदान की, बल्कि सर्व प्रकारकी रहन-सहनकी सुविधा और व्यवस्था भी की ‡। श्री० पं० भुजबलीजी शास्त्री, श्री० एस् चन्द्रराजेन्द्रजी शास्त्री और श्री० पं० नागराज शास्त्रीने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। प्रस्तुत ग्रन्थके मुद्रित होजाने पर जब कुछ संदिग्ध चूर्णिसूत्रोंके निर्णयार्थ जयधवलाकी ताडपत्रीय प्रतिसे मिलानकी आवश्यकता अनुभव की गई, तब ग्रन्थके मुद्रित फार्म श्री चन्द्रराजेन्द्रजी शास्त्रीके पास मूडबिद्री भेजे गये और उन्होंने बड़ी तत्परता और सावधानीके साथ सभी संदिग्ध स्थलों पर ताड़पत्रीय प्रतिके पाठ लिखकर भेजे। साथ ही मूलप्रतिकी सूत्रारम्भके एवं सूत्र-समाप्तिके सूचक विराम चिह्न आदिकी कुछ विशिष्ट सूचनाएं भी भेजीं। शास्त्रीजीकी इस अमूल्य सेवाके लिये हम उन्हें खास तौरसे धन्यावद देते हैं।

अन्तमें इतना और स्पष्ट कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि श्री वीरशासन-संघके प्रकाशन प्रचारकी दृष्टिसे ही किये जाते हैं और इस कारण न्योछावरमें किञ्चिन्मात्र भी लाभ नहीं रखा जाता है।

श्रावणकृष्णा प्रतिपदा वि० सं० २०१२
वीरशासनजयन्तीका २५१२ वां वर्ष

छोटेलाल जैन
मन्त्री—श्रीवीरशासनसंघ कलकत्ता
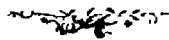
‡ तीनों सिद्धान्त ग्रन्थोंकी एकमात्र उपलब्ध प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियोंके जीर्णोद्धारके लिये इन्हें नेशनल आरकाइव्ज, नई दिल्लीमे भेजकर उनकी रक्षा करनेके प्रस्तावको स्वीकार कर उनका जीर्णोद्धार पूर्ण रूपसे करानेमें भी आप लोग ही सहायक हुए हैं।

सम्पादकीय वक्तव्य

मेरे स्वप्न साक्षात् हुए—

सन् १६२३ के दिसम्बरकी बात है, जब मैं दि० जैन शिक्षा-मन्दिर जबलपुरमें न्याय-तीर्थ और शास्त्रि-परीक्षा पास करके जैन सिद्धान्तके उच्च ग्रन्थोंके अध्ययनके साथ बोर्डिंगके अंग्रेजी विभागके छात्रोंको धर्मशास्त्रके अध्यापनका भी कार्य कर रहा था, तब एक दिन रात्रिके अन्तिम प्रहरमें स्वप्न देखा कि मैं श्रीधवल-जयधवल सिद्धान्त ग्रन्थोंका स्वाध्याय कर रहा हूँ। इतनेमें ही छात्रावासके नियमानुसार ४ बजे सोकर उठनेकी घंटी बजी। मैं चौंक कर उठा, हाथ मुँह धोकर प्रार्थनामें सम्मिलित हुआ और उसके समाप्त होने पर जैसे ही वापिस कमरेमें पैर रक्खा कि एक छात्रने कहा 'शास्त्री जी, आज कमरा झाड़नेकी आपकी बारी है।' मैंने बुहारी उठाई और एक ओरसे कमरा झाड़ना प्रारम्भ किया। अन्तमें जब मैं अपने पलंगके नीचे झाड़ रहा था, तो एक मोटा छोटासा दोहरा हस्तलिखित शास्त्र-पत्र दिखाई दिया *। मैंने उसे उठाकर प्रकाशमें पढ़ा तो यह देखकर मेरे आनन्दका पारावार न रहा कि उसमें एक ओर काली स्याहीसे मोटे अक्षरोंमें श्रीधवलकी और दूसरी ओर श्री जयधवलकी मंगल-गाथाएं लिखी हुई हैं। मैंने उन्हें अपने मस्तकपर रख अपनेको धन्य समझा और सन्दूकमें सुरक्षित रखकर सोचने लगा—यह कैसा स्वप्न है कि देखनेके साथ ही वह साक्षात् सफल हो रहा है।

इसके पश्चात् सन् २४के अक्टूबरकी बात है,जब मैं बनारसके स्याद्वादमहाविद्यालयमें धर्माध्यापक था और विद्यालयमें ही सोया करता था; एक दिन फिर रात्रिके अन्तिम याममें स्वप्न देखा कि मैं पुनः धवल-जयधवलका स्वाध्याय कर रहा हूँ। इतनेमें ही विद्यालयके छात्रोंके सोकर उठनेकी घंटी बजी, मेरी भी नींद खुली, और मैं तत्काल देखे हुए स्वप्न पर विचार करने लगा। सन्दूकमेंसे मंगलगाथाओंवाले उस पत्रको उठाया, मस्तक पर रखा और एक वार उनका भक्ति और श्रद्धापूर्वक पाठकर प्राभातिक कार्योंमें लग गया। दिनको सहारनपुरसे विद्यालयके मंत्री बा० सुमतिप्रसादजी–जो कि उन दिनों वहीं सर्विसमें थे–का तार विद्यालयके सुपरिन्टेन्डेन्टके नामसे आया, 'पं० हीरालालजी को यहाँके वार्षिक उत्सवमें शास्त्र-प्रवचनके लिये भेजो।' मैं बनारससे रवाना होकर यथासमय सहारनपुर पहुंचा। मुझे वहांके सुप्रसिद्ध तीर्थभक्तशिरोमणि, धर्मवीर (स्व०) लाला जम्बूप्रसाद जी जैन रईसकी कोठी पर ठहराया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मैं स्नानादिसे निवृत्त हो कर उनके निजी मन्दिरमें दर्शनार्थ गया, तब क्या देखता हूँ कि एक दक्षिणी सज्जन प्राकृत भाषामें कोई ग्रन्थ बांचकर सुना रहे हैं और दूसरा एक लेखक तीव्र गतिसे उन्हें लिखता जा रहा है। मैं पासमें बैठ गया और ध्यानसे सुनने लगा कि क्या विषय चल रहा है? 'ये कौनसे ग्रन्थ हैं, इस प्रश्नके उत्तरमें मुझे बतलाया गया कि मूडबिद्री के भण्डारसे सिद्धान्तग्रन्थों की प्रतिलिपि यहाँ आई है और अब उनकी नागरी प्रतिलिपि की जा रही है। मुझे अभी ३ दिन पूर्व बनारसमें देखे हुए स्वप्नकी बात याद आई और मैंने इन सिद्धान्त ग्रन्थोंके साक्षात् दर्शन करके अपनेको भाग्यशाली माना, तथा जितने दिन वहां रहा-प्रतिदिन प्रातःकाल २ घंटे उनका स्वाध्याय करता रहा। अन्तिम दिन जब वहांसे वापिस आने लगा तो मन्दिरमें जाकर सिद्धान्तग्रन्थोंकी वन्दना की और मनमें प्रतिज्ञा की कि जीवनमें एक वार इन ग्रन्थोंका अवश्य स्वाध्याय करूंगा।

* वे दोनों पत्र अब बिलकुल जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, फिर भी वे आज मेरे पास सुरक्षित हैं।

सन् ३२ की बात है, जब मैं भा० व० दि० जैन महासभाके महाविद्यालय ब्यावरमें धर्माध्यापक था, स्वप्नमें देखा, कोई कह रहा है--'तेरे निवासस्थानके पास ही किसी दूसरे नगर में सिद्धान्त ग्रन्थ हैं, जा, और उनका स्वाध्याय करके जीवन सफल कर'। जागनेपर मैंने ब्यावर और अपने देशके समीपस्थ सभी ग्राम-नगरोंपर दृष्टि दौड़ाई कि क्या किसी स्थानके शास्त्र-भण्डारमें उक्त सिद्धान्त ग्रन्थोंका होना संभव है ? कहीं कुछ पता न चला और अपने पास सुरक्षित रखे उन मंगल-पद्योंका पाठ करके अपनी नोटबुकके प्रारम्भ में एक संकल्प लिखा कि जीवन में यदि अवसर मिला--तो मैं इन सिद्धान्तग्रन्थोंका केवल स्वाध्याय ही नहीं करूँगा--बल्कि उनका हिन्दीमें अनुवाद भी करूंगा।

उन दिनों उज्जैनके प्रसिद्ध उद्योगपति रा० ब० जैनरत्न सेठ लालचन्दजी सेठीसे पत्र-व्यवहार चल रहा था, अन्तमें मैं सन् ३३ के प्रारम्भमें उनके पास उज्जैन पहुँचा। कुछ ही दिनोंके पश्चात् वे झालरापाटन गये, साथमें मुझे भी ले गये। उन दिनों वहांके ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवनमें श्री धवलादि सिद्धान्त-ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि श्रीमान पं० पन्नालालजी सोनीकी देख-रेखमें हो रही थी। लगभग ४ मास वहां ठहरा और प्रतिदिन ४ घंटे उन सिद्धान्त ग्रन्थोंमेंसे धवल-सिद्धान्तका स्वाध्याय कर उनके मूलसूत्रोंका संकलन करता रहा, जो कि आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं। झालरापाटनमें रहते और सिद्धान्त-ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते हुए मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि पहले धवल-सिद्धान्तका स्वाध्याय करना चाहिए--क्योंकि उसके विना जयधवलको समझना असम्भव है। झालरापाटनमें रहते हुए मैंने षट्खंडागम (धवलसिद्धान्त)के प्रथम खंड जीवस्थानका स्वाध्यायकर उसके पूरे सूत्रोंका सकलन कर लिया। उज्जैन वापिस आनेपर मैंने अनुभव किया कि तत्त्वार्थसूत्रकी पूज्यपाद-विरचित सर्वार्थसिद्धिके प्रथम अध्यायके आठवें सूत्र पर जो विस्तृत टीका है, वह प्रायः जीवस्थानके सूत्रोंका संस्कृत रूपान्तर ज्ञात होता है। और तभी मैंने दोनोंका तुलनात्मक अध्ययनकर एक लेख लिखा, जो कि सन् ३८ के जैनसिद्धान्तभास्करके भाग ४ किरण ४में प्रकाशित हुआ है। उज्जैनमें रहते हुए अनेकों वार मेरा झालरापाटन जाना हुआ और मैंने वहां महीनों रह करके उक्त सिद्धान्तग्रन्थोंका स्वाध्याय किया। साथ ही श्रीधवलसिद्धान्तका अनुवाद भी मैंने प्रारम्भ कर दिया।

इसी बीच सुननेमें आया कि भेलसा-निवासी श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी जैन-साहित्यके उद्धार और प्रकाशनार्थ १० हजारका दान दिया है। सन् ३४ के अन्तमें प्रो० हीरालालजी द्वारा सम्पादित जयधवलका एक फार्मवाला नमूना भी देखनेको मिला और उसपर अनेकों विद्वानों-द्वारा की गई समालोचनाएं और टीका-टिप्पणियां भी समाचार-पत्रोंमें देखने और पढ़नेको मिलीं। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार सरसावा, प्रसिद्ध दार्शनिक प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवी और प्रो० आ० ने० उपाध्याय कोल्हापुर आदिने जयधवलके उस एक फार्मके अनुवाद और सम्पादनमें शब्द और अर्थगत अनेकों अशुद्धियोंको बतला करके यह प्रकट किया था कि इन सिद्धान्त-ग्रन्थोंका सम्पादन और अनुवाद प्रो० हीरालालजीके वशका नहीं है।

इसी समय प्रो० हीरालालजीके साथ मेरा पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ और यह निश्चय हुआ कि मैं उज्जैनमें रहते हुए ही धवलसिद्धान्तका अनुवाद करता रहूँ और जब एक भागका अनुवाद तैयार हो जाय, तब उसे प्रेसमें दे दिया जाय। मेरे पास प्रो० हीरालालजीने अमरावती और आराकी प्रतियोंके प्रारम्भके १००-१०० पत्र भी भिजवा दिये। झालरापाटनकी प्रति तो मुझे पहले से ही सुलभ थी, तीनोंका मिलान करते हुए मुझे अनुभव हुआ कि सभी प्रतियां अशुद्ध हैं और उनमें स्थान-स्थान पर लम्बे-लम्बे पाठ छूटे हुए हैं--खासकर अमरा-

वतीकी प्रति तो बहुत ही अशुद्ध निकली, क्योंकि वह सीताराम शास्त्रीके हाथकी लिखी हुई नहीं थी। तीनों प्रतियोंमें केवल आरावाली प्रति ही उनके हाथकी लिखी हुई थी। इस बातसे मैंने प्रो० हीरालालजीको भी अवगत कराया। वे अनुवाद और मूलकी प्रेसकापीको भेजनेके लिए आग्रह कर रहे थे, उनकी इच्छा थी कि ग्रन्थ जल्दी-से-जल्दी प्रेसमें दे दिया जाय। पर मैंने उन्हें स्पष्ट लिख दिया कि जब तक सहारनपुरकी प्रतिसे मिलान नहीं हो जाता, तब तक मैं ग्रन्थको प्रेसमें नहीं देना चाहता। लेकिन सहारनपुरकी प्रतिसे मिलान करना भी आसान काम नहीं था, क्योंकि ऐसा सुना जाता था कि सहारनपुर वाले छापेके प्रबल विरोधी हैं, फिर दिगम्बरोंके परम मान्य आद्य सिद्धान्त-ग्रन्थोंको छपानेके लिए प्रति-मिलानकी सुविधा या आज्ञा कैसे प्रदान करेंगे? चूँकि मैं सन् २४ में सहारनपुर जा चुका था और स्व० लाला जम्बूप्रसादजीके सुयोग्य पुत्र रा० मा० ला० प्रद्युम्नकुमारजीसे परिचय भी प्राप्त कर चुका था, अतएव मैंने यही उचित समझा कि सहारनपुर जाकर लालाजीसे मिलकर और उनकी आज्ञा लेकर वहांकी प्रतिसे अपनी (अमरावतीवाली) प्रतिका मिलान कर रिक्त पाठोंको पूरा और अशुद्ध पाठोंको शुद्ध किया जाय। तदनुसार सन ३७ की गर्मियोंमें सहारनपुर गया। वहां पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि लालाजी तो मसूरी गये हुए हैं। मैं उनके पास मसूरी पहुँचा, सारी स्थिति उन्हें सुनाई और मिलानके लिए प्रति देनेकी आज्ञा मांगी। उन्होंने कहा—यद्यपि हमारा घराना और हमारे यहांकी समाज छापेकी विरोधी है, क्योंकि ग्रन्थके छपने आदिमें समुचित विनय नहीं होती, सरेसके बेलनोंसे ग्रन्थ छपते हैं, आदि। तथापि जब उक्त सिद्धान्त-ग्रन्थ छपने ही जा रहे हैं, तो उनका अशुद्ध छपना तो और भी अनिष्ट-कारक होगा, ऐसा विचार कर और 'जिनवाणी शुद्धरूपमें प्रकट हो' इस श्रुत-वात्सल्यसे प्रेरित होकर प्रति-मिलानकी सहर्ष अनुमति दे दी। मैंने सहारनपुर जाकर वहाँकी प्रतिसे अमरावतीकी प्रतिका मिलान-कार्य प्रारम्भ कर दिया। पर गर्मीके दिन तो थे ही, और सहारनपुरकी गर्मी तो प्रसिद्ध ही है, वहाँ १५ दिन तक मिलान-कार्य करनेपर भी बहुत कम कार्य हो सका। मैं मसूरीके ठंडे मौसमकी बहार हालमें ही ले चुका था, अतः सोचा, क्यों न लालाजीसे सिद्धान्त-ग्रन्थकी प्रति मसूरी लानेकी आज्ञा प्राप्त करूँ? और दुबारा मसूरी जाकर अपनी भावना व्यक्त की। लालाजीने कुछ शर्तोंके साथ * मसूरीमें ग्रन्थराजको लाने, प्रति-मिलान करने और अपने पास ठहरनेकी स्वीकृति दे दी और मैं सहारनपुरसे धवल-सिद्धान्तकी प्रति लेकर मसूरी पहुँचा। गर्मी भर लालाजीके पास रहा और श्री जिनमन्दिरमें बैठकर प्रति-मिलानका कार्य करता रहा †। जब धवलसिद्धान्तके प्रथम खंड जीवस्थानका मिलान पूरा हो गया, तो मसूरीसे लौटते हुए सरसावा जाकर श्रद्धेय पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारसे मिला, सर्व वृत्तान्त सुनाया और अब तकके किये हुए अनुवाद और प्रतिमिलानके कार्यको भी दिखाया। वे सर्व कार्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए, कुछ संशोधन सुझाए और जरूरी सूचनाएं दीं। मैंने उन सबको स्वीकार किया और वापिस उज्जैन आगया।

उज्जैन आकर संशोधित पाठोंके अनुसार अनुवादको प्रारम्भसे देखा, यथास्थान संशोधन किये, टिप्पणियां दीं और इस सबकी सूचना प्रो० हीरालालजीको दे दी।

प्रो० हीरालालजी मुझे उज्जैनकी नौकरी छोड़कर अमरावती आनेका आग्रह करने

---

* ग्रन्थराज लकड़ीकी पेटीमें रखकर लावें, जूते पहने न लाये जावें और शूद्र कुलीके ऊपर बोझ उठवा कर न लाये जायें। तदनुसार मैं राजपुरसे कुलीके ऊपर अपना सामान रखाकर और ग्रन्थराजकी प्रति अपने मस्तकपर रख करके पैदल ही पगडंडीके रास्तेसे मसूरी पहुँचा था।

† सहारनपुरकी प्रतिसे मिलान करके जो पाठ लिये थे, उनमेंसे एक पृष्ठका चित्र धवलाके प्रथम भागमें मुद्रित है, जिसमें कि मेरे हस्ताक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

लगे। पर मेरी भीतरी इच्छा यही थी कि उज्जैनमें रहते हुए ही सिद्धान्त-ग्रन्थोंके अनुवादका कार्य करता रहूँ। अतः लगभग एक वर्ष इसी दुविधामें निकल गया। सन् ३८ के अन्तमें श्री० नाथूरामजी प्रेमीका पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था—'आप दो घोड़ोंकी सवारी करना चाहते हैं, पर यह सम्भव नहीं। या तो आप उज्जैनकी नौकरी छोड़कर अमरावती चले जाइए, या फिर जो कुछ भी अनुवादादि आपने किया हो उसे प्रो० हीरालालजीको भेजकर अपना पारिश्रमिक ले लीजिए और इस कामको छोड़ दीजिए। जहां तक मैं जानता हूं आप उज्जैनकी नौकरी छोड़ नहीं सकेंगे, इत्यादि। पत्र बहुत लम्बा था और नौकरी छोड़नेकी बात मेरे लिए चुनौती थी। मैंने कई दिन तक ऊहापोहके बाद उज्जैन छोड़नेका निश्चय किया।

आखिर मैं सन् ३८ के दिसम्बरमें उज्जैनकी नौकरी छोड़कर अमरावती पहुँच गया। प्रो०सा०के परामर्शके अनुसार १जनवरी सन् ३९से वहां आफिस व्यवस्था करली गई। आफिस-व्यवस्थाके कुछ दिन बाद ही श्री० पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री भी बुला लिये गये थे और हम दोनों मिलकर कार्य करने लगे। इसी वर्षके अन्तमें धवलाका प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। जब इनर टाइटिल पेज प्रेस में दिया गया और उसके ऊपर अपना अनुवादकके रूपमें नाम न देखा, तो मैंने उसका विरोध किया और आगे काम न करने के लिये त्यागपत्र भी प्रस्तुत कर दिया। मुझे इस बातसे बहुत धक्का लगा कि प्रो० सा० हमारा नाम अनुवादकके रूपमें क्यों नहीं दे रहे हैं, जब कि अनुवाद हमारा किया हुआ है और जिसे कि मैं अमरावती पहुंचनेके ३ वर्ष पूर्वसे करता आ रहा हूँ। (पीछे इस बातको उन्होंने धवलाके प्रथम भागके प्राक्कथनमें स्वयं स्वीकार किया है।) धवलाके प्रथम भागका प्रकाशन-समारम्भ श्री० प्रेमीजीके द्वारा अमरावतीमें ही सम्पन्न हुआ था। समारोह में स्व० श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी कारंजा और मेरे श्वसुर स्व० दयाचन्द्रजी बजाज रहली (सागर) भी पधारे थे। प्रेमीजी के साथ उन सब लोगोंने मुझपर भारी दवाव डाला, अपने नामके मोह छोड़नेकी बात कही, पर जब मैं किसी प्रकारसे भी त्यागपत्र वापिस लेनेको तैयार नहीं हुआ तब अन्त में सह-सम्पादकके रूपमें हम लोगोंका नाम दे दिया गया। यद्यपि मैंने त्यागपत्र वापिस ले लिया, तथापि मेरे चित्तको बड़ी चोट लगी कि कैसी विलक्षण बात है, काम हम करें और नाम दूसरों-का हो। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी चित्त शान्त नहीं हुआ,तब मैंने यह स्थिर किया कि जय-धवलाका अनुवाद मैं स्वतन्त्रता-पूर्वक करूंगा। इसके लिये पहले उसके मूलकी प्रेसकापी तैयार करनेका संकल्प किया और सन् ३९ के दिसम्बरसे ही अपने घर पर जयधवलाकी प्रेसकापी करना प्रारम्भ कर दिया। मन ही मन स्थिर किया कि जिस दिन भी जयधवलाकी पूरी प्रेसकापी तैयार हो जायगी उसी दिन धवला-आफिससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लूँगा। दो वर्षके भीतर धवलाके तीन भाग प्रकाशित हुए और इधर ठीक दो वर्षके कठिन परिश्रमके बाद ६० हजार श्लोकोंके प्रमाणवाली जयधवलाकी प्रेसकापी भी मैंने तैयार कर ली, जिसके कि फुलस्केप पृष्ठोंकी संख्या साढ़े सात हजारसे ऊपर थी। इसी समय एक दैवी घटना घटी, श्री० पं० फूलचन्द्जीके पुत्रकी सख्त बीमारीका तार घरसे आया और वे देश चले गये। दुर्भाग्यवश उनके पुत्रका देहान्त हो गया और उन्होंने अमरावती न आनेका निश्चय प्रो० सा० को लिख भेजा। जिस दिन मैं त्यागपत्र लेकर प्रो० सा० को देनेके लिये उनके पास पहुंचा, तो उन्होंने उक्त समाचार सुनाया और पूछा कि क्या अकेले आप आगेके अनुवादादिका कार्य संभाल लेंगे? मैं बड़ी दुविधामें पड़ा कि यह क्या हो रहा है? जिस दिन मैं धवला-आफिससे सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहता था, उस दिन पं०फूलचन्द्रजीने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया !!! अन्तमें मैंने अपना त्यागपत्र अपनी जेबमें ही रहने दिया और धवला-आफिसमें यथापूर्व कार्य करता रहा।

इसी बीच सन ४० में मैं सहारनपुर जैनयुवक समाजकी ओरसे पर्युषण पर्वमें शास्त्र-प्रवचनके लिए आमंत्रित किया गया। वहांसे श्रीमुख्तार सा० से मिलनेके लिये सरसावा भी गया और उस वर्ष घटित हुई घटनाओंको सुनाया। जयधवलाके प्रेसकापी कर लेनेकी बात सुनकर श्री० मुख्तार सा०ने अपनी इच्छा व्यक्त की कि यदि आप जयधवलामेंसे कसायपाहुड मूल और उसकी चूर्णिका उद्धार करके और अनुवाद करके हमें दे सकें, तो हम वीर सेवा-मन्दिरकी ओरसे उसे प्रकाशित कर देंगे। मैंने उनको इसकी स्वीकृति दे दी। अनुवाद, टिप्पणी आदिके विषयमें विचार-विनियम भी हुआ और एक रूप-रेखा लिखकर मुझे दे दी गई कि इस रूपमें कार्य होना चाहिए। मैं उस रूप-रेखा को लेकर वापिस अमरावती आगया। दिनमें धवला-आफिस जाकर धवलाके अनुवाद और सम्पादनका कार्य करता और रातमें घर पर कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंका संकलन करता। चूर्णिसूत्रोंके संकलन करते हुए यह अनुभव हुआ कि उनका ६० हजार प्रमाणवाली विशाल जयधवला टीकामेंसे छांटकर निकालना सागर-में गोता लगाकर मोती बटोरने जैसा कठिन कार्य है। यद्यपि सन् ४१ के भाद्रपद शुक्ला १३ को मैंने चूर्णिसूत्रोंका संकलन पूरा कर लिया, तथापि सैकड़ों स्थान संदिग्ध रहे कि वे चूर्णिसूत्र हैं, या कि नहीं? मैंने इसकी सूचना श्री० मुख्तार सा० को दी, उन्होंने मुझे सरसावा बुलाया। मैंने वहां जाकर चूर्णिसूत्रोंकी कापी दिखाई और साथमें संदिग्ध स्थल। अन्तमें यह तय हुआ कि मूडबिद्री जाकर ताड़पत्रीय प्रतिसे चूर्णिसूत्रोंका मिलान कर लिया जाय और वहां जाने-आनेके व्ययका भार वीरसेवा-मन्दिर वहन करे। सन् ४२ की फरवरीमें मैं अमरा-वतीसे मूडबिद्री गया और वहां १५ दिन ठहरकर स्व० श्री० पं०लोकनाथजी शास्त्री और नागराजजी शास्त्रीके साथ बैठकर ताडपत्रीय प्रतिसे चूर्णिसूत्रोंका मिलान करके वापिस आगया और घरपर धवलाके प्रूफ-रीडिंग आदिसे जो समय बचता, उसमें चूर्णिसूत्रोंका अनुवाद करने लगा। जब कुछ अंशका अनुवाद तैयार हो गया, तो मैंने उसे श्री मुख्तार सा० के पास भेज दिया। साथ ही उनके द्वारा बतलाये गये टाइपोंमें एक नमूना-पत्र भी मुद्रित कराया और उसे देखने के लिये उनके पास भेज दिया। जब ग्रन्थको प्रेसमें देनेकी बात श्री० मुख्तार सा० ने पत्रमें लिखी, तो मैंने उनसे यह पूछना उचित समझा कि ग्रन्थके ऊपर मेरा नाम किस रूपमें रहेगा। उनका उत्तर आया कि ग्रन्थके ऊपर तो 'सम्पादक' के रूपमें मेरा नाम रहेगा। हां, भीतर अनुवादादि जो कार्य आप करेंगे उस रूपमें आपका नाम रहेगा। मुझे तो इस 'सम्पादक' नामसे पहलेसे ही चिढ़ थी, कि आखिर यह क्या बला है? तब मैंने 'सम्पादक और प्रकाशक' शीर्षक एक छोटा सा लेख लिख करके अनेकान्तमें प्रकाशनार्थ श्री मुख्तार सा० को भेजा। उन्होंने न तो उसे अनेकान्तमें प्रकाशित ही किया, न मुझे कोई उत्तर दिया। प्रत्युत प्रो० हीरालालजी को एक बन्द पत्र लिखकर उस लेखकी सूचना उन्हें दी और लिखा कि ऐसा ज्ञात होता है कि आपका और उनका कोई मत-भेद सम्पादकके नामको लेकर हो गया है। और न जाने क्या-क्या लिखा? भाग्यकी बात है कि जिस समय यह पत्र आया उस समय मैं और प्रो० सा० आमने-सामने बैठे हुए प्रति-मिलान कर रहे थे। श्री मुख्तार सा०के अक्षर पहि-चान करके उन्होंने उसे तत्काल खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया और ज्यों ज्यों वे उसे पढ़ते गये, उनके बदले हुए भावोंकी छाया मुखपर अंकित होती गई। मैं यह सब पूरे ध्यान सेदेख रहा था। पत्र पढ़ चुकने पर उन्होंने पूछा — क्या आपने कोई लेख इस प्रकारका पत्रोंमें प्रकाश-नार्थ भेजा है? मैंने सब बातें यथार्थ रूपमें कहीं। सुनकर बोले आप उस लेखको वापिस मंगा लीजिये। मैंने कह दिया, यह तो संभव नहीं है। मेरा उत्तर सुनकर वे कुछ अप्रतिभसे होकर बोले-तब ऐसी अवस्थामें यहां कार्य करना संभव नहीं! बात बढ़ चली और मेरा धवला

आफिस से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। कुछ दिनोंके बाद ता० १८-५-४२ का लिखा एक लम्बा पत्र श्री० मुख्तार सा० का आया, जिसमें सम्पादक-पत्रमें बहुत सी दलीलें देकर यह दिखानेका यत्न किया गया था, कि मुझे सम्पादक न माननेका क्या कारण है? ××× मालूम होता है कि आप किसी लोभ-मोहादिके प्रलोभनमें फंस गये हैं, अतः यह बखेड़ा उठाया है, आदि। अन्तमें आपने लिखा था 'कि मूडबिद्री जाने आनेमें आपने संस्थाकी एक ·······रकम खर्च कराई और अब यह अडंगा लगा रहे हैं, आदि। मैंने सम्पादक-सम्बन्धी बातोंके बारे में तो यह लिख दिया कि पहले आप मेरे उस लेखको अनेकान्तमें प्रकाशित कीजिये पीछे जो भी आप उसपर सम्पादकीय टिप्पणीमें लिखना चाहें-लिखिए। साथ ही यह भी लिख दिया कि यदि आप उस लेखको प्रकाशित नहीं करना चाहते हों, तो मुझे तुरन्त बैरंग वापिस कर देवें, जिससे कि मैं अन्य पत्रोंमें प्रकाशित करा सकूं? और जब तक मुझे मेरे लेखका समुचित समाधान नहीं मिल जाता, तब तक मैं आपको या किसीको सम्पादक माननेके लिये तैयार नहीं हूँ। भले ही मेरा यह ग्रन्थ अप्रकाशित पड़ा रहे? रह गई मूडबिद्री जाने-आनेमें खर्च हुए रुपयों की बात, सो ग्रन्थका जितना अंश आपके पास पहुंच चुका है उसकी उतने रुपयोंकी वी० पी० करके अपना रुपया मेरे से वसूल कर लीजिये और मेरी प्रेसकापी मुझे वापिस कर दीजिए। अन्तमें ८०) रुपये उन्हें भेज दिये गये और मैंने अपनी प्रेसकापी अपने पास वापिस मंगा ली।

इसी बीच मथुरा संघसे जयधवलाके प्रकाशनकी योजना बनी और मैंने जयधवलाकी पूरी प्रेसकापी उन्हें दे दी। इस प्रकार मेरा धवला और जयधवलासे तो सम्बन्ध-विच्छेद हुआ ही, श्रीमुख्तार सा०से भी कसायपाहुडके प्रकाशन-सम्बन्धी सब बातें समाप्त हो गईं और मैं अमरावती छोड़ कर वापिस उज्जैन आ गया। अप्रासंगिक होते हुए भी यहां इतना लिखना अनुचित न होगा कि अमरावतीमें ही रहकर सिद्धान्त-ग्रंथोंके अनुवादादि करनेके विचारसे मैंने अमरावतीमें एक मकान भी खरीद लिया था और अपने पठन-पाठनकी सुविधाके अनुकूल बनवा भी लिया था। मगर जब सिद्धान्त-ग्रंथोंके अनुवाद और सम्पादनादिसे एक प्रकारसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद-सा हो गया, तो दिलको बड़ी चोट लगी और उज्जैन आनेके एक वर्ष बाद अमरावती जाकर वहांका मकान भी बेच आया। इस प्रकार मध्यलोकके मध्यभारतकी मध्यभूमि उज्जैनसे मैं सकुटुम्ब सदेह अमरावती (स्वर्ग) भी पहुँच गया, और पूरे ५ वर्ष वहां रह कर अन्तमें अपने सर्व कुटुम्बके साथ पुनः सदेह ही वापिस मध्यलोकमें आगया।

उक्त घटनाओंका मन पर जो असर हुआ, वह प्रयत्न करने पर भी लम्बे समय तक दूर नहीं हो सका और सन् ४४ में पुनः उज्जैन आनेके बादसे ही बराबर इस अवसरकी प्रतीक्षा करता रहा कि चित्त कुछ शान्त हो और मैं मूल पट्खण्डागम और कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंका अनुवाद पूरा कर सकूं। चूर्णिसूत्रोंके ऊपर जयधवलाके आधारसे मैंने विस्तृत टिप्पणियाँ ले रखी थीं, अतएव जब कभी समय मिलता और चित्त शान्त होता, मैं अनुवाद करता रहा। पर इस दिशामें कुछ प्रगतिशील कार्य नहीं हो सका। अबकी वार उज्जैन आने पर नौकरी करनेमें चित्त नहीं लगा और हर समय ऐसा प्रतीत हो कि यहां रहकर तू अपने जीवनके इन कीमती क्षणोंको व्यर्थ खो रहा है? फलस्वरूप मैंने सन् ४६ के अन्तमें उज्जैनकी नौकरी छोड़ दी।

भा० व० दि० जैन संघके उस समयके प्रधानमंत्री पं० राजेन्द्रकुमारजीको जैसे ही मेरे उज्जैनकी नौकरी छोड़नेकी बात ज्ञात हुई उन्होंने मेरे द्वारा तैयार किये हुए चूर्णिसूत्रादिको प्रकाशित करनेका वचन देकर मुझे मथुरा बुला लिया और सरस्वती-भवनकी व्यवस्था मुझे सौंप दी। वहां रहते हुए मैंने छहढाला, द्रव्यसंग्रह और रत्नकरण्डश्रावकाचारके स्वाध्यायोपयोगी नये

भाष्य लिखे, जिनमें आदिके दोनों ग्रन्थ संघसे मुद्रित हो चुके हैं। संघमें रहते हुए अचानक ललितपुरसे तार-द्वारा एक संकटकी सूचना मिली और मैं अवकाश लेकर घर चला आया।

इस संकटमें पूरे तीन वर्ष व्यतीत हुए और हजारों रुपये बर्बाद। दुकानका सारा कारोबार ठप्प होगया और हम सब भाई पुनः नौकरी करनेके लिए विवश हुए। इस प्रकार सन् ४३ से ४९ तकके ६ वर्षके भीतर घरू झंझटोंके कारण इन सिद्धान्त-ग्रन्थोंका मैं कुछ भी कार्य न कर सका। इस समय मैं नौकरीकी चिन्तामें था, कि सहारनपुरसे मेरे चिरपरिचित और अति-स्नेही ला०जिनेश्वरदासजीका पत्र पहुंचा कि आप यहां चले आइए और गुरुकुलके आचार्यका भार संभालिए। पत्र पाते ही मैं सन् ४९ की जुलाईमें सहारनपुर आगया। पहले दिन तो गुरुकुलका चार्ज संभाला और दूसरे दिन श्रीमान् ला० प्रद्युम्नकुमारजीके मन्दिरमें जाकर सिद्धान्त-ग्रन्थोंको संभाला और वेदक अधिकारसे चूर्णिसूत्रोंका अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया। वर्षोंकी प्रतीक्षाके बाद यहां रहते हुए प्रतिदिन प्रातःकाल ७।। से ९।। बजे तक लालाजीकी कोठीके एक बड़े एकान्त-शान्त कमरेमें बैठकर मैं अनुवादका कार्य करता रहा। जब गुरुकुल वहांसे हस्तिनापुर पहुँचा, तो सहारनपुरकी प्रतिको वहां भी लेगया और अनुवादका कार्य बराबर जारी रखा। इसी बीच गुरु-कुलमें रहते हुए खातौली जाना हुआ और ला० त्रिलोकचन्द्रकी आदिकी कृपासे वहांके मन्दिर-जीकी धवल-जयधवलकी पूरी दोनों प्रतियां लेता आया। सन् ५० के अप्रैलके अन्तमें गुरुकुल छोड़ दिया और सन्मती ग्रन्थमालामें क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराजने मुझे दिल्ली बुला लिया। यहांपर धर्मपुरा पंचायती मन्दिरकी जयधवल-प्रति भी मुझे सुलभ हो गई और कसायपाहुडके अनुवादका काम जारी रहा। यहाँ आनेपर दिल्लीकी गर्मीको सहन न कर सका और चकरौता चला गया—जोकि शिमला और मसूरीके समकक्ष ही ठंडा स्थान है। वहां रहकर काफी बड़े अंशका अनुवाद किया। घटनाचक्रसे विभिन्न नौकरियोंको करते हुए मैंने ३ वर्ष दिल्लीमें व्यतीत किये और दोनों सिद्धान्त-ग्रन्थोंके मूल सूत्रोंका अनुवाद अवकाशके अनुसार करता रहा। अन्तमें सन ५१के सितम्बरमें षट्खण्डागमके मूलसूत्रोंका सङ्कलन और अनुवाद पूरा किया और सन् ५३ के मार्चमें कसायपाहुडके अनुवादको भी पूरा कर लिया।

जब मैं धवल और जयधवल दोनोंसे ही तथा सचूर्णि कसायपाहुडके प्रकाशनसे हाथ धो बैठा, तो मैंने महाधवल (महाबन्ध) को हाथमें लेनेका विचार किया। सन् ४२ में जब चूर्णिसूत्रोंके मिलानके लिए मूडबिद्री गया था, तब महाबन्धके भी एक वार आद्योपान्त पत्रे उलट आया था और चारों अधिकारोंके अनुयोगद्वार-सम्बन्धी कुछ नोट्स भी ले आया था, तभीसे यह भावना हृदयमें घर कर गई थी। पर तब तक महाबन्धकी प्रति मूडबिद्रीसे बाहिर कहीं नहीं आई थी। समय आनेपर पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर सिवनीके प्रयत्नसे महाबन्धकी प्रतिलिपि भी बाहिर आई और उन्होंने अपने साथियोंके साथ उसका अनुवाद भी प्रारम्भ किया। मुझे भी दिखाकर परामर्श लिया गया और कुछ दिनों बाद महाबन्धका एक भाग भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित भी होगया। सम्पादकके नामको लेकर वहां भी विवाद उठा था और उनके दोनों साथियोंका सम्बन्ध टूट गया था। अतःजब आगेके अनुवादादिकी बात चली और मुझसे उसमें सहयोग देनेके लिए कहा गया, तो मैंने उसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि सम्पादनके नामको लेकर ही मेरा धवला और कसायपाहुडसे सम्बन्ध-विच्छेद हुआ और उसीके निमित्तसे दिवाकरजीके दोनों साथी अलग हुए थे। कुछ कारणोंसे जब महाबन्धके आगेके भागोंका प्रकाशन रुक गया और जब मैं श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजीके पास दिल्लीमें काम कर रहा था, तब ज्ञान-पीठ काशीके मन्त्री श्री गोयलीयजी अपने किसी कामसे दिल्ली आये। मेरी उनसे भेंट हुई और उन्होंने महाबन्धके आगेके भागोंका सम्पादन करनेके लिए कहा। मैंने उनसे कहा कि जो

प्रति बाहिर आई हैं, प्रथम तो उसका मिलना ही कठिन है और यदि मिल भी जाय, तो उसके ऊपर पूर्ण शुद्ध होनेका विश्वास नहीं किया जा सकता है। अतएव उसका ताड़पत्रीय प्रतिसे मिलान करानेकी सुविधा यदि आप देवें, या मेरे मूडबिद्री जाकर मिलान करनेका भार ज्ञानपीठ वहन करे, तो मैं आपके प्रस्तावको स्वीकार कर सकता हूँ। उन्होंने मूडबिद्री जाने-आनेके भारको उठानेसे इनकार करते हुए कहा कि आप उस भारको स्वयं वहन कीजिए और सम्पादन-पारिश्रमिकमें जोड़कर उसे वसूल कर लीजिए। अन्तमें पारिश्रमिकका एक अनुमानिक विवरण लिखकर उन्हें दे दिया गया। उन्होंने कहा कि मैं कमेटीसे विचार-विनिमय करके लिखूंगा। करीब ६ मासके पश्चात् गोयलीयजीका पत्र आया कि यदि आप स्वयम्भू कविके अपभ्रंश-रामायणके अनुवादका कार्य कर सकें, तो ज्ञानपीठ वह काम आपसे करानेके लिए तैयार है। मैंने उनके इस पत्रका उत्तर दिया कि लगभग एक वर्षसे जिस महाबन्धका सम्पादन मुझसे करानेकी चर्चा चल रही थी, उसका तो आपने कोई उत्तर नहीं दिया, फिर यह नया प्रस्ताव कैसा! उत्तर आया कि आपके पारिश्रमिककी मांग कुछ अधिक थी, अतः उसका सम्पादन तो पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीको सौंप दिया गया है। चूँकि आप घर पर इस समय अवकाश-में हैं, इसलिए उक्त प्रस्ताव आपके सामने रखा गया है, आप इसे स्वीकार कर उसके एक अंशका अनुवाद डा० हीरालालजीके पास स्वीकृतिके लिए नागपुर भेज दीजिये। मैंने उनके इस पत्रका कोई उत्तर नहीं दिया और अपने अतीत जीवनपर विहंगावलोकन करने लगा—कि कहाँ तो एक वार मेरे स्वप्न साक्षात् हो रहे थे, और कहां अब हाथमें आए हुए ये सिद्धान्तग्रन्थ क्रम-क्रमसे मेरे हाथसे निकलते जा रहे हैं?

इस बीच सन् ५२ के भादोंमें अकस्मात् मेरे पचीस वर्षीय विवाहित ज्येष्ठ पुत्रका देहान्त हो गया। यह मेरे लिए वज्रप्रहार था, इससे मैं इतना अधिक आहत हुआ कि पूरे दो वर्ष तक घरसे बाहिर नहीं जासका और अपने चित्तको सम्भालनेके लिए कुछ ग्रन्थोंका अनुवादादि करता रहा। जिसके फल-स्वरूप वसुनन्दिश्रावकाचार और जिनसहस्रनाम ये दो ग्रन्थ तैयार किये, जो बादमें ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित हुए।

षट्खंडागममूलसूत्रों और कसायपाहुडचूर्णिसूत्रोंके आद्योपान्त अनुवाद मेरे पास तैयार थे ही, अतः जनवरी सन् १९५४ में जिनसहस्रनामके प्रकाशित होते ही उक्त दोनों ग्रन्थोंको भी प्रकाशित करनेके लिए गोयलीयजीसे कहा। उन्होंने उत्तर दिया—हमारे यहांकी व्यवस्था आपको ज्ञात है। आप नागपुर चले जाइए और प्राकृत विभागके प्रधान सम्पादक डा० हीरालालजीसे स्वीकृति ले आइए, हम तुरन्त ही दोनों ग्रन्थोंको ज्ञानपीठसे प्रकाशित कर देंगे। मैं फरवरी सन् ५४ में उक्त दोनों ग्रन्थोंको भारतीयज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशनार्थ स्वीकृति लेनेके लिए डॉ० हीरालालजीके पास नागपुर गया और उनके यहां ही तीन दिन ठहरा। अनुवाद और मूलकी प्रेसकापी आदि सब कुछ उन्हें दिखाया और भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशनार्थ स्वीकृति देनेके लिए निवेदन किया। पर डॉ०हीरालालजीने यह कहकर स्वीकृति देनेसे इनकार कर दिया कि यदि ये दोनों मूलग्रन्थ छप जावेंगे,तो धवला-जयधवलाका प्रकाशन रुक जावेगा क्योंकि फिर इन टीका-ग्रन्थोंको कौन खरीदेगा? मुझे उनकी यह दलील समझमें नहीं आई कि मूल-ग्रन्थके प्रकाशमें आनेसे टीकाओंका प्रकाशन क्यों रुक जावेगा? अन्तमें हताश होकर देश लौट आया। हां, चलते समय डा० सा० ने यह अवश्य कहा, कि यदि धवलाके पूरे भाग प्रकाशित होने तक आप रुके रहेंगे, तो आपके षट्खंडागमके मूल और अनुवादको हम प्रकाशित कर देंगे।

गतवर्ष मार्च सन् ५४ में मैं वीरसेवामन्दिरमें बुला लिया गया और उसके नूतन भवनके शिलान्यासके अवसरपर श्रीमान् बा० छोटेलालजी जैन कलकत्तासे दिल्ली पधारे और वीरसेवामन्दिरमें ही ठहरे। करीब एक मास साथमें रात-दिन उठना-बैठना हुआ और मैंने उनकी

प्राचीन जैन वाङ्मयके प्रकाशनमें अभिरुचि देखी। अवसर पाकर एक दिन मैंने उन्हें उक्त दोनों ग्रन्थोंकी प्रेसकापियां दिखाकर ऊपर लिखा सर्व वृत्तान्त सुनाया और कहा कि भारतीय-ज्ञानपीठके आप भी ट्रस्टी हैं, क्या बैठकके समय डा० हीरालालजी और डा० उपाध्यायसे आप पूछनेकी कृपा करेंगे कि वे लोग इनके प्रकाशनकी क्यों स्वीकृति नहीं देते? उन्होंने सर्व बातें ध्यानसे सुनकर पूछा कि इन दोनों ग्रन्थोंके प्रकाशनमें क्या व्यय होगा और मैंने एक आनुमानिक व्ययका हिसाब लिखकर उन्हें दे दिया। कुछ दिन बाद श्रीमान् बा० छोटेलालजीका कलकत्ता पहुँचनेपर पत्र मिला कि साहू श्रीशान्तिप्रसादजी तो इस समय रसिया गये हैं, वहाँसे दिवाली तक लौटेंगे। यदि आप चाहें, तो अन्य संस्थासे प्रकाशनकी योजना की जा सकती है। मैंने उत्तरमें स्वीकृति दे दी। पर्युषणपर्वमें श्रीमुख्तार सा० ने मुझे कलकत्ता भेजा और कहा कि उक्त ग्रन्थोंकी प्रेसकापी साथमें ले जाइए, तथा जहाँ बाबूजी उचित समझें, पहले कसायपाहुडको छपनेके लिए दे दीजिए।

मैं यथासमय दशलाक्षणी पर्वपर कलकत्ता पहुंचा और श्री वर्णीजीकी जयन्तीपर बाबूजीके ही साथ ईसरी भी आया। इसी समय दिल्लीसे श्री० मुख्तारसा० भी ईसरी पधारे। दोनों महाशयोंने प्रेस आदिके बाबत श्री० पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यसे परामर्श किया और बनारसमें ग्रन्थ छपनेका निश्चय कर मुझे बनारस जानेकी व्यवस्था कर दी। आसौज वदी ६ ता० २१ सितम्बर सन् ५४ को मैं बनारस पहुँच गया और ज्ञानमण्डल यन्त्रालयसे बात-चीत पक्की करके ग्रन्थ प्रेसमें दे दिया। लगभग ८ मासमें ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया। पर प्रस्तावना तो लिखना तो शेष था। इसी बीच विवाहित पुत्रीकी मृत्युके समाचार पाकर मैं देश चला गया।

देशमें ठीक श्रुतपंचमीके दिन बाबूजीका पत्र मिला, कि हमारी इच्छा तो इसी श्रुतपंचमीपर ही ग्रन्थको प्रकाशित करनेकी थी, मगर वह पूरी न हो सकी। अब वीरशासन जयन्ती (श्रावणकृष्णा १) के दिन तो इसे प्रकाशित कर ही देना चाहिए। आपने प्रस्तावना लिखना प्रारम्भ कर दिया होगा। उसके लिए पूज्य मुख्तार सा० से परामर्श करना आवश्यक है, इत्यादि। मैं पत्र पाते ही उसी दिन घरसे दिल्ली चला आया और बाबूजीके साथ बैठकर पू० मुख्तार सा० से प्रस्तावनाके मुद्दोंपर विचार-विनिमय किया, तथा प्रस्तावना-सम्बन्धी अपने सब नोट्स उन्हें दिखाए। अन्तमें एक रूप-रेखा तैयार की गई और मैंने प्रस्तावना लिखना प्रारम्भ कर दिया। पर गर्मीकी अधिकतासे प्रयत्न करनेपर भी दिन भरमें एक पेज लिखना कठिन हो गया। प्रस्तावनाको जल्दीसे प्रेसमें देना जरूरी था। अतः मैं मसूरी चला गया और श्रीमान् रा० सा० लाला प्रद्युम्नकुमारजी रईस सहारनपुरवालोंके पास जाकर ठहर गया।

मैं अपनी आध्यात्मिक शान्तिके लिए जीवनमें जिस एकान्त, शान्त वातावरणकी कल्पना किया करता हूँ, वह मुझे मसूरीमें रा० सा० ला० प्रद्युम्नकुमारजीके पास आकर मिला। उन्होंने मेरे अनुकूल सर्व व्यवस्था कर दी और मैं भी २-१ अपवादोंको छोड़कर अखण्ड मौन लेकर प्रस्तावना लिखनेमें लग गया और प्रस्तावनाका बहुभाग लिखकर वापिस दिल्ली आगया। श्री मुख्तार सा० के साथ बा० छोटेलालजी और पं० परमानन्दजी शास्त्रीने प्रस्तावनाको सुना, आवश्यक सुझाव दिये और तदनुसार यह प्रस्तावना विज्ञ पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

कसायपाहुड जैसे महान् ग्रन्थके ऊपर प्रस्तावना लिखनेके लिए और समस्त जैन वाङ्मयके भीतर उपलब्ध कर्म-साहित्यके साथ उसकी तुलना करनेके लिए कम-से-कम एक वर्षका समय अपेक्षित था, लेकिन वीर-शासन-संघके मंत्रीजीकी इच्छा इसे जल्दीसे जल्दी स्वाध्याय-प्रेमी जिज्ञासु पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करनेकी थी, अतएव इस अल्प समयमें मेरेसे जो कुछ भी बन सका, वह पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

सम्पादनके विषयमें दो एक बातें कहना आवश्यक है। श्री० मुख्तार सा० के परामर्शानुसार प्रायः समग्र चूर्णिसूत्रोंके विशेष अर्थकी बोधक टिप्पणियां प्रारम्भसे अन्त तक तैयार की

गई थीं। किन्तु सन् ४२ में इसका प्रकाशन रुक गया और अब तक जब कि यह ग्रन्थ प्रेसमें दिया गया, जयधवलाके सानुवाद दो भाग प्रगट हो चुके थे और तीसरा-चौथा भाग प्रेसमें था, अतएव यह उचित समझा गया कि प्रारम्भकी टिप्पणियाँ न दी जावें। तदनुसार संक्रम-अधिकारसे टिप्पणियां देना प्रारम्भ किया गया। परन्तु जब ग्रन्थका कलेवर बढ़ता हुआ दिखा, तब बा० छोटेलालजीके लिखनेसे आगे टिप्पणियां देना बन्द कर दिया गया।

कसायपाहुडके अनुवादका प्रारम्भ सन् ४१ में किया और उसकी समाप्ति सन् ५३ में हुई। इस १२ वर्षके लम्बे समयमें मुझे अनेक विकट परिस्थितियोंसे गुजरना पड़ा, शारीरिक, मानसिक आधि-व्याधियोंके अतिरिक्त कौटुम्बिक विडम्बनाओं, आर्थिक संकटों एवं इष्ट-वियोग और अनिष्ट संयोगोंका भी सामना करना पड़ा, अतएव अनुवादमें आदिसे अंत तक एक रूपताको मैं कायम न रख सका। प्रतियोंके सर्वत्र सुलभ न रहने और मानसिक शान्तिके दुर्लभ रहनेसे अनुवादको प्रारम्भसे अन्ततक दुबारा संशोधन भी न कर सका। जब ग्रंथ प्रेसमें दे दिया गया, तब स्थितिविभक्तिवाले अंशकी जयधवलाकी प्रति प्रयत्न करने पर भी कहींसे नहीं मिल सकी। इसलिए इस स्थलका सम्पादन बिलकुल अंधेरेमें हुआ। यही कारण है कि इस अंशमें अशुद्धियां कुछ अधिक रह गईं और एक सूत्र भी मुद्रित होनेसे रह गया, जिसकी ओर मेरा ध्यान मेरे सहाध्यायी ज्येष्ठबन्धु श्रीमान् पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीने खींचा। संक्रम प्रकरणके प्रायः सभी विशेषार्थ उन्हींके सहयोगसे लिखे गये। तथा इससे आगेके समस्त चूर्णिसूत्रोंके निर्णयमें उनका भरपूर सहयोग रहा, इसके लिए मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ।

श्रद्धेय, वयोवृद्ध, ब्र० श्रीमान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार सा० का मैं आदिसे अन्त तक आभारी हूं। उन्होंने ही मुझे इस कार्यके लिए प्रेरित किया और उनके ही सौजन्यसे यह ग्रंथ निर्विघ्नतासे प्रकाशित हो सका है।

श्रीमान् बा० छोटेलालजी सा० कलकत्ताका आभार मैं किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ? जिन्होंने कि इस ग्रन्थके प्रेसमें दिये जानेके पश्चात् प्रकाशित न करनेके लिए उठाये गये विरोधके बावजूद भी प्रकाशन बन्द नहीं किया। यह उनकी दृढ़ता और दूरदर्शिताका ही फल है कि ग्रन्थ अपने वर्तमानरूपमें पाठकोंके सामने उपस्थित है। जन्म-जात श्रीमान् होते हुए भी आप श्रीमत्ता-के अहंकारसे कोशों दूर हैं। स्वभावके अत्यन्त सरल, निरभिमानी और विचारक हैं। दि० सम्प्रदायके पुरातन साहित्यके प्रकाशमें लानेकी आपकी प्रबल अभिलाषा है। आप वीरसेवामन्दिर के अध्यक्ष और वीरशासन संघके मन्त्री हैं। घरू कारोबारको छोड़कर आप आजकल उक्त दोनों संस्थाओंके ही अभ्युत्थानके लिए स्वास्थ्यकी भी चिन्ता न करके अहर्निश संलग्न हैं। आपके द्वारा पू० मुख्तार सा० के सहयोगसे जैन-साहित्यके अनेक अलभ्य और अनुपम ग्रन्थोंके प्रकाशमें आनेकी बहुत कुछ आशा है। आप दोनों स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु हों, ऐसी मङ्गल कामना है।

परिशिष्टान्त मूलग्रन्थ बनारसके ज्ञानमण्डल यन्त्रालयमें मुद्रित हुआ और प्रकाशकीय वक्तव्यसे लेकर शुद्धिपत्र तकका अंश सन्मतिप्रेस किनारी बाजार, दिल्लीमें छपा। मुद्रणकालमें दोनों ही प्रेसके संचालक और व्यवस्थापक महोदयोंका बहुत ही सौजन्यपूर्ण व्यवहार रहा है— अतएव मैं आप लोगोंका आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ अगाध और दुर्गम है, इसलिए पर्याप्त सावधानी रखनेपर भी जहां कहीं जो कुछ मूल या अर्थमें भूल रह गई हो, उसे विशेष ज्ञानी जन संशोधन करके पढ़ें, क्योंकि '*को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे*' की उक्तिके अनुसार चूक होना बहुत सम्भव है।

द्वि० भाद्रपद शुक्ला २ सं० २०१२
१८-६-५५

जिनवाणी-सुधारस-पिपासु—

हीरालाल

प्रस्तावना

ग्रन्थकी पूर्व पीठिका और ग्रन्थ-नाम

प्रस्तुत ग्रन्थका सीधा सम्बन्ध अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरसे उपदिष्ट और उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर-द्वारा ग्रथित द्वादशाङ्ग श्रुतसे है। द्वादशाङ्ग श्रुतका बारहवां अंग दृष्टिवाद है। इसके पांच भेद हैं—१ परिकर्म, २ सूत्र, ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत और ५ चूलिका। इनमेंसे पूर्वगत श्रुत के भी चौदह भेद हैं—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीय, ३ वीर्यप्रवाद, ४ अस्ति-नास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यानप्रवाद १० विद्यानुवाद, ११ कल्याणप्रवाद, १२ प्राणावाय, १३ क्रियाविशाल और १४ लोकबिन्दुसार। ये चौदह पूर्व इतने विस्तृत और महत्वपूर्ण थे कि इनके द्वारा पूरे दृष्टिवाद अंगका उल्लेख किया जाता था, तथा ग्यारह अंग और चौदह पूर्वसे समस्त द्वादशाङ्ग† श्रुतका ग्रहण किया जाता था।

प्रस्तुत ग्रन्थकी उत्पत्ति पांचवें ज्ञानप्रवादपूर्वकी दशवीं वस्तुके तीसरे पेज्जदोसपाहुडसे हुई है। पेज्ज नाम प्रेयस् या रागका है और दोस नाम द्वेषका। यतः क्रोधादि चारों कषायों और हास्यादि नव नो कषायोंका विभाजन राग और द्वेषके रूपमें किया गया है, अतः प्रस्तुत ग्रन्थका मूल नाम पेज्जदोसपाहुड है और उत्तर नाम कसायपाहुड है। चूर्णिकारने इन दोनों नामोंका उल्लेख और उनकी सार्थकताका निर्देश पेज्जदोसविहत्ती नामक प्रथम अधिकारके इक्कीसवें और बाईसवें सूत्रमें स्वयं ही किया है।

कषायोंकी विभिन्न अवस्थाओंके वर्णन करने वाले पदोंसे युक्त होनेके कारण प्रस्तुत ग्रन्थका नाम कसायपाहुड रखा गया है, जिसका कि संस्कृत रूपान्तर कषायप्राभृत होता है।

ग्रन्थका संक्षिप्त परिचय और महत्व

प्रस्तुत ग्रन्थमें क्रोधादि कषायोंकी राग-द्वेष रूप परिणतिका उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-गत वैशिष्ट्यका, कषायोंके बन्ध और संक्रमणका, उदय और उदीरणाका वर्णन करके उनके उपयोगका, पर्यायवाची नामोंका, काल और भावकी अपेक्षा उनके चार-चार प्रकारके स्थानोंका निरूपण किया गया है। तदनन्तर किस कषायके अभावसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है, किस कषायके क्षयोपशमादिसे देशसंयम और सकलसंयमकी प्राप्ति होती है, यह बतला करके कषायोंकी उपशमना और क्षपणाका विधान किया गया है। यदि एक ही वाक्यमें कहना चाहें तो इसी बातको इस प्रकार कह सकते हैं कि इस ग्रन्थमें कषायोंकी विविध जातियां बतला करके उनके दूर करनेका मार्ग बतलाया गया है।

कसायपाहुडकी रचना गाथासूत्रोंमें की गई है। ये गाथासूत्र अत्यन्त ही संक्षिप्त और गूढ़ अर्थको लिये हुए हैं। अनेक गाथाएँ तो केवल प्रश्नात्मक हैं जिनके द्वारा वर्णनीय विषयके

---

† जीवादि द्रव्योंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक त्रिपदी स्वरूप पूर्ववर्ती या सर्व प्रथम होने वाले उपदेशोंको पूर्वगत कहते हैं और आचारादिसे सम्बन्ध रखने वाले तथा दूसरोंके द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके समाधानात्मक उपदेशोंको अंग कहते हैं। यतः तीर्थंकरोंका उपदेश गणधरोंके द्वारा सुनकर आचारांग आदि १२ अंगोंके रूपमें निबद्ध किया जाता है, अतः उसे द्वादशांग श्रुत कहते हैं।

बारेमें प्रश्न मात्र ही किया गया है। कुछ गाथाएँ ऐसी भी हैं कि जिनमें प्रतिपाद्य विषयकी सूचना भी की गई है। कुछ प्रश्नात्मक गाथासूत्र ऐसे भी हैं कि जिनको दुरूह समझकर ग्रन्थ-कारने स्वयं ही उनका उत्तर भाष्य-गाथाएँ रच करके दिया है। यदि इन भाष्य-गाथाओंकी रचना ग्रन्थकारने स्वयं न की होती, तो आज उनके प्रतिपाद्य अर्थका जानना कठिन ही नहीं, असम्भव होता। यही कारण है कि जयधवलाकारने इन गाथाओंको 'अनन्त अर्थसे गर्भित' कहा है ‡। गाथाओंका महत्व इससे ही सिद्ध है कि गणधर-ग्रथित जिस पेज्जदोसपाहुडमें सोलह हजार मध्यम पद थे अर्थात् जिनके अक्षरोंका परिमाण दो कोडाकोडी, इकसठ लाख सत्तावन हजार दो सौ बानवे करोड़, बासठ लाख, आठ हजार था, इतने महान् विस्तृत ग्रन्थ का सार या निचोड़ मात्र २३३ गाथाओंमें खींच करके निबद्ध कर दिया है। इससे प्रस्तुत ग्रन्थके महत्वका और ग्रन्थकारके अनुपम पाण्डित्यका अनुमान पाठक स्वयं लगा सकेंगे।

कसायपाहुड की अन्य ग्रन्थोंसे तुलना

जिस प्रकार ज्ञानप्रवादपूर्व-गत विस्तृत पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार करके संक्षिप्त रूपमें गाथाओंके द्वारा कसायपाहुडकी रचना की गई, उसी प्रकार उस समय दिन पर दिन लुप्त होते हुए श्रुतके विभिन्न अङ्ग और पूर्वोंका उपसंहार करके भिन्न भिन्न रूप से अनेक प्रकरणों-की गाथा-बद्ध रचना तत्तद्विषयके पारगामी आचार्योंने की है। शतकप्रकरणका उपसंहार करते हुए उसके रचयिता लिखते हैं—

एसो बंधसमासो बिंदुक्खेवेण वण्णिओ कोइ।

कम्मप्पवायसुयसागरस्स णिस्संदमेत्ताओ ॥ १०४ ॥

अर्थात् यह प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध-विषयक कुछ थोड़ा सा कथन मैंने कर्मप्रवादरूप श्रुतसागरके बिन्दु-ग्रहणरूपसे निष्यन्दमात्र-अत्यन्त संक्षिप्तरूपमें किया है।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि शतकप्रकरणका उद्गमस्थान कर्मप्रवाद नामका आठवां पूर्व है और यह प्रकरण उसीका संक्षिप्त संस्करण है।

कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वसम्बन्धी स्थानोंके भंगोंका प्रतिपादन करने वाला एक सित्तरी नामक सत्तर गाथात्मक प्रकरण है। उसका प्रारम्भ करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—

सिद्धपएहिं महत्थं बंधोदयसंतपयडिठाणाणं।

वोच्छं सुण संखेवं नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥ १ ॥

अर्थात्—कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वप्रकृतियोंके स्थानोंका मैं सिद्धपदों के द्वारा संक्षेपरूपसे कथन करता हूँ, सो हे शिष्य तुम सुनो। यह कथन संक्षेपरूप होते हुए भी महार्थक है और दृष्टिवाद अंगका निष्यन्दरूप है, अर्थात् निचोड़ है।

इस गाथाके चतुर्थ चरणकी व्याख्या करते हुए चूर्णिकार कहते हैं—

'निस्संदं दिट्ठिवायस्स' त्ति परिकम्म १ सुत्त २ पढमाणुओग ३ पुव्वगय ४ चूलियामय ५ पंचविहमूलभेयस्स दिट्ठिवायस्स, तत्थ चोद्दसण्हं पुव्वाणं बीयाओ

---

‡ अणंतत्थगब्भाओ। जयध०।

अग्गेणीयपुव्वाओ, तस्स वि पंचमवत्थूउ, तस्स वि वीसपाहुडपरिमाणस्स कम्मपगडिणामधेज्जं चउत्थं पाहुडं, तओ नीणियं, चउवीसाणुओगद्दारमइयमहण्णवस्सेव एगो बिंदू। (सित्तरी चुण्णी पृ० २)

अर्थात् बारहवें दृष्टिवाद अंगके दूसरे अग्रायणीय पूर्वकी पंचमवस्तुके अन्तर्गत जो चौथा कर्मप्रकृतिप्राभृत है, और जिसमें कि चौबीस अनुयोगद्वार हैं, उनका यह प्रकरण एक बिन्दुमात्र है।

इसी प्रकार दिन पर दिन विलुप्त या विच्छिन्न होते हुए महाकम्मपयडिपाहुडका आश्रय लेकर छक्खंडागम और कम्मपयडीकी रचना की गई है। इन दोनोंमें अन्तर यह है कि कम्मपयडीकी रचना गाथाओंमें हुई है, जबकि छक्खंडागमकी रचना गद्यसूत्रोंमें हुई है। कम्मपयडीके चूर्णिकार ग्रन्थके आरम्भमें लिखते हैं—

दुस्समाबलेण खीयमाणमेहाउसद्धासंवेग-उज्जमारंभं अज्जकालियं साहुजणं अणुग्घेत्तुकामेण विच्छिन्नकम्मपयडिमहागंथत्थसंबोहणत्थं आरद्धं आयरिएणं तग्गुणणामगं कम्मपयडीसंगहणी णाम पगरणं। (कम्मपयडी पत्र १)

अर्थात् इस दुःषमा कालके बलसे दिन पर दिन क्षीण हो रही है बुद्धि, आयु, श्रद्धादिक जिनको ऐसे ऐदंयुगीन साधुजनोंके अनुग्रहकी इच्छासे विच्छिन्न होते हुए कम्मपयडिनामक महाग्रन्थके अर्थ-संबोधनार्थ प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिता आचार्यने यथार्थ गुणवाला यह कम्मपयडी संग्रहणी नामक प्रकरण रचा है।

षट्खंडागमकी रचनाका कारण बतलाते हुए धवलाटीकामें लिखा है कि—

××× महाकम्मपयडिपाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्णबुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादिं काऊण गंथरचणा कदा। (धवला पु० १ पृ० ७१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिन पर दिन होते हुए श्रुतविच्छेदको देखकर ही श्रुतरक्षाकी दृष्टिसे उक्त ग्रन्थोंकी रचना की गई है।

षट्खंडागम, कम्मपयडी, सतक और सित्तरी, इन चारों ग्रन्थोंकी रचनाके साथ जब हम कसायपाहुडकी रचनाका मिलान करते हैं, तो इसमें हमें अनेक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं—

पहली विशेषता यह है कि जब षट्खंडागम आदि ग्रन्थोंके प्रणेताओंको उक्त ग्रन्थोंकी उत्पत्तिके आधारभूत महाकम्मपयडिपाहुडका आंशिक ही ज्ञान प्राप्त था, तब कसायपाहुडकारको पांचवें पूर्वकी दशवीं वस्तुके तीसरे पेज्जदोसपाहुडका परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त था।

दूसरी विशेषता यह है कि कसायपाहुडकी रचना अति संक्षिप्त होते हुए भी एक सुसम्बद्ध क्रमको लिए है और ग्रन्थके प्रारम्भमें ही ग्रन्थ-गत अधिकारोंके निर्देशके साथ प्रत्येक अधिकार-गत गाथाओंका भी उल्लेख किया गया है। पर यह बात हमें षट्खंडागमादि किसी भी अन्य ग्रन्थमें दृष्टिगोचर नहीं होती है।

ग्रन्थके प्रारम्भमें मंगलाचरणका और अन्तमें उपसंहारात्मक वाक्योंका अभाव भी कसायपाहुडकी एक विशेषता है। जबकि कम्मपयडी, सतक और सित्तरीकार आचार्य अपने अपने ग्रन्थोंके आदिमें मंगलाचरण कर अन्तमें यह स्पष्ट उल्लेख करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं

कि मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक सावधानी रखने पर भी जो कुछ भूल रह गई हो, उसे दृष्टिवादके ज्ञाता आचार्य शुद्ध करें †।

कसायपाहुडका षट्खंडागमसे पूर्ववर्तित्व

आ० धरसेनसे महाकम्मपयडिपाहुडका ज्ञान प्राप्त करके पुष्पदन्त और भूतबलिने जो ग्रन्थ-रचना की, वह षट्खंडागम नामसे प्रसिद्ध है। यह रचना किसी एक पूर्व या उसके किसी एक पाहुड पर अवलम्बित न होकर उसके विभिन्न अनुयोगद्वारोंके आधार पर रची गई है, इसलिए वह खंड-आगम कहलाती है। पर कसायपाहुडकी रचना ज्ञानप्रवादपूर्वके पेज्ज-दोसपाहुडकी उपसंहारात्मक होने पर भी मौलिक, अखंड, अविकल एवं सर्वाङ्ग है। ऐसा प्रतीत होता है कि कसायपाहुडकी गाथा-निबद्ध यह रचना आगमाभ्यासियोंको कण्ठस्थ करनेके लिए की गई थी। इस रचनामें कितनी ही गाथाएँ बीजपद-स्वरूप हैं, जिनके कि अर्थका व्याख्यान वाचकाचार्य, व्याख्यानाचार्य या उच्चारणाचार्य करते थे *। यही कारण है कि कसायपाहुडकी रचना होनेके बाद कितनी ही पीढ़ियों तक उसका पठन-पाठन मौखिक ही चलता रहा और और उसके लिपिबद्ध या पुस्तकारूढ होनेका अवसर ही नहीं आया। इस बातकी पुष्टि जय-धवलाकारके निम्न-लिखित वाक्योंसे भी होती है—

"पुणो ताओ चेव सुत्तगाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुह-कमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।" (जयध० भा० १ पृ० ८८)

अर्थात् गुणधराचार्यके द्वारा १८० गाथाओंमें कसायपाहुडका उपसंहार कर दिये जाने पर वे ही सूत्र-गाथाएँ आचार्यपरम्परासे आती हुई आर्यमंक्षु और नागहस्तीको प्राप्त हुईं। पुनः उन दोनों ही आचार्योंके पादमूलमें बैठकर उनके द्वारा गुणधराचार्यके मुखकमलसे निकली हुई उन एक सौ अस्सी गाथाओंके अर्थको भले प्रकारसे श्रवण करके प्रवचनके वात्सलसे प्रेरित होकर यतिवृषभ भट्टारकने उनपर चूर्णिसूत्रोंकी रचना की।

इस उद्धरणमें 'आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ' और 'सोऊण' ये दो पद बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और उनसे दो बातें फलित होती हैं—एक तो यह है कि उक्त गाथाएँ आर्यमंक्षु और नागहस्तीको प्राप्त होनेके समय तक लिपिबद्ध नहीं हुई थीं, उन्हें मौखिक पर-म्परासे ही प्राप्त हुई थीं। दूसरी यह है कि गुणधरका समय आर्यमंक्षु और नागहस्तीसे इतना अधिक पूर्वकालिक है कि बीचमें आचार्यों की अनेक पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं।

---

† इय कम्मप्पगडीओ जहा सुयं नीयमप्पमइणा वि।
सोहियणाभोगकयं कहंतु वरदिट्ठिवायन्नू॥ (कम्मपयडी)
बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ।
तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊणं परिकहेंति॥ १०५॥ (सतक)
जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकहिंतु॥ ७१॥ (सित्तरी)

* पूर्वकालमें पठन-पाठनकी यह पद्धति थी कि पहले मूल सूत्रोंका उच्चारण कराया जाता था और पीछे उनके अर्थका व्याख्यान किया जाता था। वेदोंके भी पठन-पाठनकी यही पद्धति रही है।

कसायपाहुडके १५ अधिकारोंमेंसे प्रारम्भके ६ अधिकारोंमें कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-सम्बन्धी बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्त्व और संक्रमणका जो वर्णन किया गया है, उस सबका आधार महाकम्मपयडिपाहुड है और यतः गुणधराचार्यके समयमें महाकम्मपयडिपाहुडका पठन-पाठन बहुत अच्छी तरह प्रचलित था, अतः उन्होंने प्रारम्भके ५ अधिकारों पर कुछ भी न कहकर उक्त अधिकारोंके विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंके पृच्छारूप तीन ही गाथासूत्रोंको कहा। यह एक ऐसा सबल प्रमाण है, कि जिससे कसायपाहुडका षट्खंडागमसे पूर्ववर्तित्व स्वतः सिद्ध होता है। आगे चूर्णिसूत्रोंके ऊपर विचार करते समय इस विषय पर विशद प्रकाश डाला जायगा।

गुणधर और धरसेन

दि० परम्परामें जो आचार्य श्रुत-प्रतिष्ठापकके रूपमें ख्याति-प्राप्त हैं उनमें आचार्य गुणधर और आ० धरसेन प्रधान हैं। आ० धरसेनको द्वितीय पूर्व-गत पेज्जदोसपाहुडका ज्ञान प्राप्त था, और आ० गुणधरको पंचम पूर्व-गत पेज्जदोसपाहुडका ज्ञान प्राप्त था। इस दृष्टिसे निम्न अर्थ फलित होते हैं—

१—आ० धरसेनकी अपेक्षा आ० गुणधर विशिष्ट ज्ञानी थे। उन्हें पेज्जदोसपाहुडके अतिरिक्त महाकम्मपयडिपाहुडका भी ज्ञान प्राप्त था, जिसका साक्षी प्रस्तुत कसायपाहुड ही है, जिसमें कि महाकम्मपयडिपाहुडसे सम्बन्ध रखने वाले विभक्ति, बन्ध, संक्रमण और उदय, उदीरणा जैसे पृथक् अधिकार दिये गये हैं। ये अधिकार महाकम्मपयडिपाहुडके २४ अनुयोगद्वारोंमेंसे क्रमशः छठे, बारहवें और दशवें अनुयोगद्वारोंसे सम्बद्ध हैं। महाकम्मपयडिपाहुडका चौबीसवाँ अल्पबहुत्वनामक अनुयोगद्वार भी कसायपाहुडके सभी अर्थाधिकारोंमें व्याप्त है। इससे सिद्ध होता है कि आ० गुणधर महाकम्मपयडिपाहुडके ज्ञाता होनेके साथ पेज्जदोसपाहुडके ज्ञाता और कसायपाहुडके रूपमें उसके उपसंहारकर्ता भी थे। इसके विपरीत ऐसा कोई भी सूत्र उपलब्ध नहीं है, जिससे कि यह सिद्ध हो सके कि आ० धरसेन पेज्जदोसपाहुडके भी ज्ञाता थे।

२—आ० धरसेनने स्वयं किसी ग्रन्थका उपसंहार या निर्माण नहीं किया है, जबकि आ० गुणधरने प्रस्तुत ग्रन्थमें पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार किया है। अतएव आ० धरसेन जब वाचकप्रवर सिद्ध होते हैं, तब आ० गुणधर सूत्रकारके रूपमें सामने आते हैं।

३—आ० गुणधरकी प्रस्तुत रचनाका जब हम षट्खंडागम, कम्मपयडी, सतक और सित्तरी आदि कर्म-विषयक प्राचीन ग्रन्थोंसे तुलना करते हैं, तब आ० गुणधरकी रचना अति-संक्षिप्त, असंदिग्ध, बीजपद-युक्त, गहन और सारवान पदोंसे निर्मित पाते हैं, जिससे कि उनके सूत्रकार होनेमें कोई संदेह नहीं रहता। यही कारण है कि जयधवलाकारने उनकी प्रत्येक गाथा को सूत्रगाथा और उसे अनन्त अर्थसे गर्भित बतलाया है। कर्मोंके संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षणादि-विषयक अतिगहन तत्त्वका इतना सुगम प्रतिपादन अन्य किसी ग्रन्थमें देखनेको नहीं मिलता। इस प्रकार आ० गुणधर आ० धरसेनकी अपेक्षा पूर्ववर्ती और ज्ञानी सिद्ध होते हैं।

पुष्पदन्त और भूतबलि

आ० धरसेन-उपदिष्ट महाकम्मपयडिपाहुडका आश्रय लेकर उसपर षट्खंडागम सूत्रोंके रचयिता भगवन्त पुष्पदन्त और भूतबलि हुए हैं। यद्यपि कसायपाहुडकी रचनाके अत्यन्त संक्षिप्त और गाथासूत्ररूप होनेसे गद्यसूत्रोंमें रचित और विस्तृत परिमाणवाले षट्खंडागमके साथ उसकी तुलना करना संभव नहीं है, तथापि सूक्ष्मदृष्टिसे दोनों ग्रन्थोंके अवलोकन करने पर

ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि षट्खंडागमकी रचना पर कसायपाहुडका प्रभाव अवश्य रहा है। यहां पर उस प्रभावकी कुछ चर्चा करना अनावश्यक न होगा।

कसायपाहुडमें सम्यक्त्वनामक अर्थाधिकारके भीतर दर्शनमोह-उपशामना और दर्शनमोह-क्षपणा नामक दो अनुयोगद्वार हैं। उनके प्रारम्भमें इस बातका विचार किया गया है कि कर्मोंकी कैसी स्थिति आदिके होनेपर जीव दर्शनमोहका उपशम, क्षय या क्षयोपशम करनेके लिए प्रस्तुत होता है। इस प्रकरणकी गाथा नं० ६२ के द्वितीय चरण **'के वा अंसे णिबंधदि'** द्वारा यह पृच्छा की गई है कि दर्शनमोहके उपशमनको करनेवाला जीव कौन-कौन कर्म-प्रकृतियोंका बन्ध करता है? आ० गुणधरकी इस पृच्छाका प्रभाव हम षट्खंडागमकी जीवस्थानचूलिकाके अन्तर्गत तीन महादंडक चूलिकासूत्रोंमें पाते हैं, जहां पर कि स्पष्ट रूपसे कहा गया है—

"इदाणिं पढमसम्मत्ताहिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि, ताओ पयडीओ कित्तइस्सामो।" (षट्खं० पु० ६ प्रथम महादंडकचूलिका सूत्र १)

अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव जिन प्रकृतियोंको बांधता है, उन प्रकृतियोंको कहते हैं। इस प्रकारसे प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर आगेके तीन महादंडकसूत्रोंके द्वारा उन प्रकृतियोंका नाम-निर्देश किया गया है।

इससे आगे कसायपाहुडकी गाथा नं० ६४ के **'ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि'** इस पृच्छाका प्रभाव सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिकाके निम्न सूत्र पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, जिसमें कि उक्त पृच्छाका उत्तर दिया गया है—

"ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं।"

(षट्खं० पु०६ सम्य० सूत्र ७)

अब इससे आगेकी गाथा नं० ६४ का मिलान उसी सम्यक्त्वचूलिकाके सूत्र नं० ६ से कीजिए—

दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो। पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो॥ (कसाय० गा० ६४)	**उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि। चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु। पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु। सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु। गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु। पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि।** (षट्खं० पु० ६ सम्म० चू० सू० ६)

इसी प्रकार दर्शनमोहक्षपणा-सम्बन्धी गाथा नं० ११० का भी मिलान इसी चूलिकाके सूत्र नं० १२ और १३ से कीजिए—

दंसणमोहक्खवणा-—
पट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु ।
णियमा मणुसगदीए
णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥
(कसाय० गा० ११०)

दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि ? अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ॥ १२ ॥ णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ॥ १३ ॥
(षट्खंडा० पु० ६ सम्य० चू०)

पाठक इस तुलनासे स्वयं ही यह अनुभव करेंगे कि कसायपाहुडकी गाथासूत्रोंके बीज-पदोंकी षट्खंडागम-सूत्रमें भाष्यरूप विभाषा की गई है ।

उक्त तुलनासे यह स्पष्ट है कि पुष्पदन्त और भूतबलिरचित षट्खंडागमसूत्रोंकी रचना कसायपाहुडसे पीछेकी है और उसपर कसायपाहुडका स्पष्ट प्रभाव है इसीसे इन दोनोंका तथा उनके गुरु धरसेनाचार्यका आ० गुणधरसे उत्तरकालवर्ती होना सिद्ध है ।

गुणधर और शिवशर्म

आ० शिवशर्मके कम्मपयडी और सतक नामक दो ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं । इन दोनों ही ग्रन्थोंका उद्गमस्थान महाकम्मपयडिपाहुड है, इससे वे द्वितीय पूर्वके एकदेश ज्ञाता सिद्ध होते हैं । कम्मपयडीके साथ जब हम कसायपाहुडकी तुलना करते हैं तब दोनोंमें हमें एक मौलिक अन्तर दृष्टिगोचर होता है और वह यह कि कम्मपयडीमें महाकम्मपयडिपाहुडके २४ अनुयोगद्वारोंका नहीं, किन्तु बन्धन, उदय, संक्रमणादि कुछ अनुयोगद्वारोंसे सम्बन्ध रखने वाले विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, जबकि कसायपाहुडमें पूरे पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार किया गया है । इस प्रकार कम्मपयडीके रचयिता उस समय हुए सिद्ध होते हैं—जबकि महाकम्मपयडि-पाहुडका बहुत कुछ अंश विच्छिन्न हो चुका था । और यही कारण है कि कम्मपयडी और सतक, इन दोनों ही ग्रन्थोंके अन्तमें अपनी अल्पज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने दृष्टिवादके ज्ञाता आचार्योंसे उसे शुद्ध करनेकी प्रार्थना की है । पर कसायपाहुडके अन्तमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसके कर्ता उस विषयके पूर्ण ज्ञानी थे ।

दूसरी बात जो तुलनासे हृदय पर अंकित होती है, वह यह है कि कम्मपयडी एक संग्रह ग्रन्थ है । क्योंकि उसमें अनेकों प्राचीन गाथाएं यथास्थान दृष्टिगोचर होती हैं, जिससे कि उसके संग्रह-ग्रन्थ होनेकी पुष्टि होती है । स्वयं कम्मपयडीकी चूर्णिमें उसके कर्त्ताने उसे कम्मपयडी-संग्रहणी नाम दिया है और सतकचूर्णिमें भी इसी नामसे अनेक उल्लेख देखनेको मिलते हैं जोकि उसके संग्रहत्वके सूचक हैं । पर कसायपाहुडकी रचना मौलिक है यह बात उसके किसी भी अभ्यासींसे छिपी नहीं रह सकती । और उसका कम्मपयडी आदिसे पूर्वमें रचा जाना तो असंदिग्धरूपसे सिद्ध है । यही कारण है कि कम्मपयडीके संक्रमकरणमें कसायपाहुडके संक्रम-अर्थाधिकारकी १३ गाथाएं साधारणसे पाठ-भेदके साथ अनुक्रमसे ज्यों की त्यों पाई जाती हैं । कसायपाहुडमें उनका गाथा क्रमाङ्क २७ से ३९ तक है और कम्मपयडीके संक्रम अधिकारमें उनका क्रमाङ्क १० लेकर २२ तक है । इसके अतिरिक्त कम्मपयडीके उपशमनाकरणमें कसाय-पाहुडके दर्शनमोहोपशमना अर्थाधिकारकी चार गाथाएं कुछ पाठभेदके साथ पाई जाती हैं । कसायपाहुडमें उनका क्रमाङ्क १००, १०३, १०४ और १०५ है और कम्मपयडीके उपशमनाकरणमें उनका क्रमाङ्क २३ से २६ तक है । इससे भी कसायपाहुडकी प्राचीनता और कम्मपयडीकी संग्रहणीयता सिद्ध होती है ।

आर्यमंक्षु और नागहस्ती

आर्यमंक्षु और नागहस्ती कर्मसिद्धान्तके महान् वेत्ता और आगमके पारगामी आचार्य हो गये हैं। अभी तक इन दोनों आचार्योंका परिचय और उल्लेख श्वे० परम्पराके आधार पर किया जाता रहा है, किन्तु अब दि० परम्पराके प्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धवला-जयधवला टीकाओंके प्रकाशमें आनेसे इन दोनों आचार्य-पुङ्गवोंके विषयमें बहुत कुछ गलतफहमी दूर हुई है और उनके समय-विषयक बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हुई है। जयधवलाकार आ० वीरसेनने अपनी टीकाके प्रारम्भमें दोनों आचार्योंको इस प्रकारसे स्मरण किया है—

> गुणहर-वयण-विणिग्गय-गाहाणत्थो ऽवहारियो सव्वो।
> जेणज्जमंखुणा सो सणागहत्थी वरं देऊ ॥ ७॥
> जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स।
> सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ ॥ ८॥

अर्थात् जिन आर्यमंक्षु और नागहस्तीने गुणधराचार्यके मुखकमलसे विनिर्गत (कसायपाहुडकी) गाथाओंके सर्व अर्थको सम्यक् प्रकारसे अवधारण किया, वे हमें वर प्रदान करें। जो आर्यमंक्षुके शिष्य हैं और नागहस्तीके अन्तेवासी हैं, वृत्तिसूत्रके कर्त्ता वे यतिवृषभ मुझे वर प्रदान करें।

इस उल्लेखसे तीन बातें फलित होती हैं—

१ आर्यमंक्षु और नागहस्ती समकालीन थे।
२ दोनों कसायपाहुडके महान् वेत्ता थे।
३ यतिवृषभ दोनोंके शिष्य थे और उन्होंने दोनोंके पास कसायपाहुडका ज्ञान प्राप्त किया था ※।

यद्यपि आ० यतिवृषभने अपनी प्रस्तुत चूर्णिमें या अन्य किसी ग्रन्थमें अपनेको आर्यमंक्षु और नागहस्तीके शिष्य रूपमें उल्लेखित नहीं किया है और न अन्य किसी आचार्यका ही अपनेको शिष्य बतलाया है, तथापि जिस प्रकारसे कुछ सैद्धान्तिक विशिष्ट स्थलों पर उन्होंने 'एत्थ वे उवएसा' कहकर जिन दो उपदेशोंकी सूचना की है, उनसे इतना अवश्य स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने समयके दो महान् ज्ञानी गुरुओंसे विशिष्ट उपदेश अवश्य प्राप्त किया था। और इसलिए जयधवलाकार वीरसेनने जो उन्हें आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तीके अन्तेवासी होनेका उल्लेख किया है, उसमें सन्देहके लिए कोई स्थान नहीं रहता।

नन्दिसूत्रकी पट्टावलीमें आर्यमंक्षुका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

> भणगं करगं झरगं पभावगं णाण-दंसणगुणाणं।
> वंदामि अज्जमंगुं सुयसागरपारगं धीरं ॥ २८॥

अर्थात् जो कालिक आदि सूत्रोंके अर्थ-व्याख्याता हैं, साधुपदोचित क्रिया कलापके कराने वाले हैं, धर्मध्यानके ध्याता या विशिष्ट अभ्यासी हैं, ज्ञान और दर्शन गुणके महान प्रभावक हैं, धीर-वीर हैं अर्थात् परीषह और उपसर्गोंके सहन करनेवाले हैं और श्रुतसागरके पारगामी हैं, ऐसे आर्यमंगु या आर्यमंक्षु आचार्यकी मैं वन्दना करता हूँ। श्वे० पट्टावलीमें इन्हें आर्यसमुद्रका शिष्य बतलाया गया है।

उक्त पट्टावलीमें आर्यनागहस्तीका परिचय इस प्रकार पाया जाता है—

※ पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं। जयध० भा० १ पृ० ८८।

वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जणागहत्थीणं ।
वागरण-करणभंगिय-कम्मपयडीपहाणाणं ॥३०॥

अर्थात् जो संस्कृत और प्राकृत भाषाके व्याकरणोंके वेत्ता हैं, करण-भंगी अर्थात् पिंडशुद्धि, समिति, गुप्ति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रियनिरोध, प्रतिलेखन और अभिग्रहकी नाना विधियोंके ज्ञाता हैं और कर्मप्रकृतियोंके प्रधानरूपसे व्याख्याता हैं, ऐसे आर्यनागहस्तीका यशस्वी वाचकवंश वृद्धि को प्राप्त हो। श्वे० पट्टावलीमें इन्हें आर्यनन्दिलक्षपणकका शिष्य बतलाया गया है।

दोनों आचार्योंकी प्रशंसामें प्रयुक्त उक्त दोनों पद्योंके विशेषण-पदोंसे यह भलीभांति सिद्ध है कि ये दोनों ही आचार्य श्रुतसागरके पारगामी सिद्धान्त ग्रन्थोंके महान् वेत्ता, प्रभावक, कर्मशास्त्रके व्याख्याता और वाचकवंश-शिरोमणि थे। इसलिए आ० वीरसेनके उल्लेखानुसार यह सुनिश्चित है कि ये दोनों आचार्य कसायपाहुडकी गाथाओंके मर्मज्ञ थे और उन दोनोंके पासमें आ० यतिवृषभने उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था।

आ० वीरसेनने यतिवृषभको आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तीका अन्तेवासी प्रगट किया है। यद्यपि शिष्य और अन्तेवासी ये दोनों शब्द एकार्थक माने जाते हैं, तथापि शब्द-शास्त्रकी दृष्टिसे दोनों शब्द अपना पृथक्-पृथक् महत्व रखते हैं। गुरुसे ज्ञान और चारित्र-विषयक शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करनेवालेको शिष्य कहते हैं। किन्तु जो गुरुसे ज्ञान और चारित्रकी शिक्षा प्राप्त करनेके अनन्तर भी गुरुके जीवन-पर्यन्त उनकी सेवा-सुश्रूषा करते हुए उनके चरण-सान्निध्यमें रहकर अनवरत ज्ञानकी आराधना करता रहे, उसे अन्तेवासी कहा जाता है।

शब्द-व्युत्पत्तिसे फलित उक्त अर्थको यदि यथार्थ माना जाय, तो मानना पड़ेगा कि आ० वीरसेन-द्वारा प्रयुक्त दोनों पद अन्वर्थ और अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं।

यहां यह प्रश्न स्वतः उठता है कि जब यतिवृषभने आर्यमंक्षु और नागहस्ती, इन दोनों ही आचार्योंसे ज्ञान प्राप्त किया, तब क्या कारण है कि वे एकके उपदेशको पवाइज्जमान और दूसरेके उपदेशको अपवाइज्जमान कहें? यतिवृषभ-द्वारा प्रयुक्त इन दोनों पदोंके अन्तस्तलमें अवश्य कोई रहस्य अन्तर्निहित है?

दि० परम्परामें तो जयधवला टीकाके अतिरिक्त आर्यमंक्षु और नागहस्तीका उल्लेख अन्यत्र मेरे देखनेमें नहीं आया, किन्तु श्वे०परम्परामें उनके जीवन-परिचयका कुछ उल्लेख मिलता है। आ०आर्यमंक्षुके विषयमें बतलाया गया है कि एक बार वे विहार करते हुए मथुरापुरी पहुँचे। वहां पर श्रद्धालु, भक्त और निरन्तर सेवा-सुश्रूषा-रत शिष्योंके व्यामोहसे, तथा रस-गारव आदिके वशीभूत होकर वे विहार छोड़ करके वहीं रहने लगे। धीरे-धीरे उनका श्रामण्य शिथिल हो गया और वे वहीं मरणको प्राप्त हुए ❀।

यदि यह उल्लेख सत्य है तो इससे यह भी सिद्ध है कि आर्यमंक्षुके साधु-आचारसे शिथिल हो जानेके कारण उनकी शिष्य-परम्परा आगे नहीं चल सकी। और यह सब यतः यतिवृषभके जीवन-कालमें ही घटित हो गया, अतः उन्होंने उनके उपदेशको अपवाइज्जमान कहा और नागहस्तीकी शिष्य-परम्परा आगे चलती रही, इसलिए उनके उपदेशको पवाइज्जमान कहा।

इस प्रकार आर्यमंक्षु और नागहस्ती समकालिक सिद्ध होते हैं और इसलिए श्वे० पट्टावलियोंमें जो दोनोंके बीच लगभग १५० वर्षोंका अन्तर बतलाया गया है, वह बहुत कुछ आपत्तिके योग्य जान पड़ता है।

❀ देखो अभिधानराजेन्द्र 'अज्जमंगु' शब्द ।

कसायपाहुड पर एक दृष्टि

१. नामकी सार्थकता—प्रस्तुत मूलग्रन्थका नाम यद्यपि श्री गुणधराचार्यने प्रथम गाथामें उद्गमस्थानकी अपेक्षा 'पेज्जदोसपाहुड' का संकेत करते हुए 'कसायपाहुड' ही दिया है, तथापि चूर्णिकार यतिवृषभने उसके दो नाम स्पष्ट रूपसे कहे हैं। यथा—

तस्स पाहुडस्स दुवे णामधेज्जाणि। तं जहा—पेज्जदोसपाहुडेत्ति वि, कसायपाहुडेत्ति वि। (पेज्जदो० सू० २१)

अर्थात् ज्ञानप्रवादपूर्वकी दशवीं वस्तुके उस तीसरे पाहुडके दो नाम हैं—पेज्जदोसपाहुड और कसायपाहुड। इनमेंसे प्रथम नामको चूर्णिकारने अभिव्याकरणनिष्पन्न और दूसरे नामको नयनिष्पन्न कहा है। किन्तु आगे चलकर सम्यक्त्व नामक अधिकारका प्रारम्भ करते हुए स्वयं चूर्णिकारने कसायपाहुड नामका ही निर्देश किया है। यथा—

कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगद्दारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ। (सम्यक्त्व० सू० १)

तथा जयधवलाकारने प्रत्येक अधिकारके प्रारम्भमें और अन्तमें इसी नामका प्रयोग किया है। यहां तक कि पन्द्रहवें अधिकारकी चूलिका-समाप्ति पर **'एवं कसायपाहुडं समत्तं'** लिखकर प्रस्तुत ग्रन्थके कसायपाहुड नाम पर अपनी मुद्रा अंकित कर दी है। परवर्ती आचार्यों और ग्रन्थकारोंने भी अधिकतर इसी नामका उल्लेख किया है। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न किया जा सकता है कि फिर हमने इसका 'कसायपाहुडसुत्त' ऐसा नामकरण क्यों किया ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यद्यपि १८० या २३३ गाथात्मक-ग्रन्थका नाम कसायपाहुड ही है, किन्तु प्रस्तुत संस्करणमें यह कसायपाहुड अपने ६ हजार श्लोक-प्रमित चूर्णिसूत्रोंके साथ मुद्रित है, अतएव उसके परिज्ञानार्थ 'कसायपाहुडसुत्त' ऐसा नाम दिया गया है। आ० वीरसेनने धवला और जयधवलाटीकामें नामैकदेशरूपसे 'पाहुडसुत्त' का पचासों वार उल्लेख किया है*, तथा जिनसेनने जयधवलाकी प्रशस्तिमें 'पाहुडसुत्ताणमिमा' जयधवला सण्णिया टीका' कहकर **'पाहुडसुत्त'** नामकी पुष्टि की है।

२. मूलग्रन्थका प्रमाण—कसायपाहुडकी गाथा-संख्या वस्तुतः कितनी है, यह प्रश्न आज भी विचारणीय बना हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी दूसरी गाथा **'गाहासदे असीदे'** में स्पष्ट रूपसे १८० गाथाओंके १५ अर्थाधिकारोंमें विभक्त होनेका उल्लेख है। यह प्रश्न जयधवलाकार वीरसेनस्वामीके भी सामने था और उनके सामने भी कितने ही आचार्य इस बातके कहनेवाले थे कि एकसौ अस्सी गाथाओंको छोड़कर शेष ५३ गाथाएं नागहस्ती आचार्य-द्वारा रची हुई हैं †। किन्तु वीरसेनस्वामीने इस मतके खंडनमें जो युक्ति दी है, वह कुछ अधिक बलवती मालूम नहीं होती। वे कहते हैं कि यदि 'सम्बन्ध-गाथाओं, अद्धा-

---

* तत्तो सम्मत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति पाहुडसुत्ते णिद्दिट्ठत्तादो। धवला जीव० चू०

† असीदिसदगाहाओ मोत्तूण अवसेससंबंधद्धापरिमाणणिद्देस-संकमणगाहाओ जेण णागहत्थिआयरियकयाओ, तेण 'गाहासदे असीदे' त्ति भणिदूण णागहत्थिआयरिएण पइज्जा कदा, इदि केवि वक्खाणाइरिया भणंति। जयध० भा० १ पृ० १८३.

परिमाणनिर्देश करनेवाली गाथाओं और संक्रम-विषयक गाथाओंके विना एकसौ अस्सी गाथाएं ही गुणधरभट्टारकने कही हैं, ऐसा माना जाय, तो उनके अज्ञानताका प्रसंग प्राप्त होता है, इसलिए पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए‡, अर्थात् २३३ ही गाथाओंको गुणधर-रचित मानना चाहिए।'

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि वीरसेनस्वामीका यह उत्तर चित्तको कुछ समाधानकारक नहीं है, खासकर उस दशामें—जबकि 'गाहासदे असीदे' की प्रतिज्ञा पाई जाती है और जबकि वीरसेनस्वामीके सामने भी उस प्रतिज्ञाके समर्थक अनेक व्याख्यानाचार्य पाये जाते थे! दूसरी बात यह है कि प्रारम्भकी १२ सम्बन्ध-गाथाओं और अद्धापरिमाण-निर्देश करनेवाली ६ गाथाओं पर एक भी चूर्णिसूत्र नहीं पाया जाता है। तीसरी बात यह है कि उक्त अठारह गाथाओंके अधिकार-निर्देश करनेवाली दोनों गाथाओंके बाद चूर्णिकार कहते हैं कि 'एत्तो सुत्तसमोदारो' अर्थात् अब इससे आगे कसायपाहुडसूत्रका समवतार होता है। संक्रम-अधिकार वाली ३५ गाथाओंमेंसे ५ को छोड़कर शेष ३१ पर भी एक भी चूर्णिसूत्र नहीं पाया जाता। तथा उनमेंकी अनेक गाथाओंके कम्मपयडीके संक्रमणाधिकारमें पाये जानेसे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि वे गाथाएं कसायपाहुडकी नहीं हैं। इन सब बातोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि उक्त ५३ गाथाएं गुणधर-रचित नहीं हैं और इसलिए वे कसायपाहुडकी भी अंग नहीं हैं। इस बातका पोषक सबसे प्रबल प्रमाण 'तिण्णेदा गाहाओ पंचसु अत्थेसु णादव्वा' यह गाथांश है, जिसमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि प्रारम्भके पांच अर्थाधिकारोंमें 'पेज्जं वा दोसो वा' इत्यादि तीन गाथाएं जानना चाहिए। अतएव उक्त ५३ गाथाओंको आचार्य नागहस्तीके द्वारा प्रणीत या उपदिष्ट मानना चाहिए। अथवा यह भी संभव है कि १८० गाथाओंमें पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार कर चुकने के बाद प्रस्तावना, विषयसूची और परिशिष्टके रूपमें उक्त ५३ गाथाओंकी गुणधराचार्यने पीछेसे रचना की हो।

३. अधिकारोंके विषयमें मतभेद—कसायपाहुडके १५ अर्थाधिकारोंके बारेमें मतभेद पाया जाता है। कसायपाहुडकी मूलगाथा १ और २ में स्पष्ट रूपसे १५ अधिकारोंका निर्देश होनेपर भी चूर्णिकारने 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो अण्णेण पयारेण*' कहकर उनसे भिन्न ही १५ अर्थाधिकार बतलाये हैं। यद्यपि जयधवलाकारने बहुत कुछ ऊहापोहके पश्चात् यह बतलाया है कि दोनों प्रकारोंमें कोई विरोध नहीं है, चूर्णिकारने 'अन्य प्रकारसे भी १५ अर्थाधिकार संभव हैं, कहकर उनकी एक रूपरेखा दिखाई है, सो उनके अनुसार और भी प्रकारसे १५ अर्थाधिकार संभव हो सकते हैं कहकर जयधवलाकारने एक और भी तीसरे प्रकारसे अर्थाधिकारोंका निरूपण किया है†। पर अधिकारोंके निर्देश करनेवाली दोनों गाथाओंपर गहराईसे विचार करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि गुणधराचार्यके मतानुसार १५ अर्थाधिकार इस प्रकारसे होना चाहिए—

---

‡ तण्ण घडदे; संबंधगाहाहि अद्धापरिमाणणिद्देसगाहाहि संकमगाहाहि य विणा असीदिसदगाहाओ चेव भणंतस्स गुणहरभडारयस्स अयाणत्तप्पसंगादो। तम्हा पुव्वुत्तत्थो चेव घेत्तव्वो।

जयध० भा० १ पृ० १८३.

* देखो पृ० १३। † देखो पृ० १४ और १५, तथा जयधवला भा० १ पृ० ११२ से ११६ तक।

१. पेज्ज या प्रेय-अधिकार
२. दोस या द्वेष-अधिकार
३. विभक्ति-अधिकार (जिसमें कि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविभक्ति, तथा क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक भी सम्मिलित हैं)
४. बन्धक-अधिकार
५. वेदक-अधिकार
६. उपयोग-अधिकार
७. चतुःस्थान-अधिकार
८. व्यंजन-अधिकार
९. दर्शनमोहोपशामना-अधिकार
१०. दर्शनमोह-क्षपणा-अधिकार
११. संयमासंयम-अधिकार
१२. संयम-अधिकार
१३. चारित्रमोहोपशामना-अधिकार
१४. चारित्रमोहक्षपणा-अधिकार
१५. अद्धापरिमाण निर्देश

किन्तु चूर्णिकारको जिस प्रकारसे विषयका प्रतिपादन करना अभीष्ट था, उसी प्रकारसे उन्होंने अधिकारोंका विभाजन किया है, ऐसा चूर्णिसूत्रोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है।

४. गाथाओंका विभाजन—उपर्युक्त १५ अधिकारोंमें १८० गाथाओंका विभाजन इस प्रकारसे किया गया है—

प्रारम्भके ५ अधिकारोंमें ३, वेदकमें ४, उपयोगमें ७, चतुःस्थानमें १६, व्यंजनमें ५, दर्शनमोहोपशमनामें १५, दर्शनमोहक्षपणामें ५, संयमासंयम और संयम अधिकारमें १, चारित्रमोहोपशामनामें ८ और चारित्रमोहक्षपणामें ११४ गाथाएं निबद्ध हैं। इन सबका योग (३+४+७+१६+५+१५+५+१+८+११४=१७८) एकसौ अठहत्तर होता है। इनमें अधिकारोंका निर्देश करनेवाली प्रारंभकी २ गाथाओंको मिला देने पर कसायपाहुडकी सर्व-गाथाओंका योग १८० हो जाता है। यदि ऊपर बतलाई गई ५३ गाथाओंको भी गुणधर-रचित माना जाय, तो सर्व गाथाओंका योग (१८०+५३=२३३) दो सौ तेतीस होता है।

५. गाथाओंका वर्गीकरण—चूर्णिसूत्रोंके अनुसार कसायपाहुडकी मूल १८० गाथाओंका तीन प्रकारसे वर्गीकरण किया जा सकता है—१ सूचनासूत्रात्मक, २ पृच्छासूत्रात्मक और ३ व्याकरणसूत्रात्मक।

१. सूचनासूत्रात्मक-गाथाएं—जिन गाथाओंके द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी सूचनामात्र की गई है, किन्तु उसका कुछ भी वर्णन नहीं किया गया है, उन्हें सूचनासूत्रात्मक गाथाएं जानना चाहिए। ऐसी गाथाओंको चूर्णिकारने '**एसा गाहा सूचणासुत्तं** *' कहकर स्पष्टरूपसे सूचनासूत्र कहा है। वर्गीकरणकी दृष्टिसे मूल-गाथाङ्क ४, ५, १४, ६२, ७०, ११५, १७९ और १८० को सूचनासूत्र जानना चाहिए।

२. पृच्छासूत्रात्मक गाथाएं—जिन गाथाओंके द्वारा प्रतिपाद्य विषयके विवेचन करनेके लिए प्रश्न उठाये गये हैं, उन्हें चूर्णिकारने पृच्छासूत्र कहा है। चारित्रमोहक्षपणानामक पन्द्रहवें अधिकारकी प्रायः सभी मूल-गाथाएं पृच्छासूत्रात्मक है। शेष अधिकारोंमें भी इस प्रकारके गाथासूत्र हैं, मूलगाथाओंमें उनका विवरण इस प्रकार है—३, ६ से १३, १५-१६, २१, २८, ३१, ३८ से ४१, ६३से ६७, ७१, ७७, ८९, ९४, ९८, १०२, १०४, १०९, ११३, ११६, १२९, १३३, १३८, १४१, १४६, १५१, १५४, १६०, १६१, १६३, १६५ से १६९ और १७६।

३. व्याकरणसूत्रात्मक गाथाएं—जिन गाथाओंमें पृच्छासूत्रोंके द्वारा उठाए गये प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है, अथवा प्रतिपाद्य विषयका प्रतिपादन या अव्याख्यात अर्थका

* देखो पृ० ५८५, सू० २२६।

व्याख्यान किया गया है, ऐसी गाथाओंको चूर्णिकारने 'एदं सव्वं वागरणसुत्तं[1]' कहकर उन्हें व्याकरणगाथासूत्र संज्ञा दी है। चारित्रमोहक्षपणाकी दो एक गाथाओंको छोड़कर सभी भाष्यगाथाओंको व्याकरणसूत्र जानना चाहिए। शेष अधिकारोंमें भी इस प्रकारके विषयका वर्णन करनेवाले व्याकरणसूत्र पाये जाते हैं। मूल गाथाओंमें उनकी संख्या इस प्रकार है—१७ से २०, २२ से २७, २६, ३०, ३२ से ३७, ४२ से ६१, ६८, ६६, ७२, ७६ से ७८ से ८८, ६० से ६३, ६५ से ६७, ६६ से १०१, १०३, १०५ से १०८, ११० से ११२, ११४, ११५, ११७ से १२८, १३० से १३२, १३४ से १३७, १३६, १४०, १४२ से १४५, १४७ से १५०, १५२, १५३, १५५ से १५६, १६२, १६४, १७० से १७५, १७७ और १७८।

उक्त विभाजन १८० मूलगाथाओंका है। शेष रही ५३ गाथाओंका वर्गीकरण इस प्रकार है—सम्बन्ध-गाथाएं, अद्धापरिमाण-गाथाएं और संक्रमवृत्ति-गाथाएं।

सम्बन्ध गाथाओंमें प्रस्तुत ग्रन्थके १५ अधिकारोंकी गाथाओंका निर्देश किया गया है; अतएव इनको विषयानुक्रमणी या विषयसूचीरूप होनेसे सूचनासूत्र कहा जा सकता है। अद्धापरिमाणकी १२ गाथाओंमें कालके अल्पबहुत्वका तथा संक्रमवृत्तिकी ३५ गाथाओंमें संक्रमणका विवेचन होनेसे उन्हें व्याकरणसूत्र मानना चाहिए।

६. **व्यवस्थाभेद**–गाथासूत्रकारने चारित्रमोहनीयकर्मके प्रस्थापक (क्षय करनेवाले) जीवके विषयमें 'संकामयपट्ठवयस्स परिणामो केरिसो हवे' इससे लेकर 'किंट्ठिदियाणि कम्माणि' इस गाथा तककी चार गाथाओंको चारित्रमोहक्षपणाधिकारके अन्तर्गत कहा है[2], फिर भी चूर्णिकारने उन्हें दर्शनमोहके उपशमको प्रारम्भ करनेवाले जीवकी प्ररूपणाके समय सम्यक्त्व-अधिकारके प्रारम्भमें कहा हैं और उनपर वहीं चूर्णिसूत्र भी रचे हैं। पर इसमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए, क्योंकि गाथासूत्रकारने उन्हें अन्तदीपकरूपसे चारित्रमोहक्षपणाधिकारमें कहा है, किन्तु चूर्णिकारने आदिदीपकरूपसे उनका प्रतिपादन दर्शनमोहोपशमनाप्रस्थापकके विषयमें किया है। उन चारों गाथाओंका प्रतिपादन दर्शनमोहोपशम-प्रस्थापकके समान दर्शनमोहक्षपणा-प्रस्थापक[3], संयमासंयम-प्रस्थापक[4], संयमप्रस्थापक[5], चारित्रमोहोपशमना-प्रस्थापक[6], और चारित्रमोहक्षपणा-प्रस्थापकके[7] लिए भी आवश्यक है। यही कारण है कि दर्शनमोहोपशना-प्रस्थापकका आश्रय लेकर प्रारंभमें ही चूर्णिकारने उन चारों ही गाथाओंकी विभाषा (व्याख्या) की है और आगे उक्त चारों अधिकारोंके आरम्भमें समर्पण-सूत्रोंके द्वारा उन चारों ही गाथाओंकी विभाषा करनेके लिए उच्चारणाचार्यों और व्याख्यानाचार्योंको सूचना कर दी है। यदि चूर्णिकार ऐसा न करते, तो अभ्यासीको यह पता भी न लगता, कि उन गाथाओंके व्याख्यानकी आवश्यकता इसके पूर्व भी उक्त स्थलों पर है।

७. **गाथाओंकी गम्भीरता और अनन्तार्थगर्भिता**—कसायपाहुडकी किसी-किसी गाथाके एक-एक पदको लेकर एक-एक अधिकारका रचा जाना तथा तीन गाथाओंका पांच अधिकारोंमें निबद्ध होना ही गाथासूत्रोंकी गम्भीरता और अनन्त-अर्थ-गर्भिताको सूचित करता है। वेदक अधिकारकी 'जो जं संकामेदि य' (गाथाङ्क ६२) गाथाके द्वारा चारों प्रकारके बन्ध, चारों प्रकारके संक्रमण, चारों प्रकारके उदय, चारों प्रकारकी उदीरणा और चारों प्रकारके सत्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वकी सूचना निश्चयतः उसके गाम्भीर्य और अनन्तार्थगर्भित्वकी साक्षी है।

---

१ देखो पृ० ८८३, सू० १४३१। २ 'चत्तारि य पट्ठवए गाहा' गा० ७। ३ देखो पृ० ६४२। ४ देखो पृ० ६६१। ५ देखो पृ० ६६६। ६ देखो पृ० ६८१। ७ देखो पृ० ७३८।

यदि इन गाथासूत्रोंमें अन्तर्निहित अनन्त अर्थको चूर्णिकार व्यक्त न करते, तो आज उनका अर्थ-बोध होना असंभव था।

८. एक प्रश्न–जबकि कसायपाहुडको पन्द्रह अधिकारोंमें विभक्त किया गया है और सभी अधिकारोंकी गाथाएं भी पृथक्-पृथक् निरूपण की गई हैं, तब क्या कारण है कि प्रारम्भके ५ अधिकारोंमें केवल ३ गाथाएं ही बतलाई गई हैं? क्या वेदक, उपयोग, व्यंजन आदि शेष अधिकारोंके समान प्रारम्भके ५ अधिकारोंमें भी थोड़ी बहुत गाथाओंको नहीं रचा जा सकता था? यदि हां, तो फिर क्यों नहीं वैसा किया गया, और क्यों ३ गाथाओंके द्वारा ही ५ अधिकारोंके प्रतिपाद्य विषयका निर्देश कर दिया गया? यह एक प्रश्न ग्रन्थके प्रत्येक अभ्यासीके हृदयमें उठे विना नहीं रह सकता? यद्यपि इस प्रश्नका उत्तर सहज नहीं है, तथापि गुणधराचार्यके समयकी स्थितिका अध्ययन करनेसे उक्त प्रश्नका बहुत कुछ समाधान हो जाता है।

प्रारम्भके ५ अध्यायों पर रचे गये चूर्णिसूत्रोंके अध्ययनसे पता चलता है कि इन अधिकारोंका प्रतिपाद्य विषय वही है, जोकि महाकम्मपयडिपाहुडमें वर्णन किया गया है। कसायपाहुडका उद्गमस्थान पांचवें पूर्वकी दशवीं वस्तुका तीसरा पेज्जदोसपाहुड है, जबकि महाकम्मपयडिपाहुड दूसरे पूर्वकी पंचम वस्तुका चौथा पाहुड है। गुणधराचार्य पांचवें पूर्वके पूर्ण पाठी भले ही न हों, पर उसके एक देशपाठी तो निश्चयतः थे ही। अतः यह अर्थापत्तिसे सिद्ध है कि वे महाकम्मपयडिपाहुडके भी पारंगत थे। उनके द्वारा कसायपाहुडका रचा जाना यह सिद्ध करता है कि उनके समयमें उक्त पंचम पूर्वगत पाहुडोंके ज्ञानका भी ह्रास होने लगा था। साथ ही कसायपाहुडके प्रारम्भिक ५ अधिकारोंपर गाथासूत्रोंका न रचा जाना और मात्र ३ गाथाओंके द्वारा उनके प्रतिपाद्य विषयकी सूचनामात्र करना यह सिद्ध करता है कि यतः उनके समयमें महाकम्मपयडिपाहुडका पठन-पाठन अच्छी तरहसे प्रचलित था, अतः उन्होंने उन अधिकारोंपर गाथाओंकी रचना करना अनावश्यक समझा और मात्र ३ गाथाओंके द्वारा उसकी सूचना करदी। किन्तु कसायपाहुडकी गाथाओंको यतिवृषभके पास तक पहुंचते-पहुंचते मध्यवर्ती कालमें महाकम्मपयडिपाहुडके ज्ञानका बहुत कुछ अंशोंमें विच्छेद हो गया था, और जो कुछ उसका आंशिक ज्ञान बचा था, वह षट्खंडागम, कम्मपयडी, आदि प्रकीर्णक ग्रन्थोंमें निबद्ध हो चुका था, अतः उन्होंने प्रारम्भके ५ अधिकारोंका विशद व्याख्यान करना उचित समझा। यही कारण है कि जब गुणधराचार्यने प्रारम्भके ५ अधिकारोंपर केवल ३ गाथाएं रचीं, तब यतिवृषभने उनपर ३२४१ चूर्णिसूत्र रचे, जो कि समस्त चूर्णिसूत्रोंकी संख्याके आधेके लगभग हैं; क्योंकि कसायपाहुडके समस्त चूर्णिसूत्रोंकी संख्या ७००६ है।

यहां एक बात और भी ज्ञातव्य है कि प्रारम्भके पांच अधिकारोंके चूर्णिसूत्रोंकी उक्त संख्या वास्तवमें पांचकी नहीं, अपि तु चारकी ही है, क्योंकि बन्धनामक चौथे अधिकारपर तो यतिवृषभने मात्र ११ सूत्रोंके द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी सूचना भर की है और उनमें स्पष्टरूपसे यह कहा है कि बन्धके चारों भेदोंका अन्यत्र बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है (अतः हम उनका वर्णन यहां नहीं करते हैं)। जयधवलाकार इस स्थलपर लिखते हैं कि यहाँ पर समस्त महाबन्धके-जिसका कि प्रमाण ३० हजार श्लोकपरिमाण है—प्ररूपण करने पर बन्धनामक चौथा अधिकार पूर्ण होता है। यदि यतिवृषभ संक्रमण अधिकारके समान अति संक्षेपसे भी चारों प्रकारके बन्धोंका निरूपण करते, तो भी उक्त अधिकारके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या लगभग दो हजारके अवश्य होती, क्योंकि अकेले संक्रमण अधिकारके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या१८५३ है, जबकि बहुतसे अनुयोगद्वारोंके विवेचनका भार चूर्णिकारने उच्चारणाचार्यों पर छोड़ा है। यदि संक्रमणके समान बन्ध अधिकारके चूर्णिसूत्रोंकी काल्पनिक संख्या दो हजार ही मानी जावे, तो प्रारम्भके ५ अधिकारोंके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या कम-से-कम ५ हजार अवश्य होती।

इस विवेचनसे जहां उक्त प्रश्नका भलीभाँति समाधान होता है, वहां यह एक विशिष्ट बात भी अभिज्ञात होती है कि गुणधराचार्य महाकम्मपयडिपाहुडके पूर्ण वेत्ता थे। तथा जिस प्रकार गुणधराचार्यने अपने समयमें पंचम पूर्वगत पेज्जदोसपाहुडका ज्ञान विलुप्त होते हुए देखकर उसका कसायपाहुडके रूपमें उपसंहार करना उचित समझा, ठीक उसी प्रकारसे धरसेनाचार्यने अपने समयमें दिन-पर-दिन महाकम्मपयडिपाहुडके ज्ञानको विलुप्त होते हुए देखकर तथा अपनी अल्पायुपर ध्यान देकर श्रुतरक्षाके विचारसे भूतबलि और पुष्पदन्तको बुलाकर उसे समर्पण करना उचित समझा। इससे गुणधराचार्यका धरसेनाचार्यसे पूर्ववर्ती होना और भी असंदिग्धरूपसे स्वतः सिद्ध हो जाता है।

९. **गाथासूत्रोंके पठन-पाठनके अधिकारी**—गाथासूत्रोंकी रचना-शैलीको देखते हुए यह सहजमें ही ज्ञात हो जाता है कि इनकी रचना उच्चारणाचार्यों, व्याख्यानाचार्यों या वाचकाचार्योंको लक्ष्यमें रखकर की गई है, जो कि उस समय प्रचुरतासे पाये जाते थे। ये लोग एक प्रकारसे उपाध्यायपरमेष्ठी हैं। यदि ये व्याख्यान करनेवाले आचार्य गाथाओंके अन्तर्निहित अर्थका शिष्योंको व्याख्यान न करते, उन्हें स्पष्ट प्रकट करके न बतलाते, तो उनका अर्थ-परिज्ञान असंभव-सा था। इसका कारण यह है कि अनेक गाथासूत्र केवल प्रश्नात्मक हैं और उनमें प्रतिपाद्य विषयका कुछ भी प्रतिपादन नहीं करके उसके प्रतिपादनका संकेतमात्र किया गया है। गुरु-परम्परासे प्राप्त अर्थका अवधारण करनेवाले आचार्योंके बतलाये विना उनके अर्थका ज्ञान हो नहीं सकता है। जो प्रश्नात्मक या पृच्छासूत्रात्मक गाथाएं हैं, उन्हें एक प्रकारके नोट्स, यादी-विषयको स्मरण करानेवाली सूची--या तालिका कहना चाहिए। गाथासूत्रोंमें आये हुए 'एवं सव्वत्थ कायव्वं'* जैसे पदोंके द्वारा भी इसी बातकी पुष्टि होती है। यही कारण है कि गुणधर-ग्रथित उक्त गाथाएं आचार्य-परम्परासे व्याख्यात होती हुईं आर्यमंक्षु और नागहस्ती जैसे महावाचकोंको प्राप्त हुईं, जोकि अपने समयके सर्व-वाचकों या व्याख्यानाचार्योंमें शिरोमणि, अग्रणी, या सर्वश्रेष्ठ थे और यही कारण है कि उन दोनोंसे यतिवृषभने गाथासूत्रोंके अर्थका सम्यक् प्रकारसे अवधारण किया।

कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंपर एक दृष्टि

जयधवलाकारके उल्लेखानुसार आ० यतिवृषभने आर्यमंक्षु और नागहस्ती के पास कसायपाहुडकी गाथाओंका सम्यक् प्रकार अर्थ अवधारण करके सर्व प्रथम उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की*। आ० इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारसे भी इसकी पुष्टि होती है‡। दोनोंने ही उनके इन चूर्णिसूत्रोंको वृत्तिसूत्र कहा है+। धवला और जयधवला टीकाओंमें चूर्णिसूत्रोंका सहस्रों वार उल्लेख होने पर भी चूर्णिसूत्रका कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। हां, वृत्तिसूत्रका लक्षण जयधवलामें अवश्य उपलब्ध है, जो कि इस प्रकार है—

सुत्तस्सेव विवरणाए संखित्तसद्दरयणाए संगहियसुत्तासेसत्थाए वित्तिसुत्तववएसादो। (जयध० अ० प० ५२)

---

* पृ० ६०५, गा० ८५।

* पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं। जयध० भा० १ पृ० ८८.

‡ तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण। रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि॥ इन्द्र० श्रु० श्लो० १५६.

+ सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ॥ जयध० भा० १ पृ० ४.

अर्थात् जिसकी शब्द-रचना संक्षिप्त हो, और जिसमें सूत्रगत अशेष अर्थोंका संग्रह किया गया हो, सूत्रोंके ऐसे विवरणको वृत्तिसूत्र कहते हैं।

वृत्तिसूत्रका उक्त लक्षण यतिवृषभके चूर्णिसूत्रों पर पूर्णरूपसे घटित होता है। उनकी शब्द-रचना संक्षिप्त है, और सूत्र-सूचित समस्त अर्थोंका उनमें विवरण पाया जाता है। पर इतना होनेपर भी यह बात तो अन्वेषणीय बनी ही रहती है कि आखिर इस 'चूर्णि' पदका अर्थ क्या है और क्यों यतिवृषभके इन वृत्तिसूत्रोंको 'चूर्णिसूत्र' कहा जाता है। श्वे० आगमों पर भी चूर्णियां रची गई हैं, पर उन्हें या उनमेंसे किसीको भी 'चूर्णिसूत्र' नाम दिया गया हो, ऐसा हमारे देखनेमें नहीं आया। श्वे० ग्रन्थोंमें एक स्थान पर 'चूर्णिपद' का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

अत्थबहुलं महत्थं हेउ-निवाओवसग्गगंभीरं।
बहुपायमवोच्छिन्नं गम-णयसुद्धं तु चुण्णपयं *॥

अर्थात् जो अर्थ-बहुल हो, महान् अर्थका धारक या प्रतिपादक हो, हेतु, निपात और उपसर्गसे युक्त हो, गम्भीर हो, अनेक पाद-समन्वित हो, अव्यवच्छिन्न हो, अर्थात् जिसमें वस्तुका स्वरूप धारा-प्रवाहसे कहा गया हो, तथा जो अनेक प्रकारके गम—जाननेके उपाय और नयोंसे शुद्ध हो, उसे चौर्ण अर्थात् चूर्णिसम्बन्धी पद कहते हैं।

चूर्णिपदकी यह व्याख्या यतिवृषभाचार्यके चूर्णिसूत्रोंपर अक्षरशः घटित होती है। चूर्णिपदका इतना स्पष्ट अर्थ जान लेनेके पश्चात् भी यह शंका तो फिर भी उठती है कि 'वृत्ति'के स्थान पर 'चूर्णि' पदका प्रयोग क्यों किया गया और जैनसाहित्यमें ही क्यों यह पद अधिकतासे व्यवहृत हुआ? जब कि जैनेतर साहित्य में वृत्ति, विवृति आदि नाम ही व्यवहृत एवं प्रचलित दृष्टिगोचर होते हैं?

'चूर्णि' पदकी निरुक्ति पर ध्यान देनेसे हमें उक्त शंकाका समाधान मिल जाता है। संस्कृतमें चूर्ण धातु पेषण या विश्लेषणके अर्थमें प्रयुक्त होती है। किसी गेहूँ चना आदि बीज-के पिसे हुए अंशको चूर्ण कहते हैं और अनेक प्रकारके चूर्णोंके समुदायको चूर्णि कहते हैं। तीर्थंकर भगवान्की दिव्यध्वनिको अनन्त अर्थसे गर्भित × बीजपद रूप कहा गया है और बीजपदका लक्षण धवलामें इस प्रकार दिया गया है—

संखित्तसद्दरयणमणंतत्थावगमहेदुभूदाणेगलिंगसंगयं बीजपदं णाम॥
(धवला आ० प० ५३६)

अर्थात् जिसकी शब्द रचना संक्षिप्त शब्दोंसे हुई हो, जो अनन्त अर्थोंके ज्ञानके कारण-भूत हो, अनेक प्रकारके लिंग या चिन्होंसे संगत हो, ऐसे पदको बीजपद कहते हैं। कसापाहुडकी गाथासूत्रोंमें ऐसे बीजपद प्रचुरतासे पाये जाते हैं। उन बीजपदोंका आ० यतिवृषभने अपनी प्रस्तुत वृत्तिमें बहुत उत्तम प्रकारसे विषलेशण-पूर्वक विवरण किया है, अतः उनकी यह वृत्ति चूर्णिके नामसे प्रसिद्ध हुई है।

कसायपाहुडकी गाथाओंमें किस प्रकारके या कौनसे बीज पद प्रयुक्त हुए हैं और वे किस प्रकार अनन्त अर्थसे गर्भित हैं, तथा उनका प्रस्तुत चूर्णि सूत्रोंमें किस प्रकारसे विश्लेपण

---

* देखो अभिधानराजेन्द्र 'चुण्णपद'।

× अणंतत्थगब्भ-बीजपद-घडिय-सरीरा। जयध० भा० १ पृ० १२६

करके उनके अन्तर्निहित अर्थके रहस्यका उद्घाटन चूर्णिकारने किया है, इस बातके परिज्ञानार्थ कुछ बीजपद उदाहरणके रूपमें उपस्थित किये जाते हैं।

कर्मविभक्तिका वर्णन करते हुए कसायपाहुडकी चौथी मूलगाथाका अवतार किया गया है, जो कि इस प्रकार है—

पयडीए मोहणिज्जा विहत्ती तह ट्ठिदीए अणुभागे।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ठिदियं वा॥

इसमें बतलाया गया है कि कर्मविभक्तिके विषयमें मोहनीय कर्मकी प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिककी प्ररूपणा करना चाहिए।

गाथासूत्रकारने कर्मविभक्तिके वर्णन करनेके लिए इतनी मात्र सूचना करनेके अतिरिक्त और कुछ भी वर्णन नहीं किया है। चूर्णिकारने गाथाके प्रत्येक पदको बीज पद मान करके प्रकृतिविभक्तिका १२६ सूत्रोंमें, स्थितिविभक्तिका ४०७ सूत्रोंमें, अनुभागविभक्तिका १८६ सूत्रोंमें प्रदेशविभक्तिका २६२ सूत्रोंमें, क्षीणाक्षीणका १४२ सूत्रोंमें और स्थित्यन्तिकका १०६ सूत्रोंमें वर्णन करके उसी बीजपदके नामसे पृथक् पृथक् अधिकारकी रचना की है। उक्त बीज पदोंके व्याख्यारूप उक्त अधिकारोंमें भी तद्गत विषयोंका कुछ प्रारम्भिक वर्णन करके शेष कथनके वर्णनका भार व्याख्यानाचार्यों या उच्चारणाचार्यों पर छोड़ दिया गया है। यदि प्रत्येक बीजपदके अन्तर्निहित पूर्ण रहस्यका वर्णन चूर्णिकार करते, तो चूर्णिसूत्रोंकी संख्या कई हजार होती। जिन बातोंके प्ररूपण करनेका भार चूर्णिकारने उच्चारणाचार्यों पर छोड़ा है, उच्चारणाचार्यने उसका वर्णन किया है और उस उच्चारणावृत्तिका प्रमाण १२ हजार श्लोकपरिमाण हो गया है। पर चूर्णिकारने 'वृत्तिसूत्र' इस नामके अनुरूप अपनी रचना संक्षिप्त, पर अर्थ-बहुल पदोंके द्वारा ही की है, इसलिए पर्याप्त प्रमेयका प्रतिपादन करने पर भी उनके चूर्णसूत्रोंकी ग्रन्थ-संख्या ६ हजार श्लोक-प्रमाण ही रही है।

चूर्णिकारने बीजपदोंका स्वयं भी अपनी चूर्णिमें उल्लेख किया है। यथा—

सेसाणं पि कम्माणमेदेण बीजपदेण णेदव्वं। (स्थिति० सू० ३४२)
सेसाणं कम्माणमेदेण बीजपदेण अणुमग्गिदव्वं। (स्थिति० सू० ३५२)

जयधवलाकारने कसायपाहुडचूर्णिके अनेक सूत्रोंको विभिन्न नामोंसे उल्लेख किया है, जिन्हें इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है—१ उत्थानिकासूत्र, २ अधिकारसूत्र, ३ आशंकासत्र ४ पृच्छासूत्र, ५ विवरणसूत्र, ६ समर्पणसूत्र और ७ उपसंहारसूत्र।

१ **उत्थानिकासूत्र**—जिनके द्वारा आगे वर्णन किये जाने वाले विषयकी सूचना की गई, उन्हें उत्थानिकासूत्र कहा गया है। जैसे—**एत्तो सुत्तसमोदारो** (पेज्जदो० सू० ८७) **इमा अण्णा परूवणा** (प्रदेशवि० सू० ६६) **कालो** (प्रदेशवि० स० ६७) **अंतरं** (प्रदेशवि० सू० १०८) इत्यादि।

२ **अधिकारसूत्र**-अधिकार या अनुयोगद्वारके प्रारम्भमें दिये गये सूत्रोंको अधिकार सूत्र कहा गया है। जैसे—**एत्तो अणुभागविहत्ती** (अनुभा० सू० १) **एत्तो पदणिक्खेवो** (स्थिति० सू० ३१५) **एत्तो वड्ढी** (स्थिति० सू० ३२७) आदि।

३ आशंकासूत्र—किसी विषयका वर्णन करते हुये तद्गत विशेष वक्तव्यके लिए शंका उठाने वाले वाक्योंको आशंकासूत्र कहा गया है। जैसे—**अट्ठावीसं केण कारणेण ण संभवइ?** (संक्रम० सू० १३४) **कथं ताव णोजीवो?** (पेज्जदो० सू० ५५) आदि।

४ पृच्छासूत्र—वक्तव्य विषयकी जिज्ञासा प्रकट करनेवाले सूत्रोंको पृच्छासूत्र कहा गया है। जैसे—**छव्वीससंकामया केवचिरं कालादो होंति?** (संक्रम० १६४) तथा **तं जहा, जहा, जधा** आदि।

५ विवरणसूत्र—प्रकृत विषयके विवरण या व्याख्यान करनेवाले सूत्रोंको विवरण-सूत्र कहा गया है। जैसे—**णामं छव्विहं, पमाणं सत्तविहं, वत्तव्वदा तिविहा** (पेज्जदो० सू० ३, ४, ५,) आदि।

६ समर्पणसूत्र—किसी वक्तव्य वस्तुके आंशिक विवरणके पश्चात् तत्समान शेष वक्तव्यके भी जान लेनेकी, अथवा उच्चारणाचार्योंको उनके प्ररूपण करनेकी सूचना करनेवाले सूत्रोंको अर्पण या समर्पणसूत्र कहा गया है। जैसे—**गदीसु अणुमग्गिदव्वं** (स्थिति० सू० २३) **जहा मिच्छत्तस्स तहा सेसाणं कम्माणं** (स्थिति सू० ३८२) **एत्तो मूलपयडिअणु-भागविहत्ती भाणिदव्वा** । (अनुभा० २) इत्यादि।

७ उपसंहारसूत्र—प्रकृत विषयका उपसंहार करनेवाले सूत्रोंको उपसंहारसूत्र कहा गया है। जैसे— **एसा ताव एक्का परूवणा** (प्रदेश० सू० ६८) **तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता** (उपयो० सू० १८२) **तदो छट्ठी गाहा समत्ता भवदि** । (उपयो० सू० २७३) इत्यादि।

चूर्णिसूत्रोंकी रचना किसके लिए ?

जिस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थके गाथासूत्रोंकी रचना उच्चारणाचार्यों या व्याख्यानाचार्योंको लक्ष्यमें रखकर की गई है, उसी प्रकारसे चूर्णिसूत्रोंकी रचना भी उन्हींको लक्ष्यमें रख करके की गई है, यह बात भी चूर्णिसूत्रोंके अध्ययनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। चूर्णिसूत्रोंमें आये हुए, '**भाणियव्वा, णेदव्वा, कायव्वा, परूवेयव्वा** आदि पदोंका प्रचुरतासे प्रयोग इस बातका साक्षी है। जयधवलाकारने इन पदोंका अर्थ करते हुए स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि उच्चा-रणाचार्य इसके अर्थका प्रतिबोध शिष्योंको करावें*। परिशिष्ट नं० ६ में दिये गये स्थलोंके निर्देशसे उक्त कथनके स्वीकार करनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है। चूर्णिकारने जिस अर्थका व्याख्यान नहीं किया है, उनके व्याख्यानका भार या उत्तरदायित्व उन्होंने उच्चारणाचार्यों और व्याख्यानाचार्योंके ऊपर छोड़ा है। चूर्णिसूत्रोंमें उच्चारणाचार्योंके लिए इस प्रकार की सूचना दो सौसे भी अधिक बार की गई है और उक्त सूचनाके लिए कुछ विशिष्ट पदोंका प्रयोग किया गया है।

उच्चारणाचार्योंको जिन पदोंके प्रयोग-द्वारा यह भार सौंपा गया है, जरा उनपर भी दृष्टिपात कीजिए—

* एदस्स दव्वस्स ओवट्टणं ठविय सिस्साणमेत्थ अत्थपडिबोहो कायव्वो। जयध०

पृष्ठ प्रयुक्त पद अर्थ

६७२ अणुगंतव्वं, ४१ अणुगंतव्वाणि। (जानना चाहिए)
४६५ अणुचिंतिऊण णेदव्वं। (चिन्तवन करके ले जाना चाहिए)
६६ अणुमग्गिदव्वं, १२० अणुमग्गियव्वो। (अनुमार्गण करना चाहिए)
६५७ अणुसंवण्णेदव्वाओ, ७३७ अणुभासिदव्वाओ। (वर्णन करना चाहिए)
४४० एदाणुमाणिय णेदव्वं। (इसके द्वारा अनुमान करके बतलाना चाहिए)
६४२ ओट्टिदव्वाओ। (स्थापित करना चाहिए)
१०१ कायव्वं, ३४ कायव्वा, २०० कायव्वो, १७५ कायव्वाओ, ६१ कादव्वाणि। (प्ररूपण करना चाहिए)
३६३ काऊण। (करके)
६६३ गेण्हियव्वं। (ग्रहण करना चाहिए)
११६ जाणिदव्वो, ११६ जाणियव्वो, ४११ जाणिदूण णेदव्वं। (जानना चाहिए)
१८ ठवणिज्जं, ४६७ ठवणीयं, ४५ थप्पा। (स्थापित करना चाहिए)
७११ दट्ठव्वं। (जानना चाहिए)
१६, २८, णिक्खिवियव्वं, १६ णिक्खिवियव्वो, ४५ णिक्खिवियव्वा। (निक्षेप करना चाहिए)
४४० णेदव्वं, ५६ णेदव्वा, १११ णेदव्वाणि, ६२ णेदव्वो। (ले जाना चाहिए)
१६४ परूवेदव्वाणि ६७८ परूवेयव्वाणि, ६१४ परूवेयव्वाओ। (प्ररूपण करना चाहिए)
४३७, बंधावेयव्वो, बंधावेयव्वाओ, ४५३ बंधावेदूण बंधावेयव्वो। (बन्ध कराना चाहिए)
६४२ भाणियव्वं, १४७ भाणिदव्वा, ३४८ भाणिदव्वो, ५०० भाणियव्वा, ५२६ भाणिदव्वाणि ३६४ भाणिदव्वं। (कहलाना चाहिए)
४६७ मग्गिदूण मग्गियव्वा, ६१६ मग्गियव्वं, ६१६ मग्गियव्वो। (अन्वेषण करना चाहिए)
४६७ मग्गियूण कायव्वा। (अन्वेषण करके प्ररूपण करना चाहिए)
५७६ वत्तव्वं। (कहना चाहिए)
६६६ विहासियूण, ७१३ विहासियव्वाणि, ७३८ विहासियव्वाओ, ४३२ विहासेयव्वं। (विशेष व्याख्यान करना चाहिए)
४१२ साधेदूण णेदव्वो। (साध करके बतलाना चाहिए)
४१२ साहेयव्वं, ५२४ साहेयव्वो। (साधन करना चाहिए)

ऊपर दिये गये पदोंके प्रयोगसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि चूर्णिसूत्रोंकी रचना उच्चारणाचार्यों या व्याख्यानाचार्योंके लिए की गई है और उन्हें उपर्युक्त पदोंके प्रयोग-द्वारा यह भार सौंपा गया है कि वे चूर्णिसूत्रोंमें नहीं कहे गये तत्त्वका प्रतिपादन शिष्योंको अच्छी तरहसे प्ररूपण करें और उन्हें उसका बोध करावें।

चूर्णिसूत्रोंकी रचनाशैली

चूर्णिसूत्रोंकी रचना संक्षिप्त होते हुए भी बहुत स्पष्ट, प्राञ्जल और प्रौढ है; कहीं एक शब्दका भी निरर्थक प्रयोग नहीं हुआ है। कहीं-कहीं संख्यावाचक पदके स्थान पर गणनाङ्कोंका भी प्रयोग किया गया है, तो जयधवलाकारने उसकी भी महत्ता और सार्थकता प्रकट की है।

चूर्णिसूत्रोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि चूर्णिकारके सामने जो आगमसूत्र उपस्थित थे और उनमें जिन विषयोंका वर्णन उपलब्ध था, उन विषयोंको प्रायः यतिवृषभने छोड़ दिया है। किन्तु जिन विषयोंका वर्णन उनके सामने उपस्थित आगमिक साहित्यमें नहीं था और उन्हें जिनका विशेष ज्ञान गुरु-परम्परासे प्राप्त हुआ था, उनका उन्होंने प्रस्तुत चूर्णिमें विस्तारके साथ वर्णन किया है। इसके साक्षी बन्ध और संक्रम आदि अधिकार हैं। यतः महाबन्धमें चारों प्रकारोंके बन्धोंका अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध था, अतः उसे एक सूत्रमें ही कह दिया कि 'वह चारों प्रकारका बन्ध बहुशः प्ररूपित है *। किन्तु संक्रमण सत्त्व उदय और उदीरणाका विस्तृत विवेचन उनके समय तक किसी ग्रन्थमें निबद्ध नहीं हुआ था, अतएव उनका प्रस्तुत चूर्णिमें बहुत विशद एवं विस्तृत वर्णन किया है। इसीसे यह भी ज्ञात होता है कि यतिवृषभका आगमिक ज्ञान कितना अगाध, गंभीर और विशाल था।

प्रस्तुत चूर्णिसूत्रोंमें षट्खंडागमसूत्रोंका प्रतिबिम्ब और शैलीका अनुसरण दृष्टिगोचर होता है। षट्खंडागमके द्रव्यानुगम, क्षेत्र, स्पर्शन, काल और अन्तरादि प्ररूपणाओं में जिस प्रकार 'केवडिया, केवडि खेत्ते, केवचिरं कालादो होंति' आदि पृच्छाओंका उद्भावन करके प्रकृत विषयका निरूपण किया गया है, ठीक उसी प्रकारसे प्रस्तुत चूर्णिसूत्रोंमें भी वही शैली और क्रम दृष्टिगोचर होता है। षट्खंडागमके छठे खंड महाबन्धमें चारों बन्धोंका जिन २४ अनुयोग-द्वारोंसे निरूपण किया गया है, प्रस्तुत चूर्णिमें भी चारों विभक्तियों और चारों प्रकारके संक्रमणोंका उन्हीं अनुयोग-द्वारोंसे वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा पाते हैं। भेद केवल इतना है कि महाबन्धमें प्रत्येक बन्धका चौबीस अनुयोगद्वारोंसे ओघ (१४ गुणस्थानों) और आदेश (१४ मार्गणाओं) की अपेक्षा प्रकृत विषयका पृथक् पृथक् स्पष्ट विवेचन किया गया है, तो प्रस्तुत चूर्णिसूत्रोंमें दो-चार मुख्य अनुयोगद्वारोंसे ओघकी अपेक्षा प्रकृत विषयका वर्णन कर आदेशकी अपेक्षा गति आदि एकाध मार्गणाका वर्णन किया गया है और शेष मार्गणाओं और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा प्रकृत विषयके वर्णन करनेका भार उच्चारणाचार्योंके ऊपर छोड़ दिया है। यही कारण है कि यतिवृषभ-द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्वका निर्वाह करनेके लिए उच्चारणाचार्योंने उन-उन अव्याख्यात स्थलोंका व्याख्यान किया और किसी विशिष्ट आचार्यने उसे लिपि-बद्ध करके पुस्तकारूढ कर दिया, जो कि उच्चारणावृत्ति नामसे प्रसिद्ध है। स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविभक्तिके प्रारम्भमें महाबन्ध और उच्चारणावृत्तिसे दिये गये विस्तृत टिप्पणोंसे उक्त कथनकी सचाईमें कोई संदेह नहीं रहा जाता है।

चूर्णिसूत्रोंकी संख्या और परिमाण—इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारके अनुसार चूर्णिसूत्रोंका परिमाण ६ हजार श्लोक-प्रमाण है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी संख्या कितनी रही है, इसका कहींसे कुछ पता नहीं चलता। हाँ, जयधवला टीकासे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि प्रस्तुत चूर्णिका प्रत्येक वाक्य उन्हें सूत्ररूपसे अभीष्ट रहा है, इसलिये स्थान-स्थान पर उन्होंने **'उवरिमसुत्तमाह, सुत्तद्दयमाह'** इत्यादि पदोंका प्रयोग किया है। जयधवला टीकाके अनुसार ऐसे पृथक्-पृथक् सूत्ररूपसे प्रतीत होने वाले सूत्रोंके प्रारम्भमें संख्या-वाचक अंक दिये गये हैं, जिससे कि किये गये अनुवादके साथ मूलसूत्रोंके अर्थका मिलान भी किया जा सके और कसायपाहुड-चूर्णिके समस्त सूत्रोंकी संख्या भी जानी जा सके। इस प्रकार कसायपाहुडके विभिन्न प्रकरणोंके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या इस प्रकार है—

---

* देखो बन्धाधिकार सू० ११।

अधिकार-नाम	सूत्र-संख्या	अधिकार-नाम	सूत्र-संख्या
प्रेयोद्वेषविभक्ति	११२	वेदक	६६८
प्रकृतिविभक्ति	१२६	उपयोग	३२१
स्थितिविभक्ति	४०७	चतुःस्थान	२५
अनुभागविभक्ति	१८६	व्यंजन	२
प्रदेशविभक्ति	२६२	दर्शनमोहोपशामना	१४०
क्षीणाक्षीणाधिकार	१४२	दर्शनमोहक्षपणा	१२८
स्थित्यन्तिक	१०६	संयमासंयमलब्धि	६०
बन्धक	११	संयमलब्धि	६६
प्रकृतिसंक्रमण	२६५	चारित्रमोहोपशामना	७०६
स्थितिसंक्रमण	३०८	चारित्रमोहक्षपणा	१५७०
अनुभागसंक्रमण	५४०	पश्चिमस्कन्ध	५२
प्रदेशसंक्रमण	७४०	समस्त योग	७००६

जयधवला टीकाके आद्योपान्त आलोड़नसे चूर्णिसूत्रोंके विषयमें कुछ नवीन बातों पर भी प्रकाश पड़ता है। जैसे—

(१) पूर्व सूत्र-द्वारा किसी विषयका प्रतिपादन कर चुकनेके बाद तद्गत विशेषताको बतलानेके लिए 'णवरि' कह कर कहीं पृथक् सूत्ररूपसे उसे अंकित किया गया है, तो कहीं उसे पूर्व सूत्रमें ही सम्मिलित कर दिया गया है। अपृथक्त्वताके उदाहरण—

१. पृ० ९२, सू० ११. एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अंतोमुहुत्तूणाओ ।

२. पृ० ३२६, सू० १५४. एवं सेसाणं पयडीणं। णवरि अवत्तव्वया अत्थि।

३. पृ० ३६२, सू० १६४. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि । णवरि सम्मत्तं विज्झमाणेहि भणियव्वं ।

४. पृ० ३८१, सू० ३८६. एवं सेसाणं कम्माणं। णवरि अवतव्वसंकामयाणमुक्कस्सेण संखेज्जा समया। इत्यादि

जयधवला टीकामें इन सभी सूत्रोंके 'णवरि' पदसे आगेके अंशकी टीका एक साथ ही की गई है, इसलिए इन्हें विभिन्न सूत्र न मानकर एक ही सूत्र माना गया और तदनुसार ही उन पर एक नम्बर दिया गया है।

(२) अब कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं, जहाँपर 'णवरि' पदसे आगेके अंशको भिन्न सूत्र मानकर जयधवलाकारने उत्थानिका-पूर्वक पृथक् ही टीका लिखी है—

१. पृ० ११६, सू० १८३. एवं णवुंसयवेदस्स। १८४. णवरि णियमा अणुक्कस्सा।

२. पृ० १३१, सू० २८४. सेसाणं कम्माणं विहत्तिया सव्वे सव्वद्धा। २८५. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वद्विदिविहत्तियाणं जहण्णेण एगसमओ ।

३. पृ० १३६, सू० ३२९. एवं सव्वकम्माणं। ३३०. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणवड्ढी अवत्तव्वं च अत्थि ।

४. पृ० ३३३, सू० १९६. सेसाणं मिच्छत्तभंगो । १९७. णवरि अवत्तव्वसंकामया भजियव्वा। इत्यादि

(३) चूर्णिसूत्रोंमें कुछ सूत्र ऐसे भी हैं, जो वस्तुतः एक थे, किन्तु टीकाकारने व्याख्याकी सुविधाके लिए उन्हें दो सूत्रोंमें विभाजित कर दिया है। जैसे—

१. पृ० १७७, सू० २. **तत्थ मूलपयडिपदेसविहत्तीए गदाए। (पृ०१८४) ३. उत्तरपयडिपदेसविहत्तीए एगजीवेण सामित्तं।**

२. पृ० ४६७, सू० ६. **एदाणि वेवि पत्तेगं चउवीसमणियोगद्दारेहिं मग्गियूण। १०. तदो पयडिट्ठाण-उदीरणा कायव्वा।**

३. पृ० ५१६ सू० ३८४. **मूलपयडिपदेसुदीरणं मग्गियूण। ३८५. तदो उत्तरपयडिपदेसुदीरणा च समुक्कित्तणादि-अप्पाबहुअंतेहिं अणिओगद्दारेहि मग्गियव्वा।** इत्यादि

ऊपर दिये गये इन तीनों ही उद्धरणोंमें अंकित सूत्र वस्तुतः दो-दो नहीं, किन्तु एक-एक ही हैं, किन्तु जयधवलाकारको उक्त तीनों ही स्थलोंपर उच्चारणावृत्तिके आश्रयसे कुछ वक्तव्य-विशेष कहना अभीष्ट था, इसलिए उपर्युक्त तीनों सूत्रोंके 'गदाए' और 'मग्गियूण' पदोंसे उन्हें विभाजित कर पूर्वार्ध और उत्तरार्धकी पृथक् पृथक् टीका की है।

इसी प्रकार प्रायः सभी स्थलों पर 'तं जहा' को पृथक् सूत्र माना है, तो कहीं कहीं उसे पूर्व या उत्तर सूत्रके साथ सम्मिलित कर दिया गया है। यथा—

१. पृ० ४६, सू० २६. **पदच्छेदो। तं जहा—पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति त्ति एसा पयडिविहत्ती।**

२. पृ० ६१, सू० ७. **तं जहा। तत्थ अट्ठपदं—एया ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती, अणेयाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिविहत्ती।**

हमने दो-एक अपवादोंको छोड़कर प्रायः उक्त प्रकारके सर्व स्थलों पर जयधवलाटीकाका अनुसरण किया है, अतएव जहाँ पर जितने अंशकी पृथक् टीका की गई है, वहाँ पर हमने उतने अंश पर पृथक् सूत्राङ्क दिया है।

चूर्णिकारकी गाथा-व्याख्यानपद्धति—कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंपर आद्योपान्त दृष्टि डालने पर पाठकको उनकी गाथा-व्याख्यानपद्धतिका सहजमें ही बोध हो जाता है। वे सर्व-प्रथम वक्ष्यमाण गाथाका अवतार करनेके लिए उसकी उत्थानिका लिखते हैं, पुनः उसकी समुत्कीर्तना और तत्पश्चात् उसकी विभाषा करते हैं। गाथासूत्रोंके उच्चारणको समुत्कीर्तना* कहते हैं और गाथासूत्रसे सूचित अर्थके विषय-विवरण करनेको विभाषा+ कहते हैं। विभाषा भी दो प्रकारकी होती हैं एक प्ररूपणाविभाषा और दूसरी सूत्रविभाषा। जिसमें सूत्रके पदोंका उच्चारण न करके सूत्र-द्वारा सूचित किये गये समस्त अर्थकी विस्तारसे प्ररूपणा की जाती है, उसे प्ररूपणाविभाषा कहते है और जिसमें गाथासूत्रके अवयवभूत पदोंके अर्थका परामर्श करते हुए सूत्र-स्पर्श किया जाता है उसे सूत्रविभाषा कहते हैं*।

---

* समुक्कित्तणं णाम उच्चारणविहासणं णाम विवरणं। जयध०

+ सुत्तेण सूचिदत्थस्स विसेसियूण भासा विहासा विवरणं ति वुत्तं होदि। जयध०

* विहासा दुविहा होदि—परूवणाविहासा सुत्तविहासा चेदि। तत्थ परूवणाविहासा णाम सुत्तपदाणि अणुच्चारिय सुत्तसूचिदासेसत्थस्स वित्थरपरूवणा। सुत्तविहासा णाम गाहासुत्ताणमवयवत्थ-परामरसमुहेण सुत्तफासो। जयध०

प्रस्तुत चूर्णिमें कसायपाहुडके गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना तो यथास्थान सर्वत्र की गई है, पर विभाषाके प्रकारमें अन्तर दृष्टिगोचर होता है। कहीं पर प्ररूपणाविभाषा की गई है, तो कहीं पर सूत्रविभाषा। सूत्रविभाषाके उदाहरणके लिए पृ० ४६ पर **'पयडीए मोहणिज्जा'** इस २२ वीं गाथाकी और पृ० २५३ पर **'संकम-उवक्कमविही'** इत्यादि २४, २५ और २६ वीं गाथाकी व्याख्या देखना चाहिए, जहांपर कि **'पदच्छेदो'** कहकर गाथासूत्रके एक-एक पदका उच्चारण करते हुए उनसे सूचित अर्थको प्रकट किया गया है। पर इस प्रकारकी सूत्रविभाषा समग्र ग्रन्थमें बहुत कम गाथाओंकी दृष्टिगोचर होती है। चूर्णिकारने अधिकांशमें गाथासूत्रोंकी प्ररूपणाविभाषा ही की है। अनेक गाथासूत्र ऐसे भी हैं, जिनकी दोनों ही प्रकार की विभाषा उनके सुगम होनेसे नहीं की गई है और समुत्कीर्तनामात्र करके लिख दिया है कि इसकी समुत्कीर्तना ही विभाषा है*।

यदि आ० गुणधर-प्रणीत गाथासूत्रोंकी संख्या २३३ ही मानी जाय, तो ५३ गाथासूत्र ऐसे हैं, जिनपर कि एक भी चूर्णिसूत्र नहीं लिखा गया है। ऐसे गाथासूत्रोंके क्रमाङ्क इस प्रकार हैं—२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५. ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८ तथा ८६, ८७, ८८, ८९ और ९०।

गाथाङ्क १ पर जो चूर्णिसूत्र हैं, वे प्रथम गाथाके प्ररूपणाविभाषात्मक न होकर उपक्रम-परिभाषात्मक हैं। गाथाङ्क १३-१४ पर वस्तुतः व्याख्यात्मक एक भी चूर्णिसूत्र नहीं है, अपितु चूर्णिकारने अपनी दृष्टिसे एक नये प्रकारसे कसायपाहुडके १५ अधिकारोंका प्रतिपादन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कसायपाहुडकी १८० गाथाओंसे बाह्य जो ५३ गाथाएं हैं और जिन-के कि गुणधर-प्रणीत होनेके विषयमें मतभेद है, उनमेंसे २४, २५ और २६ इन तीन नम्बर वाली गाथाओं पर ही चूर्णिसूत्र उपलब्ध हैं, शेष ५० गाथाओंकी चूर्णिकारने कुछ भी व्याख्या नहीं की है। इस प्रकार केवल १८३ गाथाओं पर ही चूर्णिसूत्र उपलब्ध होते हैं। इनमें भी २० गाथाएं ऐसी हैं, जिन पर कि नाममात्रको चूर्णिसूत्र मिलते हैं। गाथाङ्क १५५ पर पृ० ७७८ में कहा गया है—

४०३. एदिस्से एक्का भासगाहा। ४०४ तिस्से समुक्कित्तणा च विहासा च कायव्वा। ४०५. तं जहा।

ये चूर्णिसूत्र भी विभाषात्मक न होकर पूर्वापर सम्बन्ध-द्योतक या उत्थानिकात्मक हैं।

उक्त प्रकारके गाथासूत्रोंकी क्रमसंख्या इस प्रकार है—१३९, १५५, १५७, १६२, १६८, १८४, १८६, १९१, १९४, १९७, १९८, १९९, २०४, २०७, २१४, २१६, २१८, २२९, २३२ और २३३।

कुछ गाथाएं ऐसी भी हैं, जिनकी पृथक्-पृथक् विभाषा नहीं की गई है, किन्तु एक प्रकरण या अधिकारसम्बन्धी गाथाओंकी एक साथ समुत्कीर्तना करके पीछेसे उनकी प्ररूपणा-विभाषा कर दी गई है। जैसे वेदक अधिकारमें ५९ से ६२ तककी ४ गाथाओंकी, उपयोग अधिकारमें ६३ से लेकर ६९ तक ७ गाथाओंकी, चतुःस्थान अधिकारमें ७० से लेकर ८५ तक १६ गाथाओंकी, व्यंजन अधिकारमें ८६ से लेकर ९० तक ५ गाथाओंकी, सम्यक्त्वअधिकारमें ९१ से ९४ तक ४ गाथाओंकी तथा ९५ से लेकर १०९ तक १५ गाथाओंकी, दर्शनमोहक्षपणामें ११० से लेकर ११४ तक ५ गाथाओंकी, और चारित्रमोहोपशामना-अधिकारमें ११६ से लेकर १२३ तक

---

* विहासा एसा। (देखो पृ० ८२७, पंक्ति

आठ गाथाओंकी एक साथ समुत्कीर्तना करके पीछे उनमें यथावश्यक कुछ गाथाओंकी प्ररूपणा-विभाषा करके शेषकी प्ररूपणाका भार उच्चारणाचार्योंपर छोड़ दिया गया है। केवल एक चारित्रमोहक्षपणा नामक पन्द्रहवां अधिकार ही ऐसा है कि जिसके ११० गाथाओंकी चूर्णिकारने पृथक्-पृथक् उत्थानिका, समुत्कीर्तना और विभाषा की है। जहां यह पन्द्रहवां अधिकार गाथा-सूत्रोंकी अपेक्षा सबसे बड़ा है, वहां इसके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या भी सबसे अधिक अर्थात् १५७२ है।

यहां एक बात ध्यान देने जैसी है कि चूर्णिकारने सुगम होनेसे व्यंजन नामक अधिकारकी ५ गाथाओंमें से किसी पर भी एक चूर्णिसूत्र नहीं लिखा है। केवल उत्थानिकारूपसे अधिकारका आरम्भ करते हुए '१. वंजणे त्ति अणियोगद्दारस्स सुत्तं। २. तं जहा।' ये दो सूत्र ही लिखे हैं। कहनेका सारांश यह है कि चूर्णिकारने जिन गाथासूत्रोंको सुगम समझा, उनकी विभाषा नहीं की है और जिन गाथासूत्रों पर जहां जो विशेष बात कहना जरूरी समझा है, वहां उसे कहा है।

चूर्णिकारके व्याख्यानकी एक विशेषता यह है कि जहां कहीं उन्हें कुछ विशेष बात कहना होती है, वहां वे स्वयं ही 'कधं' केण कारणेण, कधं सत्थाणपदाणि भवन्ति, आदि कहकर पहले शंकाका उद्भावन करते हैं और पीछे उसका सयुक्तिक समाधान करते हैं। इसके लिए देखिए पृ० २२, २३, २६, १८६, १६३, २०६, २१४, ३१६, ३१७, ४६३, ५८६, ५६१, ६१६, ६६२, ७१५, ७८६, ८३३, ८५७, ८६२, ८७४, ८८१, ८८४, ८८७, ८८८, ८६०, ८६२ इत्यादि।

क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक अधिकारोंका वर्णन तो आशंकाको उठाकर ही किया गया है। चारों विभक्तियोंका, संक्रम और उदीरणा अधिकारमें स्वामित्व, काल और अन्तरादिक अनुयोगद्वारोंका वर्णन पृच्छापूर्वक ही किया गया है।

दो प्रकारके उपदेशोंका उल्लेख

चूर्णिकारने कुछ विशिष्ट स्थलों पर दो प्रकारके उपदेशोंका उल्लेख किया है। उनमेंसे उन्होंने एकको 'पवाइज्जंत उपदेश' कहा है और दूसरेको 'अन्य उपदेश' कहकर सूचित किया है। जिसका अर्थ जयधवलाकारने 'अपवाइज्जंत उपदेश' किया है। जहाँ जहाँ ऐसे मत-भेदोंका उल्लेख चूर्णिकारने किया है वहां वहां जयधवलाकारने उनके अर्थका भी कुछ न कुछ स्पष्टीकरण किया है। जयधवलाकारने पवाइज्जंत या पवाइज्जमान (प्रवाह्यमान) उपदेशको आर्य नागहस्तीका और अपवाइज्जंत या अपवाइज्जमान (अप्रवाह्यमान) उपदेशको आर्यमंक्षुका बतलाया है। प्रायः सर्व स्पष्टीकरणोंमें उक्त समता होते हुए भी दो एक स्थलों पर कुछ विषमता या विभिन्नता भी दृष्टि-गोचर होती है। यथा—

(१) पृ० ५६२ पर कषायोंके उपयोग-कालका अल्पबहुत्व बतलाते हुए सर्व प्रथम चूर्णिकारने इस मत-भेदका उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है—

१६. पवाइज्जंतेण उवदेसेण अद्धाणं विसेसो अंतोमुहुत्तं।

अर्थात् प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा क्रोधादि कषायोंके उपयोगकालगत विशेषताका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है।

इस पर टीका करते हुए जयधवलाकार लिखते हैं—

"को वुण पवाइज्जंतोवएसो णाम वुत्तमेदं? सव्वाइरियसम्मदो चिरकालम-

व्वोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए पवाइज्जदे पण्णविज्जदे, सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे । अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम । णागहत्थिखवणाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति घेत्तव्वं ।"

अर्थात् जो उपदेश सर्व आचार्योंसे सम्मत है, चिरकालसे अविच्छिन्न सम्प्रदायक्रमसे आ रहा है और शिष्य-परम्पराके द्वारा प्रवाहित किया जारहा है-जिज्ञासु जनोंको प्रज्ञापित किया जारहा है-उसे पवाइज्जंत उपदेश कहते हैं। (इससे विपरीत उपदेशको अपवाइज्जंत उपदेश जानना चाहिए।) अथवा भगवन्त आर्यमंक्षुका उपदेश अपवाइज्जंत और नागहस्तिक्षपणकका उपदेश पवाइज्जंत जानना चाहिए।

यद्यपि इस अवतरणमें स्पष्टरूपसे आर्यमंक्षुके उपदेशको अप्रवाह्यमान और नागहस्तीके उपदेशको प्रवाह्यमान बतलाया गया है, तथापि आगे चलकर जो उन्होंने उक्त शब्दोंका अर्थ किया है, वह उनकी स्थितिको सन्देहकी कोटिमें डाल देता है। यथा—

(२) उक्त स्थलसे आगे चूर्णिकार कहते हैं—

४५. तेसिं चेव उवदेसेण चोद्दसजीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि ।

(पृ० ५६४ सू० ४५)

इस सूत्रका अर्थ करते हुए जयधवलाकार कहते हैं—

"तेसिं चेव भयवंताणमज्जमंखु-णागहत्थीणं पवाइज्जंतेणुवएसेण चोद्दसजीवसमासेसु जहण्णुक्कस्सपदविसेसिदो अप्पाबहुअदंडओ एत्तो भणिहिदि भणिष्यत इत्यर्थः ।"

अर्थात् उन्हीं भगवन्त आर्यमंक्षु और नागहस्तीके प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चौदह जीवसमासोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कषायोंके काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्व-दंडकको कहेंगे।

पाठकगण यहां स्वयं अनुभव करेंगे कि जयधवलाकारका यह पूर्वापर-विरुद्ध कथन कैसा ? इसके पूर्व इसी प्रकरणके १९ वें चूर्णिसूत्रकी व्याख्या करते हुए जब वे आर्यमंक्षुके उपदेशको अप्रवाह्यमान और नागहस्तीके उपदेशको प्रवाह्यमान बतला आये हैं, तब यहां पर ४५ वें सूत्रकी व्याख्यामें उन दोनों ही आचार्योंके उपदेशको प्रवाह्यमान कैसे कह रहे हैं ? निश्चयतः जयधवलाकारका यह कथन पाठकको सन्देहकी कोटिमें डाल देता है।

धवलाकारने षट्खंडागमकी व्याख्यामें अनेक स्थानों पर उत्तरप्रतिपत्ति और दक्षिण प्रतिपत्तिका उल्लेख किया है। ज्ञात होता है कि नागहस्तीकी प्रवाह्यमान उपदेश-परम्परा आगे चलकर दक्षिण प्रतिपत्तिके नामसे और आर्यमंक्षुकी अप्रवाह्यमान उपदेश-परम्परा उत्तर प्रतिपत्तिके नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है।

उक्त दो स्थलोंके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी चूर्णिकारने उक्त दोनों प्रकारके उपदेशोंका अनेक वार उल्लेख किया है, जिसे परिशिष्ट नं० ७ से जानना चाहिए।

यतः आचार्य यतिवृषभने आर्यमंक्षु और नागहस्ती दोनोंसे ही आगम-विषयक ज्ञान प्राप्त किया था और जयधवलाकारने उन्हें दोनोंका शिष्य बतलाया है, अतः इतना तो सुनिश्चित है कि चूर्णिकारने दोनों उपदेशोंके द्वारा अपने दोनों गुरुओंके मत-भेदोंका निर्देश किया है।

चूर्णिकारकी स्पष्टवादिता—कसायपाहुडचूर्णिके अध्ययनसे जहां चूर्णिकारके अगाध पांडित्य और विशाल आगम-ज्ञानका पता लगता है, वहां प्रस्तुत चूर्णिमें एक उल्लेख ऐसा भी है; जिससे कि उनकी स्पष्टवादिताका भी पता चलता है।

चारित्रमोहक्षपणा-अधिकारमें क्षपककी प्ररूपणा करते हुए, यवमध्यकी प्ररूपणा करना आवश्यक था। उस स्थल पर चूर्णिकार उसे न कर सके। आगे चलकर प्रकरणकी समाप्ति पर चूर्णिकार लिखते हैं—

"जवमज्झं कायव्वं, विस्सरिदं लिहिदुं।"—(पृ० ८४०, सू० ६७६)

अर्थात् यहां पर यवमध्यकी प्ररूपणा करना चाहिए। पहले क्षपक-प्रायोग्य प्ररूपणाके अवसरमें हम लिखना भूल गये।

इतने महान् आचार्यकी यह स्पष्टवादिता देखकर कौन उनकी वीतरागता पर मुग्ध हुए विना न रहेगा? इस उल्लेखसे जहाँ चूर्णिकारके हृदयकी सरलता और निरहंकारिताका पता लगता है, वहां एक नई बातका और भी पता लगता है कि कसायपाहुडकी चूर्णि उन्होंने अपने हाथसे लिखी थी, यही कारण है कि वे 'लिहिदु' पदका प्रयोग कर रहे हैं। यदि उन्होंने यह चूर्णि बोल करके किसी औरके द्वारा लिखाई होती, तो 'लिहिदु' प्रयोग न करते और उसके स्थान पर 'भणिदु' या 'परूवेदु' जैसे किसी अन्य पदका प्रयोग करते।

यहां यह पूछा जासकता है कि जब उन्होंने प्रस्तुत चूर्णिको अपने ही करकमलोंसे लिखा है, तब वह यवमध्यरचना जहाँ आवश्यक थी, वहीं पीछे उसे क्यों नहीं लिख दिया? इसका उत्तर जयधवलाकारने यह दिया है कि वीतरागी और आगमके वेत्ता यतिवृषभ जैसे आचार्यसे ऐसी भूल होना संभव नहीं है। शिष्योंको प्रकृत अर्थ संभलवानेके लिए उन्होंने वस्तुतः अन्त दीपक-रूपसे उसका यहां उल्लेख किया है।

जो कुछ भी हो, पर चूर्णिकारकी उक्त स्पष्टवादितासे उनकी वीतरागता, निरहंकारिता सरलता और महत्ताका अवश्य आभास मिलता है।

उच्चारणावृत्ति

उच्चारणावृत्ति क्या है?—चूर्णिकारने प्रस्तुत ग्रन्थकी व्याख्यामें जिन-जिन विषयोंकी अत्यन्त आवश्यक समझी, उनकी प्ररूपणा ओघ (सामान्य) से करके आदेश (विशेष) से या तो प्ररूपणा ही नहीं की, अथवा गति, इन्द्रिय आदि एकाध मार्गणासे करके, शेष मार्गणाओं-की प्ररूपणा करनेका भार समर्पण-सूत्रोंके द्वारा उच्चारणाचार्यो या व्याख्यानाचार्योंको सौंपा है, जिसका अनुमान पाठकगण परिशिष्ट नं० ६ से लगा सकेंगे।

भ० महावीरके निर्वाणके पश्चात् उनका उपदेश श्रुतकेवलियोंके समय तक तो मौखिक ही चलता रहा। किन्तु उनके पश्चात् विविध अंगों और पूर्वोके विषयोंको कुछ विशिष्ट आचार्योंने उपसंहार करके गाथा-सूत्रोंमें निबद्ध किया। गाथा शब्दका अर्थ है—गाये जाने वाले गीत। और सूत्र शब्दका अर्थ है—महान और विशाल अर्थके प्रतिपादक शब्दोंकी संक्षिप्त रचना, जिसमें कि सांकेतिक बीज पदोंके द्वारा विवक्षित विषयका पूर्ण समावेश रहता है। इस प्रकारके गाथासूत्रोंकी रचना करके उनके रचयिता आचार्य अपने सुयोग्य शिष्योंको गाथासूत्रोंके द्वारा सूचित अर्थके उच्चारण करनेकी विधि और व्याख्यान करनेका प्रकार बतला देते थे और वे

लग जिज्ञासु जनोंको गुरु-प्रतिपादित विधिसे उन गाथासूत्रोंका उच्चारण और व्याख्यान किया करते थे। इस प्रकारके गाथासूत्रोंके उच्चारण या व्याख्यान करनेवाले आचार्योंको **उच्चारणाचार्य, व्याख्यानाचार्य** या **वाचक** कहा जाता था।

गुणधराचार्य-द्वारा कसायपाहुडके गाथासूत्रोंके रचे जाने पर उन्होंने उनका अर्थ अपने सुयोग्य शिष्योंको पढ़ाया और वह शिष्य-परम्परासे आ० आर्यमंक्षु और नागहस्तीको प्राप्त हुआ। उन दोनोंसे आ० यतिवृषभने गाथासूत्रोंके अर्थका सम्यक् अवधारण करके प्रस्तुत चूर्णिको रचा। किन्तु कसायपाहुडके गाथासूत्रोंके अनन्त अर्थगर्भित होनेसे सर्व अर्थका चूर्णिमें निबद्ध करना असंभव देख प्रारम्भिक कुछ संक्षिप्त वर्णन करके विशेष वर्णन करनेके लिए समर्पण-सूत्र रचकर उच्चारणाचार्योंको सूचना कर दी। किन्तु जब कुछ समयके पश्चात् इस प्रकारसे समर्पित अर्थके हृदयंगम करनेकी ग्रहण और धारणाशक्ति भी लोगोंकी क्षीण होने लगी, तो समर्पण-सूत्रोंसे सूचित और गुरुपरम्परासे उच्चारणपूर्वक प्राप्त उक्त अर्थको किसी विशिष्ट आचार्यने लिपिबद्ध कर दिया। यतः वह लिपिबद्ध उच्चारणा किसी आचार्यकी मौलिक या स्वतंत्र कृति नहीं थी, किन्तु गुरुपरम्परासे प्राप्त वस्तु थी अतः उसपर किसी आचार्यका नाम अंकित नहीं किया गया और पूर्व कालीन उच्चारणाचार्योंसे प्राप्त होने तथा उत्तरकालीन उच्चारणाचार्योंसे प्रवाहित किये जानेके कारण उसका नाम उच्चारणावृत्ति प्रसिद्ध हुआ।

जयधवलाकारने उच्चारणा, मूल-उच्चारणा, लिखित-उच्चारणा, वप्पदेवाचार्य-लिखित उच्चारणा और स्व-लिखित उच्चारणाका उल्लेख किया है। इन विविध संज्ञाओंवाली उच्चारणाओंके नामों पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि चूर्णिसूत्रों पर सबसे प्रथम जो उच्चारणा की गई, वह मूल-उच्चारणा कहलाई। गुरु-शिष्य-परम्परासे कुछ दिनों तक उस मूल-उच्चारणाके उच्चारित होनेके अनन्तर जब वह समष्टिरूपसे लिखी गई, तो उसीका नाम लिखित-उच्चारणा हो गया। इस प्रकार उच्चारणाके लिखित हो जाने पर भी उच्चारणाचार्योंकी परम्परा तो चालू ही थी, अतएव मौखिकरूपसे भी वह प्रवाहित होती हुई प्रवर्तमान रही। तदनन्तर कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंने अपने विशिष्ट गुरुओंसे विशिष्ट उपदेशके साथ उस उच्चारणाको पाकर व्यक्तिरूपसे भी लिपिबद्ध किया और वह 'वप्पदेवाचार्य-लिखित उच्चारणा, वीरसेन-लिखित उच्चारणा आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुई।

विभिन्न, विशिष्ट आचार्योंसे उच्चारित होते रहनेके कारण कुछ सूक्ष्म विषयों पर मत-भेदका होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि कितने ही स्थलों पर उच्चारणाओंके मत-भेद के उल्लेख जयधवलामें दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

"चुण्णिसुत्तम्मि वप्पदेवाइरियलिहिदुच्चारणाए च अंतोमुहुत्तमिदि भणिदो। अम्हेहिं लिहिदुच्चारणाए पुण जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया, इदि परूविदो।" जयध०।

अर्थात् प्रकृत विषयका जघन्य और उत्कृष्टकाल चूर्णिसूत्रमें और वप्पदेवाचार्य-लिखित उच्चारणामें तो अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, किन्तु हमारे (वीरसेन) द्वारा लिखित उच्चारणामें जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय [illegible] है।

कसायपाहुडके प्रस्तुत चूर्णिसूत्रों पर रची गई [illegible] उच्चारणावृत्तिका प्रमाण बारह हजार श्लोक-परिमाण था। यह स्वतंत्ररूपसे आज अनुपलब्ध है, [illegible] उद्धरणरूपसे उसका बहु भाग आज भी जयधवला में उपलब्ध है।

कसायपाहुडकी अन्य टीकाएं

इन्द्रनन्दि श्रुतावतारके अनुसार कसायपाहुडके गाथासूत्रों पर चूर्णिसूत्र और उच्चारणा-वृत्तिके पश्चात् 'पद्धति' नामक टीका रची गई। इसका परिमाण १२ हजार श्लोक था और इसके रचयिता शामकुंडाचार्य थे। जयधवलाकारके अनुसार जिसमें मूल सूत्र और उसकी वृत्तिका विवरण किया गया हो, उसे 'पद्धति' कहते हैं *। यह पद्धति संस्कृत, प्राकृत और कर्णाटकी भाषामें रची गई †।

उक्त पद्धतिके रचे जानेके कितने ही समयके पश्चात् तुम्बलूराचार्यने पट्खंडागमके प्रारम्भिक ५ खंडोंपर तथा कसायपाहुड पर कर्णाटकी भाषामें ८४ हजार श्लोकप्रमाण चूडामणि नामकी एक बहुत विस्तृत व्याख्या लिखी +। इसके पश्चात् इन्द्रनन्दिने बप्पदेवाचार्यके द्वारा भी कसायपाहुड पर किसी टीकाके लिखे जानेका उल्लेख किया है, पर उसके नाम और प्रमाणका उन्होंने कुछ स्पष्ट निर्देश नहीं किया है ×।

वर्तमानमें शामकुंडाचार्य-रचित पद्धति, तुम्बलूराचार्य-रचित चूडामणि और बप्पदेवाचार्य-रचित टीका ये तीनों ही अनुपलब्ध हैं। इन सबके पश्चात् कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों पर जयधवला टीका रची गई जिसके २० हजार श्लोक-प्रमित प्रारंभिक भागको वीरसेनाचार्यने रचा और उनके स्वर्गवास होजाने पर शेष भागको जिनसेनाचार्यने पूरा किया। जयधवला ६० हजार श्लोक-प्रमाण है और आज सर्वत्र लिखित और मुद्रित होकर उपलब्ध है।

चूर्णिकारके सम्मुख उपस्थित आगम-साहित्य

यह तो निश्चित है कि आ० यतिवृषभने कसायपाहुडकी मात्र २३३ गाथाओं पर जो विस्तृत चूर्णिसूत्र रचे हैं, वह उनके अगाध ज्ञानके द्योतक हैं। यद्यपि यतिवृषभको आर्यमंक्षु और नागहस्ती जैसे अपने समयके महान् आगम-वेत्ता और कसायपाहुडके व्याख्याता आचार्योंसे प्रकृत विषयका विशिष्ट उपदेश प्राप्त था, तथापि उनके सामने और भी कर्म-विषयक आगम-साहित्य अवश्य रहा है, जिसके कि आधार पर वे अपनी प्रौढ़ और विस्तृत चूर्णिको सम्पन्न कर सके हैं और कसायपाहुडकी गाथाओंके एक-एक पदके आधार पर एक-एक स्वतन्त्र अधिकारकी रचना करनेमें समर्थ हो सके हैं।

उपलब्ध समस्त जैनवाङ्मयका अवगाहन करने पर ज्ञात होता है कि चूर्णिकारके सामने कर्म-साहित्यके कमसे कम पट्खंडागम, कम्मपयडी, सतक और सित्तरी ये चार ग्रन्थ अवश्य विद्यमान थे। पट्खंडागमके उनके सम्मुख उपस्थित होनेका संकेत हमें उनकी सूत्र-रचना-शैलीके अतिरिक्त समर्पण-सूत्रोंसे मिलता है, जिनमें कि अनेकों वार सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगद्वारोंसे विविध विषयोंके प्ररूपण करनेकी सूचना उन्होंने उच्चारणाचार्योंके लिए की है §।

---

* सुत्तवित्तिविवरणाए पद्धईववएसादो। जयध०

† प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया पद्धतिः परा रचिता ॥ इन्द्र० श्रु० श्लो० १६४,

\+ चतुरधिकाशीतिसहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम्।
कर्णाटभाषयाऽकृत महतीं चूडामणिं व्याख्याम् ॥ १६६ ॥ इन्द्र० श्रु०

× देखो इन्द्र० श्रुता० श्लोक १७३-१७६। § देखो कसाय०पु० ६५७, ६६५, ६७२ आदि।

चूँकि षट्खंडागमके प्रथम खंड जीवट्ठाणमें उक्त आठों प्ररूपणाओं या अनुयोगद्वारोंका विस्तृत विवेचन किया जा चुका था, अतएव उन्होंने अपनी रचनामें उनपर कुछ लिखना निरर्थक या अनावश्यक समझा । इसी प्रकार षट्खंडागमके छठे खंड महाबन्धमें बन्धके चारों प्रकारोंका चौबीस अनुयोगद्वारोंसे अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध होनेसे उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थके चौथे अर्थाधिकारमें बन्धका कुछ भी वर्णन न करके लिख दिया कि वह चारों प्रकारका बन्ध बहुशः प्ररूपित है * अतएव हम उस पर कुछ भी नहीं लिख रहे हैं । चूर्णिकार-द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश विभक्तियोंके स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके वर्णन षट्खंडागमके बन्धस्वामित्वनामक दूसरे और वेदना नामक चौथे खंडके आभारी हैं, यह दोनोंके तुलनात्मक अध्ययनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है । उदाहरणके रूपमें यहाँ दोनों ग्रन्थोंका एक-एक उद्धरण दिया जाता है ।

कसायपाहुड-चूर्णि

सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ । तत्थ सव्वबहुआणि अपज्जत्तभवग्गहणाणि दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ तप्पाओग्ग-जहण्णयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो । तदो तप्पाओग्गजहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो । जदा जदा आउअं बंधदि, तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएसु जोगट्ठाणेसु बंधदि । हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदेसं तप्पाओग्गं उक्कस्सविसोहिमभिक्खं गदो, जावे अभवसिद्धियपाओग्गं जहण्णगं कम्मं कदं तदो तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धो । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण तदो दंसणमोहणीयं खवेदि । अपच्छिम-ट्ठिदिखंडयमवणिज्जमाणयमवणिदमुदयावलियाए जं तं गलमाणं तं गलिदं, जाधे एक्किस्से ट्ठिदीए दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे मिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं ।

(प्रदेशवि० सू० २१)

षट्खंडागम-सूत्र

जो जीवो सुहुमणिगोद-जीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो । तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ अपज्जत्तभवा, थोवा पज्जत्तभवा । दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ । जदा जदा आउअं बंधदि, तदा तदा तप्पाओग्गुक्कस्सएण जोगेण बंधदि । उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि । बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि । ××× एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठसंजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता ××× खवणाए अब्भुट्ठिदो चरिमसमयछदुमत्थो जादो । तस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा ।

(वेदणाखंड, वेयणदव्वविहाण)

* देखो पृ० २४६ ।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणोंके अन्तिम भागमें जो भेद दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण यह है कि एकमें मिथ्यात्वके जघन्य प्रदेश-सत्कर्मका स्वामित्व बतलाया गया है, तो दूसरेमें ज्ञानावरणीय कर्मकी जघन्यवेदनाका स्वामित्व बतलाया गया है। वेदनाखंडमें आठों मूल कर्मों-के वेदना-स्वामित्वका ही वर्णन किया गया है, उत्तर प्रकृतियोंका नहीं। किन्तु कसायपाहुडमें तो केवल एक मोहकर्मके उत्तर प्रकृतियोंका ही स्वामित्व बतलाया गयाहै, अतएव जहाँ जितने अंश-में उनके स्वामित्वमें भेद होना चाहिए, उसे चूर्णिकारने तदनुरूप बतलाया है। वेदनाखंडका उक्त सूत्र बहुत लम्बा है, अतएव जो अंश जहाँ पर छोड़ दिया है, उस स्थल पर × × × यह चिह्न दिया गया है। छोड़े गये अंशमें जो बात कही गई है, वह चूर्णिकारने 'अभवसिद्धियपा-ओग्गं जहण्णगं कम्मं कदं' इस एक वाक्यमें ही कहदी है। इसी प्रकार और भी जो थोड़ा बहुत शब्द-भेद दृष्टिगोचर होता है, उसे भी चूर्णिकारने संक्षिप्त करके अपने शब्दोंमें कह दिया है, वस्तुतः कोई अर्थ-भेद नहीं है।

ऊपर बतलाये गये चूर्णिसूत्र और षट्खंडागमसूत्रकी समतासे जयधवलाकार भी भलीभांति परिचित थे और यही कारण है कि दोनों सूत्रोंमें जो एक खास अन्तर दिखाई देता है, उसका उन्होंने अपनी टीकामें शंका उठाकर निम्न प्रकारसे समाधान भी किया है। जय-धवलाका वह अंश इस प्रकार है—

वेयणाए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणियं कम्मट्ठिदिं सुहुमेइंदिएसु हिंडाविय तसकाइएसु उप्पाइदो। एत्थ पुण कम्मट्ठिदिं संपुण्णं भमाडिय तसत्तं णीदो। तदो दोण्हं सुत्ताणं जहाऽविरोहो तहा वत्तव्वमिदि। जइवसहाइरिओवएसेण खविद-कम्मंसियकालो कम्मट्ठिदिमेत्तो, 'सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ' त्ति सुत्त-णिद्देसण्णहाणुववत्तीदो। भूदबलिआइरिओवएसेण पुण खविदकम्मंसियकालो कम्म-ट्ठिदिमेत्तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणं। एदेसिं दोण्हमुवदेसाणं मज्झे सच्चेणेक्केणेव होदव्वं। तत्थ सच्चत्तणेगदरणिण्णओ णत्थि त्ति दोण्हं पि संगहो कायव्वो। जयध०

अर्थात् षट्खंडागमके वेदनानामक चौथे खंडमें पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण काल तक सूक्ष्मएकेन्द्रियोंमें घुमाकरके त्रसकायिकोंमें उत्पन्न कराया गया है। किन्तु यहां पर प्रकृत चूर्णिसूत्रमें, तो उसे सम्पूर्ण कर्मस्थितिप्रमाण सूक्ष्मएकेन्द्रियोंमें घुमाकरके त्रसपनेको प्राप्त करा गया है? (इसका क्या कारण है? ऐसा पूछने पर जयधवलाकार कहते हैं कि) यद्यपि यह दोनों सूत्रों (आगमों) में विरोध है, तथापि जिस प्रकारसे अविरोध संभव हो, उस प्रकार-से इसका समाधान करना चाहिए। यतिवृषभाचार्यके उपदेशसे क्षपित-कर्मांशिकका काल पूरी कर्मस्थितिमात्र है, अन्यथा प्रकृत सूत्रमें 'सूक्ष्मनिगोदियोंमें कर्मस्थिति तक रहा' इस प्रकारका निर्देश नहीं हो सकता था। किन्तु भूतबलि आचार्यके उपदेशसे क्षपितकर्मांशिकका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून कर्मस्थितिमात्र है। इन दोनों परस्पर-विरोधी उपदेशोंमेंसे सत्य तो एक ही होना चाहिए। किन्तु किसी एककी सत्यताका निर्णय (आज केवली या श्रुतकेवलीके न होने से) संभव नहीं है, अतएव दोनोंका ही संग्रह करना चाहिए।

उक्त शंका-समाधानमें, जिस सैद्धान्तिक भेदका उल्लेख किया गया है, वह उपर्युक्त दोनों उद्धरणोंके प्रारम्भमें ही दृष्टिगोचर हो रहा है। जयधवलाकारके इस शंका-समाधानसे भी

यही सिद्ध होता है कि भूतबलिप्रणीत षट्खंडागमसूत्रका यतिवृषभ पर प्रभाव होते हुए भी कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओंके विषयमें दोनोंका मतभेद रहा है। पर मत-भेद भले ही हो, किन्तु यतिवृषभके सामने षट्खंडागमका उपस्थित होना तो इससे सिद्ध ही है।

यतिवृषभके सम्मुख षट्खंडागमके अतिरिक्त जो दूसरा आगम उपस्थित था वह है कर्म-साहित्यका महान् ग्रन्थ कम्मपयडी। इसके संग्रहकर्त्ता या रचयिता शिवशर्म नामके आचार्य हैं और इस ग्रन्थ पर श्वेताम्बराचार्योंकी टीकाओंके उपलब्ध होनेसे अभी तक यह श्वेताम्बर सम्प्रदायका ग्रन्थ समझा जाता है। किन्तु हालमें ही उसकी चूर्णिके प्रकाशमें आनेसे तथा प्रस्तुत कसायपाहुडकी चूर्णिका उसके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेसे इस बातमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि कम्मपयडी एक दिगम्बर-परम्पराका ग्रन्थ है और अज्ञात आचार्यके नामसे मुद्रित और प्रकाशित उसकी चूर्णि भी एक दिगम्बराचार्य इन्हीं यतिवृषभकी ही कृति है। कम्मपयडी-चूर्णिकी तुलना कसायपाहुडकी चूर्णिके साथ आगे की जायगी। अभी पहले यह दिखाना अभीष्ट है कि यतिवृषभके सम्मुख कम्मपयडी थी और वे उससे अच्छी तरह परिचित थे, तथा उसका उन्होंने कसायपाहुडकी चूर्णिमें भरपूर उपयोग किया है।

(१) कसायपाहुडके 'पयडीए मोहणिज्जा' इतने मात्र बीज पदको आधार बनाकर चूर्णिकारने प्रकृतिविभक्ति नामक एक स्वतंत्र अधिकारका निर्माण किया है। उसमें मोहकर्मके १५ प्रकृतिस्थान इस प्रकार बतलाए गये हैं—

पृ० ५७ सू० ४०० पयडिट्ठाणविहत्तीए पुव्वं गमणिज्जा ट्ठाणसमुक्कित्तणा। ४१. अत्थि अट्ठावीसाए सत्तावीसाए छव्वीसाए चउवीसाए तेवीसाए बावीसाए एक्कवीसाए तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से च (१५)।

अर्थात् मोहकर्मके २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिरूप पन्द्रह प्रकृतिसत्त्वस्थान होते हैं।

उक्त प्रकृतिसत्त्वस्थानोंका आधार कम्मपयडीके सत्ताधिकारकी यह निम्न गाथा है—

एगाइ जाव पंचगमेकारस बार तेरसिगवीसा।
बिय तिय चउरो छस्सत्त अट्ठवीसा य मोहस्स ॥१॥

कम्मपयडीमें इसकी चूर्णि इस प्रकार है—

१, २, ३, ४, ५, ११, १२, १३, २१, २२, २३, २४, २६, २७, २८ एयाणि मोहणिज्जस्स संतकम्मट्ठाणाणि।

यतः गाथामें मोहके सत्त्वस्थान शब्द-संख्यामें बतलाए गये हैं, अतः चूर्णिकारने लाघवके लिए उन्हें उसकी चूर्णिमें अंक-संख्यामें गिना दिये हैं। पर कसायपाहुडकी चूर्णिमें तो उक्त प्रकरण चूर्णिकार अपना स्वतंत्र ही लिख रहे हैं, अत. उन्होंने वहां पर उन्हें शब्दोंमें पृथक्-पृथक् गिनाना ही उचित समझा।

इसी प्रकार स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविभक्तिके चूर्णिसूत्रोंका आधार कम्मपयडीके सत्ताधिकारकी गाथाएँ हैं, यह बात दोनोंकी तुलनासे भलीभांति ज्ञात हो जाती है।

(२) स्थितिविभक्तिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति इस प्रकार बतलाई गई है—

पृ० ६४, सू० १६. मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती एगा ट्ठिदी दुसमयकालट्ठिदिया ।'

यही बात सूत्ररूपसे कम्मपयडीमें इस प्रकार कही है—

सेसाण ट्ठिई एगा दुसमयकाला अणुदयाणं ॥ १६ ॥ (कम्मप० सत्ताधि०)

पाठक दोनोंकी समताके साथ सहज ही समझ सकेंगे कि उक्त चूर्णिका आधार कम्मपयडीकी यह गाथा है ।

(३) अनुभागविभक्तिमें मोहकर्मके तीन प्रकारके सत्कर्मस्थान इस प्रकार बतलाये गये हैं—

पृ० १७५, सू० १८६. संतकम्मट्ठाणाणि तिविहाणि-बंधसमुप्पत्तियाणि हदसमुप्पत्तियाणि हदहदसमुप्पत्तियाणि । १८७. सव्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियाणि । १८८. हदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि । १८६. हदहदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि ।

अर्थात् सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके हैं—बन्धसमुत्पत्तिकस्थान, हतसमुत्पत्तिकस्थान और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान । इनमें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे कम हैं, उनसे हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणित हैं और उनसे हतहतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणित हैं ।

अब देखिए कि ऊपर जो बात कसायपाहुड-चूर्णिमें ४ सूत्रोंके द्वारा कही गई है, वही कम्मपयडीमें सूत्ररूपसे कितने संक्षेपमें कही गई है—

'बंधहयहयहयउप्पत्तिगाणि कमसो असंखगुणियाणि ।' (कम्मप० सत्ताधि०)

(४) प्रदेशविभक्तिमें प्रदेशसत्कर्मके जघन्य और उत्कृष्ट स्वामित्वसम्बन्धी जो चूर्णिसूत्र हैं, उन सबका आधार कम्मपयडीके सत्ताधिकारान्तर्गत प्रदेशसत्कर्मस्वामित्व-प्रतिपादक गाथाएं हैं, यह बात प्रदेशविभक्तिके पृ० १८५ से लेकर १६७ पृष्ठ तक दी गई टिप्पणियोंसे भलीभांति जानी जा सकती है । यहां केवल उनमें से एक उदाहरण दिया जाता है । कसायपाहुड-चूर्णिमें पृच्छापूर्वक जो नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशस्वामित्व बतलाया गया है, वह इस प्रकार है—

पृ० १८६, सू० १०. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ११. गुणिदकम्मंसिओ ईसाणं गदो तस्स चरिमसमयदेवस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं ।

अब इसका मिलान कम्मपयडीकी निम्न गाथासे कीजिए—

वरिसवरस्स उ ईसाणगस्स चरिमम्मिसमयम्मि ॥ २८ ॥

गाथा-पठित 'वरिसवरस्स' का अर्थ नपुंसकवेद है ।

(५) कसायपाहुडकी संक्रमप्रकरण-सम्बन्धी नं० २७ से ३६ तक की १३ गाथाएं कुछ शब्दगत पाठ-भेदके साथ कम्मपयडीके संक्रमप्रकरणमें नं० १० से २२ तक ज्यों-की-त्यों पाई जाती हैं, यह बात पहले बताई जा चुकी है । दोनों ग्रन्थोंकी गाथाओंकी तुलनाके लिए कम्मपयडीकी इन गाथओंको टिप्पणियोंमें दिया गया है, सो जिज्ञासुओंको पृ०२६० से २७१ तककी कसायपाहुड की गाथाओंको और उनके नीचे टिप्पणीमें दी हुई कम्मपयडीकी गाथाओंको देखना चाहिए ।

(६) स्थिति संक्रमाधिकारमें स्थितिसंक्रमका अर्थपद इस प्रकार दिया है—

पृ० ३१०, सू० २. तत्थ अट्ठपदं—जा ट्ठिदी ओकड्डिज्जदि वा उकड्डिज्जदि वा अण्णपयडिं संकामिज्जइ वा सो ट्ठिदिसंकमो।

अब उक्त चूर्णिसूत्रकी तुलना कम्मपयडीके स्थितिसंक्रमाधिकारकी निम्न गाथासे कीजिए—

ठिइसंकमो त्ति वुच्चइ मूलुत्तरपगइतो उ जा हि ठिई।
उव्वट्टिया व ओवट्टिया व पगइं णिया वऽण्णं ॥ २८ ॥

विषयके जानकार सहजमें ही समझ सकेंगे कि जो अर्थ 'ओकड्डिज्जदि' आदि पदोंके द्वारा प्रगट किया गया है, वही 'उव्वट्टिया' आदि पदोंका है।

(७) अनुभाग-संक्रमाधिकारमें अनुभागसंक्रमका अर्थपद इस प्रकार दिया है—

पृ० ३४५, सू० २. तत्थ अट्ठपदं। ३. अणुभागो ओकड्डिदो वि संकमो, उकड्डिदो वि संकमो, अण्णपयडिं णीदो वि संकमो।

अब उक्त चूर्णिसूत्रकी तुलना कम्मपयडीकी निम्न गाथासे कीजिए—

तत्थट्ठपयं उव्वट्टिया व ओवट्टिया व अविभागा।
अणुभागसंकमो एस अण्णपगइं णिया वा वि ॥ ४६ ॥ (संक्रमाधि०)

पाठक स्वयं देखेंगे कि दोनोंमें कितनी अधिक शब्द और अर्थगत समता है।

(८) प्रदेश-संक्रमाधिकारमें प्रदेशसंक्रमका स्वरूप और उसके भेद इस प्रकार बतलाये गये हैं—

पृ० ३९७, सू० ६. जं पदेसग्गमण्णपयडिं णिज्जदे, जत्तो पयडीदो तं पदेसग्गं णिज्जदि तिस्से पयडीए सो पदेससंकमो। ९. एदेण अट्ठपदेण तत्थ पंचविहो संकमो। १०. तं जहा। ११. उव्वेलणसंकमो विज्झादसंकमो अधापवत्तसंकमो गुणसंकमो सव्वसंकमो च।

अब इन चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडीकी निम्न गाथासे कीजिए—

जं दलियमण्णपगइं णिज्जइ सो संकमो पएसस्स।
उव्वलणो विज्झाओ अहापवत्तो गुणो सव्वो ॥ ६० ॥

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि एक गाथामें कहे हुए तत्त्वको चूर्णिकारने किस प्रकारसे ४ सूत्रोंमें कहा है। इसके अतिरिक्त प्रदेश-संक्रमाधिकारके स्वामित्व-सम्बन्धी सभी चूर्णिसूत्रोंका आधार कम्मपयडीके प्रदेश-संक्रमकी स्वामित्व-प्ररूपक गाथाएँ हैं, यह बात प्रस्तुत ग्रन्थके उक्त प्रकरणमें टिप्पणियों द्वारा स्पष्ट दिखाई गई है, जो कि पाठकगण पृष्ठ ४०१ से ४०७ तककी टिप्पणियोंमें दी गई कम्मपयडीकी गाथाओंके साथ वहांके चूर्णिसूत्रोंको मिलान करके भली भाँतिसे जान सकते हैं।

(९) स्थितिसंक्रम-अधिकारके अन्तर्गत संक्रमण किये जाने वाले कर्म-प्रदेशोंकी अतिस्थापना और निक्षेपका वर्णन आया है, वह सम्पूर्ण वर्णन कम्मपयडीके उद्वर्तनापवर्तन-करणकी गाथाओंका आभारी है। उदाहरणके तौर पर एक उद्धरण दोनोंका प्रस्तुत किया जाता है—

पृ० ३१६, सू०२६. उक्कस्सओ पुण णिक्खेवो केत्तिओ ? २७. जत्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिक्खेवो।

उत्कृष्ट निक्षेपके उक्त प्रमाणको कम्मपयडीकी निम्न गाथासे मिलान कीजिए—

आवलि-असंखभागाइ जाव कम्मट्ठिइ त्ति णिक्खेवो।
समउत्तरालियाए साबाहाए भवे ऊणे ॥ २ ॥ (उद्वर्तनापवर्तनाकरण)

(१०) वेदक अधिकारमें प्रकृति-उदीरणाके स्थान इस प्रकार बतलाये गये हैं—

पृ० ४६८, सू० १२. अत्थि एक्किस्से पयडीए पवेसगो। १३. दोण्हं पयडीणं पवेसगो। १४. तिण्हं पयडीणं पवेसगो णत्थि। १५, चउण्हं पयडीणं पवेसगो। १६. एत्तो पाए णिरंतरमत्थि जाव दसण्हं पयडीणं पवेसगो।

अर्थात् मोहकर्मके प्रकृतिउदीरणा-स्थान १, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १० प्रकृतिरूप ९ होते हैं। इन्हीं स्थानोंको कम्मपयडीमें इस प्रकार कहा गया है—

पंचण्हं च चउण्हं बिइए एक्काइ जा दसण्हं तु।
तिगहीणाइ मोहे मिच्छे सत्ताइ जाव दस ॥ २२ ॥ (उदीरणाकरण)

(११) वेदक अधिकारमें मोहकी अनुभाग-उदीरणाके स्वामित्वका वर्णन कम्मपयडीके अनुभाग उदीरणाके स्वामित्वसे ज्योंका त्यों मिलता है। यहाँ दोनोंकी समता-परिज्ञानार्थ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पृ० ५०५, सू० २६२. हस्स-रदीणमुक्कस्साणुभागउदीरणा कस्स ? २६३. सदार-सहस्सारदेवस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स।

इसका मिलान कम्मपयडीकी गाथासे कीजिए—

हास-रईणं सहस्सारगस्स पज्जत्तदेवस्स ॥ ६१ ॥ (अनुभागउदी०)

(१२) कसायपाहुडके अनुभागसंकमका एक अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

पृ० ३४६, सू० ११. एत्थ अप्पाबहुअं। १२. सव्वत्थोवाणि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि। १३. जहण्णओ णिक्खेवो अणंतगुणो। १४ जहण्णिया अइच्छावणा अणंतगुणा। १५. उक्कस्सयमणुभागकंडयमणंतगुणं। १६. उक्कस्सिया अइच्छावणा एगाए वग्गणाए ऊणिया। १७. उक्कस्सओ णिक्खेवो विसेसाहियो। १८, उक्कस्सओ बंधो विसेसाहिओ।

उक्त चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडीकी निम्न गाथाओंसे कीजिए—

थोवं पएसगुणहाणि-अंतरं दुसु जहन्ननिक्खेवो।
कमसो अणंतगुणिओ दुसु वि अइत्थावणा तुल्ला ॥ ८ ॥
वाघाएणणुभागक्कंडगमेक्काइवग्गणाऊणं।
उक्कस्सो णिक्खेवो ससंतबंधो य सविसेसो ॥ ९ ॥ (उद्वर्तनापवर्तनाकरण)

(१८) कसायपाहुडके सम्यक्त्व अधिकारकी १०४, १०७, १०८ और १०६ नम्बर-वाली ४ गाथाएँ थोड़ेसे पाठ-भेदके साथ कम्मपयडीके उपशमनाकरणमें क्रमशः गाथा नं० २३, २४, २५ और २६ पर पाई जाती हैं। यहाँ एक विशेष बात यह ज्ञातव्य है कि कम्मपयडीमें तो उक्त गाथाओं पर चूर्णि पाई जाती है, पर कसायपाहुडमें अन्य अनेक गाथाओंके समान सरल होनेसे इन गाथाओं पर चूर्णि नहीं लिखी गई है।

(१४) दर्शनमोह-उपशामकके परिणाम, योग, उपयोग और लेश्यादिका वर्णन कसाय-पाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६१५, सू० ७. परिणामो विसुद्धो । ८. पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो । ६. जोगे त्ति विहासा । १०. अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा ओरालियकायजोगो वा वेउव्वियकायजोगो वा । १४. उवजोगे त्ति विहासा । १५. णियमा सागारुवजोगो । १६. लेस्सा त्ति विहासा । १७. तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं णियमा वड्ढमाणलेस्सा ।

इन सब सूत्रोंकी तुलना कम्मपयडीकी निम्न गाथासे कीजिये और देखिए कि किस खूबीके साथ सर्व सूत्रोंके अर्थका एक ही गाथामें समावेश किया गया है—

पुव्वं पि विसुज्झंतो गंठियसत्ताणइक्कमिय सोहिं ।
अन्नयरे सागारे जोगे य विसुद्धलेसासु ॥ ४ ॥

(१५) संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करके यदि कोई नीचे गिर कर फिर ऊपर चढ़ता है, तो उसका वर्णन कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६६२, सू० २६. जदि संजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो पुणोवि परिणामपच्चएण अंतोमुहुत्तेण आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जइ, तस्स त्ति णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा । ३० जाव संजदासंजदो ताव गुणसेढिं समए समए करेदि । विसुज्झंतो असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्जभागुत्तरं वा असंखेज्जभागु-त्तरं वा करेदि । संकिलिस्संतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा करेदि ।

उक्त सन्दर्भका मिलान कम्मपयडीकी इस गाथासे कीजिए—

परिणामपच्चयाओ णाभोगगया गया अकरणाउ ।
गुणसेढी सिं निच्चं परिणामा हाणिवुड्ढिजुया ॥ ३० ॥ (उपशमनाक०)

(१६) चारित्रमोह-उपशामनाधिकारमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अन्तर्गत होनेवाले कार्य-विशेषोंका वर्णन करते हुए चूर्णिकार कहते हैं—

पृ० ६८८, सू० ११५. तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च । ११६. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणु-भागो बंधेण देसघादी होइ । ११७. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावर-णीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि । ११८. तदो संखे-

ज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि । ११९. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयं बंधेण देसघादिं करेदि । १२०. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहिय-णाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि । १२१. संखेज्जेसु ट्ठिदि-बंधेसु गदेसु वीरियंतराइयं बंधेण देसघादिं करेदि । १२२. एदेसिं कम्माणमखवगो अणुवसामगो सव्वो सव्वघादिं बंधदि ।

अब उक्त सर्व चूर्णिसूत्रोंके आधारभूत कम्मपयडीकी गाथाओंको देखिए—

अहुदीरणा असंखेज्जसमयपबद्धाण देसघाइत्थ ।
दाणंतरायमणपज्जवं च तो ओहिदुगलाभो ॥ ४० ॥
सुयभोगाचक्खूओ चक्खू य ततो मई सपरिभोगा ।
विरियं च असेढिगया बंधंति ऊ सव्वघाईणि ॥ ४१ ॥ (उपश०)

पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे कि इन दोनों गाथाओंमें प्रतिपादित अर्थको किस सुन्दरताके साथ चूर्णिसूत्रोंमें स्पष्ट किया गया है ।

कसायपाहुडचूर्णिमें उपर्युक्त स्थलसे अर्थात् पृ० ६८८ से लेकर पृ० ७२१ तकके सर्व-चूर्णिसूत्रोंका आधार कम्मपयडीके इसी उपशमनाकरणकी नं० ४२ से लेकर ६५ तक की गाथाएँ हैं यह किसी भी तुलना करने वाले व्यक्तिसे अव्यक्त न रहेगा । विस्तारके भयसे यहाँ आगेके उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं । उक्त तुलनात्मक अवतरणोंसे स्पष्ट है कि चूर्णिकारके सम्मुख कम्मपयडी अवश्य रही है । फिर भी उक्त सर्व प्रमाणोंसे जोरदार और प्रबल प्रमाण स्वयं यतिवृषभाचार्यके द्वारा किया गया वह उल्लेख है, जिसमें कि उन्होंने स्वयं ही कम्म-पयडीका उल्लेख किया है ।

इसी उपशमनाधिकारमें देशकरणोपशमनाके भेद बतलाते हुए कहा है—

पृ० ७०८, सू० ३०३. देसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि देसकरणोवसा-मणा त्ति वि अप्पसत्थ-उवसामणा त्ति वि । ३०४. एसा कम्मपयडीसु ।

अर्थात् देशकरणोपशामनाके दो नाम हैं-देशकरणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना । इस देशकरणोपशामनाका वर्णन कम्मपयडी में किया गया है ।

यहाँ पर आ० यतिवृषभने जिस कम्मपयडीका उल्लेख किया है, वह निश्चयतः यही उपलब्ध कम्मपयडी है; क्योंकि, इसमें उपशमना प्रकरणके भीतर गाथाङ्क ६६ से लेकर ७१ वीं गाथा तक देशोपशमनाका वर्णन किया गया है । कम्मपयडीके चूर्णिकार देशोपशामनाके वर्णन करनेके लिए गाथाका अवतार करते हुए कहते हैं—

सव्वुवसामणा सम्मता । इयाणिं देसोवसमणा । तीसे इमे भेया—
पगइ-ठिई-अणुभागप्पएसमूलुत्तराहि पविभत्ता ।
देसकरणोवसमणा तीए समियस्स अट्ठपयं ॥ ६६ ॥ (उपशमना०)

अर्थात् देशकरणोपशमनाके चार भेद हैं—प्रकृतिदेशोपशमना, स्थितिदेशोपशमना, अनुभागदेशोपशमना और प्रदेशदेशोपशमना। इन चारों ही प्रकार वाली देशोपशमनाओंके भी मूलप्रकृतिदेशोपशमना और उत्तरप्रकृतिदेशोपशमनाकी अपेक्षा दो दो भेद हैं। उस देशकरणोपशमनाका यह अर्थपद है। अर्थात् अब आगे उसका लक्षण कहते हैं।

इस प्रकार देशकरणोपशमनाका निरूपण कम्मपयडीमें ६ गाथाओंके द्वारा किया गया है। यतिवृषभके द्वारा इस प्रकार कम्मपयडीका स्पष्ट उल्लेख होने पर तथा कम्मपयडीमें देशकरणोपशमनाका वर्णन पाये जाने पर कोई कारण नहीं है कि कम्मपयडीका उनके सम्मुख अस्तित्व न माना जाय।

प्रश्न—कम्मपयडीमें देशकरणोपशमनाका वर्णन क्यों किया, कसायपाहुडमें क्यों नहीं किया?

उत्तर—मोहकर्मकी सर्वोपशमना ही होती है, देशोपशमना नहीं। तथा शेष सात कर्मोंकी देशोपशमना ही होती है, सर्वोपशमना नहीं। चूंकि, कषाय मोहकर्मका ही भेद है, अतः कसायपाहुडमें उसकी सर्वोपशमनाका वर्णन किया गया। किन्तु शेष कर्मोंका वर्णन कसायपाहुडमें नहीं है, अतः देशोपशमनाका वर्णन उसमें नहीं किया गया। पर कम्मपयडीमें तो आठों ही कर्मोंका वर्णन किया गया है, अतएव उसमें देशोपशमनाका वर्णन किया जाना सर्वथा उचित है।

इसके अतिरिक्त आ० यतिवृषभको जिन आर्यनागहस्तीका शिष्य या अन्तेवासी बताया जाता है, और जिनके उपदेशको पवाइज्जंत उपदेश कह करके आ० यतिवृषभने प्रकृत विषयके प्रतिपादन करनेमें अनुसरण करके महत्ता प्रदान की है, उनके लिए पट्टावलीकी पूर्वोद्धृत गाथामें **'कम्मपयडीपहाणाणं'** विशेषण दिया गया है। जब यतिवृषभके गुरु कम्मपयडीके प्रधान व्याख्याताओंमें थे, तो यतिवृषभके सामने तो उसका होना स्वतः सिद्ध है।

एक खास बात और भी ध्यान देनेके योग्य है कि दि० परम्परामें आ० भूतबलि और यतिवृषभका एक मत-भेद नवें गुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियोंके विषयमें है। आ० भूतबलिके उपदेशानुसार नवें गुणस्थानमें पहले १६ प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है, पीछे आठ मध्यम कषायोंकी। किन्तु यतिवृषभ पहले आठ मध्यम कषायोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति कहते हैं और पीछे १६ प्रकृतियोंकी। यतिवृषभ इस विषयमें स्पष्टरूपसे कम्मपयडीका अनुसरण कर रहे हैं,क्योंकि उसमें पहले आठ मध्यम कषायोंकी और पीछे १६ प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति बतलाई गई है। यथा—

खवगाणियट्टि-अद्धा संखिज्जा होंति अट्ठ वि कसाया।
णिरय-तिरिय तेरसगं णिद्दाणिद्दातिगेणुवरिं ॥ ६ ॥ (सत्ताधि०)

अर्थात् क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके संख्यात भाग व्यतीत होने पर पहले आठों ही मध्यम कषायोंकी सत्त्वव्युच्छिति होती है। तत्पश्चात् नरक और तिर्यग्गति-प्रायोग्य तेरह तथा निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये तीन, इस प्रकार सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है।

कम्मपयडीके उक्त प्रमाणसे स्पष्ट है कि यतः आ० यतिवृषभ प्रायः सभी सैद्धान्तिक मत-भेदोंके स्थलों पर कम्मपयडीका अनुसरण करते है, अतः कम्मपयडी उनके सम्मुख अवश्य रही है।

यत: आ० यतिवृषभने सतक और सित्तरी पर चूर्णि रची है,—जैसा कि आगे सिद्ध किया गया है—अतः इन दोनोंका उनके सम्मुख उपस्थित होना स्वाभाविक ही है ।

उपसंहार—ऊपरके इस समग्र विवेचनका फलितार्थ यह है कि कसायपाहुड-चूर्णि-कारके सम्मुख षट्खंडागमसूत्र, कम्मपयडी सतक और सित्तरी अवश्य रहे हैं ।

चूर्णिकार यतिवृषभकी अन्य रचनाएं

आ० यतिवृषभकी दूसरी कृतिके रूपसे तिलोयपण्णत्ती प्रसिद्ध है और वह सानुवाद मुद्रित होकर प्रकाशमें भी आ चुकी है । हालांकि, उसके वर्तमानरूपमें अनेक प्रक्षिप्त स्थल ऐसे पाये जाते हैं, जिनके कि यतिवृषभ-द्वारा रचे जाने में सन्देह है ।

आ० यतिवृषभने प्रस्तुत कसायपाहुड-चूर्णि और तिलोयपण्णत्तीके अतिरिक्त अन्य कौन-कौन-सी रचनाएं कीं, यह विषय अद्यावधि अन्वेषणीय बना हुआ है ।

चूर्णिसाहित्यका अनुसन्धान करने पर कुछ और रचनाएं भी आ० यतिवृषभके द्वारा रचित ज्ञात होती हैं, अतएव यहाँ उनपर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है ।

कम्मपयडीका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है और यह बतलाया जा चुका है कि वह आ० यतिवृषभके सामने उपस्थित ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने प्रस्तुत चूर्णिमें उसका भर-पूर उपयोग भी किया है । उस कम्मपयडीकी एक चूर्णि अभी कुछ दिन पूर्व श्री मुक्ताबाई ज्ञानमन्दिर डभोई (गुजरात) से प्रकाशित हुई है जिसपर किसी कर्त्ता-विशेषका नाम नहीं दिया गया है किन्तु 'चिरन्तनाचार्य-विरचित-चूर्ण्या समलंकृता' ऐसा वाक्य मुद्रित है, जिसका कि अर्थ है—किसी प्राचीन आचार्यसे विरचित चूर्णिसे युक्त यह कर्मप्रकृति है । अर्थात् उसके कर्ता अभीतक अज्ञात हैं । उस चूर्णिका जब हम कसायपाहुड-चूर्णिके साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, तो उसके आ० यतिवृषभ-रचित होनेमें सन्देहकी कोई गुंजायश नहीं रह जाती है । यहां पर दोनों चूर्णियोंके कुछ समान अवतरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

ऊपर कम्मपयडीकी जिन गाथाओंको कसायपाहुड-चूर्णिका आधार बताया गया है, उन सबकी चूर्णि कसायपाहुडके उक्त स्थलवाले चूर्णिसूत्रोंके साथ प्राय: शब्दश: समान है, अर्थत: तो पूर्ण साम्य है ही । फिर भी दोनोंके कुछ अन्य समान अवतरण देना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि जिससे पाठकगण भी उनपर स्वयं विचार कर सकें ।

(१) मोहकर्मके १, २, ३, ४, ५, ११, १२, १३, २१, २२, २३, २४, २६, २७, और २८ प्रकृतिरूप १५ प्रकृतिसत्त्वस्थान होते हैं, इनकी प्रकृतियोंका वर्णन कसायपाहुडचूर्णि और कम्मपयडीचूर्णिमें समान होते हुए भी अनुलोम प्रतिलोमक्रमसे किया गया है । नीचे दिये जाने वाले दोनोंके अवतरणोंसे दोनों चूर्णियोंके एक-कर्तृक होनेकी पुष्टि बहुत कुछ अंशमें होती है ।

कसायपा० पृ० ५८, सू० ४२. एक्किस्से विहत्तियो को होदि ? लोहसंजलणो ४३. दोण्हं विहत्तिओ को होदि ? लोहो माया च । ४४. तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-मायासंजलण-माणसंजलणाओ । ४५. चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ । ४६. पंचण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ पुरिसवेदो च । ४७. एक्कारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव पंच छण्णोकसाया च । ४८. बारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव इत्थिवेदो च । ४९. तेरसण्हं विहत्ती एदाणि चेव णवुंसयवेदो च । ५०. एक्कवीसाए विहत्ती

एदे चेव अट्ठ कसाया च। ५१. सम्मत्तेण बावीसाए विहत्ती। ५२. सम्मामिच्छत्तेण तेवीसाए विहत्ती। ५३. मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती। ५४. अट्ठावीसादो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु अवणिदेसु छब्बीसाए विहत्ती। ५५. तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए विहत्ती। ५६. सव्वाओ पयडीओ अट्ठावीसाओ विहत्ती।

कसायपाहुडचूर्णिमें उसकी स्वीकृत वर्णन-शैलीसे मोहके उक्त १५ सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंका वर्णन अनुलोम क्रमसे किया गया है। पर इन्हीं सत्त्वस्थानोंका वर्णन कम्मपयडीमें प्रतिलोमक्रमसे किया गया है, जिसका निर्देश स्वयं ही चूर्णिकार कर रहे हैं। यथा—

(चू०) १, २, ३, ४, ५, ११, १२, १३, २१, २२, २३, २४, २६, २७, २८ एयाणि मोहणिज्जस्स संतकम्मट्ठाणाणि। सुहगहणणिमित्तं विवरीयाणि वक्खाणिज्जंति। तत्थ अट्ठावीसा सव्वमोहसमुदतो। ततो सम्मत्ते उव्वलिए सत्तावीसा। ततो संमामिच्छत्ते छव्वीसा, अणादिमिच्छद्दिट्ठिस्स वा छव्वीसा। अट्ठावीसातो अणंताणुबंधिविसंजोजिए चउवीसा। ततो मिच्छत्ते खविते तेवीसा। ततो संमामिच्छत्ते खविते बावीसा। ततो संमत्ते खविते एक्कवीसा। ततो अट्ठकसाते खविते तेरस। ततो नपुंसगवेदे खविते बारस। ततो इत्थिवेए खविए एक्कारस। ततो छण्णोकसाते खविते पंच। ततो पुरिसवेए खविए चत्तारि। ततो कोहसंजलणे खविते तिन्नि। ततो माणसंजलणे खविते दोन्नि। ततो मायासंजलणाते खविते एक्को लोभो। (कम्मप० सत्ता० पृ० ३४)

पाठक देखेंगे कि कसायपाहुडचूर्णिमें अनुलोम या पूर्वानुपूर्वीसे वर्णन किया गया है और कम्मपयडीचूर्णिमें वही प्रतिलोम या पश्चादानुपूर्वीसे किया गया है। इस प्रतिलोम क्रमसे कहनेका कारण उसके प्रारम्भ में ही चूर्णिकारने बतला दिया है कि कथनकी सुविधाके लिए वे ऐसा कर रहे हैं।

(२) सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मका स्वामित्व कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार बतलाया गया है—

पृ० १८५-८६, सू० ८. गुणिदकम्मंसिओ दंसणमोहणीयक्खवओ जम्मि मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते पक्खित्तं तम्मि सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ। ९. सम्मत्तस्स वि तेणेव जम्मि सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते पक्खित्तं तस्स सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं।

अब इसका मिलान कम्मपयडीकी चूर्णिसे कीजिए—

ततो लहुमेव खवणाए अब्भुट्ठिओ जम्मि समये मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते सव्वसंकमेण संकंतं भवति, तम्मि समये सम्मामिच्छत्तस्स उक्कोसपदेससंतं भवति। जम्मि समये सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते सव्वसंकमेण संकंतं भवइ, तम्मि समये सम्मत्तस्स उक्कोसपदेससंतं भवति। (कम्मप० सत्ता० पृ० ५७)

(३) कसायपाहुडचूर्णिमें नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्वका स्वामित्व इस प्रकार बतलाया गया है—

पृ० १८६, सू० १०. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ११. गुणिदकम्मंसिओ ईसाणं गदो तस्स चरिमसमयदेवस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं ।

उक्त चूर्णिका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

सो चेव गुणियकम्मंसिगो सव्वावासगाणि काउं ईसाणे उप्पन्नो। तत्थ संकिलेसेणं भूयो नपुंसगवेयमेव बंधति । तत्थ बहुगो पदेसणिचयो भवति, तस्स चरिमसमये वट्टमाणस्स उक्कोसपदेससंतं । (कम्मप० सत्ता० पृ० ५७)

कम्मपयडीचूर्णिमें जो बात जरा स्पष्टीकरणके साथ कही गई है, वही कसायपाहुड-चूर्णिमें उसकी शैलीके अनुसार संक्षिप्तरूपसे कही है ।

(४) स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्वके स्वामित्वका वर्णन कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० १८६, सू० १२. इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? १३. गुणिदकम्मंसिओ असंखेज्जवस्साउए गदो, तम्मि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण जम्हि पूरिदो तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं ।

अब उक्त चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

ईसाणे नपुंसगवेयं पुव्वपउगेण पूरित्ता ततो उव्वट्टित्तु लहुमेव 'असंखवासीसु' त्ति-भोगभूमिगेसु उप्पन्नो। तत्थ 'पल्लासंखियभागेण पूरिए इत्थिवेयस्स' त्ति-तत्थ संकिलेसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जेणं कालेणं इत्थिवेउ पूरितो भवति, तंमि समते इत्थिवेयस्स उक्कोसपदेससंतं । (कम्मप० सत्ता० पृ० ५८)

इस उद्धरणमें जो उद्धृत वाक्यांश हैं, वह कम्मपयडीके उस गाथाके हैं, जिसपर कि उक्त चूर्णि लिखी गई है। दोनोंके मिलानसे पाठक इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि दोनों चूर्णियोंकी रचना समान होते हुए भी और दोनोंमें अपनी-अपनी रचनाकी विशिष्टता होते हुए भी एक कर्तृकताकी छाप स्पष्ट है।

(५) कसायपाहुडचूर्णिमें संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभके उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्मका स्वामित्व इस प्रकार बतलाया गया है—

पृ० १८७, सू० १६. तेणेव जाधे पुरिसवेद-छण्णोकसायाणं पदेसग्गं कोधसंजलणे पक्खित्तं ताधे कोधसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं । १७. एसेव कोधो जाधे माणे पक्खित्तो ताधे माणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं । १८. एसेवमाणो जाधे मायाए पक्खित्तो ताधे मायासंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं । १९. एसेव माया जाधे लोभसंजलणे पक्खित्ता ताधे लोभसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं ।

अब उक्त चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडी-चूर्णिसे कीजिए—

जंमि समते पुरिसवेतो सव्वसंकमेण कोहसंजलणाए संकंतो भवति तंमि समते कोहसंजलणाते उक्कोसपदेससंतं भवति। तस्सेव जंमि समते कोहसंजलणा माणसंजलणाए सव्वसंकमेण संकंता तंमि समते माणसंजलणा उक्कोसं पदेससंतं भवति। तस्सेव जंमि समए माणसंजलणा मायासंजलणाए सव्वसंकमेणं संकंता भवति तंमि समते मायासंजलणाए उक्कोसं पदेससंतं। तस्सेव जम्मि समते मायासंजलणा लोभसंजलणाए सव्वसंकमेण संकंता भवति तंमि समते लोभसंजलणाए से उक्कोसं पदेससंतं।

(कम्मप० सत्ता० पृ० ५६)

चूंकि कम्मपयडीकी चूर्णि उसकी गाथाओंकी व्याख्यात्मक है, अतः उसमें 'जम्मि समते,' सव्वसंकमेण आदि पदोंका प्रयोग विषयके स्पष्टीकरणार्थ किया गया है, पर वस्तुतः दोनोंमें निरूपित तत्त्व एक ही है और दोनोंकी रचना शैली भी एक है।

(६) कसायपाहुडचूर्णिमें सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य प्रदेशसत्कर्मका स्वामित्व इस प्रकार बतलाया गया है—

पृ० १८६, सू० ३१. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स? ३२. तधा चेव सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदूण तदो तसेसु संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामेदूण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण मिच्छत्तं गदो दीहाए उव्वेल्लणद्धाए उव्वेलिदं तस्स जाधे सव्वं उव्वेलिदं, उदयावलिया गलिदा, जाधे दुसमयकालट्ठिदियं एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसं, ताधे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णं पदेससंतकम्मं। ××× एवं चेव सम्मत्तस्स वि।

अब उक्त चूर्णिसूत्रका मिलान कम्मपयडीकी चूर्णिसे कीजिए—

××× सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं वे छावट्ठीतो सागरोवमाणं सम्मत्तं अणुपालेत्तु पच्छा मिच्छत्तं गतो चिरउव्वलणाए अप्पप्पणो उव्वलणाते आवलिगाते उवरिमं ट्ठितिखंडगं संकममाणं संकंतं, उदयावलिया खिज्जति जाव एगट्ठितिसेसे दुसमयकालट्ठितिगे जहन्नं पदेससंतं।

पाठक देखेंगे कि दोनों चूर्णियोंमें कितना अधिक साम्य है। भेद केवल इतना ही है कि कसायपाहुडचूर्णिमें सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म-स्वामित्व बता करके पीछेसे तदनुसार ही सम्यक्त्वप्रकृतिके स्वामित्वका वर्णन जाननेको कहा गया है, जबकि कम्मपयडीचूर्णिमें दोनों प्रकृतियोंके स्वामित्वका निरूपण एक साथ किया गया है और इसका कारण यह है कि उसकी मूलगाथामें भी दोनोंका स्वामित्व एक साथ प्रतिपादन किया गया है।

(७) आठ मध्यमकषायोंके जघन्य प्रदेशसत्कर्म-स्वामित्वको बतलाते हुए कसायपाहुडचूर्णिमें कहा गया है—

पृ० १६०, ३६ अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णयं काऊण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामिदूण एइंदियं

गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदूण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण कालं गदो तसेसु आगदो कसाए खवेदि, अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए अवगदे अधट्ठिदिगलणाए उदयावलियाए गलंतीए एकिस्से ट्ठिदीए सेसाए तम्मि जहण्णयं पदं। ४०. तदो-पदेसुत्तरं। ४१. णिरंतराणि ट्ठाणाणि जाव एगट्ठिदिविसेसस्स उक्कस्सपदं। ४२. एद-मेगं फद्दयं। ४३. एदेण कमेण अट्ठण्हं पि कसायाणं समयूणावलियमेत्ताणि फद्द-याणि उदयावलियादो। ४४, अपच्छिमट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमय-जहण्णपदमादिं कादूण जावुक्कस्सपदेससंतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं।

अब उक्त चूर्णिसन्दर्भका कम्मपयडीकी निम्नलिखित चूर्णिसे मिलान कीजिए—

अभवसिद्धियपातोग्गं जहन्नगं पदेससंतकम्मं काऊण तसेसु उववन्नो। तत्थ देसविरतिं विरतिं च बहुयातो वारातो लद्धूण चत्तारि वारे कसाते उवसामेऊण ततो पुणो एगिंदियाएसु उप्पन्नो, तत्थ पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं अत्थिऊणं पुणो तसेसु उप्पन्नो। तत्थ खवणाए अब्भुट्ठितो तस्स चरिमे ट्ठितिखंडगे अवगते उदया-वलियाए गलंतीए एगट्ठितीसेसाए आवलियाए दुसमय-कालट्ठितीयं तहिं जहन्नगं पदेससंतं भवति। एयं सव्वजहन्नयं पदेससंतं। सव्वजहन्नतो पदेससंते एगे कम्म-खंडपोग्गले पक्खित्ते अन्नं पदेससंतं तम्मि ठितिविसेसे लब्भति। एवं एक्केक्कं पक्खिवमाणस्स अणंताणि तम्मि ट्ठितिविसेसे लब्भंति जाव गुणियकम्मंसिगस्स तम्मि ट्ठितिविसेसे उक्कोसं पदेससंतं। एत्तो उक्कोसतरं तम्मि ट्ठितिविसेसे अन्नं पदेससंतं नत्थि। एयं एक्कं फड्डगं। दोसु ट्ठितिविसेसेसु एएणेव उवाएण वितियं फड्डगं। तिसु ट्ठितिविसेसेसु ततियं फड्डगं। एवं जाव आवलियाए समऊणाते जत्तिया समया तत्तिगाणि फड्डगाणि, चरिमस्स ट्ठितिखंडस्स चरिमसंछोभसमयं आदिं काउं जाव अप्पप्पणो उक्कोसगं पदेससंतं ताव एयं पि एगफड्डगं सव्वट्ठितिगयं जहासंभवेण।

(कम्म० सत्ता० पृ० ६७)

पाठक देखेंगे कि इस उद्धरणमें ऊपरका आधा भाग तो शब्दशः समान है ही। साथ ही पीछेका आधा भाग भी अर्थकी दृष्टिसे बिल्कुल समान है। कम्मपयडीके इस पीछेके भागके विस्तृत अंशको संक्षिप्त करके कसायपाहुडकी चूर्णिमें उसे प्रायः उन्हीं शब्दोंमें कह दिया गया है।

(८) कसायपाहुडकी संक्रमणअधिकारवाली 'अट्ठावीस चउवीस' इत्यादि २७ नं० की गाथा पर जो विस्तृत चूर्णिसूत्र हैं, वे सब कम्मपयडीके संक्रमण-प्रकरणकी 'अट्ठ-चउरहियवीसं' इस १० वीं गाथाकी चूर्णिसे शब्द और अर्थकी अपेक्षा पूर्ण समान हैं। इसके अतिरिक्त एक समता दोनोंमें यह भी है कि उससे आगेकी गाथाओं पर—जो कि दोनोंमें समानरूपसे पाई जाती हैं—चूर्णि न तो कसायपाहुडमें ही मिलती है और न कम्मपयडीमें भी। क्या यह समता भी आकस्मिक ही है? अवश्य ही उक्त समता दोनोंचूर्णियोंके एक कर्तृत्वकी द्योतक है।

(९) संयमासंयमलब्धिमें संयमासंयमसे गिरनेवाले देशसंयतका वर्णन इस प्रकारसे किया गया है—

पृ० ६६३, सू० ३२. जदि संजमासंजमादो पडिवदिदूण आगुंजाए मिच्छत्तं गंतूण तदो संजमासंजमं पडिवज्जइ अंतोमुहुत्तेण वा विप्पकट्ठेण वा कालेण, तस्स वि संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स एदाणि चेव करणाणि कादव्वाणि।

इन चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

अह पुण आभोएणं देसविरतितो विरतीतो वा वि पडिओ आभोएणं मिच्छत्तं गंतु पुणो देसविरतिं वा विरतिं वा पडिवज्जेति अंतोमुहुत्तेणं वा विगिट्ठेण वा कालेण तस्स पडिवज्जमाणस्स एयाणि चेव करणाणि णियमा काऊण पडिवज्जियव्वं।

(उपशमनाकरण, पृ० २२)

पाठकगण दोनोंकी समताका स्वयं अनुभव करेंगे। जो थोड़ासा भेद 'विरति' पदका है, उसका कारण यह है कि कम्मपयडीमें देशविरति और सर्वविरतिका एक साथ वर्णन किया गया है, जब कि कसायपाहुडचूर्णिमें ये दोनों अधिकार भिन्न-भिन्न हैं।

(१०) चारित्रमोहकी उपशमना करनेके लिए वेदकसम्यग्दृष्टिको पहले अनन्तानुबन्धी-कषायकी विसंयोजना करना आवश्यक है। इसका वर्णन कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६७८, सू० ४. वेदयसम्माइट्ठी अणंताणुबंधी अविसंजोएदूण कसाए उवसामेदुं णो उवट्ठादि। ५. सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि। ६. तदो अणंताणुबंधी विसंजोएंतस्स जाणि करणाणि ताणि सव्वाणि परूवेयव्वाणि।

अब इसी बातको कम्मपयडीचूर्णिमें किस प्रकार कहा गया है सो उसे भी देखिए—

चरित्तुवसमणं काउंकामो जति वेयगसम्मदिट्ठी तो पुव्वं अणंताणुबंधिणो नियमा विसंजोएति। एएण कारणेण विरयाणं अणंताणुबंधिविसंजोयणा भन्नति।

(कम्मप० उपश० पृ० २३)

यहां यह बात ध्यानमें रखनेके योग्य है कि श्वे० आचार्य चारित्रमोहकी उपशमना करने-वालेके लिए अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना आवश्यक नहीं समझते हैं, तब कम्मपयडीचूर्णि और कसायपाहुडचूर्णिकार दोनों इस विषयमें एक मत हैं और उनकी यह मान्यता दि० मान्यताके सर्वथा अनुरूप ही है।

(११) दर्शनमोहक्षपणाके प्रस्थापक जीवके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समय-की क्रियाओंका वर्णन कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६४६, सू० ४०. पढमसमय-अणियट्टिकरणपविट्ठस्स अपुव्वं ट्ठिदिखंड-यमपुव्वमणुभागखंडयमपुव्वो ट्ठिदिबंधो, तहा चेव गुणसेढी। ४१. अणियट्टिकरणस्स

पढमसमये दंसणमोहणीयमप्पसत्थमुवसामणाए अणुवसंतं, सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुवसंताणि च ।

अब इसी वर्णनको कम्मपयडीचूर्णिसे मिलान कीजिए—

पढमसमयअणियट्टिं पविट्ठस्स अपुव्वं ट्ठितिखंडगं अपुव्वं अणुभागखंडगं अपुव्वो ट्ठितिबंधो, अपुव्वा गुणसेढी । अणियट्टिस्स पढमसमते दंसणमोहणीयंअप्पसत्थुवसामणा-णिहत्तणिकाचणेहिं अनुपसंतं, सेसाणि कम्माणि उवसंताणि अणुवसंताणि य ।

(कम्मप० उपश० पृ० २५)

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि दोनों उद्धरणोंमें शब्दशः समता है ।

(१२) उक्त दर्शनमोहक्षपकके अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भाग व्यतीत होनेपर जो कार्य-विशेष होते हैं, उनका वर्णन कसायपाहुडमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६४७, सू० ४३. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४४. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४५. तदो ट्ठिदि-खंडयपुधत्तेण तीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४६. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण बीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४७. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण एइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४८. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिदोवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं ।

अब उक्त उद्धरणका कम्मपयडीचूर्णिसे मिलान कीजिए—

अणियट्टिपढमसमते दंसणमोहणीयस्स ट्ठितिसंतकम्मं खंडिज्जमाणं खंडिज्ज-माणं असन्निपंचिंदियसंतकम्मट्ठितिसमगं होति। ततो ट्ठितिखंडगपुहुत्ते गते चउरिं-दियसंतकम्मट्ठितिसमगं होति । ततो तत्तिएहिं चेव ठितिकंडगेहिं गएहिं तेइंदियसंत समगं, ततो तत्तिएहिं चेव ट्ठितिखंडगेहिं गएहिं बेइंदियसंतसमगं, एवं एगिंदियसत्त-समगं ट्ठिइसंतकम्मं होइ । ततो ट्ठितिखंडगपुहुत्तेणं जायं पलिओवमट्ठितियं दंसणमोह-णिज्जट्ठितिसंतकम्मं । (कम्मप० उपश० पृ० ३६)

पाठकगण दोनों चूर्णियोंकी समताका स्वयं ही अनुभव करेंगे ।

(१३) चारित्रमोहोपशामनाधिकारमें सर्वघाती प्रकृतियोंको देशघाती करनेके पश्चात् अन्तरकरणकी क्रियाका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पृ० ६८६, सू० १२७. तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं करेदि । १२८. बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणं च । णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं । १२९. जं संजलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तिगाओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि ।

अब उक्त सन्दर्भका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

ततो देसघातीकरणातो संखेज्जेसु ट्ठितिबंधसहस्सेसु गतेसु 'संजमघातीणं' ति चरित्तमोहाणं अणंताणुबंधिवज्जाणं । बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायाणं एएसिं एक्कवीसाए कम्माणं अंतरं करेति । 'पढमट्ठिइ य अन्नयरे संजलणवेयाणं वेइज्जंतीण कालसमा' त्ति चउण्हं संजलणाणं तिण्हं वेयाणं अन्नयरस्स वेतिज्जमाणस्स अप्पप्पणो वेयणाकालतुल्लं पढमं ट्ठितिं करेति । (कम्मप० उपश० पृ० ४८ A)

पाठक दोनोंकी समताका स्वयं अनुभव करेंगे। इस अवतरणके बीचमें जो उद्धृत अंश है, वह कम्मपयडीकी मूलगाथाका है, जिसकी कि यह चूर्णि है।

(१४) इसी प्रकरणमें दोनों ग्रन्थोंकी चूर्णियोंके समता वाले कुछ अन्य सन्दर्भ इस प्रकार हैं—

कसायपा० पृ० ६७०, सू० १३५. अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति, वेदिज्जंति तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीओ उक्कीरेंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि, विदियट्ठिदीए च देदि । १३६ जे कम्मंसा बज्झंति, वेदिज्जंति, तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि; बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। १३७ जे कम्मंसा ण बज्झंति, वेदिज्जंति च; तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए च देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदीसु देदि। १३८. जे कम्मंसा ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति, तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। १३९. एदेण कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं।

अब उक्त सूत्रप्रबन्धका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

अंतरं करेंतो जे कम्मंसे बंधति वेदेति तेसिंउ क्किरिज्जमाणं दलियं पढमे बिइए च ट्ठिईए देति । जे कम्मंसा ण बज्झंति वेतिज्जंति तेसिं उक्किरिज्जमाणा पोग्गले पढमट्ठितीसु अणुक्किरिज्जमाणीसु देति। जे कम्मंसा बज्झंति, न वेयिज्जंति तेसिं उक्किरिज्जमाणगं दलियं अणुक्किरिज्जमाणीसु वितियट्ठितीसु देति । जे कम्मंसा ण बज्झंति, ण वेतिज्जंति तेसिं उक्किरिज्जमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण दिज्जति परट्ठाणे दिज्जति । एएण विहिणा अंतरं उच्छिन्नं भवति । (कम्मप० उपशमना० पृ०४८)

दोनों अवतरणों में कितना अधिक साम्य है, यह दर्शनीय है।

(१५) कसायपा० पृ० ६९४ सू० १५८. णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा। १५९ उदयो असंखेज्जगुणो। १६० णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिसंकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं। १६१. उव-

सामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं। ×× १६५ एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो उवसामिज्जमाणो उवसंतो।

अब उक्त अवतरणका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

तस्स उवसामणपढमसमयपभिति जस्स व तस्स व कम्मस्स उदीरणा थोवा। उदओ असंखेज्जगुणो। उवसामिज्जमाणणपुंसगवेयस्स पदेसग्गं असंखेज्जगुणं। नपुंसगवेयस्स अन्नपगतिं संकामिज्जमाणगं पदेसग्गं असंखेज्जगुणं। ××× एवं संखेज्जेसु टिठ्तिबंधसहस्सेसु गएसु नपुंसगवेओ उवसंतो भवति।

(कम्मप० उपश० पृ० ६६ A)

(१६) कसायपा० पृ० ६६६, सू० १७९. इत्थिवेदे उवसंते (से) काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो। १८०. ताधे चेव अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभाग-खंडयं च आगाइदं। अण्णो च ट्ठिदिबंधो पबद्धो। १८१. एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंध-सहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाम-गोद-वेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो।××× १८९. एदेण कमेण ट्ठिदिबंध-सहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसंता।

उक्त सूत्रोंका मिलान कम्मपयडीकी निम्न लिखित चूर्णिसे कीजिए—

ततो इत्थिवेए उवसंते से काले नपुंसगवेय-इत्थिवेयवज्जा सत्त णोकसाते उवसामेउं आढवेति। ताहे चेव अन्नं ट्ठितिखंडगं अन्नं अणुभागखंडगं अण्णं च ट्ठितिबंधं पवट्टई। एवं संखेज्जेसु ट्ठितिबंधसहस्सेसु गदेसु 'संखतमे संखवासितो दोण्हं' ति सत्तण्हं नोकसायाणं उवसामणद्धाए संखेज्जतिभागे गए तो 'दोण्हं' ति-णामगोयाणं एएसिं तंमि काले संखेज्जवासिगो चेव ट्ठितिबंधो। ××× एएण विहिणा संखेज्जेसु ट्ठितिबंधसहस्सेसु गतेसु सत्त वि णोकसाया उवसंता भवंति।

(कम्मपयडी, उपश० पृ० ५५ A)

पाठक दोनों उद्धरणोंकी समताका स्वयं अनुभव करेंगे। बीचमें जो उद्धृत अंश है, वह कम्मपयडीकी गाथाका है, जिसके कि आधार पर उक्त चूर्णि रची गई है।

(१७) कसायपा० पृ० ६९८, सू० २०६. एदेण कमेण जाधे आवलि-पडिआवलियाओ सेसाओ कोहसंजलणस्स ताधे विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। २०७. पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोहसंजलणस्स। २०८. पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ठिदि-उदीरणा। २०९. चदुण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा। २१०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। (कम्मप० उपश० पृ० ५७ A)

अब उक्त सूत्रोंका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

जाव आवलिय-पडिआवलिगसेसा कोहसंजलणाए ताहे वितियट्ठितितो आगालो वोच्छिन्नो, पडिआवलिगातो उदीरणा एति, कोहसंजलणाए पडिआवलिगाते एगंमि समते सेसे कोहसंजलणाए जहन्निगा ट्ठितिउदीरणा, तंमि समते चत्तारि मासा ठिईबंधो संजलणाणं, सेसकम्माणं संखेज्जाणि वरिससहस्साणि ट्ठितिबंधो ।

(कम्मप० उपश० पृ० ५७ A)

(१८) कसायपाहुड पृ० ७०५, सू० २८१. विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिपडिभागमाफुंददि । एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति। २८२. चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो । २८३. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता । २८४. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस मुहुत्ता । २८५. से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं ।

उक्त सूत्रोंका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

वितियसमते उदिन्नाणं असंखेज्जइभागं मुयंति, हेट्ठतो अपुव्वं असंखेज्जतिभागं गेण्हति, एवं जाव सुहुमरागचरिमसमतो । × × × जाव सुहुमरागचरमसमय त्ति । (चरिमसमय-) सुहुमरागस्स नाणावरण-दंसणावरण-अंतरातियाणं अंतोमुहुत्तिगो ट्ठितिबंधो नामगोयाणं सोलसमुहुत्तिगो ट्ठितिबंधो । वेयणिज्जस्स चउवीसमुहुत्तितो ट्ठितिबंधो । से काले सव्वं मोहं उवसंतं भवति । (कम्मप० उपश० पृ० ६६-६७)

(१६) उपशमश्रेणीसे जीव किन कारणोंसे गिरता है, इस विषयका जो वर्णन दोनों ग्रन्थोंकी चूर्णियोंमें उपलब्ध है, उसका नमूना देखिए—

कसायपा० पृ० ७१४, सू० ३७६· दुविहो पडिवादो भवक्खएण च उवसामणद्धाक्खएण च । ३८०. भवक्खएण पदिदस्स सव्वाणि करणाणि एगसमएण उग्घादिदाणि । ३८१. पढमसमए चेव जाणि जाणि उदीरिज्जंति कम्मणि ताणि उदयावलियं पवेसिदाणि, जाणि ण उदीरिज्जंति ताणि वि ओकड्डियूण आवलियबाहिरे गोवुच्छाए सेढीए णिक्खित्ताणि । ३८२. जो उवसामणद्धाक्खएण पडिवददि तस्स विहासा ।

अब उक्त चूर्णिसूत्रोंका मिलान कम्मपयडीचूर्णिसे कीजिए—

इयाणि पडिवातो सो दुविहो-भवक्खएण उवसमद्धक्खएण य । जो भवक्खएण पडिवडइ तस्स सव्वाणि करणाणि एगसमतेण उग्घाडियाणि भवंति । पढमसमते जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलिगं पवेसियाणि, जाणिं ण उदीरिज्जंति ताणि उकड्डिऊण उदयावलियबहिरतो उवरिं गोवुच्छागितीते सेढीते रतेति । जो उवसमद्धाक्खएणं परिपडति तस्स विभासा । (कम्मप० उपशा० पृ०५२ A)

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे, कि दोनों पाठोंमें कितना अधिक साम्य है।

(२०) उपशमश्रेणीसे गिरनेवाले जीवका पतन किन-किन गुणस्थानोंमें होता है, इसका वर्णन कसायपाहुडचूर्णिमें इस प्रकार किया गया है—

पृ० ७२६, सू० ५४२. एदिस्से उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरदो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, दो वि गच्छेज्ज। ५४४. छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज। ५४४. आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं। णियमा देवगदिं गच्छदि। ५४५. हंदि तिसु आउएसु एक्केण वि बद्धेण आउगेण ण सक्को कसाए उवसामेदुं।

अब उक्त कसायपाहुडचूर्णिका कम्मपयडीकी निम्न चूर्णिसे मिलान कीजिए—

पमत्तापमत्तसंजयद्धाणेसु अणेगाओ परिवत्तीओ काउं 'हेट्ठिल्लाणंतरदुगं आसाणं वा वि गच्छिज्ज' त्ति—हिट्ठिलाणंतरदुगं ति देसविरओ असंजयसम्मदिट्ठी वा होज्जा, ततो परिवडमाणो आसाणं वा वि गच्छेज्ज त्ति—कोति सासायणत्तणं गच्छेज्जा। (पृ० ७४) उवसमसम्मत्तद्धाए वट्टमाणो जति कालं करेइ धुवं देवो भवति। जई सासायणो कालं करेति सो वि नियमा देवो भवति। किं कारणं? भवति–'तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढिं न आरुहइ' त्ति—देवाउगवज्जेसु आउगेसु बद्धेसु जम्हा उवसामगो सेढीते अणुरुहो भवति तम्हा सासायणो वि देवलोगं जाति।

(कम्मप० उप० पृ० ७३)

यद्यपि कसायपाहुडचूर्णिका कम्मपयडीचूर्णिके साथ मिलान करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनोंके रचयिता आ० यतिवृषभ ही हैं, तथापि इससे भी अधिक पुष्ट और सबल प्रमाण हमें तिलोयपण्णत्तीके अन्तमें पाई जानेवाली उस गाथासे भी उपलब्ध होता है, जिसमें कि स्पष्टरूपसे कम्मपयडीकी चूर्णिका उल्लेख किया गया है। वह गाथा इस प्रकार है—

चुण्णिसरूवट्ठकरणसरूवपमाण होइ किं जत्तं।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥७७॥

इसमें बतलाया गया है कि आठ करणोंके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाली कम्मपयडी-का और उसकी चूर्णिका जितना प्रमाण है, उतने ही आठ हजार श्लोक-प्रमाण इस तिलोय-पण्णत्तीका परिमाण है।

इसका अभिप्राय यह है कि कम्मपयडीकी गाथाएँ लगभग ६०० श्लोक प्रमाण हैं, क्योंकि एक गाथाका प्रमाण सामान्यत सवा-श्लोक-पमाण माना जाता है और कम्मपयडीकी चूर्णिका प्रमाण लगभग साढ़े सात हजार श्लोक प्रमाण है, इस प्रकार दोनों का मिल करके जो प्रमाण होता है, वही आठ हजार श्लोक-प्रमाण तिलोयपण्णत्तीका प्रमाण बतलाया गया है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि कम्मपयडीमें बन्धन आदि आठ करणोंका स्वरूप प्रतिपादन किया गया है जैसा कि उसकी पहली और दूसरी गाथासे स्पष्ट है। वे दोनों गाथाएं इस प्रकार हैं—

सिद्धं सिद्धत्थसुयं वंदिय णिद्धोयसव्वकम्ममलं ।
कम्मट्ठगस्स करणट्ठगुदयसंताणि वोच्छामि ॥१॥
बंधण-संकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उदीरणया ।
उवसामणा णिधत्ती णिकायणा च त्ति करणाइं ॥२॥

प्रथम गाथामें सिद्धस्वरूप सिद्धार्थसुत महावीरस्वामीको नमस्कार करके आठ कर्म सम्बन्धी आठों करणोंके तथा उनके साथ उदय और सत्त्वके कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है और दूसरी गाथामें आठ करणोंके नाम गिनाये गये हैं, जिनका कि वर्णन कम्मपयडीमें किया गया है। आठ करण इस प्रकार हैं—१.बन्धनकरण, २.संक्रमणकरण, ३. उद्वर्तनाकरण, ४. अपवर्तनाकरण, ५. उदीरणाकरण, ६. उपशामनाकरण, ७. निधत्तीकरण, और ८. निकाचनाकरण।

इन आठों ही करणोंके स्वरूपादिका कम्मपयडीमें विस्तृत निरूपण किया गया है और चूर्णिकारने अपनी चूर्णिमें उनके स्वरूपका बहुत सुन्दर विवेचन किया है, इसलिए तिलोयपण्णत्तीके अन्तमें उन्होंने अपनी पूर्व रचनाके परिमाणका उल्लेख करते हुए उसके साथ तिलोयपण्णत्तीके भी परिमाणका उक्त गाथामें निर्देश कर दिया है। तथा निकाचनाकरणके अन्तमें चूर्णिकारने '**एवं अट्ठ वि करणाणि समत्ताणि**' इस प्रकारका वाक्य भी दिया है। जिससे सिद्ध है कि कम्मपयडीकी चूर्णि भी आ० यतिवृषभकी ही कृति है। यहां यह बात ध्यानमें रखना चाहिए कि उदय और सत्त्वको करणोंके अन्तर्गत नहीं गिना गया है और यही कारण है कि जहाँ पर आठ करणोंका स्वरूप समाप्त हुआ है, वहां चूर्णिकारने स्पष्टरूपसे लिखा है कि 'इस प्रकार आठों ही करणोंका स्वरूप समाप्त हुआ।

कम्मपयडी, सतक और सित्तरीकी चूर्णियोंके रचयिता एक हैं

कम्मपयडीचूर्णिके कर्त्ता रूपसे अभी तक किसी आचार्यके नामका कहीं कोई निर्देश नहीं मिलता है, तथापि कम्मपयडीके सम्पादकोंने उक्त ग्रन्थकी प्रस्तावनामें उसे अनुश्रुतिके अनुसार जिनदासमहत्तर-प्रणीत होनेकी संभावना व्यक्त की है, जो कि संभावना मात्र ही है, वास्तविक नहीं, क्योंकि उसकी पुष्टिमें कोई भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया है।

सित्तरीचूर्णिको कुछ लोग चन्द्रर्षिमहत्तर-द्वारा रचित होनेका अनुमान करते हैं, पर सित्तरीचूर्णिकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादकोंने यह स्पष्टरूपसे लिखा है कि चन्द्रर्षिमहत्तर न तो सित्तरीके रचियता हैं और न उसकी चूर्णि ही उनकी रची हुई है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि चन्द्रर्षिमहत्तरने अपने पंचसंग्रहके प्रारम्भमें सतक, सित्तरी आदि प्राचीन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है और यह भी लिखा है कि एक स्थल पर सित्तरीचूर्णिकारका मत चन्द्रर्षिमहत्तरके विरुद्ध जाता है। इससे यह सिद्ध है कि चन्द्रर्षिमहत्तर सित्तरीचूर्णिके प्रणेता नहीं हैं।

मुद्रित सतकचूर्णिपर कोई सम्पादकीय वक्तव्य या प्रस्तावना आदि नहीं है और न उसके आदि या अन्तमें कहीं चूर्णिकारके रूपमें किसी आचार्यके नामका उल्लेख है, तथापि मुद्रित सित्तरीचूर्णिमें श्री शान्तिनाथजी भंडार खंभातसे प्राप्त सतकचूर्णिके अन्तिमपत्रके उत्तरार्धका फोटो दिया है, जिसमें अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

"कृतिराचार्यश्रीचन्द्रमहत्तरशितांबरस्य। शतकस्य ग्रन्थस्य। प्रशस्तच्…। दि ३ शनौ लिखितेति।"

परन्तु यह सतकचूर्णिके अन्तमें पाई जानेवाली पुष्पिका किसी लेखक-द्वारा लिखी गई है, यह बात उक्त पंक्तिकी रचनासे ही स्पष्ट है और श्रीचन्द्रमहत्तरके नामके साथ 'शिताम्बर' पद-का प्रयोग तो उसकी अवास्तविकताका और भी अधिक परिचायक है, क्योंकि, प्रथम तो उसके देनेके कोई आवश्यकता ही नहीं थी, दूसरे दि० परम्परामें श्रीचन्द्रमहत्तर नामके कोई भी व्यक्ति नहीं हुए हैं। फिर भी यहां पर 'शितांबर' पद संस्कृत या प्राकृत दोनों भाषाओंके अनुसार अशुद्ध है। ज्ञात होता है कि सित्तरीचूर्णिकी दिगम्बराम्नायताके अपलापके लिए उक्त वाक्य पीछेसे जोड़ा गया है।

सतकचूर्णि और सित्तरीचूर्णि भी आ० यतिवृषभ-रचित हैं

सतक और सित्तरी नामक दो ग्रन्थोंका परिचय पहले दिया जा चुका है। इन दोनों ही प्रकरणों पर चूर्णियां पाई जाती हैं और वे मुद्रित होकर प्रकाशमें भी आ चुकी हैं। सतक या शतकप्रकरणकी चूर्णि राजनगरस्थ श्रीवीरसमाजकी ओरसे वि० सं० १९७८ में प्रकाशित हुई है और सित्तरी या सप्ततिकाकी चूर्णि श्री मुक्ताबाई ज्ञानमन्दिर डभोई (गुजरात) से वि० सं० १९९९ में प्रकाशित हुई है। दोनों ही प्रकरणों पर जो चूर्णियां प्रकाशित हुई हैं, उनपर किसी आचार्यका रचयितारूपसे नाम नहीं दिया गया है। शतकप्रकरणकी चूर्णिके ऊपर 'पूर्वाचार्यकृत-चूर्णिसमलंकृतं श्री शतकप्रकरणम्' ऐसा वाक्य मुद्रित है। इसी प्रकार सित्तरीचूर्णिके आरम्भमें भी 'पाईणायरियकयचुण्णिसमेया' ऐसा वाक्य मुद्रित है, जिसका अर्थ होता है—'प्राचीन आचार्यकृत चूर्णिसमेत'। अर्थात् इसके रचयिताका नाम भी अभी तक अज्ञात ही है। इन दोनों चूर्णियोंका अन्तर-आलोडन करके जब हम कम्मपयडीचूर्णिके साथ मिलान करते हैं, तब इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि कम्मपयडीचूर्णिके तथा इन दोनों चूर्णियोंके रचयिता भी एक ही आचार्य हैं। और ये दोनों चूर्णियां भी उनकी ही कृतियां हैं, जिन्होंने कि कम्मपयडीचूर्णि और कसाय-पाहुडचूर्णिको रचा है।

पाठकोंके निश्चयार्थ उक्त चूर्णियोंमेंसे कुछ ऐसे अवतरण दिये जाते हैं, जिनसे कि उक्त चारों ही चूर्णियोंकी एक-कर्तृकता सिद्ध होती है—

(१) कम्मपयडीके बन्धनकरणमें बन्धके चारों भेदोंका लक्षण कह करके लिखा है—

मूलपगति-उत्तरपगतीणं विगप्पसामित्तभेदेण य जहा बंधसयगे भणिता, तहा चेव इहावि भाणियव्वा।

अर्थात् मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके विकल्प और स्वामित्वका जैसा वर्णन **बन्धशतकमें** किया गया है, वैसा ही वर्णन यहां पर भी करना चाहिए।

इस उद्धरणसे यह सिद्ध है कि कम्मपयडीचूर्णिकार शतकप्रकरणसे जिसे कि बन्धशतक भी कहते हैं, भलीभांति परिचित थे। अब देखिए कि शतकचूर्णिकार वर्गणाओंके भेदोंका वर्णन करते हुए क्या लिखते हैं—

'एतासिं अत्थो जहा कम्मपगडिसंगहणीए।' (सतकचूर्णि पत्र ४३)

अर्थात् उक्त वर्गणाओंका अर्थ जैसा कम्मपयडिसंग्रहणीमें कहा, वैसा ही यहां पर जानना चाहिए।

यहां यह जानने योग्य बात है कि वर्गणाओंका अर्थ कम्मपयडीकी गाथाओंमें नहीं, किन्तु कम्मपयडीकी चूर्णिमें किया गया है। मूलगाथाओंमें तो वर्गणाओंके नाममात्र ही कहे गये हैं। इसके विशेष परिज्ञानार्थ कम्मपयडीके बन्धनकरणके १८, १९ और २० वीं गाथाओं पर लिखी हुई विस्तृत चूर्णिको देखना चाहिए।

इस उद्धरणसे दो बातें सिद्ध होती हैं—पहली यह कि सतकचूर्णि और कम्मपयडी-चूर्णिके रचयिता एक ही आचार्य हैं। दूसरी यह कि सतकचूर्णिसे पहले कम्मपयडीचूर्णिकी रचना हुई है।

(२) अब सित्तरीचूर्णिसे कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं जिनसे कि सित्तरीचूर्णि और कम्मपयडीचूर्णिके रचयिता एक सिद्ध होते हैं—

(अ) उव्वट्टणाविही जहा कम्मपगडीसंगहणीए उव्वलणसंकमे तहा भाणियव्वं।
(सित्तरी, पत्र ६१।२)

(ब) तत्थ मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्त-उवसामणे विही जहा कम्मपगडीसंगहणीए पढमसम्मत्तं उप्पाएंतस्स सा चेव भाणियव्वा।

(स) अंतरकरणविही जहा कम्मपगडीसंगहणीए। (सित्तरी, पत्र ६४/१)

(द) पढमट्ठितिकरणं जहा कम्मपगडिसंगहणीए। (सित्तरी, पत्र ६५/१)

उक्त चारों उद्धरणोंमें जिन बातोंके विशेष-वर्णन देखनेके लिए कम्मपयडिसंगहणीका उल्लेख किया गया है, उन सबका वर्णन मूलकम्मपयडीमें नहीं, अपितु कम्मपयडीकी चूर्णिमें किया गया है, जोकि कम्मपयडीचूर्णिमें निर्दिष्ट स्थानों पर पाया जाता है।

इन उद्धरणोंसे भी दो बातें सिद्ध होती हैं—पहली यह कि सित्तरीचूर्णि और कम्मपयडीचूर्णिके रचयिता एक ही आचार्य हैं। दूसरी यह कि सित्तरीचूर्णिसे पहले कम्मपयडी-चूर्णिकी रचना हो चुकी थी।

(३) अब सित्तरीचूर्णिमें से ही कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनमें कि स्पष्ट रूपसे कसायपाहुडचूर्णिका उल्लेख किया गया है—

(अ) तं वेयंतो बितियकिट्टीओ तइयकिट्टीओ य दलियं घेत्तूणं सुहुमसांपराइय-किट्टीओ करेइ। तेसिं लक्खणं जहा कसायपाहुडे।

(ब) एत्थ अपुव्वकरण-अणियट्टिअद्धासु अणेगाइ वत्तव्वगाइं जहा कसायपाहुडे कम्मपगडिसंगहणीए वा तहा वत्तव्वं। (सित्तरी, पत्र ६२/२)

(स) चउविहबंधगस्स वेदोदए पुरिसवेदबंधे य जुगवं फिट्टे एक्कमेव उदयट्ठाणं लब्भति। तं जहा—चउण्हं संजलणाण एगयरं। एत्थ चत्तारि भंगा। ××× तं च कसायपाहुडादिसु विहडति त्ति काउं परिसेसियं।। (सित्तरी. पत्र १२/२)

इन उपर्युक्त उद्धरणोंसे तीन बातें सिद्ध होती हैं—पहली यह कि सित्तरीचूर्णि और कसायपाहुडचूर्णिके रचयिता एक ही आचार्य हैं। दूसरी यह कि कसायपाहुडचूर्णिकी रचनाके पश्चात् सित्तरीचूर्णिकी रचना की गई है। और तीसरे उद्धरणसे तीसरी बात यह सिद्ध होती है कि उक्त तीनों ही चूर्णियोंके रचयिता एक ही आचार्य हैं।

इस प्रकार समुच्चयरूपसे समीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सतकचूर्णि, सित्तरीचूर्णि, कसायपाहुडचूर्णि और कम्मपयडीचूर्णि इन चारों ही चूर्णियोंके रचयिता एक ही आचार्य हैं। यतः कसायपाहुडचूर्णिके रचयिता आ० यतिवृषभ प्रसिद्ध ही हैं और शेष तीन चूर्णियोंके रचयिता वे उपर्युक्त उल्लेखोंसे सिद्ध होते हैं, अतः उक्त चारों चूर्णियोंकी रचनाएं आ० यतिवृषभकी ही कृतियाँ हैं, यह बात असंदिग्धरूपसे निर्विवाद सिद्ध हो जाती है।

उक्त चारों चूर्णियोंके रचे जानेका क्रम इस प्रकार सिद्ध होता है—

१. कम्मपयडीचूर्णि—क्योंकि, इसमें किसी अन्य चूर्णिका उल्लेख नहीं है।

२. सतकचूर्णि—क्योंकि, इसमें कम्मपयडीसंगहणीका उल्लेख है।

३. कसायपाहुडचूर्णि, क्योंकि सित्तरीचूर्णिमें इसका उल्लेख किया गया है।

४. सित्तरीचूर्णि, क्योंकि, सित्तरीचूर्णिका उल्लेख उपर्युक्त तीनों ही चूर्णियोंमें नहीं किया गया है।

तिलोयपण्णत्तीके अंतमें पाई जानेवाली 'चुण्णिसरूवट्ठकरण' इत्यादि गाथाके उल्लेखसे यह भी सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्तीकी रचनाके पूर्व कम्मपयडीचूर्णिकी रचना हो चुकी थी। इस प्रकार आज हमें आ० यतिवृषभकी पांच रचनाएं उपलब्ध हैं, इनमें से अभी तक कसायपाहुड-चूर्णिके अतिरिक्त शेष सभी रचनाएं मुद्रित होकर प्रकाश में आ चुकी थीं। हर्ष है कि कसायपाहुड-चूर्णि सर्व-प्रथम उसकी ६० हजार श्लोक-प्रमाण जयधवलाटीकामें से उद्धार होकर हिन्दी अनुवादके साथ पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि अभी तक आ० यतिवृषभकी उक्त पांच रचनाओंमें से तिलोयपण्णत्ती और कसायपाहुडचूर्णि दि० भंडारों और दि० संस्थाओंसे तथा शेष तीन रचनाएं श्वे० भंडारों और श्वे० संस्थाओंसे प्रकाशमें आई हैं।

एककर्तृकताके कुछ अन्य भी प्रमाण

उपर्युक्त विवेचनसे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि कम्मपयडी आदि चारों ही ग्रन्थोंकी चूर्णियोंके प्रणेता एक ही आचार्य हैं और वे यतिवृषभ हैं, यह भी उक्त ग्रन्थोंके ऊपर दिये गये उद्धरणोंसे भलीभांति सिद्ध है। फिर भी पाठक शंका कर सकते हैं और कह सकते हैं कि एक आचार्य अपनी रचनाके भीतर अन्य आचार्यकी रचनाका उल्लेख भी तो इन्हीं शब्दोंमें कर सकता है? अतएव ऐसी शंका करनेवालोंके पूर्ण समाधानके लिए उक्त चूर्णियोंमें से कुछ ऐसे समान शब्दों, पदों और अर्थवाली वाक्य-रचनाओंके यहाँ कुछ अवतरण दिये जाते हैं, जिनसे कि उन सबके एक-कर्तृक होनेमें कोई भी सन्देह नहीं रह जायगा।

(१) सर्व-प्रथम तीनों चूर्णियोंके मङ्गलपद्यों पर दृष्टिपात कीजिए। सतकचूर्णिके मङ्गल-पद्य इस प्रकार हैं—

सिद्धो णिद्धूयकम्मो सद्धम्मपणायगो तिजगणाहो।
सव्वजगुज्जोयकरो अमोहवयणो जयइ वीरो॥१॥

सव्वेवि गणहरिंदा सव्वजगीसेण लद्धसकारा।
सव्वजगमज्झयारे सुयकेवलिणो जयंति सया॥२॥

जिणहरमुहसंभूया गणहर-विरइयसरीरपविभागा।
भवियजणहिदयदइया सुयमयदेवी सया जयइ॥३॥

उक्त पद्योंमेंसे प्रथम पद्यमें वीर भगवान्‌को दूसरेमें गणधरों और श्रुतकेवलियोंको और तीसरेमें श्रुतमयदेवी जिनवाणीको नमस्कार किया गया है।

अब सित्तरीके मङ्गलपद्योंको देखिए—

सिद्धिविबंधणबंधुदय-संतखवणविहिदेसिओ सिद्धो।
भगवं भव्वजणगुरू विक्खायजसो जयइ वीरो ॥१॥

एक्कारस वि गणहरा सव्वे वइगोयरस्स पारगया।
सव्वसुयाणं पभवा सुयकेवलिणो जयंति सया ॥२॥

उक्त पद्योंमेंसे प्रथम पद्यमें वीर भगवान्‌को और दूसरे पद्यमें गणधर और श्रुतकेवलियोंको नमस्कार किया गया है। यद्यपि यहाँ पर श्रुतदेवीको पृथक् स्मरण नहीं किया, तथापि 'सव्वसुयाणं पभवा' पदके द्वारा प्रकारान्तरसे श्रुतदेवीका स्मरण कर ही लिया गया है।

दोनों मंगलपद्योंमें रेखाङ्कित-पद्य तो एकसे हैं ही, किंतु अन्य भी विशेषणपदोंमें अर्थकी दृष्टिसे साम्य हैं, इस बातको पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे।

अब कम्मपयडी के मंगल पद्यको दृष्टिगोचर कीजिये—

जयइ जगहितदमवितहममियगभीरत्थमणुपमं णिउणं।
जिणवयणमजियममियं सव्वजणसुहावहं जयइ ॥१॥

यद्यपि इस पद्यमें प्रकटरूपसे जिन-प्रवचन अर्थात् जिनवाणीका जयनाद किया गया है तथापि, 'जिन-वचन' के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है, वे उपर्युक्त दोनों चूर्णियों के मंगल-पद्योंमें वीर जिन और गणधरोंके लिए प्रयुक्त पदोंका आशय रखते हैं, और इस प्रकार अप्रकटरूपसे इस एक ही पद्य द्वारा जिन-वचनके साथ ही उन प्रवचनोंके जन्मदाता वीर भगवान्‌का और व्याख्याता गणधर और श्रुतकेवलियोंका भी स्मरण किया गया है, ऐसा समझना चाहिए।

(२) अब उक्त तीनों चूर्णियोंके ग्रन्थावतार करने वाले उत्थानिका वाक्योंको देखिए। सतकचूर्णिमें ग्रन्थावतार इस प्रकार किया गया है—

"सम्मदंसणणाणचरणतवमएहिं सत्थेहिं अट्ठविहकम्मगंठिं जाइ-जरा-मरणरोग-अन्नाणदुक्खबीयभूयं छिंदित्ता अजरममरमरुजमक्खयमव्वाबाहं परमणिव्वुइसुहं कहं नाम भव्वसत्ता पावज्ज त्ति आयपरहितेसीणं साहूणं पवित्ति। अओ अज्जकालियाणं साहूणं दुस्समाणुभावेणं आउ-बलमेहा-झाणाइगुणेहिं परिहीयमाणाणं अणुग्गहत्थं आयरिएण कयं सयपरिमाणणिप्फन्नणामगं सतगं ति पगरणं।"

अब कम्मपयडीचूर्णिकी उत्थानिका देखिये—

"सम्मदंसणणाणचरित्तलक्खणेणं पंडियवीरिय-परिणामेणं परिणता परम-केवलाइसयजुत्ता अणंतपरिणति-णिव्वुइसुहसंपत्तिभागिणो कहं णु णाम भव्वजीवा होहिंत्ति एस अहिगारो आय-परहिएसीणं साहूणं तन्निस्सेयससाहण-विहाणपरे य

इमंमि जिणसासणे दुस्समाबलेण खीयमाणमेहाउसद्धा-संवेगउज्जमारंभं अज्जकालियं साहुजणं अणुग्घेत्तुकामेण विच्छिन्नकम्मपयडिमहागंथत्थसंबोहणत्थं आरद्धं आइरिएणं तग्गुणणामगं कम्मपयडीसंगहणी णाम पगरणं ।

अब सित्तरीचूर्णिकी उत्थानिका देखिये—

सुह-दुक्ख-तकारणसरूवपरिण्णाणाओ सव्वजीवाणं सोक्खकारणाऽऽयाण-दुक्खकारणपरिच्चागनिमित्तो सव्वदुक्खविमोक्खलक्खणो परमसुहलंभो त्ति सुह-दुक्ख-तक्कारणनिद्देसो कायव्वो । दोसोवसामणाओ उत्तरकालं आरोग्गसुहलंभ इव सो सुहो सभाविओ त्ति पढममेव दुक्ख-तक्कारणपरूवणं परमरिसओ करेंति त्ति पच्छा सुहकारण-सुहाणं परूवणं त्ति । ताइं च कम्मपगयातिमहागंथेसु भणियाइं । ते य गंथा दुरवगाह त्ति काउं कालदोसोपहयमेहाऽऽउ-बलाणं अज्जकालियाणं साहूणं अणुग्गहत्थं आयरिएण कयं पमाणणिप्पण्णनामयं सत्तरि त्ति पगरणं ।

पाठक तीनों उत्थानिकाओंकी समता और एकताका स्वय ही अनुभव करेंगे । प्रथम और द्वितीय उत्थानिकामें तो आदिसे अन्ततक कितना अधिक शब्द-साम्य है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है, तीसरी उत्थानिकाके प्रारम्भिक भागका भी वही आशय है, जो कि प्रथम और द्वितीय उत्थानिकाओंके प्रारम्भिक भागोंका है । अन्तिम भाग तो शब्दशः और अर्थशः समान है ही ।

इस प्रकार उक्त तीनों ग्रन्थोंके मंगल-पद्योंकी तथा उत्थानिकाओंकी रचना-शैली और शब्द-विन्याससे स्पष्ट है कि तीनों चूर्णियोंके रचयिता एक ही आचार्य हैं ।

यह शंका की जा सकती है कि उपर्युक्त समता और तुलनासे भले ही तीनों ग्रन्थोंकी चूर्णिके कर्ता एक सिद्ध हो जावें, परन्तु कसायपाहुडचूर्णिके प्रारम्भमें न तो मंगलाचरण ही किया गया है और न कोई उत्थानिका ही दी गई है, फिर उसकी उक्त तीनों चूर्णियोंके साथ समता तुलना या एकता कैसे सम्भव है, और कैसे इन तीनोंके साथ उसके भी रचयिताके एकत्वकी संभावना की जा सकती है? इस शंकाका समाधान यह है कि यतः कम्मपयडी, सतक और सित्तरीके रचयिताओंने अपने-अपने ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरण किया है और साथ ही अपने-अपने प्रतिपाद्य विषयके सम्बन्धादिको भी प्रकट किया है, अतः उनमें उसी सरणीका अनुसरण चूर्णिकारने किया है । किन्तु कसायपाहुडकी रचना अतिसंक्षिप्त होनेसे यतः ग्रन्थकारने ही जब आरम्भमें न मंगलाचरण ही किया और न सम्बन्ध, अभिधेयादिको भी कहा; तब चूर्णिकारने भी ग्रन्थकारका अनुसरण कर न मंगलचरण ही किया और न कोई उत्थानिका ही लिखी, और इस प्रकार मूलग्रन्थकी सूत्रात्मक संक्षिप्त रचनाके समान अपनी चूर्णिको भी अतिसंक्षिप्त, असंदिग्ध एवं सारवान् पदोंसे रचा । यही कारण है कि कसायपाहुडचूर्णिके प्रत्येक वाक्यको उसके टीकाकारोंने सूत्रसंज्ञा दी है और इसलिए उसका प्रत्येक वाक्य 'चूर्णिसूत्र' नामसे ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है ।

१—तीनों ग्रन्थोंके मंगलपद्योंका अवतार उसके सम्बन्ध-अभिधेयको बतलाते हुए इस प्रकार किया गया है—

'तस्साइमा गाहा तित्थकरगुणत्थुइपणामपरा पगरणपिंडत्थनिद्देसत्था'–
(कम्मपयडी, पत्र १)

'तस्स पगरणस्स इमा आइमा गाहा मंगलाभिधेयाधारसत्थसंबंधत्था' (सतक, पत्र १)

'तस्स मंगलाऽभिधेयणिद्देस-संबंधत्था पढमगाहा,– (सित्तरी, पत्र १)

अब उपर्युक्त चारों चूर्णियोंसे कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनकी शब्द-विन्यास-पदावली एक-सी है, तथा भावभंगी और कथन-शैली भी समान है--

(१) सेसाणि जधा सम्मादिट्ठीए बंधे तधा णेदव्वाणि । (कसा० पृ० १७४, सू० १८४)
××× पगइ-ठिति-अणुभागप्पएसपगारेण नेयव्वाणि । (सितरी, पृ० ५४/२)

(२) एवमणुमाणिय सामित्तं णेदव्वं । (कसा० पृ० ४६१, सू० १६३)
एत्थ सामित्तं णेयव्वं । (सतकचू० पृ० २७/१)

(३) आदेसकसाएण जहा चित्तकम्मे लिहिदो कोहो रूसिदो तिवलिदणिडालो भिउडिं काऊण । (कसा० पृ० २४, सू० ५६)
कोहोदए जीवो तप्पज्जायपरिणओ होइ सरीरमवि तिवलियणिडालं परिसक्कमुहं भिउडीमभिवंजइ । (सतकचू०, पृ० ४)

(४) एदेण अट्ठपदेण । (कसा० पृ० ६२, सू० ८, पृ० १२३, सू० २३६)
एएण अट्ठपदेण । (सतकचू०, पृ० २८/२)

(५) सेसाणं पि कम्माणमेदेण बीजपदेण णेदव्वं (कसा०, पृ० १३६, सू० ३५२)
सेसाणं कम्माणमेदेण बीजपदेण अणुमग्गिदव्वं (कसा० पृ० १३६, सू० ३५२)
एतेण बीजेण वच्यमाणं (?) जहन्नगं णेतव्वं जहासंभवं । (सतकचू० पृ० ४८/१)

(६) एदाणुमाणिय सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं । (कसा० पृ० ६१०, सू० २४)
तेणऽणुमाणेणं कायादिगेसु वि मग्गणट्ठाणेसु भाणियव्वं । (सित्तरी पृ० ५४।२)

(७) णाणाजीवेहिं भंगविचयो भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं च एदाणि भाणिदव्वाणि । (कसा० ५२६, सू० ४५६)
पंचिंदियाणं सव्वाणि बंधट्ठाणाणि सविगप्पाणि भाणियव्वाणि ।
(सित्तरी, पृ० ५३।२)

(८) सेसेसु पदेसु जधा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स अहीणमदिरित्तं तत्थ णाणत्तं ।
(कसा०, पृ० ८६४, सू० १५५६)
एवं जा वितीयफड्डगस्स परूवणा भणिया, सा ततियफड्डगस्स वि अहीणमणतिरित्ता भाणियव्वा । (कम्मप० पृ० २६।१)

(९) णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामगा-पुव्वं ति भाणिदव्वं ।
(कसा० पृ० ३६४, सू० १७४)
नवरं बावीस-एगवीससंताणं परभवो न भाणियव्वो । (सित्तरी पृ० १५।२)

(१०) कम्हा ? जेण एगिंदियादयो जाव पंचिंदिया सव्वे तिरिय त्ति काउं।
(सतकचू० पृ० ५)

किंकारणं ? भण्णति-अतिचिरकालट्ठातिणि ठाणा थोवा भवंति ति काउं।
(कम्मप० पृ० ३३।२)

ऊपर दिये गये अवतरणोंसे पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे कि उपर्युक्त चारों चूर्णियाँ एक ही आचार्यकी कृतियां हैं।

कम्मपयडीचूर्णिकी भाषाके विषयमें यह बात ध्यान देनेके योग्य है कि मुद्रित कम्मपयडी-चूर्णिमें जिस प्रकारकी भाषा आज उपलब्ध है, वैसी पहले नहीं थी, किन्तु कसायपाहुडचूर्णिकी भाषाके ही समान थी। कम्मपयडीके संस्कृतटीकाकार आ० मलयगिरिने अपनी टीकामें—जोकि चूर्णिके आधार पर ही रची गई है—जहाँ कहीं अपने कथनकी पुष्टिके लिए चूर्णिके कुछ वाक्यों-को उद्धृत किया है, उन वाक्योंकी भाषा मुद्रित चूर्णिकी भाषासे भिन्न है और कसायपाहुडचूर्णि की भाषाके समान है। आ० मलयगिरिके ५०० वर्ष पश्चात् सत्तरहवीं शताब्दीमें उ० यशोविजय-जीने कम्मपयडीपर जो विस्तृत संस्कृतटीका रची है, उसमें भी चार-छह स्थलोंपर चूर्णिके उद्धरण दिये हैं, उनकी भी भाषा मुद्रित चूर्णिसे भिन्न है। इससे ज्ञात होता है कि आजसे ढाई-तीनसौ वर्षके पहले तक कम्मपयडीचूर्णिकी भाषा विभिन्न रही है। किन्तु इन ढाई-तीनसौ वर्षोंके भीतर ही किसी समय जानबूझकर उक्त चूर्णिकी भाषा परिवर्तित की गई है, ऐसा निश्चय मुद्रित कम्मपयडीचूर्णिके आलोडनसे होता है। भाषामें किस प्रकारका परिवर्तन किया गया है, इसके लिए एक नमूना उपस्थित किया जाता है—

'ताओ किट्टीओ पढमसमए केवडियाओ णिव्वत्तेदि' ?

इस वाक्यका भाषापरिवर्तन इस प्रकार किया गया है—

तातो किट्टीतो पढमसमते केवडियातो णिव्वत्तेति ?

मुद्रित सम्पूर्णकी भाषा इसी प्रकारकी है। यहां पर कम्मपयडीकी दोनों संस्कृतटीकाओं से ऐसे कुछ अवतरण दिये जाते हैं, जिनसे कि भाषा-परिवर्तनका निश्चय पाठकोंको भलीभांति से हो सके—

(१) मुद्रित पाठ—'पिण्डपगडीतो नामपगडीतो'। (कम्मप० बन्ध० प० ७२ पृ० १)
संस्कृत टीकागतपाठ—'पिंडपगईओ णामपगईओ'। (कम्मप० बन्ध० प० ७२ पृ० २)

(२) मुद्रितपाठ—'पुहुत्तसद्दो बहुत्तवाची'। (कम्मप० बन्ध० प० १६३ पृ० २)
सं० टीकागत पाठ—'पुहुत्तसद्दो बहुत्तवाइ त्ति'। (कम्मप० बन्ध० प० १६४ पृ० १)

(३) मुद्रित पाठ—'बन्धट्ठितीतो संतकम्मट्ठिती संखेज्जगुणा'। (कम्मप० संक० प० ५६ पृ० १)
सं० टीकागत पाठ—'बंधट्ठिईओ संतकम्मट्ठिई संखिज्जगुणा'। (कम्मप० संक० प० ५६)

(४) मुद्रितपाठ—'एत्थ वाघात इति ट्ठितिघातो'। (कम्मप० संक० प० १४६ पृ० १)
सं० टीकागतपाठ—'ठिइघाओ एत्थ होइ वाघाओ'। (कम्मप० संक० प० १४७ पृ० २)

(५) मुद्रितपाठ—'तं आरिसे न मिलति त्ति ण इच्छिज्जति'। (कम्मप० सत्ता० प० ३७)
सं० टीकागत पाठ—'तं आरिसे न मिलइ तेण ण इच्छिज्जइ'। (कम्मप०संत्ता०प० ३७)

क्या षट्खंडागमसूत्र भी चूर्णिसूत्र हैं ?

यद्यपि अन्य किसी भी आचार्यने षट्खंडागमके सूत्रोंका चूर्णिसूत्रोंके रूपसे उल्लेख किया हो, यह हमारे देखनेमें नहीं आया, तथापि उसकी धवला टीकामें उसके रचयिता स्वयं आ० वीरसेनने एक स्थल पर षट्खंडागमसूत्रका चूर्णिसूत्ररूपसे उल्लेख किया है। षट्खंडागमके चौथे वेदनाखंडमें कुछ बीजपदरूप गाथासूत्र आये हैं, और उन गाथासूत्रोंके व्याख्यात्मक अनेक सूत्रोंकी रचना आ० भूतबलिने की है। उन्हीं गाथासूत्रोंकी टीका करते हुए धवलाकार लिखते हैं—

'तिय' इदि वुत्ते ओहिणाणावरणीय--ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणं अणु-भागं पेक्खिदूण अण्णोण्णेण समाणाणं गहणं। कथं समाणत्तं णव्वदे? उवरि भण्ण-माणचुण्णिसुत्तादो। (धवला० ताम्र० पृ० ४७३।२)

अर्थात् गाथा-पठित 'तिय' पदसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्त-रायके अनुभागकी समानताका ज्ञान कैसे होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है कि आगे कहे जानेवाले चूर्णिसूत्रसे उक्त समानताका ज्ञान होता है।

जिस प्रकार कसायपाहुडके बीजपदरूप गाथासूत्रों पर आ० यतिवृषभने प्रस्तुत चूर्णि-सूत्र रचे हैं, ज्ञात होता है उसी प्रकारसे महाकम्मपयडिपाहुडके भी बीजपदरूप गाथासूत्र रहे हैं और उनका अधिकांश भाग धरसेनाचार्यसे भूतबलिको प्राप्त हुआ था और उनका ही आश्रय लेकर षट्खंडागमसूत्रोंकी रचना की गई है। यही कारण है कि वीरसेनाचार्यने उन्हें 'चूर्णिसूत्र' रूपसे उल्लेख किया है।

ये बीजपदरूप गाथासूत्र किस प्रकारके रहे हैं, यहां उनका एक उद्धरण दिया जाता है—

सादं जसुच्च-दे कं ते-आ-वे-मणु-अणंतगुणहीणा।
मिच्छं के-यं सादं वीरिय-अणंताणु-संजलणा॥

इस गाथामें विवक्षित कर्म-प्रकृतियोंका एक-एक या दो-दो अक्षररूप पदोंके द्वारा संकेत किया गया है। यथा—'दे' से देवगति, 'कं' से कार्मणशरीर और 'ते' से तैजसशरीरका। ऐसी तीन गाथाओंके आधार पर आ० भूतबलिने चौंसठ सूत्रोंकी रचना की है।

इस प्रकारके बीजपदात्मक कुछ गाथासूत्र केवल वेदना और वर्गणाखंडमें ही पाये जाते हैं।

गुणधर और यतिवृषभका समय

जयधवलाके सम्पादकोंने उसके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें आ० गुणधर और यति-वृषभके समयका निर्णय करनेके लिए बहुत कुछ विचार किया है, जिसे यहां दुहरानेकी आवश्य-कता नहीं है। उस सबको ध्यान में रखते हुए मेरे विचारसे—जैसा कि प्रस्तावनाके प्रारम्भमें बतलाया गया है—आ० गुणधर धरसेनाचार्यसे बहुत पहले उस समय हुए हैं, जब कि महा-कम्मपयडिपाहुडका पठन-पाठन अविच्छिन्न धारा-प्रवाहसे चल रहा था। और इस कारणसे उनका समय वी० नि० ६८३ से पीछे न होकर लगभग दो सौ वर्ष पूर्व होना चाहिए।

गुणधराचार्यके समयका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिए यद्यपि हमारे पास अभी समुचित साधन नहीं हैं, तथापि आ० अर्हद्बलि-द्वारा स्थापित संघोंमेंसे एकका नाम 'गुणधर

संघ' रखा जानेसे इतना तो सुनिश्चित है कि वे अर्हद्बलिसे पहले हो चुके हैं। यतः अर्हद्बलिका समय प्राकृत पट्टावलीके अनुसार वी० नि० ५६५ या वि० सं० ९५ सिद्ध है, अतः गुणधराचार्य-का समय उनसे पूर्व सिद्ध होता है। गुणधरकी परम्पराको ख्याति-प्राप्त करनेमें लगभग सौ वर्ष लगना स्वाभाविक हैं, अतएव पट्खंडागमकार श्री धरसेनाचार्यसे कसायपाहुडके प्रणेता श्री गुणधराचार्य लगभग दो सौ वर्ष पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं और इस प्रकार उनका समय विक्रमपूर्व एक शताब्दी सिद्ध होता है।

आ० यतिवृषभने अपनी तिलोयपण्णत्तिमें भ० महावीरके निर्वाणसे लेकर एक हजार वर्ष तक होनेवाले राजाओंके कालका उल्लेख किया है, अतः उसके पूर्व तो उनका होना सम्भव नहीं है। और यतः विशेषावश्यकभाष्यकार श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणने अपने विशेषावश्यकभाष्यमें चूर्णिकार यतिवृषभके आदेशकषाय-विषयक मतका उल्लेख किया है* और विशेषावश्यकभाष्यकी रचनाके शक सं० ५३१ (वि० सं० ६६६) में होनेका उल्लेख मिलता है, अतः वे वि० सं० ६६६ के बादके भी विद्वान् नहीं हो सकते।

आ० यतिवृषभ पूज्यपादसे पूर्वमें हुए हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें उनके एक मत-विशेषका उल्लेख किया है—

'अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ता।'

अर्थात् जिन आचार्योंके मतसे सासादन गुणस्थानवर्ती जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, उनके मतकी अपेक्षा बारह बटे चौदह भाग स्पर्शन-क्षेत्र नहीं कहा गया है।

यहां यह बात ज्ञातव्य है कि सासादनगुणस्थानवाला यदि मरे तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, यह आ० यतिवृषभका ही मत है ऐसा लब्धिसार-क्षपणासारके कर्ता आ० नेमिचन्द्रने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

जदि मरदि सासणो सो णिरय-तिरिक्खं णरं ण गच्छेदि।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेणं ॥ ३४६ ॥

---

* 'आदेसकसाएण जहा चित्तकम्मे लिहिदो कोहो रूसिदो तिवलिदणिडालो भिउडिं काऊण' यह कसायपाहुडके पेज्जदोसविहत्ती नामक प्रथम अधिकारका ५९ वाँ सूत्र है। इसका अर्थ है कि क्रोधके कारण जिसकी भृकुटि चढ़ी हुई है और ललाटपर तीन वली पड़ी हुई हैं, ऐसे क्रोधी मनुष्यका चित्रमें लिखित आकार आदेशकषाय है। किन्तु विशेषावश्यकभाष्यकार कहते हैं कि अन्तरंगमें कषायका उदय नहीं होने पर भी नाटक आदि में केवल अभिनयके लिए जो कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुए क्रोधी पुरुषका स्वांग धारण किया जाता है, वह आदेशकषाय है। इस प्रकारसे आदेशकषायका स्वरूप बतला करके भाष्यकार कसायपाहुडचूर्णिमें निर्दिष्ट स्वरूपका 'केइ' कह करके इस प्रकारसे उल्लेख करते हैं—

आएसओ कसाओ कइयवकयभिउडिभंगुराकारो।
केई चित्ताइगओ ठवणाणत्थंतरो सोऽयं ॥२९८१॥

अर्थात् कितने ही आचार्य क्रोधीके चित्रादिगत आकारको आदेशकषाय कहते हैं, परन्तु वह स्थापनाकषायसे भिन्न नहीं है, इसलिए नाटकादिके नकली क्रोधीके स्वांगको ही आदेशकषाय मानना चाहिए।

अर्थात् यतिवृषभाचार्यके वचनानुसार यदि सासादनगुणस्थानवर्ती मरता है, तो नियमसे देव होता है।

आ० यतिवृषभने कसायपाहुडकी चूर्णिमें अपने इस मतको इस प्रकारसे व्यक्त किया है—

आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं। णियमा देवगदिं गच्छदि। (कसा० अधि० १४, सू० ५४४)

इस सूत्रका अर्थ स्पष्ट है। इन उल्लेखोंसे स्पष्ट रूपसे यह सिद्ध है कि आ० यतिवृषभ आ० पूज्यपादसे पहले हुए हैं। यतः पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दिने वि० सं०५२६ में द्रविड़संघकी स्थापना की है और यतिवृषभके मतका पूज्यपादने उल्लेख किया है, अतः उनका वि० सं० ५२६ के पूर्व होना निश्चित है। इससे यह स्पष्ट फलित होता है कि यतिवृषभका समय विक्रमकी छठी शताब्दिका प्रथम चरण है।

कसायपाहुडका अन्य ग्रन्थकारों पर प्रभाव

कसायपाहुडकी रचनाके पश्चात् रचे गये ग्रन्थोंका आलोड़न करनेसे ज्ञात होता है कि वह अपने विषयका इतना सुसम्बद्ध, गहन होते हुये भी सुगम एवं अनुपम ग्रन्थ है कि परवर्ती ग्रन्थकारोंने उसके कई विषयोंका स्पर्श भी नहीं किया है। हां, गाथा-सूत्रोंसे सूचित बन्धका भूतबलिने अपने महाबन्धमें; बन्ध–संक्रमण और उदय-उदीरणाका शिवशर्मने अपनी कम्मपयडीमें और सम्यक्त्व, देशसंयम-संयमलब्धि तथा क्षपणाका नेमिचन्द्रने क्रमशः अपने लब्धिसार-क्षपणासार ग्रन्थमें अवश्य ही विभापात्मक विवेचन किया है। किन्तु उसके प्रेयोद्वेष-विभक्ति, उपयोग, चतुःस्थान और व्यजन नामक अधिकारोंपर किसी परवर्ती ग्रन्थकारने कुछ अधिक प्रकाश डालकर विवेचन किया हो, यह हमारे देखनेमें नहीं आया। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि गुणधराचार्यके पश्चात् पेज्जदोसपाहुड-विषयक उक्त अधिकारोंका ज्ञान अधिकांशमें विलुप्त ही हो गया। जो कुछ भी तद्विषयक थोड़ा-बहुत ज्ञान अवशिष्ट रहा था, उसे पीछे होने वाले आचार्योंने कसायपाहुडका टीकाकार बन करके अपनी-अपनी रचनाओंमें निबद्ध कर दिया। यही कारण है कि इस ग्रन्थ पर विभिन्न आचार्योंने चूर्णि उच्चारणावृत्ति, पद्धति, चूडामणि और जयधवला नामसे प्रसिद्ध अनेक भाष्य और टीका-ग्रन्थ रचे, जिनका कि प्रमाण दो लाख श्लोकोंके लगभग है।

कसायपाहुडके जिन विषयों पर परवर्ती ग्रन्थकारोंने अपनी रचनाओंमें कुछ अधिक प्रकाश डाला है, उनमें भी इसकी अनेक गाथाएँ ज्यों की त्यों या साधारणसे पाठ-भेदके साथ पाई जाती हैं, जिनकी संख्या कम्मपयडीमें १७ और लब्धिसार-क्षपणासारमें १५ है। जिनका विवरण इस प्रकार है—कसायपाहुडकी गाथाङ्क२७ से लेकर३९ तककी १३गाथाएँ तथा १०४,१०७, १०८, १०९ ये चार गाथाएँ कम्मपयडीमें गाथाङ्क ११२ से लेकर १२४ तक, तथा ३३३ से लेकर ३३६ तक क्रमशः पाई जाती हैं। इसी प्रकार कसायपाहुडकी ९७, ९८, १०३, १०८, ११०, १३८, १३९, १४३, १४४, १४६, १४८, १५२, १५३, १५४ और १५६ नम्बर वाली १५ गाथाएँ क्रमशः लब्धिसार-क्षपणासारमें ९९, १०१, १०२, १०९, ११०, ४३५, ४३६, ४५०, ४३८, ४५१, ४५२, ३९८, ३९९, ४०० और ४०१ नम्बर पर पाई जाती हैं।

आ० नेमिचन्द्रने अपने लब्धिसार-क्षपणासारमें कसायपाहुडकी उक्त गाथाओंको ज्योंका त्यों अपनानेके अतिरिक्त अनेक गाथाओंका आशय लेकर भी अनेक गाथाएँ रची हैं।

इसके अतिरिक्त उक्त अधिकारों पर रचे हुए यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंके आधार पर प्रायः शेष सर्व ही गाथाओंकी रचना की है। यदि सीधे शब्दोंमें कहा जाय तो यह कह सकते हैं कि सचूर्णि कसायपाहुडके सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयमलब्धि नामक तीन अधिकारोंका लब्धिसारमें तथा क्षपणाधिकारका क्षपणासारमें सार खींच करके रख दिया है और इस प्रकार उनका उक्त ग्रन्थ अपने नामको ही सार्थक कर रहा है।

इसी प्रकार कसायपाहुडके क्षपणाधिकारके गाथासूत्रों और चूर्णिसूत्रोंके आधार पर माधवचन्द्र त्रैविद्यने अपने संस्कृत क्षपणासारकी रचना की है। यह ग्रन्थ प्रायः चूर्णिसूत्रोंके छायात्मक संस्कृत गद्यमें यथासंभव और यथावश्यक पल्लवित एवं परिवर्धित करते हुए लिखा गया है। अभी कुछ दिनों पूर्व ही इसकी प्रतियां जयपुरके तेरहपंथी बड़ा मन्दिरके शास्त्रभंडारसे उपलब्ध हुई हैं। ग्रन्थके सामने न होनेसे इच्छा होते हुए भी हम उसके यहां पर तुलनात्मक उद्धरण देनेसे वंचित हैं।

कसायपाहुडकी मूल गाथाओं और उसके चूर्णिसूत्रोंका श्रीचन्द्रर्षि महत्तरने अपने पंच-संग्रहमें यथास्थान भरपूर उपयोग किया है, इसे उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है। पंचसंग्रहका प्रारम्भ करते हुए उन्होंने स्वयं ही लिखा है—

'सयगादि पंच गंथा जहारिहं जेण एत्थ संखित्ता ।'

इसकी टीका करते हुए आ० मलयगिरिने ही लिखा है—

'पञ्चानां शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत-सत्कर्म-कर्मप्रकृतिलक्षणानां ग्रन्थानां'

अर्थात् मैंने अपने इस पंचसंग्रहमें शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत सत्कर्मप्राभृत और कर्मप्रकृति नामक पांच ग्रन्थोंका संक्षेपसे यथायोग्य वर्णन किया है।

इस उल्लेखसे कसायपाहुडका महत्त्व और प्राचीनत्व दोनों ही स्पष्टरूपसे सिद्ध हैं।

विषय-परिचय

संसार-परिभ्रमणका कारण—

यह तो सभी आस्तिक मतवाले मानते हैं कि यह जीव अनादिकालसे संसारमें भटक रहा है और जन्म-मरणके चक्कर लगाते हुए नाना प्रकारके शारीरिक और मानसिक कष्टोंको भोग रहा है। परन्तु प्रश्न यह है कि जीवके इस संसार-परिभ्रमणका कारण क्या है? सभी आस्तिकवादियोंने इस प्रश्नके उत्तर देनेके प्रयास किया है। कोई संसार-परिभ्रमणका कारण अदृष्टको मानता है, तो कोई अपूर्व, दैव, वासना, योग्यता आदिको बतलाता है। कोई इसका कारण पुरातन कर्मोंको कहता है, तो कोई यह सब ईश्वर-कृत मानकर उक्त प्रश्नका समाधान करता है। पर विचारकोंने काफी ऊहापोहके बाद यह स्थिर किया कि जब ईश्वर जगत्का कर्त्ता ही सिद्ध नहीं होता तब उसे संसार-परिभ्रमणका कारण भी नहीं माना जा सकता, और न उसे सुख-दुःखका दाता ही मान सकते हैं। तब फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये अदृष्ट, दैव, कर्म आदि क्या वस्तु हैं? संक्षेपमें यहां पर उनका कुछ विचार किया जाता है।

नैयायिक-वैशेषिक लोग अदृष्टको आत्माका गुण मानते हैं। उनका कहना है कि हमारे किसी भी भले या बुरे कार्यका संस्कार हमारी आत्मा पर पड़ता है और उससे आत्मामें

अदृष्ट नामक गुण उत्पन्न होता है। यह तब तक आत्मामें बना रहता है जब तक कि हमारे भले या बुरे कार्यका फल हमें नहीं मिल जाता है।

सांख्य लोगोंका कहना है कि हमारे भले-बुरे कार्योंका संस्कार प्रकृति पर पड़ता है और इस प्रकृति-गत संस्कारसे सुख-दुःख मिला करते हैं।

बौद्धोंका कहना है कि हमारे भले-बुरे कार्योंसे चित्तमें वासनारूप एक संस्कार पड़ता है जो कि आगामी कालमें सुख-दुःखका कारण होता है।

इस प्रकार विभिन्न दार्शनिकोंका इस विषयमें प्रायः एक मत है कि हमारे भले-बुरे कार्योंसे आत्मामें एक संस्कार उत्पन्न होता है और यही हमारे सुख-दुःख, जीवन-मरण और संसार-परिभ्रमणका कारण है। परन्तु जैन दर्शनकी यह विशेषता है कि जहां वह भले-बुरे कार्योंके प्रेरक विचारोंसे आत्मामें संस्कार मानता है, वहां वह उस संस्कारके साथ ही एक विशेष जातिके सूक्ष्म पुद्गलोंका आत्मासे सम्बन्ध होना भी मानता है।

इसी बातको श्रीकुन्दकुन्दाचार्यने अपने प्रवचनसारमें इस प्रकार कहा है—

> परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो।
> तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥९५॥

जब राग-द्वेषसे युक्त आत्मा शुभ या अशुभ कार्यमें परिणत होता है, तब कर्मरूपी रज ज्ञानावरणादि रूपसे परिणत होकर आत्मामें प्रवेश करती है।

कहनेका साराँश यह है कि किसी भी भले या बुरे कार्यको करनेके लिए आत्माके जो अच्छे या बुरे भाव होते हैं, उनका निमित्त पाकर सूक्ष्म पुद्गल कर्मरूपसे परिणत होकर आत्मासे बँध जाते हैं और कालान्तरमें वे सुख या दुःखरूप फल देते हैं।

कर्मबन्धसे जीव संसार-चक्रमें किस प्रकार परिभ्रमण करता है, इसका विवेचन श्री कुन्दकुन्दाचार्यने अपने पंचास्तिकायमें इस प्रकार किया है—

> जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
> परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥
> गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
> तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥ १२९ ॥

जो जीव संसारमें स्थित हैं, उसके राग-द्वेषरूप परिणाम उत्पन्न होते हैं। उन राग-द्वेषरूप परिणामोंके निमित्तसे नये कर्म बंधते हैं। कर्मोंके उदयसे देव-मनुष्यादि गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है। गतियोंमें जन्म लेने पर देह प्राप्त होता है। देहकी प्राप्तिसे इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे राग और द्वेषरूप परिणाम होते हैं। इस प्रकार संसार-चक्रमें परिभ्रमण करते हुए जीवके राग-द्वेषरूप भावोंसे कर्म-बन्ध और कर्मबन्धसे राग-द्वेषरूप भाव होते रहते हैं।

उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि संसारके परिभ्रमणका कारण कर्मबन्ध है और कर्मबन्धका कारण राग-द्वेष है। राग-द्वेषका ही दूसरा नाम कषाय है। राग-द्वेषका भी मूल कारण मोह या अज्ञान है। आत्माके वास्तविक स्वरूपकी अजानकारी या विपरीत जानकारीका नाम मोह है। इस प्रकार राग-द्वेष और मोह ही संसार-परिभ्रमणके कारण हैं और इनके कारण ही जीव नाना प्रकारके कष्टोंको भोगा करता है।

कर्मका स्वरूप और कर्मबन्धके कारण—

कर्म शब्दका अर्थ क्रिया है, अर्थात् जीव (प्राणी)के द्वारा की जानेवाली क्रियाको कर्म कहते हैं। कर्म शब्दका ऐसा व्युत्पत्ति-फलित अर्थ होनेपर भी जैन-मान्यताके अनुसार इतना विशेष जानना आवश्यक है कि संसारी जीवके प्रति समय जो मन, वचन और कायकी परिस्पन्द (हलन-चलन) रूप क्रिया होती है, उसे योग कहते हैं और योगके निमित्तसे वे सूक्ष्म पुद्गल जिन्हें कि कर्म-परमाणु कहते हैं आत्माकी ओर आकृष्ट होते हैं और आत्माके राग-द्वेषरूप कषायका निमित्त पाकर आत्मासे संबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार कर्म-परमाणुओंको आत्माके भीतर लानेका कार्य योग करता है और उसका आत्म-प्रदेशोंके साथ बन्ध करानेका कार्य कषाय अर्थात् आत्माके राग-द्वेषरूप भाव करते हैं। जैन-परिभाषाके अनुसार मन-वचन-कायकी चंचलतासे कर्मरूप सूक्ष्म परमाणुओंका आत्माके भीतर आना आस्रव कहलाता है और राग-द्वेषरूप कषायोंके द्वारा उनका आत्म-प्रदेशोंके साथ संबद्ध होना बन्ध कहलाता है। उपर्युक्त विवेचनका सार यह है कि आत्माकी योगशक्ति और कषाय ये दोनों ही कर्म-बन्धके कारण हैं।

यदि आत्मासे कषाय दूर हो जाय, तो योगके रहने तक कर्म-परमाणुओंका आगमन तो अवश्य होगा, किन्तु कषायके न होनेके कारण वे आत्माके भीतर ठहर नहीं सकेंगे। दृष्टान्तके तौर पर योगको वायुकी, कषायको गोंदकी, आत्माको दीवारकी और कर्म-परमाणुओंको धूलिकी उपमा दी जा सकती है। यदि दीवार पर गोंदका लेप लगा हो, तो वायुके द्वारा उड़नेवाली धूलि दीवार पर आकर चिपक जाती है। यदि दीवार निर्लेप और सूखी हो, तो वायुके द्वारा उड़ कर आनेवाली धूलि दीवारपर न चिपक कर तुरन्त झड़ जाती है। यहाँ धूलिका हीनाधिक परिमाणमें उड़कर आना वायुके वेग पर निर्भर है। यदि वायुका वेग तीव्र होगा, तो धूलि भी अधिक भारी परिमाणमें उड़ती है और यदि वायुका वेग मन्द होगा, तो धूलि भी कम परिमाणमें उड़ती है। इसी प्रकार दीवार पर धूलिका कम या अधिक दिनों तक चिपके रहना उस पर लगे गोंदके लेप आदिकी चिपकानेवाली शक्तिकी हीनाधिकता पर निर्भर है। यदि दीवार केवल पानीसे गीली है, तो उसपर लगी धूलि जल्दी झड़ जाती है और यदि तेल या गोंदका लेप दीवारपर लगा हो, तो बहुत दिनोंमें झड़ती है। यही बात योग और कषायके बारेमें जानना चाहिए। योगशक्तिकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार आकृष्ट होनेवाले कर्म-परमाणुओंका परिमाण भी हीनाधिक होता है। यदि योगशक्ति उत्कृष्ट होती है तो कर्मपरमाणु भी अधिक संख्यामें आत्माकी ओर आकृष्ट होते हैं और यदि योगशक्ति मध्यम या जघन्य होती है तो कर्मपरमाणु भी तदनुसार उत्तरोत्तर अल्प परिमाणमें आत्माकी ओर आकृष्ट होते हैं। इसी प्रकार कषाय यदि तीव्र होती है तो कर्म-परमाणु आत्माके साथ अधिक दिनों तक बँधे रहते हैं और फल भी तीव्र देते हैं। और यदि कषाय मन्द होती हैं, तो परमाणु कम समय तक आत्मासे बँधे रहते हैं और फल भी कम देते हैं। यद्यपि इसमें कुछ अपवाद हैं, तथापि यह एक साधारण नियम है।

कर्मबन्धके भेद—

इस प्रकार योग और कषायके निमित्तसे आत्माके साथ कर्म-परमाणुओंका जो बन्ध होता है वह चार प्रकारका होता है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। प्रकृतिनाम स्वभावका है। आनेवाले कर्मपरमाणुओंके भीतर जो आत्माके ज्ञान-दर्शनादिक गुणों-के घातनेका स्वभाव पड़ता है, उसे प्रकृतिबन्ध कहते हैं। स्थिति नाम कालकी मर्यादाका है। कर्म-परमाणुओंके आनेके साथ ही उनकी स्थिति भी बन्ध जाती है, कि ये अमुक समय तक

आत्माके साथ बंधे रहेंगे। कर्मोंके फल देनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं। कर्म-परमाणुओंमें आनेके साथ ही तीव्र या मन्द फल देनेकी शक्ति भी. पड़ जाती है, इसीको अनुभागबन्ध कहते हैं। आनेवाले कर्म-परमाणुओंके नियत परिमाणमें आत्मासे संबद्ध होनेको प्रदेशबन्ध कहते हैं। इन चारों प्रकारोंके बन्धोंमेंसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योग है और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबन्धका कारण कषाय है। अर्थात् आत्माके भीतर आनेवाले कर्म-परमाणुओंमें अनेक प्रकारका स्वभाव पड़ना और उनका हीनाधिक संख्यामें बन्ध होना ये दो काम योग पर निर्भर हैं। तथा उन्हीं कर्म-परमाणुओंका आत्माके साथ कम या अधिक काल तक ठहरे रहना और तीव्र या मन्द फल देनेकी शक्तिका पड़ना ये दो काम कषायके आश्रित हैं।

प्रकृतिबन्ध—उपर्युक्त चारों प्रकारके बन्धोंमेंसे प्रकृतिबन्धके आठ भेद हैं—१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय। ज्ञानावरणकर्म आत्माके ज्ञानगुणका आवरण करता है, अर्थात् उसके ज्ञानगुणको ढक देता है, या प्रगट नहीं होने देता। इस कर्मके निमित्तसे ही कोई अल्प-ज्ञानी और कोई विशेष-ज्ञानी देखा जाता है। दर्शनावरणकर्म दर्शनगुणका अर्थात् देखनेकी शक्तिका आवरण करता है। वेदनीयकर्म आत्माको सुख या दुःख का वेदन कराता है। आत्मामें राग, द्वेष और मोह को उत्पन्न करनेवाले कर्मको मोहनीय कहते हैं। इस कर्मके उदयसे प्रथम तो आत्माको यथार्थ सुखके मार्गका भान ही नहीं होता। दूसरे यदि सत्यार्थ मार्गका भान भी हो जाय, तो उसपर वह चलने नहीं देता। मनुष्य, पशु और जीव-जन्तु आदि प्राणियोंके शरीरमें नियत काल तक रोक कर रखने वाले कर्मको आयुकर्म कहते हैं। आयुकर्मके उदयको जन्म और उसके विच्छेदको मरण कहते हैं। नाना प्रकारके भले-बुरे शरीर, उनके विविध अंग और उपांगों आदिकी रचना करनेवाले कर्मको नामकर्म कहते हैं। अच्छे या बुरे संस्कारों वाले कुल, वंश आदिमें उत्पन्न करनेवाले कर्मको गोत्रकर्म कहते हैं। इच्छित या मनोऽभिलषित वस्तुकी प्राप्तिमें विघ्न करने वाले कर्मको अन्तराय कहते हैं। इन आठ कर्मोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म कहलाते हैं; क्योंकि ये चारों ही आत्माके ज्ञान-दर्शनादि अनुजीवी गुणोंका घात करते हैं। शेष चार अघातिया कर्म कहलाते हैं, क्योंकि वे आत्माके गुणोंका घात करनेमें असमर्थ हैं। घातिया कर्मोंमें भी दो विभाग हैं—देशघाती और सर्वघाती। जो कर्म आत्माके गुणका एक देश घात करता है, वह देशघाती कहलाता है और जो आत्म-गुणका पूर्णरूपसे घात करता है, वह सर्वघाती कहलाता है। अघातिया कर्मोंमें भी दो भेद हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म। चारों घातियाकर्म पापरूप ही होते हैं। अघातिया कर्मोंमें साता वेदनीय, शुभ आयु, नामकर्मकी शुभ प्रकृतियां और उच्चगोत्र पुण्यकर्म हैं, और शेष प्रकृतियां पापकर्म हैं।

उपर्युक्त आठ कर्मोंमें जो मोहनीय कर्म है, वह राग, द्वेष और मोहका जनक होनेसे सर्व कर्मोंका नायक माना गया है, इसलिए सबसे पहले उसके दूर करनेका ही महर्षियोंने उपदेश दिया है। मोहनीय कर्मके दो भेद हैं—एक दर्शन मोहनीय और दूसरा चारित्र मोहनीय। दर्शन-मोहनीय कर्म जीवको आत्मस्वरूपका यथार्थ दर्शन नहीं होने देता, उसे संसारकी मायामें मोहित करके रखता है, इसलिए उसे राग, द्वेष और मोहकी त्रिपुटीमें 'मोह' नामसे पुकारते हैं। दूसरा भेद जो चारित्रमोहनीयकर्म है, उसके उदयसे जीव सांसारिक वस्तुओंमेंसे किसीको भला जान कर उसमें राग करता है और किसीको बुरा जानकर उससे द्वेष करता है। क्रोध, मान, माया और लोभ रूप जो चारों कषाय लोकमें प्रसिद्ध हैं, वे इसी कर्मके उदयसे होती हैं। इन चारों कषायोंको राग और द्वेषमें विभाजित किया गया है। चूर्णिकारने विभिन्न नयोंकी अपेक्षा कषा-

योंका विभाजन राग और द्वेषमें किया है। मोटे तौर पर क्रोध और मानको द्वेषरूप माना गया है, क्योंकि, इनके करनेसे दूसरोंको दुःख होता है। तथा माया और लोभको रागरूप माना गया है, क्योंकि इन्हें करके मनुष्य अपने भीतर सुख, आनन्द या हर्षका अनुभव करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पन्द्रह अधिकारोंमें विभक्त है और उनमें राग-द्वेष-मोहका तथा कषायोंकी बन्ध, उदय और सत्त्व आदि विविध दशाओंका विस्तृत व्याख्यान किया गया है। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१ पेज्जदोसविभक्ति—इस अधिकारमें कषायोंका अनेक दृष्टियोंसे राग-द्वेषमें विभाग कर यह बतलाया गया है कि राग-द्वेष और कषाय क्या वस्तु हैं, इनके कितने भेद हैं, वे किसके होते हैं, कब होते हैं और होने पर वे कितनी देर तक रहते हैं। इनका अन्तरकाल क्या है और इनके धारण करनेवाले जीव किस प्रकारके हीनाधिक परिमाणमें पाये जाते हैं।

विभक्ति महाधिकार—इस अधिकारमें वस्तुतः प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, प्रदेशविभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक ये छह अवान्तर अधिकार हैं।

प्रकृतिविभक्ति—योगके निमित्तसे आत्माके भीतर आनेवाले पुद्गल कर्मोंमें जो ज्ञान-दर्शनादि गुणोंके रोकने या आवरण करनेका स्वभाव पड़ता है, उसे प्रकृति कहते हैं। विभक्ति शब्दका अर्थ विभाग है। आठ कर्मोंमेंसे प्रस्तुत ग्रन्थमें केवल एक मोहनीय कर्मका ही वर्णन किया गया है। मोहनीय कर्मके मूल भेद दो और उत्तरभेद अट्ठाईस बतलाये गये हैं †, उनका एक-एक रूपसे तथा अट्ठाईस, सत्ताईस आदि प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंकी अपेक्षा इस अधिकारमें विस्तृत विवेचन किया गया है।

२ स्थितिविभक्ति—आने वाले कर्म आत्माके भीतर जितने समय तक विद्यमान रहते हैं, उनकी काल-मर्यादाको स्थिति कहते हैं। प्रस्तुत अधिकारमें मोहनीय कर्मके अट्ठाईस भेदोंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन अनेक अनुयोगद्वारोंसे किया गया है।

३ अनुभागविभक्ति—कर्मोंके फल देनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं। फल देनेकी तीव्रता और मन्दताकी अपेक्षा अनुभाग लता, दारु (काष्ठ) अस्थि (हड्डी) और शैलके रूपसे चार प्रकारका होता है। लता नाम बेल का है। जिस प्रकार लता बहुत कोमल होती है, उससे काष्ठ अधिक कठोर होता है, काष्ठसे हड्डी और भी कठोर होती है और पत्थरकी शिला सबसे

---

† मोहकर्मके मूलमें दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति। चारित्रमोहनीयकर्मके भी दो भेद हैं—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीयके १६ भेद हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध,मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलनक्रोध, मान, माया, लोभ। नोकषायवेदनीयके ९ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। इस प्रकार सर्व मिलाकर चारित्रमोहनीयकर्मके २५ भेद होते हैं और दोनों के भेद मिलाकर मोहकर्मके २८ भेद हो जाते हैं। इनमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार प्रकृतियां और दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियां, ये सात प्रकृतियां आत्माके सम्यग्दर्शन गुणका घात करती हैं और इन सातोंके अभाव होनेपर आत्माका उक्त गुण प्रकट होता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरणकषाय देशसंयमकी, प्रत्याख्यानावरणकषाय सकलसंयमकी और संज्वलनकषाय यथाख्यातसंयमकी घातक हैं। नवों नोकषाय उत्पन्न हुए चारित्रके भीतर अतीचार, मल या दोष उत्पन्न करते रहते हैं। जब आत्माके भीतरसे कषाय और नोकषायका अभाव हो जाता है, तब आत्मामें वीतरागतारूप शान्त दशा प्रकट हो जाती है।

अधिक कठोर होती है, उसी प्रकारसे कर्मोंके भीतर भी हीनाधिकरूपसे चार प्रकारके फल देनेकी शक्ति पाई जाती है। अनुभागविभक्तिमें मोहकर्मके अनुभागका उक्त चारों प्रकारोंसे वर्णन किया गया है।

प्रदेशविभक्ति—एक समयमें आत्माके भीतर आनेवाले कर्म-परमाणुओंका तत्काल सर्व कर्मोंमें विभाजन हो जाता है। उसमेंसे जितने कर्म-प्रदेश मोहनीयकर्मके हिस्सेमें आते हैं, उनका भी विभाग उसके उत्तर भेद-प्रभेदोंमें होता है। मोहकर्मके इस प्रकारके प्रदेश-सत्त्वका वर्णन इस प्रदेशविभक्तिनामक अधिकारमें अनेक अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा किया गया है।

क्षीणाक्षीणाधिकार—किस स्थितिमें अवस्थित कर्म-प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदयके योग्य एवं अयोग्य होते हैं, इस बातका विवेचन क्षीणाक्षीण अधिकारमें किया गया है। कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके बढ़नेको उत्कर्षण, घटनेको अपकर्षण और अन्य प्रकृतिरूपसे परिवर्तित होनेको संक्रमण कहते हैं। सत्तामें अवस्थित कर्मका समय पाकर फल-प्रदान करनेको उदय कहते हैं। जो कर्म-प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदयके योग्य होते हैं, उन्हें क्षीणस्थितिक कहते हैं, तथा जो कर्म-प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदयके योग्य नहीं होते हैं उन्हें अक्षीणस्थितिक कहते हैं। प्रस्तुत अधिकारमें इन दोनों प्रकारके कर्मोंका वर्णन किया गया है।

स्थित्यन्तिक—अनेक प्रकारकी स्थितियोंको प्राप्त होनेवाले कर्म-परमाणुओंको स्थितिक या स्थित्यन्तिक कहते हैं। ये स्थिति-प्राप्त कर्म-प्रदेश उत्कृष्टस्थिति, निषेकस्थिति, यथा-निषेकस्थिति और उदयस्थितिके भेदसे चार प्रकारके होते हैं। जो कर्म बंधनेके समयसे लेकर उस कर्मकी जितनी स्थिति है, उतने समय तक सत्तामें रहकर अपनी स्थितिके अन्तिम समयमें उदय-को प्राप्त होता है, उसे उत्कृष्टस्थितिप्राप्त कर्म कहते हैं। जो कर्मप्रदेश बन्धके समय जिस स्थिति-में निक्षिप्त किया गया है, तदनन्तर उसका उत्कर्षण या अपकर्षण होनेपर भी उसी स्थितिको प्राप्त होकर जो उदय-कालमें दिखाई देता है, उसे निषेकस्थितिप्राप्त-कर्म कहते हैं। बन्धके समय जो कर्म जिस स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है यदि वह उत्कर्षण और अपकर्षण न होकर उसी स्थितिके रहते हुए उदयमें आता है, तो उसे यथानिषेकस्थिति-प्राप्त कर्म कहते हैं। जो कर्म जिस किसी स्थितिको प्राप्त होकर उदयमें आता है, उसे उदयस्थिति-प्राप्त कर्म कहते हैं। प्रकृत अधिकारमें इन चारों ही प्रकारोंके कर्मोंका वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त छह अधिकारोंमेंसे प्रारम्भके दो अधिकारोंका वर्णन स्थितिविभक्ति नामक दूसरे अधिकारमें किया गया है और शेष चारों अधिकारोंका अन्तर्भाव अनुभागविभक्तिमें किया गया है। अतएव दूसरे अधिकारका नाम स्थितिविभक्ति और तीसरे अधिकारका नाम अनुभागविभक्ति जानना चाहिए।

४ बन्ध-अधिकार—जीवके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगके निमित्त-से पुद्गल-परमाणुओंका कर्मरूपसे परिणत होकर जीवके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्ररूपसे बंधनेको बन्ध कहते हैं। बन्ध के चार भेद पहले बतलाये जा चुके हैं। प्रकृत अधिकारमें उनका वर्णन किया गया है।

५ संक्रम-अधिकार—बंधे हुए कर्मोंका यथासंभव अपने अवान्तर भेदोंमें संक्रान्त या परिवर्तित होनेको संक्रम कहते हैं। बन्धके समान संक्रम के भी चार भेद हैं—१ प्रकृतिसंक्रम २ स्थितिसंक्रम, ३ अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम। एक कर्म-प्रकृतिके दूसरी प्रकृतिरूप हो

जानेको प्रकृतिसंक्रम कहते हैं। जैसे सातावेदनीयका असातावेदनीयरूपसे परिणत हो जाना। विवक्षित कर्मकी जितनी स्थिति पड़ी थी, परिणामोंके वशसे उसके हीनाधिक होनेको या अन्य प्रकृतिकी स्थितिरूपसे परिणत हो जाने को स्थितिसंक्रम कहते हैं। सातावेदनीय आदि जिन प्रकृतियोंमें जिस जातिके सुखादि देनेकी शक्ति थी, उसके हीनाधिक होने या अन्य प्रकृतिके अनुभागरूपसे परिणत होनेको अनुभागसंक्रम कहते हैं। विवक्षित समयमें आये हुए कर्म-परमाणुओंमेंसे विभाजनके अनुसार जिस कर्म-प्रकृतिको जितने प्रदेश मिले थे, उनके अन्य प्रकृति-गत प्रदेशोंके रूपसे संक्रान्त होनेको प्रदेशसंक्रमण कहते हैं। इस अधिकारमें मोहकर्मके उक्त चारों प्रकारके संक्रमका अनेक अनुयोगद्वारोंसे बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है।

६ वेदक-अधिकार--इस अधिकारमें मोहनीय कर्मके वेदन अर्थात् फलानुभवनका वर्णन किया गया है। कर्म अपना फल उदयसे भी देते हैं और उदीरणासे भी देते हैं। स्थितिके अनुसार निश्चित समय पर कर्मके फल देनेको उदय कहते हैं। तथा उपाय-विशेषसे असमयमें ही निश्चित समयके पूर्व फलके देनेको उदीरणा कहते हैं। जैसे डालमें लगे हुए आमका समय पर पक कर स्वयं गिरना उदय है। तथा पकनेके पूर्व ही उसे तोड़कर पाल आदिमें रखकर समयके भी बहुत पहले उसका पका लेना उदीरणा है। ये दोनों ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेद से चार-चार प्रकारके होते हैं। इन सबका प्रकृत अधिकारमें अनेक अनुयोगद्वारोंसे बहुत विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है।

७ उपयोग-अधिकार—जीवके क्रोध, मान, मायादि रूप परिणामोंके होनेको उपयोग कहते हैं। इस अधिकारमें क्रोधादि चारों कषायोंके उपयोगका वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि एक जीवके एक कषायका उदय कितने काल तक रहता है, किस गतिके जीवके कौनसी कषाय वार-वार उदयमें आती है, एक भवमें एक कषायका उदय कितने वार होता है और एक कषायका उदय कितने भवों तक रहता है? जितने जीव वर्तमान समयमें जिस कषायसे उपयुक्त हैं, क्या वे उतने ही पहले उसी कषायसे उपयुक्त थे और क्या आगे भी उपयुक्त रहेंगे? इत्यादि रूपसे कषाय-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातोंका बहुत ही वैज्ञानिक विवेचन इस उपयोग-अधिकारमें किया गया है।

८ चतुःस्थान-अधिकार---घातिया कर्मोंमें फल देनेकी शक्तिकी अपेक्षा लता, दारु, अस्थि और शैलरूप चार स्थानोंका विभाग किया जाता है, उन्हें क्रमशः एकस्थान द्विस्थान, त्रिस्थान और चतुःस्थान कहते हैं। इस अधिकारमें क्रोधादि चारों कषायोंके उक्त चारों स्थानोंका वर्णन किया गया है, इसलिए इस अधिकारका नाम चतुःस्थान है। इसमें बतलाया गया है कि क्रोध चार प्रकारका होता है—पाषाण-रेखाके समान, पृथ्वी-रेखा के समान, वालु-रेखाके समान और जल-रेखाके समान। जैसे-जलमें खींची हुई रेखा तुरन्त मिट जाती है और वालु, पृथ्वी और पाषाणमें खींची गई रेखाएँ उत्तरोत्तर अधिक-अधिक समयमें मिटती हैं, इसी प्रकारसे क्रोधके भी चार प्रकारके स्थान हैं, जो हीनाधिक कालके द्वारा उपशमको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकारसे मान, माया और लोभके भी चार-चार स्थानोंका वर्णन इस अधिकारमें किया गया है। इसके अतिरिक्त चारों कषायोंके सोलह स्थानोंमेंसे कौन सा स्थान किस स्थानसे अधिक होता है, और कौन किससे हीन होता है; कौन स्थान सर्व-घाती है और कौन स्थान देशघाती है? क्या सभी गतियोंमें सभी स्थान होते हैं, या कहीं कुछ अन्तर है? किस स्थानका अनुभवन करते हुए किस स्थानका बन्ध होता है, और किस किस स्थानका बन्ध नहीं करते हुए किस स्थानका बन्ध नहीं होता, इत्यादि अनेक सैद्धान्तिक गहन बातोंका निरूपण इस अधिकारमें किया गया है।

९ व्यंजन-अधिकार—व्यंजन नाम पर्यायवाची शब्दका है। इस अधिकारमें क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों ही कषायोंके पर्यायवाचक शब्दोंका निरूपण किया गया है। जैसे—क्रोधके क्रोध, रोष, अक्षमा, कलह, विवाद आदि। मानके मान, मद, दर्प, स्तम्भ, परिभव आदि। मायाके माया, निकृति, वंचना, सातियोग और अनृजुता आदि। लोभके लोभ, राग, निदान, प्रेयस्, मूर्च्छा आदि। कषायोंके इन विविध नामोंके द्वारा कषाय-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातों पर नया प्रकाश पड़ता है।

१० दर्शनमोहोपशमना-अधिकार—जिस कर्मके उदयसे जीवको अपने स्वरूपका दर्शन, साक्षात्कार और यथार्थ प्रतीति या श्रद्धान नहीं होने पाता, उसे दर्शनमोहकर्म कहते हैं। इस कर्मके परमाणुओंका एक अन्तर्मुहूर्तके लिए अन्तर रूप अभावके करने या उपशान्त रूप अवस्थाके करनेको उपशम कहते हैं। इस दर्शनमोहके उपशमनकी अवस्थामें जीवको अपने असली स्वरूपका एक अन्तमुहूर्तके लिए साक्षात्कार हो जाता है। उस समय वह जिस परम आनन्दका अनुभव करता है, वह वचनोंके अगोचर है। इस अधिकारमें इसी दर्शनमोहके उपशमन करनेवाले जीवके परिणाम कैसे होते हैं, उसके कौनसा योग, कौनसा उपयोग, कौनसी कषाय, कौनसी लेश्या और कौनसा वेद होता है, इन सर्व बातोंका विवेचन करते हुए उन परिणाम-विशेषोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है जिनके कि द्वारा यह जीव इस अलब्ध-पूर्व सम्यक्त्व-रत्नको प्राप्त करता है। दर्शनमोहके उपशमनको चारों ही गतियोंके जीव कर सकते हैं, किन्तु उसे संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक नियमसे होना चाहिए। अन्तमें इस प्रथमोपशम-सम्यक्त्वी अर्थात् प्रथम वार उपशमसम्यग्दर्शनको प्राप्त करने वाले जीवके कुछ विशिष्ट कार्यों और अवस्थाओंका वर्णन किया गया है।

११. दर्शनमोहक्षपणा-अधिकार—ऊपर दर्शनमोहकी जिस उपशम-अवस्थाका वर्णन किया गया है, वह एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही समाप्त हो जाती है और फिर वह जीव पहले जैसा ही आत्म-दर्शनसे वंचित हो जाता है। आत्म-साक्षात्कार सदा बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि उस दर्शनमोह कर्मका सदाके लिए क्षय (खातमा) कर दिया जाय। और इसके लिए जिन खास बातोंकी आवश्यकता होती है, उन सबका विवेचन इस अधिकारमें किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य ही कर सकता है। हाँ, उसकी पूर्णता चारों गतियोंमें की जा सकती है। दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करने वाले मनुष्यके कमसे कम तेजोलेश्या अवश्य होना चाहिए। दर्शनमोहकी क्षपणाका काल अन्तर्मुहूर्त है। इस क्षपण-क्रियाके समाप्त होनेके पूर्व ही यदि उस मनुष्यकी मृत्यु हो जाय, तो वह अपनी आयु-बन्धके अनुसार यथासंभव चारों ही गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। मनुष्य जिस भवमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है, उसके अतिरिक्त अधिकसे अधिक तीन भव और धारण करके संसारसे मुक्त हो जाता है, और सदाके लिए शाश्वत आनन्दको प्राप्त कर लेता है।

१२ संयमासंयमलब्धि-अधिकार—जब आत्माको अपने स्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है और वह मिथ्यात्वरूप कर्दम (कीचड़) से निकल कर और निर्मल सरोवरमें स्नान कर सरोवरके तट पर स्थित शिला तलपर अवस्थित हो जाता है, तब उसके आनन्दका पारावार नहीं रहता है और फिर वह इस बातका प्रयत्न करता है कि अब इस निंद्य, अलंघ्य कर्दममें पुनः मेरा पतन न होवे। इस प्रकारसे विचार कर सांसारिक विषय-वासनारूपी कीचड़से जितने अंशमें संभव होता है, उतने अंशमें वह बचनेका प्रयत्न करता है, इसीको संयमासंयम-लब्धि कहते हैं।

शास्त्रीय परिभाषाके अनुसार अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयके अभावसे देशसंयमको प्राप्त करने वाले जीवके जो विशुद्ध परिणाम होते हैं, उसे संयमासंयमलब्धि कहते हैं। इसके निमित्त-से जीव श्रावकके व्रतोंको धारण करनेमें समर्थ होता है। प्रकृत अधिकारमें संयमासंयमलब्धिके लिए आवश्यक सर्व कार्य-विशेषोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

१३ संयमलब्धि-अधिकार—प्रत्याख्यानावरण कषायके अभाव होने पर आत्मा-में संयमलब्धि प्रकट होती है, जिसके द्वारा आत्माकी प्रवृत्ति हिंसादि पाँचों पापोंसे दूर होकर अहिंसादि महाव्रतोंके धारण और पालनकी होती है। संयमके प्राप्त कर लेने पर भी कषायके उदयानुसार परिणामोंका कैसा उतार-चढ़ाव होता है, इस बातका प्रकृत अधिकारमें विस्तृत विवेचन करते हुए संयमलब्धि-स्थानोंके भेद बतला करके अन्तमें उनके अल्पबहुत्वका वर्णन किया गया है।

१४ चारित्रमोहोपशामना-अधिकार—इस अधिकारमें चारित्रमोहनीय कर्मके उपशमका विधान करते हुए बतलाया गया है कि उपशम कितने प्रकारका होता है, किस किस कर्मका उपशम होता है, विवक्षित चारित्रमोह-प्रकृतिकी स्थितिके कितने भागका उपशम करता है, कितने भागका संक्रमण करता है और कितने भागकी उदीरणा करता है? विवक्षित चारित्र-मोहनीय प्रकृतिका उपशम कितने कालमें करता है, उपशम करने पर संक्रमण और उदीरणा कब करता है? उपशामकके आठ करणोंमेंसे कब किस करणकी व्युच्छित्ति होती है, इत्यादि प्रश्नोंका उद्भावन करके विस्तारके साथ उन सबका समाधान किया गया है। अन्तमें बतलाया गया है कि उपशामक जीव एक बार वीतराग दशाको प्राप्त करनेके बाद भी किस कारणसे नीचे-के गुणस्थानोंमें गिरता है और उस समय उसके कौन-कौनसे कार्य-विशेष किस क्रमसे प्रारम्भ होते हैं?

१५ चारित्रमोहक्षपणा-अधिकार—चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंका क्षय किस किस क्रमसे होता है, किस किस प्रकृतिके क्षय होने पर कहां पर कितना स्थितिबन्ध और स्थिति-सत्त्व रहता है, इत्यादि कार्य-विशेषोंका इस अधिकारमें बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है। अन्तमें बतलाया गया है कि जब तक यह जीव कषायोंका क्षय होजाने पर और वीतराग दशाके प्राप्त कर लेने पर भी छद्मस्थ पर्यायसे नहीं निकलता है, तब तक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मका नियमसे वेदन करता है। तत्पश्चात् द्वितीय शुक्लध्यानसे इन तीनों घातिया कर्मोंका भी समूल नाश करके सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर वे धर्मोपदेश करते हुए आर्य-क्षेत्रमें विहार करते हैं।

पश्चिमस्कन्ध अधिकार—सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होजानेके पश्चात् भी सयोगिजिन-के चार अघातिया कर्म शेष रह जाते हैं, और उनके क्षय हुए विना सिद्ध अवस्था प्राप्त होती नहीं है, अतएव उनके क्षयका विधान चूर्णिकारने पश्चिमस्कन्धनामक अधिकारके द्वारा किया है। इसमें बतलाया गया है कि संयोगिजिन किस प्रकारसे केवलिसमुद्घातकरते हुए अघातिया कर्मोंका क्षय करके मुक्तिको प्राप्त करते हैं और सदाके लिए अजर, अमर बन करके अनन्त सुखके भागी बन जाते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थमें जीवोंको संसार-परिभ्रमण कराने वाले कषायोंके राग-द्वेषा-त्मक स्वरूपका विविध प्रकारोंसे वर्णन करके उनसे विमुक्त होनेका मार्ग बतलाया गया है।

विषय-सूची

वेदक-अर्थाधिकार ४६५-५५५

उपयोग-अर्थाधिकार ५६५-५७६

चतुःस्थान-अर्थाधिकार ५९७-६१०

चारित्रमोहोपशामना अधिकार ६७६-७३७

चारित्रमोहक्षपणा-अर्थाधिकार ७३८-८९६

परिशिष्ट

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	८	मानकषायका उत्कृष्टकाल विशेष अधिक है	मानकषायका उत्कृष्ट काल दुगुणा है
३७	२४	एक अजीव	एक जीव
५१	६	सामायिक छेदोपस्थापना	लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य
५२	२०	विभक्तिका	अविभक्तिका
५२	२६	अनाहा–	आहा–
५३	१४	उत्कृष्ट काल	×
५३	१६	उत्कृष्टकाल	सभीका उत्कृष्ट काल
५४	१८	औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी	औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आहारक-आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी
५४	२२	और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य	सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धिचतुष्कका जघन्य
५७	२४	छब्बीस, तेईस	छब्बीस, चौबीस, तेईस
६८	१८	पुद्गलपरिवर्तन	अर्धपुद्गलपरिवर्तन
८४	६	कभी कभी होने वाले भव्योंके बन्धको	भव्यके क्षयको प्राप्त होने वाले बन्धको
८४	१२	स्थितिबन्ध	स्थितिविभक्ति
८६	४	है। मोहनीय	है। अनुत्कृष्टका अन्तर नहीं है। मोहनीय
६४	२२	संख्यात भाग	संख्यात बहु भाग
६६	२६	क्षपण	×
१०३	१०	उत्कृष्ट काल और अन्तर्मुहूर्त	उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त
११०	११	आवलीके	अंगुलके
१११	७	एगा ट्ठिदित्ति	एगा ट्ठिदित्ति। णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा।
,,	३१	होता है ॥१४४॥	प्रमाण वाला होता है। किन्तु चरमउद्वेलनाकांडककी अंतिम फालीसे न्यून है, इतना विशेष जानना चाहिये ॥१४४॥
११२	२२	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट
११६	१६	प्रकृतिबन्धका	प्रकृतिका
१४५	२४	क्रोधसंज्वलन	मायासंज्वलन
१४५	२५	है। लोभ	है। मायासंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थानसे लोभ-संज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं। लोभ
१४७	६	वह दो	दो
१५४	११	है। जघन्य	है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोक स्पृष्ट किया है। जघन्य
१५५	६	उसने	उतने
१६७	२०	अनेक विभक्ति	अनेक उत्कृष्ट विभक्ति
१६७	२१	अनेक विभक्ति……जीव विभक्ति	अनेक उत्कृष्ट विभक्ति……जीव उत्कृष्ट विभक्ति-
१७७	३	पदेसवित्तीए	पदेसविहत्तीए
१८०	१	सादि, अनादि	अनादि
२००	४	होते है	नहीं होते हैं

२००	५	विभक्तिवाले……जीव अविभक्तिवाला ……विभक्ति	अविभक्तिवाला…जीव विभक्तिवाला…अविभक्ति
२५८	११	असंक्रामक	संक्रामक
२५८	१२	जीव संक्रामक होता है	जीव असंक्रामक होता है
२६४	१५	सतरह	सात
२६५	६	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व
२६५	२७	ससाकी	उपशमसम्यक्त्वकी
२६६	५	आता है। सासादन	आता है। सतरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान असंयत-क्षायिक सम्यग्दृष्टिके होता है। सासादन
२७०	२६	१६, १७, १५	१६, ७, १५
२७१	१७	१८, १२	१८, १३, १२
२७१	२७	अपेक्षा ३	अपेक्षा २, ३
२७२	३२	१० सूक्ष्मसाम्पराय ।२।…	१० सूक्ष्मसाम्पराय ।१।…
२७५	७	प्रकृतिक संक्रम	प्रकृतिक तथा ११ प्रकृतिक संक्रम
२७५	८	दो प्रकारके क्रोध, दो प्रकारके मान और दो प्रकारके माया	दो प्रकारके क्रोध, संज्वलन क्रोध, दो प्रकारके मान, संज्वलन मान, दो प्रकारके माया और संज्वलन माया
२७५	९	नौ, छह और तीन प्रकृतिक	नौ, आठ, छः, पाँच, तीन और दो प्रकृतिक
२७५	१७	उन्नीस	इक्कीस
२८४	६	स्त्री वेदका उपशमन कर देनेके अनन्तर	×
२८४	१२	छह	सात
२९५	१०	और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके
३०५	१०	इक्कीस	उन्नीस
३१३	४	की जा सकती हैं	की जा सकती हैं,(किन्तु स्तिबुकसंक्रमण हो सकता है)
३२५	१७-१८	इस से……संख्यातगुणित है।	×
३२३	२	ट्ठिदिउणीरणा	ट्ठिदिउदीरणा
३३०	८	लिए मिथ्यात्वमें जाकर	लिए सम्यग्मिथ्यात्व में जाकर
३५५	१२	कर्मोंके अनुभाग …अपेक्षा जघन्यकाल	कर्मोंके जघन्य अनुभाग……अपेक्षा काल
३५६	२०	जघन्य	अजघन्य
३५९	८	एयसमओ ।	एयसमओ अंतोमुहुत्तो ।
३६०	६	समय और	समय व अन्तर्मुहूर्त और
३६२	२१	उन्नीस	इक्कीस
४१०	२०	जघन्य काल	जघन्य अन्तरकाल
४२४	२२	चरमसमयवर्ती	×
५०१	१८	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट
५०१	१९	त्रिस्थानीय भेद	त्रिस्थानीय-चतुःस्थानीय भेद
५०२	७	सर्वघाती है।	देशघाती है। उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा सर्वघाती है।
५०२	८	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट
५१६	१६	हीन	×
,,	१८	हीन	×
५५२	७	अब प्रदेशोंकी	अब जघन्य प्रदेशोंकी

५६४	२५,२६ २८,२९	निगोदिया	×
५६५	१५	है। उसी	है। उसी बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके माया का उत्कृष्ट काल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है। उसी
५७०	९-१०	किन्तु पुनः लौटकर क्रोधकषायसे उपयुक्त होगा।	किन्तु पुनः लौटकर क्रोधकषायसे उपयुक्त रहकर तत्पश्चात् मानको उल्लंघन करके लोभको प्राप्त होगा
६१८	७	बंधसे पहले ही	उपशमसे पहले ही बन्धसे
६३८	१७	परिणामों होना	परिणामोंका होना
६६२	४	अणुभागखेडयं	अणुभागखंडयं
६७०	२२	अनिवृत्तिकरण	अपूर्वकरण
६८७	६	तिण्हं पि कम्माणं णत्थि वियप्पो	तिण्हं पि कम्माणं ठिदिबंधस्स वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधादो ओसरंतस्स णत्थि वियप्पो
६९०	२७	लोभका संक्रमण	लोभका असंक्रमण
७२९	६	चडमाणस्स	माणस्स
८२२	१२	देव या नरकगतिसे आकर तिर्यंच या मनुष्योंमें ही कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहकर	नित्यनिगोदसे निकलकर मनुष्यमे उत्पन्न होकर
८३८	३	९६४	९६५
८९१	२६	माया	मान

ताडपत्रीय प्रतिसे संशोधित पाठ

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित पाठ	ताडपत्रीय प्रतिपाठ
५१	५	एदेसु अणियोगद्दारेसु तदो	एवं
३३७	५	अंतोमुहुत्तं संकामेमाणो	संकमाणो
६२८	४	असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं	असंखेज्जगुणहीणं
६३०	११	अभिजोग्ग-अणभिजोग्गे	अभिजोग्गमणभिजोग्गे
६४९	४	तदो	तम्हि
६५०	५	संखेज्जभागिगं	संखेज्जदिभागिगं
६५२	९	ताव जाव	ताव असंखेज्जगुणं जाव
६६१	१	जहण्णयं ठिदिखंडयं	ठिदिखंडयं जहण्णयं
६६६	९	पडिवज्जमाणस्स	पडिवज्जमाणगस्स
६७१	१२	अणवड्ढिदेण	अणुवड्ढिदेण
६८६	८	असंखेज्जगुणादो	असंखेज्जादो
७२४	४	कम्माणं	कम्मपयडीणं

पृष्ठ २१५ पर दिये गये विशेषार्थके स्थानपर निम्न विशेषार्थ पढ़िये—

विशेषार्थ—किसी भी विवक्षित कर्मके बंधनेके पश्चात् सर्व कर्मस्थिति व्यतीत हो चुकी हो, केवल एक समय अधिक उदयावली प्रमाण कर्मस्थिति शेष रह गई हो, उस कर्मके अवशेष प्रदेशाग्र उत्कर्षणके योग्य नहीं हैं, क्योंकि किसी भी कर्मका कर्मस्थिति प्रमाण तक ही उत्कर्षण हो सकता है उसके आगे उत्कर्षण होना असंभव है । इसी प्रकार जिस कर्मकी केवल दो समय अधिक उदयावली प्रमाण कर्मस्थिति शेष रह गई,उस कर्मके प्रदेशाग्र उत्कर्षण-के योग्य नहीं है । इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते बढ़ाते हुए जिस कर्म बन्धकी केवल जघन्य अबाधामात्र कर्मस्थिति शेष रहगई है उसके प्रदेशाग्र भी उत्कर्षणके योग्य नहीं हैं। क्योंकि उत्कर्षणके लिए यह नियम है कि जो नवीन कर्मबध रहा है उसकी अबाधाको छोड़कर जो निषेक-रचना हुई है उन नवीन निषेकोंमें उत्कर्षण किया हुआ द्रव्य निक्षिप्त किया जाता है, नवीन बंधे हुए कर्मकी अबाधामें निषेक रचना नहीं है अतः अबाधामें उत्कर्षण किया जाने वाला द्रव्य नहीं दिया जाता। किंतु पूर्व कर्मकी केवल जघन्य अबाधामात्र कर्मस्थिति शेष रह गई थी और वह जघन्य अबाधासे आगे अर्थात् अपनी कर्मस्थितिसे आगे उत्कर्षण नहीं हो सकता है अतः वह कर्म जिसकी कर्मस्थिति जघन्य अबाधामात्र शेप रह गई है उस कर्मके प्रदेशाग्र भी उत्कर्षणके योग्य नहीं हैं। जिस कर्मकी सर्व कर्मस्थिति व्यतीत हो चुकी है। केवल एक समय अधिक जघन्य अबाधाप्रमाण कर्मस्थिति शेष रह गई है तो उस कर्मके अन्तिम निषेकको छोड़कर शेष अबाधा निषेकोंका द्रव्य उत्कर्षण होकर, नवीनकी जघन्य अबाधाके ऊपर रचे गए, प्रथम निषेकमें दिया जा सकता है। इसीप्रकार एक एक समय बढ़ते बढ़ते जिस कर्मकी वर्ष. वर्ष पृथक्त्व प्रमाण, सागर या सागरपृथक्त्वप्रमाण कर्मस्थिति शेष रह गई है, उस कर्मकी शेष रही हुई स्थितिके सर्व प्रदेशाग्र उत्कर्षणके योग्य है। किन्तु उदयावलीमें प्रविष्ट प्रदेशाग्र उत्कर्षण-योग्य नहीं हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिए—किसी कर्मकी कर्मस्थिति ७० समय (७० कोडाकोडी सागर) है। ४ समय आवलीका प्रमाण है। १० समय जघन्य अबाधा-का प्रमाण है। कर्मबंधके समयसे यदि उसके ६५ समय व्यतीत हो गये, केवल एक समय अधिक आवली (४+१=५) शेष रहगई है, (अथवा जिस कर्मकी एक समय अधिक उदयावली कम कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है) उस कर्मकी शेष रही हुई स्थिति (५ समयों) के निषेकोंका द्रव्य उत्कर्षण योग्य नहीं है। क्योंकि जो उस समय नवीन कर्म बंध रहा है उसकी जघन्य अबाधा १० समय है। किन्तु जिस कर्मकी स्थिति १० समयसे अधिक शेष रह गई है उस शेष स्थितिके प्रदेशाग्र उत्कर्षण-योग्य है; क्योंकि उसका द्रव्य जघन्य अबाधा १० समयसे ऊपर नवीन बंधे हुए कर्मके प्रथम निषेकमें दिया जा सकता है।

एम. एल. जैन के प्रबन्ध से सन्मति प्रेस, २०१६ किनारी बाजार देहली में मुद्रित।

भाषाकारका मंगलाचरण

सकल कर्म रज दूर कर, सर्व पूज्य पद पाय।
सिद्धि-योग्य अरहंतको, वंदूं शीस नवाय ॥१॥

अष्ट कर्मको नष्ट कर, पा अष्टम क्षितिराज।
अक्षय अगणित गुण-धनी, जयवंतो शिवराज ॥२॥

जो शिव-मग-पर नित्य ही चलें चलावें आप।
ये गणधर आचार्य मम, हरें सकल संताप ॥३॥

उपदेशें शिवमार्गको, पाठक बन सुखदाय।
ध्यान धरें निजरूपका, यशोमूर्ति उवझाय ॥४॥

साधें आतम रूपको, धुनें पाप दुखदाय।
वे असहाय-सहाय-कर, मेरी करहिं सहाय ॥५॥

वीरवदन-निर्गत-अमल-ज्ञान-सलिल-मय-धार।
बहा बहा जगदम्ब ! तू, करे जगत उपकार ॥६॥

नय-कर-रवि, श्रुत-धर तथा, विनिहत मदन प्रसार।
श्रीगुणधरको वन्दना, करता वारंवार ॥७॥

बहु-नय-गर्भित, गहन अति, अमित अर्थ-संयुक्त।
जिन कसायपाहुड रचा, अनुपम गाथा युक्त ॥८॥

यतियोंमें वर वृषभ हैं, श्री यतिवृषभ महन्त।
चूर्णिसूत्रके रचयिता, वन्दूं सदा नमन्त ॥९॥

श्रीयतिवृषभाचार्य-विरचित-चूर्णिसूत्र-समन्वित

श्रीगुणधराचार्य-प्रणीत

कसाय पाहुड सुत्त

पुव्वम्मि पंचमम्मि दु दसमे वत्थुम्मि पाहुडे तदिए ।
पेज्जं ति पाहुडम्मि दु हवदि कसायाण पाहुडं णाम ॥१॥

राग द्वेष जग-मूल हैं, उनका मूल कषाय ।
वीतराग जिनदेवको, वन्दूं शीस नवाय ॥

जिन राग और द्वेषके वशीभूत होकर ये सर्व जीव दुखी हो रहे हैं, अपने आप का स्वरूप भूल रहे हैं और एक दूसरेको सुख-दुःखका दाता मान रहे हैं; उन्हीं राग और द्वेषके बोध कराने और उनसे मुक्ति पानेका मार्ग बतलानेके लिए भव्यजीवोंके हितार्थ श्री गुणधराचार्यने इस पेज्जदोसपाहुड अथवा कसायपाहुडका निर्माण किया है । पेज्ज नाम प्रिय या रागका है, और दोस नाम अप्रिय या द्वेषका है । ये राग और द्वेष ही संसारके मूल कारण हैं। राग और द्वेष की उत्पत्ति कषायोंसे होती है, अतएव कषायोंकी विभिन्न अवस्थाओंका बोध कराकर उनसे मुक्ति पानेका मार्ग बतलानेके लिए इस ग्रन्थका अवतार हुआ है ।

श्रीगुणधराचार्य इस ग्रन्थके सम्बन्ध आदि बतलानेके लिए गाथासूत्र कहते हैं—

पाँचवें पूर्वकी दसवीं वस्तुमें पेज्जपाहुड नामक तीसरा अधिकार है, उससे यह 'कसायपाहुड' उत्पन्न हुआ है ॥१॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा कसायपाहुडके नाम-उपक्रमका निरूपण किया गया है । जिसके द्वारा श्रोताजन विवक्षित प्राभृतके समीपवर्ती किये जाते हैं, अर्थात् जिससे श्रोता-

१. णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स पंचविहो उवक्कमो । तं जहा—आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि । २. आणुपुव्वी तिविहा ।

ओंको विवक्षित प्राभृतके नाम, विषय आदिका बोध होता है उसे उपक्रम कहते हैं । इस उपक्रमका निरूपण विवक्षित शास्त्रके सम्बन्ध, प्रयोजन आदिको बतलानेके लिए किया जाता है । पूर्वशब्द दिशा आदि अनेक अर्थोंका वाचक है, तथापि यहाँ पर प्रकरणवश बारहवें दृष्टिवाद अंगके अवयवभूत पूर्वगत अधिकारका ग्रहण किया गया है । वस्तु शब्द भी यद्यपि अनेकों अर्थोंमें रहता है, तो भी प्रकरणके वशसे पूर्वगतके अन्तर्गत अधिकारोंका वाचक लिया गया है । वस्तुके अवान्तर अधिकारको पाहुड कहते हैं । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वगतके चौदह अधिकारोंमेंसे पाँचवाँ भेद ज्ञानप्रवाद पूर्व है । इसके भी वस्तु नामक बारह अवान्तर अधिकार हैं, उनमेंसे प्रकृतमें दशवाँ वस्तु अधिकार अभीष्ट है । इसके भी अन्तर्गत बीस पाहुड नामके अर्थाधिकार हैं, उनमेंसे तीसरे पाहुडका नाम पेज्जपाहुड है । इसीसे इस कसायपाहुडकी उत्पत्ति हुई है । इस सम्बन्धके बतलानेके लिए ही इस गाथाका अवतार हुआ है । गाथामें आये हुए 'तु' शब्दसे शेष उपक्रम भी सूचित कर दिये गये हैं ।

अब यतिवृषभाचार्य उक्त गाथासे सूचित उपक्रमोंका निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्वके अन्तर्गत दशवीं वस्तुके तृतीय प्राभृतका उपक्रम पाँच प्रकारका है । वह इस प्रकार है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ॥१॥

विशेषार्थ—प्रतिपादन किये जानेवाले ग्रन्थकी क्रम-परम्पराको बतलाना आनुपूर्वी-उपक्रम कहलाता है । प्रतिपाद्य ग्रन्थके सार्थक या असार्थक नामको कहना नाम-उपक्रम है । श्लोक आदिके द्वारा उसके प्रमाणको कहना प्रमाण-उपक्रम है । ग्रन्थमें कहे जानेवाले विषयको बतलाना वक्तव्यता-उपकम है । ग्रन्थके अधिकार, अध्याय या प्रकरणोंकी संख्याको बतलाना अर्थाधिकार उपक्रम कहलाता है । इन पांच उपक्रमोंके द्वारा विवक्षित वस्तुका सम्यक् प्रकार बोध होता है, इसलिए ग्रन्थके आदिमें इनका वर्णन किया जाता है ।

अब चूर्णिकार, उक्त पाँचों उपक्रमोंके संख्या-प्ररूपणपूर्वक उनका विशेष निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है ॥२॥

विशेषार्थ—पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वीउपक्रमके तीन भेद हैं । जो वस्तु जिस क्रमसे विद्यमान है, अथवा जिस प्रकार सूत्रकारोंने उपदिष्ट की है, उसे उसी क्रमसे गिनना पूर्वानुपूर्वी है । जैसे—चौबीस तीर्थंकरोंको वृषभ, अजित आदिके क्रमसे गिनना । इससे प्रतिकूल क्रमद्वारा गिनती करना पश्चादानुपूर्वी है । जैसे उन्हीं तीर्थंकरों को वर्धमान, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ आदिके विपरीत क्रमसे गिनना । इन दोनों क्रमों को छोड़-

३. णामं छव्विहं । ४. पमाणं सत्तविहं ।

कर जिस किसी भी क्रम से गिनती करनेको यथातथानुपूर्वी कहते हैं । जैसे—वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ, शान्तिनाथ इत्यादि यद्वा-तद्वा क्रम से उन्हीं तीर्थंकरोंकी गिनती करना । प्रकृतमें यह कसायपाहुड पाँच ज्ञानोंमेंसे पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा दूसरे से, पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा चौथेसे, और यथातथानुपूर्वीकी अपेक्षा प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ या पंचम स्थानीय श्रुतज्ञानसे निकला है । इसी प्रकार अंगबाह्य और अंग-प्रविष्टके भेद-प्रभेदोंमें भी तीनों आनुपूर्वी लगाकर कसायपाहुडकी उत्पत्तिको समझ लेना चाहिए ।

चूर्णिसू०—नाम-उपक्रमके छह भेद होते हैं ॥३॥

विशेषार्थ—गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, उपचयपद और अपचयपदके भेदसे नाम-उपक्रमके छह भेद हैं । गुणोंसे निष्पन्न हुए सार्थक नामोंको गौण्यपद कहते हैं । जैसे–समस्त तत्त्वके ज्ञाताको सर्वज्ञ कहना, राग-द्वेषादिसे रहित पुरुषको वीतराग कहना, इत्यादि । जो नाम गुणोंसे उत्पन्न नहीं होते हैं–अर्थशून्य होते हैं—उन्हें नोगौण्यपद कहते हैं । जैसे–दरिद्र पुरुषको भूपाल, निर्बलको सहस्रमल्ल और आँखोंके अन्धेको नयनसुख आदि कहना । किसी वस्तुके संयोगसे जो नाम होते हैं, उन्हें आदानपद कहते हैं । जैसे–दंडेवालेको दंडी, छत्रधारीको छत्री आदि कहना । प्रतिपक्षके निमित्तसे होनेवाले नामों को प्रतिपक्षपद कहते हैं । जैसे–विधवा, रंडुआ आदि । किसी अंगविशेषके बढ़ जानेसे रखे गए नामोंको उपचयपद कहते हैं । जैसे—मोटे पैरवालेको गजपद, लम्बे कानवालेको लम्बकर्ण, इत्यादि कहना । किसी अंगविशेषके छिन्न हो जाने से कहे जानेवाले नामोंको अपचयपद कहते हैं । जैसे—कटे हुए कानवालेको छिन्नकर्ण और कटी हुई नाकवालेको नकटा कहना। प्रकृतमें कसायपाहुड और पेज्जदोसपाहुड ये नाम गौण्यपदनाम हैं, क्योंकि, द्वेषरूप क्रोधादि कषायोंका और प्रेयरूप लोभादि कषायोंका, तथा उनके बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता आदि भेदोंका नाना अधिकारोंसे इस ग्रन्थमें वर्णन किया गया है ।

चूर्णिसू०—प्रमाण-उपक्रम सात प्रकारका है ॥४॥

विशेषार्थ—जिसके द्वारा पदार्थोंका निर्णय किया जावे, उसे प्रमाण कहते हैं । नाम, स्थापना, संख्या, द्रव्य, क्षेत्र, काल और ज्ञान-प्रमाणके भेदसे प्रमाण उपक्रमके सात भेद होते हैं । 'प्रमाण' यह शब्द नामप्रमाण है । काष्ठ, शिला आदिमें विवक्षित वस्तुके न्यासको स्थापनाप्रमाण कहते हैं । अथवा मति, श्रुत आदि ज्ञानोंका तदाकार या अतदाकार रूपसे निक्षेप करना स्थापनाप्रमाण है । द्रव्य या गुणों की शत, सहस्र, लक्ष आदि संख्याको संख्याप्रमाण कहते हैं । पल, तुला, कुडव आदि को द्रव्यप्रमाण कहते हैं । अंगुल, हस्त, धनुष, योजन आदिको क्षेत्रप्रमाण कहते हैं । समय, आवली, मुहूर्त, पक्ष, मास आदिको कालप्रमाण कहते हैं । मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानके भेदसे ज्ञानप्रमाण पाँच प्रकारका है । प्रकृतमें नाम, संख्या और श्रुतज्ञान, ये तीन प्रमाण ही विवक्षित हैं, क्योंकि, यहाँ पर अन्य

५. वत्तव्वदा तिविहा । ६. अत्थाहियारो पण्णारसविहो ।

गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि ।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥२॥

की विवक्षा नहीं है । 'कसायपाहुड' इस नामकी अपेक्षा नामप्रमाण, अपने अवान्तर अधिकारोंकी या ग्रन्थके पदोंकी अपेक्षा संख्याप्रमाण और ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्वसे उत्पन्न होनेके कारण श्रुतज्ञानप्रमाणकी प्रकृतमें विवक्षा की गई है ।

चूर्णिसू०—वक्तव्यता-उपक्रम तीन प्रकारका है ॥५॥

विशेषार्थ—स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और तदुभयवक्तव्यताके भेदसे वक्तव्यता-उपक्रमके तीन भेद होते हैं । जिसमें स्वसमयका-अपने सिद्धान्तका-विवेचन किया जाय, उसे स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं । जिसमें परसमयका--अन्य मतमतान्तरोंका--प्रतिपादन किया जाय, उसे परसमयवक्तव्यता कहते हैं । जिसमें स्व और पर, इन दोनों प्रकारके समयोंका (सिद्धान्तोंका) निरूपण किया जाय, उसे तदुभयवक्तव्यता कहते हैं । इनमेंसे इस कसायपाहुडमें स्वसमयवक्तव्यताका ही ग्रहण है । क्योंकि, इसमें केवल स्वसमयप्रतिपादित राग-द्वेष या कषायों का ही वर्णन किया गया है ।

चूर्णिसू०—अर्थाधिकार पन्द्रह प्रकारका है ॥६॥

विशेषार्थ—ज्ञानके पाँच अर्थाधिकार हैं । उनमेंसे श्रुतज्ञानके दो अर्थाधिकार हैं--अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट । अंगबाह्यके सामयिक, चतुर्विंशतिस्तव आदि चौदह अर्थाधिकार हैं। अंगप्रविष्ट के आचारांग, सूत्रकृतांग आदि बारह अर्थाधिकार हैं । इनमेंसे दृष्टिवाद नामक बारहवें अर्थाधिकारके भी परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका, ये पाँच अर्थाधिकार हैं । इनमेंसे पूर्वगतके चौदह अर्थाधिकार हैं—१ उत्पादपूर्व, २ आग्रायणीपूर्व, ३ वीर्यानुप्रवाद, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यानप्रवाद, १० विद्यानुवाद, ११ कल्याणवाद, १२ प्राणावायप्रवाद, १३ क्रियाविशाल और १४ लोकबिन्दुसार । इनमेंसे ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें अर्थाधिकारके वस्तु नामक बारह अर्थाधिकार हैं । जिनमेंसे दसवें वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तृतीय प्राभृतसे इस ग्रन्थकी उत्पत्ति हुई है । प्रकृत ग्रन्थके पन्द्रह अर्थाधिकार हैं, जो कि आगे कहे जानेवाले हैं, यह बतलानेके लिए इस चूर्णिसूत्रका अवतार हुआ है ।

अब इन पन्द्रह अर्थाधिकारोंके नामनिर्देशके साथ एक-एक अर्थाधिकारमें कितनी कितनी गाथाएँ निबद्ध हैं, इस बातको बतलाते हुए गुणधराचार्य प्रतिज्ञासूत्र कहते हैं--

इस कसायपाहुडमें एक सौ अस्सी गाथासूत्र हैं । वे गाथासूत्र पन्द्रह अर्थाधिकारोंमें विभक्त हैं । उनमेंसे जिस अर्थाधिकारमें जितनी-जितनी सूत्रगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं, उन्हें मैं (गुणधराचार्य) कहूँगा ॥२॥

पेज्ज-दोसविहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च बंधगे चेव ।
तिण्णेदा गाहाओ पंचसु अत्थेसु णादव्वा ॥३॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा गुणधराचार्यने तीन प्रतिज्ञाओंकी सूचना की है। जो कसायपाहुड *गौतम गणधर* ने सोलह हजार पदोंके द्वारा कहा है, उसे मैं एक सौ अस्सी गाथाओंके द्वारा ही कहता हूँ, यह प्रथम प्रतिज्ञा है। गौतम गणधरसे रचित कसायपाहुडमें अनेक अर्थाधिकार हैं, उन्हें मैं पन्द्रह अर्थाधिकारोंसे ही निरूपण करता हूँ; यह द्वितीय प्रतिज्ञा है। तथा, एक एक अर्थाधिकारमें इतनी इतनी गाथाएँ हैं, यह तृतीय प्रतिज्ञा है। इसीके अनुसार आगे विभिन्न अधिकारोंमें गाथाओंकी संख्या बतलाई गई है।

प्रेयोद्वेषविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, बन्धक अर्थात् बन्ध और संक्रम, इन पाँच अर्थाधिकारोंमें 'पेज्जं वा दोसं वा' इत्यादि प्रथम गाथा, 'पयडी य मोहणिज्जा' इत्यादि द्वितीय गाथा, 'कदि पयडीओ बंधदि' इत्यादि तृतीय गाथा, ये तीन गाथाएँ निबद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३॥

विशेषार्थ—गाथा-पठित 'पेज्ज दोस' इस पदके निर्देशसे 'पेज्जं वा दोसं वा' इत्यादि प्रथम गाथाकी सूचना की गई है। 'विहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च' इस पदके द्वारा 'पयडी य मोहणिज्जा' इत्यादि द्वितीय गाथा सूचित की गई है। 'बंधगे चेव' इस पदके द्वारा 'कदि पयडीओ बंधदि' इत्यादि तृतीय गाथाका निर्देश किया गया है। उक्त तीनों गाथाएँ जिन पाँच अर्थाधिकारोंमें निबद्ध हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रेयोद्वेषविभक्ति २ स्थितिविभक्ति ३ अनुभागविभक्ति ४ अकर्मबंधक (बंध) और ५ कर्मबंधक (संक्रम)। इन पाँच अधिकारोंमें प्रकृतिविभक्ति और प्रदेशविभक्तिको पृथक् नहीं कहा गया है, इसका कारण यह है कि ये दोनों विभक्तियाँ स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्ति, इन दोनोंमें ही प्रविष्ट हैं, क्योंकि, प्रकृति और प्रदेशविभक्तिके विना स्थिति और अनुभागविभक्ति हो ही नहीं सकती है। इसी प्रकार क्षीणाक्षीणप्रदेश और स्थित्यन्तिकप्रदेश, ये दोनों अधिकार भी उनमें ही प्रविष्ट समझना चाहिए, क्योंकि, स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्ति इन दोनोंके विना क्षीणाक्षीणप्रदेश और स्थित्यन्तिक बन नहीं सकते हैं। अथवा, प्रेयोद्वेषविभक्तिमें प्रकृतिविभक्ति प्रविष्ट है; क्योंकि, द्रव्य और भावस्वरूप प्रेयोद्वेषके अतिरिक्त प्रकृतिविभक्तिका अभाव है। प्रदेशविभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक, ये तीनों अधिकार प्रेयोद्वेष, स्थिति और अनुभागविभक्तियोंमें प्रविष्ट हैं; क्योंकि, ये तीनों विभक्तियाँ प्रदेश-विभक्ति आदिकी अविनाभावी हैं। अथवा, 'अणुभागे चेदि' इस चरणमें पठित 'च' शब्दसे सूचित प्रदेशविभक्ति, स्थित्यन्तिक और क्षीणाक्षीण इन तीनोंको मिलाकर एक चौथा अधिकार हो जाता है। बंध और संक्रम, इन दोनोंको लेकरके पाँचवाँ अर्थाधिकार होता है। इन पाँच अर्थाधिकारोंमें पूर्वोक्त तीन गाथाएँ निबद्ध हैं।

विभक्ति नाम विभागका है। कर्मोंके स्वभाव-सम्बन्धी विभागको प्रकृतिविभक्ति कहते

चत्तारि वेदयम्मि दु उवजोगे सत्त होंति गाहाओ ।
सोलस य चउट्ठाणे वियंजणे पंच गाहाओ ॥४॥

हैं । कर्मोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति-सम्बन्धी विभागको स्थितिविभक्ति कहते हैं । कर्मोंके लता, दारु, अस्थि, शैलरूप देशघाति सर्वघाति शक्तिको, तथा गुड़, खाँड़, शक्कर, अमृतरूप पुण्य-प्रकृतियोंके और निम्ब, काँजीर, विष, हालाहलरूप पाप-प्रकृतियोंके फल देनेकी शक्तिके विभागको अनुभागविभक्ति कहते हैं। कर्म-प्रदेशोंका विभिन्न प्रकृतियोंरूप बटवारा होना, उनका आंशिक या सामूहिक रूपसे निर्जीर्ण होना, अपने समयपर या आगे पीछे उदय आना, आदि कार्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर्गत हैं । इसी कारण क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक नामक दो अधिकारोंका प्रदेशविभक्तिमें अन्तर्भाव किया गया है । जो कर्म-प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण आदिके रूपसे परिवर्तित किये जा सकते हैं, उनकी 'क्षीण' संज्ञा है और जो उत्कर्षण, अपकर्षण आदिके द्वारा परिवर्तनके अयोग्य होते हैं, उन्हें 'अक्षीण' कहते हैं । इन दोनों प्रकारके कर्म-प्रदेशोंका वर्णन क्षीणाक्षीण नामक अधिकारमें किया गया है । जघन्य, उत्कृष्ट और अधानिषेक, उदयनिषेक आदि विवक्षित स्थितिको प्राप्त हुए कर्मोंका उदयमें आकर अन्त होनेको स्थित्यन्तिक कहते हैं । इस प्रकार प्रकृतिविभक्ति आदिके द्वारा आठों कर्मोंका ग्रहण प्राप्त होता है, पर इस प्रकृत कषायप्राभृतमें एक मोहनीय कर्मका ही विस्तृत वर्णन किया गया है, अतः उसकी ही विभिन्न प्रकृतियोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-सम्बन्धी विभागोंकी भी विभक्ति संज्ञा सार्थक है । बन्धक अधिकारमें बन्ध और संक्रम नामके दो अधिकार हैं । मिथ्यादर्शनादि कारणोंसे कार्मण पुद्गल-स्कन्धोंका जीवके प्रदेशोंके साथ एकक्षेत्रावगाहरूप सम्बन्धको बन्ध कहते हैं और बँधे हुए कर्मोंका यथासम्भव अपने अवान्तर भेदोंमें परिवर्तित होनेको संक्रम कहते हैं। बन्ध और संक्रमको एक बन्धक संज्ञा देनेका कारण यह है कि बन्धके दो भेद हैं:—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध । नवीन बन्धको अकर्मबन्ध और बँधे हुए कर्मोंके परस्पर संक्रान्त होकर बँधनेको कर्मबन्ध कहते हैं । अतः कर्मबन्धका नाम संक्रम कहा गया है । यद्यपि प्रकृत गाथामें अधिकारसूचक पेज्जदोस, स्थिति, अनुभाग और बन्धक ये चार पद ही आये हैं, तथापि 'ये तीन गाथाएँ पाँच अर्थोंमें जानना चाहिए' ऐसी स्पष्ट सूचना भी सूत्रकार कर रहे हैं । अतः जयधवलाकारने अपनी टीकामें बहुत ऊहापोहके पश्चात् सूत्रकार गुणधराचार्य, चूर्णिकार यतिवृषभाचार्य और अपने मतके अनुसार विभिन्न युक्तियोंके बलपर तीन प्रकारके अधिकारोंकी कल्पना की है, जैसा कि आगे कोष्ठकमें स्पष्ट किया गया है ।

वेदक नामका छठा अर्थाधिकार है, उसमें चार सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं । उपयोग नामका सातवाँ अर्थाधिकार है, उसमें सात सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं । चतुःस्थान नामका आठवाँ अर्थाधिकार है, उसमें सोलह सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं । व्यंजन नामका नवाँ अर्थाधिकार है, उसमें पाँच सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं ॥४॥

दंसणमोहस्सुवसामणाए पण्णारस होंति गाहाओ ।
पंचेव सुत्तगाहा दंसणमोहस्स खवणाए ॥५॥

विशेषार्थ— राग-द्वेषके उत्पादक कपाय हैं और कपायोंका मूल आधार मोहकर्म है । राग-द्वेष या कषायोंके वेदनको—उदयको—प्रतिपादन करनेवाला वेदक नामका अर्थाधिकार है । इसमें 'कदि आवलियं पवेसेइ' इस गाथाको आदि लेकर 'जो जं संकामेदि य' इस गाथा तक चार सूत्रगाथाएँ हैं । इस अर्थाधिकार तक सूत्र गाथाओंकी संख्या सात (३+४=७) होती है । कषायोंका उपयोग कितने काल तक रहता है, किस गतिके जीव किस कपायमें कितनी देर तक उपयुक्त रहते हैं, इत्यादिरूपसे कषायोंमें उपयुक्त दशाका वर्णन करनेवाला सातवाँ अर्थाधिकार है । इसमें 'केवचिरं उवजोगो' इस गाथासे लेकर 'उवजोग-वग्गणाहि य अविरहिदं' इस गाथा तक सात सूत्रगाथाएँ हैं । इस अर्थाधिकार तक सूत्रगाथाओंकी संख्याका योग चौदह (३+४+७=१४) होता है । अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंके शैलरेखा, पृथिवी-रेखा, धूलिरेखा और जलरेखा, इन चार स्थानोंसे वर्णन करनेवाले अर्थाधिकारको 'चतुः-स्थान' अर्थाधिकार कहते हैं । इस अर्थाधिकारमें 'कोहो चउव्विहो वुत्तो' इस गाथासे लेकर 'असण्णी खलु बंधइ' इस गाथा तक सोलह गाथाएँ निबद्ध हैं । यहाँ तक समस्त सूत्रगाथाओं की संख्या तीस (३+४+७+१६=३०) होती है । क्रोधादि कपायोंके एकार्थक-पर्यायवाची नामोंको प्रतिपादन करने वाला 'व्यंजन' नामका अर्थाधिकार है । इस अधिकारमें 'कोहो य कोप रोसो य' इस गाथासे लेकर 'सासद पत्थण लालस' इस गाथा तक पाँच सूत्र-गाथाएँ सम्बद्ध हैं । यहाँ तक सर्व सूत्रगाथाओंकी संख्या पैंतीस (३+४+७+१६+५=३५) होती है ।

दर्शनमोह-उपशामना नामका दशवाँ अर्थाधिकार है, उसमें पन्द्रह सूत्र-गाथाएँ निबद्ध हैं । दर्शनमोह-क्षपणा नामका ग्यारहवाँ अर्थाधिकार है, उसमें पाँच ही सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं ॥५॥

विशेषार्थ— दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले जीवके परिणाम कैसे होते हैं, उसके कौन कौनसे योग, कौन कौनसी लेश्याएँ, कषाय, वेद आदि होते हैं, इत्यादि वर्णन करनेवाला दर्शनमोह-उपशामना नामका दशवाँ अर्थाधिकार है । इसमें 'दंसणमोहस्सुवसामगो' इस गाथासे लेकर 'सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा' इस गाथा तक पन्द्रह सूत्रगाथाएँ सम्बद्ध हैं । इस अधिकार तक समस्त गाथाओंकी संख्या पचास (३+४+७+१६+५+१५=५०) होती है । दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय कौन जीव करता है, किन किन कर्म-प्रकृतियोंके क्षय होनेपर क्षायिकसम्यक्त्व होता है, किस किस गतिमें और कितने काल तक दर्शनमोहकी क्षपणा होती है, इत्यादि वर्णन दर्शनमोह-क्षपणा नामके ग्यारहवें अर्थाधिकारमें किया गया है । इस अधिकारमें 'दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो' इस गाथासे लेकर 'संखेज्जा च

लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स ।
दोसु वि एका गाहा अट्ठेवुवसामणद्धम्मि ॥६॥
चत्तारि य पट्ठवए गाहा संकामए वि चत्तारि ।
ओवट्टणाए तिण्णि दु एक्कारस होंति किट्टीए ॥७॥

मणुस्सेसु' इस गाथा तक पाँच सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं । यहाँ तक समस्त गाथाओंका जोड़ पचवन (३ + ४ + ७ + १६ + ५ + १५ + ५ = ५५) होता है ।

कितने ही आचार्य, दर्शनमोहकी उपशामना और दर्शनमोह-क्षपणा, इन दोनों ही अधिकारों को एक सम्यक्त्व अधिकारके अन्तर्गत कहते हैं । उनकी उक्त पक्षके समर्थन में युक्ति यह है कि यदि इन दोनों अधिकारोंको एक न माना जाय, तो 'अद्धापरिमाण' नामके अर्थाधिकार के साथ सोलह अधिकार हो जाते हैं । इसपर जयधवलाकारने यह समाधान किया है कि गुणधराचार्यने जिन एक सौ अस्सी गाथाओंके द्वारा कसायपाहुड के कहनेकी प्रतिज्ञा की है, उनमें अद्धापरिमाण-अर्थाधिकारसे प्रतिबद्ध गाथाएँ नहीं पाई जाती हैं, इसलिए इसे पृथक् अधिकार न मानकर सभी अर्थाधिकारोंमें साधारणरूपसे व्याप्त अधिकार मानना चाहिए । गुणधराचार्यने यही बात 'अद्धापरिमाण-णिद्देसो' इस अन्तर्दीपक पदके द्वारा सूचित की है ।

संयमासंयम-लब्धि नामका बारहवाँ अर्थाधिकार है और चारित्र-लब्धि नामका तेरहवाँ अर्थाधिकार है । इन दोनों ही अर्थाधिकारोंमें एक गाथा निबद्ध है । चारित्रमोह -उपशामना नामका चौदहवाँ अर्थाधिकार है । इसमें आठ सूत्रगाथाएँ सम्बद्ध हैं ॥६॥

विशेषार्थ—देशचारित्रकी प्राप्ति किस प्रकार होती है, इस बातका वर्णन संयमासंयमलब्धि नामक अर्थाधिकारमें किया गया है । सकलचारित्रकी प्राप्ति कैसे होती है, चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशम आदि किस प्रकार होता है, इत्यादि वर्णन चारित्रलब्धि नामके तेरहवें अर्थाधिकारमें किया गया है । संयमासंयमलब्धि और चारित्रलब्धि, इन दोनों अर्थाधिकारोंमें 'लद्धी य संजमासंजमस्स' यह एक ही गाथा निबद्ध है । यहाँ तक समस्त गाथाओंका जोड़ छप्पन (५६) होता है । चारित्रमोहकर्मका उपशम किस प्रकार होता है, उपशम-श्रेणीमें कहाँपर क्या क्या आवश्यक कार्य होते हैं, इत्यादि वर्णन चारित्रमोह-उपशामना नामक चौदहवें अर्थाधिकारमें किया गया है । इस अधिकारमें 'उवसामणा कदिविधा' इस गाथासे लेकर 'उवसामणाक्खएण दु अंसे बंधदि' इस गाथा तक आठ गाथाएँ निबद्ध हैं । इस अधिकार तक सब गाथाओंका जोड़ चौंसठ (३ + ४ + ७ + १६ + ५ + १५ + ५ + १ + ८ = ६४) होता है ।

चारित्रमोहकी क्षपणाका जो जीव प्रस्थापक होता है, उसके विषयमें चार

चत्तारि य खवणाए एका पुण होदि खीणमोहस्स ।
एका संगहणीए अट्ठावीसं समासेण ॥८॥

गाथाएँ हैं । संक्रमणमें चार गाथाएँ प्रतिबद्ध हैं । अपवर्तनामें तीन गाथाएँ और कृष्टीकरणमें ग्यारह गाथाएँ निबद्ध हैं ॥७॥

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीय कर्मके क्षयका प्रारम्भ करनेवाला जीव 'प्रस्थापक' कहलाता है । उसके विषयमें 'संकामयपट्ठवयस्स परिणामो केरिसो हवे' इस गाथासे लेकर 'किंट्ठिदियाणि कम्माणि' इस गाथा तक चार गाथाएँ निबद्ध हैं । चारित्रमोहनीयके क्षपण करनेवाले जीवकी नवें गुणस्थानमें अन्तरकरणके पश्चात् 'संक्रामक' यह संज्ञा हो जाती है । उसके विषयमें 'संकामणपट्ठव०' इस गाथासे लेकर 'बंधो व संकमो वा उदयो वा' इस गाथा तक चार गाथाएँ निबद्ध हैं । चारित्रमोहकी स्थितिके ह्रास करनेको अपवर्तना कहते हैं । इसके विषयमें 'किं अंतरं करेंतो' इस गाथासे लेकर 'ट्ठिदि अणुभागे अंसे' इस गाथा तक तीन गाथाएँ निबद्ध हैं । कषायोंके खण्ड करनेको कृष्टीकरण कहते हैं । इसके विषयमें 'केवडिया किट्टीओ' इस गाथासे लेकर 'किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारा दु मोहणीयस्स' इस गाथा तक ग्यारह गाथाएँ निबद्ध हैं ।

कृष्टियोंकी क्षपणामें चार गाथाएँ निबद्ध हैं । क्षीणमोह-वीतराग-छद्मस्थके विषयमें एक गाथा है । संग्रहणीके विषयमें एक गाथा सम्बद्ध है । इस प्रकार सब मिलाकर चारित्रमोह-क्षपणा नामके पन्द्रहवें अर्थाधिकारमें अट्ठाईस गाथाएँ प्रतिबद्ध हैं ॥८॥

विशेषार्थ—चारों संज्वलन कषायोंकी जो बारह कृष्टियाँ की जाती हैं उनके क्षपणाका प्रतिपादन करनेवाली 'किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि' इस गाथासे लेकर 'किट्टीदो किट्टिं पुण' इस गाथा तक चार गाथाएँ हैं । मोहकर्मकी समस्त प्रकृतियोंके क्षीण हो जानेपर क्षीणमोह संज्ञा प्राप्त होती है । उसके विषयमें 'खीणेसु कसाएसु य सेसाणं' यह एक गाथा है । समस्त अधिकारके उपसंहार करनेवाली गाथाको संग्रहणी कहते हैं । ऐसी 'संकामणमोवट्टण०' यह एक गाथा है । इस प्रकार इन सब गाथाओंका योग (४+४+३+११+४+१+१ =२८) अट्ठाईस होता है । चारित्रमोहकी क्षपणा-सम्बन्धी इन अट्ठाईस गाथाओंको पूर्वोक्त चौंसठ गाथाओंमें मिला देनेपर समस्त गाथाओंका जोड़ (६४+२८=९२) बानवै होता है।

चारित्रमोहक्षपणा नामके पन्द्रहवें अर्थाधिकारमें जो अट्ठाईस गाथाएँ बतलाई गई हैं, उनमें सूत्रगाथाएँ कितनी हैं और असूत्रगाथाएँ कितनी हैं, यह बतलानेके लिए आचार्य दो गाथासूत्र कहते हैं—

किट्टीकयवीचारे संगहणी खीणमोहपट्ठवए ।
सत्तेदा गाहाओ अण्णाओ सभासगाहाओ ॥९॥
संकामण ओवट्टण किट्टीखवणाए एक्कवीसं तु ।
एदाओ सुत्तगाहाओ सुण अण्णा भासगाहाओ[1] ॥१०॥
पंच य तिण्णि य दो छक्क चउक्क तिण्णि तिण्णि एक्का य ।
चत्तारि य तिण्णि उभे पंच य एक्कं तह य छक्कं ॥११॥
तिण्णि य चउरो तह दुग चत्तारि य होंति तह चउक्कं च ।
दो पंचेव य एक्का अण्णा एक्का य दस दो य ॥१२॥

कृष्टि-सम्बन्धी ग्यारह गाथाओंमेंसे ग्यारहवीं वीचार-सम्बन्धी एक गाथा, संग्रहणी-सम्बन्धी एक गाथा, क्षीणमोह-सम्बन्धी एक गाथा और प्रस्थापक-सम्बन्धी चार गाथाएँ; इस प्रकार ये सात गाथाएँ सूत्रगाथाएँ नहीं हैं। इनके सिवाय शेष अन्य सभाष्य गाथाएँ हैं। संक्रामण-सम्बन्धी चार गाथाएँ, अपवर्तना सम्बन्धी तीन गाथाएँ, कृष्टि-सम्बन्धी दश गाथाएँ और कृष्टि-क्षपणा-सम्बन्धी चार गाथाएँ; ये सब मिलाकर इक्कीस सूत्र-गाथाएँ हैं। *अब इन इक्कीस सूत्र-गाथाओंकी जो अन्य भाष्य-गाथाएँ हैं, उन्हें सुनो* ॥९-१०॥

विशेषार्थ—पृच्छारूपसे अनेक अर्थोंकी सूचना करनेवाली गाथाओंको सूत्रगाथा कहते हैं और उन पृच्छाओंका अर्थ-व्याख्यान करनेवाली गाथाओंको भाष्यगाथा अथवा असूत्रगाथा कहते हैं। प्रकृतमें उक्त इक्कीस मूल गाथाओंके अर्थके व्याख्यान करनेवाली छियासी अन्य भी गाथाएँ पाई जाती हैं, जिन्हें भाष्यगाथा गाथा कहते हैं।

वे भाष्य-गाथाएँ कौन-कौन हैं, और किस-किस अर्थमें कितनी-कितनी भाष्य-गाथाएँ हैं, यह बतलाते हुए भाष्य-गाथाओंके प्ररूपण करनेके लिए आगे की दो सूत्र-गाथाएँ कहते हैं—

चारित्रमोहक्षपणा-सम्बन्धी इक्कीस सूत्र-गाथाओंकी भाष्य-गाथा-संख्या क्रमशः पाँच, 'तीन, दो और छह', चार, तीन, तीन, एक, चार, तीन, दो, 'पाँच, एक और छह', तीन, चार, दो, चार, चार, दो, पाँच, एक, एक, दश और दो है ॥११-१२॥

विशेषार्थ—नवें गुणस्थानमें अन्तरकरण करनेपर जीव संक्रामक कहलाता है,

[1] तत्थ मूलगाहाओ णाम सुत्तगाहाओ, पुच्छामेत्तेण सूचिदाणेगत्थाओ। भासगाहा सव्वपेक्खाओ। भासगाहाओ त्ति वा वक्खाणगाहाओ त्ति वा विवरणगाहाओ त्ति वा एयट्ठो। जयध०

उसके वर्णनमें चार मूल गाथाएँ हैं। उनमेंसे 'संकामणपट्ठवगस किट्टिदियाणि पुव्वबद्धाणि' यह प्रथम मूल सूत्र-गाथा है। इसके अर्थका व्याख्यान करनेवाली पाँच भाष्य-गाथाएँ हैं। जो कि 'संकामणपट्ठवगस्स' इस गाथासे लेकर 'संकंतम्मि य णियमा' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'संकामणपट्ठवगो' इस संक्रमण-सम्बन्धी दूसरी गाथाके तीन अर्थ हैं। उनमेंसे 'संकामणपट्ठवओ के बंधदि' इस प्रथम अर्थमें तीन भाष्य-गाथाएँ हैं। जो कि 'वस्ससदसहस्साइं' इस गाथासे लेकर 'सव्वावरणीयाणं जेसिं' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'के च वेदयदि अंसे' इस दूसरे अर्थमें दो भाष्य-गाथाएँ प्रतिबद्ध हैं। जिनमें पहली 'णिद्दा य णीचगोदं' और दूसरी 'वेदे च वेदणीए' इत्यादि गाथा है। 'संकामेदि य के के' इस तीसरे अर्थमें छह भाष्य गाथाएँ हैं। जो कि 'सव्वस्स मोहणीयस्स' इस गाथासे लेकर 'संकामयपट्ठवगो माणकसायस्स' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'बंधो व संकमो वा' इस तीसरी मूलगाथाकी चार भाष्य-गाथाएँ हैं। जो कि 'बंधेण होदि उदओ अहिओ' इस गाथासे लेकर 'गुणसेढि अणंतगुणेणूणाए' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'बंधो व संकमो वा उदओ वा' इस चौथी मूलगाथाकी तीन भाष्य गाथाएँ हैं। जो कि 'बंधोदएहिं णियमा' इस गाथासे लेकर 'गुणदो अणंतहीणं वेदयदि' इस गाथा तक होती हैं। इस प्रकार 'संकामए वि चत्तारि' इस गाथाखंडकी २३ भाष्य-गाथाएँ कही गईं। अपवर्तना-सम्बन्धी तीन मूलगाथाएँ हैं। उनमेंसे 'किं अंतरं करेंतो' इस पहली मूलगाथाकी तीन भाष्य गाथाएँ हैं। जो कि 'ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण' इस गाथासे लेकर 'ओकट्टदि जे अंसे' इस गाथा तक हैं। 'एक्कं च ट्ठिदिविसेसं' इस दूसरी मूलगाथाकी 'एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु' यह एक भाष्यगाथा है। 'ट्ठिदिअणुभागे अंसे' इस तीसरी मूलगाथाकी चार भाष्य-गाथाएँ हैं। जो कि 'ओवट्टेदि ट्ठिदिं पुण' इस गाथासे लेकर 'ओवट्टणमुव्वट्टण किट्टीवज्जेसु' इस गाथा तक जानना चाहिए। इस प्रकार अपवर्तनासम्बन्धी तीनों मूलगाथाओंकी भाष्यगाथाएँ कही गईं। कृष्टि-सम्बन्धी ग्यारह मूलगाथाएँ हैं। उनमें 'केवडिया किट्टीओ' यह पहली मूलगाथा है। इसके अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीन भाष्यगाथाएँ हैं, जो कि 'बारह णव छ तिण्णि य किट्टीओ होंति' इस गाथासे लेकर 'गुणसेढी अणंतगुणा लोभादी' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'कदिसु च अणुभागेसु च' इस दूसरी मूलगाथाकी दो भाष्यगाथाएँ हैं, जो कि 'किट्टी च ट्ठिदिविसेसेसु' इस गाथासे लेकर 'सव्वाओ किट्टीओ विदियट्ठिदीए' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'किट्टी च पदेसग्गेणाणुभागग्गेण' इस तीसरी मूलगाथाके तीन अर्थ हैं। उनमेंसे 'किट्टी च पदेसग्गेण' इस प्रथम अर्थमें पाँच भाष्यगाथाएँ हैं। जो कि 'विदियादो पुण पढमा' इस गाथासे लेकर 'एसो कमो च कोहे' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'अणुभागग्गेण' इस दूसरे अर्थमें 'पढमा च अणंतगुणा विदियादो' यह एक ही भाष्यगाथा है। 'का च कालेण' इस तीसरे अर्थमें छह भाष्यगाथाएँ हैं, जो कि 'पढमसमय-किट्टीणं कालो'

इस गाथासे लेकर 'वेदगकालो किट्टी य' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'कदिसु गदीसु भवेसु अ' इस चौथी मूलगाथाकी तीन भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'दोसु गदीसु अभज्जाणि' इस गाथासे लेकर 'उक्कस्से अणुभागे ट्ठिदि उक्कस्साणि' इस गाथा तक जानना चाहिए। 'पज्जत्तापज्जत्तेण तथा' इस पाँचवीं मूलगाथाकी चार भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'पज्जत्तापज्जत्ते मिच्छत्ते' इस गाथासे लेकर 'कम्माणि अभज्जाणि दु' इस गाथा तक जानना। 'किंलेस्साए बद्धाणि' इस छठी मूलगाथाकी दो भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'लेस्सा साद असादे च' इस गाथासे लेकर 'एदाणि पुव्वबद्धाणि' इस गाथा तक जानना। 'एगसमयप्पबद्धा पुण अच्छुद्धा' इस सातवीं मूलगाथाकी चार भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'छण्हं आवलियाणं अच्छुद्धा' इस गाथासे लेकर 'एदे समयपबद्धा' इस गाथा तक जानना। 'एगसमयपबद्धाणं सेसाणि' इस आठवीं मूलगाथाकी चार भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे' इस गाथासे लेकर 'एदेण अंतरेण दु' इस गाथा तक जानना। 'किट्टीकदम्मि कम्मे' इस नवीं मूलगाथाकी दो भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'किट्टीकदम्मि कम्मे णामागोदाणि' इस गाथासे लेकर 'किट्टीकदम्मि कम्मे सादं सुहणाममुच्चगोदं च' इस गाथा तक जानना। 'किट्टीकदम्मि कम्मे के बंधदि' इस दशवीं मूलगाथाकी पाँच भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'दससु च वस्सस्संतो बंधदि' इस गाथासे लेकर 'जसणाममुच्चगोदं वेदयदे' इस गाथा तक जानना। 'किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारा दु मोहणीयस्स' इस ग्यारहवीं मूलगाथाकी कोई भाष्यगाथा नहीं है, क्योंकि, वह सुगम है। इस प्रकार कृष्टि-सम्बन्धी ग्यारह मूलगाथाओंकी भाष्यगाथाएँ कही गईं। कृष्टियोंकी क्षपणामें चार मूलगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं। उनमेंसे 'किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि' यह पहली मूल-गाथा है। इसकी 'पढमं विदियं तदियं वेदेंतो' यह एक भाष्यगाथा है। 'जं वेदेंतो किट्टिं खवेदि' इस दूसरी मूलगाथाकी 'जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टिं' यह एक भाष्यगाथा है। 'जं जं खवेदि किट्टिं' इस तीसरी मूलगाथाकी दश भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु' इस गाथासे लेकर 'पच्छिमआवलियाए समयूणाए' इस गाथा तक जानना। 'किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदि' इस चौथी मूलगाथाकी दो भाष्यगाथाएँ हैं। वे 'किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदे णियमसा' इस गाथासे लेकर 'समयूणा च पविट्ठा आवलिया' इस गाथा तक जानना। इस प्रकार कृष्टियोंकी क्षपणा-सम्बन्धी चारों मूल-गाथाओंकी भाष्यगाथाएँ कही गईं।

उक्त दो गाथाओंसे कही गई समस्त भाष्यगाथाओंकी संख्याका योग छयासी (५+'३+२+६'+४+३+३+१+४+३+२+'५+१+६'+३+४+२+४+४+२+५+१+१+१०+२=८६) होता है। इन छयासी गाथाओंमें पूर्वोक्त अट्ठाईस मूलगाथाओंके मिला देनेपर चारित्रमोहनीयके क्षपणा नामक पन्द्रहवें अर्थाधिकारमें निबद्ध गाथाओंकी संख्या एक सौ चौदह होती है। इनमें प्रारम्भिक चौदह अर्थाधिकारोंकी चौसठ गाथाओंके मिला देनेपर समस्त गाथाओंकी संख्या एक सौ अठहत्तर हो जाती है।

(१) पेज्ज-दोसविहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च बंधगे चेय ।
वेदग उवजोगे वि य चउट्ठाण वियंजणे चेय ॥१३॥
(२) सम्मत्त देसविरयी संजम उवसामणा च खवणा च ।
दंसण-चरित्तमोहे अद्धापरिमाणणिद्देसो ॥१४॥

७. अत्थाहियारो पण्णारसविहो अण्णेण पयारेण ।

अब कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंके निरूपण करनेके लिए गुणधराचार्य दो सूत्रगाथाएँ कहते हैं—

कसायपाहुडमें वर्णन किये जानेवाले पन्द्रह अर्थाधिकारोंके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रेयोद्वेषविभक्ति, २ स्थितिविभक्ति, ३ अनुभागविभक्ति, ४ अकर्मबन्धकी अपेक्षा बन्धक, ५ कर्मबन्धकी अपेक्षा बन्धक अर्थात् संक्रामक, ६ वेदक, ७ उपयोग, ८ चतुःस्थान, ९ व्यञ्जन, १० दर्शनमोह-उपशामना, ११ दर्शनमोह-क्षपणा, १२ देश-विरति, १३ सकलसंयम, १४ चारित्रमोह-उपशामना, और १५ चारित्रमोह-क्षपणा। ये पन्द्रहों अर्थाधिकार दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय इन दोनों मोहकर्म-प्रकृतियोंसे ही सम्बन्ध रखते हैं। (शेष सात कर्मोंका इस कसायपाहुडमें कोई प्रयोजन नहीं है।) अद्धापरिमाण नामका कालप्रतिपादक अर्थाधिकार उक्त पन्द्रहों अर्था-धिकारोंमें प्रतिबद्ध समझना चाहिए ॥१३-१४॥

विशेषार्थ—ये दोनों सम्बन्ध-गाथाएँ कही जाती हैं। इनको उपर्युक्त एक सौ अठहत्तर गाथाओंमें मिला देनेपर (१७८+२=१८०) कसायपाहुडकी एक सौ अस्सी गाथाएँ हो जाती हैं; जिनकी कि सूचना गुणधराचार्यने 'गाहासदे असीदे' इस प्रथम प्रतिज्ञा द्वारा की थी। इन एक सौ अस्सी गाथाओंके अतिरिक्त बारह अन्य भी सम्बन्ध गाथाएँ हैं। अद्धापरिमाणके निर्देश करनेवाली छह गाथाएँ हैं। तथा, 'संकमउवक्कमविही' इस गाथासे लेकर पैंतीस संक्रमवृत्ति—अर्थात् प्रकृतियोंका संक्रमण बतानेवाली गाथाएँ कहलाती हैं। इन सबको पूर्वोक्त एक सौ अस्सी गाथाओंमें मिला देनेपर (१२+६+३५+१८०=२३३) दो सौ तेतीस समस्त गाथाओंका जोड़ हो जाता है। ये सभी गाथाएँ गुणधराचार्यके मुख-कमलसे विनिर्गत हैं।

गुणधराचार्यके उपदेशानुसार पन्द्रह अर्थाधिकारोंका निरूपण करके अब यतिवृषभाचार्य अन्य प्रकारसे पन्द्रह अर्थाधिकारोंको कहते हैं—

चूर्णिसू०—अन्य प्रकारसे अर्थाधिकारके पन्द्रह भेद हैं ॥७॥

विशेषार्थ—गुणधराचार्यके द्वारा पन्द्रह अर्थाधिकारोंके निरूपण कर दिये जानेपर यतिवृषभाचार्य अन्य प्रकारसे पन्द्रह अर्थाधिकारोंको बतलाते हुए क्यों न गुणधराचार्यके विराधक समझे जायं ? इस शंकाका समाधान यह है कि यतिवृषभाचार्य, अन्य प्रकारसे

८. तं जहा–पेज्जदोसे (१)। ९. विहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च (२)। १०. बंधगेत्ति, बंधो च (३), संकमो च (४)। ११. वेदए त्ति उदओ च (५), उदीरणा च (६)। १२. उवजोगे च (७)। १३. चउट्ठाणे च (८)। १४. वंजणे च (९)। १५. सम्मत्तेत्ति दंसणमोहणीयस्स उवसामणा च (१०), दंसणमोहणीयक्खवणा च (११)। १६. देसविरदी च (१२)। १७. संजमे उवसामणा च खवणा च चरित्तमोहणीयस्स उवसामणा च (१३), खवणा च (१४)। १८. दंसणचरित्तमोहेत्ति पदपरिवूरणं। १९. अद्धापरिमाणणिद्देसो त्ति (१५)। २०. एसो अत्थाहियारो पण्णारसविहो।

पन्द्रह अर्थाधिकारोंको बतलाते हुए भी गुणधराचार्यके विराधक नहीं हैं, क्योंकि, वे उनके बतलाए हुए अर्थाधिकारोंका निषेध नहीं कर रहे हैं। किन्तु, अभिप्रायान्तरकी अपेक्षा पन्द्रह अर्थाधिकारोंकी एक नवीन दिशा दिखला रहे हैं।

चूर्णिसू०—वे पन्द्रह अर्थाधिकार इस प्रकार हैं—१ प्रेयोद्वेष अर्थाधिकार, २ स्थिति-अनुभागविभक्ति अर्थाधिकार, ३ बंधक अर्थाधिकार, ४ संक्रम अर्थाधिकार, ५ वेदक या उदय-अर्थाधिकार, ६ उदीरणा अर्थाधिकार, ७ उपयोग अर्थाधिकार, ८ चतुःस्थान अर्थाधिकार, ९ व्यंजन अर्थाधिकार, १० सम्यक्त्व अधिकारके अन्तर्गत दर्शनमोहनीय-उपशामना अर्थाधिकार, ११ दर्शनमोहनीय-क्षपणा अर्थाधिकार, १२ देशविरति अर्थाधिकार, १३ संयम अर्थाधिकारके अन्तर्गत चारित्रमोहनीय-उपशामना अधिकार, १४ चारित्रमोहनीय-क्षपणा अर्थाधिकार और १५ अद्धापरिमाण अर्थाधिकार। यह पन्द्रह प्रकारका अर्थाधिकार है। गाथामें 'दंसणचरित्तमोहे' यह पद पादकी पूर्तिके लिए दिया गया है ॥८-२०॥

विशेषार्थ—स्थिति-अनुभागविभक्ति नामक दूसरे अर्थाधिकारमें प्रकृतिविभक्ति, क्षीणाक्षीण-प्रदेश और स्थित्यन्तिक-प्रदेश अर्थाधिकारोंका भी ग्रहण किया गया है, क्योंकि प्रकृतिविभक्ति आदिके विना स्थिति और अनुभागविभक्ति नहीं बन सकती है। यहां यह आशंका की जा सकती है कि यह कैसे जाना कि यतिवृषभाचार्यने ये उपर्युक्त ही पन्द्रह अर्थाधिकार माने हैं? इसका समाधान यह है कि इन प्रत्येक अर्थाधिकारोंके नाम-निर्देशके पश्चात् यतिवृषभाचार्य-द्वारा स्थापित १,२ आदिसे लेकर १५ तकके अंक पाये जाते हैं। दूसरे, आगे चलकर इसी क्रमसे चूर्णि-सूत्रोंके द्वारा उक्त अर्थाधिकारोंका प्रतिपादन किया गया है; इससे जाना जाता है कि यतिवृषभाचार्यने ये उपर्युक्त ही पन्द्रह अर्थाधिकार माने हैं। जयधवलाकारने अन्य प्रकारसे भी कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकार कहे हैं—१ प्रेयोद्वेष अर्थाधिकार, २ प्रकृतिविभक्ति अर्थाधिकार, ३ स्थितिविभक्ति अर्थाधिकार, ४ अनुभागविभक्ति अर्थाधिकार, ५ प्रदेशविभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक अर्थाधिकार, ६ बन्धक अर्थाधिकार, ७ वेदक अर्थाधिकार, ८ उपयोग अर्थाधिकार, ९ चतुःस्थान अर्थाधिकार, १० व्यञ्जन अर्थाधिकार, ११ सम्यक्त्व अर्थाधिकार, १२ देश-विरति अर्थाधिकार, १३ संयम अर्थाधिकार, १४ चारित्रमोह-उपशामना अर्थाधिकार, और १५ चारित्रमोह-

क्षपणा अर्थाधिकार। अद्धापरिमाण निर्देश नामक कोई स्वतन्त्र अर्थाधिकार नहीं है, क्योंकि, वह सभी अर्थाधिकारोंमें सम्बद्ध है, यही कारण है कि गुणधराचार्यने अन्तदीपक रूपसे सब अधिकारोंके अन्तमें कहते हुए भी तत्सम्बन्धी गाथाओंको सब अर्थाधिकारोंसे पूर्वमें कहा है। इसी प्रकारसे मूल दृष्टिकोणको ध्यानमें रखते हुए भिन्न-भिन्न दिशाओंसे भी कसाय-पाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकार जानना चाहिए।

उपरि-दर्शित तीनों प्रकारके अर्थाधिकारोंका चित्र इस प्रकार है—

	गाथासूत्रकार-सम्मत	चूर्णिकार-सम्मत	जयधवलाकार-सम्मत
१	पेज्जदोसविभक्ति	पेज्जदोसविभक्ति	पेज्जदोसविभक्ति
२	स्थितिविभक्ति	स्थिति-अनुभागविभक्ति (प्रकृति-प्रदेशविभक्ति क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक)	प्रकृतिविभक्ति
३	अनुभागविभक्ति	बन्ध	स्थितिविभक्ति
४	बन्ध (प्रदेशविभक्ति क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक)	संक्रम	अनुभागविभक्ति
५	संक्रम	उदय	प्रदेश-क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक विभक्ति
६	वेदक	उदीरणा	बन्धक
७	उपयोग	उपयोग	वेदक
८	चतुःस्थान	चतुःस्थान	उपयोग
९	व्यंजन	व्यंजन	चतुःस्थान
१०	दर्शनमोहोपशामना	दर्शनमोहोपशामना	व्यंजन
११	दर्शनमोहक्षपणा	दर्शनमोहक्षपणा	सम्यक्त्व
१२	संयमासंयमलब्धि	देशविरति	देशविरति
१३	चारित्रलब्धि	चारित्रमोहोपशामना	संयमलब्धि
१४	चारित्रमोहोपशामना	चारित्रमोहक्षपणा	चारित्रमोहोपशामना
१५	चारित्रमोहक्षपणा	अद्धापरिमाणनिर्देश	चारित्रमोहक्षपणा

गुणधराचार्यने प्रथम गाथासूत्रमें इस ग्रन्थके पेज्जदोसपाहुड और कसायपाहुड ये दो

२१. तस्स पाहुडस्स दुवे णामधेज्जाणि। तं जहा—पेज्जदोसपाहुडेत्ति वि, कसायपाहुडेत्ति वि। तत्थ अभिवाहरण-णिप्पण्णं[1] पेज्जदोसपाहुडं। २२. णयदो णिप्पण्णं कसायपाहुडं। २३. तत्थ पेज्जं णिक्खिवियव्वं-णामपेज्जं ठवणपेज्जं दव्वपेज्जं भावपेज्जं चेदि।

नाम किस अभिप्रायसे कहे हैं इस बातको बतलाते हुए यतिवृषभाचार्य चूर्णिसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—उस पाहुडके दो नाम हैं। वे इस प्रकार हैं—पेज्जदोसपाहुड (प्रेयो-द्वेषप्राभृत) और कसायपाहुड (कषायप्राभृत)। इनमेंसे पेज्जदोसपाहुड यह अभिव्याहरणसे निष्पन्न हुआ अर्थानुसारी नाम है ॥२१॥

विशेषार्थ—अपनेमें प्रतिबद्ध अर्थके व्याहरण अर्थात् कथनको अभिव्याहरण कहते हैं। पेज्जदोसपाहुड यह अभिव्याहरण-निष्पन्न नाम है; क्योंकि पेज्ज रागभावको कहते हैं और दोस नाम द्वेषभावका है। ये राग और द्वेषरूप अर्थ न केवल पेज्ज शब्दके द्वारा कहे जा सकते हैं और न केवल दोस शब्दके द्वारा ही। यदि इन दोनों अर्थोंका कथन केवल पेज्ज या दोस शब्दके द्वारा माना जाय, तो राग और द्वेषमें पर्यायभेद नहीं बनेगा। यतः राग और द्वेषमें पर्याय-भेद पाया जाता है, अतः इनके वाचक शब्द भी स्वतंत्र ही होना चाहिए। इस प्रकार राग और द्वेष–जो कि संसार-परिभ्रमणके कारण हैं—उनके बंध और मोक्षका इस पाहुड—प्राभृत या शास्त्रमें वर्णन किया गया है। इसलिए पेज्जदोसपाहुड यह अभि-व्याहरण-निष्पन्न अर्थानुसारी नाम है। पेज्जदोसपाहुड यह नाम समभिरूढ़नयकी अपेक्षा जानना चाहिए; क्योंकि समभिरूढनय अविवक्षित अनेक अर्थोंको छोड़कर विवक्षित एक अर्थको ही ग्रहण करता है।

चूर्णिसू०—कसायपाहुड यह नाम नयसे निष्पन्न है ॥२२॥

विशेषार्थ—जीवके उत्तमक्षमा आदि स्वाभाविक भावोंके या चारित्ररूप धर्मके विनाश करनेसे क्रोध आदि कषाय कहे जाते हैं। कषाय सामान्य है तथा राग और द्वेष विशेष हैं। कषायका पेज्ज और दोस दोनोंमें अन्वय पाया जाता है, अतएव कसायपाहुड यह नाम द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा जानना चाहिए। तथा राग और द्वेष कषायोंसे उत्पन्न होते हैं। इस ग्रन्थमें कषायोंकी इन्हीं रागद्वेषरूप पर्यायोंका वर्णन किया गया है इस अपेक्षा पेज्जदोस-पाहुड यह नाम पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे निष्पन्न हुआ है, तथापि उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है। क्योंकि, चूर्णिकारको उसका अभिव्याहरण-निष्पन्न अर्थ बताना अभीष्ट है।

पेज्ज, दोस, कसाय और पाहुड, ये सब शब्द अनेक अर्थोंमें वर्तमान हैं, इसलिए प्रयोजनभूत अर्थके निरूपण करनेके लिए यतिवृषभाचार्य निक्षेपसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—उनमेंसे पहले पेज्ज अर्थात् प्रेय का निक्षेप करना चाहिए—नामप्रेय, स्थापनाप्रेय, द्रव्यप्रेय और भावप्रेय ॥२३॥

---

१ अहिमुहस्स अप्पाणम्मि पडिबद्धस्स अत्थस्स वाहरणं कहणं, अभिवाहरणं। तेण णिप्पण्णं अभिवाहरणणिप्पण्णं। -जयध०

२४. णेगम-संगह-ववहारा सव्वे इच्छंति। २५. उजुसुदो ठवणवज्जे। २६. (सद्दणयस्स) णामं भावो च।

विशेषार्थ—प्रेय यह शब्द प्रेयनामनिक्षेप है। किसी चेतन या अचेतन पदार्थमें 'यह वही है' इस प्रकारसे प्रेयभावकी स्थापना करनेको प्रेयस्थापनानिक्षेप कहते हैं। अतीत या अनागत कालमें रागरूप होनेवाले या वर्तमानमें रागविषयक ज्ञानसे रहित पुरुषको प्रेयद्रव्यनिक्षेप कहते हैं। वर्तमानकालमें रागभावसे परिणत या रागशास्त्रके ज्ञायक पुरुषको प्रेयभावनिक्षेप कहते हैं।

अब चूर्णिकार उक्त निक्षेपोंके स्वामिस्वरूप नयोंका निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय, ये तीनों द्रव्यार्थिकनय उपर्युक्त सभी निक्षेपोंको स्वीकार करते हैं ॥२४॥

विशेषार्थ—यतः नामनिक्षेप तद्भव-सामान्य और सादृश्यसामान्यको अवलम्बन करके प्रवृत्त होता है, स्थापनानिक्षेप भी सादृश्य-सामान्यको अवलम्बन करता है और द्रव्यनिक्षेप भी दोनों प्रकारके सामान्योंके निमित्तसे होता है; अतएव इन तीनों निक्षेपोंके स्वामी नैगम-नय, संग्रहनय और व्यवहारनय होते हैं, क्योंकि, ये तीनों द्रव्यार्थिकनय हैं और सामान्य-को विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका काम है। वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं, इसलिए, अथवा द्रव्यको छोड़कर पर्याय पाई नहीं जाती हैं, इसलिए भावनिक्षेपके भी स्वामी उक्त तीनों द्रव्यार्थिकनय बन जाते हैं।

चूर्णिसू०—ऋजुसूत्रनय स्थापनानिक्षेपको छोड़कर शेष तीन निक्षेपोंको ग्रहण करता है ॥२५॥

विशेषार्थ—ऋजुसूत्रनय स्थापनानिक्षेपको विषय नहीं करता है, इसका कारण यह है कि इस नयमें सादृश्यलक्षण सामान्यका अभाव है। और, सादृश्य अथवा एकत्वके विना स्थापनानिक्षेप संभव नहीं हैं। इसलिए ऋजुसूत्रनय स्थापनानिक्षेपको छोड़कर शेष तीन निक्षेपोंको ही ग्रहण करता है।

चूर्णिसू०—नामनिक्षेप और भावनिक्षेप शब्दनयके विषय हैं ॥२६॥

विशेषार्थ—व्यंजननय, पर्यायनय और शब्दनय, ये तीनों एकार्थक नाम हैं। शब्द-नयके शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत, ये तीन भेद हैं। ये तीनों ही नय नामनिक्षेप और भावनिक्षेपको विषय करते हैं, क्योंकि, शब्दनयोंमें स्थापनानिक्षेप और द्रव्यनिक्षेपका व्यवहार नहीं हो सकता है।

पहले बतलाये गये चार निक्षेपोंमेंसे आदिके दो निक्षेपोंका अर्थ सुगम है, अतएव उन्हें न कहकर द्रव्यनिक्षेपके भेदरूप नोआगम द्रव्यप्रेयका स्वरूप-निरूपण करनेके लिए उत्तर-सूत्र कहते हैं—

२७. णोआगमदव्वपेज्जं तिविहं–हिदं पेज्जं, सुहं पेज्जं, पियं पेज्जं । गच्छगा च सत्त भंगा । २८. एदं णेगमस्स । २९. संगह-ववहाराणं उजुसुदस्स च सव्वं दव्वं पेज्जं । ३०. भावपेज्जं ठवणिज्जं ।

चूर्णिसू०—नोकर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यप्रेय तीन प्रकारका है—हितप्रेय, सुखप्रेय और प्रियप्रेय । इन तीनोंके गच्छसम्बन्धी सात भंग होते हैं ॥२७॥

विशेषार्थ—रोगादिके उपशमन करनेवाले द्रव्यको हितप्रेय कहते हैं । जैसे—पित्त-ज्वरादिके उपशमनका कारणस्वरूप कडवी गिलोय आदि । जीवके आल्हादके कारणभूत द्रव्यको सुखप्रेय कहते हैं । जैसे—भूखे पुरुषको मिष्टान्न और प्यासे पुरुषको शीतल जल। अपनी रुचिके विषयभूत द्रव्यको प्रियप्रेय कहते हैं । जैसे—स्त्री, पुत्र, मित्रादि । इस प्रकार नोआगमद्रव्यप्रेयके ये तीन एक-संयोगी स्वतन्त्र भंग हुए । अब द्विसंयोगी भंग कहते कहते हैं—द्राक्षाफल हितरूप भी हैं और सुखरूप भी हैं, क्योंकि, पित्तज्वरवाले पुरुषके स्वास्थ्य और आल्हादका कारण है (१) । निम्ब हितरूप भी है और प्रिय भी है, क्योंकि, तिक्तप्रिय पित्तज्वराभिभूत पुरुषके स्वास्थ्य और अनुरागका कारण है (२) । दुग्ध सुखकर भी है और प्रिय भी है, क्योंकि, आमव्याधिसे पीड़ित एवं मधुर-प्रिय पुरुषके आल्हाद और अनुरागका कारण है । किन्तु, उक्त पुरुषके लिए दुग्ध हितकारक नहीं है, क्योंकि, वह आमका वर्धक होता है (३) । इस प्रकार ये द्विसंयोगी तीन भंग हुए । मिश्री-मिश्रित दुग्ध हित, सुख और प्रिय है, क्योंकि स्वस्थ पुरुषके आल्हाद, सुख और अनुरागका कारण होता है । यह त्रिसंयोगी एक भंग है । उक्त सब भंग मिलाकर नोकर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्यप्रेयके सात भंग हो जाते हैं ।

चूर्णिसू०—यह नोआगम-द्रव्यप्रेयनिक्षेप नैगमनयका विषय है ॥२८॥

विशेषार्थ—इस निक्षेपको नैगमनयका विषय बतलानेका कारण यह है कि एक ही वस्तुमें युगपत् और क्रमशः हित, सुख और प्रियभाव माना गया है; तथा हित, सुख और प्रियस्वरूप पृथग्भूत भी द्रव्योंके प्रेयभावकी अपेक्षा एकत्व देखा जाता है ।

चूर्णिसू०—संग्रहनय, व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा सर्व द्रव्य प्रेय हैं ॥२९॥

विशेषार्थ—प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी जीवके, किसी न किसी कालमें प्रिय देखा जाता है । यहाँतक कि मरणका कारणभूत विष भी जीवनसे निराश हुए जीवोंके प्रिय देखा जाता है । इसलिए उक्त तीनों नयोंकी दृष्टिमें सभी द्रव्य प्रेय हैं ।

चूर्णिसू०—भावप्रेयनिक्षेपको स्थापित करना चाहिए ॥३०॥

विशेषार्थ—भावप्रेयनिक्षेपका वर्णन करना क्रमप्राप्त था, किन्तु वह बहुवर्णनीय है, और इस ग्रन्थका प्रधान विषय है, इस कारण चूर्णिसूत्रकार उसे स्थापित कर रहे हैं; क्योंकि, आगे यथावसर अनेक अनुयोगद्वारोंसे विस्तारपूर्वक उसका वर्णन किया जायगा ।

३१. दोसो णिक्खिवियव्वो-णामदोसो ठवणदोसो दव्वदोसो भावदोसो चेदि। ३२. णेगम-संगह-ववहारा सव्वे णिक्खेवे इच्छंति। ३३. उजुसुदो ठवणवज्जे। ३४. सद्दणयस्स णामं भावो च। ३५. णोआगमदव्वदोसो णाम जं दव्वं जेण उवघादेण उवभोगं ण एदि तस्स दव्वस्स सो उवघादो दोसो णाम। ३६. तं जहा। ३७. साडियाए अग्गिदद्धं वा मूसयभक्खियं वा एवमादि।

अब द्वेषका निक्षेप करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं--

चूर्णिसू०---द्वेषका निक्षेप करना चाहिए-- नामद्वेष, स्थापनाद्वेष, द्रव्यद्वेष और भावद्वेष ॥३१॥

विशेषार्थ---'द्वेष' इस प्रकारके नामको नामद्वेष कहते हैं। किसी चेतन या अचेतन पदार्थमें द्वेषभावके न्यासको स्थापनाद्वेष कहते हैं। अतीत या अनागतकालमें द्वेषरूप होनेवाले जीवको द्रव्यद्वेष कहते हैं। वर्तमानकालमें द्वेषभावसे परिणत पुरुषको भावद्वेष कहते हैं।

अब उक्त चारों प्रकारके द्वेषनिक्षेपोंके स्वामिस्वरूप नयोंके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं--

चूर्णिसू०---नैगम, संग्रह और व्यवहारनय सर्व द्वेषनिक्षेपोंको स्वीकार करते हैं। इसका कारण यह है कि द्वेषका आधार द्रव्य ही होता है और द्रव्यको विषय करना द्रव्यार्थिकनयोंका कार्य है। ऋजुसूत्रनय स्थापनानिक्षेपको छोड़कर शेष तीन निक्षेपोंको---नामद्वेष, द्रव्यद्वेष और भावद्वेषको-विषय करता है क्योंकि, इस नयमें स्थापनाद्वेषको विषय करना संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि ऋजुसूत्रनय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे पदार्थोंको भेदरूप ग्रहण करता है, इसलिए उनमें एकत्व नहीं हो सकता है और इसीलिए बुद्धिके द्वारा अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थकी स्थापना नहीं की जा सकती है। शब्दनयके नामद्वेष और भावद्वेष विषय हैं इसका कारण यह है कि शब्दनयोंमें स्थापना और द्रव्यनिक्षेपका व्यवहार संभव नहीं है ॥३२-३४॥

अब, नामद्वेष, स्थापनाद्वेष, और आगमद्रव्यद्वेषनिक्षेप तथा नोआगमद्रव्यद्वेषके भेदस्वरूप ज्ञायकशरीर और भव्यद्रव्यनिक्षेप सुगम हैं, इसलिए उनका स्वरूप नहीं कहकर तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यद्वेषके स्वरूपनिरूपणके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं---

चूर्णिसू०---जो द्रव्य जिस उपघातके निमित्तसे उपभोगको नहीं प्राप्त होता है, वह उपघात उस द्रव्यका द्वेष कहलाता है. इसीका नाम तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यद्वेष-निक्षेप है। जैसे--साड़ीका अग्निसे दग्ध होना, मूषकोंसे खाया जाना, इत्यादि ॥३५-३७॥

विशेषार्थ---शरीर-संस्कारके कारणभूत साड़ी आदि उपभोग्य वस्तुओंको यदि अचानक अग्नि लग जाय, अथवा चूहे काट खायँ; या इसी प्रकारका अन्य भी कोई उपद्रव हो जाय, तो निमित्तशास्त्रके अनुसार उनका फल दुर्भाग्यकी प्राप्ति, सन्तति और सम्पत्तिका

३८. भावदोसो ठवणिज्जो। ३९. कसाओ ताव णिक्खिवियव्वो–णामकसाओ ठवणकसाओ दव्वकसाओ पच्चयकसाओ समुप्पत्तियकसाओ आदेसकसाओ रसकसाओ भावकसाओ चेदि। ४०. णेगमो सव्वे कसाए इच्छदि। ४१. संगह-ववहारा समुप्पत्तियकसायमादेसकसायं च अवणेंति।

विनाश, इत्यादि होता है। अतएव अग्निदाह, मूषकभक्षण, टिड्डीपात, छत्रभंग आदिको तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यरूप उपघातद्वेष कहा है।

चूर्णिसू०—भावद्वेषको स्थापन करना चाहिए। क्योंकि, उसका वक्तव्य विषय अधिक है। अतएव पहले अल्प वक्तव्योंका निरूपण करके पीछे भावद्वेषका प्रतिपादन किया जायगा ॥३८॥

उक्त प्रकारसे प्रेय और द्वेष, इन दोनोंका निक्षेप करके अब कषायके भी निक्षेप-के लिए उत्तरसूत्र कहते हैं--

चूर्णिसू०—अब कषायोंका निक्षेप करना चाहिए—(वह कषायनिक्षेप आठ प्रकारका होता है—) नामकषाय, स्थापनाकषाय, द्रव्यकषाय, प्रत्ययकषाय, समुत्पत्तिकषाय, आदेशकषाय, रसकषाय और भावकषायनिक्षेप ॥३९॥

यतः कषायोंके स्वामिभूत-नयोंको बतलाये विना कषायनिक्षेपोंका अर्थ भलीभाँति समझमें नहीं आ सकता, अतएव अब चूर्णिसूत्रकार उक्त कषायनिक्षेपोंके अर्थको छोड़ करके कषायनिक्षेपोंके स्वामिस्वरूप नयोंके निरूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—नैगमनय ऊपर बतलाये गये सभी-आठों प्रकारके-कषायनिक्षेपोंको स्वीकार करता है। इसका कारण यह है कि नैगमनय भेद और अभेद, अथवा संग्रहके द्वारा सर्व-लोकवर्त्ती पदार्थोंको विषय करता है, अर्थात् समस्त लोकव्यवहार नैगमनयके आश्रित ही चलता हैं, इसलिए उसमें सभी कषायनिक्षेपोंका विषय होना संभव है ॥४०॥

चूर्णिसू०—संग्रहनय और व्यवहारनय समुत्पत्तिककषाय और आदेशकषायको विषय नहीं करते हैं ॥४१॥

विशेषार्थ—संग्रहनय और व्यवहारनय, समुत्पत्तिककषाय और आदेशकषायको विषय नहीं करते हैं, किन्तु शेष छह प्रकारके कषायनिक्षेपोंको विषय करते हैं। इसका कारण यह है कि समुत्पत्तिककषायका प्रत्ययकषायमें अन्तर्भाव हो जाता है। क्योंकि, प्रत्यय दो प्रकारका होता है—आभ्यन्तर और बाह्य। अनन्तानन्त कर्मपरमाणुओंके समा-गमसे समुत्पन्न, जीवप्रदेशोंके साथ एकताको प्राप्त, प्रकृति, स्थिति और अनुभागके भेदस्वरूप क्रोधादि द्रव्यकर्मस्कन्धको आभ्यन्तर प्रत्यय कहते हैं। क्रोधादिभाव कषायोंकी उत्पत्तिके कारणभूत जीवाजीवादि बाहरी द्रव्योंको बाह्य प्रत्यय कहते हैं। इसलिए कषायोत्पत्तिके कारण-की अपेक्षा कोई भेद न होनेसे समुत्पत्तिककषायका प्रत्ययकषायमें अन्तर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार आदेशकषाय भी स्थापनाकषायमें प्रविष्ट हो जाती है, क्योंकि, आदेशकषाय

४२. उजुसुदो एदे च ठवणं च अवणेदि । ४३. तिण्हं सद्दणयाणं णामकसाओ भावकसाओ च । ४४. णोआगमदव्वकसाओ जहा सज्जकसाओ सिरिसकसाओ एवमादि । ४५. पच्चयकसाओ णाम कोहवेयणीयस्स कम्मस्स उदएण जीवो कोहो होदि, तम्हा तं कम्मं पच्चयकसाएण कोहो ।

सद्भावस्थापनात्मक है, अतएव सद्भाव और असद्भावरूप स्थापनाकषायमें उसका अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है ।

चूर्णिसू०—ऋजुसूत्रनय, इन उपर्युक्त समुत्पत्तिककषाय और आदेशकषायको तथा स्थापनाकषायको विषय नहीं करता है; क्योंकि, ऋजुसूत्रनयका विषय एक समयवर्ती पदार्थ है, इसलिए उसमें उक्त निक्षेप संभव नहीं है । शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत, इन तीनों शब्दनयोंके नामकषाय और भावकषाय विषय हैं, शेष छह कषाय नहीं ॥४२-४३॥

नामकषाय, स्थापनाकषाय, आगमद्रव्यकषाय, नोआगमज्ञायकशरीरकषाय और भव्यकषाय, इनका अर्थ सुगम है, इसलिए चूर्णिकार उन्हें नहीं कहकर नोआगमतद्व्यतिरिक्तद्रव्यकषायके अर्थका निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—सर्जकषाय, शिरीषकषाय, इत्यादि नोआगमतद्व्यतिरिक्त द्रव्यकषाय हैं ॥४४॥

विशेषार्थ—सर्ज और शिरीष नामके वृक्ष होते हैं, उनके कषैले रसको क्रमशः सर्जकषाय और शिरीषकषाय कहते हैं । नैगमनयकी अपेक्षा कभी द्रव्य भी कषाय रसका विशेषण होता है और कभी कषायरस भी द्रव्यका विशेषण होता है, इसलिए द्रव्यके कषायको भी द्रव्य-कषाय कहते हैं, और कषायरूप द्रव्यको भी द्रव्य-कषाय कहते हैं । इस अपेक्षा सर्जकषाय, शिरीषकषाय, अमलककषाय इत्यादिको नोआगमतद्व्यतिरिक्त द्रव्यकषाय जानना चाहिए ।

अब प्रत्ययकषायका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—क्रोधवेदनीयकर्मके उदयसे जीव क्रोधकषायरूप होता है, इसलिए प्रत्ययकषायकी अपेक्षा वह क्रोधकर्म क्रोध कहलाता है ॥४५॥

विशेषार्थ—यहाँपर क्रोधवेदनीय नामक द्रव्यकर्मको प्रत्ययकषाय कहा गया है, इसका कारण यह है कि द्रव्यकर्मके उदयसे ही क्रोधादि कषाय उत्पन्न होते हैं । यही बात मान, माया और लोभप्रत्ययकषायके विषयमें भी जानना चाहिए । प्रत्ययकषाय, समुत्पत्तिककषायसे भिन्न है, इसका कारण यह है कि जो जीवसे अभिन्न होकर कषायोंको उत्पन्न करता है, उसे प्रत्ययकषाय कहते हैं । तथा, जो जीवद्रव्यसे भिन्न होकरके भी कषायोंको उत्पन्न करता है, उसे समुत्पत्तिककषाय कहते हैं । इस प्रकारसे दोनों कषायोंमें भेद पाया जाता है ।

४६. एवं माणवेयणीयस्स कम्मस्स उदएण जीवो माणो होदि, तम्हा तं कम्मं पच्चयकसाएण माणो। ४७. मायावेयणीयस्स कम्मस्स उदएण जीवो माया होदि, तम्हा तं कम्मं पच्चयकसाएण माया। ४८. लोहवेयणीयस्स कम्मस्स उदएण जीवो लोहो होदि तम्हा तं कम्मं पच्चयकसाएण लोहो। ४९. एवं णेगम-संगह-ववहाराणं। ५०. उजुसुदस्स कोहोदयं पडुच्च जीवो कोहकसाओ। ५१. एवं माणादीणं वत्तव्वं। ५२. समुप्पत्तियकसाओ णाम कोहो सिया जीवो सिया णो जीवो। एवमट्ठ भंगा।५३. कधं ताव जीवो? ५४. मणुस्सं पडुच्च कोहो समुप्पण्णो सो मणुस्सो कोहो।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार मानवेदनीयकर्मके उदयसे जीव मानस्वरूप होता हैं, इसलिए वह कर्म मानप्रत्ययकषाय है। मायावेदनीयकर्मके उदयसे जीव मायास्वरूप होता है, इसलिए वह कर्म मायाप्रत्ययकषाय है। लोभवेदनीयकर्मके उदयसे जीव लोभस्वरूप होता है, इसलिए वह कर्म लोभप्रत्ययकषाय कहलाता है ॥४६-४८॥

चूर्णिसू०—यह प्रत्ययकषाय नैगम, संग्रह और व्यवहार, इन तीनों द्रव्यार्थिक-नयोंका विषय है। क्योंकि, कार्यसे अभिन्न कारणके ही प्रत्ययपना माना गया है। क्रोधकषायके उदयकी अपेक्षा जीव क्रोधकषाय कहलाता है, इसलिए ऋजुसूत्र नयकी दृष्टिसे जीव ही क्रोधकषाय है। इसी प्रकार मान, माया आदि कषायोंका भी नय-विषयक व्यवहार करना चाहिए ॥४९-५१॥

अब समुत्पत्तिककषायका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा कचित् जीव क्रोध है, कचित् नोजीव (अजीव) क्रोध है। इस प्रकार आठ भंग होते हैं ॥५२॥

विशेषार्थ—जिस चेतन या अचेतन पदार्थके निमित्तसे क्रोधादि कषाय उत्पन्न होते हैं, वह पदार्थ समुत्पत्तिककषाय कहलाता है। किसी समय एक चेतन या अचेतन पदार्थके निमित्तसे क्रोधादिक उत्पन्न होते हैं और कभी अनेक चेतन और अचेतन पदार्थोंके निमित्तसे क्रोधादिक उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं, इसलिए इन चारोंकी अपेक्षा समुत्पत्तिक-कषायके आठ भंग हो जाते हैं। जो कि इस प्रकार हैं—१ एक जीवकषाय, २ एक नोजीवकषाय, ३ अनेक जीवकषाय, ४ अनेक नोजीवकषाय, ५ एक जीव, एक नोजीव-कषाय, ६ एक जीव, अनेक नोजीवकषाय, ७ अनेक जीव, एक नोजीवकषाय, और ८ अनेक जीव, अनेक नोजीव कषाय। इनका अर्थ चूर्णिसूत्रकार आगे स्वयं कहेंगे।

अब आठों भंगोंके उदाहरण प्ररूपण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

शंकाचू०—समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षाजीव क्रोध कैसे है? ॥५३॥

समाधानचू०—जिस मनुष्यके निमित्तसे क्रोध उत्पन्न होता है, वह मनुष्य समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा क्रोध है ॥५४॥

विशेषार्थ—किसी मनुष्यके आक्रोश—गालीगलौज—के सुननेसे कर्म-कलंकित

५५. कधं ताव णोजीवो ? ५६. कट्ठं वा लेंडुं वा पडुच्च कोहो समुप्पण्णो तं कट्ठं वा लेंडुं वा कोहो । ५७. एवं जं पडुच्च कोहो समुप्पज्जदि जीवं वा णोजीवं वा जीवे वा णोजीवे वा मिस्सए वा सो समुप्पत्तियकसाएण कोहो ।

जीवके क्रोधकषाय उत्पन्न होती हुई देखी जाती है, इसलिए नैगमनयकी अपेक्षा वह मनुष्य क्रोध कह दिया जाता है । यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि अन्य पुरुषके निमित्तसे अन्य पुरुषमें क्रोध कैसे उत्पन्न हो जाता है ? क्योंकि, जिस पुरुषमें क्रोध उत्पन्न हुआ है, उसमें शक्तिरूपसे या कषायोदयसामान्यकी अपेक्षा तो क्रोध विद्यमान ही था, केवल विशेष-रूपसे व्यक्त नहीं था, उस व्यक्तिका निमित्तकारण आक्रोशवचन बोलनेवाला अन्य पुरुष हो जाता है इसलिए उसे ही क्रोध कहा है । यही बात मान, माया और लोभकषायोंके विषयमें भी जानना ।

शंकाचू०—समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा अजीव क्रोध कैसे है ? ॥५५॥

समाधानचू०—जिस काठ, अथवा ईंट, पत्थर आदिके टुकड़ेके निमित्तसे क्रोध उत्पन्न होता है समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा वह काठ अथवा ईंट, पत्थर आदि क्रोध कहे जाते हैं ॥५६॥

विशेषार्थ—एक जीव तो दूसरे जीवके ताडन, मारण, बध-बंधनादिके निमित्तसे क्रोध उत्पन्न कर देता है, यह बात युक्ति-संगत है, किन्तु जो अजीव सर्व प्रकारकी चेष्टा, क्रिया आदि करनेसे रहित है, वह कैसे जीवके क्रोध उत्पन्न कर देता है ? ऐसी आशंकाका चूर्णिकारने यह समाधान किया है कि किसीके पैरमें काटा आदिके लग जानेसे क्रोध उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है । तथा अपने अंगमें पत्थर आदिके निमित्तसे चोट पहुँचनेपर रोष द्वारा दांत किटकिटाते हुए बन्दर आदि देखे जाते हैं । इसलिए अजीव पदार्थ भी क्रोधोत्पत्तिमें निमित्त होता है, यह सिद्ध है ।

चूर्णिसू०—इस प्रकारसे जिस चेतन वा अचेतन पदार्थकी अपेक्षा क्रोध उत्पन्न होता है, वह एक जीव, अथवा एक अजीव, अथवा अनेक जीव, अथवा अनेक अजीव, अथवा मिश्र-जीव-अजीव भी समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा क्रोधकषाय कहे जाते हैं ॥५७॥

विशेषार्थ—समुत्पत्तिककषायके पूर्वोक्त आठ भंगोंमेंसे आदिके दो भंगोंका अर्थ चूर्णिकारने स्वयं कह दिया है । शेष भंगोंका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—अनेक जीव भी क्रोधोत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे—शत्रुकी सेनाको देखकर क्रोधकी उत्पत्ति देखी जाती है (३) । अनेक अजीव पदार्थ भी क्रोधकी उत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे—अपने लिए अनिष्टभूत शत्रुओंके चित्र, मूर्तियाँ और उनके भवनादिके देखनेसे क्रोधकी उत्पत्ति देखी जाती है । (४) । एक जीव और एक अजीव पदार्थ भी क्रोधकी उत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे—तलवार हाथमें लिए हुए शत्रुको आता देखकर क्रोध उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है (५) । एक जीव और अनेक अजीव भी क्रोधोत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे—

५८. एवं माणमाया-लोभाणं । ५९. आदेसकसाएण जहा चित्तकम्मे लिहिदो कोहो रूसिदो तिवलिदणिडालो भिउडिं काऊण । ६०. माणो थद्धो लिक्खदे । ६१. मायाणिगूहमाणो लिक्खदे । ६२. लोहो णिव्वाइदेण पंपागहिदो लिक्खदे । ६३. एवमेदे कट्ठकम्मे वा पोत्तकम्मे वा, एस आदेसकसाओ णाम ।

शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित शत्रुको देखकर क्रोध उत्पन्न होता है (६) अनेक जीव और एक अजीव भी क्रोधोत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे–एक रथपर सवार, अथवा एक तोपको उठाये हुए अनेक शत्रुपक्षीय योद्धाओंको देखकर क्रोध उत्पन्न होता है । (७) अनेक जीव और अनेक अजीव भी क्रोधोत्पत्तिके कारण होते हैं, जैसे–नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित शत्रु-सेनाको देखकर क्रोध उत्पन्न होता है (८) ।

चूर्णिसू०—जिस प्रकार समुत्पत्तिककषायकी अपेक्षा क्रोधके आठ भंग कहे हैं, उसी प्रकार मान, माया–और लोभके भी आठ आठ भंग जानना चाहिए ॥५८॥

विशेषार्थ—यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि अजीव पदार्थ मानकषाय आदिकी उत्पत्तिके कारण कैसे होते हैं ? क्योंकि अपने रूप, यौवन, धनादिके गर्वसे गर्वित पुरुषके शृंगारके वस्त्र, अलंकार, सवारीकी मोटर, बग्घी और रहनेके मकान आदि मानकषायकी उत्पत्तिके कारण देखे जाते हैं । इसी प्रकार माया और लोभकषायके भी दृष्टान्त जान लेना चाहिए ।

अब आदेशकषायके स्वरूपनिरूपणके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—चित्रमें लिखे हुए कषायोंके आकारको आदेशकषाय कहते हैं । जैसे—चित्र-लिखित रोष-युक्त, मस्तकपर त्रिवली पाड़े हुए और भृकुटि चढ़ाए हुए पुरुषका आकार आदेश क्रोधकषाय है । चित्र-लिखित स्तब्ध–देव, गुरु, शास्त्र, माता, पिता, स्वामी आदिकी विनय नहीं करनेवाला—अभिमानी पुरुषका आकार आदेशमानकषाय है । चित्र-लिखित निगूहमान—छल, प्रपंच करता हुआ–पुरुषका आकार आदेशमायाकषाय है । णिव्वाइद अर्थात् संसार भरकी सम्पदाके संचय करनेकी अभिलाषासे युक्त, और पंपागृहीत अर्थात् कृपण, लम्पटी या कंजूस–पुरुषका चित्र-लिखित आकार आदेशलोभकषाय है ॥५९–६२॥

विशेषार्थ—आदेशकषाय और स्थापनाकषायमें परस्पर क्या भेद है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए । क्योंकि सद्भावस्थापनारूप कषायकी प्ररूपणा और कषायबुद्धिको आदेश-कषाय कहते हैं । तथा कषाय-विषयक तदाकार और अतदाकार स्थापनाको स्थापनाकषाय कहते हैं । इस प्रकार दोनों कषायोंका भेद स्पष्ट है ।

चूर्णिसू०—इस प्रकार काष्ठकर्ममें, अथवा पोत्थकर्ममें अथवा शैलकर्म आदिमें उत्कीर्ण या निर्मित कषायोंके ये आकार आदेशकषाय कहलाते हैं ॥६३॥

विशेषार्थ—लकड़ीकी पुतली आदि बनानेको काष्ठकर्म कहते हैं । पाषाणमें मूर्त्तिके उत्कीर्ण करनेको शैलकर्म कहते हैं । पोथी, कागज आदिपर चित्र लिखनेको पोत्थकर्म कहते

६४. एदं णेगमस्स । ६५. रसकसाओ णाम कसायरसं दव्वं, दव्वाणि वा कसाओ । ६६. तव्वदिरित्तं दव्वं, दव्वाणि वा णोकसाओ । ६७. एदं णेगम-संगहाणं । ६८. ववहारणयस्स कसायरसं दव्वं कसाओ, तव्वदिरित्तं दव्वं णोकसाओ । कसाय-रसाणि दव्वाणि कसाया, तव्वदिरित्ताणि दव्वाणि णोकसाया ।

हैं । भित्ती-दीवाल-आदिपर चित्राम करनेको लेप्यकर्म कहते हैं । इनमें अथवा इस प्रकारके अन्य भी कर्मोंमें क्रोधादि कषायोंके जो आकार उकेरे, खोदे, बनाये या लिखे जाते हैं, वे सब आदेशकषाय कहलाते हैं ।

अब इन कषायोंके स्वामिभूत नयोंका प्रतिपादन करते हैं—

चूर्णिसू०—यह समुत्पत्तिककषाय और आदेशकषाय नैगमनयके विषय होते हैं। इसका कारण यह है कि शेष नयोंके विषयभूत प्रत्ययकषाय और स्थापनाकषायमें यथाक्रमसे समुत्पत्तिककषाय और आदेशकषायका अन्तर्भाव हो जाता है ॥६४॥

अब रसकषायके स्वरूपका प्रतिपादन करते हैं—

चूर्णिसू०—कसैले-रसवाला एक द्रव्य अथवा अनेक द्रव्य रसकषाय कहलाते हैं ॥६५॥

अब नोकषायका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—रसकषायसे व्यतिरिक्त एक द्रव्य, अथवा अनेक द्रव्य नोकषाय कहलाते हैं । यह नोकषाय नैगमनय और संग्रहनयका विषय है । क्योंकि, इस नोकषायमें कषायसे भिन्न समस्त द्रव्योंका संग्रहस्वरूप व्यवहार देखा जाता है ॥६६-६७॥

चूर्णिसू०—व्यवहारनयकी अपेक्षा कषायरसवाला एक द्रव्य कषाय है, और उससे व्यतिरिक्तद्रव्य नोकषाय है । तथा कषायरसवाले अनेक द्रव्यकषाय कहलाते हैं और कषायरसवाले द्रव्योंसे भिन्न द्रव्य नोकषाय कहलाते हैं ॥६८॥

विशेषार्थ—नैगमनय भेद और अभेदको प्रधानता और अप्रधानतासे विषय करता है, तथा संग्रहनय एक या अनेकको एक रूपसे ग्रहण करता है, इसलिए इन दोनों नयोंकी अपेक्षा कषाय-रसवाले एक या अनेक द्रव्योंको एकवचन कषायशब्दके द्वारा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं आती । परन्तु व्यवहारनय एकको एकवचनके द्वारा और बहुतको बहुवचनके द्वारा ही कथन करता है, क्योंकि वह भेदकी प्रधानतासे वस्तुको विषय करता है । यदि व्यवहारनयकी अपेक्षा एक वस्तुको बहुवचनके द्वारा कहा जायगा, तो श्रोताको संदेह होगा कि वस्तु तो एक है और यह उसे बहुवचनके द्वारा क्यों कह रहा है । यही संदेह बहुत वस्तुओंको एकवचनके द्वारा कहनेमें भी होगा । अतएव नैगम और संग्रहनयके द्वारा एक द्रव्य या अनेक द्रव्योंको एकवचनसे कहे जानेपर भी असंदिग्ध प्रतीतिके लिए व्यवहारनय एक द्रव्यको एक वचनके द्वारा और अनेक द्रव्योंको बहुवचनके द्वारा ही कथन करता है, यही तीनों नयोंके विषयोंमें अन्तर है ।

६९. उजुसुदस्स कसायरसं दव्वं कसाओ, तव्वदिरित्तं दव्वं णोकसाओ, णाणाजीवेहि परिणामियं दव्वमवत्तव्वयं। ७०. णोआगमदो भावकसाओ कोहवेयओ जीवो वा जीवा वा कोहकसाओ। ७१. एवं माण-माया-लोभाणं। ७२. एत्थ छ अणियोगद्दाराणि। ७३. किं कसाओ? ७४. कस्स कसाओ? ७५. केण कसाओ? ७६. कम्हि कसाओ? ७७. केवचिरं कसाओ? ७८. कइविहो कसाओ? ७९. एत्तिए।

चूर्णिसू०—ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा कषायरसवाला द्रव्य कषाय है, और उससे व्यतिरिक्त द्रव्य नोकषाय है। तथा नानाजीवोंसे परिणमित द्रव्य अवक्तव्य है ॥६९॥

विशेषार्थ—ऋजुसूत्रनय द्रव्यकी एक क्षणवर्ती पर्यायको ही ग्रहण करता है और एक समयमें एक ही पर्याय होती है, अतएव इस ऋजुसूत्रकी दृष्टिसे कषायरसवाला एक द्रव्य कषाय और उससे भिन्न एक द्रव्य नोकषाय है। तथा नाना जीवोंके द्वारा ग्रहण किये गये अनेक द्रव्य अवक्तव्य है, क्योंकि ऋजुसूत्रनय एक समयमें अनेक पर्यायोंको विषय नहीं करता है। इसका कारण यह है कि इस नयकी अपेक्षा एक समयमें एक ही उपयोग होता है और एक उपयोग अनेक विषयोंको ग्रहण नहीं कर सकता।

आगमभावकषायनिक्षेपका अर्थ सुगम है, इसलिए उसका वर्णन न करके अब नोआगमभावकषायका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—क्रोधकषायका वेदन-अनुभवन-करनेवाला एक जीव, तथा क्रोधकषायके वेदक अनेक जीव नोआगमभाव क्रोधकषाय कहलाते हैं। इसी प्रकार मान, माया और लोभ, इन तीनोंका स्वरूप जानना चाहिए ॥७०-७१॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार क्रोधके वेदक एक और अनेक जीव नोआगमभाव क्रोध-कषाय कहे जाते हैं; उसी प्रकार मानकषायके वेदक एक और अनेक जीव नोआगम-भावमान-कषाय, मायाकषायके वेदक एक और अनेक जीव नोआगमभावमायाकषाय, तथा लोभ-कषायके वेदक एक और अनेक जीव नोआगमभावलोभकषाय कहलाते हैं।

इस प्रकार निक्षेपोंके द्वारा कषायोंका स्वरूप निरूपण करके अब चूर्णिकार निर्देश, स्वामित्व, साधन अधिकरण, स्थिति और विधान, इन छह अनुयोगद्वारोंसे कषायोंका व्याख्यान करते हैं—

चूर्णिसू०—यहाँपर छह अनुयोगद्वार होते हैं। वे इस प्रकार हैं—कषाय क्या वस्तु है? कषाय किसके होता है? कषाय किससे होता है? कषाय किसमें होता है? कषाय कितने काल तक होता है? और कषाय कितने प्रकारका होता है? ये छह अनुयोग-द्वार होते हैं। इतने ही अनुयोगद्वार कषायोंके समान प्रेय और द्वेषमें भी निरूपण करना चाहिए ॥७२-७९॥

विशेषार्थ—भावकषायोंके विशद स्वरूप-वर्णनके लिए यहाँपर निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान किया जा रहा है। नाम, स्थापना आदि शेष

सात प्रकारके कषायोंका इन अनुयोगद्वारोंसे वर्णन नहीं करनेका कारण यह है कि प्रकृत ग्रन्थमें उनका कोई प्रयोजन नहीं है। अब उन छहों अनुयोगद्वारोंसे कषायोंका व्याख्यान किया जाता है। (१) कषाय क्या वस्तु है? नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र, इन चारों अर्थनयोंकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायोंका वेदन या अनुभवन करनेवाला जीव ही कषाय है; क्योंकि, जीवद्रव्यको छोड़कर अन्यत्र कषाय पाये नहीं जाते हैं। शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत, इन तीनों शब्दनयोंकी अपेक्षा द्रव्यकर्म और जीवद्रव्यसे भिन्न क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चारों कषाय कहलाते हैं; क्योंकि, शब्दनय द्रव्यको विषय नहीं करते हैं। इस प्रकारका वर्णन करना निर्देश अनुयोगद्वार है (२) कषाय किसके होता है? नैगमादि चारों अर्थनयोंकी अपेक्षा कषाय जीवके होता है, अर्थात् कषायका स्वामी जीव है; क्योंकि, अर्थनयोंकी अपेक्षा जीव और कषायोंके भेदका अभाव है। तीनों शब्दनयोंकी अपेक्षा कषाय किसीके भी नहीं होता है, अर्थात् कषायका स्वामी कोई नहीं है; क्योंकि, भावकषायोंके अतिरिक्त जीवद्रव्य और कर्मद्रव्यका अभाव है। इस प्रकार कषायोंके स्वामीका प्रतिपादन करना स्वामित्व अनुयोगद्वार है। (३) कषाय किसके द्वारा उत्पन्न होता है? नैगमादि चारों अर्थनयोंकी अपेक्षा कषाय अपने उपादान और निमित्तकारणोंसे उत्पन्न होता है। किन्तु तीनों शब्दनयोंकी अपेक्षा कषाय किसीके द्वारा नहीं उत्पन्न होता है। अथवा, अर्थनयोंकी अपेक्षा कषाय औदयिकभावसे और शब्दनयोंकी अपेक्षा परिणामिकभावसे उत्पन्न होता है, क्योंकि इन नयोंकी दृष्टिमें कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारका वर्णन करना साधन अनुयोगद्वार है। (४) कषाय किसमें उत्पन्न होता है? चारों अर्थनयोंकी अपेक्षा राग-द्वेषके साधनभूत बाहरी वस्त्र, अलंकार आदि पदार्थोंमें उत्पन्न होता है। तीनों शब्दनयोंकी अपेक्षा कषाय अपने आपमें ही स्थित है, अर्थात् कषायका अधिकरण कषाय ही है, अन्य पदार्थ नहीं, क्योंकि, कषायसे भिन्न पदार्थ कषायका आधार हो नहीं सकता है। इस प्रकारके वर्णन करनेको अधिकरण अनुयोगद्वार कहते हैं। (५) कषाय कितने काल तक होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा कषाय सर्वकाल होता है। एक जीवकी अपेक्षा सामान्य कषायका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त है। कषाय-विशेषकी अपेक्षा प्रत्येक कषायका जघन्य और उत्कृष्ट-काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु, मरण और व्याघातकी अपेक्षा कषायका जघन्य-काल एक समय है। इस प्रकारके वर्णन करनेको स्थिति अथवा काल नामक अनुयोगद्वार कहते हैं। (६) कषाय कितने प्रकारका होता है? कषाय और नोकषायके भेदसे कषाय दो प्रकारका है, अनन्तानुबन्धी आदिके भेदसे चार प्रकारका है और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा पच्चीस प्रकारका है। इस प्रकारसे कषायोंके भेद-वर्णन करनेको विधान-नामक अनुयोगद्वार कहते हैं। जैसे इन छह अनुयोगद्वारोंसे कषायका प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार प्रेय और द्वेषका भी व्याख्यान करना चाहिए; क्योंकि, उनके विना प्रेय और द्वेषका यथार्थ निर्णय हो नहीं हो सकता।

८०. पाहुडं णिक्खिवियव्वं-णामपाहुडं ठवणपाहुडं दव्वपाहुडं भावपाहुडं चेदि, एवं चत्तारि णिक्खेवा एत्थ होंति। ८१. णोआगमदो दव्वपाहुडं तिविहं-सचित्तं अचित्तं मिस्सयं च। ८२. णोआगमदो भावपाहुडं दुविहं-पसत्थमप्पसत्थं च। ८३. पसत्थं जहा—दोगंधियं पाहुडं। ८४. अप्पसत्थं जहा-कलहपाहुडं।

चूर्णिसू०—पाहुड या प्राभृत इस पदका निक्षेप करना चाहिए। नामप्राभृत, स्थापना प्राभृत, द्रव्यप्राभृत और भावप्राभृत, इस प्रकार प्राभृतके विपयमें चार निक्षेप होते हैं ॥८०॥

नाम, स्थापना, आगमद्रव्य, नोआगमद्रव्य, ज्ञायकशरीर, और भव्यद्रव्य, इन निक्षेपोंका अर्थ सुगम होनेसे उन्हें न कहकर चूर्णिकार तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेपका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यप्राभृत सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकार का है ॥८१॥

विशेषार्थ—प्राभृत अर्थात् भेंट-स्वरूप भेजे गये हाथी, घोड़े आदि सचित्तनोआगमद्रव्यप्राभृत कहलाते हैं। सोना, चाँदी, माणिक, मोती, हीरा, पन्ना आदि उपहाररूप द्रव्यको अचित्तनोआगमद्रव्यप्राभृत कहते हैं। भेंट स्वरूप भेजे जानेवाले सोने, चाँदी और जवाहरात आदिसे लदे हुए हाथी, घोड़े आदि मिश्रनोआगमद्रव्यप्राभृत हैं। चूँकि, भेंट या उपहारमें दिये जानेवाले द्रव्य व्यवहारमें प्राभृत कहलाते हैं, इस अपेक्षा यहाँ प्राभृतका अर्थ किया गया है, और वे द्रव्य तीन प्रकारके होते हैं, इसलिए नोकर्म-तद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यप्राभृतके तीन भेद किये गये हैं, ऐसा अभिप्राय समझना चाहिए।

आगमभावप्राभृतका अर्थ सुगम है, इसलिए उसे न कहकर नोआगमभावप्राभृत-निक्षेपका स्वरूप कहते हैं —

चूर्णिसू०—नोआगमभावप्राभृत प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारका होता है ॥८२॥

विशेषार्थ—आनन्दके कारणस्वरूप शास्त्रादि द्रव्यके समर्पणको प्रशस्तनोआगमभाव-प्राभृत कहते हैं। वैर, कलह आदिके कारणभूत द्रव्यके प्रस्थापनको अप्रशस्तनोआगमभाव-प्राभृत कहते है। इन दोनोंकी अपेक्षा नोआगमभावप्राभृतके दो भेद हो जाते हैं।

अब प्रशस्त और अप्रशस्तनोआगमभावप्राभृतका स्वरूप कहते हैं—

चूर्णिसू०—दोग्रन्थरूप पाहुडका समागम प्रशस्तनोआगमभावप्राभृत है। कलह-जनक द्रव्यका समर्पण अप्रशस्तनोआगमभावप्राभृत है ॥८३-८४॥

विशेषार्थ—परमानन्द और आनन्दमात्रको 'दोग्रन्थिक' कहते हैं। किन्तु केवल परमानन्द और आनन्द रूप भावोंका आदान-प्रदान संभव नहीं, अतः उपचारसे उनके कारणभूत द्रव्योंके भेजनेको दोग्रन्थिक-प्राभृत कहा जाता है। इसके दो भेद हैं, परमानन्द-प्राभृत और आनन्दमात्रप्राभृत। इनमें, केवलज्ञान और केवलदर्शनके द्वारा समस्त विश्वके

८५. संपहि णिरुत्ती उच्चदे । ८६. पाहुडेत्ति का णिरुत्ती ? जम्हा पदेहि पुदं (फुडं) तम्हा पाहुडं ।

आवलिय अणायारे चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिब्भाए ।
मण-वयण-काय-पासे अवाय-ईहा-सुदुस्सासे ॥१५॥

दर्शक, वीतराग तीर्थंकरोंके द्वारा उपदिष्ट, और भव्यजीवोंके हितार्थ निर्दोष आचार्य-परम्परासे प्रवाहित, द्वादशांग वाणीके वचनसमूहको, अथवा उसके एक देशको परमानन्ददोग्रन्थिकप्राभृत कहते हैं । इसके अतिरिक्त सांसारिक सुख-सामग्रीके साधक पदार्थोंके समर्पणको आनन्दमात्र-प्राभृत कहते हैं । सर्प, गर्दभ, जीर्ण वस्तु और विष आदि द्रव्य कलहके कारण होते हैं । ऐसे द्रव्योंका किसीको भेंट-स्वरूप भेजना कलहपाहुड कहलाता है । इसे ही अप्रशस्त-नोआगमभावप्राभृत कहते हैं । यहाँ प्राकृतमें इन उपर्युक्त अनेक प्रकारके प्राभृतोंमेंसे स्वर्ग और मोक्ष-सम्बन्धी आनन्द और परम सुखके कारणभूत दोग्रन्थिकप्राभृतसे प्रयोजन है ।

उत्थानिकाचू०—अब 'प्राभृत' इस पदकी निरुक्ति कहते हैं ॥८५॥

शंकाचू०—प्राभृत-इस पदकी निरुक्ति क्या है ?

समाधान चू०—जो अर्थपदोंसे स्फुट, संपृक्त या आभृत अर्थात् भरपूर हो, उसे प्राभृत कहते हैं ॥८६॥

विशेषार्थ—प्रकृष्टरूप तीर्थंकरोंके द्वारा आभृत अथवा प्रस्थापित शास्त्रको प्राभृत कहते हैं । अथवा, प्रकृष्ट-श्रेष्ठ विद्या-वित्तशील आचार्योंके द्वारा अवधारित, व्याख्यात अथवा, आगत शास्त्रको प्राभृत कहते हैं । कषाय-विषयक श्रुतको-शास्त्रको-कषायप्राभृत कहते हैं । अथवा, कषाय-सम्बन्धी अर्थपदोंसे परिपूर्ण शास्त्रको कषायप्राभृत कहते हैं । इसी प्रकार, राग और द्वेषके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको पेज्जदोसपाहुड या प्रेयोद्वेषप्राभृत कहते हैं, जो कि कषायप्राभृतका ही दूसरा नाम है । इस प्रकार कषायप्राभृतका उपक्रम समाप्त हुआ ।

अब, जिसके जाने विना प्रस्तुत ग्रन्थके अर्थाधिकारोंका ठीक ज्ञान नहीं हो सकता, और जो पन्द्रहों अधिकारोंमें साधारणरूपसे व्याप्त है, उस अद्धा-परिमाणका गाथासूत्रकार सबसे पहले निर्देश करते हैं—

अनाकार दर्शनोपयोग, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा इन्द्रिय-सम्बन्धी अवग्रहज्ञान, मनोयोग, वचनयोग, काययोग, स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी अवग्रहज्ञान, अवायज्ञान, ईहाज्ञान, श्रुतज्ञान और उच्छ्वास, इन सब पदोंका जघन्यकाल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है, तथापि वह संख्यात आवलीप्रमाण है ॥१५॥

विशेषार्थ—अनाकार अर्थात् दर्शनोपयोगका जघन्यकाल आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम है, तथापि वह अनेक आवलीप्रमाण है । इस अनाकार उपयोगसे चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष अधिक है । चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी अवग्रहज्ञानके जघन्यकालसे श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष

केवलदंसण-णाणे कसायसुक्केकए पुधत्ते य ।
पडिवादुवसामेंतय खवेंतए संपराए य ॥१६॥

अधिक है । श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानके जघन्यकालसे घ्राणेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्यकाल विशेष अधिक है । घ्राणेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानके जघन्यकालसे जिह्वेन्द्रिय-सम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्यकाल विशेष अधिक है । जिह्वेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानके जघन्यकालसे मनोयोगका जघन्यकाल विशेष अधिक है । मनोयोगके जघन्यकालसे वचन-योगका जघन्यकाल विशेष अधिक है । वचनयोगके जघन्यकालसे काययोगका जघन्यकाल विशेष अधिक है । काययोगके जघन्यकालसे स्पर्शनेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्यकाल विशेष अधिक है । स्पर्शनेन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानके जघन्यकालसे अवायज्ञानका जघन्य-काल विशेष अधिक है । अवायज्ञानके जघन्यकालसे ईहाज्ञानका जघन्यकाल विशेष अधिक है । ईहाज्ञानके जघन्यकालसे श्रुतज्ञानका जघन्यकाल विशेष अधिक है । श्रुतज्ञानके जघन्य-कालसे उच्छ्वासका जघन्यकाल विशेष अधिक है ।

यहाँपर अवाय और ईहाज्ञानके जघन्यकालका सामान्य निर्देश होनेसे स्पर्शन, रसना आदि किसी भी इन्द्रियसम्बन्धी अवाय और ईहाज्ञानका ग्रहण किया गया समझना चाहिए । धारणाज्ञानका पृथक् निर्देश न होनेका कारण यह है कि उसका अवायज्ञानमें ही अन्तर्भाव कर लिया गया है, क्योंकि, दृढ़ात्मक अवायज्ञानको ही धारणा कहते हैं । इसी-लिए उसका पृथक् निर्देश नहीं किया गया ।

तद्भवस्थ-केवलीके केवलदर्शन, केवलज्ञान और सकषाय जीवके शुक्ललेश्या, इन तीनोंका; एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान, पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यान, प्रति-पाती उपशामक, आरोहक उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयत; इन सबका जघन्यकाल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥१६॥

विशेषार्थ—तद्भवस्थ-केवलीके केवलदर्शन, केवलज्ञान और सकषाय जीवकी शुक्ललेश्या, इन तीनोंका जघन्य काल परस्पर सदृश होते हुए भी उच्छ्वासके जघन्यकालसे विशेष अधिक है । इससे एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यानका जघन्य काल विशेष अधिक है । एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यानके जघन्य कालसे पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यानका जघन्य काल विशेष अधिक है । पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यानके जघन्य कालकी अपेक्षा प्रतिपाती—उपशान्तकषाय-गुणस्थानसे गिरनेवाले—सूक्ष्मसाम्परायसंयतका जघन्य काल विशेष अधिक है । प्रतिपाती सूक्ष्मसाम्परायसंयतके जघन्यकालसे उपशान्तकषाय-गुणस्थानमें चढ़नेवाले आरोहक सूक्ष्मसाम्परायसंयतका जघन्य काल विशेष अधिक है । आरोहक-उपशामक सूक्ष्म-साम्परायसंयतके जघन्य कालसे क्षपक श्रेणीवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयतका जघन्य काल विशेष अधिक है । यहाँपर तद्भवस्थकेवलीसे अन्तःकृतकेवलीका अभिप्राय समझना चाहिए; क्योंकि,

माणद्धा कोहद्धा मायद्धा तहय चेव लोहद्धा ।
खुद्दभवग्गहणं पुण किट्टीकरणं च बोद्धव्वा ॥१७॥
संकामण-ओवट्टण-उवसंतकसाय-खीणमोहद्धा ।
उवसामेंतय-अद्धा खवेंत-अद्धा य बोद्धव्वा ॥१८॥

जो घोरातिघोर दुस्सह उपसर्ग सहन करते हुए केवलज्ञान प्राप्तकर शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष चले जाते हैं, उन्हींके केवलदर्शन और केवलज्ञानका यह जघन्य काल सम्भव है; अन्यके नहीं ।

मानकषाय, क्रोधकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय, तथा क्षुद्रभवग्रहण और कृष्टीकरण, इनका जघन्य काल उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ऐसा जानना चाहिए ॥१७॥

विशेषार्थ—क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयतके जघन्यकालसे मानकषायका जघन्य काल विशेष अधिक है । मानकषायके जघन्यकालसे क्रोधकषायका जघन्य काल विशेष अधिक है । क्रोधकषायके जघन्यकालसे मायाकषायका जघन्य काल विशेष अधिक है । मायाकषायके जघन्यकालसे लोभकषायका जघन्य काल विशेष अधिक है । लोभकषायके जघन्यकालसे लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्षुद्रभवग्रहणका काल विशेष अधिक है । लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्षुद्रभव-ग्रहणके कालसे कृष्टीकरणका काल विशेष अधिक है । यह कृष्टीकरण-सम्बन्धी जघन्य काल लोभकषायके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके होता है और कृष्टीकरण-क्रिया भी क्षपकश्रेणीके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अन्तमें होती है ।

संक्रामण, अपवर्तन, उपशान्तकषाय, क्षीणमोह, उपशामक और क्षपक, इनके जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक जानना चाहिए ॥१८॥

विशेषार्थ—अन्तरकरण करनेपर नपुंसकवेदके क्षपण करनेको संक्रामण कहते हैं । नपुंसकवेदके क्षय कर देनेपर शेष नोकषायोंके क्षपण करनेको अपवर्तन कहते हैं । ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवको उपशान्तकषाय और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवको क्षीणमोह कहते हैं । उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव जब मोहनीय कर्मका अन्तरकरण कर देता है, तब उसकी उपशामक संज्ञा हो जाती है । इसी प्रकार जब क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव मोहकर्मका अन्तरकरण कर देता है, तब उसकी क्षपक संज्ञा हो जाती है । इनका काल इस प्रकार है—कृष्टीकरणके जघन्यकालसे संक्रामणका जघन्य काल विशेष अधिक है । संक्रामणके जघन्य कालसे अपवर्तनका जघन्य काल विशेष अधिक है । अपवर्तनके जघन्य कालसे उपशान्तकषायका जघन्य काल विशेष अधिक है । उपशान्तकषायके जघन्य कालसे क्षीणमोह गुणस्थानका जघन्य काल विशेष अधिक है । क्षीणमोहके जघन्य कालसे उपशामकका जघन्य काल विशेष अधिक है । तथा उपशामकके जघन्य कालसे क्षपकका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

णिव्वाघादेणेदा होंति जहण्णाओ आणुपुव्वीए।
एत्तो अणाणुपुव्वी उक्कस्सा होंति भजियव्वा ॥१९॥
चक्खू सुदं पुधत्तं माणोवाओ तहेव उवसंते।
उवसामेंतय-अद्धा दुगुणा सेसा हु सविसेसा ॥२०॥

ये ऊपर बतलाये गये सर्व जघन्य काल निर्व्याघात अर्थात् मरण आदि व्याघातके विना होते हैं। (क्योंकि, व्याघातकी अपेक्षा तो उक्त पदोंका जघन्य काल कचित् कदाचित् एक समय भी पाया जाता है।) ये उपर्युक्त जघन्य काल-सम्बन्धी पद आनुपूर्वीसे कहे गए हैं। अब इससे आगे जो उत्कृष्ट काल-सम्बन्धी पद कहे जानेवाले हैं, उन्हें अनानुपूर्वीसे अर्थात् परिपाटीक्रमके विना जानना चाहिए ॥१९॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त चार गाथाओंके द्वारा अनाकार उपयोगसे लेकर क्षपक जीव तकके स्थानोंमें जो जघन्य काल बतलाया गया है, वह अपने पूर्ववर्ती स्थानकी अपेक्षा उत्तरवर्ती स्थानमें क्रमशः विशेष विशेष अधिक है, इस प्रकारकी आनुपूर्वी अर्थात् एक क्रम-बद्ध परम्परासे कहा गया है। किन्तु अब इससे आगे उन्हीं स्थानोंका जो उत्कृष्ट काल कहा जायगा, वह आनुपूर्वीके विना ही कहा जायगा। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त स्थानोंमेंसे कुछ स्थानोंका उत्कृष्ट काल अपने पूर्ववर्ती स्थानोंके उत्कृष्ट कालसे दुगुना है और कुछ स्थानोंका कुछ विशेष अधिक है, अतएव उनमें आनुपूर्वी सम्भव नहीं है। यह बात आगे कहे जानेवाले उक्त स्थानोंके उत्कृष्ट कालसे स्पष्ट हो जायगी।

अब उपर्युक्त पदोंका उत्कृष्ट काल कहते हैं—

चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी मतिज्ञानोपयोग, श्रुतज्ञानोपयोग, पृथक्त्ववितर्कवीचार-शुक्लध्यान, मानकषाय, अवायमतिज्ञान, उपशान्तकषाय और उपशामक, इनके उत्कृष्ट कालोंका परिमाण अपने पूर्ववर्ती पदके कालसे दुगुना दुगुना है। उक्त पदोंके अतिरिक्त अवशिष्ट पदोंके उत्कृष्ट कालोंका परिमाण स्वपूर्व पदसे विशेष अधिक है ॥२०॥

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रसे सूचित उत्कृष्ट अद्धापरिमाणसम्बन्धी अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिए—मोहनीयकर्मके जघन्य क्षपण-कालसे चक्षुदर्शनोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी मतिज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे श्रोत्रेन्द्रियज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे घ्राणेन्द्रियज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे जिह्वेन्द्रियज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे मनोयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे वचनयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे काययोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे स्पर्शनेन्द्रिय-जनितज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे अवायज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे ईहाज्ञानोपयोगका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे श्रुतज्ञानो-

८७. एत्तो सुत्तसमोदारो ।

पयोगका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे उच्छ्वासका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे तद्भवस्थकेवलीके केवलज्ञान, केवलदर्शन और सकषायी जीवकी शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल स्वस्थानमें परस्पर सदृश होकर विशेष अधिक है। इससे एकत्ववितर्क-अवीचारशुक्लध्यानका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यानका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे प्रतिपाती सूक्ष्मसाम्परायका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे मानकषायका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे क्रोधकषायका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे मायाकषायका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे लोभकषायका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे क्षुद्रभवग्रहणका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे कृष्टीकरणका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे संक्रामणका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे अपवर्तनका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे उपशान्तकषायका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे चारित्रमोहनीय उपशामकका उत्कृष्ट काल दुगुना है। इससे चारित्रमोहनीय क्षपकका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है।

इस प्रकार अद्धापरिमाणका निर्देश करनेवाला अर्थाधिकार समाप्त हुआ।

अब कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे प्रथम अर्थाधिकार कहनेके लिए चूर्णिकार प्रतिज्ञासूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–इस उपर्युक्त अद्धापरिमाण अर्थाधिकारके अनन्तर गाथासूत्रका समवतार होता है ॥८७॥

विशेषार्थ–इससे पहले कहीं गईं बारह सम्बन्ध-गाथाएँ अद्धापरिमाण और अधिकार-निर्देश करनेवाली गाथाएँ भी तो गुणधराचार्यके मुख-कमलसे विनिर्गत होनेके कारण 'सूत्र' ही हैं ? फिर उनकी सूत्रसंज्ञा न करके अब आगे कही जानेवाली गाथाओंकी सूत्रसंज्ञा क्यों की जा रही है ? इस शंकाका समाधान यह है कि इस अल्पबहुत्वसे आगेकी सूत्र-गाथाएँ कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमें प्रतिबद्ध हैं। किन्तु पूर्वोक्त बारह सम्बन्ध-गाथाएँ और छह अद्धापरिमाण निर्देश करनेवाली गाथाएँ, तथा अधिकार-निर्देश करनेवाली दो गाथाएँ, किसी एक अर्थाधिकारसे सम्बन्धित नहीं हैं; अपि तु सभी-पन्द्रहों-अर्थाधिकारोंमें साधारणरूपसे सम्बद्ध हैं, इस बातके बतलानेके लिए 'एत्तो सुत्तसमोदारो' ऐसा प्रतिज्ञा-सूत्र यतिवृषभाचार्यने कहा है। अतएव उक्त गाथाओंके गुणधराचार्य-प्रणीत होनेपर भी चूर्णिकारने आगे आनेवाली गाथाओंकी ही सूत्रसंज्ञा की है।

अब पेज्जदोसविहत्ती नामक प्रथम अर्थाधिकारमें प्रतिबद्ध गाथासूत्रको कहते हैं–

(३) पेज्जं वा दोसो वा कम्मि कसायम्मि कस्स व णयस्स ।
दुट्ठो व कम्मि दव्वे पियायदे को कहिं वा वि ॥२१॥

८८. एदिस्से गाहाए पुरिमद्धस्स विहासा[1] कायव्वा । तं जहा–णेगम-संगहाणं कोहो दोसो, माणो दोसो । माया पेज्जं, लोहो पेज्जं ।

---

(३) किस-किस कषायमें किस-किस नयकी अपेक्षा प्रेय या द्वेषका व्यवहार होता है ? अथवा कौन नय किस द्रव्यमें द्वेषको प्राप्त होता है और कौन नय किस द्रव्यमें प्रियके समान आचरण करता है ? ॥२१॥

विशेषार्थ–इस आशंका-सूत्रका यह अभिप्राय है कि प्रेय और द्वेष किसे कहते हैं, उनका कषायोंसे क्या सम्बन्ध है, वे प्रेय और द्वेष किस-किस नयके विषय होते हैं और यह राग-द्वेपसे भरा हुआ जीव किस द्रव्यको द्वेषकर या अपना अहितकारी समझकर उनमें द्वेषका व्यवहार करता है और किस द्रव्यको प्रियकर या हितकारी समझकर उसमें राग करता है ? इस प्रकारके प्रश्नोंको उठाकर उनके समाधान करनेकी सूचना ग्रन्थकारने की है ।

इस प्रकार आशंका-सूत्र कहकर गुणधराचार्यने उसका उत्तर-स्वरूप सूत्र नहीं कहा, अतएव आगे व्याख्यान किये जानेवाला अर्थ निर्निबन्धन–सम्बन्ध, अभिधेय आदि रहित–और दुरवहार-क्लिष्ट या दुरूह–न हो जाय, इसलिए यतिवृषभाचार्य उक्त आशंका-सूत्रसे सूचित अर्थका प्रतिपादन आगेके सूत्र-सन्दर्भ द्वारा करते हैं–

चूर्णिसू०–इस गाथाके पूर्वार्धकी विभाषा-विशेष व्याख्या–करना चाहिए । वह इस प्रकार है–नैगमनय और संग्रहनयकी अपेक्षा क्रोधकषाय द्वेष है, मानकषाय द्वेष है । मायाकषाय प्रेय है और लोभकषाय प्रेय है ॥८८॥

विशेषार्थ–नैगम और संग्रहनयकी अपेक्षा क्रोधकषायको द्वेप कहनेका कारण यह है कि क्रोध करनेवाले पुरुषके क्रोधके निमित्तसे अङ्गमें सन्ताप उत्पन्न होता है, शरीर काँपने लगता है, मुखकी कान्ति फीकी पड़ जाती है । इसी प्रकार क्रोधकी अधिकतासे मनुष्य अन्धा, बहिरा और गूंगा भी हो जाता है । क्रोधी पुरुषकी स्मरणशक्तिका लोप हो जाता है । क्रोधान्ध पुरुष अपने माता, पिता, भाई, बहिन आदि स्वबन्धु-जनोंको भी मार डालता है । इस प्रकार क्रोधकषाय सकल अनर्थोंका मूल है और इसीलिए उसे द्वेषरूप कहा है । क्रोधके समान ही उक्त दोनों नयोंकी अपेक्षा मानकषायको भी द्वेष कहा गया है । इसका कारण यह है कि मानकषाय क्रोधकषायका अविनाभावी है, अर्थात् क्रोधके पश्चात् नियमसे उत्पन्न होता है । मानकषाय करनेवाला मानी पुरुष यद्यपि दूसरोंको नीचा दिखाकर स्वयं उच्च बननेका प्रयत्न करता है, किन्तु प्रथम तो ऐसा करनेके लिए उसे

---

१ सुत्तेण सूचिदत्थस्स विसेसिऊण भासा विभासा, विवरणं ति वुत्तं होइ । जयध०

अनेक असत्-उपायोंका—कुमार्गोंका—आश्रय लेना पड़ता है। दूसरे, जिसके लिए या जिसके ऊपर अभिमान किया जाता है, वह व्यक्ति भी प्रतिस्पर्धाके कारण सदा बदला लेनेकी चेष्टा किया करता है, और अवसर पाते ही अभिमानीको नीचा दिखाए विना नहीं रहता। इस प्रकार क्रोधके समान ही मानकषाय भी उपर्युक्त अशेष दोषोंका कारण होनेसे द्वेषरूप ही है। नैगम और संग्रहनयकी अपेक्षा मायाकषायको प्रेयरूप कहा गया है। इसका कारण यह है कि मायाका आधार सदा ही कोई प्रिय पदार्थ हुआ करता है। मनुष्य किसी प्रिय वस्तुके छिपानेके लिए ही मायाचारी करता है। क्रोध और मानकषायके समान मायाचारीका अभिप्राय साधारणतः दूसरेके दिलको दुखानेका नहीं हुआ करता है, किन्तु अपनी गोप्य वस्तुको गुप्त रखनेका ही हुआ करता है। दूसरी बात यह है कि मायाचारी पुरुष अपनी मायाचारीकी सफलतापर सन्तोषका अनुभव करता है। किन्तु क्रोधी और मानीकी ऐसी बात नहीं है, उसे तो सदा ही पीछे पछताना पड़ता है। क्वचित् कदाचित् मायाका प्रयोग क्रोध और मानकषायकी पुष्टिमें भी देखा जाता है, सो वहाँपर क्रोध और मानमूलक मायाकषाय जानना चाहिए, केवल मायाकषाय नहीं। यही बात क्रोध, मान और लोभके विषयमें भी जानना चाहिए। इस प्रकार उक्त दोनों नयोंकी अपेक्षा माया-कषायको प्रेयरूप कहना युक्ति-युक्त ही है। लोभकषाय भी उक्त दोनों नयोंकी अपेक्षा प्रेयरूप है। इसका कारण यह है कि लोभ धनोपार्जन, परिग्रह-संरक्षण, ऐश्वर्य-वृद्धि आदिके लिए किया जाता है। इन सभी बातोंके मूलमें लोभीको अपने वर्तमान और आगामी सुखकी कामना हुआ करती है। मनुष्य अपने आपको, अपने कुटुम्बी जनोंको, अपने सजातीय और स्वदेशीय बन्धुओंको सुखी बनानेकी इच्छासे ही धन-संग्रह किया करता है। इस प्रकार लोभ करनेवालेकी दृष्टि वर्तमान और आगामी कालमें सुख-प्राप्तिकी ही रहती है। इसलिए नैगम और संग्रहनयकी दृष्टिसे लोभको प्रेयरूप कहना उचित ही है। अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, ये चारों नोकषाय नैगम और संग्रहनयकी अपेक्षा द्वेषरूप हैं, क्योंकि, क्रोधकषायके समान ही ये भी अशान्ति और दुःखके कारण हैं। हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, ये पाँच नोकषाय प्रेयरूप हैं, क्योंकि, लोभकषायके समान ये सभी नोकषाय प्रेयके कारण हैं। चूर्णिसूत्रमें नोकषायका पृथक् उल्लेख नहीं होनेपर भी सूत्रके देशामर्शक होनेसे उक्त सूत्रमें इन नोकषायोंका अन्तर्भाव समझना चाहिए। यहाँ एक आशंका की जा सकती है कि क्रोधादिकषायों और अरति, शोकादि नोकषायोंको द्वेषरूप ही मानना चाहिए, क्योंकि, ये सभी कर्मास्रवके कारण हैं। फिर माया, लोभ और हास्य आदिको प्रेयरूप कैसे कहा ? इसका समाधान यह है कि यद्यपि यह सत्य है कि सभी कषाय और नोकषाय कर्मास्रवके कारण होते हैं। किन्तु यहाँपर वर्तमानकालिक या भविष्यकालिक प्रसन्नता मात्रकी ही विवक्षासे माया, लोभ और हास्यादिकको प्रेयरूप कहा है।

८९. ववहारणयस्स कोहो दोसो, माणो दोसो, माया दोसो; लोहो पेज्जं। ९०. उजुसुदस्स कोहो दोसो, माणो णो दोसो णो पेज्जं, माया णो दोसो णो पेज्जं, लोहो पेज्जं।

चूर्णिसू०—व्यवहारनयकी अपेक्षा क्रोधकषाय द्वेष है, मानकषाय द्वेष है, माया-कषाय द्वेष है। किन्तु लोभकषाय प्रेय है ॥८९॥

विशेषार्थ—क्रोध और मानकषायको द्वेष कहना तो उचित है, क्योंकि, लोकमें उन दोनोंके भीतर द्वेष-व्यवहार देखा जाता है। किन्तु मायाकषायमें तो द्वेषका व्यवहार नहीं पाया जाता है, अतः उसे द्वेष नहीं कहना चाहिए ? इस शंकाका समाधान यह है कि माया में भी द्वेषका व्यवहार देखा जाता है। इसका कारण यह है कि माया करनेसे संसार-में अविश्वास उत्पन्न होता है, जिससे कोई उसका विश्वास नहीं करता। माया करनेसे लोक-निन्दा भी उत्पन्न होती है और लोक-निन्दित वस्तु प्रिय हो नहीं सकती है; क्योंकि, लोक-निन्दासे सदा ही दुःख और अशान्ति उत्पन्न हुआ करती है। अतएव व्यवहारनयकी अपेक्षा मायाकषायको द्वेष कहना न्यायोचित है। इसी नयकी अपेक्षा लोभको प्रेय कहना भी उचित ही है, क्योंकि, लोभसे संचित और रक्षित द्रव्यके द्वारा व्यवहारिक जगत्‌में जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता हुआ देखा जाता है। इसी प्रकार व्यवहारनयकी दृष्टिसे स्त्रीवेद और पुरुषवेद भी प्रेयरूप हैं, क्योंकि, इनके निमित्तसे राग-भावकी उत्पत्ति देखी जाती है। किन्तु शेष सात नोकषाय इस नयकी अपेक्षा द्वेषरूप हैं, क्योंकि, व्यवहारमें शोक, अरति आदिसे द्वेपभाव उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है।

चूर्णिसू०—ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे क्रोधकषाय द्वेष है, मानकपाय नोद्वेष और नोप्रेय है, मायाकपाय नोद्वेष और नोप्रेय है, तथा लोभकषाय प्रेय है ॥९०॥

विशेषार्थ—ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा क्रोधकषायको द्वेप कहना उचित है, क्योंकि, वह सकल अनर्थोंका मूल कारण है। लोभको प्रेय कहना उचित है, क्योंकि, उससे हृदय आल्हादित होता है। किन्तु मान और मायाकषायको नोद्वेष और नोप्रेय कैसे कहा; क्योंकि, राग और द्वेषसे रहित तो कोई कषाय पाया नहीं जाता ? इस शंकाका समाधान यह है—मान और मायाकषायको नोद्वेष कहनेका तो कारण यह है कि इनके करते हुए वर्तमानमें अंग-संताप, चित्त-वैकल्य आदि नहीं उत्पन्न होते हैं। यदि कभी कहीं होते भी हैं, तो वहाँपर वह शुद्ध मानकषाय न समझकर क्रोध-मिश्रित मानकपाय समझना चाहिए। इसी प्रकार मान और मायाकषायको नोप्रेय कहना भी युक्ति-संगत है, क्योंकि, ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा वर्तमानमें गर्व और छल-प्रपंच करते हुए आल्हादकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती। उक्त कथनसे यह सिद्ध हुआ कि मानकषाय और मायाकषाय न पूर्णरूपसे प्रेयरूप ही हैं और न द्वेषस्वरूप ही। अतएव इन्हें नोप्रेय और नोद्वेष कहना सर्वप्रकारसे न्याय-संगत है।

९१. सद्दस्स कोहो दोसो, माणो दोसो, माया दोसो, लोहो दोसो। कोहो माणो माया णो पेज्जं, लोहो सिया पेज्जं। ९२. *दुट्ठो व कम्हि दव्वे'त्ति। ९३. णेगमस्स। ९४. दुट्ठो सिया जीवे, सिया णो जीवे। एवमट्ठ भंगेसु।

चूर्णिसू०–शब्दनयकी अपेक्षा क्रोधकषाय द्वेष है, मानकषाय द्वेष है, मायाकषाय द्वेष है और लोभकषाय भी द्वेष है। तथा, क्रोधकषाय, मानकषाय और मायाकषाय नोप्रेय हैं, लोभकषाय कथंचित् प्रेय है ॥९१॥

विशेषार्थ–क्रोधादिक सभी कपाय कर्मास्रवके कारण हैं, इस लोक और परलोकका विनाश करनेवाली हैं, इसलिए उन्हें द्वेषरूप कहना उचित ही है। क्रोध, मान और माया-कषायको नोप्रेय कहनेका कारण यह है कि इनसे तत्काल जीवके न तो संतोष ही पाया जाता है, और न परम आनन्द ही। लोभकपायके कथंचित् प्रेयरूप कहनेका अभिप्राय यह है कि रत्नत्रयके साधन-सम्बन्धी लोभसे आगे जाकर स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी देखी जाती है। इनके अतिरिक्त सांसारिक वस्तु-विपयक लोभ नोप्रेय ही है, क्योंकि, उससे पापोंकी उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार उक्त गाथासूत्रके पूर्वार्धकी व्याख्याकर अब उसके तीसरे चरणका अर्थ कहनेके लिये यतिवृषभाचार्य उसका उपन्यास करते हैं—

चूर्णिसू०–'कौन नय किस द्रव्यमें द्वेषको प्राप्त होता है'? नैगमनयकी अपेक्षा जीव किसी विशिष्ट क्षेत्र और किसी विशिष्ट कालमें एक जीवमें द्वेषको प्राप्त होता है, तथा क्वचित् कदाचित् एक अजीवमें द्वेपको प्राप्त होता है। इस प्रकार आठ भंगोंमें द्वेष-व्यवहार जान लेना चाहिए ॥९२–९४॥

विशेषार्थ–वे आठ भंग इस प्रकार हैं—(१) जीव कभी कहीं एक जीवमें द्वेष करता है, (२) कभी कहीं अनेक जीवोंमें द्वेष करता है, (३) कभी कहीं एक अजीवपर द्वेष करता है, (४) कभी कहीं अनेक अजीवोंपर द्वेष करता है, (५) कभी एक जीव और एक अजीवपर, (६) कहीं अनेक जीव और एक अजीवपर, (७) कभी अनेक अजीव और एक अजीवपर और (८) कहीं अनेक जीव और अनेक अजीवोंमें द्वेप करता है। इन आठों ही भेदोंमें क्रोधकी उत्पत्ति अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, प्रत्यक्षमें ही कभी किसी जीवके दुर्व्यवहारके कारण क्रोध उत्पन्न होता है, तो कभी पैर आदिमें काँटा आदिके लग जानेसे अजीव पदार्थके द्वारा भी क्रोधकी उत्पत्ति होती हुई देखी जाती है। इस प्रकार नैगमनय-की अपेक्षा 'कौन किस द्रव्यमें द्वेषभावको प्राप्त होता है' इस चरणसे संबंधित आठ भंगोंका निरूपण जानना चाहिए।

* जयधवला-संपादकोंने इसे चूर्णिसूत्र नहीं माना, पर यह चूर्णिसूत्र है, जैसा कि इसी सूत्रकी जयधवलाटीकासे ही स्पष्ट है:–दुट्ठो व कम्हि दव्वे त्ति। एयस्स गाहावयवस्स अत्थो वुच्चदि त्ति जाणाविदमेदेण सुत्तेण। णेदं परूवेदव्वं, सुगमत्तादो? ण एस दोसो, मंदमेहजणाणुग्गहट्ठं परूविदत्तादो। जयध० भा० १, पृ० ३७०।

९५. 'पियायदे को कहिं वा वि' त्ति एत्थ वि णेगमस्स अट्ठ भंगा। ९६. एवं ववहारणयस्स। ९७. संगहस्स दुट्ठो सव्वदव्वेसु। ९८. पियायदे सव्वदव्वेसु। ९९. एवमुजुसुअस्स १००. सद्दस्स णो सव्वदव्वेहि दुट्ठो, अत्ताणे चेव, अत्ताणम्मि पियायदे।

अब चूर्णिकार उक्त गाथाके चतुर्थ चरणका अर्थ कहते हैं—

चूर्णिसू०—'कौन नय किस द्रव्यमें प्रियरूप आचरण करता है', यहाँ पर भी नैगम-नयकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं ॥९५॥

जिस प्रकार ऊपर द्वेषको आश्रय करके एक और अनेक जीव तथा अजीव-सम्बन्धी आठ भंग बतलाए गये हैं। उसी प्रकार यहाँ प्रेयको आश्रय करके आठ भंग जान लेना चाहिए। क्योंकि, जैसे जीव, कभी किसी समय एक जीव और अनेक जीवोमें प्रेयभावका आचरण करता हुआ देखा जाता है, उसी प्रकार कभी एक अजीव भवनादिमें और अनेक अजीवरूप भोगोपभोगके साधनभूत हिरण्य, सुवर्ण, शय्या, आसन और खान-पानकी वस्तुओंमें प्रिय आचरण करता हुआ देखा जाता है। इसी प्रकार शेष भंगोंको भी लगा लेना चाहिए। नैगमनयकी अपेक्षा आठ भंग कहनेका कारण यह है कि यह नय संग्रह और असंग्रह-स्वरूप सभी पदार्थोंको विषय करता है। जिससे एक-अनेक, भेद-अभेद आदिके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाले भंगोंका इस नयमें समावेश हो जाता है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार व्यवहारनयकी अपेक्षासे द्वेष और प्रेयसम्बन्धी आठ भंग जानना चाहिए। क्योंकि, इन उक्त आठों प्रकारके भंगोंमें प्रिय और अप्रियरूपसे लोकसंव्य-वहार देखा जाता है। संग्रहनयकी अपेक्षा कभी यह जीव सर्व चेतन और अचेतन द्रव्योंमें निमित्तविशेषादिके वशसे द्वेषरूप व्यवहार करने लगता है। यहाँ तक कि क्वचित् कदाचित् प्रिय पदार्थोंमें भी अप्रियपना देखा जाता है। कभी सभी वस्तुओंमें प्रिय आचरण करता है। यहाँ तक कि निमित्तविशेष मिलनेपर विषादिक अप्रिय एवं घातक वस्तुओंमे भी प्रिय आचरण करता हुआ देखा जाता है। संग्रहनयके समान ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा भी यह जीव कभी सर्व द्रव्योंमें द्वेषरूप आचरण करता है ॥९६-९९॥

चूर्णिसू०—शब्दनयकी अपेक्षा जीव सर्वद्रव्योंके साथ न तो द्वेष-व्यवहार करता है और न प्रिय-व्यवहार ही। किन्तु अपने आपमें ही द्वेष-व्यवहार करता है और अपने आपमें ही प्रिय आचरण करता है॥१००॥

विशेषार्थ—किसी अन्य चेतन या अचेतन पदार्थमें द्वेषभाव रखनेपर उसका फल अन्यको नहीं भोगना पड़ता है किन्तु अपने आपको ही भोगना पड़ता है, क्योंकि, किसी पर क्रोध, द्वेष आदि करनेपर तत्काल उत्पन्न होनेवाले अंग-संताप, चित्त-वैकल्य आदि कुफल, और परभवमें उत्पन्न होनेवाले नरकादिकके दुःख जीवको ही भोगना पड़ते हैं। इसी प्रकार अन्यपर किया गया प्रिय आचरण भी अन्यको सुख पहुँचानेकी अपेक्षा अपने आपको ही सुख और शान्ति पहुँचाता है। इसलिए शब्दनयकी अपेक्षा जीव न किसी पर द्वेष करता है

१०१. णेगमासंगहियस्स वत्तव्वएण बारस अणियोगद्दाराणि पेज्जेहि दोसेहि । १०२. एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भागाभागाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो त्ति । १०३. कालजोणी सामित्तं ।

और न किसीपर राग करता है । किन्तु अपने आपमें ही राग और द्वेषरूप आचरण करता है, यह बात सिद्ध हुई ।

चूर्णिसू०–असंग्राहिक नैगमनयके वक्तव्यसे प्रेय और द्वेषकी अपेक्षा बारह अनुयोगद्वार होते हैं ॥१०१॥

विशेषार्थ–नैगमनयके दो भेद हैं–संग्राहिकनैगम और असंग्राहिकनैगम नय। उनमेंसे असंग्राहिकनैगमनयकी अपेक्षा प्रेय और द्वेषके अर्थका प्रतिपादन करनेवाले बारह अनुयोगद्वार होते हैं, जिनके कि नाम आगेके सूत्रमें बतलाये गये हैं । तथा, संग्राहिकनैगमनय और शेष समस्त नयोंकी अपेक्षा पन्द्रह अनुयोगद्वार भी होते हैं, इससे अधिक भी होते हैं और कम भी होते हैं, क्योंकि, उक्त नयोंकी अपेक्षा अनुयोगद्वारोंकी संख्याका कोई नियम नहीं है । जयधवलाकारने अथवा कहकर इस सूत्रका एक और प्रकारसे भी अर्थ किया है–असंग्राहिक नैगमनयके वक्तव्यसे जो प्रेय और द्वेष चारों कषायोंके विषयमें समानरूपसे विभक्त हैं, अर्थात् क्रोध और मान द्वेषरूप हैं, तथा माया और लोभ प्रेयरूप हैं, उनकी अपेक्षा वक्ष्यमाण बारह अनुयोगद्वार होते हैं ।

वे बारह अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं—

चूर्णिसू०–एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ॥१०२॥

विशेषार्थ–सत्प्ररूपणाको आदिमें न कहकर अनुयोग-द्वारोंके मध्यमें क्यों कहा ? इस शंकाका समाधान–यह है कि यदि सत्प्ररूपणाको मध्यमें न कहकर उसे अनुयोगद्वारोंके आदिमें कहते, तो वह एक-जीवविषयक ही रहती, क्योंकि, आदिमें एक जीव-सम्बन्धी अनुयोगद्वारोंका ही नाम-निर्देश किया गया है । किन्तु मध्यमें उल्लेख करनेसे उनका विषय साधारणतः एक और अनेक जीव-सम्बन्धी सत्ताका प्रतिपादन करना बन जाता है । इसलिए उसका अनुयोगद्वारोंके मध्यमें नाम-निर्देश किया है ।

चूर्णिसू०–स्वामित्व अनुयोगद्वार कालानुयोगद्वारकी योनि है ॥१०३॥

विशेषार्थ–स्वामित्वके निरूपण किये विना कालकी प्ररूपणा नहीं हो सकती है । अतएव स्वामित्वानुयोगद्वारको कालानुयोगद्वारकी योनि कहा है ।

स्वामित्वानुयोगद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे पहले ओघनिर्देशकी अपेक्षा द्वेषके स्वामित्वका प्रतिपादन करते हैं—

१०४. दोसो को होइ ? १०५. अण्णदरो णेरइयो वा तिरिक्खो वा मणुस्सो वा देवो वा । १०६. एवं पेज्जं । १०७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । १०८. दोसो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १०९. एवं पेज्जमणुगंतव्वं । ११०. आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु पेज्जदोसं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ ।

शंकाचू०–द्वेषरूप कौन होता है ? ॥१०४॥

समाधानचू०–कोई एक नारकी, अथवा तिर्यंच, अथवा मनुष्य, अथवा देव द्वेष-रूप होता है, अर्थात् चारों गतिके जीव द्वेषके स्वामी हैं ॥१०५॥

अब ओघनिर्देशकी अपेक्षा प्रेयके स्वामित्वका निरूपण करते हैं–

चूर्णिसू०–इसी प्रकार प्रेयके भी स्वामी जानना चाहिए । अर्थात् कोई एक नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव प्रेयका स्वामी है ॥१०६॥

अब कालानुयोगद्वारके निरूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश निर्देश ॥१०७॥

उनमेंसे पहले ओघनिर्देशकी अपेक्षा कालका निरूपण करते हैं–

चूर्णिसू०–द्वेष कितने काल तक होता है ? द्वेष जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त तक होता है । अर्थात् द्वेषका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ॥१०८॥

अब ओघनिर्देशकी अपेक्षा प्रेयके कालका निरूपण करते हैं–

चूर्णिसू०–इसी प्रकार प्रेयका भी काल जानना चाहिए । अर्थात् प्रेयका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ॥१०९॥

विशेषार्थ–यहाँपर प्रेय और द्वेषका जघन्य वा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि प्रेय अथवा द्वेषसे परिणत जीवके मरण अथवा व्याघात होनेपर भी अन्तर्मुहूर्त कालको छोड़कर एक या दो आदि समय-प्रमाण काल नहीं पाया जाता है । जीवट्ठाणमें काल-प्ररूपणाके भीतर यद्यपि क्रोधादिकषायोंके एक समय-प्रमाण जघन्य कालकी प्ररूपणा की गई है, तथापि उसकी यहाँपर विवक्षा नहीं की गई है, क्योंकि, वह इससे भिन्न आचार्य-परम्पराका उपदेश है ।

अब आदेशनिर्देशकी अपेक्षा प्रेय और द्वेषका जघन्य काल कहते हैं–

चूर्णिसू०–आदेशनिर्देशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें प्रेय और द्वेष कितने काल तक होता है ? जघन्य कालकी अपेक्षा एक समय होता है । अर्थात् नरकगतिमें नारकियोंके प्रेय और द्वेषका जघन्य काल एक समय है ॥११०॥

विशेषार्थ–नारकियोंमें द्वेषके एक समयप्रमाण जघन्य काल होनेका कारण यह है

१११. *उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ११२. एवं सव्वाणियोगद्दाराणि अणुगंतव्वाणि ।

कि कोई तिर्यंच या मनुष्य जीव द्वेषके उत्कृष्टकालमें अन्तमुहूर्त तक रहा । जब उस अन्तमुहूर्तकालमें एक समय शेष रह गया, तब वह मरकर नरकगतिमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार नरकगतिमें नारकियोंके द्वेषका जघन्यकाल एक समयप्रमाण प्राप्त होता हैं । इसी प्रकार रागके भी जघन्यकालको जान लेना चाहिए ।

अब नारकियोंके राग और द्वेषका उत्कृष्टकाल कहते हैं–

चूर्णिसू०–नरकगतिमें नारकियोंके राग और द्वेषका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण है ॥१११॥

विशेषार्थ–यद्यपि नारकियोंको द्वेप-बहुल बताया गया है, तथापि–छेदन, भेदन, मारण, ताडन आदि करते हुए भी–वे जिन क्रियाओं या व्यापारोंमें आनन्दका अनुभव करते हैं, उनकी अपेक्षा उनमें रागभावकी भी संभावना पाई जाती है । इस प्रकारके रागभावमें अन्तमुहूर्तकाल रह करके पीछे द्वेषमें जानेवाले नारकीके रागका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण सिद्ध हो जाता है । यही क्रम द्वेषके उत्कृष्ट कालमें भी लगा लेना चाहिए । जिस प्रकार नरकगतिमें राग और द्वेषके जघन्य तथा उत्कृष्ट कालका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे शेष गतियों और मार्गणाओंमें भी राग-द्वेषके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंको जानना चाहिए । विशेष बात यह कि कपायमार्गणामें राग और द्वेपका जघन्य तथा उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्रमाण ही होता है क्योंकि अन्तमुहूर्त के विना कषायका परिवर्तन नहीं होता । कार्मणकाययोगी जीवोंमें राग और द्वेषका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय होता है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें भी राग और द्वेषका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समयप्रमाण जानना चाहिए ।

अब शेष अनुयोगद्वारोंके बतलानेके लिए अर्पणसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–जिस प्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार और कालानुयोगद्वारका निरूपण किया, उसी प्रकारसे शेष अनुयोगद्वारोंको भी जानना चाहिए ॥११२॥

विशेषार्थ–चूर्णिसूत्रकारने शेष अनुयोगद्वारोंके अर्थको सुगम समझकर उनका व्याख्यान नहीं किया है । किन्तु विशेष जिज्ञासुओंके लिए यहाँपर जयधवला टीकाके अनुसार उनका कुछ व्याख्यान किया जाता है (३) अन्तरानुगमकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागका जघन्य अन्तर एक

---

* जयधवलाके सम्पादकोंने इसे भी चूर्णिसूत्र नहीं माना है, पर यह स्पष्टतः चूर्णिसूत्र है, क्योंकि इसके पूर्व नारकियोंके पेज्ज-दोसका केवल जघन्य काल ही कहा है, उत्कृष्ट काल नहीं । अतएव उसका प्रतिपादन होना ही चाहिए । स्वयं जयधवला टीकासे भी इसकी सूत्रता सिद्ध है । यथा—उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । कुदो, साभावियादो । (देखो–जयध० भा० १, पृ० ३८८)

समय है। जैसे—कोई उपशमश्रेणीवाला सूक्ष्मसाम्परायसंयत-गुणस्थानवर्ती जीव सर्व जघन्य एक समयमात्र उपशान्तकषाय गुणस्थानमें रहा और मरकर लोभकषायके उदयसे युक्त देव हुआ। इस प्रकार रागका एक समयप्रमाण जघन्य अन्तर सिद्ध हो गया। रागका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। जैसे कोई एक जीव लोभकषायके तीव्र उदयसे रागभावका सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अनुभव करता रहा। पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके पूरा होनेपर क्रोधकषायका तीव्र उदय हो गया और वह रागभावसे अन्तरको प्राप्त होकर द्वेषभावका वेदक हो गया। सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक द्वेषका अनुभव कर लोभकषायके उदयसे पुनः रागभावका वेदक हो गया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध हो गया। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओंमें भी रागके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरको जान लेना चाहिए। विशेष बात यह है कि रागका एक समयप्रमाण जघन्य अन्तर सर्वत्र संभव नहीं है, किन्तु आगम-के अविरोधसे उसका यथासंभव निर्णय करना चाहिए। ओघनिर्देशकी अपेक्षा द्वेषका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। जैसे—कोई क्रोधकषायके उदयसे द्वेषभावका वेदक जीव अपने कषायका काल समाप्त हो जाने पर अन्तर को प्राप्त हो लोभकषायके उदय-से रागभावका वेदक हो गया। और सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक रागका अनुभव कर पुनः क्रोधकषायी हो गया। इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ। इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तर भी जानना चाहिए। भेद केवल इतना ही है कि द्वेषसे अन्तरको प्राप्त होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रागभावका अनुभवकर पुनः द्वेषको प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है। ओघके समान आदेशमें भी द्वेपका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है, सो यथानिर्दिष्ट रीतिसे सबमें लगा लेना चाहिए। (४) नाना जीवोंकी अपेक्षा राग और द्वेषके संभव भंगोंका निरूपण करनेवाले अनुयोगद्वारको 'नानाजीवेहि भंगविचयानुगम' कहते हैं। इस अनुयोगद्वारका भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा निर्देश किया गया है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा कोई भंग नहीं है, क्योंकि, राग नियमसे दशवें गुणस्थान तक पाया जाता है और द्वेष भी नवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयागुगम जानना चाहिए। केवल लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी आदि कुछ मार्गणाओंमें राग और द्वेष-सम्बन्धी आठ आठ भंग होते हैं। वे आठ भंग ये हैं—(१) स्यात् राग, (२) स्यात् नोराग, (३) स्यात् अनेक राग, (४) स्यात् अनेक नोराग, (५) स्यात् एक राग और एक नोराग, (६) स्यात् एक राग और अनेक नोराग, (७) स्यात् एक नोराग और अनेक राग, तथा (८) स्यात् अनेक राग और अनेक नोराग। इसी प्रकार स्यात् द्वेष, स्यात् नोद्वेष इत्यादि क्रमसे द्वेषसम्बन्धी आठ भंग जानना चाहिए। (५) जीवोंके अस्तित्वको निरूपण करनेवाली प्ररूपणा सत्प्ररूपणा कहलाती है। इसका भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश किया गया है ओघकी अपेक्षा मिथ्या-

दृष्टि आदि नौ गुणस्थानोंमें रागी और द्वेषी जीवोंका सर्वकाल अस्तित्व पाया जाता है। दशवें गुणस्थानमें केवल रागी जीवोंका अस्तित्व पाया जाता है। आगेके गुणस्थानोंमें राग और द्वेषके धारक जीवोंका अस्तित्व नहीं है, किन्तु राग-द्वेषसे रहित वीतरागी जीवोंका अस्तित्व पाया जाता है। इसी प्रकार चौदह मार्गणाओंमें भी रागी-द्वेषी जीवोंके सत्त्व असत्त्वका निर्णय करना चाहिए। (६) रागी-द्वेषी जीवोंके प्रमाणका निर्णय करनेवाला अनुयोगद्वार द्रव्यप्रमाणानुगम कहलाता है। इसके भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागभावके धारक मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त हैं और द्वेषभावके धारक भी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त हैं सासादनादिगुणस्थानवर्ती असंख्यात हैं। आदेशनिर्देशकी अपेक्षा तिर्यग्गतिमें राग-द्वेषके धारक अनन्त जीव हैं और शेष गतियोंमें असंख्यात हैं। इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रियोंमें अनन्त और विकलेन्द्रिय तथा सकलेन्द्रिय जीवोंमें असंख्यात हैं। इस क्रमसे सभी मार्गणाओंमें रागी द्वेषी जीवोंका द्रव्यप्रमाण जान लेना चाहिए। (७) रागी द्वेषी जीवोंके वर्तमानकालिक निवासके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको क्षेत्रानुगम कहते हैं। इसका भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागी और द्वेषी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें रहते हैं। सासादनादिगुणस्थानवर्ती रागी द्वेषी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। राग-द्वेष-रहित सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं। आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकी, मनुष्य और देव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। तिर्यग्गतिके जीव सर्वलोकमें रहते हैं। इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव सर्वलोकमें और विकलेन्द्रिय जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। सकलेन्द्रिय जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहुभागमें और सर्वलोकमें रहते हैं। इस प्रकारसे शेष मार्गणाओंके क्षेत्रको जान लेना चाहिए। (८) रागी द्वेषी जीवोंके त्रिकालवर्ती निवासरूप क्षेत्रके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको स्पर्शनानुगम कहते हैं। इसके भी ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश ये दो भेद हैं। ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि रागी द्वेषी जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है। सासादनगुणस्थानवर्ती रागी द्वेषी जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भाग, मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंके रागी द्वेषी जीवोंके यथासंभव त्रिकालगोचर स्पर्शनक्षेत्रको जान लेना चाहिए। (९) नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमका भी दो प्रकारका निर्देश है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागी द्वेषी जीव सर्व काल होते हैं, क्योंकि, ऐसा कोई भी समय नहीं है, जब कि संसारमें रागी द्वेषी जीव न पाये जावें। आदेशनिर्देशकी अपेक्षा भी रागी द्वेषी जीव सर्वकाल हैं, केवल सान्तर-मार्गणाओंको छोड़कर। उनमेंसे उपशमसम्यग्दृष्टि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य आदिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

इसी प्रकारसे शेष मार्गणाओंका यथासंभव काल जान लेना चाहिए। (१०) नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमका भी निर्देश दो प्रकारका है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागी द्वेषी जीवोंका अन्तर नहीं है, क्योंकि, सदैव रागी द्वेषी जीवोंका अस्तित्व पाया जाता है। इसी प्रकार सान्तरमार्गणाओंको छोड़कर शेष मार्गणाओंका भी अन्तर नहीं है। सान्तरमार्गणाओंमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। वैक्रियिकमिश्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बारह मुहूर्त; आहारकमिश्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व, अपगतवेदी तथा सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास, तथा उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस अहोरात्रप्रमाण अन्तर जानना चाहिए। (११) रागभावके धारक जीव सर्व जीवोंके कितने भाग हैं और द्वेषभावके धारक जीव सर्वजीवोंके कितने भाग हैं। इस प्रकारके विभागके निर्णय करनेवाले अनुयोगद्वारको भागाभागानुगम कहते हैं। इस अनुयोगद्वारका भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा रागभावके धारक जीव सर्वजीवोंकी संख्याके (जिनमें कि वीतराग सिद्ध सम्मिलित नहीं हैं) साधिक द्विभाग हैं अर्थात् यदि रागी द्वेषी जीवोंकी संख्याके समान चार भाग किये जावें तो उनमेंसे दो भाग तो पूरे और कुछ अधिक रागी जीव हैं। तथा द्वेषभावके धारक जीव दो भागोंमेंसे कुछ कम संख्याप्रमाण हैं। इसका कारण यह है कि द्वेषभावके धारक जीवोंकी अपेक्षा रागभावके धारक जीव कुछ अधिक हैं, क्योंकि, समस्त देवराशिके लोभकषाय अधिक मात्रामें पाई जाती है। इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी भागाभागको जान लेना चाहिए। (१२) रागी द्वेषी जीवोंके हीनाधिकताके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको अल्पबहुत्वानुगम कहते हैं। इसका भी दो प्रकारका निर्देश है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघनिर्देशकी अपेक्षा द्वेषभावके धारक जीव अल्प हैं और रागभावके धारक जीव उनसे विशेष अधिक हैं। आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें रागभावके धारक जीव कम हैं और द्वेषभावके धारक जीव उनसे संख्यातगुणित अधिक हैं। देवगतिमें द्वेषभावके धारक जीव अल्प हैं और रागभावके धारक जीव संख्यातगुणित हैं। तिर्यंच और मनुष्योंमें द्वेषभावके धारक जीव अल्प हैं। इसी क्रमसे यथासंभव शेष मार्गणाओंमें भी रागी द्वेषी जीवोंका अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए।

इस प्रकार प्रेयोद्वेषविभक्ति समाप्त हुई।

पयडिविहत्ती

१. 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च' त्ति अणियोगद्दारे विहत्ती णिक्खियव्वा- णामविहत्ती ठवणविहत्ती दव्वविहत्ती खेत्तविहत्ती कालविहत्ती गणणविहत्ती संठाण-विहत्ती भावविहत्ती चेदि। २. णोआगमदो दव्वविहत्ती दुविहा कम्मविहत्ती चेव णोकम्मविहत्ती चेव। ३. कम्मविहत्ती थप्पा। ४. तुल्लपदेसियं दव्वं, तुल्लपदेसियस्स दव्वस्स अविहत्ती। ५. वेमादपदेसियस्स विहत्ती। ६. तदुभएण अवत्तव्वं।

प्रकृतिविभक्ति

अब यतिवृषभाचार्य विभक्तिके प्ररूपण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं-

चूर्णिसू०-'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च' इस गाथांशसे सूचित अनुयोगद्वारमें 'विभक्ति' इस पदका निक्षेप करना चाहिए-नामविभक्ति, स्थापनाविभक्ति, द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, कालविभक्ति, गणनाविभक्ति, संस्थानविभक्ति, और भावविभक्ति ॥१॥

अपने स्वरूपमें प्रवृत्त और बाह्य अर्थकी अपेक्षासे रहित 'विभक्ति' यह शब्द नाम-विभक्ति है। तदाकार और अतदाकारसे स्थापितकी गई विभक्तिको स्थापनाविभक्ति कहते हैं। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यविभक्ति दो प्रकारकी है। विभक्ति-विषयक प्राभृतका ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें अनुपयुक्त जीवको आगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं। इस प्रकार इन तीन निक्षेपोंका स्वरूप सुगम होनेसे उन्हें न कहकर अब नोआगमद्रव्यविभक्तिका स्वरूप कहनेके लिए यतिवृषभाचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं-

चूर्णिसू०-नोआगमद्रव्यविभक्ति दो प्रकारकी है-कर्मद्रव्यविभक्ति और नोकर्मद्रव्य-विभक्ति। कर्मद्रव्यविभक्तिको स्थापित करना चाहिए, क्योंकि, वह बहुवर्णनीय है, तथा उसीसे प्रकृतमें प्रयोजन है ॥२-३॥

अब चूर्णिकार नोकर्मद्रव्यविभक्तिका वर्णन करते हैं-

चूर्णिसू०-तुल्य-प्रदेशवाला एक द्रव्य तुल्य-प्रदेशवाले अन्य द्रव्यके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है। वही द्रव्य विसदृश प्रदेशवाले द्रव्यके साथ विभक्ति अर्थात् असमान है। तथा तदुभय अर्थात् विभक्ति और अविभक्तिरूपसे युगपद् विवक्षित द्रव्य अवक्तव्य है ॥४-६॥

विशेषार्थ-विभक्ति, असमान, असदृश, भेद और विभाग एकार्थवाची शब्द हैं, तथा अविभक्ति, समान, सदृश, अभेद और अविभाग ये सब एकार्थवाची शब्द हैं। समान प्रदेशवाला द्रव्य समान प्रदेशवाले अन्य द्रव्यके सदृश होता है, किन्तु उनमेंसे यदि एक द्रव्य एकादि प्रदेशोंसे अधिक हो जाय तो वह पूर्व विवक्षित द्रव्यसे विसदृश कहलायगा। यह विसदृशता केवल प्रदेशोंकी अपेक्षा ही जानना चाहिए, न कि सत्त्व, प्रमेयत्व आदि गुणोंकी अपेक्षा; क्योंकि उनकी अपेक्षा तो उन दोनोंमें प्रदेशकृत असमानता होते हुए भी

७. खेत्तविहत्ती तुल्लपदेसोगाढं तुल्लपदेसोगाढस्स अविहत्ती । ८. कालविहत्ती तुल्लसमयं तुल्लसमयस्स अविहत्ती । ९. गणणविहत्तीए एक्को एक्कस्स विहत्ती । १०. संठाणविहत्ती दुविहा संठाणदो च संठाणवियप्पदो च । ११. संठाणदो वट्टं वट्टस्स अविहत्ती । १२. वट्टं तंसस्स वा चउरंसस्स वा आयदपरिमंडलस्स वा विहत्ती ।

सदृशता पाई जाती है । इसी प्रकार जब विभक्ति-अविभक्तिरूप द्रव्योंके युगपत् कहनेकी विवक्षा की जाती है, तो वह द्रव्य अवक्तव्य हो जाता है । क्योंकि समान-असमान प्रदेशवाले दो द्रव्य एक साथ किसी एक शब्दके द्वारा नहीं कहे जा सकते हैं । इन तीनों भेदरूप द्रव्यविभक्तिको नोकर्मद्रव्यविभक्ति कहते हैं ।

चूर्णिसू०—तुल्य-प्रदेशोंसे अवगाढ क्षेत्र तुल्य-प्रदेशोंसे अवगाढ क्षेत्रके साथ समान है, यह क्षेत्रविभक्ति है ॥७॥

विशेषार्थ—तुल्य-प्रदेशोंसे अवगाढ (व्याप्त) क्षेत्र, अन्य तुल्य-प्रदेशोंसे व्याप्त क्षेत्रके समान है । दो प्रदेश अधिक क्षेत्रके साथ असमान है समान और असमान प्रदेशवाले क्षेत्रको युगपत् कहनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है । इस प्रकार इन तीनों भंगोंकी अपेक्षा क्षेत्र-सम्बन्धी विभक्ति या अविभक्तिको कहना क्षेत्रविभक्ति है ।

चूर्णिसू०—तुल्य-समयवाला द्रव्य अन्य तुल्य-समयवाले द्रव्यके साथ अविभक्ति है, यह कालविभक्ति है ॥८॥

विशेषार्थ—समान-समयवाला द्रव्य दूसरे समान-समयवाले द्रव्यके समान है । दो समय अधिक द्रव्य असमान है । समान और असमान समयवाले द्रव्योंको एक साथ कहनेकी अपेक्षा अवक्तव्य हैं । इस प्रकार इन तीनों भंगोंकी अपेक्षा विभक्ति-अविभक्तिको कहना कालविभक्ति कहलाती है ।

चूर्णिसू०—एक संख्या एक संख्याके साथ समान है, यह गणनाविभक्ति है ॥९॥

विशेषार्थ—एक संख्याकी एक संख्याके साथ अविभक्ति है, अर्थात् विवक्षित एक संख्यावाला द्रव्य अन्य एक संख्यावाले द्रव्यके साथ समान है, विसदृश संख्याके साथ असमान है । तथा समान और असमान संख्याओंकी युगपत् विवक्षा होने पर अवक्तव्य है । यह गणनाविभक्ति है ।

चूर्णिसू०—संस्थान और संस्थानविकल्पके भेदसे संस्थानविभक्ति दो प्रकार है॥१०॥

विशेषार्थ—त्रिकोण, चतुष्कोण, वृत्त आदि अनेक प्रकारके आकारोंको संस्थान कहते हैं । तथा उन्हीं त्रिकोण, चतुष्कोण, वृत्त आदिके भेद-प्रभेदोंको संस्थान-विकल्प कहते हैं ।

चूर्णिसू०—वृत्त द्रव्य वृत्त द्रव्य के साथ सदृश है । विवक्षित वृत्त द्रव्य त्रिकोण, चतुष्कोण, अथवा आयत-परिमंडल आकारवाले अन्य द्रव्यके साथ असदृश है । (वृत्त और अवृत्त आकारवाले दो द्रव्य युगपत् कहनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है ।) यह संस्थानविभक्ति है ॥११-१२॥

१३. वियप्पेण वट्टसंठाणाणि असंखेज्जा लोगा। १४. एवं तंस-चउरंस-आयद-परिमंडलाणं। १५. सरिसवट्टं सरिसवट्टस्स अविहत्ती। १६. एवं सव्वत्थ। १७. जा सा भावविहत्ती सा दुविहा आगमदो य णोआगमदो य। १८. आगमदो उवजुत्तो पाहुडजाणओ। १९. णो आगमदो भावविहत्ती ओदइओ ओदइयस्स अविहत्ती। २०. ओदइओ उवसमिएण भावेण विहत्ती। २१. तदुभएण अवत्तव्वं। २२. एवं सेसेसु वि।

चूर्णिसू०—उत्तर विकल्पोंकी अपेक्षा वृत्तसंस्थान असंख्याततलोकप्रमाण है। इसी प्रकार त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत-परिमंडल संस्थानोंके भी उत्तर विकल्प असंख्यात-लोकप्रमाण जानना चाहिए। सदृश-वृत्त आकार, अन्य सदृश-वृत्त आकारके सदृश होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए। यह संस्थानविकल्पविभक्ति है ॥१३-१६॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार वृत्तके तीन भंग कहे हैं, उसी प्रकारसे चतुष्कोण, पंचकोण, आदिके भी तीन-तीन भंग जानना चाहिए। तथा इसी प्रकारसे वृत्त, चतुष्कोण आदिके भेद-प्रभेदोंके भी तीन-तीन भंग जानना चाहिए। इस प्रकार यह सब मिलाकर संस्थान-विभक्ति कहलाती है।

चूर्णिसू०—जो भावविभक्ति है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है ॥१७॥

विशेषार्थ—श्रुतज्ञानको आगमभाव कहते हैं और श्रुतज्ञानव्यतिरिक्त औदयिक आदि भावोंको नोआगमभाव कहते हैं। इन दोनोंके भेदसे भावविभक्तिके दो भेद होते हैं।

चूर्णिसू०—भावविभक्ति-विषयक प्राभृतका ज्ञायक और वर्तमानमें उपयुक्त जीवको आगमभावविभक्ति कहते हैं। औदयिकभाव औदयिकभावके समान है। औदयिकभाव औप-शमिकभावके साथ असमान है। तदुभयकी अपेक्षा अवक्तव्य है। यह नोआगमभावविभक्ति है ॥१८-२१॥

विशेषार्थ—नोआगमभावके पांच भेद होते हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक क्षायिक और पारिणामिकभाव। इनमें गति औदयिकभाव कषाय औदयिकभावके समान है, क्योंकि, औदयिकभावकी अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है। कषाय औदयिकभाव सम्यक्त्व-औपशमिकभावके साथ असमान है, क्योंकि, उदय-जनितभावके साथ उपशम-जनितभावकी समानताका विरोध है। तदुभय अर्थात् औदयिकभाव औदयिक और औपशमिकभावके साथ युगपत् कहनेपर अवक्तव्य होता है, क्योंकि, विभक्ति और अविभक्ति इन दोनों शब्दोंके एक साथ कहनेका कोई उपाय नहीं है। यह नोआगमभावविभक्ति है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे शेष भावोंमें भी जानना चाहिए ॥२२॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार औदयिकभावके औपशमिकभावके साथ विभक्ति और अवक्तव्य रूप दो भंग कहे हैं, उसी प्रकारसे क्षायिक, क्षायोपशिमक और पारिणामिकभावके साथ भी दो दो भंग होते हैं। जैसे—औदयिकभाव क्षायिकभावके साथ विभक्ति है, तथा

२३. एवं सव्वत्थ (२)। २४. जा सा दव्वविहत्तीए कम्मविहत्ती तीए पयदं। २५. तत्थ सुत्तगाहा।

(४) पयडीए मोहणिज्जा विहत्ती तह ट्ठिदीए अणुभागे।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ठिदियं वा ॥२२॥

औदयिक और क्षायिक, इन दोनों भावोंकी युगपद् विवक्षामें अवक्तव्य है। औदयिकभाव क्षायोपशमिकभावके साथ विभक्ति है, तथा औदयिक और क्षायोपशमिक, इन दोनों भावों की युगपद् विवक्षामें अवक्तव्य है। औदयिकभाव पारिणामिकभावके साथ विभक्ति है, तथा औदयिक और पारिणामिक, इन दोनों भावोंकी युगपद् विवक्षामें अवक्तव्य है।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार सर्वत्र जानना (२) ॥२३॥

विशेषार्थ–जिस प्रकारसे औदयिकभावके स्व और परके संयोगसे तीन भंग कहे हैं, उसी प्रकारसे औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक, इन चारों भावोंके भी स्व-परके संयोगसे पृथक्-पृथक् तीन तीन भंग जानना चाहिए। सूत्रके अन्तमें यतिवृषभाचार्यने (२) इस प्रकार दोका अंक लिखा है, जिसका अभिप्राय यह है कि द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, कालविभक्ति, भावविभक्ति और संस्थानविभक्तिके जो तीन तीन भंग बतलाये हैं, उनमेंसे प्रकृतमें दो दो भंग ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, विभक्तिका निक्षेप करते समय विभक्तिसे विरुद्ध अर्थवाली अविभक्तिका ग्रहण करना नहीं बन सकता है। यहाँ यह शंकाकी जा सकती है कि यदि ऐसा है, तो फिर सूत्रकारको 'अवक्तव्यभंग' भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी विभक्तिके अर्थका अभाव है ? पर इसका समाधान यह है कि विभक्तिके विना विभक्ति और अविभक्ति, इन दोनोंका संयोग संभव नहीं, और उसके विना अवक्तव्य भंग संभव नहीं; अतएव विभक्तिके साथ अवक्तव्य भंगका ग्रहण किया गया है। यहाँ यह भी शंका की जा सकती है कि उक्त दोनों भंगोंकी बात चूर्णिकारने अक्षरोंके द्वारा क्यों नहीं कही और (२) ऐसा दोका अंक ही क्यों लिखा ? इसका समाधान यह है कि यदि वे दो का अंक न लिखकर अपने अभिप्रायको अक्षरोंके द्वारा व्यक्त करते, तो फिर उनकी इस चूर्णिकी 'वृत्तिसूत्र' संज्ञा न रहती, फिर उसे टीका, पद्धतिका आदि नामोंसे पुकारा जाता। अतएव यहाँपर और आगे-पीछे जहाँ कहीं भी ऐसी बातोंके व्यक्त करनेके लिए यतिवृषभाचार्यने अंक स्थापित किये हैं, वह उन्होंने अपनी चूर्णिकी 'वृत्तिसूत्र' संज्ञा सार्थक करनेके लिए किये हैं। आचार्य यतिवृषभको वीरसेनाचार्यने 'सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ' इस मंगल-गाथामें 'वृत्तिसूत्र-कर्त्ता' के रूपमें ही स्मरण किया है।

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त विभक्तियोंमेंसे यहाँपर द्रव्यविभक्तिके अन्तर्गत जो कर्म-विभक्ति है, उससे प्रयोजन है। उसके विषयमें यह (वक्ष्यमाण) सूत्र-गाथा है ॥२४-२५॥

(४) मोहनीय कर्मकी प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिककी प्ररूपणा करना चाहिए ॥२२॥

२६. पदच्छेदो । तं जहा–पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति त्ति एसा पयडिविहत्ती (१)। २७. तह ट्ठिदी चेदि एसा ठिदिविहत्ती (२)। २८. अणुभागे त्ति अणुभागविहत्ती (३)। २९. उक्कस्समणुक्कस्सं त्ति पदेसविहत्ती (४)। ३०. झीणमझीणं त्ति (५)। ३१. ठिदियं वा त्ति (६)। ३२. तत्थ पयडिविहत्तिं वण्णइस्सामो। ३३. पयडिविहत्ती दुविहा मूलपयडिविहत्ती च उत्तरपयडिविहत्ती च।

चूर्णिसू०–अब इस गाथासूत्रका पदच्छेद–पदोंका विभाग–उसके अर्थ-स्पष्टीकरणके लिए करते हैं। वह इस प्रकार है–'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ती' इस पदसे यह प्रकृतिविभक्ति नामक प्रथम अर्थाधिकार सूचित किया गया है (१) ॥२६॥

विशेषार्थ–पद चार प्रकारके होते हैं–अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद और व्यवस्थापद। जितने अक्षरोंसे अर्थका ज्ञान हो, उसे अर्थपद कहते हैं। वाक्य भी इसीका दूसरा नाम है। आठ अक्षरोंके समूहको प्रमाणपद कहते हैं। सोलह सौ चौंतीस कोटि, तेरासी लाख, अट्टत्तर सौ अट्ठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षरोंका मध्यमपद होता है। इसका उपयोग अंग और पूर्वोके प्रमाणमें होता है। जितने वाक्यसमूहसे एक अधिकार समाप्त हो, उसे व्यवस्थापद कहते हैं। अथवा सुबन्त और तिङन्त पदोंको भी व्यवस्थापद कहते हैं। प्रकृतमें यहाँपर व्यवस्थापदसे प्रयोजन है; क्योंकि, उससे प्रकृत गाथाका अर्थ किया जा रहा है।

चूर्णिसू०–गाथा-पठित 'तह ट्ठिदी चेदि' इस पदसे स्थितिविभक्ति नामक द्वितीय अर्थाधिकार सूचित किया गया है (२)। 'अणुभागे त्ति' इस पदसे अनुभागविभक्ति नामक तृतीय अर्थाधिकार सूचित किया गया है (३)। 'उक्कस्समणुक्कस्सं ति' इस पदसे प्रदेशविभक्ति नामक चतुर्थ अर्थाधिकार सूचित किया गया है (४)। 'झीणमझीणं ति' इस पदसे क्षीणाक्षीण नामक पंचम अर्थाधिकार सूचित किया गया है (५)। 'ठिदियं वा त्ति' इस पदसे 'स्थित्यन्तिक' नामक छठा अर्थाधिकार सूचित किया गया है (६) ॥२७-३१॥

विशेषार्थ–इस प्रकार यतिवृषभाचार्यके अभिप्रायसे इस गाथाके द्वारा उक्त छह अर्थाधिकार सूचित किये गये हैं। किन्तु गुणधराचार्यके अभिप्रायसे स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्ति नामक दो अर्थाधिकार ही कहे गये हैं। उक्त दोनों आचार्योंके अभिप्रायोंमें कोई मत-भेद नहीं समझना चाहिए, क्योंकि, गुणधराचार्य सूत्रकार हैं, अतएव उनका अभिप्राय संक्षेपसे कहने का है। किन्तु यतिवृषभाचार्य वृत्तिकार हैं, अतएव वे उसी बातको विस्तारके साथ कह रहे हैं।

चूर्णिसू०–अब इन उपर्युक्त छह अर्थाधिकारोंमेंसे पहले प्रकृतिविभक्तिको वर्णन करेंगे। प्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी है–मूलप्रकृतिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिविभक्ति ॥३२-३३॥

३४. मूलपयडिविहत्तीए इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा-सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगे त्ति । ३५. एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु मूलपयडिविहत्ती समत्ता होदि ।

चूर्णिसू०—इनमेंसे मूलप्रकृतिविभक्तिमें ये आठ अनुयोगद्वार हैं। वे इस प्रकार हैं—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर, तथा नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व । इन उपर्युक्त आठों अनुयोगद्वारोंके प्ररूपण करनेपर मूलप्रकृतिविभक्ति समाप्त होती है ॥३४-३५॥

विशेषार्थ—यतिवृषभाचार्यने उक्त आठों अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा सुगम होनेसे नहीं की है। उनका संक्षेपसे वर्णन इस प्रकार जानना चाहिए-(१) गुणस्थानकी अपेक्षा मूल-प्रकृतिविभक्तिका स्वामी कौन है ? मोहकर्मकी सत्ता रखनेवाला किसी भी गुणस्थानमें स्थित कोई भी जीव मोहनीयकर्मविभक्तिका स्वामी है। मार्गणाओंकी अपेक्षा नारक, तिर्यंच और देवोंमें मोहकी अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले होनेसे सभी जीव स्वामी हैं, मनुष्यगतिमें यथासंभव प्रकृतियोंकी सत्तावाले तदनुसार यथासंभव गुणस्थानवर्त्ती जीव स्वामी है। इसी प्रकारसे शेष इन्द्रिय आदि सभी मार्गणाओंमें स्वामित्वका निर्णय कर लेना चाहिए। (२) गुणस्थानकी अपेक्षा मूलप्रकृतिविभक्तिका काल यथासंभव अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त है। मार्गणाओंकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहविभक्तिका जघन्यकाल दश हजार वर्ष और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। तिर्यग्गतिमें मोहविभक्तिका जघन्यकाल क्षुद्र-भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल अनन्तकाल या असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। मनुष्योंमें मोहविभक्तिका जघन्यकाल क्षुद्रभवप्रमाण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि-वर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्यप्रमाण है। देवगतिमें मोहविभक्तिका जघन्यकाल दश हजार वर्ष और उत्कृष्टकाल तेतीस सागरोपम है। इसी बीजपदके अनुसार इन्द्रिय आदि शेषमार्गणाओंमें कालका निर्णय कर लेना चाहिए। (३) गुणस्थानकी अपेक्षा मूलप्रकृतिविभक्तिका अन्तर नहीं होता है। मार्ग-णाओंमें भी मूलप्रकृतिविभक्तिका अन्तर नहीं है। हाँ, उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा यथासंभव पदोंमें यथासंभव अन्तर, काल और स्वामित्व अनुयोगद्वारोंके अनुसार जान लेना चाहिए। (४) गुणस्थानकी अपेक्षा मूलप्रकृतिविभक्तिका नानाजीवसम्बन्धी भंगविचय इस प्रकार है—मूलप्रकृतिकी विभक्ति नियमसे होती है और अविभक्ति भी नियमसे होती है। इसी प्रकारसे मनुष्यपर्याप्त, त्रसकाय, संयत, शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि आदि मार्गणाओंमें मूल-प्रकृतिकी विभक्ति और अविभक्ति नियमसे होती है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, वैक्रियिकमिश्र-काययोग, उपशमसम्यग्दृष्टि आदिमें स्यात् विभक्ति होती है। औदारिकमिश्र, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, संज्ञी आदि मार्गणाओंमें स्यात् अविभक्ति होती है स्यात् नहीं भी होती है, इत्यादि प्रकारसे शेष मार्गणाओंमें विभक्तिसम्बन्धी भंगविचय जान लेना चाहिए। (५) ओघसे नानाजीवोंकी अपेक्षा मूलप्रकृतिविभक्तिका सर्वकाल है। आदेशकी अपेक्षा

३६. तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा–एगेगउत्तरपयडिविहत्ती चेव पयडिट्ठाण-उत्तरपयडिविहत्ती चेव । ३७. तत्थ एगेगउत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि । तं जहा–एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो सण्णियासो अप्पाबहुए त्ति । ३८. एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु तदो एगेगउत्तरपयडिविहत्ती समत्ता ।

यथासम्भव सर्वकाल, क्षुद्रभव, अन्तर्मुहूर्त, पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग आदि काल जानना चाहिए । (६) ओघसे नानाजीवोंकी अपेक्षा मूलप्रकृतिविभक्तिका अन्तर नहीं है । मार्गणाओंमें यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर यथासम्भव जानना चाहिये । जैसे–सामायिक, छेदोपस्थाना आदिमें पल्यका असंख्यातवाँ भाग, सूक्ष्मसाम्परायचारित्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास आदि । (७) ओघकी अपेक्षा मूलप्रकृतिका भागाभागानुगम कहते हैं–मोहकी विभक्तिवाले जीव सर्वजीवराशिके अनन्त बहुभाग-प्रमाण हैं, किन्तु अविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भाग हैं । इसी प्रकारसे नरकगति आदिमें अपनी-अपनी जीवराशिके प्रमाणसे सभी मार्गणाओंमें भागाभाग जान लेना चाहिए । ध्यान रखनेकी बात यह है कि जिन राशियोंका प्रमाण अनन्त हैं, वहाँपर अनन्तके बहुभाग और एक भागके रूपसे भागाभागका निर्णय करना । और जहाँपर राशिका प्रमाण असंख्यात है, वहाँपर असंख्यातके बहुभाग और एक भागरूपसे यथासंभव भागाभाग-का निर्णय करना चाहिए । (७) अत्र मूलप्रकृति-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका निर्णय करते हैं । ओघकी अपेक्षा मूलप्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं और विभक्तिवाले जीव उनसे अनन्तगुणित हैं । इसी बीज पदके अनुसार मार्गणाओंमें भी अल्पबहुत्वका निर्णय कर लेना चाहिए ।

चूर्णिसू०–अब उत्तरप्रकृतिविभक्तिका व्याख्यान करते हैं । वह दो प्रकारकी होती है–एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थानउत्तरप्रकृतिविभक्ति ॥३६॥

विशेषार्थ–मोहनीयकर्म-सम्बन्धी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जहाँपर पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की जाती है, उसे एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं । तथा, जहाँपर अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस आदि सत्त्वस्थानोंके द्वारा मोहकर्मके उत्तरप्रकृतियोंकी प्ररूपणा की जाती है, उसे प्रकृतिस्थानउत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं ।

चूर्णिसू०–उनमेंसे एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्तिमें ये (ग्यारह) अनुयोगद्वार होते हैं । वे इस प्रकार हैं–एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंग-विचयानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व । इन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके प्ररूपण किये जानेपर एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्ति नामका उत्तरप्रकृतिविभक्तिका प्रथम भेद समाप्त होता है ॥३७–३८॥

विशेषार्थ–एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्तिके उपर्युक्त ग्यारह अनुयोगद्वारोंको सुगम

समझकर चूर्णिकारने उनका व्याख्यान नहीं किया है। किन्तु आज तो उनका ज्ञान दुर्गम है, अतः संक्षेपसे उन अनुयोगद्वारोंका यहाँ व्याख्यान किया जाता है। मोहनीयकर्मकी एक एक करके सभी–अट्ठाईस–उत्तरप्रकृतियोंके पृथक्-पृथक् स्वामियोंके वर्णन करनेवाले अनुयोगद्वारको स्वामित्वानुगम कहते हैं। इस स्वामित्वका निर्णय ओघ और आदेश इन दोनोंके द्वारा किया जाता है। ओघकी अपेक्षा किये जानेवाले विचारको सामान्यनिर्णय कहते हैं। आचार्योंने जिज्ञासुजनोंकी संक्षेपरुचिको देखकर उनके अनुग्रहार्थ ओघका निर्देश किया है। किन्तु जो जिज्ञासुजन विस्तारसे तत्त्वको जानना चाहते हैं, उनके अनुग्रहार्थ आदेशका निर्देश किया। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार भी कह सकते हैं कि तीव्रबुद्धिवाले भव्यजनोंके लिए ओघसे वस्तु-निर्णय किया गया है और मन्दबुद्धि भव्योंके उपकारार्थ आदेशसे वस्तु-निर्णय किया गया है। यही अर्थ आगे सर्वत्र प्रत्येक अनुयोगद्वारमें किये गये दोनों प्रकारके निर्देशोंके विषयमें जानना चाहिए।

ओघप्ररूपणाके अनुसार मिथ्यात्वप्रकृतिकी विभक्तिका स्वामी कोई भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवके और जिस सम्यग्दृष्टि जीवने मिथ्यात्वका क्षय नहीं किया है, उसके मिथ्यात्वविभक्ति होती है। मिथ्यात्वप्रकृतिकी अविभक्तिका स्वामी मिथ्यात्वका क्षय करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिका स्वामी कोई एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव है। इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अविभक्तिके स्वामी क्रमशः सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलन या क्षपण करनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव हैं। अनन्तानुबन्धीकषाय-चतुष्ककी विभक्तिका स्वामी मिथ्यादृष्टि, अथवा वह सम्यग्दृष्टि जीव है जिसने कि उसका विसंयोजन नहीं किया है। अनन्तानुवंधीकषायकी विभक्तिका स्वामी अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका विसंयोजन करनेवाला कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव होता है। अप्रत्याख्यानावरणादि शेष बारह कषाय और हास्यादि नव नोकषायोंकी विभक्तियोंका स्वामी कोई एक सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव होता है। इन्हीं प्रकृतियोंकी अविभक्तिका स्वामी उस उस विवक्षित प्रकृतिकी सत्ताका क्षय करनेवाला कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव होता है। यह ओघसे स्वामित्वका निर्णय किया। इसी प्रकार मनुष्य-त्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काय-योगी, औदारिककाययोगी चक्षुदर्शनी अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यिक, भव्यसिद्धिक और अनाहा-रकजीवोंके मोहकर्मकी विभक्ति-अविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए। इसी प्रकार आदेशके शेष भेदोंकी अपेक्षा भी प्रत्येक प्रकृतिके विभक्ति और अविभक्तिके स्वामित्वका निर्णय कर लेना चाहिए। (२) मोहनीयकर्मकी एक एक उत्तरप्रकृतिके विभक्ति–अविभक्तिसम्बन्धी कालके प्रतिपादक अनुयोगद्वारको कालानुगम कहते हैं। ओघसे मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय और नव नोकषायोंकी विभक्तिका काल अभव्योंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त है, तथा भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि-सान्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी

विभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्यके तीन असंख्यातवें भागसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विभक्तिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त, ऐसे तीन प्रकारका है। उनमेंसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सादि-सान्त जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। इसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायविभक्तिका जघन्य-काल दश हजार वर्ष और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर हैं। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृति, सम्य-ग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका भी काल जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि इनका जघन्यकाल एक समय है। उत्कृष्टकाल सातों नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। केवल सातवें नरकमें अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यग्गतिमें बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ अधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें बाईस प्रकृतियोंका जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन्हीं जीवोंके सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य हैं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके अट्ठाईस प्रकृतियोंका काल जानना चाहिए। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्य-पर्याप्तोंके छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्टकाल अन्त-र्मुहूर्त है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका भी जानना चाहिए। देवगतिमें देवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल नारकियोंके समान है। विशेषकी अपेक्षा भवनवासियोंसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तक बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण जानना चाहिए। इन्हीं देवोंके सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। नव अनुदिश और पंच अनुत्तरोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमशः अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्यकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण है। इसी प्रकारसे इन्द्रियादि शेष मार्गणाओंमें प्रत्येक प्रकृतिके विभक्ति-कालको जान लेना चाहिए।
(३) विवक्षित प्रकृति-विभक्तिकालके समाप्त हो जाने पश्चात् दुबारा उसी प्रकृतिसम्बन्धी विभक्तिकालके प्रारम्भ होनेसे पूर्व तकके मध्यवर्ती विरह या अभावको अन्तरकाल कहते हैं और इसका अनुगम करनेवाले अनुयोगद्वारको अन्तरानुगम कहते हैं। ओघसे मिथ्यात्व, अप्रत्या-

ख्यानावरणादि बारह कषाय और नव नोकषायोंकी विभक्तिका अन्तरकाल नहीं होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है। तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। अनन्तानुबन्धीकषाय-चतुष्ककी विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर है। इसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंके बाईस प्रकृतियोंका अन्तर-काल नहीं है। शेष छह प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर-काल एक समय तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन्हीं छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल तेतीस सागर है। तिर्यग्गतिमें तिर्यंचोंके सम्यक्त्व-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल ओघके समान है। अनन्तानुबंधी-चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य है। शेष बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकाल तिर्यंचसामान्यके समान है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय-तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तोंके सभी प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, नव अनुदिश, पंच अनुत्तरवासी, देव, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियलब्ध्य-पर्याप्त, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगत-वेदी, अकषायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः-पर्ययज्ञानी, सर्व संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, अभव्य, सर्व सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्य-ग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी और अनाहारक जीवोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। देवोंमें सम्यक्त्वप्रकृति, और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें भी प्रत्येक प्रकृतिकी विभक्तिके अन्तरकालको जानकर हृदयंगम करना चाहिए।
(४) नानाजीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके विभक्ति–अविभक्तिसम्बन्धी भंगों अर्थात् विकल्पोंके अनुगम करनेवाले अनुयोगद्वारको नानाजीवभंगविचयानुगम अनुयोगद्वार कहते हैं। ओघसे मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंके विभक्ति और अविभक्ति करनेवाले जीव नियमसे होते हैं। इस लिए ओघकी अपेक्षा विभक्ति-अविभक्ति सम्बन्धी भंग नहीं होते हैं। किन्तु आदेशकी अपेक्षा (१) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव होता है। (२) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी अविभक्तिवाला एक जीव होता है। (३) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। (४) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी अविभक्ति-वाले अनेक जीव होते हैं। (५) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और

अविभक्तिवाला एक जीव होता है। (६) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। (७) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव और अविभक्तिवाला एक जीव होता है। (८) कदाचित् विवक्षित प्रकृतिकी विभक्ति और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। इस प्रकार आठ आठ भंग तक होते हैं, जिन्हें जयधवला टीकासे जानना चाहिए। विस्तारके भयसे यहाँ नहीं लिखा है। (५) मोहकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति करनेवाले जीवोंके संख्याप्रमाणके निर्णय करनेवाले अनुयोगद्वारको परिमाणानुगम कहते हैं। ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंके सिवाय शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त है, और अविभक्तिवाले जीवोंका भी परिमाण अनन्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात है, किन्तु उन्हींकी अविभक्ति-करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त है। इसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी विभक्ति और अविभक्ति करनेवाले जीवोंका परिमाण यथासंभव अनन्त, असंख्यात और संख्यात जान लेना चाहिए। (६) मोहकर्मसम्बन्धी उत्तरप्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति करनेवाले जीवोंके वर्तमान निवासरूप क्षेत्रके निर्णय करनेवाले अनुयोगद्वारको क्षेत्रानुगम कहते हैं। ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है, किन्तु अविभक्ति करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है। इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक है। इसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी विभक्ति-अविभक्ति करनेवाले जीवोंके क्षेत्रका निर्णय कर लेना चाहिए। (७) मोह-कर्मसम्बन्धी उत्तरप्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति करनेवाले जीवोंके त्रिकाल निवास-सम्बन्धी क्षेत्रके निर्णय करनेवाले अनुयोगद्वारको स्पर्शनानुगम कहते हैं। ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र सर्व लोक है। इन्हीं छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग, अथवा सर्व लोक है। इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सर्व लोक है। इसी क्रमसे आदेशकी अपेक्षा भी स्पर्शनक्षेत्रका निर्णय कर लेना चाहिए। (८) पहले जो कालका निर्णय किया गया है वह एक जीवकी अपेक्षा किया गया है, अब उसी कालका निर्णय नाना जीवोंकी अपेक्षा करते हैं। ओघसे मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति-योंका काल सर्व काल है, अर्थात् नानाजीवोंकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले

जीव सर्वकाल पाये जाते हैं। आदेशकी अपेक्षा भी कालका निर्णय ओघके ही समान है। केवल कुछ पदोंमें खास विशेषता है, जैसे—आहारककाययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्र-योगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। उपशम-सम्यग्दृष्टिके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार अन्यपदोंके कालसम्बन्धी विशेषताको भी जान लेना चाहिए। (९) पहले एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय किया गया है, अब नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय करते हैं। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका अन्तर नहीं है, क्योंकि नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल विभक्ति करनेवाले जीव पाये जाते हैं। इसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी अन्तर जानना चाहिए। केवल कुछ पदोंके अन्तरकालोंमें विशेषता है, जैसे—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका अन्तर जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है, इत्यादि। (१०) मोहकी विवक्षित प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाला जीव अन्य अविवक्षित प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला है, अथवा अविभक्ति करनेवाला ? इस प्रकारके विचार करनेवाले अनुयोगद्वारको सन्निकर्ष अनुयोगद्वार कहते हैं। ओघसे जो जीव मिथ्यात्व-की विभक्ति करनेवाला है, वह सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधीकषाय-चतुष्ककी कदाचित् विभक्ति करनेवाला भी होता है और कदाचित् अविभक्ति करनेवाला भी होता है, किन्तु इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्ति करनेवाला होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी विभक्ति करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी-चतुष्ककी कदाचित् विभक्ति करनेवाला भी होता है और कदाचित् अविभक्ति करनेवाला भी होता है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्ति करनेवाला होता है। इसी प्रकार ओघसे अवशिष्ट प्रकृतियोंका तथा आदेशसे सर्वपदोंमें समस्त प्रकृतियोंका यथासंभव सन्निकर्ष करना चाहिए। (११) मोहकर्मकी किस प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाले जीव किस प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाले जीवोंसे अल्प होते हैं या अधिक ? इस प्रकारके निर्णय करने-वाले द्वारको अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार कहते हैं। ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-के विना शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्ति करनेवाले जीव सबसे कम हैं। उन्हींकी विभक्ति करनेवाले जीव अनन्तगुणित हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति करने-वाले जीव सबसे कम हैं। उन्हींकी अविभक्ति करनेवाले जीव अनन्तगुणित हैं। आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाले जीव सबसे कम हैं। इन्हींकी अविभक्ति करनेवाले जीव उनसे असंख्यातगुणित हैं। इस प्रकारसे सभी मार्गणाओंमें अल्पबहुत्वका निर्णय यथासंभव जीवराशिके अनुसार कर लेना

३९. पयडिट्ठाणविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा–एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं अप्पाबहुअं भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति। ४०. पयडिट्ठाणविहत्तीए पुव्वं गमणिज्जा ट्ठाणसमुक्कित्तणा। ४१. अत्थि अट्ठावीसाए सत्तावीसाए छव्वीसाए चउवीसाए तेवीसाए बावीसाए एक्कवीसाए तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से च (१५)। एदे ओघेण।

चाहिए। इन अनुयोगद्वारोंका विस्तृत वर्णन जयधवला टीकासे जानना चहिए। यहाँ केवल इन अनुयोगद्वारोंका दिशा-परिज्ञानार्थ संक्षिप्त स्वरूप दिखाया गया है। इस प्रकार इन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके वर्णन समाप्त होनेपर एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्तिनामक प्रकृतिविभक्तिका प्रथम भेद समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०–प्रकृतिस्थानविभक्तिमें ये अनुयोगद्वार हैं। जैसे–एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर; नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, अल्पबहुत्व, भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि ॥३९॥

विशेषार्थ–प्रकृतिस्थान तीन प्रकारके होते हैं–बंधस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान। इनमेंसे बंधस्थानोंका वर्णन आगे कहे जानेवाले बंधक नामके अर्थाधिकारमें किया जायगा। उदयस्थानोंका वर्णन आगे कहे जानेवाले वेदक नामके अर्थाधिकारमें किया जायगा। अतएव पारिशेषन्यायसे यहाँपर प्रकृतमें प्रकृतिसत्त्वस्थान विवक्षित हैं जिनका वर्णन उक्त तेरह अनुयोग द्वारोंसे किया जायगा।

चूर्णिसू०–प्रकृतिस्थानविभक्तिमें सत्त्वस्थानोंकी समुत्कीर्त्तना सर्व-प्रथम जानना चाहिए ॥४०॥

विशेषार्थ–मोहकर्मके अट्ठाईस, सत्ताईस आदि सत्त्वस्थानोंके कथन करनेको स्थान-समुत्कीर्त्तना कहते हैं। इसके परिज्ञान हुए विना शेष अनुयोगद्वारोंका ज्ञान भी भली-भाँति नहीं हो सकता है। अतएव सबसे पहले उसीका वर्णन करते हैं।

चूर्णिसू०–मोहनीयकर्मके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप (१५) पन्द्रह सत्त्वस्थान ओघकी अपेक्षा होते हैं ॥४१॥

विशेषार्थ–मोहनीयकर्मके मूलमें दो भेद हैं:–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं:–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति। चारित्रमोहनीयके भी दो भेद हैं:–कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीयके १६ भेद हैं:–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। नोकषायवेदनीयके ९ भेद हैं:–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद,

४२. एकिस्से विहत्तियो को होदि ? लोहसंजलणो । ४३. दोण्हं विहत्तिओ को होदि ? लोहो माया च । ४४. तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-मायासंजलण-माणसंजलणाओ । ४५. चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ । ४६. पंचण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ पुरिसवेदो च । ४७. एक्कारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव पंच छण्णोकसाया च । ४८. बारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव इत्थिवेदो च । ४९. तेरसण्हं विहत्ती एदाणि चेव णवुंसयवेदो च । ५०. एक्कवीसाए विहत्ती एदे चेव अट्ठ कसाया च । ५१. सम्मत्तेण बावीसाए विहत्ती । ५२. सम्मामिच्छत्तेण तेवीसाए विहत्ती ।

नपुंसकवेद । इन सभी उत्तरप्रकृतियोंके समूहसे अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके कम करनेसे सत्ताईसका, उसमेंसे भी सम्यग्मिथ्यात्वके कम करनेसे छब्बीसका, अट्ठाईसमेंसे अनन्तानुबंधीचतुष्कके कम करनेसे चौबीसका; इसमेंसे मिथ्यात्वके कम करनेसे तेईसका, सम्यग्मिथ्यात्वके कम करनेसे बाईसका और सम्यक्त्वप्रकृतिके कम कर देनेसे इक्कीसका सत्त्वस्थान होता है । इस इक्कीसमेंसे अप्रत्याख्यानावरणादि आठ कषायोंके कम करनेसे तेरहका, इसमेंसे नपुंसकवेद कम करनेसे बारहका, स्त्रीवेद कम करनेसे ग्यारहका, इसमेंसे भी हास्यादि छह नोकषाय कम करनेसे पांचका, उसमेंसे भी एक पुरुषवेद कम करनेसे चारका सत्त्वस्थान हो जाता है । इसमेंसे भी क्रोधसंज्वलनके कम करनेसे तीनका, मानसंज्वलनके कम करनेसे दोका और मायासंज्वलनके कम करनेसे एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है ।

चूर्णिसू०—एक प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाला कौन है ? केवल एक लोभसंज्वलनकी सत्तावाला जीव एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है । दो प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला कौन है ? लोभसंज्वलन और मायासंज्वलन, इन दो प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव दो प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है । लोभसंज्वलन, मायासंज्वलन और मानसंज्वलन, इन तीन प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव तीन प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है । चारों संज्वलन-कषायोंकी सत्तावाला जीव चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी सत्तावाला जीव पाँच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । चार संज्वलन, पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषाय इनकी सत्तावाला जीव ग्यारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । स्त्रीवेद-सहित उक्त प्रकृतिवाला अर्थात् चार संज्वलन, और नपुंसकवेदके विना शेष आठ नोकषाय, इनकी सत्तावाला जीव बारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । नपुंसकवेद और उक्त बारह प्रकृतियाँ अर्थात् चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंकी सत्तावाला जीव तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । उक्त तेरह प्रकृतियों और अप्रत्याख्यानावरण आदि आठ कषायोंकी सत्तावाला जीव इक्कीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । सम्यक्त्वप्रकृति-सहित उक्त इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव बाईस प्रकृतिरूप सत्त्व-

५३. मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती । ५४. अट्ठावीसादो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु अवणिदेसु छब्बीसाए विहत्ती । ५५. तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए विहत्ती । ५६. सव्वाओ पयडीओ अट्ठावीसाए विहत्ती । ५७. संपहि एसा । ५८. (संदिट्ठी) २८ २७ २६ २४ २३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १ । ५९. एवं गदियादिसु णेदव्वा । ६०. सामित्तं ति जं पदं तस्स विहासा पढमाहियारो । ६१. तं जहा—एक्किस्से विहत्तिओ को होदि ? ६२. णियमा मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा खवओ एक्किस्से विहत्तीए सामिओ ।

स्थानकी विभक्ति करता है । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति-सहित उक्त बाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव तेईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । मिथ्यात्वप्रकृति-सहित उक्त तेईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव चौबीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंके अपनीत अर्थात् कम कर देनेपर शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव छब्बीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । उक्त छब्बीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वके प्रक्षेप करनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव सत्ताईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है । मोहकी सभी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव अट्ठाईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करता है ॥४२–५६॥

चूर्णिसू०—ओघकी अपेक्षा कहे गये इन पन्द्रह प्रकृतिस्थानोंकी अब यह अंक-संदृष्टि है—२८,२७,२६,२४,२३,२२,२१,१३,१२,११,५,४,३,२,१ ॥५७–५८॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे गति आदि मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मके उक्त सत्त्वस्थान यथासंभव जानकर लगाना चाहिए ॥५९॥

विशेषार्थ—सुगम समझकर चूर्णिकारने आदेशकी अपेक्षा उपर्युक्त सत्त्वस्थानोंका वर्णन नहीं किया है । अतः विशेष-जिज्ञासुजनोंको जयधवला टीका देखना चाहिए । ग्रन्थ-विस्तारके भयसे हम भी नहीं लिख रहे हैं ।

चूर्णिसू०—'स्वामित्व' इस पदरूप जो प्रथम अनुयोगनामक अधिकार है, उसकी विभाषा करते हैं । वह इस प्रकार है—लोभसंज्वलनप्रकृतिरूप एक प्रकृतिक स्थानकी विभक्ति करनेवाला कौन जीव है ? नियमसे क्षपक मनुष्य अथवा मनुष्यनी एक प्रकृतिरूप स्थानकी विभक्तिका स्वामी है ॥६०–६२॥

विशेषार्थ—यतः नरक, तिर्यंच और देवगतिमें मोहकर्मकी क्षपणाका अभाव है, अतः चूर्णिकारने सूत्रमें 'नियमसे' यह पद कहा । 'मनुष्य' इस पदसे भावपुरुषवेदी और भावनपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण किया गया है; क्योंकि भावस्त्रीवेदियोंके लिए 'मनुष्यनी' यह स्वतंत्र पद दिया गया है । 'क्षपक' पदसे उपशामक जीवोंका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि उपशमश्रेणीमें मोहकर्मकी एक भी प्रकृतिकी क्षय नहीं होता है ।

६३. एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एकारसण्हं बारसण्हं तेरहसण्हं विहत्तिओ। ६४. एक्कावीसाए विहत्तिओ को होदि? खीणदंसणमोहणिज्जो। ६५. बावीसाए विहत्तिओ को होदि? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार दो, तीन, चार, पाँच, ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंकी विभक्तिके स्वामी जानना चाहिए ॥६३॥

विशेषार्थ–जिस प्रकारसे एक विभक्तिके स्वामीका निरूपण किया गया है, उसी प्रकारसे दो से लेकर तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंकी विभक्ति करनेवाले भी नियमसे क्षपक मनुष्य अथवा मनुष्यनी होते हैं; क्योंकि, मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें कर्म-क्षपणके योग्य परिणामोंका होना असम्भव है। इसलिए एक प्रकृति सत्त्वस्थानरूप एक विभक्तिके स्वामित्वके समान दो, तीन आदि सूत्रोक्त विभक्तियोंके भी स्वामी जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि पाँच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति केवल मनुष्योंमें ही होती है, मनुष्यनियोंमें नहीं; क्योंकि, उसके सात नोकषायोंका एक साथ ही क्षय पाया जाता है।

चूर्णिसू०–इक्कीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला कौन है? दर्शन मोहनीयकर्मका क्षय करनेवाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव है ॥६४॥

चूर्णिसू०–कौन जीव बाईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है? मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके क्षपित हो जानेपर तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके शेष रहनेपर मनुष्य अथवा मनुष्यनी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव बाईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है ॥६५॥

विशेषार्थ–यहाँपर 'मनुष्य' पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी तथा 'मनुष्यनी' पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका अर्थ लिया गया है, सो यहाँपर तथा आगे भी जहाँ इन पदोंका प्रयोग हो, वहाँपर भावनपुंसकवेदी और भावस्त्रीवेदी मनुष्योंको ही ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि द्रव्यवेदी नपुंसक अथवा स्त्रीके क्षपकश्रेणीका आरोहण, तथा दर्शनमोहनीयका क्षपण आदि कुछ निश्चित कार्योंका प्रतिषेध किया गया है। यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि तो मरण कर चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है, फिर यहाँपर मनुष्य अथवा मनुष्यनीको ही बाईस प्रकृतिकी विभक्तिका स्वामी कैसे कहा? इसका समाधान दो प्रकारसे किया गया है। एक तो यह कि कुछ आचार्योंके उपदेशानुसार कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवका मरण होता ही नहीं है, इसलिए सूत्रमें मनुष्य पद दिया गया है। कुछ आचार्योंका यह मत है कि कृतकृत्यवेदकका मरण होता है और वह चारों गतियों उत्पन्न हो सकता है, उनके मतानुसार सूत्रमें दिये गये 'मनुष्य' पदका यह अर्थ लेना चाहिए कि दर्शनमोहके क्षपणका प्रारंभ मनुष्यके ही होता है। हाँ, निष्ठापन चारों गतियोंमें हो सकता है। यतिवृषभाचार्यने आगे इन दोनों उपदेशोंका उल्लेख किया है।

६६. तेवीसाए विहत्तिओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ते सेसे। ६७. चउवीसाए विहत्तिओ को होदि ? अणंताणुबंधिविसंजोइदे सम्मादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा अण्णयरो। ६८. छव्वीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी णियमा। ६९. सत्तावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी। ७०. अट्ठावीसाए विहत्तिओ को होदि ? सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी वा। ७१. कालो। ७२. *एक्किस्से विहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

चूर्णिसू०–कौन जीव तेईस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाला होता है ? मिथ्यात्वके क्षपित हो जानेपर और सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वके शेष रहनेपर मनुष्य अथवा मनुष्यनी सम्यग्दृष्टि जीव तेईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है। यहाँपर इतना विशेष जानना चाहिए कि मिथ्यात्वका क्षय कर सम्यग्मिथ्यात्वको क्षपण करते हुए जीवका मरण नहीं होता है, ऐसा एकान्त नियम है ॥६६॥

चूर्णिसू०–कौन जीव चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है ? अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्कके विसंयोजन कर देनेपर किसी भी गतिका सम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करता है ॥६७॥

विशेषार्थ–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों प्रकृतियोंके कर्मस्कन्धोंका अप्रत्याख्यानावरणादि अन्य प्रकृतिस्वरूपसे परिणमन करनेको विसंयोजन कहते हैं। इस विसंयोजनका करनेवाला नियमसे सम्यग्दृष्टि जीव ही होता है, क्योंकि, उसके विना अन्य जीवके विसंयोजनाके योग्य परिणामोंका होना असम्भव है।

चूर्णिसू०–कौन जीव छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है ? नियमसे मिथ्यादृष्टि जीव होता है। कौन जीव सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है ? सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव होता है। कौन जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है ? सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करता है ॥६८-७०॥

चूर्णिसू०–अब उत्तर प्रकृतिसत्त्वस्थानकी विभक्तिका काल कहते हैं। एक प्रकृतिकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥७१-७२॥

विशेषार्थ–एक प्रकृतिकी विभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त है, ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब मोहकर्मकी संज्वलन लोभकषायनामक एक प्रकृति सत्तामें रह जाती है, तब उसके विभक्त अर्थात् विच्छिन्न या विभाजन करनेमें जो जघन्य या उत्कृष्ट समय लगता

* जयधवला-सम्पादकोंने इसे भी चूर्णिसूत्र नहीं माना है। पर यह अवश्य होना चाहिए, अन्यथा आगे ७३ नं० के सूत्रमें 'इसी प्रकार दो, तीन और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंका काल है' ऐसा कथन कैसे किया जाता ? (देखो जयधवला, भा० २ पृ० २३३ और २३७)

है, उसे एक प्रकृतिविभक्तिकाल कहते हैं। इस एक प्रकृतिकी विभक्ति तथा आगे कही जाने-वाली दो, तीन, चार, पांच, ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतियोंकी विभक्ति क्षपकश्रेणीमें ही होती है। क्षपकश्रेणीका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है, अतएव इन सब विभक्तियोंका भी उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही सिद्ध होता है। तथापि उनके कालमें जो अपेक्षाकृत भेद है, उसका जान लेना आवश्यक है, तभी उन विभक्तियोंका आगे कहे जानेवाला जघन्य और उत्कृष्ट काल समझमें आसकेगा। अतएव यहाँपर क्षपकश्रेणीका कुछ वर्णन किया जाता है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति तथा अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क इन सात मोहनीय-प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित, अथवा अवशिष्ट इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव ही चारित्रमोहकी क्षपणाके लिए उद्यत होता है, इसका कारण यह है कि शुद्ध (निर्मल) दृढ़ श्रद्धानके विना चारित्रमोहका क्षय नहीं किया जा सकता हैं। अतएव क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत क्षपकश्रेणीपर चढ़नेके पूर्व अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामसे प्रसिद्ध तीन करणोंको करता है। इन तीनों करणोंका पृथक्-पृथक् और समुदित काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है। अधःप्रवृत्तकरणकालके समाप्त होने तक वह सातिशय अप्रमत्तसंयतकी अवस्थामें रहता है और प्रतिसमय अधिकाधिक विशुद्धि एवं आनन्द-उल्लाससे परिपूरित होता रहता है। अधःप्रवृत्तकरणका काल समाप्त होते ही वह अपूर्वकरण परि-णामोंको धारण कर आठवें गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस गुणस्थानमें प्रतिसमय अनन्त-गुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ उन अपूर्व परिणामोंको प्राप्त करता है, जिन्हें कि इस समयके पूर्व कभी नहीं पाया था। उक्त दोनों परिणामोंके कालमें मोह-क्षयके लिए समुद्यत होता हुआ भी यह जीव किसी भी मोहप्रकृतिका क्षय नहीं करता है, किन्तु उनके क्षय करनेके योग्य अपने आपको तैयार करता है। अतएव इसकी उपमा उस सुभटसे दी जा सकती है, जिसने अभी किसी शत्रुका घात नहीं किया है, किन्तु शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित एवं वीर-रससे परिपूरित हो रणाङ्गणमें प्रवेश किया है। शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होते समय भी वीर-रस प्रवाहित होने लगता है, किन्तु रणाङ्गणमें प्रवेश करनेका वीर-रस अपूर्व ही होता है। शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होनेके समान अधःप्रवृत्तकरणको करनेवाला सातिशय-अप्रमत्तसंयत गुणस्थान है और वीर-रससे ओत-प्रोत हो रणाङ्गणमें प्रवेश करनेके समान अपूर्वकरण गुण-स्थान है। अपूर्वकरणका काल समाप्त होते ही अनिवृत्तिकरण परिणामोंको धारण करता हुआ नवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है और एक साथ स्थितिखंडन, अनुभाग-खंडन आदि आवश्यकोंको करना प्रारम्भ कर देता है। जिस प्रकार रण-प्रारम्भ होनेकी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करनेवाला सुभट रण-भेरी बजनेके साथ ही शत्रु-सैन्यपर धावा बोलकर मार-काट प्रारंभ कर देता है। इस अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी कालके संख्यात भाग जानेपर सर्वप्रथम अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ कषायोंका क्षय करता है और तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। पुनः अन्तर्मुहूर्तके

पश्चात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, नरकगति, तिर्यग्गति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रियजाति; आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारणशरीर, इन सोलह प्रकृतियोंका क्षय करता है। यद्यपि ये प्रकृतियाँ मोहकर्मकी नहीं हैं, किन्तु स्त्यानगृद्धि आदि तीन दर्शनावरणकी और शेष तेरह नामकर्मकी हैं। तो भी इनका क्षय इसी स्थलपर होता है। इनका क्षय करनेपर भी मोहकर्मके तेरह प्रकृतियोंकी विभक्तिका ही स्वामी है। इसके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त जाकर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय इन दोनों प्रकृतियोंके सर्वघाति बंधको देशघातिरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय, इन तीन प्रकृतियोंके सर्वघातिबंधको देशघातिरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय, इन तीन प्रकृतियोंके सर्वघातिबंधको देशघातिरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् चक्षुदर्शनावरणीयकर्मके सर्वघातिबंधको देशघातिरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् मतिज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय, इन दो प्रकृतियोंके सर्वघातिबंधको देशघातरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघातिबंधको देशघातिरूप करता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् चार संज्वलनकषाय और नव नोकषाय, इन तेरह चारित्रमोहप्रकृतियोंका अन्तरकरण करता है। इसी समय आगे क्षपणाधिकारमें बतलाए जाने वाले सात आवश्यक करणोंका एक साथ प्रारम्भ करता है। अन्तरकरणके द्वितीय समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्त तक नपुंसकवेदका क्षय करता है और बारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। इसके पश्चात् ही द्वितीय समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त तक स्त्रीवेदका क्षय करता है, और ग्यारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान-विभक्तिका स्वामी होता है। तत्पश्चात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह नोकषायोंका क्षय करनेके लिए सर्वसंक्रमणके द्वारा उन्हें क्रोधसंज्वलनमें संक्रमाता है। इस क्रियामें भी एक अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत होता है और इसी समय वह पांच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। तत्पश्चात् एक समय कम दो आवलीकालमें अश्वकर्णकरण करता हुआ पुरुषवेदका क्षय करता है और तभी वह चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। तत्पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तसे अश्वकर्णकरणको समाप्त कर चारों संज्वलनकषायोंमेंसे एक एक कषायकी तीन तीन बादरकृष्टियाँ अन्तर्मुहूर्तकालसे करता है। पुनः कृष्टिकरणके पश्चात् क्रोधसंज्वलनकी तीनों कृष्टियां क्रमशः अन्तर्मुहूर्तकालसे क्षय करता है और तीन प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल-द्वारा क्रमशः मानसंज्वलनकी तीनों कृष्टियोंका क्षय करता है और दो प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल-द्वारा मायासंज्वलनकी तीनों कृष्टियोंका क्षय करता हुआ लोभसंज्वलनकी प्रथम कृष्टिके भीतर दो समय कम दो आवलीप्रमाणकाल जाकर उनका क्षय करता है और एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानविभक्तिका स्वामी होता है। तत्पश्चात् यथाक्रमसे दो समय

७३. एवं दोण्हं तिण्हं चदुण्हं विहत्तियाणं। ७४. पंचण्हं विहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ। ७५. एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ७६. णवरि बारसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो? जहण्णेण एगसमओ।

कम दो आवली प्रमाणकालसे कम, लोभसंज्वलनकी प्रथम, द्वितीय बादरकृष्टि और सूक्ष्मलोभकृष्टिके क्षपण करनेका जो काल है, वही एक प्रकृतिसत्त्वस्थानकी विभक्तिका जघन्यकाल है। इस प्रकार एक प्रकृतिकी विभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसका उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, तथापि वह जघन्यकालसे संख्यातगुणा होता है। एक प्रकृतिकी विभक्तिका जघन्यकाल तो पुरुषवेद और क्रोधकषायके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके होता है, किन्तु उत्कृष्टकाल पुरुषवेद और लोभसंज्वलनकषायके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके होता है। इसका कारण यह है कि क्रोधसंज्वलनके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके जिस समय मानसंज्वलन-सम्बन्धी तीन कृष्टियोंका क्षय होता है; उस समय लोभसंज्वलनके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव एक प्रकृतिकी सत्तावाला हो जाता है, इसलिए क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके मान, माया और लोभसंज्वलनसम्बन्धी कृष्टियोंके वेदनका जो काल है, वह सब लोभके उदयसे चढ़े हुए इस जीवके एक विभक्तिकालके भीतर आजाता है, अतएव इसका काल जघन्यकालसे संख्यातगुणा हो जाता है।

ऊपर पूरी क्षपकश्रेणीका काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाया गया है, और उसके भीतर होनेवाली इन अनेकों विभक्तियोंका काल भी पृथक् पृथक् अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, फिर भी कोई विरोध नहीं समझना चाहिए; क्योंकि एक अन्तर्मुहूर्तके भी संख्यात भेद होते हैं, अतएव उन सब विभक्तियोंके कालमें अपेक्षाकृत कालभेद सिद्ध हो जाता है।

विभक्ति क्या वस्तु है, किस विभक्तिके कालका प्रारम्भ कहाँसे होता है, और समाप्ति कहाँपर होती है, इत्यादिका निर्णय ऊपरके विवेचनसे भली-भाँति हो जाता है। हाँ, अन्तरकरण, अश्वकर्णकरण, बादरकृष्टि आदि जो पारिभाषिक संज्ञाएँ आई हैं, सो उनका स्वरूप आगेके अधिकारोंमें यथास्थान स्वयं चूर्णिकारने कहा ही है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे दो, तीन और चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तियोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। पांच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिका कितना-काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवलीप्रमाण है। ग्यारह, बारह, और तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। विशेष बात यह है कि बारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय है॥७३-७६॥

विशेषार्थ—बारह प्रकृतिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय इस प्रकार संभव है—

७७. एकावीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ७८. उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

कोई जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ा और अप्रत्याख्यानावरणादि आठ मध्यमकषायोंका क्षयकर तेरह प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । तत्पश्चात् नपुंसकवेदकी क्षपणाके आरम्भकालमें ही नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ नपुंसकवेदको अपने क्षपणकालमें क्षय न करके स्त्रीवेदका क्षपण प्रारम्भ कर देता है । पुनः स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ तबतक जाता है जबतक कि स्त्रीवेदके पुरातन निषेकोंके क्षपणकालका त्रिचरिमसमय प्राप्त होता है । पुनः सवेदकालके द्विचरमसमयमें नपुंसकवेदकी प्रथम स्थितिके दो समयमात्र शेष रहनेपर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके सत्तामें स्थित समस्त निषेकोंको पुरुषवेदमें संक्रमित हो जानेपर तदनन्तर समयमें बारह प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होता है; क्योंकि अभी नपुंसकवेदकी उदयस्थितिका विनाश नहीं हुआ है । इसके पश्चात् द्वितीय समयमें ही ग्यारह प्रकृतियोंकी विभक्ति प्रारम्भ हो जाती है; क्योंकि, उस समय पूर्वली स्थितिके निषेक फल देकर अकर्मस्वरूपसे परिणत हो जाते हैं । इस प्रकार बारह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिका जघन्यकाल एक समय सिद्ध हो जाता है ।

चूर्णिसू०—इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥७७॥

विशेषार्थ—इक्कीस प्रकृतिकी विभक्तिका जघन्यकाल इस प्रकार संभव है—मोहकर्मकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी मनुष्यने तीनों करणोंको करके दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षय किया और इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान पाया । पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालमें ही क्षपकश्रेणीपर चढ़कर आठ मध्यमकषायोंका क्षय कर दिया । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त सिद्ध हो जाता है ।

चूर्णिसू०—इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागरोपम है ॥७८॥

विशेषार्थ—उक्त काल इस प्रकार संभव है—मोहकर्मकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ गर्भसे लेकर आठ वर्षके पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षयकर इक्कीस प्रकृतिवाले सत्त्वस्थानकी विभक्तिका प्रारम्भ किया । पुनः दीक्षित होकर आठ वर्ष कम पूर्वकोटिवर्षप्रमाण संयम पालन कर मरा और तेतीस सागरोपमकी आयुवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर तेतीस सागरकाल बिताकर आयुके अन्तमें मरा और पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकर्म या संसार अवशिष्ट रहा तब अप्रत्याख्यानावरणादि आठ कषायोंका क्षयकर तेरह प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । इस प्रकार आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटिवर्षोंसे अधिक तेतीस सागरोपम इक्कीस

७९. बावीसाए तेवीसाए विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं । ८०. चउवीस-विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ८१. उक्कस्सेण वे छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—बाईस और तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है ? दोनों विभक्तियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥७९॥

विशेषार्थ—तेईस प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाले जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके क्षपण कर देनेपर बाईस प्रकृतिकी विभक्तिका प्रारम्भ होता है और जब तक सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षीण होनेका अन्तिम समय नहीं आता है, तब तक वह बाईस प्रकृतिकी विभक्तिवाला रहता है । इस प्रकार बाईस प्रकृतिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकाल भी इतना ही हो सकता है, क्योंकि, एक समयमें वर्तमान जीवोंके अनिवृत्तिकरण परिणामोंकी अपेक्षा कोई भेद नहीं होता है । तथा अनिवृत्तिकरणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है । तेईस प्रकृतिकी विभक्तिका काल इस प्रकार है—चौबीस प्रकृतिकी सत्तावाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वके क्षय कर देनेपर तेईस प्रकृतिकी विभक्तिका प्रारम्भ होता है । पुनः जब तक सत्तामें स्थित समस्त सम्यग्मिथ्यात्वकर्म सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमित नहीं हो जाता, तब तक तेईस प्रकृतिकी विभक्तिवाला रहता है । इसका भी जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही है; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्त ही माना गया है ।

चूर्णिसू०—चौबीस प्रकृतिकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥८०॥

विशेषार्थ—मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि जीव जब अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजनकर चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका प्रारम्भ करता है और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षपण करता है, तब उस जीवके चौबीस प्रकृतिकी विभक्तिका जघन्यकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल कुछ अधिक दो छयासठ सागरोपम है ॥८१॥

विशेषार्थ—यह साधिक दोबार छयासठ अर्थात् एकसौ बत्तीस सागरोपमकाल इस प्रकार संभव है—चौदह सागरकी स्थितिवाले, और मोहकी छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले लान्तव-कापिष्ठकल्पवासी देवके प्रथम सागरमें जब अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा, तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और अतिशीघ्र अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजनकर, चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका प्रारम्भ किया । पुनः सर्वोत्कृष्ट उपशमसम्यक्त्वकालको बिताकर द्वितीय सागरके प्रथम समयमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर वहाँपर कुछ अधिक तेरह सागरोपम तक वेदकसम्यक्त्वको पालनकर मरा और पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इस

८२. छब्बीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? अणादि-अपज्जवसिदो । ८३. अणादि-सपज्जवसिदो । ८४. सादि-सपज्जवसिदो । ८५. तत्थ जो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ ।

पूरे मनुष्यभवको सम्यक्त्वके साथ ही बिताकर पुनः इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम बाईस सागरोपमकी आयुवाले आरण-अच्युतकल्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर पूरी आयु-प्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर पुनः पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः अपनी पूरी आयुप्रमाण सम्यक्त्वको परिपालन कर मरा और मनुष्यभवकी आयुसे कम इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकर्म शेष रहा, तब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर और वहाँपर अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पश्चात् मरणकर पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें, पुनः उस मनुष्यायुसे कम बीस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और पुनः मनुष्यायुसे कम बाईस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः पूर्वकोटिके मनुष्योंमें जन्म लेकर फिर भी आठ वर्ष और एक अन्तर्मुहूर्त अधिक मनुष्यायुसे कम चौबीस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मरणकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर गर्भसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बीतनेपर मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षयकर तेईस प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाला हो गया । इस प्रकार उक्त जीवके साधिक दोवार छयासठ सागरोपम चौबीस विभक्तिका उत्कृष्ट काल होता है । उक्त कालमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपणसम्बन्धी कालके जोड़ देनेपर साधिकताका प्रमाण आ जाता है ।

चूर्णिसू०–छब्बीस प्रकृतिका विभक्तिको कितना काल है ? अभव्य और अभव्यके समान दूरान्दूर भव्यकी अपेक्षा अनादि-अनन्तकाल है; क्योंकि ऐसे जीवोंके मोहकी छब्बीस प्रकृतियोंका न आदि है और न अन्त है। भव्यकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतिकी विभक्तिका काल अनादि-सान्त है; क्योंकि अनादिकालसे आई हुई छब्बीस प्रकृतियोंका सम्यक्त्वके प्राप्त करने-पर छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका अन्त देखा जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर छब्बीस प्रकृतिकी विभक्तिको प्राप्त होनेवाले जीवकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतिकी विभक्तिका काल सादि-सान्त है । इन तीनों प्रकारोंके कालोंमेंसे सादि-सान्त जघन्यकाल एक समय है ॥८२–८५॥

विशेषार्थ–वह एक समय इस प्रकार संभव है–सम्यक्त्वप्रकृतिके विना मोहकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्तकाल अव-शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करनेके अभिमुख हुआ और अन्तरकरणको करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें सर्व गोपुच्छाओंको गलाकर जिसके दो गोपुच्छाएँ शेष रह गईं

८६. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं*। ८७. सत्तावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ।

हैं, तथा जो द्वितीय स्थितिमें स्थित सम्यग्मिथ्यात्वकी चरम फालिको सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वके ऊपर प्रक्षिप्त कर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति-सम्बन्धी अन्तिम गोपुच्छाका वेदन कर रहा है वह मिथ्यादृष्टि जीव एक समयमात्र छब्बीस प्रकृतिकी विभक्तिताको प्राप्त करके उसके उपरिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अट्ठाईस प्रकृतिकी सत्तावाला हो जाता है, तब उसके छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका एक समयप्रमाण जघन्यकाल पाया जाता है।

चूर्णिसू०–छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥८६॥

विशेषार्थ–कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और इस प्रकार उसने अनन्त संसारको छेदकर संसारमें रहनेके कालको अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण किया। पुनः उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हो, सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनाकर छब्बीस विभक्तिका प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक संसारमें परिभ्रमण कर जब अर्धपुद्गलपरिवर्तनमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा, तब उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण किया, और अट्ठाईस प्रकृतिकी विभक्तिको प्राप्त हो, अन्तर्मुहूर्तकालमें ही क्षपकश्रेण्यारोहण, केवलज्ञानोत्पत्ति और समुद्घात आदि करता हुआ निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका देशोन पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्टकाल पाया जाता है। यहाँपर देशोनका अर्थ अर्धपुद्गलपरिवर्तनके कालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण उद्वेलनाकालको कम करना है।

चूर्णिसू०–सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय है ॥८७॥

विशेषार्थ–मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतिकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यक्त्वप्रकृतिके उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रहनेपर तीनों करणोंको करके और अन्तरकरण कर मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके द्विचरम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी चरमफालीको सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वमें प्रक्षेप किया, तब प्रथमस्थितिके चरमसमयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति प्रारंभ होती है। तदनन्तर द्वितीय समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर यतः यह अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हो जाता है, अतः सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्यकाल एक समयप्रमाण कहा गया है।

* ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि णयारलोवं काऊण णिद्दिट्ठत्तादो। ऊणस्स अद्धपोग्गलपरियट्टस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि सण्णा। अथवा उपशब्दस्य हीनार्थवाचिनो ग्रहणात्। जयध०

८८. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ८९. अट्ठावीसविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ९०. उक्कस्सेण बेछावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

चूर्णिसू०–सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है ॥८८॥

विशेषार्थ–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिजीवके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना किये जानेपर सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति होती है । तत्पश्चात् सर्वोत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाणकालके द्वारा जबतक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है, तबतक वह सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका स्वामी रहता है, अतः सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग कहा है ।

चूर्णिसू०–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥८९॥

विशेषार्थ–मोहकी छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी एक मिथ्यादृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता स्थापित की, तथा सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक उन अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ताके साथ रहकर तत्पश्चात् अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्कका विसंयोजन किया और चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की, तब उसके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्यकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल सातिरेक दो छयासठ सागरोपम है ॥९०॥

विशेषार्थ–उक्त काल इस प्रकार संभव है—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । पीछे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्वप्रकृतिके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सर्वोत्कृष्ट उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होना चाहिए था, पर वह न होकर उद्वेलनाकालके द्विचरम समयमें मिथ्यात्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके चरमनिषेकका अन्त करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् पूर्व निरूपित क्रमसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर और प्रथम वार छयासठ सागरोपमकालको सम्यक्त्वके साथ बिताकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सर्वोत्कृष्ट सम्यक्त्वप्रकृतिके उद्वेलनाकालके चरमसमयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हो और पूर्वकी भाँति ही द्वितीय वार छयासठ सागरोपमकाल सम्यक्त्वके साथ बिताकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सर्वोत्कृष्ट सम्यक्त्वप्रकृतिके उद्वेलनाकालके द्वारा सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । इस प्रकारसे पल्योपमके उक्त तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो

९१. अंतराणुगमेण एकिस्से विहत्तीए णत्थि अंतरं। ९२. एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एकारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं एकवीसाए बावीसाए तेवीसाए विहत्तियाणं। ९३. चउवीसाए विहत्तियस्स केवडियमंतरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ९४. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं* ।

बार छ्यासठ सागरोपम अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल होता है ।

चूर्णिसू०—अन्तरानुगमकी अपेक्षा एक प्रकृतिकी विभक्तिका अन्तर नहीं है ॥९१॥

विशेषार्थ—एक प्रकृतिकी विभक्तिके अन्तर न होनेका कारण यह है कि एक प्रकृतिकी विभक्ति क्षपकश्रेणीमें होती है और क्षपित हुए कर्मांशोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है; क्योंकि, मिथ्यात्व, असंयमादि जो संसारके कारण हैं, उनका क्षपकश्रेणीमें अभाव हो जाता है । अतः एक प्रकृतिकी विभक्तिका अन्तर नहीं होता है ।

चूर्णिसू०—एक प्रकृतिकी विभक्तिके समान दो, तीन, चार, पाँच, ग्यारह, बारह, तेरह, इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिसम्बन्धी विभक्तियोंका भी अन्तर नहीं होता है; क्योंकि, ये सभी विभक्तियाँ क्षपकश्रेणीमें ही उत्पन्न होती हैं ॥९२॥

चूर्णिसू०—चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥९३॥

विशेषार्थ—किसी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका विसंयोजनकर चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका आरम्भ किया और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त हो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका करनेवाला हो गया । अन्तर्मुहूर्त अन्तरालके पश्चात् पुनः सम्यक्त्वको ग्रहण कर और अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका विसंयोजन कर चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हो गया । इस प्रकारसे चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिके साथ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया ।

चूर्णिसू०—चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥९४॥

विशेषार्थ—किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तन-कालप्रमाण संसारके शेष रहनेपर प्रथम समयमें ही उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण किया और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होकर तथा उस अवस्थामें अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन किया । इस प्रकार चौबीस विभक्तिका प्रारम्भ कर और मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर-

* जयधवला-सम्पादकोंने इस सूत्रको इस प्रकार माना है-'उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं' । पर 'देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं' यह तो 'उवड्ढपोग्गलपरियट्टं' पदका अर्थ है, उसे भी सूत्रका अंग मानना भूल है । इसके आगे-पीछे जहाँ कहीं भी ऐसा प्रयोग आया है, वहाँ सर्वत्र 'उवड्ढपोग्गलपरियट्टं' इतना ही सूत्र कहा है ।

९५. छव्वीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ९६. उक्कस्सेण बेछावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। ९७. सत्तावीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उपार्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक संसारमें परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण शेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला हो, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजनकर चौबीस विभक्तिवाला हुआ। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण चौबीस विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है। यद्यपि प्रमत्त-अप्रमत्तादिसम्बन्धी और भी कुछ अन्तर्मुहूर्त होते हैं, किन्तु उन सबका समूह भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, इसलिए दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम ही अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण चौबीस विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा गया है।

चूर्णिसू०—छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है ॥९५॥

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होकर, छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिके अन्तरको प्राप्त हो, मिथ्यात्वमें जाकर सर्वजघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना करके पुनः छब्बीस प्रकृतिकी विभक्ति करनेवाला हो गया। इस प्रकार इस जीवके छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है।

चूर्णिसू०—छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागरोपम है ॥९६॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि अट्ठाईस और सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तियोंका जो उत्कृष्ट काल पहले बतलाया गया है, वही छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल माना गया है। अतः छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो बार छयासठ अर्थात् एकसौ बत्तीस सागरसे कुछ अधिक होता है।

चूर्णिसू०—सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है ॥९७॥

विशेषार्थ—सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वमें जाकर सर्वजघन्य उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हो गया। इस प्रकार इस जीवके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है।

९८. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । ९९. अट्ठावीसविहत्तियस्स जहण्णेण एगसमओ । १००. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

चूर्णिसू०–सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गल-परिवर्तन है ॥९८॥

विशेषार्थ–कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर यथाक्रमसे सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । तत्पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी भी उद्वेलनाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । जब उपार्धपुद्गलपरिवर्तनकालमें सर्वजघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल शेष रहा, तब उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त काल बिताकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् सम्यक्त्व-प्रकृतिके उद्वेलनाकालमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा, तब सम्यक्त्वके सन्मुख हो, अन्तरकरण करके और मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलनाकर अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला होकर क्रमसे सिद्धिको प्राप्त हुआ । ऐसे जीवके पहलेके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालसे तथा अन्तिम अन्तर्मुहूर्तकालसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ॥९९॥

विशेषार्थ–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यक्त्व-प्रकृतिके उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हो अन्तर-करण करके और मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना कर अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । तदनन्तर समयमें उसने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर अट्ठाइस प्रकृतियोंका सत्त्व उत्पन्न किया, तब उस जीवके अट्ठाइस प्रकृतियोंकी विभक्तिका एक समयप्रमाण जघन्य अन्तरकाल उपलब्ध हुआ ।

चूर्णिसू०–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्टकाल उपार्धपुद्गल परिवर्तन है ॥१००॥

विशेषार्थ–किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण किया और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ । इस प्रकार अट्ठाईस विभक्तिका आरम्भ कर और सर्वजघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना कर सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाला हुआ और अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक संसारमें परिभ्रमण कर अन्तमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होकर क्रमशः अन्तर्मुहूर्तकालसे सिद्ध हो गया । इस प्रकार पूर्वके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे और अन्तके अन्तर्मुहूर्तकालसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है ।

१०१. णाणाजीवेहि भंगविचओ। जेसिं मोहणीय-पयडीओ अत्थि, तेसु पयदं। १०२. सव्वे जीवा अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीससंतकम्मविहत्तिया णियमा अत्थि। १०३. सेसविहत्तिया भजियव्वा। १०४. सेसाणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि। १०५. अप्पाबहुअं।

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा जिन जीवोंके मोहनीयकर्मकी प्रकृतियाँ पाई जाती हैं, उन जीवोंमें सम्भव भंगोंका विचय अर्थात् विचार यहाँपर किया जाता है। जो जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं, सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं, छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं, चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं और इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं, वे सब नियमसे हैं। अर्थात् इन स्थानोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं। किन्तु उक्त स्थानोंसे अवशिष्ट प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव भजितव्य हैं। अर्थात् तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव कभी होते भी हैं और कभी नहीं भी होते हैं ॥१०१–१०३॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार शेष अनुयोगद्वारोंको जानना चाहिए ॥१०४॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंके अतिरिक्त जो परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नानाजीवोंकी अपेक्षा कालानुगम और अन्तरानुगम अनुयोगद्वार हैं, उनकी प्ररूपणा भी कहे गये अनुयोगद्वारोंके अनुसार करना चाहिए। चूर्णिसूत्रकारने सुगम होनेके कारण उनकी प्ररूपणा नहीं की है, किन्तु इस सूत्र-द्वारा उनकी सूचनामात्र कर दी है। अतएव विशेष जिज्ञासु जन इन अनुयोगद्वारोंके व्याख्यानको जयधवला टीकामें देखें। ग्रन्थ-विस्तारके भयसे यहाँ उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

चूर्णिसू०—अब प्रकृतिविभक्तिके स्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं ॥१०५॥

विशेषार्थ—अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्व और जीव-सम्बन्धी अल्पबहुत्व। इनमेंसे पहले काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको जानना आवश्यक है, क्योंकि उसके विना जीव-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है। ओघ और आदेशकी अपेक्षा कालसम्बन्धी अल्पबहुत्वके दो भेद हैं*। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा पाँच प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल सबसे कम है। इससे लोभसंज्वलनकषायसम्बन्धी सूक्ष्म संग्रहकृष्टिके वेदनका काल संख्यातगुणा है। इसका कारण यह है कि पाँच विभक्तिके एक समय कम दो आवलीप्रमाण कालसे संख्यात आवलीप्रमाण सूक्ष्मकृष्टिके वेदनकालमें भाग देनेपर संख्यात रूप पाये जाते हैं। लोभसंज्वलनकी सूक्ष्म संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे लोभ-संज्वलनकी दूसरी बादरकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। यहाँपर विशेष अधिकका प्रमाण

* काल-अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवो पंच-विहत्तियकालो। लोभसुहुमसंगहकिट्टीवेदयकालो संखेज्जगुणो। लोभविदियबादरकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ।

संख्यात आवली है। तथा आगे भी जिन पदोंमें कालका प्रमाण विशेष अधिक कहा जायगा, वहाँ वहाँ सर्वत्र संख्यात आवलीप्रमाण ही विशेष अधिक काल जानना चाहिए। लोभ-संज्वलनकी दूसरी बादरकृष्टिके वेदनकालसे लोभसंज्वलनकी पहली बादरकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। लोभसंज्वलनकी प्रथम बादरकृष्टिके वेदनकालसे मायासंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मायासंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसी मायासंज्वलनकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मायासंज्वलनकी द्वितीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसीकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मायासंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे मानसंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मानसंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसीकी द्वितीय संग्रह-कृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मानसंज्वलनकी द्वितीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसीकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। मानसंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे क्रोधसंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। क्रोधसंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसीकी द्वितीय संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। क्रोधसंज्वलनकी द्वितीय संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे उसीकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदनकाल विशेष अधिक है। क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिके वेदनकालसे चारों संज्वलनकषायोंके कृष्टि-करणका काल संख्यातगुणा है। चारों संज्वलनकषायोंके कृष्टिकरणकालसे अश्वकर्णकरणका काल विशेष अधिक है। अश्वकर्णकरणके कालसे हास्यादि छह नोकषायोंके क्षपणका काल विशेष अधिक है। हास्यादि छह नोकषायोंके क्षपणकालसे स्त्रीवेदके क्षपणका काल विशेष अधिक है। स्त्रीवेदके क्षपणकालसे नपुंसकवेदके क्षपणका काल विशेष अधिक है। नपुंसक-वेदके क्षपणकालसे तेरह प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल संख्यातगुणा है। तेरह प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल संख्यातगुणा है। बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल विशेष अधिक है। तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल असंख्यातगुणा है। यहाँ गुणकार पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे इक्कीस प्रकृतियोंकी

लोभस्स पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। मायाए तदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। तिस्से चेव विदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। माणतदियसंगह-किट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। विदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। कोहतदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। विदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। चदुण्हं संजलणाणं किट्टीकरणद्धा संखेज्जगुणा। अस्सकण्णकरणद्धा विसेसाहिया। छण्णोकसायखवणद्धा विसेसाहिया। इत्थिवेदखवणद्धा विसेसाहिया। णवुंसयवेदखवणद्धा विसेसाहिया। तेरसविहत्तियकालो संखेज्जगुणो। बावीसविहत्तियकालो संखेज्जगुणो। तेवीसविहत्तियकालो विसेसाहिओ। सत्तावीसविहत्तियकालो असंखेज्जगुणो। एक्कवीसविहत्तियकालो असंखेज्जगुणो। चउवीस-विहत्तियकालो संखेज्जगुणो। अट्ठावीसविहत्तियकालो विसेसाहिओ। छब्वीसविहत्तियकालो अणंतगुणो।

जयध०

१०६. सव्वत्थोवा पंचसंतकम्मविहत्तिया । १०७. एक्कसंतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । १०८. दोण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । १०९. तिण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । ११०. एक्कारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । १११. बारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । ११२. चदुण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । ११३. तेरसण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । ११४. बावीससंतकम्म-

---

विभक्तिका काल असंख्यातगुणा है । इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल संख्यातगुणा है । चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल विशेष अधिक है । यह विशेष अधिक काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिके कालसे छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल अनन्तगुणा है । क्योंकि, छब्बीस प्रकृतिकी विभक्तिका काल अनादि-अनन्त भी बतलाया गया है, तथा सादि-सान्त भी । सादि-सान्त उत्कृष्ट काल भी उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन कहा गया है, इसलिए इसका काल अनन्तगुणा कहा है । चार, तीन, दो और एक प्रकृतिकी विभक्तिका काल जघन्य भी होता है और उत्कृष्ट भी होता है । उनमेंसे अन्य कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके जघन्य काल और स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके उत्कृष्ट काल होता है । तथा, पाँच प्रकृतिकी विभक्तिसे लेकर तेईस प्रकृतियोंकी विभक्ति तकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सदृश होता है, केवल तेरह और बारह विभक्तिका जघन्य काल भी होता है, इतना विशेष जानना चाहिए ।

अब चूर्णिकार इसी काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका आश्रय लेकर जीव-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका प्ररूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—मोहनीयकर्मके पांच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं; क्योंकि, अन्य विभक्तियोंकी अपेक्षा इसका काल केवल एक समय कम दो आवलीमात्र है ॥१०६॥ पांच प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्ति करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं; क्योंकि इस विभक्तिका काल संख्यात आवलीप्रमाण है ॥१०७॥ एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे दो प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥१०८॥ दो प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे तीन प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥१०९॥ तीन प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे ग्यारह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥११०॥ ग्यारह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे बारह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥१११॥ बारह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे चार प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणित हैं ॥११२॥ चार प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे तेरह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव संख्यात-

विहत्तिया संखेज्जगुणा। ११५. तेवीसाए संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया। ११६. सत्तावीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ११७. एक्कवीसाए संतकम्म-विहत्तिया असंखेज्जगुणा। ११८. चउवीसाए संतकम्मिया असंखेज्जगुणा। ११९. अट्ठावीससंतकम्मिया असंखेज्जगुणा। १२०. छव्वीसविहत्तिया अणंतगुणा। १२१. भुजगारो अप्पदरो अवट्ठिदो कायव्वो* ।

गुणित हैं ॥११३॥ तेरह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे बाईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणित हैं ॥११४॥ बाईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे तेईस प्रकृतियोंकी सत्त्वविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥११५॥ तेईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे सत्ताईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥११६॥ सत्ताईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥११७॥ इक्कीस प्रकृतियोंके सत्त्व-स्थानवाले जीवोंसे चौबीस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥११८॥ चौबीस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्व-स्थानकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥११९॥ अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीवोंसे छब्बीस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणित हैं ॥१२०॥

चूर्णिसू०—इस प्रकृतिविभक्तिके चूलिकारूपसे स्थित भुजाकार, अल्पतर और अव-स्थितस्वरूप स्थानोंका निरूपण करना चाहिए ॥१२१॥

विशेषार्थ—भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनों प्रकारकी विभक्तिको भुजाकारविभक्ति कहते हैं। इस भुजाकारविभक्तिमें सत्तरह अनुयोगद्वार होते हैं। वे इस प्रकार हैं—समुत्कीर्त्तना, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर; नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानु-गम, परिमाणाणुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्व। चूर्णिकारने यहाँपर समुत्कीर्तना आदि शेष सोलह अनुयोगद्वारोंको सुगम समझ कर या महाबन्ध आदि अन्य ग्रन्थोंमें विस्तृत निरूपण होनेसे उनका वर्णन नहीं किया है। केवल एक जीवकी अपेक्षा कालानुयोगद्वारका ही निरूपण किया है। क्योंकि, शेष सभी अनुयोगद्वारोंका मूल आधार कालानुयोगद्वार ही है। कालानुयोगद्वारके जान लेनेपर शेष अनुयोगद्वारोंको बुद्धिमान् स्वयं जान सकते हैं।

* तत्थ भुजगारविहत्तीए इमाणि सत्तारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—समुक्कित्तणा सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवविहत्ती अद्धुवविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि। जयध०

१२२. एत्थ एगजीवेण कालो । १२३. भुजगारसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । १२४. अप्पदरसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । १२५. उकस्सेण वे समया । १२६. अवट्ठिद-संतकम्मविहत्तियाणं तिण्णि भंगा[1] ।

चूर्णिसू०—उनमेंसे यहाँपर एक जीवकी अपेक्षा काल कहते हैं। भुजाकारस्वरूप सत्त्व-प्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥१२२-१२३॥

विशेषार्थ—अल्प कर्म-प्रकृतियोंकी सत्तासे बहुत कर्मप्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होना भुजाकारविभक्ति कहलाती है । इस प्रकारकी भुजाकारविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल छब्बीस या सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्ति करनेवाले जीवके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व स्थापित करने पर एक समयप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकारसे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त हो अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वको स्थापित करने पर भी भुजाकारविभक्तिका काल एक समयप्रमाण देखा जाता है ।

चूर्णिसू०—अल्पतरस्वरूप सत्त्वप्रकृतियोंकी विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ॥१२४॥

विशेषार्थ—बहुत कर्म-प्रकृतियोंकी सत्तासे अल्प कर्म-प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होना अल्पतरविभक्ति कहलाती है । अट्ठाईस सत्त्वप्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवके अनन्ता-नुबन्धीचतुष्कके विसंयोजन कर चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व स्थापित करने पर अल्पतर-विभक्तिका काल एक समयप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंका उद्वेलन कर चुकने पर प्रथम समयमें; मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व-प्रकृतिके क्षपण कर चुकने पर प्रथम समयमें, तथा क्षपकश्रेणीमें क्षपणयोग्य प्रकृतियोंके क्षपण कर चुकने पर प्रथम समयमें भी अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्टकाल दो समय है ॥१२५॥

विशेषार्थ—नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदके पर-प्रकृति रूपसे संक्रमण होकर तेरह प्रकृतियोंकी सत्तासे बारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होनेपर; और तदनन्तर समयमें नपुंसकवेदकी उदयस्थितिको गलाकर बारह प्रकृतियोंकी सत्तासे ग्यारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होनेपर लगातार अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल दो समयप्रमाण पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—अवस्थित कर्म-प्रकृतियोंकी सत्त्व-विभक्तिवाले जीवोंके कालके तीन भंग होते हैं ॥१२६॥

विशेषार्थ—जब भुजाकार और अल्पतर विभक्ति न हो, किन्तु एक सदृश ही

१ तं जहा—केसिं पि अणादिओ अपज्जवसिदो । केसिं पि अणादिओ सपज्जवसिदो । केसिं पि सादिओ सपज्जवसिदो । जयध०

१२७. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहण्णेण एगसमओ । १२८. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

कर्मप्रकृतियोंका सत्त्व बना रहे, तब अवस्थितविभक्ति कहलाती है। अवस्थितविभक्ति करनेवाले जीवोंके तीन भंग होते हैं अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और आदि-सान्त। उन तीन प्रकारकी अवस्थित विभक्तियोंमेंसे कितने ही जीवोंमें अर्थात् अभव्य और नित्यनिगोदको प्राप्त हुए दूरान्दूर भव्योंमें अनादि-अनन्तकालस्वरूप अवस्थितविभक्ति होती है, क्योंकि उनमें भुजाकार और अल्पतरविभक्ति संभव ही नहीं है। कितने ही जीवोंके अनादि-सान्तकालात्मक अवस्थितविभक्ति होती है। जैसे—जो जीव अनादिकालसे अभी तक छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तारूपसे अवस्थित थे, उनके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेपर अवस्थित-विभक्तिका काल अनादि-सान्त देखा जाता है। कितने ही जीवोंके अवस्थितविभक्तिका काल सादि-सान्त देखा जाता है, जिन्होंने कि पहले कभी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर पुनः लगातार मिथ्यात्व-अवस्थाको धारण किया है। प्रकृतमें यह तीसरा भंग ही विवक्षित है। चूर्णिकारने इसीके जघन्य और उत्कृष्ट कालका आगे वर्णन किया है।

चूर्णिसू०—इनमें जो सादि-सान्त अवस्थितविभक्ति है, उसका जघन्य काल एक समय है ॥१२७॥

विशेषार्थ—अन्तरकरणको करके मिथ्यात्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिसे सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिको प्राप्त होनेपर एक समय अल्पतरविभक्तिको करके तत्पश्चात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके चरम समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिरूपसे एक समयमात्र अवस्थित रह कर, तदनन्तर समयमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके अल्पतर और भुजाकार विभक्तिके मध्यमें सादि-सान्त अवस्थितविभक्तिका एक समय-प्रमाण जघन्य काल पाया जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय बतलानेके लिए मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम दो समय और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेका प्रथम समय, इस प्रकार इन तीन समयोंको ग्रहण करे। इनमेंसे प्रथम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना कर सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिको प्राप्त होकर अल्पतरविभक्ति करता है। दूसरे समयमें अवस्थितविभक्ति करता है और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिको प्राप्त होकर भुजाकारविभक्ति करता है। इस प्रकार अल्पतर और भुजाकार विभक्तिके मध्यमें अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा भी अवस्थितविभक्तिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है।

चूर्णिसू०—सादि-सान्त अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है ॥१२८॥

विशेषार्थ—किसी एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करणोंको करके प्रथमोपशम-

१२९. एवं सव्वाणि अणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि । १३०.* पदणिक्खेवे वड्ढीए च अणुमग्गिदाए समत्ता पयडिविहत्ती ।

सम्यक्त्वको प्राप्त कर और अनन्त संसारको छेदकर उसे अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः सम्यक्त्वका काल समाप्त होते ही मिथ्यात्वमें जाकर और सर्वजघन्य उद्वेलनकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलनाकर अट्ठाईस विभक्ति-स्थानसे सत्ताईस और सत्ताईससे छब्बीस, इस प्रकार अल्पतरविभक्ति करता हुआ छब्बीस प्रकृतिरूप अवस्थित-विभक्तिको प्राप्त हुआ । पुनः उद्वेलनाकालसम्बन्धी पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक उसी अवस्थित छब्बीस विभक्तिके साथ परिभ्रमणकर संसारके अन्त-मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहणकर छब्बीस विभक्ति-स्थानसे अट्ठाईस विभक्ति-स्थानको प्राप्तकर भुजाकारविभक्तिको करनेवाला हो गया। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सादि-सान्त अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सिद्ध होता है ।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार कालानुयोगद्वारके समान ही शेष समस्त अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा कर लेना चाहिए ॥१२९॥

विशेषार्थ—चूर्णिकारने सुगम समझकर शेष अनुयोगद्वारोंका निरूपण नहीं किया । विशेष जिज्ञासुओंको जयधवला टीकाके अन्तर्गत उच्चारणावृत्ति देखना चाहिए ।

चूर्णिसू०—पदनिक्षेप और वृद्धि नामक अनुयोगद्वारोंके यहाँ अनुमार्गण अर्थात् अन्वेषण करनेपर प्रकृतिविभक्ति नामक अर्थाधिकार समाप्त होता है ॥१३०॥

विशेषार्थ—ऊपर वर्णन किये गये अनुयोगद्वारोंका जघन्य और उत्कृष्ट पदोंके द्वारा निक्षेप अर्थात् निश्चय करनेको पदनिक्षेप कहते हैं । इस पदनिक्षेप अधिकारका समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, इन तीन अनुयोगोंद्वारा वर्णन किया गया है । वृद्धि, हानि और अवस्थान, इन तीनोंके वर्णन करनेवाले अधिकारको वृद्धिनामक अर्थाधिकार कहते हैं । इसका वर्णन समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम, इन तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है । इन अनुयोगद्वारोंसे दोनों अधिकारोंके वर्णन करनेपर प्रकृतिविभक्तिनामक अर्थाधिकार समाप्त होता है । यतिवृषभाचार्यने उक्त अनुयोगद्वारोंकी सूचना इस सूत्रसे की है । विशेष जिज्ञा-सुओंको जयधवला टीका देखना चाहिए ।

इस प्रकार प्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई ।

---

* को पदणिक्खेवो णाम ? जहण्णुक्कस्सपदविसयणिच्छए खिवदि पादेदि त्ति पदणिक्खेवो णाम । भुजगारविसेसो पदणिक्खेवो; जहण्णुक्कस्सवड्ढि-हाणिपरूवणादो । पदणिक्खेवविसेसो वड्ढी, वड्ढि-हाणीणं भेदपरूवणादो । जयध०

को है। प्रत्येक अनुयोगद्वारका वर्णन ओघ और आदेशसे किया गया है, किन्तु यहाँपर ओघकी अपेक्षा मूलप्रकृति-स्थितिविभक्तिका कुछ वर्णन किया जाता है :—

[1]**अद्धाच्छेदप्ररूपणा**–अद्धा अर्थात् कर्म-स्थितिरूप कालका अबाधा-सहित और अबाधा-रहित कर्म-निषेकरूपसे छेद अर्थात् विभागरूप वर्णन जिसमें किया जाय, उसे अद्धाच्छेद प्ररूपणा कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि एक समयमें बंधनेवाले कर्म-पिण्डकी जितनी स्थिति होती है, उसमें एक निश्चित नियमके अनुसार अबाधाकाल पड़ता है। अबाधाकालका अर्थ है कि बंधा हुआ कर्म उतने काल तक बाधा नहीं देगा, अर्थात् उदयमें नहीं आवेगा। अबाधाकालसे न्यून जो शेष काल रहता है, उसे कर्म-निषेककाल कहते हैं। उसके भीतर विवक्षित समयमें बंधे हुए कर्मपिंडमें जितने कर्म-परमाणु हैं, उनका एक निश्चित व्यवस्थाके अनुसार विभाजन हो जाता है और तदनुसार ही वे कर्म-परमाणु अपने-अपने उदयकालके प्राप्त होनेपर फल देते हुए निर्जीर्ण हो जाते हैं। निषेकशब्दका अर्थ है—एक समयमें निषिक्त या निक्षिप्त किया गया कर्मपिण्ड। जितने समयोंके द्वारा वह बंधा हुआ कर्म निर्जीर्ण होता है, वह कर्म-निषेककाल कहलाता है। अबाधाकालका निश्चित नियम यह है कि एक कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण स्थितिवाले कर्मका अबाधाकाल सौ वर्ष-प्रमाण होता है। प्रकृतमें मोहनीयकर्म विवक्षित है। उसकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण है, अतएव उसका अबाधाकाल सात हजार वर्ष-प्रमाण होता है। इन सात हजार वर्षोंसे न्यून जो सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाणकाल शेष रहता है, उसे निषेककाल कहते हैं। अन्तर्मुहूर्तसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तककी स्थितिवाले कर्मोंका अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण होता है। यह मूलप्रकृतिकी अपेक्षा अद्धाच्छेदकी प्ररूपणा है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होती है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण है। इनमेंसे दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंका अबाधाकाल

१ **अद्धाच्छेदपरूवणा**–अद्धाच्छेदो दुविधो–जहण्णओ उक्कस्सओ च। उक्कस्सगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण × × × मोहणीयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ। सत्तवस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण × × × मोहणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। (महाबं०) अद्धाच्छेदो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ च। ××× उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती केत्तिया? सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ। कुदो? अकम्मसरूवेण ट्ठिदा कम्मइयवग्गणक्खंधा मिच्छत्तादिपच्चएण मिच्छत्तकम्मसरूवेण परिणदसमए चेव जीवेण सह बंधमागदा सत्तवाससहस्साबाधं मोत्तूण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीसु जहाकमेण णिसित्ता सत्तरिसागरोपमकोडाकोडिमेत्तकालं कम्मभावेणच्छिय पुणो तेसिमकम्मभावेण गमणुवलंभादो। जहण्ण-अद्धाछेदाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णिया अद्धा केत्तिया? एगा ट्ठिदी एगसमइया। जयध०

सात हजार वर्ष होता है और चारित्रमोहकी सर्व प्रकृतियोंका अबाधाकाल चार हजार वर्ष होता है। इस अबाधाकालसे न्यून जो शेष काल है उसे निषेककाल जानना चाहिए। इस प्रकारसे प्रत्येक कर्मके सम्पूर्ण स्थितिबन्धकाल, अबाधाकाल और निषेककालका विचार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्धकी अपेक्षा इस अद्धाच्छेद अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[1]**सर्वविभक्ति-नोसर्वविभक्ति प्ररूपणा**–जिस कर्मकी जितनी सर्वोत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है, उस सर्वके बाँधनेको सर्वबन्धविभक्ति कहते हैं और उसमें एक समय कमसे लगाकर नीचली स्थितियोंके बन्धको नोसर्वबन्ध-विभक्ति कहते हैं। जैसे–मोहकर्मकी पूरी सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंका बन्ध करना सर्वबन्ध है और उसमें एक समय कमसे लगाकर सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियों तकका बन्ध करना नोसर्वबन्ध है। इस प्रकारसे सर्व-मूल कर्मोंके और उनकी उत्तरप्रकृतियोंके सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धका विचार सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति नामक अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[2]**उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा**–जिस कर्मकी जितनी सर्वोत्कृष्ट स्थिति है, उसके बन्धकी उत्कृष्टबन्ध संज्ञा है। जैसे मोहनीयकर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर अन्तिम निषेकको उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जायगा। उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे एक समय कम आदि जितने भी स्थितिविकल्प हैं उन्हें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जायगा। इस प्रकारसे सर्व मूलकर्मोंके और उनकी उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्धका विचार उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति नामक अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[3]**जघन्य-अजघन्यबन्धप्ररूपणा**–मोहकर्मकी सबसे जघन्य स्थितिको बांधना जघन्य-बन्ध है और उससे अधिक स्थितिको बाँधना अजघन्यबन्ध है। इस प्रकारसे सर्व कर्मोंके और

१ **सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा**–यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो किं सव्वबंधो, णोसव्वबंधो? सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा। सव्वाओ ट्ठिदीओ बंधदि त्ति सव्वबंधो। तदो ऊणियं ट्ठिदिं बंधदि त्ति णोसव्वबंधो (महाबं०)। सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्ति-अणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वाओ ट्ठिदीओ सव्वविहत्ती। तदूणं णोसव्वविहत्ती। जयध०

२ **उक्कस्स-अणुक्कस्सबंधपरूवणा**–यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो किं उक्कस्सबंधो, अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा, अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सियं ठिदिं बंधदि त्ति उक्कस्सबंधो। तदो ऊणियं बंधदि त्ति अणुक्कस्सबंधो। (महाबं०)। उक्कस्स-अणुक्कस्सविहत्ति-अणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वुक्कस्सिया ठिदी उक्कस्सविहत्ती। तदूणा अणुक्कस्सविहत्ती। जयध०

३ **जहण्ण-अजहण्णबंधपरूवणा**–यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो जहण्णबंधो, अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा, अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णियं ठिदिं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदो उवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। (महाबं०)। जहण्णाजहण्णाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वजहण्णट्ठिदी जहण्णट्ठिदिविहत्ती। तदुवरिमाओ अजहण्णट्ठिदिविहत्ती। जयध०

उनके उत्तर प्रकृतियोंके जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्धका विचार जघन्यविभक्ति और अजघन्य-विभक्तिनामक अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[1]**सादि-अनादि तथा ध्रुव-अध्रुव बन्धप्ररूपणा**—कर्मका जो बंध एक बार होकर और फिर रुककर पुनः होता है वह सादिबन्ध कहलाता है और बन्ध-व्युच्छित्तिके पूर्वतक अनादि-कालसे जिसका बन्ध होता चला आरहा है वह अनादिबन्ध कहलाता है। अभव्योंके निरन्तर होनेवाले बन्धको ध्रुवबन्ध कहते हैं और कभी कभी होनेवाले भव्योंके बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं। इन चारों ही प्रकारके बन्धोंका विचार क्रमशः सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुव-विभक्ति और अध्रुवविभक्ति नामके अनुयोगद्वारोंमें किया गया है।

[2]**स्वामित्वप्ररूपणा**—स्वामित्व-अनुयोगद्वारमें मोहकर्मका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य बन्ध किस-किस जीवके होता है इस बातका विचार किया गया है। जैसे—मोह-कर्मकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार और जाग्रत उपयोगसे उप-युक्त, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे या ईषन्मध्यम परिणामोंसे परिणत, किसी भी संज्ञी पंचे-न्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवके होता है। इस प्रकारसे सर्व कर्मोंके और उनकी एक-एक प्रकृतिके स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम या विशुद्ध परिणामवाला जीव होता है। इस सबका विवेचन स्वामित्व अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[3]**बन्ध-कालप्ररूपणा**—कालानुयोगद्वारमें एक जीव की अपेक्षा प्रत्येक कर्मका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्यरूप बन्ध लगातार कितनी देर तक होता है इस बातका विचार

---

१ **सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा**—यो सो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुव-बंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्स० अणुक्कस्स० जहण्णबंधो किं सादि० अणादिय० धुव० अद्धुव० ? सादिय-अद्धुवबंधो। अजहण्णबंधो। किं सादि० ४ ? सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा। (महाबं०)। सादि० ४ दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि० ४ ? सादिं० अद्धुव०। अजह० किं सादि० ४ ? अणादिय० धुवो वा अद्धुवो वा। जयध०

२ **सामित्तपरूवणा**—सामित्तं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सगं च। उक्कस्सेण पगदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगस्स सागार-जागारुवजोगजुत्तस्स उक्कस्सियाए ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसेण वट्टमाणयस्स अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा। ××× जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहस्स जहण्णओ ठिदिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स खवगअणियट्टिस्स चरिमे समए वट्टमाणस्स। (महाबं०)। सामित्तं दुविधं—जहण्णं उक्कस्सं च। तत्थ उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण (मोहणीयस्स) उक्कस्सट्ठिदी कस्स ? अण्णदरस्स, जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिं बंधतो अच्छिदो उक्कस्ससंकिलेसं गदो। तदो उक्कस्स-ट्ठिदी पबद्धा, तस्स उक्कस्सयं होदि। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदी कस्स ? अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स जहण्णट्ठिदी। जयध०

३ **बंधकालपरूवणा**—बंधकालं दुविधं—जहण्णं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्सओ ठिदिबंधो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण

किया गया है। जैसे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और लगातार बंधनेका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट बन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है। जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्यबन्धका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है।

[1]अन्तर-प्ररूपणा—अन्तर अनुयोगद्वारमें विवक्षित कर्मबन्ध होनेके अनन्तर पुनः कितने कालके पश्चात् फिर उसी विवक्षित प्रकृतिका बन्ध होता है इस मध्यवर्ती बन्धाभावरूप काल-का विचार एक जीवकी अपेक्षा किया गया है। मोहकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर-काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है। जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है, क्योंकि मोहनीयकर्मकी जघन्य स्थिति क्षपक जीवके दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है। अजघन्यबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। यह कथन महाबन्धकी अपेक्षा है। जयधवलाकारने तो मोहकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है।

[2]नानाजीवोंकी अपेक्षा भंग-विचय—इस अनुयोगद्वारमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंके उनके बन्ध नहीं करनेवाले जीवोंके साथ कितने भंग होते हैं

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अणंतकाल-मसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। × × × जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णट्ठिदिबंधकालो केवचिरं कालादो होदि? जह० उक्क० अंतोमु०। अजहण्ण० केवचिरं कालादो०? अणादियो अपज्जवसिदो त्ति भंगो। यो सो सादि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं। (महाबं०)। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदी केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणुक्क० केवचिरं०? जह० अंतोमुहुत्तं। उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदी केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्ण० अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो वा। जयध०

१ अंतरपरूवणा—बंधंतरं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। × × × जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। (महाबं०)। अंतराणुगमो दुविहो—जहण्ण-मुक्कस्सं चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिदि-अंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्कस्स-ट्ठिदि-अंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाजहण्णट्ठिदीणं णत्थि अंतरं। जयध०

२ णाणाजीवेहिं भंगविचयं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। तत्थ इमं अट्ठपदं—णाणावरणीयस्स उक्कस्सियाए ठिदीए बंधगा जीवा ते अणुक्कस्सियाए अबंधगा। ये अणुक्कस्सियाए ठिदीए

इस बातका विचार किया गया है। जैसे कदाचित् सर्व जीव मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं। कदाचित् बहुतसे जीव मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं और एक जीव मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है। कदाचित् बहुतसे जीव मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिसे रहित हैं और बहुतसे जीव मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा कदाचित् सर्व जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुतसे जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित है। कदाचित् बहुतसे जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं और बहुतसे जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं, ये तीन भंग होते हैं। इसी प्रकारसे नानाजीवोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंके तीन-तीन भंग होते हैं। इस प्रकारसे प्रत्येक कर्मके बंधके साथ अन्य कर्मोंके भंगोंका विचय इस अनुयोगद्वारमें किया गया है।

[1]**भागाभागप्ररूपणा**–कर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिके बन्ध करनेवाले जीव सर्व जीवराशि-के कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं? सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थितिके बन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भाग हैं और अजघन्य स्थितिके बन्धक जीव अनन्त बहुभाग-प्रमाण हैं, इस प्रकारसे इस अनुयोगद्वारमें सर्व मूलकर्म और उनकी उत्तरप्रकृतियोंके भागाभाग-का विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहकर्मकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंकी विभक्ति करने-

बंधगा जीवा, ते उक्कस्सियाए ठिदीए अबंधगा। × × × एदेण अट्ठपदेण दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सियाए ठिदीए सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगो य, सिया अबंधगा य बंधगा य। एवं अणुक्कस्से वि, णवरि पडिलोमं भाणिदव्वं। × × × जहण्णगे पगदं। तं चेव अट्ठपदं कादव्वं। तस्स दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माण उक्कस्सभंगो। (महाबं०)। णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण भण्णमाणे तत्थ णाणाजीवेहि उक्कस्सभंगविचए इदमट्ठपदं–जे उक्कस्सस्स-विहत्तिया ते अणुक्कस्सस्स अविहत्तिया, जे अणुक्कस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सस्स अविहत्तिया। एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च। एवं तिण्णि भंगा ३। अणुक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। × × × जहण्णयम्मि अट्ठपदं। तं जहा–जे जहण्णस्स विहत्तिया ते अजहण्णस्स अविहत्तिया, जे अजहण्णस्स विहत्तिया ते जहण्णस्स अविहत्तिया। एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा। एवमजह०। णवरि विहत्तिया पुव्वं भाणियव्वं। जयध०

१ भागाभागपरूवणा–भागाभागं दुविधं–जहण्णगं उक्कस्सगं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं पि कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो? अणंतभागो। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। × × × जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जह० अजह० उक्कस्स-

वाले जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग हैं और अनुत्कृष्ट तथा अजघन्य स्थितिके बन्धक जीव अनन्तबहुभाग हैं, ऐसा जानना चाहिए।

[1]परिमाणप्ररूपणा–इस अनुयोगद्वारमें एक समयके भीतर कर्मोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिके बन्ध करनेवाले जीवोंके परिमाणका विचार किया गया है। जैसे–एक समयमें मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिके विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं। जघन्य स्थितिकी विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं। इस प्रकारसे सर्व मूलकर्म और उनकी उत्तरप्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंके परिमाणका वर्णन इस परिमाणअनुयोगद्वारमें किया गया है।

[2]क्षेत्रप्ररूपणा–इस अनुयोगद्वारमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके बन्धक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं, अनुत्कृष्ट स्थितिके वन्धक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं और जघन्य-अजघन्य स्थितिके बन्धक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं, इस बातका विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहनीयकर्म विवक्षित हैं, अतः उसकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सर्वलोकमें रहते हैं। इसी प्रकारसे जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए। इस प्रकारसे सर्व मूल कर्मों और उनकी उत्तरप्रकृतियोंके वर्तमानकालिक क्षेत्रका वर्णन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है।

भंगो। (महाबं०)। भागाभागाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अजहण्णट्ठिदिविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। जयध०

१ **परिमाणपरूवणा**–परिमाणं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा केवडिया? असंखेज्जा। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा केवडिया? अणंता। ××× जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णट्ठिदिबंधगा केत्तिया? संखेज्जा। अजहण्णट्ठिदिबंधगा केत्तिया? अणंता। (महाबं०) परिमाणाणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा केत्तिया? असंखेज्जा। अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा केत्तिया? अणंता ×××। जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिया जीवा केत्तिया? संखेज्जा। अजहण्णट्ठिदिविहत्तिया जीवा केत्तिया? अणंता। जयध०

२ **खेत्तपरूवणा**–खेत्तं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा जीवा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा जीवा केवडि खेत्ते? सव्वलोगे। ××× जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णट्ठिदिबंधगा जीवा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अजहण्णट्ठिदिबंधगा जीवा केवडि खेत्ते? सव्वलोगे। (महाबं०) खेत्ताणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स

[1]**स्पर्शनप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंके त्रिकाल-गोचर स्पृष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया गया है। जैसे–मोहकर्मकी उत्कृष्टस्थितिकी विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया है ? वर्तमानकालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग और अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा देशोन आठ बटे चौदह, अथवा तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट किया है। अनुत्कृष्टस्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक स्पृष्ट किया है। जघन्यस्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग और अजघन्यस्थिति-विभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक स्पृष्ट किया है। इस प्रकारसे शेष सात मूल कर्मों और उनकी उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, तथा जघन्य-अजघन्य स्थितिकी विभक्तिवाले जीवोंके त्रिकाल-विषयक स्पृष्ट क्षेत्रका वर्णन किया गया है।

[2]**कालप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवों की अपेक्षा कर्मोंकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य स्थितिका बन्ध कितने काल तक होता है, इस बातका विचार किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिबंधका जघन्यकाल एक समय है। और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका सर्वकाल है। मोहकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। अजघन्यस्थितिके बंधनेका सर्वकाल है। इस प्रकारसे सर्व मूलकर्मों और उत्तरप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट तथा जघन्य-अजघन्य स्थितिके जघन्य-उत्कृष्ट बन्धकालका निरूपण किया गया है।

उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोए। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण जहण्ण० अजहण्ण० उक्कस्सभंगो। जयध०

१ **फोसणपरूवणा**—फोसणं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगेहि केवडियं खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागा वा देसूणा। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। × × × जहण्णगे पगद। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माण जहण्ण-अजहण्णट्ठिदिबंधगाणं खेत्तभंगो। (महाबं०)। पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ तेरह-चोद्दसभागा वा देसूणा। अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणं खेत्तभंगो। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण *मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अजहण्णट्ठिदिविहत्तियाणं* सव्वलोगो। जयध०

२ **कालपरूवणा**—कालं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा × × × जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णट्ठिदिबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अज० सव्वद्धा। (महाबं०)। कालाणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य।

[1]**अन्तरप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवों की अपेक्षा कर्मबन्धके अन्तरकालका निरूपण किया गया है। जैसे–मोहकर्मकी उत्कृष्टस्थिति-विभक्तिवाले जीवोंके अन्तरका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके समय-प्रमाण है। मोहनीयकी जघन्यस्थिति-विभक्तिके अन्तरका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह मास है। मोहकर्मकी अजघन्यस्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं होता है।

[2]**सन्निकर्षप्ररूपणा**–मोहकर्मकी विवक्षित प्रकृतिके उत्कृष्टबन्धका करनेवाला जीव अन्यप्रकृतियोंका क्या उत्कृष्टबन्ध करता है, अथवा क्या अनुत्कृष्टबन्ध करता है, इस प्रकारसे एक प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिके बन्धकके साथ दूसरी प्रकृतिकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि स्थितिके बन्धकका विचार किया गया है। जैसे–मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करनेवाला होता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्टबन्ध भी करता है, और अनुत्कृष्टबन्ध भी करता है। यदि उत्कृष्ट-बन्ध करता है, तो उसे उत्कृष्टस्थितिबन्धमेंसे एक समय कमसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग कम तक बाँधता है। इस प्रकारसे मोहकर्मकी शेष प्रकृतियोंके साथ भी मिथ्यात्वके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका विचार किया गया है। मोहकर्मकी प्रकृतियोंके समान ही शेष कर्मोंकी

तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिविहत्तिया केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० के० ? सव्वद्धा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। जयध०

१ **अंतरपरूवणा**—अंतरं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पयदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे० असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं णत्थि। ××× जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णट्ठिदिबंधंतरं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण छम्मासं। अज० णत्थि अंतरं (महाबं०) अंतराणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० णत्थि अंतरं। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णट्ठिविहत्तियाणमंतरं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण छम्मासा। अज० णत्थि अंतरं। जयध०

२ **बंधसण्णियासपरूवणा**–बंधसण्णियासं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो छण्हं कम्माणं णियमा बंधगो। तं तु उक्कस्सा वा, अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागूणं बंधदि। आयुगस्स सिया बंधगो, सिया अबंधगो। जइ बंधगो, णियमा उक्कस्सा। आबाधा पुण भयणिज्जा। एवं छण्हं कम्माणं। आयुगस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो सत्तण्हं कम्माणं णियमा बंधगा। तं तु उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदं बंधदि–असंखेज्जदिभागहीणं वा,

उत्तरप्रकृतियोंमें भी इसी प्रकारसे सन्निकर्षका विचार इस अनुयोगद्वारमें किया गया है । यहाँ इतनी बात ध्यान रखनेके योग्य है कि मूल मोहनीयकर्ममें सन्निकर्ष संभव नहीं है ।

[1]भावप्ररूपणा—भावानुगमकी अपेक्षा किसी भी मूलकर्म या उनकी उत्तरप्रकृतियों-की उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले सर्वजीवोंके एकमात्र औदयिकभाव पाया जाता है ।

[2]अल्पबहुत्वप्ररूपणा—इस अनुयोगद्वारमें सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है । जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टस्थितिके विभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं । इनसे अनुत्कृष्टस्थितिके विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणित हैं । जघन्यस्थिति-बन्धक जीव सबसे कम हैं । उनसे अजघन्यस्थिति-बन्धक जीव अनन्तगुणित हैं । इस प्रकारसे सर्व मूलकर्मोंकी और उनकी उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य स्थितिबन्धकी विभक्तिवालोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

[3]भुजाकार—अनुयोगद्वारमें भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंका विचार किया जाता है । जो जीव कम स्थितिसे अधिक स्थितिको प्राप्त हो, उसे भुजाकार स्थिति-विभक्तिवाला कहते हैं । जो अधिक स्थितिसे कम स्थितिको प्राप्त हो, उसे अल्पतर स्थिति-विभक्तिवाला कहते हैं और जिसकी पहले समयके समान दूसरे समयमें स्थिति रहे, उसे अवस्थित-स्थितिविभक्तिवाला कहते हैं । इस प्रकार मोहनीयकर्मकी तीनों प्रकारकी स्थितिवाले

संखेजदिभागहीणं वा, संखेजगुणहीणं वा । (महाबं०) । एत्थ मूलपयडिट्ठिदिविहत्तीए जदिवि सण्णियासो ण संभवइ, तो वि उत्तो, उत्तरपयडीसु तस्स संभवदंसणादो । जयध०

१ भावपरूवणा—भावाणुगमेण दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्साणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा त्ति को भावो ? ओदइओ भावो । × × × जहण्णए पगदं । दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं जहण्ण-अजहण्णट्ठिदिबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । (महाबं०) भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइओ भावो । जयध०

२ अप्पाबहुगपरूवणा—अप्पाबहुगं दुविधं–जीव-अप्पाबहुगं चेव ट्ठिदि-अप्पाबहुगं चेव । जीव-अप्पाबहुगं तिविधं–जहण्णं उक्कस्सं जहण्णुक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सगट्ठिदिबंधगा जीवा । अणुक्कस्सगट्ठिदिबंधगा जीवा अणंतगुणा । × × × जहण्णए पगदं । दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । ओघेण सत्तण्हं कम्माणं सव्वत्थोवा जहण्णट्ठिदिबंधगा जीवा । अजहण्णट्ठिदिबंधगा जीवा अणंतगुणा । (महाबं०) । अप्पा-बहुगाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा मोहणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा । अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा अणंतगुणा । × × × जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जह० अजह० उक्कस्सभंगो । जयध०

३ भुजगारबंधो–भुजगारबंधेत्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–जाओ एण्हिं ट्ठिदीओ बंधदि अणंतरादि-सक्काविदविदिक्कंते समए अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एसो भुजगारबंधो णाम । अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–जाओ एण्हिं ट्ठिदीओ बंधदि अणंतर ओस्सक्काविदविदिक्कंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि

५. एदाणि चेव उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीए कादव्वाणि । ६. उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तिमणुमग्गइस्सामो । ७. तं जहा । तत्थ अट्ठपदं–एया ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती, अणेयाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिविहत्ती ।

जीवोंका पाया जाना संभव है । विवक्षितकर्मके बन्धका अभाव होकर पुनः उस कर्मका बन्ध करनेवालेको अवक्तव्यस्थिति-विभक्तिवाला कहते हैं । भुजाकारविभक्तिमें इनका विचार तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं–समुत्कीर्त्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व ।

पदनिक्षेप–भुजाकारबंधका जघन्य और उत्कृष्टपदोंके द्वारा विशेष वर्णन करनेको पदनिक्षेप कहते हैं । इस अधिकारमें 'पद' शब्दसे वृद्धि, हानि और अवस्थान इन तीन पदोंका ग्रहण किया गया है । ये तीनों पद उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी । इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि कोई एक जीव यदि प्रथम समयमें अपने योग्य जघन्य स्थितिबन्ध करता है और दूसरे समयमें वह स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करता है, तो उसके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी वृद्धि हो सकती है और कमसे कम कितनी वृद्धि हो सकती है । इसी प्रकार यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है और अनन्तर समयमें वह स्थितिको घटाकर बन्ध करता है, तो उस जीवके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी हानि हो सकती है और कमसे कम कितनी हानि हो सकती है । वृद्धि या हानिके न होनेपर जो ज्योंका त्यों पूर्व प्रमाणवाला ही बन्ध होता है, वह अवस्थितबन्ध कहलाता है । इस प्रकार पदनिक्षेप अधिकारमें वृद्धि, हानि और अवस्थान, इन तीनोंका विचार किया जाता है ।

वृद्धि–इस अनुयोगद्वारमें षड्गुणी हानि और वृद्धिके द्वारा स्थितिबन्धका विचार किया गया है ।

चूर्णिसू०–मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिमें बतलाये गये इन ही अनुयोगद्वारोंको उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिमें भी प्ररूपण करना चाहिए ॥ ५ ॥

चूर्णिसू०–अब उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका अनुमार्गण करते हैं । वह इस प्रकार है । उसमें यह अर्थपद है–एक स्थिति भी स्थितिविभक्ति है, और अनेक स्थितियाँ भी स्थितिविभक्ति है ॥ ६-७ ॥

विशेषार्थ–कर्मस्वरूपसे परिणत हुए कार्मण पुद्गलस्कन्धोंके कर्मपना न छोड़कर रहनेके कालको स्थिति कहते हैं । कर्मकी ऐसी एक स्थितिको एकस्थिति कहते हैं । इस एक स्थितिकी विभक्ति होती है; क्योंकि, एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितियोंसे उसमें भेद पाया जाता है । अथवा, सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके मोहकर्मके अन्तिम समयसम्बन्धी कर्मस्कन्धके

त्ति एसो अप्पदरबंधो णाम । अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–जाओ एण्हिं ट्ठिदीओ बंधदि अणंतरओसक्काविद–उस्सक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियाओ चेव बंधादि त्ति एसो अवट्ठिदबंधो णाम । एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि–समुक्कित्तणा सामित्तं जाव अप्पाबहुगे त्ति । महाबं०

८. एदेण अट्ठपदेण । ९. पमाणाणुगमो । १०. मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदि-विहत्ती सत्तरि-सागरोवम-कोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ । ११. एवं सम्मत्त-सम्मामि-च्छत्ताणं । णवरि अंतोमुहुत्तूणाओ ।

कालको एकस्थिति कहते हैं, क्योंकि, वह स्थिति एकसमय-मात्रनिष्पन्न है । यह स्थिति भी स्थितिविभक्ति है, क्योंकि वह द्विसमयादि स्थितियोंसे भिन्न है । उत्कृष्ट, दो समय कम उत्कृष्ट आदि क्रमसे अनेक प्रकारकी स्थितियाँ होती हैं, उन्हें अनेकस्थिति कहते हैं । अथवा, मोह-कर्मकी उत्तरप्रकृतियोंकी स्थितिको अनेक स्थिति कहते हैं, और उन स्थितियोंकी विभक्तिको उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति कहते हैं ।

चूर्णिसू०—इस अर्थपदके द्वारा उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका प्रमाणानुगम करते हैं । अर्थात् उन चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे पहले उत्तरप्रकृतियोंके अद्धाछेदको कहते हैं । मिथ्यात्व-प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पूरे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम कालप्रमाण है ॥८-१०॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकर्मकी यह उत्कृष्टस्थिति एक समयमें बंधनेवाले समयप्रबद्धकी अपेक्षा कही है, क्योंकि, जो कार्मण-वर्गणाओंका स्कन्ध जीवके मिथ्यादर्शन आदि बन्ध-कारणोंसे मिथ्यात्वकर्मरूप परिणत होकर बन्धको प्राप्त होता है, उसकी उत्कृष्टस्थिति समयाधिक सात हजार वर्षप्रमाण अबाधाकालको आदि लेकर निरन्तर एक-एक समयकी अधिकताके क्रमसे पूरे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल तक देखी जाती है ।

अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहते हैं—

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिविभक्ति जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि ये दोनों अन्तर्मुहूर्त कम होती हैं ॥११॥

विशेषार्थ—ऊपर मोहकर्मके मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका प्रमाण पूरे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम बताया गया है, उसमें एक अन्तर्मुहूर्त कम करनेपर सम्यक्त्व-प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति हो जाती है । तथा यही प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति-विभक्तिका है । इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनोंको बन्धप्रकृतियोंमें नहीं गिनाया गया है, क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके प्रथमोपशमसम्यक्त्व-की उत्पत्तिके पूर्व इनका अस्तित्व नहीं पाया जाता है । यहाँ यह शंका की जासकती है, कि जब ये दोनों बन्ध-प्रकृतियाँ नहीं हैं, तब इनका यह उपर्युक्त स्थितिकाल कैसे संभव हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि जब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम वार सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है, तब वह सम्यक्त्वप्राप्तिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वद्रव्यके तीन विभाग कर देता है । जैसे कोदोंको जाँतेसे दलनेपर तीन विभाग हो जाते हैं कुछ तो तुष-रहित शुद्ध चावल बन जाते हैं, कुछ आधे तुष-रहित हो जानेपर भी अर्ध-तुष-संयुक्त बने रहते हैं, और कुछ ज्योंके त्यों अपने पूर्णरूपमें ही निकलते हैं । इसी प्रकार प्रथमोपशमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेवाले भावरूप यंत्रके द्वारा मिथ्यात्वरूप कोदोंके दले जानेपर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये

१२. सोलसण्हं कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ। १३. एवं णवणोकसायाणं, णवरि आवलिऊणाओ। १४. एवं सव्वासु गदीसु णेयव्वो।

तीन भाग हो जाते हैं। इस प्रकार मिथ्यात्वप्रकृतिके तीन भाग हो जानेपर अट्ठाईस मोहप्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वको प्राप्त हो मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हो और अवशिष्ट अर्थात् अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिको सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमाता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम बन जाता है।

इस प्रकार दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका प्रमाण बताकर अब चारित्रमोह-सम्बन्धी सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका काल बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन, इन चारोंके क्रोध, मान, माया और लोभरूप सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिकाल पूरा चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥१२॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा बाँधे हुये कार्मणवर्गणास्कन्धोंका सोलह कषायरूपसे परिणमन होकर सकल जीवप्रदेशोंपर समयाधिक चार हजार वर्ष-प्रमित आबाधाकालको आदि लेकर चालीस कोड़ाकोड़ीसागरोपम-काल तक निरन्तर कर्मस्वरूपसे अवस्थान पाया जाता है।

अब नव नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाल कहनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—इसी प्रकार नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका काल जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि यह आवलिप्रमाण कम है ॥१३॥

विशेषार्थ—नव नोकषायोंकी स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है। इसका कारण यह है कि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके अनन्तर और बंधावलीकालको बिताकर एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण उक्त कषायकी स्थितिको नव नोकषायोंमें संक्रमणकर देनेपर नव नोकषायोंकी स्थिति-विभक्तिका सूत्रोक्त उत्कृष्टकाल सिद्ध हो जाता है।

चूर्णिसू०—जिस प्रकार ऊपर ओघकी अपेक्षा स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल बतलाया गया है, उसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिए ॥१४॥

विशेषार्थ—चूर्णिकारने इस सूत्रके द्वारा सर्वगतियोंमें और शेष सर्वमार्गणाओंमें अद्धाच्छेदके जाननेकी सूचना की है, सो विशेष जिज्ञासु जन इसके लिए जयधवला टीका को देखें।

१५. एत्तो जहण्णयं। १६. मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती एगा ट्ठिदी दुसमयकालट्ठिदिया।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे स्थितिविभक्तिके जघन्य अद्धाच्छेदको कहते हैं। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल दो समयप्रमाण कालस्थितिवाली एक स्थिति है ॥१५-१६॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि सूत्रोक्त चौदह मोहप्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिके उपयु क्त जघन्यकाल बतलानेका कारण यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाके योग्य होते हैं, अतएव इन चारों गुणस्थानोंमेंसे कोई एक गुणस्थानवर्ती जीव—जिसने कि पहले ही अनन्तानुबन्धीचतुष्टयका अभाव कर दिया है—दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। तब अधःप्रवृत्तकरणके कालमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हो, अप्रशस्तकर्मोंके अपने पूर्ववर्ती अनुभागबंधकी अपेक्षा अनन्तगुणितहीन अनुभागबंधको बाँधकर, तथा प्रशस्तकर्मोंके अपने पूर्ववर्ती अनुभागबन्धसे अनन्तगुणित अधिक अनुभागबन्धको बाँधकर भी वह स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात और गुणश्रेणीरूप कर्म-प्रदेश-निर्जरासे उन्मुक्त ही रहता है। पुनः अपूर्वकरणके कालमें प्रवेशकर प्रथम समयमें ही स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणीनिर्जरा और नहीं बँधनेवाली मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों अप्रशस्त कर्मप्रकृतियोंके गुणसंक्रमणको प्रारम्भ करता है। इन क्रियाविशेषोंके द्वारा वह अपूर्वकरणके कालमें संख्यात हजार स्थितिकांडकोंको, और स्थितिकांडकोंसे संख्यातगुणित अनुभागकांडकोंके अपसरणोंको करके तथा संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणोंके द्वारा उत्पन्न हुई गुणश्रेणीनिर्जरासे कर्मस्कन्धोंको गलाता हुआ वह अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करता है। अनिवृत्तिकरणके कालमें भी हजारों स्थितिकांडकघातों और अनुभागकांडकघातोंको करके और प्रतिसमय असंख्यातगुणी गुणश्रेणीके द्वारा कर्मस्कन्धोंको गलाकर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भाग व्यतीत होनेपर उदयावलीसे बाहर स्थित पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिवाली मिथ्यात्वकी चरिमफालीको लेकर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनोंमें संक्रमाता हुआ, तथा उपरि—स्थित एक समय कम उदयावलीप्रमाण स्थितियोंको स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण करता है, उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वके एक निषेककी निषेकस्थिति दो समय-कालप्रमाण पाई जाती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी आदि बारह कषायोंके जघन्य स्थितिविभक्तिकालको जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनकी अपनी अपनी चरमफालियोंको परस्वरूपसे संक्रमणकर और उदयावली-प्रविष्ट निषेकस्थितियोंको स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रामित करनेपर जब एक निषेक-स्थितिके कालमें दो समय अवशिष्ट रह जाते हैं, तब उन-उन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इन सब कर्मोंकी चरमफालियाँ अपने-अपने अनिवृत्तिकरणकालोंके संख्यात भाग व्यतीत होनेपर पतित होती हैं। किन्तु, अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्टयकी चरमफाली अनिवृत्तिकरणकालके

१७. सम्मत्त-लोहसंजलण-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती एगा ट्ठिदी एगसमयकालट्ठिदिया। १८. कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती बे मासा अंतोमुहुत्तूणा।

अन्तिम समयमें पतित होती है, ऐसा विशेष जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेपर भी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि, वहाँपर भी दो समयकालवाली एक निषेक-स्थिति पाई जाती है।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति, लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इन कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय-प्रमाण कालस्थितिवाली एक स्थिति है ॥१७॥

विशेषार्थ–सूत्रोक्त अर्थके स्पष्टीकरणके लिए यहाँपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिके कालको कहते हैं–सम्यग्मिथ्यात्वकी चरमफालीको सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण-कर देनेपर उस समय उसका स्थिति-सत्त्व आठ वर्षप्रमाण होता है। पुनः इस आठ वर्ष-प्रमाण स्थिति-सत्त्वका अन्तमुर्हूतमात्र स्थितिकांडकोंके प्रमाणसे घात करता हुआ और सम्यक्त्वप्रकृतिका प्रतिसमय अपवर्तन करता हुआ वह संख्यात हजार स्थितिकांडकोंके होने तक चला जाता है। तत्पश्चात् उनके व्यतीत होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी चरम-फालिको नष्ट करनेके लिए ग्रहण करता हुआ कृतकृत्यवेदककालप्रमाण स्थितियोंको छोड़-कर शेषका ग्रहण करता है। पुनः उसे ग्रहणकर और गुणश्रेणीनिक्षेपके द्वारा निक्षिप्त कर अनि-वृत्तिकरणके कालको समाप्त करता है। इस प्रकार प्रतिसमय अपवर्तन करता हुआ एकसमय-कालप्रमाण एक स्थितिके उदयमें स्थित रहने तक उदयावली-प्रविष्ट स्थितियोंको गलाता जाता है। उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार लोभसंज्वलन आदि शेष प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिका जघन्य काल जयधवला टीकासे जान लेना चाहिए। पूर्वसूत्रमें कही गई मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति एक समय कालप्रमाण नहीं कहनेका कारण यह है कि उनका सम्यक्त्वप्रकृतिके समान स्वोदयसे क्षपण नहीं होता है।

चूर्णिसू०–क्रोधसंज्वलनकषायकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल अन्तमुर्हूर्त कम दो मासप्रमाण है ॥१८॥

विशेषार्थ–चरित्रमोहका क्षपण करनेवाला जीव जब क्रोधसंज्वलनकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका क्षय करता हुआ उसकी प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक एक आवली-प्रमाण कालके शेष रहने पर क्रोधसंज्वलनके पूरे दो मासप्रमाण जघन्यबन्धको बाँधता है, तब एक समय कम दो आवलीप्रमाण क्रोधसंज्वलनके शुद्ध समयप्रबद्ध रहते हैं। क्योंकि, उस समय उत्पादानुच्छेदके द्वारा क्रोधके पुरातन सत्त्वकी चरिमफालीका निःशेष विनाश पाया जाता है। तत्पश्चात् बंधावलीके अतिक्रान्त होनेपर, एक समय कम आवलीप्रमाण फालियोंके पर-प्रकृतिरूपसे संक्रामित होनेपर, तथा दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्धोंके सम्पूर्णतः परस्वरूपसे चले जानेपर उस समय एक समय कम दो आवलीसे न्यून दो मास-

१९. माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती मासो अंतोमुहुत्तूणो । २०. मायासंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती अद्धमासो अंतोमुहुत्तूणो । २१. पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती अट्ठ वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । २२. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती संखेज्जाणि वस्साणि ।

प्रमाण क्रोधसंज्वलनकषायके चरम समयप्रबद्धकी स्थिति रहती है । यही क्रोधसंज्वलनकषायकी स्थितिविभक्तिका जघन्य काल है ।

चूर्णिसू०—मानसंज्वलनकषायकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त कम एक मास है ॥१९॥

विशेषार्थ—चारित्रमोहका क्षपण करनेवाला जीव जब मानसंज्वलनकषायकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका वेदन करता है, तब उस तीसरी कृष्टिकी प्रथमस्थितिके एक समय अधिक आवलीप्रमाण शेष रहनेपर मानकषायका चरमस्थितिबंध सम्पूर्ण एक मास रहता है । इससे ऊपर एक समय कम दो आवलीमात्र काल व्यतीत होनेपर चरमसमयप्रबद्धकी स्थितिमे अन्तर्मुहूर्त कम एक मासप्रमाण कालवाले निषेक पाये जाते हैं । यही मानसंज्वलनकषायकी स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल है ।

चूर्णिसू०—मायासंज्वलनकषायकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध मास है ॥२०॥

विशेषार्थ—यतः मायासंज्वलनकषायके चरमस्थितिबंधके निषेक अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध मासप्रमाण होते हैं, इसलिए, एक समय कम दो आवलीप्रमाण नवीन समयप्रबद्धोंके गला देनेपर अन्तर्मुहूर्त कम अर्धमासमात्र निषेक-स्थितियाँ पाई जाती हैं, इस कारण यहींपर जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०-पुरुषवेदकी जघन्यस्थितिविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष है॥२१॥

विशेषार्थ—इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—चरिमसमयवर्ती सवेदी क्षपकके द्वारा पुरुषवेदका बाँधा हुआ जघन्य स्थितिबंध आठ वर्षप्रमाण होता है । किन्तु निषेकस्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण होती हैं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अबाधाकालमें निषेकोंकी रचना नहीं होती है । पुनः एक समय कम दो आवली कालप्रमाण ऊपर जाकर अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण पुरुषवेदकी निषेकस्थिति पाई जाती है ।

चूर्णिसू०—हास्य आदि छहों नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल संख्यात वर्ष है ॥२२॥

विशेषार्थ—तीन वेदोंमेंसे किसी एक वेद और चारों संज्वलनकषायोंमेंसे किसी एक कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़कर और यथाक्रमसे नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदका क्षपणकर तत्पश्चात् छहों नोकषायोंके क्षपणकालके चरम समयमें अन्तिम स्थितिकांडककी चरमफालीके

२३. गदीसु अणुमग्गिदव्वं। २४. एयजीवेण सामित्तं। २५. मिच्छत्तस्स उकस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स? २६. उकस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स। २७. एवं सोलसकसायाणं। २८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स? २९. मिच्छत्तस्स उकस्सट्ठिदिं बंधिदूण अंतोमुहुत्तद्धं पडिभग्गो[1] जो ट्ठिदिघादमकादूण सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयवेदयसम्मादिट्ठिस्स।

संख्यात वर्षप्रमाणकी स्थिति शेष रहनेपर छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अतएव उनकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल संख्यात वर्ष उपलब्ध हो जाता है।

ओघके समान ही आदेशमें भी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल जानना चाहिए, यह बतलानेके लिए यतिवृषभाचार्य समर्पणसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–गतियोंमें (तथा इन्द्रिय आदि शेष समस्त मार्गणाओंमें) जघन्य स्थिति-विभक्तिके कालका उक्त प्रकारसे अनुमार्गण करना चाहिए ॥२३॥

सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति आदि अनुयोगद्वारोंके सुगम होनेसे उन्हें न कहकर एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुयोगद्वारके कहनेके लिए यतिवृषभाचार्य प्रतिज्ञासूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा स्थितिविभक्तिके स्वामित्वको कहते हैं ॥२४॥

स्वामित्व दो प्रकारका है, जघन्य और उत्कृष्ट। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा पृच्छापूर्वक उत्तर देते हुए उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके स्वामित्वका निरूपण करते हैं–

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है? मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ॥२५–२६॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्वामित्वका निरूपण किया, उसी प्रकारसे अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए, क्योंकि, तीव्र संक्लेशसे उत्कृष्टस्थितिको बाँधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवमें ही इन सोलह कषायों-की उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका पाया जाना संभव है, अन्यत्र नहीं ॥२७॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है? मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर पुनः अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रतिभग्न हुआ अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिनिवृत्त एवं तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे अवस्थित जो जीव स्थितिघातको नहीं करके सर्वलघुकालसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है, ऐसे प्रथम समय-वर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ॥२८–२९॥

विशेषार्थ–मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला, तीव्र संक्लेशपरिणामी, साकार और जागृत उपयोगसे उपयुक्त जो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वसे गिरकर

१. पडिभग्गो उक्कस्सट्ठिदिबंधुक्कस्ससंकिलेसेहि पडिणियत्तो होदूण विसोहीए पदिदो त्ति भणिदं होदि। जयध०

३०. णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ३१. कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण आवलियादीदस्स । ३२. एत्तो जहण्णयं । ३३. मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ३४. मणुसस्स वा मणुसिणीए वा खविज्जमाणयमावलियपविट्ठं जाधे दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे । ३५. सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ३६. चरिमसमय-अक्खीण-दंसणमोहणीयस्स । ३७. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ३८. सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं वा उव्वेल्लिज्जमाणं वा जस्स दुसमयकालट्ठिदियं सेसं तस्स खवेंतस्स

अन्तर्मुहूर्तकाल तक तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे अवस्थित हो स्थितिघातको न करके सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकालसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है, उसके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित होनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, ऐसा जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–हास्य आदि नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत करनेवाले जीवके नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । इसका कारण यह है कि अचलावलीमात्र कालतक बाँधी हुई सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नोकषायोंमें संक्रम नहीं होता है॥ ३०-३१॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वका निरूपण करते हैं–मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उदयावलीमें प्रविष्ट एवं क्षपण किया जानेवाला मिथ्यात्व जब दो समय-प्रमाणकालकी स्थितिवाला होकर शेष रहे, तब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले मनुष्य अथवा मनुष्यनीके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥३२-३४॥

विशेषार्थ–यहाँ मनुष्यपद सामान्यरूपसे कहा गया है, अतएव उससे भावपुरुषवेदी और भावनपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार मनुष्यनीपदसे भी भावस्त्रीवेदी मनुष्यका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, द्रव्यसे पुरुषवेदी जीवके ही दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण माना गया है । सूत्रमें जो 'आवलीप्रविष्ट' पद दिया है, उसका आशय यह है कि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे संक्रान्त हो जानेपर उदयावलीमें प्रविष्ट निषेक ही पाये जाते हैं । उनके अधःस्थितिगलनसे गलते हुए जब दो समयकी कालस्थितिवाला मिथ्यात्वका निषेक शेष रहता है, तब मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका क्षय करके जो सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षय करनेके लिए तैयार है और जिसके दर्शनमोहके क्षय होनेमें एक समयमात्र शेष है, ऐसे चरमसमयवर्ती अक्षीण दर्शनमोहनीयकर्मवाले जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? क्षपण किया जानेवाला, अथवा उद्वेलना किया जानेवाला सम्यग्मिथ्यात्वकर्म जब दो समयमात्र काल-स्थितिवाला

वा उव्वेल्लंतस्स वा ३९. अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ४०. अणंताणुबंधी जेण विसंजोइदं आवलियं पविट्ठं दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं तस्स । ४१. अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ४२. अट्ठकसायक्खवयस्स दुसमयकालट्ठिदियस्स तस्स । ४३. कोधसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ४४. खवयस्स चरिमसमय-अणिल्लेविदे कोहसंजलणे । ४५. एवं माण-मायासंजलणाणं ।

होकर शेष रहे, तब सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा करनेवाले अथवा उद्वेलना करनेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्टयकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जिसने अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्टयकी विसंयोजना की है और उदयावलीमें प्रविष्ट हुआ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सत्त्व जब दो समयमात्र कालस्थितिवाला होकर शेष रहा है, उस समय उस जीवके अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्टयकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अप्रत्याख्यानावरण आदि आठ मध्यम कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? अप्रत्याख्यानावरणादि आठ कषायोंके क्षपण करनेवाले जीवके जब दो समयप्रमाण कालस्थितिवाले आठ कषाय शेष रहें, तब उसके उक्त आठों कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥३५-४२॥

विशेषार्थ–जब कोई संयत चरित्रमोहनीयकर्मकी क्षपणाके लिए उद्यत होकर अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको यथाविधि करके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेशकर स्थिति तथा अनुभागसम्बन्धी बहुप्रदेशोंका घात करके अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भाग व्यतीत हो जानेपर आठ मध्यम कषायोंका क्षपण प्रारंभकर असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा कर्मप्रदेशस्कंधोंको गलाता हुआ संख्यात हजार अनुभागकांडकोंका पतन करता है और उसी समय आठों कषायोंके चरम स्थितिकांडकों और अनुभागकांडकोंको घात करनेके लिए ग्रहण करता है। पुनः उनकी चरमफालियोंके निपतित हो जानेपर उदयावलीके भीतर एक समय कम आवलीप्रमाण निषेक पाये जाते हैं। उन निषेकोंके यथाक्रमसे अधःस्थितिके द्वारा गलते हुए आठ कषायोंमेंसे जब जिस कर्मप्रकृतिकी दो समय-कालवाली एक स्थिति अवशिष्ट रहती है, तब उस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–संज्वलन क्रोधकषायकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? क्रोधसंज्वलनके चरमसमयमें निर्लेपन अर्थात् क्षपण नहीं करते हुए उस अवस्थामें वर्तमान क्षपकके संज्वलन क्रोधकषायकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति जानना चाहिए ॥४३-४५॥

विशेषार्थ–जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वका निरूपण किया है, उसी प्रकार मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी भी जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वको जानना चाहिए। अर्थात् अनिर्लेपित मानसंज्वलनके चरमसमयमें वर्तमान क्षपकके मानसंज्वलनकी और अनिर्लेपित मायासंज्वलनके चरमसमयमें वर्तमान क्षपकके मायासंज्वलन-

४६. लोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ४७. खवयस्स चरिमसमयसकसायस्स। ४८. इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ४९. चरिमसमयइत्थिवेदोदयखवयस्स। ५०. पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ५१. पुरिसवेदखवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स। ५२. णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ५३. चरिमसमयणवुंसयवेदोदयक्खवयस्स। ५४. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ५५. खवयस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स। ५६. णिरयगईए णेरइएसु सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ५७. चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स।

की जघन्यस्थिति विभक्ति होती है।

चूर्णिसू०—लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चरम-समयवर्ती सकषायी क्षपकके लोभसंज्वलनकषायकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥४६-४७॥

विशेषार्थ—अधःस्थितिगलनाके द्वारा द्विचरमादि निषेकोंके गलानेवाले, स्थितिकांडकघातके द्वारा समस्त उपरितन स्थितिनिषेकोंके घात करनेवाले, तथा उदयागत एक निषेकमें वर्तमान ऐसे चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संयतके लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

चूर्णिसू०—स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? स्त्रीवेदके चरम समयवर्ती उदयागत एक निषेक-स्थितिमें वर्तमान स्त्रीवेदी बादरसाम्परायिक संयत क्षपकके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चरमसमयवर्ती और पुरुषवेदका जिसने अभी क्षपण नहीं किया है, ऐसे पुरुषवेदी बादरसाम्परायिक क्षपकके पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। नपुंसकवेदकी जघन्यस्थितिविभक्ति किसके होती है ? नपुंसकवेदके चरमसमयवर्ती उदयागत एक निषेकस्थितिमें वर्तमान नपुंसकवेदके उदयवाले बादरसाम्परायिकसंयत क्षपकके नपुंसकवेदकी जघन्यस्थितिविभक्ति होती है। हास्य आदि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? हास्यादि छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिखंडमें वर्तमान क्षपकके छहों नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। नरकगतिमें नारकियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जिसके दर्शनमोहनीयकर्मके क्षय करनेमें एक समय शेष है ऐसे नारकीके सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥४८-५७॥

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीव्र आरंभ-परिणामोंके द्वारा नरकायुका बंध कर चुका है, और पीछे तीर्थंकरके पादमूलको प्राप्त होकर और सम्यक्त्वको ग्रहण करके आयुके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहनेपर तीनों करणोंको करके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंको अनिवृत्तिकरणके कालमें क्षपणकर, सम्यक्त्वप्रकृतिके चरम स्थितिकांडककी चरमफालीको ग्रहण करके तथा उदयादि गुणश्रेणीरूपसे घात करके स्थित है, ऐसे जीवको कृतकृत्यवेदक कहते हैं। उसी अवस्थामें जीवनके समाप्त होनेके साथ ही कापोतलेश्यासे

५८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ५९. चरिमसमय-उव्वेल्लमाणस्स । ६०. अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? ६१. जस्स विसंजोइदे दुसमयकालट्ठिदियं सेसं तस्स । ६२. सेसं जहा उदीरणाए तहा कायव्वं ।

परिणत हो प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न हुए, तथा चरमगोपुच्छाको छोड़कर शेष सर्व गोपुच्छाके गलानेवाले और एक समयकालवाली सम्यक्त्वप्रकृतिकी एक स्थितिमें वर्तमान ऐसे नारकी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०—नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि नारकीके सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥५८-५९॥

विशेषार्थ—जब कोई नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनोंकी उद्वेलना प्रारम्भ कर सर्व प्रथम पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिखंडोंको यथाक्रमसे गिराकर सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है और पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिखंडोंको गिरा कर अन्तिम उद्वेलनाकांडककी अन्तिमफालीको गलाता है, तब एक समय कम आवलीप्रमाण गोपुच्छाएं अवशिष्ट रहती है । पुनः उन्हें भी अधःस्थितिगलनाके द्वारा गला देनेपर दो समयकालवाली एक निषेकस्थिति देखी जाती है, उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभकषायकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीकषायके विसंयोजन करनेपर जिस जीवके उसकी दो समयकालप्रमाण स्थिति शेष रहती है, उसके अनन्तानुबन्धी कषायकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ॥६०-६१॥

चूर्णिसू०—शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामित्व-निरूपण जैसा उदीरणामें कहा है, उस प्रकारसे करना चाहिए ॥६२॥

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय, भय और जुगुप्सा, इन शेष प्रकृतियोंमेंसे पहले मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिका स्वामित्व कहते हैं—जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपने मिथ्यात्वके सागरोपमसहस्रप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वको घातकर अपने योग्य जघन्य स्थितिसत्त्वको करके पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल तक जघन्य स्थितिसत्त्ववाले मिथ्यात्वको बाँधता हुआ अवस्थित रहता है कि इतनेमें ही जीवनके समाप्त हो जानेसे मरा और दो समयवाले एक विग्रहको करके नरकगतिमें नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ वह विग्रहगतिसम्बन्धी उन दोनों ही समयोंमें असंज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधता है, क्योंकि, असंज्ञी पंचेन्द्रियोंसे आये हुए और संज्ञी पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर जब तक शरीरको ग्रहण नहीं किया है, तब तक उस जीवके अन्तः-

६३. एवं सेसासु गदीसु अणुमग्गिदव्वं ।

[६४. कालो ।] ६५ मिच्छत्तस्स उकस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ६६. जहण्णेण एगसमओ । ६७. उकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध करनेकी शक्तिका अभाव रहता है । इस प्रकार विग्रहगति-के दोनों समयोंमें वर्तमान जीवके मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इस ही जीवके अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय तथा भय और जुगुप्सा इन दो नोकषायोंकी भी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । विशेषता केवल इतनी है कि जहाँ उसके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका बन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन सहस्र सागरोपम होता था, वहाँ उसी जीवके इन चौदह प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध सागरोपमसहस्रके पल्योपमके संख्यातभागसे कम सात भागोंमेंसे चार भाग-प्रमाण होता है । भय और जुगुप्साको छोड़कर शेष सात नो-कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामित्व भी इसी प्रकार जानना चाहिए । भेद केवल यह है कि हास्यादि जिन प्रकृतियोंका बन्ध नरकगतिमें नहीं होता है, उनकी बन्ध-व्युच्छित्ति असंज्ञी पंचेन्द्रिय-भवके अन्तिम समयमें ही हो जाती है और उनकी प्रतिपक्षी अरति आदि प्रकृतियाँ नरकगतिमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे बँधने लगती है । अतएव अपनी-अपनी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें, उन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार शेष गतियोंमें स्वामित्वका अनुमार्गण करना चाहिए ॥६३॥

विशेषार्थ–जिस प्रकार ऊपर नरकगतिमें सर्व प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे शेष तीनों गतियोंमें मोहकर्मकी सर्वप्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वका अन्वेषण करना चाहिए । तथा इस सूत्रके देशामर्शक होनेसे इन्द्रिय आदि शेष मार्गणाओंमें भी उसी प्रकारसे जघन्य स्थितिविभक्तिका निर्णय करना चाहिए । ऐसी सूचना चूर्णिकारने की है, अतएव विशेष जिज्ञासु जन महाबन्धके स्थितिबन्ध-प्रकरणमें और इस सूत्रपर उच्चारणाचार्य-द्वारा की गई विस्तृत व्याख्याको जयधवला टीकामें देखें ।

चूर्णिसू०–[अब स्थितिविभक्तिके कालका निर्णय करते हैं–] मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्कर्मिक– बंध करके सत्त्व स्थापित करनेवाला - जीव कितने काल तक होता है ? अर्थात् मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥६४-६७॥

विशेषार्थ–जब कोई जीव एक समयकालमात्र मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बंध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बंध नहीं करता है, उस समय उस जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका काल एक समयप्रमाण पाया जाता है । मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिके बाँधनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है । इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट दाह या संक्लेशको प्राप्त जीव ही मिथ्यात्वप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है और उत्कृष्ट

६८. एवं सोलसकसायाणं। ६९. णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भयदुगुंछाणमेवं चेव। ७०. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि? ७१. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। ७२. इत्थिवेद-पुरिसवेद-हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि? ७३. जहण्णेण एगसमओ। ७४. उक्कस्सेण आवलिया। ७५. एवं सव्वासु गदीसु।

७६. जहण्णट्ठिदिसंतकम्मियकालो। ७७. मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-

---

संक्लेशका काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण माना गया है, अतएव कारणके अनुरूप कार्यका होना स्वाभाविक है।

चूर्णिसू०–इसी प्रकारसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल और अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है। इस ही प्रकार नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल जानना चाहिए ॥६८-६९॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका कितना काल है? इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥७०-७१॥

विशेषार्थ–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट बन्ध करनेके एक समयमात्र जघन्य और उत्कृष्ट काल कहनेका कारण यह है कि मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव जब तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् ही वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करता है, तब वेदकसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है।

चूर्णिसू०–स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति इन चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल एक आवली-प्रमाण है ॥७२-७४॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि कषायोंका कमसे कम एक समय या अधिकसे अधिक आवली-प्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके एक समय या एक आवलीकालके अनन्तर इच्छित नोकषायका बन्ध करके कषायोंकी गलित शेष उत्कृष्ट स्थितिके उसमें संक्रमण कर देनेपर उनके बंधनेका नियम है।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार ओघके समान सभी गतियोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके कालकी प्ररूपणा जानना चाहिए ॥७५॥

चूर्णिसू०–अब जघन्य स्थितिसत्कर्मिक जीवोंके कालको कहते हैं–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुं-

सोलसकसाय-तिवेदाणं जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। ७८. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदि-संतकम्मियकालो जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

७९. अंतरं। ८०. मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिगं अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ८१. उक्कस्समसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ८२. एवं णवणोकसायाणं, णवरि जहण्णेण एगसमओ। ८३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतक-

---

सकवेद, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। क्योंकि जघन्य स्थितिसत्त्वके उत्पन्न होनेके दूसरे ही समयमें इन प्रकृतियोंका विनाश पाया जाता है। हास्य आदि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। ॥७६-७८॥

चूर्णिसू०—अब मोहप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कहते हैं—मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्ववाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥७९-८०॥

विशेषार्थ—सूत्रोक्त सत्तरह मोहप्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धको बाँधनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिबन्धको छोड़कर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धको अन्तर्मुहूर्तकाल तक बाँधकर पुनः उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेपर जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि दोनों उत्कृष्ट स्थितिबंधोंका मध्यवर्ती अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकाल उक्त-प्रकृतियोंका अन्तरकाल कहलाता है। यहाँ यह शंका की जा सकती है कि मिथ्यात्वप्रकृति और सोलह कषायोंका जघन्य अन्तर एक समयप्रमाण क्यों नहीं होता है? इसका समाधान यह है कि उत्कृष्टस्थिति बांधकर प्रतिनिवृत्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तकालके विना उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध होना असंभव है।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्व और सोलह कषाय, इन सत्तरह मोहप्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८१॥

विशेषार्थ—उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धको बांधकर निवृत्त हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धको उसके उत्कृष्ट बन्धकालके अन्तिम समय तक बाँधता हुआ समय व्यतीत करता है। तत्पश्चात् एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनकाल तक उनमें परिभ्रमण कर पुनः त्रस पंचेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर पर्याप्त हो, उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हो, पुनः उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबंधको करनेवाले जीवके आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार हास्य आदि नव नोकषायोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि इनका जघन्य अन्तरकाल एक समयमात्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ॥८१-८३॥

म्मियंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ८४. उक्कस्समुवड्ढपोग्गलपरियट्टं ८५. एत्तो जहण्णयंतरं । ८६. मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स णत्थि अंतरं। ८७. सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

विशेषार्थ–मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्ववाले किसी जीवने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व स्थापित किया और दूसरे ही समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको प्राप्त होकर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रह कर मिथ्यात्वसे परिणत हो, पुनः उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर, अन्तर्मुहूर्त तक रह कर, वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको प्राप्त हुए जीवके इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८४॥

विशेषार्थ–मोहकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व रखनेवाला कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर प्रतिनिवृत्त हुआ स्थितिघात न करके और वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको करके तथा सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिभ्रमण करके पुनः तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्तकर और मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उत्कृष्ट स्थिति बांध कर अन्तर्मुहूर्तसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमणकर देनेपर इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य स्थितिविभक्तिका अन्तर कहते हैं–मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और हास्य आदि नव नोकषाय, इन तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं होता है । क्योंकि, क्षयकर दिये गये कर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है । ॥८५-८६॥

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्टय, इन पांच प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥८७॥

विशेषार्थ–उद्वेलनाके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके जघन्य स्थितिसत्त्वको करता हुआ कोई जीव सम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तर-सम्बन्धी चरमफालीको भी अपनीत करके तत्पश्चात् मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम आवलीमात्र प्रवेश करके वहाँपर सम्य-

८८. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । ८९. णाणाजीवेहि भंगविचओ । ९०. तत्थ अट्ठपदं । तं जहा । जो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए ण होदि विहत्तिओ । ९१. जो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए ण होदि विहत्तिओ । ९२. जस्स मोहणीयपयडी अत्थि तम्मि पयदं । अकम्मे ववहारो णत्थि । ९३. एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया । ९४. सिया अविहत्तिया च

म्मिथ्यात्वकर्मकी जघन्य स्थितिसत्त्वको प्राप्त करके अन्तरको प्राप्त हो क्रमसे मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिको गलाकर, उपसमसम्यक्त्वको प्राप्त हो, अन्तर्मुहूर्त रहकर, वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर पुनः अन्तर्मुहूर्तकालसे अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका विसंयोजनकर, पुनः अधः-प्रवृत्त और अपूर्वकरणको करके अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात भाग व्यतीत हो जानेपर मिथ्यात्वका क्षपणकर पुनः अन्तर्मुहूर्तके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी चरमफालीको पर-स्वरूपसे संक्रमण करके यथाक्रमसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा उदयावलीके निषेकोंके गलनेपर, दो समय कालवाली एक निषेकस्थितिके अवशेष रहने पर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्टयका भी जघन्य अन्तर जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो वार अनन्ता-नुबन्धी कषायका विसंयोजन करनेपर उनका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

चूर्णिसू०—उक्त पांचों मोह-प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८८॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग-विचय अर्थात् स्थितिविभक्तिके संभव भंगोंका निर्णय किया जाता है । उसके विषयमें यह अर्थपद है । वह इस प्रकार है—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकी विभक्तिवाला है, वह अनुत्कृष्ट स्थितिकी विभक्तिवाला नहीं है । इसका कारण यह है कि उत्कृष्टस्थितिमें एक समय कम, दो समय कम आदि कालविशेषोंका अभाव है । जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिकी विभक्तिवाला है, वह उत्कृष्टस्थितिकी विभक्तिवाला नहीं होता है । क्योंकि, परस्परके परिहारद्वारा ही उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियोंका अवस्थान पाया जाता है । जिस जीवके मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंका अस्तित्व है, उससे ही प्रकृतमें प्रयोजन है । क्योंकि, कर्म-रहित जीवसे व्यवहार नहीं होता है ॥८९-९२॥

चूर्णिसू०—इस अर्थपदके द्वारा अब नाना जीव-सम्बन्धी भंगोंका निर्णय किया जाता है—कचित् कदाचित् सर्व जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके विभक्तिवाले नहीं होते हैं, क्योंकि, तीव्र संक्लेशवाले जीवोंका होना प्रायः संभव नहीं है । कदाचित् अनेक जीव मिथ्या-त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं करनेवाले होते हैं और एक जीव उत्कृष्ट विभक्ति करनेवाला होता है, क्योंकि किसी कालमें कदाचित् त्रिभुवनवर्ती अशेष जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिक होते हुए उनमेंसे किसी एक जीवके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति देखी जाती है । कदाचित् अनेक

विहत्तिओ च। ९५. सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च (३)। ९६. अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। ९७. सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च। ९८. सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। ९९. एवं सेसाणं पि पयडीणं कायव्वो। १००. जहण्णए भंगविचए पयदं। १०१. तं चेव अट्ठपदं। १०२. एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा जहण्णियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया। १०३. सिया

जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं करनेवाले और अनेक जीव उत्कृष्ट विभक्ति करनेवाले होते हैं। क्योंकि, अनन्त जीवोंके उत्कृष्ट विभक्ति नहीं करते हुए भी उनमें संख्यात अथवा असंख्यात जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी संभावना पाई जाती है। इस प्रकारसे ये उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-अविभक्तिसम्बन्धी उपर्युक्त (३) तीन भंग होते हैं ॥९३-९५॥

चूर्णिसू०-कदाचित् सर्व जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्टस्थितिकी विभक्ति करनेवाले होते हैं, क्योंकि, किसी कालमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके विना त्रिभुवनवर्ती अशेष जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही अवस्थित पाये जाते हैं। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्टस्थितिकी विभक्ति करनेवाले होते हैं और कोई एक जीव अनुत्कृष्टस्थितिकी विभक्ति नहीं करनेवाला होता है। इसका कारण यह है कि कभी किसी कालमें एक अनुत्कृष्ट स्थितिकी विभक्ति नहीं करनेवाले जीवके साथ शेष सकल जीव अनुत्कृष्टस्थितिकी विभक्ति करनेवाले पाये जाते हैं। कचित् कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी विभक्ति करनेवाले और अनेक जीव विभक्ति नहीं करनेवाले होते हैं। इसका कारण यह है कि कभी किसी कालमें अनुत्कृष्टस्थिति विभक्ति करनेवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात अथवा असंख्यात उत्कृष्टस्थिति विभक्ति करनेवाले भी जीव पाये जाते हैं ॥९६-९८॥

चूर्णिसू०-इसी प्रकार मिथ्यात्वप्रकृतिकी नाना जीवोंके साथ भंगविचय-प्ररूपणाके समान शेष सम्यग्मिथ्यात्व आदि मोह-प्रकृतियोंकी भी भंगविचय-प्ररूपणा करना चाहिए ॥९९॥

चूर्णिसू०-अब नानाजीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति-विभक्ति-सम्बन्धी भंगविचय-प्ररूपणा की जाती है। यहाँपर भी वही अर्थपद है जो कि उत्कृष्टस्थिति विभक्तिमें ऊपर कह आये हैं। केवल यहाँ भंग कहते समय उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टके स्थानपर क्रमशः जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति कहना चाहिए। इस अर्थपदकी अपेक्षा सर्व जीव मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिकी कदाचित् विभक्ति करनेवाले नहीं होते हैं। क्योंकि, कदाचित् सर्वजीवोंका मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिमें ही अवस्थान देखा जाता है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति करनेवाले नहीं होते हैं और कोई एक जीव विभक्ति करनेवाला होता है। क्योंकि, किसी समय मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति-धारकोंके साथ कोई एक जीव जघन्य स्थितिका धारक भी पाया जाता है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिकी विभक्ति नहीं करनेवाले और अनेक विभक्ति करनेवाले होते हैं, क्योंकि, किसी कालमें अजघन्य स्थितिविभक्ति करनेवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात

अविहत्तिया च विहत्तिओ च । १०४. सिया अवहत्तिया च विहत्तिया च । १०५ एवमेत्थ तिण्णि भंगा । १०६. अजहण्णियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया । १०७. सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च । १०८. सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । १०९. एवं तिण्णि भंगा । ११०. एवं सेसाणं पयडीणं कायव्वो । १११. जधा उक्कस्सट्ठिदिबंधे णाणाजीवेहि कालो तधा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण कायव्वो । ११२. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदी जहण्णेण एगसमओ । ११३. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

जघन्य स्थितिविभक्तिके करनेवाले भी जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार यहाँ जघन्य स्थिति-विभक्तिमें ये उपर्युक्त तीन भंग होते हैं ॥१००-१०५॥

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिकी विभक्ति करनेवाले कदाचित् सर्व जीव होते हैं । कदाचित् अनेक जीव विभक्ति करनेवाले होते हैं और कोई एक जीव विभक्ति नहीं करनेवाला होता है । कदाचित् अनेक जीव विभक्ति करनेवाले और अनेक जीव विभक्ति नहीं करनेवाले होते हैं । इस प्रकार मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिविभक्तिसम्बन्धी नानाजीवोंकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । इस प्रकार शेष प्रकृतियोंकी भी नानाजीवसम्बन्धी भंगविचय-प्ररूपणा करना चाहिए ॥१०६-११०॥

अब नानाजीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके कालका निरूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे मोहकर्मप्रकृतियोंके उत्कृष्टस्थितिवन्धमें नानाजीवोंकी अपेक्षा कालका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी मोहप्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-सत्त्वका कालप्ररूपण करना चाहिए । अर्थात् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल एक समयमात्र है ॥१११-११२॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला और उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यादृष्टि जीव जब वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है, तब उसके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों-में संक्रमण करता है, सो संक्रमण होनेके प्रथम समयमें ही इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति-सत्त्व कमसे कम एक समयमात्र पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसका कारण यह है कि मोहकर्मके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्ववाले मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल तक ही वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होते हुए देखे जाते हैं ॥११३॥

११४. जहण्णए पयदं । ११५. मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसकसाय-तिवेदाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ? ११६. जहण्णेण एगसमओ । ११७. उक्कस्सेण संखेज्जा समया । ११८. सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं च उक्कस्स-जहण्ण-ट्ठिदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ? ११९. जहण्णेण एगसमओ । १२०. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । १२१. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदि-विहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ? १२२. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।*

अब नानाजीवोंकी अपेक्षा जघन्य स्थितिविभक्तिका काल कहते हैं–

चूर्णिसू०–जघन्य स्थितिविभक्ति प्रकृत है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, अप्रत्याख्याना-वरणादि बारह कषाय और तीनों वेद, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल नाना-जीवोंकी अपेक्षा कितना है ? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है ॥११४-११७॥

विशेषार्थ–इसका स्पष्टीकरण यह है कि इनकी द्विसमयकालवाली जघन्य निषेक स्थितिमेंसे एक समयप्रमाणकाल ही प्रकृत है और इसका भी कारण यह है कि द्वितीय समय-में ही इन विवक्षित प्रकृतियोंका निर्मूल विनाश पाया जाता है । इन्हीं उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि, मनुष्यपर्याप्तराशिसे विभिन्न समयोंमें जघन्य स्थितिको प्राप्त होनेवाले नाना जीव संख्यात पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारों कषाय, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा कितना है ? जघन्यकाल एक समय है । क्योंकि, दोसमय-कालवाली एक निषेकस्थितिका द्वितीय समयमें परस्वरूपसे परिणमन पाया जाता है । इन्हीं पांचों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है ॥११८–१२०॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले और अन-न्तानुबन्धी-कषायचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकांडकोंमेंसे यहाँपर एक कांडकके उत्कृष्ट कालका ग्रहण किया गया है ।

चूर्णिसू०–हास्य आदि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा कितना है ? इनका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । क्योंकि, यहाँपर चरम स्थितिकाण्डकसम्बन्धी उत्कीरणाकालका ग्रहण किया गया है ॥१२१-१२२॥

*ओघम्मि छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिकालो जहण्णुक्कस्सेण चुण्णिसुत्तम्मि वप्पदेवाइरियलिहिदुच्चा-रणाए च अंतोमुहुत्तमिदि भणिदो । अम्हेहि लिहिदुच्चारणाए पुण जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जा समया त्ति परूविदा; कालपहाणत्ते विवक्खिए तहोवलंभादो । तेण छण्णोकसायाणमोघत्तं ण विरुज्झदे । जयध. अ. प. १८५.

१२३. णाणाजीवेहि अंतरं । १२४. सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १२५. जहण्णेण एगसमओ । १२६. उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । १२७. एत्तो जहण्णयंतरं । १२८. मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिअंतरं जहण्णेण एगसमओ । १२९. उक्कस्सेण छम्मासा १३०. सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिअंतरं जहण्णेण एगसमओ । १३१. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्त सादिरेगे । १३२. तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णेण एगसमओ । १३३. उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं । १३४. लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदि-अंतरं जहण्णेण एगसमओ । १३५. उक्कस्सेण छम्मासा । १३६. इत्थि-णवुंसयवेदाणं

चूर्णिसू०–अब नानाजीवोंकी अपेक्षा स्थितिविभक्तिका अन्तर कहते हैं । सर्वमोह-प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥१२३-१२६॥

विशेषार्थ–उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वसे विद्यमान सर्वजीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके साथ एक समय रहकर तृतीय समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे परिणत होनेपर उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका एक समय-प्रमाण अन्तर पाया जाता है । मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व-विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग काल-प्रमाण है । इसका कारण यह है कि जब एक स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिबन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है, तो संख्यात कोडाकोडी सागरोपम-प्रमित स्थितियोंका कितना काल होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर अंगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होता है ।

चूर्णिसू०–अब जघन्य स्थितिसत्त्वविभक्तिका अन्तर कहते हैं । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, अप्रत्याख्यानावरणादि आठ कषाय और हास्यादि छह नोकषाय, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । क्योंकि, विवक्षित समयमें जघन्य स्थितिको करके तदनन्तर द्वितीय समयमें अन्तरको प्राप्त होकर पुनः तृतीय समयमें अन्य जीवोंके जघन्य स्थितिको प्राप्त होनेपर एक समय-प्रमाण अन्तर पाया जाता है । उक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास है, क्योंकि, क्षपक जीवोंका इससे अधिक अन्तर पाया नहीं जाता है ॥१२७-१२९॥

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्क, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौबीस दिन-रात्रि है । क्रोध, मान और माया ये तीन संज्वलनकषाय तथा पुरुषवेद, इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक वर्ष-प्रमाण है । लोभसंज्वलनकषायकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इन दोनोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय, तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है । इसका

जहण्णट्ठिदिअंतरं जहण्णेण एगसमओ । १३७. उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि । १३८. णिरयगईए सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिअंतरं जहण्णेण एगसमओ । १३९. उक्कस्सं चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे । १४०. सेसाणि जहा उदीरणा तहा णेदव्वाणि ।

१४१. सण्णियासो । १४२. मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया कम्मंसियो सिया अकम्मंसियो । १४३. जदि कम्मंसियो णियमा अणुक्कस्सा । १४४. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहूत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति ।

कारण यह है कि अप्रशस्तवेदके उदयसे क्षपक श्रेणी पर चढ़नेवाले जीवोंका बहुलतासे पाया जाना संभव नहीं है ॥१३०-१३७॥

चूर्णिसू०–नरकगतिमें सम्यग्मिथ्यात्व और चारों अनन्तानुबन्धी कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस दिन-रात्रि है । शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल जैसा उदीरणामें कहा है, उस प्रकारसे जानना चाहिए ॥१३८-१४०॥

चूर्णिसू०–अब स्थितिविभक्तिसम्बन्धी सन्निकर्ष कहते हैं । जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका कदाचित् सत्त्ववाला होता है और कदाचित् असत्त्ववाला होता है ॥१४१-१४२॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यदि अनादिमिथ्यादृष्टि अथवा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना किया हुआ सादिमिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-को बाँधता है, तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित होता है । किन्तु जो सादिमिथ्यादृष्टि है और जिसने इन दोनों प्रकृतियोंके सत्त्वकी उद्वेलना नहीं की है, वह यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है, तो वह सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है ।

चूर्णिसू०–यदि उपर्युक्त जीव उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है, तो नियमसे अनुत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला होता है ॥१४३॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें ही पाई जाती है, इससे उसका मिथ्यादृष्टि जीवके पाया जाना असंभव है । अतएव मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिसत्ता नियमसे अनुत्कृष्ट ही होती है ।

चूर्णिसू०–वह अनुत्कृष्ट स्थिति-सत्त्व उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमको आदि करके एक स्थिति तकके प्रमाणवाला होता है ॥१४४॥

१४५. सोलसकसायाणं किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १४६. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा। १४७. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति। १४८. इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं णियमा अणुक्कस्सा। १४९, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। १५०. णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं विहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ? १५१. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धवाले जीवके अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंका स्थितिसत्त्व क्या उत्कृष्ट होता है अथवा क्या अनुत्कृष्ट होता है ? उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है ॥१४५-१४६॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बाँधते समय सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध हो, तो स्थितिसत्त्व उत्कृष्ट होगा। और यदि उत्कृष्ट स्थितिबंध न हो तो स्थितिसत्त्व अनुत्कृष्ट होगा।

चूर्णिसू०–वह अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कमको आदि करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम स्थिति तकके प्रमाणवाला होता है ॥१४७॥

विशेषार्थ–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले जीवके सोलह कषायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबंध अधिकसे अधिक एकसमय कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है। पुनः इससे नीचे दोसमय कम, तीन समय कम, चार समय कम, इस प्रकारसे घटता हुआ एक समय-हीन अबाधाकांडकसे कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तकका कमसे कम अनुत्कृष्ट स्थितिबंध होता है। एक अबाधाकांडकका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग होता है। इससे नीचे उक्त मिथ्यादृष्टि जीवके सोलह कषायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबंध संभव नहीं है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबंध करनेवाले जीवके स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति, इन चार प्रकृतियोंका स्थितिसत्त्व नियमसे उत्कृष्ट होता है ॥१४८॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मिथ्यात्व वा अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होते समय इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता है, क्योंकि, ये प्रशस्तरूप हैं।

चूर्णिसू०–वह अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उत्कृष्टस्थितियोंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमको आदि करके अन्तःकोडाकोडी सागरोपम तकके प्रमाणवाला होता है ॥१४९॥

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले जीवके नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच प्रकृतियोंकी स्थितिसत्त्वविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा क्या अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥१५०-१५१॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकेबांधते समय यदि सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता है, तो इन नपुंसकवेदादि पांचों नोकषायोंका

१५२. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीससागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति । १५३. सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ? १५४. णियमा अणुक्कस्सा । १५५. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणा । १५६. णत्थि अण्णो वियप्पो । १५७. सम्मामिच्छत्तट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

भी उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व नहीं होता है, क्योंकि, सोलह कषायोंसे ही इन पांचो नोकषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वकी उत्पत्ति होती है। तथा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होने पर इन नपुंमकवेदादि पांचों नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है । इसका कारण यह है कि बंधावलीके भीतर बँधनेवाली कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता है, किन्तु बंधावलीके अतिक्रान्त होने पर कषायोंकी बंधी हुई उत्कृष्ट स्थितिका नपुंसकवेदादिरूपसे संक्रमण होता है । उस अवस्थामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके साथ इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०—उन नपुंसकवेदादि पांचों नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है ॥१५२॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ॥१५३-१५४॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वका बन्ध नहीं होता है अतएव उसके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका पाया जाना असंभव है । और प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिको छोड़कर अन्य सम्यग्दृष्टि जीवमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती नहीं है, क्योंकि, अप्रतिग्रहरूप सम्यक्त्वकर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण हो नहीं सकता ।

चूर्णिसू०—वह मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी स्थितिप्रमाण होती है । इसमें अन्य कोई विकल्प नहीं है ॥१५५-१५६॥

विशेषार्थ—इसका अभिप्राय यह है कि सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होनेपर जैसे अन्य कर्मोंकी स्थितिविभक्तिके अनेक विकल्प या भेद पाये जाते हैं, उस प्रकारसे मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके अनेक भेद नहीं पाये जाते हैं । यदि ऐसा न माना जाय, तो सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके एक-विकल्पता बन नहीं सकती है ।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा क्या अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे उत्कृष्ट होती है ॥१५७-१५८॥

१५८. णियमा उक्कस्सा ।१५९. सोलसकसाय-णवणोकसायाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १६०. णियमा अणुक्कस्सा ।१६१. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति । १६२. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि । १६३. जहा मिच्छत्तस्स, तहा सोलसकसायाणं । १६४. इत्थिवेदस्स उक्कस्स-ट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? १६५. णियमा अणुक्कस्सा । १६६. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्तसे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिका प्रथमसमयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे एक साथ संक्रमण देखा जाता है ।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके सोलह कषायों और नव नोकषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा क्या अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ॥१५९-१६०॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले प्रथमसमयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवमें सोलह कषायों और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबंधके योग्य तीव्र संक्लेशसे सहित मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय नहीं पाया जाता ।

चूर्णिसू०—वह अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाणवाला होता है ॥१६१॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि एक समय-हीन एक अबाधाकांडकसे कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमसे नीचे उक्त जीवके सोलह कषाय और नव नोकषायोंका स्थितिसत्त्व पाया नहीं जाता ।

चूर्णिसू०—जिस प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिका आश्रय लेकर उसके साथ शेष प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तियोंका सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिको निरुद्ध कर शेष कर्म-प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिए । क्योंकि, दोनोंके सन्निकर्षमें कोई भेद नहीं है । तथा जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको निरुद्ध कर मोहकी शेष प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिका सन्निकर्ष किया है, उसी प्रकार पृथक् पृथक् सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको निरुद्ध कर शेष मोह-प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिए ॥१६२-१६३॥

चूर्णिसू०—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। क्योंकि स्त्रीवेदके बंधकालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बंध नहीं होता है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति सत्त्व उत्कृष्ट स्थितिबंधमेंसे एक समय कमको आदि करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम अपने उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाणवाला होता है । इसका कारण यह है कि एक आबाधा-

असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति । १६७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? १६८. णियमा अणुक्कस्सा । १६९. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति । १७०. णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति । १७१. सोलसकसायाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? १७२. णियमा अणुक्कस्सा । १७३. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा त्ति । १७४. पुरिसवेदस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १७५. णियमा अणुक्कस्सा । १७६. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । १७७. हस्स-रदीणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १७८. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा

कांडकसे नीचे उक्त जीवके मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति संभव नहीं है ॥१६४-१६६॥

चूर्णिसू०–स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ॥१६७-१६८॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टि जीवमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अभाव होता है और मिथ्यादृष्टि जीवको छोड़कर सम्यग्दृष्टि जीवमें स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती नहीं है, क्योंकि, वहांपर उसके बंधका अभाव है ।

चूर्णिसू०–वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर एक स्थिति तकके प्रमाणवाली होती है । वह केवल चरम उद्वेलनाकांडककी चरम फालीसे कम होती है, ऐसा विशेष जानना चाहिए । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । क्योंकि, कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालमें स्त्रीवेदके बन्धका अभाव है । वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर एक आवली कम तकके प्रमाणवाली होती है । क्योंकि, इसके ऊपर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका होना असम्भव है ॥१६९-१७३॥

चूर्णिसू०–स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । इसका कारण यह है कि स्त्रीवेदके बन्धकालमें शेष वेदोंके बन्धका अभाव है । वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है ॥१७४-१७६॥

चूर्णिसू०–स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके हास्य और रति, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥१७७-१७८॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यदि स्त्रीवेदके बन्धकालमें हास्य और रति

वा । १७९. उक्कस्सादो अणुकस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । १८०. अरदि-सोगाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? १८१. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । १८२. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणाओ त्ति । १८३. एवं णवुंसयवेदस्स । १८४. णवरि णियमा अणुक्कस्सा । १८५. भय-दुगुंछाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? १८६. णियमा उक्कस्सा । १८७. जहा इत्थिवेदेण, तहा सेसेहि कम्मेहि । १८८. णवरि विसेसो जाणिदव्वो ।

प्रकृतिका बन्ध होता है, तो इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है और यदि बन्ध नहीं होता है, तो अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

चूर्णिसू०–अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके अरति और शोक, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है, और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥१७९-१८१॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यदि स्त्रीवेदके बन्धकालमें अरति और शोक प्रकृतिका बन्ध हो, तो उनकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होगी, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होगी ।

चूर्णिसू०–अरति और शोक, इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है ॥१८२॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे निरुद्ध अरति और शोक, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार नपुंसकवेदकी भी प्ररूपणा जानना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि नपुंसकवेदकी स्थितिविभक्ति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । इसका कारण यह है कि स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है ॥१८३-१८४॥

चूर्णिसू०–स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके भय और जुगुप्सा, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसका कारण यह है कि जिस कालमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है, उस कालमें भय और जुगुप्सा प्रकृतिका बन्ध नियमसे होता है ॥१८५-१८६॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको निरुद्ध करके उसके साथ शेष कर्मोंकी स्थितिविभक्तिसम्बन्धी सन्निकर्षकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार हास्य, रति और पुरुषवेद, इन तीनकी शेष कर्मप्रकृतियोंके साथ भी सन्निकर्षकी प्ररूपणा जानना चाहिए । किन्तु तद्गत विशेष ज्ञातव्य है ॥१८७-१८८॥

विशेषार्थ–उक्त समर्पणसूत्रसे जिस अर्थ और तद्गत विशेषताकी सूचना की गई है,

१८९. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमु-क्कस्सा अणुकस्सा ? १९०. उक्कस्सा वा अणुकस्सा वा । १९१. उक्कस्सादो अणुकस्सा

वह इस प्रकार है—पुरुषवेदको निरुद्ध करके शेष कर्मप्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष-प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि, वह समस्त प्ररूपणा स्त्रीवेदकी सन्निकर्ष-प्ररूपणाके समान है। हास्य और रति; इन दो प्रकृतियोंको निरुद्ध करके सन्निकर्ष-प्ररूपणा करनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंके सन्निकर्ष-प्ररूपणाओंमें भी स्त्रीवेदकी सन्निकर्ष-प्ररूपणासे कोई विशेषता नहीं है। किन्तु स्त्रीवेद और पुरुषवेदके सन्निकर्षमें कुछ विशेषता है, जो कि इस प्रकार है—हास्य और रति, इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके होनेपर स्त्री और पुरुषवेदकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। उत्कृष्ट स्थिति होनेका कारण तो यह है कि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमित होनेपर हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन चारों ही कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। अनुत्कृष्ट स्थिति होनेका कारण यह है कि उत्कृष्ट स्थिति बन्धकर प्रतिनिवृत्त होनेके समयमें हास्य और रति, इन दोनोंके बँधते हुए भी स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनोंके बन्धका अभाव हो जानेसे उनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती है। उक्त प्रकृतियोंकी यदि अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो नियमसे उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है। स्त्रीवेदके निरुद्ध करनेपर नपुंसकवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि, स्त्रीवेदके बन्धकालमें नपुंसकवेदके बन्धका अभाव है। किन्तु हास्य और रति प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके निरुद्ध करनेपर नपुंसकवेदकी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि, हास्य और रतिके बन्धकालमें भी नपुंसकवेदका बन्ध पाया जाता है। कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि, कभी बन्धका अभाव होनेसे उसके एक समय कम आदिके रूपसे अनुत्कृष्ट स्थिति-सम्बन्धी विकल्प पाये जाते हैं। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोक, इन दोनों प्रकृतियोंकी कदाचित् उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके साथ इन दोनों प्रकृतियोंके बँधनेके प्रति कोई विरोध नहीं है। कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि उत्कृष्ट बन्धके अनन्तर प्रतिनिवृत्त होनेके समयमें जब हास्य और रति, इन दोनोंका बन्ध होने लगता है, तब अरति और शोक प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध न होनेसे अनुत्कृष्ट स्थिति-सम्बन्धी विकल्प पाये जाते हैं। किन्तु हास्य और रतिप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिके निरुद्ध करनेपर अरति और शोक प्रकृतिकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिनिवृत्त होनेके समयमें हास्य और रतिके बन्ध होने पर उनकी प्रतिपक्षी अरति और शोक प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। इस प्रकारकी यह विशेषता जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति-विभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके होनेपर यदि

समऊणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणा त्ति । १९२. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं च ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १९३. णियमा अणुक्कस्सा । १९४. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति । १९५. णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा । १९६. सोलसकसायाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? १९७. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । १९८. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा त्ति । १९९. इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? २००. णियमा अणुक्कस्सा । २०१. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । २०२. हस्स-रदीणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? २०३. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमको आदि करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम तकके प्रमाणवाली होती है ॥ १८९–१९१ ॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति मिथ्यादृष्टि जीवमें होती है और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति प्रथमसमयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर एक स्थिति तकके प्रमाणवाली होती है । किन्तु वह चरम उद्वेलनाकांडककी चरम फालीसे हीन होती है ॥ १९२-१९५ ॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है । इसका कारण यह है कि यदि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समय विवक्षित कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर एक आवली कम तकके प्रमाणवाली होती है । एक आवलीसे अधिक कम न होनेका कारण यह है कि इससे ऊपर नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका होना असम्भव है ॥ १९६–१९८॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । क्योंकि, नपुंसकवेदके बन्धकालमें नियमसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर अन्तःकोड़ा-कोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है ॥१९९–२०१॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके हास्य और रति, इन

वा । २०४. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । २०५. अरदि-सोगाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा, अणुक्कस्सा ? २०६. उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । २०७. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । २०८. भय-दुगुंछाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? २०९. णियमा उक्कस्सा । २१०. एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि । २११. णवरि विसेसो जाणियव्वो

दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है । इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके होनेपर यदि हास्य और रतिप्रकृतिका बन्ध हो, तो उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, और यदि उनका बन्ध नहीं हो, तो अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । क्योंकि बन्धके नहीं होने पर हास्य और रतिप्रकृतिमें कषायस्थितिका संक्रमण नहीं होता है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तक होती है ॥२०२–२०४॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके अरति और शोक, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है । इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदके बन्धकालमें अरति और शोक प्रकृति बन्धका बन्ध हो, तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक होती है ॥२०५–२०७॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवके भय और जुगुप्सा, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है, अथवा अनुत्कृष्ट होती है ? नियमसे उत्कृष्ट होती है, क्योंकि, ये प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं ॥२०८-२०९॥

चूर्णिसू०—जिस प्रकार नपुंसकवेदकी स्थितिविभक्तिका शेष सर्व मोह-प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिके साथ सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियोंका भी स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी सन्निकर्ष करना चाहिए । किन्तु उनमें जो थोड़ी सी विशेषता है, वह जानना चाहिए ॥२१०-२११॥

विशेषार्थ—इस समर्पणसूत्रसे जिस विशेषताकी सूचना की गई है, वह इस प्रकार है—अरति और शोकप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिको निरुद्ध करके सन्निकर्षके कहनेपर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और सोलह कषायोंकी सन्निकर्षप्ररूपणा नपुंसकवेदके समान है, कोई विशेषता नहीं है। किन्तु स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है । वह अनुत्कृष्ट अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर और कुछ आचार्योंके मतसे अन्तर्मुहूर्त कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी स्थितिविभक्तिका सन्निकर्ष जानना चाहिए । नपुंसकवेदकी

२१२. जहण्णट्ठिदिसण्णियासो । २१३. मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंतकम्मियस्स अणंताणुबंधीणं णत्थि । २१४. सेसाणं कम्माणं विहत्ती किंजहण्णा अजहण्णा ? २१५. णियमा अजहण्णा २१६. जहण्णादो अजहण्णा [अ-] संखेज्जगुणब्भहिया । २१७. मिच्छत्तेण णीदो सेसेहि वि अणुमग्गियव्वो ।

स्थितिविभक्तिका सन्निकर्ष भी इसी प्रकार है, केवल उसकी अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लगाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तकके प्रमाणवाली होती है । हास्य और रति, इन दो प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय कमसे लगाकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तक होती है । भय और जुगुप्सा प्रकृतिकी स्थितिविभक्ति ध्रुवबन्धी होनेके कारण नियमसे उत्कृष्ट होती है । भय और जुगुप्सा प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्तिको निरुद्धकर सन्निकर्ष कहनेपर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सोलह कषाय और तीनों वेदोंकी सन्निकर्ष-प्ररूपणा अरति-शोकके समान है । हास्य, रति, अरति और शोक इन चार प्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी सन्निकर्ष प्ररूपणा नपुंसकवेदकी सन्निकर्षप्ररूपणाके समान है । इनकी मात्र ही विशेषता जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०-अब जघन्य स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी सन्निकर्ष कहते हैं-मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका सन्निकर्ष नहीं है, क्योंकि, *मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व करनेके पूर्व ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी जानेसे* उनके स्थितिसत्त्व पाये जानेका अभाव है ।।२१२-२१३।।

चूर्णिसू०-मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके अप्रत्याख्यानावरण आदि शेष समस्त मोहकर्मप्रकृतियोंकी स्थितिविभक्ति क्या जघन्य होती है, अथवा अजघन्य होती है ? नियमसे अजघन्य होती है । क्योंकि, ऊपर जाकर जघन्यस्थितिको प्राप्त होनेवाले जीवोंके यहाँपर जघन्य स्थितिके पाये जानेका विरोध है । वह अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक प्रमाणवाली होती है ।।२१४-२१६।।

विशेषार्थ-इसका कारण यह है मिथ्यात्वकी दो समय-कालप्रमाण जघन्य स्थिति-के अवशेष रह जानेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण; तथा बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण अवशिष्ट स्थिति पाई जाती है ।।

चूर्णिसू०-जिस प्रकार मिथ्यात्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिके साथ शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका सन्निकर्ष निरूपण किया है, उसी प्रकार शेष कर्मप्रकृतियोंके साथ भी जघन्यसन्निकर्ष अन्वेषण करना चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।।२१७।।

अब चूर्णिकार इससे आगे स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार कहनेके लिए प्रतिज्ञासूत्र कहते हैं-

[२१८. अप्पाबहुअं] २१९. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती। २२०. सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया। २२१ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया। २२२. सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया। २२३. मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

२२४. णिरयगदीए सव्वत्थोवा इत्थिवेद-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती। २२५. सेसाणं णोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया। २२६. सोलसण्हं कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया। २२७. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदि-

---

चूर्णिसू०—अब स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं ॥२१८॥

विशेषार्थ—अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थिति-अल्पबहुत्व और जीव-अल्पबहुत्व। जिसमें विवक्षित प्रकृतियोंकी स्थितिकाल-सम्बन्धी अल्प और बहुत्व का निरूपण किया जाता है, उसे स्थिति-अल्पबहुत्वानुगम कहते हैं और जिसमें विवक्षित प्रकृतियोंके सत्त्व आदिके धारक जीवोंकी संख्या-सम्बन्धी हीनाधिकताका निरूपण किया जाता है, उसे जीव-अल्पबहुत्वानुगम कहते हैं। इन दोनोंमेंसे यहाँपर यतिवृषभाचार्य स्थिति-अल्पबहुत्व कहते हैं।

चूर्णिसू०—हास्यादि नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है। क्योंकि, उसका प्रमाण बन्धावलीसे कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। बन्धावलीसे कम कहनेका यह कारण है कि बन्धकालमें कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नोकषायोंमें संक्रमण नहीं होता है। अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है। विशेष अधिकताका प्रमाण बन्धावलीकाल मात्र है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है। यहाँ विशेष अधिकताका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है। विशेष अधिकताका प्रमाण एक उदय-निषेकस्थितिमात्र है। मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिसे विशेष अधिक है। विशेष अधिकताका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त है ॥२१९-२२३॥

चूर्णिसू०—नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। इसका कारण यह है कि नरकगतिमें इन दोनों वेदोंके उदयका अभाव है, अतएव इनके उदयनिषेकोंका स्तिवुकसंक्रमणद्वारा नपुंसकवेदस्व-रूपसे परिणमन हो जाता है। शेष सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति स्त्री और पुरुष-वेद की उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है। विशेष अधिकताका प्रमाण एक उदय-निषेकमात्र है। सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-से विशेष अधिक है। विशेष अधिकताका प्रमाण बन्धावलीमात्र है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है। विशेष अधिकता

विहत्ती विसेसाहिया । २२८. सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया । २२९. मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया । २३० सेसासु गदीसु णेदव्वो ।

का प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्तसे कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है । विशेष अधिकता का प्रमाण एक उदयनिषेकमात्र है । मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे विशेष अधिक है । विशेष अधिकताका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त है । जिस प्रकार नरकगतिमें मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका अल्पबहुत्वानुगम किया गया है, उसी प्रकार आर्षके अविरोधसे शेष गतियोंमें भी अल्पबहुत्वानुगम करना चाहिए ॥२१९–२३०॥

विशेषार्थ–चूर्णिसूत्रोंमें केवल उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका निरूपण किया गया है । जघन्य स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका नहीं । वह उच्चारणावृत्तिके अनुसार इस प्रकार है–सम्यक्त्वप्रकृति, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे कम होती है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित है । मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति उपर्युक्तपदसे संख्यातगुणित है । इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित है । इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित है । इससे हास्य आदि छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित होती है । किन्तु चिरन्तन व्याख्यानाचार्योंके मतसे इसमें कुछ भेद है। जो कि इस प्रकार है–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे कम है । इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणित है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणित है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति अधिक है ।

इसी प्रकार चूर्णिसूत्रोंमें जीवअल्पबहुत्वानुगमका भी निरूपण नहीं किया गया है । जो कि जयधवला टीकाके अनुसार इस प्रकार है । उनमें पहले उत्कृष्ट जीव-अल्पबहुत्वको कहते हैं–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छब्बीस मोहप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीव सबसे कम होते हैं । इनसे इन्हीं प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीव अनन्तगुणित होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति करनेवाले जीव सबसे कम हैं । इनसे इन्हींकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति

२३१. जे भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिद-अवत्तव्वया तेसिमट्ठपदं। २३२. जत्तियाओ अस्सिं समए ट्ठिदिविहत्तीओ उस्सक्कस्साविदे अणंतरविदिक्कंतेसमए अप्पदराओ बहुदरविहत्तिओ, एसो भुजगारविहत्तिओ। २३३. ओसक्काविदे बहुदराओ विहत्तीओ, एसो अप्पदरविहत्तिओ। २३४. ओसक्काविदे तत्तियाओ चेव विहत्तीओ, एसो अवट्ठिदविहत्तिओ। २३५. अविहत्तियादो विहत्तियाओ एसो अवत्तव्वविहत्तिओ। २३६. एदेण अट्ठपदेण। २३७. सामित्तं। २३८. मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदविहत्तिओ को

करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। जघन्य जीव-अल्पबहुत्व की अपेक्षा सर्व मोहप्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं। इनमेंसे छब्बीसप्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति-विभक्ति करनेवाले जीव जघन्यविभक्तिवालोंसे अनन्तगुणित हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-की जघन्य स्थितिविभक्ति करनेवाले असंख्यातगुणित है। यह ओघकी अपेक्षा वर्णन किया गया है। आदेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वके लिए विशेष जिज्ञासुओंको जयधवला टीका देखना चाहिये।

चूर्णिसू०–जो जीव भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्ति करनेवाले हैं, उनका यह अर्थपद है। अर्थात् अब इन चारों प्रकारकी विभक्तियोंका स्वरूप कहते हैं। इस वर्तमान समयमें जितनी स्थितिविभक्तियाँ अर्थात् स्थितिसम्बन्धी विकल्प हैं, उनके उत्कर्षण करनेपर अनन्तर-व्यतिक्रान्त अर्थात् तदनन्तरवर्ती द्वितीय समयमें यदि वे अल्पतर स्थितिविकल्प बहुतरविभक्तिवाले हो जाते हैं,तो यह भुजाकारविभक्ति करनेवाला जीव है। अर्थात्, जो जीव वर्तमान समयमें जितने स्थिति-भेदोंका बन्ध कर रहा है, वही जीव यदि आगामी द्वितीय समयमें उन्हें बढ़ाकर बहुतसे स्थिति-भेदोंका बन्ध करने लगता है, तो वह जीव भुजाकार-विभक्ति करनेवाला कहलाता है। बहुत स्थितिविकल्पोंके अपकर्षण करनेपर जो अल्पतर स्थितियाँ बाँधने लगता है वह अल्पतरस्थितिविभक्तिक जीव है। अर्थात्, जो जीव अतीत समयमें जितनी स्थितियोंका बन्ध कर रहा था, वही जीव यदि उनका स्थितिकांडकघात अथवा अधःस्थितिगलनके द्वारा अपकर्षणकर वर्तमान समयमें कम स्थितियोंको बाँधने लगता है, तो वह अल्पतरविभक्ति करनेवाला कहलाता है। अपकर्षण अथवा उत्कर्षण करनेपर भी यदि उतनी अर्थात् पूर्व समयके जितनी ही स्थितियोंको बांधता है, तो यह अवस्थित विभक्तिवाला कहलाता है। अविभक्तिकसे यदि विभक्तिक होता है तो यह अवक्तव्यविभक्तिक है। अर्थात् जो जीव पूर्वसमयमें विवक्षित प्रकृतिके बन्ध और सत्त्वसे रहित था, वह यदि वर्तमान समयमें उसका बन्धकर उसके सत्त्ववाला हो जाता है, तो वह जीव अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला कहलाता है। इस अर्थपदके द्वारा अब स्वामित्व अनुयोगद्वारको कहते हैं—मिथ्यात्वकी भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिको करनेवाला कौन जीव होता है? कोई एक नारकी तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि भुजाकार और अवस्थितविभक्ति मिथ्यादृष्टि जीवके ही होती है। किन्तु अल्पतर विभक्ति मिथ्यादृष्टिके

होदि ? २३९. अण्णदरो णेरइयो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा । २४०. अवत्तव्वो णत्थि*। २४१. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अप्पदरविहत्तिओ को होदि ? २४२. अण्णदरो णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो । २४३. अवट्ठिदविहत्तिओ को होदि ? २४४. पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तेण से काले सम्मत्तं पडिवण्णो सो अवट्ठिद-विहत्तिओ । २४५. अवत्तव्वविहत्तिओ अण्णदरो । २४६. एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं ।

भी होती है और सम्यग्दृष्टिके भी[1] । मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्ति नहीं होती है । इसका कारण यह है कि मिथ्यात्वकर्मके निःसत्त्व हो जानेपर पुनः उसके सत्त्व होनेका अभाव है ॥२३१–२४०॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी भुजाकार और अल्पतर विभक्तिको करनेवाला कौन जीव होता है ? कोई एक नारकी, तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव होता है । यहाँ इतना विशेष है कि इन प्रकृतियोंकी भुजाकारविभक्ति सम्यग्दृष्टि जीवोंके ही होती है । किन्तु अल्पतरविभक्ति सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवके होती है[2] । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्ति करनेवाला कौन जीव होता है ? पूर्वमें उत्पन्न सम्यक्त्वप्रकृतिसे एक समय अधिक मिथ्यात्वकी स्थितिके साथ जो जीव अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है, वह अवस्थित विभक्तिवाला होता है ॥२४१–२४४॥

विशेषार्थ–जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्वको उत्पन्न किया है और परिणामोंके निमित्तसे गिरकर मिथ्यात्वमें आ गया है उसके विवक्षित समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिका जितना स्थितिसत्त्व है, उससे उसीकी मिथ्यात्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व यदि एक समय अधिक हो और वह जीव पुनः तदनन्तरवर्ती द्वितीय समयमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त हो, तो उसके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी अवस्थित-विभक्ति होती है, क्योंकि, चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वसे प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व समान पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्ति-करनेवाला कोई एक जीव होता है ॥ २४५ ॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि किसी भी गतिवाले, किसी भी कषायके उदय-वाले, किसी भी अवगाहनाको धारण करनेवाले, किसी एक लेश्यासे संयुक्त तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथमसम्य-क्त्वके ग्रहण करनेपर अवक्तव्यभाव पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार शेष सोलह कषाय और नव नोकषाय, इन पच्चीस कर्मोंकी

* ताम्रपत्रवाली मुद्रित प्रतिमें इसे चूर्णिसूत्र न मानकर जयधवला टीकाका अंग बना दिया है । (देखो पृष्ठ ३९६ पंक्ति १७)

१ भुजगार-अवट्ठिदविहत्ती मिच्छाइट्ठिस्सेव । अप्पदरविहत्ती सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । जयध०

२ भुजगारं सम्मादिट्ठीणं चेव । अप्पदरं पुण सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । जयध०

२४७. एत्तो एगजीवेण कालो। २४८. मिच्छत्तस्स भुजगारकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ? २४९. जहण्णेण एगसमओ। २५०. उक्कस्सेण चत्तारि समया (४)। २५१. अप्पदरकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ? २५२.

भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥ २४६ ॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य, इन चारों विभक्तियोंके, कालका वर्णन किया जाता है। मिथ्यात्व कर्मकी भुजाकार विभक्तिवाले जीवका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार (४) समय है ॥ २४७-२५० ॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी भुजाकारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है; क्योंकि, मिथ्यात्वकी विवक्षित स्थितिको एक समय आगे बढ़ाकर बाँधनेपर मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार-स्थितिविभक्तिका एक समयप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार-विभक्तिका उत्कृष्टकाल चार समय है। वे चार समय इस प्रकार सम्भव हैं—अद्धाक्षयसे अर्थात् स्थितिबन्धके कालका क्षय हो जानेसे स्थितिबन्धके बढ़नेपर भुजाकारविभक्तिका प्रथम समय प्राप्त होता है। पुनः चरम समयमें संक्लेश-क्षयसे अर्थात् स्थितिबन्धके योग्य विवक्षित अध्यवसायस्थानके अवस्थानका काल समाप्त हो जानेसे उस समय एक समय अधिक, दो समय अधिक आदिके क्रमसे लगाकर बढ़ते हुए संख्यात सागरोपम तक की स्थितिके बाँधने योग्य परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनसे यथायोग्य स्थितिको बाँधनेपर भुजाकारविभक्तिका द्वितीय समय उपलब्ध होता है। तृतीय समयमें मरण करके विग्रहगतिके द्वारा पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञी जीवोंकी सहस्र सागरोपम स्थितिको बाँधनेपर उसी जीवके भुजाकारविभक्तिका तृतीय समय होता है। पुनः चतुर्थ समयमें शरीर-ग्रहण करके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण संज्ञी जीवोंकी स्थितिको बाँधनेपर उसी जीव-के भुजाकारविभक्तिका चतुर्थ समय होता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्धा-क्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है, दूसरे समयमें संक्लेश-क्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है, तीसरे समयमें मरणकर और एक विग्रहसे संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न होकर असंज्ञी जीवोंके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है और चौथे समयमें शरीर-को ग्रहण करके संज्ञी जीवोंके योग्य स्थिति बढ़ाकर बाँधता है, तब उस जीवके भुजाकार-विभक्तिका उत्कृष्टकाल चार समयप्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार मिथ्यात्वकर्मकी भुजा-कारविभक्तिका उत्कृष्टकाल चार समय ही है। आगे जहाँ भी भुजाकारबन्ध कहा जावे, वहाँ सर्वत्र यही अर्थ जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मकी अल्पतरविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक

जहण्णेण एगसमओ । २५३. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । २५४. अवट्ठिदकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ? २५५. जहण्णेण एगसमओ । २५६. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । २५७. एवं सोलसकसायाणं णवणोकसायाणं। २५८.

समय है और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ तिरेसठ सागरोपम है ॥२५२–२५३॥

विशेषार्थ–भुजाकार अथवा अवस्थितविभक्तिको करनेवाले जीवके विद्यमान सत्त्वसे एक समय नीचे उतरकर स्थितिबन्ध करके पुनः द्वितीय समयमें भुजाकार या अवस्थित विभक्तिको करनेपर अल्पतरविभक्तिका एक समयप्रमाण जघन्यकाल पाया जाता है। मिथ्यात्व-कर्मकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्टकाल कुछ अधिक एक सौ तिरेसठ सागरोपमप्रमाण है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव एक स्थितिको बांधता हुआ विद्यमान था। उस स्थितिके नीचे अल्प स्थितिको बांधते हुए उसने अल्पतरविभक्तिका तत्प्रायोग्य सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत किया। पुनः तदनन्तरवर्ती समयमें उस स्थितिसत्त्वका उल्लंघन करके स्थितिबन्ध करनेवाला था कि आयुके क्षय हो जानेसे मरण करके तीन पल्योपमकी स्थितिवाले उत्तम भोगभूमियाँ जीवोंसे उत्पन्न हुआ। पुनः वहाँ जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहण किया और उसके साथ ही यथा-योग्य प्रथम या द्वितीय स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत हो मनुष्य हुआ, फिर मरकर यथा-योग्य आनत-प्राणत आदि कल्पोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उसने सम्यक्त्वके साथ पूरे छयासठ सागरोपम व्यतीत किये और अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः अन्त-र्मुहूर्तके पश्चात् ही सम्यक्त्वको ग्रहण किया और उसके साथ फिर पूरे छयासठ सागरोपमकाल तक भ्रमण कर अन्तमें तत्प्रायोग्य परिणामोंके द्वारा मिथ्यात्वको जाकर इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले ग्रैवेयकदेवोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहाँसे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ जहाँतक सम्भव है, वहाँतक अन्तर्मुहूर्तकाल स्थितिसत्त्वसे नीचे स्थितिबन्ध कर पुनः संक्लेशको पूरित कर भुजाकारविभक्ति करनेवाला हो गया। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्योंसे अधिक एक सौ तिरेसठ सागर अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी अवस्थितविभक्तिका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय है। क्योंकि, भुजाकार अथवा अल्पतरविभक्तिको करनेवाले जीवके एक समय स्थितिसत्त्वके समान स्थितिके बांधनेपर अवस्थितविभक्तिका एक समय पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मकी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि, भुजाकार अथवा अल्पतर विभक्तिको करके सत्त्वके समान स्थितिबन्ध करनेका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है ॥२५४–२५६॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तियोंके कालकी प्ररूपणकी है, उसी प्रकार सोलह कषायों और नव नोकषायोंकी भुजाकार अल्पतर और अवस्थितविभक्तिसम्बन्धी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि

णवरि भुजगारकम्मंसिओ उक्कस्सेण एगूणवीससमया।

सोलह कषाय और नवनोकषायोंकी भुजाकार विभक्तिका उत्कृष्टकाल उन्नीस समय-प्रमाण है ॥२५७–२५८ ॥

विशेषार्थ–उक्त उन्नीस समयोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–किसी एक ऐसे एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीवने जिसकी आयु सत्तरह समयसे अधिक एक आवली-प्रमाण शेष रही है, अनन्तानुबन्धी क्रोधको छोड़कर शेष अनन्तानुबन्धी मान, मायादि पन्द्रह प्रकृतियोंका क्रमशः अद्धाक्षय हो जानेसे पन्द्रह समयोंके द्वारा उनकी स्थितिको उत्तरोत्तर बढ़ाकर बन्ध करते हुए संक्रमणके योग्य किया। पुनः बन्धावलीकालके व्यतीत होनेपर और सत्तरह समय-प्रमाण आयुके शेष रहनेपर पूर्वोक्त आवलीकालमें प्रथम समयसे लेकर पन्द्रह समयोंमें वृद्धि करके बांधी हुई उक्त पन्द्रह कषायोंकी स्थितिको बन्ध-परिपाटीके अनुसार अनन्तानुबन्धी क्रोधमें संक्रमण करनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध-सम्बन्धी भुजाकारविभक्तिके पन्द्रह समय प्राप्त होते हैं। पुनः सोलहवें समयमें अद्धाक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ स्थितिको बढ़ाकर बाँधनेपर भुजाकारविभक्तिका सोलहवाँ समय प्राप्त होता है। पुनः सत्तरहवें समयमें संक्लेशक्षय होनेसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ सर्व कषायोंकी स्थितिको बढ़ाकर बाँधनेपर भुजाकारविभक्तिका सत्तरहवाँ समय प्राप्त होता है। पुनः उसके एक विग्रह करके संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञी जीवोंके योग्य सहस्र सागरोपमके सात भागोंमेंसे यथायोग्य चार भागप्रमाण बाँधनेपर भुजाकारविभक्तिका अट्ठारहवाँ समय प्राप्त हुआ। पुनः शरीरको ग्रहण करके संज्ञी पंचेन्द्रियोंके योग्य अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिका बन्ध करनेपर भुजाकार-विभक्तिका उन्नीसवाँ समय प्राप्त होता है। इस प्रकार भुजाकारस्थितिविभक्तिके सूत्रोक्त उन्नीस समय सिद्ध हो जाते हैं। ऊपर जिस प्रकारसे अनन्तानुबन्धी क्रोधकी भुजाकारविभक्तिके उन्नीस समयोंकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार मान, मायादि शेष पन्द्रह प्रकृतियोंमेंसे हर एक की इसी परिपाटीसे भुजाकारस्थितिविभक्तिके उन्नीस समयोंकी प्ररूपणा जानना चाहिए। इसी प्रकार नवों नोकषायोंकी भी भुजाकारविभक्ति-सम्बन्धी उन्नीस समयोंकी प्ररूपणा जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि उक्त सत्तरह समयसे अधिक आवलीकालप्रमित आयुके शेष रह जानेपर उस एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीवके आवलीके प्रथम समयसे लेकर क्रोधादि कषायोंकी परिपाटीसे अद्धाक्षय होनेके साथ सोलह समयमात्र कालको बढ़ाकर उनका बन्ध कराके, पुनः सत्तरहवें समयमें संक्लेश-क्षय होनेसे सभी–सोलहों प्रकृतियोंका भुजाकारस्थिति-बन्ध कराके पुनः एक आवलीकाल बिताकर कषायोंकी स्थितिको नव नोकषायोंकी स्थितिमें परिपाटीसे संक्रमण करानेपर नव-नोकषायसम्बन्धी भुजाकारविभक्तियोंका सत्तरहवाँ समय प्राप्त होता है। पुनः मरणकर एक विग्रहके साथ संज्ञी पंचेद्रियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञी पंचेन्द्रियोंके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करनेपर अट्ठारहवाँ समय और शरीर-पर्याप्तिको प्रारम्भ कर संज्ञी पंचेन्द्रियोंके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करनेपर उसके भुजाकारविभक्तिका

२५९. अणंताणुबंधिचउक्कस्स अवत्तव्वं जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। २६०. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ? २६१. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

उन्नीसवाँ समय प्राप्त होता है। इस प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषाय-सम्बन्धी भुजाकारस्थितिविभक्तिके उन्नीस समयोंकी प्ररूपणा जानना चाहिए। ऊपर जो अद्धाक्षय[1] पद प्रत्युक्त हुआ है उसका अर्थ है–अद्धा अर्थात् स्थितिबन्धके कालका क्षय। स्थिति बन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। विवक्षित स्थितिबन्धके कालका क्षय हो जानेपर तदनन्तर जीव उससे हीन या अधिक स्थितिका बन्ध करता है। क्रोधादि कषायरूप परिणामों के होनेको संक्लेश कहते हैं।[2] जबतक एक-जातीय संक्लेश परिणाम रहेंगे, तबतक एकसा स्थितिबन्ध होगा, और एकजातीय संक्लेशक्षय होनेपर स्थितिबन्ध भी हीनाधिक होने लगेगा। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि अद्धक्षयके होनेपर संक्लेशक्षय होनेका नियम नहीं है। किसी जीवके अद्धाक्षयके साथ संक्लेशक्षय हो जाता है और किसी जीवके अद्धाक्षयके पश्चात् भी संक्लेशक्षय होता है।

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ २५९ ॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी कषायकी सत्तासे रहित सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व अथवा सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर उसके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धी कषायके स्थितिसत्त्वकी उत्पत्ति हो जाती है।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ॥२६०-२६१॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वप्रकृतिकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिके सत्त्वके ऊपर दो समय अधिक आदिके रूपसे मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधकर पुनः सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर प्रथम समयमें उक्त प्रकृतियोंकी भुजाकारविभक्ति होती है। इसी प्रकार एक समय अधिक मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधकर सम्यक्त्व-ग्रहणके प्रथम समयमें अवस्थितविभक्तिका एक समयमात्र काल पाया जाता है; क्योंकि, दूसरे समयमें अल्पतरविभक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है। तथा सम्यक्त्वप्रकृतिकी सत्तासे रहित मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर एक समयमात्र अवक्तव्यविभक्ति होती है, अधिक समय नहीं, क्योंकि दूसरे समयमें तो अल्पतरविभक्ति आ जाती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजाकारादि विभक्तियोंके कालको जानना चाहिए।

१ का अद्धा णाम ? ट्ठिदिबंधकालो। किं तस्स पमाणं ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एदिस्से अद्धाए खओ विणासो अद्धाक्खओ णाम। जयध०

२ को संकिलेसो णाम ? कोहमाणमायालोहपरिणामविसेसो। जयध०

२६२. अप्पदरकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ? २६३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । २६४. उक्कस्सेण वे छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

२६५. अंतरं । २६६. मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहण्णेण एगसमओ । २६७. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । २६८. अप्पदरकम्मंसियस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २६९. जहण्णेण एगसमओ । २७०. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । २७१. सेसाणं पि णेदव्वं ।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल सातिरेक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥२६२-२६४॥

विशेषार्थ—उक्त दोनों प्रकृतियोंके सत्त्वसे रहित मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर प्रथम समयमें अवक्तव्यविभक्ति होती है और दूसरे समयसे लगाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल-द्वारा दर्शनमोहनीयका क्षय करने तक अल्पतरविभक्तिका जघन्यकाल पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपमकी प्ररूपणा पूर्वके समान जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब भुजाकारविभक्ति आदिके अन्तरको कहते हैं—मिथ्यात्वकी भुजाकार और अवस्थित विभक्तिवाले जीवका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ॥२६५-२६६॥

विशेषार्थ—भुजाकार और अवस्थितविभक्तिको एक समय करके द्वितीय समयमें अल्पतरविभक्ति कर तृतीय समय में भुजाकार और अवस्थित विभक्तिके करनेपर एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार और अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है ॥ २६७ ॥

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें अथवा मनुष्योंमें कोई जीव मिथ्यात्वकी भुजाकार और अवस्थितविभक्तिको आदि करके पुनः वहींपर अन्तर्मुहूर्तकालसे अल्पतरविभक्तिके द्वारा अन्तरको प्राप्त हो तीन पल्योपमवाले देवकुरु या उत्तरकुरुके जीवोंमें उत्पन्न हो वहाँसे मरकर देवादिकोंमें एक सौ तिरेसठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण करके अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर संक्लेशको पूरित करके भुजाकार और अवस्थित विभक्तिको किया। इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तर उपलब्ध हो जाता है ।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मकी अल्पतरविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार शेष कर्मोंका भी अन्तर जानना चाहिए ॥२६८-२७१॥

विशेषार्थ—यतः मिथ्यात्वकर्मकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवके भुजाकार अथवा अवस्थित विभक्तिको एक समय करके पुनः तृतीय समयमें अल्पतरविभक्ति संभव है, अतः

२७२. णाणाजीवेहि भंगविचओ । २७३. संतकम्मिएसु पयदं । २७४. सव्वे जीवा मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणं भुजगारट्ठिदिविहत्तिया च अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया च अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया च । २७५. अणंताणुबंधीणमवत्तव्वं भजिदव्वं । २७६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिदअवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया भजिदव्वा । २७७. अप्पदरविहत्तिया णियमा अत्थि ।

२७८. णाणाजीवेहि कालो । २७९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? २८०. जहण्णेण एगसमओ । २८१.

एक समयमात्र जघन्य अन्तर काल कहा है । मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर-काल अन्तर्मुहूर्त है । क्योंकि, अल्पतरविभक्तिको करनेवाले जीवके द्वारा भुजाकार अथवा अवस्थितविभक्तिके अन्तर्मुहूर्त तक करके पुनः अल्पतरविभक्तिके करनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है । जिस प्रकार मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार, अवस्थित और अल्पतर विभक्तियोंका अन्तर कहा है, उसी प्रकार मोहकर्मकी शेष प्रकृतियोंका भी अन्तर जानना चाहिए । क्योंकि उससे शेष प्रकृतियोंकी अन्तर-प्ररूपणामें कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकार आदि विभक्तियोंके भंगोंका निर्णय किया जाता है । जिन जीवोंके विवक्षित मोह-प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है, ऐसे सत्कर्मिक जीवोंमें यह अधिकार प्रकृत है । क्योंकि असत्कर्मिक जीवोंमें भुजाकार आदि विभक्तियों का पाया जाना असम्भव है । मोहकर्मकी सत्तावाले सर्व जीव नियमसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषाय, इन प्रकृतियोंकी भुजाकार स्थितिविभक्ति करनेवाले होते हैं, अल्पतर स्थितिविभक्ति करनेवाले होते हैं और अवस्थित स्थितिविभक्ति करनेवाले होते हैं । किन्तु अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव भजितव्य हैं । अर्थात् कुछ जीव विभक्ति करनेवाले होते हैं और कुछ नहीं भी होते हैं । क्योंकि, किसी कालमें अनन्तानुबन्धी कषाय-चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंका निरन्तर मिथ्यात्वरूपसे परिणमन नहीं होता । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्ति करनेवाले जीव भजितव्य हैं । क्योंकि, निरन्तर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है । किन्तु इन दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्ति करनेवाले जीव नियमसे होते हैं । क्योंकि, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी सत्तावाले जीवोंका त्रिकालमें भी कभी विरह नहीं होता है ॥ २७२-२७७ ॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकार आदि विभक्तियोंके कालका निरूपण करते हैं—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्ति करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है । क्योंकि, इन दोनों प्रकृतियोंकी भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिको एक समय करके द्वितीय समयमें सभी जीवोंके अल्पतरविभक्तिरूपसे परिणमन देखा जाता है ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । २८२. अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? २८३. सव्वद्धा । २८४. सेसाणं कम्माणं विहत्तिया सव्वे सव्वद्धा । २८५. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वट्ठिदिविहत्तियाणं जहण्णेण एगसमओ । २८६. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

२८७. अंतरं । २८८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वट्ठिदिविहत्ति-अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २८९. जहण्णेण एगसमओ । २९०. उक्कस्सेण चउवीस अहोरत्ते सादिरेगे । २९१. अवट्ठिदट्ठिदिविहत्ति-अंतरं केवचिरं होदि ? २९२. जहण्णेण एगसमओ । २९३. उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । २९४. अप्पदर-ट्ठिदिविहत्तिमंतरं केवचिरं ? २९५. णत्थि अंतरं । २९६. सेसाणं कम्माणं सव्वेसिं

उक्त दोनों प्रकृतियोंकी भुजाकार आदि तीनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागके जितने समय होते हैं, तत्प्रमाण हैं । क्योंकि अपने-अपने अन्तरकालके व्यतीत होने पर भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियोंको करनेवाले जीव निरन्तर आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण काल तक पाये जाते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा इन दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका त्रिकालमें कभी भी विरह नहीं होता है । उक्त दोनों प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष कर्मोंकी विभक्ति करनेवाले सर्व जीव सर्वकाल होते हैं, क्योंकि अनन्त जीवराशिके भीतर भुजाकार, अवस्थित और अल्पतर विभक्तिवालोंके विरहका अभाव है । किन्तु अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी अवक्तव्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय है । क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थिति-विभक्तिवाले जीव अनन्त नहीं होते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है ॥२७८-२८६॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकार आदि विभक्तियोंके अन्तरका निरू-पण करते हैं—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी भुजाकार और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है । क्योंकि, इन दोनों प्रकृतियोंकी भुजाकार और अवक्तव्य विभक्तिको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समयमात्र पाया जाता है । तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस अहोरात्र है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्ति-का कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिका अन्तर-काल कितना है ? इनका अन्तर नहीं है, क्योंकि, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर-विभक्ति करनेवाले जीवोंका कभी विरह नहीं होता है । मिथ्यात्व आदि शेष छब्बीस कर्मोंकी भुजाकार विभक्ति आदि सभी पदोंका अन्तर नहीं है । क्योंकि, अनन्त एकेन्द्रियोंमें भुजा-

पदाणं णत्थि अंतरं । २९७. णवरि अणंताणुबंधीणं अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तियंतरं जहण्णेण एगसमओ । २९८. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।

२९९. सण्णियासो । ३००. मिच्छत्तस्स जो भुजगारकम्मंसिओ सो सम्मत्तस्स सिया अप्पदरकम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ । ३०१. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि । ३०२. सेसाणं णेदव्वो* ।

कार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सर्वकाल अस्तित्व सम्भव है। केवल अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस अहोरात्र है। क्योंकि, सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्तर-कालके साथ मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्तर-कालकी समानता है ॥२८७–२९८॥

चूर्णिसू०—अब भुजाकार आदि विभक्तियोंके सन्निकर्षका निरूपण करते हैं—जो जीव मिथ्यात्वकर्मकी भुजाकार विभक्तिवाला होता है, वह सम्यक्त्वप्रकृतिकी कदाचित् अल्पतर-विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अकर्मांशिक अर्थात् सत्ता-रहित होता है। इसका कारण यह है कि यदि सम्यक्त्वप्रकृतिकी सत्ता हो, तो मिथ्यात्वकी भुजाकारविभक्तिवाले जीवमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी नियमसे अल्पतरस्थितिविभक्ति होती है; अन्यथा नहीं होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। अर्थात् मिथ्यात्वकी भुजाकार-विभक्तिवाले जीवके यदि सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता है तो नियमसे अल्पतरविभक्ति होगी; अन्यथा नहीं। इसी प्रकार शेष कर्मोंका भी सन्निकर्ष जान लेना चाहिए ॥२९९-३०२॥

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें शेष कर्मोंके जिस सन्निकर्षको जान लेनेकी सूचना की गई है, वह इस प्रकार है—जो जीव मिथ्यात्वकी भुजाकारविभक्तिवाला है, वह सोलहों कषायों और नवों नोकषायोंकी कदाचित् भुजाकारविभक्तिवाला है, कदाचित् अल्पतरविभक्तिवाला है और कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाला है। इसी प्रकार मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। जो मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिवाला है, उसके सम्यक्त्वप्रकृति-का स्थितिसत्त्व कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है। यदि होता है तो कदा-चित् अल्पतरविभक्तिवाला, कदाचित् भुजाकारविभक्तिवाला, कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाला और कदाचित् अवक्तव्यविभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। वह अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय और नव नोकषायोंकी कदाचित् भुजाकारविभक्तिवाला होता है, कदाचित् अल्पतरविभक्तिवाला होता है और कदाचित् अवस्थित विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीकषाय-चतुष्कका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि वह कदाचित् अवक्तव्यविभक्तिवाला होता है

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें यह चूर्णिसूत्र मुद्रित नहीं है, किन्तु इसकी टीकाको सूत्र बना दिया गया है। जो कि इस प्रकार है–'सेसाणं कम्माणं सण्णियासो जाणिदूण णेदव्वो'। (देखो पृष्ठ ४२३ पंक्ति ६)

और कदाचित् अविभक्तिवाला भी होता है। जो जीव सम्यक्त्वप्रकृतिकी भुजाकारविभक्ति करनेवाला है, वह मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी नियमसे अल्पतरविभक्ति करनेवाला है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे भुजाकारविभक्ति करनेवाला है। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका भी सन्निकर्ष करना चाहिए। किन्तु जो जीव सम्यक्त्वप्रकृतिकी अवस्थितविभक्ति करनेवाला होता है, वह सम्यग्मिथ्यात्वकी भी नियमसे अवस्थितविभक्ति करनेवाला होता है। जो जीव सम्यक्त्वप्रकृतिकी अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला होता है, वह सम्यग्मिथ्यात्वकी कदाचित् भुजाकारविभक्ति करनेवाला होता है, कदाचित् अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी जो अल्पतरविभक्ति करनेवाला होता है, वह मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी कदाचित् भुजाकार विभक्ति, कदाचित् अल्पतरविभक्ति और कदाचित् अवस्थितविभक्ति करनेवाला होता है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी कदाचित् अवक्तव्यविभक्तिवाला भी होता है। पर सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर-विभक्तिवाला नियमसे होता है। किन्तु मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचित् अविभक्तिवाला भी होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी विभ-क्तियोंका सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु केवल विशेषता यह है कि जो सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिवाला है, वह सम्यक्त्वप्रकृतिका स्यात् सत्कर्मिक है, अतः अविभक्तिवाला भी होता है। परन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यक्त्व-प्रकृतिकी अवक्तव्यविभक्तिवाला होता है।

अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जो भुजाकारविभक्ति करनेवाला जीव है, वह मिथ्यात्व, अवशिष्ट पन्द्रह कषाय और नव नोकषायोंकी कदाचित् भुजाकारविभक्ति करनेवाला, कदाचित् अल्पतरविभक्ति करनेवाला और कदाचित् अवस्थितविभक्ति करनेवाला होता है। उस जीवके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो कर्म कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं, तो नियमसे उनकी अल्पतरविभक्ति करनेवाला होता है। इसी प्रकारसे अवस्थितविभक्तिके विषयमें भी कहना चाहिए। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जो अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला है, वह मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और नव नोकषायोंकी नियमसे अल्पतरविभक्ति करनेवाला होता है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी नियमसे अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला होता है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियम-से अल्पतर विभक्तिकरनेवाला होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जो अल्पतरविभक्ति करने-वाला होता है, वह मिथ्यात्व, शेष पन्द्रह कषाय और नव नोकषायोंकी कदाचित् भुजाकार-विभक्ति, अल्पतरविभक्ति और अवस्थितविभक्ति करनेवाला होता है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी कदाचित् विभक्ति करनेवाला और कदाचित् विभक्ति नहीं करनेवाला होता है। यदि विभक्ति करनेवाला होता है, तो कदाचित् भुजाकार, कदाचित अल्पतर, कदाचित् अवस्थित और कदाचित् अवक्तव्यविभक्ति करनेवाला होता है। इसी प्रकारसे अनन्तानुबन्धी

३०३. अप्पाबहुअं। मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवा भुजगारट्ठिदिविहत्तिया। ३०४. अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ३०५. अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया संखेज्जगुणा। ३०६. एवं बारसकसाय-णवणोकसायाणं। ३०७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया। ३०८. भुजगारट्ठिदिविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ३०९. अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ३१०. अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ३११. अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया। ३१२. भुजगारट्ठिदिविहत्तिया अणंतगुणा। ३१३. अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया असंखेज्जगुणा। ३१४. अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया संखेज्जगुणा।

मान, माया और लोभ कषायोंका भी विभक्तिसम्बन्धी सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और नव नोकषायोंकी विभक्तिसम्बन्धी सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन कर्मोंकी अल्पतरविभक्तिवाला जीव मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाला भी होता है। इनके अर्थात् बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवके अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका सन्निकर्ष मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए। यह उपर्युक्त सन्निकर्ष उपशम और क्षपकश्रेणीकी विवक्षा नहीं करके कहा गया है; क्योंकि उनकी विवक्षा करनेपर कुछ और भी विशेषता है, सो उसे आगमके अनुसार जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—अब उक्त भुजाकार आदि विभक्तिवाले जीवोंकी संख्या-निर्णयके लिए अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार कहते हैं। मिथ्यात्वप्रकृतिकी भुजाकारस्थितिविभक्तिवाले जीव आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। मिथ्यात्वकी भुजाकार स्थितिविभक्तिवालोंसे मिथ्यात्वकी अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। मिथ्यात्वकी अवस्थितस्थितिविभक्तिवालोंसे मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणित हैं। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और नव नोकषायोंके भुजाकार आदि विभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥३०३-३०६॥

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। इनसे इन्हीं दोनों प्रकृतियोंके भुजाकारस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। इनसे इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। इनसे इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३०७-३१०॥

अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीव आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवालोंसे भुजाकारस्थितिविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणित हैं। अनन्तानुबन्धीकी भुजाकार स्थितिविभक्तिवालोंसे अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। अनन्तानुबन्धीकी अवस्थित स्थितिविभक्तिवालोंसे अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणित हैं ॥३११-३१४॥

३१५. एत्तो पदणिक्खेवो । ३१६. पदणिक्खेवे परूवणा सामित्तमप्पाबहुअं च । ३१७. अप्पाबहुए पयदं । ३१८. मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी । ३१९. उक्कस्सिया वड्ढी अवट्ठाणं च सरिसा विसेसाहिया । ३२०. एवं सव्वकम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं । ३२१. णवरि णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणमुक्कस्सिया वड्ढी अवट्ठाणं थोवा । ३२२. उक्कस्सिया हाणी विसेसाहिया । ३२३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवमुक्कस्समवट्ठाणं । ३२४. उक्कस्सिया हाणी असंखेज्जगुणा । ३२५. उक्कस्सिया वड्ढी विसेसाहिया । ३२६. जहण्णिया वड्ढी जहण्णिया हाणी जहण्णमवट्ठाणं च सरिसाणि ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे पदनिक्षेप कहते हैं ॥३१५॥

विशेषार्थ—भुजाकारके विशेष निरूपण करनेको पदनिक्षेप कहते हैं, क्योंकि, यहाँपर भुजाकार आदि पदोंकी वृद्धि, हानि और अवस्थानसंज्ञा करके जघन्य और उत्कृष्ट विशेषणों द्वारा उनका विशेष निर्णय किया गया है ।

चूर्णिसू०—पदनिक्षेप अधिकारमें प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ये तीन अनुयोगद्वार हैं ॥३१६॥

विशेषार्थ—किन-किन प्रकृतियोंमें वृद्धि हानि, और अवस्थान होते हैं और किन-किनमें नहीं; इस बातका निरूपण प्ररूपणा-अनुयोगद्वारमें किया गया है । मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंकी वृद्धि, हानि आदि किस जीवके होते हैं, इस प्रकारसे उनके स्वामियोंका वर्णन स्वामित्व अनुयोगद्वारमें किया गया है । इन दोनों अनुयोगद्वारोंके सुगम होनेसे यतिवृषभाचार्यने उनका व्याख्यान नहीं किया है ।

चूर्णिसू०—अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार प्रकृत है । अर्थात् अब पदनिक्षेपसम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है । इससे मिथ्यात्वकी वृद्धि और अवस्थान ये दोनों परस्पर सदृश हो करके भी विशेष अधिक होते हैं । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंको छोड़ करके शेष सर्वकर्मोंकी वृद्धि हानि और अवस्थान जानना चाहिए । किन्तु नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान सबसे कम होते हैं । इससे इन्हीं प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे कम है । इससे इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणित होती है । इससे इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक होती है ॥३१७-३२५॥

चूर्णिसू०—मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान सदृश होते हैं, क्योंकि, इन सबके कालका प्रमाण एक समय है । इसलिए उनमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥३२६॥

३२७. एत्तो वड्ढी[1] । ३२८. मिच्छत्तस्स अत्थि असंखेज्जभागवड्ढी हाणी, संखेज्जभागवड्ढी हाणी, संखेज्जगुणवड्ढी हाणी, असंखेज्जगुणहाणी अवट्ठाणं[2] । ३२९. एवं सव्वकम्माणं । ३३०. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वं[3] सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणवड्ढी अवत्तव्वं च अत्थि ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे वृद्धि नामक अनुयोगद्वारको कहते हैं ॥३२७॥

विशेषार्थ–पहले पदनिक्षेप नामक जो अनुयोगद्वार कह आये हैं, उसीके वृद्धि, हानि और अवस्थानके द्वारा विशेष वर्णन करनेको वृद्धि कहते हैं । इसके समुत्कीर्त्तना, स्वामित्व आदि तेरह अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे चूर्णिकारने यहाँपर समुत्कीर्त्तना, काल, अन्तर और अल्पबहुत्वका ही आगे प्रतिपादन किया है और शेष अनुयोगद्वारोंको सुगम समझकर उनका वर्णन नहीं किया है ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागवृद्धि होती है, असंख्यातभागहानि होती है; संख्यातभागवृद्धि होती है, संख्यातभागहानि होती है; संख्यातगुणवृद्धि होती है, संख्यातगुणहानि होती है, असंख्यातगुणहानि होती है और अवस्थान भी होता है । जिस प्रकार मिथ्यात्वकर्मकी तीन प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है, उसी प्रकार शेष सर्व कर्मोंकी वृद्धि हानि और अवस्थान होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यस्थिति, तथा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यस्थिति होती है ॥३२८-३३०॥

विशेषार्थ–अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यस्थिति कहनेका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्ककी विसंयोजना किए हुए सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व ग्रहण करनेपर जो अनन्तानुबन्धीका नवीन बन्ध एवं सत्त्व होता है, उसका यहाँ सद्भाव पाया जाता है । इस प्रकारके स्थितिसत्त्वको अवक्तव्य कहनेका कारण यह है कि इसकी गणना भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित भंगोंमें नहीं की जा सकती है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्य स्थिति भी होती है । क्योंकि, सर्वजघन्यस्थितिके चरमउद्वेलनाकांडकप्रमाण स्थितिसत्त्ववाले मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करनेपर असंख्यातगुणवृद्धि, तथा दोनों प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित सादिमिथ्यादृष्टि अथवा अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर उनकी अवक्तव्यस्थिति पाई जाती है ।

१ का वड्ढी णाम ? पदणिक्खेवविसेसो वड्ढी । तं जहा–पदणिक्खेवे उक्कस्सिया वड्ढी उक्कस्सिया हाणी उक्कस्समवट्ठाणं च परूविदं, ताणि वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि एगरूवाणि ण होंति, अणेगरूवाणि त्ति जेण जाणावेदि तेण पदणिक्खेवविसेसो वड्ढि त्ति घेत्तव्वं । २ किमवट्ठाणं ? पुव्विल्लट्ठिदिसंतसमाणट्ठिदीणं बंधणमवट्ठाणं णाम । ३ अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइदसम्माइट्ठिणा मिच्छत्ते गहिदे अवत्तव्वं होदि ? पुव्वमविज्जमाणट्ठिदिसंतसमुप्पत्तीदो । × × × वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणमभावेण भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसद्देहि ण वुच्चदि त्ति अवत्तव्वब्भुवगमादो । जयध०

३३१. एगजीवेण कालो। ३३२. मिच्छत्तस्स तिविहाए वड्ढीए जहण्णेण एगसमओ। ३३३. उक्कस्सेण बे समया। ३३४. असंखेज्जभागहाणीए जहण्णेण एगसमओ। ३३५. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

चूर्णिसू०–अब एक जीव-सम्बन्धी उक्त वृद्धि, हानि आदिके कालको कहते हैं–मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि, इन तीनों प्रकार-की वृद्धिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है ॥३३१-३३३॥

विशेषार्थ–अद्धाक्षयसे अथवा संक्लेशक्षयसे किसी भी जीवके अपने विद्यमान स्थितिसत्त्वके ऊपर एक समय बढ़ाकर स्थितिबन्ध करके द्वितीय समयमें अल्पतर अथवा अव-स्थितविभक्तिके करनेपर उक्त तीनों वृद्धियोंके होनेका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मकी उक्त तीनों प्रकारकी वृद्धिका उत्कृष्टकाल दो समय कहा है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–कोई एक एकेन्द्रिय जीव एक स्थितिको बांधता हुआ विद्यमान था। उस स्थितिके कालक्षयसे एक समय असंख्यातभागवृद्धिप्रमाण स्थितिको बांधकर फिर भी उसके द्वितीय समयमें संक्लेशक्षयसे असंख्यातभागवृद्धिप्रमाण स्थितिबन्धकर तृतीय समयमें अल्पतर अथवा अवस्थित स्थितिबन्धके करनेपर असंख्यातभागवृद्धिका दो समय-प्रमाण उत्कृष्टकाल लब्ध हो जाता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रियादि जीवोंके भी दो समयोंकी प्ररूपणा जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है ॥३३४-३३५॥

विशेषार्थ–सम-स्थितिको बांधनेवाले किसी जीवके पुनः विद्यमान स्थितिसत्त्वसे नीचे एक समय उतर करके स्थितिबन्ध कर तदनन्तर उपरिम समयमें विद्यमान स्थितिसत्त्वके समान स्थितिबन्धके करनेपर असंख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समयमात्र पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागहानिका उत्कृष्टकाल सातिरेक एकसौ तिरेसठ सागरोपम है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–वृद्धि अथवा अवस्थित स्थितिविभक्तिमें विद्यमान कोई एक जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक अल्पतरस्थितिविभक्तिको करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः पूर्वमें बतलाये गये क्रमसे दो वार छ्यासठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण कर तत्पश्चात् इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले ग्रैवेयक देवोंमें उत्पन्न हो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ अपनी आयुको पूरी करके मरकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अन्त-र्मुहूर्तके पश्चात् ही संक्लेशसे पूरित हो भुजाकारस्थितिबन्धको प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक एकसौ तिरेसठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्टकाल होता है। उपर्युक्त प्रकारसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका उत्कृष्टकाल बतलानेके पश्चात् जयधवलाकार कहते हैं कि एक सौ तिरेसठ सागरोपमकालको जो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक कहा गया है, वह कम है, अतः उसे न ग्रहणकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक कालको ग्रहण करना चाहिए। उसके लानेके लिए वे कहते हैं कि दो वार छ्यासठ सागरोपम परिभ्रमण करनेके पूर्व विवक्षित

३३६. संखेज्जभागहाणीए जहण्णेण [1]एगसमओ। ३३७. उक्कस्सेण जहण्णमसंखेज्जयं तिरूवूणयमेत्तिए समए। ३३८. संखेज्जगुणहाणि-असंखेज्जगुणहाणीणं जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। ३३९. अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति? ३४०. जहण्णेण एगसमओ। ३४१. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

जीव भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँपर वेदक-प्रायोग्य दीर्घ-उद्वेलनकालप्रमित आयुके शेष रहनेपर प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहणकर और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालको बिताकर अपनी आयुके अन्तमें वेदक-सम्यक्त्वको ग्रहण करके देवोंमें उत्पन्न हुआ और फिर पूर्वके समान एक सौ तिरेसठ सागरकाल तक देव और मनुष्योंमें परिभ्रमण करके अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहाँपर भुजाकारबन्ध किया।[1] इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एकसौ तिरेसठ सागरोपम मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका उत्कृष्टकाल सिद्ध हो जाता है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी संख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन रूपसे कम जघन्यपरीतासंख्यातके समयप्रमाण है ॥३३६-३३७॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहके क्षपणकालमें अथवा अन्य समय पल्योपमके संख्यातवें भाग-प्रमाण स्थितिखंडोंके घात करनेपर संख्यातभागहानिका एक समयमात्र जघन्यकाल पाया जाता है। संख्यातभागहानिका उत्कृष्टकाल तीनरूपसे कम जघन्य परीतासंख्यातके जितने समय होते हैं, तत्प्रमाण है। इसका कारण यह है कि दर्शनमोहके क्षपणकालमें मिथ्यात्वकर्मके चरम स्थितिखंडके घात कर दिये जानेपर तथा उदयावलीमें उत्कृष्ट संख्यातमात्र निषेकस्थितियोंके अवशिष्ट रह जानेपर संख्यातभागहानिका प्रारम्भ होता है। वहाँसे लगाकर तबतक संख्यात-भागहानि होती हुई चली जाती है, जबतक कि उदयावलीमें तीन समयकालवाली दो निषेक-स्थितियाँ अवस्थित रहती हैं। इस प्रकार सूत्रोक्त उत्कृष्टकाल सिद्ध होता है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि, इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३३८॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि दर्शनमोहके क्षपणकालमें पल्योपमप्रमित स्थिति-सत्त्वसे लगाकर दूरापकृष्टिप्रमित स्थितिसत्त्वके अवशिष्ट रहने तक मध्यवर्त्ती अन्तरकालमें पत-मान स्थितिखंडोंके पतित होनेपर संख्यातगुणहानि होती है और उसका काल एक समय ही होता है, क्योंकि चरमफालीको छोड़कर अन्यत्र मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि नहीं होती है। तथा दूरापकृष्टिसे लेकर चरम स्थितिखंडकी चरमफाली तक मध्यवर्ती अन्तरालमें स्थितिखंडों के पतित होनेपर मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातगुणहानि होती है। इसका भी काल एक समय ही है, क्योंकि, स्थितिखंडोंकी चरमफालीमें ही मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि पाई जाती है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मकी अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३३९-३४१॥

३४२. सेसाणं पि कम्माणमेदेण बीजपदेण णेदव्वं ।

३४३. एगजीवेण अंतरं । ३४४. मिच्छत्तस्स असंखेज्जभागवड्ढि-अवट्ठाणट्ठिदिविहत्तियंतरं केवचिरं । ३४५. जहण्णेण एगसमयं । ३४६. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं । ३४७. संखेज्जभागवड्ढि-हाणि-संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिट्ठिदिविहत्तियंतरं जहण्णेण एगसमओ । हाणी अंतोमुहुत्तं । ३४८. उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । ३४९. असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिविहत्ति-अंतरं जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ३५०. असंखेज्जभागहाणिट्ठिदिविहत्तियंतरं जहण्णेण एगसमओ । ३५१. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ३५२. सेसाणं कम्माणमेदेण बीजपदेण अणुमग्गिदव्वं ।

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि भुजाकार अथवा अल्पतर स्थितिविभक्तिको करके जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थितविभक्ति करनेपर सूत्रोक्त जघन्य और उत्कृष्टकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—जिस प्रकारसे मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागहानि-वृद्धि आदिके जघन्य और उत्कृष्टकालोंकी प्ररूपणा की है उसी प्रकारसे शेष कर्मोंकी भी हानि और वृद्धियोंके जघन्य तथा उत्कृष्ट कालोंको इसी उपर्युक्त बीजपदके द्वारा जान लेना चाहिए ॥३४२॥

चूर्णिसू०—अब उक्त वृद्धि, हानि आदि-सम्बन्धी अन्तरका एक जीवकी अपेक्षा निरूपण किया जाता है—मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थानस्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है ॥३४३-३४५॥

विशेषार्थ—क्योंकि, असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थानको पृथक्-पृथक् करनेवाले दो जीवोंके द्वितीय समयमें विवक्षित पदके विरुद्ध पदमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो तृतीय समयमें पुनः विवक्षित पदसे परिणत होनेपर एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्यसे अधिक एकसौ तिरेसठ सागर है ॥३४६॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि उक्त पद-परिणत जीवोंके असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानियोंके उत्कृष्टकालके साथ अन्तरको प्राप्त होकर पुनः विवक्षित पदसे परिणत होनेपर सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०-मिथ्यात्वकर्मकी संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि, इन स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि, इन स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इन सब स्थितिविभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥३४७-३४८॥

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मकी असंख्यातगुणहानिस्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिस्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार शेष कर्मोंकी वृद्धि और हानि-सम्बन्धी अन्तरकालका भी इसी उपर्युक्त बीजपदसे अनुमार्गण करना चाहिए ॥३४९-३५२॥

३५३. अप्पाबहुअं । ३५४. मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिकम्मंसिया । ३५५. संखेज्जगुणहाणिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा । ३५६. संखेज्जभागहाणिकम्मंसिया संखेज्जगुणा । ३५७. संखेज्जगुणवड्ढिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा । ३५८. संखेज्जभागवड्ढिकम्मंसिया संखेज्जगुणा । ३५९. असंखेज्जभागवड्ढिकम्मंसिया अणंतगुणा । ३६०. अवट्ठिदकम्मंसिया असंखेज्जगुणा । ३६१. असंखेज्जभागहाणिकम्मंसिया संखेज्जगुणा । ३६२. एवं बारसकसाय-णवणोकसायाणं । ३६३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिकम्मंसिया । ३६४. अवट्ठिदकम्मं-

---

चूर्णिसू०—अब मोहप्रकृतियोंकी वृद्धि-हानिरूप स्थितिविभक्तिका अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वकर्मकी स्थितिविभक्तिके असंख्यातगुणहानि करनेवाले जीव आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । क्योंकि, दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं । असंख्यातगुणहानि करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणहानि करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । क्योंकि, मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि करनेवाले जीव जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागप्रमित संज्ञी पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । संख्यातगुणहानि करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागहानि करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं ॥३५३-३५६॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि तीव्र विशुद्धिसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा मध्यम विशुद्धिसे परिणत जीव संख्यातगुणित होते हैं । दूसरी बात यह है कि मिथ्यात्वकर्मकी स्थितिविभक्ति-सम्बन्धी संख्यातगुणहानिको संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही करते हैं, किन्तु संख्यातभागहानिको तो संज्ञी पंचेंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीव भी करते हैं, इसलिए संख्यातगुणहानिविभक्ति करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागहानिविभक्ति करनेवाले जीव संख्यातगुणित सिद्ध होते हैं ।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मकी संख्यातभागहानि करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणवृद्धि करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। मिथ्यात्वकी संख्यातगुणवृद्धि करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागवृद्धि करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं । मिथ्यात्वकी संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंसे असंख्यातभागवृद्धि करनेवाले जीव अनन्तगुणित हैं । मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। मिथ्यात्वकी अवस्थित-विभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं । जिस प्रकारसे मिथ्यात्वकर्मकी वृद्धि, हानि और अवस्थित स्थितिविभक्तिका अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और नव नोकषायोंका वृद्धि, हानि और अवस्थानसम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥३५७-३६२॥

अब सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी वृद्धि-हानिका अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव आगे कहे जानेवाले सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । असंख्यातगुणहानिवाले

सिया असंखेज्जगुणा। ३६५. असंखेज्जभागवड्ढिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा। ३६६. असंखेज्जगुणवड्ढिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा। ३६७. संखेज्जगुणवड्ढिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा। ३६८. संखेज्जभागवड्ढिकम्मंसिया संखेज्जगुणा। ३६९. संखेज्जगुणहाणिकम्मंसिया संखेज्जगुणा। ३७०. संखेज्जभागहाणिकम्मंसिया संखेज्जगुणा। ३७१. अवत्तव्वकम्मंसिया असंखेज्जगुणा। ३७२. असंखेज्जभागहाणिकम्मंसिया असंखेज्जगुणा। ३७३. अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वकम्मंसिया। ३७४. असंखेज्जगुणहाणिकम्मंसिया संखेज्जगुणा। ३७५. सेसाणि पदाणि मिच्छत्तभंगो।

३७६. ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणं परूवणा अप्पाबहुअं च। ३७७. परूवणा। ३७८. मिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि उक्कस्सियं ट्ठिदिमादिं कादूण जाव एइंदियपाओग्गकम्मं जहण्णयं ताव णिरंतराणि अत्थि।

जीवोंसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीवोंसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीवोंसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। संख्यातगुणवृद्धिवाले जीवोंसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणित हैं। संख्यात भागवृद्धिवालोंसे संख्यातगुणहानिवाले जीव संख्यातगुणित हैं। संख्यातगुणहानिवालोंसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणित हैं। संख्यातभागहानिवालोंसे अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवालोंसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३६३-३७२॥

अब अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका वृद्धि-हानि-सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं–

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी अवक्तव्यस्थितिविभक्ति करनेवाले जीव आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीवोंसे असंख्यातगुणहानि करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं। शेष पदोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए ॥३७३-३७५॥

विशेषार्थ–इस सूत्रसे सूचित पदोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार है–अनन्तानुबन्धीकी असंख्यातगुणहानि करनेवालोंसे संख्यातगुणहानि करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातभागहानि करनेवाले संख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यात गुणवृद्धि करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। इससे संख्यातभागवृद्धि करनेवाले संख्यातगुणित हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि करनेवाले अनंतगुणित हैं। इनसे अवस्थितविभक्ति करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। इनसे असंख्यातभागहानि करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं।

चूर्णिसू०-अब मोहकर्मके स्थितिसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा और अल्पबहुत्व कहते हैं। प्ररूपणा इस प्रकार है–मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको आदि करके एकेन्द्रिय-प्रायोग्य जघन्य कर्मका स्थितिसत्त्व प्राप्त होने तक निरन्तर मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मस्थान होते हैं ॥३७६-३७८॥

३७९. अण्णाणि पुण दंसणमोहक्खवयस्स अणियट्टिपविट्ठस्स जम्हि ट्ठिदिसंतकम्ममेइंदियकम्मस्स हेट्ठदो जादं तत्तो पाए अंतोमुहुत्तमेत्ताणि ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि लब्भंति । ३८०. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि सत्तरिसागरोपमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । ३८१. अपच्छिमेण उव्वेलणकंडएण च ऊणाओ एत्तियाणि ट्ठाणाणि ।

विशेषार्थ–मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण होती है और इसका सत्त्व तीव्र संक्लेश-परिणामोंसे मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट बन्ध करनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथम समयमें पाया जाता है । यह मिथ्यात्वका सर्वोत्कृष्ट प्रथम स्थितिसत्कर्मस्थान है । एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण बन्ध करनेवाले मिथ्यादृष्टिके दूसरा स्थितिसत्कर्मस्थान होता है । दो समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण बन्ध करनेवाले मिथ्यादृष्टिके तीसरा स्थितिसत्कर्मस्थान होता है । इस प्रकार एक-एक समय कम करनेपर चौथा, पाँचवाँ आदि स्थान होते जाते हैं । यह क्रम तब तक निरन्तर जारी रखना चाहिए जबतक कि मिथ्यात्वका सर्वजघन्य स्थितिबन्ध प्राप्त न हो जाय । मिथ्यात्वकर्मके सर्वजघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम एक सागरोपम है और वह अतिहीन संक्लेश-परिणामवाले एकेन्द्रिय जीवके पाया जाता है । कहनेका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लगाकर सर्वजघन्य स्थितिबन्ध तक एक-एक समय कम करनेपर जितने स्थितिके भेद होते हैं, उतने ही मिथ्यात्वके स्थिति-सत्कर्मस्थान होते हैं । इनका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम एक सागरोपमसे हीन सत्तर सागरोपमके जितने समय होते हैं, उतना है ।

ये उपर्युक्त स्थितिसत्कर्मस्थान मिथ्यात्वकर्मका बन्ध करनेवाले जीवोंके पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त ऐसे और भी मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मस्थान हैं, जो कि मिथ्यात्वकर्मके बन्धसे रहित, किन्तु मिथ्यात्वकी सत्ता रखनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके पाये जाते हैं । उनका निरूपण करनेके लिए यतिवृषभाचार्य उत्तरसूत्र कहते हैं –

चूर्णिसू०–इनके अतिरिक्त मिथ्यात्वकर्मके अन्य भी स्थितिसत्कर्मस्थान होते हैं, जो कि अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए दर्शनमोह-क्षपकके जिस समयमें मिथ्यात्वका स्थिति-सत्कर्म एकेन्द्रिय जीवके बन्ध-प्रायोग्य स्थितिसत्कर्मके नीचे हो जाता है, उस समय पाये जाते हैं । वे अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं, उतने प्रमाण होते हैं ॥३७९॥

अब सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थितिसत्कर्म स्थान कहते हैं–

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों कर्मोंके स्थितिसत्कर्म-स्थान अन्तर्मुहूर्तसे कम सत्तरकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण होते हैं । तथा अन्तिम उद्वेलना-कांडकसे भी न्यून होते हैं ॥३८०-३८१॥

विशेषार्थ–सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके स्थितिसत्त्वस्थान केवल अन्तर्मुहूर्त-

३८२. जहा मिच्छत्तस्स तहा सेसाणं कम्माणं ।

३८३. अभवसिद्धियपाओग्गे जेसिं कम्मंसाणमग्गट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं जहण्णगं *ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं तेसिं कम्मंसाणं ठाणाणि बहुआणि ।

से ही कम नहीं होते हैं—किन्तु चरम उद्वेलनाकांडकसे भी कम होते हैं । क्योंकि, चरम उद्वेलनाकांडककी चरम फालीप्रमित स्थितियोंका युगपत् पतन होनेसे उनके स्थान-सम्बन्धी विकल्प नहीं पाये जाते हैं । अतएव एक अन्तर्मुहूर्त और चरम उद्वेलनाकांडकका जितना प्रमाण है उससे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम कालके जितने समय होते हैं, उतने सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—जिस प्रकारसे मिथ्यात्वकर्मके स्थितिसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा की है उसी प्रकारसे शेष कर्मोंके अर्थात् सोलह कपाय और नव नोकषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥३८२॥

अब उपर्युक्त विधानसे उत्पन्न हुए स्थितिसत्कर्मस्थानोंके अल्पबहुत्व साधन करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—अभव्यसिद्धिक जीवके प्रायोग्य कर्मोंके उत्कृष्ट स्थिति और अनुभागको बाँधनेवाले जिस मिथ्यादृष्टि जीवमें जिन कर्मांशों (कर्म-प्रकृतियों)का अग्र (उत्कृष्ट) स्थिति-सत्कर्म समान है और जघन्य स्थितिसत्कर्म समान नहीं है, किन्तु अल्प है, उन कर्मांशोंके स्थान बहुत होते हैं ॥३८३॥

विशेषार्थ—अभव्योंके बँधने योग्य कर्मोंकी स्थितिसत्त्ववाले जिस मिथ्यादृष्टि जीवमें उत्कृष्टस्थिति सत्कर्मके समान होते हुए भी जघन्य स्थितिसत्कर्म समान नहीं होते हैं, उन कर्मोंके सत्कर्मस्थान बहुत होनेका कारण यह है कि ऊपरकी अपेक्षा नीचे सत्कर्मस्थान अधिक पाये जाते हैं । इसका उदाहरण इस प्रकार है—कोई एक एकेन्द्रिय जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन चार बटे सात ($\frac{4}{7}$) सागर-प्रमाण कषायोंकी उत्कृष्टस्थितिको बाँधता हुआ विद्यमान था, उसने बन्धावलीकालको बिताकर कषायोंकी उक्त उत्कृष्ट स्थितिको नवों नोकषायोंके ऊपर संक्रमित कर दिया, तब उसके कषाय और नोकषाय दोनोंके ही उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मस्थान सदृश ही पाये जाते हैं । अब जघन्य स्थितिसत्कर्मस्थानोंकी विसदृशताका स्पष्टीकरण करते हैं—किसी एकेन्द्रिय जीवमें कषायोंके जघन्य स्थितिसत्कर्मके होनेपर उसने पुरुषवेद, हास्य और रति इन तीन नोकषायोंका एक साथ बन्ध प्रारम्भ किया । बन्ध प्रारम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर हास्य और रतिके बन्ध-कालका संख्यातवां भाग व्यतीत होनेपर पुरुषवेदका बन्ध-काल समाप्त हो गया और तदनन्तर समयमें ही उसने हास्य और रतिके साथ स्त्रीवेदका बन्ध प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार बन्ध प्रारम्भ कर पुरुषवेदके बन्धकाल

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जहण्णेगट्ठिदिसंतकम्मं' ऐसा पाठ मुद्रित है । पर जयधवला टीकासे उसकी पुष्टि नहीं होती । अतः 'जहण्णगं' ऐसा ही पाठ होना चाहिए । (देखो पृ० ५११ पं० १९)

३८४. इमाणि अण्णाणि अप्पाबहुअस्स साहणाणि कायव्वाणि । ३८५. तं जहा । सव्वत्थोवा चरित्तमोहणीयक्खवयस्स अणियट्टिअद्धा । ३८६. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । ३८७. चारित्तमोहणीयउवसामयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा ३८८. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । ३८९. दंसणमोहणीयक्खवयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । ३९०. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । ३९१. अणंताणुबंधीणं विसंजोएंतस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । ३९२. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । ३९३. दंसणमोह-

---

से संख्यातगुणित काल तक उनका बन्ध करते हुए स्त्रीवेदका बन्धकाल समाप्त हो गया और तब उसने अनन्तर समयमें नपुंसकवेदका बन्ध प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसके नपुंसकवेदके साथ हास्य और रतिको बाँधते हुए पूर्व बन्धकालसे संख्यातगुणित काल तक बन्ध करनेके अनन्तर हास्य-रतिका बन्धकाल समाप्त हो गया । तब उसने नपुंसकवेदके साथ अरति और शोकका बन्ध प्रारम्भ किया। इस प्रकार नपुंसकवेदके साथ अरति-शोकका बन्ध करते हुए उसके पूर्व बन्धकालसे संख्यातगुणित काल व्यतीत होनेपर नपुंसकवेदका बन्धकाल और अरति-शोकका बन्धकाल, ये दोनों ही एक साथ समाप्त हो गये । उक्त जीवके नोकषायोंके बन्धकालका अल्प-बहुत्व अंकोंकी अपेक्षा इस प्रकार होगा—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे कम २, स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणित ८, हास्य-रतिका बन्धकाल संख्यातगुणित ३२, अरति-शोकका बन्धकाल संख्यातगुणित १२८, और नपुंसकवेदका बन्धकाल विशेष अधिक १५० होगा । चूँकि, सातों नोकषायोंके स्थितिबन्धकाल विसदृश हैं, इसलिए उनके स्थितिसत्त्वस्थान भी सदृश नहीं होते हैं । अतएव यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि मिथ्यादृष्टि जीवमें उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मस्थान समान होते हुए भी जघन्य स्थितिबन्धस्थानोंके विसदृश होनेसे जघन्य स्थितिसत्कर्मस्थान भी विसदृश और अधिक होते हैं ।

उपर्युक्त एक प्रकारसे मोहनीयकर्मके स्थितिसत्कर्मस्थानोंका अल्पबहुत्व साधन करके अब अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्व साधन करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—मोहनीयकर्मके स्थितिसत्कर्मस्थानसम्बन्धी अल्पबहुत्वके ये अन्य भी साधन निरूपण करना चाहिए । वे साधन इस प्रकार हैं—चारित्रमोहनीयकर्मके क्षपण करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल आगे कहे जानेवाले सभी पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । चारित्रमोहनीय-क्षपकके अनिवृत्तिकरण-कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है। चारित्रमोहनीय-क्षपकके अपूर्वकरणकालसे चारित्रमोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है । चारित्रमोहनीयउपशामकके अनिवृत्तिकरण-कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित हैं । चारित्रमोहनीय-उपशामकके अपूर्वकरणकालसे दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपण करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है । दर्शनमोहनीय-क्षपकके अनिवृत्तिकरण-कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है । दर्शनमोह-क्षपकके अपूर्वकरण-कालसे अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी विसंयोजना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका

णीयउवसामयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । ३९४. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।

३९५. एत्तो ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणमप्पाबहुअं । ३९६. सव्वत्थोवा अट्ठण्हं कसायाणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि । ३९७. इत्थि-णवुंसयवेदाणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । ३९८. छण्णोकसायाणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ३९९. पुरिसवेदस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियणि । ४००. कोधसंजलणस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०१. माणसंजलणस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०२. मायासंजलणस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०३. लोभसंजलणस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०४. अणंताणुबंधीणं चदुण्हं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०५. मिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०६. सम्मत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ४०७. सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

काल संख्यातगुणित है । अनन्तानुबन्धी-विसंयोजकके अनिवृत्तिकरणकालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है । अनन्तानुबन्धी-विसंयोजकके अपूर्वकरणकालसे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है । दर्शनमोहनीय-उपशमनके अनिवृत्तिकरण-कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है ॥ ३८४-३९४ ॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे मोहनीयकर्मसम्बन्धी स्थितिसत्कर्मस्थानोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं–अप्रत्याख्यानावरण आदि आठ मध्यम कषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थान आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । आठों मध्यम कषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे स्त्री और नपुंसक, इन दोनों वेदोंके स्थितिसत्कर्मस्थान परस्पर तुल्य होते हुए भी विशेष अधिक हैं । स्त्री और नपुंसकवेदके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे हास्यादि छह नोकषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । छह नोकषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे पुरुषवेदके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । पुरुषवेदके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे क्रोधसंज्वलनकषायके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । क्रोधसंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे मानसंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । मानसंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे क्रोधसंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । लोभसंज्वलनके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे मिथ्यात्वकर्मके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ३९५-४०७ ॥

विशेषार्थ–यहाँ प्रकरणमें उपयोगी समझकर जयधवला टीकाके अनुसार प्रतिपक्ष-बन्धककालको आश्रय करके अभव्यसिद्धिकोंके प्रायोग्य स्थितिसत्कर्मस्थानोंका अल्पबहुत्व

एवं 'तह ट्ठिदीए' त्ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा कदा।

ठिदिविहत्ती समत्ता।

कहते हैं। वह इस प्रकार है–अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंके स्थितिसत्कर्मस्थान आगे कहे जानेवाले सर्वस्थानोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। सोलह कषाय और भय-जुगुप्साके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे नपुंसकवेदके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक है। नपुंसकवेदके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे अरति और शोक प्रकृतिके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं। अरति-शोकके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे हास्य और रति प्रकृतिके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं। हास्य-रतिके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे स्त्रीवेदके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं। स्त्रीवेदके स्थितिसत्कर्मस्थानोंसे पुरुषवेदके स्थितिसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सर्व मार्गणाओंमें आगमके अनुसार अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए।

इस प्रकार चौथी मूलगाथाके 'तह ट्ठिदीए' इस पदके अर्थकी प्ररूपणा की गई।

इस प्रकार स्थितिविभक्ति समाप्त हुई।

---

१ संपहि पडिवक्खबंधगद्धाओ अस्सिदूण अभव्वसिद्धियपाओगट्ठाणाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवाणि सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि। णवुंसयवेदट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। अरदि-सोगट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। हस्स रदीणं ट्ठिदिसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। इत्थिवेदसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। पुरिसवेदसंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। एदमप्पाबहुअं सव्वमग्गणासु जाणिदूण जोजेयव्वं। जयध०

अणुभागविहत्ती

१. एत्तो अणुभागविहत्ती[1] दुविहा-मूलपयडिअणुभागविहत्ती चेव उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती चेव। २. एत्तो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदव्वा।

अनुभागविभक्ति

अब स्थितिविभक्तिकी प्ररूपणाके पश्चात् अनुभागविभक्ति कही जाती है। आत्माके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुए कर्मोंके स्वकार्य करनेकी अर्थात् फल देनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं। इस प्रकारके अनुभागका भेद या विस्तार जिस अधिकारमें प्ररूपण किया गया है, उसे अनुभागविभक्ति कहते हैं। उसके भेद बतलाते हुए चूर्णिकार अनुभागविभक्तिका अवतार करते हैं—

चूर्णिसू०—वह अनुभागविभक्ति वह दो प्रकारकी है—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति ॥१॥

विशेषार्थ—मूल कर्मोंका अनुभाग जिस अधिकारमें कहा जाय, उसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति कहते हैं और जिसमें कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंके अनुभागका निरूपण किया जाय, उसे उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति कहते हैं।

मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिकी प्ररूपणा सुगम है, इसलिए उसका वर्णन न कर केवल सूचना करते हुए यतिवृषभाचार्य उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—इन दोनोंमेंसे पहले मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति कहलाना चाहिए ॥२॥

विशेषार्थ—जिन अनुयोगद्वारोंसे महाबन्धमें अनुभागबन्धका विस्तृत विवेचन किया गया है, तथा प्रस्तुत ग्रन्थमें आगे उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिका विशद वर्णन किया जायगा, उनके द्वारा मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका वर्णन करना चाहिए, ऐसी जो सूचना चूर्णिकारने की है, उसका कुछ स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है। अनुभाग क्या वस्तु है, इस बातके जाननेके लिए सबसे पहले निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणाका जानना आवश्यक है[2]। कर्मोंमें फल

---

१ को अणुभागो ? कम्माणं सगकज्जकरणसत्ती अणुभागो णाम। तस्स विहत्ती भेदे पवंचो जम्हि अहियारे परूविज्जदि, सा अणुभागविहत्ती णाम। जयध०

२ एत्तो अणुभागबंधो दुविधो—मूलपगदिअणुभागबंधो चेव उत्तरपगदिअणुभागबंधो चेव। एत्तो मूलपगदिअणुभागबंधो पुव्वं गमणिज्जं। तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—णिसेगपरूवणा फद्दयपरूवणा य। णिसेगपरूवणदाए अट्ठण्हं कम्माणं देसघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसेगो। उवरि अप्पडिसिद्धं। × × × फद्दयपरूवणदाए अणंताणंताणं अविभागपडिच्छेदाणं समुदयसमागमेण एगो वग्गो भवदि। अणंताणंताणं वग्गाणं समुदयसमागमेण एगा वग्गणा भवदि।

देनेकी मुख्यता या हीनाधिक तारतम्यतासे निषेक दो प्रकारके होते हैं–सर्वघाती और देशघाती। यद्यपि सर्वघाती और देशघातीका भेद घातिया कर्मोंमें ही संभव है, तथापि अघातिया कर्मोंके अनुभागको घातिया कर्मोंसे प्रतिबद्ध मानकर उक्त दो भेद किये गये हैं; क्योंकि अघातिया कर्म भी जीवके ऊर्ध्वगमनत्व आदि प्रतिजीवी गुणोंके घातक होनेसे घातिकर्म-प्रतिबद्ध ही हैं। अघातिया कर्मोंको 'अघाती' संज्ञा देनेका कारण केवल इतना ही है कि वे जीवके अनुजीवी गुणोंका अंशमात्र भी घात करनेमें असमर्थ हैं। निषेकप्ररूपणामें इस प्रकारसे कर्मोंके देशघाती और सर्वघाती निषेकोंका विचार किया गया है। स्पर्धकप्ररूपणामें अनुभागकी मुख्यतासे कर्मोंके स्पर्धकोंका विचार किया गया है। कर्मोंके अनुभागसम्बन्धी सर्व-जघन्य शक्त्यंशको अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। अनन्तानन्त अविभागप्रतिच्छेदोंके समुदायको वर्ग कहते हैं। अनन्तानन्त वर्गोंके समुदायको वर्गणा कहते हैं और अनन्तानन्त वर्गणाओंके समुदायको स्पर्धक कहते हैं। अनुभागविभक्तिके जाननेके लिए निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणाको अर्थपद माना गया है। इस अर्थपदके द्वारा महाबन्धके रचयिता भगवन्त भूतबलिने जिन चौवीस अनुयोगद्वारोंसे कर्मोंके अनुभागबन्धका विस्तृत विवेचन किया है, उन्हीं अनुयोगद्वारोंमें बन्धके स्थानपर 'विभक्ति' पद जोड़कर उच्चारणाचार्यने अनुभागविभक्तिका व्याख्यान किया है। प्रस्तुत ग्रन्थमें केवल एक मोहकर्म ही विवक्षित है, अतः एकमें सन्निकर्ष संभव न होनेसे उन्होंने उसे छोड़कर शेष तेईस अनुयोगद्वारोंसे अनुभागविभक्तिका निरूपण किया है। यतः महाबन्धमें अनुभागका विचार बहुत विस्तारसे किया गया है, अतः पिष्ट-पेषण न हो, इस विचारसे चूर्णिकारने उन्हें न लिखकर व्याख्यानाचार्य या उच्चारणाचार्योंको इस सूत्रके द्वारा केवल सूचना-मात्र कर दी है कि वे तदनुसार उच्चारण कराकर जिज्ञासु शिष्योंको उनका बोध करावें।

[1]मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिके विषयमें जो तेईस अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ संज्ञा, २ सर्वानुभागविभक्ति ३ नोसर्वानुभागविभक्ति, ४ उत्कृष्ट-अनुभागविभक्ति, ५ अनुत्कृष्ट-अनुभागविभक्ति, ६ जघन्य-अनुभागविभक्ति, ७ अजघन्य-अनुभागविभक्ति, ८ सादि-अनुभागविभक्ति, ९ अनादि-अनुभागविभक्ति, १० ध्रुव-अनुभागविभक्ति, ११ अध्रुव-अनुभागविभक्ति, १२ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल,

अणंताणंताणं वग्गणाणं समुदयसमागमेण एगो फद्दयो भवदि। × × × एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा–सण्णा सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो एवं याव अप्पाबहुगे त्ति। भुजगारबंधो पदणिक्खेवो वड्ढिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति। (महाबं०)

१ संपहि एदस्स सुत्तस्स उच्चारणाइरियकयवक्खाणं वत्तइस्सामो। तत्थ इमाणि तेवीसं अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा–सण्णा सव्वाणुभागविहत्ती णोसव्वाणुभागविहत्ती उक्कस्साणुभागविहत्ती अणुक्कस्साणुभागविहत्ती जहण्णाणुभागविहत्ती अजहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणुभागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अधुवाणुभागविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि

१४ अन्तर; १५ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १६ भागाभाग, १७ परिमाण, १८ क्षेत्र, १९ स्पर्शन, २० काल, २१, अन्तर, २२ भाव और २३ अल्पबहुत्व। इनके अतिरिक्त भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान ये चार अर्थाधिकार भी अनुभागविभक्तिमें जानने योग्य बतलाये गये हैं। उक्त अनुयोगद्वारोंसे यहाँपर मोहकर्मकी अनुभागविभक्तिका संक्षेपसे कुछ विचार किया जाता है–

[1](१) **संज्ञाप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके स्वभाव, शक्ति या गुणके अनुसार विशिष्ट नाम रखकर उनके अनुभागका विचार किया गया है। संज्ञाके दो भेद हैं–घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञामें कर्मोंके अनुभागका सर्वघाती और देशघातीके रूपसे विचार किया गया है। जैसे–मोहकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाती होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाती होता है और देशघाती भी होता है। जघन्य अनुभाग देशघाती होता है। अजघन्य अनुभाग देशघाती भी होता है और सर्वघाती भी होता है। स्थानसंज्ञामें कर्मोंके अनुभागका लता, दारु, अस्थि और शैल, इन चार प्रकारके स्थानोंसे विचार किया गया है। जैसे–मोहकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग चतुःस्थानीय होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग चतुःस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है, द्विस्थानीय होता है और एकस्थानीय होता है। जघन्य अनुभाग एकस्थानीय होता है। अजघन्य अनुभाग एकस्थानीय भी होता है, द्विस्थानीय भी होता है, त्रिस्थानीय भी होता है और चतुःस्थानीय भी होता है।

[2](२-३) **सर्वानुभागविभक्ति-नोसर्वानुभागविभक्ति**–इन अनुयोगद्वारोंमें कर्मोंके

भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि। सण्णियासो णत्थि, एक्किस्से पयडीए तदसंभवादो। भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढिविहत्तिट्ठाणाणि चेदि अण्णे चत्तारि अत्थाहियारा होंति। जयध०

१(१) **सण्णापरूवणा**–सण्णापरूवणदाए तत्थ सण्णा दुविहा–घादिसण्णा ठाणसण्णा य। घादिसण्णा चदुण्हं घादीणं उक्कस्सअणुभागबंधो सव्वघादी। अणुक्कस्सअणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा। जहण्णअणुभागबंधो देसघादी। अजहण्णओ अणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा। ××× ठाणसण्णा य चदुण्हं घादीणं उक्कस्सअणुभागबंधो चदुट्ठाणियो। अणुक्कस्सअणुभागबंधो चदुट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा विट्ठाणियो वा एयट्ठाणियो वा। जहण्णअणुभागबंधो एयट्ठाणिओ। अजहण्णअणुभागबंधो एयट्ठाणियो वा विट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा चदुट्ठाणियो वा (महाबं०)। सण्णा दुविहा घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा चेदि। घादिसण्णा दुविहा–जहण्णा उक्कस्सा चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सअणुभागविहत्ती सव्वघादी। ××× अणुक्कस्सअणुभागविहत्ती सव्वघादी देसघादी वा। ××× जहण्णाणुभागविहत्ती देसघादी। अजहण्णाणुभागविहत्ती देसघादी सव्वघादी वा। ××× ठाणसण्णा दुविहा-जहण्णिया उक्कस्सिया चेदि। उक्कस्सियाए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागट्ठाणं चदुट्ठाणियं। अणुक्कस्साणुभागट्ठाणं चदुट्ठाणियं तिट्ठाणियं विट्ठाणियं एगट्ठाणियं वा। ××× जहण्णियाए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्ती एगट्ठाणिया। अजहण्णाणुभागविहत्ती एगट्ठाणिया विट्ठाणिया तिट्ठाणिया चउट्ठाणिया वा। जयध०

२ (२-३) **सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा**–यो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–

सर्व अनुभाग और नोसर्व अर्थात् सर्वसे कम अनुभागका विचार किया गया है। जिस कर्ममें अनुभाग-सम्बन्धी सर्व स्पर्धक पाये जाते हैं, वह सर्वानुभागविभक्ति है और जिसमें उससे कम स्पर्धक पाये जावें, उसे नोसर्वानुभागविभक्ति कहते हैं। मोहनीयकर्ममें सर्वानुभाग और नोसर्वानुभाग दोनों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

[1](४-५) **उत्कृष्टअनुभागविभक्ति-अनुत्कृष्टअनुभागविभक्ति**–इन अनुयोगद्वारोंमें कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका विचार किया गया है। जिस कर्ममें सर्वोत्कृष्ट अनुभाग पाया जावे, उसे उत्कृष्टअनुभागविभक्ति कहते हैं और जिसमें उससे कम अनुभाग पाया जावे, उसे अनुत्कृष्टअनुभागविभक्ति कहते हैं। मोहनीयकर्ममें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

[2](६-७) **जघन्यानुभागविभक्ति-अजघन्यानुभागविभक्ति**–इन अनुयोगद्वारोंमें कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका विचार किया गया है। जिस कर्ममें सबसे जघन्य अनुभाग पाया जावे, वह जन्घयानुभागविभक्ति है और जिसमें जघन्यसे उपरिवर्ती अनुभाग पाया जावे, उसे अजघन्यानुभागविभक्ति कहते हैं। मोहनीयकर्ममें जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

[3](७-१९) **सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवअनुभागविभक्ति**–इन अनुयोगद्वारोंमें कर्मोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागोंका सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव रूपसे

ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा। सव्वे अणुभागे बंधदि त्ति सव्वबंधो। तदो ऊणियं अणुभागं बंधदि त्ति णोसव्वबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वफद्दयाणि सव्वविहत्ती। तदूणं णोसव्वविहत्ती। जयध०

१ (४-५) **उक्कस्स-अणुक्कस्सबंधपरूवणा**–यो सो उक्कस्सबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सियं अणुभागं बंधदि त्ति उक्कस्सबंधो। तदो ऊणियं बंधदि त्ति अणुक्कस्सबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। उक्कस्साणुक्कस्साणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वुक्कस्सओ अणुभागो उक्कस्सविहत्ती। तदूणमणुक्कस्सविहत्ती। जयध०

२ (६-७) **जहण्ण-अजहण्णबंधपरूवणा**–यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं जहण्णबंधो अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णयं अणुभागं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदो उवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वजहण्णओ अणुभागो जहण्णविहत्ती। तदुवरिमा अजहण्णविहत्ती। (जयध०)

३ (८-११) **सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा**–यो सो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम, तस्स इमो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण चदुण्हं घादीणं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो किं सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो वा? सादिय-अद्धुवबंधो। अजहण्णबंधो किं सादि० ४? सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा (महाबं०)। सादि-अणादि-

विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागविभक्ति सादि और अध्रुव है। अजघन्यअनुभागविभक्ति सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारकी है।

[1](१२) एकजीवापेक्षया स्वामित्व–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके उत्कृष्ट और जघन्य अनुभागके स्वामियोंका एकजीवकी अपेक्षासे विचार किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका स्वामी कौन है ? संज्ञी, पंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार और जागृत उपयोगी, उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामवाला ऐसा किसी भी गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्धकर जबतक उसका घात नहीं करता है, तब तक वह उसका स्वामी है। फिर चाहे वह एकेन्द्रिय हो, या द्वीन्द्रिय हो, या त्रीन्द्रिय हो, या चतुरिन्द्रिय हो, या असंज्ञिपंचेन्द्रिय हो, या संज्ञिपंचेन्द्रिय देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच, हो। हाँ, उसे असंख्यातवर्षायुष्क भोगभूमियाँ मनुष्य-तिर्यंच, और मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होनेवाला आनतादि उपरिम-कल्पवासी देव नहीं होना चाहिए। मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका स्वामी कौन है ? चरमसमयवर्ती सकषायी क्षपक मनुष्य है।

[2](१३) काल–इस अनुयोगद्वारमें सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग-

धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्स-अणुक्कस्स जहण्णअणुभागविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? सादि-अद्धुवा। अजहण्णअणुभागविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? (सादिया) अणादिया धुवा अद्धुवा वा।

१ (१२) सामित्तपरूवणा–एत्तो सामित्तस्स कदे तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि–पच्चयाणुगमो विवागदेसो पसत्थापसत्थपरूवणा चेदि। पच्चयाणुगमेण छण्हं कम्माणं मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं ××× । वेदणीयस्स मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं जोगपच्चयं। विवागदेसेण छण्हं कम्माणं जीवविवागपच्चयं। आयुग० भवविवाग०। णामस्स जीवविवाग० पोग्गलविवाग० खेत्तविवाग०। पसत्थापसत्थपरूवणदाए चत्तारि घादीओ अप्पसत्थाओ। वेदणीय-आयुग-णाम-गोदपयडीओ पसत्थाओ अप्पसत्थाओ य। ××× एदेण अट्ठपदेण सामित्तं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण णाणावरण–दंसणावरण–मोहणीय–अंतराइगाणं उक्कस्सअणुभागबंधो कस्स ? अण्णदरस्स चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिमिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार–जागारुवजोगजुत्तस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्सगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। ××× जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण × × × मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागबंधो कस्स ? अण्णदरस्स खवगस्स अणियट्टिबादरसांपरायस्स चरिमे जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स (महाबं०)। सामित्तं दुविहं–जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि, ताव सो एइंदियो वा बेइंदियो वा तेइंदियो वा चउरिंदियो वा असण्णिपंचिंदियो वा (सण्णिपंचिंदियो वा) अण्णदरस्स जीवस्स अण्णदरगदीए वट्टमाणस्स। असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख–मणुस्सेसु मणुसोववादियदेवेसु च णत्थि। अणुक्कस्साणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स। जयध०

२ (१३) कालपरूवणा—कालं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो

विभक्ति कितने समय तक होती है, इस बातका एक जीवकी अपेक्षासे विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित अनन्तकाल है। मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त है।

[1](१४) अन्तर–इस अनुयोगद्वारमें एक जीवकी अपेक्षासे कर्मोंके उत्कृष्ट और जघन्य अनुभागविभक्तिके अन्तरकालका विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहनीयकर्म विवक्षित है, उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित अनन्तकाल है। जघन्यानुभागविभक्तिवालोंका अन्तर नहीं होता है।

[2](१५) नानाजीवापेक्षया भंग-विचय–इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य अनुभागकी विभक्ति-अविभक्ति करनेवाले जीवोंका

णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण घादिचउक्काणं उक्कस्साणुभागबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमयं। उक्कस्सेण बेसमयं। अणुक्कस्साणुभागबंधो जहण्णेण एगसमयं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ××× जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण घादिचउक्काणं गोदस्स च जहण्णाणुभागबंधो जहण्णुक्कस्सेण एगसमयं। अजहण्णाणुभागबंधो तिभंगो (महाबं०) कालो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणुक्कस्साणुभागविहत्ती जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्णाणुभागविहत्ती अणादि–अपज्जवसिदो अणादि–सपज्जवसिदो सादि सपज्जवसिदो वा। जयध०

१ (१४) अंतरपरूवणा—अंतरं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण घादिचउक्काणं उक्कस्साणुभागमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमयं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्कस्समणुभागमंतरं जहण्णेण एगसमयं। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ××× जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण घादिचदुक्काणं जहण्णाणुभागबंधस्स णत्थि अंतरं। अजहण्णाणुभागबंधो जहण्णेण एगसमयं। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं (महाबं०)। अंतराणुगमेण दुविहमंतरं–जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्कस्साणुभागविहत्ती जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तियाणं णत्थि अंतरं। जयध०

२ (१५) णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा—णाणाजीवेहि भंगविचयं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं तत्थ इमं अट्ठपदं–जे उक्कस्साणुभागबंधगा ते अणुक्कस्सअणुभागस्स अबंधगा। जे अणुक्कस्साणुभागबंधगा ते उक्कस्साणुभागस्स अबंधगा। एवं पगदी बंधदि, तेसु पगदं, अबंधगेसु अव्ववहारो। एदेण अट्ठपदेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा

विचार किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके कदाचित् सर्व जीव अविभक्तिक हैं १। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिक होते हैं और कोई एक जीव विभक्तिक होता है २। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिक और अनेक जीव विभक्तिक होते हैं ३। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-सम्बन्धी तीन भंग पाये जाते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके भी तीन भंग होते हैं। केवल इतना भेद है कि उनके भंग कहते समय विभक्ति पद पहले कहना चाहिए। इसी प्रकारसे मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्ति-सम्बन्धी भी तीन-तीन भंग होते हैं।

[1](१६) **भागाभागानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके भाग और अभागका विचार किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं? अनन्तवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं? अनन्त बहुभाग हैं। जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग हैं और अज-घन्यानुभागविभक्तिवाले सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं।

[2](१७) **परिमाणानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें विवक्षित कर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वाले जीव एक साथ कितने पाये जाते हैं, अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले कितने पाये जाते हैं, इस प्रकारसे उनके परिमाणका विचार किया गया है। जैसे–मोहकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले

य अबंधगो य, सिया अबंधगा य अबंधगा य। अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे बंधगा य, सिया बंधगा य अबंधगो य, सिया बंधगा य अबंधगा य। ××× जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण तत्थ इमं अट्ठपदं उकस्सभंगो। घादिचउक्काणं गोदस्स च जहण्ण-अजहण्णाणुभागस्स भंग-विचयो उक्कस्सभंगो (महाबं०)। णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च०२, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ३। एवमणुक्कस्सं पि, णवरि विहत्ती पुव्वं भाणिदव्वा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया ३। अजहण्णस्स सिया सव्व जीवा विहत्तिया १, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च २, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ३। जयध०

१ (१६) **भागाभागपरूवणा**–भागाभागाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिया सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण जहण्णाणुभागविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अजहण्णाणुभागविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। जयध०

२ (१७) **परिमाणपरूवणा**–परिमाणाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघेण उक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडिया? असंखेज्जा।

कितने हैं ? अनन्त हैं। जघन्य अनुभागविभक्तिवाले कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले कितने हैं ? अनन्त हैं।

[1](१८) **क्षेत्रानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके वर्तमान-कालिक क्षेत्रका विचार किया गया है। जैसे-मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं। इसी प्रकार जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागमें और अजघन्यानुभागविभक्तिवाले जीव सर्वलोकमें रहते हैं।

[2](१९) **स्पर्शनानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके त्रैकालिक क्षेत्रका विचार किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग, देशोन आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग, अथवा सर्वलोक स्पृष्ट किया है। जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट किया है और अजघन्यानुभागविभक्तिवालोंने सर्वलोक स्पृष्ट किया है।

[3](२०) **कालानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके कालका अनुगम किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातमें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट-अनुभागविभक्तिवाले जीव सर्व

अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडिया ? अणंता। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तिया केत्तिया ? संखेज्जा। अजहण्णाणुभागविहत्तिया दव्व-पमाणाणुगमेण केवडिया ? अणंता। जयध०

१ (१८) **खेत्तपरूवणा**–खेत्ताणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागे। अजहण्णाणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे। जयध०

२ (१९) **पोसणपरूवणा**–पोसणाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा, सव्वलोगो वा। अणुक्कस्साणुभागविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो। × ×, × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीस्स जहण्णाणुभागविहत्तिएहिं केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अजहण्णाणुभाग-विहत्तिएहिं केवडियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो। जयध०

३ (२०) **कालपरूवणा**–कालाणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा

काल पाये जाते हैं। जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सर्व काल पाये जाते हैं।

[1](२१) **अन्तरानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालका अनुमार्गण किया गया है। जैसे-मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, उतने समयप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कभी अन्तर नहीं होता। जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कभी अन्तर नहीं होता।

[2](२२) **भावानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके भावोंका विचार किया है। मोहनीयकर्मके सभी अनुभागविभक्तिवाले जीवोंके औदयिकभाव होता है।

[3](२३) **अल्पबहुत्वानुगम**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि अनुभागविभक्तिवाले जीवोंकी अल्पता और अधिकताका विचार किया गया है। जैसे–मोहनीय-कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं और इनसे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वाले जीव अनन्तगुणित हैं। मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं और उनसे अजघन्यअनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणित हैं।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित चार अनुयोगद्वारोंसे भी अनुभागविभक्तिका विचार किया गया है–

(१) **भुजाकारविभक्ति**–इस अनुयोगद्वारमें भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका समुत्कीर्तना, स्वामित्व आदि स्थितिविभक्तिमें बतलाये गये तेरह अनुयोगद्वारोंसे विचार किया गया है।

(२) **पदनिक्षेप**–इस अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्वके द्वारा भुजाकार अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके द्वारा विशेष विचार किया गया है।

समया। अजहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। जयध०

१ (२१) **अंतरपरूवणा**–अंतराणुगमो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। अणुक्कस्साणुभागंतरं णत्थि। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाणुभागस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण छम्मासा। अजहण्णाणुभागंतरं णत्थि। जयध०

२ (२२) **भावपरूवणा**–भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइयो भावो।

३ (२३) **अप्पाबहुअपरूवणा**–अप्पाबहुअं दुविहं–जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा मोहणीयस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिया। अणु-क्कस्साणुभागविहत्तिया अणंतगुणा। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा मोहणीयस्स जहण्णाणुभागविहत्तिया जीवा। अजहण्णाणुभागविहत्तिया अणंतगुणा। जयध०

३. उत्तरपयडिअणुभागविहत्तिं वत्तइस्सामो। ४. पुव्वं गमणिज्जा इमा परूवणा।

(३) **वृद्धि**–इस अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तनादि तेरह अनुयोगद्वारोंसे कर्मोंके अनुभागकी षड्गुणी वृद्धि, हानि और अवस्थानका विचार किया गया है।

(४) **स्थानप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें अनुभागविभक्तिके बन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिक अनुभागस्थानोंका प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्वके द्वारा विचार किया गया है।

उपर्युक्त सर्व अनुयोगद्वारोंका आदेशकी अपेक्षा विशेष विवेचन जिज्ञासुजनोंको जयधवला टीकासे जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–अब उत्तरप्रकृति-अनुभागविभक्तिको कहेंगे। उसमें यह आगे कही जानेवाली स्पर्धकप्ररूपणा प्रथम ही जानने योग्य है। क्योंकि उसके विना सर्वघाती और देशघातीका भेद तथा अनुभागके स्थानोंका परिज्ञान नहीं हो सकता है॥ ३-४॥

विशेषार्थ–जीवके सम्यक्त्व आदि गुणोंके एक भाग घात करनेवाले कर्मको देशघाती कहते हैं। उन्हीं सम्यक्त्व आदि गुणोंके सम्पूर्ण रूपसे घात करनेवाले कर्मको सर्वघाती कहते हैं। इन दोनोंका नाम घातिसंज्ञा है। लता, दारु, अस्थि और शैलसमान अनुभागकी शक्तिको अनुभागस्थान कहते हैं। इन चारों दृष्टान्तोंमें जैसे लता (बेल) सबसे कोमल होती है, उसी प्रकार जिस कर्मस्कन्धके अनुभागमें फल देनेकी शक्ति सबसे कोमल, कम या मन्द होती है उसे लतासमान एकस्थानीय अनुभाग कहते हैं। दारु काष्ठ या लकड़ीको कहते हैं। जैसे लतासे दारु कठोर होता है, उसी प्रकार जिस कर्मस्कन्धमें फल देनेकी शक्ति लतास्थानीय अनुभागसे तीव्र या अधिक कठिन होती है, उसे दारुसमान द्विस्थानीय अनुभाग कहते हैं। अस्थि नाम हड्डीका है। जैसे दारुसे अस्थि अधिक कठिन होती है, उसी प्रकार जिस कर्मस्कन्धमें अनुभागशक्ति दारुस्थानीय अनुभागसे भी अधिक तीव्र होती है उसे अस्थिसमान त्रिस्थानीय अनुभाग कहते हैं। शैल नाम शिलासमूह या पाषाणका है। जैसे अस्थिसे शैल अत्यन्त कठोर होता है, उसी प्रकार जिस कर्मपिंडमें फल देनेकी शक्ति अस्थिस्थानीय अनुभागसे भी अत्यधिक तीव्र होती है, उसे शैलसमना चतुःस्थानीय अनुभाग कहते हैं। इन चारों अनुभागस्थानोंका नाम स्थानसंज्ञा है। मोहकर्मके अट्ठाईस भेदोंमेंसे किसी कर्मकी अनुभागशक्ति एकस्थानीय होती है, किसीकी द्विस्थानीय, किसीकी एकस्थानीय और द्विस्थानीय, किसी कर्मकी त्रिस्थानीय, किसीकी एकस्थानीय द्विस्थानीय और त्रिस्थानीय होती है। किसी कर्मकी चतुःस्थानीय और किसीकी एकस्थानीय द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होती है। इसका विशद विवेचन आगे सूत्रकार स्वयं करेंगे। इन चारों अनुभागस्थानोंमेंसे लतास्थानीय अनुभागकी सम्पूर्ण और दारुस्थानीय अनुभागकी अनन्त बहुभाग शक्ति देशघाती कहलाती है। उससे ऊपर अर्थात् दारुस्थानीय अनुभागका अनन्तवाँ भाग और अस्थिस्थानीय तथा शैलस्थानीय अनुभागशक्ति सर्वघाती कहलाती है।

५. सम्मत्तस्स पढमं देसघादिफद्दयमादिं कादूण जाव चरिमदेसघादिफद्दगं ति एदाणि फद्दयाणि । ६. सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादि आदिफद्दयमादिं कादूण दारुअसमाणस्स अणंतभागे णिट्ठिदं । ७. मिच्छत्तअणुभागसंतकम्मं जम्मि सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं णिट्ठिदं तदो अणंतरफद्दयमाढत्ता उवरि अप्पडिसिद्धं । ८. बारसकसायाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादीणं दुट्ठाणियमादिफद्दयमादिं कादूण उवरिमप्पडिसिद्धं ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रथम लतास्थानीय सर्व जघन्य देशघाती स्पर्धकको आदि लेकर दारुके अनन्त बहुभागस्थानीय अन्तिम देशघाती सर्वोत्कृष्ट स्पर्धक तक इतने स्पर्धक होते हैं ॥५॥

विशेषार्थ–सम्यक्त्वप्रकृति देशघाती है, अतएव उसकी अनुभागशक्तिके स्पर्धक लतास्थानीय सर्व मन्दशक्तिवाले प्रथम स्पर्धकसे लगाकर दारुस्थानीय अनुभागशक्तिके अनन्त बहुभाग तक स्पर्धकोंका जितना प्रमाण है, वे सब सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धक कहलाते हैं ।

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है और वह अपने आदि स्पर्धकको आदि करके दारुसमान अनुभागके अनन्तवें भाग जाकर उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त होता है ॥६॥

विशेषार्थ–सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति द्विस्थानीय सर्वघाती है, अतएव जहाँपर देशघाती सम्यक्त्वप्रकृतिका सर्वोत्कृष्ट अन्तिम स्पर्धक समाप्त होता है, उसके एक स्पर्धक ऊपरसे अनुभागकी सर्वघाती शक्ति प्रारम्भ होती है और यही सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका सर्व जघन्य सर्वघाती स्पर्धक कहलाता है । इसे आदि लेकर ऊपर जो दारुस्थनीय अनुभागशक्तिका अनन्तवाँ भाग बचा था, उसके उपरितन एक भागको छोड़कर अधस्तन बहुभागके अन्तिम स्पर्धक तक सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुभागशक्तिका सर्वोत्कृष्ट स्थान है । उसके एक स्पर्धक ऊपर जानेपर मिथ्यात्व प्रकृतिका सर्वजघन्य सर्वघाती अनुभाग प्रारम्भ होता है और वहाँसे एक एक स्पर्धक ऊपर बढ़ता हुआ दारुके अवशिष्ट अनन्तवें भागको, तथा अस्थिसमान और शैलसमान स्थानोंके समस्त स्पर्धकोंको उल्लंघनकर अपने उत्कृष्ट स्थानको प्राप्त होता है ।

इसी उपर्युक्त कथनको स्पष्ट करते हुए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–जिस स्थानपर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मस्थान निष्पन्न हुआ है, उसके अनन्तरवर्ती स्पर्धकसे आरंभकर ऊपर शैलस्थानीय अनुभागशक्तिके अन्तिम स्पर्धक प्राप्त होने तक मिथ्यात्वप्रकृतिके अनुभागसत्कर्म अप्रतिषिद्ध अवस्थित हैं, अर्थात् बराबर चले जाते हैं । अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघातियोंके द्विस्थानीय आदि स्पर्धकको आदि करके ऊपर अप्रतिषिद्ध है ॥७-८॥

विशेषार्थ–देशघाती अनुभागके ऊपर जहाँसे सर्वघाती अनुभाग प्रारंभ होता है, वह अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके अनुभागका सर्वजघन्य स्थान है । उससे एक एक स्पर्धक

९. चदुसंजलण-णवणोकसायाणमणुभागसंतकम्मं देसघादीणमादिफद्दयमादिं कादूण उवरि सव्वघादि त्ति अप्पडिसिद्धं ।

१०. तत्थ दुविधा सण्णा–घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा[1] च । ११. ताओ दो वि एक्कदो णिज्जंति । १२. मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादी दुट्ठाणियं । १३. उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियं । १४. एवं बारसकसाय-छण्णोकसायाणं । १५. सम्मत्तस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा ।

ऊपर बढ़ते हुए शैल-समान चतुःस्थानीय स्पर्धक तक उनके अनुभाग-सम्बन्धी स्पर्धक बराबर चले जाते हैं। सूत्रमें 'मिथ्यात्वके द्विस्थानीय आदि स्पर्धकको' न कहकर 'सर्वघातियोंके द्विस्थानीय आदि स्पर्धकको' ऐसा कहनेका कारण यह है कि मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे नीचे भी उक्त बारह कषायोंके अनुभागस्थान पाये जाते हैं। इस प्रकार यह फलितार्थ निकलता है कि जहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागस्थान है, तत्सदृश स्थानसे ही अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके जघन्य अनुभागस्थानका प्रारंभ होता है।

चूर्णिसू०–चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंका अनुभागसत्कर्म देशघातियोंके आदि स्पर्धक सदृश स्पर्धकको आदि करके ऊपर सर्वघाती स्पर्धक तक अप्रतिषिद्ध हैं। अर्थात् लतासमान जघन्य स्पर्धकसे लगाकर ऊपर शैलसमान सर्वघाती स्पर्धक तक इन तेरह प्रकृतियोंके अनुभागसत्कर्मसम्बन्धी स्पर्धक होते हैं ॥९॥

इस प्रकार अनुभागविभक्तिके अर्थपदरूप स्पर्धक-प्ररूपणा करके अब उक्त तेईस अनुयोगद्वारोंमेंसे प्रथम संज्ञानामक अनुयोगद्वारका अवतार करते हैं—

चूर्णिसू०–उन उपर्युक्त अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंमें दो प्रकारकी संज्ञाका व्यवहार है–घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। अब इन दोनोंको एक साथ कहते हैं ॥१०-११॥

विशेषार्थ–संज्ञा, नाम और अभिधान, ये एकार्थक हैं। संज्ञाके दो भेद हैं–घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। जीवके सम्यक्त्व आदि गुणोंको घातनेके कारण घातिसंज्ञा सार्थक है। सर्वघाती और देशघातीके भेदसे इसके दो भेद हैं। अनुभागशक्तिके लता आदिके सम-स्थानीय स्थानोंकी स्थानसंज्ञा है। लता, दारु, अस्थि और शैलके भेदसे स्थानसंज्ञाके चार भेद हैं। इन उपर्युक्त दोनों ही संज्ञाओंको चूर्णिकार आगे एक साथ वर्णन कर रहे हैं।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानीय–दारुस्थानीय है, तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानीय शैलस्थानीय है। इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायों और हास्यादि छह नोकषायोंकी घातिसंज्ञा तथा जघन्य और उत्कृष्ट स्थानसंज्ञा जानना चाहिए। सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभागसत्कर्म देशघाती तथा एकस्थानीय (लतास्थानीय) और द्विस्थानीय (दारुस्थानीय) है।

---

१ एदेसिं मोहाणुभागफद्दयाणं घादि त्ति सण्णा, जीवगुणघायणसीलत्तादो। एदेसिं चेव फद्दयाणं ट्ठाणमिदि सण्णा, लदा-दारु-अट्ठि-सेलाणं सहावम्मि अवट्ठाणादो। जयध०

१६. सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्ठाणियं । १७. एक्कं चेव ट्ठाणं । १८. चदुसंजलणाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी वा देसघादी वा, एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा । १९. इत्थिवेदस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा । २०. मोत्तूण खवगचरिमसमयइत्थिवेदयं । २१. तस्स देसघादी एगट्ठाणियं । २२. पुरिसवेदस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं देसघादी एगट्ठाणियं । २३. उक्कस्साणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियं । २४. णवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादी दुट्ठाणियं । २५. उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चउट्ठाणियं । २६. णवरि खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं ।

सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानीय है। सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका एक ही दारुस्थानीय स्थान है । चारों संज्वलन कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती भी है और देशघाती भी है। तथा एकस्थानीय भी है, द्विस्थानीय भी है, त्रिस्थानीय भी है और चतुःस्थानीय भी है । अर्थात् संज्वलनकषायका अनुभाग लता, दारु, अस्थि और शैल, इन चारों स्थानोंके समान होता है, क्योंकि, संज्वलनकषाय देशघाती और सर्वघाती दोनों रूप है । स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है। तथा वह द्विस्थानीय भी है, त्रिस्थानीय भी है और चतुःस्थानीय भी है । अर्थात् स्त्रीवेदके फल देनेकी शक्ति दारुके अनन्तवें भागसे लेकर शैलसमान तक होती है । केवल चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदक क्षपकको छोड़ करके । क्योंकि उसके स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानीय होता है ॥१२-२१॥

विशेषार्थ—उदयमें आए हुए निषेकको छोड़कर शेष समस्त स्त्रीवेद-सम्बन्धी प्रदेश-सत्कर्मको पर-प्रकृतिरूपसे संक्रमणकर अवस्थित क्षपकको चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदक क्षपक कहते हैं । उसे छोड़कर नीचे सर्व गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती तथा द्विस्थानीय या त्रिस्थानीय या चतुःस्थानीय ही होता है । किन्तु चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदक क्षपकके वह देशघाती और एकस्थानीय होता है और यही स्त्रीवेदके अनुभागसकत्कर्मका सर्व-जघन्य स्थान है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानीय है । क्योंकि पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए और चरमसमयवर्ती सवेदी जीवके द्वारा बाँधे हुए अनुभागसत्कर्मको पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग माना गया है, अतएव वह देशघाती और एकस्थानीय ही होता है । पुरुषवेदका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानीय है । नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानीय है । उसीका उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानीय है । केवल इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए चरमसमयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपकके नपुंसकवेदका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानीय होता है ॥२२-२६॥

२७. एगजीवेण सामित्तं । २८. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? २९. उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ३०. ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा । ३१. असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णत्थि । ३२. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । ३३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? ३४. दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वस्स उक्कस्सयं । ३५. मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? ३६. सुहुमस्स । ३७. हदसमुप्पत्तियकम्मेण[1] अण्णदरो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा अनुभागविभक्तिके स्वामित्वका निरूपण करते हैं–मिथ्यात्वप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागबंध करनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवके होता है । इस प्रकारका जीव मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागको बाँधकर जब तक कांडकघातके द्वारा उसका घात नहीं करता है, तब तक वह जीव उस उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ मरण करके चाहे एकेन्द्रिय हो जाय, या द्वीन्द्रिय, या त्रीन्द्रिय, या चतुरिन्द्रिय, या असंज्ञी पंचेन्द्रिय अथवा संज्ञी पंचेन्द्रिय हो जाय; अर्थात् इनमेंसे किसीमें भी उत्पन्न हो जाय, तो भी वह मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामी रहेगा । किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियाँ तिर्यंच और मनुष्य जीवोंमें, तथा मनुष्योंमें ही उत्पन्न होनेवाले आनत-प्राणत आदि कल्पवासी देवोंमें उसकी उत्पत्ति नहीं होती है । क्योंकि, इनमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं पाया जाता है । इसी प्रकार सोलह कषायों और नव नोकषायोंका स्वामित्व जानना चाहिए; क्योंकि, मिथ्यात्वके स्वामित्वसे इनके स्वामित्वमें कोई विशेषता नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहकर्मके क्षपण करनेवाले जीवको छोड़कर सबके इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है । इसका कारण यह है कि दर्शनमोहनीय-क्षपकके सिवाय अन्य जीवोंमें इन दोनों प्रकृतियोंका अनुभागकांडकघात नहीं होता है ॥२७-३४॥

अब जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वको कहते हैं–

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकर्मका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय जीवके होता है ॥३५-३६॥

इस जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ वह सूक्ष्मनिगोदिया एकेन्द्रिय जीव मरणकर किस-किस जातिके जीवोंमें उत्पन्न हो सकता है, इस बातके बतलानेके लिए चूर्णिकार उत्तर-सूत्र कहते है—

चूर्णिसू०–हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव मरणकर कोई एक

१—हते घातिते समुत्पत्तिर्यस्य तद्धतसमुत्पत्तिकं कर्म । अणुभागसंतकम्मघादिदे जमुव्वरिदं *जहण्णाणुभागसंतकम्मं तस्स हदसमुप्पत्तियकम्ममिदि सण्णा त्ति भणिदं होदि । जयध०*

वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ होदि ।

३८. एवमट्ठकसायाणं। ३९. सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स? ४०. चरिमसमय-अक्खीणदंसणमोहणीयस्स। ४१. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स? ४२. अवणिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स। ४३. अणंताणुबंधीणं जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स? ४४. पढमसमयसंजुत्तस्स। ४५. कोधसंजलणस्स

एकेन्द्रिय, अथवा द्वीन्द्रिय, अथवा त्रीन्द्रिय, अथवा चतुरिन्द्रिय, अथवा असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अथवा संज्ञी पंचेन्द्रिय, अथवा सूक्ष्मकायिक, अथवा बादरकायिक, अथवा पर्याप्तक, अथवा अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी रहता है।। ३७।।

विशेषार्थ—विवक्षित जघन्य अनुभागसत्कर्मके घात करनेपर जो अनुभाग अवशिष्ट रहता है उसे हतसमुत्पत्तिककर्म कहते हैं। इस प्रकारके अनुभागसत्कर्मके साथ वह सूक्ष्म जीव मरणकर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रियोंमें सम्भव बादर-सूक्ष्म, पर्याप्तक-अपर्याप्तक और संज्ञी-असंज्ञी आदि किसी भी जातिके जीवोंमें उत्पन्न हो सकता है। और वहाँपर भी वह मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी रहता है। यहाँपर इतना विशेष जानना चाहिए कि देव, नारकी और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियाँ मनुष्य तिर्यंच जीवोंके मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग नहीं पाया जाता, क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव मरण करके उनमें उत्पन्न नहीं होते, ऐसा नियम है।

चूर्णिसू०—जिस प्रकार मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदि आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी भी प्ररूपणा करना चाहिए। सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है? चरमसमयवर्ती अक्षीणदर्शनमोहनीय कर्मवाले जीवके होता है ।।३८-४०।।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयका क्षपण करते समय अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात भागोंके व्यतीत हो जानेपर मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण कर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको भी अन्तर्मुहूर्तके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण कर आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्वको करके प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागसत्त्वको तबतक बराबर घातता जाता है, जबतक कि वह दर्शनमोह-क्षपण करनेके अन्तिम समयको प्राप्त नहीं हो जाता है। क्योंकि, दर्शनमोह-क्षपण करनेके अन्तिम समयमें ही उसके सम्यक्त्वप्रकृतिका सर्वजघन्य अनुभाग पाया जाता है।

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है? सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण कर उसे अपनीत करनेवाले तथा अन्तिम अनुभागकांडकमें वर्तमान ऐसे जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग पाया जाता है। अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है? प्रथम समयमें संयोजन करने

जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? ४६. खवगस्स चरिमसमयअसंकामयस्स । ४७. एवं माण-मायासंजलणाणं । ४८. लोभसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? ४९. खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स । ५०. इत्थिवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? ५१. खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स । ५२. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? ५३. पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स चरिमसमयअसंकामयस्स । ५४. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? ५५. खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स । ५६. छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? ५७. खवगस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स ।

वाले जीवके होता है ॥४१-४४॥

विशेषार्थ—जो जीव अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः नीचे गिरकर उसका संयोजन करता है, उस जीवके संयोजन करनेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धी कषायका सर्व जघन्य अनुभाग पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—क्रोधसंज्वलन कषायका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरम-समयवर्ती असंक्रामक क्षपकके होता है ॥४५-४६॥

विशेषार्थ—क्रोधकषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले और क्रोधके चरम समय-प्रबद्धकी अन्तिम अनुभागफालीको धारण करके स्थित क्षपकको चरमसमयवर्ती असंक्रामक क्षपक कहते हैं । ऐसे जीवके क्रोधसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्त्व पाया जाता है ।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार मानसंज्वलन और मायासंज्वलन, इन दोनों कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥४७॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार चरम समयवर्ती असंक्रामक क्षपकके क्रोधसंज्वलनके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व बतलाया गया है, उसी प्रकारसे संज्वलन मान और माया के जघन्य स्वामित्वको कहना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि स्वोदयसे अथवा अपने अधस्तनवर्ती कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके उस कषायके अनुभागसत्कर्मका जघन्य स्वामित्व होता है ।

चूर्णिसू०—लोभसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरमसमय-वर्ती सकषायी सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके होता है । स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदक क्षपकके होता है । पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले चरमसमयवर्ती असंक्रामक क्षपकके होता है । नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरमसमयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपकके होता है । हास्यादि छह नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरम अनुभागकांडकमें वर्तमान क्षपकके होता है ॥४८–५७॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म क्षपकश्रेणीमें अपनी उदय-व्युच्छित्तिके कालमें अर्थात् अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, ऐसा जानना चाहिए ।

५८. णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? ५९. असण्णिस्स हदसमुप्पत्तियकम्मेण आगदस्स जाव हेट्ठा संतकम्मस्स बंधदि ताव। ६०. एवं बारस-कसाय-णवणोकसायाणं। ६१. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? ६२. चरिम-समयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स। ६३. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णत्थि। ६४. अणंता-णुबंधीणमोघं। ६५. एवं सव्वत्थ णेदव्वं।

६६. कालाणुगमेण। ६७. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ६८. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ६९. अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मं

चूर्णिसू०—नरकगतिमें मिथ्यात्वकर्मका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? हत-समुत्पत्तिककर्मके साथ आया हुआ असंज्ञी जीव जब तक विद्यमान स्थितिसत्त्वके नीचे नवीन बन्ध करता है, तबतक उसके मिथ्यात्वकर्मका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है ॥५८–५९॥

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव मिथ्यात्वकर्मके घात करनेसे अवशिष्ट बचे अनुभाग-सत्कर्मके साथ नरकमें उत्पन्न होता है, उसके एक अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग-सत्कर्म पाया जाता है, क्योंकि, तभीतक उसके विद्यमान स्थितिसत्त्वसे नीचे बन्ध होता है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और हास्यादि नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व जानना चाहिए। अर्थात् हतसमुत्पत्तिककर्मके साथ नरकमें उत्पन्न होनेवाले असंज्ञी जीवके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म पाया जाता है। सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? चरमसमयवर्ती अक्षीणदर्शनमोहनीयकर्मवाले जीवके होता है ॥६०-६२॥

विशेषार्थ—यद्यपि नरकगतिमें दर्शनमोहका क्षपण नहीं होता है, तथापि मनुष्यगतिमें दर्शनमोहके क्षपणके पूर्व जिसने नरकायुका बन्ध कर लिया, वह जीव मनुष्यभवमें दर्शनमोह-का क्षपण कर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर जब नरकगतिमें उत्पन्न होता है, तब उसके सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म पाया जाता है।

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता है। क्योंकि, दर्शनमोहकी क्षपणाको छोड़कर अन्यत्र सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागकांडकोंका घात नहीं पाया जाता। नरकगतिमें अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म ओघके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार सर्वत्र अर्थात् शेष गतियोंमें और इन्द्रियादि शेष मार्ग-णाओंमें मिथ्यात्व आदि मोहप्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म आगमके अवि-रोधसे जान लेना चाहिए ॥६३-६५॥

चूर्णिसू०—अब कालानुगमकी अपेक्षा एक जीव-सम्बन्धी अनुभागविभक्तिका काल कहते हैं – मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६६-६८ ॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्त्वका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त

केवचिरं कालादो होदि ? ७०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ७१. उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । ७२. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । ७३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ७४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ७५. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । ७६. अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ७७. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

७८. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ७९. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

है । क्योंकि, उत्कृष्ट अनुभागको बाँधकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तके द्वारा घात करनेवाले जीवके जघन्य काल जाता है और सर्व-दीर्घ अन्तर्मुहूर्तके द्वारा घात करनेवाले जीवके उत्कृष्ट काल पाया जाता है । इस प्रकार जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्तकाल तक ही मिथ्यात्व-कर्मका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म रहता है ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वप्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥६९-७०॥

विशेषार्थ–उत्कृष्ट अनुभागको घात करके सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक अनुत्कृष्ट अनुभाग-दशामें रहकर पुनः उत्कृष्ट अनुभागके बाँधनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्यकाल प्राप्त होता है ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वप्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ७१ ॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त होकर उसके साथ पंचेन्द्रियोंमें यथासम्भव काल तक रहकर पुनः एकेन्द्रियोंमें जाकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन बिताकर पीछे पंचेन्द्रियोंमें आकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले जीवके सूत्रोक्त उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ अधिक दो छयासठ सागरोपम है । इन्हीं दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२-७७ ॥

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८-७९ ॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवका हतसमुत्पत्तिककर्मके साथ रहनेका काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही है । –

८०. एवं सम्मामिच्छत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं। ८१. सम्मत्त-अणंताणुबंधि-चदुसंजलण-तिण्णिवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ८२. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

८३. अंतरं। ८४. मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ८५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ८६. उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ८७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहा पयडिअंतरं तहा।

८८. जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ८९. मिच्छत्त-अट्ठकसाय-अणंताणुबंधीणं च मोत्तूण सेसाणं णत्थि अंतरं। ९०. मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ९१. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ९२. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। ९३. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ९४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ९५. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण आदि मध्यम आठ कषाय और हास्य आदि छह नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म-सम्बन्धी काल जानना चाहिए। सम्यक्त्वप्रकृति, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ॥८०-८२॥

चूर्णिसू०—अब अनुभागविभक्तिके अन्तरको कहते हैं—मिथ्यात्व, सोलह कषाय, और नव नोकषाय, इन छब्बीस मोहप्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंका जैसा प्रकृतिविभक्तिमें अन्तर बतलाया है, उसी प्रकार यहाँपर जानना चाहिए ॥८३-८७॥

विशेषार्थ—इन दोनों प्रकृतियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है।

चूर्णिसू०—मोहनीयकर्मकी सर्वप्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण आदि आठ मध्यम कषाय और अनन्तानुबन्धीचतुष्क, इन तेरह प्रकृतियोंको छोड़ करके शेष पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं होता है ॥८८-८९॥

विशेषार्थ—शेष पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मके अन्तर न होनेका कारण यह है कि उन सम्यक्त्व आदि शेष पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका क्षपकश्रेणीमें निर्मूल विनाश हो जानेपर पुनः उत्पत्ति नहीं होती है, अतएव उनका अन्तर सम्भव नहीं है।

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वप्रकृति और आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है। अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्म करनेवाले जीवोंका कितना

९६. णाणाजीवेहि भंगविचओ। ९७. तत्थ अट्ठपदं[1]। ९८. जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते अणुक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया। ९९. जे अणुक्कस्सअणुभागस्स विहत्तिया ते उक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया। १००. जेसिं पयडी अत्थि तेसु पयदं, अकम्मे अव्ववहारो। १०१. एदेण अट्ठपदेण। १०२. सव्वे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया। १०३. सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च। १०४. सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च। १०५. अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। १०६. सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च। १०७. सिया

अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन है ॥९०-९५॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अनुभाग-विभक्तिके भंगोंका निर्णय किया जाता है—उसके विषयमें यह अर्थपद है। जिसके जान लेनेसे प्रकृत अर्थका भलीभाँति ज्ञान हो, अर्थपद उसे कहते हैं। जो जीव उत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले हैं, वे अनुत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले नहीं हैं। क्योंकि, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग एक साथ नहीं रह सकते। जो जीव अनुत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले होते हैं, वे उत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले नहीं होते हैं। क्योंकि, दोनोंका परस्पर विरोध है। जिन जीवोंके मोहनीयकर्मकी उत्तरप्रकृतियाँ सत्तामें होती हैं, उन जीवोंमें यह प्रकृत अधिकार है। क्योंकि मोहकर्मसे रहित जीवोंमें भंगोंका व्यवहार सम्भव नहीं है। इस उपर्युक्त अर्थपदके द्वारा नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगोंका निर्णय किया जाता है ॥ ९६-१०१ ॥

चूर्णिसू०—कदाचित् किसी कालमें सर्व जीव मिथ्यात्वकर्म-सम्बन्धी उत्कृष्ट अनुभागके सभी विभक्तिवाले नहीं होते हैं। क्योंकि, मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ अवस्थान-कालसे उसके विना अवस्थानका काल बहुत पाया जाता है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकर्म-सम्बन्धी उत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले नहीं होते हैं और कोई एक जीव उत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाला होता है। क्योंकि, किसी कालमें मिथ्यात्वकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले जीवोंके साथ उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले एक जीवका पाया जाना सम्भव है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले नहीं होते हैं और अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। क्योंकि, किसी समय उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति नहीं करनेवाले जीवोंके साथ उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले अनेक जीवोंका पाया जाना सम्भव है। इस प्रकार मिथ्यात्वकर्म-सम्बन्धी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके ये तीन भंग होते हैं। ॥ १०२-१०४ ॥

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सर्व जीव विभक्तिवाले होते हैं। क्योंकि, किसी कालमें मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंकी सान्तरभावके

१ जेण अवगएण भंगा अवगम्मंति तमट्ठपदं। जयध०

विहत्तिया च अविहत्तिया च। १०८. एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वज्जाणं। १०९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। ११०. एवं तिण्णि भंगा। १११. अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया। ११२. एवं तिण्णि भंगा।

साथ प्रवृत्ति देखी जाती है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं और कोई एक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला नहीं होता है। क्योंकि, कभी किसी कालमें मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले बहुतसे जीवोंके साथ कोई एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाला भी जीव पाया जाता है। कदाचित् अनेक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाले होते हैं और अनेक अनुत्कृष्टविभक्तिवाले नहीं होते हैं। क्योंकि, मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले भी जीवोंका पाया जाना संभव है। इस प्रकार मिथ्यात्वकर्मसम्बन्धी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके ये तीन भंग होते हैं ॥१०५-१०७॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष चारित्रमोहसम्बन्धी पच्चीस कर्म-प्रकृतियोंके अनुभागविभक्तिसम्बन्धी भंग जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सर्व जीव विभक्तिवाले होते हैं, इस प्रकार तीन भंग जानना चाहिए। अनुत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सर्व जीव अविभक्तिवाले होते हैं, इस प्रकार तीन भंग जानना चाहिए ॥१०८-११२॥

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके तीन-तीन भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—इन दोनों प्रकृतियोंके कदाचित् सर्वजीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। कदाचित् अनेक विभक्ति करनेवाले होते हैं और एक जीव विभक्ति करनेवाला नहीं होता है। कदाचित् अनेक विभक्ति करनेवाले और अनेक जीव विभक्ति नहीं करनेवाले होते हैं। इस प्रकार तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सर्वजीव विभक्ति करनेवाले नहीं होते हैं, क्योंकि, दर्शनमोहकी क्षपणाको छोड़कर अन्यत्र उक्त दोनों प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभाग पाया नहीं जाता, तथा दर्शनमोहके क्षपण करनेवाले जीव भी सर्व काल नहीं पाये जाते हैं; क्योंकि, उनका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास बतलाया गया है। इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले कदाचित् अनेक जीव नहीं होते हैं और कोई एक जीव होता है। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले पाये जाते हैं और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले नहीं पाये जाते हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके नानाजीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके तीन तीन भंग होते हैं।

११३. णाणाजीवेहि कालो ११४. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? ११५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ११६. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ११७. एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं । ११८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? ११९. सव्वद्धा । १२०. मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? १२१. सव्वद्धा । १२२. सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चदुसंजलण-तिवेदाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? १२३. जहण्णेण एगसमओ । १२४. उक्कस्सेण संखेज्जा समया । १२५. णवरि अणंताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । १२६. सम्मामिच्छत्त-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया

चूर्णिसू०–अब नानाजीवोंकी अपेक्षा अनुभागविभक्तिसम्बन्धी काल कहते हैं–मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥११३-११६॥

विशेषार्थ–इन दोनों कालोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागबंध करनेवाले सात आठ जीवोंके अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस अवस्थामें रहकर तत्पश्चात् उत्कृष्ट अनुभागका घात करनेपर जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है । इसका कारण यह है कि एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल अन्तर्मुहूर्त होता है और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति करनेवाले जीव एक साथ अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, अतएव उतनी शलाकाओंसे उक्त अन्तर्मुहूर्तको गुणा कर देनेपर पल्योपमका असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिसम्बन्धी काल जानना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है ॥११७-११९॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागमें अवस्थानकालकी अपेक्षा उसे प्राप्त होनेवाले जीवोंका अन्तरकाल असंख्यातगुणित हीन होता है ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्व और आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभाग सत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । क्योंकि, इन सूत्रोक्त सभी कर्मोंके जघन्य अनुभागवाले जीवोंका किसी भी काल में विरह नहीं होता है । सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, संज्वलन-चतुष्क और तीनों वेद, इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग सत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । केवल अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका जघन्य अनुभाग-सम्बन्धी उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवाँ

केवचिरं कालादो होंति ? १२७. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

१२८. णाणाजीवेहि अंतरं। १२९. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १३०. जहण्णेण एगसमओ। १३१. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। १३२. एवं सेसकम्माणं। १३३. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अंतरं।

१३४. जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि। १३५. मिच्छत्त-अट्ठ-

भाग है। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा क्रमसे संयोजना करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट उपक्रमणकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व और हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसका कारण यह है कि अपनी-अपनी क्षपणाके अन्तिम अनुभागखंडमें होनेवाले जघन्य अनुभागका अन्तर्मुहूर्तको छोड़कर अधिक काल नहीं पाया जाता है ॥१२०-१२७॥

चूर्णिसू०-अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अनुभागविभक्ति-सम्बन्धी अन्तर कहते हैं-मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है ॥१२८-१३१॥

विशेषार्थ-मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके विना त्रिभुवनवर्ती समस्त जीव कमसे कम एक समय रहते हैं। तत्पश्चात् द्वितीय समयमें कितने ही जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने लगते हैं, इसलिए जघन्य अन्तर एक समय ही पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है, अर्थात् असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण काल है। इसका कारण यह है कि तीनों लोकमें अधिकसे अधिक असंख्यात लोकमात्र कालतक मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसे रहित जीव पाये जाते हैं, इससे अधिक नहीं, क्योंकि, उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकमात्र ही होते हैं।

चूर्णिसू०-इसी प्रकार शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अन्तर जानना चाहिए। केवल सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंकी अनुभागविभक्ति-सम्बन्धी अन्तर नहीं होता है ॥१३२-१३३॥

विशेषार्थ-इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्तरकालकी अपेक्षा सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागसत्कर्मके साथ रहनेवाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवोंका काल असंख्यातगुणा होता है।

चूर्णिसू०-अब नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका अन्तर कहते हैं-मिथ्यात्व और आठ मध्यम कषायोंका जघन्य अनुभागसम्बन्धी अन्तर नहीं होता है। क्योंकि, इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीव अनन्त पाये जाते हैं। सम्यक्त्व,

कसायाणं णत्थि अंतरं। १३६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-लोभसंजलण-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? १३७. जहण्णेण एगसमओ। १३८. उक्कस्सेण छम्मासा। १३९. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? १४०. जहण्णेण एगसमओ। १४१. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। १४२. इत्थि-णवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? १४३. जहण्णेण एगसमओ। १४४. उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि। १४५. तिसंजलण पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? १४६. जहण्णेण एगसमओ। १४७. उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं।

सम्यग्मिथ्यात्व, लोभसंज्वलन और हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना अन्तरकाल है? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है। क्योंकि, दर्शनमोहकी क्षपणा व क्षपकश्रेणीमें ही इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग उत्पन्न होता है और इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास ही माना गया है। अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, उतने समयप्रमाण है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषायके संयोजना करनेवाले परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण पाये जाते हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना होता है? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ॥१३४-१४४॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण पाया जाता है। तीनसे लेकर नौ तककी पृथक्त्वसंज्ञा है और दो तथा दोसे ऊपरकी संख्याकी संख्यातसंज्ञा है; इसलिए उक्त दोनों वेदोंका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्षप्रमाण सिद्ध हो जाता है।

चूर्णिसू०—क्रोध, मान और माया, ये तीन संज्वलन कषाय और पुरुषवेद, इन कर्मोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक वर्षप्रमाण है ॥१४५-१४७॥

विशेषार्थ—उक्त साधिक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार संभव है, जैसे—कोई जीव पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा, और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मको करके ऊपर चला गया। पुनः छह मासके पश्चात् अन्य कोई जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ा। इस प्रकार संख्यात वार व्यतीत होनेके पश्चात् फिर कोई जीव पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किया। इस प्रकार पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हो गया। तीनों संज्वलनोंका उत्कृष्ट अन्तर भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

१४८. अप्पाबहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधे तहा । १४९. णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्तमणंतगुणहीणं । १५०. सम्मत्तमणंतगुणहीणं ।

अब अनुभागसत्कर्मविभक्तिका अल्पबहुत्व कहा जाता है। वह जघन्य और उत्कृष्ट के भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अल्पबहुत्व कहनेके लिए चूर्णिकार उत्तरसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–अनुभागसत्कर्मसम्बन्धी उत्कृष्ट अल्पबहुत्व जिस प्रकार पहले उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें कह आए हैं, उसी प्रकार यहाँपर भी जानना चाहिए । केवल उससे विशेषता यह है कि यहाँपर सबसे पीछे सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन है और उससे सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन है, ऐसा कहना चाहिए ॥१४८-१५०॥

विशेषार्थ–पहले उत्कृष्ट अनुभागबन्धके प्ररूपण करते समय जो अल्पबहुत्व कहा है, वही यहाँ अनुभागसत्कर्मके प्ररूपणावसर पर भी कहना चाहिए । केवल सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन दोनोंका अनुभागसत्कर्मसम्बन्धी अल्पबहुत्व सबसे पीछे कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी गणना बन्ध प्रकृतियोंमें नहीं है, इसलिए वहाँपर इनका अल्पबहुत्व नहीं बतलाया गया । किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यग्दृष्टि होनेपर मिथ्यात्वके अनुभागका इन दोनों प्रकृतियोंमें संक्रमण हो जाता है, इसलिए उनके अनुभागका सत्त्व पाया जाता है और इसी कारण यहाँपर उनके अनुभागसत्कर्मसम्बन्धी अल्पबहुत्वका कहना आवश्यक हो जानेसे चूर्णिकारने 'णवरि'... इत्यादि दो सूत्र निर्माण कर उसकी प्ररूपणा की है । इस प्रकारसे सूचित किया गया वह अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिए–

मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म आगे कहे जानेवाले सर्वपदोंकी अपेक्षा सबसे तीव्र होता है। उससे अनन्तानुबन्धी लोभकषायका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे अनन्तानुबन्धी माया, क्रोध और मानकषायके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म उत्तरोत्तर विशेष विशेष हीन होते हैं । अनन्तानुबन्धी मानके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है, इससे संज्वलन माया, क्रोध और मानकषायके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म उत्तरोत्तर विशेष-विशेष हीन होते हैं । संज्वलन मानके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे प्रत्याख्यानावरण माया, क्रोध और मानकषायके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म उत्तरोत्तर विशेष विशेष हीन होते हैं । प्रत्याख्यानावरण मानके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे अप्रत्याख्यानावरण माया, क्रोध और मानकषायके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म उत्तरोत्तर विशेष हीन होते हैं । अप्रत्याख्यानावरणमानके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे अरतिप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे शोक-

१५१. जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ । १५२. सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभागसंतकम्मं । १५३. मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । १५४. माणसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । कोधसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । १५५. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १५६. इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १५७. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १५८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १५९. अणंताणु-

---

प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे भयप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे जुगुप्साप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्वगुणा हीन होता है । इससे स्त्रीवेदका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे रतिप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे हास्यप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है । इससे सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है ।

हास्यप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे भी सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको अनन्तगुणा हीन बतलानेका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानीय अर्थात् दारुसमान स्पर्धकोंके अनन्तवें भागमें अवस्थित है, किन्तु हास्यप्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतुःस्थानीय अर्थात् शैलसमान स्पर्धकोंमें अवस्थित है, इसलिए हास्यके अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका अनन्तगुणा हीन होना स्वाभाविक है । सम्यग्मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके अनन्तगुणा हीन होनेका कारण यह है कि वह देशघाती है, अतएव उसका उत्कृष्ट अनुभाग भी दारुस्थानीय अनुभागके अनन्त बहुभाग तक ही सीमित रहता है ।

चूर्णिसू०—अब जघन्य अनुभागसत्कर्मसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहनेके लिए अल्पबहुत्वदंडक कहते हैं—लोभसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म आगे कहे जानेवाले सर्व अनुभागोंसे अति मन्दशक्ति होता है । लोभसंज्वलनके सर्व-मन्द जघन्य अनुभागसे मायासंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । मायासंज्वलनके जघन्य अनुभागसे मानसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागसे क्रोधसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । क्रोधसंज्वलनके जघन्य अनुभागसे सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागसे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य

बंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६०. कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १६१. मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १६२. लोभस्स जहण्णओ अणुभागो विसेसाहिओ । १६३. हस्सस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६४. रदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६५. दुगुंछाए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६६. भयस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६७. सोगस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६८. अरदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६९. अपच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १७०. कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७१. मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७२. लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७३. पच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १७४. कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७५. मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७६. लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १७७. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

अनुभागसे अनन्तानुबन्धीमानका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है। अनन्तानुबन्धी मानके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी मायाके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागसे हास्यप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। हास्यप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे रति-प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। रतिप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे जुगुप्सा प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। जुगुप्साप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे भय-प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। भयप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे शोकप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। शोकप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे अरतिप्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। अरतिप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। अप्रत्याख्यानावरण मानके जघन्य अनुभागसे अप्रत्याख्यावरण क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागसे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण मायाके जघन्य अनुभागसे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग-सत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरणलोभके जघन्य अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण मान-का जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। प्रत्याख्यानावरण मानके जघन्य अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरणक्रोधके जघन्य अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्या-ख्यानावरण मायाके जघन्य अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरण लोभके जघन्य अनुभागसे मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग-

१७८. णिरयगईए जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । १७९. सव्वमंदाणुभागं सम्मत्तं । सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १८०. अणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १८१. कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १८२. मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १८३. लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । १८४. सेसाणि जधा सम्मादिट्ठीए बंधे तधा णेदव्वाणि ।

सत्कर्म अनन्तगुणा है। इस प्रकार ओघकी अपेक्षा जघन्य अनुभागसम्बन्धी अल्पबहुत्वदंडक समाप्त हुआ ॥१५१-१७७॥

अब आदेशकी अपेक्षा जघन्य अनुभागसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहनेके लिए उत्तर सूत्र-प्रबन्ध कहते हैं–

चूर्णिसू०–नरकगतिमें जघन्य अनुभागसत्कर्म इस प्रकार है–सम्यक्त्वप्रकृति सर्व-मन्द अनुभागवाली होती है। सम्यक्त्वप्रकृतिके सर्व-मन्द अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा होता है। अनन्तानुबन्धी मानके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी मायाके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक होता है। शेष प्रकृतियोंके अल्पबहुत्वपद जिस प्रकार सम्यग्दृष्टिके अनुभागबन्धमें कहे हैं, उस प्रकार जानना चाहिए ॥१७८-१८४॥

विशेषार्थ–इस समर्पण-सूत्रसे नरकगतिमें जिस शेष अल्पबहुत्वके जान लेनेकी सूचना की गई है, वह इस प्रकार है–अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागसे हास्यप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे रतिप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे जुगुप्साप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे भयप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे शोकप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अरतिप्रकृतिका जघन्य अनुभाग असंख्यातगुणा है। इससे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग

१८५. जहा बंधे भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढीओ तहा संतकम्मे वि कायव्वाओ।

१८६. संतकम्मट्ठाणाणि तिविहाणि—बंधसमुप्पत्तियाणि हदसमुप्पत्तियाणि हदहदसमुप्पत्तियाणि[1]। १८७. सव्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियाणि। १८८. हदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि। १८९. हदहदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि।

विशेष अधिक है। इससे मानसंज्वलनका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे क्रोध-संज्वलनका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंज्वलनका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्वलनका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

इस उपर्युक्त अल्पबहुत्व-दंडकमें शोकप्रकृतिके जघन्य अनुभागसे अरतिप्रकृतिका जघन्य अनुभाग असंख्यगुणा बतलाया गया है, यह नरकगतिकी विशेषता है, ऐसी सूचना जयधवला टीकाकारने उक्त दंडकके प्रारम्भमें की है।

चूर्णिसू०–जिस प्रकार अनुभागबन्धमें भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि, इन तीन अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां अनुभागसत्कर्ममें भी करना चाहिए ॥१८५॥

चूर्णिसू०–अनुभागसत्कर्मस्थान तीन प्रकारके होते हैं–बन्धसमुत्पत्तिकस्थान, हतसमुत्पत्तिकस्थान और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान। इनमेंसे बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे कम हैं। बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे हत-हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणित हैं ॥१८६-१८९॥

विशेषार्थ–जिन अनुभागस्थानोंकी बन्धसे उत्पत्ति होती है, वे बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहलाते हैं। बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंका प्रमाण यद्यपि शेष दोनों भेदोंकी अपेक्षा सबसे कम है, तथापि असंख्यात लोकाकाशके जितने प्रदेश होते हैं, तत्प्रमाण हैं। इसका कारण यह है कि

१ बंधात्समुत्पत्तिर्येषां तानि बंधसमुत्पत्तिकानि। हते समुत्पत्तिर्येषां तानि हतसमुत्पत्तिकानि। हतस्य हतिः हतहतिः। ततः समुत्पत्तिर्येषां तानि हतहतिसमुत्पत्तिकानि। जयध०

इयाणिं अणुभागसंतट्ठाणाणि परूवणत्थं भण्णति–

बंध-हय-हयहउप्पत्तिगाणि कमसो असंखगुणियाणि।

उदयोदीरणवज्जाणि होंति अणुभागट्ठाणाणि ॥२४॥

(चू०) जे बंधातो उप्पज्जंति अणुभागट्ठाणा ते बंधुप्पत्तिगा वुच्चंति, ते असंखेज्जलोगागासपदेस-मेत्ता। कहं? भण्णइ–अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखेज्जलोगागासपदेसमेत्ता त्ति काउं। 'हतुप्पत्तिग' त्ति किं भणियं होति? उवट्टणातोव्वट्टणाउ वुड्ढिहाणीतो जे उप्पज्जंति ते हउप्पत्तिगा वुच्चंति। बंधुप्पत्तीतो हतुप्पत्तिगा असंखेज्जगुणा, एक्केक्कंमि बंधुप्पत्तिम्मि असंखेज्जगुणा लब्भंति त्ति। हतहतुप्पत्तिगाणि ति ठितिघाय-रसघायातो जे उप्पज्जंति ते हयहतुप्पत्तिगा, हतुप्पत्तीओ हयहतुप्पत्तिगा असंखेज्जगुणा। कह? भण्णति–संकिलेस-विसोहि जीवस्स समए समए अण्णा भवति, तमेव अणुभागघायकारणं ति तम्हा असंखेज्जगुणा। × × × कम्म० सत्ताधि० पृ० ५२.

अणुभागट्ठाणाणि बंधसमुप्पत्तिय हदसमुप्पत्तिय-हदहदसमुप्पत्तियअणुभागट्ठाणभेदेण तिविहाणि होंति। × × × तत्थ हदसमुप्पत्तियं काऊण च्छिदसुहुमणिगोदजहण्णाणुभागसंतट्ठाणसमाणबंधट्ठाणमादिं

एवं अणुभागे त्ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा समत्ता।

अणुभागविहत्ती समत्ता।

अनुभागबन्धके अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकाकाशके प्रदेशप्रमित हैं। उद्वर्तना और अपवर्तना करणोंके द्वारा होनेवाली वृद्धि और हानिसे जो अनुभागस्थान उत्पन्न होते हैं, वे हतसमुत्पत्तिकस्थान कहलाते हैं, क्योंकि, हत नाम घातका है और उद्वर्तना अपवर्तना करणोंके द्वारा पूर्व अवस्थाका घात होता है, इसलिए उनसे उत्पन्न होनेवाले परिणाम-स्थान हतसमुत्पत्तिक कहलाते हैं। इनका प्रमाण बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुणा है। इसका कारण यह है कि एक एक बन्धसमुत्पत्तिक स्थानपर नानाजीवोंकी अपेक्षा उद्वर्तना और अपवर्तना करणोंके द्वारा असंख्यात भेद कर दिये जाते हैं। उद्वर्तना और अपवर्तना करणोंके द्वारा वृद्धि-हानि किये जानेके पश्चात् स्थितिघात और रसघातसे जो अनुभागस्थान उत्पन्न होते हैं, वे हतहतसमुत्पत्तिकस्थान कहलाते हैं, क्योंकि, हत अर्थात् उद्वर्तना और अपवर्तनाके द्वारा घात किये जानेपर, फिर भी हत अर्थात् स्थितिघात और रसघातके द्वारा किये जानेवाले घातसे इनकी उत्पत्ति होती है। इनका प्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, जीवोंके संक्लेश और विशुद्धि प्रतिसमय अन्य अन्य होती है, और ये दोनों ही अनुभागघातके कारण हैं।

इस प्रकार चौथी मूल गाथाके 'अणुभागे' इस पदके अर्थकी प्ररूपणा की गई।

इस प्रकार अनुभागविभक्ति समाप्त हुई।

काढूण जाव सण्णिपंचिंदियपज्जत्तसव्वुक्कस्साणुभागबंधट्ठाणेत्ति ताव एदाणि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणि त्ति भण्णंति, बंधेण समुप्पण्णत्तादो। अणुभागसंतट्ठाणघादेण जमुप्पण्णमणुभागसंतट्ठाणं तं पि णवबंधट्ठाणाणि त्ति घेत्तव्वं, बंधट्ठाणसमाणत्तादो। पुणो एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणं मज्झे अणंतगुणवड्ढि-अणंतगुणहाणि-अट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि हदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणि भण्णंति, बंधट्ठाणघादेण बंधट्ठाणाणं विच्चालेसु जच्चंतरभावेण उप्पण्णत्तादो। पुणो एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्ताणं हदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणमणंतगुणवड्ढि-हाणि-अट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि हदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणि वुच्चंति, घादेणुप्पण्ण-अणुभागट्ठाणाणि बंधाणुभागट्ठाणेहिंतो विसरिसाणि घादिय बंधसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय-अणुभागट्ठाणेहिंतो विसरिसभावेण उप्पायिदत्तादो। कथमेकादो जीवदव्वादो अणेयाणमणुभागट्ठाणकज्जाणं समुब्भवो? ण, अणुभागबंधघाद-घादहेदुपरिणामसंजोएण णाणाकज्जाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। एदेसिं तिविहाणमवि अणुभागट्ठाणाणं जहा वेयणभावविहाणे परूवणा कदा, तहा एत्थ वि कायव्वा। जयध०

पदेसविहत्ती

१. पदेसविहत्ती दुविहा–मूलपयडिपदेसविहत्ती उत्तरपयडिपदेसविहत्ती च । २. तत्थ मूलपयडिपदेसविहत्तीए गदाए[1] ।

प्रदेशविभक्ति

अब अनुभागविभक्तिकी प्ररूपणाके पश्चात् प्रदेशविभक्ति कही जाती है । कर्म-पिंडके भीतर जितने परमाणु होते हैं, वे प्रदेश कहलाते हैं । उन प्रदेशोंका भेद या विस्तारसे जिस अधिकारमें वर्णन किया जाय, उसे प्रदेशविभक्ति कहते हैं ।

चूर्णिसू०–वह प्रदेशविभक्ति दो प्रकार की है–मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्ति और उत्तर-प्रकृतिप्रदेशविभक्ति । उनमेंसे मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका विवक्षित अनुयोगद्वारोंसे वर्णन करना चाहिए ॥१-२॥

विशेषार्थ–चूर्णिकारने मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका कुछ भी वर्णन न करके केवल उसके जाननेकी या उच्चारणाचार्योंको प्ररूपण करनेकी सूचनामात्र करदी है । इसका कारण यह ज्ञात होता है कि यतः महाबन्धमें चौबीस अनुयोगद्वारोंसे मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका विस्तारसे विवेचन किया गया है, अतः उसका यहाँ वर्णन पिष्ट-पेषण या पुनरुक्ति-दूषण होगा । ऐसा समझकर उन्होंने उसके जाननेकी केवल सूचना-भर कर दी है । महाबन्धमें इसका वर्णन चौबीस अनुयोगद्वारोंसे किया है । किन्तु उच्चारणाचार्यने बाईस अनुयोगद्वारोंसे ही इसका वर्णन किया है । इसका कारण यह है कि महाबन्धमें आठों कर्मोंके प्रदेशबन्धका वर्णन है, अतः उनमें स्थानसंज्ञा और सन्निकर्षका होना संभव है । किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थमें केवल मोह-कर्म ही विवक्षित है, अतः उसमें उक्त दोनों अनुयोगद्वार संभव नहीं हैं । उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये वे बाईस अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं—१ भागाभागानुगम, २ सर्वप्रदेश-विभक्ति, ३ नोसर्वप्रदेशविभक्ति, ४ उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति, ५ अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्ति, ६ जघन्य-प्रदेशविभक्ति, ७ अजघन्यप्रदेशविभक्ति, ८ सादिप्रदेशविभक्ति, ९ अनादिप्रदेशविभक्ति, १० ध्रुवप्रदेशविभक्ति, ११ अध्रुवप्रदेशविभक्ति, १२ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल, १४

१ मूलपयडिपदेसविहत्तीए परूविदाए पच्छा उत्तरपयडिपदेसविहत्ती परूविदव्वा त्ति एदेण वयणेण जाणाविदं । तेणेदं देसामासियसुत्तं । एदस्स विवरणट्ठं परूविदउच्चारणमेत्थ भणिस्सामो । पदेसविहत्ती दुविहा–मूलपयडिपदेसविहत्ती उत्तरपयडिपदेसविहत्ती चेव । मूलपयडिविहत्तीए तत्थ इमाणि बावीस अनुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा–भागाभागं १, सव्वपदेसविहत्ती २, णोसव्वपदेसविहत्ती ५, जहण्णपदेसविहत्ती ६, अजहण्णपदेसविहत्ती ७, सादियपदेसविहत्ती ८, अणादियपदेसविहत्ती ९, धुवपदेसविहत्ती १०, अद्धुवपदेस-विहत्ती ११, एगजीवेण सामित्तं १२, कालो १३, अंतरं १४, णाणाजीवेहि भंगविचओ १५, परिमाणं १६,

और अन्तर, १५ नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १६ परिमाणानुगम, १७ क्षेत्रानुगम, १८ स्पर्शनानुगम, १९ कालानुगम, २० अन्तरानुगम, २१ भावानुगम, और २२ अल्पबहुत्वानुगम। इन बाईस अनुयोगद्वारोंके अतिरिक्त भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इन चार अर्थाधिकारोंके द्वारा भी मूलप्रदेशविभक्तिका वर्णन किया है। किन्तु न आज उच्चारणाचार्य हैं और न सर्वसाधारणकी महाबन्ध तक पहुँच ही है। अतएव यहाँपर उन अनुयोगद्वारोंसे मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका संक्षेपसे कुछ वर्णन किया जाता है–

[1] (१) **भागाभागानुगम**–एक समयमें बँधनेवाले कर्म-प्रदेशोंका किस क्रमसे सर्व कर्मोंमें विभाग होता है, इस बातका वर्णन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है। जैसे–कोई जीव यदि किसी विवक्षित समयमें शेष सात कर्मोंके बन्धके साथ आयुकर्मका भी बन्ध-कर रहा है, तो उसके उस समय बंधनेवाले कर्म-पिंडके प्रदेशोंका विभाग इस प्रकार होगा–आयुकर्मको सबसे कम प्रदेशोंका भाग मिलेगा। नाम और गोत्रकर्मको उससे विशेष अधिक, पर परस्परमें सदृश भाग मिलेगा। नाम-गोत्रसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों कर्मोंको विशेष अधिक, किन्तु परस्परमें समान भाग मिलेगा। इनसे मोहनीयकर्मको विशेष अधिक भाग मिलेगा और मोहनीयकर्मके भागसे भी विशेप अधिक भाग वेदनीय-कर्मको मिलेगा।

खेत्तं १७, पोसणं १८, कालो १९, अंतरं २०, भावो २१, अप्पाबहुअं चेदि २२। पुणो भुजगार–पदणिक्खेव–वड्ढि–ट्ठाणाणि त्ति (जयध०)। जो सो पदेसबंधो सो दुविहो–मूलपगदिपदेसबंधो चेव, उत्तरपगदिपदेसबंधो चेव। एत्तो मूलपगदिपदेसबंधो पुव्वं गमणीयो। भागाभागसमुदाहारो × × × एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसं अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा–ठाणपरूवणा सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो एवं याव अप्पाबहुगेत्ति। भुजगारबंधो पदणिक्खेवो वड्ढिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति। महाबं०

१ (१) **भागाभागपरूवणा**—मूलपगदिपदेसबंधे पुव्वं गमणीयो भागाभागसमुदाहारो–अट्ठविधबंधगस्स आउगभागो थोवो। णामा-गोदेसु भागो विसेसाधियो। मोहणीयभागो विसेसाधियो। वेदणीयभागो विसेसाधियो। एवं सत्तविधबंधगस्स वि। (णवरि तत्थ आउगभागो णत्थि)। एवं छव्विधबंधगस्स वि। (णवरि तत्थ मोहणीयभागो णत्थि) महाबं०। भागाभागं दुविहं–जीवभागाभागं पदेसभागाभागं चेदि। तत्थ जीवभागाभागं दुविहं–जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अणुक्कस्सपदेसविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिया भागा? अणंता भागा। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाजहण्ण० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो। पदेसभागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स भागाभागो णत्थि, मूलपयडीए अप्पणाए पदेसभेदाभावादो। अधवा मोहणीयसव्वपदेसा सेससंतकम्मपदेसेहितो किं सरिसा विसरिसा त्ति संदेहेण विनडियसिस्सस्स बुद्धिवाउलविणासणट्ठमिमा परूवणा एत्थ असंबद्धा वि कीरदे। × × × सव्वत्थोवो आउगभावो। णामा-गोदभागा दो वि सरिसा विसेसाहिया। णाण-दंसणावरण-अंतराइयाणं भागा तिण्णि वि सरिसा विसेसाहिया। मोहणीयभागो विसेसाहिओ। वेदणीयभागो विसेसाहिओ। जहा बंधमस्सिदूण अट्ठण्हं कम्माणं पदेसभागाभागपरूवणा कदा, तहा संतमस्सिदूण वि कायव्वा; विसेसाभावादो। × × × जहण्णसंतमस्सिदूण उक्कस्ससंतकम्मपदेसवड्ढणभंगो। जयध०

[1](२-३) **सर्वप्रदेशविभक्ति-नोसर्वप्रदेशविभक्ति**–इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें क्रमशः कर्मोंके सर्वप्रदेश और नोसर्वप्रदेशोंका विचार किया गया है। विवक्षित कर्ममें उसके सर्व प्रदेशोंके पाये जानेको सर्वप्रदेशविभक्ति कहते हैं और उससे कम प्रदेशोंके पाये जानेको नोसर्वप्रदेशविभक्ति कहते हैं। मोहनीयकर्ममें ये दोनों प्रकारकी विभक्ति पाई जाती हैं।

[2](४-५) **उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति-अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्ति**–इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें क्रमशः कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंका और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका विचार किया गया है। जिसमें सर्वोत्कृष्ट प्रदेशाग्र पाये जाये जाते हैं, उसे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कहते हैं और जिसमें उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे न्यून प्रदेशाग्र पाये जाते हैं, उसे अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्रविभक्ति कहते हैं। मोहनीय कर्ममें उत्कृष्ट प्रदेशाग्र भी पाये जाते हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्र भी पाये जाते हैं।

[3](६-७) **जघन्यप्रदेशविभक्ति-अजघन्यप्रदेशविभक्ति**–इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें क्रमशः कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशोंका विचार किया गया है। जिसमें सर्वजघन्य प्रदेशाग्र पाये जाते हैं, उसे जघन्य प्रदेशविभक्ति कहते हैं और जिसमें सर्वजघन्य प्रदेशाग्रसे उपरितन प्रदेशाग्र पाये जाते हैं, उसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति कहते हैं। मोहनीयकर्ममें जघन्य प्रदेशाग्र भी पाये जाते हैं और अजघन्य प्रदेशाग्र भी पाये जाते हैं।

[4](८-११) **सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशविभक्ति**–इन अनुयोगद्वारोंमें कर्मोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशाग्रोंका क्रमशः सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव रूपसे विचार किया गया है। प्रकृतमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य

१ (२-३) **सव्व-णोसव्वपदेसविहत्तिपरूवणा**—यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम, तस्स इमो दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण णाणावरणीयस्स पदेसबंधो किं सव्वबंधो, णोसव्वबंधो? सव्वबंधो वा, णोसव्वबंधो वा। सव्वाणि पदेसबंधताणि बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणं बंधमाणस्स णोसव्वबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तीणं दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वपदेसा सव्वविहत्ती। तदूणो णोसव्वविहत्ती। जयध०

२ (४-५) **उक्कस्स-अणुक्कस्सपदेसविहत्तिपरूवणा**—यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम, तस्स इमो दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण णाणावरणीयस्स किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा, अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सं पदेसं बंधमाणस्स उक्कस्सबंधो, तदूणं बंधमाणस्स अणुक्कस्सबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। उक्कस्स-अणुक्कस्सविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वुक्कस्सदव्वं उक्कस्सविहत्ती। तदूणमणुक्कस्सविहत्ती। जयध०

३(६-७) **जहण्ण-अजहण्णपदेसविहत्तिपरूवणा**–यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम, तस्स इमो दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण णाणावरणीयस्स किं जहण्णबंधो, अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा, अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णयं पदेसग्गं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदुवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं सत्तण्हं कम्माणं (महाबं०)। जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वजहण्णं पदेसग्गं जहण्णविहत्ती। तदुवरि अजहण्णविहत्ती। जयध०

४(८-९) **सादि-अणादि-धुव-अद्धुवपदेसविहत्तिपरूवणा**–यो सो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम, तस्स इमो दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण × × × मोहाउगाणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णपदेसबंधो किं सादि० ४। सादि-अद्धुवबंधो (महाबं०)। सादि-अणादि-

प्रदेशविभक्ति सादि और अध्रुव है। अजघन्य प्रदेशविभक्ति सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारकी है।

[1](१२) **एकजीवापेक्षया स्वामित्व**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशाग्रोंके स्वामियोंका एकजीवकी अपेक्षा विचार किया गया है। जैसे—मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी कौन है ? जो जीव बादर-पृथिवीकायिकोंमें साधिक दो हजार सागरोपमसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण काल तक अवस्थित रहा है, वहाँपर उसके पर्याप्तक भव अधिक और अपर्याप्तक भव अल्प हुए। पर्याप्तकाल दीर्घ रहा और अपर्याप्तकाल अल्प रहा। बार-बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त हुआ और बार-बार अतिसंक्लेश परिणामोंको प्राप्त हुआ। इस प्रकार परिभ्रमण करता हुआ वह बादर त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। उनमें परिभ्रमण करते हुए उसके पर्याप्तक भव अधिक और अपर्याप्तक भव अल्प हुए। पर्याप्तक-काल दीर्घ और अपर्याप्तक-काल ह्रस्व रहा। वहाँपर भी बार-बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको और अतिसंक्लेशको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे संसारमें परिभ्रमण करके वह सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें तेतीस सागरोपमकी स्थितिका धारक नारकी हुआ। वहाँसे निकलकर वह पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही रह मरण करके पुनः तेतीस सागरोपम आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उस जीवके तेतीस सागरोपम व्यतीत होनेपर अन्तिम अन्तर्मुहूर्तके चरम समयमें वर्तमान होनेपर मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति होती है। मोहनीयकर्मकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उक्त विधानसे निकलकर क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायसंयतके होती है।

ध्रुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्क० अणुक्क० जहण्ण० किं सादिया, किमणादिया, किं धुवा, किमद्धुवा ? सादि-अद्धुवा। अज० किं सादिया ४ ? (सादिया) अणादिया धुवा अद्धुवा वा। जयध०

१ (१२) **एगजीवेण सामित्तविहत्तिपरूवणा**-सामित्तं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण × × × मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो कस्स ? अण्णदरस्स चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिमिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा, सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सत्तविधबंधयस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सए पदेसबंधे वट्टमाणगस्स। × × × जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण सत्तण्णं कम्माणं जहण्णओ पदेसबंधो कस्स ? अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स पढमसमयतब्भवत्थजहण्णजोगिस्स जहण्णए पदेसबंधे वट्टमाणयस्स (महाबं०)। सामित्तं दुविहं–जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सिया पदेसविहत्ती कस्स ? जो जीवो बादर पुढविकाइएसु वेहि सागरोवमसहस्सेहि सादिरेएहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ०। एवं 'वेयणाए' वुत्तविहाणेण संसरिदूण अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु तेत्तीसं सागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो। तदो उवट्टिदसमाणो पंचिंदिएसु अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु णेरइएसु उववण्णो। पुणो तत्थ अपच्छिमतेत्तीससागरोवमाउणिरयभवग्गहणअंतोमुहुत्तचरिमसमए वट्टमाणस्स मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्ती। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णपदेसविहत्ती कस्स ? जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो। एवं 'वेयणाए' वुत्तविहाणेण चरिमसमयकसाई जादो, तस्स मोहणीयस्स जहण्णपदेसविहत्ती। जयध०

[1](१३) **प्रदेशविभक्ति-कालप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें एक जीवकी अपेक्षा कर्मोंकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्ति कितने समय तक होती है, इस प्रकारसे कालका निर्णय किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल है। जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अजघन्यप्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त है।

[2](१४) **प्रदेशविभक्ति-अन्तरप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें एक जीवकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य, अजघन्य प्रदेशोंकी विभक्ति करनेवालोंके अन्तरकालका विचार किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर चूर्णिकारके मतसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित अनन्त काल है। किन्तु किसी-किसी आचार्यके मतसे जघन्य अन्तर असंख्यात लोक-प्रदेशप्रमित काल है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति करने-वाले जीवोंका कभी अन्तर नहीं होता है, वे सर्वकाल पाये जाते हैं।

[3](१५) **नानाजीवापेक्षया भंगविचयप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी

१ (१३) **पदेसविहत्तिकालपरूवणा**-कालं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण ××× मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण वे समया। अणुक्कस्सपदेसबंधो जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ××× जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण सत्तण्हं कम्माणं जहण्णपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्णपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं। उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। अधवा सेढीए असंखेज्जदि-भागो (महाबं०)। कालाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एग-समओ। अणुक्कस्सपदेसबंधो जहण्णेण वासपुधत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्णपदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि? अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो। जयध०

२ (१४) **पदेसविहत्ति-अंतरपरूवणा**-अंतरं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सपदेसबंधंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ××× जहण्णए पगदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं जहण्ण-अजहण्णपदेसबंधंतरं णत्थि (महाबं०)। अंतरं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्स-पदेसविहत्तीए अंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अथवा जहण्णेण असंखेज्जा लोगा, गुणिदपरिणामेहिंतो पुधभूदपरिणामेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु जहण्णेण संचरणकालस्स असंखेज्जलोगपमाणत्तादो। अणुक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाजहण्णपदेसविहत्तीणं णत्थि अंतरं। जयध०

३(१५) **णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा**-णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ

अपेक्षा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भंगोंका अन्वेषण किया गया है। भंगोंके जाननेके लिए यह अर्थपद है—जो जीव उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, वे जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले नहीं होते, तथा जो अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, वे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले नहीं होते हैं। इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सर्व जीव मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले नहीं है १। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं और कोई एक जीव विभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले और अनेक जीव विभक्तिवाले होते हैं ३। इस प्रकार उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति-सम्बन्धी तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिके भी तीन भंग होते हैं। भेद केवल इतना है कि उसके भंग कहते समय विभक्ति पद पहले कहना चाहिए। इसी प्रकारसे मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति-सम्बन्धी तीन-तीन भंग जानना चाहिए।

[1](१६) **प्रदेशविभक्ति-परिमाणप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें विवक्षित कर्मके उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीव एक साथ कितने पाये जाते हैं और अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले कितने पाये जाते हैं, इस प्रकारसे उनके परिमाणका विचार किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। जघन्यप्रदेशविभक्तिवाले कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्यप्रदेशविभक्तवाले कितने हैं? अनन्त हैं।

[2](१७) **प्रदेशविभक्ति-क्षेत्रप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके वर्तमानकालिक क्षेत्रका विचार किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्वलोकमें रहते हैं। इसी प्रकार जघन्य और अजघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए।

चेदि। उक्कस्से पयदं। तत्थ अट्ठपदं—जे उक्कस्सपदेसविहत्तिया, ते अणुक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया। जे अणुकस्सपदेसविहत्तिया ते उक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया। एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सियाए पदेसविहत्तीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ३। अणुक्कस्सस्स विहत्तिपुव्वा तिण्णि भंगा वत्तव्वा। ××× जहण्णए पयदं। तं चेव अट्ठपदं कादूण पुणो एदेण अट्ठपदेण उक्कस्सभंगो। जयध०

१ (१६) **पदेसविहत्तिपरिमाणपरूवणा**—परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्सए पयदं दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिया केत्तिया? असंखेज्जा, आवलियाए असंखेज्जभागमेत्ता। अणुक्कस्सपदेसविहत्तिया केत्तिया? अणंता। ××× जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णपदेसविहत्तिया केत्तिया? संखेज्जा। अजहण्णपदेसविहत्तिया अणंता। जयध०

२(१७) **पदेसविहत्तिखेत्तपरूवणा**—खेत्तं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिया केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अणुक्कस्सपदेसविहत्तिया सव्वलोगे। जहण्णाजहण्णपदेसविहत्तियाणं खेत्तं उक्कस्साणुक्कस्सखेत्तभंगो। जयध०

[1](१८) **प्रदेशविभक्ति-स्पर्शनप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके त्रिकाल-गोचर स्पृष्ट क्षेत्रका विचार किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट किया है। अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया है ? सर्वलोक स्पृष्ट किया है। इसी प्रकार जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र जानना चाहिए।

[2](१९) **नानाजीवापेक्षया प्रदेशविभक्ति-कालप्ररूपणा**—इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके कालका विचार किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका सर्वकाल है। जघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय है, और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। अजघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।

[3](२०) **नानाजीवापेक्षया प्रदेशविभक्ति-अन्तरप्ररूपणा**—इन अनुयोगद्वारमें नानाजीवोंकी अपेक्षा कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालका निरूपण किया गया है। जैसे—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल-परिवर्तनप्रमित अनन्तकाल है। अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका कभी अन्तर नहीं होता, अर्थात् वे सर्वकाल पाये जाते हैं। इसी प्रकार जघन्य और अजघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल जानना चाहिए।

---

१ (१८) **पदेसविहत्तिपोसणपरूवणा**—पोसणं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सअणुक्कस्सविहत्तियाणं पोसणं खेत्तभंगो। × × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाजहण्णपदेसविहत्तियाणं पोसणं उक्कस्साणुक्कस्सभंगो। जयध०

२ (१९) **नानाजीवापेक्षया पदेसविहत्तिकालपरूवणा**—कालो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० सव्वद्धा। × × जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णपदेसविहत्तिया केवचिर कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। अजहण्णपदेसविहत्तिया सव्वद्धा। जयध०

३ (२०) **नानाजीवापेक्षया पदेसविहत्तिअंतरपरूवणा**-अंतर दुविधं जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पयदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्सपदेसबंधंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। अणुक्कस्सपदेसविहत्तियाणं णत्थि अंतरं। ××× जहण्णए पयदं। दुविधो णिद्देसो-ओघेण अदेसेण य। ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं जहण्ण-अजहण्णपदेसविहत्तियाणं णत्थि अंतरं (महाबं०)। अंतरं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण व। ओघेण मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिअंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्कस्सपदेसविहत्तियाणं णत्थि अंतरं। ××× जहण्णए पयद। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स जहण्णाजहण्णपदेसविहत्तियाणमंतरं उक्कस्साणुक्कस्सभंगो। जयध०

३. उत्तरपयडिपदेसविहत्तीए एगजीवेण सामित्तं । ४. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्ती कस्स । ५. बादरपुढविजीवेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ, तदो उवट्टिदो तसकाए वे सागरोवमसहस्साणि सादिरेयाणि अच्छिदाउओ, अपच्छिमाणि तेत्तीसं

[1](२१) **प्रदेशविभक्ति-भावप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भावोंका विचार किया गया है। मोहनीयकर्मकी प्रदेशविभक्तिवाले सभी जीवोंके औदयिक-भाव होता है।

[2](२२) **प्रदेशविभक्ति–अल्पबहुत्वप्ररूपणा**–इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंकी अल्पता और अधिकताका अनुगम किया गया है। जैसे–मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं और इनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणित हैं। इसी प्रकार मोहनीय कर्मकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे कम हैं और उनसे अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्त-गुणित हैं।

इन बाईस अनुयोगद्वारोंके अतिरिक्त भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान अधिकारोंके द्वारा भी प्रदेशाविभक्तिका विस्तृत विवेचन उच्चारणावृत्तिमें किया गया है, सो विशेष जिज्ञासुजनोंको जयधवला टीकासे जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–अब उत्तरप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका वर्णन करते हैं। उसमें पहले एक जीवकी अपेक्षा प्रदेशविभक्तिका स्वामित्व कहते हैं–मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति किस जीवके होती है? जो जीव बादरपृथिवीकायिक जीवोंमें त्रस-स्थितिकालसे कम सत्तरकोडाकोडी सागरोपम कर्म-स्थितिप्रमाण काल तक रहा हुआ है, तत्पश्चात् वहाँसे निकलकर त्रसकायमें कुछ अधिक दो हजार सागरोपम काल तक रहा, सबसे अन्तमें तेतीस सागरोपमकी आयुवाले

१ (२१) **पदेसविहत्तिभावपरूवणा**–भावं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठण्हं कम्माणं उक्कस्स अणुक्कस्सपदेसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। ××× जहण्णए पयदं। ××× अट्ठण्हं कम्माणं जहण्ण-अजहण्णपदेसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो (महाबं०)। भावं सव्वत्थ ओदइओ भावो। जयध०

२ (२२) **पदेसविहत्ति-अप्पाबहुअपरूवणा**–अप्पाबहुअं दुविधं जहण्णयं उक्कस्सयं चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवो आउग उक्कस्सपदेसबंधो। मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो विसेसाहिओ। णामा-गोदाणं उक्कस्सपदेसबंधो दो वि तुल्लो विसेसाहिओ। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं उक्कस्सपदेसबंधो तिण्णिवि तुल्लो विसेसाहिओ। वेदाणीयउक्कस्सपदेसबंधो विसेसाहिओ। जहण्णए पगदं। ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवो णामा-गोदाणं जहण्णपदेसबंधो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइगाणं जहण्णपदेसबंधो तिण्णि वि तुल्ला विसेसाहिया। मोहणीयस्स जहण्णपदेसबंधो विसेसाहिओ। वेदणीयस्स जहण्णपदेसबंधो विसेसाहिओ। आउगजहण्णपदेसबंधो असंखेज्जगुणो (महाबं०) अप्पाबहुगं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोहणीयस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसविहत्तिया जीवा। अणुक्कस्सपदेसविहत्तिया जीवा अणंतगुणा। ××× एवं जहण्णअप्पाबहुअं पि वत्तव्वं। णवारि जहण्णाजहण्णणिद्देसो कायव्वो। जयध०

सागरोवमाणि दोभवग्गहणाणि, तत्थ अपच्छिमे तेत्तीसं सागरोवमिए णेरइयभवग्गहणे चरिमसमयणेरइयस्स तस्स मिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं¹ ।

६. एवं बारसकसाय-छण्णोकसायाणं । ७. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ को होदि ? ८.गुणिदकम्मंसिओ दंसणमोहणीयक्खवओ जम्मि मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते पक्खित्तं तम्मि सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ । ९. सम्मत्तस्स

सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उसने दो भवोंको ग्रहण किया । उनमेंसे सबसे अन्तिम अर्थात् दूसरे तेतीस सागरोपमवाले नारकीके भव-ग्रहण करनेपर चरमसमयवर्ती उस नारकीके मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है ॥३-५॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय और हास्य आदि छह नोकषाय, इन अठारह प्रकृतियोंका प्रदेशसत्कर्मसम्बन्धी उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी है कि यहाँपर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्मस्थिति न कहकर चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्मस्थिति कहना चाहिए । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करनेवाला कौन जीव है ? गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीय-क्षपक जीव जिस समय मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त करता है, उस समय वह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है ॥६-८॥

विशेषार्थ–जिस जीवके मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व विद्यमान होता है, उसे गुणितकर्मांशिक कहते हैं । मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व बतलाते हुए ऊपर जिस जीवके उसका उत्कृष्ट स्वामित्व बतलाया है वही सातवीं पृथिवीका चरमसमयवर्ती नारकी यहाँपर गुणितकर्मांशिक शब्दसे अभीष्ट है । वह जीव वहाँसे निकलकर तिर्यंचोंमें दो तीन भव धारण करके पुनः मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर उपशमसम्यक्त्वको धारणकर और उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका विसंयोजन करके उपशमसम्यक्त्वके कालको पूराकर, वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, और उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर दर्शनमोहनीयका क्षपण प्रारम्भकर अधःकरण और अपूर्वकरणके कालको पूराकर अनिवृत्तिकरणके संख्यात भाग व्यतीत हो जानेपर जिस समय मिथ्यात्वकर्मके अन्तिम खंडकी अन्तिम फालीका सर्वसंक्रमणके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण करता है, उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिका भी उसी सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्ववाले जीवके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकाल तक संख्यात हजार स्थिति-खंड करनेके पश्चात्

१ संपुन्नगुणियकम्मो पएसउक्कस्ससंतसामी उ ॥ २७ ॥
(चू०) 'संपुन्नगुणियकम्मो' त्ति–संपुन्नगुणियकम्मंसिगत्तणं जस्स अत्थि सो संपुन्नगुणियकम्मो 'पएस-उक्कस्ससंतसामी उ' त्ति–उक्कोसपदेससामी भवति । तस्सेव य त्ति णेरइयचरमसमये वट्टमाणस्स सामण्णेणं सव्वकम्माणं उक्कोसं पदेससंतकम्मं भवति । कम्म० सत्ता० गा० २७, चूर्णि० पृ० ५७,

वि तेणेव जम्मि सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते पक्खित्तं तस्स सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं[1]। १०. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ११. गुणिदकम्मंसिओ ईसाणं गदो तस्स चरिमसमयदेवस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं।[2] १२. इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? १३. गुणिदकम्मंसिओ असंखेज्जवस्साउए गदो तम्मि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण जम्हि पूरिदो तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं।[3] १४. पुरिसवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स ? १५. गुणिदकम्मंसिओ ईसाणेसु णवुंसयवेदं पूरेदूण तदो कमेण असंखेज्जवस्साउएसु उववण्णो। तत्थ पलिदो-

जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य सर्वसंक्रमणके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिमें प्रक्षिप्त किया जाता है, उस समय उस जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म किस जीवके होता है ? वही पूर्वोक्त गुणितकर्मांशिक सातवीं पृथिवीका नारकी जीव वहाँसे निकलकर तिर्यंच होता हुआ ईशानस्वर्गमें गया। वहाँपर अतिसंक्लेशसे वह पुनः पुनः नपुंसकवेदको बाँधता है और बहुत कर्मप्रदेशोंका संचय करता है। ऐसे उस चरमसमयवर्ती देवके नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म किस जीवके होता है ? वही पूर्वोक्त गुणितकर्मांशिक जीव ईशानस्वर्गमें नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसंचयको करके वहाँसे च्युत हो संख्यात वर्षवाले मनुष्य या तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर तत्पश्चात् असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियाँ मनुष्य अथवा तिर्यंचोंमें गया। वहाँपर संक्लेशसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा जिस समय स्त्रीवेद पूरित करता है, उस समय उस जीवके स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है ॥९-१३॥

चूर्णिसू०–पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म किस जीवके होता है ? वही पूर्वोक्त गुणितकर्मांशिक जीव ईशान स्वर्गके देवोंमें नपुंसकवेदको पूरित करके तत्पश्चात् संख्यात वर्ष-

१ मिच्छत्ते मीसम्मि य संपक्खित्तम्मि मीससुद्धाणं।

(चू०) ततो उव्वट्टित्तु तिरिएसु उववण्णो। ततो अंतोमुहुत्तेण मणुएसु उप्पन्नो। तत्थ सम्मत्तं उप्पाएति। ततो लहुमेव खवणाए अब्भुट्ठिओ जम्मि समये मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते सव्वसंकमेण संकतं भवति, तम्मि समये सम्मामिच्छत्तस्स उक्कोसपदेससंतं भवति। जम्मि समये सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते सव्वसंकमेण संकंतं भवइ, तम्मि समये सम्मत्तस्स उक्कोसपदेससंतं भवति।

२ वरिसवरस्स उ ईसाणगस्स चरमम्मि समयम्मि ॥ २८ ॥

(चू०) सो चेव गुणियकम्मंसिगो सव्वावासगाणि काउं ईसाणे उप्पण्णो, तत्थ संकिलेसेणं भूयो भूयो नपुंसगवेयमेव बंधति, तत्थ बहुगो पदेसणिचयो भवति, तस्स चरिमसमये वट्टमाणस्स (वरिसवरस्स वर्षवरस्य, नपुंसकवेदस्स) उक्कोसपदेससंतं।

३ ईसाणे पूरित्ता णवुंसगं तो असंखवासीसु। पल्लासंखियभागेण पूरिए इत्थिवेयस्स ॥२९॥

(चू०) ईसाणे नपुंसगवेयपुव्वपउगेण पूरित्ता ततो उव्वट्टित्तु लहुमेव 'असंखवासीसु' त्ति-भोगभूमिगेसु उप्पण्णो। ××× तत्थ संकिलेसेण पलिओवमस्स असंखेज्जेणं कालेणं इत्थिवेउ पूरितो भवति, तम्मि समये इत्थिवेयस्स उक्कोसपदेससंतं। कहं ? भण्णइ–पढमसमये बद्धं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं अहापवत्तसंकमेण णिट्ठाति। कम्म० सत्ता० पृ० ५८.

वस्सस्स असंखेज्जदिभागेण इत्थिवेदो पूरिदो। तदो सम्मत्तं लब्भिदूण मदो पलिदोवम-ट्ठिदिओ देवो जादो। तत्थ तेणेव पुरिसवेदो पूरिदो। तदो चुदो मणुसो जादो सव्वलहुं कसाए खवेदि। तदो णवुंसयवेदं पक्खिविदूण जम्हि इत्थिवेदो पक्खित्तो तस्समए पुरिसवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[1]।

१६. तेणेव जाधे पुरिसवेद-छण्णोकसायाणं पदेसग्गं कोधसंजलणे पक्खित्तं ताधे कोधसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[2]। १७. एसेव कोधो जाधे माणे पक्खित्तो ताधे माणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[3]। १८. एसेव माणो जाधे मायाए पक्खित्तो ताधे मायासंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[4]। १९. एसेव माया जाधे लोभसंजलणे

की आयुवाले तिर्यंच—मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः क्रमसे असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोग-भूमियां तिर्यंच—मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालसे उसने स्त्रीवेदको पूरित किया। तत्पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त कर मरा और पल्योपमकी स्थिति-वाला सौधर्म-ईशानकल्पवासी देव हुआ। वहाँपर उस जीवने पुरुषवेदको पूरित किया। वहाँसे च्युत होकर मनुष्य हुआ और सर्व लघुकालसे कषायोंका क्षपण प्रारम्भ किया। तत्प-श्चात् सर्वसंक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदको स्त्रीवेदमें प्रक्षिप्तकर जिस समय सर्वसंक्रमणके द्वारा स्त्रीवेदको पुरुषवेदमें प्रक्षिप्त करता है, उस समय उस जीवके पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है ॥१४-१५॥

चूर्णिसू०—पुरुषवेदके उत्कृष्टप्रदेशसत्त्ववाले उसी उपर्युक्त जीवके द्वारा जिस समय पुरुषवेद और हास्य आदि छह नोकषायोंके प्रदेशाग्र (कर्मदलिक) सर्वसंक्रमणके द्वारा क्रोध-संज्वलनमें प्रक्षिप्त किये जाते हैं, उस समय उस जीवके क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। यही जीव जिस समय क्रोधसंज्वलनको सर्वसंक्रमणके द्वारा मानसंज्वलनमें प्रक्षिप्त करता है, उस समय उस जीवके मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। यही जीव जिस समय मानसंज्वलनको सर्वसंक्रमणके द्वारा मायासंज्वलनमें प्रक्षिप्त करता है, उस समयमें उस जीवके मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। यही जीव जिस समय माया-संज्वलनको सर्वसंक्रमणके द्वारा लोभसंज्वलनमें प्रक्षिप्त करता है उस समय उस जीवके

१ पुरिसस्स पुरिससंकमपएसउक्कस्ससामिगस्सेव।
इत्थी जं पुण समयं संपक्खित्ता हवइ ताहे ॥ ३० ॥

(चू०) जो पुरिसवेयस्स उक्कोसपदेससंतसामी भणितो तस्स चेव इत्थिवेदो जम्मि समये पुरिसवे-यम्मि सव्वसंकमेण संकंतो भवति, तम्मि समये पुरिसवेयस्स उक्कोसं पदेससंतं। कम्म०सत्ता० पृ० ५७–५८

२ तस्सेव उ संजलणा पुरिसाइकमेण सव्वसंच्छोभे।

(चू०) ××× जो पुरिसवेयस्स उक्कोसपदेससंतसामी सो चेव चउण्हं संजलणाणं उक्कोसपदेससंत-सामी। ×××जम्मि समये पुरिसवेतो सव्वसंकमेण कोहसंजलणाए संकंतो भवति तम्मि समये कोहसंजलणाए उक्कोसपदेससंतं भवति। ३ तस्सेव जम्मि समये कोहसंजलणा माणसंजलणाए सव्वसंकमेण संकंता तम्मि समये माणसंजलणाए उक्कोसं पदेससंतं भवति। ४ तस्सेव जम्मि समए माणसंजलणा मायासंजलणाए सव्वसंकमेणं संकंता भवति तम्मि समये मायासंजलणाए उक्कोसं पदेससंतं। कम्म० स० पृ० ५९.

पक्खित्ता ताधे लोभसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[1] ।

२०. मिच्छत्तस्स जहण्णपदेससंतकम्मिओ को होदि ? २१. सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ[2] । तत्थ सव्वबहुआणि अपज्जत्तभवग्गहणाणि दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ तप्पाओग्गजहण्णयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो । तदो तप्पाओग्गजहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएसु जोगट्ठाणेसु बंधदि हेठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदेसं तप्पाओग्गं उक्कस्सविसोहिमभिक्खं गदो, जाधे अभवसिद्धियपाओग्गं जहण्णगं कम्मं कदं तदो तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धो । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण तदो दंसणमोहणीयं खवेदि । अपच्छिमट्ठिदिखंडयमवणिज्जमाणयमवणिदमुदयावलियाए जं तं गलमाणं तं गलिदं, जाधे एक्किस्से ट्ठिदीए दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे मिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं[3] ।

लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है ॥ १६-१९ ॥

चूर्णिसू० -मिथ्यात्वकर्मका जघन्य प्रदेशसत्कर्म करनेवाला कौन जीव होता है ? जो सूक्ष्म निगोदिया जीवोंमें कर्मस्थिति-कालप्रमाण तक रहा हुआ है और वहाँपर अपर्याप्तके भव सबसे अधिक ग्रहण किये, अपर्याप्तका काल दीर्घ रहा और उनके योग्य जघन्य योगस्थानोंको निरन्तर प्राप्त हुआ है । तदनन्तर तत्प्रायोग्य जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ जब-जब आयुको बाँधता है, तब तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंमें आयुको बाँधता है और अधस्तन स्थितियोंमें निषेकको उत्कृष्ट प्रदेशवाला किया और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिको निरन्तर प्राप्त हुआ है, ऐसे इस जीवने जिस समय अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य कर्मको उपार्जन किया तब त्रस जीवोंमें आया । वहाँपर संयमासंयम, संयम और सम्यग्दर्शनको बहुत वार प्राप्त हुआ । चार वार कषायोंको उपशमा कर तदनन्तर असंयमको प्राप्त हो दो वार छ्यासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्वको परिपालन कर तत्पश्चात् दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण करता है । उस समय जब अपनीत होने योग्य मिथ्यात्वकर्मका अन्तिम स्थितिखंड

१ तस्सेव जम्मि समये मायासंजलणा लोभसंजलणाए सव्वसंकमेण संकंता भवति तम्मि समये लोभसंजलणाए से उक्कोसं पदेससंतं । कम्म० सत्ता० गा० ३१, चू० पृ० ५९.

२ **वेयणाए** पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणियं कम्मट्ठिदिं सुहुमेइंदिएसु हिंडाविय तसकाइएसु उप्पाइदो । एत्थ पुण कम्मट्ठिदिं संपुण्णं भमाडिय तसत्तं णीदो । तदो दोण्हं सुत्ताण्णं जहाऽविरोहो तहा वत्तव्वमिदि । **जइवसहाइरिओवएसेण** खविदकम्मंसियकालो कम्मट्ठिदिमेत्तो । 'सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ' त्ति सुत्तणिद्देसण्णहाणुववत्तीदो । **भूदबलिआइरियोवएसेण** पुण खविदकम्मंसियकालो कम्मट्ठिदिमेत्तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणं । एदेसिं दोण्हमुवदेसाणं मज्झे सच्चेणेक्केणेव होदव्वं । तत्थ सच्चत्तणेगदरणिण्णओ णत्थि त्ति दोण्हं पि संगहो कायव्वो । जयध०

३ खवियंसयम्मि पगयं जहन्नगे नियगसंतकम्मंते ॥३९॥

(चू०) × × जहन्नगं संतकम्मं × × अप्पप्पणो संतकम्मस्स अंते भवति । कम्म० सत्ता० पृ० ६३.

२२. तदो पदेसुत्तरं दुपदेसुत्तरमेवमणंताणि ट्ठाणाणि तम्मि ट्ठिदिविसेसे। २३. केण कारणेण ? २४. जं तं जहाक्खयागदं तदो उक्कस्सयं पि समयपबद्धमेत्तं। २५. जो पुण तम्हि एक्कम्हि ठिदिविसेसे उक्कस्सगस्स विसेसो असंखेज्जा समयपबद्धा। २६. तस्स पुण जहण्णयस्स संतकम्मस्स असंखेज्जदिभागो। २७. एदेण कारणेण एयं फद्दयं। २८. दोसु ट्ठिदिविसेसेसु विदियं फद्दयं। २९. एवमावलियसमयूणमेत्ताणि फद्दयाणि। ३०. अपच्छिमस्स ठिदिखंडयस्स चरिमसमयजहण्णफद्दयमादिं कादूण जाव मिच्छत्तस्स उक्कस्सगं ति एदमेगं फद्दयं।

३१. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ३२. तधा चेव सुहुम-

गल जाता है और उदयावलीमें जो गलने योग्य द्रव्य था, वह भी जब गल जाता है, तब जिस समय एक निषेककी दो समय-प्रमाण स्थिति अवशिष्ट रहती है, उस समय उस जीवके मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म होता है ॥ २०-२१ ॥

चूर्णिसू०–उस जघन्यप्रदेशस्थानसे एक प्रदेश अर्थात् एक परमाणुसे अधिक दूसरा प्रदेशस्थान होता है, दो प्रदेशसे अधिक तीसरा प्रदेशस्थान होता है, इस प्रकार उस स्थिति-विशेषमें उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेशसे अधिक द्रव्यरूप अनन्त स्थान होते हैं ॥२२॥

शंकाचू०–किस कारणसे अनन्त स्थान होते हैं ? ॥२३॥

समाधानचू०–क्योंकि, कर्म-क्षपण-लक्षण-क्रियाकी परिपाटीसे जो जो द्रव्य क्षपण-को प्राप्त हुआ है, उससे भी उत्कृष्ट द्रव्य समयप्रबद्धमात्र (अधिक) होता है, अतएव अनन्त स्थान बन जाते हैं ॥२४॥

चूर्णिसू०–किन्तु उस एक स्थितिविशेषमें जो उत्कृष्ट-गत विशेष है, वह असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है। अर्थात् गुणितकर्मांशिक जीवके उत्कृष्ट द्रव्यमेंसे उसीके जघन्य द्रव्यके निकाल देनेपर जो शेष द्रव्य रहता है, वह असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है। इसका अभि-प्राय यह हुआ कि इस एक निषेक-स्थितिमें असंख्यात समयप्रबद्धमात्र प्रदेशस्थान निरन्तर उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं। किन्तु यह उत्कृष्टगत विशेष उस जघन्य सत्कर्मरूप प्रदेश-स्थानके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, अर्थात् जघन्यप्रदेश सत्कर्मस्थानके असंख्यातवें भागमात्र यहाँपर निरन्तर वृद्धिको प्राप्त हुए प्रदेश-सत्कर्मस्थान पाये जाते हैं; इस कारणसे इस स्थितिविशेषमें एक ही स्पर्धक होता है। दो स्थितिविशेषोंमें प्रदेशाग्र दो स्पर्धकप्रमाण होते हैं। इस प्रकार एक समय कम आवलीमात्र स्पर्धक पाये जाते हैं। अन्तिम स्थिति-खंड-के चरम समयमें जघन्य स्पर्धकको आदि करके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान प्राप्त होने तक एक स्पर्धक पाया जाता है ॥२५-३०॥

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म किसके होता है ? जो उसी प्रकारसे अर्थात् मिथ्यात्वके जघन्य द्रव्यके समान ही सूक्ष्मनिगोदिया जीवोंमें कर्मस्थिति-प्रमाण रहकर पुनः वहाँसे निकलकर और त्रसजीवोंमें उत्पन्न होकर संयमासंयम, संयम और

णिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदूण तदो तसेसु संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामेदूण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण मिच्छत्तं गदो दीहाए उव्वेलणद्धाए उव्वेलिदं तस्स जाधे सव्वं उव्वेलिदं उदयावलिया गलिदा, जाधे दुसमयकालट्ठिदियं एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसं, ताधे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णं पदेससंतकम्मं[१]। ३३. तदो पदेसुत्तरं। ३४. दुपदेसुत्तरं ३५. णिरंतराणि ट्ठाणाणि उक्कस्सपदेससंतकम्मं ति। ३६. एवं चेव सम्मत्तस्स वि। ३७. दोण्हं पि एदेसिं संतकम्माणमेगं फद्दयं।

३८. अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ३९. अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णयं काऊण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामिदूण एइंदियं गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-

---

सम्यक्त्वको अनेक वार प्राप्त कर, तथा चार वार कषायोंका उपशमन करके दो वार छयासठ सागरोपम कालतक सम्यक्त्वको परिपालन कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहाँपर दीर्घ उद्वेलनकालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलन किया, उसका जब सर्वद्रव्य उद्वेलन कर दिया गया और उदयावली भी गल गई, तथा जब एक स्थितिविशेषमें दो समयप्रमाण कालकी स्थितिवाला द्रव्य शेष रहा, तब उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेश सत्कर्म पाया जाता है। तदनन्तर प्रदेशोत्तरके क्रमसे अर्थात् जघन्य स्थानके ऊपर उत्कर्षण-अपकर्षणके द्वारा एक प्रदेशके बढ़नेपर सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशसत्कर्मका द्वितीय स्थान होता है। पुनः द्विप्रदेशोत्तरके क्रमसे अर्थात् जघन्य द्रव्यके ऊपर उत्कर्षण-अपकर्षणके वशसे दो कर्म-परमाणुओंके बढ़नेपर प्रदेशसत्कर्मका तीसरा स्थान होता है। इस प्रकार एक एक प्रदेश अधिकके क्रमसे निरन्तर बढ़ते हुए स्थान उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मरूप स्थान तक पाये जाते हैं। जिस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्यस्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान तक स्वामित्वका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे सम्यक्त्वप्रकृतिके स्वामित्वका निरूपण करना चाहिए। इन दोनों ही प्रकृतियोंके सत्कर्मोका एक स्पर्धक होता है, क्योंकि जघन्य सत्कर्मसे लेकर प्रदेशोत्तर, द्विप्रदेशोत्तरके क्रमसे निरन्तर वृद्धिंगत स्थान उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तक पाये जाते हैं॥३१-३७॥

चूर्णिसू०–आठ मध्यम कषायोंका जघन्य प्रदेशसत्कर्म किसके होता है ? जो एकेन्द्रिय जीवोंमें अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य द्रव्यको करके त्रसजीवोंमें आया और संयमासंयम, संयम तथा सम्यक्त्वको अनेक वार प्राप्तकर और चार वार कषायोंका उपशमन कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रह करके

---

१ उव्वलमाणीण उव्वलणा एगट्ठिई दुसामइगा। दिट्ठिदुगे बत्तीसे उदहिसए पालिए पच्छा॥५०॥

(चू०) ××× सम्मत्त–सम्मामिच्छत्ताणं वे छावट्ठीओ सागरोवमाणं सम्मत्तं अणुपालेत्तु, पच्छा मिच्छत्तं गतो चिरउव्वलणाए अप्पप्पणो उव्वल्लणाए आवलिगाए उवरिमं ट्ठितिखंडगं संकममाणं संकंतं उदयावलिया खिज्जति जाव एगट्ठितिसेसे दुसमयकालट्ठितिगे जहन्नं पदेससंतं। कम्म० सत्ता० पृ० ६४.

मच्छिदूण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण कालं गदो तसेसु आगदो कसाए खवेदि अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए अवगदे अधट्ठिदिगलणाए उदयावलियाए गलंतीए एक्किस्से ट्ठिदीए सेसाए तम्मि जहण्णयं पदं । ४०. तदो पदेसुत्तरं । ४१. णिरंतराणि ट्ठाणाणि जाव एगट्ठिदिविसेसस्स उक्कस्सपदं । ४२. एदमेगं फद्दयं* । ४३. एदेण कमेण अट्ठण्हं पि कसायाणं समयूणावलियमेत्ताणि फद्दयाणि उदयावलियादो । ४४. अपच्छिमट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमयजहण्णपदमादिं कादूण जावुक्कस्सपदेससंतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं ।

४५. अणंताणुबंधीणं मिच्छत्तभंगो[1] । ४६. णवुंसयवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ४७. तधा चेव अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णेण संतकम्मेण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामिदूण तदो तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति सम्मत्तं

और कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके मरणको प्राप्त हो, त्रसोंमें आकर मनुष्य होकर कषायोंका क्षय करता है; उसके अन्तिम स्थिति-खंडके अधःस्थितिगलनाके द्वारा गल जानेपर तथा गलती हुई उदयावलीमें एक स्थितिके शेष रहनेपर आठों कषायोंका जघन्य प्रदेश सत्कर्म होता है । उसके आगे प्रदेशोत्तरके क्रमसे तब तक निरन्तर स्थान पाये जाते हैं, जब तक कि एक स्थितिविशेषका उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है । ये स्थान एक स्पर्धकप्रमाण हैं । क्योंकि यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । इस ही क्रमसे आठों ही कषायोंके उदयावलीसे लेकर एक समय कम आवलीमात्र स्पर्धक जानना चाहिए । अन्तिम स्थितिकांडकके चरमसमयके जघन्य पदको आदि लेकरके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म प्राप्त होने तक निरन्तर स्थानोंका प्रमाण एक स्पर्धक है ॥ ३८-४४ ॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य स्वामित्वकी प्ररूपणा मिथ्यात्वके जघन्य स्वामित्वके समान जानना चाहिए । नपुंसकवेदका जघन्यप्रदेशसत्कर्म किसके होता है ? जो जीव उसी प्रकारसे एकेन्द्रियोंमें अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य सत्कर्मको करके उसके साथ त्रसोंमें आया और संयमासंयम, संयम तथा सम्यक्त्वको अनेक वार प्राप्तकर, और चार वार कपायोंका उपशम कर तत्पश्चात् तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर जीवनके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहणकर दो वार छयासठ सागरोपमप्रमाण

*ताम्र-पत्रवाली प्रतिमें यह सूत्र नहीं है, पर होना चाहिए, क्योंकि इसकी 'टीका एदमेगं फद्दयमेत्थ अंतराभावादो' इस रूपसे पाई जाती है । आगे भी नपुंसकवेदके जघन्यप्रदेशसत्कर्म बतलाते हुए यही सूत्र दिया गया है । (देखो सूत्र नं० ५०)

[1] खणसंजोइयसंजोयणाण चिरसम्मकालंते ॥ ३९ ॥

(चू०) × × खवियकम्मंसिगो सम्मद्दिट्ठी अणंताणुबंधिणो विसंजोजेत्तु पुणो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तं अणंताणुबंधी बंधित्तु पुणो सम्मत्तं पडिवन्नो 'चिरसम्मकालंते' त्ति-वे छावट्ठीतो सम्मत्तं अणुपालेत्तु खवणाए अब्भुट्ठियस्स एगट्ठितिसेसे वट्टमाणस्स दुसमयकालट्ठितीयं जहण्णगं अणंताणुबंधीणं पदेससंतं भवति । कम्म० सत्ता० गा० ३९, चू० पृ० ६३.

घेत्तूण बे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तद्धमणुपालिऊण मिच्छत्तं गंतूण णवुंसयवेदमणुस्सेसु उववण्णो सव्वचिरं संजममणुपालिदूण खवेदुमाढत्तो। तदो तेण अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणं संछुद्धं उदओ णवरिविसेसो तस्स चरिमसमयणवुंसयवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं। ४८. तदो पदेसुत्तरं। ४९. णिरंतराणि ट्ठाणाणि जाव तप्पाओग्गो उक्कस्सओ उदओ त्ति। ५०. एदमेगं फद्दयं। ५१. अपच्छिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमयजहण्णपदमादिं कादूण जाव उक्कस्सपदेससंतकम्मं णिरंतराणि ट्ठाणाणि। ५२. एवं णवुंसयवेदस्स दो फद्दयाणि। ५३. एवमित्थिवेदस्स, णवरि तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णो।

५४. पुरिसवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स? ५५. चरिमसमयपुरिसवेदोदयक्खवगेण घोलमाणजहण्णजोगट्ठाणे वट्टमाणेण जं कम्मं बद्धं तं कम्ममावलियसमयअवेदो संकामेदि। जत्तो पाए संकामेदि तत्तो पाए सो समयपबद्धो आवलियाए अकम्मं होदि। तदो एगसमयमोसक्किदूण जहण्णयं पदेससंतकम्मट्ठाणं।

५६. तस्स कारणमिमा परूवणा कायव्वा।

सम्यक्त्वके कालको अनुपालकर और पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर नपुंसकवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ सर्वाधिक चिरकालतक संयमका परिपालनकर कर्मोंका क्षपण आरम्भ किया। तब उसने संक्रम्यमाण अन्तिम स्थिति-खंडको संक्रान्त किया, अर्थात् नपुंसकवेदकी चरमफालिको सर्वसंक्रमणके द्वारा पुरुषवेदमें संक्रमित किया। उस समय उदयमें इतनी विशेषता है कि एक समयकी कालस्थितिवाले एक निषेकके अवशिष्ट रहनेपर उस चरमसमयवर्ती नपुंसकवेदी जीवके नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म होता है। तदनन्तर प्रदेशोत्तरके क्रमसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट उदय प्राप्त होने तक निरन्तर स्थान पाये जाते हैं, ये स्थान एक स्पर्धक-प्रमाण है। अन्तिम स्थितिखंडके चरमसमयवर्ती जघन्य पदको आदि करके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म तक निरन्तर स्थान पाये जाते हैं। इस प्रकार नपुंसकवेदके दो स्पर्धक जानना चाहिए। इसी प्रकारसे स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मका स्वामित्व भी प्ररूपण करना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उसे तीन पल्योपमकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न नहीं कराना चाहिए ॥४५-५३॥

चूर्णिसू०–पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म किसके होता है? घोटमान अर्थात परिवर्तमान जघन्य योगस्थानमें वर्तमान, चरम-समयवर्ती पुरुषवेदोदयी क्षपकने जो कर्म बाँधा है, उस कर्मको वह अपगतवेदी होकर समयाधिक आवलीकालसे संक्रमण प्रारम्भ करता है। जिस स्थलसे वह संक्रमण प्रारम्भ करता है, उस स्थलसे वह समयप्रबद्ध एक आवलीकालके द्वारा अकर्मरूप होता है। उससे एक समय नीचे जाकर पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थान होता है ॥ ५४-५५ ॥

चूर्णिसू०–इसका कारण जाननेके लिए यह वक्ष्यमाण प्ररूपणा करना चाहिए॥५६॥

५७. पढमसमयअवेदगस्स केत्तिया समयपबद्धा ? ५८. दो आवलियाओ दुसमऊणाओ । ५९. केण कारणेण । ६०. जं चरिमसमयसवेदेण बद्धं तमवेदस्स विदियाए आवलियाए तिचरिमसमयादो त्ति दिस्सदि, दुचरिमसमए अकम्मं होदि । ६१. जं दुचरिमसमयसवेदेण बद्धं तमवेदस्स विदियाए आवलियाए चदुचरिमसमयादो त्ति दिस्सदि । ६२. *तिचरिमसमए अकम्मं होदि । ६३. एदेण कमेण चरिमावलियाए पढमसमयसवेदेण जं बद्धं तमवेदस्स पढमावलियाए चरिमसमए अकम्मं होदि । ६४. जं सवेदस्स दुचरिमाए आवलियाए पढमसमए पबद्धं तं चरिमसमयसवेदस्स अकम्मं होदि । ६५. जं तिस्से चेव दुचरिमसवेदावलियाए विदियसमए बद्धं तं पढमसमयअवेदस्स अकम्मं होदि । ६६. एदेण कारणेण वे समयपबद्धे ण लहदि । ६७. सवेदस्स दुचरिमावलियाए दुसमयूणाए चरिमावलियाए सव्वे च एदे समयपबद्धे अवेदो लहदि । ६८. एसा ताव एक्का परूवणा ।

शंकाचू०–प्रथमसमयवर्ती अवेदकके कितने समयप्रबद्ध होते हैं ? ॥ ५७ ॥

समाधानचू०–दो समय कम दो आवलियोंके जितने समय होते हैं, उतने समयप्रबद्ध होते हैं ॥ ५८ ॥

शंकाचू०–किस कारणसे दो समय कम किये गये हैं ? ॥ ५९ ॥

समाधानचू०–चरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकने जो कर्म बाँधा है, वह अवेदी क्षपककी दूसरी आवलीके त्रिचरमसमय-पर्यन्त दिखाई देता है और द्विचरम समयमें अकर्मरूप हो जाता है । द्विचरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकने जो कर्म बाँधा है, वह अवेदी क्षपककी दूसरी आवलीके चतुःचरमसमय-पर्यन्त दिखाई देता है और त्रिचरमसमयमें अकर्मरूप हो जाता है । इस क्रमसे चरम-आवलीके प्रथमसमयवर्ती क्षपकने जो कर्म बाँधा है, वह अवेदी क्षपककी प्रथमावलीके अन्तिम समयमें अकर्मरूप हो जाता है । जो कर्म सवेदी क्षपकने द्विचरमावलीके प्रथम समयमें बाँधा है, वह चरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकके अकर्मरूप हो जाता है । जो कर्म उस ही द्विचरम-सवेदावलीके द्वितीय समयमें बाँधा है, वह प्रथमसमयवर्ती अवेदीके अकर्मरूप हो जाता है । इस कारणसे द्विचरम-सवेदावलीके प्रथम और द्वितीय समयमें बँधे हुए दो समयप्रबद्ध प्रथमसमयवर्ती अवेदी क्षपकके नहीं पाये जाते हैं । अतः दो समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्ध ही प्रथमसमयवर्ती अवेदकके पाये जाते हैं ॥ ६०-६७ ॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार यह एक प्ररूपणा जघन्य द्रव्यका प्रमाण जाननेके लिए तथा अपगतवेदी क्षपकके पाये जानेवाले सत्कर्मस्थानोंका कारण बतलानेके लिए की गई है॥६८॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इसे ६१वें सूत्रके अन्तमें कोष्ठकके अन्तर्गत करके दिया है । पर इसका स्थान टीकाके 'संकमपारंभादो'के अनन्तर है, जिसे कि टीका समझ लिया गया है । 'बद्धसमयादो'से आगेका अंश इसी सूत्रकी टीका है, अतएव इसे पृथक् सूत्र ही होना चाहिए । (देखो पृ० ७४७)

६९. इमा अण्णा परूवणा । ७०. दोहि चरिमसमयसवेदेहि तुल्लजोगीहि बद्धं कम्मं तेसिं तं संतकम्मं चरिमसमयअणिल्लेविदं पि तुल्लं । ७१. दुचरिमसमयअणिल्लेविदं पि तुल्लं । ७२. एवं सव्वत्थ ।

७३. एदाहि दोहि परूवणाहि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि परूवेदव्वाणि । ७४. जहा–जो चरिमसमयसवेदेण बद्धो समयपबद्धो तम्हि चरिमसमयअणिल्लेविदे घोलमाण-जहण्णजोगट्ठाणमादिं कादूण जत्तियाणि जोगट्ठाणाणि तत्तियमेत्ताणि संतकम्मट्ठाणाणि । ७५. चरिमसमयसवेदेण उक्कस्सजोगेणेत्ति दुचरमसमयसवेदेण जहण्णजोगट्ठाणेणेत्ति एत्थ जोगट्ठाणमेत्ताणि [संतकम्मट्ठाणाणि] लब्भंति । ७६. चरिमसमयसवेदो उक्कस्सजोगो दुचरिमसमयसवेदो उक्कस्सजोगो तिचरिमसमयसवेदो अण्णदरजोगट्ठाणे त्ति । एत्थ पुण जोगट्ठाणमेत्ताणि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि । ७७. एवं जोगट्ठाणाणि दोहि आवलियाहि दुसमयूणाहि पदुप्पण्णाणि *एत्तियाणि अवेदस्स संतकम्मट्ठाणाणि सांतराणि सव्वाणि ।

चूर्णिसू०–अब उपर्युक्त प्ररूपणासे भिन्न दूसरी प्ररूपणा की जाती है–तुल्य योगवाले और चरमसमयवर्ती दो सवेदी क्षपकोंके द्वारा बाँधा हुआ कर्म समान होता है, तथा चरम-समयमें अनिर्लेपित सत्कर्म भी उनका समान होता है । द्विचरम-समयमें अनिर्लेपित सत्कर्म भी समान होता है । त्रिचरम-समयमें अनिर्लेपित सत्कर्म भी समान होता है इस प्रकार बँधनेके प्रथम समय तक सर्वत्र अनिर्लेपित सत्कर्म समान जानना चाहिए । इस प्रकार इन दोनों प्ररूपणाओंके द्वारा पुरुषवेदके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । वह इस प्रकार है–चरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकने जो समयप्रबद्ध बाँधा है, उसे चरम समयमें अनिर्लेपित करनेपर अर्थात् चरमफालिमात्रके शेप रहने पर घोटमानजघन्ययोगस्थानको आदि करके जितने योगस्थान होते हैं, उतने ही पुरुषवेदके सत्कर्मस्थान होते हैं ॥ ६९-७४ ॥

चूर्णिसू०–जो जीव उत्कृष्ट योगी चरमसमयसवेदी है और जो जघन्य योगी द्विचरमसमयसवेदी है, उसके योगस्थान-प्रमाण पुरुषवेदके प्रदेशसत्कर्मस्थान होते हैं । जो जीव चरमसमयसवेदी उत्कृष्ट योगवाला है, जो द्विचरमसमयसवेदी उत्कृष्ट योगवाला है, त्रिचरमसमयसवेदी अन्यतर योगमें विद्यमान है, उनके योगस्थान-प्रमाण प्रदेशसत्कर्मस्थान होते हैं । इस प्रकार दो समय कम दो आवली-प्रमाण जो योगस्थान उत्पन्न किये गये हैं, उतने अवेदीके पुरुषवेदके सर्व सान्तर प्रदेशसत्कर्मस्थान होते हैं ॥ ७५-७७ ॥

विशेषार्थ–यहाँपर पुरुषवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानोंको बतलानेके लिए चूर्णिकारने 'एदाहि दोहि परूवणाहि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि परूवेदव्वाणि' इस सूत्रके द्वारा दो प्रकारकी प्ररूपणाके बीजपदोंका संकेत किया है । उनमेंसे 'एक समयप्रबद्धसे लेकर दो समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्धोंकी प्ररूपणा' यह प्रथम बीजपद है; क्योंकि यह जघन्य

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगेके सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया गया है । पर प्रकरणको देखते हुए यह सूत्रांश ही होना चाहिए । (देखो पृ० ७५६)

७८. चरिमसमयसवेदस्स एगं फद्दयं। ७९. दुचरिमसमयसवेदस्स चरिमट्ठिदिखंडगं चरिमसमयविणट्ठं। ८०. तस्स दुचरिमसमयसवेदस्स जहण्णगं संतकम्ममादिं कादूण जाव पुरिसवेदस्स ओघुक्कस्सपदेससंतकम्मं त्ति एदमेगं फद्दयं।

योगस्थानसे लेकर सब योगस्थानोंकी अपेक्षा सान्तर प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्तिका निमित्त है। इस सूत्रके पश्चात् 'जहा–जो चरमसमयसवेदेण······' इत्यादि सूत्रको आदि लेकर चार सूत्रोंके द्वारा प्रथम बीजपदके निमित्तसे उत्पन्न हुए दो समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्धोंकी प्ररूपणा की है। उन चार सूत्रोंमेंसे प्रथम सूत्रके द्वारा चरम समयके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका, दूसरे सूत्रसे द्विचरम समयके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका और तीसरे सूत्रसे त्रिचरम समयके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका कथन करके चौथे सूत्रमें यह कहा कि 'इसी प्रकार शेष दो समय कम दो आवलीप्रमाण योगस्थानोंके अनुसार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंको जानना चाहिए।' सवेदी क्षपकके अन्तिम समयमें जघन्य योगस्थानसे लेकर जितने योगस्थान संभव हैं, उतने ही अवेदीके चरम समयमें प्रदेशसत्कर्मस्थान होते हैं। इसका कारण यह है कि पृथक्-पृथक् योगस्थानोंके द्वारा भिन्न-भिन्न समयप्रबद्धोंका बन्ध होता है, और इसलिए उन समयप्रबद्धोंका सत्त्व भी नाना प्रकारका होगा, जिसके कि कारण प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार सवेदीके उपान्त्य समयमें तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट योगस्थान तक जितने योगस्थान संभव हैं, उन योगस्थानोंके द्वारा बन्धको प्राप्त हुए समयप्रबद्धोंका सत्त्व अवेदी क्षपकके द्विचरम समयमें रहता है, और इन भिन्न-भिन्न समयप्रबद्धोंके सत्त्वसे नानाप्रकारके प्रदेशसत्कर्मस्थान उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सवेदके त्रिचरम समयमें योगस्थानोंके द्वारा बाँधे गये समयप्रबद्धोंका सत्त्व अवेदी क्षपकके त्रिचरम समयमें प्राप्त होगा, जिनके निमित्तसे त्रिचरम समयमें प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होगी। इसी प्रकार दो समय कम दो आवलियोंके समयोंमें प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका कथन कर लेना चाहिए।

'बन्धावली-प्रमाण अतीत समयप्रबद्धोंका अन्य प्रकृतिमें संक्रमण होना', यह सान्तर प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका दूसरा बीजपद है। आगेके तीन सूत्रोंके द्वारा इस दूसरे बीजपदके निमित्तसे प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका कथन करते हैं–

चूर्णिसू०–चरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकके एक स्पर्धक है। द्विचरमसमयवर्ती सवेदीके चरमस्थितिकांडक चरमसमयमें विनष्ट होता है। उस द्विचरमसमयवर्ती सवेदीके पुरुषवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानसे लेकर ओघ-उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तक जो द्रव्य है वह एक स्पर्धक है॥ ७८-८०॥

विशेषार्थ–द्विचरमसमयवर्ती सवेदी क्षपकके जघन्य सत्कर्मस्थानसे लेकर ओघ उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तक एक स्पर्धक कहनेका कारण यह है कि यहाँपर जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानसे लेकर उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तक निरन्तर प्रदेशसत्कर्मस्थान पाये जाते हैं। कोई एक विवक्षित जीव जघन्य योगस्थान और जघन्य प्रकृत-गोपुच्छावाला है, उसकी प्रकृत-गोपुच्छाके

८१. कोधसंजलणस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ८२. चरिमसमयकोध-वेदगेण खवगेण जहण्णजोगट्ठाणे जं बद्धं तं जं वेलं चरिमसमयअणिल्लेविदं तस्स जहण्णयं संतकम्मं । ८३. जहा पुरिसवेदस्स दोआवलियाहि दुसमऊणाहि जोगट्ठाणाणि पदुप्पण्णाणि एवदियाणि संतकम्मट्ठाणाणि सांतराणि । एवं आवलियाए समऊणाए जोगट्ठाणाणि पदुप्पण्णाणि एत्तियाणि कोधसंजलणस्स सांतराणि संतकम्मट्ठाणाणि । ८४. कोधसंजलणस्स उदए वोच्छिण्णे जा पढमावलिया तत्थ गुणसेढी पविट्ठल्लिया । ८५. तिस्से आवलियाए चरिमसमए एगं फद्दयं । ८६. दुचरिमसमए अण्णं फद्दयं । ८७. एवमावलियसमयूणमेत्ताणि फद्दयाणि । ८८. चरिमसमयकोधवेदयस्स खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदं खंडयं होदि । ८९. तस्स जहण्णसंतकम्ममादिं कादूण जाव ओघुक्कस्सं कोधसंजलणस्स संतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं ।

द्रव्यको एक एक प्रदेश अधिकके क्रमसे तब तक बढ़ाते जाना चाहिए जब तक कि वह जीव उस दूसरे जीवके समान न हो जावे जो द्वितीय योगस्थान और जघन्य प्रकृत-गोपुच्छाके साथ स्थित है। इसी प्रकार इस दूसरे जीवकी प्रकृत-गोपुच्छाके द्रव्यको एक एक प्रदेश अधिकके क्रमसे तब तक बढ़ाना चाहिए, जब तक कि वह दूसरा जीव उस तीसरे जीवके समान न हो जावे, जो तृतीय योगस्थान और जघन्य प्रकृत-गोपुच्छाके साथ अवस्थित है। इस प्रकार नाना जीवोंके आश्रयसे जघन्य योगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट योगस्थान तक निरन्तर प्रदेशसत्कर्मस्थान उत्पन्न कराना चाहिए। इस ही प्रकार द्विचरम, त्रिचरम आदि सवेदी जीवों-के पृथक्-पृथक् एक एक स्पर्धकका कथन करना चाहिए। यहाँपर संक्रमणफालीके अन्तर्गत प्रकृत-गोपुच्छाके आश्रयसे एक एक समयमें निरन्तर प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति कही गई है, अतः ये प्रदेशसत्कर्मस्थान दूसरे बीजपदके निमित्तसे उत्पन्न हुए हैं।

चूर्णिसू०—संज्वलनक्रोधका जघन्य प्रदेशसत्कर्म किसके होता है ? चरमसमय-वर्ती क्रोध-वेदक क्षपकने जघन्य योगस्थानमें स्थित होकर जो कर्म बाँधा और जिस समय वह चरम समयमें अनिर्लेपित है, उस समय उस जीवके संज्वलनक्रोधका जघन्य प्रदेश-सत्कर्म होता है। जिस प्रकार पुरुषवेदके दो समय-कम दो आवलियोंसे योगस्थान उत्पन्न किये गये हैं, उतने ही पुरुषवेदके सान्तर सत्कर्मस्थान होते हैं। इसी प्रकार एक समय कम आवलीके द्वारा जितने योगस्थान उत्पन्न होते हैं, उतने ही संज्वलनक्रोधके सान्तर सत्कर्म-स्थान होते हैं। संज्वलनक्रोधके उदयके व्युच्छिन्न होनेपर जो प्रथमावली है उसमें गुणश्रेणी प्रविष्ट होती है। उस आवलीके चरम समयमे एक स्पर्धक होता है, द्विचरमसमयमें अन्य स्पर्धक होता है। इस प्रकार एक समय कम आवली-प्रमाण स्पर्धक होते हैं। चरमसमय-वर्ती क्रोधवेदक क्षपकके चरम समयमें अनिर्लेपित चरमस्थितिकांडक होता है। उस चरम-समयवर्ती क्रोधवेदक क्षपकके जघन्य सत्कर्मसे लेकर संज्वलनक्रोधके ओघ-उत्कृष्ट सत्कर्म तक एक स्पर्धक होता है। ॥ ८१-८९ ॥

९०. जहा कोधसंजलणस्स, तहा माण-मायासंजलणाणं। ९१. लोभसंजलणस्स जहण्णगं पदेससंतकम्मं कस्स ? ९२. अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णगेण कम्मेण तसकायं गदो तम्मि संजमासंजमं संजमं च बहुवारं लद्धाउओ कसाए ण उवसामिदाउओ। तदो कमेण मणुस्सेसुववण्णो। दीहं संजमद्धमणुपालेदूण कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे जहण्णगं लोभसंजलणस्स पदेससंतकम्मं[1]। ९३. एदमादिं कादूण जावुक्कस्सयं संतकम्मं णिरंतराणि ट्ठाणाणि। ९४. छण्णोकसायाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? ९५. अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तसेसु आगदो। तत्थ संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धो। चत्तारि वारं कसाए उवसामेदूण तदो कमेण मणुसो जादो। तत्थ दीहं संजमद्धं कादूण खवणाए अब्भुट्ठिदो। तस्स चरिमसमयट्ठिदिखंडए चरियसमयअणिल्लेविदे छण्हं कम्मंसाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं। ९६. तदादियं जाव उक्कस्सियादो एगमेव फद्दयं।

चूर्णिसू०—जिस प्रकारसे संज्वलनक्रोधके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकारसे संज्वलनमान और संज्वलनमायाके प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी प्ररूपणा करना चाहिए। संज्वलनलोभका जघन्यप्रदेश सत्कर्म किसके होता है ? जो जीव अभव्यसिद्धोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसकायको प्राप्त हुआ। वहाँपर उसने बहुत वार संयमासंयम और संयमको धारण किया किन्तु कषायोंको उपशमित नहीं किया। पुनः एकेन्द्रियादिकोंमें परिभ्रमण कर क्रमसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ दीर्घकाल तक संयमका परिपालन कर कषायोंकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। उसके अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें संज्वलन लोभका जघन्यप्रदेश सत्कर्म होता है। इस जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानको आदि लेकर उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान प्राप्त होने तक निरन्तर प्रदेशसत्कर्मस्थान पाये जाते हैं ॥ ९०-९३ ॥

चूर्णिसू०—हास्यादि छह कषायोंका जघन्य प्रदेशसत्कर्म किसके होता है ? जो जीव अभव्यसिद्धोंके योग्य जघन्यसत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त किया और चार वार कषायोंका उपशमन कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः क्रमसे मनुष्य हुआ और वहाँपर दीर्घकाल तक संयमका परिपालन कर क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। तब चरम स्थितिकांडकके चरम समयमें अनिर्लेपित रहनेपर हास्यादि छह नोकषायोंका जघन्य प्रदेशसत्कर्म होता है। उस जघन्यप्रदेशसत्कर्मस्थानको आदि लेकर उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्थान तक एक ही स्पर्धक होता है ॥ ९४-९६ ॥

---

[1] अंतिमलोभ-जसाणं मोहं अणुवसमइत्तु खीणाणं।
नेयं अहापवत्तकरणस्स चरमम्मि समयम्मि ॥ ४१ ॥

(चू०) × × लोभसंजलण-जसकित्तीणं × × चरित्तमोहणिज्जं अणुवसमित्तु सेसिगाहि खवियकम्मंसिगकिरियाहि 'खीणाणं' त्ति—थोगीकयाणं दलियाणं चरित्तमोहं उवसामिंतस्स बहुगा पोग्गला गुणसंकमेण लब्भंति तम्हा सेढिवज्जणं इच्छिज्जति। × × अहापवत्तकरणस्स चरिमसमये च वट्टमाणस्स लोभसंजलण-जसाणं जहण्णगं पदेससंतं भवति, परओ दलियं तु गुणसंकमेण वड्ढति त्ति काउं। कम्म० सत्ता० पृ० ६५.

९७. कालो। ९८. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? ९९. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। १००. अणुक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? १०१. जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। १०२. अण्णो उवदेसो जहण्णेण असंखेज्जा लोगा त्ति। १०३. अधवा खवगं पडुच्च वासपुधत्तं। १०४. एवं सेसाणं कम्माणं णादूण णेदव्वं। १०५. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्सदव्वकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। १०६. उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। १०७. जहण्णकालो जाणिदूण णेदव्वो।

चूर्णिसू०—अब प्रदेशविभक्तिके कालको कहते हैं—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अपेक्षासे एक समयमात्र काल है। मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अन्य आचार्योंका उपदेश है कि मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल असंख्यात लोकके जितने समय होते हैं, तत्प्रमाण है। अथवा क्षपककी अपेक्षा मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकारसे शेष कर्मोंकी प्रदेशविभक्तिका काल जान करके कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्टकाल साधिक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥९७–१०६॥

विशेषार्थ—इस सूत्रसे सूचित शेष कर्मोंकी प्रदेशविभक्तिका काल इस प्रकार जानना चाहिए—अप्रत्याख्यानावरणादि आठ मध्यमकषाय और हास्यादि सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल असंख्यातपुद्गल परिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल है। अथवा क्षपककी अपेक्षा वर्षपृथक्त्व है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी प्रदेशविभक्तिका काल मिथ्यात्वके समान ही है। केवल इतना भेद है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसका कारण यह है कि कोई जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके पुनः उसका संयोजन करके फिर भी अन्तर्मुहूर्तसे उसका विसंयोजन कर सकता है। चारों संज्वलनकषाय और पुरुषवेदकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। इन्हीं पाँचों कर्मोंकी अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त है। इनमेंसे सादि-सान्त जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्वसे अधिक दश हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। इन्हीं दोनों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल चूर्णिकारने स्वयं कहा ही है।

चूर्णिसू०—जघन्य प्रदेशविभक्तिका काल जान करके कहना चाहिए ॥ १०७ ॥

१०८. अंतरं । १०९. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मियंतरं जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । ११०. एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं । १११. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पुरिसवेद-चदुसंजलणाणं च उक्कस्सपदेसविहत्तिअंतरं णत्थि । ११२. अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं ।

११३. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो जहण्णुक्कस्सभेदेहि । अट्ठपदं कादूण सव्वकम्माणं णेदव्वो ।

विशेषार्थ—इस सूत्रसे सूचित सर्व कर्मोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका काल उच्चारणा-वृत्तिके अनुसार इस प्रकार है—मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क और लोभको छोड़कर शेष संज्वलनत्रिक, तथा नव नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । इन्हीं उक्त कर्मोंकी अजघन्यप्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त है । सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्यप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । इन्हीं दोनों कर्मोंकी अजघन्यप्रदेशविभक्तिका जघन्य-काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी जघन्यप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्यप्रदेशविभक्तिका काल तीन प्रकार का है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमेंसे सादि-सान्तकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्ध-पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । संज्वलन लोभकी जघन्यप्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । संज्वलन लोभकी अजघन्यप्रदेशविभक्तिका काल तीन प्रकार का है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमेंसे सादि-सान्त जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ।

चूर्णिसू०—अब प्रदेशविभक्तिका अन्तर कहते हैं—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल है । इसी प्रकार शेष कर्मों-का भी जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी है कि सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, पुरुषवेद और चारों संज्वलनकषायोंकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्तिका अन्तर नहीं होता है । मोहनीय-कर्मकी सभी प्रकृतियोंकी प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर जान करके कहना चाहिए अर्थात् किसी भी कर्मकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तर नहीं होता है ॥१०८–११२॥

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनका अर्थपद करके सर्व कर्मोंका भंगविचय जानना चाहिए ॥११३॥

विशेषार्थ—इस सूत्रसे सूचित सर्व कर्मोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय करनेके लिए यह अर्थपद है—जो जीव उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मकी विभक्तिवाले होते हैं, वे जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मकी विभक्तिवाले नहीं होते । तथा जो अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मकी विभक्तिवाले होते हैं, वे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मकी विभक्तिवाले नहीं होते हैं । इस अर्थपदके अनुसार मोहकर्मकी

११४. सव्वकम्माणं णाणाजीवेहि कालो कायव्वो ।

११५. अंतरं । णाणाजीवेहि सव्वकम्माणं जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

सभी प्रकृतियोंके कदाचित् सर्व जीव उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं १, कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और कोई एक जीव अविभक्तिवाला होता है २, कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले होते हैं ३ । इस प्रकार तीन भंग होते हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके भी इसी प्रकार तीन भंग जानना चाहिए । इसी प्रकार सर्व कर्मोंके जघन्य अजघन्यप्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भी तीन-तीन भंग होते हैं । आदेशकी अपेक्षा कितने ही जीवोंके आठ भंग तक होते हैं, सो जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रदेशविभक्तिके कालकी प्ररूपणा करना चाहिए॥ ११४॥

विशेषार्थ—चूर्णिकारके द्वारा सूचित और उच्चारणाचार्यके द्वारा प्ररूपित नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्व कर्मोंकी प्रदेशसत्कर्मविभक्तिका काल इस प्रकार है—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय और पुरुषवेदको छोड़कर शेष आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। इन्हीं कर्मोंकी अनुत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मविभक्तिका सर्वकाल है । सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, चारों संज्वलन और पुरुषवेदके उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । इन्हीं कर्मोंकी अनुत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मविभक्तिका सर्वकाल है । नानाजीवोंकी अपेक्षा मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशसत्कर्मविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । सर्व कर्मोंकी अजघन्य प्रदेशसत्कर्मविभक्तिका सर्वकाल है । आदेशकी अपेक्षा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्य प्रदेशसत्कर्मविभक्तिका काल जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रदेशविभक्तिका अन्तर कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व कर्मोंकी प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित अनन्तकाल हैं ॥ ११५॥

विशेषार्थ—मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका जिन बाईस अनुयोगद्वारोंसे इस अधिकारके प्रारंभमें वर्णन किया गया है, उनमें सन्निकर्षको मिलाकर तेईस अनुयोगद्वारोंसे उत्तरप्रकृतिप्रदेशविभक्तिका वर्णन करना क्रम-प्राप्त था । किन्तु ग्रन्थ-विस्तारके भयसे चूर्णिकारने उनमेंसे केवल स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल और अन्तर कहकर नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, और कालके जाननेकी सूचना करते हुए नानाजीवोंकी अपेक्षा प्रदेशविभक्तिका अन्तर कहा है, तथा आगे अल्पबहुत्व कहेंगे । मध्यवर्ती शेष सोलह अनुयोगद्वारोंका देशामर्शकरूपसे कथन किया गया है, अतएव विशेष जिज्ञासुजनोंको शेष अनुयोगद्वारोंसे प्रदेशविभक्तिके विशेषपरिज्ञानार्थ जयधवला टीका देखना चाहिए ।

११६. अप्पाबहुअं । ११७. सव्वत्थोवमपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं । ११८. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । ११९. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२०. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१२१. पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२२. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२३. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२४. लोभस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१२५. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२६. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२७. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १२८. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१२९. सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३०. सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३१. मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३२. हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं ।

चूर्णिसू०—अब प्रदेशसत्कर्मसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं :—अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म सबसे कम है । इससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्म विशेष अधिक है । इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥११६-१२०॥

चूर्णिसू०—अप्रत्याख्यानावरण लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्या-नावरण मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक हैं । इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोध-कषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१२१-१२४॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरण लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेश सत्कर्म विशेष अधिक है ॥१२५-१२८॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी लोभके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है । ॥१२९-१३२॥

१३३. रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३४. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । १३५. सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३६. अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३७. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३८. दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १३९. भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४०. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४१. कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । १४२. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४३. मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४४. लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१४५. णिरयगदीए सव्वत्थोवं सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं । १४६. अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । १४७. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४८. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १४९. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

चूर्णिसू०—हास्यप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । रतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । शोकप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अरतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । जुगुप्साप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । भयप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । संज्वलनक्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलन लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१३३–१४४॥

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । सम्यग्मिथ्यात्वसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणमानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है । अप्रत्याख्यानावरणमानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण मायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१४५-१४९॥

१५०. पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५१. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५२. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५३. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१५४. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५५. कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५६. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५७. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१५८. सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १५९. मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६०. हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं । १६१. रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६२. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । १६३. सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६४. अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६५. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६६. दुगुंछाए

चूर्णिसू०—अप्रत्याख्यानावरण-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण-मानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण-मायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१५०-१५३॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरण-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी-मानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी-क्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी-मायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१५४-१५७॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणित है । हास्यप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । रतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । शोकप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अरतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष

उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६७. भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १६८. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१६९. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७०. कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७१. मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७२. लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७३. एवं सेसाणं गदीणं णादूण णेदव्वं ।

१७४. एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं । १७५. सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । १७६. अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । १७७. कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७८. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १७९. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१८०. पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८१. कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८२. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

अधिक है । जुगुप्साप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । भयप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे विशेष अधिक है ॥१५८-१६८॥

चूर्णिसू०-पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमानके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनक्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमायाके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । इसी प्रकारसे शेषगतियोंका अल्पबहुत्व जान करके लगाना चाहिए ॥१६९-१७३॥

चूर्णिसू०-एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है । अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायमें उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायके उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-मायाकषायमें उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण-मायाकषायके उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यावरण लोभकषायमें उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१७४-१७९॥

चूर्णिसू०-अप्रत्याख्यानावरण-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण मानकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण-मानकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष

१८३. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१८४. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८५. कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८६. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८७. लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१८८. मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १८९. हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं । १९०. रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९१. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । १९२. सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९३. अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं १९४. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९५. दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९६. भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९७. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

१९८. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । १९९. कोहे उक्कस्स-

अधिक है । प्रत्याख्यानावरण-मायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१८०-१८३॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरण-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धीमान-कषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी मानकषायके उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी क्रोधकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी मायाकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी मायाकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी लोभकषायमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक हैं ॥१८४-१८७॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी-लोभकषायके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है । हास्यप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्म विशेष अधिक है । रतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म-संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । शोकप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अरतिप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । जुगुप्साप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । भयप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१८८-१९७॥

चूर्णिसू०—पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म

पदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २००. मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २०१. लोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२०२. जहण्णदंडओ ओघेण सकारणो भणिहिदि। २०३. सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं। २०४. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २०५. केण कारणेण ? २०६. सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सम्मामिच्छत्तं जेण कालेण उव्वेल्लेदि एदम्मि काले एक्कं पि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं णत्थि, एदेण कारणेण।

२०७. अणंताणुवंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २०८. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २०९. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २१०. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २११. मिच्छत्ते जहण्णपदेस-संतकम्ममसंखेज्जगुणं।

२१२. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २१३. कोहे

विशेष अधिक है। संज्वलनमानके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। संज्वलनक्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। संज्वलनमायाके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥१९८-२०१॥

चूर्णिसू०—अब ओघकी अपेक्षा जघन्य अल्पबहुत्वदंडकको सकारण कहेंगे—सम्यक्त्व-प्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ॥२०२-२०४॥

शंकाचू०—इसका क्या कारण है ? ॥२०५॥

समाधानचू०—इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वप्रकृतिके उद्वेलना कर देनेपर तदनन्तर जिस कालसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करेगा, उस कालमें एक भी प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर नहीं पाया जाता ॥२०६॥

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-मानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अनन्तानुबन्धी-मानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानु-बन्धीक्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी-क्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी-मायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्ता-नुबन्धीमायाकषायसे अनन्तानुबन्धी-लोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी-लोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असं-ख्यातगुणा है ॥२०७-२११॥

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण-

जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २१४. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २१५. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

२१६. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २१७. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २१८. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २१९. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

२२०. कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं । २२१. माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २२२. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २२३. मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २२४. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

२२५. इत्थिवेदस्स जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २२६. हस्से जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । २२७. रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २२८. सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । २२९. अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

क्रोधकपायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-मायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण-मायाकपायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणलोभ-कषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२१२-२१५॥

चूर्णिसू०—अप्रत्याख्यानावरणलोभके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरणमान-कपायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण-मानकषायके जघन्य प्रदेश-सत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्याना-वरणक्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-मायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरणमायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरणलोभ-कषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२१६-२१९॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरण-लोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है । संज्वलनक्रोधके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमानके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । पुरुषवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमायाके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ॥२२०-२२४॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है । हास्यप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । रतिप्रकृतिके जघन्यप्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । शोक-प्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अरति-

२३०. दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २३१. भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २३२. लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२३३. णिरयगईए सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं। २३४. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २३५. अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २३६. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २३७. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २३८. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२३९. मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २४०. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २४१. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २४२. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २४३. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२४४. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २४५. कोहे जहण्ण-

प्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। जुगुप्साप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। भयप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२२५-२३२॥

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी मानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अनन्तानुबन्धी मानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी क्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी मायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी मायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धी लोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२३३-२३८॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी लोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अप्रत्याख्यानावरण-मानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण-क्रोधकषायके जघन्यप्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणमायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरण मायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२३९-२४३॥

चूर्णिसू०—अप्रत्याख्यानावरण लोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण-मानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरणमानकषायके जघन्य

पदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २४६. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २४७. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

२४८. इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं । २४९. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । २५०. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । २५१. हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । २५२. रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २५३. सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । २५४. अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २५५. दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २५६. भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

२५७. माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २५८. कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । २५९. मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २६०. लोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

२६१. जहा णिरयगईए तहा सव्वासु गईसु । २६२. णवरि मणुसगदीए ओघं।

प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण मायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण मायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरण लोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२४४-२४७॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरण लोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है । स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है । पुरुषवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । हास्यप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । रतिप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है । शोकप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । अरतिप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । जुगुप्साप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२४८-२५६॥

चूर्णिसू०—भयप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमानके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनक्रोधके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । संज्वलनमायाके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । ॥२५७-२६०॥

चूर्णिसू०—जिस प्रकारसे नरकगतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्मसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा

२६३. एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं। २६४. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २६५. अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २६६. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २६७. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २६८. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२६९. मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २७०. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। २७१. कोधे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७२. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७३. लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७४. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७५. कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७६. मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २७७. लोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

है, उसी प्रकारसे सर्व गतियोंमें जानना चाहिए। केवल मनुष्यगतिमें ओघके समान अल्पबहुत्व है ॥२६१-२६२॥

चूर्णिसू०–एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धीमानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अनन्तानुबन्धीमानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धीक्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धीक्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धीमायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धीमायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तानुबन्धीलोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२६३-२६८॥

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धीलोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे मिथ्यात्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणमानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। अप्रत्याख्यानावरणमानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणमायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अप्रत्याख्यानावरणमायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे अप्रत्याख्यानावरणलोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२६९-२७३॥

चूर्णिसू०–अप्रत्याख्यानावरणलोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरणमानकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरणमानकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरणक्रोधकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्यानावरणमायाकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरणमायाकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे प्रत्याख्याना-

२७८. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं। २७९. इत्थिवेदे जहण्णपदेस-संतकम्मं संखेज्जगुणं। २८०. हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। २८१. रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८२. सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। २८३. अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८४. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८५. दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८६. भए जहण्ण-पदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२८७. माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८८. कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २८९. मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। २९०. लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

२९१. एत्तो भुजगारं पदणिक्खेव-वड्ढीओ च कायव्वाओ।

वरणलोभकषायमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२७४-२७७॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानावरणलोभकषायके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है। पुरुषवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे हास्यप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यात-गुणा है। हास्यप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे रतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। रतिप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे शोकप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है। शोकप्रकृतिके जघन्यप्रदेशसत्कर्मसे अरतिप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। अरतिप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। नपुंसकवेदके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे जुगुप्साप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। जुगुप्साप्रकृतिके जघन्यप्रदेशसत्कर्मसे भयप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२७८-२८६॥

चूर्णिसू०—भयप्रकृतिके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। संज्वलनमानके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। संज्वलनक्रोधके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनमायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है। संज्वलनमायाके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥२८७-२९०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धिकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥ २९१ ॥

विशेषार्थ—भुजाकार-अनुयोगद्वारमें भुजाकार, अल्पतर और अवस्थितरूप प्रदेश-सत्कर्मका विचार किया गया है। जो जीव विवक्षित कर्मके अल्प प्रदेशसत्कर्मसे अधिक प्रदेशसत्कर्मको प्राप्त हो, वह भुजाकार-प्रदेशविभक्तिवाला है। जो जीव अधिक प्रदेशसत्कर्मसे अल्प-प्रदेशसत्कर्मको प्राप्त हो, वह अल्पतर-प्रदेशविभक्तिवाला है। जिस जीवके विवक्षित

२९२. जहा उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं तहा संतकम्मट्ठाणाणि ।
एवं पदेसविहत्ती समत्ता

कर्मका प्रदेशसत्कर्म प्रथम समयके समान द्वितीय समयमें भी बना रहे, वह अवस्थित-प्रदेश-विभक्तिवाला है । जिस जीवके विवक्षितकर्मका पहले प्रदेशसत्कर्म न होकर वर्तमान समयमें नवीन प्रदेशसत्कर्म हो, वह अवक्तव्य-प्रदेशविभक्तिवाला है । भुजाकार–प्रदेशविभक्तिमें इन सबका विस्तृत विवेचन समुत्कीर्तना, स्वामित्व आदि तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है । पदनिक्षेप-अधिकारमें भुजाकार-प्रदेशसत्कर्मोका ही उत्कृष्ट और जघन्य पदोंके द्वारा वृद्धि-हानि और अवस्थानका विशेष वर्णन किया गया है । इस अधिकारमें यह बतलाया गया है कि कोई जीव यदि विवक्षित कर्मका प्रथम समयमें अमुक प्रदेशसत्कर्मवाला हो, तो अधिकसे अधिक उसके प्रदेशसत्कर्ममें कितनी वृद्धि हो सकती है और कमसे कम कितनी वृद्धि हो सकती है । इसी प्रकार यदि कोई जीव वर्तमान समयके प्रदेशसत्कर्मसे अनन्तरवर्ती द्वितीय समयमें अल्पप्रदेश सत्कर्मवाला हो, तो उसके सत्कर्ममें अधिकसे अधिक कितनी हानि हो सकती है और कमसे कम कितनी हानि हो सकती है । यदि समान प्रदेशसत्कर्म बना रहे, तो कितने समय तक बना रहेगा, इस सबका विचार इस अधिकारमें समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारोंसे किया गया है । वृद्धि अधिकारमें पदनिक्षेपका ही षड्गुणी वृद्धि और हानिके द्वारा प्रदेशसत्कर्म-सम्बन्धी विशेष विचार समुत्कीर्तनादि तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है, सो विशेष जिज्ञासु जनोंको जयधवला टीकाके अन्तर्गत उच्चारणावृत्तिसे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–जिस प्रकार स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका निरूपण किया गया है, उसी प्रकारसे प्रदेशसत्कर्मस्थानोंकी भी प्ररूपणा करना चाहिए ॥२९२॥

विशेषार्थ–चूर्णिकारने प्रदेशसत्कर्मके स्वामित्वका वर्णन करते हुए प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी निरूपण किया है, अतएव वे प्रदेशविभक्ति-अधिकारकी समाप्ति करते हुए उसके अन्तमें प्रदेशसत्कर्मस्थानोंके वर्णन करनेकी भी सूचना उच्चारणाचार्यों या व्याख्यानाचार्योंको कर रहे हैं । प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका वर्णन प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्वसे किया गया है । कर्मोंके जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानसे लेकर उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तकके सर्व स्थानोंका निरूपण प्ररूपणा-अनुयोगद्वारमें किया गया है । प्रमाण-अनुयोगद्वारमें बतलाया गया है कि प्रत्येक कर्मके प्रदेशसत्कर्मस्थान अनन्त होते हैं । प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका अल्पबहुत्व पूर्व-प्ररूपित उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके अल्पबहुत्वके समान ही जानना चाहिए । अर्थात् जिस कर्मके प्रदेशाग्र विशेष अधिक होते हैं, उस कर्मके सत्कर्मस्थान भी विशेष अधिक होते हैं । संख्यातगुणित प्रदेशाग्रवाले कर्मके सत्कर्मस्थान संख्यातगुणित, असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रवाले कर्मके सत्कर्मस्थान असंख्यातगुणित और अनन्तगुणित प्रदेशाग्रवाले कर्मके सत्कर्मस्थान अनन्तगुणित होते हैं ।

इस प्रकार प्रदेशविभक्ति समाप्त हुई ।

झीणाझीणाहियारो

१. एत्तो झीणमझीणं ति पदस्स विहासा कायव्वा* । २. तं जहा ३. अत्थि ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं, उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं, संकमणादो झीणट्ठिदियं, उदयादो झीणट्ठिदियं[1] ।

क्षीणाक्षीणाधिकार

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी मूलगाथाके 'झीणमझीणं' इस पदकी विभाषा करना चाहिए । वह इस प्रकार है:–कर्मप्रदेश अपकर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं, उत्कर्षणसे क्षीण-स्थितिक हैं, संक्रमणसे क्षीणस्थितिक हैं और उदयसे क्षीणस्थितिक हैं ॥१-३॥

विशेषार्थ–परिणामविशेषसे कर्म-प्रदेशोंकी अधिक स्थितिके ह्रस्व या कम करनेको अपकर्षण कहते हैं । कर्मप्रदेशोंकी लघु स्थितिके परिणामविशेषसे बढ़ानेको उत्कर्षण कहते हैं । एक प्रकृतिके प्रदेशोंको अन्य प्रकृतिरूप परिणमानेको संक्रमण कहते हैं । कर्मोंके यथासमय फल-प्रदान करनेको उदय कहते हैं । जिस स्थितिमें स्थित कर्म-प्रदेशाग्र अपकर्षणके अयोग्य होते हैं, उन्हें अपकर्षणसे क्षीणस्थितिक कहते हैं और जिस स्थितिमें स्थित कर्म-प्रदेशाग्र अपकर्षणके योग्य होते हैं, उन्हें अपकर्षणसे अक्षीणस्थितिक कहते हैं । इसी प्रकार जिस स्थितिके कर्म-परमाणु उत्कर्षणके अयोग्य होते हैं, उन्हें उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक और उत्कर्षणके योग्य कर्म-परमाणुओंको उत्कर्षणसे अक्षीणस्थितिक कहते हैं । संक्रमणके अयोग्य कर्म-परमाणुओंको संक्रमणसे क्षीणस्थितिक और संक्रमणके योग्य कर्म-परमाणुओंको संक्रमणसे अक्षीणस्थितिक कहते हैं । जिस स्थितिमें स्थित कर्म-परमाणु उदयसे निर्जीर्ण हो रहे हैं, उन्हें उदयसे क्षीणस्थितिक कहते हैं और जो उदयके योग्य हैं, अर्थात् आगे निर्जीर्ण होंगे,

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके अनन्तर 'समुक्कित्तणा परूवणा सामित्तमप्पाबहुअं चेदि' यह एक और सूत्र मुद्रित है (देखो पृ० ८७६) । पर प्रकृत स्थलको देखते हुए यह सूत्र नहीं, अपितु जय-धवला टीकाका ही अंश है यह स्पष्ट ज्ञात होता है। ताड़पत्रीय प्रतिसे भी इसके सूत्रत्वकी पुष्टि नहीं हुई है।

१ ओकड्डुणा णाम परिणामविसेसेण कम्मपदेसाणं ट्ठिदीए दहरीकरणं । तदो झीणा अप्पाओग्ग-भावेण अवट्ठिदा ट्ठिदी जस्स पदेसग्गस्स तं ओकड्डुणादो झीणट्ठिदियं सव्वकम्माणमत्थि । अहवा ओकड्डुणादो झीणा परिहीणा जा ट्ठिदी तं गच्छदि त्ति ओकड्डुणादो झीणट्ठिदिगमिदि समासो कायव्वो । एवमुवरि सव्वत्थ । दहरट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गाणं ट्ठिदीए परिणामविसेसेण वड्ढावणं उक्कड्डुणा णाम । तत्तो झीणा ट्ठिदी जस्स तं पदेसग्गं सव्वपयडीणमत्थि । संकमादो समयाविरोहेण एयपयडिट्ठिदपदेसाणं अण्णपयडिसरूवेण परिणमणलक्खणादो झीणा ट्ठिदी जस्स तं पि पदेसग्गमत्थि सव्वेसिं कम्माणं । उदयादो कम्माणं फलप्प-दाणलक्खणादो झीणा ट्ठिदी जस्स पदेसग्गस्स तं च सव्वकम्माणमत्थि त्ति । जयध०

४. ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं णाम किं ? ५. जं कम्ममुदयावलियब्भंतरे ट्ठियं तमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं । जमुदयावलियबाहिरे ट्ठिदं तमोकड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं । ६. उकड्डणादो झीणट्ठिदियं णाम किं ? ७. जं ताव उदयावलियपविट्ठं तं ताव उकड्डणादो झीणट्ठिदियं । ८. उदयावलियबाहिरे वि अत्थि पदेसग्गमुकड्डणादो झीणट्ठिदियं । तस्स णिदरिसणं । तं जहा । ९. जा समयाहियाए उदयावलियाए ट्ठिदी, एदिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तमादिट्ठं[1] । १०. तस्स पदेसग्गस्स जइ समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिकंता बद्धस्स तं कम्मं ण सका उकड्डिदुं । ११. तस्सेव पदेसग्गस्स जइ वि दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणियाए कम्मट्ठिदी विदिकंता तं पि उकड्डणादो झीणट्ठिदियं । १२. एवं गंतूण जदि वि जहण्णियाए आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिकंता तं पि उकड्डणादो झीणट्ठिदियं ।

उन्हें उदयसे अक्षीणस्थितिक कहते हैं । मोहनीयकर्मकी किस प्रकृतिके कर्मप्रदेश उत्कर्षण आदिके योग्य हैं, अथवा योग्य नहीं हैं, इसका निर्णय इस क्षीणाक्षीणाधिकारमें किया जायगा ।

शंकाचू०—कौनसे कर्म-प्रदेश अपकर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं ? ॥४॥

समाधानचू०-जो कर्म-प्रदेश उदयावलीके भीतर स्थित हैं, वे अपकर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं । जो कर्म-प्रदेश उदयावलीके बाहिर स्थित हैं, वे अपकर्षणसे अक्षीणस्थितिक हैं ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—उदयावलीके भीतर जो कर्म-प्रदेश स्थित हैं, उनकी स्थितिका अपकर्षण नहीं हो सकता है, किन्तु जो कर्म-प्रदेश उदयावलीके बाहिर अवस्थित हैं, वे अपकर्षणके प्रायोग्य हैं, अर्थात् उनकी स्थितिको घटाया जा सकता है ।

शंकाचू०-कौनसे कर्म-प्रदेश उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं ?

समाधानचू०-जो कर्म-प्रदेश उदयावलीमें प्रविष्ट हैं, वे उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं । किन्तु जो कर्म-प्रदेशाग्र उदयावलीसे बाहिर भी अवस्थित हैं, वे भी उत्कर्षणसे क्षीणास्थितिक होते हैं । इसका निदर्शन (उदाहरण) इस प्रकार है ॥७–८॥

चूर्णिसू०-एक समय-अधिक उदयावलीके अन्तिम समयमें जो स्थिति अवस्थित है, उस स्थितिके जो प्रदेशाग्र हैं, वे यहाँपर आदिष्ट अर्थात् विवक्षित हैं । उस कर्म-प्रदेशाग्रकी यदि बंधनेके समयसे लेकर एक समयाधिक आवलीसे कम कर्मस्थिति व्यतीत हुई है, तो उस कर्म-प्रदेशाग्रका उत्कर्षण नहीं किया जा सकता है । उस ही कर्म-प्रदेशाग्रकी यदि दो समयसे अधिक आवलीसे कम कर्मस्थिति व्यतीत हुई है तो वह भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है, अर्थात् उस कर्मप्रदेशाग्रका भी उत्कर्षण नहीं किया जा सकता । इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते हुए यदि जघन्य आबाधासे कम कर्मस्थिति व्यतीत हुई है, तो वह कर्म-प्रदेशाग्र भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है, अर्थात उसका भी उत्कर्षण नहीं किया जा सकता ॥९-१२॥

१ आदिट्ठं विवक्खियमिदि । जयध०

१३. समयुत्तराए उदयावलियाए तिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स जइ जहण्णियाए आबाहाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पदेसग्गं सक्का आबाधामेत्तमुक्कड्डिदुमेक्किस्से ट्ठिदीए णिसिंचिदुं । १४. जइ दुसमयाहियाए आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता, तिसमयाहियाए वा आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता, एवं गंतूण वासेण वा वासपुधत्तेण वा सागरोवमेण वा सागरोवमपुधत्तेण वा ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं सव्वं पदेसग्गं उक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं ।

चूर्णिसू०–समयोत्तर उदयावलीमें, अर्थात् एक समय-अधिक उदयावलीके अन्तिम समयमें जो स्थिति अवस्थित है, उस स्थितिके जो प्रदेशाग्र हैं, उस प्रदेशाग्रकी यदि समयाधिक जघन्य आबाधासे कम कर्मस्थिति बीत चुकी है, तो जघन्य आबाधाप्रमाण प्रदेशाग्रका उत्कर्षण किया जा सकता है और उसे उपरिम-अनन्तर एक स्थितिमें निषिक्त किया जा सकता है। यदि उस कर्म-प्रदेशाग्रकी दो समय-अधिक आबाधासे कम कर्मस्थिति बीत चुकी है, अथवा तीन समय-अधिक आबाधासे कम कर्मस्थिति बीत चुकी है, इस प्रकार समयोत्तर वृद्धिके क्रमसे आगे जाकर वर्षसे, या वर्षपृथक्त्वसे, या सागरोपमसे, या सागरोपमपृथक्त्वसे, कम कर्मस्थिति व्यतिक्रान्त हो चुकी है, सो वह सर्व कर्म-प्रदेशाग्र उत्कर्षणसे अक्षीण-स्थितिक है, अर्थात् उनका उत्कर्षण किया जा सकता है और अनन्तर-उपरिम स्थितिमें उसे निषिक्त भी किया जा सकता है ॥१३-१४॥

विशेषार्थ–किसी भी विवक्षित कर्मके बंधनेके पश्चात् जब तक उसका कमसे कम जघन्य आबाधाकाल व्यतीत न हो जाय, तबतक उसका उत्कर्षण नहीं किया जा सकता है। एक समय अधिक जघन्य आबाधाकालके व्यतीत होनेपर उसका उत्कर्षण किया जा सकता है और उसे अनन्तर स्थितिमें निषिक्त भी किया जा सकता है। इसी बातको स्पष्ट करते हुए चूर्णिकारने बतलाया कि इस प्रकार एक-एक समय अधिक करते हुए जिस कर्म-प्रदेशाग्रकी स्थिति वर्ष-प्रमाण बीत चुकी हो, वर्ष-पृथक्त्वप्रमाण बीत चुकी हो, अथवा शत-वर्ष, सहस्र वर्ष, लक्ष वर्ष, सागरोपम, सागरोपम-पृथक्त्व, शत सागरोपम, या सहस्र सागरोपम, या लक्ष सागरोपम, या कोटिसागरोपम, या कोटिपृथक्त्व सागरोपम, या अन्तः कोड़ाकोड़ी-पृथक्त्व सागरोपम भी व्यतीत हो चुकी हो, फिर भी उस कर्मकी जो स्थिति अवशिष्ट रही है, वह उत्कर्षणके योग्य है, क्योंकि उसकी आबाधाप्रमाण अतिस्थापना भी संभव है और एक समय अधिकसे लेकर बढ़ते हुए समयाधिक आवली और उत्कृष्ट आबाधासे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमित निक्षेप भी संभव है।

इस प्रकार उदय-स्थितिसे पूर्व कालमें बँधे हुए कर्म-प्रदेशोंका उत्कर्षणके योग्य-अयोग्य भाव बतलाकर अब उदयस्थितिसे उत्तर कालमें बँधनेवाले नवकबद्ध समयप्रबद्धोंके प्रदेशाग्रोंके उत्कर्षणके योग्य-अयोग्यभावका निरूपण करते हैं–

१५. समयाहियाए उदयावलियाए तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स एगो समओ पबद्धस्स अइच्छिदो त्ति अवत्थु, दो समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु, तिण्णि समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु, एवं णिरंतरं गंतूण आवलिया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु। १६. तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स समयुत्तरावलिया बद्धस्स अइच्छिदा त्ति एसो आदेसो[१] होज्ज। १७. तं पुण पदेसग्गं कम्मट्ठिदिं णो सक्का उक्कड्डिदुं, समयाहियाए आवलियाए ऊणियं कम्मट्ठिदिं सक्का उक्कड्डिदुं। १८. एदे वियप्पा जा समयाहिय-उदयावलिया, तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स। १९. एदे चेय वियप्पा अपरिसेसा जा दुसमयाहिया उदयावलिया, तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स। २०. एवं तिसमयाहियाए चदुसमयाहियाए जाव आबाधाए आवलियूणाए एवदिमादो त्ति।

२१. आवलियाए समयूणाए ऊणियाए आबाहाए एवदिमाए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तस्स के वियप्पा? २२. जस्स पदेसग्गस्स* समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए णत्थि। २३. जस्स

चूर्णिसू०–जो पूर्वमें आदिष्ट अर्थात् विवक्षित समयाधिक उदयावलीकी अन्तिम स्थिति है, उस ही स्थितिके प्रदेशाग्रका बँधनेके समयसे यदि एक समय अतिक्रान्त हुआ है, तो वह अवस्तु है, अर्थात् उसके प्रदेशाग्र इस विवक्षित स्थितिमें नहीं है। यदि दो समय बन्धकालसे व्यतीत हुए हैं, तो वह भी अवस्तु है। इस प्रकार निरन्तर आगे जाकर यदि बन्धकालसे एक आवली व्यतीत हुई है, तो वह भी अवस्तु है, अर्थात् तत्प्रमाण कर्मप्रदेशाग्रोंका उत्कर्षण नहीं किया जा सकता है। यदि उस ही विवक्षित स्थितिके प्रदेशाग्रकी बन्धकालसे आगे समयाधिक आवली व्यतीत हुई है, तो वह आदेश होगी, अर्थात् उसके कर्म-प्रदेशाग्रोंका विवक्षित स्थितिमें वस्तुरूपसे अवस्थित होना सम्भव है। यदि वह प्रदेशाग्र कर्मस्थिति प्रमाण हैं, तो उनका उत्कर्षण नहीं किया सकता है। और यदि समयाधिक आवलीसे कम कर्मस्थितिप्रमाण हैं, तो उनका उत्कर्षण किया जा सकता है। जो समयाधिक उदयावली है, उसकी स्थितिके कर्मप्रदेशाग्रके ये सब विकल्प हैं। जो द्विसमयाधिक उदयावली है, उसकी स्थितिके कर्मप्रदेशाग्रके भी ये सब सम्पूर्ण विकल्प जानना चाहिए। इस प्रकार त्रिसमयाधिक, चतुःसमयाधिकसे लगाकर एक आवलीसे कम आबाधाकाल तक ये सर्व विकल्प जानना चाहिए॥ १५-२०॥

शंकाचू०–एक समय-कम आवलीसे हीन आबाधाकी इस मध्यवर्ती स्थितिमें जो कर्म-प्रदेशाग्र हैं, उसके कितने विकल्प हैं ॥२१॥

समाधानचू०–जिस प्रदेशाग्रकी समयाधिक आवलीसे कम कर्मस्थिति बीत चुकी

१ आदिश्यत इत्यादेशो विवक्षितस्थितौ वस्तुरूपेणावस्थितः प्रदेश आदेश इति यावत्। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पदेसग्गस्स' पद नहीं है, पर पूर्वापर सन्दर्भको देखते हुए यह पद होना चाहिए। (देखो पृ० ८८४)

पदेसग्गस्स दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि णत्थि । २४. एवं गंतूण जद्देही एसा ट्ठिदी एत्तिएण ऊणा कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तमेदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज, तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं । २५. एदं ट्ठिदिमादिं कादूण जाव जहण्णियाए आबाहाए एत्तिएण ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज । तं पुण सव्वमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं । २६. आबाधाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि एदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज । तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं । २७. तेण परमज्झीणट्ठिदियं । २८. समयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा, एदिस्से ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता ।

२९. एदादो ट्ठिदीदो समयुत्तराए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो । ३०. सा पुण का ट्ठिदी । ३१. दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया जा आबाहा एसा सा ट्ठिदी । ३२. इदाणिमेदिस्से ट्ठिदीए अवत्थुवियप्पा केत्तिया ? ३३. जावदिया हेट्ठिल्लियाए ट्ठिदीए

है, वह प्रदेशाग्र भी इस स्थितिमें नहीं है । जिस प्रदेशाग्रकी दो समय अधिक आवलीसे हीन कर्मस्थिति बीत चुकी है, वह प्रदेशाग्र भी नहीं है । इस प्रकार एक एक समय अधिकके क्रमसे आगे जाकर जितनी यह स्थिति है, उससे हीन कर्मस्थिति जिस प्रदेशाग्रकी बीत चुकी है, उसका प्रदेशाग्र इस स्थितिमें होना सम्भव है; किन्तु वह उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं । इस स्थितिको आदि करके जघन्य आबाधा तक इस मध्यवर्ती स्थितिसे हीन कर्मस्थिति जिस प्रदेशाग्रकी बीत चुकी है, उस प्रदेशाग्रका भी इस स्थितिमें होना सम्भव है । यह सर्व कर्म-प्रदेशाग्र उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक हैं । एक समय अधिक आबाधासे हीन कर्मस्थिति जिस प्रदेशाग्रकी बीत चुकी है, उस प्रदेशाग्रका भी इस स्थितिमें होना सम्भव है । वह प्रदेशाग्र भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है । उससे परवर्ती प्रदेशाग्र अक्षीणस्थितिक जानना चाहिए । इस प्रकार एक समय कम आवलीसे हीन जो आबाधा है, उसकी स्थितिके विकल्प समाप्त हुए ॥ २२-२८ ॥

चूर्णिसू०—अब इस पूर्व-निरुद्ध स्थितिसे एक समय अधिक जो स्थिति है, उसके अवस्तु-विकल्प कहेंगे ॥ २९ ॥

शंका—वह स्थिति कौन-सी है ? ॥ ३० ॥

समाधान—दो समय कम आवलीसे हीन जो आबाधा है, वही वह स्थिति है । अर्थात् उदयस्थितिसे दो समय कम आवलीसे हीन आबाधामात्र ऊपर चलकर और आबाधाके अन्तिम समयसे दो समय कम आवलीमात्र नीचे उतर कर पूर्व निरुद्ध स्थितिके ऊपर यह स्थिति अवस्थित है ॥ ३१ ॥

शंका—अब इस विवक्षित स्थितिके अवस्तु-विकल्प कितने हैं ? ॥३२॥

समाधान—जितने अनन्तर-प्ररूपित अधस्तन-स्थितिके अवस्तु-विकल्प हैं, उससे सत्कर्मकी अपेक्षा एक रूप अधिक विकल्प हैं ॥३३॥

अवत्थुवियप्पा तदो रूवुत्तरा संतकम्ममस्सियूण*। ३४. जद्देही एसा ट्ठिदी तत्तियं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तं पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ३५. एदादो ट्ठिदीदो समयुत्तरट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ३६. एवं गंतूण आबाहामेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदीए ट्ठिदीए दीसइ तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ३७. आबाहासमयुत्तरमेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ३८. आबाधा दुसमयुत्तरमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदिस्से ट्ठिदीए दिस्सइ तं पि पदेसग्गमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ३९. तेण परमुक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं। ४०. दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा एवदिमाए ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता।

४१. एत्तो समयुत्तराए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो। ४२. एत्तो पुण ट्ठिदीदो

विशेषार्थ–अनन्तर-प्ररूपित अधस्तनस्थितिके अवस्तु-विकल्पोंसे इस विवक्षित स्थितिके विकल्पोंको एक रूप अधिक कहनेका कारण यह है कि उससे एक समय आगे चलकर ही इस स्थितिका अवस्थान है। यह 'रूपोत्तर' पद अन्तदीपक है, इसलिए अधस्तनवर्ती समस्त स्थितियोंके अवस्तु-विकल्प अनन्तर-अनन्तरवर्ती स्थितिसे एक एक रूप अधिक ग्रहण करना चाहिए। विकल्पोंका यह कथन सत्कर्मकी अपेक्षा किया गया है; क्योंकि, नवकबद्धकी अपेक्षा तो वहाँ पर आवली-प्रमाण अवस्तु-विकल्प अवस्थितस्वरूपसे पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–जितनी यह स्थिति है, उतना स्थितिसत्कर्म जिस प्रदेशाग्रका कर्मस्थितिमें शेष रहेगा, वह प्रदेशाग्र इस स्थितिमें पाया जा सकता है और वह उत्कर्षणसे क्षीण-स्थितिक है। इस स्थितिसे एक समय-अधिक स्थितिसत्कर्म जिस प्रदेशाग्रका कर्मस्थितिमें शेष होगा, वह भी प्रदेशाग्र उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है। इस प्रकार एक एक समय-वृद्धिके क्रमसे आगे जाकर इस स्थितिमें आबाधाप्रमाण स्थितिसत्कर्म जिस प्रदेशाग्रका कर्मस्थितिमें शेष दिखाई देगा, वह भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक समझना चाहिए। एक समय अधिक आबाधा-प्रमाण स्थितिसत्कर्म जिस प्रदेशाग्रका कर्मस्थितिमें शेष होगा, वह भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है। दो समय-अधिक आबाधाप्रमाण स्थितिसत्कर्म जिस प्रदेशाग्रका कर्मस्थितिमें शेषरूपसे इस स्थितिमें दिखाई देगा, वह प्रदेशाग्र भी उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक है। उससे परवर्ती कर्मप्रदेशाग्र उत्कर्षणसे अक्षीणस्थितिक है। इस प्रकार दो समय कम आवलीसे हीन आबाधावाली जो स्थिति है, उस स्थितिके विकल्प समाप्त हुए ॥३४–४०॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे अनन्तर-व्यतिक्रान्त स्थितिसे एक समय-अधिक

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'संतकम्ममस्सियूण' इस सूत्रांशको टीकाका अंग बना दिया गया है, जब कि इसकी व्याख्या टीकामें स्पष्टरूपसे की गई है। अतएव इसे सूत्रांश ही मानना चाहिए। (देखो पृ० ८८६)

समयुत्तरा ट्ठिदी कदमा ? ४३. जहण्णिया आबाहा तिसमयूणाए आवलियाए ऊणिया, एवदिमा ट्ठिदी। ४४. एदिस्से ट्ठिदीए एत्तिया चेव वियप्पा। णवरि अवत्थुवियप्पा रूवुत्तरा। ४५ एस कमो जाव जहण्णिया आबाहा समयुत्तरा त्ति। ४६. जहण्णियाए आबाहाए दुसमयुत्तराए पहुडि णत्थि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। ४७. एवमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियस्स अट्ठपदं समत्तं।

४८. एत्तो संकमणादो झीणट्ठिदियं। ४९. जं उदयावलियपविट्ठं तं, णत्थि अण्णो वियप्पो। ५०. उदयादो झीणट्ठिदियं ५१. जमुदिण्णं तं, णत्थि अण्णं।

५२. एत्तो एगेगझीणट्ठिदियमुक्कस्सयमणुक्कस्सयं जहण्णयमजहण्णयं च।

स्थितिके विकल्प कहेंगे ॥४१॥

शंका–इस अनन्तर-व्यतिक्रान्त स्थितिसे एक समय-अधिक स्थिति कौनसी है ? ॥ ४२ ॥

समाधान–तीन समय-कम आवलीसे हीन जो जघन्य आबाधा है, वही यह स्थिति है। अर्थात् उदयस्थितिसे लेकर तीन समय-कम आवलीसे हीन जघन्य आबाधा-प्रमाण ऊपर चलकर आबाधाके अन्तिम समयसे तीन समय कम आवलीप्रमाण नीचे उतर कर यह विवक्षित स्थिति अवस्थित है ॥४३॥

चूर्णिसू०–इस स्थितिके वस्तु-विकल्प इतने ही होते हैं। किन्तु अवस्तु-विकल्प एक रूपसे अधिक होते हैं। यह क्रम समयोत्तर जघन्य आबाधा तक जानना चाहिए। दो समय-अधिक जघन्य आबाधासे लेकर ऊपर उत्कर्षणसे प्रदेशाग्र क्षीणस्थितिक नहीं है। इस प्रकार उत्कर्षणसे क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रका अर्थपद समाप्त हुआ ॥४४-४७॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे संक्रमणसे क्षीणस्थितिकको कहेंगे। जो कर्मप्रदेशाग्र उदयावलीमें प्रविष्ट हैं, वह संक्रमणसे क्षीणस्थितिक हैं, अर्थात् संक्रमणके अप्रायोग्य हैं। किन्तु जो प्रदेशाग्र उदयावलीके बाहिर स्थित हैं और जिनकी बन्धावली बीत चुकी है, वे संक्रमणसे अक्षीणस्थितिक हैं, अर्थात् संक्रमण होनेके योग्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प यहाँ संभव नहीं है ॥४८-४९॥

चूर्णिसू०–अब उदयसे क्षीणस्थितिकको कहेंगे। जो कर्मप्रदेशाग्र उदीर्ण है, अर्थात् उदयमें आकर और फलको देकर तत्काल गल रहा है, वह उदयसे क्षीणस्थितिक है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्त स्थितियोंके प्रदेशाग्र उदयसे अक्षीणस्थितिक हैं, अर्थात् उन्हें उदयके योग्य जानना चाहिए। यहाँपर और अन्य कोई विकल्प संभव नहीं है ॥५०-५१॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे एक-एक क्षीणस्थितिकके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य पदोंकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥५२॥

विशेषार्थ–अभी ऊपर जो अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयकी अपेक्षा क्षीणस्थितिक-अक्षीणस्थितिककी प्ररूपणा की है, उसके विशेष निर्णयके लिए उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट,

५३. सामित्तं । ५४. मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ५५. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेंतस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धमावलिया समयूणा सेसा तस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादो झीणट्ठिदियं । ५६. तस्सेव उक्कस्सयमुक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं ।

५७. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ५८ गुणियकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेढी संजमगुणसेढी च एदाओ गुणसेढीओ काऊण मिच्छत्तं गदो, जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

५९. सम्मत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो उदयादो च

जघन्य और अजघन्य पदोंका आश्रय करके विशेष निरूपणकी सूचना चूर्णिकारने की है। जहाँपर बहुतसे कर्मप्रदेशाग्र अपकर्षणादिसे क्षीणस्थितिक हों, उसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक कहते हैं और जहाँपर सबसे कम कर्म-प्रदेशाग्र अपकर्षणादिके द्वारा क्षीणस्थितिक हों, उसे जघन्य क्षीणस्थितिक कहते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट और अजघन्यकी अपेक्षासे भी जानना चाहिए। इस प्ररूपणाके सुगम होनेसे चूर्णिकारने उसे नहीं कहा है।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे क्षीणस्थितिक-अक्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके स्वामित्वको कहेंगे ॥५३॥

शंका—अपकर्षणकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥५४॥

समाधान—गुणितकर्मांशिक और सर्वलघु कालसे दर्शनमोहनीयके क्षपण करनेवाले जीवके होता है, जिसने कि संक्रमण किये जाने योग्य मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकांडकका सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिमें संक्रमण कर दिया है और जिसके एक समय कम आवली शेष रही है, उसके मिथ्यात्वका अपकर्षणसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है। उसी ही जीवके उत्कर्षण और संक्रमणसे भी मिथ्यात्वका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥५५-५६॥

शंका—उदयकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥५७॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयम-गुणश्रेणी और संयमगुणश्रेणी इन दोनों ही गुणश्रेणियोंको करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जिस समय वे दोनों ही गुणश्रेणीशीर्षक एकीभूत होकर उदयको प्राप्त होते हैं, उस समय मिथ्यात्वका उदयसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥५८॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिका अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ५९ ॥

क्षीणट्ठिदियं कस्स ? ६०. गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढत्तो अधट्ठिदियं गलंतं जाधे उदयावलियं पविस्समाणं पविट्ठं ताधे उक्कस्सयमोकड्डणादो वि उक्कड्डणादो वि संकमणादो वि झीणट्ठिदियं। ६१. तस्सेव चरिमसमयअक्खीणदंसण-मोहणीयस्स सव्वमुदयंतमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।[1]

६२. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ? ६३. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेमाणस्स सम्मामिच्छत्तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धं, उदयावलिया उदयवज्जा भरिदल्लिया, तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं।

६४. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

समाधान–जिस गुणितकर्मांशिक जीवने सर्वलघु कालके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्म-का क्षपण करना प्रारम्भ किया, (और अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा अनेक स्थितिकांडक और अनुभागकांडकोंका घातकर मिथ्यात्वके द्रव्यको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त किया। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अन्तिम स्थितिकांडकको चरमफालिस्वरूपसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रान्त किया और सम्यक्त्वप्रकृतिके भी पल्योपमासंख्येयभागी तात्कालिक स्थितिकांडकसे अष्टवर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मको करके और उसमें संक्रान्त करके फिर भी संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थितिको अत्यल्प करके जो कृत-कृत्यवेदक होकर अवस्थित है,) उसके अधःस्थितिसे गलता हुआ सम्यक्त्वप्रकृतिका प्रदे-शाग्र जिस समय क्रमसे उदयावलीमें प्रवेश करता हुआ निरवशेषरूपसे प्रविष्ट हो जाता है, उस समय उक्त जीवके अपकर्षणसे, उत्कर्षणसे और संक्रमणसे सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है। उस ही चरमसमयवर्ती अक्षीणदर्शनमोही जीवके जो दर्शन-मोहनीयकर्मका सर्वोदयान्त्य प्रदेशाग्र है, वह सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र है ॥ ६०-६१ ॥

विशेषार्थ–सर्व उदयोंके अन्तमें उदय होनेवाले कर्म-प्रदेशाग्रको सर्वोदयान्त्य प्रदेशाग्र कहते हैं।

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अपकर्षणसे, उत्कर्षणसे और संक्रमणसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ६२ ॥

समाधान–जिस गुणितकर्मांशिक जीवने सर्वलघु कालसे दर्शनमोहनीयको क्षपण करते हुए सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके संक्रम्यमाण अन्तिम स्थितिकांडकको संक्रान्त कर दिया और उदय-समयको छोड़कर उदयावलीको परिपूर्ण कर दिया, उसके सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृतिका अपकर्षणसे, उत्कर्षणसे और संक्रमणसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है॥ ६३॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदयसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥ ६४ ॥

---

१ एत्थ सव्वमुदयंतमिदि वुत्ते सर्वेषामुदयानामन्त्यं निष्पश्चिममुदयप्रदेशाग्रं सर्वोदयान्त्यमिति। जयध०

६५. गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण ताधे गदो सम्मामिच्छत्तं जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उदयमागदाणि ताधे तस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

६६. अणंताणुबंधीणमुक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ६७. गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीहि अविणट्ठाहि अणंताणुबंधी विसंजोएदुमाढत्तो, तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धं तस्स उक्कस्सय-मोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं। ६८. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ६९. संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण तत्थ मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उदयमागयाणि, ताधे तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सय-मुदयादो झीणट्ठिदियं।

७०. अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ७१. गुणिदकम्मंसिओ कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिम-

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयम और संयमगुणश्रेणीको करके उस समय सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, जब कि प्रथमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके गुणश्रेणीशीर्षक उदयको प्राप्त हुए, उस समय उस प्रथमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उदयसे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥ ६५ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥६६॥

समाधान—जिस गुणितकर्मांशिक जीवने अविनष्ट संयमासंयम और संयमगुण-श्रेणीके द्वारा अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन आरम्भ किया और उनके संक्रम्यमाण अन्तिम स्थितिकांडकको अप्रत्याख्यानादिकषायोंमें संक्रान्त किया, उस समय उस जीवके अनन्तानुबन्धीकषायका अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥६७॥

शंका—उदयकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकषायका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥६८॥

समाधान—जो संयमासंयम और संयमगुणश्रेणीको करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जिस समय दोनों गुणश्रेणीशीर्षक उदयको प्राप्त हुए, उस समय उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके उदयकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकषायका उत्कृष्ट क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥६९॥

शंका—आठों कषायोंका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥७०॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव कषायोंकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ,

ट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणं संछुद्धं ताधे उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। ७२. उक्कस्सय-मुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ७३. गुणिदकम्मंसियस्स संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवणगुणसेढीओ एदाओ तिण्णि गुणसेढीओ काऊण असंजमं गदो, तस्स पढमसमयअसंजदस्स गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि तस्स अट्ठकसायाणमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

७४. कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ७५. गुणिदकम्मंसियस्स कोधं खवेंतस्स चरिमट्ठिदिखंडय-चरिमसमय-असंछुहमाणयस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। ७६. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं पि तस्सेव। ७७.एवं चेव माणसंजलणस्स। णवरि माणट्ठिदिकंडयं चरिमसमयअसंछुहमाणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि। ७८. एवं चेव मायासंजलणस्स।

वह जिस समय आठों ही कषायोंके संक्रम्यमाण अन्तिम स्थितिकांडकको संक्रान्त कर देता है, उस समय आठों कषायोंका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥७१॥

शंका—उदयकी अपेक्षा आठों कषायोंका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥७२॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयमगुणश्रेणी, सयंमगुणश्रेणी और दर्शनमोहनीयक्षपणा-सम्बन्धी गुणश्रेणी इन तीनों ही गुणश्रेणियोंको करके असंयमको प्राप्त हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती असंयतके जिस समय वे गुणश्रेणीशीर्षक उदयको प्राप्त हुए, उस समय उस असंयतके उदयकी अपेक्षा आठों कषायोंका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥७३॥

शंका—संज्वलनक्रोधका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥७४॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव संज्वलनक्रोधको क्षपण करते हुए क्रोधके अन्तिम स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित है, अर्थात् किसीका भी संक्रमण नहीं कर रहा है, उस समय उसके संज्वलनक्रोधका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥७५॥

चूर्णिसू०—संज्वलनक्रोधका उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक भी उस ही जीवके होता है। इसी प्रकारसे संज्वलनमानके उत्कृष्ट क्षीणस्थितिकको जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि वह जिस समय मानको क्षपण करते हुए मानके अन्तिम स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित है, उस समय उसके अपकर्षणादि चारोंकी ही अपेक्षासे उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है। इसी प्रकार संज्वलनमायाके उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रको जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि वह जिस समय मायाको क्षपण करते हुए मायाके अन्तिम स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित

णवरि मायाट्ठिदिकंडयं चरिमसमयअसंछुहमाणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि ।

७९. लोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ८०. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंतकम्ममावलियं पविस्समाणयं पविट्ठं ताधे उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं । ८१. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ८२. चरिमसमयसकसायक्खवगस्स ।

८३. इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डणादिचउण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ८४. इत्थिवेदपूरिदकम्मंसियस्स आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि । ८५. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमयइत्थिवेदक्खवयस्स ।

८६. पुरिसवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डणादिचदुण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ८७.

है, उस समय उसके अपकर्षणादि चारोंकी ही अपेक्षा संज्वलनमायाका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥७६-७८॥

शंका—संज्वलनलोभका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥७९॥

समाधान—जिस गुणितकर्मांशिक जीवने संज्वलनलोभके प्रविश्यमान सर्व सत्कर्मको जिस समय उदयावलीमें प्रविष्ट कर दिया, उस समय उसके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा संज्वलनलोभका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥८०॥

शंका—उदयकी अपेक्षा संज्वलनलोभका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥८१॥

समाधान—चरमसमयवर्ती सकषाय क्षपकके होता है ॥८२॥

शंका—स्त्रीवेदका अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥८३॥

समाधान—गुणितकर्मांशिकरूपसे आकर जो जीव स्त्रीवेदको पूरण कर रहा है, और एक समय कम आवलीके अन्तिम समयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित है, उसके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा स्त्रीवेदका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । किन्तु उदयकी अपेक्षा स्त्रीवेदका उत्कृष्ट क्षीणस्थितक प्रदेशाग्र उस चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदी क्षपकके होता है, जो कि एक समय कम आवलीमात्र स्थितियोंको गला करके अवस्थित है और उसके जिस समय प्रथमस्थितिका चरम निषेक उदयको प्राप्त हुआ है, उस समय उसके स्त्रीवेदका उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥८४-८५॥

शंका—पुरुषवेदका अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥८६॥

गुणिदकम्मंसियस्स पुरिसवेदं खवेमाणयस्स आवलियचरिमसमय-असंछोहयस्स तस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं । ८८. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमय-पुरिसवेदयस्स ।

८९. णवुंसयवेदयस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? ९०. गुणिद-कम्मंसियस्स णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवयस्स णवुंसयवेद-आवलियचरिमसमयअसं-छोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि । ९१. उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं तस्सेव ।

९२. छण्णोकसायाणमुक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि कस्स ? ९३. गुणिदकम्मंसिएण खवएण जाधे अंतरं कीरमाणं कदं, तेसिं चेव कम्मंसाणमुदयावलि-याओ उदयवज्जाओ पुण्णाओ ताधे उक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि ९४. तेसिं चेव उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ९५. गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिम-

---

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक जीव पुरुषवेदका क्षय करता हुआ आवलीके चरम समयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित है, उसके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा पुरुषवेदका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । किन्तु उदयकी अपेक्षा चरमसमयवर्ती पुरुषवेदी क्षपकके पुरुषवेदका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥८७-८८॥

शंका–नपुंसकवेदका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥८९॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा है और नपुंसकवेदको क्षय करते हुए आवलीके चरमसमयमें असंक्षोभकभावसे अवस्थित है, ऐसे क्षपकके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा नपुंसकवेदका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । उसी ही चरमसमयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपकके उदयकी अपेक्षा नपुंसकवेदका उत्कृष्ट क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥९०-९१॥

शंका–हास्यादि छह नोकषायोंका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥९२॥

समाधान–गुणितकर्मांशिकरूपसे आये हुए क्षपकने जिस समय छहों नोकषायोंके क्रियमाण अन्तरको कर दिया और उन्हीं कर्मांशोंकी उदय-समयको छोड़कर उदयावलियोंको पूर्ण किया, उस समय हास्यादि छह नोकषायोंका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥९३॥

शंका–उन्हीं हास्यादि छह नोकषायोंका उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥९४॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक और अपूर्वकरणके चरम समयमें वर्तमान क्षपकके उदयकी अपेक्षा हास्यादि छह नोकषायोंका उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । केवल

समय अपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स । ९६. णवरि हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ, भय-दुगुंछाणमवेदगो कायव्वो । जइ भयस्स, तदो दुगुंछाए अवेदगो कायव्वो । अह दुगुं-छाए, तदो भयस्स अवेदगो कायव्वो । ९७. उक्कस्सयं सामित्तं समत्तमोघेण ।

९८. एत्तो जहण्णयं सामित्तं वत्तइस्सामो । ९९. मिच्छत्तस्स जहण्णयमोकड्ड-णादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ? १००. उवसामओ छसु आव-लियासु सेसासु आसाणं गओ तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमोकड्डणादो उक्क-ड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं । १०१. उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं तस्सेव आवलियमिच्छादिट्ठिस्स ?

१०२. सम्मत्तस्स जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? १०३. उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स ओकड्डणादो उक्कड्डणादो संक-

---

इतना भेद है कि यदि वह हास्य-रति और अरति-शोकका क्षपण कर रहा है, तो उस समय वह भय और जुगुप्साका अवेदक है । यदि भयका क्षपण कर रहा है, तो उस समय वह जुगुप्साका अवेदक है और यदि वह जुगुप्साका क्षपण कर रहा है, तो भयका अवेदक होता है । इस प्रकारसे उनके उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥९५-९६॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके स्वामित्वका निरूपण समाप्त हुआ ॥९७॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके जघन्य स्वामित्वको कहेंगे ॥९८॥

शंका—मिथ्यात्वका अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा जघन्य क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥९९॥

समाधान—जो दर्शनमोहनीयकर्मका उपशमन करनेवाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेप रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, (और वहाँपर अनन्तानुबन्धीकषायके तीव्र उदयसे प्रतिसमय अनन्तगुणित संक्लेशकी वृद्धिके साथ सासादनगुणस्थानका काल समाप्त करके मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुआ,) उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । इसी उपर्युक्त जीवके जब मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्रवेश करनेके पश्चात् एक आवलीकाल बीत जाता है, तब उस आवलिक-मिथ्यादृष्टिके उदयकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥१००-१०१॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥१०२॥

समाधान—उपशमसम्यक्त्वको पीछे किया है जिसने ऐसे, अर्थात् उपशमसम्य-क्त्वके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले ऐसे प्रथमसमयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिके अप-

मणादो च झीणट्ठिदियं । १०४. तस्सेव आवलियवेदयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

१०५. एवं सम्मामिच्छत्तस्स । १०६. णवरि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स आवलियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स चेदि* । १०७. अट्ठकसाय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं जहण्णयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ? १०८. उवसंतकसाओ मदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णयमोकड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं । १०९. तस्सेव आवलियउववण्णस्स जहण्णयमुदयादो झीण-ट्ठिदियं ।

११०. अणंताणुबंधीणं जहण्णयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीण-ट्ठिदियं कस्स ? १११. सुहुमणिओएसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण संजमासंजमं संजमं च

कर्षणसे, उत्कर्षणसे और संक्रमणसे सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । जिसे एक आवलीकाल वेदकसम्यक्त्वको धारण किये हुए हो गया है, ऐसे उसी वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवके उदयकी अपेक्षा सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥१०३-१०४॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षासे क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रका जघन्य स्वामित्व जानना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि प्रथमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व होता है, *और एक आवली बिता देनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उदयकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व होता* है ॥१०५-१०६॥

शंका—आठ मध्यमकषाय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ॥१०७॥

समाधान—जो उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थ संयत मरकर देव हुआ, उस प्रथम-समयवर्ती देवके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा उपर्युक्त प्रकृतियोंका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है । उसी देवके जब उत्पन्न होनेके अनन्तर एक आवलीकाल बीत जाता है, तब उसके उदयकी अपेक्षा उन्हीं प्रकृतियोंके क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रका जघन्य स्वामित्व होता है ॥१०८-१०९॥

शंका—अनन्तानुबन्धीकषायोंका अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥११०॥

समाधान—जिसने सूक्ष्मनिगादिया जीवोंमें कर्मस्थितिकाल-प्रमाण रहकर और

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । पर इसके सूत्रत्वकी पुष्टि ताडपत्रीय प्रतिसे हुई है । (देखो पृ० ९०५ पंक्ति ७)

बहुसो लभिदाउओ चत्तारि वारे कसाए उवसामेयूण तदो अणंताणुबंधी विसंजोएऊण* संजोइदो। तदो वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेयूण तदो मिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। ११२. तस्सेव आवलियसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

११३. णवुंसयवेदस्स जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? ११४. अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो। तदो अंतोमुहुत्तसेसे सम्मत्तं लद्धं, वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालिदं, संजमासंजमं संजमं च बहुसो† गदो। चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता अपच्छिमे भवे पुव्वकोडिआउओ मणुस्सो जादो। तदो देसूणपुव्वकोडिसंजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे परिणामपच्चएण असंजमं गदो। ताव असंजदो जाव गुणसेढी णिग्गलिदा त्ति। तदो संजमं पडिवज्जियूण अंतोमुहुत्तेण कम्मक्खयं काहिदि त्ति तस्स पढमसमयसंजमं पडिवण्णस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। ११५. इत्थिवेदस्स वि जहण्णयाणि तिण्णिवि झीणट्ठि-

वहाँसे निकल करके संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त किया, तथा चार वार कषायोंका उपशमनकर तदनन्तर अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर और पुनः अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही उसका संयोजन किया। तदनन्तर दो वार छ्यासठ सागरोपमकाल तक सम्यक्त्वको परिपालन कर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धी कषायोंका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है। उस ही जीवके मिथ्यादृष्टि होनेके एक आवलीकालके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकषायोंका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥१११-११२॥

शंका—नपुंसकवेदका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है? ॥११३॥

समाधान—जो अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके द्वारा तीन पल्योपमवाले भोगभूमियाँ जीवोंमें उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् जीवनके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर सम्यक्त्वको प्राप्त किया और दो वार छ्यासठ सागरोपमकाल तक सम्यक्त्वका अनुपालन किया, तथा संयमासंयम और संयमको बहुत वार धारण किया। चार वार कषायोंका उपशमनकर अन्तिम भवमें पूर्वकोटी वर्षकी आयुका धारक मनुष्य हुआ। तदनन्तर देशोन पूर्वकोटीकालप्रमाण संयमका परिपालनकर आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर परिणामोंके निमित्तसे असंयमको प्राप्त हुआ और गुणश्रेणीके पूर्णरूपसे गलित होने तक असंयत रहा। तत्पश्चात् संयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तसे जो कर्मोंका क्षय करेगा, उस प्रथम समयमें संयमको प्राप्त हुए जीवके

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'विसंजोएऊण' के स्थानपर 'विसेजोएदुं' ऐसा पाठ मुद्रित है, जो कि टीका और अर्थ के अनुसार अशुद्ध है। (देखो पृ० ९०७)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'बहुसो' पद नहीं है। (देखो पृ० ९०९)।

ट्ठिदाणि एदस्स चेव, तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णयस्स कायव्वाणि।

११६. णवुंसयवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ११७. सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण तसेसु आगदो, संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो गओ, चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो एइंदिए गदो। पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमच्छिदो ताव, जाव उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति। तदो पुणो मणुस्सेसु आगदो पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गदो दसवस्ससहस्सिएसु देवेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तमुववण्णेण सम्मत्तं लद्धं, अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो। तदो* वि ओकड्डिदाओ [विकड्डिदाओ] ट्ठिदीओ तप्पाओग्गसव्वरहस्साए मिच्छत्तद्धाए एइंदिएसुववण्णो। तत्थ वि तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो। तस्स पढमसमयएइंदियस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

११८. इत्थिवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? ११९. एसो चेव

नपुंसकवेदका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है। स्त्रीवेदका अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र भी इसी उपर्युक्त जीवके होता है। भेद केवल यह है कि इसे तीन पल्योपमकी आयुवाले जीवोंमें नहीं उत्पन्न कराना चाहिए ॥११४-११५॥

शंका—नपुंसकवेदका उदयकी अपेक्षा क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥११६॥

समाधान—जो जीव सूक्ष्म निगोदिया जीवोंमें कर्मस्थितिकाल तक रह करके त्रसोंमें आया और संयमासंयम, संयम तथा सम्यक्त्वको बहुत बार प्राप्त किया। चार वार कषायोंका उपशमनकर तदनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक वहाँ रहा, जब तक कि उपशामकसम्बन्धी समयप्रबद्ध पूर्णरूपसे गलित हो गये। तदनन्तर वह मनुष्योंमें आया और देशोन पूर्वकोटीकाल तक संयमको परिपालनकर आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरकर दश हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त किया और जीवितव्यके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वहाँपर पूर्वबद्ध और सत्तामें स्थित सर्व कर्मोंकी स्थितियोंका उत्कर्षण कर और उन्हें अतिदूर निक्षिप्त करके तत्प्रायोग्य अर्थात् एकेन्द्रियोंमें उत्पत्तिके योग्य सर्वह्रस्व मिथ्यात्वकालके रह जानेपर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर भी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती एकेन्द्रिय जीवके नपुंसकवेदका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥ ११७ ॥

शंका—स्त्रीवेदका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥११८॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तदो' पद नहीं है। (देखो पृ० ९११)।

णवुंसयवेदस्स पुव्वपरूविदो जाधे अपच्छिममणुस्सभवग्गहणं पुव्वकोडी देसूणं संजममणु-पालिदूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गओ । तदो वेमाणियदेवीसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तद्ध-मुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो । तदो विकड्डिदाओ ट्ठिदीओ उक्कड्डिदा कम्मंसा जाधे तदो अंतोमुहुत्तद्धमुक्कस्सइत्थिवेदस्स ट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो, आवलियपडि-भग्गाए तिस्से देवीए इत्थिवेदस्स उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं ।

१२०. अरदि-सोगाणमोकड्डणादितिगझीणट्ठिदियं जहण्णयं कस्स ? १२१. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो, संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण तिण्णि वारे कसाए उवसामेयूण एइंदिए गदो । तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छियूण जाव उवसामयसमयपबद्धा गलंति तदो मणुस्सेसु आगदो । तत्थ* पुव्वकोडी देसूणं संजम-मणुपालियूण कसाए उवसामेयूण उवसंतकसाओ कालगदो देवो तेत्तीससागरोवमिओ जादो । ताधे चेय हस्स-रईओ ओकड्डिदाओ उदयादिणिक्खित्ताओ अरदि-सोगा ओक-ड्डित्ता उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता, से काले दुसमयदेवस्स एया ट्ठिदी अरइ-सोगाण-

समाधान—इसी नपुंसकवेदकी प्ररूपणामें पूर्व प्ररूपित जीवने जिस समय अपश्चिम मनुष्य भवको ग्रहण किया और देशोन पूर्वकोटीकाल तक संयमका परिपालनकर जीवनके अन्तर्मुहूर्त शेप रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरणकर विमानवासी देवियोंमें उत्पन्न हुआ । उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् ही, अर्थात् पर्याप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ । उस संक्लेशसे जब सर्व कर्मोंके अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे भी दूर तककी स्थितियोंको बढ़ाया और उनके कर्मप्रदेशोंका भी उत्कर्षण किया, तब उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदकी पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको बाँध करके संक्लेशसे प्रतिभग्न अर्थात् प्रतिनिवृत्त हुआ । संक्लेशसे प्रतिनिवृत्त होनेके एक आवलीकाल बीतनेपर उस देवीके स्त्रीवेदका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ॥११९॥

शंका—अरति और शोकप्रकृतिका अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा जघन्य क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥१२०॥

समाधान—जो जीव जघन्य एकेन्द्रियकर्मसे अर्थात् अभव्यसिद्धोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ एकेन्द्रियोंसे आकर त्रस जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्तकर तथा तीन वार कषायोंका उपशमनकर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाणकाल तक रहा, जबतक कि उपशामक-समयप्रबद्ध गलते हैं । उसके पश्चात् मनुष्योंमें आया । वहाँपर देशोन पूर्वकोटीकाल तक संयमका परिपालनकर और कषायोंका उपशमन करके उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ होकर और मरणको करके तेतीस सागरोपमकी स्थितिका धारक अहमिन्द्रदेव हुआ । उस ही समय हास्य और रति प्रकृतियोंका अपकर्षणकर उदयावलीमें निक्षिप्त किया और अरति-शोकका

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तत्थ' पद नहीं है । (देखो पृ० ११५) ।

मुदयावलियं पविट्ठा, ताधे अरदि-सोगाणं जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

१२२. अरइ-सोगाणं जहण्णमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? १२३. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो । तत्थ संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो । चत्तारि वारे कसायमुवसामिदा । तदो एइंदिए गदो । तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदो जाव उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति । तदो मणुस्सेसु आगदो । तत्थ पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अपडिवदिदेण सम्मत्तेण वेमाणिएसु देवेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तमुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो, अंतोमुहुत्तमुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो । तस्स आवलियपडिभग्गस्स भय-दुगुंछाणं वेदयमाणस्स अरदि-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

१२४. एवमोघेण सव्वमोहणीयपयडीणं जहण्णमोकड्डणादिझीणट्ठिदियसामित्तं परूविदं ।

१२५. अप्पाबहुअं । १२६. सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं । १२७. उक्कस्सयाणि ओकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदि-

---

अपकर्षणकर उदयावलीके बाहिर निक्षेपण किया । तदनन्तर समयमें उस द्विसमयवर्ती देवके अरति-शोककी एक स्थिति उदयावलीमें प्रविष्ट हुई । उस समय उस देवके अरति-शोकका अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ।।१२१।।

शंका—अरति-शोकका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।।१२२।।

समाधान—जो जीव जघन्य एकेन्द्रियसत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया और वहाँपर संयमासंयम तथा संयमको बहुत वार प्राप्त हुआ । वार वार कषायोंका उपशमन किया । तदनन्तर एकेन्द्रियोंमें चला गया । वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागकाल तक रहा, जबतक कि उपशामक-समयप्रबद्ध पूर्णरूपसे गल जाते हैं । तदनन्तर वह मनुष्योंमें आया । वहाँपर देशोन पूर्वकोटी तक संयमका परिपालनकर अप्रतिपतित सम्यक्त्वके साथ ही वैमानिक देवोंमें उत्पन्न हुआ । उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त पश्चात्, अर्थात् पर्याप्तक होनेपर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त तक अरति-शोककी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर संक्लेशसे प्रतिनिवृत्त हुआ । उस आवलिक-प्रतिभग्नके अर्थात् जिसे संक्लेशसे प्रतिनिवृत्त हुए एक आवलीकाल व्यतीत हो गया है और जो भय तथा जुगुप्साका वेदन कर रहा है, ऐसे उस जीवके अरति और शोकका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र होता है ।।१२३।।

चूर्णिसू०—इस प्रकार मोहनीयकर्मकी सर्व प्रकृतियोंके अपकर्षणादि-सम्बन्धी जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके स्वामित्वका निरूपण किया गया ।।१२४।।

अब क्षीण-अक्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वका उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र सबसे कम हैं । अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा मिथ्यात्वके उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र तीनों परस्पर तुल्य होते हुए भी उपर्युक्त पदसे

याणि तिण्णि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि । १२८. एवं सम्मामिच्छत्त-पण्णारसकसाय-छण्णोकसायाणं । १२९. सम्मत्तस्स सव्वत्थोवमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं । १३०. सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि। २३१. एवं लोभसंजलण-तिण्णि वेदाणं ।

१३२. एत्तो जहण्णयं झीणट्ठिदियं। १३३. मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं। १३४. सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि । १३५. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णयमप्पाबहुअं तहा जेसिं कम्मंसाणमुदीरणोदओ[1] अत्थि तेसिं पि जहण्णयमप्पाबहुअं । अणंताणुबंधि-इत्थि-णवुंसयवेद-अरइ-सोगा त्ति एदे अट्ठकम्मंसे मोत्तूण सेसाणमुदीरणोदयो । १३६. जेसिं ण उदीरणोदयो तेसिं पि सो चेव आलावो अप्पाबहुअस्स जहण्णयस्स। १३७. णवरि अरइ-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं थोवं । १३८. सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि ।

असंख्यातगुणित हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलनलोभको छोड़कर पन्द्रह कषाय और हास्यादि छह नोकषायोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥१२५-१२८॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र सबसे कम है । शेष तीनों ही उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र परस्पर तुल्य और उपर्युक्त पदसे विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार संज्वलनलोभ और तीनों वेदोंके अपकर्षणादि चारों पदोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥१२९-१३१॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहेंगे :—मिथ्यात्वका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र सबसे कम है । शेष तीनों ही क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र परस्पर तुल्य और उदयकी अपेक्षा असंख्यातगुणित हैं । जिस प्रकार मिथ्यात्वका जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकारसे जिन कर्मांशोंका उदीरणोदय है, उनका भी जघन्य क्षीणस्थितिक-प्रदेशाग्र-सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिए । अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक इन आठ कर्म-प्रकृतियोंको छोड़कर शेष मोह-प्रकृतियोंका उदीरणोदय होता है । जिन प्रकृतियोंका उदीरणोदय नहीं होता है, उनके जघन्य अल्पबहुत्वका भी वही उपर्युक्त आलाप (कथन) करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि अरति और शोकका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र परस्पर तुल्य और उदय-सम्बन्धी क्षीणस्थितिकप्रदेशाग्रसे विशेष अधिक है । ॥१३२-१३८॥

विशेषार्थ—जिन कर्म-परमाणुओंका उदयावलीके भीतर अन्तरकरणके निमित्तसे

१ उदीरणाए चेव उदयो उदीरणोदओ त्ति, जेसिं कम्मंसाणमुदयावलियब्भंतरे अंतरकरणेण अच्चंतमसंताणं कम्मपरमाणूणं परिणामविसेसेणासंखेज्जलोगपडिभागेणोदीरिदाणमणुहवो तेसिमुदीरणोदओ त्ति एसो एत्थ भावत्थो । जयध०

१३९. अहवा इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णयाणि ओकड्डणादीणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि। १४०. उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियमसंखेज्ज-गुणं। १४१. अरइ-सोगाणं जहण्णयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि। १४२. जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं विसेसाहियं।

अत्यन्त अभाव है, उन कर्म-परमाणुओंकी परिणामविशेषके द्वारा उदीरणा करके जो उनका वेदन होता है, उसे उदीरणोदय कहते हैं।

चूर्णिसू०—अथवा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अपकर्षणादि तीनों ही जघन्य क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र परस्पर तुल्य और अल्प है। उन्हींका उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीण-स्थितिक प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं। अरति और शोकके तीनों ही जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र परस्पर तुल्य और अल्प हैं। उन्हींके उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं ॥१३९-१४२॥

विशेषार्थ—इस क्षीणाक्षीण-प्रदेशसम्बन्धी अल्पबहुत्वके अन्तमें जयधवलाकारने सर्व अधिकारोंमें साधारणरूपसे उपयुक्त एक अल्पबहुत्वदंडक भी मध्यदीपकरूपसे लिखा है, जो इस प्रकार है[1]:—सर्वसंक्रमभागहार सबसे कम है। इससे गुणसंक्रमणभागहार असंख्यातगुणा है। गुणसंक्रमणभागहारसे उत्कर्षणापकर्षणभागहार असंख्यातगुणा है। उत्कर्षणापकर्षणभागहारसे अधःप्रवृत्तभागहार असंख्यातगुणा है। अधःप्रवृत्तभागहारसे योगगुणाकार असंख्यातगुणा है। योगगुणाकारसे कर्मस्थिति-सम्बन्धी नानागुणहानि-शलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं। कर्मस्थिति-सम्बन्धी नानागुणहानिशलाकाओंसे पल्योपमके अर्धच्छेद विशेष अधिक हैं। पल्योपमके अर्धच्छेदोंसे पल्योपमका प्रथम वर्गमूल असंख्यात-गुणा है। पल्योपमके प्रथम वर्गमूलसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरसे द्व्यर्धगुणहानिस्थानान्तर विशेष अधिक है। द्व्यर्धगुणहानि-स्थानान्तरसे निषेकभागहार विशेष अधिक है। निषेकभागहारसे अन्योन्याभ्यस्तराशि असं-ख्यातगुणी है। अन्योन्याभ्यस्तराशिसे पल्योपम असंख्यातगुणा है। पल्योपमसे विध्यात-संक्रमणभागहार असंख्यातगुणा है। विध्यातसंक्रमणभागहारसे उद्वेलनभागहार असंख्यातगुणा

---

१ संपहि एत्थुद्देसे सव्वेसिं अत्थाहियाराणं साहारणभूदमप्पाबहुआदंडयं मज्झदीवयभावेण परूव-इस्सामो। सं जहा—सव्वत्थोवो सव्वसंकमभागहारो। गुणसंकमभागहारो असंखेज्जगुणो। ओकड्डुकड्डुण-भागहारो असंखेज्जगुणो। अधापवत्तभागहारो असंखेज्जगुणो। जोगगुणगारो असंखेज्जगुणो। कम्मट्ठिदिणा-णागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ। पलिदोवमस्स छेदणया विसेसाहिया। पलिदोवमपढमवग्गमूलं असंखेज्जगुणं। एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं। दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरं विसेसाहियं। णिसेयभागहारो विसेसाहिओ। अण्णोण्णब्भत्थरासी असंखेज्जगुणो। पलिदोवममसंखेज्जगुणं। विज्झादसंकमभागहारो असंखेज्जगुणो। उव्वेल्लणभागहारो असंखेज्जगुणो। अणुभागवग्गणाणं णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ अणंत-गुणाओ। एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमणंतगुणं। दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरं विसेसाहियं। णिसेयभागहारो विसेसाहिओ। अण्णोण्णब्भत्थरासी अणंतगुणो त्ति। जयध०

एवमप्पाबहुए समत्ते झीणमझीणं ति पदं समत्तं होदि ।
झीणाझीणाहियारो समत्तो ।

है । उद्वेलनभागहारसे अनुभागवर्गणाओंकी नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ अनन्तगुणी हैं । इनसे इन्हींका एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणा है । उससे अनुभागवर्गणाओंका द्व्यर्धगुण-हानिस्थानान्तर विशेष अधिक है । उससे अनुभागवर्गणाओंका निषेकभागहार विशेष अधिक है । अनुभागवर्गणाओंके निषेकभागहारसे उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशि अनन्तगुणी है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर चौथी मूलगाथाके 'झीणमझीणं' इस पदकी विभाषा समाप्त हुई ।

इस प्रकार क्षीणाक्षीणाधिकार समाप्त हुआ ।

ठिदियं ति अहियारो

१. ठिदियं[1] ति जं पदं तस्स विहासा । २. तत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि । तं जहा—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च । ३. समुक्कित्तणाए अत्थि उक्कस्सयट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं उदयट्ठिदिपत्तयं च । ४. उक्कस्सयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? ५. जं कम्मं बंधसमयादो कम्मट्ठिदीए उदए दीसइ तमुक्कस्सयट्ठिदि-

स्थितिक-अधिकार

चूर्णिसू०—अब चौथी मूलगाथाके 'ट्ठिदियं वा' इस अन्तिम पदकी विभाषा की जाती है । इस स्थितिक-अधिकारमें तीन अनुयोगद्वार हैं । वे इस प्रकार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा चार प्रकारका प्रदेशाग्र होता है—उत्कृष्टस्थितिप्राप्तक, निषेकस्थितिप्राप्तक, यथानिषेकस्थितिप्राप्तक और उदयस्थितिप्राप्तक ॥ १-३ ॥

विशेषार्थ—अनेक प्रकारकी स्थितियोंको प्राप्त होनेवाले प्रदेशाग्रों अर्थात् कर्म-परमाणुओंको स्थितिक या स्थिति-प्राप्तक कहते हैं । ये स्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र उत्कृष्टस्थिति, निषेकस्थिति, यथानिषेकस्थिति और उदयस्थितिभेदसे चार प्रकारके होते हैं । जिस विवक्षित कर्मकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है, उतनी स्थिति-प्रमाण बँधनेवाला जो कर्म-प्रदेशाग्र बँधनेके समयसे लेकर अपनी उत्कृष्ट कर्मस्थितिमात्र काल तक आत्माके साथ रहकर अपनी कर्म-स्थितिके अन्तिम समयमें उदयको प्राप्त हो, उसे उत्कृष्टस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र कहते हैं; क्योंकि वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होकर उदयमें वर्तमान है । जो कर्म-प्रदेशाग्र बंधकालमें जिस स्थितिमें निषिक्त किया गया, वह अपकर्षण या उत्कर्षणको प्राप्त होकर भी उस ही स्थितिमें होकर उदयकालमें दृष्टिगोचर हो, उसे निषेकस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र कहते हैं । जो कर्म-प्रदेशाग्र बन्धकालमें जिस स्थितिमें निषिक्त किया गया, वह अपकर्षण या उत्कर्षणको नहीं प्राप्त होकर ज्यों-का-त्यों अवस्थित रहते हुए उस ही स्थितिके द्वारा उदयको प्राप्त हो, उसे यथानिषेकस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र कहते हैं । जो कर्म-प्रदेशाग्र बन्धकालके पश्चात् जब कभी भी जिस किसी भी स्थितिमें होकर उदयको प्राप्त हो, उन्हें उदयस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र कहते हैं ।

अब चूर्णिकार शंका-समाधानपूर्वक इन चारों भेदोंका क्रमशः स्वरूप कहते हैं—

शंका—उत्कृष्टस्थितिप्राप्तक नाम किसका है ? ॥ ४ ॥

समाधान—जो कर्म-प्रदेशाग्र बन्ध-समयसे लेकर कर्मस्थितिप्रमाणकाल तक सत्तामें रहकर अपनी कर्म-स्थितिके अन्तिम समयमें उदयमें दिखाई देता है अर्थात् उदयको प्राप्त होता है, उसे उत्कृष्टस्थितिप्राप्तक कहते हैं ॥ ५ ॥

१. तत्थ किं ठिदियं णाम ? ट्ठिदीओ गच्छइ त्ति ट्ठिदियं पदेसग्गं ट्ठिदिपत्तयमिदि उत्तं होइ । जयध०

पत्तयं । ६. णिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? ७. जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं ओकड्डिदं वा उक्कड्डिदं वा तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ, तं णिसेयट्ठिदिपत्तयं । ८. अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? ९. जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं अणोकड्डिदं अणुक्कड्डिदं तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं[1] । १०. उदयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? ११. जं कम्मं उदए जत्थ वा तत्थ वा दिस्सइ तमुदयट्ठिदिपत्तयं । १२. एदमट्ठपदं* । १३. एत्तो एक्केक्कट्ठिदिपत्तयं चउव्विहमुक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णं च ।

१४. सामित्तं । १५. मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स ? १६. अग्गट्ठिदिपत्तयमेक्को वा दो वा पदेसा एवमेगादि-एगुत्तरियाए वड्ढीए जाव ताव उक्-

शंका–निषेकस्थितिप्राप्तक नाम किसका है ? ।। ६ ।।

समाधान–जो कर्म-प्रदेशाग्र बँधनेके समयमें ही जिस स्थितिमें निषिक्त कर दिये गये, अथवा अपवर्तित कर दिये गये; वे उस ही स्थितिमें होकर यदि उदयमें दिखाई देते हैं, तो उन्हें निषेकस्थितिप्राप्तक कहते हैं ।। ७ ।।

शंका–यथानिषेकस्थितिप्राप्तक किसे कहते हैं ? ।। ८ ।।

समाधान–जो कर्म-प्रदेशाग्र बन्धके समय जिस स्थितिमें निषिक्त कर दिये गये, वे अपवर्तना या उद्वर्तनाको प्राप्त न होकर सत्तामें तदवस्थ रहते हुए ही यथाक्रमसे उस ही स्थितिमें होकर उदयमे दिखाई दे, उसे यथानिषेकस्थितिप्राप्तक कहते हैं ।। ९ ।।

शंका–उदयस्थितिप्राप्तक किसे कहते हैं ? ।।१०।।

समाधान–जो कर्म-प्रदेशाग्र बँधनेके अनन्तर जहाँ कहीं भी जिस किसी स्थितिमें होकर उदयको प्राप्त होता है, उसे उदयस्थितिप्राप्तक कहते हैं ।।११।।

चूर्णिसू०–उत्कृष्टस्थितिप्राप्तक आदि चारों ही भेदोंके अर्थका निर्णय करानेवाला यह उपर्युक्त अर्थपद है । मोहप्रकृतियोंके ये एक-एक अर्थात् चारों ही प्रकारके स्थितिप्राप्तक, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यके भेदसे चार-चार प्रकारके होते हैं ।।१२-१३।।

चूर्णिसू०–अब उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तक आदिके स्वामित्वको कहते हैं ।।१४।।

शंका–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्तक किसके होता है ? ।।१५।।

समाधान–अग्रस्थितिको प्राप्त एक प्रदेश भी पाया जाता है, दो प्रदेश भी पाये जाते हैं, तीन प्रदेश भी पाये जाते हैं, इस प्रकार एक-एक प्रदेशकी उत्तर वृद्धिसे तबतक

१. कधं जहाणिसेयस्स अधाणिसेयववएसो त्ति ण पच्चवट्ठेयं, 'वच्चंति क ग त द य वा, अत्थं वहंति सरा' इदि यकारस्स लोवं काऊण णिद्देसादो । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें यह सूत्र इस प्रकार मुद्रित है—'एदमट्ठपदं उक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणं चउण्हं पि अत्थविसयणिण्णयणिबंधं' । पर 'अट्ठपद' से आगेका अंश तो उसके ही अर्थकी व्याख्यात्मक टीकाका अंग है, उसे सूत्रका अंग बनाना ठीक नहीं । (देखो पृ० १२३)

स्सयं समयपबद्धस्स अग्गट्ठिदीए जत्तियं णिसित्तं तत्तियमुक्कस्सेण अग्गट्ठिदिपत्तयं । १७. तं पुण अण्णदरस्स होज्ज । १८. अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ? १९. तस्स ताव संदरिसणा । २०. उदयादो जहण्णयमाबाहामेत्तमोसक्किदूण जो समयपबद्धो तस्स णत्थि अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं । २१. समयुत्तराए आबाहाए एवदिमचरिमसमयपबद्धस्स अधाणिसेओ अत्थि । २२. तत्तो पाए जाव असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि तावदिम-

बढ़ाते जाना चाहिए, जबतक कि उत्कृष्ट समयप्रबद्धकी अग्रस्थितिमें जितने प्रदेशाग्र निषिक्त किये हैं, वे सब प्राप्त न हो जावें । इस प्रकारसे चरमनिषेक-सम्बन्धी एक समयप्रबद्धगत जितने प्रदेश प्राप्त होते हैं, उतने सबके सब उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्तक कहलाते हैं । वह उत्कृष्ट अग्रस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र किसी भी जीवके हो सकता है ॥१६-१७॥

विशेषार्थ–इस सूत्रका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–जो मिथ्यात्वकर्मका प्रदेशाग्र कर्म-स्थितिके प्रथम समयमें बन्धको प्राप्त होकर और सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमित कर्मस्थितिके असंख्यात बहुभागकाल तक अवस्थित रहकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट निर्लेपनकालके अवशिष्ट रह जानेपर प्रथम समयमें शुद्ध होकर अर्थात् कर्मरूप पर्यायको छोड़कर आत्मासे निर्जीर्ण होता है, पुनः उसके उपरिम अनन्तर समयमें शुद्ध होकर निर्जीर्ण होता है, इस प्रकार उत्तर-उत्तरवर्ती समयोंमें कर्मपर्यायको छोड़कर उसके निर्लेप होते हुए कर्मस्थितिके पूर्ण होनेपर एक परमाणुका भी अवस्थान सम्भव है, दो परमाणुओंका अवस्थान भी सम्भव है, तीन परमाणुओंका भी अवस्थान सम्भव है, इस प्रकार एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए अधिकसे अधिक उतने कर्म-परमाणुओंका पाया जाना सम्भव है, जितने कि समयप्रबद्धकी अग्रस्थितिमें उत्कृष्ट प्रदेशाग्र निषिक्त किये थे । यहाँपर समयप्रबद्धसे अभिप्राय उत्कृष्ट योगी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके द्वारा बाँधे हुए समयप्रबद्धसे है, अन्यथा अग्रस्थितिमें उत्कृष्ट निषेकका पाया जाना सम्भव नहीं है। मिथ्यात्वके इस उत्कृष्ट अग्रस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रका स्वामी कोई भी जीव हो सकता है, ऐसा सामान्यसे कहा गया है, तो भी क्षपितकर्मांशिकको छोड़ करके ही अन्य किसी भी जीवके उसका स्वामित्व जानना चाहिए, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक जीवके उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्रका पाया जाना सम्भव नहीं है ।

शंका–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तक किसके होता है ? ॥१८॥

समाधान–इसका संदर्शन (स्पष्टीकरण) इस प्रकार है–उदयसे, अर्थात् मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिको प्राप्त स्वामित्वके समयसे जघन्य आबाधाके कालप्रमाण नीचे आकरके जो बद्ध समयबद्ध है, उसका प्रदेशाग्र विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकस्थितिको प्राप्त नहीं होता है । एक समय अधिक आबाधाके व्यतीत होनेपर इस अन्तिम समयप्रबद्धका यथानिषेक होता है । इस एक समय अधिक जघन्य आबाधाकालसे आगे चलकर बँधे हुए समयप्रबद्धसे लेकर नीचे जितने असंख्यात पल्योपमके प्रथमवर्गमूलोंका प्रमाण है, उतने समयोंमें बँधे हुए समय-प्रबद्धोंका यथानिषेक विवक्षित स्थितिमें नियमसे होता है ॥१९-२२॥

समयपबद्धस्स अधाणिसेओ णियमा अत्थि ।

२३. एक्कस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से ट्ठिदीए जो उक्कस्सओ अधाणिसेओ तत्तो केवडिगुणं उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ? २४. तस्स णिदरिसणं । २५. जहा । २६. ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो थोवो । २७. अधापवत्तसंकमेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो । २८. ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स जो अवहारकालो सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । २९. एवदिगुणमेकस्स समयपबद्धस्स एकिस्से ट्ठिदीए उक्कस्सयादो जहाणिसेयादो उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

३०. इदाणिमुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ३१. सत्तमाए पुढवीए णेरइयस्स जत्तियमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं तत्तो विसेसुत्तरकालमुववण्णो जो णेरइओ तस्स जहण्णेण उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ३२. एदम्हि पुण काले सो णेरइओ तप्पाओग्गुक्कस्सयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो । ३३. तप्पाओग्गउक्कस्सियाहि वड्ढीहि

शंका—विवक्षित स्थितिसे एक समय अधिक जघन्य आबाधाकालप्रमाण नीचे आकर उत्कृष्ट योगसे बँधा हुआ जो एक समयप्रबद्ध है, उसकी एक स्थितिमें अर्थात् जघन्य आबाधाके बाहिर स्थित स्थितिमें जो उत्कृष्ट यथानिषेक प्रदेशाग्र है, उससे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उत्कृष्ट संचयकालके भीतर गलनेसे अवशिष्ट रहे हुए नानासमयप्रबद्धोंका जो यथानिषेकस्थितिको प्राप्त हुआ उत्कृष्ट प्रदेशाग्र है, वह कितना गुणा अधिक है ? ।।२३।।

समाधान—इस गुणाकारको एक निदर्शन (उदाहरण) के द्वारा स्पष्ट करते हैं । वह इस प्रकार है—एक समयमें जो कर्मप्रदेशाग्र उद्वर्तना-अपवर्तनाकरणके द्वारा उद्वर्तित या अपवर्तित होता है, उसके प्रमाण निकालनेका जो अवहारकाल है, वह वक्ष्यमाण अवहारकालसे थोड़ा है । उद्वर्तनापवर्तनाकरणके अवहारकालसे अधःप्रवृत्तसंक्रमणकी अपेक्षा कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है । उद्वर्तनापवर्तनाकरणकी अपेक्षा कर्मका जो अवहारकाल है, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इतना गुणा है, अर्थात् एक समयप्रबद्धकी एक स्थितिके उत्कृष्ट यथानिषेकसे उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र जितना यह उद्वर्तनापवर्तनाकरणकी अपेक्षा कर्मका अवहारकाल है, इतना गुणा अधिक है ।।२४-२९।।

शंका—उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।। ३० ।।

समाधान—वह उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र सातवीं पृथिवीके नारकीके होता है । किस प्रकारके नारकीके होता है, इसका स्पष्टीकरण यह है कि जितना काल उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्रका है, उससे उत्तरकालमें उत्पन्न हुआ जो नारकी है, उसके उत्पत्तिके समयसे जघन्य अन्तर्मुहूर्तसे अधिक होनेपर, अर्थात् सर्वलघुकालसे पर्याप्त होनेपर उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है । पुनः वह नारकी इस यथानिषेकसंचयकालके भीतर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगस्थान को बार-बार प्राप्त हुआ, तथा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट वृद्धियोंसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ उस स्थितिके निषेकके उत्कृष्ट पदको प्राप्त हुआ ।

वड्ढिदो । ३४. तिस्से ट्ठिदीए णिसेयस्स उक्कस्सपदं । ३५. जा जहण्णिया आबाहा अंतोमुहुत्तुत्तरा एवदिसमय-अणुदिण्णा सा ट्ठिदी । तदो जोगट्ठाणाणमुवरिल्लमद्धं गदो ३६. दुसमयाहिय–आबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए एयसमयाहिय-आबाहाचरिमसमय-अणुदिण्णाए च उक्कस्सयं जोगमुववण्णो । ३७. तस्स उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं । ३८. णिसेयट्ठिदिपत्तयं पि उक्कस्सयं तस्सेव ।

३९. उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ? ४०. गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-गुणसेढिं संजमगुणसेढिं च काऊण मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढीसीसयाणि उदिण्णाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं । ४१. एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि । ४२. णवरि उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियभंगो । ४३. अणं-

---

जो अन्तर्मुहूर्त-अधिक जघन्य आबाधा है, इतने समय तक वह स्थिति अनुदीर्ण थी, अर्थात् उदयको प्राप्त नहीं हुई थी । तदनन्तर वह नारकी योगस्थानोंके ऊपरी अर्धभागको प्राप्त हुआ, अर्थात् यवमध्यके ऊपर जाकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहा । पुनः उस स्थितिके दो समय अधिक आबाधाके अन्तिम समयमें अनुदीर्ण होनेपर और एक समय अधिक आबाधा-के अन्तिम समयमें अनुदीर्ण होनेपर वह उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ । ऐसे उस नारकीके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है । तथा उसीके ही निषेक-स्थितिको प्राप्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ।। ३१-३८ ।।

भावार्थ–जो जीव सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ, लघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्त हुआ, स्व-योग्य योगस्थानोंसे निरन्तर परिणत हुआ, संख्यात गुणवृद्धि और असंख्यातभागवृद्धि इन दो वृद्धियोंसे बढ़ा, योगवृद्धिसे योगस्थानोंके यवमध्यभागको प्राप्त होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहा । जब दो समय और एक समय अधिक आबाधाका चरम समय आया, तब उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिक प्रदेशाग्र होता है और इसी नारकीके ही उत्कृष्ट निषेकस्थितिक प्रदेशाग्र पाया जाता है ।

शंका–मिथ्यात्वका उदयस्थितिको प्राप्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।।३९।।

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयमगुणश्रेणीको और संयमगुणश्रेणीको करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । उसके जिस समय गुणश्रेणीशीर्षक उदयको प्राप्त हुए उस समय उसके मिथ्यात्वका उदयस्थितिको प्राप्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ।। ४० ।।

चूर्णिसू०–इसी प्रकारसे अर्थात् मिथ्यात्वके समान ही सम्यक्त्वप्रकृति और सम्य-ग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अग्रस्थिति-प्राप्त, यथानिषेकस्थिति-प्राप्त आदिके स्वामित्वको जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट उदयस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रका स्वामित्व उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके स्वामित्वके समान है । अनन्तानु-बन्धी चतुष्क, आठ मध्यम कषाय और हास्यादि छह नोकषायोंके उत्कृष्ट अग्रस्थिति आदिको प्राप्त प्रदेशाग्रका स्वामित्व मिथ्यात्वके स्वामित्वके समान जानना चाहिए ।। ४१-४३ ।।

ताणुबंधिचउक्क-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं मिच्छत्तभंगो । ४४. णवरि अट्ठकसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ४५. संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवयगुणसेढीओ त्ति एदाओ तिण्णि वि गुणसेढीओ गुणिदकम्मंसिएण कदाओ । एदाओ काऊण अविणट्ठेसु असंजमं गओ । पत्तेसु उदयगुणसेढिसीसएसु उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं ।

४६. छण्णोकसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ४७. चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स । ४८. हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ भय-दुगुंछाणमवेदओ कायव्वो । ४९ जइ भयस्स, तदो दुगुंछाए अवेदओ कायव्वो । अध दुगुंछाए, तदो भयस्स अवेदओ कायव्वो ।

५०. कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ५१. उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं जहा पुरिमाणं कायव्वं । ५२. उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ५३. कसाए उवसामित्ता पडिवदिदूण पुणो अंतोमुहुत्तेण कसाया उवसामिदा, विदियाए

शंका–आठ मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४४ ॥

समाधान–जिस गुणितकर्मांशिक जीवने संयमासंयमगुणश्रेणी, संयमगुणश्रेणी और दर्शनमोहनीय-क्षपकगुणश्रेणी इन तीनों ही गुणश्रेणियोंको किया । पुनः इनको करके उनके नष्ट नहीं होनेके पूर्व ही वह असंयमको प्राप्त हुआ । वहाँ उन गुणश्रेणियोंके शीर्षकोंके उदयको प्राप्त होनेपर आठों मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥ ४५ ॥

शंका–छह नोकषायोंका उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥४६॥

समाधान–अपूर्वकरण गुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान क्षपकके छह नोकषायोंका उत्कृष्ट उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है । यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि जब हास्य-रति और अरति-शोककी प्ररूपणा की जाय, तब उसे भय और जुगुप्साका अवेदक निरूपण करना चाहिए । यदि भयकी प्ररूपणा की जाय, तो जुगुप्साका अवेदक कहना चाहिए और यदि जुगुप्साकी प्ररूपणा की जाय, तो उसे भयका अवेदक निरूपण करना चाहिए ॥ ४७-४९ ॥

शंका–संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट अग्रस्थितिक कर्मप्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥५०॥

समाधान–जिस प्रकारसे पूर्ववर्ती मिथ्यात्वादि कर्मोंके उत्कृष्ट अग्रस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रके स्वामित्वको कहा है, उसी प्रकारसे संज्वलनक्रोधके उत्कृष्ट अग्रस्थिति-प्राप्त कर्मप्रदेशाग्रके स्वामित्वकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥ ५१ ॥

शंका–संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट यथानिषेकको प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥५२॥

समाधान–जो कषायोंका उपशमन करके गिरा और उसने पुनः अन्तर्मुहूर्तसे कषायोंका उपशमन किया । (तदनन्तर वही जीव नरक-तिर्यंच गतिमें दो-तीन भवोंको ग्रहण करके पुनः मनुष्य हुआ और कषायोंके उपशमनके लिए उद्यत हुआ ।) इस दूसरे भवमें

उवसामणाए आबाहा अम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा, तम्हि उक्कस्सयमधाणिसेय-ट्ठिदिपत्तयं । ५४. णिसेयट्ठिदिपत्तयं च तम्हि चेव । ५५. उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ५६. चरिमसमयकोहवेदयस्स ।

५७. एवं माण-माया-लोहाणं । ५८. पुरिसवेदस्स चत्तारि वि ट्ठिदिपत्तयाणि कोहसंजलणभंगो । ५९. णवरि उदयट्ठिदिपत्तयं चरिमसमयपुरिसवेदखवयस्स गुणिद-कम्मंसियस्स । ६०. इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं मिच्छत्तभंगो ।

६१. उक्कस्सय-अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं च कस्स ? ६२. इत्थिवेदसंजदेण इत्थिवेद-पुरिसवेदपूरिदकम्मंसिएण अंतोमुहुत्तस्संतो दो वारे कसाए उवसामिदा । जाधे विदियाए उवसामणाए जहण्णयस्स ट्ठिदिबंधस्स पढमणिसेयट्ठिदी उदयं पत्ता ताधे अधाणिसेयादो णिसेयादो च उक्कस्सयं ट्ठिदिपत्तयं । ६३. उदयट्ठिदि-पत्तयमुक्कस्सयं कस्स ? ६४. गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिमसमय-इत्थिवेदयस्स

दूसरी वारकी उपशामनामें जिस समय आबाधा पूर्ण हो, वह स्थिति प्रकृतमें विवक्षित है । उस समयमें संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है । इस ही जीवके उस ही समयमें संज्वलनक्रोधके निषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्रका स्वामित्व जानना चाहिए ।। ५३-५४ ।।

शंका—संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।।५५।।

समाधान—चरम-समयवर्ती क्रोधवेदक क्षपकके संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट उदयस्थिति-को प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ।।५६।।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार संज्वलन मान, माया और लोभकषायके उत्कृष्ट अग्रस्थितिक आदि चारों प्रकारके प्रदेशाग्रोंका स्वामित्व जानना चाहिए । पुरुषवेदके चारों ही स्थितिप्राप्तक प्रदेशाग्रोंका स्वामित्व संज्वलनक्रोधके स्वामित्वके समान जानना चाहिए । केवल इतनी विशे-षता है कि उदयस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र गुणितकर्मांशिक और चरमसमयवर्ती पुरुषवेदी क्षपकके होता है । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्तक प्रदेशाग्रका स्वामित्व मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए ।।५७-६०।।

शंका—स्त्रीवेदका उत्कृष्ट यथानिषेकस्थिति-प्राप्त और निषेकस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।।६१।।

समाधान—जिसने स्त्रीवेद और पुरुषवेदके कर्मप्रदेशाग्रको पूरित किया है, ऐसे स्त्रीवेदी संयतने अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो वार कषायोंका उपशमन किया । जब दूसरी उपशा-मनामें जघन्य स्थितिबन्धके प्रथम निषेककी स्थिति उदयको प्राप्त हुई, तब स्त्रीवेदका यथा-निषेकसे और निषेकसे उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ।।६२।।

शंका—स्त्रीवेदका उत्कृष्ट उदयस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ।।६३।।

समाधान—गुणितकर्मांशिक और चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदक क्षपकके स्त्रीवेदका उदय-स्थितिको प्राप्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ।। ६४ ।।

तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं। ६५. एवं णवुंसयवेदस्स। ६६. णवरि णवुंसयवेदोदयस्सेत्ति भाणिदव्वाणि।

६७. जहण्णयाणि ट्ठिदिपत्तयाणि कायव्वाणि। ६८. सव्वकम्माणं पि अग्गट्ठिदिपत्तयं जहण्णयमेओ पदेसो, तं पुण अण्णदरस्स होज्ज। ६९. मिच्छत्तस्स णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स। ७०. उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च। ७१. मिच्छत्तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ७२. जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो, वे छावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालियूण मिच्छत्तं गदो। तप्पाओग्ग-उक्कस्सिया मिच्छत्तस्स जावदिया आबाहा तावदिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार नपुंसकवेदके उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्रोंका स्वामित्व जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि नपुंसकवेदके उदयवाले जीवके ही उनका स्वामित्व कहना चाहिए ॥६५-६६॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य स्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रोंकी प्ररूपणा करना चाहिए। मिथ्यात्व आदि सभी कर्मोंका जघन्य अग्रस्थितिको प्राप्त एक कर्म-प्रदेश होता है। और वह किसी भी एक जीवके हो सकता है ॥६७-६८॥

शंका–मिथ्यात्वका जघन्य निषेकस्थिति-प्राप्त और जघन्य उदयस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥६९॥

समाधान–उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आये हुये और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त ऐसे प्रथम-समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका जघन्य निषेकस्थितिप्राप्त और जघन्य उदयस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७०॥

शंका–मिथ्यात्वका जघन्य यथानिषेकस्थितिक प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥७१॥

समाधान–जो जीव जघन्य एकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त किया। पुनः दो वार छयासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्वका परिपालनकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। उसके योग्य मिथ्यात्वकी जितनी उत्कृष्ट आबाधा है, उतने समय तक मिथ्यादृष्टि रहनेवाले उस जीवके मिथ्यात्वका जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७२॥

विशेषार्थ–यहाँपर जो 'त्रसोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त किया' ऐसा कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि वह एकेन्द्रियोंसे आकर जघन्य आयुवाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर अतिलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तियोंको पूर्णकर पर्याप्तक हुआ और तत्काल ही देवायुका बन्ध करके मरणको प्राप्त हो देवोंमें उत्पन्न हुआ।

७३. जेण मिच्छत्तस्स रचिदो अधाणिसेओ तस्स चेव जीवस्स सम्मत्तस्स अधाणिसेओ कायव्वो। णवरि तिस्से उकस्सियाए सम्मत्तद्धाए चरिमसमए तस्स चरिम-समयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। ७४. णिसेयादो च उदयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ७५. उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठि-स्स तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं। ७६. सम्मत्तस्स जहण्णओ अहाणिसेओ जहा परूविओ तीए चेव परूवणाए सम्मामिच्छत्तं णओ, तदो उकस्सियाए सम्मामिच्छत्तद्धाए चरिमसमए जहण्णयं सम्मामिच्छत्तस्स अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। ७७. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णिसेयादो उदयादो च ट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ७८. उवसम-सम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स।

सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तक होकर, विश्राम कर और विशुद्धिको प्राप्त होकर सम्यक्त्वको प्राप्त किया। इस प्रकारके जीवके एकेन्द्रियोंसे निकलकर सम्यक्त्वको प्राप्त करने तक यद्यपि अनेक अन्तर्मुहूर्त हो जाते हैं, तथापि उन सब अतिलघु अन्तर्मुहूर्तोंका योग एक अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर आ जाता है, इसलिए उपर्युक्त कथनमें कोई विरोध या बाधा नहीं समझना चाहिए।

चूर्णिसू०–जिस जीवने मिथ्यात्वका यथानिषेक रचा है, उस ही जीवके सम्यक्त्व-प्रकृतिका भी यथानिषेक कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उस सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट कालके अन्तिम समयमें वर्तमान उस चरमसमयवर्ती सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७३॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिका निषेकसे और उदयसे जघन्य स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥७४॥

समाधान–उपशमसम्यक्त्वको पीछे करके आये हुए, तथा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त ऐसे प्रथमसमयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वप्रकृतिका निषेकसे और उदयसे जघन्य स्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७५॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य यथानिषेककी प्ररूपणा की, उसी ही प्ररूपणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणा भी की हुई समझना चाहिए। उससे यहाँपर केवल इतना भेद है कि उत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वकालके चरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य यथा-निषेक स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७६॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वका निषेकसे और उदयसे जघन्य स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥७७॥

समाधान–उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आये हुए, तथा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त, ऐसे प्रथमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका निषेकसे और उदयसे जघन्य स्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥७८॥

७९. अणंताणुबंधीणं णिसेयादो अधाणिसेयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स ? ८०. जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण पंचिंदिए गओ, अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो, अणंताणुबंधी विसंजोइत्ता पुणो पडिवदिदो, रहस्सकालेण संजोएऊण सम्मत्तं पडिवण्णो, बे छावट्ठिसागरोवमाणि अणुपालियूण मिच्छत्तं गओ। तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं णिसेयादो अधाणिसेयादो च ट्ठिदिपत्तयं। ८१. उदयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स ? ८२. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो, तम्हि संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता एइंदिए गओ, असंखेज्जाणि वस्साणि अच्छियूण उवसामयसमयपबद्धेसु गलिदेसु पंचिंदिएसु गदो। अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधी विसंजोइत्ता तदो संजोएऊण जहण्णएण अंतोमुहुत्तेण पुणो सम्मत्तं लद्धूण बे छावट्ठिसागरोवमाणि अणंताणुबंधिणो गालिदा। तदो मिच्छत्तं गदो। तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयं।

८३. बारसकसायाणं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स ?

शंका–अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंका निषेकसे और यथानिषेकसे जघन्य स्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥७९॥

समाधान–जो जीव जघन्य एकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः अनन्तानुबन्धी कषायोंका विसंयोजन करके गिरा और ह्रस्व (सर्व लघु) कालसे अनन्तानुबन्धी कषायोंका पुनः संयोजन किया। पुनः अति लघु अन्तर्मुहूर्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके एक आवली-कालके पश्चात् उस मिथ्यादृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी कषायोंका निषेकसे और यथानिषेकसे जघन्य स्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥८०॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ८१ ॥

समाधान–जो जीव जघन्य एकेन्द्रिय सत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर संयमासंयम और संयमको बहुत बार प्राप्त करके, तथा चार बार कषायोंको भी उपशमा करके एकेन्द्रियोंमें चला गया। वहाँपर असंख्यात वर्ष तक रहकर उपशामक-समयप्रबद्धोंके गल जानेपर पंचेन्द्रियोंमें आया। अन्तर्मुहूर्तसे अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके पुनः लघुकालसे संयोजन कर, पुनः जघन्य अन्तर्मुहूर्तसे सम्यक्त्वको प्राप्तकर दो बार छयासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्वका परिपालन किया और अनन्तानुबन्धीके समयप्रबद्धोंको गला दिया। तदनन्तर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। तब उस आवली-प्रविष्ट मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है ॥ ८२ ॥

शंका–अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायोंका निषेकस्थिति-प्राप्त और उदयस्थिति-प्राप्त जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ८३ ॥

८४. जो उवसंतकसाओ सो मदो देवो जादो, तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णयं णिसेय-ट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च । ८५. अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स ? ८६. अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तसेसु उववण्णो, तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स जद्देही आबाहा, तावदिमसमए तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं । अइक्कंते काले कम्मट्ठिदिअंतो सइं पि तसो ण आसी ।

८७. एवं पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं । ८८. इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणमधाणिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं जहा संजलणाणं तहा कायव्वं । ८९. जम्हि अधाणिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं तम्हि चेव णिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं । ९०. उदयट्ठिदिपत्तयं जहा उदयादो झीणट्ठिदियं जहण्णयं तहा णिरवयवं कायव्वं ।

९१. अप्पाबहुअं । ९२. सव्वपयडीणं सव्वत्थोवमुक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं ।

समाधान—जो उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थ संयत मरकर देव हुआ, उस प्रथम-समयवर्ती देवके उक्त बारह कषायोंका निषेकस्थिति-प्राप्त और उदयस्थिति-प्राप्त जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ८४ ॥

शंका—अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायोंका यथानिषेकस्थितिप्राप्त जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ८५ ॥

समाधान—जो जीव अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही तत्प्रायोग्य संक्लेशके द्वारा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिको बांधा । इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले उसके जितनी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट आबाधा है, उतने समय तक उसके बारह कषायोंका जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र होता है । यह जीव अतीतकालमें कर्मस्थितिके भीतर एक बार भी त्रसपर्यायमें उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ ८६ ॥

विशेषार्थ—यहाँपर कर्मस्थितिसे अभिप्राय पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एकेन्द्रिय जीवोंकी कर्मस्थितिसे है; क्योंकि उससे अधिक कर्मस्थितिके माननेपर प्रकृतमें उसका कोई लाभ नहीं दिखाई देता, ऐसा जयधवलाकारने स्पष्टीकरण किया है ।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका तीनों ही प्रकार-के स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्रोंके स्वामित्वको जानना चाहिए । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक इन प्रकृतियोंके यथानिषेकसे जघन्य स्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्रके स्वामित्वकी प्ररूपणा संज्वलन-कषायोंके समान करना चाहिए । जिस समयमें यथानिषेककी अपेक्षा जघन्य स्थितिप्राप्त प्रदे-शाग्रका स्वामित्व होता है, उसी ही समयमें निषेककी अपेक्षासे भी जघन्य स्थितिप्राप्त प्रदेशाग्र-का स्वामित्व होता है । उपर्युक्त प्रकृतियोंके जघन्य उदयस्थितिप्राप्तककी प्ररूपणा उदयकी अपेक्षा जघन्य क्षीणस्थितिक प्रदेशाग्रके समान अविकल रूपसे करना चाहिए ॥ ८७-९० ॥

चूर्णिसू०—अब उपर्युक्त अग्रस्थितिप्राप्त आदि चारों प्रकारके प्रदेशाग्रोंका अल्पबहुत्व

९३. उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं । ९४. णिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं विसेसाहियं । ९५. उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमसंखेज्जगुणं * ।

९६. जहण्णयाणि कायव्वाणि । ९७. सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं । ९८. जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अणंतगुणं । ९९. जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयं असंखेज्जगुणं । १००. जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं । १०१. एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं । १०२. अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवं जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं । १०३. जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमणंतगुणं । १०४. [जहण्णयं] णिसेयट्ठिदिपत्तयं विसेसाहियं । १०५ जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं । १०६. एवमित्थिवेद-णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं ।

कहते हैं—मिथ्यात्व आदि सर्व प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अग्रस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र सबसे कम हैं । उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त प्रदेशाग्रोंसे उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं । उत्कृष्ट यथानिषेकस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रोंसे उत्कृष्ट निषेकस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं । उत्कृष्ट निषेकस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रोंसे उत्कृष्ट उदयस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं ॥९१-९५॥

चूर्णिसू०—अब जघन्य स्थितिको प्राप्त अग्रस्थितिक आदिके प्रदेशाग्रोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए । मिथ्यात्वका जघन्य अग्रस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । क्योंकि, वह एक परमाणुप्रमाण है । मिथ्यात्वके जघन्य अग्रस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रसे उसीका जघन्य निषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र अनन्तगुणित है । क्योंकि, वह अनन्त परमाणु-प्रमाण है । मिथ्यात्वके जघन्य निषेकस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रसे उसीका जघन्य उदयस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित है । मिथ्यात्वके जघन्य उदयस्थिति-प्राप्त प्रदेशाग्रसे उसीका जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित है । इसी प्रकार सम्यक्त्व-प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साके अग्रस्थितिक आदि चारोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥९६-१०१॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धीकषायोंका जघन्य अग्रस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । इन्हीं कषायोंके जघन्य अग्रस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्रसे इनके ही जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र अनन्तगुणित हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य यथानिषेकस्थितिको प्राप्त प्रदेशाग्रसे इन्हींके (जघन्य) निषेकस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके (जघन्य) निषेकस्थिति-प्राप्त कर्मप्रदेशाग्रोंसे इन्हींके जघन्य उदयस्थितिको प्राप्त कर्मप्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं । इसी प्रकारसे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद,

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जगुणं' के स्थान पर 'विसेसाहियं' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० ९५२) । पर इस सूत्रकी ही टीकाको देखते हुए वह स्पष्टरूपसे अशुद्ध है, क्योंकि टीकामें 'असंख्यात-गुणित' गुणाकारका स्पष्ट उल्लेख है । (देखो पृ० ९५३)

तदो 'ठिदियं' ति पदस्स विहासा समत्ता।

एत्थेव 'पयडीय मोहणिज्जा' एदिस्से मूलगाहाए अत्थो समत्तो।

ठिदियं ति अहियारो समत्तो

तदो पदेसविहत्ती सचूलिया समत्ता

अरति और शोकप्रकृतियोंके अग्रस्थितिक आदि चारों प्रकारके प्रदेशाग्रोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥१०२-१०६॥

इस प्रकार चौथी मूलगाथाके 'ठिदियं वा' इस पदकी विभाषा समाप्त हुई।

इसके साथ ही यहीं पर 'पयडीय मोहणिज्जा' इस मूलगाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

स्थितिक-अधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार चूलिका-सहित प्रदेशविभक्ति समाप्त हुई।

४ बंधग-अत्थाहियारो

१. बंधगेत्ति एदस्स बे अणियोगद्दाराणि। तं जहा–बंधो च संकमो च।
२. एत्थ सुत्तगाहा।

(५) कदि पयडीयो बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं।
संकामेइ कदिं वा गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ॥२३॥

---

४ बंधक-अर्थाधिकार

कर प्रणाम जिन देवको सविनय वारम्वार।
बंध और संक्रम कहूं, चूर्ण-सूत्र-अनुसार ॥

अब ग्रन्थकार क्रम-प्राप्त चौथे बन्धक अर्थाधिकारको कहते हैं–

चूर्णिसू०–इस बन्धक नामक अर्थाधिकारमें दो अनुयोगद्वार हैं। वे इस प्रकार हैं–बन्ध और संक्रम ॥१॥

विशेषार्थ–कर्मरूप परिणमनके योग्य पौद्गलिक स्कन्धोंका मिथ्यात्व आदि परिणामोंके वशसे कर्मरूप परिणत होकर जीवके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रावगाहरूपसे संबद्ध होनेको बन्ध कहते हैं। बन्ध होनेके अनन्तर उन कर्म-प्रदेशोंका परिणामोंके वशसे परप्रकृतिरूपसे परिणत होनेको संक्रम या संक्रमण कहते हैं। ये दोनों ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार-चार प्रकारके होते हैं। यहाँ स्वभावतः यह शंका उठती है कि बंधक-अधिकारके भीतर ही संक्रमण-अधिकारको क्यों कहा? उसे स्वतंत्र ही कहना चाहिए था? इसका उत्तर यह है कि बन्धकी ही विशिष्ट अवस्थाको संक्रम कहते हैं। वस्तुतः बन्ध दो प्रकारका है–अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध। अकर्मरूपसे अवस्थित कार्मण-वर्गणाओंका आत्माके साथ संबद्ध होना अकर्म-बन्ध है और विवक्षित कर्मरूपसे बंधे हुए पुद्गल-स्कन्धोंका अन्य कर्मप्रकृतिरूपसे परिणमन होना कर्मबन्ध है। जैसे–असातावेदनीयरूपसे बंधे हुए कर्मका सातावेदनीयरूपसे परिणत होना। इस प्रकारसे संक्रम भी बन्धके ही अन्तर्गत आ जाता है।

चूर्णिसू०–बन्ध और संक्रम इन दोनों अनुयोगद्वारोंके विषयमें यह सूत्र-गाथा है ॥ २ ॥

(५) कितनी प्रकृतियोंको बाँधता है, कितनी स्थिति और अनुभागको बाँधता है, तथा कितने जघन्य और उत्कृष्ट परिमाणयुक्त प्रदेशोंको बाँधता है? कितनी प्रकृतियोंका संक्रमण करता है, कितनी स्थिति और अनुभागका संक्रमण करता है, तथा कितने गुण-हीन या गुण-विशिष्ट जघन्य-उत्कृष्ट प्रदेशोंका संक्रमण करता है? ॥२३॥

३. एदीए गाहाए बंधो च संकमो च सूचिदो होइ। ४. पदच्छेदो। ५. तं जहा। ६. 'कदि पयडीओ बंधइ' त्ति पयडिबंधो। ७. 'ट्ठिदि-अणुभागे' त्ति ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो च। ८. 'जहण्णमुक्कस्सं' त्ति पदेसबंधो। ९. 'संकामेदि कदिं वा' त्ति पयडिसंकमो च ट्ठिदिसंकमो च अणुभागसंकमो च गहेयव्वो। १०. 'गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं' ति पदेससंकमो सूचिदो। ११. सो पुण पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधो बहुसो परूविदो।

बंधग-अत्थाहियारो समत्तो।

विशेषार्थ—यह सूत्र-गाथा प्रश्नात्मक है और किस प्रश्नसे क्या सूचित किया गया है, इसका स्पष्टीकरण आगे चूर्णिकार स्वयं ही कर रहे हैं।

चूर्णिसू०—इस गाथाके द्वारा बन्ध और संक्रम ये दोनों सूचित किये गये हैं। गाथाका पदच्छेद अर्थात् पदोंका पृथक्-पृथक् अर्थ इस प्रकार है—'कितनी प्रकृतियोंको बाँधता है', इस पदसे प्रकृतिबन्ध सूचित किया गया है। 'स्थिति और अनुभाग' इस पदसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध सूचित किये गये हैं। 'जघन्य और उत्कृष्ट' इस पदसे प्रदेशबन्ध सूचित किया गया है। 'कितनी प्रकृतियोंका संक्रमण करता है' इस पदके द्वारा प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम और अनुभागसंक्रमको ग्रहण करना चाहिए। गाथाके 'गुणहीन और गुणविशिष्ट' इस अन्तिम अवयवसे प्रदेशसंक्रम सूचित किया गया है। इनमेंसे वह प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध बहुत वार प्ररूपण किया गया है। ॥३-११॥

विशेषार्थ—कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे बन्धनामक चतुर्थ और संक्रमणनामक पंचम अर्थाधिकारका निरूपण 'कदि'पयडीओ बंधदि' इस पांचवीं मूलगाथाके द्वारा किया गया है। बन्धके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इसी प्रकार संक्रमणके भी चार भेद हैं—प्रकृतिसंक्रमण, स्थितिसंक्रमण, अनुभागसंक्रमण और प्रदेशसंक्रमण। गाथाके किस पदसे बन्ध और संक्रमणके किस भेदकी सूचना की गई है, यह चूर्णिकारने स्पष्ट कर दिया है। पुनः बन्धके चारों भेदोंका वर्णन करना क्रम-प्राप्त था; किन्तु चूर्णिकारने उनका कुछ भी वर्णन न करके एकमात्र ग्यारहवें सूत्र-द्वारा इतना ही निर्देश किया है कि वह चारों प्रकारका बन्ध 'बहुशः प्ररूपित है'। जिसका अभिप्राय यह है कि ग्रन्थान्तरोंमें इन चारों प्रकारके बन्धोंका बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है, इस कारण मैं उनका यहाँपर कुछ भी वर्णन नहीं करूँगा। इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए जयधवलाकार लिखते हैं कि इसलिए 'महाबन्ध' के अनुसार यहाँपर चारों प्रकारके बन्धोंकी प्ररूपणा करनेपर बन्ध-नामक चौथा अर्थाधिकार समाप्त होता है।

इस प्रकार बन्ध-नामक चौथा अर्थाधिकार समाप्त हुआ।

---

५ संकम-अत्थाहियारो

१. संकमे पयदं । २. संकमस्स पंचविहो उवक्कमो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि । ३. एत्थ णिक्खेवो कायव्वो । ४. णामसंकमो ठवणसंकमो दव्वसंकमो खेत्तसंकमो कालसंकमो भावसंकमो चेदि । ५. णेगमो सव्वे

५ संक्रमण-अर्थाधिकार

अब ग्रन्थकारके द्वारा पाँचवीं मूलगाथासे सूचित संक्रमण-नामक पाँचवें अर्थाधिकारका अवतार करते हुए यतिवृषभाचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—अब संक्रम प्रकृत है, अर्थात् संक्रमणका वर्णन किया जायगा ॥१॥

विशेषार्थ—इस संक्रमका अवतार उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इन चार प्रकारोंसे होता है; क्योंकि, इनके विना संक्रम-विषयक यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है ।

अब चूर्णिकार सर्वप्रथम उपक्रमके द्वारा संक्रमका अवतार करते हैं—

चूर्णिसू०—संक्रमका उपक्रम पांच प्रकारका है— आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ॥२॥

विशेषार्थ—आनुपूर्वी-उपक्रम के तीन भेद हैं, उनमेंसे पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा यह संक्रम-अधिकार कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे पांचवां है । नाम-उपक्रमकी अपेक्षा 'संक्रम' यह गौण्यनामपद हैं; क्योंकि, इसमें कर्मोंके संक्रमणका विस्तारसे वर्णन किया गया है । प्रमाण-उपक्रमकी दृष्टिसे इसका प्रमाण अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात है और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है । वक्तव्यता-उपक्रमकी अपेक्षा संक्रमकी स्व-समयवक्तव्यता है । संक्रमका अर्थाधिकार चार प्रकारका है—प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम । इस पांचवें अर्थाधिकारमें इन्हीं चारों प्रकारके संक्रमोंका विवेचन किया जायगा ।

अब निक्षेप-उपक्रमका अवतार करते हैं—

चूर्णिसू०—यहाँपर संक्रमका निक्षेप करना चाहिए । वह छह प्रकार का है—नामसंक्रम स्थापनासंक्रम, द्रव्यसंक्रम, क्षेत्रसंक्रम, कालसंक्रम और भावसंक्रम ॥३-४॥

अब नयोंका अवतार करते हैं—

चूर्णिसू०—नैगमनय उपर्युक्त सर्व संक्रमणोंको स्वीकार करता है । क्योंकि, वह द्रव्य और पर्याय दोनोंको ही विषय करता है । संग्रहनय और व्यवहारनय कालसंक्रमको छोड़ देते

संकमे इच्छइ । ६. संगह-ववहारा कालसंकममवणेंति । ७. उजुसुदो एदं च ठवणं च अवणेइ । ८. सद्दस्स णामं भावो य ।

९. णोआगमदो दव्वसंकमो ठवणिज्जो । १०. खेत्तसंकमो जहा–उड्ढलोगो संकंतो । ११. कालसंकमो जहा–संकंतो हेमंतो । १२. भावसंकमो जहा–संकंतं पेम्मं ।

१३. जो सो णोआगमदो दव्वसंकमो सो दुविहो–कम्मसंकमो च णोकम्मसंकमो च । १४. णोकम्मसंकमो जहा– कट्ठसंकमो *। १५. कम्मसंकमो चउव्विहो । तं जहा–पयडिसंकमो ट्ठिदिसंकमो अणुभागसंकमो पदेससंकमो चेदि । १६. पयडिसंकमो दुविहो । तं जहा–एगेगपयडिसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो च ।

हैं। क्योंकि, संग्रहनयकी दृष्टिमें कालके भूत, भविष्यत् आदि भेद नहीं है और न व्यवहारनयकी अपेक्षा उनमें व्यवहार ही हो सकता है । ऋजुसूत्रनय कालसंक्रम और स्थापनासंक्रमको छोड़ देता है । क्योंकि वह तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्यको विषय नहीं करता । शब्दनय नामसंक्रम और भावसंक्रमको ही विषय करते हैं । क्योंकि शुद्ध पर्यायार्थिक रूपसे शब्दनयोंमें शेष निक्षेपोंको विषय करना संभव नहीं है । ॥ ५-८ ॥

अब निक्षेपकी अपेक्षा संक्रमकी प्ररूपणा की जाती है । ऊपर बतलाये गये छह प्रकारके निक्षेपोंमें नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम और आगमकी अपेक्षा द्रव्य-संक्रम ये तीनों सुगम हैं, अतएव उन्हें न कहकर चूर्णिकार शेष निक्षेपोंका वर्णन करते हैं–

चूर्णिसू०–नोआगम-द्रव्यसंक्रम बहुवर्णनीय है, अतः उसे अभी स्थगित रखना चाहिए । क्षेत्रसंक्रम इस प्रकार है—ऊर्ध्वलोक संक्रान्त हुआ । अर्थात् ऊर्ध्वलोकवासी देवोंके मध्यलोकमें आनेपर ऐसा व्यवहार होता है, यह क्षेत्रसंक्रम है । हेमन्त संक्रान्त हुआ, अर्थात् वर्षाऋतुके चले जानेपर अब हेमन्त ऋतुका आगमन हुआ है, यह कालसंक्रम है । प्रेम संक्रान्त हुआ, अर्थात् अन्य व्यक्तिपर जो स्नेह था, वह उससे हटकर किसी अन्य व्यक्तिपर चला गया, यह भावसंक्रम है ॥ ९-१२ ॥

चूर्णिसू०–जो पूर्वमें स्थगित नोआगमद्रव्यसंक्रम है, वह दो प्रकारका है–कर्मसंक्रम और नोकर्मसंक्रम । नोकर्मसंक्रम इस प्रकार है, जैसे–काष्ठसंक्रम ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ–काष्ठकी बनी हुई नौका आदिके द्वारा एक स्थानसे अन्य स्थानपर जानेको काष्ठसंक्रम कहते हैं । यह उदाहरण उपलक्षणरूप है, अतः प्रस्तरसंक्रम, मृत्तिकासंक्रम, लोहसंक्रम आदि अनेक प्रकारके सब द्रव्याश्रित संक्रम इस नोकर्मसंक्रमके अन्तर्गत आ जाते हैं ।

चूर्णिसू०–कर्मसंक्रम चार प्रकारका है :—प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम । इनमेंसे प्रकृतिसंक्रमके दो भेद हैं । वे इस प्रकार हैं–एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ॥ १५-१६ ॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके आगे यह एक सूत्र और मुद्रित है–"**णईतोये अण्णत्थ वा कत्थ वि कट्ठाणि ट्ठविय जेणिच्छिदपदेसं गच्छंति सो कट्ठमओ संकमो**' । (देखो पृ० ९६०) पर वस्तुतः यह सूत्र नहीं, किन्तु टीकाका अंश है, जिसमें कि 'काष्ठसंक्रमकी व्याख्या की गई है ।

१७. पयडिसंकमे पयदं । १८. तत्थ तिण्णि सुत्तगाहाओ हवंति । १९ तं जहा ।

संकम-उवकमविही पंचविहो चउव्विहो य णिक्खेवो ।
णयविहि पयदं पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो ॥२४॥
एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए ।
संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम-जहण्णो ॥२५॥
पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो असंकमो तहा दुविहो ।
दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥२६॥

चूर्णिसू०—यहाँ एकैकप्रकृतिसंक्रम प्रकृत है । उसमें तीन सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं । वे इस प्रकार हैं ॥ १७-१९ ॥

विशेषार्थ—मूलप्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता है, अतः यहाँपर उत्तरप्रकृतियोंके संक्रमणके ही दो भेद किये गये हैं—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम । मिथ्यात्व आदि पृथक्-पृथक् प्रकृतियोंका आलम्बन करके जो संक्रमणकी गवेषणा की जाती है, उसे एकैकप्रकृतिसंक्रम कहते हैं । तथा एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका संक्रमण सम्भव हो, उनको एक साथ लेकर जो संक्रमणकी मार्गणा की जाती है, उसे प्रकृतिस्थानसंक्रम कहते हैं । यहाँपर 'स्थान' शब्दको समुदायका वाचक जानना चाहिए ।

संक्रमकी उपक्रम विधि पाँच प्रकार की है, निक्षेप चार प्रकारका है, नयविधि भी प्रकृतमें विवक्षित है और प्रकृतमें निर्गम भी आठ प्रकार का है । प्रकृतिसंक्रम दो प्रकार का है—एक एक प्रकृतिमें संक्रम अर्थात् एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिमें संक्रमविधि अर्थात् प्रकृतिस्थानसंक्रम । संक्रममें प्रतिग्रहविधि होती है और वह उत्तम अर्थात् उत्कृष्ट और जघन्य होती है ॥२४-२५॥

विशेषार्थ—प्रथम गाथाके द्वारा प्रकृतिसंक्रमके उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम रूप चार प्रकारके अवतारकी प्ररूपणा की गई है । दूसरी गाथाके पूर्वार्धके द्वारा आठ निर्गमों-मेंसे प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम इन दोका और उत्तरार्धके द्वारा प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन दोका, इस प्रकार चार निर्गमोंका निर्देश किया गया है ।

प्रकृतिमें संक्रम और प्रकृतिस्थानमें संक्रम, इस प्रकार संक्रमके दो भेद हैं । इसी प्रकार से असंक्रम भी दो प्रकारका होता है—प्रकृति-असंक्रम और प्रकृतिस्थान-असंक्रम । प्रतिग्रहविधि दो प्रकारकी होती है—प्रकृति-प्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह । इसी प्रकार अप्रतिग्रहविधि भी दो प्रकारकी होती है—प्रकृति-अप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रह । इस प्रकार निर्गम के आठ भेद होते हैं ॥२६॥

२०. एदाओ तिण्णि गाहाओ पयडिसंकमे । २१. एदासिं गाहाणं पदच्छेदो । २२. तं जहा । २३. 'संकम-उवकमविही पंचविहो' त्ति* एदस्स पदस्स अत्थो–पंचविहो उवकमो, आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि । २४. 'चउव्विहो य णिक्खेवो' त्ति णाम-ट्ठवणं वज्जं, दव्वं खेत्तं कालो भावो च । २५. 'णयविधि पयदं' ति एत्थ णओ वत्तव्वो । २६. 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो' त्ति–पयडिसंकमो पयडि-असंकमो पयडिट्ठाणसंकमो पयडिट्ठाण-असंकमो पयडिपडिग्गहो पयडि-अपडिग्गहो

विशेषार्थ–निकलनेको निर्गम कहते हैं । प्रकृतमें संक्रम विवक्षित है, अतः उसकी अपेक्षा निर्गमके तीसरी सूत्रगाथामें आठ भेद बतलाये गये हैं । उनका संक्षेपमें अर्थ इस प्रकार है–मिथ्यात्वप्रकृतिका सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे परिवर्तित होनेको प्रकृतिसंक्रम कहते हैं (१) । मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिमें रहना, सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें रहना, यह प्रकृति-असंक्रम कहलाता है (२) । मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिमें सत्ताईस प्रकृतिरूप स्थानके परिवर्तनको प्रकृतिस्थानसंक्रम कहते हैं (३) । अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिका अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वरूप स्थानमें ही रहना प्रकृतिस्थान-असंक्रम कहलाता है (४) । मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिमें पाया जाना यह प्रकृति-प्रतिग्रह कहलाता है (५) । मिथ्यात्वमें सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रमित नहीं होनेको, अथवा दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें संक्रमण नहीं होनेको प्रकृति-अप्रतिग्रह कहते हैं (६) । मिथ्यादृष्टिमें बाईस प्रकृतियोंके समुदायरूप स्थानके पाये जानेको प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह कहते हैं (७) । मिथ्यादृष्टिमें सोलह प्रकृतिरूप स्थानके नहीं पाये जानेको प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रह कहते हैं (८) । इस प्रकार निर्गमके आठ भेद हैं ।

चूर्णिसू०–प्रकृति-संक्रममें ये उपर्युक्त तीन गाथाएँ निबद्ध हैं । अब इन गाथाओंका पदच्छेद किया जाता है । वह इस प्रकार है–'संक्रम-उपक्रमविधि पाँच प्रकारकी है', प्रथम गाथाके इस प्रथम पदका यह अर्थ है–संक्रमसम्बन्धी उपक्रमके पाँच भेद हैं–आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार । 'निक्षेप चार प्रकारका होता है' इस द्वितीय पदका यह अर्थ है–पहले जो निक्षेपके छह भेद बतलाये गये हैं, उनमेंसे नाम और स्थापनाको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, ये चार निक्षेप प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए। 'नयविधि प्रकृत है' गाथाके इस तीसरे पदका यह अर्थ है कि यहाँपर नय कहना चाहिए । 'प्रकृतमें निर्गम आठ प्रकारका है' गाथाके इस अन्तिम पदका यह अर्थ है कि निर्गमके आठ भेद हैं–(१) प्रकृतिसंक्रम, (२) प्रकृति-असंक्रम, (३) प्रकृतिस्थानसंक्रम, (४) प्रकृति-

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें आगेके सूत्रांशको टीकाका अंग बना दिया है, जब कि इस सूत्रकी टीका 'संकमउवकमविही पंचविहो त्ति एदस्स पढमगाहापुव्वद्धावयवपयदस्स' यहाँ से प्रारंभ होती है । (देखो पृ० १६२)

पयडिट्ठाणपडिग्गहो पयडिट्ठाण-अपडिग्गहो त्ति एसो णिग्गमो अट्ठविहो ।

२७. 'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' त्ति पदस्स अत्थो कायव्वो । २८. 'एक्केक्काए' त्ति एगेगपयडिसंकमो, दुविहो त्ति 'संकमो दुविहो' त्ति भणियं होइ । 'संकमविही य' त्ति पयडिट्ठाणसंकमो । 'पयडीए' त्ति पयडिसंकमो त्ति भणियं होइ । २९. 'संकमपडिग्गहविहि' त्ति संकमे पयडिपडिग्गहो [1] । ३०. 'पडिग्गहो उत्तम-जहण्णो' त्ति पयडिट्ठाणपडिग्गहो ।

३१. 'पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो' त्ति पयडिसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो च । ३२. 'असंकमो तहा दुविहो' त्ति पयडि-असंकमो पयडिट्ठाण-असंकमो च । ३३. 'दुविहो पडिग्गहविहि' त्ति पयडिपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो च । ३४. 'दुविहो

स्थान-असंक्रम, (५) प्रकृति-प्रतिग्रह, (६) प्रकृति-अप्रतिग्रह, (७) प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह और (८) प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रह; इस प्रकार निर्गमके आठ भेद होते हैं । यह प्रथम सूत्र-गाथाकी विभाषा है ॥२०-२६॥

चूर्णिसू०—अब दूसरी गाथाके 'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' इस पूर्वार्धका अर्थ करना चाहिए । वह इस प्रकार है :—'एक्केक्काए' इस पदका अर्थ 'एकैक-प्रकृतिसंक्रम' है । 'दुविहो त्ति' इस पद का अर्थ है कि 'संक्रम दो प्रकारका होता है ।' 'संकमविही य' इस पदका अर्थ 'प्रकृतिस्थानसंक्रम है' और 'पयडीए' इस पदका अर्थ 'प्रकृतिसंक्रम' है । इस प्रकार पूर्वार्धका सीधा अर्थ यह हुआ कि 'प्रकृतिका संक्रम दो प्रकारका होता है—एक-एक प्रकृतिका संक्रम अर्थात् एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिमें संक्रमविधि अर्थात् प्रकृतिस्थानसंक्रम । 'संक्रमपडिग्गहविही' गाथाके इस तृतीय चरणका अर्थ 'संक्रममें प्रकृति-प्रतिग्रह' है । 'पडिग्गहो उत्तम-जहण्णो' गाथाके इस चतुर्थ चरणका अर्थ प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह है । इस प्रकार समुच्चयरूपसे इस गाथाके द्वारा चार निर्गम सूचित किये गये हैं—प्रकृति-संक्रम, प्रकृतिस्थान-संक्रम, प्रकृति-प्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह । यह दूसरी सूत्र-गाथाकी विभाषा है ॥२७-३०॥

चूर्णिसू०—अब तीसरी गाथाका अर्थ करते हैं—'पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो' गाथाके इस प्रथम अवयवका अर्थ—प्रकृति-संक्रम और प्रकृतिस्थान-संक्रम है । 'असंकमो तहा दुविहो' गाथाके इस दूसरे पदका अर्थ—असंक्रम दो प्रकारका होता है—प्रकृति-असंक्रम और प्रकृतिस्थान-असंक्रम । 'दुविहो पडिग्गहविही' गाथाके इस तीसरे पदका अर्थ है कि प्रतिग्रहविधि दो प्रकारकी है—प्रकृति-प्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह । 'दुविहो अपडिग्गह-विही य' गाथाके इस अन्तिम चरणका अर्थ है कि अप्रतिग्रहविधि भी दो प्रकारकी होती

---

१ 'परिणमयइ जीसे तं पगईइ पडिग्गहो एसो' । यस्यां प्रकृतौ आधारभूतायां तत्प्रकृत्यन्तरस्थं दलिकं परिणमयति आधारभूतप्रकृतिरूपतामापादयति' एषा प्रकृतिराधारभूता पतद्ग्रह इव पतद्ग्रहः संक्रम्यमाणप्रकृत्याधार इत्यर्थः । कम्मप० संक्र० ११२

अपडिग्गहविही य' त्ति पयडि-अपडिग्गहो पयडिट्ठाण-अपडिग्गहो च । ३५. एस सुत्तफासो ।

३६. एगेगपयडिसंकमे पयदं *। ३७. एत्थ सामित्तं । ३८. मिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ? ३९. णियमा सम्माइट्ठी । ४०. वेदगसम्माइट्ठी सव्वो । ४१. उवसामगो च णिरासाणो । ४२. सम्मत्तस्स संकामओ को होइ ? ४३. णियमा मिच्छाइट्ठी सम्मत्तसंतकम्मिओ । ४४. णवरि आवलियपविट्ठसम्मत्तसंतकम्मियं वज्ज ।

है—प्रकृति-अप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रह । इस प्रकार प्रथम गाथाके द्वारा सूचित आठ निर्गमोंका इस तीसरी गाथाके द्वारा गाथासूत्रकारने स्वयं नामोल्लेख कर दिया है । यह सूत्रस्पर्श है, अर्थात् गाथासूत्रोंका पदच्छेदपूर्वक संक्षेपसे अर्थ किया गया है ॥३१-३५॥

चूर्णिसू०—एकैकप्रकृतिसंक्रम प्रकृत है, अर्थात् प्रतिग्रह आदि अवान्तर भेदोंके साथ एकैकप्रकृतिसंक्रमका निरूपण किया जायगा ॥३६॥

विशेषार्थ—इस एकैकप्रकृतिसंक्रमके चौबीस अनुयोगद्वार हैं—१ समुत्कीर्तना, २ सर्वसंक्रम, ३ नोसर्वसंक्रम, ४ उत्कृष्टसंक्रम, ५ अनुत्कृष्टसंक्रम, ६ जघन्यसंक्रम ७ अजघन्य-संक्रम, ८ सादिसंक्रम, ९ अनादिसंक्रम, १० ध्रुवसंक्रम, ११ अध्रुवसंक्रम, १२ एकजीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल, १४ अन्तर, १५ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १६ भागाभाग १७ परिमाण, १८ क्षेत्र, १९ स्पर्श, २० काल, २१ अन्तर, २२ सन्निकर्ष, २३ भाव और २४ अल्पबहुत्व । इनमेंसे समुत्कीर्तनाको आदि लेकर अध्रुवसंक्रम तकके ग्यारह अनुयोगद्वारोंका प्ररूपण सुगम एवं अल्प वर्णनीय होनेसे चूर्णिकारने नहीं किया है । विशेष जिज्ञासुओंको जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—यहाँपर उक्त चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे एक जीवकी अपेक्षा संक्रमणके स्वामित्वका निरूपण किया जाता है ॥३७॥

शंका—मिथ्यात्वका संक्रमण करनेवाला कौन जीव है ? ॥३८॥

समाधान—नियमसे सम्यग्दृष्टि है । संक्रमणके योग्य मिथ्यात्वकी सत्तावाले सर्व वेदकसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वका संक्रमण करते हैं । तथा निरासान अर्थात् आसादना या विरा-धनासे रहित सभी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी मिथ्यात्वका संक्रमण करते हैं ॥३९—४१॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिका संक्रामक कौन जीव है ? ॥४२॥

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सम्यक्त्व-प्रकृतिका संक्रामक होता है । केवल आवली-प्रविष्ट सम्यक्त्वसत्कर्मिक मिथ्यादृष्टि जीवको छोड़ देना चाहिए, अर्थात् जिसके एक आवलीकालप्रमाण ही सम्यक्त्वप्रकृतिकी सत्ता शेष रह

* तत्थ चउवीसमणियोगद्दाराणि होंति । तं जहा—समुक्कित्तणा सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एकजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पाबहुअं चेदि । जयध०

४५. सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ? ४६. मिच्छाइट्ठी उव्वेल्लमाणओ। ४७. सम्माइट्ठी वा णिरासाणो। ४८. मोत्तूण पढमसमयसम्मामिच्छत्तसंतकम्मियं।

४९. दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीए ण संकमइ। ५०. चरित्तमोहणीयं पि दंसणमोहणीए ण संकमइ। ५१. अणंताणुबंधी जत्तियाओ वज्झंति चरित्तमोहणीय-पयडीओ तासु सव्वासु संकमइ। ५२. एवं सव्वाओ चरित्तमोहणीयपयडीओ। ५३. ताओ पणुवीसं पि चरित्तमोहणीयपयडीओ अण्णदरस्स संकमंति।

५४. एयजीवेण कालो। ५५. मिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ५६. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ५७. उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। ५८. सम्मत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ५९. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ६०. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ६१. सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ६२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ६३. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि

गई हो, वह मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृतिका संक्रमण नहीं करता है ॥४३–४४॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक कौन जीव है ? ॥४५॥

समाधान–सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व-का संक्रामक होता है। आसादनासे रहित उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होता है। तथा प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीवको छोड़कर सर्व वेदकसम्यग्दृष्टि भी सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ॥४६–४८॥

चूर्णिसू०–दर्शनमोहनीयकर्म चारित्रमोहनीयकर्ममें संक्रमण नहीं करता है। चारित्र-मोहनीयकर्म भी दर्शनमोहनीयकर्ममें संक्रमण नहीं करता है। चारित्रमोहनीयकर्मकी जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं, उन सबमें अनन्तानुबन्धीका संक्रमण होता है। इसी प्रकार सर्व चारित्र-मोहनीय-प्रकृतियाँ भी अनन्तानुबन्धीमें संक्रमण करती हैं। चारित्रमोहनीयकी ये पचीसों ही प्रकृतियाँ किसी भी एक प्रकृतिमें संक्रमण करती हैं ॥४९–५३॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा संक्रमणका काल कहते हैं ॥५४॥

शंका–मिथ्यात्वके संक्रमणका कितना काल है ? ॥५५॥

समाधान–मिथ्यात्वके संक्रमणका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छयासठ सागरोपम है ॥५६–५७॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रमणका कितना काल है ? ॥५८॥

समाधान–सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रमणका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥५९–६०॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणका कितना काल है ? ॥६१॥

समाधान–सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो बार छयासठ सागरोपम है ॥६२-६३॥

सादिरेयाणि । ६४. सेसाणं पि पणुवीसं पयडीणं संकामयस्स तिण्णि भंगा। ६५. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो, जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण उवड्डपोग्गल-परियट्टं।

६६. एयजीवेण अंतरं। ६७. मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ६८. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ६९ उक्कस्सेण उवड्डपोग्गल-परियट्टं। ७०. णवरि सम्मामिच्छत्तस्स संकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ।

७१. अणंताणुबंधीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ७२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ७३. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। ७४. सेसाणमेक्कवीसाए पयडीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ७५. जहण्णेण एयसमओ। ७६. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

७७. णाणाजीवेहि भंगविचओ। ७८. जेसिं पयडीणं संतकम्ममत्थि तेसु पयदं। ७९. मिच्छत्त-सम्मत्ताणं सव्वजीवा णियमा संकामया च असंकामया च।

चूर्णिसू०—चारित्रमोहनीयकी शेष पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमणकालके तीन भंग हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें जो सादि-सान्तकाल है, उसकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥६४-६५॥

चूर्णिसू०—अब एक जीवकी अपेक्षा प्रकृति-संक्रमणका अन्तर कहते हैं ॥६६॥

शंका—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥६७॥

समाधान—इन तीनों प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है। केवल सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय होता है ॥६८-७०॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥७१॥

समाधान—अनन्तानुबन्धी कषायोंके संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो वार छ्यासठ सागरोपम है ॥७२-७३॥

शंका—चारित्रमोहनीयकी शेष इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥७४॥

समाधान—चारित्रमोहनीयकी शेष इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥७५-७६॥

चूर्णिसू०—अब नानाजीवोंकी अपेक्षा प्रकृति-संक्रामकका भंग-विचय कहते हैं—जिन प्रकृतियोंका सत्कर्म अर्थात् सत्त्व है, उनमें ही भंग-विचय प्रकृत है। मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके सर्व जीव नियमसे संक्रामक भी होते हैं, और असंक्रामक भी होते हैं। सम्य-

८०. सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणं च तिण्णि भंगा कायव्वा ।

८१. णाणाजीवेहि कालो । ८२. सव्वकम्माणं संकामया केवचिरं कालादो होंति ? ८३. सव्वद्धा ।

८४. णाणाजीवेहि अंतरं । ८५. सव्वकम्मसंकामयाणं णत्थि अंतरं ।

८६. सण्णियासो । ८७. मिच्छत्तस्स संकामओ सम्मामिच्छत्तस्स सिया संकामओ, सिया असंकामओ । ८८. सम्मत्तस्स असंकामओ । ८९. अणंताणुबंधीणं सिया कम्मंसिओ, सिया अकम्मंसिओ । जदि कम्मंसिओ, सिया संकामओ, सिया असंकामओ । ९०. सेसाणमेक्कवीसाए कम्माणं सिया संकामओ सिया असंकामओ । ९१. एवं सण्णियासो कायव्वो * ।

ग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके तीन भंग करना चाहिए । अर्थात् कदाचित् सर्व जीव संक्रामक होते हैं (१) । कदाचित् अनेक जीव असंक्रामक होते हैं; और कोई एक जीव संक्रामक होता है (२) । कदाचित् अनेक जीव संक्रामक और अनेक जीव असंक्रामक होते हैं (३) ॥७७-८०॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रकृतिसंक्रमणका काल कहते हैं ॥८१॥

शंका—मोहनीयकी सर्व कर्मप्रकृतियोंके संक्रमणका कितना काल है ? ॥८२॥

समाधान—सर्वकाल है, अर्थात् मोहनीयकर्मकी सभी प्रकृतियोंके संक्रमण करनेवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं ॥८३॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रकृतिसंक्रमणका अन्तर कहते हैं—मोहनीय-कर्मकी सर्व प्रकृतियोंमेंसे किसी भी प्रकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, अर्थात् मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सर्व काल पाये जाते हैं ॥८४–८५॥

चूर्णिसू०—अब प्रकृति-संक्रामकका सन्निकर्ष कहते हैं—मिथ्यात्वका संक्रमण करनेवाला जीव सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक होता है और कदाचित् असंक्रामक होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिका असंक्रामक होता है । अनन्तानुबन्धी कषायोंका कदाचित् कर्मांशिक (सत्ता-युक्त) होता है और कदाचित् अकर्मांशिक (सत्ता-रहित) होता है । यदि कर्मांशिक है, तो कदाचित् संक्रामक होता है और कदाचित् असंक्रामक होता है। शेष इक्कीस कर्मप्रकृतियों-का कदाचित् संक्रामक होता है और कदाचित् असंक्रामक होता है । जिस प्रकार मिथ्यात्वको निरुद्ध करके शेष प्रकृतियोंका सन्निकर्ष किया, इसी प्रकारसे शेष कर्मप्रकृतियोंका भी सन्नि-कर्ष करना चाहिए ॥८६–९१॥

---

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रकी टीकाके पश्चात् 'भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो' यह सूत्र भी मुद्रित है (देखो पृष्ठ ९८०) । पर यह वस्तुतः सूत्र नहीं, किन्तु उच्चारणावृत्तिका ही अंग है; क्योंकि, उसपर जयधवलाकारने टीका रूपसे 'सुगमं' आदि कुछ भी नहीं लिखा है ।

९२. अप्पाबहुअं । ९३. सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया । ९४. मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा । ९५. सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया । ९६. अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा । ९७. अट्ठकसायाणं संकामया विसेसाहिया । ९८. लोभसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया । ९९. णवुंसयवेदस्स संकामया विसेसाहिया । १००. इत्थिवेदस्स संकामया विसेसाहिया । १०१. छण्णोकसायाणं संकामया विसेसाहिया । १०२. पुरिसवेदस्स संकामया विसेसाहिया । १०३. कोह-संजलणस्स संकामया विसेसाहिया । १०४. माणसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया । १०५. मायासंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

१०६. णिरयगदीए सव्वत्थोवा सम्मत्तसंकामया । १०७. मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा । १०८. सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया । १०९. अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा । ११०. सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया । १११. एवं देवगदीए ।

११२. तिरिक्खगईए सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया । ११३. मिच्छत्तस्स

चूर्णिसू०—अत्र प्रकृति-संक्रामकोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामक जीव वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामकोंसे मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वसे संक्रामक विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तानुबन्धी कषायोंके संक्रामक अनन्तगुणित हैं । अनन्तानुबन्धी कषायोंके संक्रामकोंसे आठ मध्यम कषायोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । आठ मध्यम कषायोंके संक्रामकोंसे संज्वलनलोभके संक्रामक विशेष अधिक हैं । संज्वलन-लोभके संक्रामकोंसे नपुंसकवेदके संक्रामक विशेष अधिक हैं । नपुंसकवेदके संक्रामकोंसे स्त्रीवेदके संक्रामक विशेष अधिक हैं । स्त्रीवेदके संक्रामकोंसे हास्यादि छह नोकषायोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । हास्यादि छह नोकषायोंके संक्रामकोंसे पुरुषवेदके संक्रामक विशेष अधिक हैं । पुरुषवेदके संक्रामकोंसे संज्वलनक्रोधके संक्रामक विशेष अधिक हैं । संज्वलनक्रोधके संक्रामकोंसे संज्वलनमानके संक्रामक विशेष अधिक हैं । संज्वलनमानके संक्रामकोंसे संज्वलनमायाके संक्रामक विशेष अधिक हैं ॥९२–१०५॥

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामक जीव सबके कम हैं । सम्यक्त्व-प्रकृतिके संक्रामकोंसे मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तानुबन्धी-कषायोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । अनन्तानुबन्धीकषायोंके संक्रामकोंसे शेष मोहनीय-प्रकृतियोंके संक्रामक परस्पर तुल्य और विशेष अधिक है । देवगतिमें संक्रामक-सम्बन्धी अल्पबहुत्व नरकगतिके समान जानना चाहिए ॥१०६-१११॥

चूर्णिसू०—तिर्यंचगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामक सबसे कम हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके

संकामया असंखेज्जगुणा । ११४. सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया । ११५. अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा । ११६. सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

११७. मणुसगईए सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स संकामया । ११८. सम्मत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा । ११९. सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया । १२०. अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा । १२१. सेसाणं कम्माणं संकामया ओघो ।

१२२. एइंदिएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया । १२३. सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया । १२४. सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला अणंतगुणा ।

१२५. एत्तो पयडिट्ठाणसंकमो । १२६. तत्थ पुव्वं गमणिज्जा सुत्तसमुक्कित्तणा । १२७. तं जहा ।

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ[1] ॥२७॥

संक्रामकोंसे मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तानुबन्धीकषायोंके संक्रामक अनन्तगुणित हैं । अनन्तानुबन्धीकषायोंके संक्रामकोंसे शेष मोहकर्मकी प्रकृतियोंके संक्रामक परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं ॥११२-११६॥

चूर्णिसू०—मनुष्यगतिमें मिथ्यात्वके संक्रामक सबसे कम हैं । मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तानुबन्धीकषायोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । शेष कर्मोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥११७-१२१॥

चूर्णिसू०—एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामक सबसे कम हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक विशेष अधिक हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे शेष कर्मोंके संक्रामक परस्पर तुल्य और अनन्तगुणित हैं ॥१२२-१२४॥

इस प्रकार एकैकप्रकृतिसंक्रम समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे प्रकृतिस्थानसंक्रमको कहेंगे । उसमें सबसे पहले गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करना चाहिए । वह इस प्रकार है ॥१२५-१२७॥

अट्ठाईस, चौबीस, सत्तरह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक स्थान नियमसे संक्रमके अयोग्य हैं, अतएव इन पाँचों असंक्रम-स्थानोंको छोड़कर शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है ॥२७॥

१ अट्ठ-चउरहियवीसं सत्तरसं सोलसं च पन्नरसं ।
वज्जिय संकमठाणाइं होंति तेवीसइं मोहे ॥ १० ॥ कम्मप० सं०

सोलसग बारसट्ठग वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणि पडिग्गहा होंति ॥२८॥

विशेषार्थ–मोहनीयकर्मके सर्व प्रकृतिस्थान अट्ठाईस होते हैं। उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है–२८, २७, २६, २५, २४, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १७, १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १। इनमेंसे संक्रमणके अयोग्य ये पाँच स्थान हैं–२८, २४, १७, १६, और १५। शेष तेईस स्थान संक्रमणके योग्य माने गये हैं। उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है–२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १। किस प्रकृतिके घटाने या बढ़ानेसे कौनसा स्थान बनता है, इसका स्पष्टीकरण आगे चूर्णिकारने स्वयं किया है।

सोलह, बारह, आठ, बीस, और तीनको आदि लेकर एक-एक अधिक बीस अर्थात् तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान प्रतिग्रहके अयोग्य हैं, अतएव इन दशों अप्रतिग्रहस्थानोंको छोड़कर शेष अट्ठारह प्रतिग्रह-स्थान होते हैं ॥२८॥

विशेषार्थ–जिस आधारभूत प्रकृतिमें अन्य प्रकृतिके परमाणुओंका संक्रमण होता है, उसे प्रतिग्रहप्रकृति कहते हैं। इसी प्रकार मोहनीयकर्मके जिन प्रकृतिस्थानोंका जिन प्रकृतिस्थानोंमें संक्रमण होता है, वे प्रतिग्रहस्थान कहलाते हैं और जिन प्रकृतिस्थानोंमें संक्रमण नहीं होता है, वे अप्रतिग्रहस्थान कहलाते हैं। प्रकृत गाथामें इन्हीं प्रतिग्रह और अप्रतिग्रहस्थानोंका निरूपण किया गया है। प्रतिग्रहस्थान अट्ठारह हैं। वे इस प्रकार हैं–२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, १। अप्रतिग्रहस्थान दश है। वे इस प्रकार है–२८, २७, २६, २५, २४, २३, २०, १६, १२, ८। मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका बन्ध नहीं होता, इसलिए छब्बीस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। उनमें भी एक समयमें तीन वेदोंमेंसे किसी एक, तथा हास्य-रति और अरति-शोक युगलोंमेंसे किसी एकका बन्ध संभव है, इसलिए मिथ्यादृष्टिके एक समयमें शेष बाईस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यह बाईस-प्रकृतिक पहला प्रतिग्रहस्थान है, क्योंकि, इन बँधनेवाली सर्व प्रकृतियोंमें सत्तामें स्थित सर्व प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि एक समयमें तेईस आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः तेईस, चौबीस पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान नहीं होते हैं। इसलिए गाथामें इनका निषेध किया गया है। बाईस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमेंसे मिथ्यात्वकी बन्ध-व्युच्छित्ति हो जानेपर या मिथ्यात्वके प्रतिग्रह-प्रकृति न रहनेपर इक्कीस प्रकृ-

१ सोलह बारसट्ठग वीसग तेवीसगाइगे छच्च ।
वज्जिय मोहस्स पडिग्गहा उ अट्ठारस हवंति ॥ ११ ॥ कम्मप० सं०

तिक प्रतिग्रहस्थान होता है। असंयतसम्यग्दृष्टिके सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके मिला देनेपर उन्नीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। बन्ध-परिपाटीको देखते हुए एक साथ बीस प्रकृतियाँ प्रतिग्रहरूप नहीं हो सकतीं, इसलिए बीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका निषेध किया गया है। क्षायिकसम्यक्त्वके प्रस्थापक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वका क्षय हो जानेपर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए पूर्वोक्त उन्नीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वके कम कर देनेपर अट्ठारह-प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थान होता है। पुनः उक्त जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जानेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रति-ग्रहरूप न रहनेके कारण सत्तरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शन-मोहनीयकी किसी भी प्रकृतिका संक्रमण नहीं होता, अतः उसके दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृ-तियोंकी सत्ता रहनेपर भी यह सत्तरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। संयतासंयतके एक साथ तेरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके मिला देने-पर पन्द्रह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। बन्ध-परिपाटीको देखते हुए सोलह-प्रकृतिक प्रति-ग्रहस्थान संभव नहीं, यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार बारह और आठ-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव नहीं है। जब कोई संयतासंयत जीव मिथ्यात्वका क्षय करता है, तब उसके सम्य-ग्मिथ्यात्वके विना चौदह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है और इसी जीवके द्वारा सम्यग्मि-थ्यात्वका क्षय कर देनेपर तेरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। प्रमत्त और अप्रमत्त संयतके नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अतएव इनमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके मिला देनेपर ग्यारह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः इस जीवके मिथ्यात्वके क्षय कर देनेपर दश-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है और इसीके सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जानेपर नौ-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। अपूर्वकरणमें भी नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए उपशमसम्यग्दृष्टिके इन नौ प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके मिलानेपर ग्यारह-प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान होता है; और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके विना नौ-प्रकृतिक भी प्रतिग्रहस्थान होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामकके पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अतएव इनमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके मिला देनेपर सात-प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान होता है। पुनः नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उपशम हो जानेपर पुरुषवेद प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए इसीके छह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। अनन्तर दोनों प्रकारके मध्यम क्रोधोंका उपशम हो जानेपर संज्वलनक्रोध प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। अनन्तर दोनों मानकषायोंका उपशम हो जानेपर मान-संज्वलन प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। अनन्तर दोनों मायाकषायोंके उपशम हो जानेपर मायासंज्वलन प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः इसके दोनों लोभकषायोंका उपशम हो जानेपर संज्व-

छव्वीस सत्तवीसा य संकमो णियम चदुसु ट्ठाणेसु ।
वावीस पण्णरसगे एक्कारस ऊणवीसाए[1] ॥२९॥
सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए ।
णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे[2] ॥३०॥

लन लोभ प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती इसलिए दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। जो क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ता है, उसकी अपेक्षा विचार करनेपर अनिवृत्तिकरण-उपशामकके पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए पाँच-प्रकृतिक पहला प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेपर पुरुषवेदके प्रतिग्रह-प्रकृति न रहनेसे चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः सात नोकषाय और दो क्रोधकषायोंके उपशम होनेपर क्रोधसंज्वलनके प्रतिग्रह-प्रकृति न रहनेसे तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः क्रोधसंज्वलन प्रतिग्रह-प्रकृति नहीं रहती, इसलिए दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। पुनः मानसंज्वलनके साथ दोनों मायाकषायोंके उपशम हो जानेपर एक लोभ-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा भी अनिवृत्तिकरणमें ये ही अन्तिम पाँच प्रतिग्रहस्थान होते हैं।

बाईस, पन्द्रह, ग्यारह और उन्नीस-प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थानोंमें ही छब्बीस और सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानोंका नियमसे संक्रम होता है ॥२९॥

विशेषार्थ–इस गाथामें छब्बीस और सत्ताईस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थानोंके बाईस, उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारह-प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थान बताये हैं–जो सम्यक्त्वप्रकृतिके विना सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव है, उसके छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान और बाईस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। तथा जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको, उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको और उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होता है उसके इनको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें क्रमसे उन्नीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान, पन्द्रह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान, ग्यारह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान और छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। तथा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान और बाईस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। और इस जीवके पूर्ववत् उपशमसम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम, तथा उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमके ग्रहण करनेपर दूसरे समयसे लेकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न होने तक क्रमसे उन्नीस, पन्द्रह, और ग्यारह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान, तथा सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

सत्तरह और इक्कीस-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थानोंमें पच्चीस-प्रकृतिक स्थानका नियमसे संक्रमण होता है। यह पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे चारों ही गतियों-

१ छब्बीस-सत्तवीसाण संकमो होइ चउसु ठाणेसु। बावीस पन्नरसगे इक्कारस इगुणवीसाए ॥१२॥
२ सत्तरस इक्कवीसासु संकमो होइ पन्नवीसाए। नियमा चउसु गईसुं नियमा दिट्ठीकए तिविहे ॥१३॥कम्मप०

वावीस पण्णरसगे सत्तग एकारसूणवीसाए।
तेवीस संकमो पुण पंचसु पंचिंदिएसु हवे ॥३१॥

में होता है। तथा दृष्टिगत अर्थात् 'दृष्टि' यह पद जिनके अन्तमें हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें वह पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे पाया जाता है ॥३०॥

विशेषार्थ—इस गाथामें पच्चीस-प्रकृतिक एक संक्रमस्थानके इक्कीस और सत्तरह-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थान बताये गये हैं। इनमेंसे इक्कीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वके विना पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। तथा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस-प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थानमें पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। यहाँ दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंमें प्रतिग्रह और संक्रमण-शक्ति नहीं है, इतना विशेष जानना चाहिए। तथा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला जो मिथ्यादृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता है, उसके चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियोंका सत्तरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। ये संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान चारों गतियोंमें संभव हैं।

तेईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रम बाईस, पन्द्रह, सत्तरह, ग्यारह और उन्नीस-प्रकृतिक इन पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। यह तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें ही होता है ॥३१॥

विशेषार्थ—इस गाथामें एक तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्र-मण-विधान किया गया है। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजक जो जीव मिथ्यात्वगुणस्थान-को प्राप्त होता है, उसके प्रथम समयमें बाईस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मिथ्यात्वके विना तेईस प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रमण न होनेसे उसका निषेध किया है और ऐसे जीवके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका एक आवली-काल तक संक्रमण नहीं हो सकता, इसलिए उसका निषेध किया है। शेष तेईस प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके उन्नीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले संयतासंयत जीवके पन्द्रह-प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थानमें, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत जीवके ग्यारह-प्रकृतिक प्रति-ग्रहस्थानमें और चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अन्तरकरणसे पूर्ववर्ती अनिवृत्तिकरण जीवके सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तेईस प्रकृतियोंका संक्रमण होता है; क्योंकि, इन सब जीवोंके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है, इसलिए यहाँ एक सम्यक्त्वप्रकृतिको छोड़कर शेष तेईस प्रकृतियोंका उक्त सभी प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रमण संभव है। ऐसा जीव जिसने अनन्ता-नुबन्धीकी विसंयोजना की है, वह नियमसे संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होता है।

१ बावीस पन्नरसगे सत्तगएक्कारसिगुणवीसासु। तेवीसाए णियमा पंच वि पंचिंदिएसु भवे ॥१४॥ कम्मप०सं०

चोद्दसग दसग सत्तग अट्ठारसगे च णियम वावीसा ।
णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य[1] ॥३२॥
तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एक्कवीसाए ।
एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते[2] ॥३३॥

बाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रम नियमसे चौदह, दश, सात और अट्ठारह प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। यह बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे मनुष्यगतिमें ही होता है। तथा वह संयत, संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें होता है ॥३२॥

विशेषार्थ—इस गाथामें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क, इन छह प्रकृतियोंके विना शेष बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका अट्ठारह, चौदह, दश और सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है, यह बतलाया गया है। अट्ठारह-प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थान अविरतसम्यग्दृष्टिके, चौदह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान देशसंयतके, दश-प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थान प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतके और सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान जिस अनिवृत्तकरण संयतके आनु-पूर्वी संक्रम प्रारम्भ हो गया है, उसके होता है। यहाँ दो बातें ध्यान देनेके योग्य हैं—प्रथम यह कि प्रारम्भके तीन स्थानोंमें जिसने दर्शनमोहकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्वका अभाव कर दिया है, उसके उक्त प्रतिग्रहस्थानोंमें बाईस प्रकृतियोंका संक्रम होता है। दूसरी यह कि अनिवृत्तिकरणमें आनुपूर्वीसंक्रमके प्रारम्भ हो जानेपर लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं होता है, अतएव यह जीव चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होगा, इसलिए इसके लोभसंज्वलन और सम्यक्त्वप्रकृतिको छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियोंका सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है।

इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रम तेरह, नौ, सात, पाँच, सत्तरह और इक्कीस-प्रकृतिक छह प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। ये छहों ही प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्वसे युक्त गुणस्थानोंमें होते हैं ॥३३॥

विशेषार्थ—इस गाथामें यह बतलाया गया है कि इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका तेरह आदि छह प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके प्रकृत संक्रमस्थानका तेरह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव है। प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्व-करण संयतके नौ-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव है और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशा-मक और क्षपकके पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव है। सत्ताकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणगुण-

---

१ चोद्दसग दसग सत्तग अट्ठारसगे य होइ बावीसा ।
णियमा मणुयगईए णियमा दिट्ठीकए दुविहे ॥ १५ ॥
२ तेरसग णवग सत्तग सत्तरसग पणग एक्कवीसासु ।
एक्कावीसा संकमइ सुद्धसासाणमीसेसु ॥ १६ ॥ कम्मप० सं०

एत्तो अवसेसा संजमम्हि उवसामगे च खवगे च ।
वीसा य संकम दुगे छक्के पणगे च बोद्धव्वा[1] ॥३४॥

स्थानमें सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव है; क्योंकि, आनुपूर्वीसंक्रमको करके नपुंसकवेदके उपशम कर देनेपर इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका सात-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम पाया जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवमें इक्कीस-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान संभव है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाले उपशमसम्यग्दृष्टिके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेपर उसकी प्रथम आवलीमें इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रम पाया जाता है। इसी गाथामें यह भी बतलाया गया है कि ये छहों ही प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्वपदसे संयुक्त गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं, अन्यत्र नहीं। यहाँपर दर्शनमोहनीयत्रिकके उदयाभावकी अपेक्षा सासादनगुणस्थानको भी सम्यक्त्वी गुणस्थानमें उपचारसे परिगणित कर लिया गया है।

इन ऊपर कहे गये स्थानोंसे अवशिष्ट रहे हुए संक्रम और प्रतिग्रहस्थान उपशमक और क्षपक संयतके ही होते हैं। बीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रम छह और पांच-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थानोंमें जानना चाहिए ॥३४॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथाओंके द्वारा सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका निरूपण किया जा चुका है। अब उनके अतिरिक्त जो सत्तरह संक्रमस्थान अवशिष्ट रहे हैं, उनके प्रतिग्रहस्थानोंकी सूचना इस गाथाके द्वारा की गई है। इसमें सर्वप्रथम बतलाया गया है कि बीस आदिक अवशिष्ट संक्रमस्थान और उनके छह, पाँच आदि प्रतिग्रहस्थान संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। संयम-युक्त गुणस्थानोंमें भी वे उपशामक और क्षपकके ही सम्भव हैं, सबके नहीं, इस बातके बतलानेके लिए गाथामें 'उपशामक' और 'क्षपक' ये दो पद दिये हैं। उनमें भी बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रमण छह और पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें ही होता है, सबमें नहीं, यह बात गाथाके उत्तरार्ध द्वारा सूचित की गई है। इसका कारण यह है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणीपर चढ़ करके नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशमन करके पुरुषवेदको प्रतिग्रह-प्रकृतिरूपसे व्युच्छिन्न कर देनेपर सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और संज्वलनचतुष्क, इन छह प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थानमें बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रम होता है। और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणीपर चढ़ करके आनुपूर्वीसंक्रमके करनेपर बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संज्वलनचतुष्क और पुरुषवेदरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है।

---

१ एत्तो अविसेसा संकमंति उवसामगे व खवगे वा ।
उवसामगेसु वीसा य सत्तगे छक्क पणगे वा ॥ १७ ॥ कम्मप० सं०

पंचसु च ऊणवीसा अट्ठारस चदुसु होंति बोद्धव्वा ।
चोद्दस छसु पयडीसु य तेरसयं छक्क-पणगम्हि[1] ॥३५॥
पंच चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के ।
दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगम्मि बोद्धव्वा[2] ॥३६॥

उन्नीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रम पांच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें होता है। अट्ठारह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें होता है। चौदह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम छह-प्रकृतियोंवाले प्रतिग्रहस्थानमें होता है। तेरह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम छह और पांच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें जानना चाहिए ॥३५॥

विशेषार्थ—इस गाथामें उन्नीस, अट्ठारह, चौदह और तेरह-प्रकृतिक चार संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थान बतलाये गये हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण-उपशामकके आनुपूर्वी-संक्रमणका प्रारम्भ हो जानेके कारण लोभ-संज्वलनके संक्रमणकी योग्यता न रहनेसे और नपुंसकवेदके उपशम हो जानेसे उन्नीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संज्वलन-चतुष्क और पुरुषवेदरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। इसी उपर्युक्त जीवके स्त्रीवेदका उपशम कर देनेपर और पुरुषवेदके प्रतिग्रहरूपसे व्युच्छेद कर देनेपर अट्ठारह-प्रकृतिक संक्रमस्थानका संज्वलनचतुष्करूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण-उपशामकके पुरुषवेदके नवकबन्धकी उपशमन-अवस्थामें पुरुषवेद, संज्वलनलोभको छोड़कर शेष ग्यारह कषाय और दर्शनमोहनीयकी दो, इन चौदह प्रकृतिरूप संक्रमस्थानका संज्वलन-चतुष्क, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप छह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। उपर्युक्त जीवके द्वारा पुरुषवेदका उपशम कर देनेपर शेष तेरह प्रकृतिरूप संक्रमस्थानका उक्त छह-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है। इसी ही जीवके संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलीकालके शेष रहनेपर तेरह प्रकृतिरूप संक्रमस्थानका संज्वलनमान, माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। अथवा अनिवृत्तिक्षपकके द्वारा आठ मध्यम कषायोंके क्षय कर देनेपर शेष तेरह प्रकृतियोंका संज्वलनचतुष्क और पुरुषवेद, इन पाँच प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। किन्तु यह संक्रमण आनुपूर्वीसंक्रमके प्रारम्भ होनेके पूर्व तक ही होता है।

बारह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम पाँच और चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। ग्यारह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम पाँच, चार और तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। दश-प्रकृतिक स्थानका संक्रम पाँच और चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। नौ-प्रकृतिक स्थानका संक्रम तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें जानना चाहिए ॥३६॥

---

१ पंचसु एगुणवीसा अट्ठारस पंचगे चउक्के य । चोद्दस छसु पगडीसुं तेरसगं छक्क-पणगम्मि ॥ १८ ॥
२ पंच चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के । दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगम्मि बोद्धव्वं ॥१९॥
कम्मप० सं०

अट्ठ दुग तिग चदुक्के सत्त चउक्के तिगे च बोद्धव्वा ।
छक्कं दुगम्हि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा[1] ॥३७॥

विशेषार्थ–इस गाथामें बारह, ग्यारह, दश और नौ-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रमण किन-किन प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है, यह बतलाया गया है । यथा–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला क्षपक आनुपूर्वी-संक्रमणका प्रारम्भ करके आठ मध्यम कषाय और संज्वलन-लोभको छोड़कर शेष बारह प्रकृतियोंका पुरुषवेद और चार संज्वलनरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण करता है । तथा उसी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणीमें पुरुषवेदके उपशम-कालमें संज्वलनलोभके विना ग्यारह कषाय और पुरुष-वेदका चार संज्वलनरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । क्षपकके नपुंसक-वेदका क्षय हो जानेपर ग्यारह प्रकृतियोंका पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दोनों क्रोधोंके उपशम कर देनेपर और संज्वलनक्रोधके प्रतिग्रहप्रकृति न रहनेपर संज्वलनक्रोध, तीन मान, तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूप ग्यारह प्रकृतियोंका संज्वलनमान, माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आनुपूर्वी-संक्रमपूर्वक नव-नोकषायोंका उपशम हो जानेपर तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया और दो लोभरूप ग्यारह प्रकृतियोंका चार संज्व-लनरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । तथा इसी जीवके क्रोध संज्वलनकी एक समय कम तीन आवलीप्रमाण प्रथमस्थितिके शेष रहनेपर उक्त ग्यारह प्रकृतियोंका संज्वलन क्रोधके विना शेष तीन प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । चौबीस प्रकृतियों-की सत्तावाले उपशामकके तीन प्रकारके क्रोधके उपशम हो जानेपर तीन मान, तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दश प्रकृतियोंका क्रोधके विना तीन संज्वलन, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप पाँच-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । तथा इसी जीवके मानसंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवली शेष रहनेपर उक्त दश प्रकृतियोंका संज्वलन माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है । अथवा क्षपकके स्त्रीवेदका क्षय हो जानेपर पुरुषवेद, छह नोकषाय और लोभके विना तीन संज्वलन, इन दश प्रकृतियोंका चार संज्वलनरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जानेपर क्रोधसंज्वलन, तीन मान, तीन माया और दो लोभ-रूप नौ प्रकृतियोंका तीन प्रकारके संज्वलनरूप तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है ।

आठ-प्रकृतिक स्थानका संक्रम दो, तीन और चार-प्रकृतिक प्रतिग्रह-

१ अट्ठ दुग तिग चउक्के सत्त चउक्के तिगे य बोद्धव्वा ।
छक्कं दुगम्मि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे य ॥ २० ॥ कम्मप० सं०

चत्तारि तिग चदुक्के तिण्णि तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा ।
दो दुसु एगाए वा एगा एगाए बोद्धव्वा ॥३८॥

स्थानोंमें होता है । सात-प्रकृतिक स्थानका संक्रम चार और तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें जानना चाहिए । छह-प्रकृतिक स्थानका संक्रम नियमसे दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें होता है । पाँच-प्रकृतिक स्थानका संक्रम तीन, दो और एक-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें होता है ॥३७॥

विशेषार्थ–इस गाथामें आठ, सात, छह और पांच-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका निर्देश किया गया है । उनका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो प्रकारके मानका उपशम हो जानेपर एक मान, तीन माया, दो लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन आठ प्रकृतियोंका संज्वलनमाया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम हो जानेपर तीन मान, तीन माया, और दो लोभरूप आठ प्रकृतियोंका तीन संज्वलनरूप तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके मानसंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवली शेष रहनेपर तीन मान, तीन माया और दो लोभरूप आठ प्रकृतियोंका माया और लोभरूप दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीन प्रकारके मानका उपशम हो जानेपर तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंका संज्वलन माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप चार-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । तथा इसी जीवके मायासंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवली शेष रहनेपर उक्त सात प्रकृतियोंका संज्वलन लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो प्रकारके मानका उपशम हो जानेपर एक मान, तीन माया और दो लोभरूप छह प्रकृतियोंका संज्वलनमाया और लोभरूप दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो मायाकषायोंका उपशम हो जानेपर एक माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतियोंका संज्वलन-लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीनों मानकषायोंके उपशम हो जानेपर तीन माया और दो लोभरूप पाँच प्रकृतियोंका माया और लोभसंज्वलनरूप दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है । तथा इसी जीवके मायासंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलीकाल शेष रहनेपर तीन माया और दो लोभरूप पाँच प्रकृतियोंका एक लोभप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है ।

चार-प्रकृतिक स्थानका संक्रम तीन और चार-प्रकृतिक दो प्रतिग्रहस्थानों-

१ चत्तारि तिग चउक्के तिन्नि तिगे एक्कगे य बोद्धव्वा । दो दुसु एकाए वि य एका एकाइ बोद्धव्वा ॥२१॥ कम्मप० सं०

में होता है। तीन-प्रकृतिक स्थानका संक्रम तीन और एक-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें जानना चाहिए। दो-प्रकृतिक स्थानका संक्रम दो और एक-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें होता है। एक-प्रकृतिक स्थानका संक्रम एक-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें जानना चाहिए ॥३८॥

विशेषार्थ—इस गाथामें चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रह-स्थानोंका निर्देश किया गया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्षपकके छह नोकषायोंका क्षय हो जानेपर पुरुषवेद और तीन संज्वलनोंका चार संज्वलनरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीन मायाकषायोंका उपशम हो जानेपर दो लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। क्षपकके पुरुषवेदका क्षय हो जानेपर संज्वलनक्रोध, मान और मायाका संज्वलन मान, माया और लोभरूप तीन-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो मायाकषायोंका उपशम हो जानेपर एक माया और दो लोभ, इन तीन प्रकृतियोंका एक संज्वलनलोभरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। क्षपकके क्रोधका क्षय हो जानेपर संज्वलनमान और माया, इन दो प्रकृतियोंका संज्वलन माया और लोभरूप दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो लोभकषायोंका उपशम हो जानेपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप दो-प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीनों मायाकषायोंका उपशम हो जानेपर दो लोभकषायोंका एक संज्वलनलोभरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है। क्षपकके संज्वलनमानका क्षय हो जानेपर एक मायासंज्वलनका एक लोभसंज्वलनप्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थानमें संक्रमण होता है।

संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका चित्र

संक्रमस्थान	प्रतिग्रहस्थान	संक्रमस्थान	प्रतिग्रहस्थान
२७	२२, १९, १५, ११	११	५, ४, ३
२६	२२, १९, १५, ११	१०	५, ४
२५	२१, १७	९	३
२३	२२, १९, १७, १५, ११	८	४, ३, २
२२	१८, १४, १०, ७	७	४, ३
२१	२१, १७, १३, ९, ७, ५	६	२
२०	६, ५	५	३, २, १
१९	५	४	४, ३
१८	४	३	३, १
१४	६	२	२, १
१३	६, ५	१	१
१२	५, ४		

अणुपुव्वमणणुपुव्वं झीणमझीणं च दंसणे मोहे ।
उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवाया[1] ॥३९॥

इस प्रकार मोहकर्मके संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थान बतलाकर अब श्रीगुणधराचार्य उनके अनुमार्गणके उपायभूत अर्थपदको कहते हैं–

प्रकृतिस्थानसंक्रममें आनुपूर्वी-संक्रम, अनानुपूर्वी-संक्रम, दर्शनमोहके क्षय-निमित्तक-संक्रम, दर्शनमोहके अक्षय-निमित्तक-संक्रम, चारित्रमोहके उपशामना-निमित्तक-संक्रम और चारित्रमोहनीयके क्षपणा-निमित्तक संक्रम ये छह संक्रमस्थानोंके अनुमार्गणके उपाय जानना चाहिए ॥३९॥

विशेषार्थ–इस गाथाके द्वारा पूर्वोक्त संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति सिद्ध करनेके लिए अन्वेषणके छह उपाय बतलाए गये हैं। उनमेंसे आनुपूर्वीसंक्रम-विषयक संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करनेपर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके २२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४ और २ प्रकृतिक बारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके २०, १९, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३, २ और १ प्रकृतिक बारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। क्षपकके १२, ११, १०, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक सात संक्रमस्थान पाये जाते हैं। अनानुपूर्वी-विषयक संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करनेपर उनके २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक छह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। दर्शनमोहके क्षय-निमित्तक संक्रमकी अपेक्षा २१, २०, १९, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३, २ और १ प्रकृतिक तेरह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। तथा इसी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके क्षपकश्रेणीमें संभव संक्रमस्थान भी पाये जाते हैं। दर्शनमोहके अक्षय-निमित्तक संक्रमकी अपेक्षा २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक छह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वीसंक्रमकी अपेक्षा संभव संक्रमस्थानोंका भी यहाँपर कथन करना चाहिए। चारित्रमोहकी उपशामना और क्षपणा-निमित्तक संक्रमकी अपेक्षा चौबीस और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक और क्षपकके क्रमशः तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानको आदि लेकर यथासंभव शेष संक्रमस्थान पाये जाते हैं। उपशमश्रेणीसे उतरनेकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके ४, ८, ११, १४, २१, २२ और २३ प्रकृतिक सात संक्रमस्थान पाये जाते हैं। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके उपशमश्रेणीसे उतरनेकी अपेक्षा ३, ६, ९, १२, १९, २० और २१ प्रकृतिक सात संक्रमस्थान पाये जाते हैं। इन उपर्युक्त संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका निरूपण पहले कहे गये प्रकारसे कर लेना चाहिए।

१ अणुपुव्वि अणाणुपुव्वी झीणमझीणे य दिट्ठिमोहम्मि ।
उवसामगे य खवगे य संकमे मग्गणोवाया ॥ २२ ॥ कम्मप० सं०

एक्केक्कम्हि य ट्ठाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।
भविया वाऽभविया वा जीवा वा केसु ठाणेसु ॥४०॥

कदि कम्हि होंति ठाणा पंचविहे भावविधिविसेसम्हि ।
संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाऽध केवचिरं ॥४१॥

इस प्रकार उक्त गाथासे संक्रमस्थानोंके अनुमार्गणके उपायभूत अर्थपदका ओघकी अपेक्षा निरूपण करके अब गाथासूत्रकार संक्रमस्थान, प्रतिग्रहस्थान और तदुभयस्थानोंका आदेशकी अपेक्षा प्ररूपण करनेके लिए प्रश्नात्मक दो गाथा-सूत्र कहते हैं–

एक-एक प्रतिग्रहस्थान, संक्रमस्थान और तदुभयस्थानमें गति आदि चौदह मार्गणास्थान-विशिष्ट जीवोंकी मार्गणा करनेपर भव्य और अभव्य जीव किस-किस स्थानपर होते हैं, तथा गति आदि शेष मार्गणास्थान-विशिष्ट जीव किन-किन स्थानोंपर होते हैं, औदयिक आदि पाँच प्रकारके भावोंसे विशिष्ट गुणस्थानोंमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान होते हैं और कितने प्रतिग्रहस्थान होते हैं, तथा किस संक्रमस्थान या प्रतिग्रहस्थानकी समाप्ति कितने कालसे होती है ? ॥४०-४१॥

विशेषार्थ–इन दो सूत्रगाथाओंके द्वारा जिन प्रश्नोंको उठाया गया है, या देशा-मर्शकरूपसे जिनकी सूचना की गई है, उनका समाधान आगे कही जानेवाली गाथाओंमें यथातथानुपूर्वीसे किया गया है। किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान होते हैं, यह नीचे दिये गये चित्रमें बतलाया गया है ।

गुणस्थानोंमें संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थानोंका चित्र

गुणस्थान	संक्रमस्थान संख्या	संक्रमस्थान विवरण	प्रतिग्रह० संख्या	प्रतिग्रहस्थान-विवरण
१ मिथ्यात्वगुणस्थान	४	२७, २६, २५, २३	२	२२, २१
२ सासादन ,,	२	२५, २१	१	२१
३ मिश्र ,,	२	२५, २१	२	१७
४ अविरत ,,	५	२७, २६, २३, २२, २१	३	१९, १८, १७
५ देशविरत ,,	,,	,, ,, ,, ,, ,,	,,	१५, १४, १३
६ प्रमत्तसंयत ,,	,,	,, ,, ,, ,, ,,	,,	११, १०, ९
७ अप्रमत्तसंयत,,	,,	,, ,, ,, ,, ,,	,,	,, ,, ,,
८ अपूर्वकरण ,,	२	२३, २१	२	११, ९
९ अनिवृत्तिकरण उपशामोपशमक	१२	२३, २२, २१, २०, १४, १३, ११ १०, ८, ७, ५, ४	५	५, ४, ३, २, १
,, क्षायिकोपशमक	१२	२१, २०, १९, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३, २	,,	,, ,, ,, ,, ,,
,, क्षपक	९	२१, १३, १२, ११, १०, ४, ३, २, १	,,	,, ,, ,, ,, ,,
१० सूक्ष्मसाम्पराय	२	२	१	२
११ उपशान्तकषाय	१	२	१	२

णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु पंचेव संकमट्ठाणा।
सव्वे मणुसगईए सेसेसु तिगं असण्णीसु ॥४२॥
चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्त मिस्सगे य सम्मत्ते।
बावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥४३॥

अब ग्रन्थकार उक्त दो गाथाओंके द्वारा उठाये गये प्रश्नोंका समाधान करते हुए सबसे पहले गतिमार्गणामें संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं—

नरकगति, देवगति और संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं। मनुष्यगतिमें सर्व ही संक्रमस्थान होते हैं। शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें सत्ताईस, छब्बीस और पच्चीस-प्रकृतिक तीन ही संक्रमस्थान होते हैं ॥४२॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा चारों गतियोंमें संक्रमस्थानोंका वर्णन तो स्पष्टरूपसे किया गया है, साथ ही 'असंज्ञी' पदके द्वारा इन्द्रियमार्गणा, कायमार्गणा, योगमार्गणा और संज्ञिमार्गणामें भी देशामर्शकरूपसे संक्रमस्थानोंकी भी सूचना की गई है। उनकी प्ररूपणा सुगम होनेसे ग्रन्थकारने नहीं की है।

अब ग्रन्थकार सम्यक्त्वमार्गणा और संयममार्गणामें संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस और तेईस-प्रकृतिक चार संक्रमस्थान होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें पच्चीस और इक्कीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं। सम्यक्त्व-युक्त गुणस्थानोंमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं। संयम-युक्त प्रमत्तसंयतादि-गुणस्थानोंमें बाईस संक्रमस्थान होते हैं। मिश्र अर्थात् संयतासंयतगुणस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं। अविरत-गुणस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक छह संक्रमस्थान होते हैं ॥४३॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा बतलाये गये संक्रमस्थानोंका विवरण इस प्रकार है—सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिके २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक चार संक्रम-स्थान होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टिके २५ और २१ प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके २५ और २१ प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं। सम्यग्दृष्टिके सर्व-संक्रमस्थान पाये जाते हैं। पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका निरूपण अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाले और उपशमसम्यक्त्वसे गिरे हुए सासादन-सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा किया गया है। संयम-मार्गणाकी अपेक्षा सामायिक-छेदोपस्थापनासंयतके पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानको छोड़कर शेष बाईस संक्रमस्थान पाये जाते है। परिहारविशुद्धिसंयतके २७, २३, २२ और २१ प्रकृ-तिक चार संक्रमस्थान होते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातसंयतके चौबीस प्रकृतियोंकी

तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ-पम्मलेस्सासु ।
पणयं पुण काऊए णीलाए किण्हलेस्साए ॥४४॥
अवगयवेद-णवुंसय-इत्थी-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।
अट्ठारसयं णवयं एक्कारसयं च तेरसया ॥४५॥

सत्तावाले जीवकी अपेक्षा एकमात्र दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है । गाथा-पठित 'मिश्र' पदसे संयतासंयतका ग्रहण किया गया है । उसके २७, २६, २३, २२ और २१ प्रकृतिक पांच संक्रमस्थान होते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए ।

अब लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं–

शुक्कलेश्यामें तेईस संक्रमस्थान होते हैं । तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छह संक्रमस्थान होते हैं । कापोतलेश्यामें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं । ये ही पाँच संक्रमस्थान नील और कृष्णलेश्यामें भी जानना चाहिए ॥४४॥

विशेषार्थ–शुक्कलेश्यावाले जीवोंके सभी संक्रमस्थान पाये जाते हैं । तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंके २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक छह संक्रमस्थान पाये जाते हैं । कापोत, नील और कृष्णलेश्यावाले जीवोंके २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान पाये जाते हैं । यतः इक्कीससे नीचेके संक्रमस्थान उपशम या क्षपकश्रेणीमें ही संभव हैं और वहाँपर एकमात्र शुक्कलेश्या होती है, अतः शेष पांचों लेश्याओंमें बीस आदि संक्रमस्थानोंका अभाव बतलाया गया है ।

अब वेदमार्गणाकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं–

अपगतवेदी, नपुंसकवेदी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें आनुपूर्वीसे अर्थात् यथाक्रमसे अट्ठारह, नौ, ग्यारह और तेरह संक्रमस्थान होते हैं ॥४५॥

विशेषार्थ–नौवें गुणस्थानके अवेदभागसे ऊपरके जीवोंको अपगतवेदी कहते हैं । उनके २७, २६, २५, २३ और २२ इन पाँच स्थानोंको छोड़कर शेष अट्ठारह स्थान पाये जाते हैं । इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव पुरुषवेदके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें लोभका असंक्रामक होकर क्रमसे स्त्रीवेद नपुंसकवेद, और छह नोकषायोंका उपशमन करता हुआ अपगतवेदी होकर चौदह-प्रकृतिकस्थानका संक्रमण करता है १ । पुनः पुरुषवेदके नवकबन्धका उपशमन करके तेरह-प्रकृतिक स्थानका संक्रमण करता है २ । पुनः दो प्रकारके क्रोधका उपशम करनेपर ग्यारह-प्रकृतिक स्थानका संक्रमण किया ३ । पुनः संज्वलन क्रोधका उपशम करनेपर दश-प्रकृतिक स्थानका संक्रमण किया ४ । पुनः दो प्रकारके मानका उपशम करनेपर आठ-प्रकृतिक स्थानके संक्रमभावको प्राप्त हुआ ५ । पुनः संज्वलनमानके उपशम करनेपर सात-प्रकृतिक

स्थानका संक्रामक हुआ ६ । पुनः दोनों मायाकषायोंका उपशम करनेपर पाँच-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ ७ । पुनः संज्वलनमायाका उपशम करनेपर चार-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ ८ । तदनन्तर दो प्रकारके लोभका उपशम करता हुआ दो-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ ९ । इस प्रकार ये नौ संक्रमस्थान पुरुषवेदके साथ श्रेणीपर चढ़े हुए चौबीस प्रकृतियों-की सत्तावाले अपगतवेदी जीवके पाये जाते हैं। जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पुरुषवेदके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़ता है उसके आनुपूर्वी-संक्रमणके अनन्तर नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और हास्यादि छह नोकषायोंके उपशम करनेपर अपगतवेदीके बारह-प्रकृतिक संक्रम-स्थान उत्पन्न होता है। पुनः दो प्रकारके क्रोध, दो प्रकारके मान और दो प्रकारके माया कषायोंके उपशमानेपर यथाक्रमसे नौ, छह और तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं। इन चार संक्रमस्थानोंको पूर्वोक्त नौ संक्रमस्थानोंमें मिला देनेपर अपगतवेदीके तेरह संक्रम-स्थान हो जाते हैं। पुनः उसी जीवके नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेपर आनुपूर्वीसंक्रमके अनन्तर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशमन करके अपगतवेदी होनेपर अट्ठारह-प्रकृतिक एक अपुनरुक्त संक्रमस्थान पाया जाता है। इसी जीवके श्रेणीसे उतरते समय बारह कषाय और सात नोकषाय इन उन्नीस प्रकृतियोंका अपकर्षण करते हुए उन्नीस-प्रकृतिक अपुनरुक्त संक्रम-स्थान पाया जाता है। इन दोनों संक्रमस्थानोंको पूर्वोक्त तेरहमें मिलानेपर अपगतवेदीके पन्द्रह संक्रमस्थान हो जाते हैं। इसी प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नपुंसक-वेदके साथ श्रेणीपर चढ़ता है, उसके चढ़ते और उतरते हुए क्रमशः बीस और उन्नीस-प्रकृतिक दो अपुनरुक्त संक्रमस्थान पाये जाते हैं। इन्हें पूर्वोक्त पन्द्रहमें मिलानेपर अपगतवेदी जीवके सत्तरह संक्रमस्थान हो जाते हैं। जो क्षपक जीव पुरुषवेद या नपुंसकवेदके साथ श्रेणीपर चढ़ता है, उसके अन्तिम एक-प्रकृतिक अपुनरुक्त संक्रमस्थान होता है। उसे पूर्वोक्त सत्तरहमें मिला देनेपर अपगतवेदी जीवके अट्ठारह संक्रमस्थान हो जाते हैं। नपुंसकवेदके नौ संक्रम-स्थान होते हैं। उनमेंसे सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छह संक्रमस्थान तो नपुंसकवेदीके श्रेणी-से नीचे ही पाये जाते हैं। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आनुपूर्वी-संक्रमण-की अपेक्षा बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान भी श्रेणीके पूर्व ही पाया जाता है। पुनः नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणीपर चढ़नेवाले क्षपकके आठ मध्यम कषायोंके क्षपण करनेपर तेरह-प्रकृतिक संक्रम-स्थान प्राप्त होता है। आनुपूर्वीसंक्रमसे परिणत इसी जीवके बारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान भी पाया जाता है। इस प्रकार नपुंसकवेदीके २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३ और १२ ये नौ संक्रमस्थान पाये जाते हैं। शेष संक्रमस्थानोंका पाया जाना इसके सम्भव नहीं है। स्त्रीवेदी जीवके ग्यारह संक्रमस्थान होते हैं। उसके नौ संक्रमस्थानोंकी प्ररूपणा तो नपुंसक-वेदीके ही समान है। विशेष इसके उन्नीस और ग्यारह-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान और अधिक हैं, क्योंकि, इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक और क्षपकके स्त्रीवेदके उदयके साथ श्रेणी पर चढ़कर नपुंसकवेदके उपशम और क्षपण करनेपर यथाक्रमसे उनके उन्नीस

कोहादी उवजोगे चदुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।
सोलस य ऊणवीसा तेवीसा चेव तेवीसा ॥४६॥

और ग्यारह-प्रकृतिक दोनों संक्रमस्थान पाये जाते हैं। पुरुषवेदी जीवके तेरह संक्रमस्थान होते हैं। उनमें ग्यारहकी प्ररूपणा तो स्त्रीवेदीके ही समान है। विशेष इसके अट्ठारह और दश-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान और अधिक होते हैं; क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक और क्षपकके पुरुषवेदके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़कर स्त्रीवेदके उपशमन और क्षपण करनेपर यथाक्रमसे उक्त दोनों संक्रमस्थान पाये जाते हैं।

अब कषायमार्गणामें संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं–

क्रोधादि चारों कषायोंसे उपयुक्त जीवोंमें आनुपूर्वीसे सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस संक्रमस्थान होते हैं ॥४६॥

विशेषार्थ–क्रोधकषायके उदयसे युक्त जीवके सोलह संक्रमस्थान होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है–कोधकषायी जीवके सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छह संक्रमस्थान तो मिथ्यादृष्टि आदि श्रेणीके पूर्ववर्ती गुणस्थानोंमें यथासम्भव रीतिसे पाये ही जाते हैं। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव क्रोधकषायके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ता है, उसके तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान तो पुनरुक्त ही पाये जाते हैं। पुनः उसके बीस, चौदह और तेरह ये तीन स्थान अपुनरुक्त पाये जाते हैं। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामककी अपेक्षा उन्नीस, अट्ठारह, बारह और ग्यारह-प्रकृतिक चार संक्रमस्थान पाये जाते हैं। क्रोधकषायके साथ श्रेणीपर चढ़े हुए क्षपककी अपेक्षा दश, चार और तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थान और पाये जाते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर क्रोधकषायी जीवके २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४ और ३ ये सोलह संक्रमस्थान पाये जाते हैं। मानकषायी जीवके इन सोलह संक्रमस्थानोंके अतिरिक्त इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामककी अपेक्षा दोनों प्रकारके क्रोधोंके उपशम होनेपर नौ-प्रकृतिक संक्रमस्थान और संज्वलनक्रोधके उपशम होनेपर आठ-प्रकृतिक संकमस्थान, तथा क्षपकके संज्वलनक्रोधका क्षय होनेपर दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। इस प्रकार सब मिलाकर मानकषायी जीवके २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ४ और २ प्रकृतिक उन्नीस संक्रमस्थान पाये जाते हैं। माया और लोभकषायवाले जीवोंके सभी अर्थात् तेईस तेईस ही संक्रमस्थान पाये जाते हैं। अकषायी जीवके एकमात्र दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान है; क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके ग्यारहवें गुणस्थानमें दो प्रकृतियोंका संक्रमण पाया जाता है।

अब ज्ञानमार्गणामें संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं–

णाणम्हि य तेवीसा तिविहे एक्कम्हि एक्कवीसा य ।
अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा ॥४७॥
आहारय-भविएसु य तेवीसं होंति संकमट्ठाणा ।
अणाहारएसु पंच य एक्कं ट्ठाणं अभविएसु ॥४८॥
छव्वीस सत्तावीसा तेवीसा पंचवीस बावीसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा[1] अवगदवेदस्स जीवस्स ॥४९॥

मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानोंमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं। एकमें अर्थात् मनःपर्ययज्ञानमें पच्चीस और छब्बीस-प्रकृतिक दो स्थान छोड़कर शेष इक्कीस संक्रमस्थान होते हैं। कुमति, कुश्रुत और विभंग, इन तीनों ही अज्ञानोंमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं ॥४७॥

विशेषार्थ—यद्यपि पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है, तथापि यहाँपर मतिज्ञानादि तीनों सद्-ज्ञानोंमें अशुद्ध-नयके अभिप्रायसे उसका निरूपण किया गया है, ऐसा समझना चाहिए। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें पाये जानेवाले छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका अवधिज्ञानमें जो प्रतिपादन किया गया है वह देव और नारकियोंकी अपेक्षासे जानना चाहिए; क्योंकि उनके प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है। शेष गाथार्थ स्पष्ट ही है। इसी गाथाके द्वारा देशामर्शकरूपसे दर्शनमार्गणाके संक्रमस्थानोंका भी निरूपण किया गया है, क्योंकि मति, श्रुत और अवधिज्ञानके संक्रमस्थानोंसे चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शनके संक्रमस्थानोंका निरूपण हो जाता है। अर्थात् इन तीनों प्रकारके दर्शनोंमें तेईस-तेईस संक्रमस्थान पाये जाते हैं।

अब भव्यमार्गणा और आहारमार्गणामें संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं—

आहारक और भव्य जीवोंमें तेईस ही संक्रमस्थान होते हैं। अनाहारकोंमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान होते हैं। अभव्योंमें पच्चीस-प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान होता है ॥४८॥

अब अपगतवेदी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं—

अपगतवेदी जीवके छब्बीस, सत्ताईस, तेईस, पच्चीस और बाईस-प्रकृतिक पंच शून्यस्थान होते हैं, अर्थात् ये पाँच संक्रमस्थान नहीं पाये जाते हैं ॥४९॥

अब नपुंसकवेदी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानों प्रतिपादन करते हैं—

---

१ जत्थ जं संकमट्ठाणं ण संभवइ, तत्थ तस्स सुण्णट्ठाणववएसो। जयध०

उगुवीसट्ठारसयं चोद्दस एक्कारसादिया सेसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा णवुंसए चोद्दसा होंति ॥५०॥
अट्ठारस चोद्दसयं ट्ठाणा सेसा य दसगमादीया ।
एदे सुण्णट्ठाणा बारस इत्थीसु बोद्धव्वा ॥५१॥
चोद्दसग णवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।
एदे सुण्णट्ठाणा दस वि य पुरिसेसु बोद्धव्वा ॥५२॥
णव अट्ठ सत्त छक्कं पणग दुगं एक्कयं च बोद्धव्वा ।
एदे सुण्णट्ठाणा पढमकसायोवजुत्तेसु ॥५३॥
सत्त य छक्कं पणगं च एक्कयं चेव आणुपुव्वीए ।
एदे सुण्णट्ठाणा विदियकसाओवजुत्तेसु ॥ ५४ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंमें उन्नीस, अट्ठारह, चौदह और ग्यारहको आदि लेकर शेष स्थान, अर्थात् ग्यारह, दश, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक चौदह स्थान शून्य हैं ॥५०॥

अब स्त्रीवेदी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंका प्ररूपण करते हैं–

स्त्रीवेदी जीवोंमें अट्ठारह और चौदह-प्रकृतिक ये दो स्थान, तथा दशको आदि लेकर एक तकके दश स्थान, इस प्रकार ये बारह स्थान शून्य जानना चाहिए ॥५१॥

अब पुरुषवेदी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंको बतलाते हैं–

पुरुषवेदी जीवोंमें, उपशामकमें और क्षपकमें चौदह-प्रकृतिक संक्रमस्थान तथा नौको आदि लेकर एक तकके नौ स्थान इस प्रकार दश स्थान शून्य हैं ॥५२॥

अब क्रोधकषायी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंको कहते हैं–

प्रथम-क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंमें नौ, आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक-प्रकृतिक सात स्थान शून्य हैं ॥५३॥

अब मानकषायी जीवोंमें नहीं पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंको कहते हैं–

द्वितीय मानकषायसे उपयुक्त जीवोंमें सात, छह, पाँच और एक-प्रकृतिक चार स्थान शून्य हैं । इस प्रकार आनुपूर्वीसे शून्यस्थानोंका कथन किया ॥५४॥

विशेषार्थ–शेष दो माया और लोभकषायमें शून्यस्थानका विचार नहीं है, क्योंकि उनमें सभी संक्रमस्थान पाये जाते हैं ।

अब ग्रन्थकार इसी उपर्युक्त दिशासे शेष मार्गणास्थानोंमें सम्भव और असम्भव संक्रमस्थानोंके भी जान लेनेकी सूचना करते हैं–

दिट्ठे सुण्णासुण्णे वेद-कसाएसु चेव ट्ठाणेसु।
मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुव्वीए ॥ ५५ ॥

इस प्रकार वेदमार्गणामें और कषायमार्गणामें संक्रमस्थानोंके शून्य और अशून्य स्थानोंके दृष्टिगोचर हो जानेपर, अर्थात् जान लेनेपर शेष मार्गणाओंमें भी आनुपूर्वीसे संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करना चाहिए ॥५५॥

विशेषार्थ—मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंका विवरण इस प्रकार है—

मार्गणास्थान		संक्रमस्थान	प्रतिग्रहस्थान
१ गतिमार्गणा	नरकगति	२७, २६, २५, २३, २१	२२, २१, १९, १७
	देवगति	,, ,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
	तिर्यग्गति	,, ,, ,, ,, ,,	२२, २१, १९, १७, १५
	मनुष्यगति	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
२ इन्द्रिय ,,	पंचेन्द्रिय	,, ,,	,, ,,
	विकलेन्द्रिय	२७, २६, २५	२२, २१
	एकेन्द्रिय	,, ,, ,,	,, ,,
३ काय ,,	१ त्रसकाय	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
	५ स्थावरकाय	२७, २६, २५	२२, २१
४ योग ,,	मनोयोगी	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
	वचनयोगी	,, ,,	,, ,,
	काययोगी	,, ,,	,, ,,
५ वेद ,,	पुरुषवेदी	२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १३, १२, ११, १०	२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४
	स्त्रीवेदी	२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १३, १२, ११	२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ५
	नपुंसकवेदी	२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३, १२	२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ५
	अपगतवेदी	२७,२६,२५,२३,२२के विना शेष १८	७,६,५,४,३,२,१
६ कषाय ,,	क्रोधकषायी	२७,२६,२५,२३,२२,२१,२०,१९, १८,१४,१३,१२,११,१०,४,३	२२, २१, १९, १८, १७, १५,१४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४,३
	मान ,,	२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ४, ३, २	२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७,६,५,४,३,२
	माया ,,	सर्व संक्रमस्थान	मानवत्, विशेष १
	लोभ ,,	,, ,,	मायावत्
	अकषायी	२	२
७ ज्ञान ,,	अज्ञानत्रय	२७, २६, २५, २३, २१	२२, २१, १७
	सद्ज्ञानत्रय	२५ को छोड़कर शेष २२	२२, २१ को छोड़कर शेष १६
	मनःपर्ययज्ञान	२६, २५ को छोड़ शेष २१	११, १०, ९, ७, ६, ५,४,३,२,१
८ संयम ,,	सामायिक	२५ को छोड़कर शेष २२	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
	छेदोपस्थापना	,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
	परिहारविशु०	२७, २३, २२, २१	११, १०, ९
	सूक्ष्मसाम्पराय	२	२
	यथाख्यात	,,	,,
	संयमासंयम	२७, २६, २३, २२, २१	१५, १४, १३
	असंयम	२७, २६, २५, २३, २२, २१	२२, २१, १९, १८, १७

कम्मंसियट्ठाणेसु य बंधट्ठाणेसु संकमट्ठाणे ।
एक्केक्केण समाणय बंधेण य संकमट्ठाणे ॥ ५६ ॥

९ दर्शन ,,	चक्षुदर्शिनी	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
	अचक्षुदर्शिनी	,, ,,	,, ,,
	अवधिदर्शिनी	२५ को छोड़कर शेष २२	२२ और २१ को छोड़कर शेष १६
१० लेश्या ,,	कृष्ण०	२७, २६, २५, २३, २१	२२, २१, १९, १८, १७
	नील०	,, ,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
	कापोत०	,, ,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
	तेज०	२७, २६, २५, २३, २२, २१	२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९
	पद्म०	,, ,, ,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
	शुक्ल०	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
११ भव्य ,,	भव्य०	,, ,,	,, ,,
	अभव्य०	२५	२१
१२ सम्यक्त्व,,	औपशमिक	२७, २६, २३, २२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४, २	१९, १५, ११, ७, ६, ५, ४, ३, २
	क्षायिक०	२१, २०, १९, १८, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ६, ५, ४, ३, २, १	१७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १
	वेदक०	२७, २३, २२, २१	१९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९
	सम्यग्मि०	२५, २१	१७
	सासादन०	,, ,,	२१
	मिथ्या०	२७, २६, २५, २३	२२, २१
१३ संज्ञि ,,	संज्ञी	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
	असंज्ञी	२७, २६, २५	२२, २१
१४ आहार ,,	आहारक	सर्व संक्रमस्थान	सर्व प्रतिग्रहस्थान
	अनाहारक	२७, २६, २५, २३, २१	२२, २१, १९, १७

अब ग्रन्थकार मोहनीयकर्मके बन्धस्थान और सत्त्वस्थानके साथ संक्रमस्थानोंके एक-संयोगी, द्वि-संयोगी भंगोंको निकालनेके लिए सन्निकर्षकी सूचना करते हैं—

कर्मांशिक स्थानमें अर्थात् मोहनीयके सत्त्वस्थानोंमें और बन्धस्थानोंमें संक्रम-स्थानोंकी गवेषणा करना चाहिए। तथा एक-एक बन्धस्थान और सत्त्वस्थानके साथ संयुक्त संक्रमस्थानोंके एक-संयोगी, द्वि-संयोगी भंगोंको निकालना चाहिए ॥५६॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा ओघ और आदेशकी अपेक्षासे निरूपण किये संक्रम-स्थानों और उनके प्रतिनियत प्रतिग्रहस्थानोंका बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमें अनुमार्गण करनेका संकेत किया गया है। यहाँपर उनका कुछ स्पष्टीकरण किया जाता है—कर्मांशिकस्थान सत्कर्मस्थान और सत्त्वस्थान, ये तीनों पर्यायवाची नाम हैं। मोहकर्मके सत्त्वस्थान पन्द्रह होते हैं—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १। मोहकर्मके बन्धस्थान दश होते हैं—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २ और १। मोहकर्मके तेईस संक्रमस्थान पहले बतलाये जा चुके हैं। अब सत्त्वस्थानोंमें उन संक्रम-स्थानोंका अनुमार्गण करते हैं—जिस मिथ्यादृष्टि जीवके अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व है

उसके सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम होता है १। सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वप्रकृतिकी एक समय कम आवलीप्रमाण गोपुच्छा शेष रह जानेपर अट्ठाईसके सत्त्वके साथ छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है। अथवा छब्बीस-प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रथमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके साथ छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २। जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेपर अथवा अट्ठाईसकी सत्तावाले किसी दूसरे जीवके मिश्रगुणस्थानको प्राप्त होनेपर अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके साथ पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ३। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके उसके संयोजन करनेवाले मिथ्यादृष्टिके प्रथमावलीमें अट्ठाईसके सत्त्वस्थानके साथ तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। अथवा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करते हुए चरमफालीका संक्रमण कर एक समय कम आवलीमात्र गोपुच्छाके शेष रहनेपर उसी सत्त्वस्थानके साथ वही संक्रमस्थान पाया जाता है ४। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके एक आवलीकाल तक अट्ठाईसके सत्त्वके साथ इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ५। इस प्रकार ये पाँच संक्रमस्थान अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पाये जाते हैं। अब सत्ताईस प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानके साथ संभव संक्रमस्थानोंका अन्वेषण करते हैं—अट्ठाईसकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर सत्ताईसका सत्त्व होकर छब्बीसका संक्रम होता है १। पुनः उसीके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए समयोन आवलीमात्र गोपुच्छाके अवशेष रहनेपर सत्ताईसके सत्त्वके साथ पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २। इस प्रकार सत्ताईसके सत्त्वस्थानके साथ छब्बीस और पच्चीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं। अब छब्बीस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ संभव संक्रमस्थानकी गवेषणा करते हैं-अनादिमिथ्यादृष्टि या छब्बीसकी सत्तावाले सादिमिथ्यादृष्टिके छब्बीस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ पच्चीस-प्रकृतिक एक संक्रमस्थान पाया जाता है। इसके अन्य संक्रमस्थानोंका पाया जाना संभव नहीं है। अब चौबीसके सत्त्वस्थानके साथ संभव संक्रमस्थानोंका अनुमार्गण करते हैं—अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासे परिणत सम्यग्दृष्टिके चौबीसके सत्त्वस्थानके साथ तेईसका संक्रमस्थान पाया जाता है १। पुनः उसी जीवके उपशमश्रेणीपर चढ़कर अन्तरकरण करनेके अनन्तर आनुपूर्वी-संक्रमण करनेपर बाईसका संक्रमस्थान पाया जाता है २। पुनः उसी जीवके द्वारा नपुंसकवेदका उपशम कर देनेपर इक्कीसका संक्रमस्थान होता है ३। पुनः स्त्रीवेदका उपशम कर देनेपर बीसका संक्रमस्थान होता है ४। उसी जीवके छह नोकषायोंका उपशम करनेपर चौदहका संक्रमस्थान पाया जाता है ५। पुनः पुरुषवेदका उपशम करनेपर तेरहका संक्रमस्थान पाया जाता है ६। अनन्तर दोनों मध्यम क्रोधोंके उपशम होनेपर ग्यारहका संक्रमस्थान होता है ७। संज्वलनक्रोधके उपशम होनेपर दशका संक्रमस्थान होता है ८। दोनों मध्यम मानोंके उपशम

होनेपर आठका संक्रमस्थान होता है ९ । संज्वलनमानके उपशम होनेपर सातका संक्रमस्थान पाया जाता है १० । दोनों मध्यम मायाकषायोंके उपशम होने पर पाँचका संक्रमस्थान पाया जाता है ११ । संज्वलनमायाके उपशम होनेपर चारका संक्रमस्थान होता है १२ । दोनों मध्यम लोभोंके उपशम होनेपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो ही प्रकृतियोंका संक्रमण होता है १३ । इस प्रकार चौबीस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ ऊपर बतलाये गये तेरह संकमस्थान पाये जाते हैं । इसी जीवके श्रेणीसे उतरते हुए जो संक्रमस्थान पाये जाते हैं, वे पुनरुक्त होनेसे उपर्युक्त संक्रमस्थानोंके ही अन्तर्गत हो जाते हैं । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान और दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी चरम फालीके पतनके अनन्तर पाया जानेवाला बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान भी पुनरुक्त होनेसे पृथक् नहीं कहा गया है । अब तेईसके सत्त्वस्थानके साथ संभव संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करते हैं–चौबीसकी सत्तावाले जीवके दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत होकर मिथ्यात्वका क्षपण कर देनेपर तेईसके सत्त्वस्थानके साथ बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १ । पुनः उसीके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको क्षपण करते हुए समयोन आवलीमात्र गोपुच्छाओंके अवशिष्ट रहनेपर उसी तेईसके सत्त्वस्थानके साथ इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । इस प्रकार तेईस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं । इसी उपर्युक्त जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके निःशेषरूपसे क्षय कर देनेपर बाईसके सत्त्वस्थानके साथ इक्कीस-प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान पाया जाता है । अब इक्कीसके सत्त्वस्थानके साथ संभव संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करते हैं–क्षायिकसम्यग्दृष्टिके इक्कीसके सत्त्वस्थानके साथ इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । पुनः उसके उपशमश्रेणीपर चढ़कर आनुपूर्वी-संक्रमणके करनेपर इक्कीसके सत्त्वके साथ बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । इसी प्रकारसे इसके अनन्तर संभव दश संक्रमस्थानोंका अनुमार्गण कर लेना चाहिए । इस प्रकार इक्कीसके सत्त्वके साथ उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २१,२०,१९,१८,१२,११,९,८,६,५,३ और २ प्रकृतिक बारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं । तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा आठ मध्यम कषायोंका क्षपण करते हुए समयोन आवलीमात्र गोपुच्छाओंके अवशिष्ट रहनेपर इक्कीसके सत्त्वके साथ तेरह-प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी पाया जाता है । इसे पूर्वोक्त बारहमें मिला देनेपर कुल १३ संक्रमस्थान इक्कीसके सत्त्वस्थानके साथ पाये जाते हैं । पुनः उसी क्षपकके द्वारा आठों मध्यम कषायोंके क्षपण कर देनेपर तेरह प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानके साथ तेरह-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १ । पुनः उसी जीवके द्वारा अन्तकरण करनेके पश्चात् आनुपूर्वी-संक्रमण करनेपर तेरह-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ बारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान भी पाया जाता है २ । इस प्रकार तेरहके सत्त्वस्थानके साथ तेरह और बारह-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं । इसी जीवके द्वारा नपुंसकवेदका क्षयकर देनेपर बारहके सत्त्वस्थानके साथ ग्यारह-प्रकृतिक

संक्रमस्थान पाया जाता है। पुनः स्त्रीवेदके क्षयकर देनेपर ग्यारह-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ दश-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। पुनः हास्यादि छह नो-कषायोंके क्षपणके अनन्तर पंच-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ चार-प्रकृतिक संक्रमणस्थान पाया जाता है। पुनः नवकबद्ध पुरुषवेदके क्षय हो जानेपर चार-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ तीन-प्रकृतिक संक्रम-स्थान पाया जाता है। पुनः संज्वलनक्रोधके क्षय कर देनेपर तीन-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ दोका संक्रम होता है। पुनः संज्वलनमानके क्षय कर देनेपर दो-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ एक प्रकृतिका संक्रम होता है। इस प्रकार मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंके साथ संक्रमस्थानोंकी मार्गणा की गई।

मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका चित्र

सत्त्वस्थान	संक्रमस्थान	सत्त्वस्थान	संक्रमस्थान	सत्त्वस्थान	संक्रमस्थान	सत्त्वस्थान	संक्रमस्थान
२८	२७	२४	२३	२३	२२	२१	८
,,	२६	,,	२२	,,	२१	,,	६
,,	२५	,,	२१	२२	२१	,,	५
,,	२३	,,	२०	२१	२१	,,	३
,,	२१	,,	१४	,,	२०	,,	२
२७	२६	,,	१३	,,	१९	१३	१३
,,	२५	,,	११	,,	१८	,,	१२
२६	२५	,,	१०	,,	१३	१२	११
		,,	८	,,	१२	११	१०
		,,	७	,,	११	५	४
		,,	५	,,	९	४	३
		,,	४			३	२
		,,	२			२	१

अब मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका अनुगम करते हैं—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके बाईस-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। उसी जीवके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर बाईसके बन्धस्थानके साथ छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। उसी जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देनेपर बाईसके ही बन्धस्थानके साथ पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ३। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके प्रथम आवलीमें बाईस-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ४। इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस और तेईस-प्रकृतिक चार संक्रमस्थान पाये जाते हैं। अब इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी मार्गणा करते हैं—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना-पूर्वक सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम आवलीमें इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया

जाता है २ । इस प्रकार इक्कीसके बन्धस्थानमें पच्चीस और इक्कीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अब सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी मार्गणा करते हैं-सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और अविसंयोजनाकी अपेक्षा इक्कीस और पच्चीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं २ । अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ३ । उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टिके सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ४ । उसीके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करने पर तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ५ । स्त्रीवेदका उपशमन कर देनेके अनन्तर मिथ्यात्वका क्षय करनेपर उसीके बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर उसीके इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस प्रकार सर्व मिलाकर सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानमें उपर्युक्त छह संक्रमस्थान होते हैं । अब तेरह-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करते हैं-संयतासंयतके तेरह-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान उसी संयतासंयतके तेरहके बन्धके साथ छब्बीसका संक्रमस्थान पाया जाता है २ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले संयतासंयतके तेईसका संक्रमस्थान पाया जाता है ३ । उसीके द्वारा मिथ्यात्वका क्षय किये जानेपर बाईसका संक्रमस्थान पाया जाता है ४ । सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय करने पर उसीके इक्कीसका संक्रमस्थान होता है ५ । इस प्रकार तेरह-प्रकृतिक बन्धस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक पांच संक्रमस्थान होते हैं । अब नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी अनुमार्गणा करते हैं-प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतके नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईसका संक्रमस्थान होता है १ । उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले अप्रमत्तसंयतके प्रथम समयमें नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना-परिणत प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतके नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ३ । उसी बन्धस्थानके साथ मिथ्यात्वके क्षयकी अपेक्षा बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ४ । तथा सम्यग्मिथ्यात्वके क्षयकी अपेक्षा इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ५ । इस प्रकार नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें सत्ताईस, छब्बीस, तेईस, बाईस और इक्कीस-प्रकृतिक पांच संक्रमस्थान होते हैं । अब पांच-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका अन्वेषण करते हैं-चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानवर्ती उपशामकके पांच-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । वहींपर आनुपूर्वीसंक्रमके वशसे बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । नपुंसकवेदके उपशमन करनेपर इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । स्त्रीवेदका उपशमन करनेपर बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान

होता है ४ । पुनः इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आनुपूर्वीसंक्रमण करके नपुंसकवेदके उपशम करनेपर उन्नीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । उसीके द्वारा स्त्रीवेदका उपशमन कर देनेपर अट्ठारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । क्षपकके द्वारा आठ मध्यम कषायोंके क्षयकर देनेपर तेरह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७ । अन्तरकरण करके आनुपूर्वीसंक्रमणके करनेपर बारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८ । नपुंसकवेदके क्षय कर देनेपर ग्यारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९ । स्त्रीवेदके क्षय कर देनेपर दश-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १० । इस प्रकार पाँच-प्रकृतिक बन्धस्थानमें तेईस, बाईस, इक्कीस, बीस, उन्नीस, अट्ठारह, तेरह, बारह, ग्यारह और दश-प्रकृतिक दश संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अब चार-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी गवेषणा करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाले उपशामकके द्वारा छह नोकषायोंका उपशम कर दिये जानेपर चार-प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ चौदह-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १ । पुनः उसीके पुरुषवेदका उपशम हो जानेपर तेरह-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा छह नोकषायोंका उपशम कर दिये जानेपर बारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ३ । उसीके द्वारा पुरुषवेदका उपशम कर दिये जानेपर ग्यारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । क्षपक संयतके द्वारा छह नोकषायोंका क्षय कर देनेपर चार-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । उसीके द्वारा पुरुषवेदका क्षय कर देनेपर तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । इस प्रकार चार-प्रकृतिक बन्धस्थानमें चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, चार और तीन-प्रकृतिक छह संक्रम-स्थान पाये जाते हैं । अब तीन-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंकी प्ररूपणा करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा संज्वलनक्रोधके बन्ध-व्युच्छेद कर देनेपर शेष संज्वलन-त्रिकके बन्धस्थानके साथ ग्यारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १ । पुनः संज्वलनक्रोधके उपशम कर देनेपर दश-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा दोनों मध्यम क्रोधकषायोंके उपशम करनेपर नौ-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ३ । उसीके द्वारा संज्वलनक्रोधका उपशमकर देनेपर आठ-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ४ । क्षपकके द्वारा संज्वलनक्रोधके बन्ध-व्युच्छेद कर दिये जानेपर तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ५ । पुनः उसी क्षपकके द्वारा संज्वलनक्रोधके क्षय कर दिये जानेपर दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ६ । इस प्रकार तीन-प्रकृतिक बन्धस्थानमें ग्यारह, दश, नौ, आठ, तीन और दो-प्रकृतिक छह संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अब दो-प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका अन्वेषण करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा दोनों मध्यम मानकषायोंके उपशम कर देनेपर आठ-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । उसीके द्वारा संज्वलनमानके उपशम कर देनेपर सात-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा दोनों मध्यम मानकषायोंके उपशम कर देनेपर छह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । पुनः संज्वलनमानके उपशम कर देनेपर पाँच-

प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । क्षपकके द्वारा संज्वलनमानके बन्ध-विच्छेद कर देनेपर उसके नवकबन्ध-संक्रमणकी अपेक्षा दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । और उसके निःशेष क्षय कर देनेपर एक-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस प्रकार दो-प्रकृतिक बन्धस्थानमें आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक-प्रकृतिक छह संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अब एक-प्रकृतिक बन्धस्थानमें पाये जानेवाले संक्रमस्थानोंका निरूपण करते हैं-चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा दोनों मध्यम मानकषायोंके उपशम करनेपर संज्वलनमायाके नवकबन्धके साथ पाँच-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है १ । पुनः संज्वलनमायाके उपशम कर देनेपर चार-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा दोनों मध्यम मायाकषायोंके उपशम करनेपर संज्वलनमायाके नवकबन्धके साथ तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । संज्वलनमायाके उपशम कर देनेपर दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । और एक संज्वलनलोभका बन्ध करनेवाले क्षपकके संज्वलनमायाके संक्रमणरूप एक-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है । इस प्रकार एक-प्रकृतिक बन्धस्थानमें पाँच, चार, तीन, दो और एक-प्रकृतिक पाँच संक्रमस्थान पाये जाते हैं । इस प्रकार बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका चित्र

बन्धस्थान	संक्रमस्थान	बन्धस्थान	संक्रमस्थान
२२	२७, २६, २५, २३	५	२३,२२,२१,२०,१९,१८,१३,१२,११,१०
२१	२५, २१	४	१४, १३, १२, ११, ४, ३
१७	२७, २६, २५, २३, २२, २१	३	११, १०, ९, ८, ३, २
१३	२७, २६, २३, २२, २१	२	८, ७, ६, ५, २, १
९	२७, २६, २३, २२, २१	१	५, ४, ३, २, १

उपर्युक्त प्रकारसे एक-संयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करके अब बन्ध और सत्त्व इन दोनोंको आधार बनाकर संक्रमस्थानोंके द्विसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करते हैं—अट्ठाईस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ बाईस-प्रकृतिक बन्धस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस और तेईस-प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अट्ठाईस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थानमें पच्चीस और इक्कीस-प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं । इसी सत्त्वस्थानके साथ सत्तरह-प्रकृतिक बन्धस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस और तेईस-प्रकृतिक चार संक्रमस्थान पाये जाते हैं । अट्ठाईसके सत्त्वस्थानके साथ तेरह और नौ-प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें सत्ताईस, छब्बीस और तेईस-प्रकृतिक तीन तीन संक्रमस्थान पाये जाते हैं । ऊपरके बन्धस्थानोंमें अट्ठाईस-प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ द्विसंयोगी भंग सम्भव नहीं हैं । इस प्रकारसे एक एक सत्त्वस्थानके साथ यथासम्भव बन्धस्थानोंको संयुक्त करके संक्रमस्थानोंका अनुमार्गण करना चाहिए । अथवा एक एक बन्धस्थानके साथ यथासम्भव सत्त्वस्थानोंको संयुक्त करके भी संक्रमस्थानोंकी मार्गणा की जा सकती है । इसी प्रकार एक एक सत्त्वस्थानको आधार बनाकर

सादि य जहण्णसंकम कदिखुत्तो होइ ताव एक्केक्के ।
अविरहिद सांतरं केवचिरं कदिभाग परिमाणं ॥ ५७ ॥
एवं दव्वे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।
संकमणयं णयविदू णेया सुददेसिदमुदारं ॥ ५८ ॥

१२८. सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए इमे अणियोगद्दारा*। १२९. तं जहा। १३०. ठाणसमुक्कित्तणा सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो

बन्ध और संक्रमस्थानोंकी, तथा एक एक संक्रमस्थानको आधार बनाकर बन्ध और सत्त्व-स्थानोंके परिवर्तनके द्वारा द्विसंयोगी भंगोंको निकालनेकी भी सूचना ग्रन्थकारने 'एक्केक्केण समाणय' पदके द्वारा की है, सो विशेष जिज्ञासु जनोंको जयधवला टीकासे जानना चाहिए।

प्रकृतिस्थानसंक्रम अधिकारमें सादिसंक्रम जघन्यसंक्रम, अल्पबहुत्व, काल, अन्तर, भागाभाग और परिमाण अनुयोगद्वार होते हैं। इस प्रकार नय-विज्ञ जनोंको श्रुतोपदिष्ट, उदार अर्थात् विशाल और गम्भीर संक्रमण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और सन्निपात अर्थात् सन्निकर्षकी अपेक्षा जानना चाहिए ॥५७-५८॥

विशेषार्थ–प्रकृतिस्थानसंक्रमनामक अधिकारमें कितने अनुयोगद्वार होते हैं, इस बातका वर्णन इन दोनों गाथाओंके द्वारा किया गया है। जिसमेंसे कुछ अनुयोगद्वारोंके नाम तो गाथामें निर्दिष्ट हैं और कुछकी 'च' पदके द्वारा, नामैकदेशसे या प्रकारान्तरसे सूचना की गई है। जैसे–एक-एक संक्रमस्थानमें कितने जीव होते हैं, इस पदसे अल्पबहुत्व-की सूचना की गई है। 'अविरहित' पदसे एक जीवकी अपेक्षा काल, 'सान्तर' पदसे एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, 'कति भाग' पदसे भागाभाग, 'एवं' पदसे भंगविचय, 'द्रव्य' पदसे द्रव्यानुगम, 'क्षेत्र' पदसे क्षेत्रानुगम और स्पर्शनानुगम, 'काल' पदसे नानाजीवोंकी अपेक्षा कालानुगम और अन्तरानुगम तथा 'भाव' पदसे भावानुगम कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम और अजघन्य संक्रम, इन सात अनुयोगद्वारोंकी सूचना प्रथम गाथा-पठित 'च' पदसे की गई है। द्वितीय गाथा-पठित 'च' पदसे भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि आदिक अनुयोगद्वारोंका ग्रहण किया गया है। इस प्रकार गाथा-पठित या गाथा-सूचित इन उपर्युक्त सर्व अनुयोगद्वारोंसे संक्रम अधिकारको भले प्रकार जानना चाहिए, ऐसी सूचना गाथासूत्र-कारने की है। इन्हींके आधार पर चूर्णिकारने आगे यथासंभव कुछ अनुयोगद्वारोंसे संक्रमकी प्ररूपणा की है।

चूर्णिसू०–इस प्रकार संक्रमण-सम्बन्धी गाथा-सूत्रोंकी समुत्कीर्तनाके समाप्त होनेपर ये वक्ष्यमाण अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। वे इस प्रकार हैं–स्थानसमुत्कीर्तना, सर्वसंक्रम,

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अणियोगद्दारगाहा' ऐसा पाठ मुद्रित है। पर 'गाहा' यह पद टीकाका अंश है जो कि 'गाहा' पदको जोड़नेपर 'गाहासुत्तसमुक्कित्तणा–' ऐसा सुन्दर और प्रकरण-संगत पाठ बन जाता है। (देखो पृ० ९८७)

जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं सण्णियासो अप्पाबहुगं भुजगारो* पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति ।

१३१. ठाणसमुक्कित्तणा त्ति जं पदं तस्स विहासा जत्थ एगा गाहा ।

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ ॥१॥

१३२. एवमेदाणि पंच ट्ठाणाणि मोत्तूण सेसाणि तेवीस संकमट्ठाणाणि १३३. एत्थ पयडिणिद्देसो कायव्वो ।

नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, अल्पबहुत्व, भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि । इनके द्वारा संक्रमणका अनुमार्गण करना चाहिए ॥१२८-१३०॥

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंमें जो 'स्थानसमुत्कीर्तना' यह पद है, उसकी विभाषा की जाती है । इस स्थानसमुत्कीर्तना-नामक अनुयोगद्वारमें "अट्ठावीस चउवीस०" इत्यादि एक सूत्रगाथा निबद्ध है । जिसका अर्थ इस प्रकार है–"अट्ठाईस, चौबीस, सत्तरह, सोलह और पन्द्रह-प्रकृतिक जो ये पाँच स्थान हैं, उन्हें छोड़कर शेप प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम होता है ।" इस प्रकार इन पाँच स्थानोंको छोड़कर शेप तेईस संक्रमस्थान होते हैं । यहाँपर प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिए ॥१३१-१३३॥

विशेषार्थ–यहाँपर चूर्णिकारने प्रकृतियोंके निर्देशकी जो सूचना की है, उसे संक्षेपमें इस प्रकार जानना चाहिए–मोहनीयकर्मके दो भेद हैं–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । दर्शनमोहनीयके तीन भेद होते हैं–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति । चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं–कषाय और नोकषाय । कषायके सोलह और नोकषायके नौ भेद होते हैं । ये सब मिलाकर मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ हो जाती हैं । जहाँपर ये सब प्रकृतियाँ पाई जावें, वह अट्ठाईस-प्रकृतिक स्थान है । जहाँपर उनमेंसे एक कम पाई जावे, वह सत्ताईस-प्रकृतिक स्थान है, जहाँपर दो कम पाई जावें, वह छब्बीस-प्रकृतिक स्थान है । इस प्रकार सर्व स्थानोंको जानना चाहिए । किस स्थानमें किस किस प्रकृतिको कम करना चाहिए, इसका निर्णय आगे चूर्णिकार स्वयं करेंगे ।

---

*जयधवलाकी ताम्रपत्रीय मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियोंमें 'भुजगारो' के पश्चात् 'अप्पदरो अवट्ठिदो अवत्तव्वगो' इतना पाठ और भी उपलब्ध होता है । पर ये तीनों तो भुजाकार अनुयोगद्वारके ही भीतर आ जाते हैं । क्योंकि, उच्चारणावृत्ति और महाबन्ध आदि में सर्वत्र अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यका वर्णन भुजाकार अनुयोगद्वारमें ही किया गया है । तथा आगे या पीछे सर्वत्र भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि, इन तीनका ही निर्देश चूर्णिकारने किया है । प्रकृत प्रकृतिसंक्रमण अधिकारके अन्तमें दी गई उच्चारणा वृत्तिमें भी इसी प्रकारसे वर्णन किया गया है, अतः हमने उक्त पाठको मूल में नहीं दिया है ।

१३४. अट्ठावीसं केण कारणेण ण संकमइ ? १३५. दंसणमोहणीय-चरित्त-मोहणीयाणि एक्केक्कम्मि ण संकमंति । १३६. तदो चरित्तमोहणीयस्स जाओ पयडीओ बज्झंति, तत्थ पणुवीसं पि संकमंति । १३७. दंसणमोहणीयस्स उक्कस्सेण दो पयडीओ संकमंति । १३८. एदेण कारणेण अट्ठावीसाए णत्थि संकमो ।

१३९. सत्तावीसाए काओ पयडीओ ? १४०. पणुवीसं चरित्तमोहणीयाओ, दोण्णि दंसणमोहणीयाओ । १४१. छव्वीसाए सम्मत्ते उव्वेल्लिदे । १४२. अहवा पढम-समयसम्मत्ते उप्पाइदे । १४३. पणुवीसाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा सेसाओ ।

१४४. चउवीसाए किं कारणं णत्थि ? १४५. अणंताणुबंधिणो सव्वे अवणि-ज्जंति । १४६. एदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि । १४७. तेवीसाए अणंताणुबंधीसु

अब संक्रमके योग्य-अयोग्य स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं-

शंका-अट्ठाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रमण किस कारणसे नहीं होता ? ॥१३४॥

समाधान-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियाँ परस्पर एक-दूसरेमें नहीं संक्रमण करती हैं, इसलिए चारित्रमोहनीयकी जो प्रकृतियाँ बँधती हैं, उनमें पच्चीसों ही प्रकृतियाँ संक्रमित हो जाती हैं । दर्शनमोहनीयकी अधिक-से-अधिक दो प्रकृतियाँ संक्रमण करती हैं । इसका कारण यह है कि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवमें *मिथ्यात्वके प्रतिग्रह-प्रकृतिक होनेसे उसमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति इन दोनोंका* संक्रम पाया जाता है । तथा सम्यग्दृष्टि जीवमें सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रतिग्रहरूप होनेसे उसमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम देखा जाता है, इस कारणसे अट्ठाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रमण नहीं होता है ॥१३५-१३८॥

शंका-सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानमें कौनसी प्रकृतियाँ होती हैं ? ॥१३९॥

समाधान-चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियाँ, तथा दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, अथवा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये दो प्रकृतियाँ होती हैं ॥१४०॥

चूर्णिसू०-सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक मिथ्यादृष्टिके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलनाकर देनेपर शेष प्रकृतियोंके समुदायात्मक छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर प्रथमसमयवर्ती उपशमसम्यक्त्वीके भी छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । क्योंकि, उस समय मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण पाया जाता है । किन्तु उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण नहीं पाया जाता । पच्चीस-प्रकृतिक स्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष प्रकृतियाँ होती हैं ॥१४१-१४३॥

शंका-चौबीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होनेका क्या कारण है ? ॥१४४॥

समाधान-अनन्तानुबन्धीकी सभी प्रकृतियाँ एक साथ ही विसंयोजित की जाती हैं,

अवगदेसु । १४८. बावीसाए मिच्छत्ते खविदे सम्मामिच्छत्ते सेसे । १४९. अहवा चउवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुव्वीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो । १५०. एक्कवीसाए खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवग-अणुवसामगस्स ।

१५१. चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा णउंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते[1]। १५२. वीसाए एक्कवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुव्वीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो[2]। १५३. चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा आणुपुव्वीसंकमे कदे इत्थिवेदे उवसंते छसु कम्मेसु अणुवसंतेसु । १५४. एगूणवीसाए एक्कवीसदिसंतकम्मंसियस्स णवुंसयवेदे

उनके विसंयोजन होनेपर चौबीसका सत्त्व होकर तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इस कारणसे चौबीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता है ॥१४५-१४६॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके अपगत (विसंयोजित) होनेपर चारित्रमोहनीयकी शेष इक्कीस तथा दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंके मिलानेपर तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके मिथ्यात्वके क्षय होनेपर तथा सम्यग्मिथ्यात्वके शेष रहनेपर बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके आनुपूर्वी-संक्रमण करनेपर जबतक उसके नपुंसकवेद अनुपशान्त है, अर्थात् नपुंसकवेदका उपशम नहीं हो जाता, तबतक उसके बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है, ऐसे अक्षपक और अनुपशामक जीवके इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ॥१४७-१५०॥

विशेषार्थ—उपशम या क्षपक श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके नवें गुणस्थानके संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जानेपर ही उपशामक या क्षपक संज्ञा प्राप्त होती है। अतः उससे पूर्ववर्ती सभी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका यहाँ अक्षपक और अनुपशामक पदसे ग्रहण किया गया है।

चूर्णिसू०—अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके नपुंसकवेदके उपशान्त हो जानेपर तथा स्त्रीवेदके अनुपशान्त रहने तक इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी-संक्रमण करनेपर जबतक नपुंसकवेद अनुपशान्त रहता है, तबतक बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी-संक्रमण करनेपर नपुंसकवेदकी उपशामनाके पश्चात् स्त्रीवेदके उपशान्त होनेपर तथा हास्यादि छह नोकषायोंके अनुपशान्त रहनेपर भी बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

१. जेणेदं सुत्तं देसामासियं, तेण चउवीससंतकम्मिय-उवसमसम्माइट्ठिस्स सासणभावं पडिवण्णस्स पढमावलियाए चउवीससंतकम्मियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स वा इगिवीससंकमट्ठाणं पयारंतरपडिग्गहियं होइ त्ति वत्तव्वं, तत्थ पयारंतरपरिहारेण पयदसंकमट्ठाणसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो। अदो चेव ओदरमाणगस्स वि चउवीससंतकम्मियस्स सत्तसु कम्मेसु ओकड्डिदेसु जाव इत्थि-णवुंसयवेदा उवसंता ताव इगिवीससंतकम्मट्ठाणसंभवो सुत्तंतब्भूदो वक्खाणेयव्वो। जयध०

२. ओदरमाणगस्स पुण णवुंसयवेदे उवसंते चेय पयदसंकमट्ठाणसंभवो त्ति एसो वि अत्थो एत्थेव सुत्ते णिलीणो त्ति वक्खाणेयव्वो। जयध०

उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते[1]। १५५. अट्ठारसण्हमेकावीसदिकम्मंसियस्स इत्थिवेदे उवसंते जाव छण्णोकसाया अणुवसंता।

१५६. सत्तारसण्हं केण कारणेण णत्थि संकमो ? १५७. खवगो एकावीसादो एकपहारेण अट्ठकसाए अवणेदि। १५८. तदो अट्ठकसाएसु अवणिदेसु तेरसण्हं संकमो होइ। १५९. उवसामगस्स वि एकावीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु बारसण्हं संकमो भवदि। १६०. चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु चोद्दसण्हं संकमो भवदि। १६१. एदेण कारणेण सत्तारसण्हं वा सोलसण्हं वा पण्णारसण्हं वा संकमो णत्थि।

१६२. चोद्दसण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसामिदेसु पुरिसवेदे अणुवसंते। १६३. तेरसण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते कसाएसु अणुवसंतेसु। १६४. खवगस्स वा अट्ठकसाएसु खविदेसु जाव अणाणुपुव्वीसंकमो। १६५.

इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके नपुंसकवेदके उपशान्त होनेपर तथा स्त्रीवेदके अनुपशान्त रहनेपर उन्नीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। उसी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके स्त्रीवेदके उपशान्त होनेपर जबतक हास्यादि छह नोकषाय अनुपशान्त रहती हैं, तबतक अट्ठारह-प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ॥१५१-१५५॥

शंका–सत्तरह प्रकृतियोंका संक्रमण किस कारणसे नहीं होता है, अर्थात् सत्तरह-प्रकृतिक संक्रमस्थान क्यों नहीं होता ? ॥१५६॥

समाधान–क्योंकि, इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला क्षपक एक ही प्रहारसे एक साथ आठ मध्यम कषायोंका क्षय करता है, इसलिए इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंसे आठ कषायोंके अपनीत करनेपर तेरह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। इस कारण सत्तरह-प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता ॥१५७-१५८॥

चूर्णिसू०–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके भी हास्यादि छह कर्मोंके उपशान्त होनेपर बारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके हास्यादि छह कर्मोंके उपशान्त होनेपर चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता है। इस कारणसे सत्तरह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता है। अतएव सत्तरह, सोलह और पन्द्रह-प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं कहे गये हैं ॥१५९-१६१॥

चूर्णिसू०–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके हास्यादि छह कर्मोंके उपशमित होनेपर और पुरुषवेदके अनुपशान्त रहनेपर चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके पुरुषवेदके उपशान्त होनेपर और आठ कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता है। अथवा क्षपकके आठ मध्यम कषायोंके क्षपित होनेपर जबतक अनानुपूर्वी-संक्रम रहता है, तबतक तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता है। उसी

१. ओदरमाणगं पि समस्सियूणेदस्स ट्ठाणस्स संभवो समयाविरोहेणाणुगंतव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो। जयध०

बारसण्हं खवगस्स आणुपुव्वीसंकमो आढत्तो जाव णवुंसयवेदो अक्खीणो । १६६. एक्कावीसदिकम्मंसियस्स वा छसु कम्मेसु उवसंतेसु पुरिसवेदे अणुवसंते । १६७. एक्कारसण्हं खवगस्स णउंसयवेदे अक्खीणे । १६८. अथवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते अणुवसंतेसु कसाएसु । १६९. चउवीसदिकम्मंसियस्स वा दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसंते[1] । १७०. दसण्हं खवगस्स इत्थिवेदे खीणे छसु कम्मंसेसु अक्खीणेसु । १७१. अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स कोधसंजलणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु । १७२. णवण्हं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसंते[2] । १७३. चउवीसदिकम्मंसियस्स खवगस्स च णत्थि ।

तेरह प्रकृतियोंके संक्रमण करनेवाले क्षपकके आनुपूर्वी-संक्रम आरम्भ कर जबतक नपुंसकवेद क्षीण नहीं होता, तबतक बारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके हास्यादि छह कर्मोंके उपशान्त होनेपर और पुरुषवेदके अनुपशान्त रहने तक बारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । बारह प्रकृतियोंके संक्रमण करनेवाले उसी क्षपकके नपुंसकवेदके क्षय कर देनेपर और स्त्रीवेदके क्षीण नहीं होने तक तीन संज्वलन और आठ नोकषाय इन ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले क्षायिकसम्यक्त्वी उपशामकके पुरुषवेदके उपशान्त होनेपर और अवशिष्ट कषायोंके अनुशान्त रहनेपर भी ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दोनों मध्यम क्रोधोंके उपशान्त होनेपर और संज्वलनक्रोधके अनुपशान्त रहनेपर भी ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रमण करनेवाले क्षपकके स्त्रीवेदके क्षीण हो जानेपर और छह नोकषायोंके अक्षीण रहने तक तीन संज्वलन और सात नोकषाय, इन दश प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके संज्वलनक्रोधके उपशान्त होनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर भी दश प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले क्षायिकसम्यक्त्वी उपशामकके दोनों क्रोधोंके उपशान्त होनेपर और संज्वलनक्रोधके अनुपशान्त रहने तक शेष नौ प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । यह नौ-प्रकृतिक संक्रमस्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके और क्षपकके नहीं होता है ॥१६२-१७३॥

विशेषार्थ—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके नौ-प्रकृतियोंका संक्रमण क्यों नहीं होता, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके संज्वलनक्रोधका उपशमन करनेके उपरान्त जब दोनों मध्यम मानकषाय उपशान्त हो जाते हैं, तब उसके उससे अधस्तन संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होती है । तथा स्त्रीवेदके क्षयके साथ दश प्रकृतियोंके

१. ओदरमाणसंबंधेण कि पयदसंकमट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासयभावेणावट्ठाणादो । जयध०

२. ओदरमाणसंबंधेण वि एत्थ पयदसंकमट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, विरोहाभावादो । जयध०

१७४. अट्ठण्हं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे कोहे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु । १७५. अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते, माणसंजलणे अणुवसंते । १७६. सत्तण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु । १७७. छण्हमेकावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु । १७८. पंचण्हमेकावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसकसाएसु अणुवसंतेसु । १७९. अधवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।१८०. चउण्हं खवगस्स छसु कम्मेसु खीणेसु पुरिसवेदे अक्खीणे । १८१. अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु । १८२.

संक्रमण करनेवाले क्षपकके भी हास्यादि छह प्रकृतियोंके एक साथ क्षीण होनेपर चार-प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिए क्षपकके नौ प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता है ।

चूर्णिसू०–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले क्षायिकसम्यक्त्वी उपशामकके तीन प्रकारके क्रोधके उपशान्त होनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहने तक आठ प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दोनों मध्यम मानकषायोंके उपशान्त होनेपर और संज्वलनमानके अनुपशान्त रहनेपर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीनों प्रकारके मानकषायके उपशान्त होनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर सात प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दोनों प्रकारके मानकषायके उपशान्त होनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर छह प्रकृतियोंका संक्रमण होता । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीनों प्रकारके मानके उपशान्त होनेपर और शेप कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर पाँच प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दोनों प्रकारकी मायाकषायके उपशान्त होनेपर और शेष कर्मोंके अनुपशान्त होनेपर पाँच-प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ॥१७४-१७९॥

विशेषार्थ–पाँच-प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्ररूपणा दो प्रकारसे की गई है । उसमेंसे प्रथम प्रकारमें तो 'शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर' ऐसा कहा है और द्वितीय प्रकारमें 'शेष कर्मोंके अनुपशान्त रहनेपर' ऐसा कहा है, इसका कारण यह है कि प्रथम प्रकारवाले जीवके तो तीन माया और दो लोभ इन पाँच कषायोंका संक्रमण पाया जाता है । किन्तु दूसरे प्रकारवालेके मायासंज्वलन दो लोभ और दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो, इस प्रकार पाँच प्रकृतियोंका संक्रम पाया जाता है । इस विभिन्नताको सूचित करनेके लिए चूर्णिकारने उक्त दो विभिन्न पदोंका प्रयोग किया है ।

चूर्णिसू०–*क्षपकके स्त्रीवेदकी क्षपणाके अनन्तर* छह नोकषायोंके क्षीण होनेपर और पुरुषवेदके अक्षीण रहनेपर पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, मान और माया, इन चार प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीन प्रकारकी माया

तिण्हं खवगस्स पुरिसवेदे खीणे सेसेसु अक्खीणेसु । १८३. अधवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु । १८४. दोण्हं खवगस्स कोहे खविदे सेसेसु अक्खीणेसु । १८५. अहवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु । १८६. अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे लोहे उवसंते । १८७. सुहुमसांपराइय-उवसामयस्स वा उवसंतकसायस्स वा । १८८. एक्किस्से संकमो खवगस्स माणे खविदे मायाए अक्खीणाए ।

१८९. एत्तो पदाणुमाणियं सामित्तं णेयव्वं ।

कषायके उपशान्त होनेपर और शेष कर्मोंके अनुपशान्त रहनेपर दो मध्यम लोभ और दो दर्शनमोहनीय, इन चारका संक्रमण होता है । क्षपकके पुरुषवेदके क्षय होनेपर और कषायोंके अक्षीण रहनेपर क्रोध, मान और माया इन तीन संज्वलनोंका संक्रमण होता है । अथवा इक्कीस प्रकृतियोंके सत्तावाले क्षायिकसम्यक्त्वी उपशामकके दोनों मायाकषायोंके उपशान्त होनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर मायासंज्वलन और दोनों मध्यम लोभ, इन तीन प्रकृतियोंका संक्रमण होता है । क्षपकके संज्वलनक्रोधका क्षय करनेपर और शेष कषायोंके अनुपशान्त रहनेपर संज्वलन मान और माया इन दो प्रकृतियोंका संक्रमण पाया जाता है । अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके तीनों मायाकषायोंके उपशान्त हो जानेपर और शेषके अनुपशान्त रहनेपर अप्रत्याख्यानावरणलोभ और प्रत्याख्यानावरण-लोभ, इन दो प्रकृतियोंका संक्रमण पाया जाया है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके दो प्रकारके लोभके उपशान्त हो जानेपर दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंका संक्रमण पाया जाता है । दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंका उपशमन करनेवाला यह दो-प्रकृतिक संक्रमस्थान सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामकके अथवा उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थके होता है । क्षपकके संज्वलनमानकषायके क्षय हो जानेपर और संज्वलनमायाके अक्षीण रहनेपर एक प्रकृतिका संक्रमण होता है ॥१८०-१८८॥

चूर्णिसू०—अब, इस स्थान-समुत्कीर्तनाके पश्चात् पूर्वोक्त अर्थपदोंके द्वारा आनु-पूर्वीसंक्रम आदिके साथ अनुमान करके संक्रमस्थानोंके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥१८९॥

विशेषार्थ—संक्रमस्थानोंकी स्थानसमुत्कीर्तनाके अनन्तर और स्वामित्व-अनुयोगद्वारके पूर्वतक मध्यवर्ती जो सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम आदि दश अनुयोगद्वार हैं, उनमेंसे सर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम और अजघन्यसंक्रम ये छह अनुयोगद्वार प्रकृत संक्रमस्थान-प्ररूपणामें संभव ही नहीं हैं, इसलिए, तथा सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुव-संक्रम और अध्रुवसंक्रम, इन चार अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा सुगम है; इसलिए चूर्णिकारने उनकाकोई उल्लेख नहीं किया है । संक्रमस्थानोंके स्वामित्वका वर्णन अवश्य करना चाहिए, पर ऊपरके चूर्णिसूत्रोंसे बहुत अंशोंमें उसका भी प्ररूपण हो ही जाता है, अतः उसे न कहकर इस चूर्णिसूत्रके द्वारा उसे जान लेनेका निर्देश किया गया है । अतएव यहाँ पहले सादिसंक्रम

१९०. एयजीवेण कालो । १९१. सत्तवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ? १९२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १९३. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ।

आदि पर कुछ प्रकाश डाला जाता है– पच्चीस-प्रकृतिक स्थानका सादिसंक्रम भी होता है, अनादिसंक्रम भी होता है, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम भी होता है । किन्तु शेष स्थानोंका केवल सादिसंक्रम और अध्रुवसंक्रम ही होता है, अन्य नहीं । संक्रमस्थानोंके स्वामित्वकी संक्षेपसे प्ररूपणा इस प्रकार जानना चाहिए–सत्ताईस, छब्बीस और तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्यग्दृष्टिके भी होते हैं और मिथ्यादृष्टिके भी होते हैं । पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होता है । इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थान सासादनसम्यग्दृष्टि, और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होता है । बाईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर एक-प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सर्व संक्रमस्थान सम्यग्दृष्टिके चौथे गुणस्थानसे लगाकर ग्यारहवें गुणस्थान तक यथासंभव पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका काल कहते हैं ॥१९०॥

शंका–सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका कितना काल है ? ॥१९१॥

समाधान–सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो बार छयासठ सागरोपमकाल है ॥१९२-१९३॥

विशेषार्थ–सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्यकालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक किसी मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और दूसरे समयसे सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक होकरके जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जानेपर सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्यकाल सिद्ध हो जाता है । अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक उसके साथ रहकर पुनः परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त करनेपर भी सत्ताईस-प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्यकाल प्राप्त हो जाता है । उत्कृष्टकालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–कोई एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और पल्योपमके असंख्यातवें भागतक उद्वेलना करता हुआ रहा तथा संक्रमणके योग्य सम्यक्त्वप्रकृतिके सत्त्वके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उसके साथ प्रथम वार छयासठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण-कर उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पहलेके समान ही पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालतक सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता रहा । अन्तमें उसकी उद्वेलना-चरमफालीके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और दूसरी वार भी उसके साथ छयासठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण करके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर भी दीर्घ उद्वेलनाकालसे सम्यक्त्व-

१९४. छव्वीससंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? १९५. जहण्णेण एगसमओ । १९६. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । १९७. पणुवीसाए संकामए तिण्णि भंगा । १९८. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

प्रकृतिकी उद्वेलना करके छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार तीन पल्योपमके असंख्यात भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागरोपम-प्रमाण सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमणका उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

शंका छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका कितना काल है ? ॥१९४॥

समाधान—छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥१९५-१९६॥

चूर्णिसू०—पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके कालके तीन भंग हैं । वे इस प्रकार हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें जो सादि-सान्त भंग है, उसकी अपेक्षा पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल उपार्ध-पुद्गलपरिवर्तन है ॥१९७-१९८॥

विशेषार्थ—पच्चीसके संक्रामकके जघन्य कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हो मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी चरम फालीको मिथ्यात्वरूपसे परिणमा कर पुनः चरम समयमें पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें फिर भी छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार एक समय-मात्र जघन्यकाल प्राप्त होता है । अथवा अट्ठाईसकी सत्तावाला और सत्ताईसका संक्रामक जो उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहाँपर एक समय पच्चीसके संक्रामकरूपसे रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईसका संक्रामक हो गया । इस प्रकार भी पच्चीसके संक्रमणका जघन्य काल एक समय सिद्ध होता है । अथवा चौबीसकी सत्तावाला कोई उपशमसम्यग्दृष्टि अपने कालमें एक समय अधिक आवली-प्रमाण शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहाँपर अनन्तानुबन्धीका बन्ध करके और एक आवली काल बिताकर अन्तिम समयमें पच्चीसका संक्रामक हुआ और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईसका संक्रामक हो गया । इस प्रकारसे भी एक समयमात्र जघन्यकाल प्राप्त होता है । पच्चीसके संक्रामकके उत्कृष्टकालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और उसके साथ जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहांपर सर्व लघुकालसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना प्रारंभ करके पच्चीसका संक्रामक हो गया । पुनः देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक संसारमें परिभ्रमण करके अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारके

१९९. तेवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ? २००. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, एगसमओ वा । २०१.उकस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। २०२. वावीसाए वीसाए एगूणवीसाए अट्ठारसण्हं तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं दसण्हं अट्ठण्हं सत्तण्हं पंचण्हं चउण्हं तिण्हं दोण्हं पि कालो जहण्णेण एयसमओ। उकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

शेष रह जानेपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तब उसके पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अभाव हो गया । इस प्रकार पच्चीस-प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्टकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण सिद्ध हो जाता है ।

शंका—तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका कितना काल है ? ॥१९९॥

समाधान—तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त, अथवा एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागरोपमकाल है ॥२००-२०१॥

विशेषार्थ—तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त भी बतलाया गया है और एक समय भी । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—कोई उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तेईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ । पश्चात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक तेईसका संक्रामक रहकर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रह जानेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया । यह अन्तर्मुहूर्त जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई । अब एक समयकी प्ररूपणा करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय कम आवली-मात्र शेष रह जानेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होकर इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर एक समय तेईसका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें अनन्तानुबन्धीके संक्रमणके निमित्तसे सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया । इस प्रकार तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक समयमात्र भी जघन्य काल सिद्ध हो जाता है । तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्त तक तेईसका संक्रामक रहकर पुनः वेदक-सम्यक्त्वको प्राप्त हो करके छयासठ सागर तक परिभ्रमण कर अन्तमें दर्शनमोहकी क्षपणासे परिणत होकर मिथ्यात्वका क्षय करके बाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया । इस प्रकार तेईस संक्रामकका आदिके अन्तर्मुहूर्तसे तथा मिथ्यात्वकी चरमफालीके पतनसे लगाकर कृतकृत्यवेदकके चरम समय तकके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक छयासठ सागरोपम-प्रमाण उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

चूर्णिसू०—बाईस, बीस, उन्नीस, अट्ठारह, तेरह, बारह, ग्यारह, दश, आठ, सात, पाँच, चार, तीन और दो-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके संक्रमणका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२०२॥

विशेषार्थ—प्रकृत सूत्रमें बतलाये गये संक्रमस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका स्पष्टीकरण करते हैं। उनमेंसे बाईसके संक्रमस्थानके कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ करके अन्तरकरणके अनन्तर आनुपूर्वी-संक्रमणसे परिणत हो एक समयमात्र बाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक होकर और दूसरे समयमें मरण करके देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया। इस प्रकार बाईसके संक्रमस्थानका एक समयमात्र जघन्य काल उपलब्ध हो गया। इसीके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—कोई एक दर्शनमोहका क्षपक जीव मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यग्मिथ्यात्वके क्षपण-कालमें बाईस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ और उसकी अन्तिम फालीके पतन होने तक उसका संक्रामक रहा। इस प्रकार बाईस-प्रकृतिक स्थानका अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है। बीस-प्रकृतिक स्थानके संक्रम-कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक कोई एक जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ करके लोभका असंक्रामक होकर और एक समयमात्र बीसका संक्रामक बनकर तदनन्तर समयमें मरण करके देवोंमें उत्पन्न होकर इक्कीसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य काल उपलब्ध हो जाता है। इसीके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा और अन्तरकरण करके आनुपूर्वी-संक्रमणके वशसे बीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया। इस प्रकार इस जीवके नपुंसकवेदके उपशमनका जितना काल है, वह सर्व प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। उन्नीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ा और अन्तरकरणको करके नपुंसकवेदका उपशमनकर उन्नीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ। पुनः दूसरे ही समयमें मरणकर देवोंमें उत्पन्न होकर इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य काल उपलब्ध हो जाता है। इसी जीवके नपुंसकवेदका उपशमन करके स्त्रीवेदके उपशमन करनेका अन्तर्मुहूर्तमात्र सर्वकाल प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। अट्ठारह-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशमकर एक समय अट्ठारह-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक होकर और तदनन्तर समयमें मरण करके देवोंमें उत्पन्न होकर इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समय-प्रमाण प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्यकाल प्राप्त हो गया। उसी ही उपशामकके जब तक छह नोकषाय अनुपशान्त हैं, तब तक उनके उपशमनका सर्व काल ही अट्ठारह-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्टकाल जानना चाहिए। तेरह-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक यथाक्रमसे नव नोकषायोंको उपशमा कर एक समय तेरह

प्रकृतियोंका संक्रामक रहा और तदनन्तर समयमें मरकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। क्षपक आठ मध्यम कषायोंका क्षय करके जबतक आनुपूर्वी-संक्रमणका प्रारम्भ नहीं करता है, तबतक तेरह-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। बारह-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य कालका विवरण इस प्रकार है–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक यथाक्रमसे आठ नोकषायोंका उपशम करके एक समयके लिए बारह प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे समयमें मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न होकर इक्कीस-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य काल प्राप्त हो गया। इसी संक्रमस्थानके अन्तर्मुहूर्त प्रमित उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–कोई एक संयत चारित्रमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ और आनुपूर्वी-संक्रमण करके वह जबतक नपुंसकवेदका क्षय नहीं करता है तबतक उसके प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल पाया जाता है। ग्यारह-प्रकृतिक संक्रम-स्थानके जघन्य कालका विवरण इस प्रकार है–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक यथाक्रमसे नव नोकषायोंका उपशमन करके एक समय ग्यारहका संक्रामक रहकर और तदनन्तर समयमें मरणको प्राप्त होकर देव हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी संक्रमस्थानके अन्तर्मुहूर्त-प्रमित उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है–कोई एक क्षपक नपुंसकवेदका क्षय करके जबतक स्त्रीवेदका क्षय नहीं करता है तबतक वह प्रकृत स्थानका संक्रामक रहता है। दश-प्रकृतिक संक्रमस्थानके एक समय-प्रमित जघन्य कालका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक तीन प्रकारके क्रोधकी उपशामनासे परिणत होकर एक समय दश प्रकृतियोंका संक्रामक रहा और दूसरे समयमें मरकर और देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य काल सिद्ध हो जाता है। क्षपकके छह नोकषायोंके क्षपणका सर्व काल ही दश-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। आठ-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक दोनों मध्यम मान कषायोंका उपशमन करके एक समय आठका संक्रामक होकर और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्यकाल प्राप्त हो जाता है। इसी स्थानके उत्कृष्ट संक्रम-कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक क्रमसे नव नोकषाय और तीन प्रकारके क्रोधका उपशमन करके आठ-प्रकृतिक स्थानका संक्रामक हुआ और अन्तर्मुहूर्त तक उस अवस्थामें रह कर दोनों मध्यम मान-कषायोंका उपशमन करके छह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया इस प्रकार आठ-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल दोनों मध्यम मान-कषायोंके उपशमनकाल-प्रमित अन्तर्मुहूर्त-मात्र जानना चाहिए। सात-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण

२०३. एक्कवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ? २०४. जहण्णेणेय-

इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक प्रथम समयमें तीन प्रकारके मान कषायके उपशमसे परिणत हुआ और दूसरे ही समयमें मरण करके देवोंमें उत्पन्न हो गया। इस प्रकार प्रकृत संक्रमस्थानका एक समयमात्र जघन्यकाल सिद्ध हो जाता है। इसी जीवके दोनों मध्यम मायाकषायोंका उपशमन करते हुए जब तक उनका अनुपशम रहता है तब तकका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। पांच-प्रकृतिक संक्रमस्थानके कालका विवरण इस प्रकार है–इसी उपर्युक्त सात प्रकृतियोंके उपशामकके द्वारा दोनों मध्यम मायाकषायोंका उपशमन करके एक समय पांच प्रकृतियोंका संक्रामक बनकर और दूसरे समयमें मर करके देव हों जाने पर एक समयमात्र प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा तीन प्रकारके मानकी उपशामनासे परिणत होकर जब तक दोनों मध्यम माया कषायोंका अनुपशम रहता है, तब तकका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। चार-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक संज्वलन-मायाका उपशमन करके चार प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे ही समयमें मरकर देव हो गया, इस प्रकार प्रकृत संक्रमस्थानका एक समयमात्र जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी उपशामकके संज्वलनमायाके उपशमकालसे लेकर जबतक दोनों मध्यम लोभोंका अनुपशम रहता है, तबतकका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक दोनों मध्यम मायाकषायोंकी उपशामनासे परिणत होकर तीन प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल सिद्ध हो जाता है। चारित्रमोहका क्षपण करनेवाले जीवके संज्वलनक्रोधके क्षपणका जितना काल है, वह सब प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। दो-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक आनुपूर्वी-संक्रमण आदिकी परिपाटीसे दोनों प्रकारके मध्यम लोभका उपशमन करके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय संक्रामक होकर दूसरे समयमें मरकर देव हो गया। इस प्रकार प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी जीवके दोनों मध्यम क्रोधोंके उपशमन-कालसे लगा करके उपशान्तकषायगुणस्थानसे उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समय तकका जितना काल है, वह सब प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए।

शंका–इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका कितना काल है ? ॥२०३॥

समओ । २०५. उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । २०६. चोद्दसण्हं णवण्हं छण्हं पि कालो जहण्णेणेयसमओ । २०७. उक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ । २०८. अधवा उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ओयरमाणस्स लब्भइ । २०९. एक्किस्से संकामओ केवचिरं कालादो होइ ? २१०.जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

२११. एत्तो एयजीवेण अंतरं । २१२. सत्तावीस-छव्वीस-तेवीस-इगिवीस-संकामगंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

समाधान–इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है ॥२०४-२०५॥

विशेषार्थ–इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव नपुंसकवेदका उपशमन करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे ही समयमें मरकर देव हो गया । इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य काल सिद्ध हो जाता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके कालमें एक समय शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेपर भी प्रकृत संक्रमस्थानका एक समयमात्र जघन्य काल पाया जाता है । उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–देव या नरकगतिसे मनुष्यगतिमें आया हुआ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव गर्भसे लेकर अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षका हो जानेपर सर्वलघुकालसे दर्शनमोहकी क्षपणासे परिणत होकर और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रमण प्रारम्भ करके देशोन पूर्वकोटी तक संयमभावके साथ विहार करके जीवनके अन्तमें मरा और विजयादिक अनुत्तर विमानोंमें एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुका धारक देव हो गया । वह वहाँपर अपनी आयुको पूरा करके च्युत हुआ और पूर्वकोटी आयुका धारक मनुष्य हुआ । जब उसके सिद्ध होनेमें अन्तर्मुहूर्तमात्र काल शेष रह गया, तब क्षपकश्रेणीपर चढ़कर और आठ मध्यम कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षसे कम दो पूर्वकोटीसे अधिक तेतीस सागरोपम-प्रमाण इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–चौदह, नौ और छह-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक समय-कम दो आवली है । अथवा उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त भी पाया जाता है ॥२०६-२०८॥

शंका–एक-प्रकृतिक संक्रमस्थानका कितना काल है ? ॥२०९॥

समाधान–एक-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२१०॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका अन्तर कहते हैं ॥२११॥

शंका–सत्ताईस, छब्बीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका अन्तर-काल कितना है ? ॥२१२॥

२१३. जहण्णेण एयसमओ । २१४. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

समाधान–उक्त संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥२१३-२१४॥

विशेषार्थ–सूत्रोक्त संक्रमस्थानोंके अन्तरकालोंमेंसे यथाक्रमसे पहले सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरका स्पष्टीकरण करते हैं–सत्ताईसका संक्रामक कोई उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ और एक समय पच्चीसका संक्रामक रहकर अन्तरको प्राप्त हो दूसरे ही समयमें मिथ्यादृष्टि बनकर सत्ताईसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है। अथवा सत्ताईसका संक्रामक कोई मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता हुआ सम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तर करके और मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके द्विचरम समयमें सत्ताईसके संक्रामकरूपसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी चरमफालीको मिथ्यात्वके ऊपर संक्रमित करके उसके अनन्तर चरम समयमें छब्बीसका संक्रमण करके अन्तरको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें पुनः सत्ताईसका संक्रामक हो गया। इस प्रकारसे भी सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक समयप्रमाण जघन्य अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसीके उत्कृष्ट अन्तर कालका विवरण इस प्रकार है–कोई एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सर्व लघुकालसे मिथ्यात्वमें जाकर सर्व जघन्य उद्वेलना-कालसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके और सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक संसारमें परिभ्रमण करके सिद्ध होनेमें जब अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा, तब उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। उसके दूसरे समयमें सत्ताईसका संक्रमण करनेपर सत्ताईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके एक समयमात्र जघन्य अन्तरकालका विवरण इस प्रकार है–जिसने सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना कर दी है ऐसा कोई छब्बीसका संक्रामक जीव उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी चरम फालीको मिथ्यात्वरूपसे संक्रमित करके तदनन्तर समयमें ही पच्चीसके संक्रमण-द्वारा अन्तरको प्राप्त होकर उपशमसम्यक्त्वके प्रथम समयमें पुनः छब्बीसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार जघन्य काल सिद्ध हो गया। इसीके उत्कृष्ट अन्तरकालका विवरण इस प्रकार है–कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और सर्व लघुकालसे मिथ्यात्वमें जाकर सर्व जघन्य उद्वेलनाकालसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके छब्बीसका संक्रामक हो गया। पुनः सर्व लघुकालसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके पच्चीसके संक्रामक रूपसे अन्तरको प्राप्त हुआ और देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिभ्रमण करके संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वको

प्राप्त कर छब्बीसका संक्रामक हुआ। इस प्रकार छब्बीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है। तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालका विवरण इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशमसम्यग्दृष्टि तेईस प्रकृतियोंके संक्रमणकालमें एक समय रह जाने पर सासादनगुण-स्थानको प्राप्त हुआ और एक समयमात्र इक्कीसका संक्रामक बन अन्तरको प्राप्त होकर दूसरे ही समयमें मिथ्यात्वमें जाकर तेईसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत संक्रमस्थानका एक समयमात्र जघन्य अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। अथवा तेईसका संक्रामक कोई जीव उपशमश्रेणी पर चढ़ करके अन्तरकरणकी समाप्तिके अनन्तर ही आनुपूर्वी-संक्रमणका प्रारम्भ करके एक समय बाईसके संक्रामक रूपसे अन्तरको प्राप्त होकर और दूसरे समयमें देवोंमें उत्पन्न होकर तेईसका संक्रामक हो गया। इस प्रकारसे भी एक समयमात्र जघन्य अन्तर-काल सिद्ध हो जाता है। इसी संक्रमस्थानके उत्कृष्ट अन्तरकालका विवरण इस प्रकार है–कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तेईस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल शेष रह जानेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ और इक्कीसका संक्रमणकर अन्तरको प्राप्त हो पुनः मिथ्यात्व-में जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक संसारमें परिभ्रमण कर संसारके सर्व जघन्य अन्त-र्मुहूर्तमात्र शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर क्षपकश्रेणीपर चढ़नेके लिए अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके तेईसका संक्रामक हुआ। इस प्रकार प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है। इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ करके अन्तरकरणकी समाप्ति होनेपर लोभसंज्वलनके असंक्रमके वशसे एक समय बीसका संक्रामक बनकर अन्तरको प्राप्त होकर मरा और देव होकर पुनः इक्कीसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार एक समयमात्र जघन्य अन्तरकाल सिद्ध हो गया। इसी संक्रमस्थानके उत्कृष्ट अन्तर कालका विवरण इस प्रकार है–कोई एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें प्रथमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल शेष रह जानेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका एक आवली तक संक्रमण करके तदनन्तर समयमें पच्चीसका संक्रामक बनकर और अन्तरको प्राप्त होकर तदनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिभ्रमण करके संसारके सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रह जानेपर दर्शनमोहका क्षय करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ। इस प्रकार देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए।

२१५. पणुवीससंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? २१६. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । २१७. उक्कस्सेण बे छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि । २१८. बावीस-वीस-चोद्दस-तेरस-एक्कारस-दस-अट्ठ-सत्त-पंच-चदु-दोण्णिसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? २१९. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । २२०. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । २२१. एक्किस्से संकामयस्स णत्थि अंतरं ।

शंका–पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तरकाल कितना है ? ॥२१५॥

समाधान–पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥२१६-२१७॥

विशेषार्थ–पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रमण करता हुआ अवस्थित था । वह परिणामोंके वशसे सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहाँपर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक रहकर और सत्ताईसका संक्रमण कर अन्तरको प्राप्त होकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पच्चीसका संक्रामक हो गया । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर सिद्ध हो जाता है । इसीके उत्कृष्ट अन्तर कालका विवरण इस प्रकार है–पच्चीसका संक्रामक कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और किसी भी अविवक्षित संक्रमस्थानके साथ अन्तरको प्राप्त होकर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर सर्वोत्कृष्ट उद्वेलनकालसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तरकरणको करके मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके चरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी चरम फालीका संक्रमण करके तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर छयासठ सागर तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके यथासम्भव प्रकारसे सम्यक्त्वको ग्रहण करके दूसरी वार छयासठ सागरोपम तक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें फिर भी मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलनकालसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके पच्चीसका संक्रामक हुआ । इस प्रकार तीन पल्योपमके असंख्यात भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपमप्रमाण पच्चीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए ।

शंका–बाईस, बीस, चौदह, तेरह, ग्यारह, दश, आठ, सात, पाँच, चार और दो प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२१८॥

समाधान–उक्त संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥२१९-२२०॥

चूर्णिसू०–एक प्रकृतिके संक्रामकका अन्तर नहीं होता है ॥२२१॥

२२२. सेसाणं संकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ? २२३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । २२४. उकस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि* ।

शंका—शेष अर्थात् उन्नीस, अट्ठारह, बारह, नौ, छह और तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२२२॥

समाधान—उक्त संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥२२३-२२४॥

विशेषार्थ—सूत्रमें शेष पदके द्वारा सूचित संक्रमस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई उपशामक उपशमश्रेणीमें अन्तरकरणकी समाप्तिके अनन्तर ही आनुपूर्वीसंक्रमणको आरम्भ करके नपुंसकवेदका उपशम कर इक्कीसका संक्रामक हुआ। पुनः स्त्रीवेदका उपशमन करके अन्तरका प्रारम्भ कर अट्ठारहका संक्रामक हुआ और छह नोकषायोंका उपशमन करके अन्तर उत्पन्न कर उसी समय बारहका संक्रमण आरम्भ किया, पुनः पुरुषवेदका उपशम कर और अन्तरको प्राप्त होकर तत्पश्चात् दोनों प्रकारके क्रोधका उपशम किया और नौके संक्रमस्थानको प्राप्त होकर संज्वलनक्रोधका उपशम करके नौके अन्तरका आरम्भ किया । पुनः दोनों प्रकारके मानका उपशम करके छहका संक्रामक हुआ और संज्वलनमानका उपशम करके छहके अन्तरका आरम्भ किया । तदनन्तर दोनों मायाका उपशम करके तीनका संक्रामक हुआ और संज्वलन मायाका उपशम करके तीनके अन्तरका आरम्भ कर ऊपर चढ़ा और वापिस उतरते हुए तीनों मायाकषायोंकी उद्वर्तना करके छहका संक्रामक बनकर, तीनों मानकषायोंकी उद्वर्तना करके नौका संक्रामक बनकर, तीनों क्रोधोंकी उद्वर्तना करके बारहका संक्रामक बनकर और सात नोकषायोंकी उद्वर्तना करके उन्नीसका संक्रामक बनकर यथाक्रमसे उन उन संक्रमस्थानोंके अन्तरको पूरा किया । इस प्रकार उन्नीस, अट्ठारह, बारह, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानोंमेंसे प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर सिद्ध हो जाता है । इन्हीं स्थानोंके उत्कृष्ट अन्तरका विवरण इस प्रकार है—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि देव या नारकी पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भसे लगाकर आठ वर्षके पश्चात् सर्वलघुकालसे विशुद्ध होकर संयमको प्राप्त होकर और दर्शनमोहनीयका क्षय करके उपशमश्रेणीपर चढ़ा । चढ़ते समय तीन और अट्ठारहके अन्तरको उत्पन्न करके तथा उतरते हुए छह, नौ, बारह और उन्नीसके अन्तरको उत्पन्न करके देशोन पूर्वकोटी तक संयमका परिपालन कर जीवनके अन्तमें मरा और तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया । पुनः आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और जीवनके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर उपशमश्रेणीपर चढ़ करके यथाक्रमसे पूर्वोक्त सर्व संक्रमस्थानोंके अन्तर-

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'सादिरेयाणि' के स्थानपर 'देसूणाणि' पाठ मुद्रित है, (देखो पृ० १०२६) जो कि टीकामें किये गये व्याख्यानके अनुसार नहीं होना चाहिए ।

२२५. णाणाजीवेहि भंगविचओ । २२६. जेसिं पयडीओ अत्थि तेसु पयदं । २२७. सव्वजीवा सत्तावीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एकवीसाए एदेसु पंचसु संकमट्ठाणेसु णियमा संकामगा[1] । २२८. सेसेसु अट्ठारससु संकमट्ठाणेसु भजियव्वा ।

२२९. णाणाजीवेहि कालो । २३०. पंचण्हं ट्ठाणाणं संकामया सव्वद्धा । २३१. [2]सेसाणं ट्ठाणाणं संकामया जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । २३२. णवरि एक्किस्से संकामया जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं[3] ।

२३३. णाणाजीवेहि अंतरं । २३४. बावीसाए तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं दसण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हमेक्किस्से एदेसिं णवण्हं ठाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

को पूरा किया । इस प्रकार उन संक्रमस्थानोंका दो अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षसे कम दो पूर्वकोटीसे अधिक तेतीस सागरोपम-प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है । यहाँ इतनी बात ध्यानमें रखना आवश्यक है कि बारह और तीन-प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा निरूपण करना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब नानाजीवोंकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका भंगविचय कहते हैं । जिन जीवोंके विवक्षित प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है, उनमें ही यह भंगविचय प्रकृत है । सर्व जीव सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस, इन पाँच संक्रमस्थानोंपर नियमसे संक्रामक होते हैं । शेष अट्ठारह संक्रमस्थानोंपर वे भजितव्य हैं, अर्थात् संक्रामक होते भी हैं, और नहीं भी होते हैं ॥२२५-२२८॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका काल कहते हैं—सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक पांच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव सर्व काल होते हैं । शेष अट्ठारह स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । विशेषता केवल यह है कि एक प्रकृतिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२२९-२३२॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका अन्तर कहते हैं ॥२३३॥

शंका—बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, दश, चार, तीन, दो और एक-प्रकृतिक

१. एदेसिं पंचण्हं संकमट्ठाणाणं संकामया जीवा सव्वकालमत्थि त्ति भणिदं होइ । जयध०

२. एत्थ सेसग्गहणेण बावीसादीणं संकमट्ठाणाणं गहणं कायव्वं । तेसिं च जहण्णकालो एयसमयमेत्तो; उवसमसेढिम्मि विवक्खियसंकमट्ठाणसंकामयत्तेणेयसमयं परिणदाणं केत्तियाणं पि जीवाणं बिदियसमए मरणपरिणामेण तदुवलंभादो । उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं; तेसिं चेव विवक्खियसंकमट्ठाणसंकामयोघसामयाणमुवरिं चढंताणमण्णेहिं चढणोवयरणवावदेहिं अणुसंधिदसंताणाणमविच्छेदकालस्स समालंबणादो । णवरि तेरस-बारस-एक्कारस-चदु-तिण्णि-दोण्णिसंकामगाणं खवगोवसामगे अस्सिऊण उक्कस्सकालपरूवणा कायव्वा । जयध०

३. एत्थ एक्किस्से संकामयाणं जहण्णकालो कोहमाणाणमण्णदरोदएण चढिदाणं मायासंकामयाणमणुसंधिदसंताणाणमंतोमुहुत्तमेत्तो होइ । उक्कस्सकालो पुण मायासंकामयाणमणुसंधिदपवाहाणं होइ त्ति वत्तव्वं । जयध०

२३५. जहण्णेण एयसमओ । २३६. उक्कस्सेण छम्मासा[1] । २३७. [2]सेसाणं णवण्हं संकमट्ठाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ? २३८. जहण्णेण एयसमओ । २३९. उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि[3] । २४०. जेसिमविरहिदकालो तेसिं णत्थि अंतरं ।

२४१. सण्णियासो णत्थि ।

२४२. अप्पाबहुअं । २४३. सव्वत्थोवा णवण्हं संकामया[4] । २४४. छण्हं संकामया तत्तिया चेव[5] । २४५. चोद्दसण्हं संकामया संखेज्जगुणा[6] । २४६. पंचण्हं

णौ संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२३४॥

समाधान–उक्त नवों स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥२३५-२३६॥

शंका–शेष नौ संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२३७॥

समाधान–शेष बीस, उन्नीस, अट्ठारह, सत्तरह, नौ, आठ, सात, छह और पांच-प्रकृतिक नौ संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ॥२३८-२३९॥

चूर्णिसू०–जिन सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस-प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके कालका कभी विरह नहीं होता, उनका अन्तर नहीं है ॥२४०॥

चूर्णिसू०–संक्रमस्थानोंका सन्निकर्ष नहीं होता । क्योंकि, एक संक्रमस्थानके निरुद्ध करनेपर उसमें शेष संक्रमस्थान संभव नहीं हैं ॥२४१॥

चूर्णिसू०–अब संक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं । नौ प्रकृतियोंके संक्रामक वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । छह प्रकृतियोंके संक्रामक भी उतने ही हैं; अर्थात् नौ

१. बावीसाए ताव जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण छम्मासमेत्तमंतरं होइ; दंसणमोह-क्खवणपट्ठवणाए णाणाजीवावेक्खजहण्णुक्कस्संतराणं तेत्तियमेत्तपरिणामाणमुवलंभादो । एवं तेरसादीणं पि वत्तव्वं; खवयसेढीलद्धसरूवाणमेदेसिं णाणाजीवावेक्खाए जहण्णुक्कस्संतराणं तप्पमाणाणमुवलद्धीदो ।-जयध०

२. एत्थ सेसग्गहणेण २०, १९, १८, १७, ९, ८, ७, ६, ५ एदेसिं संकमट्ठाणाणं संगहो कायव्वो ।

३. एदेसिं च उवसमसेढिसंबंधीणं जहण्णेण एयसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तमेत्तमंतरं होइ; तदारोहणविरहकालस्स तेत्तियमेत्तस्स णिव्वाहमुवलद्धीदो । सुत्ते संखेज्जवस्सग्गहणेण वासपुधत्तमेत्तकालविसेसपडिवत्ती । कुदो ? अविरुद्धाइरियवक्खाणादो । जयध०

४. तं कथं ? इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिं चढिय दुविहं कोहं कोहसंजलणचिराणसंतेण सह उवसामयतण्णवकबंधमुवसामेंतो समऊणदोआवलियमेत्तकालं णवण्हं संकामओ होइ; तदो थोवयरकालसंचिदत्तादो थोवयरत्तमेदेसिं सिद्धं । जयध०

५. कुदो; माणसंजलणणवकबंधोवसामणापरिणदाणमिगिवीससंतकम्मिओवसामयाणं समऊण-दोआवलियमेत्तकालसंचिदाणमिहावलंबणादो । एदेसिं च दोण्हं रासीणं सरिसत्तं चढमाणरासिं पहाणं काढूण भणिदं; ओयरमाणरासिस्स विवक्खाभावादो । तम्हि विवक्खिये छसंकामएहिंतो णवसंकामयाणमद्धाविसेसेण विसेसाहियत्तदंसणादो । जयध०

६. जइ वि एदे वि समऊणदोआवलियमेत्तकालसंचिदा, तो वि संखेज्जगुणत्तमेदेसिं ण विरुज्झदे; इगिवीससंतकम्मिओवसामएहिंतो चउवीससंतकम्मिओवसामयाणं संखेज्जगुणत्तदंसणादो । जयध०

संकामया संखेज्जगुणा[1] । २४७. अट्ठण्हं संकामया विसेसाहिया ।[2] २४८. अट्ठारसण्हं संकामया विसेसाहिया[3] । २४९. एगूणवीसाए संकामया विसेसाहिया[4] । २५०. चउण्हं संकामया संखेज्जगुणा[5] । २५१. सत्तण्हं संकामया विसेसाहिया[6] । २५२. वीसाए संकामया विसेसाहिया[7] ।

२५३. एक्किस्से संकामया संखेज्जगुणा[8] । २५४. दोण्हं संकामया विसेसाहिया[9] । २५५. दसण्हं संकामया विसेसाहिया[10] । २५६. एक्कारसण्हं संकामया विसे-

प्रकृतियोंके संक्रामकोंके बराबर हैं । छह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे चौदह प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । चौदह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे पाँच प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । पाँच प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे आठ प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । आठ प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे अट्ठारह प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । अट्ठारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे उन्नीस प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । उन्नीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे चार प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । चार प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे सात प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । सात प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे वीस प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं ॥२४२-२५२॥

चूर्णिसू०–वीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे एक प्रकृतिके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । एक प्रकृतिके संक्रामकोंसे दो प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । दो प्रकृतियोंके संक्रा-

१. कुदो; इगिवीस-चउवीससंतकम्मिओवसामयाणमंतोमुहुत्तसमऊणदोआवलियसंचिदाणमिहोवलंभादो । जयध०

२. किं कारणं ? इगिवीससंतकम्मियोवसामयस्स दुविहमायोवसामणकालादो दुविहमाणोवसामणद्धाए विसेसाहियत्तदंसणादो, चउवीससंतकम्मिओवसामगसमऊणदोआवलियसंचयस्स उहयत्थ समाणत्तदंसणादो च । जयध०

३. एत्थ वि कारणं माणोवसामणद्धादो विसेसाहियकोहोवसामणद्धादो वि छण्णोकसाओवसामणकालस्स विसेसाहियत्तं दट्ठव्वं । जयध०

४. एत्थ वि कारणमित्थिवेदोवसामणाकालस्स छण्णोकसायोवसामणद्धादो विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं । जयध०

५. कुदो; सगंतोभाविदचदुसंकामयखवयदुविहलोहसंकामयचउवीससंतकम्मिओवसामयरासिस्स पहाणत्तावलंबणादो । तदो जइ वि पुव्विल्लसंचयकालादो एत्थतणसंचयकालो विसेसहीणो, तो वि चउवीससंतकम्मियरासिमाहप्पादो संखेज्जगुणो त्ति सिद्धं । जयध०

६. चउवीससंतकम्मिओवसामयदुविहलोहोवसामणकालादो विसेसाहियदुविहमायोवसामणकालसंचिदत्तादो । जयध०

७. जइ वि दोण्हमेदेसिं चउवीससंतकम्मिया संकामया, तो वि सत्तसंकामयकालादो वि वीससंकामयकालस्स छण्णोकसायोवसामणद्धापडिबद्धस्सविसेसाहियत्तमस्सिऊण तत्तो एदेसिं विसेसाहियत्तमविरुद्धं । जयध०

८. कुदो; मायासंकामयखवयरासिस्स अंतोमुहुत्तकालसंचिदस्स विवक्खियत्तादो । जयध०

९. एक्किस्से संकमणकालादो दोण्हं संकमकालस्स विसेसाहियत्तोवलद्धीदो । जयध०

१०. माणसंजलणखवणद्धादो विसेसाहियछण्णोकसायक्खवणद्धाए लद्धसंचयत्तादो । जयध०

साहिया[1] । २५७. बारसण्हं संकामया विसेसाहिया[2] । २५८. तिण्हं संकामया संखेज्जगुणा[3] । २५९. तेरसण्हं संकामया संखेज्जगुणा[4] । २६०. बावीससंकामया संखेज्जगुणा[5] । २६१. छव्वीसाए संकामया असंखेज्जगुणा[6] । २६२. एक्कवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा[7] । २६३. तेवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा[8] । २६४. सत्तावीसाए संकामया असंखेज्जगुणा[9] । २६५. पणुवीससंकामया अणंतगुणा[10] ।

तदो पयडिट्ठाणसंकमो समत्तो । एवं पयडिसंकमो समत्तो ॥

मकोंसे दश प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । दश प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे बारह प्रकृतियोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं । बारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे तीन प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । तीन प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे तेरह प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । तेरह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे बाईस प्रकृतियोंके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । बाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे तेईस प्रकृतियोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । तेईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक अनन्तगुणित हैं ॥२५३-२६५॥

भुजाकार आदि शेष अनुयोगद्वारोंका वर्णन सुगम होनेसे चूर्णिकारने नहीं किया है ।

इस प्रकार प्रकृतिस्थानसंक्रमकी समाप्तिके साथ प्रकृतिसंक्रम समाप्त हुआ ।

---

१. छण्णोकसायक्खवणद्धासादिरेयइत्थिवेदक्खवणद्धासंचयस्स संगहादो । जयध०

२. तत्तो विसेसाहियणवुंसयवेदक्खवणद्धाए संकलिदसरूवत्तादो । जयध०

३. अस्सकण्णकरण-किट्टीकरण-कोहकिट्टीवेदगकालपडिबद्धाए तिण्हं संकामणद्धाए णवुंसयवेदक्खवणकालादो किंचूणतिगुणमेत्ताए संकलिदसरूवत्तादो । जयध०

४. अट्ठकसाएसु खविदेसु जावाणुपुव्वीसंकमो णाढविज्जइ, ताव पुव्विल्लकालादो संखेज्जगुणकालम्मि संचिदत्तादो । जयध०

५. दंसणमोहक्खवगो मिच्छत्तं खविय जाव सम्मामिच्छत्तं ण खवेइ, ताव पुव्विल्लद्धादो संखेज्जगुणभूदम्मि कालेण एदेसिं, संचिदसरूवाणमुवलंभादो । जयध०

६. कुदो; सम्मत्तमुव्वेल्लिय सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लमाणस्स कालो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो; तत्थ संचिदजीवरासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तस्स पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमयवट्टमाणजीवेहि सह गहणादो । जयध०

७. कुदो; वेसागरोवमकालसंचिदखइयसम्माइट्ठिरासिस्स पहाणभावेण इहग्गहणादो । जयध०

८. छावट्ठिसागरोवमकालब्भंतरसंचिदत्तादो । जइ एवं, संखेज्जगुणत्तं पसज्जदे; कालगुणयारस्स तहाभावोवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो; उवक्कमाणजीवपाहम्मेण असंखेज्जगुणत्तसिद्धीदो । तं जहा–खइयसम्माइट्ठीणमेयसमयसंचओ संखेज्जजीवमेत्तो । चउवीससंतकम्मियाण पुण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता एयसमए उवक्कमंता लब्भंति, तम्हा एहिंतो एदेसिमसंखेज्जगुणत्तमविरुद्धमिदि । जयध०

९. कुदो; अट्ठावीससंतकम्मियसम्माइट्ठिम्मि मिच्छाइट्ठीणमिहग्गहणादो । जयध०

१०. किंचूणसव्वजीवरासिस्स पणुवीससंकामयत्तेण विवक्खियत्तादो ।

ठिदि-संकमाहियारो

१. ठिदिसंकमो[1] दुविहो– मूलपयडिट्ठिदिसंकमो च, उत्तरपयडिट्ठिदिसंकमो च। २. तत्थ अट्ठपदं*–जा ट्ठिदी ओकड्डिज्जदि वा उकड्डिज्जदि वा अण्णपयडिं संकामिज्जइ वा, सो ट्ठिदि-संकमो। सेसो ट्ठिदि-असंकमो[2]।

स्थिति-संक्रमाधिकार

अब यतिवृषभाचार्य क्रम-प्राप्त स्थितिसंक्रमणका वर्णन करनेके लिए सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–स्थितिसंक्रम दो प्रकारका है–मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम और उत्तरप्रकृतिस्थिति-संक्रम। इन दोनों स्थितिसंक्रमोंके स्पष्टीकरणके लिए यह अर्थपद है–जो स्थिति अपवर्तित की जाती है, या उद्वर्तित की जाती है, या अन्य प्रकृतिमें संक्रान्त की जाती है, उस स्थिति-को स्थितिसंक्रम कहते हैं। शेष स्थितिको स्थिति-असंक्रम कहते हैं ॥१-२॥

विशेषार्थ–किसी प्रकारके विशेष परिवर्तन या संक्रान्तिको संक्रम या संक्रमण कहते हैं। यह संक्रमण या परिवर्तन यदि कर्मोंकी प्रकृतियोंमें हो, तो उसे प्रकृतिसंक्रम कहते हैं। यदि कर्मोंकी स्थितिमें परिवर्तन हो, तो उसे स्थितिसंक्रम कहते हैं। इसी प्रकार अनुभागके परिवर्तनको अनुभागसंक्रम और कर्म-प्रदेशोंके परिवर्तनको प्रदेशसंक्रम जानना चाहिए। प्रकृतमें स्थितिसंक्रम विवक्षित है। कर्मोंकी स्थितिका संक्रमण अपवर्तनासे होता है, उद्वर्तनासे होता है और पर-प्रकृतिरूप परिणमनसे भी होता है। कर्म-परमाणुओंकी दीर्घकालिक स्थिति-को घटाकर अल्पकालिकरूपसे परिणत करनेको अपवर्तना कहते हैं। कर्मोंकी अल्पकालिक स्थितिके बढ़ानेको उद्वर्तना कहते हैं। संक्रमके योग्य किसी विवक्षित प्रकृतिकी स्थितिको समान

---

१ ठिइसंकमो त्ति वुच्चइ मूलुत्तरपगइतो उ जा हि ठिई।
उव्वट्टिया व ओवट्टिया व पगइं णिया वऽण्णं ॥२८॥

चूर्णि :—जा ट्ठिती उव्वट्टण-ओवट्टण-अण्णपगतिसंकमणपाओग्गा सा उव्वट्टिता ठितिसंकमो वुच्चति, ओवट्टिता वि ठितिसंकमो वुच्चइ, अण्णपगतिं संकमिया वि ठितिसंकमो वुच्चति। (कम्मप० संक०) तत्थ मूलपयडीए मोहणीयसण्णिदाए जा ट्ठिदी, तिस्से संकमो मूलपयडिट्ठिदिसंकमो उच्चइ। एवमुत्तर-पयडिट्ठिदिसंकमो च वत्तव्वो। जयध०

२ एत्थ मूलपयडिट्ठिदीए ओकड्डुकड्डणवसेण संकमो। उत्तरपयडिट्ठिदीए पुण ओकड्डुकड्डुण-परपयडिसंकंतीहि संकमो दट्ठव्वो। एदेणोकड्डणादओ जिस्से ट्ठिदीए णत्थि सा ट्ठिदी ट्ठिदिअसंकमो त्ति भण्णदे। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तत्थ अट्ठपदं' इतना ही सूत्र मुद्रित है; आगेके 'जा ट्ठिदी' आदि अंशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है, जब कि 'सेसो ट्ठिदि-असंकमो', तक वह सूत्र है, क्योंकि वहाँ तक ही अर्थपद बतलाया गया है। (देखो पृ० १०४१)

३. ओकड्डित्ता कधं णिक्खिवदि ठिदिं *? ४. उदयावलिय-चरिमसमय-अपविट्ठा जा ट्ठिदी सा कधमोकड्डिज्जइ ? ५. तिस्से उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवो, आवलियाए वे-तिभागा अइच्छावणा । ६. उदए बहुअं पदेसग्गं दिज्जइ, तेण परं विसेसहीणं जाव आवलियतिभागो त्ति । ७. तदो जा विदिया

जातीय अन्य प्रकृतिकी स्थितिमें परिवर्तित करनेको प्रकृत्यन्तर-परिणमन कहते हैं । ज्ञानावरणादि मूलकर्मोंके स्थिति-संक्रमणको मूलप्रकृति-स्थितिसंक्रम कहते हैं और उत्तरप्रकृतियोंके स्थिति-संक्रमणको उत्तरप्रकृति-स्थितिसंक्रम कहते हैं । इन दोनों प्रकारके स्थितिसंक्रमोंमें यह भेद है कि उत्तरप्रकृतियोंकी स्थितिका संक्रमण तो अपवर्तनादि तीनों प्रकारसे होता है । किन्तु मूल प्रकृतियोंकी स्थितिका संक्रमण केवल अपवर्तना और उद्वर्तनासे ही होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति दर्शनावरणकर्मरूपसे परिणत नहीं हो सकती है । केवल उनकी स्थिति घट और बढ़ सकती है । मूल कर्मोंके समान मोहनीयके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय इन दोनों भेदोंकी स्थितिका भी परस्परमें संक्रमण नहीं होता, तथा आयुकर्मकी चारों उत्तरप्रकृतियोंकी भी स्थितियोंका परस्परमें संक्रमण नहीं होता है । जिस स्थितिमें अपवर्तनादि तीनों ही न हों, उसे स्थिति-असंक्रम कहते हैं । उद्वर्तनाको उत्कर्षण और अपवर्तनाको अपकर्षण भी कहते हैं ।

शंका—विवक्षित स्थितियोंका अपकर्षण करके अधस्तन स्थितियोंमें उसे कैसे निक्षिप्त किया जाता है ? तथा उदयावलीके चरमसमय-अप्रविष्ट जो स्थिति है, अर्थात् वह स्थिति जो उदयावलीमें प्रविष्ट नहीं है और उदयावलीके बाहिर उपरितन प्रथम समयमें स्थित है, कैसे अपकर्षित की जाती है ? अर्थात् उस स्थितिका अपवर्तनारूप संक्रमण किस प्रकारसे होता है ? ॥३-४॥

समाधान—उदयावलीके बाहिर स्थित प्रथमस्थितिको अपकर्षित करके उदयावलीके प्रथम समयवर्ती उदयसे लेकर आवलीके त्रिभाग तक निक्षिप्त करता है, आवलीके उपरिम दो त्रिभागोंमें निक्षिप्त नहीं करता । अतएव उदयावलीका प्रथम त्रिभाग उस उदयावली-बाह्य-स्थित प्रथम स्थितिके निक्षेपका विषय है और आवलीके शेष दो त्रिभाग अतिस्थापना-रूप हैं । अर्थात् उदयावलीके उपरितन प्रथम समयवाली स्थितिके प्रदेशोंका अपकर्षण कर उन्हें उदयावलीके अन्तिम दो-त्रिभागोंको छोड़कर प्रथम त्रिभागमें स्थापित किया जाता है । प्रथम त्रिभागमें भी उदयरूप प्रथम समयमें बहुत प्रदेशाग्र दिया जाता है, उससे परवर्ती द्वितीय समयमें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है, उससे परवर्ती तृतीय समयमें और भी विशेष

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ठिदिं' पदको टीकामें सम्मिलित कर दिया है, जब कि टीकाके प्रारम्भमें 'ट्ठिदिं' पद दिया हुआ है । (देखो पृ० १०४१)

१ तं जहा—तमोकड्डिय उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खिवदि, आवलिय-वे-तिभाग-मेत्तमुवरिमभागे अइच्छावेइ । तदो आवलियतिभागो तिस्से णिक्खेवविसओ, आवलिय-वे-तिभागा च अइच्छावणा त्ति भण्णइ । जयध०

ट्ठिदी तिस्से वि तत्तिगो चेव णिक्खेवो। अइच्छावणा समयुत्तरा[1]। ८. एवमइच्छावणा समयुत्तरा, णिक्खेवो तत्तिगो चेव उदयावलियबाहिरादो आवलियतिभागंतिमट्ठिदि[2] त्ति। ९. तेण परं* णिक्खेवो वड्ढइ, अइच्छावणा आवलिया चेव।

हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस प्रकार आवलीका त्रिभाग पूर्ण होने तक उत्तरोत्तर समयोंमें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इससे उत्तर-समयवर्ती जो द्वितीय स्थिति है, उसका भी निक्षेप उतना ही है, अर्थात् उसके भी प्रदेशाग्र अपकर्षित होकर आवलीके त्रिभागवर्ती समयोंमें उपर्युक्त क्रमसे दिये जाते हैं, अतः उसके निक्षेपका प्रमाण आवलीका त्रिभाग है। किन्तु अतिस्थापना एक समयसे अधिक आवलीके दो त्रिभाग-प्रमाण हो जाती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर समयवाली स्थितियोंकी अतिस्थापना एक-एक समय अधिक होती जाती है और निक्षेप उतना ही रहता है। यह क्रम उदयावलीके बाहिरसे लेकर आवलीके त्रिभागके अन्तिम समयवाली स्थितिके अपकर्षण होनेके क्षण तक प्रारम्भ रहता है। इस प्रकार आवलीके त्रिभागके जितने समय होते हैं, तत्प्रमाण समयवाली स्थितियोंके प्रदेशाग्रोंका अपकर्षण हो जानेपर उस अन्तिम स्थितिकी अतिस्थापनाका प्रमाण सम्पूर्ण आवली है। किन्तु निक्षेप जघन्य ही रहता है, अर्थात् उसका प्रमाण आवलीका त्रिभाग ही है। उस जघन्य निक्षेपसे परे समयोत्तर वृद्धिके क्रमसे उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होने तक निक्षेपका प्रमाण बढ़ता जाता है किन्तु अतिस्थापना आवली-प्रमाण ही रहती है ॥५-९॥

विशेषार्थ—कर्मोंकी स्थितिके घटानेको स्थिति-अपवर्तना कहते हैं। यह कर्मोंकी स्थिति कैसे घटाई जाती है, ऊपरसे अपकर्षित कर कहाँ निक्षिप्त की जाती है, कहाँ नहीं, और किस क्रमसे निक्षिप्त की जाती है, इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर ऊपरकी शंकाका समाधान करते हुए चूर्णिकारने दिया है। ऊपरकी स्थितिके कर्म-प्रदेशोंका अपकर्षण कर नीचे जिस स्थलपर उन्हें निक्षिप्त किया जाता है, उसे निक्षेप कहते हैं और जिस स्थल को छोड़ दिया जाता है अर्थात् जहाँपर ऊपरकी स्थितिके प्रदेशोंको निक्षिप्त नहीं किया जाता, उसे अतिस्थापना कहते हैं। निक्षेप और अतिस्थापना ये दोनों जघन्य भी होते हैं और उत्कृष्ट भी होते हैं। दोनोंके मध्यवर्ती भेद असंख्यात होते हैं। प्रकृतमें दोनोंका स्पष्टीकरण जघन्य निक्षेप और जघन्य

---

१ तदो पुव्वणिरुद्धट्ठिदीदो अणंतरा जा ट्ठिदी उदयावलियबाहिरविदियट्ठिदि त्ति उत्तं होइ, तिस्से वि तत्तिओ चेव णिक्खेवो होइ, तत्थ णाणत्ताभावादो। अइच्छावणा पुण समयुत्तरा होइ, उदयावलियबाहिरट्ठिदीए वि एदिस्से अइच्छावणाभावेण पदेसदंसणादो। जयध०

२ एत्थावलियतिभागग्गहणेण समयूणावलियतिभागो समयुत्तरो घेत्तव्वो। तदंतिमग्गहणेण च तदणंतरुवरिमट्ठिदिविसेसो गहेयव्वो। तम्हा उदयावलियबाहिरादो जहण्णणिक्खेवमेत्तीओ ट्ठिदीओ उल्लंघिय ट्ठिदाए ट्ठिदीए संपुण्णावलियमेत्ती अइच्छावणा होइ त्ति सुत्तस्स भावत्थो। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पदणिक्खेवो' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १०४२) पर प्रकरणके अनुसार वह अशुद्ध है। आगे भी इस प्रकारका प्रयोग (सूत्र नं० ३७ में) आया है, वहाँ यह 'तेण परं' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १०४८)

अतिस्थापनासे किया गया है। आबाधाकाल व्यतीत होनेके पश्चात् जिस क्षणमें विवक्षित कर्मके प्रदेश उदयमें आते हैं, उस समयसे लगाकर एक आवली तकके कालको उदयावली कहते हैं। इस उदयावलीके अन्तर्गत जितनी भी स्थितियाँ हैं, वे न घटाई जा सकती हैं, न बढ़ाई जा सकती हैं और न अन्य प्रकृतिरूपसे परिवर्तित ही की जा सकती हैं, इसीलिए उदयावली-को 'अपवर्तना, उद्वर्तना आदि सभी करणोंके अयोग्य' कहा जाता है। उदयावलीके बाहिर अनन्तर समयवर्ती जो एक समयमात्र प्रथमस्थिति है उसके प्रदेश उदयावलीमें निक्षिप्त होते हैं। उदयावलीके असंख्यात समय होते हैं, उनको कहाँ निक्षिप्त करे, इसके लिए उदयावलीके समयोंमेंसे एक कम करके उसे तीनसे भाजित करना चाहिए। इन तीन भागोंमेंसे एक समय अधिक प्रथम त्रिभागमें उस विवक्षित स्थितिके प्रदेशोंको निक्षिप्त किया जाता है, अतएव इस त्रिभागको निक्षेप कहा जाता है। अन्तिम दोनों त्रिभागोंमें वे प्रदेश निक्षिप्त नहीं किये जाते, किन्तु उन्हें अतिक्रमण करके प्रथम त्रिभागमें स्थापित किया जाता है, इसलिए उन दोनों त्रिभागोंको अतिस्थापना कहते हैं। इस प्रकार जघन्य निक्षेपका प्रमाण आवलीका एक समयसे अधिक एक त्रिभाग है और जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण आवलीके शेष दो त्रिभाग हैं। जब उदयावलीसे उपरितन द्वितीय समयवर्ती स्थिति अपवर्तित की जाती है, तब निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक हो जाता है। जब उदयावलीसे उपरितन तृतीय स्थितिका अपकर्षण किया जाता है, तब निक्षेपका प्रमाण तो वही रहता है, किन्तु अतिस्थापनाके प्रमाणमें एक समय और अधिक हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः एक-एक समयवाली उत्तरोत्तर स्थितियों-को तबतक अपवर्तित करते जाना चाहिए, जब तक कि एक-एक समय बढ़ते हुए अतिस्थापना-का प्रमाण पूरा एक आवलीप्रमाण न हो जाय। दूसरे शब्दोंमें इसे इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि उदयावलीसे उपरितन-स्थित एक आवलीके त्रिभागप्रमाण स्थितियोंके अपवर्तन करने-पर अतिस्थापनाका प्रमाण पूर्ण एक आवली हो जाता है। अतिस्थापनाके एक आवलीप्रमाण होने तक निक्षेपका वही पूर्वोक्त प्रमाण रहता है। इसके पश्चात् उपरितन स्थितियोंके अप-वर्तित करनेपर अतिस्थापनाका प्रमाण तो सर्वत्र एक आवली ही रहता है, किन्तु निक्षेपका प्रमाण प्रतिसमय बढ़ता जाता है। इस प्रकार एक-एक समयरूपसे बढ़ते हुए निक्षेपका प्रमाण कहाँ तक बढ़ता जाता है, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि दो आवली और एक समयसे कम कर्म-स्थितिके काल तक बढ़ता जाता है। कर्मस्थितिका काल सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। उसमें दो आवली और एक समय कम करनेका कारण यह है कि बन्धावली जबतक न बीत जाय, तबतक तो कर्मस्थितिका अपवर्तन किया नहीं जा सकता। और जब सबसे ऊपरी अन्तिम स्थितिका अपवर्तन किया जाता है, तब आवली-प्रमाण जो अतिस्थापना है उसे छोड़कर उससे नीचेकी स्थितियोंमें उसके द्रव्यको निक्षिप्त किया जायगा। अतः अतिस्थापनान्तर्गत स्थितियोंका भी अपवर्तन नहीं होता है। तथा जिस सर्वोपरितन स्थितिका अपवर्तन किया जा रहा है, उसे भी छोड़ना पड़ता है। इस प्रकार बन्धावली, अतिस्थापनावली और सर्वोपरितनस्थितिका

१०. वाघादेण अइच्छावणा एक्का जेणावलिया अदिरित्ता होइ। ११. तं जहा। १२. ट्ठिदिघादं करेंतेण खंडयमागाइदं[1]। १३. तत्थ जं पढमसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आवलियाए अइच्छावणा। १४. एवं जाव दुचरिमसमय-अणुक्किण्णखंडयं ति। १५. चरिमसमए जा खंडयस्स अग्गट्ठिदी तिस्से अइच्छावणा खंडयं समयूणं[2]। १६. एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे।

समय इन सबको मिलानेपर उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण दो आवली और एक समयसे कम सत्तर-कोड़ाकोड़ी सागरोपम सिद्ध होता है। जघन्य निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक आवलीका त्रिभाग है। उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण एक आवली और जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण एक समय कम आवलीके दो त्रिभागमात्र जानना चाहिए। अपवर्त्यमान स्थितिके कर्म-प्रदेश निक्षेप-कालान्तर्गत स्थितियोंमें किस क्रमसे निक्षिप्त किये जाते हैं, इसके लिए बताया गया है कि उदयवाले समयमें सबसे अधिक कर्मप्रदेश दिये जाते हैं और उससे परवर्ती समयोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीनके क्रमसे अतिस्थापनावली प्राप्त होने तक दिये जाते हैं।

निर्व्याघातकी अपेक्षा अपवर्तनाद्वारा स्थितिसंक्रम किस प्रकारसे होता है, इस बातको बताकर अब चूर्णिकार व्याघातकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमकी प्ररूपणा करते हैं—

चूर्णिसू०—व्याघातकी अपेक्षा एक प्रमाणवाली अतिस्थापना होती है, जिससे कि आवली अतिरिक्त है। वह इस प्रकारसे जानना चाहिए—स्थितिघातको करनेवालेके द्वारा जो स्थितिकांडक ग्रहण किया गया है, उसमें जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें उत्कीर्ण (अपवर्तित) किया जाता है, उस प्रदेशाग्रकी एक आवलीके प्रमाण अतिस्थापना होती है। जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें उत्कीर्ण किया जाता है, उसकी अतिस्थापना भी एक आवली-प्रमाण होती है। इस प्रकार द्विचरम-समयवर्ती अनुत्कीर्ण स्थितिकांडक तक ले जाना चाहिए। चरम समयमें कांडककी जो अग्रस्थिति है, उसकी अतिस्थापना एक समय कम कांडक-प्रमाण होती है। यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके विषयमें जानना चाहिए ॥१०-१६॥

विशेषार्थ—व्याघात नाम स्थितिघातका है। जब स्थितियोंका अपवर्तन स्थिति-कांडकघातके रूपसे होता है, तब उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण सर्वोपरिम समयवर्ती स्थिति-की अपेक्षा एक समय कम स्थितिकांडकके प्रमाण होता है। इस स्थितिकांडकका भी प्रमाण अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमसे हीन सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। सर्वोपरिम समयके अति-रिक्त अन्य सब उत्कीर्ण (अपवर्तित) होनेवाली स्थितियोंकी अतिस्थापनाका प्रमाण एक आवली ही है।

१ जेण ट्ठिदिघादं करेंतेण ट्ठिदिकंडयमागाइदं, तस्स वाघादेणुक्कस्सिया अइच्छावणा आवलिया-दिरित्ता होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। जयध०

२ कुदो; तम्मि समए ट्ठिदिखंडयं तब्भाविणीणं सव्वासिमेव ट्ठिदीणं वाघादेण हेट्ठा घाददंस-णादो। ××× कुदो समयूणत्तं? अग्गट्ठिदीए ओकड्डिज्जमाणीए अइच्छावणाबहिब्भावदंसणादो। जयध०

१७. तदो सव्वत्थोवो जहण्णओ णिक्खेवो[1] । १८. जहण्णिया अइच्छावणा दुसमयूणा दुगुणा[2] १९. णिव्वाघादेण[3] उक्कस्सिया अइच्छावणा विसेसाहिया[4] । २०. वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा असंखेज्जगुणा[5] । २१. उक्कस्सियं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं[6] । २२. उक्कस्सओ णिक्खेवो विसेसाहिओ[7] । २३. उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

२४. जाओ बज्झंति ट्ठिदीओ तासिं ट्ठिदीणं पुव्वणिबद्धट्ठिदिमहिकिच्च णिव्वाघादेण उक्कड्डणाए अइच्छावणा आवलिया । २५. एदिस्से अइच्छावणाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमादिं कादूण जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति णिरंतरं

अब चूर्णिकार जघन्य-उत्कृष्ट अतिस्थापना और निक्षेप आदिका प्रमाण अल्पबहुत्व-द्वारा बतलाते हैं—

चूर्णिसू०—वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा जघन्य निक्षेप सबसे कम है । जघन्य निक्षेपसे जघन्य अतिस्थापना दो समय कम दुगुणी है । जघन्य अतिस्थापनासे निर्व्याघातकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना विशेष अधिक है । निर्व्याघातकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापनासे व्याघात-की अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना असंख्यातगुणी है । व्याघातकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापनासे उत्कृष्ट स्थितिकांडक विशेष अधिक है । उत्कृष्ट स्थितिकांडकसे उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है। उत्कृष्ट निक्षेपसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥१७-२३॥

इस प्रकार अपवर्तनाकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमकी प्ररूपणा करके अब उद्वर्तनाकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमकी प्ररूपणा करते हैं—

चूर्णिसू०—जो स्थितियाँ बँधती हैं, उन स्थितियोंकी पूर्व-निबद्ध स्थितिको लेकर निर्व्याघातकी अपेक्षा उद्वर्तना करनेपर अतिस्थापना आवलीप्रमाण होती है । इस अतिस्था-पनाका जघन्य निक्षेप आवलीके असंख्यातवें भाग है । इस जघन्य निक्षेपस्थानको आदि करके एक-एक समयकी वृद्धि करते हुए उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होने तक निरन्तर निक्षेपस्थान पाये जाते हैं ॥२४-२५॥

१ कुदो; आवलियतिभागपमाणत्तादो । जयध०

२ जहण्णाइच्छावणा णाम आवलिय वे-तिभागा । तदो तत्तिभागादो वे-तिभागाणं दुगुणत्तं होउ णाम; विरोहाभावादो । कथं पुण दुसमयूणत्तं ? उच्चदे ? आवलिया णाम कदजुम्मसंखा । तदो तिभागं सुद्धं ण हवेदि त्ति रूवमवणिय तिभागो घेत्तव्वो; तत्थावणिदरूवेण सह तिभागो जहण्णणिक्खेवो, वे-तिभागा अइच्छावणा । एदेण कारणेण समयाहियतिभागे दुगुणिदे जहण्णाइच्छावणादो दुरूवाहियमुप्पज्जइ, तम्हा दुसमयूणा त्ति सुत्ते वुत्तं । जयध०

३ को णिव्वाघादो णाम ? ठिदिखंडयघादस्साभावो । जयध०

४ केत्तियमेत्तेण ? समयाहियदुभागमेत्तेण । जयध०

५ कुदो; अंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

६ अग्गट्ठिदीए वि एत्थ पवेसदंसणादो ।

७ कुदो; उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं वोलाविय अग्गट्ठिदिमोकड्डिऊणावलियमेत्तमइच्छाविय उदयपज्जंतं णिक्खिवमाणस्स समयाहियदोआवलियूणकम्मट्ठिदिमेत्तुक्कस्सणिक्खेवसंभवोवलंभादो । जयध०

णिक्खेवट्ठाणाणि । २६. उक्कस्सओ पुण णिक्खेवो केत्तिओ ? २७. जत्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिक्खेवो[1] ।

२८. वाघादेण कधं ? २९. जइ संतकम्मादो बंधो समयुत्तरो तिस्से ट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा[2] । ३०. जइ संतकम्मादो बंधो दुसमयुत्तरो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा । ३१. एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णिया अइच्छावणा[3] ।

शंका–उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण कितना है ? ॥२६॥

समाधान–उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक आवलीसे हीन उत्कृष्ट कर्म-स्थितिका जितना प्रमाण होता है, उतना उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण है ॥२७॥

विशेषार्थ–पूर्वमें बंधे हुए कर्मप्रदेशोंकी नवीन बन्धके सम्बन्धसे स्थितिके बढ़ानेको उद्वर्तना या उत्कर्षणा कहते हैं । यह उद्वर्तना भी निर्व्याघात और व्याघातकी अपेक्षा दो प्रकारकी होती है । व्याघातसे होनेवाली उद्वर्तना आगे कही जायगी । यहाँपर निर्व्याघात-की अपेक्षा उद्वर्तनाका वर्णन किया जा रहा है, उसका स्पष्टीकरण यह है कि विवक्षित जिस किसी जीवके जिस समय जो स्थितियाँ बँध रही हैं, उनके ऊपर पूर्वमें बंधी हुई स्थितियों-की उद्वर्तना होती है । उस उद्वर्त्यमान स्थितिकी आवली-प्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है और आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेप होता है । उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण उत्कृष्ट आबाधाकाल है । उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक आवलीसे कम उत्कृष्ट कर्मस्थिति है, उस आबाधाकालके अन्तर्गत जितनी स्थितियाँ हैं, उनके कर्मप्रदेशोंकी उद्वर्तना नहीं की जा सकती, अतएव वे उद्वर्तनाके अयोग्य हैं । आबाधाकालसे परे जो स्थितियाँ हैं, वे उद्वर्तनाके योग्य होती हैं । आबाधाकालके बीतनेपर जब वे स्थितियां उदयको प्राप्त होती हैं, तो एक आवली तककी स्थितियोंकी जिसे कि उदयावली कहते हैं, उद्वर्तना नहीं की जा सकती । जघन्य निक्षेपसे लेकर उत्कृष्ट निक्षेप तकके जितने मध्यवर्ती भेद होते हैं, तत्प्रमाण ही निक्षेपस्थान होते हैं ।

शंका–व्याघातकी अपेक्षा उद्वर्तना कैसे होती है ? ॥२८॥

समाधान–यदि पूर्व-बद्ध सत्कर्मसे नवीन बन्ध एक समय अधिक है, तो उस स्थितिके ऊपर सत्कर्मकी अग्रस्थितिकी उद्वर्तना नहीं होगी । यदि पूर्वबद्ध सत्कर्मसे नवीन बन्ध दो समय अधिक है, तो उसके ऊपर भी सत्कर्मकी अग्रस्थितिकी उद्वर्तना नहीं होगी । जितनी

१ समयाहियबंधावलियं गालिय उदयावलियबाहिरट्ठिदट्ठिदीए उक्कड्डिज्जमाणाए एसो उक्कस्स-णिक्खेवो परूविदो, परिप्फुडमेव तिस्से समयाहियावलियाए उक्कस्साबाहाए च परिहीणुक्कस्सकम्मट्ठिदिमेत्तु-क्कस्सणिक्खेवदंसणादो । जयध०

२ कुदो; जहण्णाइच्छावणाणिक्खेवाणं तत्थासंभवादो । जयध०

३ कुदो एवं; एत्थ जहण्णाइच्छावणाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तीए तासिं ट्ठिदीणमंतब्भा-वदंसणादो । जयध०

३२. जदि अत्तिया जहण्णिया अइच्छावणा तत्तिएण अब्भहिओ संतकम्मादो बंधो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा[1]। ३३. अण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णओ णिक्खेवो[2]। ३४. जइ जहण्णियाए अइच्छावणाए जहण्णएण च णिक्खेवेण एत्तियमेत्तेण संतकम्मादो अदिरत्तो बंधो सा संतकम्मअग्गट्ठिदी उक्कड्डिज्जदि[3]। ३५. तदो समयुत्तरे बंधे णिक्खेवो तत्तिओ चेव, अइच्छावणा वड्ढदि[4]। ३६. एवं ताव अइच्छावणा वड्ढइ जाव अइच्छावणा आवलिया जादा त्ति[5]। ३७. तेण परं णिक्खेवो वड्ढइ जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति[6]।

३८. उक्कस्सओ णिक्खेवो को होइ ? ३९. जो उक्कस्सियं ठिदिं बंधियूणा-

जघन्य अतिस्थापना है, उससे भी अधिक यदि सत्कर्मसे बन्ध हो, तो उसके ऊपर भी सत्कर्मकी अग्रस्थितिकी उद्वर्तना नहीं होगी। जघन्य अतिस्थापनाके ऊपर आवलीके असंख्यातवें भागसे अधिक और भी बन्ध होनेपर जघन्य निक्षेप होता है। यदि जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप, इन दोनोंके प्रमाणसे अधिक सत्कर्मकी अपेक्षा नवीन बन्ध हो, तो वह सत्कर्मस्थिति उद्वर्तित की जाती है, अर्थात् सत्कर्मसे नवीन बन्धके उक्त प्रमाणसे अधिक होनेपर उद्वर्तना होगी। जघन्य स्थापना और जघन्य निक्षेपसे एक समय अधिक बन्ध होनेपर निक्षेपका प्रमाण तो उतना ही रहेगा। किन्तु अतिस्थापनाका प्रमाण बढ़ता है। इस प्रकार एक-एक समयकी वृद्धिसे अतिस्थापन तब तक बढ़ती है, जब तक कि अतिस्थापना पूरी एक आवली प्रमाण न हो जाय। अतिस्थापनाके एक आवली प्रमाण हो जाने पर उससे आगे निक्षेप ही बढ़ता है। यह समयोत्तर-वृद्धि उत्कृष्ट निक्षेप तक बराबर चालू रहती है ॥२९-३७॥

शंका–उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण कितना है ? ॥३८॥

समाधान–जो संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव सर्वोत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलीको अतिक्रान्त कर उस

१ कुदो; एत्थ जहण्णाइच्छावणाए संतीए वि तप्पडिबद्धजहण्णणिक्खेवस्स अज्जवि संभवाणुवलंभादो। ण च णिक्खेवविसएण विणा उक्कड्डणासंभवो अत्थि, विप्पडिसेहादो। जयध०

२ जहण्णाइच्छावणाए उवरि पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तबंधवुड्ढीए जहण्णणिक्खेवसंभवो होइ त्ति भणिदं होइ। जयध०

३ कुदो; एत्थ जहण्णाइच्छावणाणिक्खेवाणमविकलसरूवेणोवलंभादो। जयध०

४ कुदो एवं; सव्वत्थ णिक्खेववुड्ढीए अइच्छावणावड्ढीपुरस्सरत्तदंसणादो। जयध०

५ सा जहण्णाइच्छावणा समयुत्तरकमेण बंधवुड्ढीए वड्ढमाणिया ताव वड्ढइ जाव उक्कस्सियाइच्छावणा आवलिया संपुण्णा जादा त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एत्तो उवरि वि अइच्छावणा किण्ण वड्ढाविज्जदे? ण, पत्तपयरिसपज्जंताए पुण वड्ढिविरोहादो। जयध०

६ एत्थ ताव पुव्वणिरुद्धसंतकम्मअग्गट्ठिदीए उक्कस्सणिक्खेववुड्ढी समयुत्तरकमेण अइच्छावणावलियासियहेट्ठिमअंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्ठिदिमेत्ता होइ। णवरि बंधावलियाए सह अंतोकोडाकोडी ऊणियव्वा। एसा च आदेसुक्कस्सिया। एत्तो हेट्ठिमाणं संतकम्मडुचरिमादिट्ठिदीणं समयाहियकमेण पच्छाणुपुव्वीए णिक्खेववुड्ढी वत्तव्वा जाव ओघुक्कस्सणिक्खेवं पत्ता त्ति। जयध०

वलियमदिकंतो तमुक्कस्सियट्ठिदिमोकड्डियूण उदयावलियबाहिराए विदियाए ठिदीए णिक्खिवदि । पुण से काले उदयावलियबाहिरे अणंतरट्ठिदिं पावेहिदि त्ति तं पदेसग्गमुक्कड्डियूण समयाहियाए आवलियाए ऊणियाए अग्गट्ठिदीए णिक्खिवदि । एस उक्कस्सओ णिक्खेवो[1] । ४०. एवमोकड्डुक्कड्डणाणमट्ठपदं समत्तं ।

४१. एत्तो अद्धाछेदो । जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो[2] ।

उत्कृष्ट स्थितिको अपवर्तित कर उदयावलीके बाहिर स्थित द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है। पुनः वह तदनन्तर कालमें (प्रथम स्थितिको उदयावलीके भीतर प्रविष्ट करके उस द्वितीय स्थितिको) उदयावलीके बाहिर अनन्तरस्थिति अर्थात् प्रथम स्थितिके रूपसे प्राप्त करनेवाला था कि परिणामोंके वशसे उद्वर्तनाको प्राप्त होकर उस पूर्व अवर्तित प्रदेशाग्रको उद्वर्तित करके एक समय अधिक आवलीसे हीन अग्र स्थितिमें निक्षिप्त करता है । यह उत्कृष्ट निक्षेप है । इस प्रकार समयाधिक आवलीसे अधिक आबाधाकालसे परिहीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिका जितना प्रमाण है उतना उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण जानना चाहिए ॥३९॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार अपवर्तना और उद्वर्तनाका अर्थपद समाप्त हुआ ॥४०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे स्थितिसंक्रम-सम्बन्धी अद्धाच्छेद कहना चाहिए । वह जिस प्रकारसे उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणामें कहा गया है, उसी प्रकार निरवशेष रूपसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणमें भी जानना चाहिए । अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणकी अद्धाच्छेद-प्ररूपणा उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणाके अद्धाच्छेदके समान है ॥४१॥

---

१ जो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तो सागार-जागार-सव्वसंकिलेसेहि उक्कस्सदाहं गदो उक्कस्सट्ठिदिं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिपमाणावच्छिण्णं बंधियूण बंधावलियमदिक्कंतो तमुक्कस्सियं ट्ठिदिमोकड्डियूणुदयावलियबाहिरपढमट्ठिदिणिसेयादो विसेसहीणं विदियट्ठिदीए णिसिंचिय तदणंतरसमए अणंतरवदिक्कंतसमयपढमट्ठिदिमुदयावलियब्भंतरं पवेसिय विदियट्ठिदिं च पढमट्ठिदित्तेण परिट्ठविय से काले तं च णिरुद्धट्ठिदिउदयावलियगब्भं पावेहिदि त्ति ट्ठिदो । तम्मि चेव समए तदणंतरसमयोकड्डिदपदेसग्गमुक्कड्डणावसेण तक्कालियणवकबंधपडिबंधुक्कस्सट्ठिदीए णिक्खिवमाणो पचग्गबंधपरमाणूणमभावेणुक्कस्साबाहमेत्तमइच्छाविय तमाबाहाबाहिरपढमणिसेयट्ठिदिमादिं कादूण ताव णिक्खिवदि जाव समयाहियावलिया परिहीणा उक्कस्सकम्मट्ठिदिमेत्तं जायदि त्ति सुत्तत्थसमासो । जयध०

२ अप्पणासुत्तमेदमुक्कस्सट्ठिदिउदीरणापसिद्धस्स धम्मस्स मूलुत्तरपयडिभेयभिण्णट्ठिदिसंकमुक्कस्सद्धाच्छेदे समप्पणादो । जयध०

बंधाओ उक्कस्सो जासिं गंतूण आलिगं परओ ।
उक्कस्स सामिओ संकमेण जासिं दुगं तासिं ॥३८॥

चूर्णि :—जासिं पगडीणं बंधुक्कस्सो ठितिसंकमो तासिं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा एव णेरइय-तिरियमणुय-देवा बंधावलियाए परतो उक्कोसं संकामंति । 'संकमेण जासिं दुगं तासिं' ति, संकमेण उक्कोसट्ठितिसंकमो जासिं पगतीणं तासिं दुआवलियं गंतूणं ते च्चेव णारगादी सामिओ । जहासंभवं 'दुगं' ति बंधावलिय-संकमावलियविहूणो ठितिसंकमो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण उक्कस्ससामी भण्णति—

४२. एत्तो जहण्णयं वत्तइस्सामो । ४३. मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारस-कसाय-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] । ४४. सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो एगा ट्ठिदी[2] । ४५. कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो वे मासा अंतोमुहुत्तूणा[3] । ४६. माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो मासो अंतोमुहुत्तूणो । ४७. मायासंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो अद्धमासो अंतोमुहुत्तूणो[4] । ४८. पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो अट्ठ वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । ४९. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जाणि वस्साणि । ५०. गदीसु अणुमग्गियव्वो ।

५१. सामित्तं । ५२. उक्कस्सट्ठिदिसंकामयस्स सामित्तं जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा णेदव्वं ।

चूर्णिसू०-अब इससे आगे जघन्य अद्धाच्छेदको कहेंगे । मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इन कर्मोंके जघन्य स्थितिके संक्रमणका काल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है । सम्यक्त्वप्रकृति और संज्वलनलोभकी जघन्य स्थितिके संक्रमणका काल एक स्थिति है । संज्वलनक्रोधके जघन्य-स्थिति-संक्रमणका काल अन्तर्मुहूर्त कम दो मास है । संज्वलनमानके जघन्य-स्थिति-संक्रमणका काल अन्तर्मुहूर्त कम एक मास है । संज्वलनमायाके जघन्य-स्थिति-संक्रमणका काल अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध मास है । पुरुषवेदके जघन्य स्थिति-संक्रमणका काल अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष है । हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य-स्थितिसंक्रमणका काल संख्यात वर्ष है । इसी प्रकारसे गतियोंमें भी जघन्य संक्रमणके कालका अन्वेषण करना चाहिए ॥४२-५०॥

चूर्णिसू०-अब स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको कहते हैं-उत्कृष्ट स्थिति-संक्रामकका स्वामित्व जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणामें कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए ॥५१-५२॥

तस्संतकम्मिगो बंधिऊण उक्कस्सियं मुहुत्तंता ।
सम्मत्त-मीसगाणं आवलिगा सुद्धदिट्ठीओ ॥३१॥

चूर्णि :—'तस्संकम्मिगो' इति, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिगो मिच्छादिट्ठी 'बंधिऊण उक्कस्सिगं' ति मिच्छत्तस्स उक्कस्सं ट्ठितिं बंधिऊण 'मुहुत्तंता' इति, अंतोमुहुत्ता परिवडिदूण सम्मत्तं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तूणा मिच्छत्तट्ठिती सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु संकमते । ततो आवलियं गंतूण सम्मादिट्ठी ओवट्टणाए सम्मत्तं संकामेति, सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते संकामेति ओवट्टेति वि । 'सुद्धदिट्ठि' त्ति सम्मादिट्ठी । कम्मप० संक्र०

१ कुदो; मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए अणंताणुबंधीणं विसंजोयणाचरिमफालिसंकमे अट्ठकसायाणं च खवयस्स तेसिं चेव पच्छिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीसंकमकाले इत्थि-णवुंसयवेदाणं पि चरिमट्ठिदिखंडयम्मि सुत्तुत्तपमाणजहण्णट्ठिदिसंकमसंभवोवलद्धीदो । जयध०

२ सम्मत्तस्स दंसणमोहक्खवणाए समयाहियावलियमेत्तसेसे लोहसंजलणस्स वि सुहुमसांपराइयक्खवणद्धाए समयाहियावलियाए सेसाए ओकड्डुणासंकमवसेण पयदद्धाछेदसंभवो वत्तव्वो । जयध०

३ खवयस्स चरिमट्ठिदिबंधचरिमफालिसंकमणावत्थाए तदुवलंभादो । कुदो अंतोमुहुत्तूणत्तं ? ण, आबाहाबाहिरस्सेव णवकबंधस्स तत्थ संकंतीए तदूणत्ताविरोहादो । जयध०

४ कुदो; तेसिं चरिमट्ठिदिखंडयायामस्स तप्पमाणत्तादो । जयध०

५३. जहण्णयमेयजीवेण सामित्तं कायव्वं । ५४. मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो कस्स ? ५५. मिच्छत्तं खवेमाणयस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयसंकामयस्स तस्स जहण्णयं[1] । ५६. सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ५७. समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । ५८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ५९. अपच्छिमट्ठिदिखंडय-चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं । ६०. अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ६१. विसंजोएंतस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्ठिदिखंडय-चरिमसमयसंकामयस्स[2] । ६२. अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ६३. खवयस्स तेसिं

अब एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व वर्णन करना चाहिए ॥५३॥

शंका–मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? ॥५४॥

समाधान–मिथ्यात्वको क्षपण करनेवाले जीवके अन्तिम स्थितिकांडकके अन्तिम समयवर्ती द्रव्यके संक्रमण करनेपर उसके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ॥५५॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? ॥५६॥

समाधान–एक समय अधिक आवलीकाल जिसके दर्शनमोहनीयकर्मके क्षय होनेमें अवशिष्ट रहा है, ऐसे जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ॥५७॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? ॥५८॥

समाधान-सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकांडकको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥५९॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥६०॥

समाधान–अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवके उन्हीं कषायोंके अन्तिम स्थितिकांडकके चरम समयमें संक्रमण करनेपर अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥६१॥

शंका-अप्रत्याख्यानावरणादि आठ मध्यम कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥६२॥

१ **समयाहिगालिगाए सेसाए वेयगस्स कयकरणो ।**
सक्खवग-चरमखंडगसंछुभणे दिट्ठिमोहाणं ॥४१॥

चूर्णिः—दंसणमोहखवगस्स मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ते खवेत्तु सम्मत्तं सव्वोवट्टणाए ओवट्टेत्तूण वेदेमाणस्स चतुगतिगस्स अण्णयरस्स समयाहियावलियाए सेसाए पवट्टमाणस्स जहण्णगो ठितिसंकमो । तत्तो परं खाइयसम्मदिट्ठी होस्सति । 'कयकरणो'त्ति खवणकरणे वट्टमाणो चेव । वेदगसम्मत्तस्स उत्तं । मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भण्णइ–'सक्खवगचरिमखंडगसंछुभणा दिट्ठिमोहाणं'ति, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अप्पप्पणो खवणचरिमखंडगे वट्टमाणो मणुओ अविरतसम्मादिट्ठी देसविरतो वा विरतो वा जहण्णठितिसंकामगो लब्भति । कम्मप० संक०

२ **पढमकसायाण विसंजोयणसंछोभणाए उ ॥४२॥**

चूर्णिः—'पढमकसाया' इति अणंताणुबंधी, विसंजोयणं विणासणं । अणंताणुबंधीणं अप्पणो खवणयाले चरिमसंकामणे वट्टमाणो अण्णदरो चतुगतिगो सम्मदिट्ठी सामी । कम्मप० सं०

चेव अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स जहण्णयं ।

६४. कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ६५. खवयस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्ठिदिबंधचरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं[1] । ६६. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं । ६७. *लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ६८. आवलियसमयाहियसकसायस्स खवयस्स[2] । ६९. इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ७०. इत्थिवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं । ७१. णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? ७२. णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स तस्स

समाधान–इन्हीं आठ मध्यम कषायोंके अन्तिम स्थितिकांडकको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले क्षपकके उक्त आठों कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥६३॥

शंका–संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥६४॥

समाधान–संज्वलनक्रोधके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके संज्वलन-क्रोधके अन्तिम स्थितिबद्ध द्रव्यको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले क्षपकके संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥६५॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार संज्वलनमान, माया और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमणका स्वामित्व जानना चाहिए ॥६६॥

शंका–संज्वलनलोभका स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥६७॥

समाधान–एक समय अधिक आवलीकालवाले सकषाय अर्थात् दशम गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवके संज्वलनलोभका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥६८॥

शंका–स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥६९॥

समाधान–स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले क्षपकके जब स्त्रीवेदके अन्तिम स्थिति-कांडकका संक्रमण होता है, तब उसके स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥७०॥

शंका–नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥७१॥

समाधान–नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़नेवाले क्षपकके जब नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकांडकका संक्रमण होता है, तब उस जीवके नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥७२॥

१ सोदएणेव चढिदस्स खवयस्स कोधवेदगद्धाचरिमसमयणवकबंधमावलियादीदं संकामेमाणयस्स समयूणावलियमेत्तफालीओ गालिय चरिमफालिं संकामणे वावदस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो होइ त्ति । जयध०

२ **समउत्तरालियाए लोभे सेसाइ सुहुमरागस्स ।**

चूर्णिः—सुहुमए रागे समयाधियावलियसेसे वट्टमाणो लोभस्स जहण्णिबं ट्ठितिं संकामेति । कम्मप० संक० गा० ४२

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'लोभ' पदके स्थानपर 'तेणेह' पाठ मुद्रित है, (देखो पृ० १०६३) । पता नहीं, इस पदको किस आधारपर दिया गया है ? प्रकरणके अनुसार 'लोभ' पद होना आवश्यक है ।

अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं । ७३. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदि-संकमो कस्स ? ७४. खवयस्स तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

७५. एयजीवेण कालो । ७६. जहा उक्कस्सिया ट्ठिदि-उदीरणा, तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो । ७७. एत्तो जहण्णट्ठिदिसंकमकालो । ७८. अट्ठावीसाए पयडीणं जहण्ण-ट्ठिदिसंकमकालो केवचिरं कालादो होदि ? ७९. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ । ८०. णवरि इत्थि-णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमकालो केवचिरं कालादो होदि ? ८१. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

८२. एत्तो अंतरं । ८३. उक्कस्सयट्ठिदिसंकामयंतरं जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणाए अंतरं तहा कायव्वं । ८४. एत्तो जहण्णयमंतरं । ८५. सव्वासिं पयडीणं णत्थि अंतरं[1] । ८६. णवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकामयंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] । ८७. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

शंका–हास्यादि छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण किसके होता है ? ॥७३॥

समाधान–हास्यादि छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकांडकको संक्रमण करनेवाले क्षपकके छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है ॥७४॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमणकालका निरूपण किया जाता है । (स्थितिसंक्रमणकाल जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो प्रकारका है ।) उनमेंसे जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणाके कालका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणके कालकी प्ररूपणा जानना चाहिए । अब इससे आगे जघन्य स्थितिसंक्रमणकालका निरूपण करते हैं ॥७५-७७॥

शंका–अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? ॥७८॥

समाधान–सभी प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । विशेषता केवल यह है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और हास्यादि छह नोकषाय इन आठ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है ॥७९-८१॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमणका अन्तर कहते हैं । (वह स्थितिसंक्रमण-अन्तर जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो प्रकारका है ।) उनमेंसे जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणाके अन्तरका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-संक्रमणके अन्तरका निरूपण करना चाहिए । अब इससे आगे जघन्य स्थितिसंक्रमणका अन्तर कहते हैं । मोहनीय कर्मकी सर्व प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका अन्तर नहीं होता है । केवल अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी जघन्य स्थितिके संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्त-

१ कुदो ? खवयचरिमफालीए चरिमट्ठिदिखंडए समयाहियावलियाए च लद्धजहण्णसामित्ताणमंतर-संबंधस्स अच्चंताभावेण णिसिद्धत्तादो । जयध०

२ विसंजोयणाचरिमफालीए लद्धजहण्णभावस्साणंताणुबंधिचउक्कस्स ट्ठिदिसंकमस्स सव्वजहण्ण-

८८. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो उक्कस्सपदभंगविचओ च जहण्णपद-भंगविचओ च[1]। ८९. तेसिमट्ठपदं काऊण उक्कस्सओ जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणा तहा कायव्वा। ९०. एत्तो जहण्णपदभंगविचओ। ९१. सव्वासिं पयडीणं जहण्णट्ठिदि-संकामयस्स सिया सव्वे जीवा असंकामया, सिया असंकामया च संकामओ च, सिया असंकामया च संकामया च। ९२. सेसं विहत्ति-भंगो।

९३. णाणाजीवेहि कालो। ९४. सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि? ९५. जहण्णेण एयसमओ[2]। ९६. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स[3] असंखेज्जदि-

मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥८२-८७॥

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकार है—उत्कृष्टपद-भंगविचय और जघन्यपद-भंगविचय। उनका अर्थपद करके जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणाकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे उत्कृष्टपद-भंगविचयकी प्ररूपणा करना चाहिए॥८८-८९॥

विशेषार्थ—वह अर्थपद इस प्रकार है—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं, वे जीव अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं। और जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं, वे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्यपद-भंगविचयकी प्ररूपणा की जाती है—मोहनीय कर्मकी सभी प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति-संक्रमणके कदाचित् सर्व जीव असंक्रामक होते हैं, कदाचित् अनेक असंक्रामक और कोई एक संक्रामक होता है, कदाचित् अनेक जीव असंक्रामक और अनेक जीव संक्रामक होते हैं ॥९०-९१॥

चूर्णिसू०—स्थिति-संक्रमणके शेष भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोग-द्वारोंकी प्ररूपणा स्थितिविभक्तिके समान जानना चाहिए ॥९२॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा स्थितिसंक्रमणके कालका निरूपण करते हैं ॥९३॥

शंका—सर्व प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणका कितना काल है? ॥९४॥

समाधान—सर्व प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्व-

विसंजुत्त-संजुत्तकालेहि अंतरिय पुणो वि विसंजोयणाए काढुमाढत्ताए चरिमफालिविसए लद्धमंतोमुहुत्तं होइ। जयध०

१ तत्थुक्कस्सपदभंगविचओ णाम उक्कस्सट्ठिदि-संकामयाणं पवाहवोच्छेदसंभवासंभवपरिक्खा। तहा जहण्णो वि वत्तव्वो। जयध०

२ एगसमयमुक्कस्सट्ठिदिं संकामेदूण विदियसमए अणुक्कस्सट्ठिदिं संकामेमाणएसु णाणाजीवेसु तदु-वलंभादो। जयध०

३ एत्थ मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगुंछ-णउंसयवेद-अरइ-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधगद्धं ठविय आव-लियाए असंखेज्जभागमेत्ततदुवक्कमणवारसलागाहि गुणिदे उक्कस्सकालो होइ। हस्स-रइ-इत्थि-पुरिसवेदाण-मावलियं ठविय तदसंखेज्जभागेण गुणिदे पयडुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वत्तव्वा। जयध०

भागो । ९७. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ९८. जहण्णेण एयसमओ । ९९. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[1] ।

१००. एत्तो जहण्णयं । १०१. सव्वासिं पयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? १०२. जहण्णेणेयसमओ । १०३. उक्कस्सेण संखेज्जा समया[2] । १०४. णवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? १०५. जहण्णेण एयसमओ । १०६. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । १०७. इत्थि-णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? १०८. जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं[3] ।

१०९. एत्थ सण्णियासो कायव्वो ।

११०. अप्पाबहुअं । १११. सव्वत्थोवो णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो[4] ।

प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥९५-९९॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य स्थितिसंक्रमणकालको कहते हैं ॥१००॥

शंका–सर्व प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? ॥१०१॥

समाधान–सर्व प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । विशेषता केवल यह है कि अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥१०२-१०६॥

शंका–स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका कितना काल है ? ॥१०७॥

समाधान–इन सूत्रोक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१०८॥

चूर्णिसू०–यहाँपर स्थितिसंक्रमणका सन्निकर्ष करना चाहिए ॥१०९॥

विशेषार्थ–स्थितिसंक्रमण-सम्बन्धी सन्निकर्षकी प्ररूपणा स्थितिविभक्तिके सन्निकर्षके समान है । जहाँ-कहीं कुछ विशेषता है, वह जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–अब स्थितिसंक्रमणका अल्पबहुत्व कहते हैं–नव नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमण सबसे कम है । नोकषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणसे सोलह कषायोंका उत्कृष्ट

---

१ एयवारमुवक्कंताणमेयसमओ चेव लब्भइ ति तमेयसमयं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणवारेहि णिरंतरमुवलब्भमाणसरूवेहि गुणिदे तदुवलंभो होइ । जयध०

२ खवणाए लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । जयध०

३ चरिमट्ठिदिखंडयम्मि लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । णवरि जहण्णकालादो उक्कस्सकालस्स संखेज्जगुणत्तमेत्थ दट्ठव्वं, संखेज्जवारं तदणुसंधाणावलंबणे तदविरोहादो । जयध०

४ एदस्स पमाणं बंधसंकमणोदयावलियाहि परिहीणचालीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तं । जयध०

११२. सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[1]। ११३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो तुल्लो विसेसाहिओ[2]। ११४. मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[3]। ११५. एवं सव्वासु गईसु।

११६. एत्तो जहण्णयं। ११७. सव्वत्थोवो सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो[4]। ११८. जट्ठिदिसंकमो[5] असंखेज्जगुणो[6]। ११९. मायाए जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो[7]। १२०. जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[8]। १२१. माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[9]। १२२. जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[10]। १२३. कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[11]। १२४. जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[12]। १२५. पुरिस-

स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमण परस्पर तुल्य हो करके भी विशेष अधिक है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणसे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। इसी प्रकारसे सभी गतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमण-सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥११०-११५॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य स्थितिसंक्रमण-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं। सम्यक्त्वप्रकृति और संज्वलनलोभका जघन्य स्थितिसंक्रमण सबसे कम है। इससे इन्हीं प्रकृतियोंका यत्स्थितिकसंक्रमण असंख्यातगुणित है। इससे संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिसंक्रमण संख्यातगुणित है। इससे संज्वलनमानका जघन्य यत्स्थितिकसंक्रमण संख्यातगुणित है। इससे इसीका यत्स्थितिकसंक्रमण विशेष अधिक है। इससे संज्वलनमानका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। इससे इसीका यत्स्थितिकसंक्रमण विशेष अधिक है। संज्वलनमानके यत्स्थितिकसंक्रमणसे संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। इससे इसीका यत्स्थितिकसंक्रमण विशेष अधिक है। संज्वलनक्रोधके यत्स्थितिकसंक्रमणसे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण संख्यातगुणित है। इससे इसीका यत्स्थितिकसंक्रमण विशेष अधिक है। पुरुषवेदके

१ दोआवलिऊणचालीससागरोवमकोडाकोडीपमाणत्तादो। जयध०

२ एदेसिमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोपमकोडाकोडिमेत्तो। एसो पुण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो विसेसाहिओ। केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तूणतीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तेण। जयध०

३ बंधोदयावलिऊणसत्तरिकोडाकोडिसागरोवमपमाणत्तादो। एत्थ विसेसपमाणमंतोमुहुत्तं। जयध०

४ एयट्ठिदिपमाणत्तादो।

५ जा जम्मि संकमणकाले ट्ठिदी सा जट्ठिदी, जा जस्स अत्थि सो संकमो जट्ठितिसंकमो। कम्मप०

६ समयाहियावलियपमाणत्तादो। जयध०

७ आबाहापरिहीणद्धमासपमाणत्तादो। जयध०

८ समयूणदोआवलियपरिहीणाबाहामेत्तेण। जयध०

९ समयूणदोआवलियूणद्धमासादो अंतोमुहुत्तूणमासस्सेदस्स तदविरोहादो। जयध०

१० समयूणदोआवलियपरिहीणाबाहापवेसादो। जयध०

११ आबाहूणवेमासपमाणत्तादो। जयध०

१२ एत्थ विसेसपमाणं समयूणदोआवलियपरिहीणाबाहामेत्तं। जयध०

वेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो[1] । १२६. जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ । १२७. छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो । १२८. इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्जगुणो[3] । १२९. अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[4] । १३०. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[5] । १३१. मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[6] । १३२. अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[7] ।

१३३. णिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो[8] । १३४. जट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो । १३५. अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[9] ।

यत्स्थितिक संक्रमणसे हास्यादि छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण संख्यातगुणित है । छह नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण परस्पर तुल्य हो करके भी असंख्यातगुणित है । इससे आठ मध्यम कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है । आठों कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है । मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है । ॥११६-१३२॥

विशेषार्थ–जिस किसी विवक्षित कर्मकी संक्रमणकालमें जो स्थिति होती है, वह यत्स्थिति कहलाती है और उसके संक्रमणको यत्स्थितिकसंक्रमण कहते हैं ।

चूर्णिसू०–नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रमण सबसे कम है । इससे इसीका यत्स्थितिकसंक्रमण असंख्यातगुणित है । सम्यक्त्वप्रकृतिके यत्स्थितिकसंक्रमण-

१ किंचूणवेमासेहिंतो अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्साणं तहाभावस्स णायोववण्णत्तादो । जयध०

२ समयूणदोआवलियपरिहीणट्ठवस्सेहिंतो छण्णोकसायचरिमट्ठिदिखंडयस्स संखेज्जवस्ससहस्सपमाणस्स संखेज्जगुणत्ताविरोहादो । जयध०

३ पलिदोवमासंखेज्जदिभागपमाणत्तादो । जयध०

४ इत्थि-णवुंसयवेदाणं चरिमट्ठिदिखंडयायामादो दुचरिमट्ठिदिखंडयायामो असंखेज्जगुणो । एवं दुचरिमादो तिचरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । तिचरिमादो चदुचरिममिदि एदेण कमेण संखेज्जट्ठिदिखंडयसहस्साणि हेट्ठा ओसरिय अंतरकरणप्पारंभादो पुव्वमेव अट्ठकसाया खविदा । तेण कारणेणेदेसि चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफाली तत्तो असंखेज्जगुणा जादा । जयध०

५ चरित्तमोहक्खवयपरिणामेहि घादिदावसेसो अट्ठकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो । एसो पुण तत्तो अणंतगुणहीणविसोहिदंसणमोहक्खवणपरिणामेहि घादिदावसेसो त्ति । तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणत्तमव्वामोहेण पडिवज्जेदव्वं । जयध०

६ मिच्छत्तक्खवणादो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमुप्पत्तिदंसणादो ।

७ विसंजोयणापरिणामेहिंतो दंसणमोहक्खवयपरिणामाणमणंतगुणत्तेण मिच्छत्तचरिमफालीदो अणंताणुबंधिचरिमफालीए असंखेज्जगुणत्तविरोहाभावादो । जयध०

८ कदकरणिज्जोववादं पडुच्च एयट्ठिदिमेत्तो लब्भइ त्ति सव्वत्थोवत्तमेदस्स भणिदं । जयध०

९ कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जदिभागपमाणत्तादो । जयध०

१३६. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[1]। १३७. पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[2]। १३८. इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १३९. हस्स-रईणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १४०. णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १४१. अरइ-सोगाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १४२. भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १४३. बारसकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ। १४४. मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

१४५. विदियाए सव्वत्थोवो अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो[3]। १४६. सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[4]। १४७. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[5]। १४८. बारसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्ज-

से अनन्तानुबन्धीकषायका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है। अनन्तानुबन्धी कषायके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है। पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे हास्य और रतिका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। हास्य-रतिके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे अरति और शोकका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। अरति-शोकके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। भय-जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। बारह कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है ॥१३३-१४४॥

चूर्णिसू०—दूसरी पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीका जघन्य स्थितिसंक्रमण सबसे कम है। अनन्तानुबन्धीके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रमण असंख्यातगुणित है। सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे बारह कषाय और नव नोक-

१ उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहण्णभावोवलद्धीदो एत्थतणी पलिदोवमासंखभागायामा चरिमफाली अणंताणुबंधीविसंजोयणाचरिमफालीआयामादो असंखेजगुणा, तत्थ करणपरिणामेहि घादिदावसेसस्स एत्तो थोवत्तसिद्धीए णाइयत्तादो। जयध०

२ हदसमुप्पत्तिकम्मियासण्णिपच्छायदणेरइयम्मि अंतोमुहुत्तब्भवत्थम्मि पलिदोवमासंखेज्जभागेणूण-सागरोवमसहस्सचदुसत्तभागमेत्तपुरिसवेदजहण्णट्ठिदिसंकमावलंबणादो। जयध०

३ तत्थ विसंजोयणाचरिमफालीए करणपरिणामेहि लद्धघादावसेसिदाए सव्वत्थोवत्ताविरोहादो। जयध०

४ उव्वेल्लणचरिमफालीए लद्धजहण्णभावत्तादो। जयध०

५ कारणं—पढमदाए उव्वेल्लमाणो मिच्छाइट्ठी सव्वत्थ सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकंडयादो सम्मत्तस्स विसेसाहियमेव ट्ठिदिखंडयघादं करेइ जाव सम्मत्तमुव्वेल्लिदं ति। पुणो सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेमाणो सम्मत्त-

गुणो[1]। १४९. मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[2]।

१५०. भुजगारसंकमस्स अट्ठपदं काऊण सामित्तं कायव्वं[3]। १५१. मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिद-संकामओ को होदि ? १५२. अण्णदरो। १५३. अवत्तव्व-

षायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमण परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणित है। बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण विशेष अधिक है ॥१४५-१४९॥

विशेषार्थ–इसी प्रकार शेष पृथिवियोंमें भी जघन्य स्थितिसंक्रमण जानना चाहिए। शेष गतियोंमें और शेष मार्गणाओंमें भी ओघके अल्पबहुत्वके अनुसार यथासंभव अल्पबहुत्व लगा लेना चाहिए। विस्तारके भयसे चूर्णिकारने नहीं लिखा है, सो विशेष जिज्ञासुओंको जयधवला टीका देखना चाहिए।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे भुजाकार-संक्रमणका अर्थपद करके उसके स्वामित्वका निरूपण करना चाहिए ॥१५०॥

विशेषार्थ–अतीत समयमें जितनी स्थितियोंका संक्रमण करता था, उससे इस वर्तमान समयमें अधिक स्थितियोंका संक्रमण करना भुजाकार-संक्रम है। अतीत समयमें जितनी स्थितियोंका संक्रमण करता था, उससे इस वर्तमान समयमें कम स्थितियोंका संक्रमण करना, यह अल्पतर-संक्रम कहलाता है। जितनी स्थितियोंका अतीत समयमें संक्रमण करता था, उतनीका ही वर्तमान समयमें संक्रमण करना, यह अवस्थित-संक्रम है। अतीत समयमें किसी भी स्थितिका संक्रमण न करके वर्तमान समयमें संक्रमण करना अवक्तव्यसंक्रम है। यह भुजाकार-संक्रमका अर्थपद है।

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रम, अल्पतरसंक्रम और अवस्थितसंक्रमका करनेवाला कौन जीव है ? ॥१५१॥

समाधान–चारों गतियोंमेंसे किसी भी एक गतिका जीव उक्त संक्रमणोंका करनेवाला होता है ॥१५२॥

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वका अवक्तव्य संक्रमण संभव नहीं, इसलिए उसका संक्रामक

चरिमफालीदो विसेसाहियकमेण ट्ठिदिखंडयमागाएदि जाव सगचरिमट्ठिदिखंडयादो त्ति। तदो एदमेत्थ विसेसाहियत्ते कारणं। जयध०

१ अंतोकोडाकोडिपमाणत्तादो। जयध०

२ चालीस०पडिभागियंतोकोडाकोडीदो सत्तरि०पडिभागियंतोकोडाकोडीए तीहि-सत्तभागेहि अहियत्तदंसणादो। जयध०

३ किं तमट्ठपदं ? वुच्चदे—अणंतरोसक्काविद-विदिक्कंतसमए अप्पदरसंकमादो एण्हिं बहुवयरं संकामेइ त्ति एसो भुजगारसंकमो। अणंतरुस्सक्काविदविदिक्कंतसमए बहुवयरसंकमादो एण्हिं थोवयराओ संकामेइ त्ति एस अप्पयरसंकमो। तत्तियं तत्तियं चेव संकामेइ त्ति एसो अवट्ठिदसंकमो। अणंतर-वदिक्कंतसमए असंकमादो संकामेदि त्ति एसो अवत्तव्वसंकमो। एदेणट्ठपदेण भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदा-वत्तव्वसंकामयाणं परूवणा भुजगारसंकमो त्ति वुच्चइ। जयध०

संकामओ णत्थि[1]। १५४. एवं सेसाणं पयडीणं। णवरि अवत्तव्वया अत्थि[2]।

१५५. कालो। १५६. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामगो केवचिरं कालादो होदि? १५७. जहण्णेण एयसमओ[3]। १५८. उक्कस्सेण चत्तारि समया[4]। १५९. अप्पदरसंकामगो केवचिरं कालादो होदि? १६०. जहण्णेणेयसमओ[5]। १६१. उक्कस्सेण

भी कोई नहीं है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंके भुजाकारादि संक्रमणोंका स्वामित्व जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उन प्रकृतियोंका अवक्तव्यसंक्रम होता है ॥१५३-१५४॥

चूर्णिसू०–अब भुजाकारादि संक्रमणोंके कालका वर्णन किया जाता है ॥१५५॥

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है? ॥१५६॥

समाधान–मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय है ॥१५७-१५८॥

शंका–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है? ॥१५९॥

समाधान–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ तिरसठ सागरोपम है ॥१६०-१६१॥

विशेषार्थ–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणके उत्कृष्टकालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– कोई एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टिके सत्कर्मसे नीचे स्थितिबन्ध करता हुआ सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणको करके तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर भी मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणको करके अपनी आयुके अन्तर्मुहूर्तमात्र

---

१ असंकमादो संकमो अवत्तव्वसंकमो णाम। ण च मिच्छत्तस्स तारिससंकमसंभवो; उवसंतकसायस्स वि तस्सोकड्डणापरपयडिसंकमाणमत्थित्तदंसणादो। जयध०

२ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारस्स अण्णदरो सम्माइट्ठी, अप्पदरस्स मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा, अवट्ठिदस्स पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मियविदियसमयसम्माइट्ठी सामी होइ त्ति विसेसो जाणियव्वो। अण्णं च अवत्तव्वया अत्थि; सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणादियमिच्छाइट्ठिणा उव्वेल्लिदतदुभयसंतकम्मिएण वा सम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि तदुवलंभादो। अणंताणुबंधीणं पि विसंजोयणापुव्वसंजोगे अवसेसाणं च सव्वोवसामणादो परिणममाणगस्स देवस्स वा पढमसमयसंकामगस्स अवत्तव्वसंकमसंभवादो। जयध०

३ एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—एगो ट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि एयसमयं बंधवुड्ढीए परिणदो विदियादिसमएसु अवट्ठिदमप्पयरं वा बंधिय बंधावलियादीदं संकामिय तदणंतरसमए अवट्ठिदमप्पदरं वा पडिवण्णो। लद्धो मिच्छत्तट्ठिदीए भुजगारसंकामयस्स जहण्णेणेयसमओ। जयध०

४ तं जहा, एइंदिओ अद्धाक्खय–संकिलेसक्खएहिं दोसु समएसु भुजगारबंधं कादूण तदो से काले सण्णिपंचिंदिएसुप्पज्जमाणो विग्गहगदीए एगसमयमसण्णिट्ठिदिं बंधिऊण तदणंतरसमए सरीरं घेत्तूण सण्णिट्ठिदिं पबद्धो। एवं चदुसु समएसु णिरंतरं भुजगारबंधं कादूण पुणो तेणेव कमेण बंधावलियादिक्कंतं संकामेमाणस्स लद्धा मिच्छत्तभुजगारसंकमस्स उक्कस्सेण चत्तारि समया। जयध०

५ तं कथं? भुजगारमवट्ठिदं वा बंधमाणस्स एयसमयमप्पदरं बंधिय विदियसमए भुजगारावट्ठिदाणमण्णदरबंधेण परिणमिय बंधावलियवदिक्कमे बंधाणुसारेणेव संकमेमाणयस्स अप्पदरकालो जहण्णेणेयसमयमेत्तो होइ। जयध०

तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं। १६२. अवट्ठिदसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? १६३. जहण्णेणेयसमओ। १६४. उक्कस्सेणंतोमुहुत्तं[1]। १६५. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्व-संकामया केवचिरं कालादो होंति ? १६६. जहण्णुक्कस्सेणेयसमओ[2]। १६७. अप्पदरसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? १६८. जहण्णेण [3]अंतो-

शेष रह जाने पर प्रथमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतरसंक्रमण करता रहा। पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और प्रथम बार छयासठ सागरोपमकाल तक अल्पतर-संक्रमण करके और छयासठ सागरोपमकालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर अल्पतरकालके अविरोधसे अन्तर्मुहूर्तके लिए मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और दूसरी बार छयासठ सागरोपमकाल तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करके अन्तमें परिणामोंके निमित्तसे फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और द्रव्यलिंगके माहात्म्यसे इकतीस सागरोपमवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर भी शुक्ललेश्याके माहात्म्यसे सत्कर्मसे नीचे ही स्थितिबन्ध करता हुआ मिथ्यात्वका अल्पतर-संक्रामक ही रहा। वहाँसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो करके अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतरसंक्रमण कर पुनः भुजाकार या अवस्थित संक्रमणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्योपमसे अधिक एकसौ तिरेसठ सागरोपम-प्रमाण मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका उत्कृष्टकाल सिद्ध हो जाता है।

शंका–मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमण कितना काल है ? ॥१६२॥

समाधान–मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१६३-१६४॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य-संक्रमणका कितना काल है ? ॥१६५॥

समाधान–इनके संक्रमणका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ॥१६६॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥१६७॥

समाधान–इन दोनों प्रकृतियोंके अल्पतरसंक्रमणका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और

१ कुदो; एयट्ठिदिबंधावट्ठाणकालस्स जहण्णुक्कस्सेणेयसमयमंतोमुहुत्तमेत्तपमाणोवलंभादो। जयध०

२ भुजगारसंकमस्स ताव उच्चदे—तप्पाओग्गसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा तत्तो दुसमउत्तरादिमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि भुजगारसंकमो होदूण तदणंतरसमए अप्पदरसंकमो जादो। लद्धो जहण्णुक्कस्सेणेगसमयमेत्तो भुजगारसंकामयकालो। एवमवट्ठिद-संकमस्स वि, णवरि समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि तदुवलंभो वत्तव्वो। एवमवत्तव्वसंकमस्स वि वत्तव्वं, णवरि णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्ते गहिदे विदियसमयम्मि तदुवलद्धी होदि। जयध०

३ तं जहा—एगो मिच्छादिट्ठी पुव्वुत्तेहि तीहिं पयारेहिं सम्मत्तं घेत्तूण विदियसमए भुज-गारावट्ठिदावत्तव्वाणमण्णदरसंकमपज्जाएण परिणमिय तदियसमए अप्पयरसंकामयत्तमुवगओ। जहण्णकाला-

मुहुत्तं । १६९. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] । १७०. सेसाणं कम्माणं भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? १७१. जहण्णेणेयसमओ । १७२. उक्कस्सेण एगूणवीससमया । १७३. सेसपदाणि मिच्छत्तभंगो । १७४. णवरि अवत्तव्वसंकामया जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

१७५. एत्तो अंतरं । १७६. मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १७७. जहण्णेण एयसमओ । १७८. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं[2]

उत्कृष्टकाल कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागरोपम है ।।१६८-१६९।।

शंका—शेष कर्मोंके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ।।१७०।।

समाधान—शेष कर्मोंके भुजाकारसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल उन्नीस समय है ।।१७१-१७२।।

विशेषार्थ—उन्नीस समयकी प्ररूपणा स्थितिविभक्तिमें बतलाये गये प्रकारसे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—शेष पदोंके संक्रमणका काल मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि शेष पदोंके अवक्तव्यसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।।१७३-१७४।।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे भुजाकारादि संक्रमणोंका अन्तर कहते हैं ।।१७५।।

शंका—मिथ्यात्वके भुजाकार और अवस्थित संक्रमणका अन्तर काल कितना है ? ।।१७६।।

समाधान—मिथ्यात्वके भुजाकार और अवस्थित संक्रमणका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक एक सौ तिरसठ सागरोपम है ।।१७७-१७८।।

विरोहेण संकिलिट्ठो सम्मत्तट्ठिदीए उवरि मिच्छत्तट्ठिदिं तप्पाओग्गवड्ढीए वड्ढाविय सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो भुजगारसंकमेण अवट्ठिदसंकमेण वा परिणदो त्ति तस्स अंतोमुहुत्तमेत्तो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मप्पदरसंकमणजहण्णकालो होइ । अहवा सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमप्पदरसरूवेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिसंकममणुपालिय सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए वावदस्स पयदजहण्णकालो परूवेयव्वो ।

[1] तं जहा—एक्को मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तं घेत्तूण सव्वमहंतमुवसमसम्मत्तद्धमप्पदरसंकममणुपालिय वेदयसम्मत्तेण पढमछावट्ठिमणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे तम्मि अप्पयरसंकमाविरोहेण मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो । तदो अंतोमुहुत्तेण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावट्ठिमप्पयरसंकमेणाणुपालिय तदवसाणे अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो । पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणावावारेणच्छिय सम्मत्त-चरिमुव्वेल्लणफालीए तदप्पयरसंकमं समाणिय पुणो वि तप्पाओग्गेण कालेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिमुव्वे-ल्लिय तदप्पयरकालं समाणेदि । एवं पलिदोवमासंखेज्जभागब्भहियवेछावट्ठिसागरोवमाणि दोण्हमेदेसिं कम्माणमुक्कस्सपयदट्ठिदिसंकमकालो होइ । जयध०

[2] एत्थ जहण्णंतरं भुजगारावट्ठिदसंकमेहिंतो एयसमयमप्पयरे पडिय विदियसमए पुणो वि अप्पिद-पदं गयस्स वत्तव्वं । उक्कस्संतरं पि अप्पयरुक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि भुजगारंतरे विवक्खिए अवट्ठिद-कालेण सह वत्तव्वं । अवट्ठिदंतरं च भुजगारकालेण सह वत्तव्वं । जयध०

सादिरेयं । १७९. अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १८०. जहण्णेणेय-समओ । १८१. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १८२. एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं । १८३. णवरि अणंताणुबंधीणमप्पयरसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ । १८४. उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । १८५. सव्वेसिमवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १८६. जहण्णेणंतोमुहुत्तं । १८७. उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] । १८८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १८९. जहण्णेणंतोमुहुत्तं[2] । १९०. अप्पयरसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमयो । १९१. अवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[3] । १९२. उक्कस्सेण सव्वेसिमद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

शंका–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१७९॥

समाधान–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१८०-१८१॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो को छोड़ कर शेष कर्मोंके संक्रमणका अन्तर जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि अनन्तानुबन्धी कषायोंके अल्पतरसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥१८२-१८४॥

शंका–मिथ्यात्वादि तीन कर्मोंको छोड़कर शेष सब कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१८५॥

समाधान–जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है ॥१८६-१८७॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार और अवस्थितसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१८८॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । अवक्तव्य संक्रमणका जघन्य अन्तरकाल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । सबका अर्थात् सम्यक्त्वप्रकृति और

---

१ अणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगे सेसकसाय-णोकसायाणं च सव्वोवसामणापडिवादे अवत्तव्वसंकमस्सादिं करिय अंतरिदस्स पुणो जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमंतरिय पडिवण्णत-ब्भावम्मि तदुभयसंभवदंसणादो । जयध०

२ पुव्वुप्पण्णसम्मत्तादो परिवडिय मिच्छत्तट्ठिदिसंतवुड्ढीए सह पुणो वि सम्मत्तं पडिवज्जिय समयाविरोहेण भुजगारमवट्ठिदं च एगसमयं कादूणप्पदरेणंतरिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण तेणेव कमेण पडिणियत्तिय भुजगारावट्ठिदसंकामयभावेण परिणदम्मि तदुवलंभादो । जयध०

३ पढमसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंकमस्सादिं कादूणंतरिदस्स सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण जहण्णुव्वेल्लणकालब्भंतरे तदुभयमुव्वेल्लिय चरिमफालिपदणाणंतरसमए सम्मत्तं पडिवण्णस्स विदियसमयम्मि तदंतरपरिसमत्तिदंसणादो । जयध०

१९३. णाणाजीवेहि भंगविचओ । १९४. मिच्छत्तस्स सव्वजीवा भुजगार-संकामगा च अप्पयरसंकामया च अवट्ठिदसंकामया च[1] । १९५. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सत्तावीस भंगा[2] । १९६. सेसाणं मिच्छत्तभंगो । १९७. णवरि अवत्तव्वसंकामया भजियव्वा[3] ।

१९८. णाणाजीवेहि कालो । १९९. मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? २००. सव्वद्धा[4] । २०१. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिदअवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? २०२. जहण्णेणेय-

सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार, अवस्थित, अल्पतर और अवक्तव्य संक्रमणका उत्कृष्ट अन्तर-काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥१८९-१९२॥

चूर्णिसू०–अब भुजाकारादि संक्रमणोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय कहते हैं। सर्व जीव मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रामक हैं, अल्पतर-संक्रामक हैं, और अवस्थित संक्रामक हैं। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारादि संक्रमण-सम्बन्धी सत्ताईस भंग होते हैं। शेष पच्चीस कषायोंके भुजाकारादि संक्रमण-सम्बन्धी भंग मिथ्यात्वके समान होते हैं। केवल अवक्तव्य-संक्रामक भजितव्य हैं ॥१९३-१८७॥

विशेषार्थ–सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके सत्ताईस भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–इन दोनों कर्मोंके भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य संक्रामक जीव भजितव्य हैं, अर्थात् कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं। किन्तु अल्पतर-संक्रामक जीव नियमसे होते हैं। इसलिए भजितव्य पदोंको विरलन कर, उन्हें तिगुणा करने पर अल्पतर-संक्रामक रूप ध्रुवपदके साथ सत्ताईस भंग हो जाते हैं।

चूर्णिसू०–अब भुजाकारादिसंकमोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा कालका वर्णन करते हैं ॥१९८॥

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित संक्रमण करनेवाले जीवोंका कितना काल है ?

समाधान–सर्व काल है ॥२००॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार, अवस्थित और अवक्तव्य-संक्रमण करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? ॥२०१॥

१ कुदो, मिच्छत्तभुजगारादिसंकामयाणमणंतजीवाणं सव्वद्धमविच्छिण्णपवाहसरूवेणावट्ठाणदंसणादो । जयध०

२ कुदो; भुजगारावट्ठिदावत्तव्वसंकामयाणं भयणिज्जत्तेणाप्पयरसंकामयाणं धुवत्तदंसणादो । तदो भयणिज्जपदाणि विरलिय तिगुणिय अण्णोण्णब्भासे कए धुवसहिया सत्तावीस भंगा उप्पज्जंति । जयध०

३ मिच्छत्तस्सावत्तव्वसंकामया णत्थि । एदेसिं पुण अवत्तव्वसंकामया अत्थि, ते च भजियव्वा त्ति उत्तं होइ । जयध०

४ कुदो; तिसु वि कालेसु एदेसिं विरहाणुवलंभादो । जयध०

समओ[1] । २०३. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । २०४. अप्पयरसंकामया सव्वद्धा[3] । २०५. सेसाणं कम्माणं भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? २०६. सव्वद्धा[4] । २०७. अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? २०८. जहण्णेणेयसमओ[5] । २०९. उक्कस्सेण संखेज्जा समया । २१०. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामया सम्मत्तभंगो[6] ।

२११. णाणाजीवेहि अंतरं । २१२. मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामययंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २१३. णत्थि अंतरं । २१४. सम्मत्त-सम्मा-

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवां भाग है ॥२०२-२०३॥

चूर्णिसू०–इन्हीं दोनों कर्मोंके अल्पतरसंक्रामक जीव सर्व काल होते हैं ॥२०४॥

शंका–शेष कर्मोंके भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥२०५॥

समाधान–सर्व काल है ॥२०६॥

शंका–मोहनीयकी पचीस प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥२०७॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । केवल अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्य-संक्रमणका काल सम्यक्त्वप्रकृतिके समय जानना चाहिए । अर्थात् चारित्रमोहनीयकी सभी प्रकृतियोंके अवक्तव्य संक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है । ॥२०८-२१०॥

चूर्णिसू०–अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकारादि संक्रमणोंका अन्तर कहते हैं ॥२११॥

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकार अल्पतर और अवस्थित संक्रमण करने वालोंका कितना अन्तरकाल है ? ॥२१२॥

समाधान–मिथ्यात्वके भुजाकार,अल्पतर और अवक्तव्य संक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता है ॥२१३॥

१ दोण्हमेदेसिं कम्माणमेयसमयं भुजगारादिसंकामयत्तेण परिणदणाणाजीवाणं विदियसमए सव्वेसिमेव संकामयपज्जायपरिणामे तदुवलद्धीदो । जयध०

२ कुदो; णाणाजीवाणुसंधाणेण तेसिमेत्तियमेत्तकालावट्ठाणोवलंभादो । जयध०

३ कुदो; मिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणं पवाहस्स तदप्पयरसंकामयस्स तिसु विकालेसु णिरंतरमवट्ठाणोवलंभादो । जयध०

४ सव्वकालमविच्छिण्णसरूवेणेदेसिं संताणस्स समवट्ठाणादो । जयध०

५ उवसामणादो परिवडिदाणमणुसंधिदसंताणाणमेत्थ जहण्णकालसंभवो । तेसिं चेव संखेज्जवारमणुसंधिदसंताणाणमवट्ठाणकालो । जयध०

६ जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागो इच्चेदेण भेदाभावादो । जयध०

मिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २१५. जहण्णेणेयसमओ। २१६.उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये[1]। २१७.अप्पयरसंकामयंतरं* णत्थि अंतरं। २१८.अवट्ठिदसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमयो[2]। २१९. उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो[3]। २२०. अणंताणुबंधीणं अवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ। २२१. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये। २२२. सेसाणं कम्माणमवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ। २२३. उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। २२४. सोलसकसाय-णवणोकसायाणं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं[4]।

२२५. अप्पाबहुअं। २२६. सव्वत्थोवा मिच्छत्तभुजगारसंकामया[5]। २२७.

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार और अवक्तव्य-संक्रमण करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२१४॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौवीस अहोरात्र (दिन-रात) है ॥२१५-२१६॥

चूर्णिसू०—उक्त दोनों प्रकृतियोंके अल्पतर-संक्रमण करनेवालोंका कभी अन्तर नहीं होता। इन्हीं दोनों प्रकृतियोंके अवस्थित संक्रमण करनेवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौवीस अहोरात्र है। शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात सहस्र वर्ष है। सोलह कषाय, और नव नोकषायोंके भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित संक्रामकोंका अन्तर नहीं होता है ॥२१७-२२४॥

चूर्णिसू०—अब भुजाकारादि संक्रमण करनेवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रामक सबसे कम हैं। इससे अवस्थित-संक्रामक असंख्यातगुणित

---

१ कुदो; एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा पयदभुजगारावत्तव्वसंकामयाणं पुणरुब्भवाभावादो। जयध०

२ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मियाणं केत्तियाणं पि जीवाणं वेदयसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए विवक्खियसंकमपज्जाएण परिणमिय तदणंतरसमए अंतरिदाणं पुणो अण्णजीवेहि तदणंतरोवरिमसमए अवट्ठिदपज्जायपरिणदेहि अंतरवोच्छेदे कदे तदुवलंभादो। जयध०

३ एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण सम्मत्तपडिलंभस्स दुल्लहत्तादो। कुदो एवं ? दुसमयुत्तरादिमिच्छत्तट्ठिदिवियप्पाणं संखेज्जसागरोवमकोडाकोडिपमाणाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-भुजगारसंकमहेऊणं बहुलसंभवेण तत्थेव णाणाजीवाणं पाएण संचरणोवलंभादो। तदो तेहिं ट्ठिदिवियप्पेहि भूयो भूयो सम्मत्तं पडिवज्जमाणणाणाजीवाणमेसो उक्कस्संतरसंभवो दट्ठव्वो। जयध०

४ कुदो; सव्वद्धमेदेसु अणंतस्स जीवरासिस्स जहापविभागमवट्ठाणदंसणादो। जयध०

५ कुदो; दुसमयसंचिदत्तादो। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'केवचिरं कालादो होदि' इतना पाठ और अधिक मुद्रित है। (देखो पृ० १०९२) पर टीकाको देखते हुए वह नहीं होना चाहिए। ताड़पत्रीय प्रतिसे भी उसकी पुष्टि नहीं हुई है।

अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[1]। २२८. अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा[2]। २२९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अवट्ठिदसंकामया[3]। २३०. भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा[4]। २३१. अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा[5]। २३२. अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा[6]। २३३. अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[7]। २३४. भुजगारसंकामया अणंतगुणा[8]। २३५. अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[9]। २३६. अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा[10]। २३७. एवं सेसाणं कम्माणं।

हैं। इनसे अल्पतर संक्रामक संख्यातगुणित हैं ॥२२५-२२८॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थित-संक्रामक सबसे कम हैं। इनसे भुजाकार-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे अवक्तव्य-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे अल्पतर-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं ॥२२९-२३२॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्य-संक्रामक सबसे कम हैं। इनसे भुजाकार-संक्रामक अनन्तगुणित हैं। इनसे अवस्थित-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे अल्पतर-संक्रामक संख्यातगुणित हैं ॥२३२-२३६॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे शेष कर्मोंके भुजाकारादि-संक्रामकोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥२३७॥

१ कुदो; अंतोमुहुत्तसंचियत्तादो। जयध०

२ जइवि अप्पयरसंकमकालो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव, तो वि तक्कालसंचिदजीवरासिस्स पुव्विल्लसंचयादो संखेज्जगुणत्तं ण विरुज्झदे; संतस्स हेट्ठा संखेज्जवारमवट्ठिदट्ठिदिबंधेसु पादेक्कमंतोमुहुत्तकालपडिबद्धेसु परिणमिय सइं संतसमाणबंधेण सव्वेसिं जीवाणं परिणमणदंसणादो। जयध०

३ कुदो; समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाणमइदुल्लहत्तादो। जयध०

४ दोण्हमेदेसिमेयसमयसंचिदत्ते संते कुदो एस विसरिसभावो त्ति णासंकणिज्जं, तत्तो एदस्स विसयबहुत्तोवलंभादो। तं कथं? अवट्ठिदसंकमविसओ णिरुद्धेयट्ठिदिमेत्तो; समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मादो अण्णत्थ तदभावणिण्णयादो। भुजगारसंकमो पुण दुसमयुत्तरादिट्ठिदिवियप्पेसु संखेज्जसागरोवमपमाणावच्छिण्णेसु अप्पडिहयपसरो। तदो तेसु ठाइदूण वेदयसम्मत्तमुवसमसम्मत्तं च पडिवज्जमाणो जीवरासी असंखेज्जगुणो त्ति णिप्पडिबंधमेदं। जयध०

५ भुजगारसंकामयरासीदो अद्धपोग्गलपरियट्टकालब्भंतरसंचिदणिस्संतकम्मियरासिणिस्संदस्सावत्तव्वसंकामयरासिस्स असंखेज्जगुणत्ते विसंवादाभावादो। जयध०

६ अवत्तव्वसंकामयरासी उवसमसम्माइट्ठीणमसंखेज्जदिभागो। एसो पुण उवसमवेदगसम्माइट्ठिरासी सव्वो उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिरासी च, तदो असंखेज्जगुणो जादो। जयध०

७ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो। जयध०

८ कुदो; सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जभागपमाणत्तादो। जयध०

९ कुदो; सव्वजीवरासिस्स संखेज्जभागपमाणत्तादो। जयध०

१० अवट्ठिदसंकमवट्ठाणकालादो अप्पयरसंकमपरिणामकालस्स संखेज्जगुणत्तादो। जयध०

२३८. पदणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च। २३९. तत्थ समुक्कित्तणा–सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च अत्थि। २४०. एवं जहण्णयस्स वि णेदव्वं।

२४१. सामित्तं। २४२. मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स? २४३. जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं अंतोमुहुत्तं* संकामेमाणो सो सव्वमहंतं दाहं गदो उक्कस्सट्ठिदिं पबद्धो तस्सावलियादीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। २४४. तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं[1]। २४५. उक्कस्सिया हाणी कस्स? २४६. जेण उक्कस्सट्ठिदिखंडयं घादिदं तस्स उक्कस्सिया हाणी[2]। २४७. जमुक्कस्सट्ठिदिखंडयं तं थोवं। जं सव्वमहंतं दाहं गदो त्ति भणिदं, तं विसेसाहियं[3]। २४८.

चूर्णिसू०–पदनिक्षेपमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं–समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। उनमें समुत्कीर्तना इस प्रकार है–सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान होते हैं। इसी प्रकार जघन्यका भी वर्णन करना चाहिए। अर्थात् सभी प्रकृतियोंके जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होते हैं ॥२३८-२४०॥

चूर्णिसू०–अब स्वामित्वको कहते हैं ॥२४१॥

शंका–मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी स्थितिसंक्रमण-विषयक उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? ॥२४२॥

समाधान–जो जीव चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको संक्रमण करता हुआ अन्तर्मुहुर्त तक स्थित था, वह उत्कृष्ट संक्लेशके वशसे सर्व महान् दाहको प्राप्त हुआ और उसने उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया, उसके एक आवली-काल व्यतीत होनेपर प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंक्रमण-विषयक उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥२४३॥

चूर्णिसू०–उस ही जीवके अनन्तरकालमें अर्थात् उत्कृष्ट वृद्धि होनेके दूसरे समयमें उक्त कर्मोंका स्थितिसंक्रमण-सम्बन्धी उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥२४४॥

शंका–मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? ॥२४५॥

समाधान–जिसने उत्कृष्ट स्थितिकांडकका घात किया है, उसके प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंक्रमण-विषयक उत्कृष्ट हानि होती है ॥२४६॥

चूर्णिसू०–जो उत्कृष्ट स्थितिकांडक है, वह अल्प है और जो सर्व महान दाह-गत

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अंतोमुहुत्तं' पाठ नहीं है। (देखो पृ० १०९५) पर टीकाके अनुसार सूत्रमें यह पाठ होना चाहिए।

१ कुदो; उक्कस्सवुड्ढीए अविणट्ठसरूवेण तत्थावट्ठाणदंसणादो। जयध०

२ तत्थुक्कस्सट्ठिदिखंडयमेत्तस्स ट्ठिदिसंकमस्स एक्कसराहेण परिहाणिदंसणादो। केत्तियमेत्तं च तमुक्कस्सट्ठिदिखंडयं? अंतोकोडाकोडिपरिहीणकम्मट्ठिदिमेत्तुक्कस्सवुड्ढीदो किंचूणपमाणत्तादो। जयध०

३ जमुक्कस्सट्ठिदिकंडयमुक्कस्सहाणीए विसईकयं तं थोवं। जं पुण उक्कस्सवड्ढिपरूवणाए सव्वमहंतं दाहं गदो त्ति भणिदं तं विसेसाहियं ति वुत्तं होइ। केत्तियमेत्तो विसेसो? अंतोकोडाकोडिमेत्तो। जयध०

एदमप्पाबहुअस्स साहणं । २४९. एवं णवणोकसायाणं । २५०. णवरि कसायाणमा-वलियूणमुक्कस्सट्ठिदिं पडिच्छिदूणावलियादीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । २५१. से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

२५२. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? २५३. वेदगसम्मत्त-पाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण ट्ठिदिघादमकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सिया वड्ढी[2] ।

वृद्धि कही है, वह विशेष अधिक है। यह कथन वक्ष्यमाण अल्पबहुत्वका साधन है ॥२४७-२४८॥

विशेषार्थ—ऊपर जो मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी स्थितिसंक्रमण-विषयक वृद्धि-हानिका निरूपण किया गया है और अन्तमें जो उसका अल्पबहुत्व बताया गया है, उसका स्पष्टीकरण यह है कि प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंक्रमण-गत उत्कृष्ट वृद्धिका प्रमाण अन्तःकोडा-कोडीपरिहीन कर्मस्थितिमात्र है। तथा उत्कृष्ट हानिका प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकांडक-प्रमाण है। उत्कृष्ट हानिसे उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक है, यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण अन्तःकोडाकोडी-मात्र जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार नव नोकषायोंके स्थितिसंक्रमण-विषयक वृद्धि, हानि और अवस्थानकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेपता केवल यह है कि कषायोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिको ग्रहण करके आवलीकाल व्यतीत करनेवाले जीवके नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। (क्योंकि नोकषायोंका स्वमुखसे स्थितिबंध नहीं होता है।) और उसके द्वितीय समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥२४९-२५१॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥२५२॥

समाधान—वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके योग्य जघन्य स्थितिकी सत्तावाला (एके-न्द्रियोंसे आया हुआ) जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँध करके और स्थितिघातको नहीं करके अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टि जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥२५३॥

१ कुदो एवं कीरदे चे ण, समुहेणेदेसिं चालीससागरोवमकोडाकोडीणं बंधाभावेण कसायुक्कस्सट्ठिदि-पडिग्गहमुहेण तहा सामित्तविहाणादो। तदो बंधावलियूणं कसायट्ठिदिमुक्कस्सिवं सगपाओग्गंतोकोडाकोडि-ट्ठिदिसंकमे पडिच्छियूण संकमणावलियादिक्कंतस्स पयदसामित्तमिदि वुत्तं । ××× णवुंसयवेदारइसोगभय-दुगुंछाणमुक्कस्सट्ठिदिवुड्ढी अवट्ठाणं च वीससागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमासंखेजभागब्भहियाओ। कुदो; कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले तेसिं पि रूवूणाबाहाकंडएणूणवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्त-ट्ठिदि-बंधस्स दुप्पडिसेहत्तादो। जयध०

२ एत्थ वेदयपाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मिओ णाम दुविहो—किंचूणसागरोवमट्ठिदिसंतकम्मिओ तप्पुधत्तमेत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ च। एत्थ पुण सागरोवममेत्तट्ठिदिएइंदियपच्छायदो घेत्तव्वो; उक्कस्स-वड्ढीए पयदत्तादो। ××× तत्थ थोवूणसागरोवमसंकमादो हेट्ठिमसमयपडिबद्धत्तादो तवूणसत्तरिसागरो-वममेत्तट्ठिदिसंकमस्स वुड्ढिदंसणादो। जयध०

२५४. हाणी मिच्छत्तभंगो । २५५. उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स ? २५६. पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमय-सम्माइट्ठिस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

२५७. एत्तो जहण्णियाए* । २५८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ? २५९. अप्पप्पणो समयूणादो उक्कस्सट्ठिदिसंकमादो उक्कस्सट्ठिदिं संकामे-माणयस्स तस्स जहण्णिया वड्ढी[2] । २६०. जहण्णिया हाणी कस्स ? २६१. तप्पाओग्ग-समयुत्तरजहण्णट्ठिदिसंकमादो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं संकममाणयस्स तस्स जहण्णिया हाणी[3] ।

चूर्णिसू०—उक्त दोनों प्रकृतियोंके स्थितिसंक्रमण-विषयक हानिकी प्ररूपणा मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए ॥२५४॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसंक्रमण-विषयक उत्कृष्ट अव-स्थान किसके होता है ? ॥२५५॥

समाधान—जो जीव पूर्वोक्त प्रकारसे सम्यक्त्वको उत्पन्न कर (और मिथ्यात्वमें जाकर) सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वसे (एक समय अधिक मिथ्यात्व-की स्थितिको बाँधकर) समयोत्तर मिथ्यात्वस्थितिसत्कर्मिक होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥२५६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे सर्व कर्मोंके जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥२५७॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? ॥२५८॥

समाधान—अपने अपने एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमणसे उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण करनेवाले जीवके उस उस कर्मकी जघन्य वृद्धि होती है ॥२५९॥

शंका—पूर्वोक्त कर्मोंकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥२६०॥

समाधान—तत्तत्प्रायोग्य एक समय अधिक जघन्यस्थितिसंक्रमणसे तत्तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिको संक्रमण करनेवाले जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य हानि होती है ॥२६१॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जहण्णिया' इतना ही पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १०९७)

१ तत्थ पढमसमयसंकंतमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मस्स विदियसमए गलिदावसिट्ठस्स पढमसमयसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंकमपमाणेणावट्ठाणदंसणादो । जयध०

२ तं कथं ? समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण तदणंतरसमए उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियवदिक्कंतं संकामेंतो हेट्ठिमसमयूणट्ठिदिसंकमादो समयुत्तरं संकामेदि । तदो तस्स जहण्णिया वड्ढी होदि; एय-ट्ठिदिमेत्तस्सेव तत्थ वुड्ढिदंसणादो । उदाहरणपदंसणट्ठमेदं परूविदं, तदो सव्वासु चेव ट्ठिदीसु समयु-त्तरबंधवसेण जहण्णिया वड्ढी अविरुद्धा परूवेयव्वा । जयध० ।

३ समयुत्तरधुवट्ठिदिं संकामेदुमाढत्तो, तस्स जहण्णिया हाणी; एयट्ठिदिमेत्तस्सेव तत्थ हाणिदंस-णादो । जयध०

२६२. एयदरत्थमवट्ठाणं[1] । २६३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ? २६४. पुव्वुप्पण्णसम्मत्तादो दुसमयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स जहण्णिया वड्ढी[2] । २६५. हाणी सेसकम्मभंगो । २६६. अवट्ठाणमुक्कस्सभंगो ।

२६७. अप्पाबहुअं । २६८. मिच्छत्त-सोलसकसाय-इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी[3] । २६९. वड्ढी अवट्ठाणं च दोवि तुल्लाणि विसेसाहियाणि[4] । २७०. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवो अवट्ठाणसंकमो[5] । २७१. हाणिसंकमो असंखेज्जगुणो[6] । २७२. वड्ढिसंकमो विसेसाहिओ[7] । २७३. णवुंसयवेद-अरइ-सोग-भय-

चूर्णिसू०-उन ही पूर्वोक्त कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवस्थित उत्कृष्ट वृद्धि या हानिमेंसे किसी एक स्थितिमें जघन्य अवस्थान पाया जाता है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि ये जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिमात्र ही होते हैं ॥२६२॥

शंका-सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?॥२६३॥

समाधान-पूर्वोत्पन्न सम्यक्त्वसे (गिरकर और दो समय अधिक मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँध कर) द्विसमयोत्तर मिथ्यात्वसत्कर्मिक होकर जो सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस द्विसमयवर्ती सम्यग्दृष्टिके उक्त दोनों कर्मोंकी जघन्य वृद्धि होती है ॥२६४॥

चूर्णिसू०-उक्त दोनों कर्मोंकी हानि शेष कर्मोंकी हानिके समान जानना चाहिए दोनों कर्मोंका अवस्थान अपने-अपने उत्कृष्ट अवस्थानके सदृश होता है ॥२६५-२६६॥

चूर्णिसू०-अब उपर्युक्त उत्कृष्ट जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान संक्रमणोंके प्रमाणका निर्णय करनेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं-मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति; इन कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे कम होती है । इन कर्मोंकी उत्कृष्ट हानिसे इन्हीं कर्मोंकी वृद्धि और अवस्थान ये दोनों परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं ॥२६७-२६९॥

चूर्णिसू०-सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों कर्मोंका अवस्थान-संक्रमण सबसे कम है । इससे इन्हीं कर्मोंका हानि-संक्रमण असंख्यातगुणा है और इससे वृद्धि-संक्रमण विशेष अधिक है ॥२७०-२७२॥

---

१ कथं ताव वड्ढीए अवट्ठाणसंभवो ? वुच्चदे-समयूणुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो उक्कस्सट्ठिदिसंकमेण वड्ढिदस्स अंतोमुहुत्तमवट्ठिदबंधवसेण तत्थेवावट्ठाणे णत्थि विरोहो । जयध०

२ कुदो; वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए दुसमयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिं पडिच्छिय तत्थेवावट्ठिदीए णिसेयमेत्तं गालिय विदियसमए पढमसमयसंकमादो समयुत्तरं संकामेमाणम्मि जहण्णवुड्ढीए एयसमयमेत्तो मुवलंभादो । जयध०

३ कुदो; अंतोकोडाकोडिपरिहीणसत्तरि-चालीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो । जयध०

४ केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो । ५ एयणिसेयपमाणत्तादो । जयध०

६ उक्कस्सट्ठिदिखंडयपमाणत्तादो । ७ केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिमेत्तेण । जयध०

दुगुंछाणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी अवट्ठाणं च[1] २७४. हाणिसंकमो विसेसाहिओ[2] ।

२७५. एत्तो जहण्णयं । २७६. सव्वासिं पयडीणं जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाण-ट्ठिदिसंकमो तुल्लो[3] ।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो ।

२७७. वड्ढीए तिण्णि अणिओगद्दाराणि । २७८. समुक्कित्तणा परूवणा अप्पाबहुए त्ति । २७९. तत्थ समुक्कित्तणा । २८०. तं जहा । २८१. मिच्छत्तस्स असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुण-हाणी अवट्ठाणं च । २८२. अवत्तव्वं णत्थि[4] । २८३. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चउव्विहा वड्ढी चउव्विहा हाणी अवट्ठाणमवत्तव्वयं च । २८४. सेसकम्माणं मिच्छत्तभंगो । २८५. णवरि अवत्तव्वयमत्थि[5] ।

चूर्णिसू०—नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा; इन कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान संक्रमण सबसे कम है और हानिसंक्रमण विशेष अधिक है ॥२७३-२७४॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य अल्पबहुत्व कहते हैं—सभी प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका वृद्धिसंक्रमण, हानिसंक्रमण और अवस्थानसंक्रमण परस्पर तुल्य हैं ॥२७५—२७६॥

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—पदनिक्षेपके विशेष कथन करनेरूप वृद्धिमें तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा और अल्पबहुत्व । उनमेंसे पहले समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि होती है, असंख्यातभागहानि होती है, संख्यातभागवृद्धि होती है, संख्यातभागहानि होती है, संख्यातगुणवृद्धि होती है, संख्यातगुणहानि होती है, असंख्यातगुणहानि होती है और अवस्थान भी होता है । किन्तु मिथ्यात्वका अवक्तव्यसंक्रमण नहीं होता है ॥२७७—२८२॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका चार प्रकारकी वृद्धिरूप, चार प्रकारकी हानिरूप संक्रमण तथा अवस्थानसंक्रमण और अवक्तव्यसंक्रमण होता है । शेष कर्मोंका संक्रमण मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए । अर्थात् सोलह कषाय और नव नोकषायोंका तीन वृद्धिरूप और चार हानिरूप संक्रमण और अवस्थान संक्रमण होता है । केवल इतना विशेष है कि इन कर्मोंका अवक्तव्यसंक्रमण होता है ॥२८३-२८५॥

१ कुदो; एदेसिमुक्कस्सवड्ढीए अवट्ठाणस्स च पलिदोवमासंखेज्जभागब्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तदंसणादो । जयध०

२ केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिपरिहीणवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तेण । जयध०

३ कुदो; सव्वपयडीणं जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणमेयट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

४ कुदो; असंकमादो तस्स संकमपवुत्तीए सव्वद्धमणुवलंभादो । जयध०

५ विसंजोयणापुव्वसंजोगे सव्वोवसामणापडिवादे च तस्संभवो अत्थि त्ति एसो विसेसो । अण्णं च पुरिसवेद-तिण्हं संजलणाणमसंखेज्जगुणवड्ढिसंभवो वि अत्थि, उवसमसेढीए अप्पप्पणो णवकबंधसंकमणावत्थाए कालं काऊण देवेसुववण्णयम्मि तदुवलद्धीदो । जयध०

२८६. परूवणा एदासिं विधिं पुध पुध उवसंदरिसणा परूवणा णाम ।

२८७. अप्पाबहुअं। २८८. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स असंखेज्जगुणहाणिसंकामया[1] । २८९. संखेज्जगुणहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा[2] । २९०. संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[3] । २९१. संखेज्जगुणवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[4]। २९२. संखेज्जभागवड्ढि-संकामया संखेज्जगुणा[5] । २९३. असंखेज्जभागवड्ढिसंकामया अणंतगुणा[6] । २९४. अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[7] । २९५. असंखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[8] ।

चूर्णिसू०–अब प्ररूपणा अनुयोगद्वार कहते हैं । इन उपर्युक्त वृद्धि, हानि आदिकी विधिके पृथक्-पृथक् विषय-विभागपूर्वक दिखलानेको प्ररूपणा कहते हैं ॥२८६॥

चूर्णिसू०–अब वृद्धि-हानि आदिके संक्रमणसम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं । मिथ्यात्वके असंख्यातगुणहानि-संक्रामक सबसे कम हैं । इनसे संख्यातगुणहानि-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । इनसे संख्यातभागहानि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातगुण-वृद्धि-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि-संक्रामक अनन्तगुणित हैं । इनसे अवस्थित-संक्रामक असंख्यात-गुणित हैं । इनसे असंख्यातभागहानि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं ॥२८७–२९५॥

---

१ कुदो; दंसणमोहक्खवयजीवे मोत्तूण एत्थ तदसंभवादो । जयध०

२ कुदो; सण्णिपंचिंदियरासिस्स असंखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

३ कुदो; संखेज्जगुणहाणिपरिणमणवारेहिंतो संखेज्जभागहाणिपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तुवलंभादो । ण चेदमसिद्धं; तिव्वविसोहीहिंतो मंदविसोहीणं पाएण संभवदंसणादो । जयध०

४ एत्थ कारणं–संखेज्जभागहाणीए सण्णिपंचिंदियरासी पहाणो, सेसजीवसमासेसु संखेज्जभागहाणी कुणंताणं बहुवाणमसंभवादो । संखेज्जगुणवड्ढी पुण परत्थाणादो आगंतूण सण्णिपंचिंदिएसुप्पज्जमाणाणं सव्वेसिमेव लब्भदे । तहा एइंदिय–वियलिंदियाणमसण्णिपंचिंदिएसुववज्जमाणाणं संखेज्जगुणवड्ढी चेव होइ । एवमेइंदिय-बीइंदियाणं चउरिंदिएसु बेइंदिय-तेइंदिएसु च समुप्पज्जमाणाणमेइंदियाणं संखेज्जगुणवड्ढि-णियमो वत्तव्वो । एवमुप्पज्जमाणासेसजीवरासिपमाणं तसरासिस्स असंखेज्जदिभागो, तसरासिं उवक्कमण-कालेण खंडिदेयखंडमेत्ताणं चेव परत्थाणादो आगंतूण तत्थुप्पज्जमाणाणमुवलंभादो । तदो परत्थाणरासिपाहम्मेण सिद्धमेदेसिं असंखेज्जगुणत्तं । जयध०

५ एत्थ वि तसरासी चेव परत्थाणादो पविसंतओ पहाणं, सत्थाणे संखेज्जभागवड्ढिसंकामयाणं संखेज्जभागहाणिसंकामएहि सरिसाणमप्पहाणत्तादो । किंतु परत्थाणादो संखेज्जगुणवड्ढिपवेसएहिंतो संखे-ज्जभागवड्ढिपवेसया बहुआ संखेज्जगुणहीणट्ठिदिसंतकम्मेण सह एइंदिएहिंतो णिप्पिदमाणाणं संखेज्जभाग-हाणिट्ठिदिसंतकम्मेण सह तत्तो णिप्पिदमाणे पेक्खिऊण संखेज्जगुणहीणत्तादो । ×× तदो संखेज्जगुणत्त-मेदेसिं ण विरुज्झदे । जयध०

६ कुदो; एइंदियरासिस्सासंखेज्जभागपमाणत्तादो । दुसमयाहियावट्ठिदासंखेज्जभागहाणिकाल-समासेणंतोमुहुत्तपमाणेणेइंदियरासिमोवट्टिय दुगुणिदे पयदवड्ढिसंकामया होंति त्ति सिद्धमेदेसिमणंतगुणत्तं । जयध०

७ कुदो; एइंदियरासिस्स संखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

८ कुदो; अवट्ठाणकालादो अप्पयरकालस्स संखेज्जगुणत्तादो । जयध०

२९६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिसंकामया[1]। २९७. अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[2]। २९८. असंखेज्जभागवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[3]। २९९. असंखेज्जगुणवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[4]। ३००. संखेज्जभागवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[5]। ३०१. संखेज्जगुणवड्ढिसंकामया संखेज्जगुणा[6]। ३०२. संखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[7]। ३०३. संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[8]। ३०४. अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा[9]। ३०५. असंखेज्जभागहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा[10]।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यातगुणहानिसंक्रामक सबसे कम हैं। इनसे अवस्थितसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धिसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धिसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातगुणहानि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं। इनसे संख्यातभागहानि-संक्रामक संख्यातगुणित हैं। इनसे अवक्तव्य-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। इनसे असंख्यातभागहानि-संक्रामक असंख्यातगुणित हैं ॥२९६–३०५॥

विशेषार्थ—सूत्र नं० ३०३ की टीका करते हुए आ० वीरसेनने 'असंखेज्जगुणा' कहकर एक पाठान्तरका उल्लेख किया है, और उसका समाधान इस प्रकार किया है कि स्वस्थानकी अपेक्षा तो संख्यातगुणहानि-संक्रामकोंसे संख्यातभागहानि-संक्रामक संख्यातगुणित ही हैं, किन्तु अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा वे असंख्यातगुणित भी हैं। ऐसा कहकर उन्होंने अपना यह अभिप्राय प्रगट किया है कि यह पाठान्तर ही यहाँ प्रधानरूपसे स्वीकार करना चाहिए।

---

१ कुदो; दंसणमोहक्खवयसंखेज्जजीवे मोत्तूणण्णत्थ तदसंभवादो। जयध०

२ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो। ण चेदमसिद्धं; अवट्ठिदपाओग्गसमयुत्तरमिच्छत्त-ट्ठिदिवियप्पेसु तेत्तियमेत्तजीवाणं संभवदंसणादो। जयध०

३ तं जहा—अवट्ठिदसंकमपाओग्गविसयादो असंखेज्जभागवड्ढिपाओग्गविसओ असंखेज्जगुणो; अवट्ठिदपाओग्गट्ठिदिविसेसेसु पादेक्कं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणमसंखेज्जभागवड्ढिवियप्पाण-मुप्पत्तिदंसणादो। तदो विसयबहुत्तादो सिद्धमेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं। जयध०

४ संचयकालमाहप्पेणेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं। जयध०

५ किं कारणं; पुव्विल्लविसयादो एदेसिं विसयस्स असंखेज्जगुणत्तोवलंभादो। जयध०

६ कारणं—दोण्हमेदेसिं वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणरासीपहाणो। किंतु संखेज्जभागवड्ढिविसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणवड्ढिविसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवा संचयकाल-माहप्पेण संखेज्जगुणा जादा। जयध०

७ कुदो; तिण्णिवड्ढि-अवट्ठाणेहिं गहियसम्मत्ताणमंतोमुहुत्तसंचिदाणं संखेज्जगुणहाणीए पाओग्गत्त-दंसणादो। जयध०

८ कारणमेत्थ सुगमं; मिच्छत्तप्पाबहुअसुत्ते परूविदत्तादो। जयध०

९ कुदो; अद्धपोग्गलपरियट्टसंचयादो पडिणियत्तिय णिस्संतकम्मियभावेण सम्मत्तं पडिवज्जमाणाण-मिहग्गहणादो। जयध०

१० पुव्विल्लासेससंकामया सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-संतकम्मियाणमसंखेज्जदिभागो चेव; सव्वेसिमेय-

३०६. सेसाणं कम्माणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[1]। ३०७. असंखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[2]। ३०८. सेससंकामया मिच्छत्तभंगो।

एवं ठिदिसंकमो समत्तो

चूर्णिसू०-शेष पच्चीस कर्मोंके अवक्तव्य-संक्रामक सबसे कम हैं। इनसे असंख्यातगुणहानिसंक्रामक संख्यातगुणित हैं। इनसे शेष संक्रामकोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्वसंक्रामकोंके अल्पबहुत्वके समान है ॥३०६-३०८॥

इस प्रकार स्थितिसंक्रमण अधिकार समाप्त हुआ।

समयसंचिदत्तब्भुवगमादो। एदे पुण तेसिमसंखेज्जभागा, वेसागरोवमकालब्भंतरे वेदयसम्माइट्ठिरासिसंचयस्स दीहुव्वेलणकालब्भंतरमिच्छाइट्ठिसंचयसहिदस्स पहाणत्तावलंबणादो। तदो असंखेज्जगुणा जादा। जयध०

१ अणंताणुबंधीणं ताव पलिदोवमस्सासंखेज्जभागमेत्ता उक्कस्सेणेयसमयम्मि अवत्तव्वसंकमं कुणंति। बारसकसाय-णवणोकसायाणं पुण संखेज्जा चेव उवसामया सव्वोवसामणादो परिवडिय अवत्तव्वसंकमं कुणमाणा लब्भंति त्ति सव्वत्थोवत्तमेदेसिं जादं। जयध०

२ अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चरित्तमोहक्खवणाए च दूरावकिट्टिप्पहुडि संखेज्जसहस्सट्ठिदिखंडयचरिमफालीसु वट्टमाणजीवाणमेयवियप्पपडिबद्धावत्तव्वसंकामएहिंतो तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो। जयध०

अणुभाग-संकमाहियारो

१. अणुभागसंकमो दुविहो मूलपयडि-अणुभागसंकमो च उत्तरपयडि-अणुभागसंकमो च[1] । २. तत्थ अट्ठपदं[2] । ३. अणुभागो ओकड्डिदो वि संकमो, उक्कड्डिदो वि संकमो, अण्णपयडिं णीदो वि संकमो[3] ।

अनुभाग-संक्रमाधिकार

अब गुणधराचार्यके मुख-कमलसे विनिर्गत 'संकामेदि कदिं वा' गाथासूत्रके इस तृतीय चरणमें निबद्ध अनुभागसंक्रमणका विवरण किया जाता है ।

चूर्णिसू०–अनुभागसंक्रमण दो प्रकारका है–मूलप्रकृति-अनुभागसंक्रमण और उत्तर-प्रकृति-अनुभागसंक्रमण । उनके विषयमें यह अर्थपद है–अपकर्षित भी अनुभागसंक्रमण होता है, उत्कर्षित भी अनुभागसंक्रमण होता है और अन्य प्रकृतिरूपसे परिणत भी अनुभाग-संक्रमण होता है ॥१-३॥

विशेषार्थ–अनुभाग नाम कर्मोंके स्वकार्योत्पादन या फल-प्रदान करनेकी शक्तिका है । उसके संक्रमण अर्थात् स्वभावान्तर करनेको अनुभागसंक्रमण कहते हैं । यह स्वभा-वान्तरावाप्ति तीन प्रकारसे की जा सकती है–फल देनेकी शक्तिको घटाकर, बढ़ाकर या पर प्रकृतिरूपसे परिवर्तित कर । इनमेंसे कर्मोंकी आठों मूलप्रकृतियोंके अनुभागमें पर प्रकृतिरूप-संक्रमण नहीं होता, केवल अनुभागशक्तिके घटानेरूप अपकर्षणसंक्रमण और बढ़ानेरूप उत्क-र्षणसंक्रमण होता है । परन्तु उत्तरप्रकृतियोंमें अपकर्षणसंक्रमण, उत्कर्षणसंक्रमण और पर-प्रकृतिसंक्रमण ये तीनों ही होते हैं ।

---

१ अणुभागो णाम कम्माणं सगकज्जुप्पायणसत्ती । तस्स संकमो सहावंतरसंकंती । सो अणुभाग-संकमो त्ति वुच्चइ । ××× तत्थ मूलपयडिमोहणीयसण्णिदाए जो अणुभागो जीवम्मि मोहुप्पायणसत्तिलक्खणो तस्स ओकड्डुक्कड्डणावसेण भावंतरावत्ती मूलपयडिअणुभागसंकमो णाम । उत्तरपयडीणं च मिच्छत्तादीण-मणुभागस्स ओकड्डुक्कड्डणपरपयडिसंकमेहि जो सत्तिविपरिणामो सो उत्तरपयडिअणुभागसंकमो त्ति भण्णदे । जयध०

२ तत्थट्ठपयं उव्वट्टिया व ओवट्टिया व अविभागा ।
अणुभागसंकमो एस अन्नपगइं णिया वावि ॥४६॥ कम्मप० अनु० संकम०

३ ओकड्डिदो ताव अणुभागो संकमववएसं लहदे; अहियरसस्स कम्मक्खंधस्स तस्स हीणरसत्तेण विपरिणामदंसणादो; अवत्थादो अवत्थंतरसंकंती संकमो त्ति । एवमुक्कड्डिदो अण्णपयडिं णीदो वि संकमो; तत्थ वि पुव्वावत्थापरिच्चाएणुत्तरावत्थावत्तिदंसणादो । ××× अण्णपयडिं णीदो वि अणुभागो संकमो त्ति एदं तइज्जमट्ठपदमुत्तरपयडिविसयं चेव, मूलपयडीए तदसंभवादो । जयध०

४. ओकड्डणाए परूवणा । ५. पढमफद्दयं ण ओकड्डिज्जदि[1] । ६. विदियफद्दयं ण ओकड्डिज्जदि[2] । ७. एवमणंताणि फद्दयाणि जहण्णिया अइच्छावणा, तत्तियाणि फद्दयाणि ण ओकड्डिज्जंति । ८. अण्णाणि अणंताणि फद्दयाणि जहण्णणिक्खेवमेत्ताणि च ण ओकड्डिज्जंति[3] । ९. जहण्णओ णिक्खेवो जहण्णिया अइच्छावणा च तत्तियमेत्ताणि फद्दयाणि आदीदो अधिच्छिदूण तदित्थफद्दयमोकड्डिज्जइ[4] । १०. तेण परं सव्वाणि फद्दयाणि ओकड्डिज्जंति ।

११. एत्थ अप्पाबहुअं । १२. [5]सव्वत्थोवाणि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि[6] ।

चूर्णिसू०–इनमेंसे पहले अपकर्षणा या अपवर्तनारूप संक्रमणकी प्ररूपणा की जाती है–प्रथम स्पर्धक अपकर्षित नहीं किया जा सकता । द्वितीय स्पर्धक अपकर्षित नहीं किया जा सकता । इस प्रकार अनन्त स्पर्धक अपकर्षित नहीं किये जा सकते, जिनका कि प्रमाण जघन्य अतिस्थापना जितना है । इसी प्रकार इनसे आगेके जघन्य निक्षेपमात्र अन्य अनन्त स्पर्धक भी अपकर्षित नहीं किये जा सकते । आदि स्पर्धकसे लेकर जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापनाका जितना प्रमाण है, उतने स्पर्धक अतिक्रान्त करके जो इष्ट स्पर्धक प्राप्त होता है, वह अपकर्षित किया जा सकता है और उससे परवर्ती सर्व स्पर्धक अपकर्षित किये जा सकते हैं ॥४-१०॥

विशेषार्थ–ऊपरके स्पर्धकोंके अनुभागका अपकर्षण करके नीचे जिन स्पर्धकोंमें उसे निक्षिप्त किया जाता है, उन्हें निक्षेप कहते हैं, और आदि स्पर्धकसे लेकर निक्षेपके प्रथम स्पर्धकके पूर्वतकके जिन स्पर्धकोंके वह अपकर्षित अनुभागशक्ति निक्षिप्त नहीं की जाती और न जिनका अपकर्षण ही किया जा सकता है, उन्हें अतिस्थापना कहते हैं ।

चूर्णिसू०–यहाँपर जघन्यनिक्षेपादिविषयक अल्पबहुत्व इस प्रकार है–प्रदेशगुण-

१ कुदो; तत्थाइच्छावणाणिक्खेवाणमदंसणादो । जयध०

२ तत्थ वि अइच्छावणाणिक्खेवाभावस्स समाणत्तादो । जयध०

३ तस्साइच्छावणासंभवे वि णिक्खेवविसयादंसणादो । जयध०

४ अइच्छावणाणिक्खेवाणमेत्थ संपुण्णत्तदंसणादो । विवक्खियफद्दयादो हेट्ठा जहण्णाइच्छावणामेत्तमुल्लंघिय हेट्ठिमेसु फद्दएसु जहण्णणिक्खेवमेत्तेसु जहण्णफद्दयपज्जवसाणेसु तदित्थफद्दयोकड्डुणासंभवो त्ति भणिदं होइ । जयध०

५ पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं णाम किं ? जम्मि उद्देसे पढमफद्दयादिवग्गणा अवट्ठिदविसेसहाणीए गच्छमाणाए दुगुणहीणा जायदे, तदवहिपरिच्छिण्णमद्धाणं गुणहाणिट्ठाणंतरमिदि भण्णदे । एदम्मि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरे अणंताणि फद्दयाणि अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणमेत्ताणि अत्थि, ताणि सव्वत्थोवाणि त्ति भणिदं होइ । जयध०

६ थोवं पएसगुणहाणिअंतरं दुसु जहन्ननिक्खेवो ।
कमसो अणंतगुणिओ दुसु वि अइत्थावणा तुल्ला ॥८॥
वाघाएणणुभागकंडगमेक्काइ वग्गणाऊणं ।
उक्कस्सो णिक्खेवो ससंतबंधो य सविसेसो ॥९॥ कम्मप० उद्वर्तनापवर्त०

१३. जहण्णओ णिक्खेवो अणंतगुणो[1]। १४. जहण्णिया अइच्छावणा अणंतगुणा[2]। १५. उक्कस्सयमणुभागकंडयमणंतगुणं[3]। १६. उक्कस्सिया अइच्छावणा एगाए वग्गणाए ऊणिया[4]। १७. उक्कस्सओ णिक्खेवो विसेसाहिओ[5]। १८. उक्कस्सओ बंधो विसेसाहिओ[6]।

१९. उक्कड्डणाए परूवणा। २०. [7]चरिमफद्दयं ण उक्कड्डिज्जदि[8]। २१. दुच-

हानिस्थानान्तर-सम्बन्धी स्पर्द्धक सबसे कम हैं। इनसे जघन्य निक्षेप अनन्तगुणित है। जघन्य निक्षेपसे जघन्य अतिस्थापना अनन्तगुणी है। जघन्य अतिस्थापनासे उत्कृष्ट अनुभाग-कांडक अनन्तगुणा है। उत्कृष्ट अनुभागकांडकसे उत्कृष्ट अतिस्थापना एक वर्गणासे कम है। अर्थात् उत्कृष्ट अतिस्थापनासे उत्कृष्ट अनुभागकांडक एक वर्गणामात्रसे अधिक है। उत्कृष्ट अनुभागकांडकसे उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है। उत्कृष्ट निक्षेपसे उत्कृष्ट बन्ध विशेष अधिक है ॥११-१८॥

विशेषार्थ—जिस स्थलपर प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणा अवस्थित विशेष हानिसे जाती हुई दुगुण-हीन हो जाती है, उस अवधि-परिच्छिन्न अध्वानको प्रदेशगुणहानिस्थाना-न्तर कहते हैं। इस प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमें अनन्त स्पर्धक होते हैं, जिनका कि प्रमाण अभव्योंके प्रमाणसे भी अनन्तगुणा है। फिर भी वह आगे कहे गये जघन्य निक्षेपादिके प्रमाणकी अपेक्षा सबसे कम है।

चूर्णिसू०—अब उत्कर्षणा या उद्वर्तनारूप संक्रमणकी प्ररूपणा की जाती है—अन्तिम स्पर्धक उत्कर्षित नहीं किया जा सकता। द्विचरमस्पर्धक भी उत्कर्षित नहीं किया

१ कुदो ? तत्थाणंताणमणुभागपदेसगुणहाणीणं संभवादो। जयध०

२ कुदो ? तत्तो वि अणंतगुणाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि विलईकरिय पयट्टत्तादो। जयध०

३ कुदो ? उक्कस्साणुभागसंतकम्मस्स अणंताणं भागाणं उक्कस्साणुभागखंडयसरूवेण गहणोवलं-भादो। जयध०

४ चरिमवग्गणपरिहीणुक्कस्साणुभागकंडयपमाणत्तादो। तं कधं ? उक्कस्साणुभागखंडए आगाइदे दुचरिमादिहेट्ठिमफालीसु अंतोमुहुत्तमेत्तीसु सव्वत्थ जहण्णाइच्छावणा चेव पुव्वुत्तपरिमाणा होइ; तक्काले वाघादाभावादो। पुणो चरिमफालिपदणसमकालं चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए उक्कस्साइच्छावणा होइ, णिरुद्धचरिमवग्गणं मोत्तूणाणुभागकंडयस्सेव सव्वस्स तत्थाइच्छावणासरूवेण परिणमणदंसणादो। एदेण कारणेण उक्कस्साइच्छावणा उक्कस्साणुभागखंडयादो एगवग्गणामेत्तेण ऊणिया होइ। तं पि तत्तो एयवग्ग-णामेत्तेणब्भहियमिदि सिद्धं। जयध०

५ उक्कस्साणुभागं बंधियूणावलियादीदस्स चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए ओकड्डिज्जमाणाए रूवाहिय-जहण्णाइच्छावणापरिहीणो सव्वो चेवाणुभागपत्थारो उक्कस्सणिक्खेवसरूवेण लब्भइ। तदो घादिदावसेसम्मि रूवाहियजहण्णाइच्छावणामेत्तं सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण उक्कस्साणुभागकंडयादो उक्कस्सणिक्खेवो विसेसाहियो त्ति घेत्तव्वो। जयध०

६ केत्तियमेत्तेण ? रूवाहियजहण्णाइच्छावणामेत्तेण। जयध०

७ **चरमं णोव्वट्टिज्जइ जावाणंताणि फड्डगाणि तओ।**
उस्सक्किय उक्कड्डइ एवं ओवट्टणाईओ ॥७॥ कम्मप० उद्वर्तनापवर्त०

८ कुदो; उवरि अइच्छावणाणिक्खेवाणमसंभवादो। जयध०

रिमफद्दयं पि ण उक्कड्डिज्जदि[1] । २२. एवमणंताणि फद्दयाणि ओसक्किऊण तं फद्दयमुक्कड्डिज्जदि[2] । २३. सव्वत्थोवो जहण्णओ णिक्खेओ[3] । २४. जहण्णिया अइच्छावणा अणंतगुणा[4] । २५. उक्कस्सओ णिक्खेवो अणंतगुणो[5] । २६. उक्कस्सओ बंधो विसेसाहिओ[6] । २७. ओकड्डणादो उक्कड्डणादो च जहण्णिया अइच्छावणा तुल्ला । २८. जहण्णओ णिक्खेवो तुल्लो । २९. एदेण अट्ठपदेण मूलपयडिअणुभागसंकमो । ३०. तत्थ च तेवीसमणिओगद्दाराणि सण्णा जाव अप्पाबहुए त्ति[7] (२३) । ३१. भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति भाणिदव्वो ।

३२. तदो उत्तरपयडिअणुभागसंकमं चउवीस-अणियोगद्दारेहि वत्तइस्सामो[8] ।

जा सकता । इस प्रकार अनन्त स्पर्धक अपसरण करके अर्थात् जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेपप्रमाण स्पर्धकोंको छोड़कर नीचे जो इष्ट स्पर्धक प्राप्त होता है, वह उत्कर्षित किया जाता है और इसके नीचेसे लगाकर जघन्य स्पर्धक-पर्यन्त जितने स्पर्धक हैं, उन सबकी उत्कर्षणा की जा सकती है ॥१९-२२॥

अब उत्कर्षणसंक्रमण-सम्बन्धी जघन्य निक्षेपादि पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं-

चूर्णिसू०-उत्कर्षणसंक्रमण-विषयक जघन्य निक्षेप सबसे कम है । इससे जघन्य अतिस्थापना अनन्तगुणित है । इससे उत्कृष्ट निक्षेप अनन्तगुणित है । उत्कृष्ट निक्षेपसे उत्कृष्ट बन्ध विशेष अधिक है । अपकर्षण और उत्कर्षणकी अपेक्षा जघन्य अतिस्थापना तुल्य है । तथा जघन्य निक्षेप भी तुल्य है ॥२३-२८॥

चूर्णिसू०-इस उपरि-वर्णित अर्थपदके द्वारा मूलप्रकृति-अनुभागसंक्रमणका वर्णन करना चाहिए । उसके विषयमें संज्ञासे लेकर अल्पबहुत्व तक तेईस अनुयोगद्वार होते हैं । केवल एक सन्निकर्ष संभव नहीं है । तथा चूलिकारूप भुजाकार पदनिक्षेप और वृद्धि इन तीन अनुयोगद्वारोंको भी कहना चाहिए ॥२९-३१॥

चूर्णिसू०-अब उत्तरप्रकृति-अनुभागसंक्रमणको चौबीस अनुयोगद्वारोंसे कहेंगे ॥३२॥

---

१ एत्थ कारणमइच्छावणाणिक्खेवाणमसंभवो च्चेव वत्तव्वो । जयध०

२ तत्थाइच्छावणाणिक्खेवाण पडिवुण्णत्तदंसणादो । जयध०

३ किंपमाणो एस जहण्णणिक्खेवो ? एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दएहिंतो अणंतगुणमेत्तो । जयध०

४ ओकड्डणा जहण्णाइच्छावणाए समाणपरिमाणत्तादो । जयध०

५ मिच्छाइट्ठिणा उक्कस्साणुभागे बज्झमाणे जहण्णफद्दयादिवग्गणुक्कड्डणाए रूवाहियजहण्णाइच्छावणापरिहीणुक्कस्साणुभागबंधमेत्तुक्कस्सणिक्खेवदंसणादो । जयध०

६ केत्तियमेत्तेण ? रूवाहियजहण्णाइच्छावणामेत्तेण । जयध०

७ एत्थ मूलपयडिविवक्खाए सण्णियाससंभवाभावादो । जयध०

८ काणि ताणि चउवीस अणिओगद्दाराणि ? सण्णा सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं सण्णियासो णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि । जयध०

३३. तत्थ पुव्वं गमणिज्जा घादिसण्णा च ट्ठाणसण्णा च । ३४. सम्मत्त-चदुसंजलण-पुरिसवेदाणं मोत्तूण सेसाणं कम्माणमणुभागसंकमो णियमा सव्वघादी[1], वेट्ठाणिओ वा तिट्ठाणिओ वा चउट्ठाणिओ वा[2] । ३५. णवरि सम्मामिच्छत्तस्स वेट्ठाणिओ चेव[3] । ३६.

विशेषार्थ—वे चौबीस अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं—१ संज्ञा, २ सर्वसंक्रम, ३ नोसर्वसंक्रम, ४ उत्कृष्टसंक्रम, ५ अनुत्कृष्टसंक्रम, ६ जघन्यसंक्रम, ७ अजघन्यसंक्रम, ८ सादिसंक्रम, ९ अनादिसंक्रम, १० ध्रुवसंक्रम, ११ अध्रुवसंक्रम, १२ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल, १४ अन्तर, १५ सन्निकर्ष, १६ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १७ भागाभाग, १८, परिमाण, १९ क्षेत्र, २० स्पर्शन, २१ काल, २२ अन्तर, २३ भाव और २४ अल्पबहुत्व । इनका अर्थ अनुभागविभक्तिके अनुसार जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—इनमेंसे पहले संज्ञा गवेषणीय है । संज्ञा दो प्रकारकी है घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा ॥३३॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वादि कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि अनुभागसंक्रमण-सम्बन्धी स्पर्धकोंमें देशघाती और सर्वघातीकी परीक्षा करनेको घातिसंज्ञा कहते हैं । तथा उन्हीं स्पर्धकोंमें यथासंभव एकस्थानीय, द्विस्थानीय आदि भावोंकी गवेषणा करनेको स्थानसंज्ञा कहते हैं ।

अब चूर्णिकार इन दोनों संज्ञाओंका एक साथ निर्देश करते हैं—

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति, चारों संज्वलनकषाय और पुरुषवेद, इन छह कर्मोंको छोड़कर शेष बाईस कर्मोंका अनुभागसंक्रमण नियमसे सर्वघाती, तथा द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होता है । केवल सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय ही होता है ॥३४-३५॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय और पुरुषवेदको छोड़कर शेष आठ नोकषायोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागसंक्रमण नियमसे सर्वघाती ही होता है । इनमें उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण चतुःस्थानीय ही होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण चतुःस्थानीय भी होता है, त्रिस्थानीय भी होता है और द्विस्थानीय भी होता

१ सेसकम्माणं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-वारसकसाय-अट्ठणोकसायाणमणुभागसंकमो उक्कस्सो अणुक्कस्सो जहण्णो अजहण्णो च सव्वघादी चेव; देसघादिसरूवेण सव्वकालमेदेसिमणुभागसंकमपवुत्तीए असंभवादो । जयध०

२ एयट्ठाणिओ णत्थि; सव्वघादित्तणेण तस्स पडिसिद्धत्तादो । तत्थुक्कस्साणुभागसंकमो चउट्ठाणिओ चेव, तत्थ पयारंतराणुवलंभादो । अणुक्कस्साणुभागसंकमो पुण चउट्ठाणिओ तिट्ठाणिओ विट्ठाणिओ वा, तिण्हमेदेसिं भावाणं तत्थ संभवादो । जहण्णाणुभागसंकमो विट्ठाणिओ चेव, तत्थ पयारंतरासंभवादो । अजहण्णाणुभागसंकमो विट्ठाणिओ, तिट्ठाणिओ चउट्ठाणिओ वा, तिविहस्स वि भावस्स तत्थ संभवादो । जयध०

३ कुदो ? दारुअसमाणाणंतिमभागे चेव सव्वघादित्तणेण तदणुभागस्स पज्जवसिदत्तादो । जयध०

अक्खवग-अणुवसामगस्स चदुसंजलण-पुरिसवेदाणमणुभागसंकमो मिच्छत्तभंगो[1] । ३७. खवगुवसामगाणमणुभागसंकमो सव्वघादी वा देसघादी वा, वेट्ठाणिओ वा एयट्ठाणिओ वा[2] । ३८. सम्मत्तस्स अणुभागसंकमो णियमा देसघादी[3] । ३९. एयट्ठाणिओ वेट्ठाणिओ वा[4] ।

है । जघन्य अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय ही होता है । अजघन्य अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय भी होता है, त्रिस्थानीय भी होता हैं और चतुःस्थानीय भी होता है । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य चारों ही प्रकारका अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय ही होता है ।

चूर्णिसू०—अक्षपक और अनुपशामक जीवके चारों संज्वलन और पुरुषवेदका अनुभागसंक्रमण मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए । क्षपक और उपशामक जीवोंके कर्मोंका अनुभागसंक्रमण सर्वघाती भी होता है और देशघाती भी होता है । तथा वह द्विस्थानीय भी होता है और एकस्थानीय भी होता है ॥३६-३७॥

विशेषार्थ—उपशम या क्षपक श्रेणी चढ़नेके पूर्ववर्ती सातवें गुणस्थान तकके जीवोंके चारों संज्वलन और पुरुषवेदका अनुभागसंक्रमण सर्वघाती तथा द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होता है । क्षपक और उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंके उक्त पाँचों कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय और सर्वघाती ही होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण द्विस्थानीय भी होता है और एकस्थानीय भी होता है; तथा सर्वघाती भी होता है और देशघाती भी होता है । इनका जघन्यानुभागसंक्रमण देशघाती और एकस्थानीय होता है । अजघन्यानुभागसंक्रमण एकस्थानीय भी होता है और द्विस्थानीय भी होता है । तथा देशघाती भी होता है और सर्वघाती भी होता है ।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभागसंक्रमण नियमसे देशघाती होता है । तथा वह एकस्थानीय भी होता है और द्विस्थानीय भी होता है ॥३८-३९॥

१ कुदो ? सव्वघादित्तणेण वि-ति चदुट्ठाणियत्तणेण च भेदाभावादो । जयध०

२ तं जहा—खवगोवसामगेसु एदेसिमुक्कस्साणुभागसंकमो वेट्ठाणिओ सव्वघादी चेव; अपुव्वकरणपवेसपढमसमए तदुवलंभादो । अणुक्कस्साणुभागसंकमो वेट्ठाणिओ एगट्ठाणिओ वा, सव्वघादी वा देसघादी वा । एगट्ठाणिओ कत्थोवलब्भदे ? खवगोवसमसेढीसु अंतरकरणं कादूणेगट्ठाणियमणुभागं बंधमाणस्स सुद्धणवकबंधसंकमणावत्थाए किट्टीवेदगकालब्भंतरे च । देसघादित्तं च तत्थेव लब्भदे । जहण्णाणुभागसंकमो एदेसिं देसघादी एयट्ठाणिओ च, जहासंभवणवकबंधस्स किट्टीणं चरिमसमयसंकामणाए तदुवलंभादो । अजहण्णाणुभागसंकमो एयट्ठाणिओ वेट्ठाणिओ वा देसघादी वा सव्वघादी वा, अणुक्कस्सस्सेव तदुवलंभादो । जयध०

३ कुदो ? उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णभेदाणं सव्वेसिमेव देसघादित्तदंसणादो । जयध०

४ तदुक्कस्साणुभागसंकमो वेट्ठाणिओ चेव; तत्थ लदा-दारुअसमाणाणुभागाणं दोण्हं पि णियमेणोवलंभादो । अणुक्कस्सो वेट्ठाणिओ एयट्ठाणिओ वा; दंसणमोहक्खवणाए अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मप्पहुडि एयट्ठाणाणुभागदंसणादो । हेट्ठा विट्ठाणियणियमादो जहण्णाणुभागसंकमो णियमेणेयट्ठाणिओ; समया-

४०. सामित्तं । ४१. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंकमो कस्स ? ४२. [1]उक्कस्साणुभागं बंधिदूणावलियपडिभग्गस्स अण्णदरस्स[2] । ४३. एवं सव्वकम्माणं । ४४. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकमो कस्स ? ४५. दंसणमोहणीय-क्खवयं मोत्तूण जस्स संतकम्ममत्थि त्ति तस्स उक्कस्साणुभागसंकमो[3] ।

४६. एत्तो जहण्णयं । ४७. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ?

चूर्णिसू०–अब उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणके स्वामित्वको कहते हैं ॥४०॥

शंका–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण किसके होता है ? ॥४१॥

समाधान–उत्कृष्ट अनुभागको बाँध करके आवलिप्रतिभग्न अर्थात् बन्धावलीके परे अवस्थित किसी भी एक जीवके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण होता है ॥४२॥

विशेषार्थ–जिस जीवने तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागको बाँधा, बन्धा-वलीके पश्चात् उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण पाया जाता है । ऐसा जीव कोई भी संज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट संक्लेश-युक्त मिथ्यादृष्टि होता है । यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें तथा देवोंमें यह उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण नहीं पाया जाता ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार मिथ्यात्वकर्मके समान सर्वकर्मोंका स्वामित्व जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण किसके होता है ? दर्शनमोहनीयके क्षपण करनेवाले जीवको छोड़कर जिसके संक्रमणके योग्य सत्कर्म पाया जाता है, उसके उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमण होता है ॥४३-४५॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य अनुभागसंक्रमणके स्वामित्वको कहते हैं ॥४६॥

हियावलियदंसणमोहक्खवयम्मि तदुवलंभादो । अजहण्णाणुभागसंकमो एयट्ठाणिओ बेट्ठाणिओ वा; दुसमयाहियावलियदंसणमोहक्खवयप्पहुडि जावुक्कस्साणुभागो त्ति ताव अजहण्णवियप्पावट्ठाणादो । जयध०

१ **उक्कोसगं पबंधिय आवलियमइच्छिऊण उक्कस्सं ।**
जाव ण घाएइ तयं संकमइ आमुहुत्तंता ॥५२॥ कम्म० अनु० सं०

२ आवलियपडिभग्गं मोत्तूण बंधपढमसमए चेव सामित्तं किण्ण दिज्जदे ? ण, अणइच्छाविय बंधावलियस्स कम्मस्स ओकड्डणादिसंकमणाणं पाओग्गत्ताभावादो । सो पुण मिच्छत्तुक्कस्साणुभागबंधगो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिच्छाइट्ठिसव्वसंकिलिट्ठो । जइ एवं; अण्णत्थुक्कस्साणुभागसंकमो ण कयाइं लब्भदि त्ति आसंकाए णिरायरणट्ठमण्णदरविसेसणं कदं; तदुक्कस्सबंधेणाघादिदेण सह एइंदियादिसुप्पण्णस्स तदुव-लंभे विरोहाभावादो । णवरि असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुसोववादियदेवेसु च ओघुक्कस्साणुभागसंकमो ण लब्भदे, तमघादेदूण तत्थुप्पत्तीए असंभवादो । एदेण सम्माइट्ठीसु वि मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंकमो पडि-सिद्धो दट्ठव्वो । उक्कस्साणुभागं बंधिय आवलियपडिभग्गस्स कंडयघादेण विणा सम्मत्तगुणग्गहणाणुवव-त्तीदो । कथमेसो विसेसो सुत्तेणाणुवइट्ठो णव्वदे ? ण, वक्खाणादो सुत्तंतरादो तंतजुत्तीए च तदुवलद्धीदो । जयध०

३ कुदो; दंसणमोहक्खवयादो अण्णत्थ तेसिमणुभागखंडयघादाभावादो । जइ वि एत्थ सामण्णेण जस्स संतकम्ममत्थि त्ति वुत्तं, तो वि पयरणवसेण संकमपाओग्गं जस्स संतकम्ममत्थि त्ति घेत्तव्वं, अण्णहा उव्वेल्लणाए आवलियपविट्ठसंतकम्मियस्स वि गहणप्पसंगादो । जयध०

४८. सुहुमस्स[1] हदसमुप्पत्तिकम्मेण अण्णदरो। ४९. एइंदिओ वा बेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा पंचिंदिओ वा[2]। ५०. एवमट्ठण्णं कसायाणं। ५१. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ? ५२. समयाहियावलिय-अक्खीणदंसणमोहणीओ[3]। ५३. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ? ५४. चरिमाणुभागखंडयं[4]

शंका–मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसंक्रमण किसके होता है? ॥४७॥

समाधान–सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवके होता है। अथवा हतसमुत्पत्तिक कर्मसे उपलक्षित जो कोई एक एकेन्द्रिय, अथवा द्वीन्द्रिय, अथवा त्रीन्द्रिय, अथवा चतुरिन्द्रिय, अथवा पंचेन्द्रिय जीव है, वह मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका स्वामी है ॥४८-४९॥

विशेषार्थ–सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवके मिथ्यात्वके अनुभागसत्त्वका जितना घात शक्य है, उतना घात करके अवस्थित जीवको हतसमुत्पत्तिक कर्मसे उपलक्षित कहते हैं। मिथ्यात्वके इस प्रकार जघन्य अनुभागसत्त्वसे युक्त उक्त प्रकारका एकेन्द्रिय जीव भी जघन्य अनुभागसंक्रमण करता है, अथवा उतने ही अनुभागसत्त्ववाला द्वीन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकका कोई भी जीव मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसंक्रमण कर सकता है।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार आठों मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥५०॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण कौन करता है? ॥५१॥

समाधान–जिसके दर्शनमोहनीयकर्मके क्षय करनेमें एक समय अधिक आवलीकाल अवशिष्ट है, ऐसा जीव सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागका संक्रमण करता है ॥५२॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है? ॥५३॥

समाधान–सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम अनुभागकांडकका संक्रमण करनेवाला जीव सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका संक्रामक होता है ॥५४॥

---

१ एत्थ सुहुमग्गहणेण सुहुमणिगोद-अपज्जत्तयस्स गहणं कायव्वं; अण्णत्थ जहण्णाणुभागसंकमुप्पत्तीए अदंसणादो। ××× किं हदसमुप्पत्तियं णाम? हते समुत्पत्तिर्यस्स तद्धतसमुत्पत्तिकं कर्म, यावच्छक्यं तावत्प्रासघातमित्यर्थः। तं पुण सुहुमणिगोदापज्जत्तयस्स सव्वुक्कस्सविसोहीए पत्तघादं जहण्णाणुभागसंतकम्मं तदुक्कस्साणुभागबंधादो अणंतगुणहीणं, तस्सेव जहण्णाणुभागबंधादो अणंतगुणब्भहियं तप्पाओग्गजहण्णाणुक्कस्सबंधट्ठाणेण समाणमिदि घेत्तव्वं। जयध०

२ सेसाण सुहुमहयसंतकम्मिगो तस्स हेट्ठओ जाव।
बंधइ तावं एगिंदिओ व णेगिंदिओ वा वि ॥५९॥ कम्म० अनुभागसं०।

३ कुदो एदस्स जहण्णभावो? पत्तसव्वुक्कस्सघादत्तादो अणुसमयोवट्टमाणाए अइजहण्णीकयत्तादो च। जयध०

४ दंसणमोहक्खवणाए दुचरिमादिहेट्ठिमाणुभागखंडयाणि संकामिय पुणो सम्मामिच्छत्तचरिमाणुभागखंडए वावदो जो सो पयदजहण्णसामिओ होइ; तत्तो हेट्ठा सम्मामिच्छत्तसंबंधिजहण्णाणुभागसंकमाणुवलंभादो। जयध०

संछुहमाणओ । ५५. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ५६. विसंजोएदूण पुणो तप्पाओग्गविसुद्धपरिणामेण संजोएदूणावलियादीदो[1] । ५७. कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ५८. चरिमाणुभागबंधस्स चरिमसमयअणिल्लेवगो[2] । ५९. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं । ६०. लोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ६१. समयाहियावलियचरिमसमयसकसाओ खवगो[3] । ६२. इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ६३. इत्थिवेदक्खवगो तस्सेव चरिमाणुभागखंडए वट्टमाणओ । ६४. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ६५. णवुंसय-

शंका–अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है ? ॥५५॥

समाधान अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके पुनः तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामके द्वारा उसे संयोजित करके अर्थात् पुनः नवीन बंध करके एक आवलीकाल व्यतीत करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागका संक्रामक होता है ॥५६॥

शंका–संज्वलनक्रोधके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है ? ॥५७॥

समाधान–क्रोधवेदक क्षपकका जो अन्तिम अनुभागबन्ध है, उसके अन्तिम समयका अनिर्लेपक जो जीव है, अर्थात् मानवेदककालके दो समय कम दो आवलियोंके अन्तिम समयमें वर्तमान जो जीव है, वह संज्वलनक्रोधके जघन्य अनुभागका संक्रामक होता है ॥५८॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार संज्वलनमान, संज्वलनमाया और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसंक्रमणका स्वामित्व जानना चाहिए ॥५९॥

शंका–संज्वलनलोभका जघन्य अनुभागसंक्रामक कौन है ? ॥६०॥

समाधान–एक समय अधिक आवलीके अन्तिम समयमें वर्तमान सकषाय क्षपक अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायसंयत संज्वलनलोभके जघन्य अनुभागका संक्रामक है ॥६१॥

शंका–स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है ? ॥६२॥

समाधान–स्त्रीवेदका क्षपण करनेवाला स्त्रीवेदके ही अन्तिम अनुभागखंडमें वर्तमान जीव स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका संक्रामक है ॥६३॥

शंका–नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है ? ॥६४॥

१ किमट्ठमेसो विसंजोयणाए पुणो जोयणाए पयट्टाविदो ? विट्ठाणाणुभागसंतकम्मं सव्वं गालिय णवकबंधाणुभागे जहण्णसामित्तविहाणट्ठं । तत्थ वि असंखेज्जलोगमेत्तपडिवादट्ठाणेसु तप्पाओग्गजहण्ण-संकिलेसाणुविद्धपरिणामेण संजुत्तो त्ति जाणावणट्ठं तप्पाओग्गविसुद्धपरिणामेणेत्ति भणिदं, मंदसंकिलेसिदाए चेव विसोहित्तेण विवक्खियत्तादो ।

२ कोहवेदयस्स खवयस्स जो अपच्छिमो अणुभागबंधो सो चरिमाणुभागबंधो णाम । सो पुण किट्टि-सरूवो; कोहतदियकिट्टीवेदएण णिव्वत्तिदत्तादो । तस्स चरिमाणुभागबंधस्स चरिमसमयअणिल्लेवगो त्ति भणिदे माणवेदगद्धाए दुसमयूणदोआवलियाणं चरिमसमए वट्टमाणओ घेत्तव्वो । जयध०

३ कुदो एत्थ जहण्णभावो ? ण, सुहुमकिट्टीए अणुसमयमणंतगुणहाणिसरूवेण अंतोमुहुत्तमेत्तकाल-मोवट्टिदाए तत्थ सुट्ठु जहण्णभावेण संकमुवलंभादो । जयध०

वेदक्खवओ तस्सेव चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणओ । ६६. छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? ६७. खवगो तेसिं चेव छण्णोकसायवेदणीयाणं चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणओ ।

६८. एयजीवेण कालो । ६९. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ७०. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] । ७१. अणुक्कस्साणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ७२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] । ७३. उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा[3] । ७४. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । ७५. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ७६. जहण्णेण

समाधान—नपुंसकवेदका क्षपण करनेवाला नपुंसकवेदके ही अन्तिम अनुभागखंडमें वर्तमान जीव नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागका संक्रामक है ॥६५॥

शंका—हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका संक्रामक कौन है ? ॥६६॥

समाधान—उन्हीं हास्यादि छह नोकषायवेदनीयोंके अन्तिम अनुभागखंडमें वर्तमान क्षपक जीव छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका संक्रामक है ॥६७॥

चूर्णिसू०—अब एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वादिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग संक्रमणका काल कहते हैं ॥६८॥

शंका—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग संक्रमणका कितना काल है ? ॥६९॥

समाधान—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥७०॥

शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥७१॥

समाधान—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥७२-७३॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंके अनुभागसंक्रमणका काल जानना चाहिए ॥७४॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥७५॥

---

१ जहण्णेण ताव उक्कस्साणुभागं बंधिदूणावलियादीदं संकामेमाणएण सव्वलहुमणुभागखंडए घादिदे अंतोमुहुत्तमेत्तो उक्कस्साणुभागसंकामयजहण्णकालो लद्धो होइ । एत्तो संखेज्जगुणो उक्कस्सकालो होइ; उक्कस्साणुभागं बंधिऊण खंडयघादेण विणा सुट्ठु बहुअं कालमच्छंतस्स वि अंतोमुहुत्तादो उवरिमवट्ठाणासंभवादो । जयध०

२ उक्कस्साणुभागसंकमादो खंडयघादवसेणाणुक्कस्ससंकामयत्तमुवणमिय पुणो वि सव्वरहस्सेण कालेण उक्कस्साणुभागसंकामयत्तमुवगयम्मि तदुवलंभादो । जयध०

३ उक्कस्साणुभागसंकमादो खंडयघादवसेणाणुक्कस्सभावमुवगयस्स एइंदिय-वियलिंदिएसु उक्कस्साणुभागबंधविरहिएसु असंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तकालमणुक्कस्सभावावट्ठाणदंसणादो । जयध०

अंतोमुहुत्तं[1] । ७७. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि[2] । ७८. अणुक्कस्साणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ७९. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

८०. एत्तो एयजीवेण कालो जहण्णओ ८१. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ८२. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ८३. अजहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ८४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ८५. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[3] । ८६. एवमट्ठकसायाणं । ८७. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामओ

समाधान–इन दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥७६-७७॥

शंका–इन्हीं दोनों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥७८॥

समाधान–उक्त दोनों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥७९॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे मिथ्यात्व आदि कर्मोंके अनुभागसंक्रमणका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल कहते हैं ॥८०॥

शंका–मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥८१॥

समाधान–मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥८२॥

शंका–मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥८३॥

समाधान–मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, उतने समय-प्रमाण है ॥८४-८५॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार आठ मध्यमकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसंक्रमणका काल जानना चाहिए ॥८६॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥८७॥

---

१ तं जहा–एक्को णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्माइट्ठिपढमसमए मिच्छत्ताणुभागं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तसरूवेण परिणमाविय विदियसमयप्पहुडि तदुक्कस्साणुभागसंकामओ होदूण सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणं पट्ठविय पढमाणुभागखंडयं घादिय अणुक्कस्साणुभागसंकामओ जादो । लद्धो सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकामयजहण्णकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो । जयध०

२ तं कथं ? एक्को णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठी सम्मत्तं घेत्तूणुक्कस्साणुभागसंकामओ जादो । तदो कमेण मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमुव्वेल्लणाए परिणमिय पुव्वं व सम्मत्तं घेत्तूण विदियछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वुक्कस्सेणुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदूण असंकामगो जादो । लद्धो तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि अब्भहियवेछावट्ठिसागरोवममेत्तो पयदुक्कस्सकालो । जयध०

३ एयवारं हदसमुप्पत्तियपाओग्गपरिणामेण परिणदस्स पुणो हेसपरिणामेसु उक्कस्सावट्ठाणकालो असंखेज्जलोगमेत्तो होइ । जयध०

केवचिरं कालादो होदि ? ८८. जहण्णुकस्सेण एयसमओ[1] । ८९. अजहण्णाणुभाग-संकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ९०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] । ९१. उकस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । ९२. एवं सम्मामिच्छत्तस्स । ९३. णवरि जहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ९४. जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] ।

९५. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ९६. जहण्णुकस्सेण एयसमओ[4] । ९७. अजहण्णाणुभागसंकामयस्स तिण्णि भंगा । ९८. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो सो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ९९. उकस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[5] । १००. चदुसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयमात्र है ॥८८॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥८९॥

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥९०-९१॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिके समान ही सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका काल जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥९२-९४॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है?॥९५॥

समाधान—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयमात्र है ॥९६॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमण-कालके तीन भंग हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें जो सादि-सान्त काल है, वह जघन्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकी अपेक्षा उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥९७-९९॥

शंका—चारों संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग संक्रमणका कितना काल है ? ॥१००॥

---

१ कुदो; समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयं मोत्तूण पुव्वावरकोडीसु तदसंभवणियमादो । जयध०

२ णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते समुप्पाइदे लद्धप्पसरूवस्स सम्मत्तजहण्णाणुभागसंकमस्स सव्वलहुं खवणाए जहण्णाणुभागसंकमेण विणासिदतब्भावस्स तेत्तियमेत्तकालावट्ठाणदंसणादो । जयध०

३ दंसणमोहक्खवयचरिमाणुभागखंडए तदुवलंभादो । जयध०

४ विसंजोयणापुरस्सरं जहण्णभावेण संजुत्तपढमसमयाणुभागबंधसंकमे लद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

५ कुदो; अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं घेत्तूणुवसमसम्मत्तकालब्भंतरे चेय विसंजोइय पुणो वि सव्वलहुं संजुत्तो होदूण आदिं करिय अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय तदवसाणे अंतोमुहुत्तसेसे संसारे विसंजोयणापरिणदम्मि तदुवलंभादो । जयध०

कालादो होदि ? १०१. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[1] । १०२. अजहण्णाणुभागसंकामओ अणंताणुबंधीणं भंगो । १०३. इत्थि-णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? १०४. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] । १०५. अजहण्णाणुभाग-संकामयस्स तिण्णि भंगा । १०६. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो सो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] । १०७. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[4] ।

१०८. एत्तो एयजीवेण अंतरं । १०९. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ११०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[5] । १११. उक्कस्सेण असंखेज्जा[6]

समाधान–उक्त पाँचों कर्मोका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥१०१॥

चूर्णिसू०–चारों संज्वलन और पुरुषवेदके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका काल अनन्तानुबन्धीकषायके समान जानना चाहिए ॥१०२॥

शंका–स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और हास्यादि छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका कितना काल है ? ॥१०३॥

समाधान–उक्त आठों नोकषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥१०४॥

चूर्णिसू०–इन्हीं उक्त आठों नोकषायोंके अजघन्य अनुभागसंक्रमणकालके तीन भंग हैं–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें जो सादि-सान्त काल है, वह जघन्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्टकी अपेक्षा उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है ॥१०५-१०७॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कहते हैं ॥१०८॥

शंका–मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१०९॥

समाधान–मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥११०-१११॥

१ कुदो; तिण्हं संजलणाणं पुरिसवेदस्स च चरिमाणुभागबंधचरिमफालीए लोहसंजलणस्स वि समयाहियावलियसकसायम्मि तदुवलद्धीदो । जयध०

२ कुदो; खवगचरिमाणुभागखंडयम्मि अंतोमुहुत्तुक्कीरणद्धापडिबद्धम्मि लद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

३ सव्वोवसामणादो परिवदिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तकालमजहण्णं संकामिय पुणो खवगसेढिं चढिय जहण्णभावेण परिणदम्मि तदुवलद्धीदो । जयध०

४ सव्वोवसामणादो परिवदिय अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय तदवसाणे असंकामयत्तमुवगयम्मि तदुवलंभादो । जयध०

५ तं जहा–उक्कस्साणुभागसंकामओ अणुक्कस्सभावं गंतूण जहण्णमंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो वि उक्कस्साणुभागस्स पुव्वं संकामओ जादो । लद्धमुक्कस्साणुभागसंकामयजहण्णंतरमंतोमुहुत्तमेत्तं । जयध०

६ तं कथं ? सण्णी पंचिंदिओ उक्कस्साणुभागं बंधिय संकामेमाणो कंडयघादेण अणुक्कस्से णिवदिय एइंदिएसु अणंतकालमच्छिदूण पुणो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसुप्पज्जिय उक्कस्साणुभागं बंधिदूण संकामओ जादो । तस्स लद्धमंतरं होइ । जयध०

पोग्गलपरियट्ठा । ११२. अणुकस्साणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ११३. जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] । ११४. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । ११५. णवरि बारसकसाय-णवणोकसायाणमणुकस्साणुभागसंकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ[2] । ११६. अणंताणुबंधीणमणुकस्साणुभागसंकामयंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] । ११७. उक्कस्सेण वे छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि[4] । ११८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभाग-संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ११९. जहण्णेणेयसमओ[5] । १२०. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[6] ।

शंका–मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥११२॥

समाधान–मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥११३॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान सोलह कषायों और नव नोकषायोंके अनुभाग संक्रमणका अन्तरकाल जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि बारह कषाय और नव नोकषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। तथा अनन्तानुबन्धी कषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥११४-११७॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥११८॥

समाधान–उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥११९-१२०॥

१ तं जहा–अणुक्कस्ससंकामओ उक्कस्सं काऊणंतोमुहुत्तकालं उक्कस्समेव संकामिय पुणो खंडयघादेणाणुक्कस्ससंकामओ जादो । लद्धमंतरं होइ । णवरि जहण्णंतरे इच्छिज्जमाणे सव्वलहुमेव कंडयघादो करावेयव्वो । उक्कस्संतरे विवक्खिए सव्वचिरेणंतोमुहुत्तेण कंडयघादो करावेयव्वो । जयध०

२ अप्पप्पणो सव्वोवसामणाए एयसमयमंतरिय विदियसमए कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए पुणो वि संकामयत्तमुवगयम्मि तदुवलंभादो । जयध०

३ तं कथं ? अणुक्कस्साणुभागं संकामेंतो विसंजोइय पुणो अंतोमुहुत्तेण संजुत्तो होदूण संकामगो जादो । लद्धमंतरं । जयध०

४ तं कथं ? उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधी विसंजोएदूण वे छावट्ठीओ भमिय मिच्छत्तं गंतूणावलियादीदं संकामेमाणस्स लद्धमंतरं । एत्थ सादिरेयपमाणमंतोमुहुत्तं । जयध०

५ तं जहा–सम्मत्तमुव्वेल्लमाणो उवसमसम्मत्ताहिमुहो होऊणंतरकरणं परिसमाणिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमसमयम्मि सम्मत्तचरिमफालिं संकामिय उवसमसम्मत्तग्गहणपढमसमए असंकामओ होऊणंतरिय पुणो विदियसमए उक्कस्साणुभागसंकामओ जादो । लद्धमंतरं । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि जहण्णमंतरपरूवणा कायव्वा । जयध०

६ तं कथं ? अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय अंतरस्सादिं काऊण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं परिभमिय पुणो थोवावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । विदियसमयम्मि संकामओ जादो । लद्धमुक्कस्संतरमुवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्तं । जयध०

१२१. अणुकस्साणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १२२. णत्थि अंतरं। १२३. एत्तो जहण्णयंतरं। १२४. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १२५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1]। १२६. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[2]। १२७. अजहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १२८. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। १२९. एवमट्ठकसायाणं। १३०. णवरि अजहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १३१. जहण्णेण एयसमओ[3]। १३२. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १३३. णत्थि अंतरं[4]। १३४. अजहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १३५. जहण्णेण एयसमओ।

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१२१॥

समाधान–इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रमणका अन्तर नहीं होता है ॥१२२॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तर कहते हैं ॥१२३॥

शंका–मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१२४॥

समाधान–मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥१२५-१२६॥

शंका–मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ॥१२७॥

समाधान–मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१२८॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान आठों मध्यम कषायोंके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि आठों मध्यम कषायोंके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है ॥१२९-१३१॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१३२॥

समाधान–इन दोनों प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तर नहीं होता॥१३३॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तर-

१ तं कथं ? जहा–सुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियजहण्णाणुभागसंकमादो अजहण्णभावं गंतूण पुणो वि अंतोमुहुत्तेण घादिय सव्वजहण्णाणुभागसंकामओ जादो। लद्धमंतरं होइ। जयध०

२ तं कथं ? जहण्णाणुभागसंकामओ अजहण्णभावं गंतूण तप्पाओग्गपरिणामट्ठाणेसु असंखेज्जलोगमेत्तं कालं गमिय पुणो हदसमुप्पत्तियपाओग्गपरिणामेण जहण्णभावमुवगओ। तस्स लद्धमंतरं होइ। जयध०

३ सव्वोवसामणाए अंतरिदस्स तदुवलंभादो। जयध०

४ कुदो; खवणाए आदजहण्णाणुभागसंकामयस्स पुणरुब्भवाभावादो। जयध०

१३६. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । १३७. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १३८. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] । १३९. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[2] । १४०. अजहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १४१. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १४२. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि[3] । १४३. सेसाणं कम्माणं जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? । १४४. णत्थि अंतरं[4] । १४५. अजहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

काल कितना है ? ॥१३४॥

समाधान–उक्त दोनों प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥१३५-१३६॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१३७॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥१३८-१३९॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके अजघन्य अनुभागके संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१४०॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥१४१-१४२॥

शंका–शेष चार संज्वलन और नव नोकषाय, इन तेरह कर्मोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥१४३॥

समाधान–उक्त तेरह कर्मोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तर नहीं होता है ॥१४४॥

शंका–उन्हीं तेरह कर्मोंके अजघन्य अनुभागसंक्रमणका अन्तर काल कितना है ? ॥१४५॥

---

१ तं जहा–अणंताणुबंधीणं संजुत्तपढमसमयणवकबंधमावलियादीदं जहण्णभावेण संकामिय तत्तो विदियादिसमएसु अजहण्णभावेणंतरिय पुणो वि सव्वलहुएण कालेण विसंजोयणापुव्वं तप्पाओग्गजहण्णपरिणामेण संजुत्तो होऊणावलियादिक्कंतो जहण्णाणुभागसंकामओ जादो । लद्धमंतरं होइ । जयध०

२ तं जहा–पुव्वुत्तेणेव विहिणा आदि कादूणंतरिय उवड्ढपोग्गलपरियट्टं परिभमिय थोवावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति सम्मत्तं पडिवज्जिय अणंताणुबंधिविसंजोयणापुरस्सरं परिणामपच्चएण संजुत्तो होऊण आवलियादिक्कंतो जहण्णाणुभागसंकामओ जादो । लद्धमुक्कस्संतरं होइ । जयध०

३ उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे चेय अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय वेदयसम्मत्तं घेत्तूण वे छावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं गंतूणावलियादीदं संकामेमाणस्स लद्धमुक्कस्समंतरं होइ । एत्थ सादिरेयपमाणमंतोमुहुत्तं । जयध०

४ कुदो; खवणाए जादजहण्णाणुभागत्तादो । जयध०

१४६. जहण्णेण एयसमओ[1] । १४७. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ।

१४८. सण्णियासो । १४९. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागं संकामेंतो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जइ संकामओ णियमा उक्कस्सयं संकामेदि[3] । १५०. सेसाणं कम्माणं उक्कस्सं वा अणुक्कस्सं वा संकामेदि[4] । १५१. उक्कस्सादो अणुक्कस्सं छट्ठाणपदिदं । १५२. एवं सेसाणं कम्माणं णादूण णेदव्वं ।

१५३. [जहण्णओ] सण्णियासो । १५४. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागं संकामेंतो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जइ संकामओ णियमा अजहण्णाणुभागं संकामेदि[6] । १५५.

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१४६-१४७॥

चूर्णिसू०—अब उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रमण करनेवाले जीवोंका सन्निकर्ष कहते हैं—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव यदि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण करता है, तो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका संक्रमण करता है और शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका भी संक्रमण करता है, अथवा अनुत्कृष्ट अनुभागका भी संक्रमण करता है । शेष कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रमणसे अनुत्कृष्ट अनुभाग-संक्रमण षट्स्थानपतित हानिरूप होता है । जिस प्रकार मिथ्यात्वके साथ शेष कर्मोंके सन्निकर्षका विधान किया गया है, उसी प्रकार शेष कर्मोंको भी पृथक् पृथक् निरूपण करके उत्कृष्ट अनुभागका सन्निकर्ष लगा लेना चाहिए ॥१४८-१५२॥

चूर्णिसू०—अब जघन्य अनुभाग-संक्रमण करनेवाले जीवोंका सन्निकर्ष कहते हैं—मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव यदि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण करता है, तो नियमसे अजघन्य अनुभागका संक्रमण करता है ।

---

१ सव्वोवसामणाए एयसमयमंतरिय विदियसमए कालं कादूण देवेसुप्पण्णपढमसमए संकामयत्तमुवगयम्मि तदुवलंभादो । जयध०

२ सव्वोवसामणाए सव्वचिरकालमंतरिय पडिवादवसेण पुणो संकामयत्तमुवगयस्स पयदंतरं समाणणोवलंभादो । जयध०

३ मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंकामओ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया संतकम्मिओ, सिया असंतकम्मिओ । संतकम्मिओ वि सिया संकामओ; आवलियपविट्ठसंतकम्मियस्स वि संभवोवलंभादो । जइ संकामओ, णियमा सो उक्कस्सं संकामेइ; दंसणमोहक्खवणादो अण्णत्थ तदणुक्कस्सभावाणुप्पत्तीदो । जयध०

४ कुदो; मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंकामयम्मि सोलसकसाय-णवणोकसायाणमुक्कस्साणुभागस्स तत्तो छट्ठाणहीणाणुभागस्स वि विसेसपच्चयवसेण संभवं पडि विरोहाभावादो । जयध०

५ किं कारणं ? णिरुद्धमिच्छत्तुक्कस्साणुभागं संकामयम्मि विवक्खियपयडीणमणुभागस्स छट्ठाणहाणिबंधसंभवं पडि विप्पडिसेहाभावादो । जयध०

६ कुदो; मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंकामयसुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियसंतकम्मियम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकमस्सेव संभवदंसणादो । जयध०

जहण्णादो अजहण्णमणंतगुणब्भहियं[1] । १५६. अट्ठण्हं कम्माणं जहण्णं वा अजहण्णं वा संकामेदि । १५७. जहण्णादो अजहण्णं छट्ठाणपदिदं[2] । १५८. सेसाणं कम्माणं णियमा अजहण्णं । १५९. जहण्णादो अजहण्णमणंतगुणब्भहियं । १६०. एवमट्ठकसायाणं ।

१६१. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागं संकामेंतो मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणमकम्मंसिओ[3] । १६२. सेसाणं कम्माणं णियमा अजहण्णं संकामेदि[4] । १६३. जहण्णादो अजहण्णमणंतगुणब्भहियं[5] । १६४. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि । णवरि सम्मत्तं

मिथ्यात्वके जघन्य अनुभाग-संक्रमणसे अजघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणा अधिक होता है । मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव आठ मध्यम कषायरूप कर्मों के जघन्य अनुभागका भी संक्रमण करता है और अजघन्य अनुभागका भी संक्रमण करता है । यह जघन्य अनुभागसे अजघन्य अनुभाग-संक्रमण षट्-स्थान-पतित वृद्धिरूप होता है । अर्थात् कहींपर जघन्य अनुभागसे अनन्तभाग अधिक, कहींपर असंख्यातभाग अधिक, कहीं पर संख्यातभाग अधिक, कहींपर संख्यातगुण अधिक, कहींपर असंख्यातगुण अधिक और कहींपर अनन्तगुण अधिक जघन्य अनुभागका संक्रमण करता है । मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला शेष कर्मों के अजघन्य अनुभागका नियमसे संक्रमण करता है । यह जघन्य अनुभागसंक्रमणसे अजघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणके समान आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभाग-संक्रमणका सन्निकर्ष जानना चाहिए ॥१५३-१६०॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोंकी सत्तासे रहित होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव शेष बारह कषाय और नव नोकषाय, इन उन्नीस कर्मों के अजघन्य अनुभागका नियमसे संक्रमण करता है । यह जघन्य अनुभाग-संक्रमणसे अजघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणा अधिक होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्यानुभागसंक्रमणका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि

---

१ कुदो; मिच्छत्तेण समाणसामियत्ते वि विसेसपच्चयवसेणेदेसिमणुभागस्स तत्थ जहण्णाजहण्णभावसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

२ एत्थ छट्ठाणपदिदमिदि वुत्ते कत्थ वि जहण्णादो अणंतभागब्भहियं, कत्थ वि असंखेज्जभागब्भहियं, कत्थ वि संखेज्जभागब्भहियं, कत्थ वि संखेज्जगुणब्भहियं, कत्थ वि असंखेज्जगुणब्भहियं अणंतगुणब्भहियं च जहण्णाणुभागं संकामेदि त्ति घेत्तव्वं; अंतरंगपच्चयवसेण जहण्णभावपाओग्गविसए वि पयदवियप्पाणमुप्पत्तीए पडिबंधाभावादो । जयध०

३ कुदो; एदेसिमविणासे सम्मत्तजहण्णाणुभागसंकमुप्पत्तीए विप्पडिसिद्धत्तादो । जयध०

४ कुदो; सुहुमहदसमुप्पत्तियकम्मेण चरित्तमोहक्खवणाए च लद्धजहण्णभावाणं तेसिमेत्थ जहण्णभावाणुवलंभादो । जयध०

५ कुदो; अट्ठकसायाणं हदसमुप्पत्तियजहण्णाणुभागादो सेसकसाय-णोकसायाणं पि खवणाए जणिदजहण्णाणुभागसंकमादो एत्थतणतदणुभागसंकमस्स तहाभावसिद्धीए विप्पडिसेहाभावादो । जयध०

विज्जमाणेहि भणियव्वं । १६५. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागं संकामेंतो चदुण्हं कसायाणं णियमा अजहण्णमणंतगुणब्भहियं[1] । १६६. कोधादितिए उवरिल्लाणं संकामओ[2] णियमा अजहण्णमणंतगुणब्भहियं । १६७. लोहसंजलणे णिरुद्धे णत्थि सण्णियासो* ।

१६८. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो–उक्कस्सपदभंगविचओ जहण्णपदभंगविचओ च । १६९. तेसिमट्ठपदं[3] काऊण । १७०. मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्साणुभागस्स असंकामया[4] । १७१. सिया असंकामया च संकामओ च[5] । १७२. सिया

यहाँपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी विद्यमानताके साथ सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रमणका सन्निकर्ष कहना चाहिए । पुरुषवेदके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव चारों संज्वलन कषायोंके अनन्तगुण अधिक अजघन्य अनुभागका नियमसे संक्रमण करता है । संज्वलन क्रोधादित्रिकके जघन्य अनुभागका संक्रमण करनेवाला जीव उपरितन कषायोंके अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभागका नियमसे संक्रामक होता है । संज्वलन लोभके निरुद्ध करनेपर सन्निकर्ष नहीं है ॥१६१-१६७॥

चूर्णिसू०–नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकारका है–उत्कृष्टपदभंगविचय और जघन्यपदभंगविचय । इन दोनोंके अर्थपदको कहकर उन दोनोंकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥१६८-१६९॥

विशेषार्थ–वह अर्थपद इस प्रकार है–जो जीव उत्कृष्ट अनुभागके संक्रामक होते हैं, वे अनुत्कृष्ट अनुभागके असंक्रामक होते हैं और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके संक्रामक होते हैं, वे उत्कृष्ट अनुभागके असंक्रामक होते हैं । इसी प्रकार जघन्य-अजघन्य अनुभागसंक्रामकोंका भंगविचय-सम्बन्धी अर्थपद जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–सभी जीव मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके असंक्रामक होते हैं । कदाचित् अनेक जीव असंक्रामक होते हैं और कोई एक जीव संक्रामक होता है । कदाचित् अनेक

१ तेसिं पुण अजहण्णाणुभागमणंतगुणब्भहियं चेव संकामेदि; उवरि किट्टीपज्जाएण लद्धजहण्णभावाणमेत्थ तदविरोहादो । जयध०

२ कोधादितिगे संजलणसण्णिदे णिरुद्धे हेट्ठिल्लाणं णत्थि सण्णियासो; असंतकम्मिए तव्विरोहादो । उवरिल्लाणमत्थि, कोहसंजलणे णिरुद्धे माण-माया-लोहसंजलणाणं, माणसंजलणे णिरुद्धे माया-लोहसंजलणाणं, मायासंजलणे णिरुद्धे लोहसंजलणस्स संकमसंभवोवलंभादो । जयध०

३ किं तमट्ठपदं ? वुच्चदे–जे उक्कस्साणुभागसंकामया ते अणुक्कस्साणुभागस्स असंकामया, जे अणुक्कस्साणुभागसंकामया ते उक्कस्साणुभागस्स असंकामया । कुदो ? जेसिं संतकम्ममत्थि तेसु पयदं; अकम्मेहि अव्ववहारो । जयध०

४ कुदो; *मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंकामयाणमद्धुवभावित्तादो* । जयध०

५ कुदो; सव्वजीवाणमुक्कस्साणुभागस्स असंकामयाणं मज्झे कदाइमेयजीवस्स तदुक्कस्साणुभागसंकामयत्तेण परिणदस्सुवलंभादो । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रको ऊपरके सूत्रकी टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० ११४२ पंक्ति ४)

असंकामया च संकामया च[1]। १७३. एवं सेसाणं कम्माणं। १७४. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामगा-पुव्वं ति भाणिदव्वं[2]। १७५. जहण्णाणुभागसंकमभंगविचओ। १७६. मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागस्स संकामया च असंकामया च[3]। १७७. सेसाणं कम्माणं जहण्णाणुभागस्स सव्वे जीवा सिया असंकामया[4]। १७८. सिया असंकामया च संकामओ च[5]। १७९. सिया असंकामया च संकामया च[6]।

१८०. णाणाजीवेहि कालो। १८१. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति? १८२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[7]। १८३. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स

जीव असंक्रामक और अनेक संक्रामक होते हैं। जिस प्रकार यह मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रामकोंका भंगविचय किया है, उसी प्रकारसे शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका भंगविचय जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंके भंग संक्रामक-पदपूर्वक कहना चाहिए ॥१७०-१७४॥

चूर्णिसू०—अब जघन्य अनुभागसंक्रामकोंका भंगविचय कहते हैं। मिथ्यात्व और आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभागके अनेक जीव संक्रामक भी होते हैं और अनेक जीव असंक्रामक भी होते हैं शेष कर्मोंके जघन्य अनुभागके सर्व जीव कदाचित् असंक्रामक होते हैं। कदाचित् अनेक असंक्रामक और कोई एक जीव संक्रामक भी होता है। कदाचित् अनेक असंक्रामक और अनेक संक्रामक भी होते हैं ॥१७५-१७९॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागसंक्रामकोंका काल कहते हैं ॥१८०॥

शंका—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके संक्रामक जीवोंका कितना काल है? ॥१८१॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है ॥१८२-१८३॥

१ कदाइमुक्कस्साणुभागस्सासंकामयसव्वजीवाणं मज्झे केत्तियाणं पि जीवाणमुक्कस्साणुभागसंकामयभावेण परिणदाणमुवलंभादो। जयध०

२ तं जहा—सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागस्स सिया सव्वे जीवा संकामया १, सिया एदे च असंकामओ च २, सिया एदे च असंकामया च ३। एवमणुक्कस्साणुभागसंकामयाणं पि विवक्खासेण तिण्हं भंगाणमालावो कायव्वो त्ति एस विसेसो सुत्तेणेदेण जाणाविदो। जयध०

३ कुदो एवं; सुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियकम्मेण लद्धजहण्णभावाणमेदेसिं तदविरोहादो। जयध०

४ कुदो; दंसण-चरित्तमोहक्खवयाणमणंताणुवंधिसंजोइयाणं च सव्वद्धमणुवलंभादो। जयध०

५ कुदो; असंकामयाणं धुवभावेण कदाइमेयजीवस्स जहण्णभावपरिणदस्स परिप्फुडमुवलंभादो। जयध०

६ कुदो; असंकामयाणं धुवभावेण केत्तियाणं पि जीवाणं जहण्णाणुभागसंकामयभावपरिणदाणमुवलंभादो। जयध०

७ तं कथं? सत्तट्ठ जणा बहुगा वा बद्धुक्कस्साणुभागा सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमेत्तकालं संकामया होदूण पुणो कंडयघादवसेणाणुक्कस्सभावमुवगया। लद्धो सुत्तुद्दिट्ठजहण्णकालो। जयध०

असंखेज्जदिभागो[1] । १८४. अणुकस्साणुभागसंकामया सव्वद्धा[2] । १८५. एवं सेसाणं कम्माणं । १८६. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्साणुभागसंकामया सव्वद्धा । १८७. अणुकस्साणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? १८८. जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं[4] ।

१८९. एत्तो जहण्णकालो । १९०. मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? १९१. सव्वद्धा[5] । १९२. सम्मत्त-चदुसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? १९३. जहण्णेणेयसमओ[6] । १९४. उक्कस्सेण संखेज्जा समया[7] । १९५. सम्मामिच्छत्त-अट्ठणोकसायाणं जहण्णाणुभागसंकामया

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामक सर्वकाल पाये जाते हैं । इसी प्रकार शेष कर्मोंके अनुभागसंक्रामकोंका काल जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके संक्रामक सर्वकाल होते हैं ॥१८४-१८६॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामक जीवोंका कितना काल है ? ॥१८७॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१८८॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य अनुभागसंक्रमण करनेवालोंका काल कहते हैं ॥१८९॥

शंका–मिथ्यात्व और आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रामकोंका कितना काल है ? ॥१९०॥

समाधान–सर्व काल है ॥१९१॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति, चारों संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥१९२॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है ॥१९३-१९४॥

१ तं जहा–एयजीवस्सुक्कस्साणुभागसंकमकालमंतोमुहुत्तपमाणं ठविय तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज-भागमेत्ततदणुसंधाणवारसलागाहि गुणेयव्वं । तदो पयदुक्कस्सकालपमाणमुप्पज्जदि । जयध०

२ कुदो; सव्वकालमविच्छिण्णपवाहसरूवेणेदेसिमवट्ठाणदंसणादो । जयध०

३ कुदो; सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकामयवेदगसम्माइट्ठीणमुव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठीणं च पवाहवोच्छेदाणुवलंभादो । जयध०

४ दंसणमोहक्खवणादो अण्णत्थ तदणुवलंभादो । जयध०

५ कुदो; सुहुमेइंदियजीवाणं हदसमुप्पत्तियजहण्णसंतकम्मपरिणदाणं तिसु वि कालेसु वोच्छेदाणुवलंभादो । जयध०

६ कुदो; सम्मत्तस्स समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयम्मि लोभसंजलणस्स समयाहियावलिय-सकसायम्मि सेसाणं अप्पप्पणो णवकबंधचरिमफालिसंकमणावत्थाए जहण्णभावाणमेयसमयोवलद्धीए बाहाणुवलंभादो । जयध०

७ कुदो; संखेज्जवारमणुसंधाणवसेण तदुवलंभादो । जयध०

केवचिरं कालादो होंति ? १९६. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] । १९७. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? १९८. जहण्णेण एयसमओ[2] । १९९. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[3] । २००. एदेसिं कम्माणमजहण्णाणुभागसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? २०१. सव्वद्धा ।

२०२. णाणाजीवेहि अंतरं । २०३. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २०४. जहण्णेणेयसमओ[4] । २०५. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[5] । २०६. अणुक्कस्साणुभागसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २०७.

शंका—सम्यग्मिथ्यात्व और आठ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसंक्रामकोंका कितना काल ? ॥१९५॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१९६॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥१९७॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है ॥१९८-१९९॥

शंका—इन उपर्युक्त सर्व कर्मोंके अजघन्य अनुभाग-संक्रामक जीवोंका कितना काल है ? ॥२००॥

समाधान—उक्त सर्व कर्मोंके अजघन्य अनुभागके संक्रामक जीव सर्वकाल पाये जाते हैं ॥२०१॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागके संक्रामकोंका अन्तर कहते हैं ॥२०२॥

शंका—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२०३॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकके समय-प्रमाण है ॥२०४-२०५॥

शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२०६॥

---

१ जहण्णेण ताव तेसिमप्पप्पणो चरिमाणुभागखंडयकालो घेत्तव्वो । उक्कस्सेण सो चेव छायादिट्ठंतेण लद्धाणुसंधाणो घेत्तव्वो । जयध०

२ कुदो; विसंजोयणापुव्वसंजोगपढमसमए जहण्णपरिणामेण बद्धजहण्णाणुभागमावलियादीदमेयसमयं संकामिय विदियसमए अजहण्णभावपरिणदणाणाजीवेसु तदुवलंभादो । जयध०

३ कुदो; आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव णिरंतरोवक्कमणवाराणमेत्थ संभवदंसणादो । जयध०

४ तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंकामयणाणाजीवाणं पवाहविच्छेदवसेणेयसमयमंतरिदाणं विदियसमए पुणरुब्भवो दिट्ठो । लद्धमंतरं जहण्णेणेयसमयमेत्तं । जयध०

५ कुदो; उक्कस्साणुभागबंधेण विणा सव्वजीवाणमेत्तियमेत्तकालमवट्ठाणसंभवादो । जयध०

णत्थि अंतरं । २०८. एवं सेसाणं कम्माणं । २०९. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २१०. णत्थि अंतरं । २११. अणुक्कस्साणुभागसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २१२. जहण्णेण एयसमओ[1] । २१३. उक्कस्सेण छम्मासा[3] ।

२१४. एत्तो जहण्णयंतरं । २१५. मिच्छत्तस्स अट्ठकसायस्स जहण्णाणुभागसंकामयाणं केवचिरं अंतरं ? २१६. णत्थि अंतरं[4] । २१७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चदुसंजलण-णवणोकसायाणं जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २१८. जहण्णेण एयसमओ । २१९. उक्कस्सेण छम्मासा । २२०. णवरि तिण्णिसंजलण-पुरिसवेदाणमुक्कस्सेण वासं सादिरेयं[5] । २२१. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंकामयंतर-

शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता है ।।२०७।।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तर जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रमकोंका अन्तरकाल कितना है ? इन दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता ।।२०८-२१०।।

शंका—इन्हीं दोनों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ।।२११

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एकसमय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ।।२१२-२१३।।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तर कहते हैं ।।२१४।।

शंका—मिथ्यात्व और आठ मध्यम कषायोंके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तर काल कितना है ? ।।२१५।।

समाधान—इन कर्मोंके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता।।२१६।।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, चारों संज्वलन और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ।।२१७।।

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है । विशेषता केवल यह है कि अन्तिम तीन संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक वर्ष है । नपुंसक वेदके जघन्य अनुभाग संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है ।।२१८-२२१।।

---

१ कुदो; णाणाजीवविवक्खाए अणुक्कस्साणुभागसंकमस्स विच्छेदाणुवलद्धीदो। जयध०

२ दंसणमोहक्खवयाणं जहण्णंतरस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

३ तदुक्कस्सविरहकालस्स णाणाजीवविसयस्स तप्पमाणत्तादो । जयध०

४ कुदो; पयदजहण्णाणुभागसंकामयाणं सुहुमाणं णिरंतरसरूवेण सव्वकालमवट्ठिदत्तादो । जयध०

५ तं जहा—कोहसंजलणस्स उक्कस्संतरे विवक्खिए सोदएणादिं कादूण छम्मासमंतराविय पुणो माण-माया-लोभोदएहिं चढाविय पच्छा सोदयपडिलंभेण सादिरेयवासमेत्तमंतरमुप्पाएयव्वं । एवं माण-माया-

मुक्कस्सेण संखेज्जाणि वासाणि[1]। २२२. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? २२३. जहण्णेण एयसमओ। २२४. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[2]। २२५. एदेसिं सव्वेसिमजहण्णाणुभागस्स केवचिरमंतरं ? २२६. णत्थि अंतरं।

२२७. अप्पाबहुअं। २२८. जहा उक्कस्साणुभागविहत्ती तहा उक्कस्साणुभागसंकमो। २२९. एत्तो जहण्णयं। २३०. सव्वत्थोवो लोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकमो[3]। २३१. मायासंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[4]। २३२. माणसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[5]। २३३. कोहसंजलणस्स जहण्णाणु-

---

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२२२॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥२२३-२२४॥

शंका—इन सभी कर्मोंके अजघन्यानुभाग-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥२२५॥

समाधान—उक्त सभी कर्मोंके अजघन्यानुभाग-संक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता है ॥२२६॥

चूर्णिसू०—अब अनुभाग-संक्रामकोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं। (वह अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामक-विषयक और जघन्य अनुभाग-संक्रामक-विषयक।) जिस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रामक-विषयक अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥२२७-२२८॥

चूर्णिसू—अब इसके आगे जघन्य अनुभाग-संक्रामकोंका अल्पबहुत्व कहते हैं— *संज्वलन लोभका जघन्य अनुभाग-संक्रमण सबसे कम है। इससे संज्वलन मायाका जघन्य* अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है। संज्वलन मायासे संज्वलन मानका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है। संज्वलनमानसे संज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्त-

---

संजलणाणं पि पयदुक्कस्संतरं वत्तव्वं। णवरि माणसंजलणस्स माया-लोभोदएहि, माया-संजलणस्स च लोभोदएण चढाविय अंतरावेयव्वं। ××× एवं चेव पुरिसवेदस्स वि सोदएणादिं कादूण परोदएणंतरिदस्स सादिरेयवासमेत्तुक्कस्संतरसंभवो दट्ठव्वो। जयध०

१ णवुंसयवेदोदएणादिं कादूण अणप्पिदवेदोदएण वासपुधत्तमेत्तमंतरिदस्स तदुवलंभादो। जयध०

२ जहण्णपरिणामेणादिं कादूणासंखेज्जलोगमेत्तेहिं अजहण्णपाओग्गपरिणामेहिं चेव संजोजयंताणं णाणाजीवाणमेदमुक्कस्संतरं लब्भदि। जयध०

३ कुदो; सुहुमकिट्टिसरूवत्तादो। जयध०

४ कुदो; बादरकिट्टीसरूवेण पुव्वमेवाणियट्टिपरिणामेहि लद्धजहण्णभावत्तादो। जयध०

५ कुदो; जहण्णसामित्तविसयीकयमायासंजलणचरिमणवकबंधादो जहाकममणंतगुणसरूवेणावट्ठिद-मायातदिय-विदियपढमसंगहकिट्टीहिंतो वि माणसंजलणणवकबंधसरूवस्सेदस्साणंतगुणत्तदंसणादो। जयध०

भागसंकमो अणंतगुणो[1] । २३४. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[2] । २३५. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[3] । २३६. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[4] ।

२३७. अणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[5] । २३८. कोधस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २३९. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २४०. लोभस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ ।

२४१. हस्सस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[6] । २४२. रदीए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[7] । २४३. दुगुंछाए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[8] । २४४.

गुणित है । संज्वलन क्रोधसे सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । सम्यक्त्वप्रकृतिसे पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । पुरुषवेदसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है ॥२२९-२३६॥

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है ॥२३७-२४०॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी लोभसे हास्यका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । हास्यसे रतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । रतिसे जुगुप्साका जघन्य

---

१ कुदो; पुव्विल्लसामित्तविसयादो हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोयरिय कोहवेदयचरिमसमयणवकबंधचरिमसमयसंकामयम्मि जहण्णभावमुवगयत्तादो । जयध०

२ कुदो; किट्टीसरूवकोहसंजलणजहण्णाणुभागसंकमादो फद्दयगयसम्मत्तजहण्णाणुभागसंकमस्साणंतगुणब्भहियत्ते विसंवादाणुवलंभादो । जयध०

३ किं कारणं ? सम्मत्तस्स अणुसमयोवट्टणकालादो पुरिसवेदणवकबंधाणुसमयोवट्टणाकालस्स थोवत्तदंसणादो । जयध०

४ कुदो; देसघादिएयट्ठाणियसरूवादो पुव्विल्लादो सव्वघादिविट्ठाणियसरूवस्सेदस्स तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो । जयध०

५ किं कारणं ? सम्मामिच्छत्ताणुभागविण्णासो मिच्छत्तजहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणो होऊण लद्धावट्ठाणो पुणो दंसणमोहक्खवणाए संखेज्जसहस्समेत्ताणुभागखंडयघादसमुवलद्धजहण्णभावो । एसो पुण णवकबंधसरूवो वि सम्मामिच्छत्तेण समाणपारंभो होदूण पुणो मिच्छत्तजहण्णफद्दयप्पहुडि उवरि वि अणंतफद्दएसु लद्धविण्णासो अपत्तघादो च । तदो अणंतगुणत्तमेदस्स सिद्धं । जयध०

६ कुदो; णवकबंधसरूवादो पुव्विल्लादो चिराणसंतसरूवस्सेदस्स तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

७ कुदो; सव्वत्थ रदिपुरस्सरत्तेणेव हस्सपवुत्तीए दंसणादो । जयध०

८ कुदो; अप्पसत्थयरत्तादो । जयध०

भयस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[1] । २४५. सोगस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[2] । २४६. अरदीए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो । २४७. इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[3] । २४८. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[4] ।

२४९. अपच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[5] । २५०. कोहस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २५१. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २५२. लोभस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ २५३. पच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[6] । २५४. कोहस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २५५. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २५६. लोभस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २५७. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[7] ।

अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । जुगुप्सासे भयका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । भयसे शोकका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । शोकसे अरतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । अरतिसे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । स्त्रीवेदसे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है ॥२४१-२४८॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदसे अप्रत्याख्यानमानका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । अप्रत्याख्यान मानसे अप्रत्याख्यान क्रोधका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यान क्रोधसे अप्रत्याख्यान मायाका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यान मायासे अप्रत्याख्यान लोभका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यान लोभसे प्रत्याख्यान मानका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यान क्रोधका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । प्रत्याख्यान क्रोधसे प्रत्याख्यानमायाका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । प्रत्याख्यान लोभसे मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है ॥२४९-२५७॥

---

१ दुगुंछिदो देसच्चागमेत्तं कुणदि । भयोदएण पुण पाणच्चागमवि कुणदि त्ति तिव्वाणुभागत्तभेदस्स दट्ठव्वं । जयध०

२ कुदो; छम्मासपज्जंत्ततिव्वदुक्खकारणत्तादो । जयध०

३ कुदो; अंतोमुहुत्तं हेट्ठा ओयरिदूण पुव्वमेव खविदत्तादो । जयध०

४ किं कारणं ? कारिसग्गिसमाणो इत्थिवेदाणुभागो । णवुंसयवेदाणुभागो पुण इट्ठावागग्गिसमाणो, तेणाणंतगुणो जादो । जयध०

५ कुदो; सुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियकम्मेण लद्धजहण्णाणुभागस्सेदस्स अंतरकरणे कदे खवगपरिणामेहि घादिदावसेसणवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंकमादो अणंतगुणत्तसिद्धीए णाइयत्तादो । जयध०

६ कुदो; सयलसंजमघादित्तणहाणुववत्तीदो । ण च देससंजमघादि-अपच्चक्खाणलोभजहण्णाणुभागादो अणंतगुणत्ताभावे तत्तो अणंतगुणसयलसंजमघादित्तमेदस्स जुज्जदे, विप्पडिसेहादो । जयध०

७ सयलदव्वविसयसद्दहणपरिणामपडिबंधत्तेण लद्धमाहप्पस्सेदस्स तहाभावविरोहाभावादो । जयध०

२५८. णिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो[1] २५९. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[2]। २६०. अणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[3]। २६१. कोहस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ। २६२. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ। २६३. लोभस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ।

२६४. हस्सस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[4]। २६५. रदीए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २६६. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[5]। २६७. इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[6]। २६८. दुगुंछाए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २६९. भयस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २७०. सोगस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २७१. अरदीए जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २७२. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[7]।

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग-संक्रमण सबसे कम है। सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है। सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है। अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है। अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है ॥२५८-२६३॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी लोभसे हास्यका जघन्य अनुभाग-संक्रमण अनन्तगुणित है। हास्यसे रतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। रतिसे पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। पुरुषवेदसे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। स्त्रीवेदसे जुगुप्साका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। जुगुप्सासे भयका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। भयसे शोकका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। शोकसे अरतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। अरतिसे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है ॥२६४-२७२॥

---

१ कुदो; देसघादिएयट्ठाणियसरूवत्तादो। जयध०

२ कुदो; सव्वघादिविट्ठाणियसरूवत्तादो। जयध०

३ कुदो; सम्मामिच्छत्तुक्कस्साणुभागादो अणंतगुणभावेणावट्ठिदमिच्छत्तजहण्णफद्दयप्पहुडि उवरि वि लद्धाणुभागविण्णासस्सेदस्स तत्तो अणंतगुणत्तसिद्धीए पडिबंधाभावादो। जयध०

४ सुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियकम्मादो अणंतगुणहीणो पुविल्लो णवकबंधाणुभागसंकमो। एसो पुण सुहुमाणुभागादो अणंतगुणो; असण्णिपंचिंदियहदसमुप्पत्तियकम्मेण णेरइएसु लद्धजहण्णभावत्तादो। तदो सिद्धमेदस्स तत्तो अणंतगुणत्तं। जयध०

५ एत्थ कारणं रदी रमणमेत्तुप्पाइया, पलालग्गिसण्णिहसत्तिविसेसो पुण पुंवेदो। तदो सामित्तविसयभेदाभावे वि सिद्धमेदस्साणंतगुणब्भहियत्तं। जयध०

६ किं कारणं? कारिसग्गिसरिसतिव्वपरिणामणिबंधणत्तादो। जयध०

७ किं कारणं? इट्टावागग्गिसरिसपरिणामकारणत्तादो। जयध०

२७३. अपच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[1] । २७४. कोधस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २७५. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २७६. लोभस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २७७. पच्चक्खाण-माणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[2] । २७८. कोहस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसे-साहिओ । २७९. मायाए जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २८०. लोभस्स जहण्णा-णुभागसंकमो विसेसाहिओ ।

२८१. माणसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[3] । २८२. कोहसंज-लणस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २८३. मायासंजलणस्स जहण्णाणुभाग-संकमो विसेसाहिओ । २८४. लोभसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकमो विसेसाहिओ । २८५. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[4] ।

२८६. जहा णिरयगईए तहा सेसासु गदीसु ।

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदसे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्त-गुणित है । अप्रत्याख्यानावरण मानसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग-संक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण मायासे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । अप्रत्याख्यानावरण लोभसे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है । प्रत्याख्यानावरण मानसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य-अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण क्रोधसे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण मायाके जघन्य अनुभाग-संक्रमणसे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है ॥२७३-२८०॥

चूर्णिसू०–प्रत्याख्यानावरण लोभसे संज्वलन मानका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्त-गुणित है । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । संज्वलन क्रोधसे संज्वलन मायाका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । संज्वलन मायासे संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसंक्रमण विशेष अधिक है । संज्वलनलोभसे मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है ॥२८१-२८५॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे नरकगतिमें यह जघन्य अनुभागसंक्रमणका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकारसे शेष गतियोंमें भी जघन्य अनुभागसंक्रमणका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥२८६॥

---

१ कुदो; णोकसायाणुभागादो कसायाणुभागस्स महल्लत्तसिद्धीए णाइयत्तादो । जयध०

२ कुदो; सयलसंजमघादित्तेणहाणुववत्तीए तस्स तब्भावसिद्धीदो । जयध०

३ कुदो; जहाक्खादसंजमघादणसत्तिसमण्णिदत्तादो । जयध०

४ कुदो; सयलपदत्थविसयसद्दहणलक्खणसम्मत्तसण्णिदजीवगुणघादणण्णहाणुववत्तीदो । जयध०

२८७. एइंदिएसु सव्वत्थोवो सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो। २८८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो। २८९. हस्सस्स जहण्णाणुभागसंकमो अणंतगुणो[1]। २९०. सेसाणं जहा सम्माइट्ठिबंधे तहा कायव्वो[2]।

२९१. भुजगारे त्ति* तेरस अणिओगद्दाराणि[3]। २९२. तत्थ अट्ठपदं। २९३. तं जहा। २९४. जाणि एण्हिं फद्दयाणि संकामेदि अणंतरोसक्काविदे अप्पदरसंकमादो बहुगाणि त्ति एस भुजगारो[4]। २९५. ओसक्काविदे बहुदरादो एण्हिमप्पदराणि संकामेदि त्ति एस अप्पदरो[5]। २९६. ओसक्काविदे एण्हिं च तत्तियाणि संका-

चूर्णिसू०—एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभागसंक्रमण सबसे कम है। सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। सम्यग्मिथ्यात्वसे हास्यका जघन्य अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणित है। शेष कर्मोंके जघन्य अनुभागसंक्रमणका अल्पबहुत्व जैसा सम्यग्दृष्टि-बन्धमें अर्थात् सम्यक्त्वके अभिमुख सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिके जघन्यबन्धका कहा गया है, उस प्रकारसे निरूपण करना चाहिए ॥२८७-२९०॥

चूर्णिसू०—भुजाकार संक्रममें तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। उसमें पहले अर्थपद ज्ञातव्य है। वह इस प्रकार है—जिन अनुभागस्पर्धकोंको इस समय संक्रमित करता है, वे अनन्तर-व्यतिक्रान्त अल्पतर संक्रमणसे बहुत हैं। यह भुजाकारसंक्रमण है। अर्थात् पहले समयमें अल्प स्पर्धकोंका संक्रमण करके जब दूसरे समयमें बहुत स्पर्धकोंका संक्रमण करता है, तब उसे भुजाकारसंक्रमण कहते हैं। अनन्तर-व्यतिक्रान्त समयमें बहुत अनुभागस्पर्धकोंका संक्रमण करके इस समय अल्प स्पर्धकोंका संक्रमण करता है। यह अल्पतरसंक्रमण

१ कुदो; सव्वघादिविट्ठाणियत्ते समाणे वि संते सम्मामिच्छत्तस्स विसयीकयदारुअसमाणाणंतिमभागमुल्लंघिय परदो एदस्सावट्ठाणदंसणादो। जयध०

२ एत्थ सम्माइट्ठिबंधे त्ति णिद्देसेण सम्मत्ताहिमुहसव्वविसुद्धमिच्छाइट्ठिजहण्णबंधस्स गहणं कायव्वं; अण्णहा अणंताणुबंधियादीणं सम्माइट्ठिबंधबहिब्भूदाणमप्पाबहुअविहाणाणुववत्तीदो। विसोहिपरिणामोवलक्खणमेत्तं चेदं, तेण विसुद्धमिच्छाइट्ठिबंधे जारिसमप्पाबहुअं परूविदं तारिसमेवेत्थ सेसपयडीणं कायव्वं; विसोहिणिबंधणसुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियकम्मेण लद्धजहण्णभावाणं तब्भावविरोहाभावादो त्ति एसो सुत्तत्थसब्भावो। जयध०

३ चउवीसमणियोगद्दारेसु परूविय समत्तेसु किमट्ठमेसो भुजगारसण्णिदो अहियारो समागदो? वुच्चदे—जहण्णुकस्सभेयभिण्णाणुभागसंकमस्स सगंतोभाविदाजहण्णाणुक्कस्सवियप्पस्स अवत्थाभेयपदुप्पायणट्ठमागओ। तदवत्थाभूदभुजगारादिपदाणमेत्थ समुक्कित्तणादितेरसाणियोगद्दारेहि विसेसिऊण परूवणोवलंभादो। जयध०

४ थोवयरफद्दयाणि संकामेमाणो जाधे तत्तो बहुवयराणि फद्दयाणि संकामेदि सो तस्स ताधे भुजगारसंकमो त्ति भावत्थो। जयध०

५ एत्थ ओसक्काविदसद्दो अणंतरवदिक्कंतसमयवाचओ त्ति घेत्तव्वो। अथवा बहुदरादो पुव्विल्लसमयसंकमादो एण्हिमोसक्काविदे इदानीमपकर्षिते न्यूनीकृतेऽल्पतराणि स्पर्धकानि संक्रमयतीत्यल्पतरसंक्रम इति सूत्रार्थसम्बन्धः। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'भुजगारे त्ति' इतना ही सूत्र मुद्रित है। 'तेरस अणियोगारद्दाणि' इतने अंशको टीका में सम्मिलित कर दिया है। (देखो पृ० ११५७ पंक्ति ५)

मेदि त्ति एस अवट्ठिदसंकमो[1] । २९७. ओसक्काविदे असंकमादो एण्हिं संकामेदि त्ति एस अवत्तव्वसंकमो[2] ।

२९८. एदेण अट्ठपदेण सामित्तं । २९९. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामगो को होइ ? ३००. मिच्छाइट्ठी अण्णदरो । ३०१. अप्पदर-अवट्ठिदसंकामओ होइ ? ३०२. अण्णदरो । ३०३. अवत्तव्वसंकामओ णत्थि[3] । ३०४. एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं । ३०५. णवरि अवत्तव्वगो च अत्थि[4] । ३०६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारसंकामओ णत्थि[5] । ३०७. अप्पदर-अवत्तव्वसंकामगो को होइ ?

है । अनन्तर-व्यतिक्रान्त समयमें जितने अनुभागस्पर्धकोंका संक्रमण किया है, उतने ही स्पर्धकोंका वर्तमान समयमें संक्रमण करता है, यह अवस्थितसंक्रमण है । अनन्तर-व्यतीत समयमें असंक्रमणसे अर्थात् कुछ भी अनुभागस्पर्धकोंका संक्रमण न करके इस वर्तमान समयमें स्पर्धकोंका संक्रमण करता है, यह *अवक्तव्यसंक्रमण* है ॥२९१-२९७॥

चूर्णिसू०–इस अर्थपदके द्वारा भुजाकार आदि संक्रमणोंका स्वामित्व कहते हैं ॥ २९८ ॥

शंका–कौन जीव मिथ्यात्वके अनुभागका भुजाकारसंक्रमण करता है ? ॥२९९॥

समाधान–चारों गतियोंमेंसे कोई भी एक मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके अनुभागका भुजाकारसंक्रमण करता है ॥३००॥

शंका–मिथ्यात्वके अनुभागका अल्पतर और अवस्थित संक्रमण कौन जीव करता है ? ॥३०१॥

समाधान–अन्यतर अर्थात् सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि कोई एक जीव मिथ्यात्वके अनुभागका अल्पतर और अवस्थितसंक्रमण करता है ॥३०२॥

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वके अनुभागका अवक्तव्य-संक्रमण नहीं होता है । इसी प्रकार मिथ्यात्वके समान ही सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंके भुजाकारादि संक्रमणोंके स्वामित्वको जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि शेष कर्मोंका अवक्तव्यसंक्रमण होता है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण नहीं होता है ॥३०३-३०६॥

१ अनन्तरव्यतिक्रान्तसमये वर्तमानसमये च तावतामेव स्पर्धकानां संक्रमोऽवस्थितसंक्रम इति यावत् । जयध०

२ ओसक्काविदे अणंतरहेट्ठिमसमए असंकमादो संकमविरहलक्खणादो अवत्थाविसेसादो एण्हिमिदाणिं वट्टमाणसमए संकामेदि त्ति संकमपज्जाएण परिणामेदि त्ति एस एवंलक्खणो अवत्तव्वसंकमो । असंकमादो जो संकमो सो अवत्तव्वसंकमो त्ति भावत्थो । जयध०

३ कुदो; मिच्छत्तस्स सव्वकालमसंकमादो संकमसमुप्पत्तीए अणुवलंभादो । जयध०

४ बारसकसाय-णवणोकसायाणमुवसमसेढीए अणंताणुबंधीणं च विसंजोयणापुव्वसंजोगे अवत्तव्वसंकमदंसणादो । तदो बारसकसाय-णवणोकसायाणं अवत्तव्वसंकामओ को होइ ? विसंजोयणादो संजुत्तो होदूणावलियादिक्कंतो त्ति सामित्तं कायव्वमिदि । जयध०

५ कुदो; तदणुभागस्स वड्ढिविरहेणावट्ठिदत्तादो । जयध०

३०८. सम्माइट्ठी अण्णदरो[1] । ३०९. अवट्ठिदसंकामओ को होइ ? ३१०. अण्णदरो ।

३११. एत्तो एयजीवेण कालो । ३१२. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३१३. जहण्णेण एयसमओ । ३१४. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] । ३१५. अप्पयरसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३१६. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[4] । ३१७. अवट्ठिदसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३१८. जहण्णेण एयसमओ । ३१९. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं[5] ।

शंका—इन्हीं दोनों कर्मोके अनुभागका अल्पतर और अवक्तव्य-संक्रामक कौन जीव है ? ॥३०७॥

समाधान—कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर और अवक्तव्य अनुभागसंक्रमणको करता है ॥३०८॥

शंका—उक्त दोनों कर्मोका अवस्थित अनुभाग-संक्रामक कौन जीव है ? ॥३०९॥

समाधान—कोई भी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव उक्त दोनों कर्मोका अवस्थित अनुभागसंक्रामक है ॥३१०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा भुजाकारादि संक्रमणोंका काल कहते हैं ॥३११॥

शंका—मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३१२॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३१३-३१४॥

शंका—मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३१५॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३१६॥

शंका—मिथ्यात्वके अवस्थित-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३१७॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है ॥३१८-३१९॥

---

१ अणादियमिच्छाइट्ठी सादिछव्वीससंतकम्मिओ वा सम्मत्तमुप्पाइय विदियसमए अवत्तव्वसंकमसामिओ होइ । अप्पदरसंकामओ दंसणमोहक्खवओ; अण्णत्थ तदणुवलंभादो । जयध०

२ कुदो; हेट्ठिमाणुभागसंकमादो बंधवुड्ढिवसेणेयसमयं भुजगारसंकामओ होदूण विदियसमए अवट्ठिदसंकमेण परिणदम्मि तदुवलंभादो । जयध०

३ एदमणुभागट्ठाणं बंधमाणो तत्तो अणंतगुणवड्ढीए वड्ढिदो पुणो विदियसमये वि तत्तो अणंतगुणवड्ढीए परिणदो । एवमणंतगुणवड्ढीए ताव बंधपरिणामं गदो जाव अंतोमुहुत्तचरिमसमयो त्ति । एवमंतोमुहुत्तभुजगारबंधसंभवादो भुजगारसंकमुक्कस्सकालो वि अंतोमुहुत्तपमाणो त्ति णत्थि संदेहो; बंधावलियादीदकमेणेव संकमपज्जायपरिणामदंसणादो । जयध०

४ तं जहा—अणुभागखंडयघादवसेणेयसमयमप्पयरसंकामओ जादो । विदियसमये अवट्ठिदपरिणामभुवगओ । लद्धो जहण्णुक्कस्सेणेयसमयमेत्तो अप्पयरकालो । जयध०

५ तं जहा—एगो मिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो । तत्थ मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गमणुक्कस्साणुभागं बंधिय अंतोमुहुत्तमेत्तकालं तिरिक्ख-मणुसेसु अवट्ठिदसंकामओ होदूण पुणो

३२०. सम्मत्तस्स अप्पयरसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ३२१. जहण्णेण एयसमओ[1]। ३२२. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2]। ३२३. अवट्ठिदसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३२४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3]। ३२५. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि[4]। ३२६. अवत्तव्वसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३२७. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ।

३२८. सम्मामिच्छत्तस्स अप्पयर-अवत्तव्वसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अल्पतर-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३२०॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३२१-३२२॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अवस्थित-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३२३॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥३२४-३२५॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३२६॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३२७॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर और अवक्तव्य संक्रमणका कितना काल है ?॥३२८॥

पलिदोवमासंखेज्जभागाउएसु भोगभूमिएसु उववण्णो। तत्थावट्ठिदसंकमं कुणमाणो अंतोमुहुत्तावसेसे सगाउए वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय देवेसुववण्णो। तदो पढमछावट्ठिमणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तमवट्ठिदसंकमाविरोहेण मिच्छत्तं वा पडिवण्णो। पुणो वि अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावट्ठिमवट्ठिदसंकममणुपालेदूण तदवसाणे पयदाविरोहेण मिच्छत्तं गंतूणेक्कत्तीससागरोवमिएसु उववण्णो। तदो णिप्पिडिदो संतो मणुसेसुववण्णो जाव संकिलेसं ण पूरेदि ताव अवट्ठिदसंकमेणेवावट्ठिदो। तदो संकिलेसवसेण भुजगारबंधं काऊण बंधावलियवदिक्कमे तस्स संकामओ जादो। लद्धो पयदुक्कस्सकालो दो-अंतोमुहुत्तेहि पलिदोवमासंखेज्जभागेण च अब्भहियतेवट्ठिसागरोवमसदमेत्तो। जयध०

१ दंसणमोहक्खवणाए एयमणुभागखंडयं घादिय सेसाणुभागं संकामेमाणस्स पढमसमयम्मि तदुवलंभादो। जयध०

२ कुदो; सम्मत्तस्स अट्ठवस्सट्ठिदिसंतप्पहुडि जाव समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयो त्ति ताव अणुसमयोवट्टणं कुणमाणो अंतोमुहुत्तमेत्तकालमप्पयरसंकामओ होइ; तत्थ पडिसमयमणंतगुणहाणीए तदणुभागस्स हीयमाणक्कमेण संकंतिदंसणादो। जयध०

३ दुचरिमाणुभागखंडयं घादिय तदणंतरसमए अप्पयरभावेण परिणदस्स पुणो चरिमाणुभागखंडयुक्कीरणकालो सव्वो चेवावट्ठिदसंकामयस्स जहण्णकालत्तेण गहियव्वो। जयध०

४ तं जहा—एक्को अणादियमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पाइय विदियसमये अवत्तव्वसंकामओ होदूण तदियादिसमएसु अवट्ठिदसंकमं कुणमाणो उवसमसम्मत्तद्धाक्खएण मिच्छत्तं गदो। पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणापरिणामेणच्छिदो चरिमुव्वेल्लणफालीए सह उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। पुणो वेदयभावेण पढमछावट्ठिमणुपालिय तदवसाणे मिच्छत्तेण पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमवट्ठिदसंकमेणच्छिदो पुव्वं व सम्मत्तप्पडिलंभेण विदियछावट्ठिमणुपालेयूण तदवसाणे पुणो वि मिच्छत्तं गंतूणुव्वेल्लणाचरिमफालीए अवट्ठिदसंकमस्स पज्जवसाणं करेदि, तेण लद्धो पयदुक्कस्सकालो तीहि पलिदोवमासंखेज्जभागेहि सादिरेयबेछावट्ठिसागरोवममेत्तो। जयध०

३२९. जहण्णुकस्सेण एयसमयं । ३३०. अवट्ठिदसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३३१. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ३३२. उकस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ।

३३३. सेसाणं कम्माणं भुजगारं जहण्णेण एयसमओ । ३३४. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] । ३३५. अप्पयरसंकामओ केवचिरं कालादो होइ ? ३३६. जहण्णुकस्सेण एयसमओ । ३३७. णवरि पुरिसवेदस्स उकस्सेण दो आवलियाओ समऊणाओ[3] । ३३८. चदुण्हं संजलणाणमुकस्सेण अंतोमुहुत्तं[4] । ३३९. अवट्ठिदं जहण्णेण एयसमओ । ३४०. उकस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । ३४१. अवत्तव्वं जहण्णुकस्सेण एयसमओ ।

३४२. एत्तो एयजीवेण अंतरं । ३४३. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३४४. जहण्णेण एयसमओ[5] । ३४५. उकस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३२९॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३३०॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागरोपम है ॥३३१-३३२॥

चूर्णिसू०—शेष सोलह कषाय और नव नोकषाय इन पचीस कर्मोके भुजाकार संक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३३३-३३४॥

शंका—उक्त पचीस कर्मोंके अल्पतर-संक्रमणका कितना काल है ? ॥३३५॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है । विशेषता केवल यह है कि पुरुषवेदके अल्पतर-संक्रमणका उत्कृष्टकाल एक समय कम दो आवली है। चारों संज्वलनोंके अल्पतर-संक्रमणका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । पचीस कषायोंके अवस्थित-संक्रमणका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है । पचीस कषायोंके अवक्तव्यसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ॥३३६-३४१॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा भुजाकारादि संक्रामकोंका अन्तर कहते हैं ॥३४२॥

शंका—मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥३४३॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है ॥३४४-३४५॥

१ सम्मत्तस्सेव सादिरेयवेछावट्ठिसागरोवममेत्तावट्ठिदुक्कस्सकालसिद्धीए पडिबंधाभावादो । जयध०

२ अणंतगुणवड्ढिकालस्स तप्पमाणत्तोवएसादो । जयध०

३ कुदो; पुरिसवेदोदयक्खवयस्स चरिमसमयसवेदप्पहुडि समयूणदोआवलियमेत्तकालं पुरिसवेदाणुभागस्स पडिसमयमणंतगुणहीणकमेण संकमदंसणादो । जयध०

४ कुदो; खवयसेढीए किट्टीए वेदयपढमसमयप्पहुडि चदुसंजलणाणुभागस्स अणुसमयोवट्टणाघाददंसणादो । जयध०

५ तं जहा—भुजगारसंकामओ एयसमयमवट्ठिदसंकमेणंतरिय पुणो वि विदियसमए भुजगारसंकामओ जादो । जयध०

सादिरेयं[1] । ३४६. अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३४७. जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं[2] । ३४८. उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं[3] । ३४९. अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३५०. जहण्णेण एयसमओ[4] । ३५१. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[5] ।

३५२. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३५३. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[6] । ३५४. अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३५५. जहण्णेण एयसमओ[7] । ३५६. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[8] ।

शंका–मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥३४६॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक एक सौ तिरेसठ सागरोपम है ॥३४७-३४८॥

शंका–मिथ्यात्वके अवस्थित-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥३४९॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३५०-३५१॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥३५२॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३५३॥

शंका–उक्त दोनों कर्मोंके अवस्थित-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥३५४॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३५५-३५६॥

---

१ तं जहा–भुजगारसंकामओ अवट्ठिदभावमुवणमिय तिरिक्ख-मणुसेसु अंतोमुहुत्तमेत्तकालं गमिऊण तिपलिदोवमिएसुववण्णो । सगट्ठिदिमणुपालिय थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति उवसमसम्मत्तं घेत्तूण तदो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पढम-विदियछावट्ठीओ परिभमिय तदवसाणे समयाविरोहेण मिच्छत्तमुवणमिय एक्कत्तीससागरोवमिएसु देवेसुववण्णो । तत्तो चुदो मणुसेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तेण संकिलेसं पूरिय भुजगार-संकामओ जादो । तत्थ लद्धमेदमुक्कस्संतरं वे-अंतोमुहुत्ताहिय-तिपलिदोवमेहि सादिरेयतेवट्ठिसागरोवम-सदमेत्तं । जयध०

२ तं कथं ? दंसणमोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स तिचरिमाणुभागखंडयचरिमफालिं पादिय तदणंतर-मप्पयरसकमं कादूणंतरिय पुणो दुचरिमाणुभागखंडयं घादिय अप्पयरभावमुवगयम्मि लद्धमंतरं होइ । जयध०

३ कुदो; अवट्ठिदसंकमकालस्स पहाणभावेणेत्थ विवक्खियत्तादो । जयध०

४ भुजगारेणप्पयरेण वा एयसमयमंतरिदस्स तदुवलंभादो । जयध०

५ कुदो; भुजगारुक्कस्सकालेणंतरिदस्स तदुवलद्धीदो । जयध०

६ तत्थ जहण्णंतरे विवक्खिए सम्मत्तस्स चरिमाणुभागखंडयकालो घेत्तव्वो । सम्मामिच्छत्तस्स तिचरिमाणुभागखंडयपदणाणंतरमप्पदरं कादूणंतरिय दुचरिमाणुभागखंडए पादिदे लद्धमंतरं कायव्वं । दोण्हमुक्कस्संतरे इच्छिज्जमाणे पढमाणुभागखंडयघादाणंतरमप्पयरं कादूणंतरिय विदियाणुभागखंडए णिट्ठिदे लद्धमंतरं कायव्वं । जयध०

७ अप्पयरसंकमेणेयसमयमंतरिदस्स तदुवलद्धीदो । जयध०

८ पढमसम्मत्तमुप्पाइय मिच्छत्तं गंतूण सव्वलहुं उव्वेलणचरिमफालिं पादिय अंतरिदस्स पुणो उवड्ढपोग्गलपरियट्टावसाणे सम्मत्तुप्पायणतदियसमयम्मि पयदंतरसमाणणोवलद्धीदो । जयध०

३५७. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३५८. जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] । ३५९. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[2] ।

३६०. सेसाणं कम्माणं मिच्छत्तभंगो । ३६१. णवरि अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३६२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] । ३६३. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गल-परियट्टं । ३६४. अणंताणुबंधीणमवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ? ३६५. जहण्णेण एयसमओ । ३६६. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

३६७. णाणाजीवेहि भंगविचओ । ३६८. मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा भुजगार-संकामया च अप्पयरसंकामया च अवट्ठिदसंकामया च । ३६९. सम्मत्त-सम्मामिच्छ-त्ताणं णव भंगा[4] । ३७०. सेसाणं कम्माणं सव्वजीवा भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंका-

शंका—इन्हीं दोनों कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥३५७॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३५८-३५९॥

चूर्णिसू०—शेष सोलह कषाय और नव नोकषाय इन पचीस कर्मोंके भुजाकारादि संक्रामकोंका अन्तरकाल मिथ्यात्वके भुजाकारादि संक्रामकोंके अन्तरकालके समान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि उक्त कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३६०-३६३॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥३६४॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागरोपम है ॥३६५-३६६॥

चूर्णिसू०—अब नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वादि कर्मोंके भुजाकारादि-संक्रामकोंका भंगविचय कहते हैं—मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रामक, अल्पतर-संक्रामक और अवस्थित-संक्रामक सर्व जीव होते हैं । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारादि संक्रामकोंके नौ भंग होते हैं । शेष पचीस कर्मोंके सर्व जीव भुजाकार-संक्रामक, अल्पतर-संक्रामक और अवस्थित-संक्रामक होते हैं । इस ध्रुवपदके साथ कदाचित् अनेक जीव भुजाकारादि-संक्रामक

१ तं कथं ? पढमसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंकमं कादूणावट्ठिदसंकमेणंतरिदस्स सव्वलहु-मुव्वेल्लणाए णिस्संतीकरणाणंतरं पडिवण्णसम्मत्तस्स विदियसमए लद्धमंतरं होइ । जयध०

२ तं जहा—पढमसम्मत्तुप्पायणविदियसमए अवत्तव्वं कादूणंतरिय उवड्ढपोग्गलपरियट्टावसाणे गहिदसम्मत्तस्स विदियसमए लद्धमंतरं होइ । जयध०

३ बारसकसाय-णवणोकसायाणं सव्वोवसामणादो परिवदिय अवत्तव्वसंकमं कादूणंतरिय पुणोवि सव्वलहुमुवसमसेढिमारुहिय सव्वोवसामणं काऊण परिवदमाणयस्स पढमसमयम्मि लद्धमंतरं होइ । अणंताणु-बंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगेणादिं कादूण पुणो वि अंतोमुहुत्तेण विसंजोजिय संजुत्तस्स लद्धमंतरं वत्तव्वं । जयध०

४ कुदो; तदवट्ठिदसंकामयाणं धुवत्तेण अप्पयरावत्तव्वयाणं भयणिज्जत्तदंसणादो । जयध०

मया[1] । ३७१. सिया एदे च अवत्तव्वसंकामओ च, सिया एदे च अवत्तव्वसंकामया च ।

३७२. णाणाजीवेहि कालो । ३७३. मिच्छत्तस्स सव्वे संकामया सव्वद्धा । ३७४. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पयरसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? ३७५. जहण्णेण एयसमओ[2] । ३७६. उक्कस्सेण संखेज्जा समया[3] । ३७७. णवरि सम्मत्तस्स उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[4] । ३७८. अवट्ठिदसंकामया सव्वद्धा । ३७९. अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? ३८०. जहण्णेण एयसमओ[5] । ३८१. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[6] । ३८२. अणंताणुबंधीणं भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामया सव्वद्धा । ३८३. अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? ३८४. जहण्णेण एयसमओ[7] ।

और कोई एक जीव अवक्तव्यसंक्रामक भी होता है । कदाचित् अनेक जीव भुजाकारादि-संक्रामक भी होते हैं और अनेक जीव अवक्तव्य-संक्रामक भी होते हैं ॥३६७-३७१॥

चूर्णिसू०–अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकारादि-संक्रामकोंका काल कहते हैं–मिथ्यात्वके भुजाकारादि सर्वपदोंके संक्रामक जीव सर्वकाल होते हैं ॥३७२-३७३॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥३७४॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है । केवल सम्यक्त्वप्रकृतिके अल्पतर-संक्रामकोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । उक्त दोनो कर्मोंके अवस्थित संक्रामक सर्वकाल होते हैं ॥३७५-३७८॥

शंका–इन्हीं दोनों कर्मोंके अवक्तव्य-संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥३७९॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग है ॥३८०-३८१॥

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धी कषायोंके भुजाकार-संक्रामक, अल्पतर-संक्रामक और अवस्थित-संक्रामक जीव सर्वकाल होते हैं ॥३८२॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्य-संक्रामकोंका कितना काल है ? ॥३८३॥

---

१ कुदो; तिण्हमेदेसिं पदाणं धुवभावित्तदंसणादो । जयध०

२ कुदो; दंसणमोहक्खवयणाणाजीवाणमेयसमयमणुभागखंडयघादणवसेणप्पयरभावेण परिणदाणं पयदजहण्णकालोवलंभादो । जयध०

३ तेसिं चेव संखेज्जवारमणुसंधिदपवाहाणमप्पयरकालस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

४ कुदो; अणुसमयोवट्टणाकालस्स संखेज्जवारमणुसंधिदस्स गहणादो । जयध०

५ संखेज्जाणमसंखेज्जाणं वा णिस्संतकम्मियजीवाणं सम्मत्तुप्पायणाए परिणदाणं विदियसमयम्मि पुव्वावरकोडिववच्छेदेण तदुवलंभादो । जयध०

६ तदुवक्कमणवाराणमेत्तियमेत्ताणं णिरंतरसरूवेणोवलंभादो । जयध०

७ विसंजोयणापुव्वसंजोजयाणं केत्तियाणं पि जीवाणमेयसमयमवत्तव्वसंकमं कादूण विदियसमए अवत्थंतरं गयाणमेयसमयमेत्तकालोवलंभादो । जयध०

३८५. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[1]। ३८६. एवं सेसाणं कम्माणं। णवरि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सेण संखेज्जा समया।

३८७. एत्तो अंतरं। ३८८. मिच्छत्तस्स णाणाजीवेहि भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं। ३८९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ? ३९०. जहण्णेण एयसमओ। ३९१. उक्कस्सेण छम्मासा[2]। ३९२. अवट्ठिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं। ३९३. अवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ। ३९४. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे[3]। ३९५. अणंताणुबंधीणं भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं[4]। ३९६. अवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ। ३९७. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये[5]। ३९८. एवं सेसाणं कम्माणं। ३९९.

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है ॥३८४-३८५॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार शेष कर्मोंके भुजाकारादि-संक्रामकोंका काल जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उनके अवक्तव्य-संक्रामकोंका उत्कृष्टकाल संख्यात समय है ॥३८६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकारादि-संक्रामकोंका अन्तर कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रामक, अल्पतर-संक्रामक और अवस्थित-संक्रामकोंका अन्तर नहीं है ॥३८७-३८८॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥३८९॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥३९०-३९१॥

चूर्णिसू०—उक्त दोनों कर्मोंके अवस्थित-संक्रामकोंका अन्तर नहीं होता है। इन्हीं दोनों कर्मोंके अवक्तव्य-संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौबीस अहोरात्र (दिन-रात) है। अनन्तानुबन्धी कषायोंके भुजाकार-संक्रामक, अल्पतरसंक्रामक और अवस्थित-संक्रामकोंका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्य-संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौबीस अहोरात्र है। इसी प्रकारसे शेष कर्मोंके भुजाकारादि-संक्रामकोंके अन्तरको जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि शेष कर्मोंके अवक्तव्य-

१ तदुवक्कमणवाराणमुक्कस्सेणेत्तियमेत्ताणमुवलंभादो। जयध०

२ कुदो; दंसणमोहक्खवयाणं जहण्णुक्कस्सविरहकालस्स तप्पमाणत्तोवएसादो। जयध०

३ कुदो; णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठीणमुवसमसम्मत्तग्गहणविरहकालस्स जहण्णुक्कस्सेण तप्पमाणत्तोवएसादो। जयध०

४ कुदो; तव्विसेसियजीवाणमाणंतियदंसणादो। जयध०

५ अणंताणुबंधिविसंजोयणाणं च संजुत्ताणं पि पयदंतरसिद्धीए बाहाणुवलंभादो। जयध०

णवरि अवत्तव्वसंकामयाणमंतरमुक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि[1]।

४००. अप्पाबहुअं। ४०१. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अप्पयरसंकामया[2]। ४०२. भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा[3]। ४०३. अवट्ठिदसंकामया संखेज्जगुणा[4]। ४०४. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अप्पयरसंकामया[5]। ४०५. अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा[6]। ४०६. अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[7]। ४०७. सेसाणं कम्माणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[8]। ४०८. अप्पयरसंकामया अणंतगुणा[9]। ४०९. भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा। ४१०. अवट्ठिदसंकामया संखेज्जगुणा[10]।

भुजगारसंकमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

४११. पदणिक्खेवे त्ति तिण्णि अणिओगद्दाराणि। ४१२. तं जहा। ४१३. परूवणा सामित्तमप्पाबहुअं च। ४१४. परूवणाए सव्वेसिकम्माणमत्थि उक्कस्सिया

संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ॥३९२-३९९॥

चूर्णिसू०—अब भुजाकारादि-संक्रामकोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रामक सबसे कम होते हैं। भुजाकार-संक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं। अवस्थित-संक्रामक संख्यातगुणित होते हैं। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रामक सबसे कम हैं। अवक्तव्यसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं। अवस्थित-संक्रामक असंख्यात-गुणित हैं। शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम हैं। अल्पतर-संक्रामक अनन्तगुणित हैं। भुजाकार-संकामक असंख्यातगुणित हैं और उनसे अवस्थित-संक्रामक संख्यातगुणित हैं। ॥४००-४१०॥

इस प्रकार भुजाकार-संक्रमण नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०—पदनिक्षेप नामक जो अधिकार है, उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं। वे इस प्रकार हैं—प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। प्ररूपणाकी अपेक्षा सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है, उत्कृष्ट हानि होती है और उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार सर्व

---

१ कुदो; वासपुधत्तमेत्तुक्कस्संतरेण विणा उवसमसेढिविसयाणमवत्तव्वसंकामयाणमेदेसिं संभवाणुवलंभादो। जयध०

२ कुदो; एयसमयसंचिदत्तादो। जयध०

३ कुदो; अंतोमुहुत्तमेत्तभुजगारकालब्भंतरसंभवग्गहणादो। जयध०

४ कुदो; भुजगारकालादो अवट्ठिदकालस्स संखेज्जगुणत्तादो। जयध०

५ कुदो; दंसणमोहक्खवणजीवाणमेव तदप्पयरभावेण परिणदाणमुवलंभादो। जयध०

६ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तणिस्संतकम्मियजीवाणमेयसमयम्मि सम्मत्तग्गहणसंभवादो। जयध०

७ कुदो; संकमपाओग्गतदुभयसंतकम्मियमिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणं सव्वेसिमेवग्गहणादो। जयध०

८ कुदो; बारसकसाय-णवणोकसायाणमवत्तव्वसंकामयभावेण संखेज्जाणमुवसामयजीवाणं परिणमणदंसणादो। अणंताणुबंधीणं पि पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवाणं तब्भावेण परिणदाणमुवलंभादो। जयध०

९ कुदो; सव्वजीवाणमसंखेज्जभागपमाणत्तादो। जयध०

१० कुदो; भुजगारकालादो अवट्ठिदकालस्स तावदिगुणत्तोवलंभादो। जयध०

वड्ढी हाणी अवट्ठाणं। जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं। ४१५. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं वड्ढी णत्थि[1] ।

४१६. सामित्तं । ४१७. मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? ४१८. सण्णिपाओग्गजहण्णएण अणुभागसंकमेण अच्छिदो उक्कस्ससंकिलेसं गदो, तदो उक्कस्सयमणुभागं पबद्धो, तस्स आवलियादीदस्स उक्कस्सिया वड्ढी । ४१९. तस्स चेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं[2] । ४२०. उक्कस्सिया हाणी कस्स ? ४२१. जस्स उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं तेण उक्कस्सयमणुभागखंडयमागाइदं, तम्मि खंडये घादिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी[3] । ४२२. तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंकमादो उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण जं बंधदि सो बंधो बहुगो । ४२३. जमणुभागखंडयं गेण्हइ तं विसेसहीणं[4] । ४२४.

कर्मोंकी जघन्य वृद्धि होती है, जघन्य हानि होती है और जघन्य अवस्थान होता है। केवल सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी वृद्धि नहीं होती है, हानि और अवस्थान होते हैं ॥४११-४१५॥

चूर्णिसू०–अब स्वामित्वको कहते हैं ॥४१६॥

शंका–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग वृद्धि किसके होती है ? ॥४१७॥

समाधान–जो जीव संज्ञियोंके योग्य जघन्य अनुभागसंक्रमणसे अवस्थित था, वह उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ और उसने उस संक्लेश-परिणामसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थानको बाँधना प्रारम्भ किया । आवलीकालके व्यतीत होनेपर उसके मिथ्यात्वके अनुभागकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उस ही जीवके अनन्तर समयमें मिथ्यात्वके अनुभागका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥४१८-४१९॥

शंका–मिथ्यात्वके अनुभागकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥४२०॥

समाधान–जिस जीवके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व था, उसने उत्कृष्ट अनुभागकांडकको घात करनेके लिए ग्रहण किया । उस अनुभागकांडके घात कर दिये जाने पर उस जीवके मिथ्यात्वके अनुभागकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥४२१॥

मिथ्यात्वके अनुभागकी यह उत्कृष्ट हानि क्या उत्कृष्ट वृद्धिप्रमाण होती है, अथवा हीनाधिक होती है, इसके निर्णय करनेके लिए आचार्य अल्पबहुत्व कहते हैं–

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वके योग्य जघन्य अनुभागसंक्रमणसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर जिस अनुभागको बाँधता है, वह अनुभागबन्ध बहुत है । तथा जिस अनुभाग-

१ कुदो; तदुभयाणुभागस्स वड्ढिविरुद्धसहावत्तादो । तम्हा जहण्णुक्कस्सहाणि-अवट्ठाणाणि चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि त्ति सिद्धं । जयध०

२ कुदो; तत्थुक्कस्सवड्ढिपमाणेण संकमट्ठाणदंसणादो । जयध०

३ कुदो; तत्थाणुभागसंतकम्मस्साणंताणं भागाणमसंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणावच्छिण्णाणमेक्कवारेण हाणिदंसणादो । जयध०

४ केत्तियमेत्तेण ? तदणंतिमभागमेत्तेण । कुदो; वड्ढिदाणुभागस्स णिरवसेसघादणसत्तीए असंभवादो । जयध०

एदमप्पाबहुअस्स साहणं । ४२५. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । ४२६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया हाणी कस्स ? ४२७. दंसणमोहणीयक्खवयस्स विदिय-अणुभागखंडयपढमसमयसंकामयस्स तस्स उक्कस्सिया हाणी[1] । ४२८. तस्स चेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

४२९. मिच्छत्तस्स जहण्णिया वड्ढी कस्स ? ४३०. सुहुमेइंदियकम्मेण जहण्णएण जो अणंतभागेण वड्ढिदो तस्स जहण्णिया वड्ढी । ४३१. जहण्णिया हाणी कस्स ? ४३२. जो वड्ढाविदो तम्मि घादिदे तस्स जहण्णिया हाणी[2] । ४३३. एगदरत्थमवट्ठाणं । ४३४. एवमट्ठकसायाणं । ४३५. सम्मत्तस्स जहण्णिया हाणी कस्स ?

कांडकको घात करनेके लिए ग्रहण करता है, वह विशेष हीन है । यह कथन वक्ष्यमाण अल्पबहुत्वका साधक है ॥४२२-४२४॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागवृद्धि, हानि और अवस्थानके समान सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अनुभागवृद्धि, हानि और अवस्थानोंका स्वामित्व जानना चाहिए ॥४२५॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥४२६॥

समाधान—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय द्वितीय अनुभागकांडकको प्रथम समयमें संक्रमण करनेवाले दर्शनमोहनीय-क्षपकके उक्त दोनों कर्मोंके अनुभागकी उत्कृष्ट हानि होती है । उसी जीवके तदनंतर समयमें कर्मोंके अनुभागका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥४२७-४२८॥

शंका—मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? ॥४२९॥

समाधान—जो जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियके योग्य जघन्य अनुभागसत्कर्मसे विद्यमान था, वह जब परिणामोंके निमित्तसे अनन्तभागरूप वृद्धिसे बढ़ा, तब उसके मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य वृद्धि होती है ॥४३०॥

शंका—मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥४३१॥

समाधान—जो सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभाग संक्रमण अनन्तभाग वृद्धिरूपसे बढ़ाया गया, उसके घात करनेपर उस जीवके मिथ्यात्वकी जघन्य हानि होती है ॥४३२॥

चूर्णिसू०—मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य वृद्धि या हानि करनेवाले किसी एक जीवके तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वके अनुभागका अवस्थान होता है । इसी प्रकार आठों कषायोंके जघन्य वृद्धि हानि और अवस्थानको जानना चाहिए ॥४३३-४३४॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥४३५॥

१ दंसणमोहक्खवणाए अपुव्वकरणपढमाणुभागखंडयं घादिय विदियाणुभागखंडए वट्टमाणस्स पढमसमए पयदकम्माणमुक्कस्सहाणी होइ; तत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुभागसंतकम्मस्साणंताणं भागाणमेक्कवारेण हाइदूणाणंतिमभागे समवट्ठाणदंसणादो । जयध०

२ जहण्णवड्ढिविसईकयाणुभागस्सेव तत्थ हाणिसरूवेण परिणामदंसणादो । ण चाणंतिमभागस्स खंडयघादो णत्थित्ति पच्चवट्ठेयं, संसारावत्थाए छव्विहाए हाणीए घादस्स पवुत्तिअब्भुवगमादो । जयध०

३ कुदो; जहण्णवड्ढिहाणीणमण्णदरस्स से काले अवट्ठाणसिद्धिपवाहाणुवलंभादो । जयध०

४३६. दंसणमोहणीयक्खवयस्स समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स तस्स जहण्णिया हाणी[1]। ४३७. जहण्णयमवट्ठाणं कस्स ? ४३८. तस्स चेव दुचरिमे अणुभागखंडए हदे चरिमअणुभागखंडए वट्टमाणखवयस्स[2]। ४३९. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णिया हाणी कस्स ? ४४०. दंसणमोहणीयक्खवयस्स दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी[3]। ४४१. तस्स चेव से काले जहण्णयमवट्ठाणं।

४४२. अणंताणुबंधीणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ? ४४३. विसंजोएदूण पुणो मिच्छत्तं गंतूण तप्पाओग्गविसुद्धपरिणामेण विदियसमए तप्पाओग्गजहण्णाणुभागं बंधिऊण आवलियादीदस्स तस्स जहण्णिया वड्ढी[4]। ४४४. जहण्णिया हाणी कस्स ? ४४५.

समाधान—दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवके एक समय अधिक आवली-काल जब दर्शनमोहनीयके क्षपण करनेमें शेष रहे, तब उसके सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागकी जघन्य हानि होती है ॥४३६॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागका जघन्य अवस्थान किसके होता है ? ॥४३७॥

समाधान—द्विचरम अनुभाग-कांडकका घात करके चरम अनुभाग-कांडकके घात करनेमें वर्तमान उस ही दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागका जघन्य अवस्थान होता है ॥४३८॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य हानि किसके होती है ? ४३९॥

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्वके द्विचरम अनुभागकांडकके घात कर देनेपर उसी दर्शनमोहनीय-क्षपकके सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागकी जघन्य हानि होती है। उस ही जीवके तदनन्तर समयमें सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका जघन्य अवस्थान होता है ॥४४०-४४१॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके अनुभागकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? ॥४४२॥

समाधान—जो जीव अनन्तानुबन्धी कषायोंका विसंयोजन करके पुनः मिथ्यात्वको जाकर और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामसे द्वितीय समयमें तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागको बाँधकर आवलीकाल व्यतीत करता है, उसके अनन्तानुबन्धी कषायोंके अनुभागकी जघन्य वृद्धि होती है ॥४४३॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके अनुभागकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥४४४॥

---

१ कुदो; तत्थाणुसमयोवट्टणावसेण सुट्ठु थोवीभूदाणुभागसंतकम्मादो तक्काले थोवयराणुभागसंकम-हाणिदंसणादो। जयध०

२ तस्स चेव दंसणमोहक्खवयस्स दुचरिमाणुभागखंडयं घादिय तदणंतरसमये तप्पाओग्गजहण्णहाणीए परिणदस्स चरिमाणुभागखंडयविदियसमयप्पहुडि जावंतोमुहुत्तं जहण्णावट्ठाणसंकमो होइ; तत्थ पयारंतरा-संभवादो। जयध०

३ कुदो; दुचरिमाणुभागखंडयसंकमादो अणंतगुणहाणीए हाइदूण चरिमाणुभागखंडयसरूवेण परि-णदस्स पढमसमए जहण्णभावसिद्धिपवाहाणुवलंभादो। जयध०

४ एत्थ तप्पाओग्गविसुद्धपरिणामेणेत्ति णिद्देसो पढमसमयजहण्णाणुभागबंधादो विदियसमए जहण्ण-

विसंजोएदूण पुणो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तसंजुत्ते वि तस्स सुहुमस्स हेट्ठदो संतकम्मं* । ४४६. तदो जो अंतोमुहुत्तसंजुत्तो जाव सुहुमकम्मं जहण्णयं ण पावदि ताव घादं करेज्ज । ४४७. तदो सव्वत्थोवाणुभागे घादिज्जमाणे घादिदे तस्स जहण्णिया हाणी । ४४८. तस्सेव से काले जहण्णयमवट्ठाणं ।

४४९. कोहसंजलणस्स जहण्णिया वड्ढी मिच्छत्तभंगो । ४५०. जहण्णिया हाणी कस्स ? ४५१. खवयस्स चरिमसमयबंध-चरिमसमयसंकामयस्स[1] । ४५२. जहण्णयमवट्ठाणं कस्स ? ४५३. तस्सेव चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्स[2] । ४५४.

समाधान—अनन्तानुबन्धी कषायोंका विसंयोजन करके पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तानुबन्धी कषायोंका संयोजन करके भी जिसके सूक्ष्म निगोदिया-के अनुभागसे नीचे अनुभागसत्त्व रहता है, तदनन्तर वह अन्तर्मुहूर्त तक कषायोंसे संयुक्त हो करके भी जब तक सूक्ष्मनिगोदियाके योग्य जघन्य कर्मको नहीं प्राप्त कर लेता है, तब तक घात करता जाता है । इस क्रमसे घात करते हुए घातने योग्य सर्व-स्तोक अनुभागके घात करनेपर उस जीवके अनन्तानुबन्धी कषायोंके अनुभागकी जघन्य हानि होती है । उस ही जीवके तदनन्तरकालमें उक्त कषायोंके अनुभागका जघन्य अवस्थान होता है ॥४४५-४४८॥

चूर्णिसू०—संज्वलनक्रोधकी जघन्य वृद्धिका स्वामित्व मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए ॥४४९॥

शंका—संज्वलनक्रोधकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥४५०॥

समाधान—चरमसमयमें अर्थात् क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टि-वेदकके अन्तिम समयमें बँधे हुए नवकबद्ध अनुभागको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले अर्थात् मानवेदककालके दो समय कम दो आवलियोंके अन्तिम समयमें वर्तमान क्षपकके संज्वलनक्रोधके अनुभागकी जघन्य हानि होती है ॥४५१॥

शंका—संज्वलनक्रोधके अनुभागका जघन्य अवस्थान किसके होता है ? ॥४५२॥

समाधान—अन्तिम अनुभागकांडकमें वर्तमान उस ही क्षपकके संज्वलन क्रोधके

वुड्ढिसंगहणट्ठो । XXX एवं वुत्तविहाणेण विदियसमए वड्ढिदूण तत्तो आवलियादीदस्स तस्स जहण्णिया वड्ढी; अणइच्छाविदबंधावलियस्स णवकबंधस्स संकमपाओग्गभावाणुववत्तीदो । जयध०

१ एत्थ चरिमसमयबंधो त्ति वुत्ते कोहतदियसंगहकिट्टीवेदयचरिमसमयबद्धणवकबंधाणुभागो घेत्तव्वो । तस्स चरिमसमयसंकामओ णाम माणवेदगद्धाए दुसमऊणदोआवलियचरिमसमए वट्टमाणो त्ति गहेयव्वं । तस्स कोधसंजलणाणुभागसंकमणिबंधणा जहण्णिया हाणी होइ । जयध०

२ चरिमाणुभागखंडयं णाम किट्टीकारयचरिमावत्थाए घेत्तव्वं; उवरिमगुसमयोवट्टणाविसए खंडयघादासंभवादो । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'संतकम्मं' पदसे आगे 'पयदजहण्णसामित्तसाहणट्ठमिदं ताव पुव्वमेव णिद्दिट्ठमट्ठपदं' इतना अंश और भी सूत्ररूपसे मुद्रित है (देखो पृ० ११७६) । पर यह सूत्रका अंश नहीं, अपि तु स्पष्ट रूपसे टीकाका अंश है ।

एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं[1]। ४५५. लोहसंजलणस्स जहण्णिया वड्ढी मिच्छत्त-भंगो। ४५६. जहण्णिया हाणी कस्स? ४५७. खवयस्स समयाहियावलियसकसायस्स[2]। ४५८. जहण्णयमवट्ठाणं कस्स? ४५९. दुचरिमे अणुभागखंडए हदे चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्स। ४६०. इत्थिवेदस्स जहण्णिया वड्ढी मिच्छत्तभंगो[3]। ४६१. जहण्णिया हाणी कस्स? ४६२. चरिमे अणुभागखंडए पढमसमयसंकामिदे तस्स जहण्णिया हाणी[4]। ४६३. तस्सेव विदियसमये जहण्णयमवट्ठाणं[5]। ४६४. एवं णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं।

अनुभागका जघन्य अवस्थान होता है ॥४५३॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार संज्वलन मान, मायाकषाय और पुरुषवेदके अनुभागकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान जानना चाहिए। संज्वलन लोभकी जघन्य वृद्धिका स्वामित्व मिथ्यात्वके समान है ॥४५४-४५५॥

शंका—संज्वलनलोभकी जघन्य हानि किससे होती है? ॥४५६॥

समाधान—एक समय अधिक आवलीकालवाले सकषाय सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके होती है ॥४५७॥

शंका—संज्वलनलोभका जघन्य अवस्थान किसके होता है? ॥४५८॥

समाधान—द्विचरम अनुभागकांडकको घात कर चरम अनुभागकांडकमें वर्तमान क्षपकके होता है ॥४५९॥

चूर्णिसू०—स्त्रीवेदकी जघन्य वृद्धि मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए ॥४६०॥

शंका—स्त्रीवेदकी जघन्य हानि किसके होती है? ॥४६१॥

समाधान—स्त्रीवेदके अन्तिम अनुभागकांडकको प्रथम समयमें संक्रान्त करनेपर, अर्थात् अन्तिम अनुभागकांडकके प्रथम समयमें वर्तमान क्षपकके स्त्रीवेदकी जघन्य हानि होती है ॥४६२॥

चूर्णिसू०—उस ही जीवके द्वितीय समयमें स्त्रीवेदका जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेद और हास्यादि छह नोकषायोंकी वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥४६३-४६४॥

---

१ कुदो; वड्ढीए मिच्छत्तभंगेण, हाणि-अवट्ठाणाणं पि खवयस्स चरिमसमयणवकबंधचरिमफालि-विसयत्तेण चरिमाणुभागखंडयविसयत्तेण च सामित्तपरूवणं पडिविसेसाभावादो। जयध०

२ समयाहियावलियसकसायो णाम सुहुमसंपराइयो खवगो समयाहियावलियसेसाए वट्टमाणो घेत्तव्वो। तस्स पयदजहण्णसामित्तं दट्ठव्वं; एत्तो सुहुमदरहाणीए लोहसंजलणाणुभागसंकमणिबंधणाए अण्ण-त्थाणुवलद्धीदो। जयध०

३ कुदो; सुहुमहदसमुप्पत्तियकम्मेण जहण्णएणाणंतभागवड्ढीए वड्ढिदम्मि सम्मत्तपडिलंभं पडि तत्तो एदस्स भेदाभावादो। जयध०

४ इत्थिवेदस्स दुचरिमाणुभागखंडयचरिमफालिं संकामिय चरिमाणुभागखंडयपढमसमए वट्टमाणस्स जहण्णिया हाणी होइ; तत्थ खवगपरिणामेहि घादिदावसेसस्स तदणुभागस्स सुट्ठु जहण्णहाणीए हाइदूण संकंतिदंसणादो। जयध०

५ कुदो; पढमसमए जहण्णहाणिविसयीकयाणुभागस्स विदियसमए तत्तियमेत्तपमाणेणावट्ठाणदंस-णादो। जयध०

४६५. अप्पाबहुअं। ४६६. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया हाणी। ४६७. वड्ढी अवट्ठाणं च विसेसाहियं[1]। ४६८. एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं। ४६९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया हाणी अवट्ठाणं च सरिसं[2]।

४७०. जहण्णयं। ४७१. मिच्छत्तस्स जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणसंकमो च तुल्लो[3]। ४७२. एवमट्ठकसायाणं। ४७३. सम्मत्तस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया हाणी[4]। ४७४. जहण्णयमवट्ठाणमणंतगुणं[5]। ४७५. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णिया हाणी अवट्ठाणसंकमो च तुल्लो[6]। ४७६. अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा जहण्णिया वड्ढी। ४७७. जहण्णिया हाणी अवट्ठाणसंकमो च अणंतगुणो[8]। ४७८. चदुसंजलण-पुरिसवेदाणं सव्वत्थोवा जहण्णिया हाणी[9]। ४७९. जहण्णयमवट्ठाणं अणंतगुणं[10]। ४८०. जहण्णिया

चूर्णिसू०-अब उत्कृष्ट वृद्धि आदिके अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि सबसे कम होती है। वृद्धि और अवस्थान विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सदृश होते हैं ॥४६५-४६९॥

चूर्णिसू०-अब जघन्य अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमण तुल्य हैं। इसी प्रकार आठ मध्यम कषायोंकी वृद्धि आदिका अल्पबहुत्व है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य हानि सबसे कम है। जघन्य अवस्थान अनन्तगुणित है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि और अवस्थानसंक्रमण तुल्य हैं। अनन्तानुबन्धी कषायोंकी जघन्य वृद्धि सबसे कम है। जघन्य हानि और अवस्थानसंक्रमण अनन्तगुणित हैं। चारों संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य हानि सबसे कम है। इससे इन्हीं

१ कुदो पुण एदेसिं विसेसाहियणिच्छयो ? ण, वड्ढिदाणुभागस्स णिरवसेसघादणसत्तीए असंभवेण तव्विणिच्छयादो। जयध०

२ कुदो; उक्कस्सहाणीए चेव उक्कस्सावट्ठाणसामित्तदंसणादो। जयध०

३ कुदो; तिण्हमेदेसिं सुहुमहदसमुप्पत्तिजहण्णाणुभागअणंतिमभागे पडिबद्धत्तादो। जयध०

४ कुदो; अणुसमयोवट्टणाए पत्तघादसम्मत्ताणुभागस्स समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयम्मि जहण्णहाणिभावमुवगयस्स सव्वत्थोवत्ते विरोहाणुवलंभादो। जयध०

५ कुदो; अणुसमयोवट्टणापारंभादो पुव्वमेव चरिमाणुभागखंडयविसए जहण्णभावमुवगयत्तादो। जयध०

६ कुदो; दोण्हमेदेसिं दंसणमोहक्खवयदुचरिमाणुभागखंडयपमाणेण हाइदूण लद्धजहण्णभावाणमण्णोण्णेण समाणत्तसिद्धीए विप्पडिसेहाभावादो। जयध०

७ कुदो; तप्पाओग्गविसुद्धपरिणामेण संजुत्तविदियसमयणवकबंधस्स जहण्णवड्ढिभावेणेह विवक्खियत्तादो। जयध०

८ कुदो; अंतोमुहुत्तसंजुत्तस्स एयंताणुवड्ढीए वड्ढिदाणुभागविसयसव्वत्थोवाणुभागखंडयघादे कदे जहण्णहाणि-अवट्ठाणाणं सामित्तदंसणादो। जयध०

९ कुदो; तिण्णिसंजलण-पुरिसवेदाणं सगसगचरिमसमयणवकबंधचरिमसमयसंकामयखवयम्मि लोभसंजलणस्स समयाहियावलियसकसायम्मि पयदजहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

१० केण कारणेण ? चिराणसंतकम्मचरिमाणुभागखंडयम्मि पयदजहण्णावट्ठाणसामित्तावलंबणादो। जयध०

वड्ढी अणंतगुणा[1] । ४८१. अट्ठणोकसायाणं जहण्णिया हाणी अवट्ठाणसंकमो च तुल्लो थोवो[2] ४८२. जहण्णिया वड्ढी अणंतगुणा ।

पदणिक्खेवो समत्तो

४८३. वड्ढीए तिण्णि अणिओगद्दाराणि समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च । ४८४. समुक्कित्तणा । ४८५. मिच्छत्तस्स अत्थि छव्विहा वड्ढी, छव्विहा हाणी अवट्ठाणं च । ४८६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अणंतगुणहाणी अवट्ठाणमवत्तव्वयं च[3] । ४८७. अणंताणुबंधीणमत्थि छव्विहा वड्ढी हाणी अवट्ठाणमवत्तव्वयं च । ४८८. एवं सेसाणं कम्माणं[4] ।

४८९. सामित्तं । ४९०. मिच्छत्तस्स छव्विहा वड्ढी पंचविहा हाणी कस्स ? ४९१. मिच्छाइट्ठिस्स अण्णयरस्स[5] । ४९२. अणंतगुणहाणी अवट्ठिदसंकमो च कस्स ?

कर्मोका जघन्य अवस्थान अनन्तगुणित है । इससे उन्हींकी जघन्य वृद्धि अनन्तगुणित होती है । आठों मध्यम कषायोंकी जघन्य हानि और अवस्थानसंक्रमण परस्पर तुल्य और अल्प हैं । जघन्य वृद्धि अनन्तगुणित है ॥४७०-४८२॥

इस प्रकार पदनिक्षेप अधिकार समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०–वृद्धि अधिकारमें तीन अनुयोगद्वार हैं–समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । पहले समुत्कीर्तना कहते हैं–मिथ्यात्वकी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि होती है, अवस्थान और अवक्तव्यसंक्रमण होता है । अनन्तानुबन्धी कषायोंकी छह प्रकार-की वृद्धि और छह प्रकारकी हानि होती है, तथा अवस्थान और अवक्तव्यसंक्रमण भी होता है । इसी प्रकार शेष बारह कषाय और नव नोकषायोंकी वृद्धि, हानि, अवस्थान और अवक्तव्यसंक्रमण होते हैं ॥४८३-४८८॥

चूर्णिसू०–अब वृद्धि आदिके स्वामित्वको कहते हैं ॥४८९॥

शंका–मिथ्यात्वकी छह प्रकारकी वृद्धि और अनन्तगुणहानिको छोड़कर पाँच प्रकारकी हानि किसके होती है ? ॥४९०॥

समाधान–किसी एक मिथ्यादृष्टिके होती है ॥४९१॥

शंका–मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि और अवस्थितसंक्रमण किसके होता है ? ॥४९२॥

---

१ कुदो; एत्तो अणंतगुणसुहुमाणुभागविसए लद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

२ कुदो; दोण्हमेदेसिं पदाणमप्पप्पणो चरिमाणुभागखंडयविसए पयदजहण्णसामित्तसमुवलद्धीदो । जयध०

३ दंसणमोहक्खवणाए अणंतगुणहाणिसंभवो, हाणीदो अण्णत्थ सव्वत्थेवावट्ठाणसंकमसंभवो, असंक-मादो संकामयत्तमुवगयम्मि अवत्तव्वसंकमो; तिण्हमेदेसिमेत्थ संभवो ण विरुज्झदे । सेसपदाणमेत्थ णत्थि संभवो । जयध०

४ णवरि सव्वोवसामणापडिवादे अवत्तव्वसंभवो वत्तव्वो । जयध०

५ (कुदो;) ण ताव सम्माइट्ठिम्मि मिच्छत्ताणुभागविसयछवड्ढीणमत्थि संभवो; तत्थ तब्बंधा-

४९३. अण्णयरस्स । ४९४. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणंतगुणहाणिसंकमो कस्स ? ४९५. दंसणमोहणीयं खवेंतस्स । ४९६. अवट्ठाणसंकमो कस्स ? ४९७. अण्णदरस्स । ४९८. अवत्तव्वसंकमो कस्स ? ४९९. विदियसमय-उवसमसम्माइट्ठिस्स[3] । ५००. सेसाणं कम्माणं मिच्छत्तभंगो । ५०१. णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वं विसंजोएदूण पुणो मिच्छत्तं गंतूण आवलियादीदस्स । ५०२. सेसाणं कम्माणमवत्तव्वमुवसामेदूण परिवदमाणयस्स ।

५०३. अप्पाबहुअं । ५०४. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अणंतभागहाणिसंकामया[4] । ५०५. असंखेज्जभागहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा[5] । ५०६. संखेज्जभागहाणिसंकामया

समाधान–किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है ॥४९३॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अनन्तगुणहानिसंक्रमण किसके होता है ? ॥४९४॥

समाधान–दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण करनेवाले जीवके होता है ॥४९५॥

शंका–उक्त दोनों कर्मोंका अवस्थानसंक्रमण किसके होता है ? ॥४९६॥

समाधान–किसी एक सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होता है ॥४९७॥

शंका–उक्त दोनों कर्मोंका अवक्तव्यसंक्रमण किसके होता है ? ॥४९८॥

समाधान–द्वितीयसमयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टिके होता है ॥४९९॥

चूर्णिसू०–शेष कर्मोंका स्वामित्व मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि अनन्तानुबन्धी कषायोंका अवक्तव्यसंक्रमण अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर एक आवलीकाल व्यतीत करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है । शेष कर्मोंका अवक्तव्यसंक्रमण कषायोंका उपशमन करके नीचे गिरनेवाले जीवके होता है ॥५००-५०२॥

चूर्णिसू०–अब वृद्धि आदि पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं–मिथ्यात्वकी अनन्तभागहानिके संक्रामक वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । अनन्तभागवृद्धि-संक्रामकोंसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातभागहानि-संक्रामकोंसे संख्यातभागहानिके संक्रामक संख्यातगुणित हैं । संख्यातभागहानि-संक्रामकोंसे संख्यातगुणहानिके

भावादो । ण च बंधेण विणा अणुभागसंकमस्स वड्ढी लब्भदे, तहाणुवलद्धीदो । तहा पंचविहा हाणी वि तत्थ णत्थि; सुट्ठु वि मंदविसोहीए कंडयघादं करेमाणसम्माइट्ठिम्मि अणंतगुणहाणिं मोत्तूण सेसपंचहाणीणमसंभवादो । तदो मिच्छाइट्ठिस्सेव णिरुद्धछवड्ढि-पंचहाणीणं सामित्तमिदि । जयध०

१ कुदो; दंसणमोहक्खवणादो अण्णत्थेदेसिमणुभागघादासंभवादो । जयध०

२ कुदो; मिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणं तदुवलद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

३ कुदो; तत्थासंकमादो संकमपवुत्तीए परिप्फुडमुवलंभादो । जयध०

४ कुदो; एगकंडयविसयत्तादो । जयध०

५ चरिमुव्वंकट्ठाणादोप्पहुडि अणंतभागहाणिअद्धाणमेगकंडयमेत्तं चेव होदि । एदेसिं पुण तारिसाणि अद्धाणाणि रूवाहियकंडयमेत्ताणि हवंति । तदो तव्विसयादो पयदविसयो असंखेज्जगुणो त्ति सिद्धमेदेसिं तत्तो असंखेज्जगुणत्तं । जयध०

संखेज्जगुणा[1]। ५०७. संखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा[2]। ५०८. असंखेज्ज-गुणहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा[3]। ५०९. अणंतभागवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[4]। ५१०. असंखेज्जभागवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[5]। ५११. संखेज्जभागवड्ढिसंकामया संखेज्जगुणा। ५१२. संखेज्जगुणवड्ढिसंकामया संखेज्जगुणा। ५१३. असंखेज्जगुण-वड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा। ५१४. अणंतगुणहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा[6]। ५१५.

संक्रामक संख्यातगुणित हैं। संख्यातगुणहानि-संक्रामकोंसे असंख्यातगुणहानिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातगुणहानि-संक्रामकोंसे अनन्तभागवृद्धिके संक्रामक असंख्यात-गुणित हैं। अनन्तभागवृद्धि-संक्रामकोंसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातभागवृद्धि-संक्रामकोंसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक संख्यातगुणित हैं। संख्यात-भागवृद्धि-संक्रामकोंसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक संख्यातगुणित हैं। संख्यातगुणवृद्धि-संक्रा-मकोंसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। असंख्यातगुणवृद्धि-संक्रामकोंसे अनन्तगुणहानिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं। अनन्तगुणहानिके संक्रामकोंसे अनन्तगुण-

१ तं जहा—रूवाहियअणंतभागहाणि-असंखेज्जभागहाणि-अद्धाणपमाणेण एगं संखेज्जभागहाणिअद्धाणं कादूणेवंविहाणि दोण्णि तिण्णि चत्तारि त्ति गणिज्जमाणे उक्कस्ससंखेज्जयस्स सादिरेयद्धमेत्ताणि अद्धाणाणि संखेज्जभागहाणीए विसओ होइ; तेत्तियमेत्तमद्धाणं गंतूण तत्थ दुगुणहाणीए समुप्पत्तिदंसणादो। तदो विसयाणुसारेणुक्कस्ससंखेज्जयस्स सादिरेयद्धमेत्तो गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तो वा। जयध०

२ तं कधं? संखेज्जभागहाणिसंकामएहिं लद्धट्ठाणपमाणेणेयमद्धाणं कादूण तारिसाणि जहण्णपरित्ता-संखेज्जयस्स रूवूणद्धच्छेदणयमेत्ताणि जाव गच्छंति ताव संखेज्जगुणहाणिविसओ चेव; तत्तोप्पहुडि असंखेज्जगुण-हाणिसमुप्पत्तीदो। तदो एत्थ वि विसयाणुसारेण रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जछेदणयमेत्तो तप्पाओग्गसंखेज्जरूव-मेत्तो वा गुणगारो। जयध०

३ पुव्वाणुपुव्वीए चरिमसंखेज्जभागवड्ढिकंडयस्सासंखेज्जदिभागे चेव संखेज्जभागहाणि-संखेज्जगुणहा-णीओ समप्पंति। तेण कारणेण चरिमसंखेज्जभागवड्ढिकंडयस्स सेसा असंखेज्जा भागा संखेज्जासंखेज्जगुणवड्ढि-सयलद्धाणं च असंखेज्जगुणहाणिसंकमाणं विसयो होइ। तदो एत्थ विसयाणुसारेण अंगुलस्सासंखेज्जभागमेत्तो गुणगारो, तप्पाओग्गासंखेज्जरूवमेत्तो वा। जयध०

४ तं कधं? पुव्वुत्तासेसहाणिसंकामयरासी एयसमयसंचिदो, खंडयघादाणं तस्समयमोत्तूणण्णत्थ हाणिसंकमसंभवादो। एसो पुण रासी आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तकालसंचिदो; पंचण्हं वड्ढीणमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तकालोवएसादो। तदो कंडयमेत्तविसयत्ते वि संचयकालपाहम्मेणासंखेज्जभागमेत्तमेदेसिं सिद्धं। गुणगारपमाणमेत्थासंखेज्जा लोगा त्ति वत्तव्वं। कुदो एवं चे, हाणिपरिणामाणं सुट्ठु दुल्लहत्तादो। वड्ढिपरिणामाणमेव पाएण संभवादो। जयध०

५ दोण्हमावलियासंखेज्जभागमेत्तकालपडिबद्धत्ते समाणे संते वि पुव्विल्लकालादो एदस्स कालो असं-खेज्जगुणो पुव्विल्लकालस्स चेव असंखेज्जगुणत्तं। कथमेसो कालगओ विसेसो परिच्छिण्णो? महाबंधपरूविद-कालप्पाबहुआदो। जयध०

६ किं कारणं? असंखेज्जगुणवड्ढिसंकामयरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तकालसंचिदो होइ, किंतु थोवविसयो; एयछट्ठाणब्भंतरे चेय तव्विसयणिबंधदंसणादो। अणंतगुणहाणिसंकामयरासी पुण जइ वि एयसमयसंचिदो, तो वि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणपडिबद्धो। तदो सिद्धमेदेसिं तत्तो असंखेज्जगुणत्तं। जयध०

अणंतगुणवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा[1] । ५१६. अवट्ठिदसंकामया संखेज्जगुणा[2] ।

५१७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिसंकामया[3] । ५१८. अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा[4] । ५१९. अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा[5] । ५२०. सेसाणं कम्माणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[6] । ५२१. अणंतभागहाणिसंकामया अणंतगुणा[7] । ५२२. सेसाणं संकामया मिच्छत्तभंगो ।

एवं वड्ढिसंकमो समत्तो ।

५२३. एत्तो ट्ठाणाणि कायव्वाणि[8] । ५२४. जहा संतकम्मट्ठाणाणि तहा संकमट्ठाणाणि । ५२५. तहावि परूवणा कायव्वा । ५२६. उक्कस्सए अणुभागबंधट्ठाणे

वृद्धिके संक्रामक असंख्यातगुणित हैं । अनन्तगुणवृद्धि-संक्रामकोंसे अवस्थितसंक्रामक संख्यात-गुणित हैं ॥५०३-५१६॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिके संक्रामक सबसे कम हैं । अवक्तव्यसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं । अवस्थितसंक्रामक असंख्यात-गुणित हैं । शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम हैं । अवक्तव्यसंक्रामकोंसे अनन्त-भागहानि-संक्रामक अनन्तगुणित हैं । शेष संक्रामकोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्वके समान जानना चाहिये ॥५१७-५२२॥

इस प्रकार वृद्धिसंक्रमण समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे अनुभागके संक्रमस्थानोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । जिस प्रकार अनुभागविभक्तिमें अनुभागके सत्कर्मस्थान कहे गये हैं, उसी प्रकार अनुभाग-संक्रमस्थानोंको जानना चाहिए । तथापि उनकी प्ररूपणा यहाँ करने योग्य है॥५२३-५२५॥

विशेषार्थ—संक्रमस्थानोंका प्ररूपण चार अनुयोगद्वारोंसे किया गया है—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व । समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा मोहनीयकी सभी प्रकृतियोंके

१ को गुणगारो ? अंतोमुहुत्तं । जयध०

२ कुदो; अणंतगुणवड्ढिकालादो अवट्ठिदसंकमकालस्स असंखेज्जगुणत्तावलंबणादो । जयध०

३ कुदो; दंसणमोहक्खवयजीवाणं चेव तब्भावेण परिणामोवलंभादो । जयध०

४ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवाणं तब्भावेण परिणदाणमुवलंभादो । जयध०

५ कुदो; तव्वदिरित्तासेससम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मियजीवाणमवट्ठिदसंकामयभावेणावट्ठाणदंसणादो । एत्थ गुणगारपमाणं आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो घेत्तव्वो । जयध०

६ कुदो; अणंताणुबंधीणं विसंयोजणापुव्वसंजोगे वट्टमाणपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवाणं सेसकसाय-णोकसायाणं पि सव्वोवसामणापडिवादपढमसमयमहिट्ठिदसंखेज्जोवसामयजीवाणमवत्तव्वभावेण परिणदाण-मुवलद्धीदो । जयध०

७ कुदो; सव्वजीवाणमसंखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

८ किमट्ठमेसा ट्ठाणपरूवणा आगया ? वड्ढीए परूविदछवड्ढिहाणीणमवंतरवियप्पपदुप्पायणट्ठमागया ।× × तत्थापरूविदबंधसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय-हदहदसमुप्पत्तियभेदाणं पादेक्कमसंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणसरूवाणमिह परूवणोवलंभादो । जयध०

एगं संतकम्मं तमेगं संकमट्ठाणं[1] । ५२७. दुचरिमे अणुभागबंधट्ठाणे एवमेव । ५२८. एवं ताव जाव पच्छाणुपुव्वीए पढममणंतगुणहीणबंधट्ठाणमपत्तो त्ति[2] । ५२९. पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे जं चरिममणंतगुणं बंधट्ठाणं तस्स हेट्ठा अणंतरमणंतगुणहीणमेदम्मि अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि[3] । ५३०. ताणि संतकम्मट्ठाणाणि ताणि चेव संकमट्ठाणाणि[4] । ५३१. तदो पुणो बंधट्ठाणाणि संकमट्ठाणाणि च ताव तुल्लाणि जाव पच्छाणुपुव्वीए विदियमणंतगुणहीणबंधट्ठाणं । ५३२. विदियअणंतगुण-

संक्रमस्थान तीन प्रकारके होते हैं:–बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान, हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान, और हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान नहीं होते हैं, शेष दो संक्रमस्थान होते हैं । सुगम होनेसे चूर्णिकारने समुत्कीर्तना नहीं कही है । आगे शेष तीन अनुयोगद्वारोंको कहा है ।

अब चूर्णिकार प्ररूपणा और प्रमाण इन दोनोंको एक साथ कहते हैं–

चूर्णिसू०–उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान पर जो एक अनुभागसत्कर्म है, वह एक अनुभागसंक्रमस्थान है । द्विचरम अनुभागबन्धस्थानपर इसी प्रकार एक अनुभागसत्कर्मस्थान और एक अनुभागसंक्रमस्थान होता है । इस प्रकार त्रिचरम, चतुश्चरम आदिके क्रमसे पश्चादानुपूर्वीके द्वारा अनन्तगुणहीन प्रथम बन्धस्थान प्राप्त होने तक अनुभागसत्कर्मस्थान और अनुभागसंक्रमस्थान उत्पन्न होते हुए चले जाते हैं, ॥५२६-५२८॥

चूर्णिसू०–पूर्वानुपूर्वीसे गिननेपर जो अन्तिम अनन्तगुणित अनुभागबन्धस्थान है, उसके नीचे अनन्तगुणितहीन बन्धस्थानके नहीं प्राप्त होने तक इस मध्यवर्ती अन्तरालमें असंख्यातलोकप्रमाण घातस्थान होते हैं । ये घातस्थान ही अनुभागसत्कर्मस्थान कहलाते हैं और वे ही अनुभागसंक्रमस्थानरूपसे परिणत होनेके कारण अनुभागसंक्रमस्थान कहलाते हैं । उस पूर्वोक्त अनन्तगुणहीन बन्धस्थानसे लेकर पुनः बन्धस्थान और संक्रमस्थान ये दोनों तब तक तुल्य चले जाते हैं, जब तक कि पश्चादानुपूर्वीसे द्वितीय अनन्तगुणहीन बन्धस्थान

१ बंधाणंतरसमए बंधट्ठाणस्सेव संतकम्मववएससिद्धीदो । तमेव संकमट्ठाणं पि, बंधावलियवदिक्कमाणंतरं तस्सेव संकमट्ठाणभावेण परिणयत्तादो । तदो पजवसाणबंधट्ठाणस्स संतकम्मट्ठाणत्ताणुवादमुहेण संकमट्ठाणभावविहाणमेदेण सुत्तेण कयं ति दट्ठव्वं । जयध०

२ कुदो; तेसिं सव्वेसिं बंधसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणत्तसिद्धीए पडिसेहाभावादो ।

३ तं जहा–पुव्वाणुपुव्वी णाम सुहुमहदसमुप्पत्तियसव्वजहण्णसंतकम्मट्ठाणप्पहुडि छवड्ढीए अवट्ठिदाणमणुभागबंधट्ठाणाणमादीदो परिवाडीए गणणा । ताए गणिज्जमाणे जं चरिममणंतगुणबंधट्ठाणं पज्जवसाणट्ठाणादो हेट्ठा रूवूणछट्ठाणमेत्तमोसरिदूणावट्ठिदं, तस्स हेट्ठा अणंतरमणंतगुणहीणबंधट्ठाणमपावेदूण एदम्मि अंतरे घादट्ठाणाणि समुप्पज्जंति । केत्तियमेत्ताणि ताणि त्ति वुत्ते असंखेज्जलोगमेत्ताणि त्ति तेसिं पमाणणिद्देसो कदो । जयध०

४ ताणि समणंतरणिद्दिट्ठघादट्ठाणाणि संतकम्मट्ठाणाणि; हदसमुप्पत्तियसंतकम्मभावेणावट्ठिदाणं तब्भावाविरोहादो । ताणि चेव संकमट्ठाणाणि, कुदो; तेसिमुप्पत्तिसमणंतरसमयप्पहुडि ओकड्डणादिवसेण संकमपज्जायपरिणामे पडिसेहाभावादो । जयध०

हीणबंधट्ठाणस्सुवरिल्ले अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि[1]। ५३३. एवमणंतगुणहीणबंधट्ठाणस्सुवरिल्ले अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि[2]। ५३४. एवमणंतगुणहीणबंधट्ठाणस्स उवरिल्ले अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि भवंति, णत्थि अण्णम्मि। ५३५. एवं जाणि बंधट्ठाणाणि ताणि णियमा संकमट्ठाणाणि[3]। ५३६. जाणि संकमट्ठाणाणि ताणि बंधट्ठाणाणि वा ण वा[4]। ५३७. तदो बंधट्ठाणाणि थोवाणि[5]। ५३८. संतकम्मट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि[6]। ५३९. जाणि च संतकम्मट्ठाणाणि तणि संकमट्ठाणाणि।

५४०. अप्पाबहुअं जहा सम्माइट्ठिगे बंधे तहा।

प्राप्त होता है। इस द्वितीय अनन्तगुणहीन बन्धस्थानके उपरिम अन्तरालमें फिर भी असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं ॥५२९-५३२॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार (तृतीय, चतुर्थादि) अनन्तगुणहीन बन्धस्थानोंके उपरिम अन्तरालोंमें सर्वत्र असंख्यातलोकप्रमाण घातस्थान होते हैं, अन्यमें नहीं। अर्थात् असंख्यातगुणहीनादि अन्य बन्धस्थानोंके उपरिम अन्तरालमें घातस्थान नहीं होते हैं। इस प्रकार जितने बन्धस्थान हैं, वे नियमसे संक्रमस्थान हैं। किन्तु जो संक्रमस्थान हैं, वे बन्धस्थान हैं भी, और नहीं भी हैं। इसलिए बन्धस्थान थोड़े हैं और सत्कर्मस्थान असंख्यातगुणित हैं। अनुभागके जितने सत्कर्मस्थान होते हैं, उतने ही संक्रमस्थान होते हैं ॥५३३-५३९॥

अब चूर्णिकार संक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व कहनेके लिए समर्पणसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे सम्यग्दृष्टिके बन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकारसे यहाँपर संक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥५४०॥

विशेषार्थ–चूर्णिकारने संक्रमस्थानोंके जिस अल्पबहुत्वका यहाँ पर संकेत किया है, वह स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें स्वस्थान-अल्पबहुत्व इस प्रकार है–मिथ्यात्वके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान सबसे कम हैं। हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इसी प्रकार सर्व कर्मोंके संक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। केवल सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके

१ कुदो; एगछट्ठाणेणूणाणुभागसंतकम्मियमादिं कादूण जाव पच्छाणुपुव्वीए विदियअट्ठंकट्ठाणे त्ति ताव एदेसु ट्ठाणेसु घादिज्जमाणेसु पयदंतरे असंखेज्जलोगमेत्तघादट्ठाणाणमुप्पत्तीए परिप्फुडमुवलंभादो। जयध०

२ णवरि सुहुमहदसमुप्पत्तियजहण्णट्ठाणादो उवरिमाणं संखेज्जाणमट्ठंकुव्वंकाणमंतरेसु हदसमुप्पत्तियसंकमट्ठाणाणमुप्पत्ती णत्थि त्ति वत्तव्वं। जयध०

३ किं कारणं ? पुव्वुत्तणाएण सव्वेसिं बंधट्ठाणाणं संकमट्ठाणत्तसिद्धीए विरोहाभावादो। जयध०

४ कुदो; बंधट्ठाणेहिंतो पुधभूदघादट्ठाणेसु वि संकमट्ठाणाणमणुवत्तिदंसणादो। जयध०

५ जदो एवं घादट्ठाणेसु बंधट्ठाणाणं संभवो णत्थि, तदो ताणि थोवाणि त्ति भणिदं होइ। जयध०

६ कुदो; बंधट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणघादट्ठाणेसु वि संतकम्मट्ठाणाणं संभवदंसणादो। जयध०

घातस्थान सबसे कम होते हैं और संक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं। अब परस्थान-अल्पबहुत्व कहते हैं–सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागसंक्रमस्थान सबसे कम हैं। सम्यग्मिथ्यात्व-से सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागसत्कर्मस्थान असंख्यातगुणित हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिसे हास्यके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हास्यके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रम-स्थानोंसे रतिके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। रतिके हतहतसमु-त्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे स्त्रीवेदके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतसमुत्प-त्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। स्त्रीवेदके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे जुगुप्साके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यात-गुणित हैं। हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। जुगुप्साके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे भयके बन्धसमुत्पत्तिक-संक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। हतहत-समुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। भयके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे शोक-प्रकृतिके तीनों प्रकारके संक्रमस्थान उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हैं। शोकप्रकृतिसे अरतिके तीनों संक्रमस्थान उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हैं। अरतिसे नपुंसकवेदके तीनों संक्रमस्थान उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हैं। नपुंसकवेदसे अप्रत्याख्यानमानके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। क्रोधके विशेष अधिक हैं। मायाके विशेष अधिक हैं। लोभके विशेष अधिक हैं। अप्रत्याख्यानलोभके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे अप्रत्याख्यान मानके हत-समुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इससे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हैं। अप्रत्याख्यानलोभके हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे अप्रत्याख्यानमानके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरो-त्तर असंख्यातगुणित हैं। अप्रत्याख्यानलोभके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे प्रत्याख्यान-मानके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। क्रोधके विशेष अधिक हैं। मायाके विशेष अधिक हैं। लोभके विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानलोभके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रम-स्थानोंसे प्रत्याख्यानमानके हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे प्रत्या-ख्यान क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानलोभके हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे प्रत्याख्यानमानके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यान-लोभके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे संज्वलनमानके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यात-गुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके विशेष-विशेष अधिक हैं। संज्वलनलोभके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे संज्वलनमानके हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं।

एवं 'संकामेदि कदिं वा' त्ति एदस्स पदस्स अत्थं समाणिय
अणुभागसंकमो समत्तो ।

इनसे क्रोध, माया और लोभके विशेष-विशेष अधिक हैं। संज्वलनलोभके हतसमुत्पत्तिक-संक्रमस्थानोंसे संज्वलनमानके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं। संज्वलनलोभके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रम-स्थानोंसे अनन्तानुबन्धीमानके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धी लोभके बन्धसमुत्प-त्तिकसंक्रमस्थानोंसे अनन्तानुबन्धीमानके हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धी लोभके हतहत-समुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे अनन्तानुबन्धीमानके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे क्रोध, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धी लोभके हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थानोंसे मिथ्यात्वके बन्धसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। इनसे हतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं और इनसे हतहतसमुत्पत्तिकसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। यहाँ सर्वत्र गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है और विशेषका प्रमाण असंख्यातलोकका प्रतिभाग है। जिन कर्मोंके अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणित हैं, उनके अनु-भागसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। किन्तु जिन कर्मोंके अनुभागसत्कर्म विशेष अधिक हैं, उनके संक्रमस्थान भी विशेष अधिक ही हैं।

इस प्रकार पाँचवीं मूलगाथाके 'संकामेदि कदिं वा' इस पदका अर्थ समाप्त
होनेके साथ अनुभागसंक्रमण अधिकार समाप्त हुआ।

पदेससंकमाहियारो

१. पदेससंकमो । २. तं जहा । ३. मूलपयडिपदेससंकमो णत्थि[1] । ४. उत्तरपयडिपदेससंकमो[2] । ५. अट्ठपदं[3] । ६. [4]जं पदेसग्गमण्णपयडिं णिज्जदे जत्तो पयडीदो तं पदेसग्गं णिज्जदि तिस्से पयडीए सो पदेससंकमो[5] । ७. जहा मिच्छत्तस्स पदेसग्गं सम्मत्ते संछुहदि तं पदेसग्गं मिच्छत्तस्स पदेससंकमो । ८. एवं सव्वत्थ । ९. एदेण अट्ठपदेण तत्थ पंचविहो संकमो । १०. तं जहा । ११. उव्वेल्लणसंकमो विज्झादसंकमो अधापवत्तसंकमो गुणसंकमो सव्वसंकमो च[6] ।

प्रदेश-संक्रमाधिकार

चूर्णिसू०—अब प्रदेशसंक्रमण कहते हैं । वह इस प्रकार है—मूलप्रकृतियोंके प्रदेशोंका संक्रमण नहीं होता है । उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशोंका संक्रमण होता है । उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशसंक्रमणके विषयमें यह अर्थपद है—जो प्रदेशाग्र जिस प्रकृतिसे अन्य प्रकृतिको ले जाया जाता है, वह उस प्रकृतिका प्रदेश-संक्रमण कहलाता है । जैसे—मिथ्यात्वका प्रदेशाग्र सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रान्त किया जाता है, वह सम्यक्त्वप्रकृतिके रूपसे परिणत प्रदेशाग्र मिथ्यात्वका प्रदेश-संक्रमण है । इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंका प्रदेश-संक्रमण जानना चाहिए । इस अर्थपदकी अपेक्षा वह प्रदेश-संक्रमण पाँच प्रकारका है । वे पाँच भेद ये हैं—उद्वेलनसंक्रमण, विध्यातसंक्रमण, अधःप्रवृत्तसंक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण ॥१-११॥

---

१ कुदो; सहावदो चेव मूलपयडीणमण्णोण्णविसयसंकंतीए असंभवादो । जयध०

२ कुदो; तासिं समयाविरोहेण परोप्परविसयसंकमस्स पडिसेहाभावादो । जयध०

३ किमट्ठपदं णाम ? जत्तो विवक्खियस्स पयत्थस्स परिच्छित्ती तमट्ठपदमिदि भण्णदे । जयध०

४ **जं दलियमन्नपगइं णिज्जइ सो संकमो पएसस्स ।**
उव्वलणो विज्झाओ अहापवत्तो गुणो सव्वो ॥ ६० ॥ कम्मप० पदेसस०

५ एदेण परपयडिसंकंतिलक्खणो चेव पदेससंकमो, ओकड्डुक्कड्डुणालक्खणो त्ति जाणाविदं; ट्ठिदि-अणुभागाणं च ओकड्डुक्कड्डुणाहि पदेसग्गस्स अण्णभावावत्तीए अणुवलंभादो । जयध०

६ तत्थुव्वेल्लणसंकमो णाम करणपरिणामेहि विणा रज्जुव्वेल्लणकमेण कम्मपदेसाणं परपयडिसरूवेण संछोहणा । × × × संपहि विज्झादसंकमस्स परूवणा कीरदे । तं जहा—वेदगसम्मत्तकालब्भंतरे सव्वत्थेव मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विज्झादसंकमो होइ जाव दंसणमोहक्खवयअधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति । उवसमसम्माइट्ठिम्मि गुणसंकमकालादो उवरि सव्वत्थ विज्झादसंकमो होइ । × × × बंधपयडीणं सगबंधसंभवविसए जो पदेससंकमो सो अधापवत्तसंकमो त्ति भण्णदे । × × × समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए जो पदेससंकमो सो गुणसंकमो त्ति भण्णदे । × × × सव्वस्सेव पदेसग्गस्स जो संकमो सो सव्वसंकमो त्ति भण्णदे । सो कत्थ होइ ? उव्वेल्लणाए विसंजोयणाए खवणाए च चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालिसंकमो होइ । जयध०

विशेषार्थ—संक्रमणके योग्य जो कर्मप्रदेश जिस-किसी विवक्षित प्रकृतिसे ले जाकर अन्य प्रकृतिके स्वभावसे परिणमित किये जाते हैं, उसे प्रदेशसंक्रमण कहते हैं। मूल प्रकृतियोंका प्रदेश-संक्रमण नहीं होता, अर्थात् ज्ञानावरणकर्मके प्रदेश कभी भी दर्शनावरणकर्मरूपसे परिणत नहीं होंगे। इससे यह स्वयंसिद्ध है कि उत्तरप्रकृतियोंमें ही प्रदेशसंक्रमण होता है। तथापि उनमें दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका, तथा चारों आयुकर्मोंका परस्परमें प्रदेश-संक्रमण नहीं होता। प्रदेशसंक्रमणके पाँच भेद हैं—उद्वेलनसंक्रमण, विध्यातसंक्रमण, अधःप्रवृत्तसंक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण[1]। अधःप्रवृत्त आदि तीन करण-परिणामोंके विना ही कर्मप्रकृतियोंके परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होना उद्वेलनसंक्रमण कहलाता है। उद्वेलन नाम उकेलनेका है। जैसे अच्छी तरहसे भँजी हुई रस्सी किसी निमित्तको पाकर उकलने लगती है और धीरे-धीरे बिलकुल उकल जाती है, उसी प्रकार कुछ कर्म-प्रकृतियाँ ऐसी हैं, जो कि बँधनेके बाद किसी निमित्तविशेषसे स्वयं ही उकलने लगती हैं और धीरे-धीरे वे एकदम उकल जाती हैं, अर्थात् उनके प्रदेश अन्य प्रकृतिरूपसे परिणत हो जाते हैं। उद्वेलन-प्रकृतियाँ १३ हैं, उनमेंसे मोहकर्मकी केवल दो ही प्रकृतियाँ ऐसी हैं जिनकी उद्वेलना होती है, अन्यकी नहीं होती। वे दो प्रकृतियाँ हैं—सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति। अनादिकालीन मिथ्यादृष्टिके इनकी सत्ता नहीं होती, किन्तु जब प्रथम वार जीव औपशमिकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है, तभी एक मिथ्यात्वके तीन टुकड़े हो जाते हैं और उस एक मिथ्यात्वके स्थान पर तीन प्रकृतियोंकी सत्ता हो जाती है। वह औपशमिकसम्यग्दृष्टि औपशमिकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे गिरता है और मिथ्यात्वी हो जाता है। उसके मिथ्यात्वगुणस्थानमें पहुँचनेपर अन्तर्मुहूर्त तक तो अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है और उसके पश्चात् उद्वेलनासंक्रमण प्रारंभ हो जाता है। उद्वेलनासंक्रमणका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इतने काल तक वह बराबर इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता रहता है। उसका क्रम यह है कि प्रथमोपशमसम्यक्त्वीके मिथ्यात्वमें पहुँचनेके एक अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी

१ अंतोमुहुत्तमद्धं पल्लासंखिज्जमेत्तठिइखंडं।
उक्किरइ पुणोवि तहा ऊणूणमसंखगुणहं जा ॥ ६२ ॥
तं दलियं सट्ठाणे समए समए असंखगुणियाए।
सेढीए परठाणे विसेसहाणीए संछुभइ ॥ ६३ ॥
जं दुचरिमस्स चरिमे अन्नं संकमइ तेण सव्वं पि।
अंगुलअसंखभागेण हीरए एस उव्वलणा ॥ ६४ ॥
जासि ण बंधो गुण-भवपच्चयो तासि होइ विज्झाओ।
अंगुलअसंखभागेणवहारो तेण सेसस्स ॥ ६८ ॥
गुणसंकमो अबज्झंतिगाण असुभाणऽपुव्वकरणाई।
बंधे अहापवत्तो परित्तिओ वा अबंधे वि ॥ ६९ ॥ कम्मप० पदेससंक०

पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिखंडको एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा उत्कीर्ण करता है। अर्थात् उद्वेलन करता है। उकेरने या उकेलनेका नाम उत्कीर्ण या उद्वेलन है। पुनः द्वितीय अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिखंडको उत्कीर्ण करता है। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थादि अन्तर्मुहूर्तोंके द्वारा तावत्प्रमाण स्थितिखंडोंको उत्कीर्ण करता जाता है। यह क्रम पल्योपमके असंख्यातवें भागकाल तक जारी रहता है। इतने कालमें वह उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना कर डालता है, अर्थात् उन्हें निःशेष कर देता है। ये एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें होनेवाले उत्तरोत्तर स्थितिखंड यद्यपि सभी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, तथापि उत्तरोत्तर विशेष हीन हैं। यह स्थितिसंक्रमणकी अपेक्षा वर्णन है। प्रदेशसंक्रमणकी अपेक्षा तो पूर्व-पूर्व स्थितिखंडसे उत्तरोत्तर स्थितिखंडोंके कर्म-प्रदेश विशेष-विशेष अधिक हैं। प्रदेशोंके उत्कीरणकी विधि यह है कि प्रथम समयमें अल्प-प्रदेशोंका उत्कीरण करता है। द्वितीय समयमें उससे असंख्यातगुणित प्रदेशोंका, तृतीय समय-में उससे भी असंख्यातगुणित प्रदेशोंका उत्कीरण करता है। इस प्रकार यह क्रम प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय तक रहता है। प्रदेशोंको उत्कीर्ण (उकेर) कर जहाँ निक्षेप करता है, उसका भी एक विशिष्ट क्रम है और वह यह कि कुछको तो स्वस्थानमें ही नीचे निक्षिप्त करता है और कुछको परस्थानमें निक्षिप्त करता है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि प्रथम स्थितिखंडमेंसे प्रथम समयमें जितने प्रदेश उकेरता है, उनमेंसे परस्थानमें अर्थात् परप्रकृतिमें तो अल्प प्रदेश निक्षेपण करता है। किन्तु स्वस्थानमें उनसे असंख्यातगुणित प्रदेशोंका अधः-निक्षेपण करता है। इससे द्वितीय समयमें स्वस्थानमें तो असंख्यातगुणित प्रदेशोंका निक्षेपण करता है, किन्तु परस्थानमें प्रथम समयके परस्थान-प्रक्षेपसे विशेष हीन प्रदेशोंका प्रक्षेपण करता है। यह क्रम प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय तक जारी रहता है। यह उद्वेलन-संक्रमणका क्रम उक्त दोनों प्रकृतियोंके उपान्त्य स्थितिखंड तक चलता है। अन्तिम स्थिति-खंडमें गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण दोनों होते हैं। इस प्रकार यह उद्वेलनासंक्रमणका स्वरूप कहा। अब विध्यातसंक्रमणका स्वरूप कहते हैं--जिन कर्मोंका गुणप्रत्यय या भव-प्रत्ययसे जहाँ पर बन्ध नहीं होता, वहाँ पर उन कर्मोंका जो प्रदेशसंक्रमण होता है; उसे विध्यातसंक्रमण कहते हैं। गुणस्थानोंके निमित्तसे होनेवाले बन्धको गुणप्रत्यय बन्ध कहते हैं। जैसे मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके निमित्तसे बन्ध होता है, आगे नहीं होता। अनन्तानुबन्धी आदि पच्चीस प्रकृतियोंका दूसरे गुणस्थान तक बन्ध होता है, आगे नहीं होता। इस प्रकार आगेके गुणस्थानोंमें भी जानना। इन बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियोंका उपरितन गुणस्थानोंमें बन्ध नहीं होता है, अतएव वहाँ पर उक्त प्रकृतियोंका जो प्रदेशसत्त्व है, उसका जो पर-प्रकृतियोंमें संक्रमण होता है, उसे आगममें विध्यात-संक्रमण कहा है। जिन प्रकृतियोंका मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें बन्ध संभव है, फिर भी जो भवप्रत्ययसे अर्थात् नारक, देवादि पर्यायविशेषके निमित्तसे वहाँपर नहीं बँधती हैं,

१२. उव्वेलणसंकमे पदेसग्गं थोवं[1] । १३. विज्झादसंकमे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं[2] । १४. अधापवत्तसंकमे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं[3] । १५. गुणसंकमे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं[4] । १६. सव्वसंकमे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं[5] ।

उनका उन गुणस्थानोंमें भवप्रत्ययसे अबन्ध कहलाता है। जैसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण आदि प्रकृतियोंका बन्ध सामान्यतः होता है, परन्तु नारकियोंके नारकभवके कारण उनका बन्ध नहीं होता है; क्योंकि वे मरकर एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न ही नहीं होते। यतः नारक-भवमें एकेन्द्रियादि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं है, अतः वहाँ पर जो उनके प्रदेशोंका संक्रमण पर-प्रकृतिमें होता रहता है, उसे भी विध्यात-संक्रमण कहते हैं। यह संक्रमण अधःप्रवृत्तसंक्रमणके निरुद्ध हो जाने पर ही होता है। सभी संसारी जीवोंके ध्रुवबंधिनी प्रकृतियोंके बन्ध होनेपर, तथा स्व-स्वभव-बन्धयोग्य परावर्तमान प्रकृतियोंके बन्ध या अबन्धकी दशामें जो स्वभावतः प्रकृतियोंके प्रदेशोंका पर-प्रकृतिरूप संक्रमण होता रहता है, उसे अधःप्रवृत्तसंक्रमण कहते हैं। जैसे जिस गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उन बध्यमान प्रकृतियोंमें चारित्रमोहनीयकी जितनी सत्त्व प्रकृतियाँ हैं, उनके प्रदेशोंका जो प्रदेशसंक्रमण होता है, वह अधःप्रवृत्तसंक्रमण है। अपूर्वकरणादि परिणामविशेषोंका निमित्त पाकर प्रतिसमय जो असंख्यातगुणश्रेणीरूपसे प्रदेशोंका संक्रमण होता है, उसे गुणसंक्रमण कहते हैं। यह गुणसंक्रमण अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर दर्शनमोहनीयके क्षपणकालमें, चारित्रमोहनीयके क्षपणकालमें, उपशमश्रेणीमें, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें, सम्यक्त्वकी उत्पत्ति-कालमें, तथा सम्यक्त्व-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके चरमस्थितिखंडके प्रदेशसंक्रमणके समय होता है। विवक्षित प्रकृतिके सभी कर्मप्रदेशोंका जो एक साथ पर-प्रकृतिमें संक्रमण होता है, उसे सर्वसंक्रमण कहते हैं। यह सर्वसंक्रमण उद्वेलन, विसंयोजन और क्षपणकालमें चरम-स्थितिखंडके चरमसमयवर्ती प्रदेशोंका ही होता है, अन्यका नहीं; ऐसा जानना चाहिए।

अब उपर्युक्त संक्रमणोंके प्रदेशगत अल्पबहुत्वको कहते हैं–

चूर्णिसू०–उद्वेलनसंक्रमणमें प्रदेशाग्र सबसे कम होते हैं। उद्वेलनसंक्रमणसे विध्यातसंक्रमणमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होते हैं। विध्यातसंक्रमणसे अधःप्रवृत्तसंक्रमणमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होते हैं। अधःप्रवृत्तसंक्रमणसे गुणसंक्रमणमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होते हैं। गुणसंक्रमणसे सर्वसंक्रमणमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होते हैं ॥१२-१६॥

१ कुदो; अंगुलासंखेज्जभागपडिभागियत्तादो। जयध०

२ कुदो; दोण्हमेदेसिमंगुलासंखेज्जभागपडिभागियत्ते समाणे वि पुव्विल्लभागहारादो विज्झादभागहारस्सासंखेज्जगुणहीणत्तब्भुवगमादो। जयध०

३ किं कारणं ? पलिदोवमासंखेज्जभागपडिभागियत्तादो। जयध०

४ किं कारणं ? पुव्विल्लभागहारादो एदस्स असंखेज्जगुणहीणभागहारपडिबद्धत्तादो। जयध०

५ किं कारणं ? एगरूवभागहारपडिबद्धत्तादो। जयध०

१७. एत्तो सामित्तं । १८. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंकमो कस्स ? १९. गुणिद-कम्मंसिओ[1] सत्तमादो पुढवीदो उव्वट्टिदो[2] । २०. दो तिण्णि भवग्गहणाणि पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तएसु उववण्णो[3] । २१. अंतोमुहुत्तेण मणुसेसु आगदो[4] । २२. सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेदुमाढत्तो । २३. जाधे मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते सव्वं संछुभमाणं संछुद्धं ताधे तस्स मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो[5] ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे प्रदेशसंक्रमणके स्वामित्वको कहते हैं ॥१७॥

शंका–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥१८॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक जीव सातवीं पृथ्वीसे निकला । पुनः पंचेन्द्रिय-तिर्यंच पर्याप्तकोंमें दो-तीन भवग्रहण करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे ही मनुष्योंमें आगया । मनुष्योंमें उत्पन्न होकर सर्वलघुकालसे दर्शनमोहनीयका क्षपण प्रारम्भ किया । जिस समय सर्वसंक्रम्यमाण मिथ्यात्वद्रव्यको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त करता है, उस समय उस जीवके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥१९-२३॥

विशेषार्थ–गुणितकर्मांशिक जीव किसे कहते हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–जो जीव पूर्वकोटी-पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम बादर-त्रसकालसे हीन सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण कर्मस्थिति तक बादर पृथ्वीकायिकजीवोंमें परिभ्रमण करता रहा ।

---

१ जो बायरतसकालेणूणं कम्मट्ठिइं तु पुढवीए ।
बायरे पज्जत्तापज्जत्तगदीहेयरद्धासु ॥७४॥
जोगकसाउक्कोसो बहुसो निच्चमवि आउबंधं च ।
जोगजहण्णेणुवरिल्लठिइ णिसेगं बहुं किच्चा ॥७५॥
बायरतसेसु तक्कालमेवमंते य सत्तमखिईए ।
सव्वलहुं पज्जत्तो जोगकसायाहिओ बहुसो ॥७६॥
जोगजवमज्झउवरिं मुहुत्तमच्छित्तु जीवियवसाणे ।
तिचरिम-दुचरिमसमए पूरित्तु कसायउक्कस्सं ॥७७॥
जोगुक्कस्सं चरिम-दुचरिमे समए य चरिमसमयम्मि ।
संपुण्णगुणियकम्मो पगयं तेणेह सामित्ते ॥७८॥ कम्मप० प्रदेशसंक्र०

२ किमट्ठमेसो तत्तो उव्वट्टाविदो ? ण, णेरइयचरिमसमए चेव पयदुक्कस्ससामित्तविहाणोवायाभावेण तहाकरणादो । कुदो तत्थ तदसंभवो चे मणुसगदीदो अण्णत्थ दंसणमोहक्खवणाए असंभवादो । ण च दंसणमोहक्खवणादो अण्णत्थ सव्वसंकमसरूवो मिच्छत्तुक्कस्सपदेससंकमो अत्थि, तम्हा गुणिदकम्मंसिओ सत्तमपुढवीदो उव्वट्टिदो त्ति सुसंबद्धमेदं । जयध०

३ कुदो; सत्तमपुढवीदो उवट्टिदस्स दो-तिण्णिपंचिंदिय तिरिक्खभवग्गहणेहि विणा तदणंतरमेव मणुसगदीए उप्पज्जणासंभवादो । जयध०

४ पंचिंदियतिरिक्खेसु तसट्ठिदिं समाणिय पुणो एइंदिएसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तकालेणेव मणुसगइमागदो त्ति भणिदं होइ । जयध०

५ (कुदो;) तत्थ गुणसेढिणिज्जरासहिदगुणसंकमदव्वेणूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तुक्कस्ससमयपबद्धाणमेक्कवारेणेव सम्मामिच्छत्तसरूवेण संकंतिदंसणादो । जयध०

२४. सम्मत्तस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो कस्स ? २५. गुणिदकम्मंसिएण सत्तमाए पुढवीए णेरइएण मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्ममंतोमुहुत्तेण होहिदि त्ति सम्मत्तमुप्पाइदं, सव्वुक्कस्सियाए पूरणाए सम्मत्तं पूरिदं । तदो उवसंतद्धाए पुण्णाए मिच्छत्तमुदीरयमाणस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो[1] । २६. सो पुण अधापवत्तसंकमो[2] ।

२७. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो कस्स ? २८. जेण मिच्छत्तस्स

वहाँपर उसने बहुतसे पर्याप्तक भव और थोड़े अपर्याप्तक भव धारण किये । उनमें पर्याप्तकाल दीर्घ और अपर्याप्त काल ह्रस्व ग्रहण किया । उस पृथ्वीकायिकमें रहते हुए वह बार-बार बहुतसे उत्कृष्ट योगस्थानोंको और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ । वहाँपर जब भी नवीन आयुका बन्ध किया, तब जघन्य योगस्थानमें वर्तमान होकर किया । वहाँपर उसने उपरितन स्थितियोंमें कर्म-प्रदेशोंका बहुत निक्षेपण किया । इस प्रकार बादर पृथ्वीकायिकोंमें परिभ्रमण करके निकला और बादर-त्रसकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर भी साधिक दो हजार सागर तक उपर्युक्त विधिसे परिभ्रमण करके अन्तमें सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । वहाँपर बार-बार उत्कृष्ट योगस्थान और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ । इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणितक्रमसे कर्मप्रदेशोंका संचय करनेवाले जीवको गुणितकर्मांशिक कहते हैं ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥२४॥

समाधान—सातवीं पृथिवीमें जो गुणितकर्मांशिक नारकी है और जिसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अन्तर्मुहूर्तसे होगा; उसने सम्यक्त्व उत्पन्न किया और सर्वोत्कृष्ट पूरणासे अर्थात् सर्वजघन्य गुणसंक्रमणभागहारसे और सर्वोत्कृष्ट गुणसंक्रमणपूरणकालसे सम्यक्त्वप्रकृतिको पूरित किया । तदनन्तर उपशमकालके पूर्ण होनेपर मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेवाले उस प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है । और यह अधःप्रवृत्तसंक्रमण है ॥२५-२६॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥२७॥

समाधान—जिसने मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रको सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त किया,

१ संछोभणाए दोण्हं मोहाणं वेयगस्स खणसेसे ।
उप्पाइय सम्मत्तं मिच्छत्तगए तमतमाए ॥८२॥
भिन्नमुहुत्ते सेसे तच्चरमावस्सगाणि किच्चेत्थ ।
संजोयणाविसंजोयगस्स संछोभणे एसिं ॥८३॥ कम्मप०, प्रदेशसंक०,

एतदुक्तं भवति–तहा पूरिदसम्मत्तो तेण दव्वेणाविणट्ठेणुवसमसम्मत्तकालमंतोमुहुत्तमणुपालेऊण तदवसाणे मिच्छत्तमुदीरयमाणो पढमसमयमिच्छाइट्ठी जादो । तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स पयदुक्कस्ससामित्ताहिसंबंधो त्ति । किं कारणमेत्थेवुक्कस्ससामित्तं जादमिदि चे सम्मत्तस्स तदवत्थाए मिच्छत्तगुणणिबंधणमधापवत्तसंकमपज्जाएण सव्वुक्कस्सएण परिणमणदंसणादो । जयध०

२ कुदो एवं चे बंधसंबंधाभावे वि तहावदो चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं मिच्छाइट्ठिम्मि अंतोमुहुत्तमेत्तकालमधापवत्तसंकमपवुत्तीए संभवब्भुवगमादो । जयध०

उक्कस्सपदेसग्गं सम्मामिच्छत्ते पक्खित्तं, तेणेव जाधे सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते संपक्खित्तं ताधे तस्स सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो[1]।

२९. अणंताणुबंधीणमुक्कस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ३०. सो चेव सत्तमाए पुढवीए णेरइओ गुणिदकम्मंसिओ अंतोमुहुत्तेणेव तेसिं चेव उक्कस्सपदेससंतकम्मं होहिदि त्ति उक्कस्सजोगेण उक्कस्ससंकिलेसेण च णीदो। तदो तेण रहस्सकाले सेसे सम्मत्तमुप्पाइयं। पुणो सो चेव सव्वलहुमणंताणुबंधीणं विसंजोएदुमाढत्तो। तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तेसिमुक्कस्सओ पदेससंकमो[2]।

३१. अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ३२. गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं मणुसगइमागदो अट्ठवस्सिओ खवणाए अब्भुट्ठिदो। तदो अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सओ पदेससंकमो।

उसने ही जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वप्रकृतिमें प्रक्षिप्त किया; उस समय उसके सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥२८॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥२९॥

समाधान–वही सातवीं पृथिवीका गुणितकर्मांशिक नारकी–जब कि अन्तर्मुहूर्तसे ही उसके उन ही अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होगा–उस समय उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट संक्लेशसे परिणत हुआ। तदनन्तर उसने लघुकाल शेष रहनेपर विशुद्धिको पूरित करके सम्यक्त्वको उत्पन्न किया। पुनः वही सर्वलघुकालसे अनन्तानुबन्धी कषायोंके विसंयोजनके लिए प्रवृत्त हुआ। उसके चरम स्थितिखंडके चरम समयमें संक्रमण करनेपर पर अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥३०॥

शंका–आठों मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥३१॥

समाधान–वही पूर्वोक्त गुणितकर्मांशिक नारकी सर्वलघुकालसे मनुष्यगतिमें आया और आठ वर्षका होकर चारित्रमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ। तदनन्तर आठों कषायोंके अन्तिम स्थितिखंडको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले उसके आठों मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥३२॥

---

१ तं जहा–जेण गुणिदकम्मंसिएण मणुसगइमागंतूण सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदेण जहाकममधापवत्तापुव्वकरणाणि वोलिय अणियट्टीकरणद्धाए संखेज्जदिभागसेसे मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसग्गं सगासंखेज्जभागभूदगुणसेढिणिज्जरासहिदगुणसंकमदव्वपरिहीणं सव्वसंकमेण सम्मामिच्छत्ते संपक्खित्ते तेणेव मिच्छत्तुक्कस्सपदेससंकमसामिएण जाधे सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते पक्खित्तं, ताधे तस्स सम्मामिच्छत्तविसयो उक्कस्सओ पदेससंकमो होइ त्ति एसो सुत्तत्थसंगहो। जयध०

२ एवं विसंजोएमाणस्स तस्स णेरइयस्स चरिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तेसिमणंताणुबंधीणमुक्कस्सओ पदेससंकमो होदि; तत्थ सव्वसंकमेणाणंताणुबंधिदव्वस्स कम्मट्ठिदिअब्भंतरसंगलिदस्स थोवूणस्स सेसकसायाणमुवरि संकमंतस्सुक्कस्सभावसिद्धीए विरोहाभावादो। जयध०

३३. एवं छण्णोकसायाणं । ३४. इत्थिवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ३५. गुणिदकम्मंसिओ असंखेज्जवस्साउएसु इत्थिवेदं पूरेदूण तदो कमेण पूरिदकम्मंसिओ खवणाए अब्भुट्टिदो तदो चरिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स इत्थिवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो[1] ।

३६. पुरिसवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ३७. गुणिदकम्मंसिओ इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदे पूरेदूण तदो सव्वलहुं खवणाए अब्भुट्टिदो, पुरिसवेदस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स पुरिसवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो ।

३८. णवुंसयवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ३९. गुणिदकम्मंसिओ ईसाणादो आगदो सव्वलहुं खवेदुमाढत्तो । तदो णवुंसयवेदस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुभमाणयस्स तस्स णवुंसयवेदस्स उकस्सओ पदेससंकमो[2] ।

४०. कोहसंजलणस्स उकस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ४१. जेण पुरिसवेदो

चूर्णिसू०–इसी प्रकार हास्यादि छह नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणके स्वामित्वको जानना चाहिए ॥३३॥

शंका–स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥३४॥

समाधान–कोई गुणितकर्मांशिक जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियोंमें उत्पन्न होकर और वहाँ पर स्त्रीवेदको पूरित करके पुनः क्रमसे पूरित-कर्मांशिक होकर क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । तदनन्तर स्त्रीवेदके चरम स्थितिखंडको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले उस जीवके स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥३५॥

शंका–पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥३६॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक जीव स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदको पूरित करके तदनन्तर सर्वलघुकालसे क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । वह जिस समय पुरुषवेदके अन्तिम स्थितिखंडको चरम समयमें संक्रमण करता है, उस समय उस जीवके पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥३७॥

शंका–नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥३८॥

समाधान–कोई गुणितकर्मांशिक जीव ईशानस्वर्गसे आया और सर्वलघुकालसे क्षपणाके लिए प्रवृत्त हुआ । तदनन्तर नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिखंडको चरम समयमें संक्रमण करनेवाले उसके नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥३९॥

शंका–संज्वलन क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥४०॥

समाधान–जिसने पुरुषवेदके उत्कृष्ट द्रव्यको संज्वलन क्रोधमें संक्रान्त किया,

---

१ इत्थीए भोगभूमिसु जीविय वासाणसंखियाणि तओ ।
हस्सठिई देवत्ता सव्वलहुं सव्वसंछोभे ॥८५॥

२ ईसाणागयपुरिसस्स इत्थियाए व अट्ठवासाए ।
मासपुहुत्तब्भहिए नपुंसगे सव्वसंकमणे ॥८४॥ कम्मप०, प्रदेशसंक०,

उक्कस्सओ संछुद्धो कोधे तेणेव जाधे माणे कोधो सव्वसंकमेण संछुहदि ताधे तस्स कोधस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो[1] । ४२. एदस्स चेव माणसंजलणस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो कायव्वो, णवरि जाधे माणसंजलणो मायासंजलणे संछुभइ ताधे । ४३. एदस्स चेव मायासंजलणस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो कायव्वो, णवरि जाधे मायासंजलणो लोभसंजलणे संछुब्भइ ताधे ।

४४. लोभसंजलणस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो कस्स ? ४५. गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं खवणाए अब्भुट्ठिदो अंतरं से काले कादूण लोहस्स असंकामगो होहिदि त्ति तस्स लोहस्स उक्कस्सओ पदेससंकमो ।

४६. एत्तो जहण्णयं । ४७. मिच्छत्तस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ४८. खविदकम्मंसिओ[2] एइंदियकम्मेण जहण्णएण मणुसेसु आगदो सव्वलहुं चेव सम्मत्तं

उसने ही जिस समय संज्वलनमानमें संज्वलनक्रोधको सर्वसंक्रमणसे संक्रमित किया, उस समय उसके संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥४१॥

चूर्णिसू०–इस ही जीवके संज्वलनमानका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि जिस समय यह संज्वलनमानको संज्वलनमायामें संक्रान्त करता है, उस समय संज्वलनमानका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है । इस ही जीवके संज्वलनमायाके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि वह जिस समय संज्वलनमायाको संज्वलनलोभमें संक्रमित करता है, उस समय उसके संज्वलनमायाका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥४२-४३॥

शंका–संज्वलनलोभका उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥४४॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक जीव सर्वलघुकालसे क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । अन्तरकरण करके तदनन्तर समयमें जब लोभका असंक्रामक होगा, उस समय उसके संज्वलनलोभका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ॥४५॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य प्रदेशसंक्रमणके स्वामित्वको कहते हैं ॥४६॥

शंका–मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥४७॥

समाधान–जो क्षपितकर्मांशिक जीव एकेन्द्रिय-प्रायोग्य जघन्य सत्कर्मके साथ मनुष्योंमें आया और सर्वलघुकालसे ही सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । (पुनः उसी और विभिन्न

१ वरिसवरित्थि पूरिय सम्मत्तमसंखवासियं लहियं ।
गंता मिच्छत्तमओ जहण्णदेवट्ठिई भोच्चा ॥८६॥
आगंतु लहुं पुरिसं संछुभमाणस्स पुरिसवेयस्स ।
तस्सेव सगे कोहस्स माणमायाणमवि कसिणो ॥८७॥ कम्मप० प्रदेशसंक्र०

२ पल्लासंखियभागोणकम्मठिइमच्छिओ निगोएसु ।
सुहुमेसुऽभवियजोग्गं जहण्णयं कट्टु निग्गम्म ॥९४॥
जोग्गेसुऽसंखवारे सम्मत्तं लभिय देसविरइं च ।
अट्ठक्खुत्तो विरइं संजोयणहा तइयवारे ॥९५॥

पडिवण्णो संजमं संजमासंजमं च बहुसो लभिदाउगो चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता वे छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि सम्मत्तमणुपालिदं । तदो मिच्छत्तं गदो अंतोमुहुत्तेण पुणो तेण सम्मत्तं लद्धं । पुणो सागरोवमपुधत्तं सम्मत्तमणुपालिदं । तदो दंसणमोहणीयक्खवणाए अब्भुट्ठिदो । तस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणस्स मिच्छत्तस्स जहण्णओ पदेससंकमो ।

भवोंमें) संयम और संयमासंयमको बहुत वार प्राप्त किया, चार वार कषायोंका उपशमन करके दो वार सातिरेक छयासठ सागरोपमकाल तक सम्यक्त्वका परिपालन किया । तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे ही पुनः उसने सम्यक्त्वको प्राप्त किया । पुनः सागरोपमपृथक्त्व तक सम्यक्त्वका परिपालन किया । तदनन्तर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । वह जीव जब अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें वर्तमान हो, तब उसके मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ॥४८॥

विशेषार्थ—यहाँ ऊपर जो क्षपितकर्मांशिक[१] कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि जो जीव पल्यके असंख्यातवें भागसे कम कर्मस्थितिकाल तक सूक्ष्मनिगोदियोंमें रहकर और अभव्योंके योग्य जघन्य कर्मस्थितिको करके बादर पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तमें ही मरण कर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ आठ वर्षकी अवस्थामें ही संयमको धारण कर और देशोन पूर्वकोटी वर्ष तक संयमको पालन कर, जीवनके अल्प अवशिष्ट रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । मिथ्यात्व और असंयममें सर्वलघु काल रहकर मरा और दश हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर्याप्तक हो

चउरुवसमित्तु मोहं लहुं खवंतो भवे खवियकम्मो ।
पाएण तहिं पगयं पडुच्च काओ वि सविसेसं ॥९६॥ कम्मप० प्रदेशसंक०

१ ततो सुहुमणिगोदेहिंतो उव्वट्टित्तु बादरपुढविकाइएसु उप्पण्णो अंतोमुहुत्तेण कालं गतो पुव्वकोडाउगेसु मणुस्सेसु उववण्णो सव्वलक्खणेहि जोणिजम्मण-णिक्खमणेण अट्ठवासिगो संजमं पडिवण्णो । तत्थ देसूणं पुव्वकोडी सजमं अणुपालित्ता थोवावसेसे जीविये मिच्छत्तं गतो सव्वत्थोवाए मिच्छत्तअसंजमद्धाए मिच्छत्तेण कालगतो समाणो दसवाससहस्सट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तदो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो दसवाससहस्साणि जीवित्तु ततो अंते मिच्छत्तेण कालगतो बादरपुढविकाइएसु उववण्णो । ततो अंतोमुहुत्तेण उव्वट्टित्ता मणुस्सेसु उववण्णो । पुणो सम्मत्तं वा देसविरतिं वा पडिवजति । एवं जत्थ जत्थ सम्मत्तं पडिवज्जति तत्थ तत्थ बहुप्पदेसाओ पगडीओ अप्पप्पदेसाओ पगरेति । एयाणिमित्तं सम्मत्तादि-पडिवज्जाविज्जइ । देव-मणुएसु सम्मत्तादि गेण्हंतो मुच्चंतो य जत्थ तसेसु उववज्जति तत्थ सम्मत्तादी णियमा पडिवज्जति । कयाइं देसविरतिं पडिवज्जति, कयाइं संजमं पि । कयाइं अणंताणुबंधी विसंजोएति त्ति, कयाइं उवसामगसेढिं पडिवज्जति । 'अट्ठक्खुत्तो विरतिं संजोयणहा तइयवारे'—एएसु असंखेज्जेसु भवग्गहणेसुं अट्ठवारे संजमं लभदि, अट्ठवारे अणंताणुबंधिणो विसंजोएत्ति । 'चउरुवसमित्तु मोहं' ति एदेसु भवग्गहणेसु चत्तारि वारा चरित्तमोहं उवसामेउ 'लहुं खवेंतो भवे खवियकम्मो' त्ति 'लहुं खवेंतो' -लहुखवगसेढिं पडिवज्जमाणो 'भवे खवियकम्मो' त्ति-एरिसेण विहिणा आगतो खवियकम्मो वुच्चति ।
कम्मपयडीचूर्णि, प्रदेशसं०

४९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ५०. एसो चेव जीवो मिच्छत्तं गदो । तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण अप्पप्पणो दुचरिम-ट्ठिदिखंडयं चरिमसमय-उव्वेल्लमाणयस्स तस्स जहण्णओ पदेससंकमो[1] ।

५१. अणंताणुबंधीणं जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ५२. एइंदियकम्मेण जह-ण्णएण तसेसु आगदो । संजमं संजमासंजमं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो एइंदिएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदो जाव उवसामय-समयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति । तदो पुणो तसेसु आगदो सव्वलहुं सम्मत्तं लद्धं

अन्तर्मुहूर्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दश हजार वर्ष तक सम्यक्त्वके साथ जीवित रहकर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मरा और बादर पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे अन्तर्मुहूर्तमें ही निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ औप उनमें सम्यक्त्व और संयमासंयमको धारण किया । इस प्रकार वह असंख्य वार देव और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग वार सम्यक्त्व और संयमासंयमको, आठ वार संयम और अनन्तानु-बन्धीकी विसंयोजनाको, तथा चार वार उपशमश्रेणीको प्राप्त हुआ । अन्तिम मनुष्य भवमें उत्पन्न होकर जो लघुकालसे ही मोह-क्षपणाके लिए उद्यत होता है, वह जीव क्षपितकर्मांशिक कहलाता है ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥४९॥

समाधान—यही उपयुक्त क्षपितकर्मांशिक जीव (दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए उद्यत होनेके पूर्व ही) मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । (वहाँपर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना प्रारम्भ कर और) पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उद्वेलना करके उक्त दोनों कर्मोंके अपने-अपने द्विचरम स्थितिखंडके चरम समयवर्ती द्रव्य-की जब वह उद्वेलना करता है, तब उसके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ॥५०॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ॥५१॥

समाधान—जो जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया । वहाँपर संयम और संयमासंयमको बहुत वार प्राप्त कर और चार वार कषायोंका उपशमन करके तदनन्तर एकेन्द्रियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागकाल तक रहा—जबतक कि उपशामक-काल-में बँधे हुए समयप्रबद्ध निर्गलित हुए । तदनन्तर वह पुनः त्रसोंमें आया, और सर्वलघु कालसे सम्यक्त्वको प्राप्त किया और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तानुबन्धीकी संयोजना करके पुनः उसने सम्यक्त्वको

---

१ हस्सगुणसंकमद्धाइ पूरियित्ता समीस-सम्मत्तं ।
चिरसंमत्ता मिच्छत्तगयस्सुव्वलणथोगे सिं ॥१००॥ कम्मप० प्रदेशसं०

अणंताणुबंधिणो च विसंजोइदा । पुणो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तं संजोएदूण पुणो तेण सम्मत्तं लद्धं । तदो सागरोवमवेछावट्ठीओ अणुपालिदं । तदो विसंजोएदुमाढत्तो । तस्स अधापवत्तकरणचरिमसमए अणंताणुबंधीणं जहण्णओ पदेससंकमो ।

५३. अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ५४. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो एइंदिएसु गदो । असंखेज्जाणि वस्साणि अच्छिदो जाव उवसामय-समयपबद्धा णिग्गलंति । तदो तसेसु आगदो संजमं सव्वलहुं लद्धो । पुणो कसायक्खवणाए उवट्ठिदो । तस्स अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णओ पदेससंकमो[1] । ५५. एवमरइ-सोगाणं । ५६. हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं पि एवं चेव, णवरि अपुव्वकरणस्सावलियपविट्ठस्स ।

५७. कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ५८. उवसामयस्स चरिमसमयपबद्धो जाधे उवसामिज्जमाणो उवसंतो ताधे तस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ

प्राप्त किया । तब उसने दो वार छ्यासठ सागरोपम कालतक सम्यक्त्वका परिपालन किया । तदनन्तर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना आरम्भ की । ऐसे जीवके अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ।।५२।।

शंका–आठों मध्यम कषायोंका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ।।५३।।

समाधान–जो जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया । वहाँपर संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त हुआ । चार वार कषायोंका उपशमन करके तदनन्तर एकेन्द्रियोंमें गया । वहाँपर जितने समयमें उपशामककालमें बँधेहुए समय-प्रबद्ध गलते हैं, उतनी असंख्यात वर्षों तक रहा । तदनन्तर त्रसोंमें आया और सर्वलघु-कालसे संयमको प्राप्त हुआ । पुनः कषायोंकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ । ऐसे जीवके अधः-प्रवृत्तकरणके चरम समयमें आठों मध्यम कषायोंका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ।।५४।।

चूर्णिसू०–इसी प्रकारसे अरति और शोकके जघन्य प्रदेशसंक्रमणका स्वामित्व जानना चाहिए । हास्य, रति, भय और जुगुप्साका जघन्य प्रदेशसंक्रमण-स्वामित्व भी इसी प्रकारसे जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि इन कर्मोंका जघन्य प्रदेशसंक्र-मण (अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें न होकर) अपूर्वकरणमें प्रवेश करनेवाले जीवके प्रथम आवलीके चरम समयमें होता है ।।५५-५६।।

शंका–संज्वलन क्रोधका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ।।५७।।

समाधान–उपशामकके संज्वलनक्रोधके चरम समयमें बँधा हुआ समयप्रबद्ध जब उपशमन किया जाता हुआ उपशान्त होता है, उस समय उसके संज्वलन क्रोधका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ।।५८।।

१ अट्ठकसायासाए असुभधुवबंधि अत्थिरतिगे य ।
सव्वलहुं खवणाए अहापवत्तस्स चरिमम्मि ॥१०२॥ कम्मप० प्रदेशसंक्र०

पदेससंकमो । ५९. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं[1] ।

६०. लोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ६१. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण कसाएसु किं पि णो उवसामेदि । दीहं संजमद्धमणुपालिदूण खवणाए अब्भुट्ठिदो तस्स अपुव्वकरणस्स आवलियपविट्ठस्स लोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो ।

६२. णवुंसयवेदस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? ६३. एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । तिपलिदोवमे अंतोमुहुत्ते सेसे सम्मत्तमुप्पाइदं । तदो पाए सम्मत्तेण अपडिवदिदेण सागरोवमछावट्ठिमणुपालिदेण संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धो, चत्तारि वारे कसाया उवसामिदा । तदो सम्मामिच्छत्तं गंतूण पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं घेत्तूण सागरोवमछावट्ठिमणुपालिदूण मणुसभवग्गहणे सव्वचिरं संजममणुपालिदूण खवणाए उवट्ठिदो । तस्स अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे संज्वलनमान, संज्वलनमाया और पुरुषवेदके जघन्यप्रदेश-संक्रमणका स्वामित्व जानना चाहिए ।।५९।।

शंका—संज्वलनलोभका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ।।६०।।

समाधान—जो जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया । वहाँपर संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त करके कषायोंमें कुछ भी उपशमन नहीं करता है, तथा वह दीर्घ काल तक संयमका परिपालन करके चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । ऐसे आवली-प्रविष्ट अपूर्वकरण-संयतके संज्वलनलोभका जघन्य प्रदेश-संक्रमण होता है ।।६१।।

शंका—नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशसंक्रमण किसके होता है ? ।।६२।।

समाधान—जो जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया और क्रमसे तीन पल्योपमवाले भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ । तीन पल्योपममें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर उसने सम्यक्त्वको उत्पन्न किया । तदनन्तर अप्रतिपतित सम्यक्त्वके साथ छ्यासठ सागरोपम कालतक सम्यक्त्वका परिपालन करते हुए संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त हुआ । चार वार कषायोंका उपशमन किया । तत्पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और पुनः अन्तर्मुहूर्तसे ही सम्यक्त्वको ग्रहण कर दूसरी वार छ्यासठ सागरोपम कालतक सम्यक्त्वका परिपालन कर अन्तिम मनुष्य भवके ग्रहण करनेपर सर्व-चिरकाल तक संयमका परिपालन करके जीवनके अल्प अवशेष रहनेपर क्षपणाके लिए उपस्थित हुआ । ऐसे जीवके अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशसंक्रमण होता है ।।६३।।

१ पुरिसे संजलणतिगे य घोलमाणेण चरमबद्धस्स ।
सग-अंतिमे असाएण समा अरई य सोगो य ॥१०३॥ कम्मप० प्रदेशसंक०

णवुंसयवेदस्स जहण्णओ पदेससंकमो । ६४. एवं चेव इत्थिवेदस्स वि, णवरि तिपलिदोवमिएसु ण अच्छिदाउगो ।

६५. एयजीवेण कालो । ६६. सव्वेसिं कम्माणं जहण्णुक्कस्सपदेससंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ६७. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[1] ।

६८. अंतरं । ६९. सव्वेसिं कम्माणमुक्कस्सपदेससंकामयस्स णत्थि अंतरं[2] । ७०. अथवा सम्मत्ताणंताणुबंधीणमुक्कस्सपदेससंकामयस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ७१. जहण्णेण असंखेज्जा लोगा[3] । ७२. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[4] ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार ही स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशसंक्रमणके स्वामित्वको जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी ही है कि तीन पल्योपमकी आयुवाले जीवोंमें वह नहीं उत्पन्न होता है ॥६४॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा प्रदेशसंक्रमणके कालको कहते हैं ॥६५॥

शंका–सर्व कर्मोंके जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणका कितना काल है ? ॥६६॥

समाधान–सर्व कर्मोंके जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेश संक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥६७॥

चूर्णिसू०–अब प्रदेशसंक्रमणके अन्तरको कहते हैं–सर्व कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणका अन्तर नहीं है । यह एक उपदेशकी अपेक्षा कथन है ॥६८-६९॥

शंका–अथवा अन्य उपदेशकी अपेक्षा सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी कषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥७०॥

समाधान–सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी कषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणका जघन्यकाल असंख्यात लोक-प्रमित और उत्कृष्टकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है ॥७१-७२॥

१ कुदो; सव्वेसिं कम्माणं जहण्णुक्कस्सपदेससंकमाणमेयसमयादो उवरिमवट्ठाणासंभवादो । जयध०

२ होउ णाम खवगसंबंधेण लद्धुक्कस्सभावाणं मिच्छत्तादिकम्माणमंतराभावो, ण वुण सम्मत्ताणंताणुबंधीणमंतराभावो जुत्तो; तेसिमखवयविसयत्तेण लद्धुक्कस्सभावाणमंतरसंभवे विप्पडिसेहाभावादो ? ण एस दोसो; गुणिदकम्मंसियलक्खणेणेयवारं परिणदस्स पुणो जहण्णदो वि अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालब्भंतरे तब्भावपरिणामो णत्थि त्ति एवंविहाहिप्पाएणेदस्स सुत्तस्स पयट्टत्तादो । एसो ताव एक्को उवएसो चुण्णिसुत्तयारेण सिस्साणं परूविदो । अण्णेणोवएसेण पुण सम्मत्ताणंताणुबंधीणमुक्कस्सपदेससंकामयंतरसंभवो अत्थि त्ति तप्पमाणावहारणट्ठं उत्तरसुत्तं भणइ । जयध०

३ गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण णेरइयचरिमसमयादो हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोसरिय पढमसम्मत्तमुप्पाइय जहावुत्तपदेसे सम्मत्ताणंताणुबंधीणमुक्कस्सपदेससंकमस्सादिं कादूण अंतरिय अणुक्कस्सपरिणामेसु तेत्तियमेत्तकालमच्छिऊण पुणो सव्वलहुं गुणिदकिरियासंबंधमुवसामिय पुव्वुत्तेणेव कमेण पडिवण्णतब्भावम्मि तदुवलंभादो । जयध०

४ पुव्वुत्तविहाणेणेवादिं करिय अंतरिदस्स देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परिभमिय तदवसाणे गुणिदकम्मंसिओ होदूण सम्मत्तमुप्पाइय पुव्वं व पडिवण्णतब्भावम्मि तदुवलद्धीदो । जयध०

७३. एत्तो जहण्णयं । ७४. कोहसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णपदेससंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ७५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] । ७६. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[2] । ७७. सेसाणं कम्माणं जाणिऊण णेदव्वं ।

७८. सण्णियासो । ७९. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंकामओ सम्मत्ताणंताणुबंधीणमसंकामओ[3] । ८०. सम्मामिच्छत्तस्स णियमा अणुक्कस्सं पदेसं संकामेदि[4] । ८१. उक्कस्सादो अणुक्कस्समसंखेज्जगुणहीणं[5] । ८२. सेसाणं कम्माणं संकामओ णियमा अणुक्कस्सं संकामेदि[6] । ८३. उक्कस्सादो अणुक्कस्सं णियमा असंखेज्जगुणहीणं[7] । ८४.

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य प्रदेशसंक्रमणके अन्तरको कहते हैं ॥७३॥

शंका–संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया और पुरुषवेदके जघन्य प्रदेश-संक्रमणका अन्तरकाल कितना है ? ॥७४॥

समाधान–उक्त कर्मोंके जघन्य प्रदेशसंक्रमणका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥७५-७६॥

चूर्णिसू०–शेष कर्मोंका जघन्य अन्तर जानकर प्ररूपण करना चाहिए ॥७७॥

चूर्णिसू०–अब प्रदेशसंक्रमणके सन्निकर्षको कहते हैं–मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रमणका करनेवाला जीव सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी कषायोंके प्रदेशसंक्रमणको नहीं करता है । सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका नियमसे संक्रमण करता है । उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणसे अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित हीन होता है । मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंका संक्रामक शेष कर्मोंके प्रदेशोंका संक्रामक होता है, किन्तु नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका ही संक्रमण करता है । उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणसे अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण नियमसे असं-

१ तं जहा–चिराणसंतकम्ममेदेसिमुवसामिय घोलमाणजहण्णजोगेण बद्धचरिमसमयणवकबंधसंकामयचरिमसमयम्मि जहण्णसंकमस्सादिं कादूण विदियादिसमएसु अंतरिय उवरिं चढिय ओइण्णो संतो पुणो वि सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण विसुज्झिदूण सेढिसमारोहणं करिय पुव्वुत्तपदेसे तेणेव विहिणा जहण्णपदेससंकामओ जादो । लद्धमंतरं । जयध०

२ पुव्वुत्तकमेणेवादिं करिय अंतरिदो संतो देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परियट्टिदूण पुणो अंतोमुहुत्तसेसे संसारे उवसमसेढिमारुहिय जहण्णपदेससंकामओ जादो । लद्धमुक्कस्संतरं । जयध०

३ कुदो; सम्माइट्ठिम्मि सम्मत्तस्स संकामाभावादो, अणंताणुबंधीणं च पुव्वमेव विसंजोइयत्तादो ।

४ कुदो; मिच्छत्तुक्कस्सपदेससंकमं पडिच्छिऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंकमुप्पत्तिदंसणादो । जयध०

५ कुदो; सम्मामिच्छत्तुक्कस्सपदेससंकमादो सव्वसंकमसरूवादो एत्थतणसंकमस्स गुणसंकमसरूवस्स असंखेज्जगुणहीणत्ते संदेहाभावादो । जयध०

६ कुदो; सव्वेसिमप्पप्पणो गुणिदकम्मंसियक्खवयचरिमफालिसंकमादो लद्धुक्कस्सभावाणमेत्थाणुक्कस्सभावसिद्धीए विसंवादाभावादो । जयध०

७ किं कारणं ? अप्पप्पणो खवयचरिमफालिसंकमादो एत्थतणसंकमस्स असंखेज्जगुणहीणत्तं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो । जयध०

णवरि लोभसंजलणं विसेसहीणं संकामेदि[1] । ८५. सेसाणं कम्माणं साहेयव्वं । ८६. सव्वेसिं कम्माणं जहण्णसण्णियासो विहासेयव्वो ।

८७. अप्पाबहुअं । ८८. सव्वत्थोवो सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंकमो[2] । ८९. अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सओ पदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3] । ९०. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[4] । ९१. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९२. लोभे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९३. पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९४. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९५. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९६. लोभे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९७. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९८. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ९९. मायाए उक्कस्स-

ख्यातगुणित हीन होता है । विशेषता केवल यह है कि संज्वलनलोभका विशेष हीन संक्रमण करता है । शेष कर्मोके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमणसम्बन्धी सन्निकर्षको इसी प्रकारसे सिद्ध करना चाहिए ॥७८-८५॥

चूर्णिसू०—सर्व कर्मोंके जघन्य प्रदेशसंक्रमण-सम्बन्धी सन्निकर्षकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥८६॥

चूर्णिसू०—अब प्रदेशसंक्रमणके अल्पबहुत्वको कहते हैं—सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिसे अप्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यान क्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानलोभसे अनन्तानुबन्धीमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धीमानसे अनन्तानुबन्धीक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धीक्रोधसे अनन्तानुबन्धीमायामें उत्कृष्ट

१ कुदो; दंसणमोहक्खवणाविसए लोहसंजलणस्स अधापवत्तसंकमादो चरित्तमोहक्खवयसामित्तविसईकयअधापवत्तसंकमस्स गुणसेढिणिज्जरापरिहीणगुणसंकमदव्वस्सासंखेज्जदिभागमेत्तेण विसेसाहियत्तदंसणादो । जयध०

२ कुदो; सम्मत्तदव्वे अधापवत्तभागहारेण खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो । जयध०

३ कुदो; मिच्छत्तसयलदव्वादो आवलियाए असंखेज्जभागपडिभागेण परिहीणदव्वं घेत्तूण सव्वसंकमेणेदस्सुक्कस्ससामित्तविहाणादो । एत्थ गुणगारो गुणसंकमभागहारपदुप्पण्णअधापवत्तभागहारमेत्तो । जयध०

४ कुदो; दोण्हमेदेसिं सामित्तभेदाभावे वि पयडिविसेसमेत्तेण तत्तो एदस्साहियभावोवलद्धीदो । जयध०

पदेससंकमो विसेसाहिओ । १००. लोभे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

१०१. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[1] । १०२. सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[2] । १०३. लोहसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो अणंतगुणो[3] । १०४. हस्से उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4] । १०५. रदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १०६. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंकमो संखेज्जगुणो[5] । १०७. सोगे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[6] । १०८. अरदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १०९. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[7] । ११०. दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[8] । १११. भए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । ११२. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[9] । ११३. कोहसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो संखेज्जगुणो[10] ।

प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धीमायासे अनन्तानुबन्धीलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥८७-१००॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धीलोभसे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । सम्यग्मिथ्यात्वसे संज्वलनलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है । संज्वलनलोभसे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । हास्यसे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । रतिसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । स्त्रीवेदसे शोकमें उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । शोकसे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अरतिसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । जुगुप्सासे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । भयसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । पुरुषवेदसे संज्वलनक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता

१ केत्तियमेत्तेण ? आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेयखंडमेत्तेण । जयध०

२ मिच्छत्तं संकामिय पुणो जेण कालेण सम्मामिच्छत्तसव्वसंकमेण संकामेदि तक्कालब्भंतरे णट्ठासेसदव्वं सम्मामिच्छत्तमूलदव्वादो असंखेज्जगुणहीणं ति कट्टु तत्थ तम्मि सोहिदे सुद्धसेसमेत्तेण विसेसाहियत्तमिदि वुत्तं होइ । जयध० ३ कुदो; देसघादित्तादो । जयध०

४ कुदो; दोण्हं देसघादित्ताविसेसे वि अधापवत्तसव्वसंकमविसयसामित्तभेदावलंबणादो तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

५ कुदो; हस्स-रइबंधगद्धादो संखेज्जगुणकुरविस्थिवेदबंधगद्धाए संचिदत्तादो । जयध०

६ एत्थ वि अद्धाविसेसमस्सिऊण संखेज्जभागाहियत्तं दट्ठव्वं; कुरविस्थिवेदबंधगद्धादो णेरइयाणमरदिसोगबंधगद्धाए संखेज्जभागब्भहियत्तदंसणादो । जयध०

७ कुदो; अद्धाविसेसमस्सिऊण हस्स-रइबंधगद्धाए संखेज्जभागसंचयस्स अहियत्तुवलंभादो । जय०

८ कुदो; धुवबंधित्तादो । जयध०

९ कुदो: दोण्हं धुवबंधित्तेण समाणविसयसामित्तपडिलंभे वि पयडिविसेसमस्सिऊण पुव्विल्लादो एदस्स विसेसाहियत्तसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

१० को गुणगारो ? एगरूवचउब्भागाहियाणि छरूवाणि । कुदो; कसायचउब्भागेण सह सयलणोकसायभागस्स कोहसंजलणायारेण परिणदस्सुवलंभादो । जयध०

११४. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ[1] । ११५. मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

११६. णिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंकमो[2] । ११७. सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3] । ११८. अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4] । ११९. कोधे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२०. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२१. लोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२२. पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२३. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२४. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२५. लोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १२६. मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[5] । १२७. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[6] । १२८. कोधे उक्कस्सपदेससंकमो

है । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलन मानसे संज्वलनमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥१०१-११५॥

चूर्णिसू०-गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रमण वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । सम्यग्मिथ्यात्वसे अप्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥११६-१२५॥

चूर्णिसू०-प्रत्याख्यानलोभसे मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ।

१ केत्तियमेत्तेण ? पंचमभागमेत्तेण । जयध०

२ कुदो; मिच्छत्तादो गुणसंकमेण पडिच्छिददव्वमधापवत्तभागहारेण खंडिदेयखंडपमाणत्तादो । जयध०

३ कुदो; दोण्हमेयविसयसामित्तपडिलंभे वि सामित्तमूलदव्वादो सम्मामिच्छत्तमूलदव्वस्सासंखेज्ज-गुणत्तमस्सिऊण तहाभावसिद्धोदो । जयध०

४ दोण्हमधापवत्तसंकमविसयत्ते वि दव्वगयविसेसोवलंभादो । जयध०

५ किं कारणं ? अधापवत्तसंकमादो पुव्विल्लादो गुणसंकमदव्वस्सेदस्सासंखेज्जगुणत्ते विसंवादाणुवलंभादो । जयध०

६ केण कारणेण ? सव्वसंकमेण पडिलद्धुक्कस्सभावत्तादो । जयध०

विसेसाहिओ । १२९. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३०. लोभे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

१३१. हस्से उक्कस्सपदेससंकमो अणंतगुणो[1] । १३२. रदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३३. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंकमो संखेज्जगुणो । १३४. सोगे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३५. अरदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३६. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३७. दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३८. भए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १३९. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४०. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४१. कोहसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४२. मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४३. लोहसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४४. एवं सेसासु गदीसु णेदव्वं ।

१४५. तदो एइंदिएसु सव्वत्थोवो सम्मत्त उक्कस्सपदेससंकमो । १४६. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[2] । १४७. अपच्चक्खाणमाणे

अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । ॥१२६-१३०॥

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी लोभसे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है । हास्यसे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । रतिसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । स्त्रीवेदसे शोकमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । शोकसे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अरतिसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । जुगुप्सासे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । भयसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । पुरुषवेदसे संज्वलनमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । इसी प्रकार शेष गतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण-सम्बन्धी अल्पबहुतत्व जानना चाहिए ॥१३१-१४४॥

चूर्णिसू०—इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण सबसे कम होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण

१ कुदो; सव्वघादिपदेसग्गं पेक्खिऊण देसघादिपदेसग्गस्साणंतगुणत्ते संदेहाभावादो । जयध०

२ कुदो; दोण्हमेदेसिं अधापवत्तेण सामित्तपडिलंभाविसेसेवि दव्वविसेसमस्सिऊण तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणब्भहियकमेणावट्ठाणदंसणादो । जयध०

उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो । १४८. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १४९. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५०. लोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५१. पञ्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५२. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५३. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५४. लोभे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५५. अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५६. कोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५७. मायाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १५८. लोहे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

१५९. हस्से उक्कस्सपदेससंकमो अणंतगुणो । १६०. रदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६१. इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंकमो संखेज्जगुणो । १६२. सोगे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६३. अरदीए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६४. णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६५. दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६६. भए उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६७. पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १६८. माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

असंख्यातगुणित होता है । सम्यग्मिथ्यात्वसे अप्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानलोभसे अनन्तानुबन्धी मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥१४५-१५८॥

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धी लोभसे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है । हास्यसे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । रतिसे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । स्त्रीवेदसे शोकमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । शोकसे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अरतिसे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । जुगुप्सासे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । भयसे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । पुरुषवेदसे संज्वलन-

१६९. कोहसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ । १७०. मायासंजलणे उक्कस्स-पदेससंकमो विसेसाहिओ । १७१. लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

१७२. एत्तो जहण्णपदेससंकमदंडओ । १७३. सव्वत्थोवो सम्मत्ते जहण्ण-पदेससंकमो । १७४. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[1] । १७५. अणं-ताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[2] । १७६. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १७७. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १७८. लोहे जहण्ण-पदेससंकमो विसेसाहिओ । १७९. मिच्छत्ते जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3] । १८०. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4] । १८१. कोहे जहण्णपदेससंकमो

मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥१५९-१७१॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य प्रदेशसंक्रम-सम्बन्धी अल्पबहुत्व-दण्डक कहते हैं—सम्यक्त्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण सबसे कम होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अनन्तानुबन्धी लोभसे मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेश-संक्रमण असंख्यातगुणित होता है । मिथ्यात्वसे अप्रत्याख्यानमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण

१ कुदो; दोण्हमेदेसिं सामित्तभेदाभावे वि सम्मत्तमूलदव्वादो सम्मामिच्छत्तमूलदव्वस्सासंखेजगुण-कमेणावट्ठाणदंसणादो । सम्मत्ते उव्वेल्लिदे जो सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालो तस्स एयगुणहाणीए असंखेज-विभागपमाणत्तब्भुवगमादो च । जयध०

२ किं कारणं; विसंजोयणापुव्वसंजोगणवकबंधसमयपबद्धाणमंतोमुहुत्तमेत्ताणमुवरि सेसकसायाणमधा-पवत्तसंकमसुकडुणा पडिभागेणपडिच्छिय सम्मत्तपडिलंभेण, वेछावट्ठिसागरोवमाणि परिहिंडिय तप्पजवसाणे विसंजोयणाए उवट्ठिदस्स अधापवत्तकरणचरिमसमए विज्झादसंकमेणेदस्स जहण्णसामित्तं जादं । सम्मा-मिच्छत्तस्स पुण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सागरोवमपुधत्तं च परिभमिय दीहुव्वेल्लणकालेण उव्वेल्लेमाणस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए उव्वेल्लणभागहारेण जहण्णं जादं । तदो उव्वेल्लणभागहारमाहप्पेण ण्णोण्ण-ब्भत्थरासिमाहप्पेण च सम्मामिच्छत्तदव्वादो एदमसंखेजगुणं जादं । जयध०

३ किं कारणं; अणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगे णवकबंधस्सुवरि अधापवत्तभागहारेण पडि-च्छिदसेसकसायदव्वस्सुकडुणापडिभागेण वेछावट्ठिसागरोवमगालणाए जहण्णभावो संजादो । तेण कारणे-णाणंताणुबंधिलोभजहण्णपदेससंकमादो मिच्छत्तजहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो । जयध०

४ कुदो; वेछावट्ठिसागरोवमपरिब्भमणेण विणा लद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

विसेसाहिओ । १८२. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १८३. लोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १८४. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १८५. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १८६. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १८७. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

१८८. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंकमो अणंतगुणो[1] । १८९. इत्थिवेदे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[2] । १९०. सोगे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3] । १९१. अरदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । १९२. कोहसंजलणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4] । १९३. माणसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ[5] । १९४. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ[6] । १९५. मायासंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ[7] ।

विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥१७२-१८७॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानलोभसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है । नपुंसकवेदसे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । स्त्रीवेदसे शोकमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । शोकसे अरतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अरतिसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमानसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । पुरुषवेदसे संज्वलनमायामें जघन्य

१ जइ वि तिपलिदोवमाहियवेछावट्ठिसागरोवमाणि परिगालिय णवुंसयवेदस्स जहण्णसामित्तं जादं, तो वि पुव्विल्लदव्वादो अणंतगुणमेव णवुंसयवेददव्वं होइ; देसघाइपडिभागियत्तादो । जयध०

२ कुदो; णवुंसयवेदजहण्णसामियस्सेविथिवेदजहण्णसामियस्स तिसु पलिदोवमेसु परिब्भमणाभावादो । जयध०

३ कुदो; इत्थिवेदजहण्णसामियस्सेव पयदजहण्णसामियस्स वेछावट्ठिसागरोवमाणं परिब्भमणादो ।

४ कुदो; विज्झादभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तेइंदियसमयपबद्धेहिंतो अधापवत्तभागहारोवट्टिदपंचिंदियसमयपबद्धस्सासंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । जयध०

५ किं कारणं ? कोहसंजलणदव्वमेयसमयपबद्धस्स चउब्भागमेत्तं, माणसंजलणदव्वं पुण तत्तियभागमेत्तं, तेण विसेसाहियं जादं । जयध०

६ कुदो; समयपबद्धद्धभागपमाणत्तादो । जयध०

७ कुदो; दोण्हं पि समयपबद्धपमाणत्ताविसेसे वि णोकसायभागादो कसायभागस्स पयडिविसेसमेत्तेणाहियत्तदंसणादो । जयध०

१९६. हस्से जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[1]। १९७. रदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। १९८. दुगंछाए जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो[2]। १९९. भए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २००. लोभसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ[3]।

२०१. णिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्ते जहण्णपदेससंकमो। २०२. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो। २०३. अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो। २०४. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २०५. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २०६. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २०७. मिच्छत्ते जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4]। २०८. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[5]। २०९. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २१०. मायाए

प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। संज्वलनमायासे हास्यमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। हास्यसे रतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। रतिसे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है। जुगुप्सासे भयमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। भयसे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥१८८-२००॥

चूर्णिसू०—गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण सबसे कम होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी लोभसे मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। मिथ्यात्वसे अप्रत्याख्यानमानमें जघन्यप्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानमायासे

१ कुदो; अधापवत्तभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तेइंदियसमयपबद्धेसु असंखेज्जाणं पंचिंदियसमयपबद्धाणमुवलंभादो। जयध०

२ कुदो; हस्स-रदिपडिवक्खबंधकाले वि दुगुंछाए बंधसंभवादो। जयध०

३ केत्तियमेत्तेण ? चउब्भागमेत्तेण ? कुदो; णोकसायपंचभागमेत्तेण भयदव्वेण कसायचउब्भागमेत्तलोहसंजलणजहण्णसंकमदव्वे ओवट्टिदे सचउब्भागेगरूवागमदंसणादो। जयध०

४ दोण्हमेदेसिं जइ वि थोवूण तेत्तीससागरोवममेत्तगोवुच्छगालणेण सम्माइट्ठिचरिमसमयम्मि विज्झादसंकमेण जहण्णसामित्तपविसिट्ठं तो वि पुव्विल्लादो एदस्सासंखेज्जगुणत्तमविरुद्धं; अधापवत्तभागहारसंभवासंभवकयविसेसोववत्तीदो। जयध०

५ किं कारणं ? खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण णेरइएसुप्पण्णपढमसमए अधापवत्तसंकमेणेदस्स सामित्तावलंबणादो। जयध०

जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २११. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २१२. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २१३. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २१४. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २१५. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ।

२१६. इत्थिवेदे जहण्णपदेससंकमो अणंतगुणो[1]। २१७. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो[2]। २१८. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3]। २१९. हस्से जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो[4]। २२०. रदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२१. सोगे जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो। २२२. अरदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२३. दुगुंछाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२४. भये जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२५. माणसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२६. कोहसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२७. मायासंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २२८. लोहसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ।

अप्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥२०१-२१५॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानलोभसे स्त्रीवेदमें जघन्यप्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है। स्त्रीवेदसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है। नपुंसकवेदसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। पुरुषवेदसे हास्यमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है। हास्यसे रतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। रतिसे शोकमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है। शोकसे अरतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अरतिसे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। जुगुप्सासे भयमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। भयसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥२१६-२२८॥

---

१ जइ वि सम्मत्तगुणपाहम्मेणित्थीवेदस्स बंधवोच्छेदं कादूण तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि गालिय विज्झादसंकमेण जहण्णसामित्तं जादं, तो वि देसघादिमाहप्पेणाणंतगुणत्तमेदस्स पुव्विल्लादो ण विरुज्झदे।

२ कुदो; बंधगद्धावसेणेदस्स तत्तो संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावादो। जयध०

३ कुदो; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण णेरइएसुप्पण्णस्स पडिवक्खबंधगद्धामेत्तगलणेण पुरिसवेदस्स अधापवत्तसंकमणिबंधणजहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

४ कुदो; बंधगद्धापडिबद्धगुणगारस्स तहाभावोवलंभादो। जयध०

२२९. जहा णिरयगईए, तहा तिरिक्खगईए। २३०. देवगईए णाणत्तं; णवुंसयवेदादो इत्थिवेदो असंखेज्जगुणो[1]।

२३१. एइंदिएसु सव्वत्थोवो सम्मत्ते जहण्णपदेससंकमो। २३२. सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो। २३३. अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[2]। २३४. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २३५. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २३६. लोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २३७. अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[3]। २३८. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २३९. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २४०. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २४१. पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २४२. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ। २४३. मायाए जहण्णपदेससंकमो

चूर्णिसू०—जिस प्रकार नरकगतिमें यह जघन्य प्रदेशसंक्रमणका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकारसे तिर्यंचगतिमें भी जानना चाहिए। (मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशसंक्रमण-सम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है।) देवगतिमें कुछ विभिन्नता है; वहाँपर नपुंसकवेद-से स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है ॥२२९-२३०॥

चूर्णिसू०—इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण सबसे कम होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अनन्तानुबन्धी लोभसे अप्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण असंख्यातगुणित होता है। अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें जघन्यप्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है। प्रत्याख्यान-

१ (कुदो;) णिरयगईए तिरिक्खगईए च इत्थिवेदादो णवुंसयवेदस्स असंखेज्जगुणत्तोवलंभादो।

२ कुदो; अधापवत्तभागहारवग्गेण खंडिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तजहण्णसमयपबद्धपमाणत्तादो। तं पि कुदो? विसंजोयणापुव्वसंजोगेण सेसकसाएहिंतो अधापवत्तसंकमणेण पडिच्छिदखविदकम्मंसियदव्वेण सह समयाविरोहेण सव्वलहुमेइंदिएसुप्पण्णस्स पढमसमए अधापवत्तसंकमेण पयदजहण्णसामित्तावलंबणादो।

३ कुदो; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण दिवड्ढगुणहाणिमेत्तजहण्णसमयपबद्धेहिं सह एइंदिएसुप्पण्णपढमसमए अधापवत्तसंकमेण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो। जयध०

विसेसाहिओ । २४४. लोभे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

२४५. पुरिसवेदे जहण्णपदेससंकमो अणंतगुणो[1] । २४६. इत्थिवेदे जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो[2] । २४७. हस्से जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो । २४८. रदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २४९. सोगे जहण्णपदेससंकमो संखेज्जगुणो[3]*। २५०. अरदीए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५१. णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५२. दुगुंछाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५३. भए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५४. माणसंजलणे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५५. कोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५६. मायाए जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ । २५७ लोहे जहण्णपदेससंकमो विसेसाहिओ ।

२५८. भुजगारस्स अट्ठपदं । २५९. एण्हिं पदेसे बहुदरगे संकामेदि त्ति उस्सक्काविदे अप्पदरसंकामदो एसो भुजगारसंकमो[4] । २६०. एण्हिं पदेसे अप्पदरगे

क्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥२३१-२४४॥

चूर्णिसू०—प्रत्याख्यानलोभसे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण अनन्तगुणित होता है। पुरुषवेदसे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । स्त्रीवेदसे हास्यमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । हास्यसे रतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । रतिसे शोकमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण संख्यातगुणित होता है । शोकसे अरतिमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । अरतिसे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । जुगुप्सासे भयमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । भयसे संज्वलनमानमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें जघन्य प्रदेशसंक्रमण विशेष अधिक होता है ॥२४५-२५७॥

चूर्णिसू०—अब प्रदेशसंक्रमण सम्बन्धी भुजाकार कहते हैं । उसका यह अर्थपद है । अनन्तर-व्यतिक्रान्त समयमें अल्पतरसंक्रमण करके इस समय (वर्तमान समय) में बहुतर कर्मप्रदेशोंका संक्रमण करता है, यह भुजाकार संक्रमण है । अनन्तर-व्यतिक्रान्त

१ कुदो; देसघादिकारणावेक्खित्तादो । जयध०

२ कुदो; बंधगद्धावसेण तावदिगुणत्तोवलंभादो । जयध०

३ कुदो; पुव्विल्लबंधगद्धादो संखेज्जगुणबंधगद्धाए सचिददव्वाणुसारेण संकमपवुत्तिअब्भुवगमादो ।

४ कुदो उण तारिसस्स संकमभेदस्स भुजगारववएसो ? ण; बहुदरीकरण च भुजगारो त्ति तस्स तव्ववएसोववत्तीदो । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'संखेज्जगुणो'के स्थानपर 'विसेसाहिओ' पाठ मुद्रित है । पर टीकाके अनुसार वह अशुद्ध है । (देखो पृ० १२४०)

संकामेदि त्ति ओसक्काविदे बहुदरपदेससंकमादो एस अप्पयरसंकमो[1]। २६१. ओसक्काविदे एण्हिं च तत्तिगे चेव पदेसे संकामेदि त्ति एस अवट्ठिदसंकमो[2]। २६२. असंकमादो संकामेदि त्ति अवत्तव्वसंकमो[3]।

२६३. एदेण अट्ठपदेण तत्थ समुक्कित्तणा। २६४. मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिद-अवत्तव्व-संकामया अत्थि[4]। २६५. एवं सोलसकसाय-पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं[5]। २६६. एवं चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-इत्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं। २६७. णवरि अवट्ठिदसंकामगा णत्थि।

समयमें बहुतर प्रदेशोंका संक्रमण करके वर्तमान समयमें अल्पतर प्रदेशोंका संक्रमण करता है, यह अल्पतरसंक्रमण है। अनन्तर-व्यतिक्रान्त समयमें जितने प्रदेशोंका संक्रमण किया है, वर्तमान समयमें भी उतने ही प्रदेशोंका संक्रमण करता है, यह अवस्थितसंक्रमण है। अनन्तर-व्यतिक्रान्त समयमें कुछ भी संक्रमण न करके वर्तमान समयमें संक्रमण करता है, यह अवक्तव्यसंक्रमण है। इस अर्थपदके द्वारा भुजाकारसंक्रमणकी पहले समुत्कीर्तना की जाती है–मिथ्यात्वके भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अव्यक्तव्य संक्रामक होते हैं। इसी प्रकार सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साके चारों प्रकारके संक्रामक होते हैं। इस ही प्रकार सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकप्रकृतियोंके संक्रामक जानना चाहिए। विशेषतया केवल यह है कि इनके अवस्थितसंक्रामक नहीं होते हैं ॥२५८-२६७॥

१ अयं सूत्रार्थः—इदानीमल्पतरकान् प्रदेशान् संक्रमयतीत्ययमल्पतरसंक्रमः। कुतोऽल्पतरत्वमिदानींतनस्य प्रदेशसंक्रमस्य विवक्षितमिति चेदनन्तरातिक्रान्तसमयसम्बन्धिबहुतरप्रदेशसंक्रमविशेषादिति। जयध०

२ अनन्तरव्यतिक्रान्तसमये साम्प्रतिके च समये तावन्त एव प्रदेशानन्यूनाधिकान् संक्रामयतीत्यतोऽवस्थितसंक्रम इत्युक्तं भवति। जयध०

३ पूर्वमसंक्रमादिदानीमेव संक्रमपर्यायमभूतपूर्वमास्कन्दतीत्यस्यां विवक्षायामवक्तव्यसंक्रमस्यात्मलाभ इत्युक्तं भवति। अस्य चावक्तव्यव्यपदेशोऽवस्थात्रयप्रतिपादकैरभिलापैरनभिलाप्यत्वादिति। जयध०

४ तं जहा—अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे पढमसमये मिच्छत्तस्स विज्झादेणावत्तव्वसंकमो होइ। पुणो विदियादिसमएसु भुजगारसंकमो अवट्ठिदसंकमो अप्पयरसंकमो होइ जाव आवलियसम्माइट्ठि त्ति। तत्तो उवरि सव्वत्थ वेदयसम्माइट्ठिम्मि अप्पयरसंकमो जाव दंसणमोहक्खवणाए अपुव्वकरणं पविट्ठस्स गुणसंकमपारंभो त्ति। गुणसंकमविसए सव्वत्थेव भुजगारसंकमो दट्ठव्वो। उवसमसम्मत्तं पडिवण्णस्स वि पढमसमए अवत्तव्वसंकमो, विदियादिसमएसु भुजगारसंकमो जाव गुणसंकमचरिमसमयो त्ति। तदो विज्झादसंकमविसए सव्वत्थ अप्पयरसंकमो त्ति घेत्तव्वं। जयध०

५ जत्थागमादो णिज्जरा थोवा, तत्थ भुजगारसंकमो, जत्थागमादो णिज्जरा बहुगी, एयंतणिज्जरा चेव वा, तत्थ अप्पयरसंकमो। जम्हि विसए दोण्हं पि सरिसभावो, तम्हि अवट्ठिदसंकमो। असंकमादो संकमो जत्थ, तत्थावत्तव्वसंकमो त्ति पुव्वं व सव्वमेत्थाणुगंतव्वं। णवरि अवत्तव्वसंकमो बारसकसाय पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं सव्वोवसामणापडिवादे, अणंताणुबंधीणं च विसंजोयणा अपुव्वसंजोगे दट्ठव्वो। जयध०

२६८. सामित्तं । २६९. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामओ को होइ ? २७०. पढमसम्मत्तमुप्पादयमाणगो पढमसमए अवत्तव्वसंकामगो[1]। सेसेसु समएसु जाव गुणसंकमो ताव भुजगारसंकामगो[2]। २७१. जो वि दंसणमोहणीयक्खवगो अपुव्वकरणस्स पढमसमयमादिं कादूण जाव मिच्छत्तं सव्वसंकमेण संछुहदि त्ति ताव मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामगो[3]। २७२. जो वि पुव्वुप्पण्णेण सम्मत्तेण मिच्छत्तादो सम्मत्तमागदो तस्स पढमसमयसम्माइट्ठिस्स जं बंधादो आवलियादीदं मिच्छत्तस्स पदेसग्गं तं विज्झादसंकमेण संकामेदि आवलियचरिमसमयमिच्छाइट्ठिमादिं कादूण जाव चरिमसमयमिच्छाइट्ठि त्ति एत्थ जे समयपबद्धा ते समयपबद्धे पढमसमयसम्माइट्ठि त्ति ण संकामेइ। से कालप्पहुडि जस्स जस्स बंधावलिया पुण्णा तदो तदो सो संकामिज्जदि। एवं पुव्वुप्पाइदेण सम्मत्तेण जो सम्मत्तं पडिवज्जइ तं दुसमयसम्माइट्ठिमादिं कादूण जाव आवलि-

चूर्णिसू०—अब भुजाकार प्रदेशसंक्रमणके स्वामित्वको कहते हैं ॥२६८॥

शंका—मिथ्यात्वका भुजाकार-संक्रामक कौन है ? ॥२६९॥

समाधान—प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला जीव प्रथम समयमें मिथ्यात्वका अवक्तव्यसंक्रामक है। शेष समयोंमें जब तक गुणसंक्रमण रहता है, तब तक वह मिथ्यात्व का भुजाकार-संक्रामक है ॥२७०॥

अब प्रकारान्तरसे भुजाकारसंक्रमके स्वामित्वको कहते हैं—

चूर्णिसू०—और जो दर्शनमोहनीयका क्षपण कर रहा है, वह अपूर्वकरणके प्रथम समयको आदि लेकर जब तक सर्वसंक्रमणसे मिथ्यात्वका संक्रमण करता है, तब तक मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रामक रहता है। तथा जिसने पूर्वमें सम्यक्त्व उत्पन्न किया है, वह जीव मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें आया, उस प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके जो बन्ध-समयके पश्चात् एक आवली अतीत काल तकके मिथ्यात्वके प्रदेशाग्र हैं, उन्हें विध्यातसंक्रमणसे संक्रमित करता है। चरम आवलीकालवाले चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिको आदि करके जब तक वह चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि है, तब तक इस अन्तरालमें जो समयप्रबद्ध बाँधे हैं, उन समयप्रबद्धोंको प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टि होने तक संक्रमण नहीं करता है। तदनन्तरकालसे लेकर जिन जिनकी बंधावली पूर्ण हो जाती है, उन उन कर्मप्रदेशोंको वह संक्रमण करता है। इस प्रकार पूर्वोत्पादित सम्यक्त्वके साथ जो सम्यक्त्वको प्राप्त होता है, उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिको आदि करके जब तक आवलीकालवर्ती सम्यग्दृष्टि रहता है, तब तक

१ (कुदो;) पुव्वमसंकंतस्स तस्स ताधे चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसरूवेण संकंतिदंसणादो। जयध०

२ कुदो; पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए गुणसंकमेण मिच्छत्तपदेसग्गस्स तत्थ संकंतिदंसणादो। जयध०

३ अपुव्वकरणद्धाए सव्वत्थ अणियट्टिकरणद्धाए च जाव मिच्छत्तस्स सव्वसंकमसमयो ताव अंतोमुहुत्तमेत्तकालं गुणसंकमेण भुजगारसंकामगो होइ त्ति भणिदं होइ। जयध०

यसम्माइट्ठि त्ति ताव मिच्छत्तस्स भुजगारसंकमो होज्ज । २७३. ण हु सव्वत्थ आवलियाए भुजगारसंकमो जहण्णेण एयसमओ । २७४. उक्कस्सेणावलिया समयूणा ।

२७५. एवं तिसु कालेसु मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामगो । २७६. तं जहा । २७७. उवसामग-दुसमयसम्माइट्ठिमादिं कादूण जाव गुणसंकमो त्ति ताव णिरंतरं भुजगारसंकमो । २७८. खवगस्स वा जाव गुणसंकमेण खविज्जदि मिच्छत्तं ताव णिरंतरं भुजगारसंकमो । २७९. पुव्वुप्पादिदेण वा सम्मत्तेण जो सम्मत्तं पडिवज्जदि तं दुसमयसम्माइट्ठिमादिं कादूण जाव आवलियसम्माइट्ठि त्ति एत्थ जत्थ वा तत्थ वा जहण्णेण एयसमयं उक्कस्सेण आवलिया समयूणा भुजगारसंकमो होज्ज । २८०. एवमेदेसु तिसु कालेसु मिच्छत्तस्स भुजगारसंकमो । २८१. सेसेसु समएसु जइ संकामगो अप्पयरसंकामगो वा अवत्तव्वसंकामगो वा । २८२. अवट्ठिदसंकामगो मिच्छत्तस्स को होइ ? २८३. पुव्वुप्पादिदेण सम्मत्तेण जो सम्मत्तं पडिवज्जदि जाव आवलियसम्माइट्ठि त्ति एत्थ होज्ज अवट्ठिदसंकामगो । अण्णम्मि णत्थि ।

उसके मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण होता रहता है । आवलीके भीतर सर्वत्र भुजाकारसंक्रमण नहीं होता, किन्तु जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम आवली तक होता है ॥२७१-२७४॥

अब चूर्णिकार उपर्युक्त अर्थका उपसंहार करते हैं-

चूर्णिसू०-*इस प्रकार तीन अवसरोंमें जीव मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण करता है।* वे तीन अवसर इस प्रकार हैं-उपशामक द्वितीय-समयवर्ती सम्यग्दृष्टिको आदि लेकर जब तक गुणसंक्रमण रहता है, तब तक निरन्तर भुजाकारसंक्रमण होता है । अथवा क्षपकके जब तक गुणसंक्रमणसे मिथ्यात्व क्षपित किया जाता है, तब तक निरन्तर भुजाकारसंक्रमण होता है । अथवा जिसने पूर्वमें सम्यक्त्व उत्पन्न किया है, ऐसा जो जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होता है, उस द्वितीय-समयवर्ती सम्यग्दृष्टिको आदि करके आवलीके पूर्ण होने तक उस सम्यग्दृष्टिके इस अवसरमें जहां-कहीं जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम आवली तक भुजाकारसंक्रमण हो सकता है । इस प्रकार इन तीन कालोंमें मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण होता है ॥२७५-२८०॥

चूर्णिसू०-उक्त तीनों अवसरोंके शेष समयोंमें यदि संक्रमण करता है, तो या तो अल्पतरसंक्रमण करता है, अथवा अवक्तव्यसंक्रमण करता है ॥२८१॥

शंका-मिथ्यात्वका अवस्थितसंक्रामक कौन जीव है ? ॥२८२॥

समाधान-जिसने पूर्वमें सम्यक्त्व उत्पन्न किया है, ऐसा जो जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, वह जब तक आवली-प्रविष्ट सम्यग्दृष्टि है, तब तक इस अन्तरालमें वह अवस्थित-संक्रामक हो सकता है । अन्य अवसरमें अवस्थितसंक्रामक नहीं होता ॥२८३॥

२८४. सम्मत्तस्स भुजगारसंकामगो को होदि ? २८५. सम्मत्तमुव्वेल्लमाणयस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए सव्वम्हि चेव भुजगारसंकामगो[1]। २८६. तव्वदिरित्तो जो संकामगो सो अप्पयरसंकामगो वा अवत्तव्वसंकामगो वा[2]। २८७. सम्मामिच्छत्तस्स भुजगार-संकामगो को होइ ? २८८. उव्वेल्लमाणयस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए सव्वम्हि चेव[3]। २८९. खवगस्स वा जाव गुणसंकमेण संछुहदि सम्मामिच्छत्तं ताव भुजगारसंकामगो[4]। २९०. पढमसम्मत्तमुप्पादयमाणयस्स वा तदियसमयप्पहुडि जाव विज्झादसंकमपढम-समयादो त्ति[5]। २९१. तव्वदिरित्तो जो संकामगो सो अप्पदरसंकामगो वा अवत्तव्व-संकामगो वा।

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिका भुजाकार-संक्रमण कौन करता है ? ॥२८४॥

समाधान–सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले जीवके अन्तिम स्थितिखंडके सर्व ही कालमें भुजाकारसंक्रमण होता है। भुजाकार-संक्रमणके अतिरिक्त यदि वह संक्रामक है, तो या तो अल्पतरसंक्रमण करता है, अथवा अवक्तव्यसंक्रमण करता है ॥२८५-२८६॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण कौन करता है ? ॥२८७॥

समाधान–सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जीवके अन्तिम स्थितिखंडके सर्व ही कालमें सम्यग्मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण होता है। अथवा क्षपकके जब तक वह गुण-संक्रमणसे सम्यग्मिथ्यात्वको संक्रमित करता है, तब तक वह भुजाकार-संक्रामक है। अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके तृतीय समयसे लेकर विध्यातसंक्रमणके प्रथम समय तक सम्यग्मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण होता है। सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार-संक्रमणके अतिरिक्त यदि वह संक्रामक है, तो या तो अल्पतरसंक्रामक है, अथवा अवक्तव्य-संक्रामक है ॥२८८-२९१॥

विशेषार्थ–सम्यग्मिथ्यात्वका भुजाकारसंक्रमण तीन प्रकारसे बतलाया गया है। इनमें प्रथम और द्वितीय प्रकार तो स्पष्ट हैं। तीसरे प्रकारका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तासे रहित मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता है, तब उसके प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता होती है और द्वितीय समयमें अवक्तव्य-संक्रमण होता है। पुनः उसके तृतीयादि समयोंमें गुणसंक्रमणके वशसे भुजाकारसंक्रमण

१ कुदो; तत्थ गुणसंकमणियमदंसणादो। जयध०

२ किं कारणं ? उव्वेल्लणचरिमट्ठिदिखंडयादो अण्णत्थ जहासंभवमप्पदरावत्तव्वसंकमाणं चेव संभव-दंसणादो। जयध०

३ कुदो; तत्थ गुणसंकमणियमदंसणादो। जयध०

४ कुदो; दंसणमोहक्खवयापुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि जाव सव्वसंकमो त्ति ताव सम्मामिच्छत्तस्स गुणसंकमसंभववसेण तत्थ भुजगारसिद्धीए विसंवादाभावादो। जयध०

५ जदो एदं देसामासियं, तदो सम्माइट्ठिणा मिच्छत्ते पडिवण्णे तप्पढमसमयम्मि अधापवत्तसंकमेण भुजगारसंकमो होइ, तहा उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिणा वेदयसम्मत्ते गहिदे तस्स पढमसमए वि विज्झादसंक-मेण भुजगारसंकमसंभवो वत्तव्वो। जयध०

२९२. सोलसकसायाणं भुजगारसंकामगो अप्पदरसंकामगो अवट्ठिदसंकामगो अवत्तव्वसंकामगो को होदि ? २९३. अण्णदरो[1] । २९४. एवं पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं । २९५. णवरि पुरिसवेद-अवट्ठिदसंकामगो णियमा सम्माइट्ठी[2] । २९६. इत्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुजगार-अप्पदर-अवत्तव्वसंकमो कस्स ? २९७. अण्णदरस्स ।

२९८. कालो एयजीवस्स । २९९. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकमो केवचिरं कालादो

होता है । यह क्रम विध्यातसंक्रमणको प्रारम्भ करनेके प्रथम समय तक जारी रहता है । यह कथन सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं रखनेवाले मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा किया गया है । किन्तु जिस मिथ्यादृष्टिके उसकी सत्ता है, वह जब उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न करता है, तब उसके प्रथम समयसे लेकर गुणसंक्रमणके अन्तिम समय तक भुजाकारसंक्रमण होता रहता है । यतः यह सूत्र देशामर्शक है, अतः यह भी सूचित करता है कि सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व-को प्राप्त होनेपर उसके प्रथम समयमें अधःप्रवृत्तसंक्रमण होनेसे भुजाकारसंक्रमण होता है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जब वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम समयमें भी विध्यातसंक्रमणके होनेसे भुजाकारसंक्रमणका होना संभव है ।

शंका–अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंका भुजाकारसंक्रामक, अल्पतरसंक्रामक, अवस्थितसंकामक और अवक्तव्यसंक्रामक कौन है ? ॥२९२॥

समाधान–यथासंभव कोई एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव चारों प्रकारके संक्र-मणोंका संक्रामक होता है ॥२९३॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार पुरुषवेद भय और जुगुप्साके भुजकारादि संक्रामक जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि पुरुषवेदका अवस्थितसंक्रामक नियमसे सम्यग्दृष्टि जीव ही होता है ॥२९४-२९५॥

शंका–स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकप्रकृतियोंका भुजाकार, अल्पतर और अवक्तव्य संक्रमण किसके होता है ? ॥२९६॥

समाधान–किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है ॥२९७॥

चूर्णिसू०–अब भुजाकारादि संक्रमणोंका एक जीवकी अपेक्षा काल कहते हैं ॥२९८॥

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥२९९॥

१ अणंताणुबंधीणं ताव भुजगारसंकामगो अण्णदरो मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा होइ; मिच्छाइट्ठि-म्मि णिरंतरबंधीणं तेसिं तदविरोहादो । सम्माइट्ठिम्मि वि गुणसंकमपरिणदम्मि सम्मत्तग्गहणपढमावलियाए वा विदियादिसमएसु तदुवलद्धीदो । अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामगो अण्णदरो त्ति वुत्ते विसंजोयणापुव्व-संजोगपढमसमयणवकबंधमावलियादिक्कंतं संकामेमाणयस्स मिच्छाइट्ठिस्स सासणसम्माइट्ठिस्स वा गहणं कायव्वं । एवं चेव सेसकसायाणं पि भुजगारादिपदाणमण्णदरसामित्ताहिसंबंधो अणुगंतव्वो । णवरि तेसिमव-त्तव्वसंकामगो अण्णदरो सव्वोवसामणापडिवादसमए वट्टमाणगो सम्माइट्ठी चेव होइ, णाण्णो त्ति वत्तव्वं । जयध०

२ कुदो; सम्माइट्ठीदो अण्णत्थ पुरिसवेदस्स णिरंतरबंधित्ताभावादो । ण च णिरंतरबंधेण विणा अवट्ठिदसंकमसामित्तविहाणसंभवो; विरोहादो । जयध०

होदि ? ३००. जहण्णेण एयसमओ[1] । ३०१. उक्कस्सेण आवलिया समयूणा[2] । ३०२. अधवा अंतोमुहुत्तं[3] । ३०३. अप्पयरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३०४. एको वा समयो जाव आवलिया दुसमयूणा[4] । ३०५. अधवा अंतोमुहुत्तं[5] । ३०६. तदो समयुत्तरो जाव छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि[6] । ३०७. अवट्ठिदसंकमो केवचिरं कालादो

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक समय कम आवलीप्रमाण है। अथवा गुणसंक्रमण-कालकी अपेक्षा मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३००-३०२॥

शंका–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३०३॥

समाधान–एक समय भी है, दो समय भी है, इस प्रकार समयोत्तर वृद्धिसे बढ़ते हुए दो समय कम आवली काल तक मिथ्यात्वका अल्पतरसंक्रमण होता है। अथवा वेदक-सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उससे लगाकर एक समय, दो समय आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ सातिरेक छ्यासठ सागरोपम तक मिथ्यात्वके अल्पतर संक्रमणका उत्कृष्ट काल है ॥३०४-३०६॥

शंका–मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३०७॥

१ तं जहा—पुव्वुप्पण्णेण सम्मत्तेण मिच्छत्तादो वेदगसम्मत्तमागयस्स पढमसमए विज्झादसंकमेणा-वत्तव्वसंकमो होइ। विदियादीणमण्णदरसमए जत्थ वा तत्थ वा चरिमावलियमिच्छाइट्ठिणा वड्ढिदूण बद्ध-णवकबंधसमयपबद्धं बंधावलियादिक्कतं भुजगारसरूवेण संकामिय तदणंतरसमए अप्पदरमवट्ठिदं वा गयस्स लद्धो मिच्छत्तभुजगारसंकामयस्स जहण्णकालो एयसमयमेत्तो। जयध०

२ तं कथं ? पुव्वुप्पण्णसम्मत्तपच्छायदमिच्छाइट्ठिणा चरिमावलियाए णिरंतरमुदयावलियं पविस-माणगोवुच्छाहिंतो अब्भहियकमेण बंधिदूण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे तस्स पढमसमए अवत्तव्वसंकमो होदूण पुणो विदियादिसमएसु पुव्वुत्तणवकबंधवसेण णिरंतरं भुजगारसंकमे संजादे लद्धो मिच्छत्तभुजगारसंकमस्स समयूणावलियमेत्तो उक्कस्सकालो। जयध०

३ तं जहा–दंसणमोहमुवसामेंतयस्स वा जाव गुणसंकमो ताव णिरंतरं भुजगारसंकमो चेव, तत्थ पया-रंतरासंभवादो। सो च गुणसंकमकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो। तदो पयदुक्कस्सकालोवलंभो ण विरुद्धो। जयध०

४ तं जहा–तहाविहसम्माइट्ठिणो पढमसमए अवत्तव्वसंकामगो होदूण विदियसमयम्मि अप्पयर-संकमेण परिणमिय तदणंतरसमए चरिमावलियमिच्छाइट्ठिबंधवसेण भुजगारमवट्ठिदभावं वा गयस्स लद्धो एयसमयमेत्तो अप्पयरकालजहण्णवियप्पो। एवं दुसमयतिसमयादिकमेण णेदव्वं जाव आवलिया दुसमयूणा त्ति। तत्थ चरिमवियप्पो वुच्चदे–पढमसमए अवत्तव्वसंकामगो होदूण विदियादिसमएसु सव्वेसु चेव अप्पयर-संकमं कादूण पुणो पढमावलियचरिमसमए भुजगारावट्ठिदाणमण्णयरसंकमपज्जायं गदो लद्धो दुसमयूणा-वलियमेत्तो मिच्छत्तप्पयरसंकमकालो। जयध०

५ तं जहा–बहुसो दिट्ठमग्गेण मिच्छाइट्ठिणा वेदगसम्मत्तमुप्पाइदं। तस्स पढमावलियचरिमसमए पुव्वुत्तेण णाएण भुजगारसंकमं कादूण तदो अप्पयरसंकमं पारभिय सव्वजहण्णेण कालेण मिच्छत्त-सम्मामि-च्छत्ताणमण्णदरगुणं गयस्स जहण्णंतोमुहुत्तपमाणो अप्पयरकालवियप्पो लब्भदे।

६ तं जहा–अणादियमिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते समुप्पाइदे अंतोमुहुत्तकालं गुणसंकमो होदि। तदो विज्झादे पदिदस्स णिरंतरमप्पयरसंकमो होदूण गच्छदि जावंतोमुहुत्तमेत्तुवसमसम्मत्तकालसेसो वेदगसम्मत्त-कालो च देसूणछावट्ठिसागरोवममेत्तो त्ति। तत्थंतोमुहुत्तसेसे वेदगसम्मत्तकाले खवणाए अब्भुट्ठिदस्सा-

होदि ? ३०८. जहण्णेण एयसमओ । ३०९. उक्कस्सेण संखेज्जा समया । ३१०. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३११. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[1] ।

३१२. सम्मत्तस्स भुजगारसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३१३. जहण्णेण एयसमओ । ३१४. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] । ३१५. अप्पयरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३१६. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ३१७. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[3] । ३१८. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३१९. जहण्णुक्कस्सेण एयसमयो[4] ।

३२०. सम्मामिच्छत्तस्स भुजगारसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३२१. एक्को वा दो वा समया । एवं समयुत्तरो उक्कस्सेण जाव चरिमुव्वेल्लणकंडयुक्कीरणा त्ति ।

समाधान—मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमणका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥३०८-३०९॥

शंका—मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३१०॥

समाधान—मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥३११॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३१२॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३१३-३१४॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३१५॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है ॥३१६-३१७॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३१८॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयमात्र है ॥३१९॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३२०॥

समाधान—एक समय भी होता है, दो समय भी होता है, इस प्रकार एक-एक समय अधिकके क्रमसे बढ़ते हुए उत्कर्षसे चरम उद्वेलनाकांडकके उत्कीर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण भी सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका उत्कृष्ट काल है । अथवा सम्यक्त्वको उत्पन्न

पुव्वकरणपढमसमए गुणसंकमपारंभेणाप्पयरसंकमस्स पज्जवसाणं होइ । तदो संपुण्णछावट्ठिसागरोवममेत्त-वेदगसम्मत्तुक्कस्सकालम्मि अपुव्वाणियट्टिकरणद्धामेत्तमप्पयरसंकमस्स ण लब्भइ त्ति । तम्मि पुव्विल्लोव-समसम्मत्तकालब्भंतरअप्पयरकालादो सोहिदे सुद्धसेसमेत्तेयसादिरेयछावट्ठिसागरोवमपमाणो पयदुक्कस्स-कालवियप्पो समुवलद्धो होइ । जयध०

१ सम्माइट्ठिपढमसमयं मोत्तूणण्णत्थ तदभावविणिण्णयादो । जयध०

२ कुदो; चरिमुव्वेल्लणकंडए सव्वत्थेव गुणसंकमेण परिणदम्मि पयदभुजगारसंकमुक्कस्सकालस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

३ कुदो; सम्मत्तादो मिच्छत्तं गंतूण सव्वुक्कस्सेणुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लमाणयस्स तदुवलंभादो । जयध०

४ सम्मत्तादो मिच्छत्तमुवगयस्स पढमसमयादो अण्णत्थ तदभावविणिण्णयादो । जयध०

३२२. अथवा सम्मत्तमुप्पादेमाणयस्स वा तदो खवेमाणयस्स वा जो गुणसंकमकालो सो वि भुजगारसंकामयस्स कायव्वो[1]। ३२३. अप्पदरसंकामगो केवचिरं कालादो होदि ? ३२४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ३२५. एयसमओ वा[2]। ३२६. उक्कस्सेण छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। ३२७. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३२८. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ।

३२९. अणंताणुबंधीणं भुजगारसंकामगो केवचिरं कालादो होदि ? ३३०. जहण्णेण एयसमयो। ३३१. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[3]। ३३२. अप्पदरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३३३. जहण्णेण एयसमओ। ३३४. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। ३३५. अवट्ठिदसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३३६. जहण्णेण एयसमओ। ३३७. उक्कस्सेण संखेज्जा समया[4]। ३३८. अवत्तव्वसंकामगो

करनेवालेका, अथवा मिथ्यात्वको क्षपण करनेवालेका जो गुणसंक्रमणकाल है, वह भी सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रामकका काल प्ररूपण करना चाहिए ॥३२१-३२२॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३२३॥

समाधान–जघन्य अन्तर्मुहूर्त, अथवा एक समय है और उत्कृष्ट काल सातिरेक छयासठ सागरोपम है ॥३२४-३२६॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३२७॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥३२८॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३२९॥

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥३३०-३३१॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३३२॥

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सातिरेक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥३३३-३३४॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवस्थितसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३३५॥

समाधान–उक्त कषायोंके जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥३३६-३३७॥

१ कुदो; गुणसंकमविसए भुजगारसंकमं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो। जयध०

२ तं जहा–चरिमुव्वेल्लणकंडयं गुणसंकमेण संकामेंतएण सम्मत्तमुप्पाइदं। तस्स पढमसमए विज्झा-देणप्पयरसंकमो जादो। पुणो विदियसमए गुणसंकमपारंभेण भुजगारसंकमो जादो। लद्धो एयसमयमेत्तो सम्मामिच्छत्तप्पयरसंकमकालो। जयध०

३ तं जहा–थावरकायादो आगंतूण तसकाइएसुप्पण्णस्स जाव पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालो गच्छदि ताव आगमो बहुगो, णिज्जरा थोवयरा होइ; तम्हा पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो पयदभुजगारसंक-मुक्कस्सकालो ण विरुज्झदे। जयध०

४ आगमणिज्जराणं सरिसत्तवसेण सत्तट्ठसमएसु अवट्ठिदसंकमसंभवे विरोहाभावादो। जयध०

केवचिरं कालादो होदि ? ३३९. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[1]।

३४०. बारसकसाय-पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं भुजगार-अप्पदर-संकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३४१. जहण्णेणेयसमओ। ३४२. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2]। ३४३. अवट्ठिदसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३४४. जहण्णेण एयसमओ। ३४५. उक्कस्सेण संखेज्जा समया। ३४६. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३४७. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[3]।

३४८. इत्थिवेदस्स भुजगारसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३४९. जहण्णेण एयसमओ[4]। ३५०. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ३५१. अप्पयरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३५२. जहण्णेण एगसमओ। ३५३. उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३३८॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३३९॥

शंका—अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्सा, इतनी प्रकृतियोंके भुजाकार और अल्पतर संक्रमणका कितना काल है ? ॥३४०॥

समाधान—उक्त प्रकृतियोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥३४१-३४२॥

शंका—उक्त प्रकृतियोंके अवस्थितसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३४३॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है ॥३४४-३४५॥

शंका—उन्हीं प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३४६॥

समाधान—उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रमणका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयमात्र है ॥३४७॥

शंका—स्त्रीवेदके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३४८॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३४९-३५०॥

शंका—स्त्रीवेदके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३५१॥

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात वर्ष अधिक दो बार छयासठ सागरोपम है ॥३५२-३५३॥

---

१ विसंजोयणापुव्वसंजोगणवकबंधावलियवदिक्कंतपढमसमए तदुवलंभादो। जयध०

२ एइंदिएहिंतो पंचिंदिएसु पंचिंदिएहिंतो वा एइंदिएसुप्पण्णस्स जहाकमं तदुभयकालस्स तप्पमाणत्तसिद्धीए विरोहाभावादो। जयध०

३ सव्वोवसामणापडिवादपढमसमयादो। जयध०

४ तं कथं ? अण्णवेदबंधादो एयसमयमित्थिवेदबंधं काढूण तदणंतरसमए पुणो वि पडिवक्खवेदबंधमाढविय बंधावलियवदिक्कंतसमए कमेण संकामेमाणयस्स एयसमयमेत्तो इत्थिवेदस्स भुजगारसंकमकालो जहण्णकालो होइ। जयध०

संखेज्जवस्सब्भहियाणि । ३५४. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३५५. जहण्णुकस्सेण एयसमओ ।

३५६. णवुंसयवेदस्स अप्पयरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३५७. जहण्णेण एयसमओ । ३५८. उकस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । ३५९. सेसाणि इत्थिवेदभंगो ।

३६०. हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुजगार-अप्पयरसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३६१. जहण्णेण एयसमओ । ३६२. उकस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] । ३६३. अवत्तव्वसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? ३६४. जहण्णुकस्सेण एयसमओ ।

३६५. एवं चदुसु गदीसु ओघेण साधेदूण णेदव्वो ।

३६६. एइंदिएसु सव्वेसिं कम्माणमवत्तव्वसंकमो णत्थि[2] । ३६७. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ? ३६८. जहण्णेण एयसमओ[3] ।

शंका—स्त्रीवेदके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३५४॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३५५॥

शंका—नपुंसकवेदके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३५६॥

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन पल्योपमसे अधिक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥३५७-३५८॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेदके शेष संक्रमणोंका काल स्त्रीवेदके संक्रमणकालके समान जानना चाहिए ॥३५९॥

शंका—हास्य, रति, अरति और शोकके भुजाकारसंक्रमण और अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३६०॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३६१-३६२॥

शंका—उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३६३॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३६४॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार चारों गतियोंमें ओघके समान साध करके कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥३६५॥

चूर्णिसू०—(इन्द्रिय मार्गणाकी अपेक्षा) एकेन्द्रियोंमें सभी कर्मोंका अवक्तव्यसंक्रमण नहीं होता है ॥३६६।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३६७॥

१ अप्पप्पणो बंधकाले भुजगारसंकमो होइ, पडिवक्खपयडिबंधकाले एदेसिमप्पयरसंकमो होदि त्ति पयदुक्कस्सकालसिद्धी वत्तव्वा । जयध०

२ कुदो; गुणंतरपडिवत्तिपडिवादणिबंधणस्स सव्वेसिमवत्तव्वसंकमस्सेइंदिएसु असंभवादो । जयध०

३ कुदो; चरिमुव्वेल्लणखंडयदुचरिमफालीए सह तत्थुप्पण्णस्स विदियसमयम्मि तदुवलंभादो । दुचरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालिसंकमादो चरिमुव्वेल्लणखंडयपढमफालिं संकामिय तदणंतरसमए तत्तो णिस्सरिदस्स वा तदुवलंभसंभवादो । जयध०

३६९. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1]। ३७०. अप्पदरसंकामगो केवचिरं कालादो होदि ? ३७१. जहण्णेण एयसमओ[2]। ३७२. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[3]। ३७३. सोलसकसाय-भयदुगुंछाणमोघ-अपच्चक्खाणावरणभंगो। ३७४. सत्तणोकसायाणं ओघहस्स-रदीणं भंगो।

३७५. एयजीवेण अंतरं। ३७६. मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३७७. जहण्णेण एयसमओ वा दुसमओ वा, एवं णिरंतरं जाव तिसमऊणावलिया। ३७८. अधवा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[4]। ३७९. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। ३८०. एवमप्पदरावट्ठिदसंकामयंतरं। ३८१. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३८२. जहण्णेणंतोमुहुत्तं। ३८३. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ? ॥३६८-३६९॥

शंका—उक्त दोनों प्रकृतियोंके अल्पतरसंक्रमणका कितना काल है ? ॥३७०॥

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥३७१-३७२॥

चूर्णिसू०—सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा-सम्बन्धी संक्रमणोंका काल ओघ-अप्रत्याख्यानावरणके संक्रमण-कालके समान है। शेप सात नोकपायोंके संक्रमणोंका काल ओघके हास्य-रतिके संक्रमण-कालके समान जानना चाहिए ॥३७३-३७४॥

चूर्णिसू०—अब उक्त भुजाकारादि संक्रामकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर कहते हैं ॥३७५॥

शंका—मिथ्यात्वके भुजाकार संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३७६॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय, अथवा दो समय, अथवा तीन समय, इस प्रकार समयोत्तर क्रमसे निरन्तर बढ़ते हुए तीन समय कम आवली है। अथवा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३७७-३७९॥

चूर्णिसू०—इसीप्रकार मिथ्यात्वके अल्पतर और अवस्थित संक्रामकोंका अन्तर जानना चाहिए ॥३८०॥

शंका—मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३८१॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३८२-४८३॥

१ कुदो; चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालस्साणूणाहियस्स भुजगारसंकमविसईकयस्स तदुवलंभादो। जयध०

२ कुदो; दुचरिमुव्वेल्लणखंडयदुचरिमफालीए सह तत्थुववण्णयम्मि तदुवलद्धीदो। जयध०

३ कुदो; अप्पदरसंकमाविणाभाविदीहुव्वेल्लणकालावलंबणादो। जयध०

४ तं कथं ? उवसमसम्माइट्ठी गुणसंकमेण भुजगारं संकममादिं कादूण विज्झादेणंतरिय पुणो सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो, तस्सापुव्वकरणपढमसमए गुणसंकमपारंभेण पयदंतरपरिसमत्ती जादा। लद्धो जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तो पयदभुजगारंतरकालो। जयध०

३८४. सम्मत्तस्स भुजगारसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३८५. जहण्णेण पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो[1] । ३८६. उक्कस्सेण उवड्डपोग्गलपरियट्टं[2] । ३८७. अप्पदरावत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३८८. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ३८९. उक्कस्सेण उवड्डपोग्गलपरियट्टं ।

३९०. सम्मामिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३९१. जहण्णेण एयसमओ । ३९२. उक्कस्सेण उवड्डपोग्गलपरियट्टं । ३९३. अवत्तव्व-संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३९४. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ३९५. उक्कस्सेण उवड्डपोग्गलपरियट्टं ।

३९६. अणंताणुबंधीणं भुजगार-अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिके भुजाकार-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३८४॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥३८५-३८६॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिके अल्पतर और अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥३८७॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥३८८-३८९॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार और अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥३९०॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥३९१-३९२॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३९३॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥३९४-३९५॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंके भुजाकार और अल्पतर संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥३९६॥

१ तं जहा–चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि गुणसंकमेण पयदसंकमस्सादिं करिय तदणंतरसमए सम्मत्तमुप्पाइय असंकामगो होदूणंतरिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लमाणयस्स चरिमट्ठिदिखंडए पढमसमए लद्धमंतरं होइ । जयध०

२ कथं ? अणादियमिच्छाइट्ठी सम्मत्तमुप्पाइय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण जहण्णुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लमाणो चरिमट्ठिदिखंडम्मि भुजगारसंकमस्सादिं कादूणंतरिय देसूणद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय पुणो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तसेसे सिज्झणकाले सम्मत्तं घेत्तूण मिच्छत्तपडिवादेणुव्वेल्लेमाणयस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए लद्धमंतरं कायव्वं । एवमादिल्लंतिल्लेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागंतोमुहुत्तेहि परिहीणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तं पयदुक्कस्संतरपमाणं होदि । जयध०

३९७. जहण्णेण एयसमओ। ३९८. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। ३९९. अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४००. जहण्णेणेयसमओ। ४०१. उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा[1]। ४०२. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४०३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ४०४. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

४०५. बारसकसाय-पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं भुजगारप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४०६. जहण्णेण एयसमओ। ४०७. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2]।

४०८. अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४०९. जहण्णेण एयसमओ। ४१०. उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ४११. णवरि पुरिसवेदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[3]। ४१२. सव्वेसिमवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक दो वार छ्यासठ सागरोपम है ॥३९७-३९८॥

शंका–उक्त कषायों के अवस्थित-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है? ॥३९९॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन-प्रमाण अन्तरकाल है ॥४००-४०१॥

शंका–उक्त कषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है? ॥४०२॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४०३-४०४॥

शंका–अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय, पुरुषवेद भय और जुगुप्साके भुजाकार और अल्पतर संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४०५॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥४०६-४०७॥

शंका–उक्त कर्मोंके अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४०८॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन-प्रमित अनन्तकाल है। केवल पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४०९-४११॥

शंका–उपर्युक्त सर्व कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४१२॥

---

१ कुदो; एयवारमवट्ठिदसंकमेण परिणदस्स पुणो तदसंभवेणासंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तकालमुक्कस्सेणावट्ठाणब्भुवगमादो। असंखेज्जलोगमेत्तमुक्कस्संतरमवट्ठिदपदस्स परूविदमुच्चारणाइरियेण। कथमेदेण सुत्तेण तस्साविरोहो त्ति? ण, उवएसंतरावलंबणेणाविरोहसमत्थणादो। जयध०

२ भुजगारप्पयराणमण्णोण्णुक्कस्सकालेणावट्ठिदकालसहिदेणंतरिदाणमुक्कस्संतरस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो। जयध०

३ कुदो; सम्माइट्ठिम्मि चेव तदवट्ठिदसंकमस्स संभवणियमादो। जयध०

होदि ? ४१३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] । ४१४. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

४१५. इत्थिवेदस्स भुजगारसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४१६. जहण्णेण एयसमओ । ४१७. उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि संखेज्जवस्सब्भहियाणि[2] । ४१८. अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४१९. जहण्णेणेयसमओ । ४२०. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] । ४२१. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४२२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ४२३. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

४२४. णवुंसयवेदभुजगारसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४२५. जहण्णेण एयसमओ । ४२६. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । ४२७. अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४२८. जहण्णेण एयसमओ । ४२९. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ४३०. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४३१. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ४३२. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

समाधान—जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४१३-४१४॥

शंका—स्त्रीवेदके भुजाकार-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४१५॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्षसे अधिक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥४१६-४१७॥

शंका—स्त्रीवेदके अल्पतर-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४१८॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥४१९-४२०॥

शंका—स्त्रीवेदके अवक्तव्य-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४२१॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४२२-४२३॥

शंका—नपुंसकवेदके भुजाकार-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४२४॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन पल्योपम से अधिक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥४२५-४२६॥

शंका—नपुंसकवेदके अल्पतर-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४२७॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥४२८-४२९॥

शंका—नपुंसकवेदके अवक्तव्य-संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४३०॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ? ॥४३१-४३२॥

---

१ सव्वोवसामणापडिवादजहण्णंतरस्स तप्पयत्तोवलंभादो । जयध०

२ कुदो; तदप्पयरसंकमुक्कस्सकालस्स पयदंतरत्तेण विवक्खियत्तादो । जयध०

३ कुदो; सगबंधगद्धामेत्तभुजगारकालावलंबणेण पयदंतरसमत्थणादो । जयध०

४३३. हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुजगार-अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४३४. जहण्णेण एयसमओ । ४३५. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ४३६. कथं ताव हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमेयसमयमंतरं ? ४३७. हस्स-रदिभुजगारसंकामयंतरं जइ इच्छसि, अरदि-सोगाणमेयसमयं बंधावेदव्वो[1] । ४३८. जइ अप्पयरसंकामयंतरमिच्छसि, हस्स-रदीओ एयसमयं बंधावेयव्वाओ[2] । ४३९. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो

शंका—हास्य, रति, अरति और शोकके भुजाकार और अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तर-काल कितना है ? ॥४३३॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । ॥४३४-४३५॥

शंका—हास्य-रति और अरति-शोकके भुजाकार और अल्पतरसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय कैसे संभव है ? ॥४३६॥

समाधान—यदि हास्य और रतिके भुजाकारसंक्रामकका जघन्य अन्तर जानना चाहते हो, तो अरति और शोकका एक समय-प्रमित बन्ध कराना चाहिए । और यदि अल्पतरसंक्रामकका अन्तर जानना चाहते हो, तो हास्य और रतिका एक समय-प्रमित बन्ध कराना चाहिए ॥४३७-४३८॥

विशेषार्थ—कोई जीव हास्य-रतिका बन्ध कर रहा था, उसने एक समयके लिए अरति-शोकका बन्ध किया और तदनन्तर समयमें ही हास्य-रतिका बन्ध करने लगा । इस प्रकार हास्य-रतिका बंध कर और बन्धावलीके व्यतीत होनेपर बन्धके अनुसार संक्रमण करनेवाले जीवके एक समय-प्रमित भुजाकारसंक्रमणका अन्तर सिद्ध हो जाता है । अल्पतर-संक्रमणका अन्तर इस प्रकार निकलता है कि कोई जीव अरति-शोकका बन्ध कर रहा था, उसने एक समयके लिए हास्य-रतिका बन्ध किया और तदनन्तर समयमें ही पुनः अरति-शोकका बन्ध करने लगा । इस प्रकार उक्त प्रकृतियोंको बाँधकर और बन्धावलीके व्यतीत होनेपर उसका संक्रमण किया, तब एक समयप्रमित जघन्य अन्तर सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार अरति और शोकके भुजाकार और अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तर निकालना चहिए ।

शंका—हास्य, रति, अरति और शोकके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? ॥४३९॥

१ तं जहा—हस्स-रदीओ बंधमाणो एयसमयमरइ-सोगबंधगो जादो । तदो पुणो वि तदणंतरसमए हस्स रदीणं बंधगो जादो । एवं बंधिदूण बंधावलियवदिक्कमे बंधाणुसारेण संकामेमाणयस्स लद्धमेयसमयमेत्त-भुजगारसंकामयंतरं । जयध०

२ एदस्स णिदरिसणं—एयो अरदिसोगबंधगो एयसमयं हस्स-रदिबंधगो जादो । तदणंतरसमए पुणो वि परिणामपच्चएणारदिसोगाणं बंधो पारद्धो । एवं बंधिऊण बंधावलियादिक्कमेदेणेव कमेण संकामेमाणयस्स लद्धमेयसमयमेत्तं पयदजहण्णंतरं । एदेणेव णिदरिसणेणारदि-सोगाणं पि भुजगारप्पयरसंकामंतरमेयसमय-मेत्तं हस्स-रइविवज्जासेण जाणेयव्वं । जयध०

होदि ? ४४०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] । ४४१. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

४४२. गदीसु च साहेयव्वं ।

४४३. एइंदिएसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि किंचि वि अंतरं[2] । ४४४. सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं भुजगार-अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४४५. जहण्णेण एयसमओ ४४६. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[3] । ४४७. अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४४८. जहण्णेण एयसमओ । ४४९. उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । ४५०. सेसाणं सत्तणोकसायाणं भुजगार-अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४५१. जहण्णेण एयसमओ । ४५२. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[4] ।

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४४०-४४१॥

चूर्णिसू०—इसीप्रकार ओघके अनुसार चारों गतियोंमें भुजाकारादि संक्रामकोंका अन्तर सिद्ध करना चाहिए ॥४४२॥

चूर्णिसू०-(इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा) एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकारादि संक्रामकोंका कुछ भी अन्तर नहीं है ॥४४३॥

शंका—सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके भुजाकार और अल्पतर संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४४४॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥४४५-४४६॥

शंका—उक्त कर्मोंके अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४४७॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमित अनन्तकाल है ॥४४८-४४९॥

शंका—शेष सात नोकषायोंके भुजाकार और अल्पतर संक्रामकोंका अन्तर कितना है ? ॥४५०॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥४५१-४५२॥

१ कुदो; सव्वोवसामणापडिवादजहण्णंतरस्स तप्पमाणोवलंभादो । जयध०

२ कुदो; तत्थ संभवंताण पि भुजगारप्पदरपदाणं लद्धंतरकरणोवायाभावादो । जयध०

३ कुदो; भुजगारप्पयरकालाणमुक्कस्सेण पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणाणं जोण्हुदरपक्खाणं व परियत्तमाणाणमण्णोण्णेणतरिदाणमेइंदिएसु संभवे विरोहाभावादो । जयध०

४ परियत्तमाणबंधपयडीसु भुजगारप्पयरकालस्स अंतोमुहुत्तपमाणस्स अण्णोण्णंतरभावेण समुवलद्धीए विसंवादाणुवलंभादो । जयध०

४५३. णाणाजीवेहि भंगविचयो । ४५४. अट्ठपदं कायव्वं । ४५५. जा जेसु पयडी अत्थि तेसु पयदं[1] । ४५६. सव्वजीवा मिच्छत्तस्स सिया अप्पयरसंकामया च असंकामया च[2] । ४५७. सिया एदे च, भुजगारसंकामओ च, अवट्ठिदसंकामओ च, अवत्तव्वसंकामओ च[3] । ४५८. एवं सत्तावीस भंगा । ४५९. सम्मत्तस्स सिया अप्पयरसंकामया च असंकामया च णियमा[4] । ४६०. सेससंकामया भजियव्वा । ४६१. सम्मामिच्छत्तस्स अप्पयरसंकामया णियमा[5] । ४६२. सेससंकामया भजियव्वा[6] । ४६३. सेसाणं कम्माणं अवत्तव्वसंकामगा च असंकामगा च भजिदव्वा[7] । ४६४. सेसा णियमा[8] ।

चूर्णिसू०–अब नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय कहते हैं । उसके अर्थपदका निरूपण करना चाहिए । जिन जीवोंमें जो कर्म-प्रकृति विद्यमान है, उनमें ही प्रकृत अर्थात् प्रयोजन है । मिथ्यात्वकी सत्तावाले सर्व जीव कदाचित् मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामक हैं, और कदाचित् असंकामक हैं । कदाचित् मिथ्यात्वके अनेक अल्पतरसंक्रामक और एक भुजाकारसंक्रामक पाया जाता है । (१) कदाचित् मिथ्यात्वके अनेक अल्पतरसंक्रामक और एक अवस्थितसंक्रामक पाया जाता है । (२) कदाचित् मिथ्यात्वके अनेक अल्पतर-संक्रामक और एक अवक्तव्यसंक्रामक पाया जाता है । (३) इस प्रकार अनेक अल्पतर-संक्रामकोंके साथ भुजाकारादि अनेक संक्रामक भी पाये जाते हैं । इसी प्रकार द्विसंयोगादिकी अपेक्षा सत्ताईस भंग होते हैं ॥४५३-४५८॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिके कदाचित् अनेक जीव अल्पतरसंक्रामक हैं और कदाचित् नियमसे असंक्रामक भी हैं । शेष संक्रामक भजितव्य हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामक नियमसे पाये जाते हैं । शेष संक्रामक भजितव्य हैं । शेष कर्मोंके अव-क्तव्यसंक्रामक और असंक्रामक भजितव्य हैं । शेष अर्थात् भुजाकारसंक्रामक, अल्पतर-

१ कुदो; अकम्मेहि अव्ववहारादो । जयध०

२ कुदो; मिच्छत्तप्पयरसंकामयवेदयसम्माइट्ठीणं तदसंकामयमिच्छाइट्ठीणं च सव्वकालमवट्ठाण-णियमदंसणादो । जयध०

३ तं जहा–सिया एदे च भुजगारसंकामगो च १; कदाइमप्पयरसंकामएहि सह भुजगारपज्जायपरिण-देयजीवसंभवोवलंभादो । सिया एदे च अवट्ठिदसंकामगो च; पुव्विल्लेहि सह कम्हि वि अवट्ठिदपरि-णामपरिणदेयजीवसंभवाविरोहादो २ । सिया एदे च अवत्तव्वसंकामगो च; कयाइं धुवपदेण सह अवत्तव्व-संकमपज्जाएण परिणदेयजीवसंभवे विप्पडिसेहाभावादो ३ । एवमेयवयणेण तिण्णि भंगा णिद्दिट्ठा । एदे चेव बहुवयणसंबंधेण वि जोजेयव्वा । एवमेदे एगसंजोगभंगा परूविदा । जयध०

४ सम्मत्तस्स अप्पयरसंकामया णाम उव्वेल्लमाणमिच्छादिट्ठिणो, असंकामया च वेदगसम्माइट्ठिणो सव्वे चेव; तेसिमेव पाहण्णियादो । तेसिमुभएसिं णियमा अत्थित्तमेदेण सुत्तेण जाणाविदं । जइ एवं, एत्थ 'सिया'–सद्दो ण पयोत्तव्वो त्ति णासंकणिज्जं; उवरिमभयणिज्जभंगसंजोगासंजोगविवक्खाए धुवपदस्स वि कदा-चिक्कभावसिद्धीदो । जयध०

५ कुदो; उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठीणं वेदयसम्माइट्ठीणं च तदप्पयरसंकामयाणं सव्वकालमुवलं-भादो । जयध० ६ कुदो; तेसिं धुवभावित्तादो । तदो सत्तावीसभंगाणमेत्थुप्पत्ती वत्तव्वा । जयध०

७ कुदो; तेसिं सव्वकालमत्थित्तणियमाणुवलंभादो । जयध०

८ एत्थ सेसग्गहणेण भुजगारप्पयरावट्ठिदसंकामयाणं जहासंभवं गहणं कायव्वं । जयध०

४६५. णवरि पुरिसवेदस्सावट्ठिदसंकामया भजियव्वा[1]।

४६६. णाणाजीवेहि कालो एदाणुमाणिय णेदव्वो।

४६७. णाणाजीवेहि अंतरं। ४६८. मिच्छत्तस्स भुजगार-अवत्तव्व*संकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४६९. जहण्णेण एयसमओ[2]। ४७०. उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि[3]। ४७१. अप्पयरसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४७२. णत्थि अंतरं। ४७३. अवट्ठिदसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? ४७४. जहण्णेण एयसमओ। ४७५. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[4]।

संक्रामक और अवस्थितसंक्रामक नियमसे पाये जाते हैं। केवल पुरुषवेदके अवस्थित-संक्रामक भजितव्य हैं ॥४५९-४६५॥

चूर्णिसू०–इस भंगविचयकी अपेक्षा अनुमान करके नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकारादि-संक्रामकोंके कालको जानना चाहिए ॥४६६॥

चूर्णिसू०–अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजाकारादिसंक्रामकोंके अन्तरकालको कहते हैं ॥४६७॥

शंका–मिथ्यात्वके भुजाकार और अवक्तव्यसंक्रामक जीवोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४६८॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात रात्रि-दिवस है? ४६९-४७०॥

शंका–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४७१॥

समाधान–मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तर कभी नहीं होता ॥४७२॥

शंका–मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है? ॥४७३॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥४७४-४७५॥

---

१ कुदो; तेसिमद्धुवभावित्तेण सम्माइट्ठीसु कत्थ वि कदाइमाविब्भावदंसणादो। जयध०

२ भुजगारसंकामयाणं ताव उच्चदे–एक्को वा दो वा तिण्णि वा एवमुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ता वा मिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय गुणसंकमचरिमसमए वट्टमाणा भुजगारसंकामया दिट्ठा, णट्ठो च तदणंतरसमए तेसिं पवाहो। एवमेयसमयमंतरिदपवाहाणं पुणो वि णाणाजीवाणुसंधाणे-णाणंतरसमए समुब्भवो दिट्ठो। विणट्ठंतरं होइ। एवमवत्तव्वसंकामयाणं पि वत्तव्वं। णवरि सम्मत्तं पडि-वण्णपढमसमए आदी कायव्वा। जयध०

३ कुदो; सम्मत्तग्गाहयाणमुक्कस्संतरस्स तप्पमाणत्तोवएसादो। जयध०

४ कुदो; एयवारमवट्ठिदपरिणामेण परिणदणाणाजीवाणमेत्तियमेत्तुक्कस्संतरेण पुणो अवट्ठिदसंकम-हेदुपरिणामविसेसपडिलंभादो। जयध०

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अवत्तव्व' के स्थानपर 'अप्पयर' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १२७७) पर वह अशुद्ध है, क्योंकि 'अल्पतर संक्रामकके' कालका निरूपण आगेके सूत्र नं० ४७१ में किया गया है।

४७६. सम्मत्तस्स भुजगारसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४७७. जहण्णेण एयसमओ । ४७८. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये[1] । ४७९. अप्पयरसंकामयाणं णत्थि अंतरं[2] । ४८०. अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४८१. जहण्णेण एयसमओ[3] । ४८२. उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि[4] ।

४८३. सम्मामिच्छत्तस्स भुजगार-अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि । ४८४. जहण्णेण एयसमओ[5] । ४८५. उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि[6] । ४८६. णवरि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये[7] । ४८७. अप्पयरसंकामयाणं णत्थि अंतरं[8] ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके भुजाकारसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४७६॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौबीस अहोरात्र है ॥४७७-४७८॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिके अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तर नहीं होता है ॥४७९॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिके अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४८०॥

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात रात्रि-दिवस है ॥४८१-४८२॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके भुजाकार और अवक्तव्य संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४८३॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात रात्रि-दिवस है । केवल अवक्तव्यसंक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ अधिक चौबीस अहोरात्र है ॥४८४-४८६॥

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर-संक्रामकोंका अन्तर नहीं होता है । नाना

१ कुदो; उव्वेल्लणापवेसयाणमुक्कस्संतरस्स तप्पमाणत्तोवएसादो । जयध०

२ कुदो; सम्मत्तप्पयरसंकामयाणमुव्वेल्लणापरिणदमिच्छाइट्ठीणमवोच्छिण्णकमेण सव्वद्धमवट्ठाणणियमादो । जयध०

३ सम्मत्तादो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणणाणाजीवाणमेयसमयमेत्तजहण्णंसिद्धीए विसंवादाभावादो । जयध०

४ कुदो; सम्मत्तुप्पत्तिपडिभागेणेव तत्तो मिच्छत्तं गच्छमाणजीवाणमुक्कस्संतरसंभवं पडि विरोहाभावादो । जयध०

५ कुदो; पयदभुजगारावत्तव्वसंकामयणाणाजीवाणमेयसमयमंतरिदाणं पुणो णाणाजीवाणुसंधाणेण तदणंतरसमए तहाभावपरिणामाविरोहादो । जयध०

६ कुदो; सम्मत्तुप्पादयाणमुक्कस्संतरस्स वि तब्भावसिद्धीए पडिबंधाभावादो । जयध०

७ णेदमुक्कस्संतरविहाणं घडंतयमुवसमसम्मत्तग्गाहीणं सत्तरादिंदियमेत्तुक्कस्संतरणियमो; तत्थ विसंवादाणुवलंभादो । किंतु णीसंतकम्मियमिच्छाइट्ठीणमुवसमसम्मत्तं गेण्हमाणाणमेदमुक्कस्संतरमिह सुत्ते विवक्खियं; ससंतकम्मियाणमुवसमसम्मत्तग्गहणे अवत्तव्वसंकमसंभवाणुवलंभादो । जयध०

८ कुदो; सम्मामिच्छत्तप्पयरसंकामयवेदयसम्माइट्ठीणमुव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठीणं च पवाहवोच्छेदेण विणा सव्वद्धमवट्ठाणणियमादो । जयध०

४८८. अणंताणुबंधीणं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामयंतरं णत्थि । ४८९. अवत्तव्वसंकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४९०. जहण्णेण एयसमओ[1] । ४९१. उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे[2] । ४९२. एवं सेसाणं कम्माणं । ४९३. णवरि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सेण वासपुधत्तं[3] । ४९४. पुरिसवेदस्स अवट्ठिदसंकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ । ४९५. उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[4] ।

४९६. अप्पाबहुअं । ४९७. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अवट्ठिदसंकामया[5] । ४९८ अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा[6] । ४९९. भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा[7] । ५००. अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा[8] ।

जीवोंकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी कषायोंके भुजाकार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका कभी अन्तर नहीं होता है ॥४८७-४८८॥

शंका–नाना जीवोंकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी कषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४८९॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक चौबीस अहोरात्र है ॥४९०-४९१॥

चूर्णिसू०–इसीप्रकार शेष कर्मोंके भुजाकारादि संक्रामकोंका अन्तर जानना चाहिए। केवल शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । पुरुषवेदके अवस्थित-संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥४९२-४९५॥

चूर्णिसू०–अब भुजाकारादि संक्रामकोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रामक सबसे कम होते हैं । अवस्थितसंक्रामकोंसे अवक्तव्यसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं। भुजाकार-संक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं ॥४९६-५००॥

१ विसंजोयणादो संजुत्तंतमिच्छाइट्ठीणं जहण्णंतरस्स तप्पमाणत्तादो । जयध०

२ अणंताणुबंधिविसंजोजयाणं व तस्संजोजयाणं पि उक्कस्संतरस्स तप्पमाणत्तसिद्धीए विरोहाभावादो। जयध०

३ किं कारणं; सव्वोवसामणपडिवादुक्कस्संतरस्स तप्पमाणत्तोवलंभणादो । जयध०

४ कुदो; एगवारं पुरिसवेदावट्ठिदसंकमेण परिणदणाणाजीवाणं सुट्ठु बहुअं कालमंतरिदाण-मसंखेज्जलोगमेत्तकाले वोलीणे णियमा तब्भावसंभवोवएसादो । जयध०

५ मिच्छत्तस्सावट्ठिदसंकामया णाम पुव्वुप्पण्णेण सम्मत्तेण मिच्छत्तादो सम्मत्तविपडिवण्णपढमा-वलियमिच्छत्तवट्टमाणा उक्कस्सेण संखेज्जसमयसंचिदा ते सव्वत्थोवा; उवरि भणिस्समाणासेसपदेहिंतो थोव-यरा त्ति वुत्तं होइ । जयध० ।

६ कथं संखेज्जसमयसंचयादो पुव्विल्लादो एयसमयसंचिदो अवत्तव्वसंकामयरासी असंखेज्जगुणो होइ त्ति णेहासंकणिज्जं; कुदो, सम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जदिभागस्सेवावट्ठिदभावेण परिणामब्भुवग-मादो । कुदो; एवमवट्ठिदपरिणामस्स सुट्ठु दुल्लहत्तादो । जयध०

७ किं कारणं; अंतोमुहुत्तमेत्तकालसंचिदत्तादो । जयध०

८ कुदो; छावट्ठिसागरोवममेत्तवेदयसम्मत्तकालब्भंतरसंचयावलंबणादो । जयध०

५०१. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[1]। ५०२. भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा[2]। ५०३. अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा[3]।

५०४. सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[4]। ५०५. अवट्ठिदसंकामया अणंतगुणा[5]। ५०६. अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा[6]।५०७. भुजगारसंकामया संखेज्जगुणा[7]।

५०८. इत्थिवेद-हस्स-रदीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[8]। ५०९. भुजगारसंकामया अणंतगुणा[9]। ५१०. अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा[10]।

५११. पुरिसवेदस्स सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया। ५१२. अवट्ठिदसंकामया

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम होते हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं। भुजाकारसंक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं ॥५०१-५०३॥

चूर्णिसू०–सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम होते हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे अवस्थितसंक्रामक अनन्तगुणित होते हैं। अवस्थितसंक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक असंख्यातगुणित होते हैं। अल्पतरसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक संख्यातगुणित होते हैं ॥५०४-५०७॥

चूर्णिसू०–स्त्रीवेद, हास्य और रतिके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक अनन्तगुणित हैं। भुजाकारसंक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक संख्यातगुणित होते हैं ॥५०८-५१०॥

चूर्णिसू०–पुरुषवेदके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे

१ कुदो; एयसमयसंचयावलंबणादो। जयध०

२ कुदो; अंतोमुहुत्तसंचिदत्तादो। जयध०

३ कुदो; सम्मामिच्छत्तस्स उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठीहि सह छावट्ठिसागरोवमकालब्भंतरसंचिदवेदयसम्माइट्ठिरासिस्स सम्मत्तस्स वि पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तुव्वेल्लणकालब्भंतरसंकलिदरासिस्स गहणादो। जयध०

४ कुदो; अणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगे वट्टमाणाणमेयसमयसंचिदं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं सेसाणं च सव्वोवसामणापडिवादपढमसमए पयट्टमाणसंखेज्जोवसामयजीवाणं गहणादो। जयध०

५ कुदो; संखेज्जसमयसंचिदेइंदियरासिस्स पहाणीभावेणेत्थ विवक्खियत्तादो। जयध०

६ किं कारणं; पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तप्पयरकालसंचयावलंबणादो। जयध०

७ कुदो; धुवबंधीणमप्पयरकालादो भुजगारकालस्स संखेज्जगुणत्तोवएसादो। जयध०

८ संखेज्जोवसामयजीवविसयत्तेण पयदावत्तव्वसंकामयाणं थोवभावसिद्धीए अविरोहादो। जयध०

९ कुदो; अंतोमुहुत्तमेत्तसगकालसंचिदेइंदियरासिस्स गहणादो। जयध०

१० कुदो; सगबंधकालादो संखेज्जगुणपडिवक्खबंधगद्धाए संचिदरासिस्स गहणादो। जयध०

असंखेज्जगुणा[1] । ५१३. भुजगारसंकामया अणंतगुणा[2] । ५१४. अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा[3] ।

५१५. णवुंसयवेद-अरइ-सोगाणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया[4] । ५१६. अप्पयरसंकामया अणंतगुणा[5] । ५१७. भुजगारसंकामया संखेज्जगुणा[6] ।

भुजगारो समत्तो ।

५१८. एत्तो पदणिक्खेवो[7] । ५१९. तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि । ५२०. तं जहा—परूवणा सामित्तमप्पाबहुगं च । ५२१. परूवणा । ५२२. सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च अत्थि[8] । ५२३. एवं जहण्णयस्स वि णेदव्वं । ५२४. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-इत्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमवट्ठाणं णत्थि[9] ।

अवस्थितसंक्रामक असंख्यातगुणित हैं। अवस्थितसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक अनन्तगुणित हैं। भुजाकारसंक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक संख्यातगुणित हैं ॥५११-५१४॥

चूर्णिसू०—नपुंसकवेद, अरति और शोकके अवक्तव्यसंक्रामक सबसे कम हैं। अवक्तव्यसंक्रामकोंसे अल्पतरसंक्रामक अनन्तगुणित हैं। अल्पतरसंक्रामकोंसे भुजाकारसंक्रामक संख्यातगुणित होते हैं ॥५१५-५१७॥

इस प्रकार भुजाकार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे पदनिक्षेप कहते हैं। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं। वे इस प्रकार हैं—प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इनमेंसे पहले प्ररूपणा कहते हैं-सर्वप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार जघन्यके भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका अवस्थान नहीं होता है ॥५१८-५२४॥

१ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तमब्भाइट्ठिजीवाणं पुरिसवेदावट्ठिदसंकमपज्जाएण परिणदाणमुवलंभादो । जयध०

२ सगबंधकालब्भंतरसंचिदेइंदियरासिस्स गहणादो । जयध०

३ पडिवक्खबंधगद्धागुणगारस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

४ संखेज्जोवसामयजीवविसयत्तादो । जयध०

५ किं कारणं; अंतोमुहुत्तमेत्तपडिवक्खबंधगद्धासंचिदेइंदियरासिस्स समवलंबणादो । जयध०

६ कुदो; एदेसिं कम्माण पडिवक्खबंधगद्धादो सगबंधकालस्स संखेज्जगुणत्तोवलंभादो । जयध०

७ को पदणिक्खेवो णाम ? पदाणं णिक्खेवो पदणिक्खेवो, जहण्णुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणपदाणं सामित्तादिणिद्देसमुहेण णिच्छयकरणं पदणिक्खेवो त्ति भण्णदे । जयध०

८ कुदो; सव्वेसिमेव कम्माणं जहाणिद्दिट्ठविसए सव्वुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसरूवेण पदेससंकमपवुत्तीए बाहाणुवलंभादो । जयध०

९ कुदो; सव्वकालमेदेसिं कम्माणमागमणिज्जराणं सरिसत्ताभावादो । जयध०

५२५. सामित्तं । ५२६. मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया वड्डी कस्स ? ५२७. गुणिदकम्मंसियस्स मिच्छत्तक्खवयस्स सव्वसंकामयस्स[1] । ५२८. उक्कस्सिया हाणी कस्स ? ५२९. गुणिदकम्मंसियस्स सम्मत्तमुप्पाएदूण गुणसंकमेण संकामिदूण पढमसमयविज्झादसंकामयस्स[2] । ५३०. उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स ? ५३१. गुणिदकम्मंसिओ पुव्वुप्पण्णेण सम्मत्तेण मिच्छत्तादो सम्मत्तं गदो तं दुसमयसम्माइट्ठिमादिं कादूण जाव आवलियसम्माइट्ठि त्ति एत्थ अण्णदरम्हि समये तप्पाओग्ग-उक्कस्सेण वड्ढिकादूण से काले तत्तियं संकामयमाणस्स तस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं[3] ।

चूर्णिसू०–अब स्वामित्व कहते हैं ॥५२५॥

शंका–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५२६॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक है, मिथ्यात्वका क्षपण कर रहा है, वह जब मिथ्यात्वकी चरम फालिको सर्वसंक्रमणसे संक्रान्त करता है, तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५२७॥

शंका–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥५२८॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक (सातवीं पृथ्वीका नारकी) सम्यक्त्वको उत्पन्न करके गुणसंक्रमणसे मिथ्यात्वका संक्रमण करके विध्यातसंक्रमण प्रारंभ करता है, उसके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५२९॥

शंका–मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? ॥५३०॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक है और पूर्वमें जिसने सम्यक्त्व उत्पन्न किया है, वह मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, उस सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके द्वितीय समयसे लेकर जब तक वह आवली-प्रविष्ट सम्यग्दृष्टि है, तब तक इस अन्तरालके किसी एक समयमें तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट वृद्धि करके तदनन्तर कालमें उतने ही द्रव्यका संक्रमण करता है, तब उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥५३१॥

१ जो गुणिदकम्मंसियो सत्तमाए पुढवीए णेरइयो तत्तो उव्वट्टिदूण सव्वलहुं समयाविरोहेण मणुसेसुप्पजिय गब्भादि-अट्ठवस्साणि गमिय तदो दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो, तस्स अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तचरिमफालिं सव्वसंकमेण संछुहमाणयस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ; तत्थ किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाणमुक्कस्सवड्ढिसरूवेण संकमदंसणादो । जयध०

२ जो गुणिदकम्मंसिओ सत्तमाए पुढवीए णेरइयो अंतोमुहुत्तेण कम्ममुक्कस्सं काहिदि त्ति विवरीयभावमुवगंतूण सम्मत्तुप्पायणाए वावदो, तस्स सव्वुक्कस्सेण गुणसंकमेण मिच्छत्तं संकामेमाणयस्स चरिमसमयगुणसंकमादो पढमसमयविज्झादसंकमे पदिदस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ । तत्थ किंचूणचरिमगुणसंकमदव्वस्स हाणिसरूवेण संभवदंसणादो । जयध०

३ तं जहा–तहा सम्मत्तं पडिवण्णस्स पढमसमए अवत्तव्वसंकमो होइ । पुणो विदियसमए तप्पाओग्गुक्कस्सएण संकमपज्जाएण वड्ढिदस्स वड्ढिसंकमो जायदे । एसो च वड्ढिसंकमो समयपबद्धस्सासंखेज्जदिभागमेत्तो । एवमेदेण तप्पाओग्गुक्कस्सेणासंखेज्जदिभागेण वड्ढिदूण से काले आगमणिज्जराणं सरिसत्तवसेण तत्तियं चेव संकामेमाणयस्स तस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं होदि । एवं तदियादिसमएसु वि तप्पाओग्गुक्कस्सेण

५३२. सम्मत्तस्स उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? ५३३. उव्वेल्लमाणयस्स चरिमसमए*[1]। ५३४. उक्कस्सिया हाणी कस्स ? ५३५. गुणिदकम्मंसियो सम्मत्तमुप्पाएदूण लहुं मिच्छत्तं गओ। तस्स मिच्छाइट्ठिस्स पढमसमए अवत्तव्वसंकमो, विदियसमए उक्कस्सिया हाणी[2]।

५३६. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? ५३७. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंकामयस्स। ५३८. उक्कस्सिया हाणी कस्स ? ५३९. उप्पादिदे सम्मत्ते सम्मामिच्छत्तादो सम्मत्ते जं संकामेदि तं पदेसग्गमंगुलस्सासंखेज्जभागपडिभागं[3]। ५४०.

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५३२॥

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले जीवके चरम स्थितिखंडके चरम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५३३॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥५३४॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्वको उत्पन्न करके लघुकालसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। उस मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें अवक्तव्यसंक्रमण होता है और द्वितीय समयमें उसके सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५३५॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५३६॥

समाधान—गुणितकर्मांशिक जीव जब सर्वसंक्रमणसे सम्यग्मिथ्यात्वको संक्रान्त करता है, तब उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५३७॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥५३८॥

समाधान—उपशमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर सम्यग्मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें जो द्रव्य संक्रमित करता है, वह प्रदेशाग्र अंगुलके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी है।

संकमपज्जाएण वड्ढिदूण तदणंतरसमए तत्तियं चेव संकामेमाणयस्स पयदसामित्तमविरुद्धं णेदव्वं जाव दुचरिमसमए तप्पाओग्गुक्कस्ससंकमवुड्ढीए वड्ढिं कादूण चरिमसमए उक्कस्सावट्ठाणपज्जाएण परिणदावलियसम्माइट्ठि त्ति। एत्तियो चेवुक्कस्सावट्ठाणसामित्तविसयो। जयध०

१ गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सम्मत्तमुप्पाइय, सव्वुक्कस्सियाए पूरणाए सम्मत्तमावूरिय तदो मिच्छत्तं पडिवज्जिय सव्वरहस्सेणुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लमाणयस्स चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमए पयदुक्कस्ससामित्तं होइ। तत्थ किंचूणसव्वसंकमदव्वमेत्तस्स उक्कस्सवड्ढिसरूवेणुवलद्धीदो। जयध०

२ जो गुणिदकम्मंसियो अंतोमुहुत्तेण कम्मं गुणेहिदि त्ति विवरीयं गंतूण सम्मत्तमुप्पाइय सव्वुक्कस्सियाए पूरणाए सम्मत्तमाऊरिय तदो सव्वलहुं मिच्छत्तं गदो, तस्स विदियसमयमिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सिया सम्मत्तपदेससंकमहाणी होइ। कुदो; तत्थ पढमसमयअधापवत्तसंकमादो अवत्तव्वसरूवादो विदियसमए हीयमाणसंकमदव्वस्स उवरिमासेसहाणिदव्वं पेक्खिऊण बहुत्तोवलंभादो। जयध०

३ उवसमसम्मत्ते समुप्पादिदे मिच्छत्तस्सेव सम्मामिच्छत्तस्स वि गुणसंकमो अत्थि चेव; उवसमसम्मत्तविदियसमयप्पहुडि पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए सम्मामिच्छत्तादो सम्मत्तसरूवेण संकमपवुत्तीए बाहाणुवलंभादो। किंतु तहा संकममाणसम्मामिच्छत्तदव्वस्स पडिभागो अंगुलस्सासंखेज्जदिभागो। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'चरिमसमए' इस पदको टीकाका अंग बना दिया है, जब कि इस पदकी टीकाकारने स्वतंत्र व्याख्या की है। (देखो पृ० १२८७)

गुणिदकम्मंसिओ सम्मत्तमुप्पाएदूण लहुं चेव मिच्छत्तं गदो जहण्णियाए मिच्छत्तद्धाए पुण्णाए सम्मत्तं पडिवण्णो। तस्स पढमसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सिया हाणी।

५४१. अणंताणुबंधीणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स? ५४२. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंकामयस्स[1]। ५४३ उक्कस्सिया हाणी कस्स? ५४४. गुणिदकम्मंसिओ तप्पाओग्ग-उक्कस्सयादो अधापवत्तसंकमादो सम्मत्तं पडिवज्जिऊण विज्झादसंकामगो जादो। तस्स पढमसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सिया हाणी। ५४५. उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स? ५४६. जो अधापवत्तसंकमेण तप्पाओग्गुक्कस्सएण वड्ढिदूण अवट्ठिदो, तस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं।

५४७. अट्ठकसायाणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स? ५४८. गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंकामयस्स[2]। ५४९. उक्कस्सिया हाणी कस्स? ५५०. गुणिदकम्मंसियो पढम-

(इसलिए उसकी उत्कृष्ट हानि नहीं होती है।) अतएव जो गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्वको उत्पन्न करके लघुकालसे ही मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और जघन्य मिथ्यात्वकालके पूर्ण होनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, उस प्रथमसमयवर्ती सम्यग्दृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५३९-५४०॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? ॥५४१॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करते हुए जब सर्वसंक्रमणके द्वारा चरम फालिको संक्रान्त करता है, तब उसके अनन्तानुबन्धी कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५४२॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? ॥५४३॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अधःप्रवृत्तसंक्रमणसे सम्यक्त्वको प्राप्त करके विध्यातसंक्रमणको प्राप्त हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती सम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी कषायोंकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५४४॥

शंका–अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है? ॥५४५॥

समाधान–जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अधःप्रवृत्तसंक्रमणसे वृद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है, उसके अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥५४६॥

शंका–आठ मध्यम कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? ॥५४७॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक जीव जब चारित्रमोहकी क्षपणाके समय सर्वसंक्रमणके द्वारा उक्त कषायोंके सर्वद्रव्यका संक्रमण करता है, तब उसके आठों मध्यम कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५४८॥

शंका–आठों कषायोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? ॥५४९॥

---

१ गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सव्वलहुं विसंजोयणाए अब्भुट्ठिदस्स चरिमफालीए सव्वसंकमेण पयदुक्कस्ससामित्तं होइ; तत्थ किंचूणकम्मट्ठिदिसंचयस्स वड्ढिसरूवेण संकंतिदंसणादो। जयध०

२ गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सव्वलहुं खवणाए अब्भुट्ठिय सव्वसंकमेण परिणदम्मि पयदकम्माणमुक्कस्सिया वड्ढी होइ; तत्थ सव्वसंकमेण किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाणं पयदवड्ढिसरूवेण संकंतिदंसणादो। जयध०

दाए कसायउवसामणद्धाए जाधे दुविहस्स कोहस्स चरिमसमयसंकामगो जादो। तदो से काले मदो देवो जादो। तस्स पढमसमयदेवस्स उक्कस्सिया हाणी। ५५१. एवं दुविहमाण-दुविहमाया-दुविहलोहाणं। ५५२. णवरि अप्पप्पणो चरिमसमयसंकामगो होदूण से काले मदो देवो जादो। तस्स पढमसमयदेवस्स उक्कस्सिया हाणी।

५५३. अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स? ५५४. अधापवत्तसंकमेण तप्पाओग्गउक्कस्सएण वड्ढिदूण से काले अवट्ठिदसंकामगो जादो। तस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं। ५५५. कोहसंजलणस्स उक्कस्सिया वड्ढी कस्स? ५५६. जस्स उक्कस्सओ सव्वसंकमो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। ५५७. तस्सेव से काले उक्कस्सिया हाणी। ५५८. णवरि से काले संकमपाओग्गा समयपबद्धा जहण्णा कायव्वा। ५५९. तं जहा। जेसिं से काले आवलियमेत्ताणं समयपबद्धाणं पदेसग्गं संकामिज्जहिदि ते समयपबद्धा तप्पाओग्गजहण्णा। ५६०. एदीए परूवणाए सव्वसंकमं संछुहिदूण जस्स से काले पुव्वपरूविदो

समाधान—गुणितकर्मांशिक जीव प्रथम वार कषाय-उपशमनकालमें जिस समय दोनों मध्यम क्रोधोंके द्रव्यका चरमसमयवर्ती संक्रामक हुआ और तदनन्तर समयमें मर करके देव हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती देवके दोनों क्रोधकषायोंकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५५०॥

चूर्णिसू०—इसीप्रकार दोनों मध्यम मान, दोनों माया और दोनों लोभकषायोंकी उत्कृष्ट हानि जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि मान, माया और लोभमेंसे अपने-अपने द्रव्यका चरमसमयवर्ती संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें मरा और देव हुआ। उस प्रथमसमयवर्ती देवके विवक्षित द्विविध मध्यम मान, माया और लोभकषायकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५५१-५५२॥

शंका—आठों मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? ॥५५३॥

समाधान—जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होकर तदनन्तरकालमें अवस्थित संक्रामक हुआ। उसके आठों मध्यम कषायोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है ॥५५४॥

शंका—संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५५५॥

समाधान—जिस क्षपकके संज्वलनक्रोधका उत्कृष्ट सर्वसंक्रमण होता है, उसके ही संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५५६॥

चूर्णिसू०—उस ही जीवके तदनन्तरकालमें संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट हानि होती है। विशेषता केवल यह है कि तदनन्तर समयमें उसके संक्रमणके योग्य जघन्य समयप्रबद्ध होना चाहिए। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—उत्कृष्ट वृद्धिके अनन्तर समयमें जिन आवलीमात्र नवकबद्ध समयप्रबद्धोंके प्रदेशाग्र संक्रमित होंगे, वे समयप्रबद्ध अपने बंधकालमें तत्प्रायोग्य जघन्य योगसे बँधे हुए होना चाहिए। इस प्ररूपणाके द्वारा उत्कृष्ट वृद्धिरूप प्रदेशाग्र सर्वसंक्रमणसे संक्रान्त होकर जिसके तदनन्तरकालमें पूर्वप्ररूपित (आवलीमात्र नवकबद्ध

संकमो तस्स उकस्सिया हाणी कोहसंजलणस्स । ५६१. तस्सेव से काले उकस्सयमवट्ठाणं । ५६२. जहा कोहसंजलणस्स तहा माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं ।

५६३. लोहसंजलणस्स उकस्सिया वड्ढी कस्स ? ५६४. गुणिदकम्मंसिएण लहुं चत्तारि वारे कसाया उवसामिदा । अपच्छिमे भवे दो वारे कसायोवसामेऊण खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे चरिमसमए अंतरमकदं ताधे उकस्सिया वड्ढी[1] । ५६५. उकस्सिया हाणी कस्स ? ५६६. गुणिदकम्मंसियो तिण्णि वारे कसाए उवसामेऊण चउत्थीए उवसामणाए उवसामेमाणो अंतरे चरिमसमय-अकदे से काले मदो देवो जादो । तस्स समयाहियावलिय-उववण्णस्स-उकस्सिया हाणी । ५६७. उकस्सयमवट्ठाणमपच्चक्खाणावरणभंगो ।

५६८. भय-दुगुंछाणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? ५६९. गुणिदकम्मंसियस्स सव्व-

जघन्य समयप्रबद्धोंका) संक्रमण होगा, उसके संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट हानि होती है । उसही जीवके तदनन्तरकालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । जिस प्रकारसे संज्वलनक्रोधके उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे संज्वलनमान, संज्वलनमाया और पुरुषवेदके उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानकी प्ररूपणा जानना चाहिए ॥५५७-५६२॥

शंका–संज्वलनलोभकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५६३॥

समाधान–जिस गुणितकर्मांशिक जीवने अल्पकालमें ही चार वार कषायोंका उपशमन किया है, वह अन्तिम भवमें दो वार कषायोंका उपशमन करके क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । उसने जिस समय चरम समयमें अन्तरको नहीं किया है, उस समय उसके संज्वलनलोभकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५६४॥

शंका–संज्वलनलोभकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥५६५॥

समाधान–जो गुणितकर्मांशिक जीव तीन वार कषायोंका उपशमन करके चौथी वार उपशामनामें कषायोंका उपशमन करता हुआ चरम समयमें अन्तरको न करके तदनन्तरकालमें मरा और देव हुआ । उस उत्पन्न हुए देवके एक समय अधिक आवलीके होनेपर संज्वलनलोभकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५६६॥

चूर्णिसू०–संज्वलनलोभके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामित्व अप्रत्याख्यानावरणकषायके अवस्थानस्वामित्वके समान जानना चाहिए ॥५६७॥

शंका–भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? ॥५६८॥

समाधान–गुणितकर्मांशिक क्षपक जिस समय इन दोनों प्रकृतियोंके द्रव्यका सर्वसंक्रमण करता है उस समय उसके भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है ॥५६९॥

१ किमट्ठमेसो गुणिदकम्मंसिओ चदुक्खुत्तो कसायोवसामणाए पयट्टाविदो ? अबज्झमाणपयडीहिंतो गुणसंकमेण बहुदव्वसंगहणट्ठं । जयध०

संकामयस्स[1] । ५७०. उक्कस्सिया हाणी कस्स ? ५७१. गुणिदकम्मंसिओ पढमदाए कसाए उवसामेमाणो भय-दुगुंछासु चरिमसमयअणुवसंतासु से काले मदो देवो जादो । तस्स पढमसमयदेवस्स उक्कस्सिया हाणी । ५७२. उक्कस्सयमवट्ठाणमपच्चक्खाणावरणभंगो । ५७३. एवमित्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं । ५७४. णवरि अवट्ठाणं णत्थि ।

५७५. मिच्छत्तस्स जहण्णिया वड्ढी कस्स ? ५७६. जस्स कम्मस्स अवट्ठिद-संकमो अत्थि, तस्स असंखेज्जलोगपडिभागो वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा होइ[2] । ५७७. जस्स कम्मस्स अवट्ठिदसंकमो णत्थि तस्स वड्ढी वा हाणी वा असंखेज्जा लोग-भागो ण लब्भइ[3] । ५७८. एसा परूवणा अट्ठपदभूदा जहण्णियाए वड्ढीए वा हाणीए वा अवट्ठाणस्स वा । ५७९. एदाए परूवणाए मिच्छत्तस्स जहण्णिया वड्ढी हाणी अव-ट्ठाणं वा कस्स ? ५८०. जम्हि तप्पाओग्गजहण्णगेण संकमेण से काले अवट्ठिदसंकमो संभवदि तम्हि जहण्णिया वड्ढी वा हाणी वा । से काले जहण्णयमवट्ठाणं ।

शंका—भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? ॥५७०॥

समाधान—जो गुणितकर्मांशिक जीव प्रथम बार कषायोंका उपशमन करता हुआ भय और जुगुप्साको चरम समयमें उपशान्त न करके तदनन्तर कालमें मरा और देव हुआ । उस प्रथमसमयवर्ती देवके भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट हानि होती है ॥५७१॥

चूर्णिसू०—भय और जुगुप्साके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामित्व अप्रत्याख्यानावरणके उत्कृष्ट अवस्थान-स्वामित्वके समान जानना चाहिए । इसी प्रकार स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि और हानिका स्वामित्व जानना चाहिए । केवल इन कर्मोंका अवस्थान नहीं होता है ॥५७२-५७४॥

शंका—मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जिस कर्मका अवस्थित संक्रमण होता है, उस कर्मकी असंख्यात लोककी प्रतिभागी वृद्धि, अथवा हानि, अथवा अवस्थान होता है । जिस कर्मका अवस्थित संक्रमण नहीं होता है, उस कर्मकी वृद्धि अथवा हानि असंख्यात लोककी प्रतिभागी नहीं प्राप्त होती है । यह प्ररूपणा जघन्य वृद्धि, हानि अथवा अवस्थानकी अर्थपद्भूत है । इस प्ररूपणासे मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि, हानि अथवा अव-स्थान किसके होता है ? ॥५७५-५७९॥

समाधान—जहाँपर तत्प्रायोग्य जघन्य संक्रमणसे तदनन्तर समयमें अवस्थित संक्र-मण संभव है, वहाँपर जघन्य वृद्धि, अथवा हानि होती है और तदनन्तर कालमें जघन्य अवस्थान होता है ॥५८०॥

१ गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण खवगसेढिमारुहिय सव्वसंकमेण परिणदम्मि सव्वुक्कस्सवड्ढिसंभवं पडि विरोहाभावादो । जयध०

२ किं कारणं; अवट्ठाणसंकमपाओग्गपयडीसु एगेगसंतकम्मपक्खेवुत्तरकमेण संतकम्मवियप्पाणं पयदजहण्णवड्ढि हाणि-अवट्ठाणणिबंधणाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो । जयध०

३ किं कारणं; तत्थ तदुवलंभकारणसंतकम्मवियप्पाणमणुप्पत्तीदो । तदो तत्थागमणिज्जरावसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-पडिभागेण संतकम्मस्स वड्ढी वा हाणी वा होइ त्ति तदणुसारेणेव संकमपवुत्ती दट्ठव्वा । जयध०

५८१. सम्मत्तस्स जहण्णिया हाणी कस्स ? ५८२. जो सम्माइट्ठी* तप्पाओग्गजहण्णएण कम्मेण सागरोवमवेछावट्ठी ओगालिदूण मिच्छत्तं गदो। सव्व-महंत-उव्वेल्लणकालेण उव्वेल्लेमाणगस्स तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमए जहण्णिया हाणी। ५८३. तस्सेव से काले जहण्णिया वड्ढी। ५८४. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि।

५८५. अणंताणुबंधीणं जहण्णिया वड्ढी [हाणी अवट्ठाणं च] कस्स ? ५८६. जहण्णगेण एइंदियकम्मेण विसंजोएदूण संजोइदो। तदो ताव गालिदा जाव तेसिं गलिदसेसाणमधापवत्तणिज्जरा जहण्णेण एइंदियसमयपबद्धेण सरिसी जादा त्ति। केवचिरं पुण कालं गालिदस्स अणंताणुबंधीणमधापवत्तणिज्जरा जहण्णएण एइंदियसमयपबद्धेण सरिसी भवदि ? तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागकालं गालिदस्स जहण्णेण एइंदियसमयपबद्धेण सरिसी णिज्जरा भवदि। जहण्णेण एइंदियसमयबद्धेण सरिसी णिज्जरा आवलियाए समयुत्तराए एत्तिएण कालेण होहिदि त्ति तदो मदो एइंदिओ

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य हानि किसके होती है ? ॥५८१॥

समाधान—जो सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य कर्मके साथ दो वार छयासठ सागरोपमकाल बिताकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वह जब सर्व दीर्घ उद्वेलनकालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता हुआ द्विचरम स्थितिखंडके चरम समयमें वर्तमान होता है, तब उसके सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य हानि होती है ॥५८२॥

चूर्णिसू०—उसी जीवके तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य वृद्धि होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि हानिका स्वामित्व जानना चाहिए ॥५८३-५८४॥

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान किसके होता है ? ॥५८५॥

समाधान—जो जघन्य एकेन्द्रिय-सत्कर्मके साथ पंचेन्द्रियोंमें आकर और वहाँ अनन्तानुबन्धी कषायोंका विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही अनन्तानुबन्धी कषायसे संयुक्त हुआ। तदनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर उसने अनन्तानुबन्धीको तब तक गलाया, जब तक कि अनन्तानुबन्धीके गलित-शेष समयप्रबद्धोंकी अधःप्रवृत्तनिर्जरा जघन्य एकेन्द्रिय-समयप्रबद्धके सदृश नहीं हो जाती है।

शंका—कितने कालतक गलानेपर अनन्तानुबन्धी कपायोंकी अधःप्रवृत्तनिर्जरा जघन्य एकेन्द्रिय-समयप्रबद्धके सदृश होती है ?

समाधान—एकेन्द्रियोंमें तत्प्रायोग्य पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमित काल तक गलानेवाले जीवके जघन्य एकेन्द्रिय-समयप्रबद्धके सदृश निर्जरा होती है।

चूर्णिसू०—जब जघन्य एकेन्द्रिय-समयप्रबद्धके सदृश निर्जरा एक समय-अधिक आवली-प्रमित कालसे होगी अर्थात् होनेवाली थी कि तब वह मरा और जघन्ययोगी एके-

---

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'सम्माइट्ठी' के स्थानपर 'सम्मा [मिच्छा] इट्ठी' ऐसा पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १२९७) पता नहीं कोष्ठकके भीतर 'मिच्छा' पदके देनेसे सम्पादकका क्या अभिप्राय है ?

जहण्णजोगी जादो। तस्स समयाहियावलियउववण्णस्स अणंताणुबंधीणं जहण्णिया वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा।

५८७. अट्ठण्हं कसायाणं भय-दुगुंछाणं च जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च कस्स? ५८८. एइंदियकम्मेण जहण्णेण संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो। तेणेव चत्तारि वारे कसायमुवसामिदा। तदो एइंदिए गदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं कालमच्छिऊण उवसामयसमयपबद्धेसु गलिदेसु जाधे बंधेण णिज्जरा सरिसी भवदि ताधे एदेसिं कम्माणं जहण्णिया वड्ढी च हाणी च अवट्ठाणं च।

५८९. चदुसंजलणाणं जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च कस्स? ५९०. कसाए अणुवसामेऊण संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण एइंदिए गदो। जाधे बंधेण णिज्जरा तुल्ला ताधे चदुसंजलणस्स जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च।

५९१. पुरिसवेदस्स जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च कस्स? ५९२. जम्हि अवट्ठाणं तम्हि तप्पाओग्गजहण्णएण कम्मेण जहण्णिया वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा।

न्द्रिय हुआ। उस एक समय-अधिक आवली कालसे उत्पन्न होनेवाले जघन्ययोगी एकेन्द्रिय जीवके अनन्तानुबन्धी कषायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि, अथवा जघन्य अवस्थान होता है ॥५८६॥

शंका—आठों मध्यम कषायोंकी और भय-जुगुप्साकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान किसके होता है? ॥५८७॥

समाधान—जो जघन्य एकेन्द्रियसत्कर्मके साथ संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त हुआ और उसने चार वार कषायोंका उपशमन किया। पुनः वह एकेन्द्रियोंमें चला गया। वहाँ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित कालतक रहकर उपशामककालमें बाँधे-हुए समयप्रबद्धोंके गल जानेपर जिस समय उसके बन्धके सदृश निर्जरा होती है, उस समय उसके इन उपर्युक्त कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है ॥५८८॥

शंका—चारों संज्वलनकषायोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान किसके होता है? ॥५८९॥

समाधान—जो जीव कषायोंका उपशमन करके और संयमासंयम तथा संयमको बहुत वार प्राप्त करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। उसके जिस समय बन्धके तुल्य निर्जरा होती है, उस समय उसके चारों संज्वलनकषायोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है ॥५९०॥

शंका—पुरुषवेदकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान किसके होता है? ॥५९१॥

समाधान—जहाँपर पुरुषवेदके प्रदेशसंक्रमणका अवस्थान संभव है, वहाँपर तत्प्रा-योग्य जघन्य कर्मके साथ वर्तमान जीवके पुरुषवेदकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है ॥५९२॥

५९३. हस्स-रदीणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ? ५९४. एइंदियकम्मेण जहण्णएण संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामेऊण एइंदिए गदो। तदो पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागं कालमच्छिऊण सण्णी जादो। सव्वमहंतिं अरदि-सोगबंधगद्धं कादूण हस्स-रदीओ पबद्धाओ। पढमसमयहस्स-रइबंधगस्स तप्पाओग्गजहण्णओ बंधो च आगमो च तस्स आवलिय-हस्स-रदिबंधमाणस्स जहण्णिया हाणी। ५९५. तस्सेव से काले जहण्णिया वड्ढी। ५९६. अरदिसोगाणमेवं चेव। णवरि पुव्वं हस्स-रदीओ बंधावेयव्वाओ। तदो आवलिय-अरदि-सोगबंधगस्स जहण्णिया हाणी। से काले जहण्णिया वड्ढी।

५९७. एवमित्थिवेद-णवुंसयवेदाणं। ५९८. णवरि जइ इत्थिवेदस्स इच्छसि, पुव्वं णवुंसयवेद-पुरिसवेदे बंधावेदूण पच्छा इत्थिवेदो बंधावेयव्वो। तदो आवलिय-इत्थिवेदबंधमाणयस्स इत्थिवेदस्स जहण्णिया हाणी। से काले जहण्णिया वड्ढी। ५९९. जदि णवुंसयवेदस्स इच्छसि, पुव्वमित्थि-पुरिसवेदे बंधावेदूण पच्छा णवुंसयवेदो

शंका–हास्य और रतिकी जघन्य वृद्धि और हानि किसके होती है ? ॥५९३॥

समाधान–जो जीव जघन्य एकेन्द्रिय-सत्कर्मके साथ संयमासंयम और संयमको बहुत वार प्राप्त करके और चार वार कषायोंका उपशमन करके एकेन्द्रियोंमें गया। वहाँ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित कालतक रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर सर्वमहान् अरति-शोकके बंध-कालको करके हास्य और रतिको बाँधा। प्रथमसमयवर्ती हास्य-रतिके बन्धकके तत्प्रायोग्य जघन्य बन्ध है और जघन्य निर्जरा है। इसप्रकार एक आवली तक हास्य और रतिके बन्ध करनेवाले जीवके हास्य और रतिकी जघन्य हानि होती है। उसके ही तदनन्तर समयमें हास्य और रतिकी जघन्य वृद्धि होती है ॥५९४-५९५॥

चूर्णिसू०–अरति और शोककी जघन्य वृद्धि और हानि भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उसके पहले हास्य और रतिका बन्ध कराना चाहिए। तदनन्तर एक आवलीतक अरति-शोकके बन्ध करनेवाले जीवके अरति-शोककी जघन्य हानि होती है और तदनन्तर कालमें उसके अरति-शोककी जघन्य वृद्धि होती है ॥५९६॥

चूर्णिसू०–इसीप्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धि और हानिका स्वामित्व जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि यदि स्त्रीवेदकी जघन्य वृद्धि और हानि जानना चाहते हो, तो पहले नपुंसकवेद और पुरुषवेदका बंध कराके पीछे स्त्रीवेदका बन्ध कराना चाहिए। तदनन्तर एक आवलीतक स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाले जीवके स्त्रीवेदकी जघन्य हानि होती है और तदनन्तरकालमें उसके स्त्रीवेदकी जघन्य वृद्धि होती है। यदि नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धि और हानि जानना चाहते हो तो पहले स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध कराके पीछे नपुंसकवेदका बन्ध कराना चाहिए। तदनन्तर एक आवली तक

बंधावेयव्वो । तदो आवलियणवुंसयवेदं बंधमाणयस्स जहण्णिया हाणी । से काले जहण्णिया वड्डी ।

६००. अप्पाबहुअं । ६०१. उक्कस्सयं ताव । ६०२. मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवमुक्कस्सयमवट्ठाणं[1] । ६०३. हाणी असंखेज्जगुणा[2] । ६०४. वड्डी असंखेज्जगुणा[3] । ६०५. एवं बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं ।

६०६. सम्मत्तस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी[4] । ६०७. हाणी असंखेज्जगुणा[5] । ६०८. सम्मामिच्छत्तस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी[6] । ६०९. उक्कस्सिया वड्डी असंखेज्जगुणा[7] । ६१०. एवमित्थिवेद-णवुंसयवेदस्स, हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं ।

६११. कोहसंजलणस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी । ६१२. हाणी अवट्ठाणं च विसेसाहियं । ६१३. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं । ६१४. लोहसंज-

---

नपुंसकवेदका बन्ध करनेवाले जीवके नपुंसकवेदकी जघन्य हानि होती है और तदनन्तर कालमें उसके नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धि होती है ॥५९७-५९९॥

चूर्णिसू०–अब पदनिक्षेपसम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं । उसमें पहले उत्कृष्ट अल्पबहुत्व कहते हैं । मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे कम होता है । मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अवस्थानसे उसकी उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणित होती है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानिसे उसकी उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणित होती है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय, भय और जुगुप्साका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥६००-६०५॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे कम होती है । इसकी उत्कृष्ट वृद्धिसे इसीकी उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि सबसे कम होती है । इससे इसीकी उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणित होती है । इसी प्रकार स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके अल्पबहुत्वको जानना चाहिए ॥६०६-६१०॥

चूर्णिसू०–संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे कम होती है । इससे संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान विशेष अधिक होते हैं । इसीप्रकार संज्वलनमान, संज्वलनमाया और पुरुषवेदका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । संज्वलनलोभका उत्कृष्ट अव-

---

१ कुदो; एयसमयपबद्धासंखेज्जदिभागपमाणत्तादो । जयध०

२ किं कारणं; चरिमगुणसंकमादो विज्झादसंकमम्मि पदिदस्स पढमसमयअसंखेज्जसमयपबद्धे हाइदूण हाणी जादा, तेणेदं पदेसग्गमसंखेज्जगुणं भणिदं । जयध०

३ कुदो; सव्वसंकमम्मि उक्कस्सवड्ढिसामित्तावलंबणादो । जयध०

४ किं कारणं; उव्वेल्लणकालब्भंतरे गलिदसेसदव्वस्स चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए लद्धुक्कस्सभावत्तादो । जयध०

५ कुदो; मिच्छत्तं गयस्स विदियसमयम्मि अधापवत्तसंकमेण पडिलद्धुक्कस्सभावत्तादो । जयध०

६ कुदो; अधापवत्तसंकमादो विज्झादसंकमे पदिदपढमसमयसम्माइट्ठिम्मि किंचूणअधापवत्तसंकमदव्वमेत्तुक्कस्सहाणिभावेण परिग्गहादो । जयध०

७ कुदो; दंसणमोहक्खवणाए सव्वसंकमेण तदुक्कस्ससामित्तपडिलंभादो । जयध०

लणस्स सव्वत्थोवमुक्कस्समवट्ठाणं[1] । ६१५. हाणी विसेसाहिया[2] । ६१६. वड्ढी विसेसाहिया ।

६१७. एत्तो जहण्णयं । ६१८. मिच्छत्तस्स सोलसकसाय-पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तुल्लाणि[3] । ६१९. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा जहण्णिया हाणी[4] । ६२०. वड्ढी असंखेज्जगुणा[5] । ६२१. इत्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं सव्वत्थोवा जहण्णिया हाणी[6] । ६२२. वड्ढी विसेसाहिया[7] ।

पदणिक्खेवो समत्तो ।

स्थान सबसे कम होता है । इससे इसीकी उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक होती है । इससे इसीकी उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक होती है ॥६११-६१६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान परस्पर तुल्य होते हैं । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि सबसे कम होती है । इससे इन दोनोंकी जघन्य वृद्धि असंख्यातगुणित होती है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य हानि सबसे कम होती है । जघन्य हानिसे इनकी जघन्य वृद्धि विशेष अधिक होती है ॥६१७-६२२॥

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ किं पमाणमेदमवट्ठिददव्वं ? असंखेज्जसमयपबद्धपमाणमेदं । किं कारणं; तप्पाओग्गुक्कस्सअधापवत्तसंकमेण वड्ढिदूणावट्ठिदम्मि वड्ढिणिमित्तमूलदव्वेण सहावट्ठाणब्भुवगमादो । तदो दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाणमधापवत्तभागहारपडिभागेणासंखेज्जदिभागमेत्तं होदूण सव्वत्थोवमेदं ति घेत्तव्वं । जयध०

२ किं कारणं; उवसमसेढीए सव्वुक्कस्सगुणसंकमदव्वं पडिच्छिय कालं कादूण देवेसुववण्णस्स समयाहियावलियाए अणूणाहियतक्कालभावे अधापवत्तसंकमेण हाणिववहारब्भुवगमादो । जयध०

३ कुदो; पदेसि कम्माणमेगसंतकम्मपक्खेवावलंबणेण जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणं सामित्तपडिलंभादो । जयध०

४ किं कारणं; खविदकम्मंसियदुचरिमुव्वेल्लणखंडयं चरिमफालीए पडिलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

५ कुदो; सम्मत्तस्स चरिमुव्वेल्लणखंडयपढमफालीए गुणसंकमेण जहण्णभावपडिलंभादो । सम्मामिच्छत्तस्स वि दुचरिमुव्वेल्लणखंडयचरिमफालिं संकामिय सम्मत्तं पडिवण्णस्स पढमसमये विज्झादसंकमेण जहण्णसामित्तदंसणादो । जयध०

६ किं कारणं; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण एइंदिएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालं गालिय पुणो सण्णिपंचिंदिएसुप्पज्जिय पडिवक्खबंधगद्धं बोलाविय सगबंधपारंभादो आवलियचरिमसमए वट्टमाणस्स गलिदसेसजहण्णसंतकम्मविसयअधापवत्तसंकमेण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

७ किं कारणं; पुव्वुत्तेणेव कमेणागंतूण सण्णिपंचिंदिएसु अप्पप्पणो पडिवक्खबंधगद्धं गालिय सगबंधपारंभादो समयाहियावलियाए वट्टमाणस्स पुव्विल्लसंतादो विसेसाहियसंतकम्मविसयत्तेण पडिवण्णजहण्णभावत्तादो । जयध०

६२३. वड्ढीए तिण्णि अणियोगद्दाराणि समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च । ६२४. समुक्कित्तणा । ६२५. मिच्छत्तस्स अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी असंखेज्ज-गुणवड्ढि-हाणी, अवट्ठाणमवत्तव्वयं च । ६२६. एवं बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं । ६२७. एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि, णवरि अवट्ठाणं णत्थि । ६२८. सम्मत्तस्स असंखेज्जभाग-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी अवत्तव्वयं च अत्थि । ६२९. तिसंजलण-पुरिसवेदाण-मत्थि चत्तारि वड्ढी चत्तारि हाणीओ अवट्ठाणमवत्तव्वयं च । ६३०. लोहसंजलणस्स अत्थि असंखेज्जभागवड्ढी हाणी अवट्ठाणमवत्तव्वयं च । ६३१. इत्थि-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमत्थि दो वड्ढी हाणीओ अवत्तव्वयं च ।

६३२. सामित्ते अप्पाबहुए च विहासिदे वड्ढी समत्ता भवदि ।

६३३. एत्तो ट्ठाणाणि । ६३४. पदेससंकमट्ठाणाणं परूवणा अप्पाबहुअं च । ६३५. परूवणा जहा । ६३६. मिच्छत्तस्स अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण जहण्णयं संकमट्ठाणं[1] ।

चूर्णिसू०—प्रदेशसंक्रमणसम्बन्धी वृद्धिके तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । उनमेंसे पहले समुत्कीर्तना कहते हैं—मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि होती है, असंख्यातभागहानि होती है, असंख्यातगुणवृद्धि होती है, असंख्यातगुणहानि होती है, अवस्थान होता है और अवक्तव्य होता है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी तथा भय और जुगुप्साकी जानना चाहिए । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी भी वृद्धि-हानि जानना चाहिए । केवल उसका अवस्थान नहीं होता है ॥६२३-६२७॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य होते हैं । संज्वलनक्रोध, मान, माया और पुरुषवेदकी चारों प्रकारकी वृद्धि, चारों प्रकारकी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य होता है । संज्वलनलोभकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, अवस्थान और अवक्तव्यसंक्रमण होता है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि ये दो वृद्धियाँ, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणहानि ये दो हानियाँ और अवक्तव्यसंक्रमण होता है ॥६२८-६३१॥

चूर्णिसू०—समुत्कीर्तनाके अनुसार स्वामित्व और अल्पबहुत्वकी विभाषा करनेपर वृद्धिसम्बन्धी प्ररूपणा समाप्त हो जाती है ॥६३२॥

इस प्रकार वृद्धि अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे प्रदेशसंक्रमणसम्बन्धी स्थानोंको कहते हैं । प्रदेशसंक्रमणस्थानोंके विषयमें प्ररूपणा और अल्पबहुत्व ये दो अनुयोगद्वार होते हैं । उनमें प्ररूपणा इस प्रकार है—अभव्यसिद्धिकोंके योग्य जघन्य कर्मके द्वारा मिथ्यात्वका जघन्य संक्रमस्थान होता है ॥६३३-६३६॥

१ तं कथं; एदेण (अभवसिद्धियपाओग्गेण) जहण्णकम्मेणागंतूण असण्णिपंचिंदिएसुववज्जिय पज्जत्तयदो होदूण तत्थ देवाउअं बंधिय सव्वलहुं कालं कादूण देवेसुववज्जिय छहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तयदो होदूण पढम-

६३७. अणंतम्हि (अण्णं तम्हि) चेव कम्मे असंखेज्जलोगभागुत्तरं संकमट्ठाणं होइ। ६३८. एवं जहण्णए कम्मे असंखेज्जा लोगा संकमट्ठाणाणि[1]। ६३९. तदो पदेसुत्तरे दुपदेसुत्तरे वा, एवमणंतभागुत्तरे वा जहण्णए संतकम्मे ताणि चेव संकमट्ठाणाणि। ६४०. असंखेज्जलोगे भागे पक्खित्ते विदियसंकमट्ठाणपरिवाडी होइ। ६४१. जो जहण्णगो पक्खेवो जहण्णए कम्मसरीरे तदो जो च जहण्णगे कम्मे विदियसंकमट्ठाणविसेसो असंखेज्जगुणो। ६४२. एत्थ वि असंखेज्जा लोगा संकमट्ठाणाणि।

विशेषार्थ–अभव्यसिद्धोंके योग्य जघन्य कर्मसे अभिप्राय यह है कि जो क्षपितकर्मांशिक जीव एकेन्द्रियोंमें कर्मस्थितिपर्यन्त रहा और वहाँपर उसने जो जघन्य कर्म संचित किया, वह अभव्यसिद्धोंके योग्य जघन्य कर्म यहाँ विवक्षित है। इस जघन्य कर्मसे सबसे छोटा संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त जयधवलाकारने दूसरे प्रकारसे भी जघन्य संक्रमस्थानकी उत्पत्ति बतलाई है। वे कहते हैं कि जो जीव जघन्य कर्मके साथ एकेन्द्रियोंसे आकर असंज्ञिपंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पर्याप्त हुआ और अति शीघ्र देवायुका बंध कर मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्त होकर उसने पहले उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त किया। तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको धारण किया और दो बार छयासठ सागरोपम तक वेदकसम्यक्त्वका परिपालनकर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। उस जीवके अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें जघन्य परिणामके कारणभूत विध्यातसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वका सर्वजघन्य प्रदेशसंक्रमणस्थान उत्पन्न होता है।

अब मिथ्यात्वके अजघन्य प्रदेशसंक्रमस्थानका निरूपण करते हैं–

चूर्णिसू०–उस ही सत्कर्ममें असंख्यातलोकप्रमितभागसे अधिक अन्य अर्थात् दूसरा संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। पुनः उसी जघन्य सत्कर्ममें असंख्यात लोकभागसे अधिक तीसरा संक्रमस्थान होता है। इसप्रकार उसी जघन्य सत्कर्ममें असंख्यात लोकप्रमित संक्रमस्थान होते हैं। उससे एक प्रदेश अधिक, दो प्रदेश अधिक, तीन प्रदेश अधिक, चार प्रदेश अधिक, इत्यादि क्रमसे संख्यात प्रदेश अधिक, असंख्यात प्रदेश अधिक और अनन्त भाग अधिक जघन्य सत्कर्ममें वे ही संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं। (यह संक्रमस्थानोंकी प्रथम परिपाटी या परम्परा है।) जघन्य सत्कर्ममें असंख्यात लोकके प्रक्षिप्त करनेपर संक्रमस्थानोंकी दूसरी परिपाटी उत्पन्न होती है। जघन्य कर्मशरीर अर्थात् सत्कर्ममें जो जघन्य प्रक्षेप है, उससे जघन्य सत्कर्मपर जो द्वितीय संक्रमस्थानविशेष है, वह असंख्यातगुणित है। इस द्वितीय संक्रमस्थानपरिपाटीमें भी असंख्यात लोकप्रमाण संक्रमस्थान होते हैं ॥६३७-६४२॥

सम्मत्तमुप्पाइय तदो वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालिय तदवसाणे अंतोमुहुत्तसेसे दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो जो जीवो, तस्स अधापवत्तकरणचरिमसमये वट्टमाणस्स जहण्णपरिणामणिबंधणविज्झादसंकमेण सव्वजहण्णपदेससंकमट्ठाणं होइ। जयध०

1 कुदो; णाणाकालसंबंधिणाणाजीवेहि तदियादिपरिणामट्ठाणेहिं परिवाडीए परिणमाविय तम्मि जहण्णसंतकम्मे संकामिज्जमाणे अवट्ठिदपक्खेवुत्तरकमेण पुव्वविरचिदपरिणामट्ठाणमेत्ताणं चेव संकमट्ठाणाणमुप्पत्तीए परिप्फुडमुवलंभादो। जयध०

६४३. एवं सव्वासु परिवाडीसु । ६४४. णवरि सव्वसंकमे अणंताणि संकमट्ठाणाणि । ६४५. एवं सव्वकम्माणं । ६४६. णवरि लोहसंजलणस्स सव्वसंकमो णत्थि[1] ।

६४७. अप्पाबहुअं । ६४८. सव्वत्थोवाणि लोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि[2] । ६४९. सम्मत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि अणंतगुणाणि[3] । ६५०. अपच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ६५१. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५२. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५३. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५४. पच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५५. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५६ मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५७. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५८. अणंताणुबंधिमाणस्स पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६५९. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६६०. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६६१. लोभे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

चूर्णिसू०—इसीप्रकार सर्वसंक्रमस्थानपरिपाटियोंमें असंख्यात लोकप्रमित संक्रमस्थान होते हैं। केवल सर्वसंक्रमणमें अनन्त संक्रमस्थान होते हैं। जिस प्रकार मिथ्यात्वके संक्रमस्थान होते हैं उसी प्रकार सर्व कर्मोंके संक्रमस्थान जानना चाहिए। केवल संज्वलनलोभका सर्वसंक्रमण नहीं होता है ॥६४३-६४६॥

चूर्णिसू०—अब प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। संज्वलनलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान सबसे कम हैं। संज्वलनलोभसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिसे अप्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं। अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानलोभसे अनन्तानुबन्धीमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धीमानसे अनन्तानुबन्धीक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धीक्रोधसे अनन्तानुबन्धीमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अनन्तानुबन्धीमायासे अनन्तानुबन्धीलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं ॥६४७-६६१॥

१ किं कारणं; परपयडिसंछोहणेण विणा खविदत्तादो। तम्हा लोहसंजलणस्सासंखेज्जलोगमेत्ताणि चेव संकमट्ठाणाणि अधापवत्तसकममस्सिऊण परूवेयव्वाणि त्ति भावत्थो। जयध०

२ कुदो; लोहसंजलणस्स सव्वसंकमाभावेणासंखेज्जलोगमेत्ताणं चेव संकमट्ठाणाणमुवलंभादो। जयध०

३ किं कारणं; अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणसिद्धाणमणंतभागपमाणत्तादो। जयध०

६६२. मिच्छत्तस्स पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि [1]। ६६३. सम्मामिच्छत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि [1]। ६६४. हस्से पदेससंकमट्ठाणाणि अणंतगुणाणि [2]। ६६५. रदीए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६६६. इत्थिवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि [3]। ६६७. सोगे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६६८. अरदीए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६६९. णवुंसयवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६७०. दुगुंछाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि [4]। ६७१. भये पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६७२. पुरिसवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६७३. कोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि [5]। ६७४. माणसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६७५. मायासंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।

६७६. णिरयगईए सव्वत्थोवाणि अपच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि। ६७७. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ६७८. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसा-

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धीलोभसे मिथ्यात्वके प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। सम्यग्मिथ्यात्वसे हास्यमें प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित हैं। हास्यसे रतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। रतिसे स्त्रीवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान संख्यातगुणित हैं। स्त्रीवेदसे शोकमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। शोकसे अरतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अरतिसे नपुंसकवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। जुगुप्सासे भयमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। भयसे पुरुषवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। पुरुषवेदसे संज्वलनक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान संख्यातगुणित हैं। संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। संज्वलनमानसे संज्वलनमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं ॥६६२-६७५॥

चूर्णिसू०–(गतिमार्गणाकी अपेक्षा) नरकगतिमें अप्रत्याख्यानमानके प्रदेशसंक्रमस्थान सबसे कम हैं। अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं। अप्रत्या-

१ किं कारण; मिच्छत्तजहण्णचरिमफालिमुक्कस्सचरिमफालीदो सोहिय सुद्धसेसदव्वादो सम्मामिच्छत्तसुद्धसेसचरिमफालिदव्वस्स गुणसंकमभागहारेण खंडिदेयखंडमेत्तेण अहियत्तदंसणादो, मिच्छाइट्ठिम्मि वि सम्मामिच्छत्तस्स अणंताणं संकमट्ठाणाणमहियाणमुवलंभादो च। जयध०

२ कुदो; देसघाइत्तादो। जयध०

३ कुदो; बंधगद्धापाहम्मादो। जयध०

४ कुदो; धुवबंधित्तेणित्थि पुरिसवेदबंधगद्धासु वि संचयोवलंभादो। जयध०

५ कुदो; कसायचउब्भागेण सह णोकसायभागस्स सव्वस्सेव कोहसंजलणचरिमफालीए सव्वसंकमसरूवेण परिणदस्सुवलंभादो। जयध०

हियाणि । ६७९. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८०. पच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८१. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८२. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८३. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

६८४. मिच्छत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ६८५. हस्से पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ६८६. रदीए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८७. इत्थिवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । ६८८. सोगे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६८९. अरदीए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९०. णवुंसयवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९१. दुगुंछाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९२. भए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९३. पुरिसवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

६९४. माणसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९५. कोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९६. मायासंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९७. लोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ६९८. सम्मत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि अणंतगुणाणि[1] । ६९९. सम्मामिच्छत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि

ख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं ॥६७६-६८३॥

चूर्णिसू०–प्रत्याख्यानलोभसे मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं । मिथ्यात्वसे हास्यमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं । हास्यसे रतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । रतिसे स्त्रीवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान संख्यातगुणित हैं । स्त्रीवेदसे शोकमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । शोकसे अरतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अरतिसे नपुंसकवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । जुगुप्सासे भयमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । भयसे पुरुषवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं ॥६८४-६९३॥

चूर्णिसू०–पुरुषवेदसे संज्वलनमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनलोभसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित हैं । सम्यक्त्व-

१ कुदो; उव्वेल्लणचरिमफालीए सव्वसंकमेणाणंतसंकमट्ठाणसंभवाविसेसे वि दव्वविसेसमस्सिऊण तहाभावोववत्तीदो । जयध०

असंखेज्जगुणाणि । ७००. अणंताणुबंधिमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि[1] । ७०१. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७०२. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७०३. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

७०४. एवं तिरिक्खगइ-देवगईसु वि । ७०५. मणुसगई ओघभंगो ।

प्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं । सम्यग्मिथ्यात्वसे अनन्तानुबन्धीमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं । अनन्तानुबन्धीमानसे अनन्तानुबन्धीक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धीक्रोधसे अनन्तानुबन्धीमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धीमायासे अनन्तानुबन्धीलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं ॥६९४-७०३॥

चूर्णिसू०—इसीप्रकार तिर्यग्गति और देवगतिमें भी प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । मनुष्यगतिसम्बन्धी प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व ओघके समान होता है ॥७०४-७०५॥

विशेषार्थ—यद्यपि चूर्णिकारने देवगतिमें भी प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व नरकगतिके अल्पबहुत्वके समान सामान्यसे कह दिया है तथापि देवोंके अल्पबहुत्वमें थोड़ीसी विशेषता है । वह यह कि अनुदिशसे आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी प्रदेशसंक्रमस्थान नहीं होते हैं । तथा उनमें सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशसंक्रमस्थान सबसे कम होते हैं । सम्यग्मिथ्यात्वसे मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित होते हैं । मिथ्यात्वसे अप्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित होते हैं । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । अप्रत्याख्यानक्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । प्रत्याख्यानलोभसे स्त्रीवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित होते हैं । स्त्रीवेदसे नपुंसकवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान संख्यातगुणित होते हैं । नपुंसकवेदसे हास्यमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित होते हैं । हास्यसे रतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । रतिसे शोकमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । शोकसे अरतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । अरतिसे जुगुप्सामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । जुगुप्सासे भयमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । भयसे पुरुषवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक

१ कुदो; विसंजोयणाचरिमफालीए सव्वसंकमेण समुप्पण्णाणंतसंकमट्ठाणाणं दव्वमाहप्पेण पुव्विल्लसंकमट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणत्तदंसणादो । जयध०

७०६. एइंदिएसु मव्वत्थोवाणि अपच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि । ७०७. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७०८. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७०९. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१०. पच्चक्खाणमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७११. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१२. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१३. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि । विसेसाहियाणि । ७१४. अणंताणुबंधिमाणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१५. कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१६. मायाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७१७. लोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।

७१८. हस्से पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ७१९. रदोए पदेससंकम-

---

होते हैं । पुरुषवेदसे संज्वलनमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । संज्वलनलोभसे अनन्तानुबन्धी मानमें प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित होते हैं । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रदेश संक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें संक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं । तिर्यंचगतिमें भी पंचेन्द्रियतिर्यंच-अपर्याप्तकोंके प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व आगे कहे जानेवाले एकेन्द्रिय जीवोंके अल्पबहुत्वके समान जानना चाहिए । मनुष्य-अपर्याप्तक जीवोंके प्रदेशसंक्रमस्थानोंका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–(इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा) एकेन्द्रियोंमें अप्रत्याख्यानमानके प्रदेशसंक्रमस्थान सबसे कम हैं । अप्रत्याख्यानमानसे अप्रत्याख्यान क्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अप्रत्याख्यान क्रोधसे अप्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अप्रत्याख्यानमायासे अप्रत्याख्यानलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अप्रत्याख्यानलोभसे प्रत्याख्यानमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानमानसे प्रत्याख्यानक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानक्रोधसे प्रत्याख्यानमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानमायासे प्रत्याख्यान लोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानलोभसे अनन्तानुबन्धी मानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धी मानसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धी क्रोधसे अनन्तानुबन्धी मायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अनन्तानुबन्धी मायासे अनन्तानुबन्धी लोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान अधिक हैं ॥७०६-७१७॥

चूर्णिसू०–अनन्तानुबन्धी लोभसे हास्यमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं ।

ट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२०. इत्थिवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । ७२१. सोगे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२२. अरदीए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२३. णवुंसयवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२४. दुगुंछाए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२५. भए पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२६. पुरिसवेदे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२७. माणसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२८. कोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७२९. मायासंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७३०. लोहसंजलणे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । ७३१. सम्मत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि अणंतगुणाणि । ७३२. सम्मामिच्छत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ।

७३३. केण कारणेण णिरयगईए पच्चक्खाणकसायलोभपदेससंकमट्ठाणेहिंतो मिच्छत्ते पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ? ७३४. मिच्छत्तस्स गुणसंकमो अत्थि, पच्चक्खाणकसायलोहस्स गुणसंकमो णत्थि; एदेण कारणेण णिरयगईए पच्चक्खाणकसायलोहपदेससंकमट्ठाणेहिंतो मिच्छत्तस्स पदेससंकमट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ।

७३५. जस्स कम्मस्स सव्वसंकमो णत्थि तस्स कम्मस्स असंखेज्जाणि

हास्यसे रतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । रतिसे स्त्रीवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान संख्यातगुणित हैं । स्त्रीवेदसे शोकमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । शोकसे अरतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । अरतिसे नपुंसकवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । नपुंसकवेदसे जुगुप्सामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । जुगुप्सासे भयमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । भयसे पुरुषवेदमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । पुरुषवेदसे संज्वलनमानमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनमानसे संज्वलनक्रोधमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनक्रोधसे संज्वलनमायामें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलनमायासे संज्वलनलोभमें प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक हैं । संज्वलन लोभसे सम्यक्त्वप्रकृतिमें प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित हैं ॥७१८-७३२॥

शंका—नरकगतिमें प्रत्याख्यानलोभकषायके प्रदेशसंक्रमस्थानोंसे मिथ्यात्वमें प्रदेशसंक्रमस्थान किस कारणसे असंख्यातगुणित होते हैं ? ॥७३३॥

समाधान—मिथ्यात्वका गुणसंक्रमण होता है, किन्तु प्रत्याख्यानलोभकषायका गुणसंक्रमण नहीं होता ; इस कारणसे नरकगतिमें प्रत्याख्यानलोभकषायके प्रदेशसंक्रमस्थानोंसे मिथ्यात्वके प्रदेशसंक्रमस्थान असंख्यातगुणित होते हैं ॥७३४॥

चूर्णिसू०—जिस कर्मका सर्वसंक्रमण नहीं होता है, उस कर्मके प्रदेशसंक्रमस्थान

पदेससंकमट्ठाणाणि। जस्स कम्मस्स सव्वसंकमो अत्थि, तस्स कम्मस्स अणंताणि पदेससंकमट्ठाणाणि।

७३६. माणस्स जहण्णए संतकम्मट्ठाणे असंखेज्जा लोगा पदेससंकमट्ठाणाणि। ७३७. तम्मि चेव जहण्णए माणसंतकम्मे विदियसंकमट्ठाणविसेसस्स असंखेज्जलोगभागमेत्ते पक्खित्ते माणस्स विदियसंकमट्ठाणपरिवाडी। ७३८. तत्तियमेत्ते चेव पदेसग्गे कोहस्स जहण्णसंतकम्मट्ठाणे पक्खित्ते कोहस्स विदियसंकमट्ठाणपरिवाडी। ७३९. एदेण कारणेण माणपदेससंकमट्ठाणाणि थोवाणि, कोहे पदेससंकमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। ७४०. एवं सेसेसु वि कम्मेसु वि णेदव्वाणि।

एवं गुणहीणं वा गुणविसिट्ठमिदि अत्थ-विहासाए समत्ताए
पंचमीए मूलगाहाए अत्थपरूवणा समत्ता।
तदो पदेससंकमो समत्तो।

असंख्यात होते हैं। जिस कर्मका सर्वसंक्रमण होता है, उस कर्मके प्रदेशसंक्रमस्थान अनन्तगुणित होते हैं ॥७३५॥

चूर्णिसू०–मानके जघन्य सत्कर्मस्थानमें असंख्यातलोकप्रमाण प्रदेशसंक्रमस्थान होते हैं। उस ही मानके जघन्य सत्कर्ममें द्वितीय संक्रमस्थानविशेषके असंख्यातलोकभागमात्र प्रक्षिप्त करनेपर मानकी द्वितीय संक्रमस्थानपरिपाटी उत्पन्न होती है। तावन्मात्र ही प्रदेशाग्रके क्रोधके जघन्य सत्कर्मस्थानमें प्रक्षिप्त करनेपर क्रोधकी द्वितीय संक्रमस्थानपरिपाटी उत्पन्न होती है। इस कारणसे मानके प्रदेशसंक्रमस्थान थोड़े होते हैं और क्रोधके प्रदेशसंक्रमस्थान विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार शेष कर्मोंमें भी संक्रमस्थानोंकी हीनाधिकताके कारणकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥७३६-७४०॥

इस प्रकार 'गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं' इस पदकी विभाषाके समाप्त होनेके साथ
पाँचवीं मूलगाथाकी अर्थप्ररूपणा समाप्त हुई।
इस प्रकार प्रदेशसंक्रमण-अधिकार समाप्त हुआ।

वेदग-अत्थाहियारो

१. वेदगे त्ति अणियोगद्दारे दोण्णि अणियोगद्दाराणि । तं जहा–उदयो च उदीरणा च । २. तत्थ चत्तारि सुत्तगाहाओ । ३. तं जहा ।

कदि आवलियं पवेसेइ कदि च पविस्संति कस्स आवलियं ।
खेत्त-भव-काल-पोग्गल-ट्ठिदिविवागोदयखयो दु ॥५९॥

वेदक अर्थाधिकार

कर्मनिके वेदन-रहित सिद्धनिका जयकार ।
करिके भाषूं अति गहन यह वेदक अधिकार ॥

अब कषायप्राभृतके पन्द्रह अधिकारोंमेंसे छठे वेदक नामके अनुयोगद्वारको कहनेके लिए यतिवृषभाचार्य चूर्णिसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–वेदक नामके अनुयोगद्वारमें उदय और उदीरणा नामक दो अनुयोगद्वार हैं ॥१॥

विशेषार्थ–कर्मोंके यथाकाल-जनित फल या विपाकको उदय कहते हैं और उदय-काल आनेके पूर्व ही तपश्चरणादि उपाय-विशेषसे कर्मोंके परिपाचनको उदीरणा कहते हैं। उदय और उदीरणाको कर्म–फलानुभवरूप वेदनकी अपेक्षा 'वेदक' यह संज्ञा दी गई है ।

चूर्णिसू०–इस वेदक नामके अनुयोगद्वारमें चार सूत्र-गाथाएं हैं । वे इस प्रकार हैं ॥२-३॥

प्रयोग-विशेषके द्वारा कितनी कर्म-प्रकृतियोंको उदयावलीके भीतर प्रवेश करता है ? तथा किस जीवके कितनी कर्म-प्रकृतियोंको उदीरणाके विना ही स्थिति-क्षयसे उदयावलीके भीतर प्रवेश करता है ? क्षेत्र, भव, काल और पुद्गलद्रव्यका आश्रय लेकर जो स्थिति-विपाक होता है, उसे उदीरणा कहते हैं और उदय-क्षयको उदय कहते हैं ॥५९॥

विशेषार्थ–यहाँ 'क्षेत्र' पदसे नरकादि क्षेत्रका, 'भव' पदसे जीवोंके एकेन्द्रियादि भवोंका, 'काल' पदसे शिशिर, वसन्त आदि कालका, अथवा बाल, यौवन, वार्धक्य आदि काल-जनित पर्यायोंका और 'पुद्गल' पदसे गंध, ताम्बूल वस्त्र-आभरण आदि इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंका ग्रहण करना चाहिए । कहनेका सारांश यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव आदिका आश्रय लेकर कर्मोंका उदय और उदीरणारूप फल-विपाक होता है ।

को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो को व के य अणुभागे ।
सांतर णिरंतरं वा कदि वा समया दु बोद्धव्वा ॥६०॥
बहुगदरं बहुगदरं से काले को णु थोवदरगं वा ।
अणुसमयमुदीरेंतो कदि वा समयं (ये) उदीरेदि ॥६१॥
जो जं संकामेदि य जं बंधदि जं च जो उदीरेदि ।
तं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥६२॥

कौन जीव किस स्थितिमें प्रवेश करानेवाला है और कौन जीव किस अनुभाग में प्रवेश कराता है । तथा इनका सान्तर और निरन्तर काल कितने समयप्रमाण जानना चाहिए ॥६०॥

विशेषार्थ—यद्यपि गाथाके प्रथम चरणसे स्थिति-उदीरणाका और द्वितीय चरणसे अनुभाग-उदीरणाका उल्लेख किया गया है, तथापि स्थिति-उदीरणा प्रकृति-उदीरणाकी और अनुभाग-उदीरणा प्रदेश-उदीरणाकी अविनाभाविनी है, अतः गाथाके पूर्वार्धसे चारों उदीरणाओंका कथन किया गया समझना चाहिए । गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा उक्त चारों उदीरणाओंकी कालप्ररूपणा और अन्तरप्ररूपणा सूचित की गई है । तथा गाथाके उत्तरार्धमें पठित द्वितीय 'वा' शब्द अनुक्तका समुच्चय करनेवाला है अतः उससे गाथासूत्रकारके द्वारा नहीं कहे गये समुत्कीर्तना आदि शेष अनुयोगद्वारोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विवक्षित समयसे तदनन्तरवर्ती समयमें कौन जीव बहुतकी अर्थात् अधिकसे अधिकतर कर्मोंकी उदीरणा करता है और कौन जीव स्तोकसे स्तोकतर अर्थात् अल्प कर्मोंकी उदीरणा करता है ? तथा प्रतिसमय उदीरणा करता हुआ यह जीव कितने समय तक निरन्तर उदीरणा करता रहता है ॥६१॥

विशेषार्थ—गाथाके प्रथम चरणसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश उदीरणा-सम्बन्धी भुजाकार पदका निर्देश किया गया है और द्वितीय चरणसे उन्हींके अल्पतर पदकी सूचना की गई है । गाथाके पूर्वार्धमें पठित 'वा' शब्दसे अवस्थित और अवक्तव्य पदोंका ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार गाथाके पूर्वार्ध-द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-उदीरणा-विषयक भुजाकार अनुयोगद्वारकी प्ररूपणा की गई है । गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा भुजाकार-विषयक कालानुयोगद्वारकी सूचना की गई है । और इसी देशामर्शक वचनसे शेष समस्त अनुयोगद्वारोंका भी संग्रह करना चाहिए । तथा इसीके द्वारा ही पदनिक्षेप और वृद्धि भी कही गई समझना चाहिए ; क्योंकि भुजाकारके विशेषको पदनिक्षेप और पदनिक्षेप-के विशेषको वृद्धि कहते हैं ।

जो जीव स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्रमें जिसे संक्रमण करता है, जिसे बाँधता है और जिसकी उदीरणा करता है, वह द्रव्य किससे अधिक होता है (और किससे कम होता है) ? ॥६२॥

४. तत्थ पढमिल्लगाहा पयडि-उदीरणाए पयडि-उदए च बद्धा । ५. कदि आवलियं पवेसेदि त्ति एस गाहाए पढमपादो पयडिउदीरणाए । ६. एदं पुण सुत्तं पयडिट्ठाण-उदीरणाए बद्धं । ७. एदं ताव ठवणीयं । ८. एगेगपयडिउदीरणा दुविहा-एगेगमूलपयडिउदीरणा च एगेगुत्तरपयडिउदीरणा च । ९. एदाणि वेवि पत्तेगं चउवीसमणियोगद्दारेहिं मग्गिऊण । १०. तदो पयडिट्ठाणउदीरणा कायव्वा ।

विशेषार्थ—यह गाथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-विषयक बंध, संक्रमण, उदय, उदीरणा तथा सत्तासम्बन्धी जघन्य उत्कृष्ट पदविशिष्ट अल्पबहुत्वका निरूपण करती है। प्रकृतिके विना स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबंधादिका होना असंभव है, अतः यहाँपर 'प्रकृति' पद अनुक्त सिद्ध है । गाथा-पठित 'जो जं संकामेदि' पदसे 'संक्रमण', 'जं बंधदि' पदसे बंध और सत्त्व तथा 'जं च जो उदीरेदि' पदसे उदय और उदीरणाकी सूचना की गई है ।

अब यतिवृषभाचार्य उक्त चारों सूत्र-गाथाओंका क्रमशः व्याख्यान करते हुए पहले प्रथम गाथाका व्याख्यान करते हैं–

चूर्णिसू०—उक्त चारों सूत्र-गाथाओंमेंसे पहली गाथा प्रकृति-उदीरणा और प्रकृति-उदयमें निबद्ध है, अर्थात् इन दोनोंका निरूपण करती है । 'कदि आवलियं पवेसेदि' गाथा-का यह प्रथम पाद प्रकृति-उदीरणासे प्रतिबद्ध है । किन्तु यह सूत्र प्रकृतिस्थान-उदीरणासे सम्बद्ध है और इसे स्थगित करना चाहिए ॥४-७॥

विशेषार्थ—प्रकृति-उदीरणा दो प्रकारकी है—मूलप्रकृति-उदीरणा और उत्तरप्रकृति-उदीरणा । इनमें उत्तरप्रकृति-उदीरणा भी दो प्रकार की है—एकैकोत्तरप्रकृति-उदीरणा और प्रकृतिस्थान-उदीरणा । उक्त सूत्र इसी प्रकृतिस्थान-उदीरणासे सम्बद्ध है, अन्यसे नहीं, यह अभिप्राय जानना चाहिए । यहाँ चूर्णिकार इस प्रकृतिस्थान-उदीरणाका वर्णन स्थगित करते हैं; क्योंकि एकैकप्रकृति-उदीरणाकी प्ररूपणाके विना उसका निरूपण करना असम्भव है ।

चूर्णिसू०—एकैकप्रकृति-उदीरणा दो प्रकारकी है—एकैकमूलप्रकृति-उदीरणा और एकैकोत्तरप्रकृति-उदीरणा । इन दोनों ही प्रकारकी उदीरणाओंको पृथक्-पृथक् चौबीस अनुयोग-द्वारोंसे अनुमार्गण करके तत्पश्चात् प्रकृतिस्थान-उदीरणाका वर्णन करना चाहिए ॥८-१०॥

विशेषार्थ—गणधर-ग्रथित पेज्जदोसपाहुडमें एकैकप्रकृति-उदीरणाके दोनों भेदोंका समुत्कीर्तनासे आदि लेकर अल्पबहुत्व-पर्यन्त चौबीस अनुयोगद्वारोंसे विस्तृत वर्णन किया गया है । चूर्णिकार कसायपाहुडकी रचना संक्षिप्त होनेके कारण अपनी चूर्णिमें भी वैसा विस्तृत वर्णन न करके व्याख्यानाचार्योंके लिए उसे वर्णन करनेका संकेत करके तत्पश्चात् प्रकृतिस्थान-उदीरणाके व्याख्यान करनेके लिए कह रहे हैं । एक समयमें जितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा करना सम्भव है, उतनी प्रकृतियोंके समुदायको प्रकृतिस्थान-उदीरणा कहते हैं ।

११. तत्थ ट्ठाणसमुक्कित्तणा । १२. अत्थि एक्किस्से पयडीए पवेसगो । १३. दोण्हं पयडीणं पवेसगो । १४. तिण्हं पयडीणं पवेसगो णत्थि । १५. चउण्हं पयडीणं पवेसगो । १६. एत्तो पाए णिरंतरमत्थि जाव दसण्हं पयडीणं पवेसगो ।

चूर्णिसू०–उसमें यह स्थानसमुत्कीर्तना है ॥११॥

विशेषार्थ–प्रकृतिस्थान-उदीरणाका वर्णन चूर्णिसूत्रकार समुत्कीर्तना आदि सत्तरह अनुयोगद्वारोंसे करते हुए पहले समुत्कीर्तनासे वर्णन करते हैं। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है–स्थानसमुत्कीर्तना और प्रकृतिसमुत्कीर्तना । इन दोनोंमेंसे पहले स्थानसमुत्कीर्तनाके द्वारा प्रकृति-उदीरणा कही जाती है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–एक प्रकृतिका प्रवेश करनेवाला होता है ॥१२॥

विशेषार्थ–तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेद और चारों संज्वलन कषायोंमेंसे किसी एक कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणीपर आरूढ़ हुए जीवके वेदकी प्रथम स्थितिके आवलिमात्र शेष रह जानेपर वेदकी उदीरणा होना बन्द हो जाती है, तब वह उपशामक या क्षपक जीव एक संज्वलनप्रकृतिकी उदीरणा करनेवाला होता है ।

चूर्णिसू०–दो प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला होता है ॥१३॥

विशेषार्थ–उपशम और क्षपकश्रेणीमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके प्रथम समयसे लगाकर समयाधिक आवलीमात्र वेदकी प्रथमस्थिति रहनेतक तीनों वेदोंमें किसी एक वेद और चारों संज्वलनकषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उदीरणा करनेवाला होता है ।

चूर्णिसू०–तीन प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला नहीं होता ॥१४॥

विशेषार्थ–क्योंकि, पूर्वोक्त दो प्रकृतियोंकी उदीरणा होनेके पूर्व अपूर्वकरणगुणस्थानमें हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमें से किसी एक युगलके युगपत् प्रवेश होनेसे तीन प्रकृतियोंकी उदीरणारूप स्थान नहीं पाया जाता ।

चूर्णिसू०–चार प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला होता है ॥१५॥

विशेषार्थ–औपशमिक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानमें हास्य-रति और अरति-शोक युगलमेंसे किसी एक युगलके साथ किसी एक वेद और किसी एक संज्वलनकषाय इन चार प्रकृतियोंकी एक साथ उदीरणा करता है ।

चूर्णिसू०–यहाँसे लेकर निरन्तर दश प्रकृतियोंतकका प्रवेश करनेवाला होता है ॥१६॥

विशेषार्थ–उपर्युक्त चार प्रकृतियोंकी उदीरणाके स्थानसे लगाकर निरन्तर अर्थात् लगातार दश प्रकृतिरूप स्थान तक मोहप्रकृतियोंकी उदीरणा करता है । अर्थात् उक्त चार प्रकृतिरूप उदीरणास्थानमे भय, जुगुप्सा, किसी एक प्रत्याख्यानावरण कषाय अथवा सम्यक्त्वप्रकृति, इन चारोंमें से किसी एकके प्रवेश करनेपर पाँच प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है । उक्त स्थानमें किसी एक अप्रत्याख्यानावरण कषायके प्रवेश करनेपर छह प्रकृतिरूप

१७. एदेसु ट्ठाणेसु पयडिणिद्देसो कायव्वो भवदि । १८. एयपयडिं पवेसेदि सिया कोहसंजलणं वा, सिया माणसंजलणं वा, सिया मायासंजलणं, सिया लोभसंजलणं वा । १९. एवं चत्तारि भंगा । २०. दोण्हं पयडीणं पवेसगस्स बारस भंगा ।

उदीरणास्थान होता है । उक्त छह प्रकृतिरूप स्थानमें सम्यग्मिथ्यात्व या किसी एक अनन्तानुबन्धीकषायके प्रवेश करनेपर सात प्रकृतिरूप उदीरणास्थान हो जाता है । इसीमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीकषाय इन दोनोंके साथ मिथ्यात्वके और मिलानेपर आठ प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृति, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनसम्बन्धी क्रोधादिचतुष्कमें से कोई एक त्रिक, कोई एक वेद, हास्यादि युगलद्वयमेंसे कोई एक युगल और भय और जुगुप्साकी उदीरणा करनेवालेके नौ प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थानपर मिथ्यात्वको लेकर तथा अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायके और मिला देनेपर दश प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है ।

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त उदीरणास्थानोंमें प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिए ॥१७॥

विशेषार्थ–किन-किन प्रकृतियोंको लेकर कौन-सा स्थान उत्पन्न होता है, इस बातका निर्देश करना आवश्यक है, अन्यथा उदीरणास्थान-विषयक ठीक ज्ञान नहीं हो सकेगा । प्रकृतियोंका निर्देश ऊपरके विशेषार्थमें किया जा चुका है ।

चूर्णिसू०–एक प्रकृतिका प्रवेश करता है–कदाचित् क्रोध संज्वलनका, कदाचित् मानसंज्वलनका, कदाचित् मायासंज्वलनका और कदाचित् लोभसंज्वलन का । इस प्रकार चार भंग होते हैं ॥१८-१९॥

विशेषार्थ–जो जीव एक प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करते हैं, उनके चार विकल्प होते हैं । जो जीव संज्वलन क्रोधकषायके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा है, वह वेदकी प्रथम स्थितिके आवलिमात्र अवशिष्ट रह जानेपर एक संज्वलनक्रोधकी ही उदीरणा करेगा । इसी प्रकार मान, माया और लोभकषायके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उक्त समयपर एक मान, माया अथवा लोभकषायकी ही उदीरणा करेगा । इस प्रकार एक प्रकृतिरूप उदीरणास्थानके चार भंग हो जाते हैं ।

चूर्णिसू०–दो प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके बारह भंग होते हैं ॥२०॥

विशेषार्थ–तीनों वेदोंके साथ चारों संज्वलनकषायोंके अक्ष-परिवर्तनसे बारह भंग होते हैं । अर्थात् पुरुषवेदके साथ क्रमशः संज्वलन क्रोध, मान, माया अथवा लोभकी उदीरणा करनेपर चार भंग, स्त्रीवेदके साथ संज्वलन क्रोध, मान, माया अथवा लोभकी उदीरणा करनेपर चार और नपुंसकवेदके साथ संज्वलन क्रोध, मान, माया अथवा लोभकी उदीरणा करनेपर चार भंग होते हैं । इस प्रकार दो प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालोंके सब मिलानेपर (४ + ४ + ४=१२) बारह भंग होते हैं ।

२१. चउण्हं पयडीणं पवेसगस्स चउवीस भंगा । २२. पंचण्हं पयडीणं पवेसगस्स चत्तारि चउवीस भंगा । २३. छण्हं पयडीणं पवेसगस्स सत्त-चउवीस भंगा ।

चूर्णिसू०–चार प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके चौबीस भंग होते हैं ॥२१॥

विशेषार्थ–हास्य-रति और अरति-शोक युगलमेंसे किसी एक युगलके साथ किसी एक वेद और किसी एक संज्वलनकषायकी उदीरणा करनेपर चार प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है। अतएव उपर्युक्त बारह भंगोंकी उत्पत्ति हास्य-रति युगलके साथ भी संभव है और अरति-शोक युगलके साथ भी। इस प्रकार चार प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले जीवके (१२ × २ = २४) चौबीस भंग होते हैं।

चूर्णिसू०–पाँच प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके चार-गुणित चौबीस भंग होते हैं ॥२२॥

विशेषार्थ–उक्त चार प्रकृतिरूप उदीरणास्थानमें भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्वप्रकृति, अथवा किसी एक प्रत्याख्यानकषायके प्रवेश करनेपर पाँच प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है। अतः उपर्युक्त चौबीस भंगोंको क्रमशः इन चारों प्रकृतियोंकी उदीरणाके साथ मिलानेपर चार-गुणित चौबीस अर्थात् (२४ × ४ = ९६) छ्यानवे भंग होते हैं। इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है–भयप्रकृतिकी उदीरणाके साथ उपर्युक्त २४ भंग, जुगुप्साप्रकृतिकी उदीरणाके साथ २४ भंग, भय और जुगुप्साको छोड़कर सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणाके साथ २४ भंग, इस प्रकार ७२ भंग तो प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतोंके होते हैं। तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टि, अथवा औपशमिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके भय-जुगुप्साके विना प्रत्याख्यानकषायके प्रवेशसे २४ भंग और होते हैं। इसप्रकार सब मिलाकर पाँच प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले जीवके (७२ + २४ = ९६) छ्यानवे भंग होते हैं।

चूर्णिसू०–छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके सात-गुणित चौबीस भंग होते हैं ॥२३॥

विशेषार्थ–उपर्युक्त पाँच प्रकृतिरूप उदीरणास्थानमें भय, जुगुप्सा या अप्रत्याख्यानावरण कषायके मिलानेपर छह प्रकृतिरूप उदीरणास्थान होता है। इस स्थानके सात-गुणित चौबीस अर्थात् (२४ × ७ = १६८) एकसौ अड़सठ भंग होते हैं। वे इस प्रकार हैं–औपशमिकसम्यग्दृष्टि या क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतके भय और जुगुप्साप्रकृतिकी उदीरणाके साथ उपर्युक्त प्रथम २४ भंग, वेदकसम्यग्दृष्टि संयतके भयके विना केवल जुगुप्साप्रकृतिके साथ द्वितीय २४ भंग, उसीके जुगुप्साके विना केवल भयप्रकृतिके साथ तृतीय २४ भंग, इस प्रकार संयतके आश्रयसे तीन चौबीस (२४ + २४ + २४ = ७२) भंग होते हैं। पुनः औपशमिक या क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतके जुगुप्साके विना प्रत्याख्यानावरण कषायके किसी एक भेदके साथ भयप्रकृतिका वेदन करनेपर चतुर्थ २४ भंग होते हैं। इसी जीवके भयके विना किसी एक प्रत्याख्यानावरण कषाय और जुगुप्साके साथ पंचम

२४. सत्तण्हं पयडीणं पवेसगस्स दस-चउवीस भंगा । २५. अट्ठण्हं पयडीणं पवेसगस्स एक्कारस-चउवीस भंगा ।

२४ भंग, भय-जुगुप्साके उदयसे रहित वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके किसी एक अप्रत्याख्यानावरणकषायकी उदीरणा करनेपर षष्ठ २४ भंग तथा औपशमिक या क्षायिकसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टिके भय-जुगुप्साके विना किसी एक अप्रत्याख्यानावरण कषायकी उदीरणा करनेपर सप्तम २४ भंग होते हैं । इस प्रकार सब मिलकर छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालोंके एकसौ अड़सठ (१६८) भंग होते हैं ।

चूर्णिसू०—सात प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके दस-गुणित चौबीस भंग होते हैं ॥२४॥

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वी प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतके सम्यक्त्वप्रकृति, किसी एक संज्वलनकषाय, किसी एक वेद, हास्य, अरति युगलमेंसे किसी एक युगल, भय और जुगुप्साके आश्रयसे प्रथम २४ भंग उत्पन्न होते हैं । औपशमिक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि संयतासंयतके किसी एक प्रत्याख्यानावरणकषाय, भय और जुगुप्साके साथ द्वितीय २४ भंग, वेदकसम्यक्त्वी संयतासंयतके सम्यक्त्वप्रकृति और भयप्रकृतिके साथ तृतीय २४ भंग, उसीके भयके विना और जुगुप्साके साथ चतुर्थ २४ भंग होते हैं । औपशमिक या क्षायिकसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टिके भय और किसी एक अप्रत्याख्यानावरणकषायके साथ पंचम २४ भंग उसीके भयके विना और जुगुप्साके साथ षष्ठ २४ भंग तथा वेदकसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टिके भय-जुगुप्साके विना और सम्यक्त्वप्रकृतिके साथ सप्तम २४ भंग होते हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके भय-जुगुप्साके विना सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके साथ अष्टम २४ भंग, सासादनसम्यग्दृष्टिके भय-जुगुप्साके विना किसी एक अनन्तानुबन्धी कषायके प्रवेशसे नवम २४ भंग और संयुक्त प्रथमावलीमें वर्तमान मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धी, भय, जुगुप्साके विना दशम २४ भंग होते हैं । इसप्रकार सब मिलाकर (२४ × १०=२४०) दो सौ चालीस भंग सात प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके होते हैं ।

चूर्णिसू०—आठ प्रकृतियोंकी उदारणा करनेवालेके ग्यारह गुणित चौबीस भंग होते हैं ॥२५॥

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वी संयतासंयतके सम्यक्त्वप्रकृति, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनसंबंधी एक-एक कषाय, कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलमें से एक भय और जुगुप्सा इन आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, अतः इनकी अपेक्षा प्रथम २४ भंग, औपशमिक या क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतके सम्यक्त्वप्रकृतिके विना और अप्रत्याख्यानावरणके साथ उन्हीं प्रकृतियोंके ग्रहण करनेपर द्वितीय २४ भंग, वेदकसम्यक्त्वी असंयतके जुगुप्साके विना और भयके साथ तृतीय २४ भंग, भयके विना और जुगुप्साके साथ चतुर्थ २४ भंग, सम्यग्मिथ्यादृष्टिके जुगुप्साके विना और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके साथ पंचम २४ भंग,

२६. णवण्हं पयडीणं पवेसगस्स छ-चदुवीस भंगा[11]। २७. दसण्हं पयडीणं पवेसगस्स एक्क-चदुवीस भंगा[12]। २८. एदेसि भंगाणं गाहा दसण्हमुदीरणट्ठाणमादिं कादूण। २९. तं जहा।

उसीके भयके विना और जुगुप्साके साथ षष्ठ २४ भंग होते हैं। भयकी उदीरणा करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके जुगुप्साके विना तथा अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायके प्रवेशसे सप्तम २४ भंग, उसीके भयके विना जुगुप्साकी उदीरणा करनेपर अष्टम २४ भंग, संयुक्त प्रथमावली-में वर्तमान मिथ्यादृष्टिके भयके साथ मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेपर नवम २४ भंग, भयके विना और जुगुप्साके साथ मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेवाले उक्त मिथ्यादृष्टिके दशम २४ भंग; तथा भय और जुगुप्साके विना अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायके साथ मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेवाले उक्त जीवके एकादशम २४ भंग होते हैं। इस प्रकार आठ प्रकृतियोंकी उदीरणारूप स्थानके सब मिलाकर (२४ × ११=२६४) दो सौ छयासठ भंग होते हैं।

चूर्णिसू०–नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके छह गुणित चौबीस भंग होते हैं ॥२६॥

विशेषार्थ–सम्यक्त्वप्रकृति, प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण, संज्वलनसम्बन्धी क्रोधादि चतुष्टयमेंसे कोई एक कषाय, तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति शोकमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले असंयत वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम २४ भंग होते हैं। उक्त प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृतिको निकालकर और सम्यग्मिथ्यात्वको मिलाकर उसकी उदीरणा करनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके द्वितीय २४ भंग होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके स्थानपर किसी एक अनन्तानुबन्धीके प्रवेश करनेपर उसकी उदीरणा करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके तीसरे प्रकारसे २४ भंग होते हैं। अनन्तानुबन्धीके स्थान-पर मिथ्यात्वप्रकृतिके प्रवेश करनेपर संयुक्त-प्रथमावलीवाले मिथ्यात्वके साथ उपर्युक्त आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले मिथ्यादृष्टिके चतुर्थ २४ भंग, उसीके अनन्तानुबन्धी किसी एककी भयके विना जुगुप्साके साथ उदीरणा करनेपर पंचम २४ भंग, उसीके जुगुप्साके विना भयके साथ उक्त प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके छठे प्रकारसे २४ भंग होते हैं। इस प्रकार सब भंगोंका योग (२४ × ६=१४४) एकसौ चवालीस होता है।

चूर्णिसू०–दश प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेके एक ही प्रकारसे चौबीस भंग होते हैं ॥२७॥

विशेषार्थ–मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्ध्यादिचतुष्टयमेंसे कोई एक कषायचतुष्क, तीन वेदोंमें से कोई एक वेद, हास्यादि युगलद्वयमें से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन दश प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके २४ भंग होते हैं। यहाँ अन्य किसी विकल्पके संभव न होनेसे एक ही प्रकारसे चौबीस भंग कहे गये हैं।

चूर्णिसू०–दश प्रकृतियोंके उदीरणास्थानको आदि लेकरके ऊपर बतलाये गये भंगों-की निरूपण करनेवाली गाथा इस प्रकार है॥२८-२९॥

"एक्कग छक्केकारस दस सत्त चउक्क एक्कगं चेव ।
दोसु च बारस भंगा एकम्हि य होंति चत्तारि" ॥१॥

३०. *सामित्तं । ३१. सामित्तस्स साहणट्ठमिमाओ दो सुत्तगाहाओ । ३२. तं जहा ।

"सत्तादि दसुक्कस्सा मिच्छत्ते मिस्सए णवुक्कस्सा ।
छादी णव उक्कस्सा अविरदसम्मे दु आदिस्से ॥२॥
पंचादि-अट्ठणिहणा विरदाविरदे उदीरणट्ठाणा ।
एगादी तिगरहिदा सत्तुक्कस्सा च विरदेसु" ॥३॥

३३. एदासु दोसु गाहासु विहासिदासु सामित्तं समत्तं भवदि ।

"दशप्रकृतिरूप स्थानके भंग एक, नौप्रकृतिरूप स्थानके छह, आठप्रकृतिरूप स्थानके ग्यारह, सातप्रकृतिरूप स्थानके दश, छहप्रकृतिरूप स्थानके सात, पाँचप्रकृतिरूप स्थानके चार, चारप्रकृतिरूप स्थानके एक, दोप्रकृतिरूप स्थानके बारह और एकप्रकृतिरूप स्थानके चार भंग होते हैं" ॥१॥

विशेषार्थ–उक्त स्थानोंके भंगोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है–

१०	९	८	७	६	५	४	२	१
१	६	११	१०	७	४	१	१२	४

इन सब भंगोंका योग (२४+१४४+२६४+२४०+१६८+९६+२४+१२+४=९७६) नौ सौ छिहत्तर होता है ।

चूर्णिसू०–अब उपर्युक्त उदीरणास्थानोंके स्वामित्वका वर्णन करते हैं । स्वामित्वके साधन करनेके लिए ये दो सूत्रगाथाएँ हैं । वे इस प्रकार हैं ॥३०-३२॥

"सातसे आदि लेकर दश तकके चार उदीरणास्थान मिथ्यादृष्टिके होते हैं । सातसे आदि लेकर नौ तकके तीन उदीरणास्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होते हैं । (ये ही तीन स्थान सासादनसम्यग्दृष्टिके भी होते हैं, किन्तु उसके सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके स्थानपर किसी एक अनन्तानुबन्धी कषायकी उदीरणा होती है ।) छहसे आदि लेकर नौ तकके चार उदीरणा-स्थान अविरतसम्यग्दृष्टिके होते हैं । पाँचसे आदि लेकर आठ तकके चार उदीरणास्थान विरताविरत श्रावकके होते हैं । एकसे आदि लेकर मध्यमें तीन रहित सात तकके छह स्थान संयतोंमें होते हैं" ॥२-३॥

चूर्णिसू०–इन दोनों गाथाओंकी व्याख्या करनेपर स्वामित्व समाप्त होता है ॥३३॥

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके पूर्व 'एत्थ सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमो ताव कायव्वो' यह एक और सूत्र मुद्रित है (देखो पृ० १३६३) । पर प्रकरणको देखते हुए वह सूत्र नहीं, अपि तु टीका-का ही अंग प्रतीत होता है, क्योंकि चूर्णिकारने कहीं भी सादि आदि अनुयोगद्वारोंको नहीं कहा है ।

३४. एयजीवेण कालो। ३५. एक्किस्से दोण्हं चदुण्हं पंचण्हं छण्हं सत्तण्हं अट्ठण्हं णवण्हं दसण्हं पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? ३६. जहण्णेण एयसमओ। ३७. उक्कस्सेणंतोमुहुत्तं।

३८. एगजीवेण अंतरं। ३९. एक्किस्से दोण्हं चउण्हं पयडीणं पवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ४१. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

४२. पंचण्हं छण्हं सत्तण्हं पयडीणं पवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४३. जहण्णेण एयसमओ। ४४. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

४५. अट्ठण्हं णवण्हं पयडीणं पवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४६. जहण्णेण एयसमयो। ४७. उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।

४८. दसण्हं पयडीणं पवेसगस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४९. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ५०. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।

५१. णाणाजीवेहि भंगविचयो। ५२. सव्वजीवा दसण्हं णवण्हमट्ठण्हं सत्तण्हं

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा उदीरणास्थानोंके कालका वर्णन करते हैं॥३४॥

शंका–एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दश प्रकृतियोंकी उदीरणाका कितना काल है ? ॥३५॥

समाधान–जघन्यकाल समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥३६-३७॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा उदीरणा-स्थानोंके अन्तरका वर्णन करते हैं ॥३८॥

शंका–एक, दो और चार प्रकृतिरूप उदीरणा स्थानोंका अन्तर काल कितना है ? ॥३९॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥४०-४१॥

शंका–पांच, छह और सात प्रकृतिरूप उदीरणा-स्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४२॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल-परिवर्तन है ॥४३-४४॥

शंका–आठ और नौ प्रकृतिरूप उदीरणा-स्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥४५॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल देशोन पूर्व-कोटी वर्ष है ॥४६-४७॥

शंका–दश प्रकृतिरूप उदीरणास्थानका अन्तरकाल कितना है ? ॥४८॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो वार छ्यासठ सागरोपम है ॥४९-५०॥

चूर्णिसू०–अब नाना जीवोंकी अपेक्षा उदीरणास्थानोंका भंगविचय कहते हैं–सर्व

छण्हं पंचण्हं चदुण्हं णियमा पवेसगा। ५३. दोण्हमेकिस्से पवेसगा भजियव्वा।

५४. णाणाजीवेहि कालो। ५५. एक्किस्से दोण्हं पवेसगा केवचिरं कालादो होंति ? ५६. जहण्णेण एयसमओ। ५७. उकस्सेण अंतोमुहुत्तं। ५८. सेसाणं पयडीणं पवेसगा* सव्वद्धा।

५९. णाणाजीवेहि अंतरं। ६०. एक्किस्से दोण्हं पवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ६१. जहण्णेण एयसमओ। ६२. उकस्सेण छम्मासा। ६३. सेसाणं पयडीणं पवेसगाणं णत्थि अंतरं।

६४. सण्णियासो। ६५. एक्किस्से पवेसगो दोण्हमपवेसगो। ६६. एवं सेसाणं।

जीव नियमसे दश, नौ, आठ, सात, छह, पाँच और चार प्रकृतिरूप स्थानोंकी उदीरणा करनेवाले सर्व काल पाये जाते हैं। (क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त स्थानोंकी उदीरणा करनेवाले जीवोंका कभी विच्छेद नहीं पाया जाता।) किन्तु दो और एक प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले जीव भजितव्य हैं। (क्योंकि, उपशम और क्षपक श्रेणीपर चढ़नेवाले जीव सदा नहीं पाये जाते।) ॥५१-५३॥

चूर्णिसू०-अब नाना जीवोंकी अपेक्षा उदीरणास्थानोंका काल कहते हैं ॥५४॥

शंका-एक और दो प्रकृतिरूप स्थानोंकी उदीरणा करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? ॥५५॥

समाधान-जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। (क्योंकि, उपशम या क्षपकश्रेणीका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही है) शेष प्रकृतिरूप स्थानोंकी उदीरणा करनेवाले सर्व काल पाये जाते हैं ॥५६-५८॥

चूर्णिसू०-अब नाना जीवोंकी अपेक्षा उदीरणास्थानोंका अन्तर कहते हैं ॥५९॥

शंका-एक और दो प्रकृतिरूप उदीरणास्थानोंका अन्तरकाल कितना है ? ॥६०॥

समाधान-जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है। (क्योंकि, क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट विरहकाल छह मास होता है।) ॥६१-६२॥

चूर्णिसू०-शेष प्रकृतिरूप उदीरणास्थानोंका अन्तर नहीं होता। (क्योंकि, उनकी उदीरणा करनेवाले जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।) ॥६३॥

चूर्णिसू०-अब उदीरणास्थानोंके सन्निकर्षका वर्णन करते हैं-एक प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाला दो प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा नहीं करता है। (क्योंकि स्वामि-भेदकी अपेक्षा दोनों परस्पर-विरोधी स्वभाववाले हैं।) इसीप्रकार शेष उदीरणास्थानोंका सन्निकर्ष जानना चाहिए ॥६४-६६॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पवेसगा केवचिरं कालादो होदि' ऐसा पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १३७२)

६७. अप्पाबहुअं। ६८. सव्वत्थोवा एक्किस्से पवेसगा[1]। ६९. दोण्हं पवेसगा संखेज्जगुणा[2]। ७०. चउण्हं पयडीणं पवेसगा संखेज्जगुणा[3]। ७१. पंचण्हं पयडीणं पवेसगा असंखेज्जगुणा[4]। ७२. छण्हं पयडीणं पवेसगा असंखेज्जगुणा[5]। ७३. सत्तण्हं पयडीणं पवेसगा असंखेज्जगुणा[6]। ७४. दसण्हं पयडीणं पवेसगा अणंतगुणा[7]। ७५. णवण्हं पयडीणं पवेसगा संखेज्जगुणा[8]। ७६. अट्ठण्हं पयडीणं पवेसगा संखेज्जगुणा[9]।

७७. णिरयगदीए सव्वत्थोवा छण्हं पयडीणं पवेसगा[10]। ७८. सत्तण्हं पयडीणं

चूर्णिसू०–अब उदीरणास्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं–एक प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले सबसे कम हैं। एक प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे दो प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं। दो प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे चारप्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं। चारप्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे पाँच प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। पाँचप्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे छह प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। छह प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे सात प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले असंख्यातगुणित हैं। सात प्रकृतिरूपस्थानके उदीरकोंसे दश प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले अनन्तगुणित हैं। दशप्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे नौ प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं। नौ प्रकृतिरूप-स्थानके उदीरकोंसे आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं ॥६७-७६॥

चूर्णिसू०–नरकगतिमें छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले सबसे कम हैं। छह प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे सात प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले असंख्यातगुणित हैं।

१ कुदो; सुहुमसांपराइयद्धाए अणियट्टियद्धासंखेज्जदिभागे च संचिदखवगोवसामगजीवाणमिहग्गहणादो। जयध०

२ कुदो; अणियट्टिपढमसमयप्पहुडि तदद्धाए संखेज्जेसु भागेसु संचिदखवगोवसामगजीवाणमिहावलंबणादो। जयध०

३ किं कारणं; उवसम-खइयसम्माइट्ठिस्स पमत्तापमत्तसंजदाणमपुव्वकरणखवगोवसामगाणं च भय-दुगुंछोदयविरहिदाणमेत्थ गहणादो। जयध०

४ कुदो; उवसम-खइयसम्माइट्ठिसंजदासंजदरासिस्स संखेज्जाणं भागाणमेत्थ पहाणभावेणावलंबियत्तादो। जयध०

५ कुदो; वेदगसम्माइट्ठिसंजदासंजदाणं संखेज्जेहि भागेहि सह उवसम-खइयसम्माइट्ठि-असंजदरासिस्स संखेज्जाणं भागाणमिह पहाणभावदंसणादो। जयध०

६ कुदो; खइयसम्माइट्ठीणं संखेज्जदिभागेण सह वेदगसम्माइट्ठि-असंजदरासिस्स संखेज्जाणं भागाणमिह पहाणत्तदंसणादो। जयध०

७ कुदो; मिच्छाइट्ठिरासिस्स संखेज्जदिभागपमाणत्तादो। जयध०

८ कुदो; भय-दुगुंछाणं दोण्हं पि समुदिदाणमुदयकालादो अण्णदरविरहिदकालस्स संखेज्जगुणत्तोवएसादो। जयध०

९ किं कारणं; अण्णदरविरहकालादो दोण्हं हि विरहिदकालस्स संखेज्जगुणत्तावलंबणादो। जयध०

१० किं कारणं; उवसम-खइयसम्माइट्ठिजीवाणं पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणाणमिह गहणादो। जयध०

पवेसगा असंखेज्जगुणा[1] । ७९. दसण्हं पयडीणं पवेसगा असंखेज्जगुणा[2] । ८०. णवण्हं पयडीणं पवेसगा संखेज्जगुणा[3] । ८१. अट्ठण्हं पयडीणं पवेसगा संखेज्जगुणा[4] ।

प्रकृतिस्थान-उदीरणा समत्ता ।

८२. एत्तो भुजगार-पवेसगो । ८३. तत्थ अट्ठपदं कायव्वं[5] । ८४. तदो

सात प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे दश प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले असंख्यातगुणित हैं । दश प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं । नौ प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकोंसे आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले संख्यातगुणित हैं । (इसी प्रकार शेष गतियोंमें और अवशिष्ट मार्गणाओंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।)॥७७-८१॥

इस प्रकार प्रकृतिस्थान-उदीरणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०-अब इससे आगे भुजाकार-उदीरणा कहते हैं । उसमें पहले अर्थपदकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥८२-८३॥

विशेषार्थ-भुजाकार उदीरककी प्ररूपणा करनेके पूर्व अर्थपदकी प्ररूपणा करना आवश्यक है, अन्यथा भुजाकार आदि पद-विशेषोंका निर्णय नहीं हो सकता है । चूर्णिकार-ने भुजाकार आदि पदोंकी अर्थपद-प्ररूपणा स्वयं न करके व्याख्यानाचार्योंके लिए इस सूत्र द्वारा सूचनामात्र कर दी है । अतः जयधवला टीकाके आधारपर वह यहाँ की जाती है- अनन्तर-अतिक्रान्त समयमें स्तोकतर (थोड़ी-सी) प्रकृतियोंकी उदीरणा करके वर्तमान समयमें उससे अधिक प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवालेको भुजाकार-उदीरक कहते हैं । अनन्तर-अतीत समयमें बहुतर (बहुत अधिक) प्रकृतियोंकी उदीरणा करके वर्तमान समयमें उससे अल्प प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले जीवको अल्पतर-उदीरक कहते हैं । अनन्तर-अतीत समयमें जितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा कर रहा था, उतनी ही प्रकृतियोंकी वर्तमान समयमें भी उदी-रणा करनेवालेको अवस्थित-उदीरक कहते हैं । अनन्तर-अतिक्रान्त समयमें एक भी प्रकृतिकी उदीरणा न करके जो इस वर्तमान समयमें उदीरणा करना प्रारम्भ करता है, उसे अवक्तव्य-उदीरक कहते हैं । इस अर्थपदके द्वारा स्वामित्वका निर्णय करना चाहिए ।

१ कुदो; वेदयसम्माइट्ठिरासिस्स पहाणभावेणेत्थ विवक्खियत्तादो । जयध०

२ किं कारणं; भय-दुगुंछोदयसहिदमिच्छाइट्ठिरासिस्स विवक्खियत्तादो । जयध०

३ कुदो; भय-दुगुंछाणमण्णदरोदयविरहिदकालम्मि दोण्हमुदयकालादो संखेज्जगुणम्मि संचिदत्तादो। जयध०

४ कुदो; अण्णदरविरहिदकालादो संखेज्जगुणम्मि दोण्हं विरहिदकालसंचिदत्तादो । जयध०

५ तं जहा-अणंतरादिक्कंतसमए थोवयरपयडिपवेसादो एण्हिं बहुदरियाओ पयडीओ पवेसेदि त्ति एसो भुजगारपवेसगो । अणंतरवदिक्कंतसमए बहुदरपयडिपवेसादो एण्हिं थोवयरपयडीओ पवेसेदि त्ति एसो अप्पदरपवेसगो । अणंतरविदिक्कंतसमए एण्हिं च तत्तियाओ चेव पयडीओ पवेसेदि त्ति एसो अवट्ठिदपवे-सगो । अणंतरविदिक्कंतसमए अपवेसगो होदूण एण्हिं पवेसेदि त्ति एस अवत्तव्वपवेसगो । जयध०

सामित्तं । ८५. भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदपवेसगो को होइ ? ८६. अण्णदरो । ८७. अवत्तव्वपवेसगो को होइ ? ८८. अण्णदरो उवसामणादो परिवदमाणगो[1] ।

८९. एगजीवेण कालो । ९०. भुजगारपवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? ९१. जहण्णेण एयसमओ । ९२. उक्कस्सेण चत्तारि समया ।

चूर्णिसू०–अब भुजाकार-उदीरणाके स्वामित्वका वर्णन करते हैं ॥८४॥

शंका–भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित उदीरणा करनेवाला कौन है ? ॥८५॥

समाधान–कोई एक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव है ॥८६॥

शंका–अवक्तव्य-उदीरणा करनेवाला कौन जीव है ? ॥८७॥

समाधान–उपशामनासे गिरनेवाला कोई एक जीव है ॥८८॥

विशेषार्थ–भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित उदीरणा करनेवाले जीव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं । किन्तु अवक्तव्य-उदीरणा करनेवाला मोहके सर्वोपशमसे ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरकर एक प्रकृतिकी उदीरणा प्रारंभ करनेवाला प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायसंयत या मरकर देवगतिमें उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्ती देव होता है । इन दोनों बातोंके बतलानेके लिए सूत्रमें 'अन्यतर' पद दिया है ।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा भुजाकार उदीरकका कालका कहते हैं ॥८९॥

शंका–भुजाकार उदीरकका कितना काल है ? ॥९०॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय है ॥९१-९२॥

विशेषार्थ–सात प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाला सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकका प्रवेश करके भुजाकार-उदीरक हुआ । पुनः द्वितीय समयमें इन्हीं आठों प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेपर भुजाकार-उदीरकका एक समयप्रमाण जघन्य काल सिद्ध होता है । उत्कृष्टकालके चार समय इस प्रकार सिद्ध होते हैं–औपशमिक-सम्यक्त्वी प्रमत्तसंयत, संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि ये तीनों ही यथाक्रमसे चार, पाँच और छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करते हुए अवस्थित थे । जब औपशमिकसम्यक्त्वका काल एक समयमात्र शेष रहा, तब वे सभी ससादनगुणस्थानको प्राप्त हुए । इसप्रकार एक समय प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् ही दूसरे समयमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें पहुँचनेपर द्वितीय समय, तत्पश्चात् ही भयकी उदीरणा करनेपर तृतीय समय और तदनन्तर ही जुगुप्साकी उदीरणा करनेपर चतुर्थ समय उपलब्ध हुआ । इसप्रकार भुजाकार-उदीरकका उत्कृष्ट काल चार समय प्राप्त होता है । अथवा ग्यारहवें गुणस्थानसे उतरनेवाला और किसी एक संज्वलन कषायकी उदीरणा करनेवाला अनिवृत्तिकरण-संयत पुरुषवेदकी उदीरणा कर प्रथम वार भुजाकार उदीरक हुआ । तदनन्तर समयमें मरण कर देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान कषायोंकी उदीरणा करनेपर द्वितीय वार, तत्पश्चात् भयकी उदीरणा करनेपर तृतीय वार और

१ सव्वोवसमं कादूण परिवदमाणगो पढमसमयसुहुमसांपराइयो पढमसमयदेवो वा अवत्तव्वपवेसगो होइ । जयध०

९३. अप्पदरपवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? ९४. जहण्णेण एयसमओ[1]। ९५. उक्कस्सेण तिण्णि समया[2]। ९६. अवट्ठिदपवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? ९७. जहण्णेण एगसमओ[3]। ९८. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[4]। ९९. अवत्तव्वपवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १००. जहण्णुक्कस्सेण एयसमयो[5]।

तदनन्तर ही जुगुप्साकी उदीरणा करनेपर चतुर्थ वार भुजाकार उदीरक हुआ। इस प्रकार भी भुजाकार उदीरकका चार समयप्रमाण उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है।

शंका—अल्पतर-उदीरकका कितना काल है ? ॥९३॥

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय हैं ॥९४-९५॥

विशेषार्थ—किसी संयत या असंयतके विवक्षित अल्पतर प्रकृतिरूप उदीरणास्थानकी उदीरणा करनेके अनन्तर समयमें ही उससे अधिक या कम प्रकृतिरूप उदीरणास्थानकी उदीरणा करनेपर एक समय जघन्यकाल सिद्ध होता है। उत्कृष्टकालकी प्ररूपणा इस प्रकार है—दश प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले मिथ्यादृष्टिके भयके विना नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेपर एक समय; तदनन्तर समयमें जुगुप्साके विना आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेपर द्वितीय समय; तत्पश्चात् ही सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके विना छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेपर तृतीय समय अल्पतर-उदीरकका प्राप्त होता है। इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टिके संयमासंयमको प्राप्त होनेपर और संयतासंयतके संयमको प्राप्त होनेपर अल्पतर उदीरकके तीन समयप्रमाण उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिए।

चूर्णिसू०—अवस्थित-उदीरकका कितना काल है ? ॥९६॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥९७-९८॥

शंका—अवक्तव्य-उदीरकका कितना काल है ? ॥९९॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयप्रमाण है ॥१००॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि सर्वोपशमनासे गिरकर प्रथम समयमें उदीरणा प्रारंभ करनेवाले जीवके अतिरिक्त अन्यत्र अवक्तव्य-उदीरणाका होना असंभव है।

१ कुदो; एयसमयमप्पयरं काऊण तदणंतरसमए भुजगारमवट्ठिदं वा गदस्स तदुवलंभादो। जयध०

२ तं जहा—मिच्छाइट्ठी दस पयडीओ उदीरेमाणगो भयवोच्छेदेण णवण्हमुदीरगो होदूणेक्को अप्पदरसमयो, से काले दुगुंछोदयवोच्छेदेणट्ठण्हमुदीरगो होदूण विदियो अप्पयरसमओ, तदणंतरसमए सम्मत्तं पडिवण्णस्स मिच्छत्ताणंताणुबंधिवोच्छेदेण तदियो अप्पदरसमयो त्ति। एवं अप्पदरपवेसगस्स उक्कस्सकालो तिसमयमेत्तो। एवं चेवासंजदसम्माइट्ठिस्स संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स, संजदासंजदस्स वा संजमं पडिवज्जमाणस्स तिसमयमेत्तप्पदरुक्कस्सकालपरूवणा कायव्वा। जयध०

३ तं कथं; णवपयडिपवेसमाणस्स दुगुंछागमेणेयसमयं भुजगारपज्जाएण परिणमिय से काले तत्तिय-मेत्तेणावट्ठिदस्स तदणंतरसमए भयवोच्छेदेणप्पदरपज्जायमुवगयस्स लद्धो एयसमयमेत्तो अवट्ठिदजहण्णकालो। एवमण्णत्थ वि दट्ठव्वं। जयध०

४ तं जहा—दसपयडीओदीरेमाणस्स भय-दुगुंछाणमुदयवोच्छेदेणप्पदरं कादूणावट्ठिदस्स जाव पुणो भय-दुगुंछाणमणुदयो ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो अवट्ठिदपवेसगस्स उक्कस्सकालो होइ। जयध०

५ कुदो; सव्वोवसामणादो परिवदिदपढमसमयं मोत्तूणण्णत्थ तदसंभवादो। जयध०

१०१. एयजीवेण अंतरं । १०२. भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदपवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? १०३. जहण्णेण एयसमओ । १०४. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा भुजाकार-उदीरकका अन्तर कहते हैं ॥१०१॥

शंका–भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित उदीरकका अन्तरकाल कितना है? ॥१०२॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ॥१०३-१०४॥

विशेषार्थ–ग्यारहवें गुणस्थानसे उतरकर किसी एक संज्वलनकी उदीरणा करनेवाला उपशामक पुरुषवेदकी उदीरणा कर भुजाकार-उदीरक हुआ । तदनन्तर समयमें उतनी ही प्रकृतियोंकी उदीरणा कर अवस्थित-उदीरक हो अन्तरको प्राप्त हुआ और तदनन्तर समयमें मरण कर देवोंमें उत्पन्न होकर अधिक प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेपर भुजाकार-उदीरक हुआ । इस प्रकार भुजाकार-उदीरकका एक समयप्रमाण अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है । इसीप्रकार नीचेके गुणस्थानोंमें भी जानना चाहिए । अब अल्पतरका जघन्य अन्तर कहते हैं–भय और जुगुप्साके साथ विवक्षित उदीरणास्थानकी उदीरणा करनेवाला कोई एक गुणस्थानवर्ती जीव भयके विना शेष अल्पतर प्रकृतियोंकी उदीरणा कर तदनन्तर समयमें उतनी ही प्रकृतियोंकी अवस्थित उदीरणा कर अन्तरको प्राप्त हुआ । तदनन्तर समयमें ही जुगुप्साके विना और भी अल्पतर प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाला हुआ, इसप्रकार अल्पतर-उदीरकका एक समयप्रमाण जघन्य अन्तर सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर और असंयतसम्यग्दृष्टिके संयमासंयम या संयमके ग्रहण करनेपर भी अल्पतर-उदीरकका जघन्य अन्तरकाल सिद्ध होता है । अवस्थित-उदीरककी जघन्य-अन्तर-प्ररूपणा इस प्रकार है–सात या आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाला जीव भयकी उदीरणा करनेपर एक समय भुजाकार-उदीरकरूपसे रहकर अन्तरको प्राप्त हो तदुपरितन समयमें सात या आठ ही प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाला हो गया । इसी प्रकार अल्पतर-उदीरकके साथ भी जघन्य अन्तर सिद्ध करना चाहिए । अब उक्त समस्त उदीरकोंके उत्कृष्ट अन्तरका वर्णन करते हैं । उनमें पहले भुजाकार-उदीरकका उत्कृष्ट अन्तर कहते है–पांच प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा करनेवाला एक संयतासंयत असंयमको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें भुजाकार-उदीरणाका प्रारम्भ कर अन्तरको प्राप्त हुआ और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक अन्तरित रहकर भय या जुगुप्साकी उदीरणाके वशसे फिर भी भुजाकार-उदीरक हुआ । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल-प्रमाण अन्तर प्राप्त हो गया । अथवा चार प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाला एक औपशमिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्त या अप्रमत्त-संयत भय या जुगुप्साके प्रवेशसे भुजाकार-उदीरणाको प्रारम्भ कर और स्वस्थानमें ही उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रह कर अन्तरको प्राप्त हो उपशमश्रेणीपर चढ़कर सर्वोपशम करके उतरता हुआ संज्वलन लोभकी उदीरणाकर और नीचे गिरकर जिस समय स्त्रीवेदकी उदीरणा करता हुआ भुजाकार-उदीरक हुआ उस समय भुजाकार-उदीरकका उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध हो जाता

१०५. अवत्तव्वपवेसगंतरं केवचिरं कालादो होदि? १०६. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1]। १०७. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[2]।

है। अब अल्पतर-उदीरकका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं–नौ या दश प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेवाले जीवके भय-जुगुप्साकी उदीरणाके विना अल्पतर उदीरणारूप पर्यायसे परिणत होनेके अनन्तर समयमें अन्तरको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् भय और जुगुप्साकी उदीरणा करने पर फिर भी अन्तर्मुहूर्त तक अन्तरित रहनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध होता हैं। अथवा उपशमश्रेणीपर चढ़कर स्त्रीवेदकी उदीरणा-व्युच्छेद करके अल्पतर-उदीरक बनकर अन्तरको प्राप्त हो, ऊपर चढ़कर और नीचे गिरकर, भय-जुगुप्साकी उदीरणा प्रारंभ कर अन्तर्मुहूर्त तक उदीरणा करने पर उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध हो जाता है। अब अवस्थित-उदीरकका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं–संज्वलन लोभकी उदीरणा करनेवाला उपशामक अवस्थित उदीरणाका आदि करके अनुदीरक बन अन्तर्मुहूर्त तक अन्तरित रह कर पुनः उतरता हुआ सूक्ष्मसाम्परायसंयत होकर और दूसरे समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो यथाक्रमसे दो समयोंमें भय और जुगुप्साकी उदीरणा कर तत्पश्चात् अवस्थित-उदीरक हुआ। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध हो जाता है।

शंका–अवक्तव्य-उदीरकका अन्तरकाल कितना है? ॥१०५॥

समाधान–जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥१०६-१०७॥

विशेषार्थ–कोई संयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर सर्वोपशमनासे गिरनेके प्रथम समयमें अवक्तव्य उदीरणाका प्रारम्भ कर और नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहाँसे गिरकर सूक्ष्मसाम्परायकी चरमावलीके प्रथम समयमें एक प्रकृतिका उदीरक बनके और वहीं पर मरण करके उसके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हो जाता है। उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा इस प्रकार हैं–कोई विवक्षित जीव संसारके अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अवशिष्ट रहनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको उत्पन्नकर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा तत्काल उपशमश्रेणीपर चढ़कर गिरा और दशवें गुणस्थानमें अवक्तव्य उदीरक बनके अन्तरको प्राप्त हुआ। पश्चात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक संसारमें परिभ्रमणकर संसारके अल्प शेष रह जानेपर पुनः सर्व विशुद्ध होकर उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहाँसे गिरनेपर एक प्रकृतिकी उदीरणाके प्रथम समयमें उत्कृष्ट अन्तरको प्राप्त हुआ। इस प्रकार उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है।

१ तं जहा–उवसमसेढिमारुहिय सव्वोवसामणापडिवादपढमसमए अवत्तव्वस्सादिं कादूण हेट्ठा णिवदिय अंतरिदो। पुणो वि सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण उवसमसेढिमारोहणं कादूण सुहुमसांपराइयचरिमावलियपढमसमए अपवेसगभावमुवणमिय तत्थेव कालं कादूण देवेसुप्पण्णपढमसमए लद्धमंतरं करेदि; पयारंतरेण जहण्णंतराणुप्पत्तीदो। जयध०

२ तं कथं; अद्धपोग्गलपरियट्टपढमसमए सम्मत्तमुप्पाइय सव्वलहुमुवसमसेढिसमारोहणपुरस्सरपडिवा-

१०८. णाणाजीवेहि भंगविचयादि-अणियोगद्दाराणि अप्पाबहुअवज्जाणि कायव्वाणि ।

१०९. अप्पाबहुअं । ११०. सव्वत्थोवा अवत्तव्वपवेसगा[1] । १११. भुजगारपवेसगा अणंतगुणा[2] । ११२. अप्पदरपवेसगा विसेसाहिया[3] । ११३. अवट्ठिदपवेसगा असंखेज्जगुणा[4] ।

११४. पदणिक्खेव-वड्ढीओ कादव्वाओ ।

तदो 'कदि आवलियं पवेसेइ' त्ति पदं समत्तं । एवं पयडि-उदीरणा समत्ता ।

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयको आदि लेकर अल्पबहुत्वके पूर्ववर्ती अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥१०८॥

चूर्णिसू०—अब भुजगार-उदीरकोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं—अवक्तव्य-उदीरक सबसे कम हैं । (क्योंकि सर्वोपशम करके गिरनेवाले जीव संख्यात ही पाये जाते हैं ।) अवक्तव्य-उदीरकोंसे भुजाकार-उदीरक अनन्तगुणित हैं । (क्योंकि, यहाँपर द्विसमय-संचित एकेन्द्रिय-जीवराशिका प्रधानतासे ग्रहण किया गया है ।) भुजाकार-उदीरकोंसे अल्पतर-उदीरक विशेष अधिक हैं । (यद्यपि भुजाकार-उदीरक और अल्पतर-उदीरक सामान्यतः समान हैं, तथापि सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले अनादिमिथ्यादृष्टियोंके साथ दर्शनमोह और चारित्रमोहका क्षयकर अल्पतर-उदीरक जीवोंकी संख्याके कुछ अधिक होनेसे यहाँ अल्पतर-उदीरक भुजाकार-उदीरकोंसे विशेष अधिक बताये गये हैं ।) अल्पतर-उदीरकोंसे अवस्थित-उदीरक असंख्यातगुणित हैं । (क्योंकि अवस्थित-उदीरणाका काल अन्तर्मुहूर्त है, उसमें संचित होनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिकी यहाँ प्रधानता होनेसे अल्पतर-उदीरकोंसे अवस्थित-उदीरकोंको असंख्यातगुणित कहा गया है ॥१०९-११३॥

चूर्णिसू०—यहाँपर पदनिक्षेप और वृद्धिकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥११४॥

इस प्रकार 'कदि आवलियं पवेसेइ' पहली गाथाके इस प्रथम चरणकी व्याख्या समाप्त हुई और इस प्रकार प्रकृतिस्थान-उदीरणाकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

वेणादिं कादूणंतरिदो किंचूणमद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण थोवावसेसे संसारे पुणो वि सव्वविसुद्धो होदूण उवसमसेढिमारूढो पडिवादपढमसमए लद्धमंतरं करेदि त्ति वत्तव्वं । जयध०

१ किं कारणं; उवसमसेढीए सव्वोवसमं कादूण परिवदमाणजीवेसु चेव तदुवलंभादो । जयध०

२ किं कारणं; दुसमयसंचिदेइंदियजीवाणमेत्थ पहाणभावेणावलंबणादो । जयध०

३ किं कारणं; मिच्छत्तं पडिवज्जमाणसम्माइट्ठीणं सम्मत्तं पडिवज्जमाणमिच्छाइट्ठीणं च जहाकमं भुजगारप्पदरपरिणदाणं सत्थाणमिच्छाइट्ठीणं च सव्वत्थ भुजगारप्पदरपवेसगाणं समाणत्ते संते वि सम्मत्तमुप्पाएमाणाणादियमिच्छाइट्ठीहि सह दंसण-चारित्तमोहक्खवयजीवाणं भुजगारेण विणा अप्पदरमेव कुणमाणाणमेत्थाहियत्तदंसणादो । जयध०

४ किं कारणं; अंतोमुहुत्तसंचिदेइंदियरासिस्स पहाणत्तादो । जयध०

११५. 'कदि च पविसंति कस्स आवलियं' ति । ११६. एत्थ पुव्वं गमणिज्जा ठाणसमुक्कित्तणा पयडिणिद्देसो च[1] । ११७. ताणि एक्कदो भणिस्संति । ११८. अट्ठावीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति । ११९. सत्तावीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति सम्मत्ते उव्वेल्लिदे । १२०. छव्वीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेल्लिदेसु[2] ।

चूर्णिसू०–अब पहली गाथाके 'कदि च पविसंति कस्स आवलियं' इस द्वितीय चरणकी व्याख्या की जाती है। यहाँपर पहले स्थानसमुत्कीर्तना और प्रकृतिनिर्देश गमनीय अर्थात् ज्ञातव्य हैं, अतः ये दोनों एक साथ कहे जावेंगे ॥११५-११७॥

विशेषार्थ–पहली गाथाके दूसरे चरणमें प्रकृतिप्रवेशका निर्देश किया गया है उदयावलीके भीतर प्रकृतियोंके प्रवेश करनेको प्रकृतिप्रवेश कहते हैं। प्रकृतिप्रवेशके दो भेद हैं–मूलप्रकृतिप्रवेश और उत्तरप्रकृतिप्रवेश। उत्तरप्रकृतिप्रवेशके भी दो भेद हैं–एकैकोत्तरप्रकृतिप्रवेश और प्रकृतिस्थानप्रवेश। इसमें मूलप्रकृतिप्रवेश और एकैकोत्तरप्रकृतिप्रवेशके सुगम होनेसे चूर्णिकारने उनकी प्ररूपणा नहीं की है। यहाँ प्रकृतिस्थानप्रवेश विवक्षित है। उसका वर्णन आगे समुत्कीर्तना आदि सत्तरह अनुयोगद्वारोंसे किया जायगा, ऐसा अभिप्राय मनमें रख कर चूर्णिकार पहले समुत्कीर्तना अनुयोगद्वारका प्ररूपण कर रहे हैं। समुत्कीर्तना के दो भेद हैं–स्थानसमुत्कीर्तना और प्रकृतिसमुत्कीर्तना। अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानको आदि लेकर गुणस्थान और मार्गणास्थानोंके द्वारा इतने प्रकृतिस्थान उदयावलीके भीतर प्रवेश करते हैं, इस प्रकारकी प्ररूपणा करनेको स्थानसमुत्कीर्तना कहते हैं। इतनी प्रकृतियोंको ग्रहण करनेपर यह अमुक या विवक्षित प्रकृतिस्थान उत्पन्न होता है, इस प्रकारके वर्णन करनेको प्रकृतिसमुत्कीर्तना कहते हैं। इसीका दूसरा नाम प्रकृतिनिर्देश है। चूर्णिकार इन दोनोंका एक साथ वर्णन करेंगे।

चूर्णिसू०–मोहकर्मकी अट्ठाईस (सभी) प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। इनमेंसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करने पर मोहकर्मकी शेष सत्ताईस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर शेष छब्बीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥११८-१२०॥

१ तत्थ ठाणसमुक्कित्तणा णाम अट्ठवीसाए पयडिट्ठाणमादिं कादूण ओघादेसेहिं एत्तियाणि पयडिट्ठाणाणि उदयावलियं पविसमाणाणि अत्थि त्ति परूवणा। पयडिणिद्देसो णाम एदाओ पयडीओ घेत्तूणेदं पवेसट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति णिरूवणा। जयध०

२ ण केवलमुव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तस्सेव, किंतु अणादियमिच्छाइट्ठिणो वि छव्वीसाए पवेसट्ठाणमत्थि त्ति घेत्तव्वं। अट्ठावीस-सत्तावीसाणमण्णदरसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा वा उवसमसम्मत्ताहिमुहेणंतरं कादूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमावलियमेत्तपढमट्ठिदीए गलिदाए छव्वीसपवेसट्ठाणमुवलब्भइ। उवसमसम्माइट्ठिणा पणुवीसपवेसगेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरे ओकड्डिदे सासणसम्माइट्ठिणा वा मिच्छत्ते पडिवण्णे एयसमयं छव्वीसाए पवेसट्ठाणमुवलब्भइ। णवरि सुत्ते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेल्लिदेसु त्ति णिद्देसो उदाहरणमेत्तो; तेणेदेसिं पि पयाराणं संगहो कायव्वो। जयध०

१२१. पणुवीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति दंसणतियं मोत्तूण[1] । १२२. अणंताणुबंधीणमविसंजुत्तस्स उवसंतदंसणमोहणीयस्स[2] । १२३. णत्थि अण्णस्स कस्स वि[3] । १२४. चउवीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति अणंताणुबंधिणो वज्ज[4] ।

विशेषार्थ—यह छब्बीस प्रकृतिरूपस्थान सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले सादि मिथ्यादृष्टिके ही नहीं होता है, किन्तु अनादिमिथ्यादृष्टिके भी पाया जाता है, क्योंकि उसके तो उक्त दोनों प्रकृतियोंका अस्तित्व ही नहीं पाया जाता है। तथा अट्ठाईस या सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर अन्तर करके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी आवलीमात्र प्रथम स्थितिके गला देने पर छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त पच्चीस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके अपकर्षण करनेपर, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर भी एक समय छब्बीस प्रकृतियोंके प्रवेशरूप स्थान पाया जाता है। चूर्णिकारने उदाहरणकी दिशामात्र बतलानेके लिए सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका निर्देश किया है, अतः उक्त अन्य प्रकारोंका भी यहाँ संग्रह कर लेना चाहिए।

चूर्णिसू०—दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियां छोड़कर चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियां उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। यह प्रकृतिउदीरणास्थान अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करके दर्शनमोहनीयका उपशमन करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है, अन्य किसीके भी नहीं होता ॥१२१-१२३॥

विशेषार्थ—दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका उपशम करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियोंका प्रवेश उदयावलीके भीतर निराबाधरूपसे पाया जाता है। यहाँ पर 'अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करनेवाले' इस विशेषणके देनेका अभिप्राय यह है कि जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके उपशमसम्यग्दृष्टि बनेगा, उसके तो इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान प्राप्त होगा, पच्चीस प्रकृतिवाला स्थान नहीं। इसी अर्थकी पुष्टि करनेके लिए कहा है कि यह स्थान अविसंयोजित उपशमसम्यग्दृष्टिके सिवाय और किसीके नहीं पाया जाता है।

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष चौबीस मोहप्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१२४॥

१ कसाय-णोकसायपयडीणं उदयावलियपवेसस्स कत्थ वि समुवलंभादो। जयध०

२ किं कारणं; उवसंतदंसणमोहणीयम्मि दंसणतियं मोत्तूण पणुवीसचरित्तमोहपयडीणमुदयावलियपवेसस्स णिप्पडिबंधमुवलंभादो। एत्थाणंताणुबंधीणमविसंजुत्तस्सेत्ति विसेसणं विसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कम्मि पणुवीसपवेसट्ठाणासंभवपदुप्पायणफलं; उवसमसम्माइट्ठिणा अणंताणुबंधीसु विसंजोइदेसु इगिवीसपवेसट्ठाणुप्पत्तिदंसणादो। जयध०

३ कुदो; अविसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कमुवसमसम्माइट्ठिं मोत्तूणण्णत्थ पणुवीसपवेसट्ठाणासंभवादो। जयध०

४ चउवीससंतकम्मियवेदयसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीसु तदुवलंभादो। विसंजोयणापुव्वसंजोगपढमसमए वट्टमाणमिच्छाइट्ठिम्मि वि एदस्स पवेसट्ठाणस्स संभवो दट्ठव्वो। जयध०

१२५. तेवीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति मिच्छत्ते खविदे। १२६. बावीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति सम्मामिच्छत्ते खविदे[1]। १२७. एक्कवीसं पयडीओ उदयावलियं पविसंति दंसणमोहणीए खविदे। १२८. एदाणि ट्ठाणाणि असंजदपाओग्गाणि।

१२९. एत्तो उवसामगपाओग्गाणि ताणि भणिस्सामो। १३०. उवसामणादो

विशेषार्थ–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले वेदकसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टिके चौबीस प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणा होती है। तथा विसंयोजनाके पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें आनेवाले मिथ्यादृष्टिके भी प्रथम समयमें यह उदीरणास्थान पाया जाता है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वके क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। उनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय हो जानेपर बाईस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। दर्शनमोहनीयके क्षय हो जानेपर इक्कीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१२५-१२७॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिए उद्यत उक्त वेदकसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वके क्षयकर देनेपर तेईस प्रकृतियोंका, अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय कर देनेपर बाईस प्रकृतियोंका और अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षयकर देनेपर इक्कीस प्रकृतियोंका उदीरणास्थान पाया जाता है। यहाँ इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी कषाय-चतुष्टयकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीय-त्रिककी उपशमनाकर उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले औपशमिकसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी, सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदय आनेपर विवक्षित गुणस्थानकी प्राप्तिके प्रथम समयमें भी बाईस प्रकृतियोंका उदीरणास्थान पाया जाता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना पूर्वक दर्शनमोह-त्रिकका उपशम करनेवाले औपशमिकसम्यग्दृष्टिके भी इक्कीस प्रकृतिरूप उदीरणास्थान पाया जाता है। चूर्णिकारने यहाँ इन दोनों प्रकारोंकी विवक्षा नहीं की है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–ये सब उपर्युक्त स्थान असंयतोंके योग्य हैं ॥१२८॥

विशेषार्थ–ऊपर कहे गये अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप आठ उदीरणास्थान असंयत जीवोंके होते हैं। चूर्णिकारका यह कथन असंयतोंके योग्य उदीरणास्थानोंके निर्देशके लिए है, अतः उक्त सभी स्थान असंयतोंके ही होते हैं, ऐसा अवधारण नहीं करना चाहिए, क्योंकि सत्ताईस प्रकृतिरूप उदीरणास्थानको छोड़कर शेष सात स्थान यथासंभव संयतोंमें भी पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे उपशामक-प्रायोग्य जो स्थान हैं, उन्हें कहेंगे ॥१२९॥

१ एसो एक्को पयारो सुत्तयारेण णिद्दिट्ठो त्ति पयारंतरेण वि एदस्स संभवविसयो अणुमग्गियव्वो; अणंताणुबंधिणो विसंजोइय इगिवीसपवेसयभावेणावट्ठिदस्स उवसमसम्माइट्ठिस्स मिच्छत्तवेदयसम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सासणसम्मत्ताणमण्णदरगुणपडिवत्तिपढमसमए पयदट्ठाणसंभवणियमदंसणादो। जयध०

परिवदंतेण तिविहो लोहो ओकड्डिदो । तत्थ लोभसंजलणमुदए दिण्णं, दुविहो लोहो उदयावलियबाहिरे णिक्खित्तो । ताधे एक्का पयडी पविसदि । १३१. से काले तिण्णि पयडीओ पविसंति । १३२. तदो अंतोमुहुत्तेण तिविहा माया ओकड्डिदा । तत्थ माया-संजलणमुदए दिण्णं, दुविहमाया उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता । ताधे चत्तारि पय-डीओ पविसंति । । १३३. से काले छप्पयडीओ पविसंति । १३४. तदो अंतोमुहुत्तेण तिविहो माणो ओकड्डिदो, तत्थ माणसंजलणमुदये दिण्णं, दुविहो माणो आवलि-बाहिरे णिक्खित्तो । ताधे सत्त पयडीओ पविसंति । १३५. से काले णव पयडीओ पविसंति । १३६. तदो अंतोमुहुत्तेण तिविहो कोहो ओकड्डिदो । तत्थ कोहसंजलण-मुदए दिण्णं, दुविहो कोहो उदयावलियबाहिरे णिक्खित्तो, ताधे दस पयडीओ पवि-संति । से काले बारस पयडीओ पविसंति । १३७. तदो अंतोमुहुत्तेण पुरिसवेद-छण्णो-कसायवेदणीयाणि ओकड्डिदाणि । तत्थ पुरिसवेदो उदए दिण्णो । छण्णोकसायवेद-

विशेषार्थ—ऊपर असंयतोंके योग्य स्थान बतलाकर अब संयतोंके योग्य उदीरणा-स्थानोंका वर्णन करनेकी चूर्णिकार प्रतिज्ञा कर रहे हैं । संयत दो प्रकारके होते हैं—उपशामक संयत और क्षपक संयत । इन दोनोंके स्थानोंका वर्णन करना एक साथ असंभव है, अतः पहले उपशामक-संयतोंके योग्य उदीरणास्थानोंको कहते हैं ।

चूर्णिसू०—उपशामनासे अर्थात् मोहकर्मका सर्वोपशम करके ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरता हुआ जीव दशवें गुणस्थानके प्रथम समयमें तीन प्रकारके लोभका अपकर्षण करता है । उसमेंसे संज्वलन लोभको उदयमें देता है, तथा अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन दोनों लोभोंको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है, उस समय एक संज्वलनलोभ प्रकृति उदया-वलीमें प्रवेश करती है । तदनन्तर समयमें पूर्वोक्त दोनों लोभोंके मिल जानेसे तीनों लोभ प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् तीनों मायाकषायोंका अप-कर्षण करता है । उनमेंसे संज्वलन मायाको उदयमें देता है और शेष दोनों मायाकषायोंको उदयावलीके बाहिर स्थापित करता है । उस समय चार प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । तदनन्तर समयमें तीनों लोभ व तीनों मायारूप छह प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् तीनों प्रकारके मानका अपकर्षण करता है । उनमेंसे संज्वलन मानको उदयमें देता है और शेष दोनों प्रकारके मानोंको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है । उस समय तीन लोभ, तीन माया और संज्वलनमान ये सात प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । तदनन्तर कालमें शेष दोनों मानकषायोंके मिलनेपर नौ प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् तीनों प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करता है । उनमेंसे संज्वलन क्रोध-को उदयमें देता है और शेष दोनों प्रकारके क्रोधोंको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है । उस समय दश प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । तदनन्तर समयमें दोनों क्रोध मिलनेपर बारह प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् पुरुषवेद, और हास्यादि छह नोकषाय-

णीयाणि उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ताणि । ताधे तेरस पयडीओ पविसंति । १३८. से काले एगूणवीसं पयडीओ पविसंति । १३९. तदो अंतोमुहुत्तेण इत्थिवेदमोकड्डिऊण उदयावलियबाहिरे णिक्खिवदि[1] । १४०. से काले वीसं पयडीओ पविसंति[2] । १४१. ताव, जाव अंतरं ण विणस्सदि त्ति । १४२. अंतरे विणासिज्जमाणे णवुंसयवेदमोकड्डि-दूण उदयावलियबाहिरे णिक्खिवदि । १४३. से काले एक्कवीसं पयडीओ पविसंति ।

१४४. एत्तो पाए जइ खीणदंसणमोहणीयो, एदाओ एक्कवीसं पयडीओ पवि-संति जाव अक्खवग-अणुवसामगो ताव । १४५. एदस्स चेव कसायोवसामणादो परि-

वेदनीयका अपकर्षण करता है । इनमेंसे पुरुषवेदको उदयमें देता है और छहों नोकषायवेद-नीयप्रकृतियोंको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है । उस समय पूर्वोक्त दशमें शेष दोनों क्रोध, और पुरुषवेदके मिल जानेसे तेरह प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । तदनन्तर समयमें हास्यादिषट्कके भी उदयावलीमें आजानेसे उन्नीस प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । इसके अन्त-र्मुहूर्त पश्चात् स्त्रीवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है । (क्योंकि यह कथन पुरुषवेदके उदयके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए जीवकी अपेक्षासे किया जा रहा है ।) तदनन्तर समयमें उक्त उन्नीस प्रकृतियोंमें स्त्रीवेदके और मिल जानेसे बीस प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । इस स्थानपर जबतक अन्तरका विनाश नहीं हो जाता है, तब तक यही बीस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान बराबर अवस्थित रहता है । अन्तरके विनाश हो जानेपर नपुंसक-वेदका अपकर्षणकर उदयावलीके बाहिर उसे निक्षिप्त करता है । तदनन्तर समयमें नपुंसकवेदके मिल जानेसे इक्कीस प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं ॥१३०–१४३॥

चूर्णिसू०–इस स्थलपर यदि वह जीव क्षपित-दर्शनमोहनीय अर्थात् क्षायिक-सम्यग्दृष्टि है, तो ये इक्कीस प्रकृतियाँ तब तक उदयावलीमें प्रवेश करती हैं, जब तक कि वह अक्षपक या अनुपशमक रहता है ॥१४४॥

विशेषार्थ–उपशमश्रेणीसे गिरा हुआ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अप्रमत्तसंयत, प्रमत्त-संयत, संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जितने कालतक रहता है, उतने कालतक इक्कीस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान बराबर पाया जाता है । आगे उपशम या क्षपक श्रेणीपर चढ़नेपर ही उसका विनाश होता है, ऐसा जानना चाहिए ।

अब उपशमसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा जो अन्य प्रवेशस्थान पाये जाते हैं, उन्हें बत-लानेके लिए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–कषायोपशामनासे गिरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके जो कुछ विभि-न्नता है, उसे कहते हैं । जिस समय अन्तर विनष्ट हो जाता है, उस स्थानपर इक्कीस प्रकृ-

१ कुदो; पुरिसवेदोदएण चढिदत्तादो । ण च सोदएण विणा उदयादिणिक्खेवसंभवो; विप्पडि-सेहादो । जयध०

२ कुदो; उदयावलियबाहिरे णिक्खित्तस्स इत्थिवेदस्स ताधे उदयावलियब्भंतरपवेसदंसणादो । जयध०

वदमाणयस्स[1] । १४६. जाधे अंतरं विणट्ठं तत्तो पाए एक्कवीसं पयडीओ पविसंति जाव सम्मत्तमुदीरेंतो सम्मत्तमुदए देदि, सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तं च आवलियबाहिरे णिक्खिवदि, ताधे बावीसं पयडीओ पविसंति[2] । १४७. से काले चउवीसं पयडीओ पविसंति । १४८. जइ सो कसायउवसामणादो परिवदिदो दंसणमोहणीय-उवसंतद्धाए अचरिमेसु समएसु आसाणं गच्छइ, तदो आसाणगमणादो से काले पणुवीसं पयडीओ पविसंति ।

तियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । जब उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त हो जाता है, तब सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणा करके सम्यक्त्वप्रकृतिको उदयावलीमें देता है और सम्यग्मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्व प्रकृतिको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त करता है । उस समय बाईस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । (यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जिस प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणाकर उदयावलीमें देनेपर बाईस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान बनता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेवाले जीवके भी बाईस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान पाया जाता है ।) तदनन्तर समयमें चौबीस प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं । अर्थात् जिन दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंको उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त किया था, एक क्षण पश्चात् उनके उदयावलीमें आ जानेपर चौबीस प्रकृतिरूप स्थान पाया जाता है ॥१४५-१४७॥

चूर्णिसू०—यदि वह जीव कषायोपशमनासे गिरकर दर्शनमोहनीयके उपशमन-कालके अचरिम समयोंमे सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, तब सासादनगुणस्थानमें पहुँचनेके एक समय पश्चात् पच्चीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१४८॥

विशेषार्थ—कषायोंके सर्वोपशमसे गिरे हुए चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीकालसे लेकर एक समय अवशिष्ट रहने तक सासादन गुणस्थान होना संभव है । यहाँ अन्तिम समयमें सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवकी विवक्षा नहीं की गई है, यह बात 'अचरिम समयोंमें' इस पदसे प्रकट होती है, क्योंकि उसकी प्ररूपणामें कुछ विभिन्नता है । जो जीव द्विचरम समयसे लेकर छह आवली-कालके भीतर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है, उसके सासादनभावको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायके उदय आजानेसे बाईस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान पाया जाता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक कषायके उदयमें आनेका

१ जइ वि एत्थ उवसंतदंसणमोहणीयस्सेत्ति सुत्ते ण वुत्तं, तो वि पारिसेसियण्णाएण तदुवलंभो दट्ठव्वो । जयध०

२ एतदुक्तं भवति–अंतरविणासाणंतरमेव समुवलद्धसरूवस्स इगिवीसपवेसट्ठाणस्स ताव अवट्ठाणं होइ जाव उवसंतसम्मत्तकालचरिमसमयो त्ति । तत्तो परमुवसमसम्मत्तद्धाक्खएण सम्मत्तमुदीरेमाणेण सम्मत्ते उदए दिण्णे मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेसु च आवलियबाहिरे णिक्खित्तेसु तक्काले बावीसपवेसट्ठाणमुप्पत्ती जायदि त्ति । ण केवलं सम्मत्तमुदीरेमाणस्स एस कमो, किंतु मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा उदीरेमाणस्स वि एदेणेव कमेण बावीसपवेसट्ठाणुप्पत्ती वत्तव्वा; सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो । जयध०

१४९. जाधे मिच्छत्तमुदीरेदि ताधे छव्वीसं पयडीओ पविसंति । १५०. तदो से काले अट्ठावीसं पयडीओ पविसंति । १५१. अह सो कसाय-उवसामणादो परिवदिदो दंसण-मोहणीयस्स उवसंतद्धाए चरिमसमए आसाणं गच्छइ से काले मिच्छत्तमोकड्डमाणयस्स छव्वीसं पयडीओ पविसंति । १५२. तदो से काले अट्ठावीसं पयडीओ पविसंति ।

कारण यह है कि सासादनगुणस्थानमें उसका उदय नियमसे पाया जाता है। यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि जब अनन्तानुबन्धी कषाय सत्ता में थी ही नहीं, तब यहाँ उसका बन्ध हुए विना उदय सहसा कहाँसे आगया ? इसका समाधान यह है कि सम्यक्त्वरत्नरूप पर्वतसे गिरानेवाले परिणामोंके कारण अप्रत्याख्यानादि शेष कषायरूप द्रव्य तत्काल ही अनन्तानुबन्धी कषायरूपसे परिणत होकर उदयमें आजाता है । इसके एक समय पश्चात् उदयावलीके बाहिर स्थित शेष तीन अनन्तानुबन्धी कषायोंका उदय आजानेसे पच्चीस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान पाया जाता है ।

चूर्णिसू०-जिस समय उक्त जीव मिथ्यात्वप्रकृतिकी उदीरणा करता है, उस समय छब्बीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । (क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व-प्रकृतिको उस जीवने उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त किया है ।) इसके एक समय पश्चात् ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयावलीमें आजानेसे मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं, अर्थात् सभी प्रकृतियोंका उदय हो जाता है ॥१४९-१५०॥

अब दर्शनमोहनीयके उपशमनकालके अन्तिम समयमें सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रवेशसम्बन्धी विशेषता बतलानेके लिए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं-

चूर्णिसू०-अथवा कषायोपशमनासे गिरा हुआ वह जीव यदि दर्शनमोहनीयके उपशमनकालके अन्तिम समयमें सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, तो तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वकी उदीरणा करनेपर उसके छब्बीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१५१॥

विशेषार्थ-जो उपशमश्रेणीसे गिरा हुआ उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयमात्र शेष रह जानेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, वह किसी एक अनन्तानुबन्धीकषायके उदयमें बाईस प्रकृतियोंका उदयावलीमें प्रवेश करेगा और शेष तीन अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंको उदयावलीके बाहिर ही निक्षिप्त करेगा । दूसरे ही समयमें वह गिरकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होगा, वहाँ एक साथ ही मिथ्यात्वप्रकृति और शेष तीन अनन्तानुबन्धी कषाय इन चार प्रकृतियोंका उदय आनेसे छब्बीस प्रकृतिरूप ही प्रवेशस्थान पाया जाता है । पूर्वोक्त जीवके समान उसके पच्चीस प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान नहीं पाया जाता है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०-तदनन्तर कालमें अर्थात् मिथ्यात्वगुणस्थानमें पहुँचनेके द्वितीय समयमें ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय आजानेसे अट्ठाईस प्रकृतियाँ उदयावलीमें

१५३. एदे वियप्पा कसाय-उवसामणादो परिवदमाणगादो ।

१५४. एत्तो खवगादो मग्गियव्वा कदि पवेसट्ठाणाणि त्ति* । १५५. दंसण-मोहणीए खविदे एक्कावीसं पयडीओ पविसंति । १५६. अट्ठकसाएसु खविदेसु तेरस पय-

---

प्रवेश करती हैं । ये उपर्युक्त विकल्प कषायोंके सर्वोपशमसे गिरे हुए जीवकी अपेक्षासे कहे गये हैं ॥१५२–१५३॥

विशेषार्थ–ऊपर जो मोहकर्मके प्रवेशस्थानोंका वर्णन किया गया है, वह मोहके सर्वोपशमसे गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थान तक पहुँचनेवाले जीवकी अपेक्षा जानना चाहिए। किन्तु जो जीव सर्वोपशमसे गिरते ही मरणको प्राप्त होकर देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनकी अपेक्षा कुछ अन्य भी विकल्प संभव हैं, जो इस प्रकार हैं–सर्वोपशमसे गिरकर तीन प्रकारके लोभका अपकर्षण करके तीन प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला होकर मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन पाँच प्रकृतियोंका एक साथ उदय आनेसे आठ प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । इसी प्रकार सर्वोपशमसे गिरकर छह प्रकृतियोंका उदयावलीमें प्रवेश करके मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमें ही उक्त पाँच प्रकृतियोंके एक साथ उदयमें आनेसे ग्यारह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । जो जीव सर्वोपशमनासे गिरकर नौ प्रकृतियोंका उदयावलीमें प्रवेश कर मरण करता है, उसके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें चौदह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । इसी प्रकार जो तीनों क्रोधका भी अपकर्षण करके बारह प्रकृतियोंका उदयावलीमें प्रवेश करके मरण करता है, उसके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें भय और जुगुप्साके विना शेष तीन प्रकृतियोंके उदय आनेसे पन्द्रह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । इसी या इसी प्रकारके जीवके भय और जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय आजानेसे सोलह और दोनोंके उदय आजानेसे सत्तरह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । इस प्रकार आठ, ग्यारह, चौदह, पन्द्रह, सोलह और सत्तरह प्रकृतिरूप प्रवेशस्थान देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही पाये जाते हैं । यहाँपर चूर्णिकारने स्व-स्थान प्ररूपणा करनेकी अपेक्षा इन्हें नहीं कहा है, ऐसा जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे क्षपककी अपेक्षा कितने प्रवेशस्थान होते हैं, इस बातकी गवेषणा करना चाहिए । दर्शनमोहनीयकर्मके क्षय हो जानेपर इक्कीस प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । अप्रत्याख्यानचतुष्क और प्रत्याख्यानचतुष्क इन आठ कषायोंके क्षय हो जानेपर अवशिष्ट तेरह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं। अर्थात् पूर्वोक्त क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़कर नवें गुणस्थानमें प्रवेशकर उक्त आठ कषायोंका क्षपण कर उससे आगे जब तक अन्तरकरणको समाप्त नहीं करता है, तब तक चार संज्वलन कषाय और नव नोकषाय ये तेरह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१५४–१५६॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'एत्तो खवणादो मग्गियव्वा' इतना ही सूत्र मुद्रित है । आगेके अंशको टीकाका अंग बना दिया है । (देखो पृ० १३९४)

डीओ पविसंति[1]। १५७. अंतरे कदे दो पयडीओ पविसंति[2]। १५८. पुरिसवेदे खविदे एक्का पयडी पविसदि। १५९. कोधे खविदे माणो पविसदि। १६०. माणे खविदे माया पविसदि। १६१. मायाए खविदाए लोभो पविसदि। १६२. लोभे खविदे अपवेसगो[3]।

१६३. एवमणुमाणिय सामित्तं णेदव्वं।

चूर्णिसू०–अन्तरकरणके करनेपर पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध ये दो प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं ॥१५७॥

विशेषार्थ–अन्तरकरण करनेवाला जीव पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध इन दो प्रकृतियोंकी अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण प्रथमस्थितिको स्थापित करता है और शेष तीन कषाय और नोकषायोंके उदयावलीको छोड़कर अवशिष्ट सर्व द्रव्यको अन्तरके लिए ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार अन्तर करता हुआ जिस समय अन्तर समाप्त करता है, उस समय पुरुषवेद और संज्वलनक्रोधकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थिति बाकी रहती है। शेष ग्यारह प्रकृतियोंकी उदयावलीके भीतर एक समय कम आवलीमात्र गोपुच्छा अवशिष्ट रहती है। पुनः उन प्रकृतियोंकी अधःस्थितिके निरवशेष गला देनेपर दो ही प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं, क्योंकि, पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति असंभव है।

चूर्णिसू०–पुरुषवेदके क्षय हो जानेपर एक संज्वलनक्रोध प्रकृति उदयावलीमें प्रवेश करती है। संज्वलनक्रोधके क्षय हो जानेपर संज्वलनमान उदयावलीमें प्रवेश करता है। संज्वलनमानके क्षय हो जानेपर संज्वलनमाया उदयावलीमें प्रवेश करती है। संज्वलनमायाके क्षय हो जानेपर संज्वलनलोभ उदयावलीमें प्रवेश करता है। संज्वलनलोभके क्षय हो जानेपर यह अप्रवेशक हो जाता है। अर्थात् फिर मोहनीयकर्मकी कोई भी प्रकृति उदयावलीमें प्रवेश नहीं करती है, क्योंकि उसकी समस्त प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे कोई भी प्रकृति अवशिष्ट नहीं रही है ॥१५८-१६२॥

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्तनाका वर्णन समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०–इसी समुत्कीर्तनाका आश्रय लेकर स्वामित्वका वर्णन करना चाहिए ॥१६३॥

विशेषार्थ–अमुक स्थान संयतोंके योग्य हैं और अमुक स्थान असंयतोंके योग्य हैं।

---

१ पुव्वुत्तइगिवीसपवेसगेण खवगसेढिमारूढेण अणियट्टिगुणट्ठाणं पविसिय अट्ठकसाएसु खविदेसु तत्तोप्पहुडि जाव अंतरकरणं ण समप्पइ ताव चदुसंजलण-णवणोकसायसण्णिदाओ तेरस पयडीओ तस्स खवगस्स उदयावलिं पविसंति त्ति समुक्कित्तिद होइ। जयध०

२ (कुदो;) पुरिसवेद कोहसंजलणे मोत्तूणण्णेसिं पढमट्ठिदीए असंभवादो। जयध०

३ णवरि कोहपढमट्ठिदीए आवलियमेत्तसेसाए माणसंजलणमोकड्डिय पढमट्ठिदिं करेदि; तत्थुच्छिट्ठावलियमेत्तकालं दोण्हं पवेसगो होदूण तदा एक्किस्स पवेसगो होदि त्ति घेत्तव्वं। लोभे खविदे पुण ण किंचि कम्मं पविसदि, विवक्खियमोहणीयकम्मस्स तत्तो परमसंभवादो। जयध०

१६४. एयजीवेण कालो । १६५. एकिस्से दोण्हं छण्हं णवण्हं बारसण्हं तेरसण्हं एगूणवीसण्हं वीसण्हं पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होइ ? १६६. जहण्णेण एयसमओ । १६७. उकस्सेण अंतोमुहुत्तं । १६८. चदुण्हं सत्तण्हं दसण्हं पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होइ ? १६९. जहण्णुकस्सेण एयसमओ । १७०. पंच अट्ठ एकारस चोद्दसादि जाव अट्ठारसा त्ति एदाणि सुण्णट्ठाणाणि ।

१७१. एक्कवीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १७२. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १७३. उकस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

संयतोंमें भी अमुक स्थान उपशामक संयतोंके योग्य हैं और अमुक स्थान क्षपक संयतोंके योग्य हैं । असंयतोंमें अमुक स्थान सम्यग्दृष्टिके योग्य हैं और अमुक स्थान मिथ्यादृष्टि आदिके योग्य हैं, इत्यादिका निर्णय समुत्कीर्तनाके आधारपर सुगमतासे हो जाता है, अतः चूर्णिकारने स्वामित्वका वर्णन पृथक् नहीं किया है ।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त प्रवेश-स्थानोंके कालका वर्णन करते हैं ॥१६४॥

शंका–एक, दो, तीन, छह, नौ, बारह, तेरह, उन्नीस और बीस प्रकृतियोंके उदीरकका कितना काल है ? ॥१६५॥

समाधान–उक्त स्थानों के उदीरकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१६६-१६७॥

विशेषार्थ–मरण आदिकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और स्वस्थानकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल आगमाविरोधसे जानना चाहिए ।

शंका–चार, सात और दश प्रकृतियोंके उदीरकका कितना काल है ? ॥१६८॥

समाधान–उक्त प्रवेशस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयमात्र है । क्योंकि उक्त प्रकृतियोंके उदयावलीमें प्रवेश करनेके एक समय पश्चात् ही क्रमशः छह, नौ और बारह प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश कर जाती हैं ॥१६९॥

चूर्णिसू०–पाँच, आठ, ग्यारह, और चौदहसे लेकर अठारह तकके स्थान, ये सब शून्य स्थान हैं ॥१७०॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि उक्त प्रवेशस्थान किसी भी कालमें किसी जीवके पाये नहीं जाते हैं, इसलिए इन्हें शून्य स्थान कहते हैं । और इसीलिए उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालको नहीं बतलाया गया ।

शंका–इक्कीस प्रकृतियोंके उदीरकका कितना काल है ? ॥१७१॥

समाधान–जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥१७२-१७३॥

विशेषार्थ–इक्कीस प्रकृतियोंके उदीरकका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल इस प्रकार संभव है–चौबीस प्रकृतियोंका उदीरक वेदकसम्यग्दृष्टि दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस

१७४. बावीसाए पणुवीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १७५. जहण्णेण एयसमओ । १७६. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

प्रकृतियोंका प्रवेशक हुआ और अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर ही क्षपकश्रेणीपर चढ़कर आठ कषायोंका क्षयकर तेरह प्रकृतियोंका प्रवेशक बन गया । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हो गया । अथवा कोई उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्टयकी विसंयोजना करके सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण इक्कीस प्रकृतियोंका प्रवेशक रहकर छह आवली कालके अवशेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर बाईस प्रकृतियोंका प्रवेशक बन गया । इस प्रकार भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल सिद्ध हो जाता है । अब इक्कीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करते हैं–मोहकर्मकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक देव या नारकी पूर्व कोटीकी आयुवाले कर्मभूमिज मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षपणकर इक्कीस प्रकृतियोंका प्रवेशक बना और अपनी शेष मनुष्यायुको पूरा करके मरकर तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँकी आयु पूरी करके च्युत होकर पुनः पूर्वकोटीकी आयुके धारक कर्मभूमियाँ मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जब जीवनका अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रह गया, तब संयमको ग्रहणकर क्षपकश्रेणीपर चढ़कर और आठ कषायोंका क्षयकर तेरह प्रकृतियोंका प्रवेशक हुआ । इस प्रकार कुछ अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम दो पूर्वकोटी सातिरेक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट काल इक्कीस प्रकृतियोंके प्रवेशकका सिद्ध होता है ।

चूर्णिसू०–बाईस प्रकृतियों और पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१७४॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१७५-१७६॥

विशेषार्थ–इनमेंसे पहले बाईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवके एक समय-प्रमाण जघन्य कालकी प्ररूपणा करते हैं–अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना करके बना हुआ उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अपना काल पूरा करके सासादन, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिको प्राप्त होनेपर प्रथम समयमें वह बाईस प्रकृतियोंका प्रवेश करता है और तदनन्तर समयमें ही यथाक्रमसे पच्चीस, अट्ठाईस, या चौबीस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला हो जाता है, इस प्रकार एक समयप्रमाण जघन्य काल सिद्ध हो जाता है । अब पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवके जघन्य कालकी प्ररूपणा करते हैं–अनन्तानुबन्धीकी विसं-योजना करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशम सम्यक्त्व-कालके द्विचरम समयमें सासा-दन गुणस्थानको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें किसी एक अनन्तानुबन्धीके उदय आनेसे बाईस प्रकृतिरूप प्रवेश स्थान उपलब्ध हुआ और दूसरे समयमें ही उदयावलीके बाहिर अवस्थित शेष तीन अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंके उदयावलीमें प्रवेश करनेपर पच्चीस प्रकृतियोंका प्रवेश उप-लब्ध हुआ । इसके दूसरे समयमें ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेसे छब्बीस प्रकृतिरूप प्रवेश

१७७. तेवीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १७८. जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। १७९. चउवीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १८०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। १८१. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।

१८२. छव्वीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १८३. तिण्णि भंगा। १८४. तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहण्णेण एयसमओ। १८५.

स्थान उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेशका जघन्य काल भी एक समयमात्र ही सिद्ध होता है। बाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रवेश कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है–क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपण करके जब तक सम्यक्त्व-प्रकृतिका क्षय करता है, तब तक बाईस प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण उत्कृष्ट प्रवेशकाल पाया जाता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन नहीं करनेवाले उपशम-सम्यग्दृष्टिका अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण सर्वकाल पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेशका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए।

शंका–तेईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१७७॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके क्षपण करनेका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सर्वकाल ही तेईस प्रकृतियोंके प्रवेशका काल है ॥१७८॥

शंका–चौबीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१७९॥

समाधान–जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन दो बार छयासठ सागरोपम है ॥१८०-१८१॥

विशेषार्थ–चौबीस प्रकृतियोंके जघन्य प्रवेश कालकी प्ररूपणा इस प्रकार है–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका विसंयोजन करके चौबीस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला बना और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही मिथ्यात्व-को प्राप्त होकर अट्ठाईस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला हो गया। इस प्रकार चौबीस प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य प्रवेश-काल सिद्ध हो जाता है। अब इसीके उत्कृष्ट प्रवेश-कालकी प्ररूपणा करते हैं–कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके उपशम-सम्यक्त्वके कालके भीतर ही चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके दूसरे समयसे लेकर चौबीस-प्रकृतियोंका प्रवेशक बनकर दो बार छयासठ साग-रोपम कालतक देव और मनुष्यगतिमें परिभ्रमण करके अन्तमें दर्शनमोहनीयके क्षपणके लिए अभ्युद्यत होनेपर मिथ्यात्वका क्षपण कर तेईस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाला हुआ। इस प्रकार एक समय अधिक सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपण कालसे कम दो बार छयासठ सागरोपम चौबीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रवेशकाल जानना चाहिए।

शंका–छब्बीस प्रकृतियोंका प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१८२॥

समाधान-इस विषयमें तीन भंग हैं–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें जो तीसरा सादि-सान्त भंग है, उसकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंके प्रवेशका

उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । १८६. सत्तावीसाए पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १८७. जहण्णेण एयसमओ । १८८. उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। १८९. अट्ठावीसं पयडीणं पवेसगो केवचिरं कालादो होदि ? १९०. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १९१. उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

१९२. अंतरमणुचिंतिऊण णेदव्वं ।

१९३. णाणाजीवेहि भंगविचयो । १९४. अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चदुवीस-

जघन्य काल एक समय हैं; क्योंकि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व या वेदकसम्यक्त्व प्राप्त करनेपर, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वमें जानेपर एक समयप्रमाण जघन्य प्रवेश-काल पाया जाता हैं । छब्बीस प्रकृतियोंके प्रवेशका उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गल परिवर्तन है ॥१८३-१८५॥

विशेषार्थ–जिस जीवने अपने संसार-परिभ्रमणके अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल अवशिष्ट रहनेके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न किया और सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो सर्वलघुकाल-द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्वेलनाकर छब्बीस प्रकृतियोंका प्रवेशक बनकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक संसारमें परिभ्रमणकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके शेप रह जानेपर सम्यक्त्वको प्राप्त किया । ऐसे जीवके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रवेश काल पाया जाता है ।

शंका–सत्ताईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१८६॥

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है । क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग बतलाया गया है ॥१८७-१८८॥

शंका–अट्ठाईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीवका कितना काल है ? ॥१८९॥

समाधान–जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सातिरेक दो वार छयासठ सागरोपम है ॥१९०-१९१॥

विशेषार्थ–किसी मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर तदनन्तर ही वेदकसम्यक्त्वी बनकर अट्ठाईस प्रकृतियोंके प्रवेशको प्रारम्भकर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालके पश्चात् ही अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजनकर चौबीस प्रकृतियोंका प्रवेशक बननेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ सातिरेकसे तीन वार पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अर्थ अभीष्ट है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार उक्त प्रवेश स्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर भी आगमके अनुसार चिन्तवन करके जानना चाहिए ॥१९२॥

चूर्णिसू०–अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय करते हैं–अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतियाँ नियमसे उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । (क्योंकि, नानाजीवोंकी

एक्कवीसाए पयडीओ णियमा पविसंति[1] । १९५. सेसाणि ठाणाणि भजियव्वाणि[2] ।

१९६. णाणाजीवेहि कालो अंतरं च अणुचिंतिऊण णेदव्वं ।

१९७. अप्पाबहुअं । १९८. चउण्हं सत्तण्हं दसण्हं पयडीणं पवेसगा तुल्ला थोवा[3] । १९९. तिण्हं पवेसगा संखेज्जगुणा[4] । २००. छण्हं पवेसगा विसेसाहिया[5] । २०१. णवण्हं पवेसगा विसेसाहिया[6] । २०२. बारसण्हं पवेसगा विसेसाहिया[7] । २०३. एगूणवीसाए पवेसगा विसेसाहिया[8] । २०४. वीसाए पवेसगा विसेसाहिया[9] ।

अपेक्षा ये प्रवेशस्थान सर्वकाल पाये जाते हैं ।) शेष प्रवेशस्थान भजनीय हैं । अर्थात् उनके प्रवेश करनेवाले जीव कभी पाये जाते हैं और कभी नहीं पाये जाते हैं ॥१९३-१९५॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और अन्तरको आगमानुसार चिन्तवन करके जानना चाहिए ॥१९६॥

चूर्णिसू०—अब उक्त प्रवेश-स्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं चार, सात, और दश प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव परस्परमें बराबर हैं, किन्तु वक्ष्यमाण स्थानोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । तीन प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव उपर्युक्त प्रवेश-स्थानोंसे संख्यातगुणित हैं । तीन प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे छह प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं । छह प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे नौ प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं । नौ प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे बारह प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं । बारह प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे उन्नीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं । उन्नीस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे बीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥१९७-२०४॥

१ कुदो; णाणाजीवावेक्खाए एदेसिं पवेसट्ठाणाणं धुवभावेण सव्वकालमवट्ठाणदंसणादो । जयध०

२ कुदो; पणुवीसादिसेसपवेसट्ठाणाणमद्धुवभावदंसणादो । जयध०

३ कुदो; एयसमयसंचिदत्तादो । तं जहा—तिण्हं लोभाणमुवरि मायासंजलणे पवेसिदे एयसमयं चदुण्हं पवेसगो होइ । तिण्हं मायाणमुवरि माणसंजलणं पवेसिय एगसमयं सत्तण्हं पवेसगो होइ । तिण्हं माणाणमुवरि कोहसंजलणं पवेसयमाणो एयसमयं चेव दसण्हं पवेसगो होदि त्ति एदेण कारणेण एदेसिं तिण्हं पि पवेसट्ठाणाणं सामिणो जीवा अण्णोण्णेण सरिसा होदूण उवरि भणिस्समाणसेसपदेहिंतो थोवा जादा । जयध०

४ किं कारणं; सव्वकालबहुत्तादो । तं जहा—तिविहं लोभमोकड्डिऊण ट्ठिदसुहुमसांपराइयकाले पुणो अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे च संचिदो जीवरासी तिण्हं पवेसगो होइ । तेण पुव्विल्लादो एगसमयसंचयादो एसो अंतोमुहुत्तसंचओ संखेज्जगुणो त्ति णत्थि संदेहो । जयध०

५ केण कारणेण; विसेसाहियकालब्भंतरसंचिदत्तादो । जयध०

६ कुदो; मायावेदगकालादो विसेसाहियमाणवेदगकालम्मि संचिदजीवरासिस्स गहणादो । जयध०

७ किं कारणं; पुव्विल्लसंचयकालादो विसेसाहियकोहवेदगकालम्मि अवगदवेदपडिबद्धम्मि संचिदजीवरासिस्स गहणादो । जयध०

८ किं कारणं; पुरिसवेद-छण्णोकसाए ओकड्डिय पुणो जाव इत्थिवेदं ण ओकड्डदि, ताव एदम्मि काले पुव्विल्लसंचयकालादो विसेसाहियम्मि संचिदजीवरासिस्स विवक्खियत्तादो । जयध०

९ कुदो; इत्थिवेदमोकड्डिय पुणो जाव णवुंसयवेदं ण ओकड्डदि ताव एदम्मि काले पुव्विल्लसंचयकालादो विसेसाहियम्मि संचिदजीवाणमिहग्गहणादो । जयध०

२०५. दोण्हं पवेसगा संखेज्जगुणा[1] । २०६. एक्किस्से पवेसगा संखेज्जगुणा[2] । २०७. तेरसण्हं पवेसगा संखेज्जगुणा[3] । २०८. तेवीसाए पवेसगा संखेज्जगुणा[4] । २०९. बावीसाए पवेसगा असंखेज्जगुणा[5] । २१०. पणुवीसाए पवेसगा असंखेज्जगुणा[6] । २११. सत्तावीसाए पवेसगा असंखेज्जगुणा[7] । २१२. एक्कवीसाए पवेसगा असंखेज्जगुणा[8] । २१३. चउवीसाए पवेसगा असंखेज्जगुणा । २१४. अट्ठावीसाए

विशेषार्थ—उक्त इन सभी प्रवेश-स्थानोंका संचय-काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक होनेसे जीवोंकी संख्या भी विशेष-विशेष अधिक बतलाई गई है ।

चूर्णिसू०—बीस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे दो प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं । दो प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे एक प्रकृतिके प्रवेश करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं । एक प्रकृतिके प्रवेशक जीवोंसे तेरह प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं । तेरह प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे तेईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव संख्यातगुणित हैं ॥२०५-२०८॥

विशेषार्थ—उक्त प्रवेशस्थानोंका संचय काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणित है, अतः उनमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी संख्या भी उत्तरोत्तर संख्यातगुणित बतलाई गई है ।

चूर्णिसू०—तेईस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे बाईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । बाईस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । पच्चीस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे सत्ताईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । सत्ताईस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे इक्कीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । इक्कीस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे चौबीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं । चौबीस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव असंख्यातगुणित हैं ॥२०९-२१४॥

१ केण कारणेण ? पुरिसवेदोदएण खवगसेढिमारूढस्स अंतरकरणादो समयूणावलियागदाए तदोप्पहुडि जाव पुरिसवेदपढमट्ठिदिचरिमसमयो त्ति ताव एदम्मि कालविसेसे पयदसंचयावलंबणादो । जइवि उवसमसेढीए चेव पयदसंचयो अवलंबिज्जदे, तो वि पुव्विल्लादो एदस्स संचयकालमाहप्पेण संखेज्जगुणत्तं ण विरुज्झदे । जयध०

२ कुदो; पुव्विल्लादो एदस्स संचयकालमाहप्पदंसणादो । जयध०

३ किं कारणं; अट्ठकसाएसु खविदेसु तत्तोप्पहुडि जाव अंतरकरणं समाणिय समयूणावलियमेत्तो कालो गच्छदि ताव एदम्मि काले पुव्विल्लकालादो संखेज्जगुणो तेरसपवेसगाण संचयावलंबणादो । जयध०

४ कुदो; दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदेण मिच्छत्ते खविदे तत्तोप्पहुडि जाव सम्मामिच्छत्तक्खवणचरिमसमयो त्ति ताव एदम्मि काले पुव्विल्लकालादो संखेज्जगुणे संचिदजीवाणं गहणादो । जयध०

५ कुदो; पलिदोवमस्सासंखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

६ कुदो; अणंताणुबंधिविसंजोयणाविरहिदाणमुवसमसम्माइट्ठीणं सासणसम्माइट्ठीणं च अंतोमुहुत्तसंचिदाणमिह गहणादो । जयध०

७ कुदो; सम्मत्ते उव्वेल्लिदे पुणो पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणसम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणाकालब्भंतरे पयदसंचयावलंबणादो । जयध०

८ कुदो; चउवीससंतकम्मियवेदयसम्माइट्ठिरासिस्स गहणादो । जयध०

पवेसगा असंखेज्जगुणा[1] । २१५. छव्वीसाए पवेसगा अणंतगुणा[2] ।

२१६. भुजगारो कायव्वो । २१७. पदणिक्खेवो कायव्वो । २१८. वड्ढी वि कायव्वा ।

२१९. 'खेत्त-भव-काल-पोग्गलट्ठिदि-विवागोदयखयो दु' त्ति एदस्स विहासा । २२०. कम्मोदयो खेत्त-भवकाल-पोग्गल-ट्ठिदिविवागोदयक्खओ भवदि[3] ।

विशेषार्थ—इन उक्त सर्व प्रवेशस्थानोंका संचय काल उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित होनेसे उनमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी संख्या भी असंख्यातगुणित बतलाई गई है ।

चूर्णिसू०—अट्ठाईस प्रकृतियोंके प्रवेशक जीवोंसे छब्बीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव अनन्तगुणित हैं ॥२१५॥

विशेषार्थ—क्योंकि छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवोंकी संख्या कुछ कम सर्व जीवराशि-प्रमाण है, जो कि अनन्त है । अतएव छब्बीस प्रकृतियोंके प्रवेश करनेवाले जीव अनन्तगुणित बतलाये गये हैं ।

चूर्णिसू०—भुजाकार-प्ररूपणा करना चाहिए, पदनिक्षेपका वर्णन करना चाहिए और वृद्धिकी प्ररूपणा भी करना चाहिए ॥२१६-२१८॥

इस प्रकार इन भुजाकारादि अनुयोगद्वारोंके निरूपण करनेपर 'कितनी प्रकृतियाँ किस जीवके उदयावलीमें प्रवेश करती हैं' प्रथम गाथाके इस द्वितीय पादका अर्थ समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—अब 'क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल द्रव्यका आश्रय लेकर जो स्थिति-विपाकरूप उदय होता है, उसे क्षय कहते हैं' गाथाके इस उत्तरार्धकी विभाषा की जाती है अपक्वपाचनके विना यथाकाल-जनित कर्मोंके विपाकको कर्मोदय कहते हैं ? वह कर्मोदय क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल द्रव्यके आश्रयसे स्थितिके विपाकरूप होता है । अर्थात् कर्म उदयमें आकर अपना फल देकर झड़ जाते हैं । इसीको उदय या क्षय कहते हैं ॥२१९-२२०॥

विशेषार्थ—यह कर्मोदय प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार प्रकारका है । इनमेंसे यहाँपर प्रकृति-उदयसे प्रयोजन है; क्योंकि प्रकृति-उदीरणाके वर्णनके पश्चात् प्रकृति-उदयका वर्णन ही न्याय-प्राप्त है । चूर्णिसूत्रकारने कर्मोदयकी अर्थ-विभाषा इसलिए नहीं की है कि उदीरणाके वर्णनसे ही उदयका वर्णन भी हो ही जाता है । और फिर उदयसे उदीरणा सर्वथा भिन्न भी तो नहीं है; क्योंकि उदयके अवस्था-विशेषको ही उदीरणा कहते हैं ।

---

१ किं कारणं; अट्ठावीससंतकम्मियवेदगसम्माइट्ठिरासिस्स पहाणभावेण विवक्खियत्तादो । जयध०

२ कुदो; किंचूणसव्वजीवरासिपमाणत्तादो । जयध०

३ कम्मेण उदयो कम्मोदयो, अपक्कपाचणाए विणा जहाकालजणिदो कम्माणं ट्ठिदिक्खएण जो विवागो सो कम्मोदयो त्ति भण्णदे । सो पुण खेत्त-भव-काल-पोग्गलट्ठिदिविवागोदयखयो त्ति एदस्स गाहापच्छद्धस्स समुदायत्थो भवदि । कुदो; खेत्त-भव-काल-पोग्गले अस्सिऊण जो ट्ठिदिक्खयो उदिण्णफलक्खंधपरिसडणलक्खणो सोदयो त्ति सुत्तत्थावलंबणादो । जयध०

२२१. 'को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो' त्ति पदस्स ट्ठिदि-उदीरणा कायव्वा[1]। २२२. एत्थ ट्ठिदिउदीरणा दुविहा–मूलपयडिट्ठिदिउदीरणा उत्तरपयडिट्ठिदिउदीरणा च। २२३. तत्थ इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा- पमाणाणुगमो सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचयो कालो अंतरं सण्णियासो अप्पाबहुअं भुजगारो पद-णिक्खेवो वड्ढी ट्ठाणाणि च। २२४. एदेसु अणियोगद्दारेसु विहासिदेसु 'को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो' त्ति पदं समत्तं।

२२५. 'को व के य अणुभागे' त्ति अणुभागउदीरणा कायव्वा। २२६. तत्थ तत्थ अट्ठपदं[2]। २२७. अणुभागा पयोगेण ओकड्डियूण उदये दिज्जंति सा उदीरणा[3]। २२८. तत्थ जं जिस्से आदिफद्दयं तं ण ओकड्डिज्जदि[4]। २२९.

उदय और उदीरणामें जो थोड़ी-सी विशेषता है, वह व्याख्यानाचार्योंके विशेष व्याख्यानसे ज्ञात ही हो जाती है।

इस प्रकार कर्मोदयके व्याख्यान कर देनेपर वेदक अधिकारकी प्रथम गाथाका अर्थ समाप्त हो जाता है।

चूर्णिसू०–'कौन जीव किस स्थितिमें प्रवेशक होता है' दूसरी गाथाके इस प्रथम पदकी स्थिति-उदीरणा (–रूप व्याख्या) करना चाहिए। यह स्थिति-उदीरणा दो प्रकारकी है–मूलप्रकृतिस्थिति-उदीरणा और उत्तरप्रकृतिस्थिति-उदीरणा। इन दोनों प्रकारकी उदी-रणाओंके प्ररूपण करनेवाले अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं–प्रमाणानुगम, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल और अन्तर, सन्निकर्ष, अल्प-बहुत्व, भुजाकार, पदनिक्षेप, स्थान और वृद्धि। इन अनुयोगद्वारोंके व्याख्यान करनेपर 'को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो' इस पदका अर्थ समाप्त हो जाता है ॥२२२-२२४॥

विशेषार्थ–चूर्णिसूत्रकारने ग्रन्थ-विस्तारके भयसे उक्त अनुयोगद्वारोंका वर्णन नहीं किया है। अतः विशेष जिज्ञासुओंको जयधवला टीका देखना चाहिये।

चूर्णिसू०–'कौन जीव किस अनुभागमें प्रवेश करता है' दूसरी गाथाके इस दूसरे पदमें अनुभाग-उदीरणाकी प्ररूपणा करना चाहिए। इस विषयमें यह अर्थपद है। वह इस प्रकार है–प्रयोग अर्थात् परिणाम-विशेषके द्वारा स्पर्धक, वर्ग, वर्गणा और अविभागप्रतिच्छेद-स्वरूप अनन्तभेद-भिन्न अनुभागका अपकर्षण करके और अनन्तगुणहीन बनाकर जो स्पर्धक उदयमें दिये जाते हैं, उसे उदीरणा कहते हैं। उसमें जिस कर्म-प्रकृतिका जो आदि स्पर्धक है, वह उदीरणाके लिए अपकर्षित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार द्वितीय, तृतीय आदि

१ पयडिउदीरणाणंतरमेत्तो ट्ठिदिउदीरणा कायव्वा, पत्तावसरत्तादो। जयध०

२ किमट्ठपदं णाम? जत्तो सादाराणं पयदत्थविसए सम्ममवगमो समुप्पज्जइ, तमट्ठस्स वा तं पदमट्ठपदमिदि भण्णदे। जयध०

३ अणुभागा मूलुत्तरपयडीणमणंतभेयभिण्णफद्दयवग्गणाविभागपलिच्छेदसरूवा, पयोगेण परिणाम-विसेसेण ओकड्डियूण अणंतगुणहीणसरूवेण उदए दिज्जंति, सा उदीरणा णाम। जयध०

४ कुदो; तत्तो हेट्ठा अणुभागफद्दयाणमसंभवादो। जयध०

एवमणंताणि फद्दयाणि ण ओकड्डिज्जंति[1]। २३०. केत्तियाणि ? जत्तिगो जहण्णगो णिक्खेवो जहण्णिया च अइच्छावणा तत्तिगाणि। २३१. आदीदो पहुडि एत्तियमेत्ताणि फद्दयाणि अइच्छिदूण तं फद्दयमोकड्डिज्जदि। २३२. तेण परमपडिसिद्धं। २३३. एदेण अट्ठपदेण अणुभागुदीरणा दुविहा–मूलपयडि-अणुभागउदीरणा च उत्तरपयडि-अणुभाग-उदीरणा च। २३४ एत्थ मूलपयडिअणुभाग उदीरणा भाणियव्वा। २३५. उत्तर-पयडिअणुभागुदीरणं वत्तइस्सामो। २३६. तत्थेमाणि चउवीसमणियोगद्दाराणि सण्णा सव्वउदीरणा एवं जाव अप्पाबहुए त्ति। भुजगार-पदणिक्खेव-वड्डि-ट्ठाणाणि च। २३७. तत्थ पुव्वं गमणिज्जा दुविहा-सण्णा घाइसण्णा ठाणसण्णा च[2]। २३८. ताओ

अनन्त स्पर्धक उदीरणाके लिए अपकर्षित नहीं किये जा सकते हैं। उदीरणाके लिए अयोग्य स्पर्धक कितने हैं ? जितना जघन्य निक्षेप है और जितनी जघन्य अतिस्थापना है, तत्प्रमाण अर्थात् उतने उदीरणाके अयोग्य स्पर्धक होते हैं ॥२२५-२३०॥

चूर्णिसू०–विवक्षित कर्म-प्रकृतिके आदि स्पर्धकसे लेकर इतने अर्थात् जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापना-प्रमाण स्पर्धकोंको छोड़कर जो स्पर्धक प्राप्त होता है, वह स्पर्धक उदीरणाके लिए अपकर्षित किया जाता है। इससे परे कोई निषेध नहीं है, अर्थात् आगेके समस्त स्पर्धक उदीरणाके लिए अपकर्षित किये जा सकते हैं। इस अर्थपदके द्वारा वर्णनकी जानेवाली अनुभाग-उदीरणा दो प्रकारकी है–मूलप्रकृति-अनुभाग-उदीरणा और उत्तरप्रकृति-अनुभाग-उदीरणा। इनमेंसे मूलप्रकृतिअनुभाग-उदीरणाका संज्ञा आदि तेईस अनुयोगद्वारोंसे व्याख्यानाचार्योंको निरूपण करना चाहिए ॥२३१-२३४॥

चूर्णिसू०–अब उत्तरप्रकृति-अनुभाग-उदीरणाको कहेंगे। उसके विषयमें ये चौवीस अनुयोगद्वार हैं–१ संज्ञा, २ सर्वउदीरणा, ३ नोसर्वउदीरणा, ४ उत्कृष्टउदीरणा, ५ अनुत्कृष्ट-उदीरणा, ६ जघन्यउदीरणा, ७ अजघन्यउदीरणा, ८ सादिउदीरणा ९ अनादिउदीरणा, १० ध्रुवउदीरणा, ११ अध्रुवउदीरणा, १२ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल, १४ अन्तर, १५ नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १६ भागाभाग, १७ परिमाण, १८ क्षेत्र, १९ स्पर्शन, २० काल, २१ अन्तर, २२ सन्निकर्ष, २३ भाव और २४ अल्पबहुत्व। तथा भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान; इन सर्व अनुयोगद्वारोंसे अनुभाग-उदीरणाका वर्णन करना चाहिए ॥२३५-२३६॥

चूर्णिसू०–उत्तरप्रकृति-उदीरणाके वर्णन करनेवाले अनुयोगद्वारोंमें प्रथम संज्ञा नामक अनुयोगद्वार जाननेके योग्य है। वह इस प्रकार है–संज्ञाके दो भेद हैं घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। इन दोनों ही संज्ञाओंको एक साथ कहेंगे ॥२३७-२३८॥

१ केत्तियाणि ? जत्तिगो जहण्णगो णिक्खेवो, जहण्णिया च अइच्छावणा; तत्तिगाणि। अणंताणि ण ओकड्डिज्जंति। जयध०

२ तत्थ जा सा घादिसण्णा, सा दुविहा, सव्वघादि-देसघादिभेदेण। ठाणसण्णा चउव्विहा, लदासमाणादिसहावभेदेण भिण्णत्तादो। जयध०

दो वि एक्कदो वत्तइस्सामो । २३९. तं जहा–मिच्छत्त-बारसकसायाणमणुभाग-उदीरणा सव्वघादी[1] । २४०. दुट्ठाणिया तिट्ठाणिया चउट्ठाणिया वा[2] । २४१. सम्मत्तस्स अणुभागुदीरणा देसघादी[3] । २४२. एगट्ठाणिया वा दुट्ठाणिया वा[4] । २४३. सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागउदीरणा सव्वघादी विट्ठाणिया[5] । २४४. चदुसंजलण-तिवेदाणमणुभागुदीरणा देसघादी सव्वघादी वा[6] । २४५.एगट्ठाणिया वा दुट्ठाणिया तिट्ठाणिया

विशेषार्थ–वर्ण्यमान विषयके नामको संज्ञा कहते हैं । यहाँ अनुभागकी उदीरणाका वर्णन सर्वघाति और देशघातिरूप घातिसंज्ञाके द्वारा, तथा लता, दारु, अस्थि और शैलरूप चार प्रकारकी स्थानसंज्ञाके द्वारा किया जायगा ।

चूर्णिसू०–उन दोनोंका एक साथ वर्णन इस प्रकार है–मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी अनुभाग-उदीरणा सर्वघाती है, तथा वह द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी अनुभाग-उदीरणा देशघाती तथा एकस्थानीय और द्विस्थानीय है । सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुभाग-उदीरणा सर्वघाती और द्विस्थानीय है । चार संज्वलन और तीनों वेदोंकी अनुभाग-उदीरणा देशघाती भी है और सर्वघाती भी है, तथ एकस्थानीय भी है, द्विस्थानीय भी है, त्रिस्थानीय भी है और चतुःस्थानीय भी है ॥२३९-२४५॥

विशेषार्थ-अनुभाग-उदीरणासम्बन्धी एकस्थानीय आदि चार भेद क्रमशः जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागशक्तिकी अपेक्षासे किये गये हैं । अतएव मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा द्विस्थानीय और त्रिस्थानीय भेद जानना चाहिए । सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्दर्शनका विनाश करनेमें असमर्थ

१ कुदो; एदेसिमणुभागोदीरणाए सम्मत्त-संजमगुणाणं णिरवसेसविणासदंसणादो । पच्चक्खाणकसायोदीरणाए संतीए वि देससंजमो समुवलब्भदि, तदो ण तेसिं सव्वघादित्तमिदि णासंकणिज्जं; सयलसंजममस्सिऊण तेसिं सव्वघादित्तसमत्थणादो । जयध०

२ कुदो; मिच्छत्त-बारसकसायाणमुक्कस्साणुभागुदीरणाए चउट्ठाणियत्तदंसणादो, तेसिं चेवाणुक्कस्साणुभागुदीरणाए चउट्ठाण-तिट्ठाण-दुट्ठाणियत्तदंसणादो । जयध०

३ कुदो; मिच्छत्तुदीरणाए इव सम्मत्तुदीरणाए सम्मत्तसण्णिदजीवपज्जायस्स अच्चंतुच्छेदाभावादो । जयध०

४ कुदो; सम्मत्तजहण्णाणुभागुदीरणाए एगट्ठाणियत्तदंसणादो, तदुक्कस्साणुभागुदीरणाए दुट्ठाणियत्तदंसणादो । जयध०

५ कुदो ताव सव्वघादित्तं ? मिच्छत्तोदीरणाए इव सम्मामिच्छत्तोदीरणाए वि सम्मत्तसण्णिदजीवगुणस्स णिम्मूलविणासदंसणादो । एसा पुण दुट्ठाणिया चेव । कुदो; सम्मामिच्छत्ताणुभागम्मि दुट्ठाणियत्तं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो । जयध०

६ कुदो; एदेसिं जहण्णाणुभागुदीरणाए देसघादित्तणियमदंसणादो, उक्कस्साणुभागुदीरणाए च णियमदो सव्वघादित्तदंसणादो; अजहण्णाणुक्कस्साणुभागोदीरणासु देस-सव्वघादिभावाणं दोण्हं पि समुवलंभादो च । एतदुक्तं भवति–मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ताव एदेसिं कम्माणमणुभागुदीरणाए सव्वघादी देसघादी च होदि; संकिलेस-विसोहिवसेण । संजदासंजदप्पहुडि उवरि सव्वत्थेव देसघादी होदि; तत्थ सव्वघादिउदीरणाए तग्गुणपरिणामेण सह विरोहादो त्ति । जयध०

चउट्ठाणिया वा[1]। २४६. छण्णोकसायाणमणुभाग-उदीरणा देसघादी वा सव्वघादी वा[2]। २४७. दुट्ठाणिया वा तिट्ठाणिया वा चउट्ठाणिया वा[3]। २४८. चदुसंजलण-णवणोकसायाणमणुभाग-उदीरणा एइंदिए वि देसघादी होइ[4]।

होनेसे देशघाती कही गई है। उसे जघन्य अनुभागकी अपेक्षा एकस्थानीय और उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा द्विस्थानीय कहा है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति सम्यक्त्वकी विनाशक है, अतः सर्वघाती है और इसका अनुभाग द्विस्थानीय ही कहा है, क्योंकि इसमें अन्य तीन विकल्प संभव नहीं हैं। चारों संज्वलन और तीनों वेद जघन्य अनुभागकी अपेक्षा सर्वघाती हैं। तथा अजघन्य और उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा दोनों रूप भी हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक संक्लेश और विशुद्धिके निमित्तसे उक्त कर्म-प्रकृतियोंकी अनुभाग-उदीरणा सर्वघाती भी होती है और देशघाती भी होती है। किन्तु संयतासंयतसे लेकर ऊपरके गुणस्थानोंमें अनुभाग-उदीरणा सर्वत्र देशघाती ही होती है, क्योंकि, वहाँ सर्वघातीरूप उदीरणाका होना संभव नहीं है। उक्त प्रकृतियोंकी चारों ही स्थानरूप उदीरणा कहनेका आशय यह है कि नवें गुणस्थानमें अन्तरकरण करनेपर उक्त प्रकृतियोंकी अनुभाग-उदीरणा नियमसे लतारूप एकस्थानीय ही दिखाई देती है। इससे नीचे दूसरे गुणस्थानतक द्विस्थानीय ही अनुभागउदीरणा होती है। किन्तु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें परिणामोंके परिवर्तनके अनुसार द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय भी होती है।

चूर्णिसू०—हास्यादि छह नोकषायोंकी अनुभागउदीरणा देशघाती भी है और सर्वघाती भी है। तथा द्विस्थानीय भी है, त्रिस्थानीय भी है और चतुःस्थानीय भी है ॥२४६॥

विशेषार्थ—संयतासंयतादि उपरिम गुणस्थानोंमें हास्यादिषट्कको अनुभाग-उदीरणा द्विस्थानीय होनेपर भी देशघाती ही होती है। किन्तु इससे नीचे सासादनगुणस्थान तक द्विस्थानीय होते हुए भी देशघाती और सर्वघाती इन दोनों ही रूपोंमें अनुभाग-उदीरणा होती है। मिथ्यादृष्टिकी अनुभाग-उदीरणा द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय तथा चतुःस्थानीय होती है।

चूर्णिसू०—चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंकी अनुभाग-उदीरणा एकेन्द्रिय जीवमें भी देशघाती होती होती है ॥२४८॥

१ कुदो; अंतरकरणे कदे एदेसिमणुभागोदीरणाए णियमेणेगट्ठाणियत्तदंसणादो। हेट्ठा सव्वत्थेव गुणपडिवण्णेसु दुट्ठाणियत्तणियमदंसणादो। मिच्छाइट्ठिम्मि दुट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणभेदेण परियत्तमाणाणुभागोदीरणाए दंसणादो। जयध०

२ कुदो; असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि हेट्ठा सव्वत्थेव देस-सव्वघादिभावेणेदेसिमणुभागोदीरणाए पउत्तिदंसणादो; संजदासंजदप्पहुडि जाव अपुव्वकरणो त्ति देसघादिभावेणुदीरणाए पउत्तिणियमदंसणादो च। जयध०

३ कुदो; संजदासंजदादिउवरिमगुणट्ठाणेसु छण्णोकसायाणमणुभागोदीरणाए देसघादि दुट्ठाणियत्तणियमदंसणादो। हेट्ठिमेसु वि गुणपडिवण्णेसु विट्ठाणियाणुभागुदीरणाए देस-सव्वघादिविसेसिदाए संभवोवलंभादो। मिच्छाइट्ठिम्मि विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणवियप्पाणं सव्वेसिमेव संभवादो। जयध०

४ एत्थ देसघादो चेव उदीरणाए होइ त्ति णावहारेयव्वं, किंतु एदेसु जीवसमासेसु सव्वघादि-

२४९. एगजीवेण सामित्तं । २५०. तं जहा । २५१. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा कस्स ? २५२. मिच्छाइट्ठिस्स सण्णिस्स सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तयदस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स[1] । २५३. एवं सोलसकसायाणं[2] । २५४. सम्मत्तस्स उक्कस्साणुभागु-

---

विशेषार्थ–उक्त प्रकृतियोंकी देशघाती अनुभाग-उदीरणा संयतासंयतादि उपरिम गुणस्थानोंके समान असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टियोंमें भी परिणामोंकी विशुद्धिके समय पाई जाती है । इतना ही नहीं, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें भी यथायोग्य संभव विशुद्धिके कारण देशघाती अनुभाग-उदीरणाके पाये जानेका कहीं कोई निषेध नहीं है । और तो क्या, एकेन्द्रिय जीवों तकमें यथासम्भव विशुद्धिके कारण उक्त प्रकृतियोंकी देशघाती अनुभागउदीरणा पाई जाती है । यहाँ प्रकृत सूत्रके द्वारा असंज्ञी पंचेन्द्रियादि एकेन्द्रिय जीवोंमें सर्वघाती अनुभाग-उदीरणाका निषेध नहीं किया गया है किन्तु सर्वघातीके समान देशघातीके सद्भावका भी निरूपण किया गया है, ऐसा अभिप्राय लेना चाहिए ।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा अनुभाग-उदीरणाका स्वामित्व कहते हैं । वह इस प्रकार है ॥२४९-२५०॥

शंका–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२५१॥

समाधान–सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिके होती है ॥२५२॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका स्वामित्व जानना चाहिए । अर्थात् उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त, संज्ञी, पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव ही सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका स्वामी है ॥२५३॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२५४॥

उदीरणासब्भावमविप्पडिवत्तिसिद्धं कादूण देसघादि-उदीरणाए तत्थासंभवणिरायरणमुहेण संभवविहाणमेदेण सुत्तेण कीरदे । तदो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि एइंदियपज्जवसाणसव्वजीवसमासेसु एदेसिं कम्माणमणुभागुदीरणा देसघादी वा सव्वघादी वा होदूण लब्भदि त्ति णिच्छयो कायव्वो । जयध०

१ किमट्ठमण्णजोगववच्छेदेण सव्वसंकिलिट्ठस्सेव पयदसामित्तणियमो ? ण, मंदसंकिलेसेण विसोहीए वा परिणदस्स सव्वुक्कस्साणुभागुदीरणाणुववत्तीदो । तदो उक्कस्साणुभागसंतकम्मट्ठाणचरिमफद्दयचरिमवग्गणा-विभागपडिच्छेदे उक्कस्ससंकिलेसवसेण थोवयरे चेव होदूण तप्पाओग्गहेट्ठिमाणंतगुणहीणच उट्ठाणाणुभाग-सरूवेण उदीरेमाणस्स सण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सयं मिच्छत्ताणुभागुदीरणासामित्तं होदि त्ति एसो सुत्तत्थसमुच्चयो । एत्थ उक्कस्साणुभागसंतकम्मादो चेव उक्कस्साणुभागुदीरणा होदि त्ति णत्थि णियमो, किंतु तप्पाओग्गाणुक्कस्साणुभागसंतकम्मेण वि उक्कस्साणुभागुदीरणाए होदव्वं; अण्णहा थावरकायादो आगंतूण तसकाइएसुप्पण्णस्स सव्वकालमुक्कस्साणुभागसंतकम्मुप्पत्तीए अभावप्पसंगादो । जयध०

२ एत्थ सव्वुक्कस्ससंकिलिट्ठमिच्छाइट्ठि-अणुभागुदीरणाए सामित्तविसईकयाए माहप्पजाणावणट्ठ-मेदमप्पाबहुअमणुगतव्वं । तं जहा–सम्मत्ताहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स अणुभागुदीरणा थोवा, दुचरिम-समए अणंतगुणब्भहिया, तिचरिमसमए अणंतगुणब्भहिया । एव चउत्थसमयादी णेदव्वं जाव सव्वुक्कस्स-संकिलिट्ठमिच्छाइट्ठिस्स अणुभागुदीरणा अणंतगुणा त्ति । तदो अण्णजोगववच्छेदेणेत्थेव मिच्छत्त-सोलस-कसायाणमुक्कस्ससामित्तमवहारयव्वमिदि । जयध०

दीरणा कस्स ? २५५. मिच्छत्ताहिमुहचरिमसमयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स[1] । २५६. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा कस्स ? २५७. मिच्छत्ताहिमुहचरिमसमय-सम्मामिच्छाइट्ठिस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स । २५८. इत्थिवेद-पुरिसवेदाणमुक्कस्साणुभागुदीरणा कस्स ? २५९. पंचिंदियतिरिक्खस्स अट्ठवासजादस्स करहस्स[2] सव्वसंकिलिट्ठस्स[3] । २६०. णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणमुक्कस्साणुभागुदीरणा कस्स ?

समाधान—सर्वोत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त और मिथ्यात्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिके होती है ॥२५५॥

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२५६॥

समाधान—सर्वाधिक संक्लेश-युक्त एवं मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके सम्मुख चरमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होती है ॥२५७॥

शंका—स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२५८॥

समाधान—अष्टवर्षायुष्क, सर्वाधिक संक्लिष्ट, पंचेन्द्रिय तिर्यंच करभ अर्थात् ऊँट और ऊँटनीके होती है ॥२५९॥

विशेषार्थ—कर्मोदयकी विचित्रतापर आश्चर्य है कि हजारों शरीर बनाकर एक साथ स्त्री-सेवन करनेवाले चक्रवर्ती या इन्द्रके पुरुषवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा नहीं होती। और इसी प्रकार हजारों रूप बनाकर एक साथ इन्द्रके साथ वैषयिक सुख भोगनेवाली इन्द्राणीके भी स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा नहीं होती, जब कि आठ वर्ष या इससे अधिक आयुके धारक और वेदोदयसे उत्कृष्ट वैकल्य या संक्लेशको प्राप्त ऊँटके पुरुषवेदकी और ऊँटनीके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है । इसका एकमात्र कारण जातिगत स्वभाव ही है । ऊँट-ऊँटनीके कामकी वेदना देव, मनुष्य और तिर्यंच इन तीनोंमें सबसे अधिक होती है, वह स्त्री या पुरुषवेदके तीव्र उदय होनेपर कामान्ध या उन्मत्त हो जाता है, जब तक उसके प्रकृत-वेदकी उदीरणा नहीं हो जाती है, तब तक उसे और कुछ नहीं सूझता है ।

शंका—नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२६०॥

१ कुदो, जीवादिपयत्थे दूसिय मिच्छत्तं गच्छमाणस्स तस्स उक्कससंकिलेसेण बहुआणुभागहाणीए अभावेण सम्मत्तुक्कस्साणुभागुदीरणाए तत्थ सव्वद्धमुवलंभादो । जयध०

२ उष्ट्रो मयः शृङ्खलिकः करभः शीघ्रगामुकः ॥९१॥ धनंजयः

३ एत्थ पंचिंदियतिरिक्खणिद्देसो मणुस-देवगदिवुदासट्ठो; तत्थुक्कस्सवेदसंकिलेसाभावादो । कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । अट्ठवासजादस्सेत्ति तस्स विसेसणमट्ठवस्सेहिंतो हेट्ठा सव्वुक्कस्सो वेदसंकिलेसो ण होदि त्ति जाणावणट्ठं । करभस्सेत्ति वयणं जादिविसेसेण तत्थेवित्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्साणुभागुदीरणा होदि त्ति पदुप्पायणट्ठं । तस्स वि उक्कस्ससंकिलेसेण परिणदावत्थाए चेव उक्कस्साणुभागउदीरणा होदि त्ति जाणावणट्ठं सव्वसंकिलिट्ठस्सेत्ति भणिदं । तदो एवंविहस्स जीवस्स पयदुक्कस्ससामित्तमिदि सिद्धं । जयध०

२६१. सत्तमाए पुढवीए णेरइयस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स[1] । २६२. हस्स-रदीणमुक्कस्साणुभागउदीरणा कस्स ? २६३. सदार-सहस्सारदेवस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स[2] ।

२६४. एत्तो जहण्णिया उदीरणा । २६५. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स ? २६६. संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स[3] । २६७. सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स ? २६८. समयाहियावलिय-अक्खीणदंसणमोहणीयस्स[4] ।

समाधान–सातवीं पृथिवीके सर्वोत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त नारकीके होती है ॥२६१॥

विशेषार्थ–ये नपुंसकवेदादि सूत्रोक्त प्रकृतियाँ अत्यन्त अप्रशस्त-स्वरूप होनेसे नितरां महादुःखोत्पादन-स्वभाववाली हैं । फिर त्रिभुवनमें सातवें नरकसे अधिक दुःख भी और कहीं नहीं । और नपुंसकवेद, अरति, शोकादिकी उदीरणाके निमित्तकारणरूप अशुभतम बाह्य द्रव्य सप्तम नरकसे बढ़कर अन्यत्र सम्भव नहीं हैं, इन्हीं सब कारणोंसे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागउदीरणा सप्तम नरकके सर्वसंक्लिष्ट नारकीके बतलाई गई है ।

शंका–हास्य और रतिप्रकृतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ?॥१६२॥

समाधान–सर्वाधिक संक्लिष्ट, शतार-सहस्रार-कल्पवासी देवोंके होती है ॥२६३॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उक्त राग-बहुल देवोंमें हास्य और रतिके कारण प्रचुरतासे पाये जाते हैं । उक्त देवोंके हास्य-रतिका छह मास तक निरन्तर एक-सा उदय बना रहता है, अर्थात् वहाँके देव छह मास तक लगातार हँसते हुए रह सकते हैं ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे जघन्य अनुभाग-उदीरणाके स्वामित्वका वर्णन करते हैं ॥२६४॥

शंका–मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२६५॥

समाधान–(सम्यक्त्व और) संयमको ग्रहण करनेके अभिमुख, सर्वविशुद्ध चरम-समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके होती है ॥२६६॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२६७॥

समाधान-एक समय अधिक आवलीकालवाले अक्षीणदर्शनमोह सम्यग्दृष्टिके होती है, अर्थात् जिसने दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ कर दिया है, पर अभी जिसके क्षयमें एक समय-अधिक एक आवलीप्रमाण काल बाकी है, ऐसे वेदकसम्यक्त्वीके सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है ॥२६८॥

१ एदाओ पयडीओ अच्चंतअप्पसत्थसरूवाओ; एयंतेण दुक्खुप्पायणसहावत्तादो। तदो एदासिमुदीरणाए सत्तमपुढवीए चेव उक्कस्ससामित्तं होइ; तत्तो अण्णदरस्स दुक्खणिहाणस्स तिहुवणभवणब्भंतरे कहिं पि अणुवलंभादो, तदुदीरणाकारणबज्झदव्वाणं पि असुहयराणं तत्थेव बहुलं संभवोवलंभादो । जयध०

२ कुदो; सदार-सहस्सारदेवेसु रागबहुलेसु हस्स-रदिकारणाणं बहूणमुवलंभादो । णेदमसिद्धं; उक्कस्सेण छम्मासमेत्तकालं तत्थ हस्स-रदीणमुदयो होदि त्ति परमागमोवएसबलेण सिद्धत्तादो । जयध०

३ किं कारणं; विसोहिपयरिसेण अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागो सुट्ठु ओहट्टिऊण हेट्ठिमाणंतिमभागसरूवेणुदीरिज्जदि त्ति । तदो सम्मत्तं संजमं च जुगवं गेण्हमाणचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णसामित्तमेदं दट्ठव्वं । जयध०

४ कुदो; दंसणमोहक्खवयतिव्वपरिणामेहि बहुअं खंडयघादं पाविदूण पुणो अंतोमुहुत्तमेत्तकालमणु-

२६९. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स ? २७०. सम्मत्ताहिमुहचरिमसमय-सम्मामिच्छाइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स । २७१. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २७२. संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स । २७३. अपच्चक्खाण-कसायस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २७४. संजमाहिमुहचरिमसमय-असंजदसम्मा-इट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स । २७५. पच्चक्खाणकसायस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २७६. संजमाहिमुहचरिमसमय-संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स । २७७. कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २७८. खवगस्स चरिमसमयकोधवेदगस्स[1] । २७९.

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२६९॥

समाधान—सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख, सर्व–विशुद्ध चरम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होती है ॥२७०॥

विशेषार्थ—यहां 'संयमके अभिमुख' ऐसा न कहनेका कारण यह है कि कोई भी जीव तीसरे गुणस्थानसे सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२७१॥

समाधान—संयमके अभिमुख, सर्व-विशुद्ध चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके होती है ॥२७२॥

शंका—अप्रत्याख्यानावरण कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२७३॥

समाधान—संयमके अभिमुख, सर्व-विशुद्ध चरमसमयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिके होती है ॥२७४॥

शंका—प्रत्याख्यानावरण कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२७५॥

समाधान—संयमके अभिमुख, सर्व-विशुद्ध, चरमसमयवर्ती संयतासंयतके होती है ॥२७६॥

शंका—संज्वलन क्रोधकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२७७॥

समाधान—चरमसमयवर्ती क्रोधका वेदन करनेवाले अनिवृत्तिसंयत क्षपकके होती है ? ॥२७८॥

समओवट्टणाए सुट्ठु ओहट्टिऊण ट्ठिदसम्मत्ताणुभागविसयउदीरणाए तत्थ जहण्णभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । एसा समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स जहण्णाणुभागुदीरणा एयट्ठाणिया । एत्तो पुव्विल्लासेसअणुभागुदीरणाओ एयट्ठाणिय-विट्ठाणियसरूवाओ जहाकममणंतगुणाओ । तदो तप्परिहारेणेत्थेव जहण्णसामित्तं गहिदं । जयध०

[1] जो खवगो कोधोदएण खवगसेढिमारूढो, अट्ठकसाए खविय पुणो जहाकममंतरकरणं समाणिय णवुंसय-इत्थिवेद-छण्णोकसाए पुरिसवेदं च जहावुत्तेण कमेण णिण्णासिय तदो अस्सकण्णकरण-किट्टीकरणद्धाओ गमिय कोहतिण्णिसंगहकिट्टीओ वेदेमाणो तदियसंगहकिट्टीवेदयपढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए चरिमसमयकोहवेदगो जादो, तस्स कोहसंजलणविसया जहण्णाणुभागुदीरणा होदि, हेट्ठिमासेसउदीरणाहिंतो एदिस्से उदीरणाए अणंतगुणहीणत्तदंसणादो । जयध०

माणसंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २८०. खवगस्स चरिमसमयमाणवेदगस्स । २८१. मायासंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स २८२. खवगस्स चरिमसमयमायावेदगस्स । २८३. लोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २८४. खवयस्स समयाहियावलियचरिमसमयसकसायस्स[1] । २८५. इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २८६. इत्थिवेदखवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयसवेदस्स । २८७. पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? २८८. पुरिसवेदखवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयसवेदस्स । २८९. णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स ? २९०. णवुंसयवेदखवयस्स समयाहियावलिय-चरिमसमयसवेदस्स । २९१. छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स ? २९२. खवगस्स चरिमसमय-अपुव्वकरणे वट्टमाणस्स[2] ।

शंका—संज्वलनमानकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२७९॥

समाधान—चरमसमयवर्ती मानका वेदन करनेवाले अनिवृत्तिसंयत क्षपकके होती है ॥२८०॥

शंका—संज्वलन मायाकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२८१॥

समाधान—चरमसमयवर्ती माया-वेदक अनिवृत्तिसंयत क्षपकके होती है ॥२८२॥

शंका—संज्वलन लोभकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२८३॥

समाधान—समयाधिक आवलीके चरम समयमें वर्तमान सकषाय (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती) क्षपकके होती है ॥२८४॥

शंका—स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२८५॥

समाधान—समयाधिक आवलीके चरमसमयवर्ती सवेदी स्त्रीवेद-क्षपकके होती है ॥२८६॥

शंका—पुरुषवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२८७॥

समाधान—समयाधिक आवलीके चरमसमयवर्ती सवेदी पुरुषवेद-क्षपकके होती है ॥२८८॥

शंका—नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ? ॥२८९॥

समाधान—समयाधिक आवलीके चरमसमयवर्ती सवेदी नपुंसकवेद-क्षपकके होती है ॥२९०॥

शंका—हास्यादि छह नोकषायोंकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसके होती है ॥२९१॥

समाधान—अपूर्वकरण गुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान क्षपकके होती है ॥२९२॥

१ कुदो; समयाहियावलियचरिमसमयवट्टमाण सुहुमसांपराइयखवगस्स सुहुमकिट्टिसरूवाणुभागोदीरणाए सुट्ठु जहण्णभावोववत्तीदो । जयध०

२ कुदो; तत्थेदेसिमपुव्वकरणचरिमविसोहीए हेट्ठिमासेसविसोहीहिंतो अणंतगुणाए उदीरिज्जमाणाणुभागस्स सुट्ठु जहण्णाणुभावोववत्तीदो । जयध०

२९३. एगजीवेण कालो। २९४. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागउदीरगो केवचिरं कालादो होइ? २९५. जहण्णेण एयसमओ[1]। २९६. उक्कस्सेण वे समया[2]। २९७. अणुक्कस्साणुभागुदीरगो केवचिरं कालादो होदि? २९८. जहण्णेण एगसमओ[3]। २९९. उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा[4]।

विशेषार्थ–तीनों वेदोंमेंसे विवक्षित वेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़कर नवें गुणस्थानके सवेद भागके एक समय अधिक आवलीके अन्तिम समयमें वर्तमान जीवके उस उस विवक्षित वेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है।

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा अनुभाग-उदीरणाके कालका वर्णन करते हैं॥२९३॥

शंका–मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणाका कितना काल है? ॥२९४॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। (क्योंकि, इससे अधिक उत्कृष्ट संक्लेश संभव नहीं।) ॥२९५-२९६॥

शंका–मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणाका कितना काल है? ॥२९७॥

समाधान–जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥२९८-२९९॥

विशेषार्थ–उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत एक उत्कृष्ट कषायाध्यवसायस्थानके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धके योग्य अध्यवसायस्थान होते हैं। जो जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे परिणत होकर और उत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणा करके परिणामोंके वशसे तदनन्तर ही एक समय अनुत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणा करके फिर भी तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणा करनेवाला हुआ। इस प्रकार मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणाका जघन्यकाल एक समयमात्र सिद्ध हो गया। यहाँ यह शंका नहीं करना चाहिए कि उत्कृष्ट संक्लेशसे गिरे हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तके विना केवल एक समयमें ही पुनः उत्कृष्ट संक्लेशका होना कैसे सम्भव है? इसका कारण यह है कि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंमें इस प्रकारका कोई नियम नहीं माना गया

---

१ तं जहा–अणुक्कस्साणुभागुदीरगो सण्णिमिच्छाइट्ठी एगसमयं उक्कस्ससंकिलेसेण परिणमिय उक्कस्साणुभागउदीरगो जादो। विदियसमए उक्कस्ससंकिलेसक्खएणाणुक्कस्सभावमुवगओ। लद्धो तस्स मिच्छत्तुक्कस्साणुभागोदीरणकालो एगसमयमेत्तो। जयध०

२ तं कथं? अणुक्कस्साणुभागुदीरगो उक्कस्ससंतकम्मिओ उक्कस्ससंकिलेसमावूरिय दोसु समएसु मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरगो जादो। तदो से काले संकिलेसपरिक्खएणाणुक्कस्सभावे णिवदिदो। लद्धो मिच्छत्तुक्कस्साणुभागुदीरगस्स उक्कस्सकालो बिसमयमेत्तो; तत्तो परमुक्कस्ससंकिलेसस्सावट्ठाणाभावादो। जयध०

३ कथमुक्कस्ससंकिलेसादो पडिभग्गस्स अंतोमुहुत्तेण विणा एगसमयेणेव पुणो उक्कस्ससंकिलेसावूरणसंभवो त्ति णेहासंकणिज्जं; अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणेसु तहाविहणियमाणब्भुवगमादो। जयध०

४ कुदो; पंचिंदिएहिंतो एइंदिएसु पइट्ठस्स उक्कस्ससंकिलेसपडिलंभेण विणा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टेसु परिब्भमणदंसणादो। जयध०

३००. सम्मत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ३०१. जहण्णुकस्सेण एगसमओ[1] । ३०२. अणुकस्साणुभाग-उदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ३०३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] । ३०४. उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि आवलियूणाणि[3] । ३०५. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागउदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ३०६. जहण्णुक्कस्सेण एयसमयो[4] ।

है । मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण माना गया है । क्योंकि, पंचेन्द्रियोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके उत्कृष्ट संक्लेशके प्राप्त हुए विना असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण देखा जाता है ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका कितना काल है ? ॥३००॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समयमात्र है ॥३०१॥

विशेषार्थ—क्योंकि, मिथ्यात्वके अभिमुख, सर्वाधिक संक्लिष्ट असंयतसम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व-प्रकृतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका होना सम्भव नहीं है ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका कितना काल है ?॥३०२॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल आवली कम छयासठ सागरोपम है ॥३०३-३०४॥

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही पाया जाता है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका उत्कृष्टकाल एक आवली कम छयासठ सागरोपम है । इसका कारण यह है कि वेदक-सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल ही इतना माना गया है । एक आवली कम कहनेका अभिप्राय यह है कि वेदकसम्यक्त्वके छयासठ सागरोपमकालके पूरा होनेमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीवके सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके समयाधिक आवलीप्रमाण शेष रह जानेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणाका अवसान होता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका कितना काल है ? ॥३०५॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ॥३०६॥

---

१ कुदो; मिच्छत्ताहिमुहसव्वसंकिलिट्ठासंजदसम्मादिट्ठिचरिमसमयं मोत्तूणण्णत्थ सम्मत्तुक्कस्साणु-भागुदीरणाए संभवाणुवलंभादो । जयध०

२ कुदो; वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तेण कालेण मिच्छत्तं पडिवण्णम्मि अणुक्कस्सजहण्ण-कालस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

३ कुदो; वेदगसम्मत्तउक्कस्सकालस्सावलियूणस्स पयदुक्कस्सकालत्तेणावलंबियत्तादो । कुदो आवलि-यूणत्तमिदि चे छावट्ठिसागरोवमाणमवसाणे अंतोमुहुत्तसेसे दंसणमोहणीयं खवेंतस्स सम्मत्तपढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए सम्मत्तुदीरणाए पज्जवसाणं होइ; तेणावलियूणत्तमेत्थ दट्ठव्वमिदि । जयध०

४ किं कारणं; सव्वुक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तं पडिवज्जमाणसम्मामिच्छाइट्ठिचरिमसमए चेव सम्मामिच्छत्त क्कस्साणुभागुदीरणदंसणादो । जयध०

३०७. अणुक्कस्साणुभागुदीरगो केवचिरं कालादो होदि? ३०८ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1]। ३०९. सेसाणं कम्माणं मिच्छत्तभंगो। ३१०. णवरि अणुक्कस्साणुभागुदीरग-उक्कस्सकालो पयडिकालो कादव्वो।

३११. एत्तो जहण्णगो कालो। ३१२. सव्वासिं पयडीणं जहण्णाणुभाग-उदीरगो केवचिरं कालादो होदि? ३१३. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। ३१४. अजहण्णाणुभागुदीरणा पयडि-उदीरणाभंगो।

३१५. अंतरं। ३१६. मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरगंतरं केवचिरं कालादो होदि? ३१७. जहण्णेण एगसमओ[2]। ३१८. उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा[3]।

विशेषार्थ—क्योंकि, सर्वोत्कृष्ट संक्लेशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके चरम समयमें ही सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका कितना काल है?॥३०७॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। (क्योंकि, तीसरे गुणस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही माना गया है।)॥३०८॥

चूर्णिसू०—मोहकी शेष पच्चीस कर्मप्रकृतियोंकी अनुभाग-उदीरणाका काल मिथ्यात्वके समान जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उक्त पच्चीसों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाके उत्कृष्टकालका निरूपण प्रकृति-उदीरणाके उत्कृष्टकालके समान करना चाहिए॥३०९-३१०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य अनुभाग-उदीरणाका काल कहते हैं॥३११॥

शंका—मोहकर्मकी सर्वप्रकृतियोंके जघन्य-अनुभागकी उदीरणाका कितना काल है?॥३१२॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है॥३१३॥

विशेषार्थ—क्योंकि, सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण करके सम्मुख चरम-समयवर्ती मिथ्यादृष्टि ही जघन्य अनुभाग-उदीरणाका स्वामी बतलाया गया है।

चूर्णिसू०—मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-उदीरणाका काल प्रकृति-उदीरणाके कालके समान है॥३१४॥

चूर्णिसू०—अब एक जीवकी अपेक्षा अनुभाग-उदीरणाके अन्तरको कहते हैं॥३१५॥

शंका—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणाका अन्तरकाल कितना है?॥३१६॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है॥३१७-३१८॥

१ कुदो; जहण्णुक्कस्ससम्मामिच्छत्तगुणकालस्स तप्पमाणत्तादो। जयध०

२ कुदो; उक्कस्सादो अणुक्कस्सभावं गंतूणेगसमयमंतरिय पुणो वि विदियसमए उक्कस्सभावमुवगयम्मि तदुवलंभादो। जयध०

३ कुदो; सण्णिपंचिंदिएसुक्कस्ससंकिलेसेणुक्कस्साणुभागुदीरणाए आदिं कादूणंतरिय एइंदिएसु

३१९. अणुक्कस्साणुभागुदीरगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३२०. जहण्णेण एगसमओ। ३२१. उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। ३२२. एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं। ३२३. णवरि अणुक्कस्साणुभागुदीरगंतरं पयडिअंतरं कायव्वं। ३२४. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुक्कस्साणुभागुदीरगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ३२५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ३२६. उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अन्तरका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—कोई एक जीव, संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा प्रारम्भ करके अन्तरको प्राप्त होकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो, उनकी असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको पालन करके पुनः वहाँसे लौटकर त्रसोंमें उत्पन्न होकर उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाका पुनः प्रारम्भ करनेवाले जीवमें असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है।

शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३१९॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सातिरेक दो वार छ्यासठ सागरोपम है ॥३२०-३२१॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागउदीरणाके उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा इस प्रकार है—कोई जीव मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणा करता हुआ प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके आवलीमात्र शेष रह जाने पर अनुदीरक बनके अन्तरको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्वको उत्पन्न कर तथा सर्वोत्कृष्ट उपशमसम्यक्त्वका काल बिताकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त कम छ्यासठ सागरोपम पूरा करके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे गिरा और अन्तर्मुहूर्त अन्तरको प्राप्त होकर फिर भी वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और दूसरी वार छ्यासठ सागरोपम परिभ्रमण करके अन्तर्मुहूर्तकालके शेष रह जानेपर मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागकी उदीरणा करनेवाला हुआ। इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल सिद्ध हो जाता है।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंकी अनुभाग-उदीरणाके अन्तरकी प्ररूपणा करना चाहिए। केवल अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणाके अन्तरकी प्ररूपणा प्रकृति-उदीरणाकी अन्तर-प्ररूपणाके समान जानना चाहिए ॥३२२-३२३॥

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरकका अन्तरकाल कितना है ? ॥३२४॥

समाधान—जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥३२५-३२६॥

पविसिय तदुक्कस्सट्ठिदिमेत्तमुक्कस्संतरमणुपालिय पुणो वि पडिणियत्तिय तसेसु आगंतूण पडिवण्णतब्भावम्मि तदुवलंभादो। जयध०

३२७. जहण्णाणुभागुदीरगंतरं केसिंचि अत्थि, केसिंचि णत्थि[1] ।

३२८. णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं सण्णियासो च एदाणि कादव्वाणि ।

३२९. अप्पाबहुअं ३३०. सव्वतिव्वाणुभागा मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा[2] । ३३१. अणंताणुबंधीणमण्णदरा उक्कस्साणुभागुदीरणा तुल्ला अणंतगुणहीणा[3] ।

विशेषार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होकर उसके छूट जानेके पश्चात् जीव अधिकसे अधिक उक्त प्रकृतियोंके अनुभाग-उदीरणाके अन्तरभावको कुछ अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक धारण कर सकता है ।

चूर्णिसू०—जघन्य अनुभागकी उदीरणाका अन्तर कितने ही जीवोंके होता है और कितने ही जीवोंके नहीं होता है ॥३२७॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि क्षपकश्रेणीमें और दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें प्राप्त होनेवाले जघन्य अनुभाग-उदीरणाके स्वामियोंके अन्तरके अभावका नियम देखा जाता है । किन्तु अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंके जघन्य अनुभाग-उदीरणाका अन्तर पाया जाता है, सो आगमानुसार जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर और सन्निकर्ष इतने अनुयोगद्वारोंसे अनुभाग-उदीरणाकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥३२८॥

विशेष जिज्ञासुओंको उच्चारणाचार्यके उपदेशके बल पर लिखी गई जयधवला टीका देखना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब अनुभाग-उदीरणासम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सबसे अधिक तीव्र अनुभागवाली होती है । (क्योंकि, वह सर्व-द्रव्योंके विषयभूत श्रद्धानकी प्रतिबन्धक है ।) अनन्तानुबन्धी कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा परस्परमें समान होते हुए भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्तगुणी हीन है । (क्योंकि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्तानुबन्धी कषायोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित हीनस्वरूपसे ही अवस्थित देखा जाता है ।) संज्वलन कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा परस्परमें

---

१ कुदो; खवगसेढीए दंसणमोहक्खवणाए च लद्धजहण्णसामित्ताणमंतराभावणियमदंसणादो । जयध०

२ कुदो; सव्वदव्वविसयसद्दहणगुणपडिबंधित्तादो । जयध०

३ कुदो; मिच्छत्तुक्कस्साणुभागादो एदेसिमुक्कस्साणुभागस्स अणंतगुणहीणसरूवेणावट्ठाणदंसणादो । एत्थ अणंताणुबंधिमाणादीणमणुभागुदीरणा सत्थाणे समाणा त्ति जं भणिदं, तण्ण घडदे । किं कारणं ? विसेसाहियसरूवेणेदेसिमणुभागसंतकम्मस्सावट्ठाणदंसणादो ? ण एस दोसो; विसेसाहियसंतकम्मादो विसेसहीणसंतकम्मादो च समाणपरिणामणिबंधणा उदीरणा सरिसी होदि त्ति अब्भुवगमादो । एसो अत्थो उवरि संजलणादिकसाएसु वि जोजेयव्वो । जयध०

३३२. संजलणाणमण्णदरा उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[1] । ३३३. पच्चक्खाणावरणीयाणमुक्कस्साणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणहीणा[2] । ३३४. अपच्चक्खाणावरणीयाणमुक्कस्साणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणहीणा[3] ।

३३५. णवुंसयवेदस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[4] । ३३६. अरदीए

समान होते हुए भी अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है । (क्योंकि, सम्यक्त्व और चारित्रकी घातक अनन्तानुबन्धी कषायके उत्कृष्ट अनुभागसे केवल चारित्रका ही घात करनेवाली संज्वलनकषायका उत्कृष्ट भी अनुभाग अनन्तगुणित हीन ही पाया जाता है ।) प्रत्याख्यानावरणीय कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा परस्परमें समान होते हुए भी किसी एक संज्वलन कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है । (क्योंकि, यथाख्यातसंयमके विरोधी संज्वलन कषायोंके अनुभागको देखते हुए क्षायोपशमिक संयमके प्रतिबन्धक प्रत्याख्यानावरणीय कषायके अनुभागका अनन्तगुणित हीन होना न्यायसंगत ही है ।) अप्रत्याख्यावरणीय कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा परस्परमें समान होते हुए भी किसी एक प्रत्याख्यानावरणीय कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है ॥३२९-३३४॥

विशेषार्थ—सकल संयमके घातक प्रत्याख्यानावरणीय कषायके उत्कृष्ट अनुभागसे देशसंयमके घातक अप्रत्याख्यानावरणीय कषायके उत्कृष्ट अनुभागका अनन्तगुणित हीन होना स्वाभाविक ही है । यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जब अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंका अनुभाग-सत्त्व स्वस्थानमें विशेषाधिक है, अर्थात् अनन्तानुबन्धी मानके अनुभाग-सत्त्वसे उसीके क्रोधका अनुभाग-सत्त्व विशेष अधिक होता है । इससे इसीकी मायाका अनुभाग-सत्त्व विशेष अधिक होता है और लोभका विशेष अधिक होता है । यही क्रम चारों जातिकी कषायोंके लिए बतलाया गया है, तो फिर यहाँ चूर्णिकारने उक्त कषायोंकी अनुभाग-उदीरणा स्वस्थानमें परस्पर तुल्य कैसे कही ? इस शंकाका समाधान यह है कि अनुभाग-सत्त्वके उत्तरोत्तर विशेष अधिक होनेपर भी समान परिणामके निमित्तसे होनेवाली अनुभाग-उदीरणा समान ही होती है, ऐसा अर्थ आगममें स्वीकार किया गया है । अतएव उक्त कषायोंकी अनुभाग-उदीरणा स्वस्थानमें समान पाई जाती है ।

चूर्णिसू०—नपुंसक वेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अप्रत्याख्यानावरणीय किसी

१ कुदो; दंसण-चरित्तपडिबंधिअणंताणुबंधीणमुक्कस्साणुभागुदीरणादो चरित्तमेत्तपडिबंधीणं संजलणाणमुक्कस्साणुभागुदीरणाए अणंतगुणहीणत्तं पडि विरोहाभावादो । जयध०

२ कुदो; जहाक्खादसंजमविरोहिसंजलणाणुभागं पेक्खियूण खयोवसमियसंजमप्पडिबंधिपच्चक्खाणकसायस्साणुभागस्साणंतगुणहीणत्तसिद्धीए णाइयत्तादो । जयध०

३ किं कारणं; सयलसंजमघादिपच्चक्खाणकसायाणुभागादो देससंजमविरोहि-अपच्चक्खाणाणुभागस्साणंतगुणहीणसरूवेणावट्ठाणदंसणादो । जयध०

४ कुदो; कसायाणुभागादो णोकसायणुभागस्साणंतगुणहीणत्तसिद्धीए णाइयत्तादो । जयध०

उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[1]। ३३७. सोगस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[2]। ३३८. भये उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[3]। ३३९. दुगुंछाए उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[4]। ३४०. इत्थिवेदस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[5]। ३४१. पुरिसवेदस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[6]। ४४२. रदीए उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[7]। ३४३. हस्से उक्कस्साणुभागुदीरणा

एक कषायकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, कषायोंके अनुभागसे नोकषायोंके अनुभागका अनन्तगुणित हीन होना न्याय-प्राप्त है।) अरतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, अरति प्रकृतिकी अनुभाग-उदीरणा तो केवल अरतिभावको ही उत्पन्न करती है, किन्तु नपुंसकवेदकी अनुभाग-उदीरणा इष्टपाक—ईंटोंके पंजावा—के समान निरन्तर प्रज्वलित परिणामोंको उत्पन्न करती है, अतएव नपुंसकवेदसे अरतिकी अनुभाग-उदीरणाका अनन्तगुणित हीन होना उचित ही है।) शोककी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अरतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि अरतिपूर्वक ही शोक होता है।) भयकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा शोककी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, शोकके उदयके समान भयका उदय बहुत काल तक दुःख उत्पादन करनेमें असमर्थ है।) जुगुप्साकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा भयकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, भयके उदयके समान जुगुप्साके उदयसे किसीका मरण नहीं देखा जाता है।) स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा जुगुप्साकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, जुगुप्साके उदयकी अपेक्षा स्त्रीवेदके उदयके प्रशस्तपना देखा जाता है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि, कारीष (गोबरके कण्डा) की अग्निसे पलाल (धान्यके घास) की अग्नि हीन दहन-शक्तिवाली होती है।) रतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा पुरुषवेदकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन होती है। (क्योंकि, पुरुषवेदके उदयके समान रतिकर्मके उदयमें सन्ताप उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है।) हास्यकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा रतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। (क्योंकि यह रतिपूर्वक होती है।) सम्यग्मिथ्यात्वकी

१ कुदो; अरदिमेत्तकारणत्तादो। णवुंसयवेदाणुभागो पुण इट्ठवागग्गिसमाणो त्ति। जयध०

२ कुदो; अरदिपुरंगमत्तादो। जयध०

३ कुदो; सोगोदयस्सेव भयोदयस्स बहुकालपडिबद्धदुक्खुप्पायणसत्तीए अभावादो। जयध०

४ कुदो; भयोदएणेव दुगुंछोदएण मरणाणुवलंभादो। जयध०

५ कुदो; पुव्विल्लं पेक्खिऊणेदस्स पसत्थभावोवलंभादो। जयध०

६ कुदो; इत्थिवेदो कारिसग्गिसमाणो। पुरिसवेदो पुण पलालग्गिसमाणो, तेणाणंतगुणहीणो जादो। जयध०

७ कुदो; पुंवेदोदयस्सेव रदिकम्मोदयस्स संतापजणणसत्तीए अभावादो। जयध०

अणंतगुणहीणा[1] । ३४४. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[2] । ३४५. सम्मत्ते उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंतगुणहीणा[3] ।

३४६. जहण्णाणुभागुदीरणा । ३४७. सव्वमंदाणुभागा लोभसंजलणस्स जहण्णाणुभागुदीरणा[4] । ३४८. मायासंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा अणंतगुणा[5] । ३४९. माणसंजलणस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[6] । ३५०. कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३५१. सम्मत्ते जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[7] । ३५२. पुरिसवेदे जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[8] । ३५३. इत्थिवेदे जहण्णाणुभागु-

उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा हास्यकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है । (क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभाग सर्वघाती होनेपर भी द्विस्थानीय ही है ।) सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है । क्योंकि, इस सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग द्विस्थानीय होनेपर भी देशघाती ही है ॥ ३३५-३४५॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य अनुभाग-उदीरणाका अल्पबहुत्व कहा जाता है—संज्वलन लोभकषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सबसे मन्द अनुभागवाली होती है । मायासंज्वलनकी जघन्य अनुभाग उदीरणा लोभसंज्वलनकी जघन्य अनुभाग उदीरणासे अनन्तगुणी है । मानसंज्वलनकी जघन्य अनुभाग उदीरणा माया संज्वलनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । क्रोधसंज्वलनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा मायासंज्वलनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा क्रोध-संज्वलनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । पुरुषवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा पुरुषवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । हास्यकी जघन्य

१ कुदो; रदिपुरंगमत्तादो । जयध०

२ कुदो; विट्ठाणियत्तादो । जयध०

३ कुदो; देसघादिविट्ठाणियसरूवत्तादो । जयध०

४ कुदो; सुहुमकिट्टीए अंतोमुहुत्तमणुसमयोवट्टणाए सुट्ठु जहण्णभावं पत्ताए पडिलद्धजहण्ण-भावत्तादो । जयध०

५ कुदो; बादरकिट्टिसरूवेण चरिमसमयमायावेदगम्मि पडिलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

६ कुदो; पुव्विल्लसामित्तविसयादो अंतोमुहुत्तमोसरिदूणट्ठिदचरिमसमयमाणवेदगम्मि पुव्विल्लकिट्टि-अणुभागादो अणंतगुणमाणतदियसंगहकिट्टि-अणुभागं घेत्तूण जहण्णसामित्तविहाणादो । जयध०

७ किं कारणं; किट्टिअणुभागादो अणंतगुणफद्दयगदाणुभागमेगट्ठाणियं घेत्तूण समयाहियावलिय-चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयम्मि जहण्णसामित्तपडिलंभादो । जयध०

८ तं जहा—चरिमसमयसवेदएण बद्धपुरिसवेदणवकबंधाणुभागो समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणी-यस्स सम्मत्तजहण्णाणुभागसंकमादो अणंतगुणो होदि त्ति संकमे भणिदं । एदम्हादो पुण चरिमसमय-णवकबंधादो तत्थेव पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागोदयो अणंतगुणो । पुणो एदम्हादो वि उदयादो समयाहिया-वलियचरिमसमयसवेदस्स पुरिसवेदजहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । जयध०

दीरणा अणंतगुणा[1] । ३५४. णवुंसयवेदे जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[2] । ३५५. हस्से जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[3] । ३५६. रदीए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३५७. दुगुंछाए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३५८. भये जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३५९. सोगस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३६०. अरदीए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३६१. पच्चक्खाणावरणजहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[4] । ३६२. अपच्चक्खाणावरणजहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[5] । ३६३. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[6] । ३६४. अणंता-

अनुभाग-उदीरणा नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। रतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा हास्यकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। जुगुप्साकी जघन्य अनुभाग उदीरणा रतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। भयकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा जुगुप्साकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। शोककी जघन्य अनुभाग-उदीरणा भयकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। अरतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा शोककी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अरतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य-अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी हीन है। अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है। मिथ्यात्वकी अनुभाग-उदीरणा

---

१ किं कारणं; पुरिसवेदजहण्णसामित्तविसयादो हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोदरियूण समयाहियावलियचरिमसमयइत्थिवेदखवगम्मि जहण्णसामित्तपडिलंभादो । जयध०

२ जइवि दोण्हमेदेसिं सामित्तविसयो समाणो, एगट्ठाणिया च दोण्हमणुभागुदीरणा पडिसमयमणंतगुणहाणीए पडिलद्धजहण्णभावा, तो वि पुव्विल्लादो एदस्स पयडिमाहप्पेणाणंतगुणत्तमविरुद्धं दट्ठव्वं । जयध०

३ किं कारणं; अणियट्टिपरिणामादो अणंतगुणहीणं चरिमसमयापुव्वकरणविसोहीए देसघादिविट्ठाणियसरूवेण हस्साणुभागुदीरणाए जहण्णभावोवलंभादो । जयध०

४ तं जहा—छण्णोकसायाणमणुभागुदीरणा अपुव्वकरणपरिणामेहिं बहुअं घादं पावेदूण चरिमसमयापुव्वकरणविसोहीए देसघादिसरूवेण जहण्णभावं पत्ता । पच्चक्खाणावरणीयाणं पुण अपुव्वकरणविसोहीदो अणंतगुणहीणसंजदासंजदचरिमविसोहीए जहण्णसामित्तं जादं । सव्वघादिसरूवा च एदेसिं जहण्णाणुभागुदीरणा, तदो अणंतगुणा जादा । जयध०

५ कुदो; संजमाहिमुहचरिमसमयअसंजदसम्माइट्ठिविसोहीए पुव्विल्लविसोहीदो अणंतगुणहीणसरूवाए पत्तजहण्णभावत्तादो । जयध०

६ कुदो; सव्वघादिविट्ठाणियत्ताविसेसेवि पुव्विल्लादो एदस्स विसोहिपाहम्मेणाणंतगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । जयध०

णुबंधीणं जहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[1] । ३६५. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[2] । ३६६. एवमोघजहण्णओ समत्तो ।

३६७. णिरयगदीए सव्वमंदाणुभागा सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा[3] । ३६८. हस्सस्स जहण्णाणुभागउदीरणा अणंतगुणा[4] । ३६९. रदीए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७०. दुगुंछाए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७१. भयस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७२. सोगस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७३. अरदीए जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७४. णवुंसयवेदे जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा । ३७५. संजलणस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[5] । ३७६. अपच्चक्खाणावरण-जहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[6] । ३७७. पच्चक्खा-

अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग-उदीरणाका वर्णन समाप्त हुआ ॥३४६-३६६॥

अब आदेशकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग-उदीरणाका वर्णन करते हैं—

चूर्णिसू०—नरकगतिमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सबसे कम मन्द अनुभागवाली होती है । हास्यकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । रतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा हास्यकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । जुगुप्साकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा रतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । भयकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा जुगुप्साकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । शोककी जघन्य अनुभाग-उदीरणा भयकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । अरतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा शोककी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अरतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । संज्वलनचतुष्कमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । अप्रत्याख्यानावरणीयचतुष्कमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा किसी एक संज्वलनकषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । प्रत्याख्यानावरणीयचतुष्कमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य

१ कुदो; सव्वविसुद्धसंजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिम्मि पत्तजहण्णभावत्तादो । जयध०

२ किं कारणं; उहयत्थ विसेसाभावे वि पयडिविसेसेणेवाणंताणुबंधीणमणुभागादो मिच्छत्ताणुभागस्स सव्वकालमणंतगुणाहियसरूवेणावट्ठाणदंसणादो । जयध०

३ कुदो; एगट्ठाणियसरूवत्तादो । जयध०

४ कुदो; देसघादिविट्ठाणियसरूवत्तादो । जयध०

५ कुदो; देसघादि-विट्ठाणियत्ताविसेसे सामित्तविसयभेदाभावे च कसायाणुभागमाहप्पेण पुव्विल्लादो एदिस्से अणंतगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । जयध०

६ किं कारणं; सामित्तभेदाभावेवि सव्वघादिमाहप्पेण पुव्विल्लादो एदिस्से तहाभावोवलद्धीदो । जयध०

णावरणजहण्णाणुभागुदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[1] । ३७८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा[2] । ३७९. अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागउदीरणा अण्णदरा अणंतगुणा[3] । ३८०. मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागुदीरणा अणंतगुणा ।

३८१. एवं देवगदीए वि ।

३८२. भुजगारउदीरणा उवरिमगाहाए परूविहिदि । पदणिक्खेवो वि तत्थेव । वड्ढी वि तत्थेव ।

तदो 'को व के य अणुभागे' त्ति पदस्स अत्थो समत्तो ।

३८३. पदेसुदीरणा दुविहा-मूलपयडिपदेसुदीरणा उत्तरपयडिपदेसुदीरणा च ।

अनुभाग-उदीरणा अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है । मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे अनन्तगुणी है ॥३६७-३८०॥

इस प्रकार नरकगतिमें ओघकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग-उदीरणा कही ।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार नारक-ओघालापके समान देवगतिमें भी जघन्य अनुभाग-उदीरणा-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका आलाप (कथन) है । जो थोड़ी बहुत विशेषता है, वह स्वयं आगमसे जानना चाहिए ॥३८१॥

इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर उत्तरप्रकृतिअनुभाग-उदीरणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब भुजाकारादि उदीरणाका वर्णन क्रम-प्राप्त है, अतः उसका वर्णन करनेके लिए चूर्णिकार उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—भुजाकार-उदीरणा उपरिम अर्थात् आगे कही जानेवाली 'बहुदरगं बहुदरगं से काले को णु थोवदरगं वा' इस गाथामें प्ररूपण की जायगी । पदनिक्षेप भी वहींपर कहा जायगा और वृद्धि भी उसी गाथामें कही जायगी ॥३८२॥

इस प्रकार 'को व के य अणुभागे' मूलगाथाके इस पदका अर्थ समाप्त हुआ ।

अब प्रदेश-उदीरणाका वर्णन किया जाता है—

चूर्णिसू०—प्रदेश-उदीरणा दो प्रकारकी है—मूलप्रकृतिप्रदेश-उदीरणा और उत्तरप्रकृति-

१ कुदो; दोण्हमेदेसिं सामित्तभेदाभावे वि देस-सयलसंजमपडिबंधित्तमस्सियूण तहाभावसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो । जयध०

२ कुदो; सव्वघादिविट्ठाणियत्ताविसेसे वि सम्माइट्ठिविसोहीदो सम्मामिच्छाइट्ठिविसोहीए अणंतगुणहीणत्तमस्सियूण तहाभावोवलंभादो । जयध०

३ कुदो; सम्मामिच्छाइट्ठिविसोहीदो अणंतगुणहीणमिच्छाइट्ठिविसोहीए जहण्णसामित्तपडिलंभादो । जयध०

३८४. मूलपयडिपदेसुदीरणं मग्गियूण । ३८५. तदो उत्तरपयडिपदेसुदीरणा च समुक्कित्तणादि-अप्पाबहुअंतेहि अणिओगद्दारेहि मग्गियव्वा । ३८६. तत्थ सामित्तं । ३८७. मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ३८८. संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स। से काले सम्मत्तं संजमं च पडिवज्जमाणगस्स[1] । ३८९. सम्मत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ३९०. समयाहियावलिय-अक्खीणदंसणमोहणीयस्स[2] ।

प्रदेश-उदीरणा । पहले मूलप्रकृतिप्रदेश-उदीरणाका अनुमार्गण कर (व्याख्यानाचार्योंसे जानकर) तदनन्तर उत्तरप्रकृतिप्रदेश-उदीरणा समुत्कीर्तनाको आदि लेकर अल्पबहुत्व-पर्यन्त चौबीस अनुयोगद्वारोंसे जानना चाहिए ।।३८३-३८५।।

चूर्णिसू०—उनमेंसे समुत्कीर्तनादि अनुयोगद्वारोंके सुगम होनेसे उनका वर्णन न करके स्वामित्वनामक अनुयोगद्वारका वर्णन करते हैं ।।३८६।।

शंका—मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ।।३८७।।

समाधान—संयम ग्रहणके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके होती है, जो कि तदनन्तर समयमें सम्यक्त्व और संयमको एकसाथ ग्रहण करनेवाला है ।।३८८।।

विशेषार्थ—जो वेदकसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके योग्य मिथ्यादृष्टि अधःप्रवृत्त और अपूर्वकरणको करके संयम-ग्रहण करनेके अभिमुख हुआ है, उसके अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होकर चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिरूपसे अवस्थित होनेपर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा होती है; क्योंकि उसके ही तदनन्तरकालमें सम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेके कारण सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि देखी जाती है । यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको ग्रहण करनेवाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके समयाधिक आवलीमात्र शेष रह जानेपर उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा क्यों नहीं बतलाई ? क्योंकि, पूर्वोक्त संयमाभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिकी अपूर्वकरण-परिणाम-जनित विशुद्धिसे इसकी विशुद्धि अनिवृत्तिकरण-परिणामके माहात्म्यसे अनन्तगुणी देखी जाती है । इसका समाधान यह है कि उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको ग्रहण करनेवाले जीवकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको ग्रहण करनेवाले जीवके ही संयमकी प्रत्यासत्तिके बलसे अपूर्वकरण-जनित भी परिणामविशुद्धि बहुत अधिक होती है । अतः सूत्रोक्त स्वामित्व ही युक्ति-संगत है ।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ।।३८९।।

समाधान—समयाधिक आवलीकालसे युक्त अक्षीणदर्शनमोही कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होती है ।।३९०।।

---

१ जो मिच्छाइट्ठी अण्णदरकम्मंसिओ वेदगसम्मत्तपाओग्गो अधापवत्तापुव्वकरणाणि कादूण संजमाहिमुहो जादो, तस्स अंतोमुहुत्तमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झिदूण चरिमसमयमिच्छाइट्ठिभावेणावट्ठिदस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ । से काले सम्मत्तेण सह संजमं पडिवज्जमाणस्स तस्स सव्वुक्कस्सविसोहिदंसणादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स समुदायत्थो । जयध०

२ जो दंसणमोहणीयक्खवगो अण्णदरकम्मंसिओ अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असंखेज्जाणं

३९१. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ३९२. सम्मत्ताहिमुह-चरिमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स[1] । ३९३. अणंताणुबंधीणं उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ३९४. संजमाहिमुह-चरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स । ३९५. अपच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्सिया पदेस-उदीरणा कस्स ? ३९६. संजमा-

---

विशेषार्थ—जो दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाला जीव अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ करके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका यथाक्रमसे क्षयकर तदनन्तर सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षपण करता हुआ अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी चरम फालिको दूरकर और कृतकृत्यवेदक होकर अन्तर्मुहूर्त तक समयाधिक आवलीसे युक्त अक्षीण-दर्शनमोहनीयरूपसे अवस्थित है, उसके ही सम्यक्त्वप्रकृतिकी सर्वोत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा होती है। क्योंकि, इसके ही अधस्तनकालवर्ती समस्त प्रदेश-उदीरणाओंसे असंख्यातगुणी प्रदेश-उदीरणा पाई जाती है। यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि यदि आगे जाकर कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि संक्लेशको प्राप्त हो गया, तो उसके उक्त समयपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी सर्वोत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा कैसे सम्भव है ? इसका समाधान यह है कि आगे जाकर भले ही कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि संक्लेशको प्राप्त हो जाय, परन्तु कृतकृत्यवेदक होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त तक तो अपने कालके भीतर प्रतिसमय असंख्यातगुणित द्रव्यकी उदीरणा करता ही है, इसलिए इसके अतिरिक्त अन्यत्र सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रदेश-उदीरणाका उत्कृष्ट स्वामित्व सम्भव नहीं है।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥३९१॥

समाधान- सर्व-विशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके होती है ॥३९२॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥३९३॥

समाधान—सर्व-विशुद्ध और संयमके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके होती है ॥३९४॥

शंका—अप्रत्याख्यानावरणकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ॥३९५॥

समयपबद्धाणमुदीरणमाढविय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणि जहाकमं खविय तदो सम्मत्तं खवेमाणो अणियट्टिकरणचरिमसमए सम्मत्तचरिमफालिं णिवादिय कदकरणिज्जो होदूणंतोमुहुत्तं समयावलियअक्खीणदंसण-मोहणीयभावेणावट्ठिदो, तस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ। कुदो; तस्स समयाहियावलियमेत्तगुणसेढिगोवुच्छाणं चरिमट्ठिदीदो उदीरिज्जमाणमसंखेज्जाणं समयपबद्धाणं हेट्ठिमासेसपदेसुदीरणाहिंतो असंखेज्जगुणत्तदंसणादो। जयध०

१ किं कारणं; उक्कस्सविसोहिपरिणामेण विणा पदेसुदीरणाए उक्कस्सभावाणुववत्तीदो। जयध०

हिमुहचरिमसमय-असंजदसम्माइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा[1] ।

३९७. पच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ३९८. संजमाहिमुहचरिमसमयसंजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा । ३९९. कोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४००. खवगस्स चरिमसमयकोधवेदगस्स । ४०१. एवं माण-माया संजलणाणं ।

४०२. लोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४०३. खवगस्स समया-

---

समाधान–सर्वविशुद्ध या ईषन्मध्यम परिणामवाले और संयमके अभिमुख चरमसमयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिके होती है ॥३९६॥

विशेषार्थ–ईषन्मध्यमपरिणाम किसका नाम है ? इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–संयमग्रहण करनेके सम्मुख चरमसमयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य स्थानसे लेकर षड्वृद्धिरूपसे अवस्थित विशुद्ध परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं । उनके इस आयामको आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहारसे खंडित करनेपर उनमेंका जो अन्तिम खंडरूप उत्कृष्ट परिणाम है, वह तो सर्वविशुद्ध परिणाम कहलाता है और उसी खंडका जो जघन्य परिणाम है, वह ईषन्मध्यम परिणाम कहलाता है । शेष समस्त परिणामोंको मध्यम परिणाम कहते हैं ।

शंका–प्रत्याख्यानावरणकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥३९७॥

समाधान–सर्वविशुद्ध या ईषन्मध्यम परिणामवाले संयमाभिमुख चरमसमयवर्ती संयतासंयतके होती है ॥३९८॥

शंका–संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥३९९॥

समाधान–चरमसमयवर्ती क्रोधका वेदन करनेवाले क्षपकके होती है ॥४००॥

चूर्णिसू०–इसीप्रकार संज्वलन मान और मायाकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका स्वामित्व जानना चाहिए ॥४०१॥

विशेषार्थ–यहाँ केवल इतना विशेष जानना चाहिए कि मानकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा मानका वेदन करनेवाले चरमसमयवर्ती क्षपकके और मायाकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा मायाका वेदन करनेवाले चरमसमयवर्ती क्षपकके होती है ।

शंका–संज्वलन लोभकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४०२॥

---

१ एतदुक्तं भवति–संजमाहिमुहचरिमसमयअसंजदसम्माइट्ठिस्स असंखेज्जलोगमेत्ताणि विसोहिट्ठाणाणि जहण्णट्ठाणप्पहुडि छवड्ढिसरूवेणावट्ठिदाणि अत्थि, तेसिमायामे आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तभागहारेण खंडिदे तत्थ चरिमखंडयसव्वपरिणामेहिं असंखेज्जलोगभेयभिण्णेहिं उक्कस्सिया पदेसुदीरणा ण विरुज्झदि त्ति । तक्खंडचरिमपरिणामो सव्वविसुद्धपरिणामो णाम । तत्थेव जहण्णपरिणामो ईसिपरिणामो णाम । सेसासेसपरिणामा मज्झिमपरिणामा त्ति भण्णंते । जयध०

हियावलियचरिमसमयसकसायस्स । ४०४. इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४०५. खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयइत्थिवेदगस्स । ४०६. पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४०७. खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयपुरिसवेदगस्स । ४०८. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४०९. खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयणवुंसयवेदगस्स । ४१०. छण्णोकसायाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४११. खवगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणगस्स ।

४१२. जहण्णसामित्तं । ४१३. मिच्छत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४१४. सण्णिमिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा । ४१५. सम्मत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा कस्स ? ४१६ मिच्छत्ताहिमुहचरिमसमयसम्माइट्ठिस्स

समाधान–समयाधिक आवली कालवाले चरमसमयवर्ती सकषाय (दशमगुणस्थानी) क्षपकके होती है ॥४०३॥

शंका–स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४०४॥

समाधान–समयाधिक आवली कालवाले चरमसमयवर्ती स्त्रीवेदका वेदन करनेवाले क्षपकके होती है ॥४०५॥

शंका–पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४०६॥

समाधान–समयाधिक आवली कालवाले और चरमसमयमें पुरुषवेदका वेदन करनेवाले क्षपकके होती है ॥४०७॥

शंका–नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४०८॥

समाधान–समयाधिक आवली कालवाले चरमसमयवर्ती नपुंसकवेदक क्षपकके होती है ॥४०९॥

विशेषार्थ–यहाँ सर्वत्र समयाधिक आवलीवाले चरमसमयसे, एक समय अधिक आवलीप्रमाण कालके पश्चात् विवक्षित वेदका अन्तिम समयमें वेदन करनेवाले जीवका अभिप्राय है ।

शंका–छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४१०॥

समाधान–अपूर्वकरणगुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान क्षपकके होती है ॥४११॥

चूर्णिसू०–अब जघन्य प्रदेश-उदीरणाके स्वामित्वको कहते हैं ॥४१२॥

शंका–मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४१३॥

समाधान–उत्कृष्ट संक्लेशवाले या ईषन्मध्यमपरिणामवाले संज्ञी मिथ्यादृष्टिके होती है ॥४१४॥

शंका–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४१५॥

समाधान–(चतुर्थ गुणस्थानके योग्य) सर्वोत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त या ईषन्मध्यम

सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा । ४१७. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा कस्स । ४१८. मिच्छत्ताहिमुहचरिमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा ।

४१९. सोलसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा मिच्छत्तभंगो ।

४२०. एगजीवेण कालो । ४२१. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४२२. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[1] । ४२३. अणुक्कस्सपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४२४. एत्थ तिण्णि भंगा । ४२५. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ४२६. उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । ४२७. सेसाणं कम्माणमुक्कस्सपदेसुदीरगा केवचिरं कालादो होदि ? ४२८. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ[2] । ४२९. अणुक्कस्सपदेसुदीरगो पयडि-उदीरणाभंगो ।

परिणामवाले मिथ्यात्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिके होती है ॥४१६॥

शंका–सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा किसके होती है ? ॥४१७॥

समाधान–तृतीय गुणस्थानके योग्य सर्वोत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त या ईषन्मध्यम परिणामवाले मिथ्यात्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होती है ॥४१८॥

चूर्णिसू०–सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणाका स्वामित्व मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणाके स्वामित्वके समान जानना चाहिए ॥४१९॥

चूर्णिसू०–अब एक जीवकी अपेक्षा प्रदेश-उदीरणाका काल कहते हैं ॥४२०॥

शंका–मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४२१॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ? ॥४२२॥

विशेषार्थ–क्योंकि, संयमके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा होती है ।

शंका–मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेश उदीरणाका कितना काल है ? ॥४२३॥

समाधान–इस विषयमें तीन भंग हैं–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, और सादि-सान्त । इनमेंसे मिथ्यात्वकी सादि-सान्त अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४२४-४२६॥

शंका–मिथ्यात्वके अतिरिक्त शेष कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? ॥४२७॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥४२८॥

चूर्णिसू०–उक्त सर्व कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका काल प्रकृति-उदीरणाके कालके समान जानना चाहिए ॥४२९॥

---

१ कुदो; संजमाहिमुहमिच्छाइट्ठिचरिमसमए चेव तदुवलंभादो । जयध०

२ कुदो; सव्वेसिमप्पप्पणो सामित्तविसए चरिमविसोहीए समुवलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

४३०. णिरयगदीए मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणंताणुबंधीणमुक्कस्सपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४३१. जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ[1]। ४३२. अणुक्कस्सपदेसुदीरगो पयडि-उदीरणाभंगो। ४३३. सेसाणं कम्माणमित्थि-पुरिसवेदवज्जाणमुक्कस्सिया-पदेसुदीरणा केवचिरं कालादो होदि ? ४३४. जहण्णेण एगसमओ[2]। ४३५. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[3]। ४३६. अणुक्कस्सपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४३७. जहण्णेण एगसमओ[4]। ४३८. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[5]। ४३९. णवरि णवुंसयवेद-अरइ-सोगाणमुदीरगो उक्कस्सादो तेत्तीसं सागरोवमाणि[6]। ४४०. एवं सेसासु गदीसु उदीरगो साहेयव्वो।

अब आदेशकी अपेक्षा प्रदेश-उदीरणाका काल कहते हैं–

शंका–नरकगतिमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४३०॥

समाधान–जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥३३१॥

चूर्णिसू०–इन्हीं कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका काल प्रकृति-उदीरणाके कालके समान जानना चाहिए ॥४३२॥

शंका–पूर्व सूत्रोक्त कर्मोंके अतिरिक्त, तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदको छोड़कर (क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों वेदोंका उदय ही नहीं होता,) शेष कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४३३॥

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है ॥४३४-४३५॥

शंका–इन्हीं पूर्वोक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४३६॥

समाधान–जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। विशेष बात यह है कि नपुंसकवेद, अरति और शोककी प्रदेश-उदीरणाका उत्कृष्टकाल तेतीस सागरोपम है ॥४३७-४३९॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार शेष गतियोंमें प्रदेश-उदीरणा करनेवाले जीवोंका काल सिद्ध

१ कुदो; मिच्छत्ताणंताणुबंधीणमुवसमयसम्मत्ताहिमुहमिच्छाइट्ठिस्स समयाहियावलियचरिमसमए दुचरिमसमए च जहाकमेणुक्कस्ससामित्तपडिलंभादो। सम्मत्तस्स कदकरणिजसमयाहियावलियाए, सम्मामिच्छत्तस्स वि सम्मत्ताहिमुहसम्मामिच्छाइट्ठिचरिमविसोहीए विसयंतरपरिहारेणुक्कस्ससामित्तदंसणादो। जयध०

२ कुदो; सत्थाणसम्माइट्ठिस्स सव्वुक्कस्सविसोहीए ईसिमज्झिमपरिणामेण वा एगसमयं परिणमिय विदियसमए परिणामंतरं गदस्स तदुवलंभादो। जयध०

३ कुदो; उक्कस्सपदेसुदीरणापाओग्गचरिमखंडज्झवसाणट्ठाणेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु अवट्ठाणकालस्स उक्कस्सेण तप्पमाणत्तोवएसादो। जयध०

४ कुदो; उक्कस्सादो अणुक्कस्सभावं गंतूण एगसमएण पुणो वि परिणामवसेणुक्कस्सभावेण परिणदम्मि सव्वेसिमेगसमयमेत्ताणुक्कस्सजहण्णकालोवलंभादो। जयध०

५ कुदो; कसाय-णोकसायाणं पयडि-उदीरणाए उक्कस्सकालस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो। जयध०

६ कुदो; एदेसिं कम्माणं पयडि-उदीरणुक्कस्सकालस्स णिरयगईए तप्पमाणत्तोवलंभादो। जयध०

४४१. एत्तो जहण्णपदेसुदीरगाणं कालो । ४४२. सव्वकम्माणं जहण्णपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होइ ? ४४३. जहण्णेण एगसमओ[1] । ४४४. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो[2] । ४४५. अजहण्णपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४४६. जहण्णेण एयसमओ । ४४७. उक्कस्सेण पयडिउदीरणाभंगो । ४४८. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णपदेसुदीरगो केवचिरं कालादो होदि ? ४४९. जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ । ४५०. अजहण्णपदेसुदीरगो जहा पयडि-उदीरणाभंगो ।

४५१. एगजीवेण अंतरं । ४५२. मिच्छत्तुक्कस्सपदेसुदीरगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ४५३. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] । ४५४. उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

करना चाहिए ॥४४०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य प्रदेश-उदीरणा करनेवाले जीवों का काल कहते हैं ॥४४१॥

शंका—सर्व कर्मोकी जघन्य प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४४२॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥४४३-४४४॥

शंका—सर्व कर्मोकी अजघन्य प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४४५॥

समाधान—जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल प्रकृति-उदीरणाके समान जानना चाहिए ॥४४६-४४७॥

शंका—केवल सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो कर्मोकी जघन्य प्रदेश-उदीरणाका कितना काल है ? ॥४४८॥

समाधान—जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥४४९॥

चूर्णिसू०—इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेश-उदीरणाका काल प्रकृति-उदीरणाके कालके समान जानना चाहिए ॥४५०॥

चूर्णिसू०—अब एक जीवकी अपेक्षा प्रदेश-उदीरणाके अन्तरको कहते हैं ॥४५१॥

शंका—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा करनेवाले जीवका अन्तरकाल कितना है ? ॥४५२॥

समाधान—जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥४५३-४५४॥

१ तं कथं; सण्णिमिच्छाइट्ठी उक्कस्ससंकिलेसेण परिणमिय एगसमयं जहण्णपदेसुदीरगो जादो । पुणो विदियसमए जहण्णभावेण परिणदो । लद्धो सव्वेसिं कम्माणं जहण्णपदेसुदीरगकालो जहण्णेयसमयमेत्तो । जयध०

२ कुदो; जहण्णपदेसुदीरणकारणपरिणामेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु उक्कस्सेणावट्ठाणकालस्स एगजीवविसयस्स तप्पमाणत्तोवलंभादो । जयध०

३ तं कथं; अण्णदरकम्मंसियलक्खणेणागदसंजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिणा उक्कस्सविसोहि-

४५५. सेसेहिं कम्मेहिं अणुमग्गियूण णेदव्वं ।

४५६. णाणाजीवेहि भंगविचयो भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं च एदाणि भाणिदव्वाणि ।

४५७. तदो सण्णियासो । ४५८. मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसुदीरगो अणंताणुबंधीणमुक्कस्सं वा अणुक्कस्सं वा उदीरेदि[1] । ४५९. उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा[2] । ४६०. एवं णेदव्वं ।

चूर्णिसू०—इसी प्रकार शेष कर्मोंकी अपेक्षा अनुमार्गणकर अन्तरकाल जानना चाहिए ॥४५५॥

चूर्णिसू०—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल और अन्तर, इन अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान करना चाहिए ॥४५६॥

विशेषार्थ—चूर्णिकारने सुगम समझकर इन अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान नहीं किया है। अतः विशेष जिज्ञासु जनोंको जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—उक्त अनुयोगद्वारोंके पश्चात् अब सन्निकर्ष नामक अनुयोगद्वार कहते हैं—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणाका करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा भी करता है ॥४५७-४५८॥

अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा कितने विकल्परूप करता है ? ऐसा प्रश्न होनेपर आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—उत्कृष्टसे अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा चतुःस्थान-पतित होती है । अर्थात् असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन प्रदेशोंकी उदीरणा करता है ॥४५९॥

इसी बीजपदके द्वारा शेष कर्मोंकी प्रदेश-उदीरणाका सन्निकर्ष भी जान लेना चाहिए, ऐसा बतलानेके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—इसी प्रकार शेष कर्मोंका भी सन्निकर्ष जानना चाहिए ॥४६०॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार मिथ्यात्वका अनन्तानुबन्धीके साथ सन्निकर्षका निरूपण किया

परिणदेणुक्कस्सपदेसुदीरणाए कदाए आदी दिट्ठा । तदो संजमं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तेण पुणो मिच्छत्तं पडिवज्जिय जहण्णंतराविरोहेण विसोहिमावूरिय संजमाहिमुहो होदूण मिच्छाइट्ठिचरिमसमए उक्कस्सपदेसुदीरगो जादो । लद्धमंतरं । जयध०

१ मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसुदीरगो णाम संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठी सव्वविसुद्धो सो अणंताणुबंधीणमण्णदरस्स णियमा एवमुदीरेमाणो उक्कस्सं वा अणुक्कस्सं वा उदीरेदि; सामित्तभेदाभावे पि अप्पणो विसेसपच्चयमस्सियूण तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध०

२ कुदो; मिच्छत्तुक्कस्सपदेसुदीरगस्साणंताणुबंधीणं चउट्ठाणपदिदपदेसुदीरणाकारणपरिणामाणं पि संभवे विरोहाभावादो । तदो मिच्छत्तुक्कस्सपदेसुदीरगो अणंताणुबंधीणमणुक्कस्समुदीरेमाणो असंखेज्जभागहीणं संखेज्जभागहीणं संखेज्जगुणहीणं असंखेज्जगुणहीणमुदीरेदि त्ति सिद्धं । जयध०

४६१. अप्पाबहुअं। ४६२. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा[1]। ४६३. अणंताणुबंधीणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला संखेज्जगुणा[2]। ४६४. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[3]। ४६५. अपच्चक्खाणचउक्कस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला असंखेज्जगुणा। ४६६. पच्चक्खाणचउक्कस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला असंखेज्जगुणा[4]। ४६७. सम्मत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[5]। ४६८. भय-दुगुंछाणमुक्कस्सिया

है, उसी प्रकार शेष कर्मोंके साथ भी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी प्रत्येक कषायको निरुद्ध करके भी शेष कर्मोंके साथ सन्निकर्षका निरूपण करना चाहिए।

चूर्णिसू०—अब प्रदेश-उदीरणा-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा सबसे थोड़ी होती है। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे अनन्तानुबन्धी प्रत्येक कषायकी प्रदेश-उदीरणा परस्परमें तुल्य हो करके भी संख्यातगुणी है ॥४६१-४६२॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी उदीरणा होनेपर शेष तीनों कषाय भी स्तिबुकसंक्रमणसे उदयमें प्रवेश कर जाती हैं, अतः मिथ्यात्वकी उदीरणासे अनन्तानुबन्धी कषायोंकी प्रदेश-उदीरणा कुछ कम चौगुनी हो जाती है।

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी प्रदेश-उदीरणा परस्परमें तुल्य होते हुए भी असंख्यातगुणी होती है। अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी प्रदेश-उदीरणासे प्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा किसी एक कषायकी परस्परमें समान होकर भी असंख्यातगुणी होती है। प्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रदेश-उदीरणासे भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा परस्परमें समान हो करके भी अनन्तगुणी होती है। भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे हास्य और

---

१ कुदो; संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिणा असंखेज्जलोगपडिभागेण उदीरिददव्वग्गहणादो। जयध०

२ कुदो; मिच्छत्तुदीरणादो अणंताणुबंधीणमण्णदरोदीरणा उदयपडिभागेण थोवूणचउगुणत्तुवलंभादो। तं जहा—अणंताणुबंधिकोहादीणमण्णदरस्स उदए संते सेसकसाया तिण्णि वि थिउक्कसंकमेणुदयं पविसंति त्ति मिच्छत्तुदयादो अणंताणुबंधि-उदयो थोवूणचउग्गुणो होइ; पयडिविसेसवसेण तत्थ थोवूणभावदंसणादो। जयध०

३ कुदो; परिणामपाहम्मादो। तं जहा—अणंताणुबंधीणं मिच्छाइट्ठिविसोहीए उक्कस्सिया पदेसुदीरणा जादा। सम्मामिच्छत्तस्स पुण तव्विसोहीदो अणंतगुणसम्मामिच्छाइट्ठिविसोहीए उक्कस्सिया पदेसुदीरणा गहिदा। एदेण कारणेण पुव्विल्लादो एदिस्से असंखेज्जगुणत्तं जादं। जयध०

४ किं कारणं; असंजदसम्माइट्ठिविसोहीदो अणंतगुणसंजमाहिमुहचरिमसमयसंजदासंजदुक्कस्सविसोहीए पच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्सपदेसुदीरणसामित्तप्पडिलंभादो। जयध०

५ कुदो; असंखेज्जसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

पदेसुदीरणा तुल्ला अणंतगुणा[1]। ४६९. हस्स-सोगाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया[2]। ४७०. रदि-अरदीणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया।

४७१. इत्थि-णवुंसयवेदे उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[3]। ४७२. पुरिसवेदे उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[4]। ४७३. कोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[5]। ४७४. माणसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा। ४७५. मायासंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा। ४७६. लोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा।

४७७. णिरयगदीए सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा[6]।

शोककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है। हास्य और शोककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे रति और अरतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है ॥४६३-४७०॥

विशेषार्थ—यहाँ ऐसा अर्थ जानना चाहिए कि हास्यसे रतिकी और अरतिसे शोककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है।

चूर्णिसू०—रति-अरतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। स्त्रीवेद-नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। संज्वलनक्रोधकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे संज्वलनमानकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। संज्वलनमानकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे संज्वलनमायाकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है। संज्वलनमायाकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे संज्वलन लोभकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है ॥४७१-४७६॥

इस प्रकार ओघकी अपेक्षा प्रदेश-उदीरणाका अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अब आदेशकी अपेक्षा प्रदेश-उदीरणाका अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—नरकगतिमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा सबसे कम होती है।

१ कुदो; देसघादिपडिभागत्तादो। जयध०

२ कुदो; पयडिविसेसमस्सिऊण विसेसाहियत्तदंसणादो। जयध०

३ कुदो; असंखेज्जसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

४ किं कारणं; इत्थि णवुंसयवेदाणमुक्कस्सपदेसुदीरणासामित्तविसयादो अंतोमुहुत्तमुवरिं गंतूण समयाहियावलियमेत्तपुरिसवेदपढमट्ठिदीए सेसाए तत्थुदीरिज्जमाणसंखेज्जसमयपबद्धाणमिहग्गहणादो। जयध०

५ किं कारणं; पुरिसवेदसामित्तुद्देसादो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण कोहसंजलणपढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए पडिलद्धुक्कस्सभावत्तादो। जयध०

६ कुदो; सम्मत्ताहिमुहमिच्छाइट्ठिणा उदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो। जयध०

४७८. अणंताणुबंधीणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा संखेज्जगुणा[1] । ४७९. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[2] । ४८०. अपच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा असंखेज्जगुणा[3] । ४८१. पच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा अण्णदरा विसेसाहिया[4] । ४८२. सम्मत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा । ४८३. णवुंसयवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा अणंतगुणा[5] ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे अनन्तानुबन्धीकषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा संख्यातगुणी होती है ॥४७७-४७८॥

विशेषार्थ—यह वेदकसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा कथन है । किन्तु उपशमसम्यग्दर्शनके अभिमुख मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा नियमसे असंख्यातगुणी होती है, ऐसा उच्चारणावृत्तिकारका मत है ।

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है । अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा अनन्तगुणी होती है । नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा

१ कुदो; एगासंखेज्जलोगपडिभागियमिच्छत्तदव्वादो चदुण्हमसंखेज्जलोगपडिभागियदव्वाणं थोवूण-चउग्गुणत्तदंसणादो । एत्थ चोदगो भणइ–उवसमसम्मत्ताहिमुहसमयाहियावलियमिच्छाइट्ठिम्मि मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा जादा । अणंताणुबंधीणं पुण मिच्छत्तपढमट्ठिदीए चरिमसमयम्मि उक्कस्ससामित्तं जादं । तहा च संते मिच्छत्तुक्कस्सपदेसुदीरणादो अणंताणुबंधीणमुक्कस्सपदेसुदीरणाए असंखेज्जगुणाए होदव्वमिदि । एत्थ परिहारो वुच्चदे—सच्चमेदं, तहाविहसामित्तावलंबणे असंखेज्जगुणत्तब्भुवगमादो । किंतु उवसमसम्मत्ताहिमुहं मोत्तूण वेदयसम्मत्ताहिमुहमिच्छाइट्ठिचरिमसमए मिच्छत्ताणंताणुबंधीणमक्कमेण सामित्तं होदि त्ति एदेणाहिप्पाएण संखेज्जगुणत्तमेदं सुत्तयारेण पदुप्पायियं, तदो ण दोसो त्ति । उच्चारणाहिप्पाएण पुण णियमा असंखेज्जगुणेण होदव्वं, तत्थ सामित्तभेददंसणादो, तदणुसारेणेव तत्थ सण्णियासविहाणादो च । तदो उच्चारणासामित्तं मोत्तूण सुत्तसामित्तमण्णारिसं घेत्तूण पयदप्पाबहुअसमत्थणमेदं कायव्वमिदि ण किं चि विरुद्धं । जयध०

२ कुदो; सम्मत्ताहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिसव्वुक्कस्सविसोहीए अणंतगुणसम्मत्ताहिमुहसम्मामिच्छाइट्ठिचरिमविसोहीए पडिलद्धुक्कस्सभावत्तादो । जयध०

३ कुदो; सम्मामिच्छाइट्ठिविसोहीदो अणंतगुणसत्थाणसम्माइट्ठिसव्वुक्कस्सविसोहीए अपच्चक्खाणकसायाणमुक्कस्ससामित्तावलंबणादो । जयध०

४ सामित्तभेदाभावे वि पयडिविसेसमस्सियूण विसेसाहियत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । जयध०

५ कुदो; देसघादिमाहप्पादो । जयध०

४८४. भय-दुगुंछाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया[1] । ४८५. हस्स-सोगाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया । ४८६. रदि-अरदीणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया । ४८७. संजलणाणमुक्कस्सिया पदेसुदीरणा संखेज्जगुणा ।

४८८. एत्तो जहण्णिया । ४८९. सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा[2] । ४९०. अपच्चक्खाणकसायाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला संखेज्जगुणा[3] । ४९१. पच्चक्खाणकसायजहण्णिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला विसेसाहिया । ४९२. अणंताणुबंधीणं जहण्णिया पदेसुदीरणा अण्णदरा तुल्ला विसेसाहिया । ४९३. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[4] । ४९४. सम्मत्तस्स जहण्णिया

विशेष अधिक होती है । भय-जुगुप्साकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे हास्य और शोककी उत्कृष्ट-प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । हास्य और शोककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे रति और अरतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । रति-अरतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे संज्वलनचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा संख्यातगुणी होती है ।।४७९-४८७।।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे जघन्य प्रदेश-उदीरणासम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा परस्पर समान होकरके भी संख्यातगुणी होती है । अप्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा परस्परमें समान होते हुए भी विशेष अधिक होती है । प्रत्याख्यानावरणीय किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा परस्परमें समान होते हुए विशेष अधिक होती है । अनन्तानुबन्धी किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश उदीरणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है । सम्य-

---

१ तं जहा—णिरयगदीए तिण्हं वेदाणमसंखेज्जालोगपडिभागियं दव्वं णवुंसयवेदसरूवेणुदीरिज्जमाणं घेत्तूण एगधुवपयडिपमाणमुदीरणादव्वं होदि । भय-दुगुंछाणं पुण पादेक्कं धुवपयडिपमाणमुदीरणदव्वमुवलंभइ, तेसिं धुवबंधित्तादो । किन्तु वेदभागं पेक्खियूण पयडिविसेसेण विसेसहीणं होदि । होतं पि भय-दुगुंछाणं दोण्हं पि दव्वं तदण्णदरसरूवेणुदीरिज्जमाणमुवलब्भदे, त्थिवुक्कसंकमवसेण तेसिमण्णोण्णाणुप्पवेसं कादूणुक्कस्ससामित्तावलंबणादो । एवं लब्भदि त्ति कादूण जो तिवेदभागो तत्थेगदव्वं पेक्खियूण पयडिविसेसेणब्भहिओ सो दोण्हमव्वोगाढदव्वसमुदायादो विसेसहीणो चेव होइ, किंचूणद्धमेत्तदव्वेण परिहीणत्तदंसणादो । तदो किंचूणदुगुणपमाणत्तादो विसेसाहियमेदं दव्वमिदि सिद्धं । जयध०

२ कुदो; सव्वुक्कस्ससंकिलिट्ठमिच्छाइट्ठिणा उदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो । जयध०

३ कुदो; सामित्तविसयभेदाभावे वि एगासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वादो चदुण्हमसंखेज्जलोगपडिभागियदव्वाणं समुदायस्स थोवूणचउग्गुणत्तुवलंभादो । जयध०

४ कुदो; मिच्छाइट्ठिसंकिलेसं पेक्खियूणाणंतगुणहीणसम्मामिच्छाइट्ठिसंकिलेसपरिणामेणुदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो । जयध०

पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[1] । ४९५. दुगुंछाए जहण्णिया पदेसुदीरणा अणंतगुणा[2] । ४९६. भयस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया[3] । ४९७. हस्स-सोगाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया । ४९८. रदि-अरदीणं जहण्णिया पदेसुदीरणा विसेसाहिया । ४९९. तिण्हं वेदाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा अण्णदरा विसेसाहिया । ५००. संजलणाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा अण्णदरा संखेज्जगुणा[4] ।

५०१. भुजगार-उदीरणा उवरिमाए गाहाए परूविहिदि । पदणिक्खेवो वड्ढी वि तत्थेव ।

तदो पदेसुदीरणा समत्ता ।

मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे जुगुप्साकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा अनन्तगुणी होती है । जगुप्साकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे भयकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । भयकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे हास्य और शोककी जघन्य प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । हास्य-शोककी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे रति और अरतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है । रति अरतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा विशेष अधिक होती है तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे संज्वलन कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा संख्यातगुणी होती है ॥४८८-५००॥

चूर्णिसू०–उत्तरप्रकृतिप्रदेश-उदीरणा-सम्बन्धी भुजाकार-उदीरणा आगेकी गाथाके व्याख्यानावसरमें कही जावेगी । वहींपर पदनिक्षेप और वृद्धि अनुयोगद्वारोंका भी प्ररूपण किया जायगा ॥५०१॥

इस प्रकार प्रदेश-उदीरणा समाप्त हुई और उसके साथ दूसरी गाथाके पूर्वार्धका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अब वेदक अधिकारकी दूसरी गाथाके उत्तरार्धकी व्याख्या करनेके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं–

१ कुदो; सम्मामिच्छाइट्ठिसंकिलेसादो अणंतगुणहीणसम्माइट्ठिसंकिलेसपरिणामेणुदीरिज्जमाणदव्वग्गहणादो । जयध०

२ कुदो; देसघादिपडिभागियत्तादो । तदो जइ वि मिच्छाइट्ठिसंकिलेसेण जहण्णा जादा, तो वि पुव्विल्लादो एसा अणंतगुणा त्ति सिद्धं । जयध०

३ एत्थ भय-दुगुंछाणमण्णदरस्स जहण्णभावे इच्छिज्जमाणे दोण्हं पि उदयं कादूण गेण्हियव्वं; अण्णहा जहण्णभावाणुववत्तीदो । जयध०

४ को गुणगारो ? सादिरेयपंचरूवमेत्तो; णोकसायभागस्स पंचमभागमेत्तवेदुदीरणादव्वादो संपुण्णकसायभागमेत्तसंजलणोदीरणदव्वस्स पयडिविसेसगब्भस्स तावदिगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । जयध०

५०२. 'सांतर णिरंतरं वा कदि वा समया दु बोद्धव्वा' त्ति एत्थ अंतरं च कालो च हेट्ठदो विहासिया[1] ।

विदियगाहाए अत्थपरूवणा समत्ता ।

५०३. 'बहुगदरं बहुगदरं से काले को णु थोवदरगं वा' त्ति एत्तो भुजगारो कायव्वो[2] । ५०४. पयडिभुजगारो ट्ठिदिभुजगारो अणुभागभुजगारो पदेसभुजगारो । ५०५. एवं मग्गणाए कदाए समत्ता गाहा ।

'जो जं संकामेदि य जं बंधदि जं च जो उदीरेदि ।
तं होइ केण अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥'

५०६. एदिस्से गाहाए अत्थो—बंधो संतकम्मं उदयो उदीरणा संकमो एदेसिं

चूर्णिसू०—'सांतर णिरंतरं वा कदि वा समया दु बोधव्वा' दूसरी गाथाके इस उत्तरार्धमें आये अंतर और काल (तथा उनके अविनाभावी शेष अनुयोगद्वार) अधस्तन अर्थात् पहले प्रकृति-उदीरणा आदिके व्याख्यानावसरमें ही यथास्थान कह दिये गये हैं ॥५०२॥

इस प्रकार दूसरी गाथाकी अर्थ-प्ररूपणा समाप्त हो जाती है ।

अब वेदक अधिकारकी तीसरी गाथाके व्याख्यानके लिए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०—'बहुगदरं बहुगदरं से काले को णु थोवदरगं वा' इस तीसरी गाथाके द्वारा भुजाकार-उदीरणाका व्याख्यान करना चाहिए । वह भुजाकार चार प्रकारका है—प्रकृति-भुजाकार, स्थिति-भुजाकार, अनुभाग-भुजाकार और प्रदेश-भुजाकार ॥५०३-५०४॥

विशेषार्थ—इस गाथा-द्वारा केवल भुजाकार-उदीरणाकी ही प्ररूपणा करनेकी सूचना नहीं की गई है । अपि तु पदनिक्षेप और वृद्धिकी भी प्ररूपणा करना चाहिए, यह भी सूचित किया गया है; क्योंकि भुजाकारके विशेष वर्णनको पदनिक्षेप कहते हैं और पदनिक्षेपके विशेष वर्णनको वृद्धि कहते हैं । इसलिए इन दोनोंका भुजाकार-उदीरणामें ही अन्तर्भाव हो जाता है । यह सब व्याख्यान यथावसर दूसरी गाथाकी व्याख्यामें कर ही आए हैं, अतः फिर उनका प्ररूपण नहीं करते हैं ।

चूर्णिसू०—इस प्रकार भुजाकारादि तीनों अनुयोगद्वारोंके अनुमार्गण करनेपर तीसरी गाथाका अर्थ समाप्त हो जाता है ॥५०५॥

चूर्णिसू०—'जो जीव स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्रमें जिसे संक्रमण करता है । जिसे बाँधता है और जिसकी उदीरणा करता है, वह द्रव्य किससे अधिक होता है और

१ 'सांतर णिरंतरो वा' त्ति एदेण गाहासुत्तावयवेण सूचिदकालंतराणं हेट्ठिमोवरिमसेसाणिओगद्दाराविणाभावीणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसुदीरणासु सवित्थरमणुमग्गियत्तादो । जयध०

२ 'बहुगदरं बहुगदरं' इच्चेदेण सुत्तावयवेण भुजगारसण्णिदो अवत्थाविसेसो सूचिदो । से काले 'को णु थोवदरगंवा' त्ति एदेण वि अप्पदरसण्णिदो अवत्थाविसेसो सूचिदो । दोण्हमेदेसिं देसामासयभावेणावट्ठिदावत्तव्वसण्णिदाणमवत्थंतराणमेत्थेव संगहो । दट्ठव्वो । पुणो 'अणुसमयमुदीरेंतो' इच्चेदेण गाहापच्छद्धेण भुजगारविसयाणं समुक्कित्तणादिअणियोगद्दाराणं देसामासयभावेणं कालाणियोगो परूविदो । जयध०

पंचण्हं पदाणं उक्कस्समुक्कस्सेण जहण्णं जहण्णेण अप्पाबहुअं पयडीहिं ट्ठिदीहिं अणुभागेहिं पदेसेहिं ।

५०७. पयडीहिं उक्कस्सेण जाओ पयडीओ उदीरिज्जंति, उदिण्णाओ च ताओ थोवाओ[1] । ५०८. जाओ बज्झंति ताओ संखेज्जगुणाओ[2] । ५०९. जाओ संकामिज्जंति

किससे कम होता है ?' वेदक अधिकारकी इस चौथी गाथाका अर्थ कहते हैं–बन्ध, सत्कर्म, उदय, उदीरणा और संक्रम, इन पाँचों पदोंका प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा उत्कृष्टका उत्कृष्टके साथ और जघन्यका जघन्यके साथ अल्पबहुत्व कहना चाहिए ॥५०६॥

विशेषार्थ–गाथासे संक्रम आदि पाँचों पदोंका उक्त अर्थ किस प्रकार निकलता है, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–'जो जं संकामेदि' गाथाके इस प्रथम पदसे 'संक्रम'का ग्रहण किया गया है । 'जं बंधदि' इस द्वितीय पदसे 'बन्ध'का तथा 'सत्कर्म या सत्ता'का अर्थ ग्रहण किया गया है; क्योंकि, बन्धकी ही द्वितीयादि समयोंमें 'सत्ता' संज्ञा हो जाती है । 'जं च जो उदीरेदि' इस तृतीय पदसे उदय और उदीरणा'का ग्रहण किया गया है । 'तं केण होइ अहियं' अर्थात् ये संक्रम, बन्ध आदि किससे अधिक होते हैं और किससे कम होते है, इस चौथे पदसे अल्पबहुत्वका अर्थ-बोध होता है । 'ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे' इस अन्तिम चरणसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशका ग्रहण किया गया है । 'प्रकृति' पद यद्यपि गाथा-सूत्रमें नहीं कहा गया है, तथापि स्थिति, अनुभाग और प्रदेश प्रकृतिके अविनाभावी हैं, अतः प्रकृतिका ग्रहण अनुक्त-सिद्ध है । यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि वेदक अधिकारमें उदय-उदीरणाका वर्णन तो संगत है, पर बन्ध, संक्रम और सत्कर्मका वर्णन असंगत है ? इसका समाधान यह है कि उदय और उदीरणा-सम्बन्धी विशेष निर्णय करनेके लिए बन्ध, संक्रम और सत्कर्मके वर्णनकी भी आवश्यकता होती है और उनके साथ अल्पबहुत्व लगाये विना उदय-उदीरणासम्बन्धी अल्पबहुत्वका समीचीन बोध हो नहीं सकता है । अतः यहाँपर उनका वर्णन असंगत नहीं है । यह गाथा इस अधिकारकी चूलिकारूप जानना चाहिए ।

अब चूर्णिकार इनका यथाक्रमसे वर्णन करते हुए पहले प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका वर्णन करते हैं–

चूर्णिसू०–प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्टतः अर्थात् अधिक से अधिक जितनी प्रकृतियाँ उदयमें आती हैं और उदीरणा की जाती हैं, वे आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । क्योंकि, मोहकी दश प्रकृतियोंका ही एक साथ उदय या उदीरणा होती है । जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं, वे उदय और उदीरणाकी प्रकृतियोंसे संख्यातगुणी हैं । क्योंकि, मोहकी बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ छब्बीस बतलाई गई हैं, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध

१ कुदो; एदासिं थोवभावणिण्णयो चे; दससंखावच्छिण्णपमाणत्तादो । जयध०

२ कुदो; छब्बीससंखावच्छिण्णपमाणत्तादो । जयध०

ताओ विसेसाहियाओ[1] । ५१०. संतकम्मं विसेसाहियं[2] ।

५११. जहण्णाओ । ५१२. जाओ पयडीओ बज्झंति संकामिज्जंति उदीरिज्जंति उदिण्णाओ संतकम्मं च एका पयडी[3] ।

५१३. ट्ठिदीहिं उक्कस्सेण जाओ ट्ठिदीओ मिच्छत्तस्स बज्झंति ताओ थोवाओ[4] ।

नहीं होता है । जितनी प्रकृतियाँ संक्रमणको प्राप्त होती हैं, वे बंध-योग्य प्रकृतियोंसे विशेष अधिक हैं । क्योंकि उनकी संख्या सत्ताईस बतलाई गई है । संक्रमण-योग्य प्रकृतियोंसे सत्कर्म योग्य प्रकृतियाँ विशेष अधिक हैं, क्योंकि मोहकी सत्ता-योग्य प्रकृतियाँ अट्ठाईस बतलाई गई हैं ॥५०७-५१०॥

अब प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य अल्पबहुत्व कहते हैं–

चूर्णिसू०–जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं, संक्रमण करती हैं, उदय और उदीरणाको प्राप्त होती हैं, तथा सत्त्वमें रहती हैं, उन प्रकृतियोंकी संख्या एक है ॥५११-५१२॥

विशेषार्थ–नवम गुणस्थानमें मोहकी एक संज्वलन लोभप्रकृति ही बँधती है । संक्रमण भी एक मायासंज्वलनका नवें गुणस्थानमें होता है । उदय, उदीरणा और सत्त्व भी दशमें गुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभसंज्वलनकषायका पाया जाता है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि बन्ध, उदय, उदीरणा, संक्रम और सत्कर्म जघन्यतः मोहकी एक प्रकृतिका ही होता है ।

इस प्रकार प्रकृति-विषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

अब स्थिति-विषयक-अल्पबहुत्व कहनेके लिए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–स्थितिकी अपेक्षा उत्कर्षसे मिथ्यात्वकी जितनी स्थितियाँ बंधती हैं, वे सबसे कम हैं ॥५१३॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यहाँपर आबाधाकालसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण निषेकस्थितिकी विवक्षा की गई है । मिथ्यात्वका उत्कृष्ट आबाधाकाल सात हजार वर्ष है ।

१ कुदो; सत्तावीसपयडिपमाणत्तादो । जयध०

२ कुदो; अट्ठावीसपयडीणमुक्कस्ससंतकम्मभावेण समुवलंभादो ।

३ तं जहा–बंधेण ताव जहण्णेण लोहसंजलणसण्णिदा एक्का चेव पयडी होदि; अणियट्टिम्मि मायासंजलणबंधवोच्छेदे तदुवलंभादो । संकमो वि मायासंजलणसण्णिदाए एक्किस्से चेव पयडीए होइ; माणसंजलणसंकमवोच्छेदे तदुवलंभादो । उदयोदीरणसंतकम्माणं पि जहण्णभावो अणियट्टि-सुहुमसांपराइएसु घेत्तव्वो । एवमेदासिं जहण्णबंध–संकम-संतकम्मोदयोदीरणाणमेयपयडिपमाणत्तादो णत्थि अप्पाबहुअमिदि जाणाविदमेदेण सुत्तेण । जयध०

४ किंपमाणाओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सेण बज्झमाणट्ठिदीओ ? आबाहूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताओ । कुदो; णिसेयट्ठिदीणं चेव विवक्खियत्तादो । जयध०

५१४. उदीरिज्जंति संकामिज्जंति च विसेसाहियाओ[1] । ५१५. उदिण्णाओ विसेसाहियाओ[2] । ५१६. संतकम्मं विसेसाहियं[3] । ५१७. एवं सोलसकसायाणं ।

५१८. सम्मत्तस्स उक्कस्सेण जाओ ट्ठिदीओ संकामिज्जंति उदीरिज्जंति च

चूर्णिसू०–जो स्थितियाँ मिथ्यात्वकी उत्कर्षसे उदीरणाको प्राप्त होती हैं और संक्रमणको प्राप्त होती हैं, वे परस्परमें समान होकर भी मिथ्यात्वकी बंधनेवाली स्थितियोंसे विशेष अधिक हैं ॥५१४॥

विशेषार्थ–इनका प्रमाण बंधावलीसे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकी उदीरणा और संक्रमणको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ विशेष अधिक हैं ॥५१५॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उदीर्यमाण सर्व स्थितियाँ तो उदयको प्राप्त होती ही हैं, किन्तु तत्काल वेद्यमान उदय-स्थिति भी इसमें सम्मिलित हो जाती हैं, अतः यहाँपर एक स्थिति-मात्रसे अधिक विशेष जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसका सत्कर्म विशेष अधिक है ॥५१६॥

विशेषार्थ–क्योंकि, सत्कर्मका प्रमाण पूरा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । यहाँ-पर एक समय कम दो आवली प्रमाणकाल विशेष अधिक है । इसका कारण यह है कि बंधावलीके साथ समयोन उदयावलीका यहाँपर प्रवेश देखा जाता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंका भी अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥५१७॥

विशेषार्थ–कषायोंकी स्थिति-आदिका अल्पबहुत्व कहते समय सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमके स्थानपर चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहना चाहिए ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कर्षसे जितनी स्थितियाँ संक्रमणको प्राप्त होती हैं और उदीरणाको प्राप्त होती हैं, वे परस्परमें समान होकर भी वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं ॥५१८॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उसका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त और आवलीसे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

---

१ कुदो एदासिं विसेसाहियत्तं ? बंधावलियाए उदयावलियाए च ऊणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडि-पमाणत्तादो । जयध०

२ तं कथं ? उदीरिज्जमाणट्ठिदीओ सव्वाओ चेव उदिण्णाओ । पुणो तक्कालवेदिज्जमाणउदयट्ठिदी वि उदिण्णा होइ; पत्तोदयकालत्तादो । तदो एगट्ठिदिमेत्तेण विसेसाहियत्तमेत्थ घेत्तव्वं ।

३ कुदो; संपुण्णसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो । केत्तियमेत्तो विसेसो ? समयूणदोआवलियमेत्तो; बंधावलियाए सह समयूणुदयावलियाए एत्थ पवेसुवलंभादो । जयध०

ताओ थोवाओ[1]। ५१९. उदिण्णाओ विसेसाहियाओ[2]। ५२०. संतकम्मं विसेसाहियं[3]।

५२१. सम्मामिच्छत्तस्स जाओ ट्ठिदीओ उदीरिज्जंति ताओ थोवाओ[4]। ५२२. उदिण्णाओ ट्ठिदीओ विसेसाहियाओ[5]। ५२३. संकामिज्जंति ट्ठिदीओ विसेसा-

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी संक्रमण और उदीरणाको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसीकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५१९॥

विशेषार्थ—यहाँ एक स्थितिसे अधिक विशेष जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसीका सत्कर्म विशेष अधिक है ॥५२०॥

विशेषार्थ—यह विशेषता सम्पूर्ण आवलीमात्रसे अधिक है।

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वकी जितनी स्थितियाँ उदीरणाको प्राप्त होती हैं, वे वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं ॥५२१॥

विशेषार्थ—क्योंकि, उनका प्रमाण दो अन्तर्मुहूर्त और एक उदयावलीसे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणाको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसीकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५२२॥

विशेषार्थ—यह विशेषता एक स्थितिमात्र जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—सम्यग्मिथ्यात्वकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसीकी संक्रमणको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५२३॥

विशेषार्थ—यहाँ विशेष अधिकताका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्तमात्र है।

१ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तपडिभागेण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवममेत्तं होइ। पुणो तं संतकम्मं सम्माइट्ठिविदियसमए उदयावलियबाहिरादो ओकड्डियूण वेदयमाणस्स उक्कस्सट्ठिदिउदीरणा उक्कस्सट्ठिदिसंकमो च होदि। तेण कारणेणंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ आवलियूणाओ सम्मत्तस्स संकामिज्जमाणोदीरिज्जमाण-ट्ठिदीओ होंति त्ति थोवाओ जादाओ। जयध०

२ केत्तियमेत्तो विसेसो? एगट्ठिदिमेत्तो। किं कारणं; तक्कालवेदिज्जमाणुदयट्ठिदीए वि एत्थ तब्भावदंसणादो। जयध०

३ केत्तियमेत्तो विसेसो? संपुण्णावलियमेत्तो। किं कारणं; सम्माइट्ठिपढमसमए गलिदेगट्ठिदीए सह समयूणुदयावलियाए एत्थ पवेसुवलंभादो। जयध०

४ किंपमाणाओ ताओ? दोहि अंतोमुहुत्तेहिं उदयावलियाए च ऊणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडि-पमाणाओ। तं कथं? मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणंतोमुहुत्तपडिभग्गो सव्वलहुं सम्मत्तं घेत्तूण सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्ममुप्पाइय पुणो सव्वजहण्णेणंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तमुवणमिय तं संतकम्ममुदयावलियबाहिरमुदीरेदि त्ति एदेण कारणेणाणंतरणिद्दिट्ठपमाणाओ होदूण थोवाओ जादाओ। जयध०

५ केत्तियमेत्तो विसेसो? एगट्ठिदिमेत्तो। कुदो; तक्कालवेदिज्जमाणुदयट्ठिदीए वि एत्थंत-ब्भूदत्तादो। जयध०

हियाओ[1]। ५२४. संतकम्मट्ठिदीओ विसेसाहियाओ[2]। ५२५. णवणोकसायाणं जाओ ट्ठिदीओ बज्झंति ताओ थोवाओ[3]। ५२६. उदीरिज्जंति संकामिज्जंति य संखेज्जगुणाओ[4]। ५२७. उदिण्णाओ विसेसाहियाओ[5]। ५२८. संतकम्मट्ठिदीओ विसेसाहियाओ[6]।

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वकी संक्रमणको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उसीकी सत्कर्म-स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५२४॥

विशेषार्थ–यह विशेष अधिकता सम्पूर्ण आवलीमात्र जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–नव नोकषायोंकी जो स्थितियाँ बन्धको प्राप्त होती हैं, वे सबसे कम हैं ॥५२५॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उनका प्रमाण आबाधाकालसे हीन अपना-अपना उत्कृष्ट स्थितिबन्ध है।

चूर्णिसू०–नव नोकषायोंकी बँधनेवाली स्थितियोंसे उनकी उदीरणा और संक्रमणको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ संख्यातगुणी हैं ॥५२६॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उनका प्रमाण बन्धावली, संक्रमणावली और उदयावलीसे हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

चूर्णिसू०–नव नोकषायोंकी उदीरणा और संक्रमणको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उन्हींकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५२७॥

विशेषार्थ–यहाँ अधिकताका प्रमाण एक स्थितिमात्र है।

चूर्णिसू०–नव नोकषायोंकी उदयको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंसे उन्हींकी सत्कर्म-स्थितियाँ कुछ विशेष अधिक हैं ॥५२८॥

विशेषार्थ–यहाँ अधिकताका प्रमाण एक समय कम दो आवलीमात्र है, क्योंकि यहाँ पर समयोन उदयावलीके साथ संक्रमणावलीका भी अन्तर्भाव हो जाता है।

अब जघन्य स्थिति-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—

१ केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोमुहुत्तमेत्तो। कुदो; मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण सम्मत्तं पडिवण्ण-विदियसमए चेव सम्मामिच्छत्तस्सुक्कस्सट्ठिदिसंकमावलंबणादो। जयध०

२ केत्तियमेत्तो विसेसो ? संपुण्णावलियमेत्तो। कुदो; सम्माइट्ठिपढमसमए चेव उक्कस्सट्ठिदि-संकमावलंबणादो। जयध०

३ कुदो; आबाहूणसग-सगुक्कस्सट्ठिदिबंधपमाणत्तादो। जयध०

४ कुदो; सव्वासिं बंधसंकमणावलियाहिं उदयावलियाए च परिहीणचत्तालीससागरोवमकोडा-कोडीमेत्तट्ठिदीणं संकामिज्जमाणोदीरिज्जमाणाणमुवलंभादो। जयध०

५ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो। जयध०

६ केत्तियमेत्तो विसेसो ? समयूण-दो-आवलियमेत्तो। किं कारणं; समयूणुदयावलियाए सह संकमणावलियाए तत्थ पवेसुवलंभादो। जयध०

५२९. जहण्णेण मिच्छत्तस्स एगा ट्ठिदी उदीरिज्जदि, उदयो संतकम्मं च थोवाणि[1] । ५३०. जट्ठिदि-उदयो च तत्तियो चेव[2] । ५३१. जट्ठिदि-संतकम्मं संखेज्ज-गुणं[3] । ५३२. जट्ठिदि-उदीरणा असंखेज्जगुणा[4] । ५३३. जहण्णओ ट्ठिदिसंतकम्मो असंखेज्जगुणो[5] । ५३४ जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[6] ।

चूर्णिसू०–जघन्यकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी एक स्थिति उदीरणाको प्राप्त होती है, उदय भी एक स्थितिप्रमाण है और सत्कर्म भी एक स्थितिप्रमाण है। (अतः ये तीनों एक स्थितिमात्र होकरके भी वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं।) मिथ्यात्वका जघन्य यत्स्थितिक उदय भी तत्प्रमाण ही है। मिथ्यात्वके जघन्य यत्स्थितिक उदयसे यत्स्थितिक सत्कर्म संख्यातगुणा है ॥५२९-५३१॥

विशेषार्थ–मिथ्यात्वके जघन्य यत्स्थितिक-उदयसे यत्स्थितिक सत्कर्मके संख्यातगुणित कहनेका कारण यह है कि एक स्थितिकी अपेक्षा दो समय-सम्बन्धी स्थिति दुगुनी होती है। विवक्षित प्रकृतिकी संक्रमणकालमें जो स्थिति होती है, उसे 'यत्स्थिति' कहते हैं। वह 'यत्स्थिति' जिसके पाई जावे, उसे 'यत्स्थितिक' कहते हैं। इस प्रकारके यत्स्थितिके उदयको 'यत्स्थितिक-उदय', उदीरणाको 'यत्स्थितिक-उदीरणा' और सत्कर्मको 'यत्स्थितिक सत्कर्म' कहते हैं। आगे भी सर्वत्र 'जट्ठिति' पदसे 'यत्स्थिति' का ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

चूर्णिसू०- मिथ्यात्वके यत्स्थितिक सत्कर्मसे उसीकी यत्स्थितिक उदीरणा असंख्यात-गुणी है ॥५३२॥

विशेषार्थ–क्योंकि, उसका प्रमाण एक समय अधिक आवलीप्रमाण है। असंख्यात समयोंकी एक आवली होती है, अतः इसके असंख्यातगुणित होना सिद्ध है।

चूर्णिसू०–मिथ्यात्वकी यत्स्थितिक-उदीरणासे उसीका जघन्य स्थितिक-सत्कर्म असंख्यातगुणा है ॥५३३॥

विशेषार्थ–क्योंकि, इसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग है।

चूर्णिसू०- मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति-सत्कर्मसे उसीका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यात-गुणा है ॥५३४॥

१ तं जहा–उदीरणा ताव पढमसम्मत्ताभिमुहमिच्छाइट्ठिस्स समयाहियावलियमेत्तमिच्छत्तपढम-ट्ठिदीए सेसाए एगट्ठिदिमेत्ता होदूण जहण्णिया होइ। उदयो वि तस्सेवावलियपविट्ठपढमट्ठिदियस्स जहण्णओ होइ। संतकम्मं पुण दंसणमोहक्खवगस्स एगट्ठिदिदुसमयकालमेत्तमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मं घेत्तूण जहण्णयं होइ। तदो मिच्छत्तस्स जहण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा उदयो संतकम्मं च एगट्ठिदिमेत्ताणि होदूण थोवाणि जादाणि। जयध०

२ किं कारणं; मिच्छत्तपढमट्ठिदीए आवलियपविट्ठाए आवलियमेत्तकालं जहण्णओ ट्ठिदि-उदओ होइ। तत्थ जट्ठिदि-उदयो वि तत्तियो चेव, तम्हा जट्ठिदि-उदयो तत्तियो चेवेत्ति भणिदं। जयध०

३ किं कारणं; एगट्ठिदीदो दुसमयकालट्ठिदीए दुगुणत्तुवलंभादो। जयध०

४ कुदो; समयाहियावलियपमाणत्तादो। जयध०

५ कुदो; पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो। जयध०

६ किं कारणं; सव्वविसुद्धबादरेइंदियपज्जत्तस्स पलिदोवमासंखेज्जभागपरिहीणसागरोवममेत्तजहण्ण-ट्ठिदिबंधग्गहणादो। जयध०

५३५. सम्मत्तस्स जहण्णगं ट्ठिदिसंतकम्मं संकमो उदीरणा उदयो च एगा ट्ठिदी[1] । ५३६ जट्ठिदिसंतकम्मं जट्ठिदि-उदयो च तत्तियो चेव[2] । ५३७. सेसाणि जट्ठिदिगाणि असंखेज्जगुणाणि[3] ।

५३८. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं[4] । ५३९. जट्ठिदि-संतकम्मं संखेज्जगुणं[5] । ५४०. जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[6] । ५४१. जह-ण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा असंखेज्जगुणा[7] । ५४२. जहण्णओ ट्ठिदि-उदयो विसेसाहिओ[8] ।

विशेषार्थ–क्योंकि, सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमप्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध माना गया है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य स्थिति सत्कर्म, संक्रमण, उदीरणा और उदय एक स्थितिमात्र हैं । (अतः वक्ष्यमाण सर्वपदोंकी अपेक्षा उनका प्रमाण सबसे कम है ।) सम्यक्त्वप्रकृतिका जितना जघन्यस्थिति सत्कर्म है यत्स्थितिक-सत्कर्म और यत्स्थितिक-उदय भी उतना ही है । सम्यक्त्वप्रकृतिके यत्स्थितिक-उदयसे उसीके शेष यत्स्थितिक (उदीरणा आदि) असंख्यातगुणित होते हैं । क्योंकि, उनका प्रमाण एक समयसे अधिक आवली-प्रमाण है ॥५३५-५३७॥

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (क्योंकि, उसका प्रमाण एक स्थितिमात्र ।) सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मसे उसीका यत्स्थितिक-सत्कर्म संख्यातगुणा है । (क्योंकि, उसका प्रमाण दो स्थितिप्रमाण है ।) सम्यग्मिथ्यात्वके यत्स्थितिकसत्कर्मसे उसीका जघन्य स्थिति-संक्रमण असंख्यातगुणा है । (क्योंकि, उसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ।) सम्य-ग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति-संक्रमणसे उसीकी जघन्य स्थिति-उदीरणा असंख्यातगुणी है । (क्योंकि, उसका प्रमाण कुछ कम सागरोपम है ।) सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-उदी-रणासे उसीका जघन्य स्थिति-उदय विशेष अधिक है । (यह विशेषता केवल एक स्थितिमात्र है ।) ॥५३८-५४२॥

१ तं जहा–कदकरणिज्जचरिमसमये सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंतकम्ममेगट्ठिदिमेत्तमवलब्भदे । जहण्ण-ट्ठिदि-उदयो वि तत्थेव गहेयव्वो । अथवा कदकरणिज्जचरिमावलियाए सव्वत्थेव जहण्णट्ठिदि-उदयो व समुवलब्भदे; तेत्तियमेत्तकालमेक्किस्सेव ट्ठिदीए उदयदंसणादो । पुणो कदकरणिज्जस्स समयाहियावलियाए सव्वत्थेव जहण्णट्ठिदि उदीरणा जहण्णिया होइ; एगट्ठिदिविसयत्तादो । संकमो वि तत्थेव गहेयव्वो । एवमेदेसिमेगट्ठिदिपमाणत्तादो थोवत्तमिदि सिद्धं । जयध०

२ कुदो; कदकरणिज्जचरिमसमए तेसिं पि एगट्ठिदिपमाणत्तदंसणादो । जयध०

३ कुदो; समयाहियावलियपमाणत्तादो । जयध०

४ कुदो; एगट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

५ कुदो; दुसमयकालट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

६ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

७ कुदो; देसूणसागरोवमपमाणत्तादो । जयध०

८ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो ! किं कारणं; उदयट्ठिदीए वि एत्थ पवेसदंसणादो । जयध०

५४३. बारसकसायाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं[1] । ५४४. जट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[2] । ५४५. जहण्णगो ट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[3] । ५४६. जहण्णगो बंधो असंखेज्जगुणो[4] । ५४७. जहण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा विसेसाहिया[5] । ५४८. जहण्णगो ठिदि-उदयो विसेसाहियो[6] ।

५४९. तिण्हं संजलणाणं जहण्णिया ठिदि-उदीरणा थोवा[7] । ५५०. जहण्णगो ट्ठिदि-उदयो संखेज्जगुणो[8] । ५५१. जट्ठिदि-उदयो जट्ठिदि-उदीरणा च असंखेज्जगुणो[9] । ५५२. जहण्णगो ठिदिबंधो ठिदिसंकमो ठिदिसंतकम्मं च संखेज्जगुणाणि[10] । ५५३.

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य स्थिति-सत्कर्म वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । बारह कषायोंके जघन्य स्थितिसत्कर्मसे उन्हींका यत्स्थितिक सत्कर्म संख्यातगुणा है । बारह कषायोंके यत्स्थितिक सत्कर्मसे उन्हींका जघन्य स्थिति-संक्रमण असंख्यातगुणा है । बारह कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे उन्हींका जघन्य स्थिति-बन्ध असंख्यातगुणा है । बारह कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धसे उन्हींकी जघन्य स्थिति-उदीरणा विशेष अधिक है । बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति-उदीरणासे उन्हींका जघन्य स्थिति-उदय विशेष अधिक है ॥५४३-५४८॥

चूर्णिसू० क्रोधादि तीनों संज्वलनकषायोंकी जघन्य स्थिति-उदीरणा वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (*क्योंकि, वह एक स्थितिप्रमाण है ।*) तीनों संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति-उदीरणासे उन्हींका जघन्य स्थिति-उदय संख्यातगुणा है । (*क्योंकि, वह दो स्थितिप्रमाण है ।*) तीनों संज्वलनोंके जघन्य स्थिति-उदयसे उन्हींका यत्स्थितिक-उदय और यत्स्थितिक-उदीरणा असंख्यातगुणी है । (क्योंकि, उनका प्रमाण एक समय अधिक आवली-काल है ।) तीनों संज्वलनकषायोंके यत्स्थितिक-उदय और उदीरणासे उन्हींका जघन्य स्थिति-बन्ध, जघन्य स्थितिसंक्रमण और जघन्य स्थितिसत्कर्म ये तीनों संख्यातगुणित हैं । (क्योंकि,

१ कुदो; एगट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

२ कुदो; दुसमयकालट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

३ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो । जयध०

४ किं कारणं; सव्वविसुद्धबादरेइंदियजहण्णट्ठिदिबंधस्स गहणादो । जयध०

५ कुदो; सव्वविसुद्धबादरेइंदियस्स जहण्णट्ठिदि-बंधादो विसेसाहियहदसमुप्पत्तिय-जहण्णट्ठिदि-संतकम्मविसयत्तेण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

६ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो । कुदो; उदयट्ठिदीए वि एत्थंतब्भावदंसणादो । जयध०

७ किं कारणं; एगट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

८ कुदो; दोट्ठिदिपमाणत्तादो । णेदमसिद्धं; तम्मि चेव विसए उदयट्ठिदीए सह उदीरिज्जमाण-ट्ठिदीए जहण्णोदयभावेण विवक्खियत्तादो । जयध०

९ कुदो; समयाहियावलियपमाणत्तादो । जयध०

१० कुदो; आबाहूण-वेमास-मास-पक्खपमाणत्तादो । किमट्ठमाबाहाए ऊणत्तमेत्थ कीरदे ? ण, जहण्णबंध-संतकम्माणं णिसेयपहाणत्तावलंबणादो । जयध०

जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ[1] । ५५४. जट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । ५५५. जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[3] ।

५५६. लोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो संतकम्ममुदयोदीरणा च तुल्ला थोवा[4] । ५५७. जट्ठिदि-उदयो जट्ठिदिसंतकम्मं च तत्तियं चेव[5] । ५५८. जट्ठिदि-उदी-

उनका प्रमाण क्रमशः आबाधाकालसे हीन दो मास, एक मास और एक पक्ष-प्रमाण कहा गया है ।) तीनों संज्वलनोंके जघन्य स्थितिबन्ध आदि पदोंकी अपेक्षा उन्हींका यत्स्थितिक-संक्रमण विशेष अधिक है । (यह विशेष अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, क्योंकि यहाँपर समयोन दो आवलीसे हीन जघन्य आबाधाकालका प्रवेश देखा जाता है ।) तीनों संज्वलनोंके यत्स्थितिक संक्रमणसे उन्हींका यत्स्थितिक-सत्कर्म विशेष अधिक है । (यह विशेष एक स्थितिमात्र है ।) तीनों संज्वलनोंके यत्स्थितिक सत्कर्मसे उन्हींका यत्स्थितिक-बन्ध विशेष अधिक है । (यह विशेष दो समय कम दो आवलीमात्र जानना चाहिए । क्योंकि, सम्पूर्ण आबाधाकालके साथ ही यत्स्थितिबन्धके जघन्यपना माना गया है ।) ॥५४९-५५५॥

चूर्णिसू०–लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमण, जघन्य स्थितिसत्कर्म, जघन्य उदय और जघन्य उदीरणा ये चारों परस्परमें तुल्य हैं और वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । (क्योंकि, इन सबका प्रमाण एक स्थितिमात्र है ।) लोभसंज्वलनका जघन्य यत्स्थितिक-उदय और जघन्य यत्स्थितिक-सत्कर्म भी उतना ही अर्थात् एक स्थितिप्रमाण ही है । लोभसंज्वलनके जघन्य यत्स्थितिक-उदय और जघन्य यत्स्थितिक-सत्कर्मसे उसीकी जघन्य यत्स्थितिक उदीरणा और जघन्य यत्स्थितिक संक्रमण असंख्यातगुणित हैं । (क्योंकि, उनका प्रमाण एक समय अधिक आवलीकाल है ।) लोभसंज्वलनके जघन्य यत्स्थितिक-उदीरणा और जघन्य संक्रमणसे उसीका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । (क्योंकि, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अन्तिम समयमें होनेवाले आबाधा-विहीन अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण स्थितिबन्धको यहाँ

१ केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोमुहुत्तमेत्तो । कुदो; समयूणदो आवलियाहिं परिहीण-जहण्णाबाहाए एत्थ पवेसदंसणादो । जयध०

२ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो । किं कारणं; संकमणावलियाए चरिमसमयम्मि जट्ठिदिसंकमो जहण्णो जादो । जट्ठिदिसंतकम्मं पुण तत्तो हेट्ठिमाणंतरसमए वट्टमाणस्स जहण्णं होइ, तेण कारणेण संकमणावलियाए दुचरिमसमयप्पवेसेण विसेसाहियत्तमेत्थ गहेयव्वं । जयध०

३ केत्तियमेत्तो विसेसो ? दुसमयूणदोआवलियमेत्तो । किं कारणं; संपुण्णाबाहाए जट्ठिदिबंधस्स जहण्णभावदंसणादो । जयध०

४ कुदो; सव्वेसिमेगट्ठिदिपमाणत्तादो । तं कथं; सुहुमसांपराइयस्स समयाहियावलियाए ट्ठिदिसंकमो ट्ठिदि-उदीरणा च जहण्णिया होइ । तस्सेव चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्ममुदयो च जहण्णभावं पडिवज्जदे तदो सव्वेसिमेयट्ठिदिपमाणत्तादो थोवत्तमिदि सिद्धं ।

५ किं कारणं; उदयत्थ जहण्णट्ठिदीदो जट्ठिदीए भेदाणुवलंभादो । जयध०

रणा संकमो च असंखेज्जगुणो[1] । ५५९. जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो[2] । ५६०. जट्ठिदिबंधो विसेसाहियो[3] ।

५६१. इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिसंतकम्ममुदयोदीरणा च थोवाणि[4] । ५६२. जट्ठिदिसंतकम्मं जट्ठिदि-उदयो च तत्तियो चेव[5] । ५६३. जट्ठिदि-उदीरणा असंखेज्जगुणा[6] । ५६४. जहण्णगो ट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो[7] । ५६५. जहण्णगो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[8] ।

५६६. पुरिसवेदस्स जहण्णगो ट्ठिदि-उदयो ट्ठिदि-उदीरणा च थोवा[9] । ५६७.

ग्रहण किया गया है ।) लोभसंज्वलनके जघन्य स्थितिबन्धसे उसीका यत्स्थितिक बन्ध विशेष अधिक है । (क्योंकि, यहाँ पर उसमें जघन्य आबाधाकाल भी सम्मिलित हो जाता है ।) ॥५५६-५६०॥

चूर्णिसू०—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थिति-सत्कर्म, जघन्य स्थिति-उदय और जघन्य स्थिति-उदीरणा ये तीनों परस्परमें समान हैं और वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । (क्योंकि, उनका प्रमाण एक स्थितिमात्र है । स्त्री और नपुंसक वेदका जघन्य यत्स्थितिकसत्कर्म और जघन्य यत्स्थितिक उदय भी उतना अर्थात् एक स्थितिप्रमाण ही है । स्त्री और नपुंसक वेदके जघन्य यत्स्थितिक-सत्कर्म और जघन्य यत्स्थितिक-उदयसे उन्हींकी जघन्य यत्स्थितिक-उदीरणा असंख्यातगुणी है । (क्योंकि, उसका प्रमाण एक समय अधिक आवलीकाल है ।) स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य यत्स्थितिक-उदीरणासे उसीका जघन्य स्थिति-संक्रमण असंख्यातगुणा है । (क्योंकि, उसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ।) स्त्री और नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमणसे उन्हींका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । (क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके दो बटे सात ($\frac{2}{7}$) भागप्रमाण एकेन्द्रियोंके स्त्री और नपुंसकवेद-सम्बन्धी जघन्य स्थितिबंधको यहाँ ग्रहण किया गया है ॥५६१-५६५॥

चूर्णिसू०—पुरुषवेदका जघन्य स्थिति-उदय और जघन्य स्थिति-उदीरणा सबसे कम हैं । (क्योंकि, वह एक स्थिति-प्रमाण है ।) पुरुषवेदका यत्स्थितिक-उदय भी उतना ही है,

१ कुदो; समयाहियावलियपमाणत्तादो । जयध०

२ किं कारणं; अणियट्टिकरणचरिमट्ठिदिबंधस्स अंतोमुहुत्तपमाणस्साबाहाए विणा गहिदत्तादो । जयध०

३ कुदो; जहण्णाबाहाए वि एत्थंतब्भावदंसणादो । जयध०

४ कुदो; एगट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

५ किं कारणं; एत्थ जट्ठिदीए जहण्णट्ठिदीदो भेदाणुवलंभादो । जयध०

६ कुदो; समयाहियावलियपमाणत्तादो । जयध०

७ कुदो; पलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तचरिमफालिविसयत्तादो । जयध०

८ कुदो; एइंदियजहण्णट्ठिदिबंधस्स पलिदोवमासंखेज्जभागपरिहीणसागरोवम-बे-सत्तभागपमाणस्स गहणादो । जयध०

९ कुदो; एगट्ठिदिपमाणत्तादो । जयध०

जट्ठिदि-उदयो तत्तियो चेव। ५६८. जट्ठिदि-उदीरणा समयाहियावलिया सा असंखेज्ज-गुणा। ५६९. जहण्णगो ट्ठिदिबंधो ट्ठिदिसंकमो ट्ठिदिसंतकम्मं च ताणि संखेज्जगु-णाणि[1]। ५७०. जट्ठिदिसंकमो विसेसाहियो[2]। ५७१. जट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं[3]। ५७२. जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[4]।

५७३. छण्णोकसायाणं जहण्णगो ट्ठिदिसंकमो संतकम्मं च थोवं[5]। ५७४. जहण्णगो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[6]। ५७५. जहण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा संखेज्जगुणा[7]*।

अर्थात् एक स्थितिप्रमाण है। पुरुषवेदकी यत्स्थितिक-उदीरणा एक समय अधिक आवलीप्रमाण है। वह पुरुषवेदके यत्स्थितिक-उदयसे असंख्यातगुणी है। पुरुषवेदकी यत्स्थितिक-उदीरणासे उसीका जघन्य स्थितिबन्ध, जघन्य स्थितिसंक्रम और जघन्य स्थितिसत्कर्म ये सब संख्यात-गुणित हैं। (क्योंकि, यहाँपर अबाधाकालसे रहित आठ वर्षप्रमाण पुरुषवेदके चरम स्थिति-बन्धको ग्रहण किया गया है।) पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमसे उसीका यत्स्थितिकसंक्रम विशेष अधिक है। (क्योंकि, यहाँपर एक समय-हीन दो आवलीकालसे कम पुरुषवेदका जघन्य आबाधाकाल भी सम्मिलित हो जाता है।) पुरुषवेदके यत्स्थितिक-संक्रमसे उसीका यत्स्थितिक-सत्कर्म (एक स्थितिसे) विशेष अधिक है। पुरुषवेदके यत्स्थितिक-सत्कर्मसे उसीका यत्स्थितिक-बन्ध विशेष अधिक है (यह विशेष दो समयसे कम दो आवलीप्रमाण अधिक जानना चाहिए।) ॥५६६-५७२॥

चूर्णिसू० हास्यादि छह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम और जघन्य स्थितिसत्कर्म वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। हास्यादिषट्कके जघन्य स्थितिसंक्रमसे उन्हींका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित है। (क्योंकि, उसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन दो बटे सात ($\frac{2}{7}$) सागरोपम है।) हास्यादिषट्कके जघन्य स्थितिबन्धसे उन्हींकी जघन्य स्थिति-उदीरणा संख्यातगुणी है। (क्योंकि, उसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें

---

१ कुदो; पुरिसवेदचरिमट्ठिदिबंधस्स अट्ठवस्सपमाणस्स आबाहाए विणा गहणादो। जयध०

२ कुदो; समयूण-दो-आवलियाहिं परिहीणजहण्णाबाहाए एत्थ पवेसदंसणादो। जयध०

३ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो। जयध०

४ केत्तियमेत्तो विसेसो ? दुसमयूण-दो-आवलियमेत्तो। जयध०

५ कुदो; खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडयविसये पडिलद्धजहण्णभावत्तादो। जयध०

६ किं कारणं; एइंदियजहण्णट्ठिदिबंधस्स पलिदोवमासंखेज्जभागपरिहीणसागरोवम-बे-सत्तभागपमा-णस्स गहणादो। जयध०

७ किं कारणं; पलिदोवमासंखेज्जभागपरिहीणसागरोवमचदुसत्तभागमेत्तजहण्णट्ठिदिसंतकम्मविसयत्तेण ट्ठिदिउदीरणाए जहण्णसामित्तपवुत्तिदंसणादो। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जगुणा' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १५९६)। पर टीकाके अनुसार 'संखेज्जगुणा' पाठ होना चाहिए।

५७६. जहण्णओ ट्ठिदि-उदयो विसेसाहिओ[1]।

५७७. एत्तो अणुभागेहिं अप्पाबहुअं ५७८. उक्कस्सेण ताव। ५७९. मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणमुक्कस्स-अणुभागउदीरणा उदयो च थोवा[2]। ५८०. उक्कस्सओ बंधो संकमो संतकम्मं च अणंतगुणाणि[3]।

५८१. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्स-अणुभागउदओ उदीरणा च थोवाणि[4]। ५८२. उक्कस्सओ अणुभागसंकमो संतकम्मं च अणंतगुणाणि[5]।

५८३. एत्तो जहण्णयमप्पाबहुअं। ५८४. मिच्छत्त-बारसकसायाणं जहण्णगो

भागसे हीन चार बटे सात (४/७) सागरोपम है।) हास्यादिषट्ककी जघन्य स्थिति-उदीरणासे उन्हींका जघन्य स्थिति-उदय (एक स्थितिसे) विशेष अधिक है ॥५७३-५७६॥

इस प्रकार जघन्य स्थिति-विषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे अनुभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहेंगे। उसमें पहले उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन करते हैं। मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा और उत्कृष्ट उदय वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। (क्योंकि, उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध और उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्मके अनन्तवें भागकी ही सर्वदा उदय और उदीरणारूप प्रवृत्ति देखी जाती है।) मिथ्यात्वादिके उत्कृष्ट उदय और उदीरणासे उन्हींका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध, उत्कृष्ट अनुभाग संक्रम और उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणा है। (क्योंकि, यहाँपर मिथ्यादृष्टिके सर्वोत्कृष्ट संक्लेशसे बंधे हुए उत्कृष्ट अनुभागको निरवशेषरूपसे ग्रहण किया गया है।) ॥५७७-५८०॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग-उदय और उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। (क्योंकि, इनके उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्मके चरम स्पर्धकसे अनन्तगुणित हीन-स्वरूपसे ही सर्वकाल उदय और उदीरणाकी प्रवृत्ति देखी जाती है।) सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग-उदय और उदीरणासे उन्हींका उत्कृष्ट अनुभाग-संक्रम और उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणित हैं। (क्योंकि, विना किसी विघातके स्थित उत्कृष्ट अनुभागको यहाँ ग्रहण किया गया है।) ॥५८१-५८२॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे अनुभाग-सम्बन्धी जघन्य अल्पबहुत्वको कहते हैं—मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध वक्ष्यमाण पदोंकी

---

१ केत्तियमेत्तो विसेसो ? एगट्ठिदिमेत्तो। जयध०

२ कुदो; उक्कस्साणुभागबंधसंतकम्माणमणंतिमभागे चेव सव्वकालमुदयोदीरणाणं पवुत्तिदंसणादो। जयध०

३ कुदो; सण्णिपंचिंदियमिच्छाइट्ठिस्स सव्वुक्कस्ससंकिलेसेण बंधुक्कस्साणुभागस्स अणूणाहियस्स गहणादो। जयध०

४ कुदो; एदेसिमुक्कस्साणुभागसंतकम्मचरिमफद्दयादो अणंतगुणहीणफद्दयसरूवेण सव्वद्धमुदयोदीरणाणं पवुत्तिदंसणादो। जयध०

५ कुदो; किंचि वि घादमपावेदूण ट्ठिदसगुक्कस्साणुभागसरूवेण पत्तुक्कस्सभावत्तादो। जयध०

अणुभागबंधो थोवो[1] । ५८५. जहण्णयो उदयो उदीरणा च अणंतगुणाणि[2] । ५८६. जहण्णगो अणुभागसंकमो संतकम्मं च अणंतगुणाणि[3] ।

५८७. सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्ममुदयो च थोवाणि[4] । ५८८. जहण्णिया अणुभागुदीरणा अणंतगुणा[5] ।

अपेक्षा सबसे कम है । (क्योंकि, यहाँपर संयमके ग्रहण करनेके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके उत्कृष्ट विशुद्धिसे बद्ध जघन्य अनुभागका ग्रहण किया गया है ।) मिथ्यात्व और बारह कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धसे उन्हींके जघन्य उदय और उदीरणा अनन्तगुणित हैं । (क्योंकि, यहाँपर संयमाभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके बद्ध नवीन जघन्य बन्धके समकाल (साथ) ही पुरातन बद्ध सत्कर्मोंका भी उदय और उदीरणा होनेसे अनन्तगुणितता देखी जाती है ।) मिथ्यात्व और बारह कषायोंके जघन्य अनुभाग-उदयसे उन्हींके जघन्य अनुभाग-संक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणित हैं ॥५८३-५८६॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि मिथ्यात्व और अप्रत्याख्यानावरणादि आठ कषायोंके सूक्ष्म एकेन्द्रिय-सम्बन्धी हतसमुत्पत्तिक जघन्य अनुभागको विषय करनेसे, तथा अनन्तानुबन्धी कषायोंके विसंयोजनापूर्वक संयोजनाके प्रथम समय होनेवाले जघन्य नवक बंधको विषय करनेसे उनके अनन्तगुणितपना देखा जाता है ।

चूर्णिसू०-सम्यक्त्वप्रकृतिका जघन्य अनुभाग सत्कर्म और जघन्य उदय वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है ॥५८७॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि यहाँपर प्रतिसमय अपवर्तनाघातसे सम्यक्त्वप्रकृतिका भलीभाँति घात करके स्थित कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके चरम समयमें होनेवाले उदय और सत्कर्मकी विवक्षा की गई है ।

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिके जघन्य अनुभाग सत्कर्म और उदयसे उसीकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणी है ॥५८८॥

१ कुदो; मिच्छत्ताणंताणुबंधीणं संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिणा सव्वुक्कस्सविसोहीए बद्धजहण्णाणुभागग्गहणादो । अपच्चक्खाण-पच्चक्खाणकसायाणं पि संजमाहिमुहचरिमसमयअसंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणमुक्कस्स-विसोहिणिबंधणाणुभागबंधम्मि जहण्णसामित्तावलंबणादो । जयध०

२ किं कारणं; संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठि-असंजद-संजदासंजदेसु जहण्णबंधेण समकालमेव पत्तजहण्णभावाणं पि उदयोदीरणाणं चिराणसंतसरूवेण तत्तो अणंतगुणत्तदंसणादो । जयध०

३ किं कारणं; मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं सुहुमेइंदियहदसमुप्पत्तियजहण्णाणुभागविसयत्तेण अणंताणुबंधीणं पि विसंजोयणापुव्वसंजोगपढमसमयजहण्णणवकबंधविसयत्तेण संकमसंतकम्माणं जहण्णसामित्तावलंबणादो । जयध०

४ कुदो; अणुसमयोवट्टणाघादेण सुट्ठु घादं पावियूण ट्ठिदंकदकरणिज्जचरिमसमयजहण्णाणुभागसरूवत्तादो । जयध०

५ किं कारणं; हेट्ठा समयाहियावलियमेत्तमोसरिदूण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

५८९. जहण्णओ अणुभागसंकमो अणंतगुणो[1]।

५९०. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णगो अणुभागसंकमो संतकम्मं च थोवाणि[2]। ५९१. जहण्णगो अणुभाग-उदयो उदीरणा च अणंतगुणाणि[3]। ५९२. कोहसंजलणस्स जहण्णगो अणुभागबंधो संकमो संतकम्मं च थोवाणि[4]। ५९३. जहण्णाणुभाग-उदयो

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि कृतकृत्यवेदक होनेसे एक समय अधिक आवली काल पहले सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे उसीका जघन्य अनुभाग संक्रम अनन्तगुणा है ॥५८९॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि यद्यपि जघन्य उदीरणाके विषयमें ही अपवर्तनाके वशसे जघन्य अनुभागका संक्रम हुआ है, तथापि उस जघन्य अनुभाग-उदीरणासे यह जघन्य अनुभाग-संक्रम अनन्तगुणा है। क्योंकि, अपकृष्यमाण अनुभागके अनन्तवें भागस्वरूपसे ही उदय और उदीरणाकी संक्रममें प्रवृत्ति देखी जाती है।

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसंक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं ॥५९०॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि दर्शनमोहका क्षपण करनेवाले जीवके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका भलीभाँति घात करके स्थित चरम अनुभागखंडको यहाँ ग्रहण किया गया है।

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसंक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्मसे उसीके जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणित हैं ॥५९१॥

विशेषार्थ–क्योंकि, घातके विना सम्यक्त्वके अभिमुख चरम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिके द्वारा उदीर्यमाण जघन्य अनुभागकी यहाँ विवक्षा की गई है।

चूर्णिसू०–संज्वलनक्रोधका जघन्य अनुभागबन्ध, जघन्य संक्रम, और जघन्य सत्कर्म ये तीनों परस्परमें समान होकरके भी वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं।

---

१ जइ वि जहण्णोदीरणाविसये चेव ओकड्डणावसेण जहण्णाणुभागसंकमो जादो, तो वि तत्तो एसो अणंतगुणो। किं कारण; ओकड्डिजमाणाणुभागस्स अणंतभागसरूवेण उदयोदीरणाणं तत्थ पवुत्तिदंसणादो। जयध०

२ कुदो; दंसणमोहक्खवय-अपुव्वाणियट्टिकरणपरिणामेहिं सुट्ठु घादं पावेयूण ट्ठिदचरिमाणुभागखंडयविसयत्तेण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो। जयध०

३ कुदो; घादेण विणा सम्मत्ताहिमुहचरिमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्सविसोहीए उदीरिजमाणजहण्णाणुभागविसयत्तेण पयदजहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

४ कुदो; कोधवेदगचरिमसमयजहण्णाणुभागबंधविसयत्तेण तिण्हमेदेसिं जहण्णसामित्तोवलंभादो। जयध०

उदीरणा च अणंतगुणाणि[1] । ५९४. एवं माण-मायासंजलणाणं ।

५९५. लोहसंजलणस्स जहण्णगो अणुभाग-उदयो संतकम्मं च थोवाणि[2] । ५९६. जहण्णिया अणुभाग-उदीरणा अणंतगुणा[3] । ५९७. जहण्णगो अणुभागसंकमो अणंतगुणो[4] । ५९८. जहण्णगो अणुभागबंधो अणंतगुणो[5] ।

संज्वलनक्रोधके जघन्य अनुभागबन्ध आदिसे उसीके जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणित हैं ॥५९२-५९३॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि संज्वलनक्रोध-वेदककी प्रथम स्थितिके एक समयाधिक आवलीप्रमाण शेष रह जानेपर जघन्य बन्धके समकालमें ही पुरातन सत्कर्मके उदय और उदीरणारूपसे परिणत हो जानेपर उनका परिमाण जघन्य अनुभागबन्ध आदिके परिमाणसे अनन्तगुणा हो जाता है ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकार संज्वलन मान और मायाके अनुभागसम्बन्धी सर्व पदोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥५९४॥

चूर्णिसू०–संज्वलनलोभका जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म वक्ष्यमाण सर्व पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (क्योंकि, ये दोनों सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके अन्तिम समयमें पाये जाते हैं ।) संज्वलनलोभके जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-सत्कर्मसे उसीकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणी है । (क्योंकि, यहाँ सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयसे समयाधिक आवलीकाल पहले होनेवाले उदयस्वरूपसे उदीर्यमाण अनुभागका ग्रहण किया गया है ।) लोभसंज्वलनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे उसीका जघन्य अनुभागसंक्रम अनन्तगुणा है ॥५९५-५९७॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि लोभसंज्वलनके उदयसे बहुत नीचे हटकर पतित अनुभागको ग्रहण करनेकी अपेक्षा तो उदीरणा अनन्तगुणित हो जाती है, और उससे भी अनन्तगुणित अपकृष्यमाण अनुभागको ग्रहणकर होनेवाले संक्रमणकी अपेक्षा संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसंक्रम अनन्तगुणित हो जाता है ।

चूर्णिसू०–संज्वलन-लोभके जघन्य अनुभाग-संक्रमसे उसीका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । (क्योंकि, यहाँपर अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें बादरकृष्टिस्वरूपसे बंधनेवाले अनुभागका ग्रहण किया गया है ॥५९८॥

---

१ तं जहा–कोधवेदगपढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए जहण्णबंधेण समकालमेव उदयोदीरणाणं पि जहण्णसामित्तं जाद । किंतु एसो चिराणसंतकम्मसरूवो होदूणाणंतगुणो जादो । जयध०

२ कुदो; सुहुमसांपराइयखवगचरिमसमयम्मि लद्धजहण्णभावत्तादो । जयध०

३ किं कारणं; तत्तो समयाहियावलियमेत्तं हेट्ठा ओसरिदूण तक्कालभाविउदयसरूवेणुदीरिज्जमाणाणुभागस्स गहणादो । जयध०

४ तं कथं; उदीरणा णाम उदयसरूवेण सुट्ठु ओहट्टिदूण पदिदाणुभागं घेत्तूण जहण्णा जादा । संकमो पुण तत्तो अणंतगुणोकड्डिज्जमाणाणुभागं घेत्तूण जहण्णा जादो । तेण कारणेणाणंतगुणत्तमेदस्स ण विरुज्झदे । जयध०

५ कुदो; बादरकिट्टिसरूवेणाणियट्टिकरणचरिमसमये बज्झमाणजहण्णाणुभागबंधस्स गहणादो । जयध०

५९९. इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णगो अणुभाग-उदयो संतकम्मं च थोवाणि[1]। ६००. जहण्णिया अणुभाग-उदीरणा अणंतगुणा[2]। ६०१. जहण्णगो अणुभागबंधो अणंतगुणो[3]। ६०२. जहण्णगो अणुभागसंकमो अणंतगुणो[4]।

६०३. पुरिसवेदस्स जहण्णगो अणुभागबंधो संकमो संतकम्मं च थोवाणि[5]। ६०४. जहण्णगो अणुभाग-उदयो अणंतगुणो[6]। ६०५. जहण्णिया अणुभाग-उदीरणा अणंतगुणा[7]।

६०६. हस्स-रदि-भय-दुगुछाणं जहण्णाणुभागबंधो थोवो[8]। ६०७. जहण्णगो अणुभाग-उदयो उदीरणा च अणंतगुणो[9]। ६०८. जहण्णगो अणुभागसंकमो संतकम्मं

चूर्णिसू०—स्त्री और नपुंसक वेदका जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। स्त्री और नपुंसक वेदके जघन्य अनुभाग-उदयसे उन्हींकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणी है। स्त्री और नपुंसक वेदकी जघन्य अनुभाग-उदीरणासे उन्हींका जघन्य अनुभाग-बन्ध अनन्तगुणा है। स्त्री और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धसे उन्हींका जघन्य अनुभागसंक्रम अनन्तगुणा है ॥५९९-६०२॥

चूर्णिसू०—पुरुषवेदका जघन्य अनुभागबन्ध, जघन्य अनुभाग संक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग बन्ध आदिसे उसीका जघन्य अनुभाग-उदय अनन्तगुणा है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग-उदयसे उसीकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनन्तगुणी है ॥६०३-६०५॥

चूर्णिसू०—हास्य, रति, भय और जुगुप्साका जघन्य अनुभागबन्ध वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धसे उन्हींका जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभागउदीरणा अनन्तगुणी है। उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-उदयसे

१ कुदो; देसघादिएगट्ठाणियसरूवत्तादो। जयध०

२ एसा वि देसघादिएगट्ठाणियसरूवा चेय, किंतु हेट्ठा समयाहियावलियमेत्तो ओसरियूण जहण्णा जादा। तदो उवरिमावलियमेत्तकालमपत्तघादत्तादो एसा अणंतगुणा त्ति सिद्धं। जयध०

३ किं कारणं; विट्ठाणियसरूवत्तादो। जयध०

४ जहण्णसंकमो णाम अंतरकरणे कदे सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो हेट्ठा अणंतगुणहीणो होदूण पुणो वि संखेज्जसहस्साणुभागखंडएसु घादिदेसु चरिमफालिसरूवेण जहण्णो जादो। एवंविहघादं पत्तो वि चिराणसंतकम्मं होदूण पुव्वुत्तबंधादो संकमाणुभागो अणंतगुणो जादो। जयध०

५ कुदो; चरिमसमयसवेदजहण्णाणुभागबंधं देसघादिएयट्ठाणियसरूवं घेत्तूण तिण्हमेदेसिं जहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

६ कुदो; देसघादिएयट्ठाणियत्ताविसेसे वि संपहि-बंधादो उदयो अणंतगुणो त्ति णायमस्सियूण पुव्विल्लाणुभागादो एदस्स तहाभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो। जयध०

७ एसा वि देसघादिएयट्ठाणियसरूवा चेय; किंतु समयाहियावलियमेत्तं हेट्ठा ओसरियूण जहण्णा जादा; तेण पुव्विल्लादो एदिस्से अणंतगुणत्तं ण विरुज्झदे। जयध०

८ कुदो; अपुव्वकरणचरिमसमयणवकबंधस्स देसघादिविट्ठाणियसरूवस्स गहणादो। जयध०

९ कुदो; एदेसिं पि तत्थेव जहण्णसामित्ते संते वि संपहिबंधादो संपहि-उदयस्साणंतगुणत्तमस्सियूण तहाभावसिद्धीदो। जयध०

च अणंतगुणाणि[1] ।

६०९. अरदि-सोगाणं जहण्णगो अणुभाग-उदयो उदीरणा च थोवाणि[2] । ६१०. जहण्णगो अणुभागबंधो अणंतगुणो[3] । ६११. जहण्णाणुभागसंकमो संतकम्मं च अणंतगुणाणि[4] ।

अणुभागविसयमप्पाबहुअं समत्तं ।

६१२. पदेसेहिं उकस्सगुकस्सेण । ६१३. मिच्छत्त-बारसकसाय-छण्णोकसायाण-मुकस्सिया पदेसुदीरणा थोवा[5] । ६१४. उकस्सगो बंधो असंखेज्जगुणो[6] । ६१५. उकस्सपदेसुदयो असंखेज्जगुणो[7] । ६१६. उकस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[8] । ६१७.

उन्हींका जघन्य अनुभाग-संक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणित हैं ॥६०६-६०८॥

चूर्णिसू०—अरति और शोकका जघन्य अनुभाग-उदय और जघन्य अनुभाग-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-उदयसे उन्हींका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । अरति-शोकके जघन्य अनुभागबन्धसे उन्हींका जघन्य अनुभाग-संक्रम और जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणित हैं ॥६०९-६११॥

इस प्रकार अनुभाग-विषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—अब प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहेंगे । उनमें पहले प्रदेशबन्धादि पाँचों पदोंके उत्कृष्टका उत्कृष्टके साथ कहते हैं—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय और हास्यादि छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । मिथ्यात्वादि उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध असंख्यातगुणा हैं । मिथ्यात्वादि सूत्रोक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धसे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है । मिथ्यात्वादिके उत्कृष्ट प्रदेश-उदयसे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रम

१ किं कारणं; खवगसेढिम्मि चरिमाणुभागखंडयचरिमफालीए सव्वघादि-विट्ठाणियसरूवाए पयद-जहण्णसामित्तोवलंभादो । जयध०

२ किं कारणं; अपुव्वकरणचरिमसमयम्मि देसघादि-विट्ठाणियसरूवेण तदुभयसामित्तावलंबणादो । जयध०

३ किं कारणं; पमत्तसंजदतप्पाओग्गविसोहीए बद्धदेसघादिविट्ठाणियसरूवणवकबंधावलंबणेण पयदजहण्णसामित्तविहासणादो । जयध०

४ कुदो; सव्वघादिविट्ठाणियचरिमफालिविसयत्तेण पडिलद्ध-जहण्णभावत्तादो । जयध०

५ कुदो; अप्पप्पणो सामित्तविसये उकस्सविसोहीए उदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो । जयध०

६ कुदो; सण्णिपंचिंदियपज्जत्तेणुकस्सजोगिणा बज्झमाणुकस्सस्स समयपबद्धस्स अणूणाहियस्स गहणादो । जयध०

७ कुदो; असंखेज्जसमयपबद्धपमाणत्तादो । जयध०

८ किं कारणं; किंचूणसग-सगुकस्सदव्वपमाणत्तादो । जयध०

उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[1] ।

६१८. सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंकमो थोवो[2] । ६१९. उक्कस्सपदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[3] । ६२०. उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4] । ६२१. उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[5] ।

६२२. सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसुदीरणा थोवा[6] । ६२३. उक्कस्सपदेसुदयो असंखेज्जगुणो[7] । ६२४. उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[8] । ६२५. उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[9] ।

असंख्यातगुणा है । मिथ्यात्वादिके उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रमसे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥६१२-६१७॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमसे उसीकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है । सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेश-उदयसे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्म विशेष अधिक है ॥६१८-६२१॥

चूर्णिसू०–सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है । सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेश-उदयसे उसीका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम असंख्यातगुणा है । सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमसे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश-सत्कर्म विशेष अधिक है ॥६२२-६२५॥

१ कुदो; गुणिदकम्मंसियलक्खणेणुक्कस्ससंचयं कादूणावट्ठिद-चरिमसमयणेरइयम्मि पयदुक्कस्ससामित्तविहाणादो । जयध०

२ किं कारणं; अधापवत्तसंकमेण पडिलद्धुक्कस्सभावत्तादो । जयध०

३ कुदो; दंसणमोहक्खवयस्स समयाहियावलियमेत्तट्ठिदिसंतकम्मे सेसे उदीरिज्जमाणदव्वस्स किंचूणमिच्छत्तुक्कस्सदव्वमोकड्डुणभागहारेण खंडेयूण तत्थेयखंडपमाणस्स गहणादो । जयध०

४ किं कारणं; उदीरणा णाम गुणसेढिसीसयस्स असंखेज्जदिभागो । उदयो पुण गुणसेढिसीसयं सव्वं चेव भवदि; तेणासंखेज्जगुणत्तमेदस्स ण विरुज्झदे । जयध०

५ केत्तियमेत्तो विसेसो ? हेट्ठा दुचरिमादि-गुणसेढिगोवुच्छासु णट्ठदव्वमेत्तो । जयध०

६ कुदो; सम्मत्ताहिमुहचरिमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिणा तप्पाओग्गुक्कस्सविसोहीए उदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो । जयध०

७ किं कारणं; असंखेज्जसमयपबद्धपमाणगुणसेढिगोवुच्छसरूवत्तादो । जयध०

८ कुदो, थोवूणदिवड्डगुणहाणिमेत्तुक्कस्ससमयपबद्धपमाणत्तादो । जयध०

९ केत्तियमेत्तो विसेसो ? मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तम्मि पक्खिविय पुणो सम्मामिच्छत्तं खवेमाणो जाव चरिमफालिं ण पावेदि, ताव एदम्मि अंतरे गुणसेढीए गुणसंकमेण च विणट्ठदव्वमेत्तो । जयध०

६२६. तिसंजलण-तिवेदाणमुक्कस्सपदेसबंधो थोवो[1]। ६२७. उक्कस्सिया पदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[2]। ६२८. उक्कस्सपदेसुदयो असंखेज्जगुणो[3]। ६२९. उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[4]। ६३०. उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[5]।

६३१. लोभसंजलणस्स उक्कस्सपदेसबंधो थोवो। ६३२. उक्कस्सपदेससंकमो असंखेज्जगुणो[6]। ६३३. उक्कस्सपदेसुदीरणा असंखेज्जगुणा[7]। ६३४. उक्कस्सपदेसुदयो असंखेज्जगुणो[8]। ६३५. उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[9]।

चूर्णिसू०—क्रोधादि तीन संज्वलन कषाय और तीनों वेदोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। संज्वलन क्रोधादि उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धसे उन्हींकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी है। संज्वलन क्रोधादि सूत्रोक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है। संज्वलन क्रोधादिके उत्कृष्ट प्रदेश-उदयसे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रम असंख्यातगुणा है। संज्वलन क्रोधादिके उत्कृष्ट प्रदेश-संक्रमसे उन्हींका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ॥६२६-६३०॥

चूर्णिसू०—लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। लोभसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धसे उसीका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम असंख्यातगुणा है। लोभसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमसे उसीकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा असंख्यातगुणी है। लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणासे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है। लोभसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेश-उदयसे उसीका उत्कृष्ट प्रदेश सत्कर्म विशेष अधिक है ॥६३१-६३५॥

१ किं कारणं; सण्णिपंचिंदियपज्जत्तेणुक्कस्सजोगेण बद्धसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

२ कुदो; खवगसेढीए अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए उदीरिज्जमाणाणमसंखेज्जसमयपबद्धाणमिहग्गहणादो। जयध०

३ को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो। जयध०

४ को गुणगारो ? असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। किं कारणं; अप्पप्पणो सव्वुक्कस्स-सव्वसंकमदव्वस्स गहणादो। जयध०

५ केत्तियमेत्तो विसेसो ? अप्पप्पणो दव्वमुक्कस्सं कादूण पुणो जाव सव्वसंकमेण ण परिणमइ, ताव एदम्मि अंतराले णट्ठासंखेज्जभागमेत्तो। जयध०

६ कुदो; अंतरकरणकारयचरिमसमयम्मि अधापवत्तसंकमेण संकमंताणमसंखेज्जाणं समयपबद्धाणमेत्थ सामित्तविसईकयाणमुवलंभादो। एत्थ गुणगारो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। जयध०

७ किं कारणं; उक्कस्ससंकमो णाम अणियट्टिकरणम्मि अंतरं करेमाणो से काले लोभस्स असंकामगो होहिदि त्ति एत्थुद्देसे अधापवत्तसंकमेण जादो। उदीरणा पुण सव्वं मोहणीयदव्वं पडिच्छिय सुहुमसांपराइयखवगस्स पढमट्ठिदीए समयाहियावलियमेत्तसेसाए उदीरिज्जमाणाए संखेज्जसमयपबद्धे घेत्तूणुक्कस्सा जादा, तेणासंखेज्जगुणा भणिदा। अधापवत्तभागहारं पेक्खियूणुदीरणाहेदुभूदोकड्डुणाभागहारस्सासंखेज्जगुणहीणत्तादो। जयध०

८ कुदो; सुहुमसांपराइयखवगचरिमगुणसेढिसीसयसव्वदव्वस्स गहणादो। एत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो। जयध०

९ केत्तियमेत्तो विसेसो ? मायादव्वं पडिच्छियूण जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो ण होइ, ताव एदम्मि अंतराले णट्ठदव्वमेत्तो।। जयध०

६३६. जहण्णयं। ६३७. मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[1]। ६३८. उदयो असंखेज्जगुणो[2]। ६३९. संकमो असंखेज्जगुणो[3]। ६४०. बंधो असंखेज्जगुणो[4]। ६४१. संतकम्ममसंखेज्जगुणं[5]।

६४२. सम्मत्तस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[6]। ६४३. उदयो असंखेज्जगुणो[7]। ६४४. संकमो असंखेज्जगुणो[8]। ६४५. संतकम्ममसंखेज्जगुणं। ६४६. एवं सम्मामिच्छत्तस्स।

चूर्णिसू०–अब प्रदेशोंकी अपेक्षा जघन्य अल्पबहुत्व कहते हैं–मिथ्यात्व और अप्रत्यख्यानावरणादि आठ कषायोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। मिथ्यात्वादि उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणासे उन्हींका जघन्य प्रदेश-उदय असंख्यातगुणा है। मिथ्यात्वादि सूत्रोक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोदयसे उन्हींका जघन्य प्रदेश-संक्रम असंख्यातगुणा है। मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश-संक्रमसे उन्हीका जघन्य बन्ध असंख्यातगुणा है। मिथ्यात्वादिके जघन्य बन्धसे उन्हींका जघन्य प्रदेश-सत्कर्म असंख्यातगुणा है ॥६३६-६४१॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रदेश-उदीरणासे उसीका संक्रम असंख्यातगुणा होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके संक्रमसे उसीका सत्कर्म असंख्यातगुणा होता है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका प्रदेशसम्बन्धी जघन्य अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥६४२-६४६॥

१ कुदो; मिच्छाइट्ठिणा सव्वुक्कस्ससंकिलेसेणुदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स सव्वत्थोवत्तं पडि विरोहाभावादो। जयध०

२ तं जहा–मिच्छत्तस्स ताव उवसमसम्माइट्ठी सासणगुणं पडिवज्जिय छावलियाओ अच्छियूण मिच्छत्तं गदो। तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स असंखेज्जलोगपडिभागेणोकड्डिय णिसित्तदव्वं घेत्तूण जहण्णोदयो जादो, जेण सत्थाणमिच्छाइट्ठिसव्वुक्कस्ससंकिलेसादो एत्थतणसंकिलेसो अणंतगुणहीणो, तेणेदं दव्वं पुव्विल्लदव्वादो असंखेज्जगुणं जादं। अट्ठकसायाणं पुण उवसंतकसायो कालं कादूण देवेसुववण्णो, तस्स असंखेज्जलोगपडिभागेणुदयावलियब्भतरे णिसित्तदव्वस्स चरिमणिसेयं घेत्तूण जहण्णसामित्तं जादं। एसो च असंजदसम्माइट्ठिविसोहिणिबंधणो उदीरणोदयो सत्थाणमिच्छाइट्ठिस्स सव्वुक्कस्ससंकिलेसेणुदीरिददव्वादो असंखेज्जगुणो त्ति णत्थि संदेहो। जयध०

३ पुव्वुत्तुदयो णाम असंखेज्जलोगमेत्तभागहारत्तेण जादो। इमो पुण अंगुलस्सासंखेज्जदिभागमेत्तभागहारेण जादो। तदो सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं। जयध०

४ किं कारणं; सुहुमणिगोदजहण्णोववादजोगेण बद्धेगसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

५ कुदो; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण खवणाए एगट्ठिदि-दुसमयकालसेसे असंखेज्जपंचिंदियसमयपबद्धसंजुत्तगुणसेढिगोवुच्छावलंबणेण जहण्णसामित्तगहणादो। तदो सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं। जयध०

६ कुदो; मिच्छत्ताहिमुह-असंजदसम्माइट्ठिणा उक्कस्ससंकिलेसेणुदीरिज्जमाणासंखेज्जलोग-पडिभागियदव्वस्स गहणादो। जयध०

७ किं कारणं; उवसमसम्मत्तपच्छायद-वेदयसम्माइट्ठिस्स पढमावलियचरिमसमये उदीरणोदयदव्वं घेत्तूण जहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

८ किं कारणं; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूणुव्वेल्लेमाणस्स दुचरिमखंडयचरिमफालीए उव्वेल्लणभागहारेण जहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

६४७. अणंताणुबंधीणं जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[1]। ६४८. संकमो असंखेज्जगुणो[2]। ६४९. उदयो असंखेज्जगुणो। ६५०. बंधो असंखेज्जगुणो। ६५१. संतकम्ममसंखेज्जगुणं[3]।

६५२. कोहसंजलणस्स जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[4]। ६५३. उदयो असंखेज्जगुणो[5]। ६५४. बंधो असंखेज्जगुणो[6]। ६५५. संकमो असंखेज्जगुणो। ६५६. संतकम्ममसंखेज्जगुणं[7]।

६५७. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं वंजणदो च अत्थदो च कायव्वं[8]।

चूर्णिसू०—अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा सबसे कम होती है। अनन्तानुबन्धीकी उदीरणासे उसीका संक्रम असंख्यातगुणा होता है। अनन्तानुबन्धीके संक्रमसे उसीका उदय असंख्यातगुणा होता है। अनन्तानुबन्धीके उदयसे उसीका बन्ध असंख्यातगुणा होता है और अनन्तानुबन्धीके बन्धसे इन्हीं चारों कषायोंका सत्कर्म असंख्यातगुणा होता है ॥६४७-६५१॥

चूर्णिसू०—क्रोधसंज्वलनकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा सबसे कम होती है। क्रोधसंज्वलनकी प्रदेश-उदीरणासे उसीका उदय असंख्यातगुणा होता है। क्रोधसंज्वलनके उदयसे उसीका बन्ध असंख्यातगुणा होता है। क्रोधसंज्वलनके बन्धसे उसीका संक्रम असंख्यातगुणा होता है और क्रोधसंज्वलनके संक्रमसे क्रोधसंज्वलनका सत्कर्म असंख्यातगुणा होता है ॥६५१-६५६॥

चूर्णिसू०—इसीप्रकार मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेदका प्रदेशसम्बन्धी जघन्य अल्पबहुत्व व्यंजन अर्थात् शब्दोंकी अपेक्षा और अर्थ अर्थात् भाव या तत्त्वकी अपेक्षा

१ कुदो; सव्वसंकिलिट्ठमिच्छाइट्ठिणा असंखेज्जलोगपडिभागेणुदीरिज्जमाणदव्वस्स गहणादो। जयध०

२ कुदो; खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण तसकाइएसुप्पज्जिय सव्वलहुमणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगेणंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तपडिवत्तिपुरस्सरं वे-छावट्ठिसागरोवमकालम्मि असंखेज्जगुणहाणीओ गालिय पुणो गलिदसेससंतकम्मं विसंजोएमाण-अधापवत्तकरणचरिमसमयम्मि अंगुलस्सासंखेज्जदिभागमेत्त-विज्झादभागहारेण संकामिददव्वस्स पुव्विल्लासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वादो असंखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावादो। जयध०

३ किं कारणं; असंखेज्जपंचिंदियसमयपबद्धसंजुत्तगुणसेढिगोवुच्छसरूवत्तादो। जयध०

४ कुदो; मिच्छाइट्ठिणा सव्वुक्कस्ससंकिलेसेणुदीरिज्जमाणासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वस्स गहणादो। जयध०

५ किं कारणं; उवसमसेढीए अंतरकरणं समाणिय कालं कादूण देवेसुप्पण्णस्स असंखेज्जलोगपडिभागेणुदयावलियब्भंतरे णिसित्तदव्वस्स चरिमणिसेयमस्सियूण पयदजहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

६ किं कारणं; सुहुमेइंदियउववादजोगेण बद्धसमयपबद्धस्स गहणादो। जयध०

७ किं कारणं; अणियट्टिखवगम्मि कोधवेदगचरिमसमयघोलमाणजहण्णजोगेण बद्धणवकबंधस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण चरिमफालिविसए जहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

८ तं पुण कथं कायव्वमिदि भणिदे 'वंजणदो च अत्थदो च कादव्वं' इति वुत्तं। शब्दतश्चार्थतश्च कर्तव्यमित्यर्थः; न शब्दगतोऽर्थगतो वा कश्चिद्विशेषोऽस्तीत्यभिप्रायः। जयध०

६५८ लोहसंजलणस्स वि एसो चेव आलावो। णवरि अत्थेण णाणत्तं[1], वंजणदो ण किंचि णाणत्तमत्थि।

६५९. इत्थि-णवुंसयवेद अरइ सोगाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[2]। ६६०. संकमो असंखेज्जगुणो[3]। ६६१. बंधो असंखेज्जगुणो[4]। ६६२. उदयो असंखेज्जगुणो। ६६३ संतकम्ममसंखेज्जगुणं।

व्याख्यान करना चाहिए। अर्थात् क्रोधसंज्वलनकी अपेक्षा मानसंज्वलनादि प्रकृतियोंके अल्पबहुत्वमें शब्दगत या अर्थगत कोई भी भेद नहीं है। लोभसंज्वलनका भी यही आलाप है, अर्थात् प्रदेशसम्बन्धी अल्पबहुत्वका क्रम है, परन्तु उसमें अर्थकी अपेक्षा विभिन्नता है, व्यंजन (शब्द) की अपेक्षा कोई विभिन्नता नहीं है ॥६५७-६५८॥

विशेषार्थ—संज्वलन लोभकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा अल्प है, उससे उदय, संक्रम और सत्कर्म उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हैं, इस प्रकारसे यद्यपि अल्पबहुत्वमें शब्दगत कोई विभिन्नता नहीं है, तथापि अर्थगत विभिन्नता है। और वह इस प्रकार है कि संक्रमगत द्रव्यसे यहाँपर क्षपितकर्मांशिक लक्षणसे आकरके क्षपणाके लिए उद्यत हुए और अपूर्वकरणकी आवलीके चरम समयमें वर्तमान जीवके अधःप्रवृत्तसंक्रमगत जघन्य द्रव्यका ग्रहण करना चाहिए। यहाँपर गुणकारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग या पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल है। लोभसंज्वलनके जघन्य संक्रमसे उसका सत्कर्म असंख्यातगुणित है। यहाँपर उसी उपर्युक्त जीवके अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें द्वयर्धगुणहानिप्रमित एकेन्द्रियके योग्य समयप्रबद्धोंका ग्रहण करना चाहिए। यहाँपर गुणकारका प्रमाण अधःप्रवृत्तभागहार है। इस अर्थगत विशेषताका चूर्णिकारने उक्त सूत्रमें संकेत किया है।

चूर्णिसू०—स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक, इन प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है। इनकी प्रदेश-उदीरणासे उनका संक्रम असंख्यातगुणा होता है। उनके संक्रमसे उनका बन्ध असंख्यातगुणा होता है। उनके बन्धसे उनका उदय असंख्यातगुणा होता है और उनके उदयसे उनका सत्कर्म असंख्यातगुणा होता है ॥६५९-६६३॥

१ को पुण सो अत्थगओ विसेसो चे? जहण्णसंकम संतकम्मेसु दव्वगओ विसेसो त्ति भणामो। तं जहा—लोहसंजलण जहण्णपदसुदीरणा थोवा, उदयो असंखेज्जगुणो। एत्थ पुव्वं व गुणगारो वत्तव्वो विसेसाभावादो। संकमो असंखेज्जगुणो। कुदो; खविदकम्मसियलक्खणेणागंतूण खवणाए अब्भुट्ठिदस्स अपुव्वकरणावलिय चरिमसमए वट्टमाणस्स अधापवत्तसंकम-जहण्णदव्वग्गहणादो। को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। संतकम्ममसंखेज्जगुणं। कुदो, खविदकम्मसियलक्खणेणागतूण खवगसेढिं चढणुम्मुहस्स अधापवत्तकरणचरिमसमए दिवड्ढगुणहाणिमेत्ते इंदियसमयपबद्धे घेत्तूण जहण्णसामित्तविहाणादो। एत्थ गुणगारो अधापवत्तभागहारो। एवमेसो अत्थविसेसो एत्थ जाणेयव्वो। जयध०

२ किं पमाणमेदं दव्वं? असंखेज्जलोगपडिभागिय-मिच्छाइट्ठि-उदीरिददव्वमेत्तं। तदो सव्वत्थोवत्तमेदस्स ण विरुज्झदे। जयध०

३ किं कारणं; अप्पप्पणो पाओग्गखविदकम्मसियलक्खणेणागंतूण खवणाए अब्भुट्ठिदस्स अधापवत्तकरणचरिमसमये विज्झादसंकमेण जहण्णसामित्तपडिलंभादो। जयध०

४ किं कारणं; सुहुमणिगोदजहण्णोववादजोगेण बद्धसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

६६४. हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं जहण्णिया पदेसुदीरणा थोवा[1]। ६६५. उदयो असंखेज्जगुणो[2]। ६६६. बंधो असंखेज्जगुणो[3]। ६६७. संकमो असंखेज्जगुणो[4]। ६६८. संतकम्ममसंखेज्जगुणं[5]।

एवमप्पाबहुए समत्ते 'जो जं संकामेदि य' एदिस्से चउत्थीए सुत्तगाहाए अत्थो समत्तो होइ।

तदो वेदगे त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

चूर्णिसू०–हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेश-उदीरणा सबसे कम है। इनकी उदीरणासे उनका उदय असंख्यातगुणा होता है। उनके उदयसे उनका बन्ध असंख्यातगुणा होता है। उनके बन्धसे उनका संक्रम असंख्यातगुणा होता है और उनके संक्रमसे उनका सत्कर्म असंख्यातगुणा होता है ॥६६४-६६८॥

इस प्रकार प्रदेशबन्ध-सम्बन्धी अल्पबहुत्वके समाप्त होनेके साथ ही 'जो जं संकामेदि य' इस चौथी सूत्रगाथाका अर्थ भी समाप्त होता है।

इस प्रकार वेदक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ कुदो; सव्वुक्कस्ससंकिलिट्ठमिच्छाइट्ठि-जहण्णोदीरणदव्वग्गहणादो। जयध०

२ किं कारण; उवसामयपच्छायददेवस्स उदीरणोदयदव्वं घेत्तूणावलियचरिमसमये जहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

३ कुदो; सुहुमणिगोदुववादजोगेण बद्धजहण्णसमयपबद्धपमाणत्तादो। जयध०

४ किं कारण; अपुव्वकरणावलियपविट्ठचरिमसमये अधापवत्तसंकमेण जहण्णभावावलंबणादो। एत्थ गुणगारो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि; जोगगुणगारगुणिददिवड्ढगुणहाणीए अधापवत्तभागहारेणोवट्टिदाए पयदगुणगारुप्पत्तिदंसणादो। जयध०

५ को गुणगारो? अधापवत्तभागहारो। किं कारणं; खविदकम्मंसियलक्खणेणागदखवगचरिमफालीए किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तएइंदियसमयपबद्धपडिबद्धाए पयदजहण्णसामित्तावलंबणादो। जयध०

७ उवजोग-अत्थाहियारो

१. उवजोगे त्ति अणियोगद्दारस्स सुत्तं* । २. तं जहा ।

(१०) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि को व केणहियो ।
को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥६३॥

---

७ उपयोग-अर्थाधिकार

युगपद् उपयोगद्वयी जिनवरके नमि पाय ।
इस उपयोग-द्वारको भाषूं अति उमगाय ॥

चूर्णिसू०—अब कसायपाहुडके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे जो उपयोग नामका सातवाँ अनुयोगद्वार है, उसके आधार-स्वरूप गाथा-सूत्रोंको कहते हैं। वे गाथासूत्र इस प्रकार हैं ॥ १–२ ॥

किस कषायमें एक जीवका उपयोग कितने काल तक होता है ? कौन उपयोग-काल किससे अधिक है और कौन जीव किस कषायमें निरन्तर एक सदृश उपयोगसे उपयुक्त रहता है ? ॥६३॥

विशेषार्थ—यह गाथा तीन अर्थोका निरूपण करती है। (१) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि' अर्थात् किस कषायमें एक जीवका उपयोग कितने काल तक होता है ? क्या सागरोपम, पल्योपम, पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग, आवली, आवलीका असंख्यातवाँ भाग, संख्यात समय, अथवा एक समय-प्रमाण काल तक वह उपयोग रहता है ? इस प्रकार-की यह प्रथम पृच्छा है। चूर्णिसूत्रकार आगे चलकर स्वयं इसका उत्तर देंगे कि सभी कषायोंका उपयोगकाल निर्व्याघात अवस्थामें जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-मात्र है। किन्तु व्याघातकी अपेक्षा एक समय-प्रमाण भी काल है। इस गाथा-द्वारा यह प्रथम अर्थ सूचित किया गया है। (२) 'को व केणहिओ' अर्थात् क्रोधादि कषायोंका उपयोगकाल क्या परस्पर सदृश है; अथवा असदृश ? यह दूसरी पृच्छा है। इसके द्वारा कषायोंके काल-सम्बन्धी अल्प-बहुत्वकी सूचना की गई है। इसका निर्णय चूर्णिसूत्रकार आगे स्वयं करेंगे। (३) 'को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो' अर्थात् नरकगति आदि मार्गणाविशेषसे प्रतिबद्ध कौन जीव किस कषायमें निरन्तर एक सदृश उपयोगसे उपयुक्त रहता है ? यह तीसरी पृच्छा है। इसका अभिप्राय यह है कि नारकी आदि जीव अपनी भवस्थितिके भीतर क्या क्रोधोपयोग-से बहुत वार उपयुक्त होते हैं, अथवा मानोपयोगसे, मायोपयोगसे, अथवा लोभोपयोगसे ?

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'उवजोगे त्ति' इतना मात्र ही सूत्र मुद्रित है और आगेके अंशको टीकाका अंग बना दिया है (देखो पृ० १६१०)। पर टीकासे ही 'अणिओगद्दारस्स सुत्तं' इस अंशके सूत्रता सिद्ध है।

(११) एक्कम्हि भवग्गहणे एक्ककसायम्हि कदि च उवजोगा।
एक्कम्हि या उवजोगे एक्ककसाए कदि भवा च ॥६४॥
(१२) उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया होंति ?
कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति ॥६५॥

इस प्रश्नका निर्णय भी आगे चूर्णिकार स्वयं करेंगे। इस प्रकार यह गाथा उक्त तीन अर्थोंका निरूपण करती है।

एक भवके ग्रहण-कालमें और एक कषायमें कितने उपयोग होते हैं, तथा एक उपयोगमें और एक कषायमें कितने भव होते हैं ? ॥६४॥

विशेषार्थ—एक भवके ग्रहण-कालमें ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि नरक आदि चार गति-सम्बन्धी भवोंमेंसे किसी एक विवक्षित भवके ग्रहण करनेपर तत्सम्बन्धी स्थिति-कालके भीतर क्रोधादिक कषायोंमेंसे किसी एक कपाय-सम्बन्धी कालमें कितने उपयोग होते हैं ? क्या वे संख्यात होते हैं, अथवा असंख्यात ? जिस नरकादि विवक्षित भव-ग्रहणमें किसी एक विवक्षित कषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं, वहाँपर शेष कषायोंके उपयोग कितने होते हैं ? क्या तत्प्रमाण ही होते हैं, अथवा उससे हीनाधिक ? इस प्रकारका अर्थ इस गाथाके पूर्वार्धमें निबद्ध है। 'एक उपयोगमें और एक कषायमें कितने भव होते हैं,' इस पृच्छाका अभिप्राय यह है कि यहाँपर क्रोधादि कपाय-सम्बन्धी संख्यात, अथवा असंख्यात उपयोगोंको आधार-स्वरूप मानकर पुनः उनमें अतीतकालिक भव कितने होते हैं ? इस प्रकारसे भवोंको आधेयरूप मानकर उनके अल्पबहुत्व-सम्बन्धी अनुयोगद्वारकी सूचना की गई है। इसका निर्णय आगे चूर्णिसूत्रोंके द्वारा किया जायगा।

किस कषायमें उपयोग-सम्बन्धी वर्गणाएं कितनी होती हैं ? तथा किस गति-में कितनी वर्गणाएं होती हैं ? ॥६५॥

विशेषार्थ—वर्गणा, विकल्प अथवा भेदको कहते हैं। वे वर्गणाएँ दो प्रकारकी होती हैं—कालोपयोग—वर्गणा और भावोपयोग-वर्गणा। इनमेंसे कालकी अपेक्षा कषायोंके जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक निरन्तर अवस्थित विकल्पोंको कालो-पयोगवर्गणा कहते हैं। भावकी अपेक्षा तीव्र, मन्द आदि भावोंसे परिणत कषायोंके उदयस्थान-सम्बन्धी जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेद तक षड्वृद्धि-क्रमसे अवस्थित विकल्पोंको भावोप-योगवर्गणा कहते हैं। इन दोनों प्रकारकी वर्गणाओंके निरूपण करनेके लिए प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार इस गाथा-द्वारा सूचित किये गये हैं। उनमेंसे किस कषायमें कितनी उपयोगवर्गणाएँ होती है, इस पृच्छाके द्वारा दोनों प्रकारकी वर्गणाओंके प्रमाण-अनुयोगद्वार-सम्बन्धी ओघ-प्ररूपणाकी सूचना की गई है। और, किस गतिमें

(१३) एकम्हि य अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण ।
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥६६॥
(१४) केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु ।
केवडिया च कसाए के के च विसिस्सदे केण ॥६७॥

कितनी वर्गणाएँ होती हैं, इस पृच्छाके द्वारा उक्त दोनों ही वर्गणाओंके प्रमाणकी आदेश-प्ररूपणा सूचित की गई है ।

एक अनुभागमें और एक कषायमें एक कालकी अपेक्षा कौन सी गति सदृश-रूपसे उपयुक्त होती है और कौन-सी गति विसदृशरूपसे उपयुक्त होती है ? ॥६६॥

विशेषार्थ–अनुभाग-संज्ञावाले एक ही कषायमें एक ही समयकी अपेक्षा कौन गति होती है, अर्थात् किस गतिमें सभी जीव क्रोधादि कषायोंमेंसे किसी एक कषायमें एक समयकी अपेक्षा उपयुक्त पाये जाते हैं ? इसी प्रकार दो, तीन अथवा चार कषायोंमें भी एक ही समयकी अपेक्षा कौन गति उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त पाई जाती है । यह 'अप्रवाह्यमान'–परम्पराके अनुसार अर्थ है । 'प्रवाह्यमान'–परम्पराके उपदेशानुसार कषाय और अनुभाग इन दोनोंमें भेद है । तदनुसार एक 'अनुभागमें' ऐसा कहने पर 'एक कषाय-उदयस्थानमें' यह अर्थ लेना चाहिए । तथा, 'एक कालसे' ऐसा कहने पर एक समय-सम्बन्धी एक उपयोग-वर्गणाका ग्रहण करना चाहिए । अतएव यह अर्थ हुआ कि क्रोधादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके असंख्यात लोकमात्र कषाय-उदयस्थान होते हैं और संख्यात आवलीप्रमाण कषाय-उपयोगस्थान होते हैं । उनमेंसे एक कषायका एक कषाय-उदयस्थानमें और एक कषाय-उपयोगस्थानमें, विवक्षित एक समयमें ही कौन गति उपयुक्त होती है ? अर्थात् क्या सभी जीवोंके एक ही वार उक्त प्रकारके परिणाम सम्भव है, अथवा नहीं ? इस प्रकारकी पृच्छा की गई है । 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' ऐसा कहने पर दो कषाय-उदयस्थानोंमें, तीन कषाय-उदयस्थानोंमें अथवा चार कषाय-उदयस्थानोंमें, इस प्रकार संख्यात और असंख्यात कषाय-उदयस्थानोंमें एक ही कालकी अपेक्षा कौन गति उपयुक्त होती है ? उसी समय दो कालोपयोग-वर्गणाओंसे, अथवा तीन कालोपयोग-वर्गणाओंसे, इस प्रकार संख्यात और असंख्यात कालोपयोग-वर्गणाओंसे प्रतिबद्ध पूर्वोक्त कषाय उदयस्थानोंकी अपेक्षा एक ही वार उपयुक्त कौन गति होती है ? इस प्रकार यह चौथी गाथा दो प्रकारके अर्थोंसे सम्बद्ध है । इन पृच्छाओंका समाधान आगे चूर्णिसूत्रोंके द्वारा किया जायगा ।

सदृश कषाय-उपयोगवर्गणाओंमें कितने जीव उपयुक्त हैं, तथा चारों कषायोंसे उपर्युक्त सर्व जीवोंका कौन-सा भाग एक एक कषायमें उपयुक्त है और किस किस कषायसे उपयुक्त जीव कौन-कौनसी कषायोंसे उपयुक्त जीवराशिके साथ गुणकार और भागहारकी अपेक्षा हीन अथवा अधिक होते हैं ? ॥६७॥

(१५) जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते।
होहिंति च उवजुत्ता एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा ॥६८॥
(१६) उवजोगवग्गणाहि च अविरहिदं काहि विरहिदं चावि।
पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा (७) ॥६९॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा कषायोपयुक्त जीवोंके विशेष परिज्ञानके लिए आठ अनुयोगद्वारोंकी सूचना की गई है। 'केवडिया उवजुत्ता' इस पदके द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वार सूचित किया गया है। तथा इसी पदके द्वारा सत्प्ररूपणाकी भी सूचना की गई है। क्योंकि सत्प्ररूपणाके विना द्रव्यप्रमाणानुमगकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। क्षेत्र-अनुयोगद्वार और स्पर्शन-अनुयोगद्वार भी इसी पदसे संगृहीत समझना चाहिए। क्योंकि, उन दोनों अनुयोगद्वारोंकी प्रवृत्ति द्रव्यप्रमाणानुगम-पूर्वक ही होती है। इस प्रकार गाथासूत्रके इस प्रथम अवयवमें चार अनुयोगद्वार अन्तर्निहित हैं। 'सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु' इस द्वितीय सूत्रावयवके द्वारा नाना और एक जीव-सम्बन्धी कालानुगम अनु-योगद्वारकी सूचना की गई है। तथा यहीं पर अन्तरानुगम अनुयोगद्वारका भी अन्तर्भाव जानना चाहिए। क्योंकि, काल और अन्तर ये दोनों अनुयोगद्वार परस्परमें सम्बद्ध ही देखे जाते हैं। 'केवडिया च कसाए' इस तृतीय सूत्रावयवसे भागाभागानुगम अनुयोगद्वार कहा गया है। 'के के च विसिस्सदे केण' इस चतुर्थ सूत्रावयवसे अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार सूचित किया गया है। इस गाथामें द्रव्यानुगम, कालानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये चार अनुयोगद्वार तो स्पष्ट कहे ही गये हैं, तथा शेष चार अनुयोगद्वारोंकी सूचना की गई है।

जो जो जीव वर्तमान समयमें जिस क्रोधादि किसी एक कषायमें उपयुक्त दिखलाई देते हैं, वे सबके सब क्या अतीत कालमें उसी ही कषायके उपयोगसे उप-युक्त थे, अथवा वे सबके सब आगामी कालमें उसी ही कषायरूप उपयोगसे उपयुक्त होंगे? इसी प्रकार सर्वत्र सर्व मार्गणाओंमें जानना चाहिए ॥६८॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा वर्तमान समयमें क्रोधादि कषायोंसे उपयुक्त अनन्त जीवोंकी अतीत और अनागत कालमें भी विवक्षित कषायोपयोगके परिणमन-सम्बन्धी सम्भव असम्भव भावोंकी गवेषणा की गई है। गाथाके प्रथम तीन चरणोंके द्वारा ओघप्ररूपणा और चतुर्थ चरणके द्वारा आदेशप्ररूपणा सूचित की गई है। इसका निर्णय आगे चूर्णिकार स्वयं करेंगे।

कितनी उपयोग-वर्गणाओंके द्वारा कौन स्थान अविरहित पाया जाता है और कौन स्थान विरहित? तथा प्रथम समयमें उपयुक्त जीवोंके द्वारा और इसी प्रकार अन्तिम समयमें उपयुक्त जीवोंके द्वारा स्थानोंको जानना चाहिये (७) ॥६९॥

१ एत्थ गाहासुत्तपरिसमत्तीए सत्तण्हमंकविण्णासो किमट्ठं कदो? एदाओ सत्त चेव गाहाओ उवजोगाणिओगद्दारे पडिबद्धाओ त्ति जाणावणट्ठं। जयध०

३. एदाओ सत्त गाहाओ। ४. एदासिं विहासा[1] कायव्वा। ५. 'केवचिरं उवजोगो कम्हि कसायम्हि' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्धापरिमाणं। ६. तं जहा। ७. कोधद्धा माणद्धा मायद्धा लोहद्धा जहण्णियाओ वि उक्कस्सियाओ वि अंतोमुहुत्तं।

विशेषार्थ—उपयोग-वर्गणाएँ दो प्रकारकी होती हैं—कषाय-उदयस्थानरूप और उपयोग-अध्वस्थानरूप। इन दोनोंमें ही कितने कालोपयोग-वर्गणावाले जीवोंसे और कितने भावोपयोगवर्गणावाले जीवोंसे कौन स्थान अशून्य और कौन स्थान शून्य पाया जाता है, इस प्रकारके शून्य-अशून्य स्थानोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षा निरूपण करनेकी सूचना गाथाके पूर्वार्धसे की गई है। तथा गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा नरक आदि गतियोंका आश्रय करके क्रोधादि कषायोपयोगयुक्त जीवोंके तीन प्रकारकी श्रेणियोंके द्वारा अल्पबहुत्वकी सूचना की गई हैं, जिसका निर्णय चूर्णिसूत्रकार आगे स्वयं करेंगे। इस उपयोग अधिकारमें सात ही सूत्रगाथाएं निबद्ध हैं, यह सूचित करनेके लिए चूर्णिकारने गाथाके अन्तमें सातका अंक स्थापित किया है।

चूर्णिसू०–ये सात सूत्र-गाथाएँ कसायपाहुडके उपयोग नामक सातवें अर्थाधिकारमें प्रतिबंद्ध हैं। अब इन सातों गाथाओंकी विभाषा करना चाहिए ॥३-४॥

विशेषार्थ—गाथा-सूत्रसे सूचित अर्थका नाना प्रकारसे व्याख्यान, विवरण या विवेचन करनेको विभाषा कहते हैं। चूर्णिकार अब इन गाथासूत्रोंकी विभाषा करेंगे।

चूर्णिसू०—'किस कषायमें कितने काल उपयोग रहता है' इस पदका अर्थ अद्धा-परिमाण है ॥५॥

विशेषार्थ—अद्धा नाम कालका है। कालके परिमाणको अद्धापरिमाण कहते हैं। जिसका अभिप्राय यह है कि एक जीवका किस कषायमें कितने काल तक उपयोग रहता है?

चूर्णिसू०–उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्रोधकषायका काल, मानकषायका काल, मायाकषायका काल, और लोभकषायका काल जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है ॥६-७॥

विशेषार्थ—चारों ही कषायोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि किसी भी कषायका एक सदृश उपयोग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं हो सकता है, क्योंकि उसके बाद कषायोंके उपयोग-परिवर्तनके विना अवस्थान असम्भव है। यद्यपि मरण और व्याघातकी अपेक्षा कषायोंके उपयोगका जघन्यकाल 'जीवस्थान' *आदि ग्रन्थोंमें एक समयमात्र भी कहा गया है, किन्तु चूर्णिसूत्रकारके अभिप्रायसे वैसा होना सम्भव नहीं है।*

---

१ का विहासा णाम? गाहासुत्तसूचिदस्स अत्थस्स विसेसियूण भासणं विहासा विवरणमिदि वुत्तं होइ। जयध०

८. गदीसु णिक्खमाण-पवेसणेण एगसमयो होज्ज ।

९. 'को व केणहिओ' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्धाणमप्पाबहुअं* । १०. तं जहा । ११. ओघेण माणद्धा जहण्णिया थोवा[1] । १२. कोधद्धा जहण्णिया विसे-

चूर्णिसू०–गतियोंमें निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा चारों कषायोंका जघन्यकाल एक समय भी होता है ॥८॥

विशेषार्थ–निष्क्रमणकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा इस प्रकार जानना चाहिए–कोई एक नारकी मानादि किसी एक कषायसे उपयुक्त होकर स्थित था, जब आयुका एक समय-मात्र शेष रहा, तब क्रोधोपयोगसे परिणत होकर एक समय नरकमें रहकर निकला और तिर्यंच या मनुष्य हो गया । इस प्रकार निष्क्रमणकी अपेक्षा क्रोधोपयोगका एक समय मात्र जघन्यकाल प्राप्त हुआ । अब प्रवेशकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करते हैं—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य जीव क्रोधकषायसे उपयुक्त होकर स्थित था, जब क्रोधकषायके कालमें एक समय अवशिष्ट रहा, तब मरकर नारकियोंमें उत्पन्न हो प्रथम समयमें क्रोधोपयोगके साथ दिखाई दिया और दूसरे ही समयमें अन्य कषायसे उपयुक्त हो गया । इस प्रकार यह प्रवेशकी अपेक्षा एक समय-प्रमाण क्रोधकषायका जघन्य-काल प्राप्त हुआ । इसी प्रकारसे शेष कषायों तथा शेष गतियोंमें भी निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

चूर्णिसू०–'किस कषायका उपयोगकाल किस कषायके उपयोगकालसे अधिक है' गाथाके इस द्वितीय पदका अर्थ कषायोंके उपयोगकाल-सम्बन्धी अल्पबहुत्व है । वह कषायोंके उपयोगकाल-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका क्रम इस प्रकार है—ओघकी अपेक्षा मानकषायका जघन्यकाल सबसे कम है ॥९-११॥

विशेषार्थ–यद्यपि तिर्यंच और मनुष्योंके निर्व्याघातकी अपेक्षा मानकषायके उपयोगका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण ही है तथापि आगे बताए जानेवाले कषायोंके उपयोग-कालसे यह मानकषायका उपयोग-काल सबसे अल्प है, क्योंकि वह संख्यात आवलीप्रमाण ही होता है ।

चूर्णिसू०–क्रोधकषायका जघन्यकाल, मानकषायके जघन्यकालसे विशेष अधिक

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'को व केणहिओ त्ति' इतना ही सूत्र मुद्रित है और आगेके अंशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १६१६) । परन्तु टीकासे ही शेष इस अंशके सूत्रता सिद्ध है. तथा सूत्र नं० ५ से भी ।

१ एत्थ 'माणद्धा जहण्णिया' त्ति वुत्ते तिरिक्ख-मणुसाणं णिव्वाघादेण माणोवजोगजहण्णकालो अंतोमुहुत्तपमाणो घेत्तव्वो; अण्णत्थ घेप्पमाणे माणजहण्णद्धाए सव्वत्थोवत्ताणुववत्तीदो । तदो जहण्णिया माणद्धा संखेज्जावलियमेत्ता होदूण सव्वत्थोवा त्ति सिद्धं । जयध०

साहिया । १३. मायद्धा जहण्णिया विसेसाहिया । १४. लोभद्धा जहण्णिया विसेसाहिया । १५. माणद्धा उक्कस्सिया संखेज्जगुणा । १६. कोधद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया । १७. मायद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया । १८. लोभद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया

१९. पवाइज्जंतेण[1] उवदेसेण अद्धाणं विसेसो अंतोमुहुत्तं । २०. तेणेव उवदेसेण चउगइसमासेण अप्पाबहुअं भणिहिदि । २१. चदुगदिसमासेण जहण्णुक्कस्सपदेसेण णिरयगदीए जहण्णिया लोभद्धा थोवा । २२. देवगदीए जहण्णिया कोधद्धा विसे-

है । माया कषायका जघन्यकाल क्रोधकषायके जघन्यकालसे विशेष अधिक है । लोभकषायका जघन्यकाल मायाकषायके जघन्यकालसे विशेष अधिक है ॥१२-१४॥

चूर्णिसू०—मानकषायका उत्कृष्टकाल लोभकषायके जघन्यकालसे संख्यातगुणा है । क्रोधकषायका उत्कृष्टकाल मानकषायके उत्कृष्टकालसे विशेष अधिक है । मायाकषायका उत्कृष्टकाल क्रोधकषायके उत्कृष्टकालसे विशेष अधिक है । लोभकषायका उत्कृष्टकाल मायाकषायके उत्कृष्टकालसे विशेष अधिक है ॥१५-१८॥

चूर्णिसू०—प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा क्रोधादि कषायोंके कालकी विशेषता अन्तर्मुहूर्त है । ॥१९॥

विशेषार्थ—ऊपर जो ओघकी अपेक्षा कषायोंका काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्व बतलाया गया है, वह जिस जिस स्थानपर विशेष अधिक कहा गया है, वहाँ वहाँ पर विशेष अधिकसे अन्तर्मुहूर्तकालकी अधिकता समझना चाहिए । वह अन्तर्मुहूर्त यद्यपि अनेक भेदरूप है, कोई संख्यात आवलीप्रमाण, कोई आवलीके संख्यातवें भागप्रमाण और कोई आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । किन्तु यहाँ पर प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही विशेष अधिक काल समझना चाहिए । जो उपदेश सर्व आचार्योंसे सम्मत है, चिरकालसे अविच्छिन्न सम्प्रदाय-द्वारा प्रवाहरूपसे आ रहा है, और गुरु-शिष्य-परम्पराके द्वारा प्ररूपित किया जाता है, वह प्रवाह्यमान उपदेश कहलाता है । इससे भिन्न जो सर्व आचार्य-सम्मत न हो और अविच्छिन्न गुरु-शिष्य-परम्परासे नहीं आ रहा हो, ऐसे उपदेशको अप्रवाह्यमान उपदेश कहते हैं । अथवा आर्यमंक्षु आचार्यके उपदेशको अप्रवाह्यमान और नागहस्ति क्षमाश्रमणके उपदेशको प्रवाह्यमान उपदेश समझना चाहिए ।

चूर्णिसू०—उसी प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा अब चारों गतियोंका समुच्चय आश्रय करके कषायोंके काल-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—चतुर्गतिके समाससे जघन्य और उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा नरकगतिमें लोभकषायका जघन्यकाल सबसे कम है । (क्योंकि द्वेष-बहुल नारकियोंमें जाति-विशेषसे ही प्रेयरूप लोभपरिणामका चिरकाल तक रहना अस-

[1] को पुण पवाइज्जंतोवएसो णाम वुत्तमेदं ? सव्वाइरियसम्मदो चिरकालमव्वोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए पवाइज्जदे पण्णविज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे । अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम । णागहत्थिखवणाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति घेत्तव्वो । जयध०

साहिया । २३. देवगदीए जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा । २४. णिरयगदीए जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया । २५. णिरयगदीए जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा । २६. देवगदीए जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया ।

२७. मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा । २८. मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया कोधद्धा विसेसाहिया । २९. मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया । ३०. मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया लोहद्धा विसेसाहिया ।

३१. णिरयगदीए जहण्णिया कोधद्धा संखेज्जगुणा । ३२. देवगदीए जहण्णिया लोभद्धा विसेसाहिया । ३३. णिरयगदीए उक्कस्सिया लोभद्धा संखेज्जगुणा । ३४. देवगदीए उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ३५. देवगदीए उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ३६. णिरयगदीए उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ३७ णिरयगदीए उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ३८. देवगदीए उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ।

३९. मणुस-तिरिक्खजोणियाणमुक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ४०. तेसिं

म्भव है । देवगतिमें क्रोधका जघन्य काल नरकगतिके जघन्य लोभ-कालसे विशेष अधिक है । देवगतिमें मानका जघन्यकाल देवगतिके जघन्य क्रोधकालसे संख्यातगुणा है । नरकगतिमें मायाका जघन्यकाल देवगतिके जघन्य मानकालसे विशेष अधिक है । नरकगतिमें मानका जघन्यकाल नरकगतिके ही जघन्य मायाकालसे संख्यातगुणा है । देवगतिमें मायाका जघन्यकाल नरकगतिके जघन्य मानकालसे विशेष अधिक है ॥२०-२६॥

चूर्णिसू०—मनुष्य और तिर्यंच योनिवाले जीवोंके मानका जघन्यकाल देवगतिके जघन्य मायाकालसे संख्यातगुणा है । उन ही मनुष्य और तिर्यंच योनियोंके क्रोधका जघन्यकाल उन्हींके जघन्य मानकालसे विशेष अधिक है । मनुष्य और तिर्यंच योनियोंके मायाका जघन्यकाल उन्हींके जघन्य क्रोधकालसे विशेष अधिक है । मनुष्य और तिर्यंच योनियोंके लोभका जघन्यकाल उन्हींके जघन्य मायाकालसे विशेष अधिक है ॥२७-३०॥

चूर्णिसू०—नरकगतिमें क्रोधका जघन्यकाल मनुष्य और तिर्यंचयोनियोंके जघन्य लोभकालसे संख्यातगुणा है । देवगतिमें लोभका जघन्यकाल नरकगतिके जघन्य क्रोधकालसे विशेष अधिक है । नरकगतिमें लोभका उत्कृष्टकाल देवगतिके जघन्य लोभकालसे संख्यातगुणा है । देवगतिमें क्रोधका उत्कृष्टकाल नरकगतिके उत्कृष्ट लोभकालसे विशेष अधिक है । देवगतिमें मानका उत्कृष्टकाल देवगतिके ही उत्कृष्ट क्रोधकालसे संख्यातगुणा है । नरकगतिमें मायाका उत्कृष्टकाल देवगतिके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । नरकगतिमें मानका उत्कृष्टकाल नरकगतिके ही उत्कृष्ट मायाकालसे संख्यातगुणा है । देवगतिमें मायाका उत्कृष्टकाल नरकगतिके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है ॥३१-३८॥

चूर्णिसू०—मनुष्य और तिर्यंचयोनियोंके मानका उत्कृष्टकाल देवगतिके उत्कृष्ट माया-

चेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ४१. तेसिं चेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ४२. तेसिं चेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया । ४३. णिरयगदीए उक्कस्सिया कोधद्धा संखेज्जगुणा । ४४. देवगदीए उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

४५. तेसिं चेव उवदेसेण चोद्दस-जीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि[1] । ४६. चोद्दसण्हं जीवसमासाणं देव-णेरइयवज्जाणं जहण्णिया माणद्धा तुल्ला थोवा । ४७. जहण्णिया कोधद्धा विसेसाहिया । ४८. जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया । ४९. जहण्णिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

५०. सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ५१. उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ५२. उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ५३. उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

कालसे संख्यातगुणा है । उन्हींके क्रोधका उत्कृष्टकाल उन्हींके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं मनुष्य-तिर्यंचयोनियोंके मायाका उत्कृष्टकाल उन्हींके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं मनुष्य-तिर्यंचयोनियोंके लोभका उत्कृष्टकाल उन्हींके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है । नरकगतिमें क्रोधका उत्कृष्टकाल मनुष्य-तिर्यंचयोनियोंके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । देवगतिमें लोभका उत्कृष्टकाल नरकगतिके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है ॥३९-४४॥

चूर्णिसू०—अब प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चौदह जीवसमासोंके द्वारा जघन्य और उत्कृष्ट पद-विशिष्ट कषायोंके कालसम्बन्धी अल्पबहुत्व-दंडकको कहते हैं—देव और नारकियोंसे रहित शेष चौदह जीवसमासोंके मानका जघन्य काल परस्परमें समान होकरके भी वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । उन्हीं देव-नारकी-रहित चौदह जीवसमासोंके क्रोधका जघन्यकाल उन्हींके जघन्य मानकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं देव-नारकी-रहित चौदह जीवसमासोंके मायाका जघन्यकाल उन्हींके जघन्य क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं देव-नारकी-रहित चौदह जीवसमासोंके लोभका जघन्य काल उन्हींके जघन्य मायाकालसे विशेष अधिक है ॥४५-४९॥

चूर्णिसू०—सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त निगोदियाके मानका उत्कृष्टकाल देव-नारकी-रहित चौदह जीवसमासोंके जघन्य लोभकालसे संख्यातगुणा है । सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त निगोदियाके क्रोधका उत्कृष्टकाल उन्हींके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त निगोदियाके मायाका उत्कृष्टकाल उन्हींके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उन्हीं सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त निगोदियाके लोभका उत्कृष्ट काल उन्हींके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥५०-५३॥

१ तेसिं चेव भयवंताणमज्जमंखु-णागहत्थीणं पवाइज्जंतेणुवएसेण चोद्दसजीवसमासेसु जहण्णुक्कस्सपदविसेसिदो अप्पाबहुअदंडओ एत्तो भणिहिदि भणिष्यत इत्यर्थः । जयध०

५४. बादरेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ५५. उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ५६. उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ५७. उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

५८. सुहुमपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ५९. उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ६०. उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ६१. उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

६२. बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ६३. उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ६४. उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ६५. उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

६६ बेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ६७. तेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया । ६८. चउरिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया । ६९. बेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया ।

चूर्णिसू०—बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त निगोदिया जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । उसी बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उसी बादर एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥५४-५७॥

चूर्णिसू०—सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवके मानका उत्कृष्टकाल बादर एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । उसी सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रियके क्रोधका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उसी सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रियके मायाका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उसी सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रियके लोभका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥५८-६१॥

चूर्णिसू०—बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । उसी बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्ट काल उसीके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उसी बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उसी बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥६२-६५॥

चूर्णिसू०—द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट

७०. तेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। ७१. चउरिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया।

७२. बेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। ७३. तेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। ७४. चउरिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया।

७५. बेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। ७६. तेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। ७७. चदुरिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

७८. बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। ७९. तेइंदिय-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया। ८०. चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया।

८१. बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। ८२. तेइंदिय-

---

मानकालसे विशेष अधिक है। त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है। चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है ॥६६-७१॥

चूर्णिसू०—द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है। त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है। चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥७२-७४॥

चूर्णिसू०—द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है। त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्ट-काल द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे विशेष अधिक है। चतुरिन्द्रियलब्ध्य-पर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे विशेष अधिक है ॥७५-७७॥

चूर्णिसू०—द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रिय-पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है। चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्ट-काल त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है ॥७८-८०॥

चूर्णिसू०—द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है। त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रिय-

पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ८३. चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया ।

८४. बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ८५. तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ८६. चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ।

८७. बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया । ८८. तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया । ८९. चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

९०. असण्णि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ९१. तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ९२. तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । ९३. तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

९४. असण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । ९५. तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । ९६. तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ।

पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है ॥८१-८३॥

चूर्णिसू०–द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है । चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥८४-८६॥

चूर्णिसू०–द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है । त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे विशेप अधिक है । चतुरिन्द्रियपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्टकाल त्रीन्द्रियपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे विशेष अधिक है ॥८७-८९॥

चूर्णिसू०–असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके मानका उत्कृष्ट काल चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । उसी असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मानकालसे विशेप अधिक है । उसी असंज्ञी पंचेन्द्रिय-अपर्याप्त जीवके मायाका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है । उसी असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके लोभका उत्कृष्ट काल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥९०-९३॥

चूर्णिसू०–असंज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रियजीवके मानका उत्कृष्टकाल असंज्ञी अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है । उसी असंज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मानकालसे विशेष अधिक है । उसी असंज्ञी पर्याप्त

९७. तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

९८. सण्णिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। ९९. तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। १००. तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। १०१. तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

१०२. सण्णि-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। १०३. तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। १०४. तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। १०५. तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

तदो पढमगाहाए पुव्वद्धस्स अत्थविहासा समत्ता।

१०६. 'को वा* कम्हि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो' त्ति एत्थ अभिक्खमुवजोगपरूवणा कायव्वा। १०७. ओघेण ताव लोभो माया कोधो माणो त्ति

पंचेन्द्रिय जीवके मायाका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है। उसी असंज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके लोभका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥९४-९७॥

चूर्णिसू०–संज्ञी लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके मानका उत्कृष्टकाल असंज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है। उसी संज्ञी लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके क्रोधका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है। उसी संज्ञी लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके मायाका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट क्रोधकालसे विशेष अधिक है। उसी संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवके लोभका उत्कृष्टकाल उसीके उत्कृष्ट मायाकालसे विशेष अधिक है ॥९८-१०१॥

चूर्णिसू०–संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके मानका उत्कृष्टकाल संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट लोभकालसे संख्यातगुणा है। इससे इसीका उत्कृष्ट क्रोधकाल विशेष अधिक है। इससे इसीका उत्कृष्ट मायाकाल विशेष अधिक है। इससे इसीका उत्कृष्ट लोभकाल विशेष अधिक है ॥१०२-१०५॥

इस प्रकार प्रथम गाथाके पूर्वार्धके अर्थका विवरण समाप्त हुआ।

चूर्णिसू०–'कौन जीव किस कषायमें निरन्तर एक सदृश उपयोगसे उपयुक्त रहता है' गाथाके इस उत्तरार्धमें निरन्तर होनेवाले उपयोगोंकी प्ररूपणा करना चाहिये। (वह इस प्रकार है–) ओघकी अपेक्षा लोभ, माया, क्रोध और मान इस अवस्थित-स्वरूप परि-

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'को वा कम्हि'के स्थानपर 'कोधम्हि' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १६२२)। पर वह अशुद्ध है, क्योंकि यह इसी अधिकारके प्रथम गाथाका उत्तरार्ध है, जिसमें कि 'को वा कम्हि' पाठ दिया हुआ है।

१ अभीक्ष्णमुपयोगो मुहुर्मुहुरुपयोग इत्यर्थः। एकस्य जीवस्यैकस्मिन् कषाये पौनःपुन्येनोपयोग इति यावत्। जयध०

असंखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु सइं लोभागरिसा अदिरेगा भवदि । १०८. असंखेज्जेसु लोभागरिसेसु अदिरेगेसु गदेसु कोधागरिसेहिं मायागरिसा अदिरेगा होइ । १०९.

पाटीसे असंख्यात अपकर्षों अर्थात् परिवर्तनवारोंके व्यतीत हो जानेपर एक वार लोभकषायके परिवर्तनका वार अतिरिक्त अर्थात् अधिक होता है ॥१०६-१०७॥

विशेषार्थ–यहाँ पर यद्यपि सामान्यसे ही कषायोंके उपयोग-परिवर्तनका क्रम बतलाया जा रहा है, तथापि वह तिर्यंच और मनुष्यगतिका ही प्रधानरूपसे कहा गया समझना चाहिए। कषायोंके उपयोगका परिवर्तन इस क्रमसे होता है—मनुष्य-तिर्यंचोंके पहले एक अन्तर्मुहूर्त तक लोभकषायरूप उपयोग होगा। पुनः उसके परिवर्तित हो जाने पर एक अन्तर्मुहूर्त तक मायाकषायरूप उपयोग होगा। पुनः उसका काल समाप्त हो जाने पर एक अन्तर्मुहूर्त तक क्रोधकषायरूप उपयोग होगा। पुनः इस उपयोग-कालके भी समाप्त हो जाने पर एक अन्तर्मुहूर्त तक मानकषायरूप उपयोग होगा। इस क्रमसे असंख्यात परिवर्तन-वारोंके व्यतीत हो जाने पर पीछे लोभ, माया, क्रोध और मानरूप होकर पुनः लोभकषायसे उपयुक्त होकर मायाकषायके उपयोगमें अवस्थित जीव उपर्युक्त परिपाटी-क्रमसे क्रोधरूप उपयुक्त नहीं होगा, किन्तु पुनः लौटकर लोभकषायरूप उपयोगके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः मायाकषायका उल्लंघन कर क्रोधकषायरूप उपयोगको प्राप्त होगा और तत्पश्चात् मान-कषायको। इसी प्रकार पूर्वोक्त अवस्थित परिपाटी-क्रमसे चारों कषायोंके असंख्यात उपयोग परिवर्तन-वार व्यतीत हो जाने पर पुनः एक वार लोभकषाय-सम्बन्धी परिवर्तन-वार अधिक होता है।

चूर्णिसू०–उक्त प्रकारसे असंख्यात लोभकषायसम्बन्धी अपकर्षों अर्थात् परिवर्तन-वारोंके अतिरिक्त हो जाने पर क्रोधकषाय-सम्बन्धी परिवर्तन-वारसे मायाकषाय-सम्बन्धी उपयोगका परिवर्तन-वार अतिरिक्त होता है ॥१०८॥

विशेषार्थ–ऊपर जिस अवस्थित लोभ, माया, क्रोध और मानके परिवर्तन-क्रमसे असंख्यात अपकर्ष व्यतीत होने पर एक वार लोभ-अपकर्ष अतिरिक्त होता है यह बतलाया गया, उसी प्रकार असंख्यात लोभ अपकर्षोंके अधिक हो जाने पर मायाकषाय-सम्बन्धी अपकर्ष अधिक होगा। अर्थात् उक्त अवस्थित अपकर्ष-परिपाटी-क्रमसे लोभके पश्चात् माया और क्रोधके परिवर्तन हो जानेपर पुनः लौटकर मायाके उपयोगके साथ अन्तर्मुहूर्त तक रहकर तत्पश्चात् क्रोधका उल्लंघन कर मानको प्राप्त होगा। पुनः अवस्थित परिपाटीसे असं-ख्यात लोभापकर्षोंके व्यतीत हो जाने पर फिर उसी क्रमसे एक वार मायाका अपकर्ष अधिक होगा। इसी बातको बतलानेके लिए सूत्रकारने कहा है कि असंख्यात लोभ-अपकर्षोंके अतिरिक्त हो जाने पर क्रोध-अपकर्षसे माया-अपकर्ष अतिरिक्त होता है। इस प्रकार मायाप-कर्षके असंख्यात अतिरिक्त वार होते हैं, तब वक्ष्यमाण अन्य क्रम प्रारम्भ होता है।

१ एत्थागरिसा त्ति वुत्ते परियट्टणवाराणि गहेयव्वं । जयध०
२ अदिरित्ता अहिया (अधिकाः) इत्यर्थः । जयध०

असंखेज्जेहि मायागरिसेहिं अदिरेगेहिं गदेहिं माणागरिसेहिं कोधागरिसा अदिरेगा होदि।

११०. एवमोघेण । १११. एवं तिरिक्खजोणिगदीए मणुसगदीए च[1] । ११२. णिरयगईए कोहो माणो, कोहो माणो त्ति वारसहस्साणि परियत्तिदूण सइं माया

चूर्णिसू०–असंख्यात माया-अपकर्षोंके अतिरिक्त हो जाने पर मान-अपकर्षकी अपेक्षा क्रोध-अपकर्ष अतिरिक्त होता है ॥१०९॥

विशेषार्थ–ऊपर जिस क्रमसे लोभ और मायाकषाय-सम्बन्धी अतिरिक्त अपकर्षका निरूपण किया है, उसी क्रमसे असंख्यात माया-अपकर्षोंके हो जानेपर एक वार क्रोध-अपकर्ष अधिक होता है । अर्थात् अवस्थित परिपाटी-क्रमसे लोभ, माया और क्रोधसे उपयुक्त होनेके पश्चात् क्रम-प्राप्त मानकषायसे उपयुक्त न होगा, किन्तु पुनः लौटकर क्रोधकषायसे उपयुक्त होगा । इस प्रकार क्रोधकषायके अपकर्ष भी असंख्यात होते हैं । विवक्षित मनुष्य या तिर्यंचकी असंख्यात वर्षवाली आयुमें ये अतिरिक्त वार लोभकषायके सबसे अधिक होते हैं और माया, क्रोध और मानके उत्तरोत्तर कम होते हैं ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार यह कषाय-सम्बन्धी उपयोग परिपाटी-क्रम ओघकी अपेक्षा कहा गया है । इसी प्रकार तिर्यंचयोनियोंकी गतिमें और मनुष्यगतिमें जानना चाहिए ॥११०-१११॥

विशेषार्थ–यद्यपि यहाँ सामान्यसे ही तिर्यंच और मनुष्योंका उल्लेख किया गया है, तथापि उक्त क्रम असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी अपेक्षासे ही कहा गया जानना चाहिए । इसका कारण यह है कि लोभादि कषायोंके असंख्यात वार सदृश होकर जब तक व्यतीत नहीं हो जाते हैं, तब तक उनके अतिरिक्त वार नहीं होते हैं । इस प्रकार सूत्रका वचन है । अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि संख्यात-वर्षायुष्क मनुष्य और तिर्यंचोंमें कषायोंके परिवर्तन-वार समान ही होते हैं ।

चूर्णिसू०–नरकगतिमें क्रोध, मान, पुनः क्रोध और मान; इस क्रमसे सहस्रों परिवर्तन-वारोंके परिवर्तित हो जाने पर एक वार मायाकषाय-सम्बन्धी उपयोग परिवर्तित होता है ॥११२॥

विशेषार्थ–जिस प्रकार ओघप्ररूपणामें लोभ, माया क्रोध और मान इस अवस्थित परिपाटीसे असंख्यात अपकर्षोंके व्यतीत होनेपर पुनः अन्य प्रकारकी परिपाटी आरंभ होती है, वैसी परिपाटी यहाँ नरकगतिमें नहीं है । किन्तु यहाँपर क्रोधकषाय-सम्बन्धी उपयोगके परिवर्तित होनेपर मानकषायरूप उपयोग होता है । उसके पश्चात् पुनः क्रोध और मानकषायरूप उपयोग होता है । नारकियोंका यही अवस्थित उपयोग-परिवर्तन क्रम है । इस

१ एद सव्वं पि असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से अस्सियूण परूविदं । संखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से अस्सियूण जइ वुच्चइ तो कोहमाणमायालोहाणमागरिसा अण्णोण्णं पेक्खियूण सरिसा चेव हवंति । किं कारणं, असंखेज्जपरियत्तणवारा सरिसा होदूण जाव ण गदा ताव लोभादीणमागरिसा अहिया ण होंति त्ति सुत्तवयणादो । जयध०

परिवत्तदि[1]। ११३. मायापरिवत्तेहिं संखेज्जेहिं गदेहिं सइं लोहो परिवत्तदि[2]। ११४. देवगदीए लोभो माया लोभो माया त्ति वारसहस्साणि गंतूण तदो सइं माणो परिवत्तदि[3]। ११५. माणस्स संखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु तदो सइं कोधो परिवत्तदि[4]।

अवस्थित-परिपाटी-क्रमसे सहस्रों परिवर्तन-वारोंके हो जानेपर तत्पश्चात् एक वार माया-कषायरूप उपयोग होता है। इसका कारण यह है कि अत्यन्त द्वेष-प्रचुर नारकियोंमें क्रोध और मानकषाय ही प्रचुरतासे पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–संख्यात सहस्र मायाकषायसम्बन्धी उपयोग-परिवर्तनोंके व्यतीत हो जानेपर तत्पश्चात् एक वार लोभकषायरूप उपयोग परिवर्तित होता है ॥११३॥

विशेषार्थ–ऊपर बतलाई गई नरकगति-सम्बन्धी अवस्थित परिपाटी क्रमसे क्रोध और मानसम्बन्धी सहस्रों उपयोग-परिवर्तनोंके हो जानेपर एक वार मायापरिवर्तन होता है। पुनः इस प्रकारके सहस्रों मायापरिवर्तनोंके व्यतीत हो जानेपर एक वार लोभकषाय-सम्बन्धी उपयोगका परिवर्तन होता है। इसका कारण यह है कि अत्यन्त पाप-बहुल नरकगतिमें प्रेय-स्वरूप लोभपरिणामका होना अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकारका यह क्रम नारकी जीवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय तक होता रहता है।

चूर्णिसू०–देवगतिमें लोभ, माया, पुनः लोभ और माया इस क्रमसे सहस्रों परि-वर्तन-वारोंके व्यतीत हो जानेपर तत्पश्चात् एक वार मानकषाय-सम्बन्धी उपयोगका परिवर्तन होता है ॥११४॥

विशेषार्थ–देवगतिमें नरकगतिसे विपरीत क्रम है। यहाँपर पहले लोभकषायरूप उपयोग होगा, पुनः मायाकषायरूप। पुनः लोभ और पुनः माया। इस अवस्थित परिपाटी-क्रमसे इन दोनों कषाय-सम्बन्धी सहस्रों उपयोग-परिवर्तनोंके हो जानेपर तत्पश्चात् एक वार मानकषाय परिवर्तित होती है। इसका कारण यह है कि देवगतिमें प्रेयस्वरूप लोभ और माया-परिणाम ही बहुलतासे पाये जाते हैं। अतएव लोभ और माया-सम्बन्धी संख्यात सहस्र परिवर्तन-वारोंके हो जानेपर पुनः लोभकषायरूप उपयोगसे परिणत होकर क्रम-प्राप्त माया कषायरूप उपयोगका उल्लंघन कर एक वार मानकषायरूप परिवर्तनसे परिणत होता है।

चूर्णिसू०–मानकषायके उपयोग-सम्बन्धी संख्यात सहस्र परिवर्तन-वारोंके व्यतीत हो जानेपर तत्पश्चात् एक वार क्रोधकषायरूप उपयोग परिवर्तित होता है ॥११५॥

विशेषार्थ–देवगति-सम्बन्धी कषायोंके अवस्थित उपयोग परिपाटी-क्रमसे सहस्रों मानपरिवर्तन-वारोंके व्यतीत हो जानेपर एक वार क्रोधकषायरूप उपयोग परिवर्तित होता

१ किं कारणं ? णेरइएसु अच्चंतदोसबहुलेसु कोह-माणाणं चेव पउरं संभवादो।

२ कुदो एवं चेव ? णिरयगदीए अच्चंतपापबहुलाए पेज्जसरूवलोहपरिणामस्स सुट्ठु दुल्लहत्तादो। जयध०

३ कुदो एवं, पेज्जसरूवाणं लोभ-मायाणं तत्थ बहुलं संभवदंसणादो। जयध०

४ देवगदीए अप्पसत्थयरकोहपरिणामस्स पाएण संभवाणुवलंभादो। जयध०

११६. एदीए परूवणाए एक्कम्हि भवग्गहणे णिरयगदीए संखेज्जवासिगे वा असंखेज्जवासिगे वा भवे लोभागरिसा थोवा[1]। ११७. मायागरिसा संखेज्जगुणा। ११८. माणागरिसा संखेज्जगुणा। ११९. कोहागरिसा विसेसाहिया।

१२०. देवगदीए कोधागरिसा थोवा। १२१. माणागरिसा संखेज्जगुणा।

है। क्योंकि, देवगतिमें अप्रशस्त क्रोधपरिणाम प्रायः सम्भव नहीं है। इस प्रकारसे उक्त परिवर्तन-क्रम देवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय-पर्यन्त होता रहता है।

चूर्णिसू०–इस उपर्युक्त प्ररूपणाके अनुसार एक भवके ग्रहण करनेपर नरकगतिमें संख्यात वर्षवाले अथवा असंख्यात वर्षवाले भवमें लोभकषायके परिवर्तन-वार शेष कषायोंके परिवर्तन-वारोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं ॥११६॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि नरकगतिमें लोभकषायके परिवर्तन-वार अत्यन्त कम पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–मायाकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वार, लोभकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वारोंसे संख्यातगुणित हैं ॥११७॥

विशेषार्थ-इसका कारण यह है कि एक-एक लोभपरिवर्तन-वारमें संख्यात सहस्र मायाकषायके परिवर्तन-वार पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–नरकगतिमें मानकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वार, मायाकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वारोंसे संख्यातगुणित हैं ॥११८॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि एक-एक मायापरिवर्तन-वारमें संख्यात सहस्र मानकषायके परिवर्तन-वार पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–नरकगतिमें क्रोधकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वार, मानकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वारोंसे विशेष अधिक हैं ॥११९॥

विशेषार्थ-इसका कारण यह है कि मानपरिवर्तन-वारोंकी अपेक्षा लोभ और माया परिवर्तनोंके प्रमाणसे क्रोधपरिवर्तनके वार विशेष अधिक पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–देवगतिमें क्रोधकषाय-सम्बन्धी उपयोगपरिवर्तन-वार वहाँके शेष कषायोंके परिवर्तन-वारोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं ॥१२०॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि देवगतिमें क्रोधकषायके परिवर्तन-वार अत्यन्त अल्प पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–देवगतिमें मानकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वार, क्रोध-कषायसम्बन्धी परिवर्तन-वारोंसे संख्यातगुणित हैं ॥१२१॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि एक-एक क्रोध-परिवर्तन-वारमें संख्यात सहस्र मानकषायके परिवर्तन-वार पाये जाते हैं।

१ कुदो एदेसिं थोवत्तमिदि चे णिरयगदीए लोभपरियट्टणवाराणं सुट्ठु विरलाणमुवलंभादो। जयध०

१२२. मायागरिसा संखेज्जगुणा । १२३. लोभागरिसा विसेसाहिया ।

१२४. तिरिक्ख-मणुसगदीए असंखेज्जवस्सिगे भवग्गहणे माणागरिसा थोवा । १२५. कोहागरिसा विसेसाहिया । १२६. मायागरिसा विसेसाहिया । १२७. लोभागरिसा विसेसाहिया ।

१२८. एत्तो विदियगाहाए विभासा । १२९. तं जहा । १३०. 'एकम्मि भवग्गहणे एक्कसायम्मि कदि च उवजोगा' त्ति* ।

चूर्णिसू०–देवगतिमें मायाकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वार, मानकषायसम्बन्धी परिवर्तन-वारोंसे संख्यातगुणित हैं ॥१२२॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि एक एक मानपरिवर्तन-वारमें संख्यात सहस्र मायापरिवर्तन-वार पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–देवगतिमें लोभकषाय-सम्बन्धी परिवर्तन-वार, मायाकषायके परिवर्तन-वारोंसे विशेष अधिक हैं ॥१२३॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि माया-परिवर्तन-वारोंकी अपेक्षा क्रोध और मान-परिवर्तनोंके प्रमाणसे लोभपरिवर्तनके वार विशेप अधिक पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भव-ग्रहणके भीतर मानकपायके परिवर्तन-वार इन दोनों गति-सम्बन्धी शेप कपायोंके परिवर्तन-वारोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । तिर्यंच और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर क्रोधकषायके परिवर्तन-वार, मानकपायके परिवर्तन-वारोंसे विशेप अधिक हैं ॥१२४-१२५॥

विशेपार्थ–इसका कारण यह है कि क्रोध और मानसम्बन्धी असंख्यात परिवर्तन-परिपाटियोंके अवस्थित-स्वरूपसे व्यतीत होनेपर तत्पश्चात् एक वार मानपरिवर्तनकी अपेक्षा क्रोधपरिवर्तनके अधिकता पाई जाती है ।

चूर्णिसू०–तिर्यंच और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर माया-कपायके परिवर्तन-वार, क्रोधकपायके परिवर्तन-वारोंसे विशेप अधिक होते हैं । तिर्यंच और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर लोभकपायके परिवर्तन-वार, मायाकषायके परिवर्तन-वारोंसे विशेष अधिक होते हैं ॥१२६-१२७॥

इस प्रकार प्रथम गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०–प्रथम गाथाके व्याख्यान करनेके पश्चात् अब 'एकम्मि भवग्गहणे' इस द्वितीय गाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–'एक भवके ग्रहण करनेपर और एक कषायमें कितने उपयोग होते हैं' ? ॥१२८-१३०॥

विशेषार्थ–नरकादि गतियोंमें संख्यात वर्षवाले अथवा असंख्यात वर्षवाले भवको

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस चूर्णिसूत्रको 'तं जहा' इस सूत्रकी टीकाका अंग बना दिया है । (देखो पृ० १६२८) पर इसकी सूत्रता इस स्थलकी टीकासे स्वतः सिद्ध है ।

१३१. एकम्मि णेरइयभवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। १३२. माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। १३३. एवं सेसाणं पि। १३४. एवं सेसासु वि गदीसु।

१३५. णिरयगदीए जम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा, तम्हि माणोवजोगा णियमा संखेज्जा। १३६. एवं माया-लोभोवजोगा। १३७. जम्हि माणोवजोगा संखेज्जा, तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। १३८. मायोवजोगा लोहोवजोगा णियमा

आधार करके उस भवग्रहणमें एक एक कषायके कितने उपयोग होते हैं, क्या उपयोगोंके संख्यात वार होते हैं, अथवा असंख्यात ? इस प्रकारकी पृच्छा इस गाथासूत्रसे की गई है।

अब चूर्णिकार उक्त पृच्छाका उत्तर देते हैं-

चूर्णिसू०—एक नारकीके भवग्रहणमें क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगके वार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं ॥१३१॥

विशेषार्थ—दस हजार वर्षको आदि लेकर यथायोग्य संख्यात वर्षकी आयुवाले नारकीके भवमें क्रोधकषायके उपयोग-वार संख्यात पाये जाते हैं। इससे ऊपर उत्कृष्ट संख्यात वर्षवाले अथवा असंख्यात वर्षवाले भवमें क्रोधकषायके उपयोग-वार असंख्यात ही होते हैं। इसी व्यवस्थाको ध्यानमें रखकर सूत्रमें कहा गया है कि एक नारकीके भवग्रहणमें क्रोधकषायके उपयोग-वार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं।

चूर्णिसू०—नारकीके एक भवमें मानकषायके उपयोग-वार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी। इसी प्रकारसे नरकगतिमें शेष माया और लोभकषाय सम्बन्धी उपयोगोंके वार भी जानना चाहिए। इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी चारों कषायोंके उपयोग-वारोंको जानना चाहिए ॥१३२-१३४॥

चूर्णिसू०—नरकगतिके जिस भवग्रहणमें क्रोधकषायके उपयोग वार संख्यात होते हैं, उस भवग्रहणमें मानकषायके उपयोग-वार नियमसे संख्यात ही होते हैं। इसी प्रकारसे माया और लोभकषाय-सम्बन्धी उपयोग-वार भी जानना चाहिए। नरकगतिके जिस भवग्रहणमें मान-कषायके उपयोग-वार संख्यात होते हैं, उस भवग्रहणमें क्रोधकषायके उपयोग-वार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं ॥१३५-१३७॥

विशेषार्थ—इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट संख्यातमात्र मानकषायके उपयोग-वार होनेपर उससे विशेष अधिक क्रोधकषायके उपयोग-वार असंख्यात ही होंगे। किन्तु उत्कृष्ट संख्यातसे नीचे यथासम्भव संख्यात-प्रमाण मानकषायके उपयोग-वार होनेपर तो क्रोधकषाय-के उपयोग-वार संख्यात ही होंगे।

चूर्णिसू०—नरकगतिके जिस भवग्रहणमें मानकषायके उपयोग-वार संख्यात होते हैं, उस भवग्रहणमें मायाकषायके उपयोग-वार और लोभकषायके उपयोग-वार नियमसे संख्यात ही होते हैं। नरकगतिके जिस भवग्रहणमें मायाकषायके उपयोग-वार संख्यात होते हैं, उस

संखेज्जा । १३९. जम्हि मायोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा । १४०. लोभोवजोगा णियमा संखेज्जा । १४१. जत्थ लोभोवजोगा संखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा मायोवजोगा भजियव्वा । १४२. जत्थ णिरयभवग्गहणे कोहोवजोगा असंखेज्जा, तत्थ सेसा सिया संखेज्जा, सिया असंखेज्जा । १४३. जत्थ माणोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा णियमा असंखेज्जा । १४४. सेसा भजियव्वा । १४५. जत्थ मायोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा णियमा असंखेज्जा । १४६. लोभोवजोगा भजियव्वा । १४७. जत्थ लोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोह-माण-मायोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।

भवमें क्रोधकषायके उपयोग-वार और मानकषायके उपयोगवार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं ॥१३८-१३९

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि मायाकषायके उपयोग-वार उत्कृष्ट संख्यात-प्रमाण होनेपर तो क्रोध और मानकषायके उपयोग-वार असंख्यात ही पाये जावेंगे । किन्तु उससे संख्यात-गुणित-हीन मायाके उपयोग-वार होनेपर क्रोध और मानके उपयोग-वार संख्यात ही पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–नरकगतिके जिस भवग्रहणमें मायाकषायके उपयोग-वार संख्यात होते हैं, उस भवमें लोभकषायके उपयोग-वार नियमसे संख्यात ही होते हैं। नारकीके जिस भवग्रहणमें लोभकषायके उपयोग-वार संख्यात होते हैं, उस भवमें क्रोधके उपयोग-वार, मानके उपयोगके वार और मायाके उपयोग-वार भाज्य हैं, अर्थात् संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं । नारकीके जिस भवग्रहणमें क्रोधकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते है, उस भवमें शेष कषायोंके उपयोग-वार संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं । नारकीके जिस भवग्रहणमें मानकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते हैं, उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग-वार नियमसे असंख्यात होते हैं । नारकीके जिस भवग्रहणमें मानकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते हैं, उस भवमें शेष अर्थात् माया और लोभकषायके उपयोग-वार भाज्य हैं, अर्थात् संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं । नारकीके जिस भवग्रहणमें मायाकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते हैं, उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग-वार और मानकषायके उपयोग-वार नियमसे असंख्यात होते हैं । नारकीके जिस भवग्रहणमें मायाकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते हैं, उस भवमें लोभकषायके उपयोग-वार भाज्य हैं, अर्थात् संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी । नारकीके जिस भवग्रहणमें लोभकषायके उपयोग-वार असंख्यात होते हैं, उस भवमें क्रोध, मान और मायाकषायके उपयोग-वार नियमसे असंख्यात होते हैं ॥१४२-१४७॥

१४८. जहा णेरइयाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा, तहा देवाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा। १४९. जहा णेरइयाणं माणोवजोगाणं वियप्पा, तहा देवाणं मायोवजोगाणं वियप्पा। १५०. जहा णेरइयाणं मायोवजोगाणं वियप्पा, तहा देवाणं माणोवजोगाणं वियप्पा। १५१. जहा णेरइयाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा, तहा देवाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा।

१५२. जेसु णेरइयभवेसु असंखेज्जा कोहोवजोगा माण-माया-लोभोवजोगा वा जेसु वा संखेज्जा, एदेसिमट्ठण्हं पदाणमप्पाबहुअं। १५३. तत्थ उवसंदरिसणाए करणं[1]। १५४. एक्कम्हि वस्से जत्तियाओ कोहोवजोगद्धाओ तत्तिएण जहण्णासंखेज्जयस्स भागो जं भागलद्धमेत्तियाणि वस्साणि जो भवो तम्हि असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्धाओ।

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे नारकी जीवोंके क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प कहे गये हैं, उसी प्रकारसे देवोंके लोभकषायसम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प जानना चाहिए। जिस प्रकारसे नारकियोंके मानकषायसम्बन्धी उपयोगवारोंके विकल्प कहे गये हैं, उसी प्रकारसे देवोंके मायाकषायसम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प जानना चाहिए। जिस प्रकार नारकियोंके मायाकषायसम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प कहे गये हैं, उसी प्रकारसे देवोंके मानकषाय-सम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प होते हैं। जिस प्रकारसे नारकियोंके लोभकषायसम्बन्धी उपयोग-वारोंके विकल्प कहे गये हैं, उसी प्रकारसे देवोंके क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग वारोंके विकल्प होते हैं ॥१४८-१५१॥

चूर्णिसू०–नारकी जीवोंके जिन भवोंमें क्रोध, मान, माया और लोभकषायसम्बन्धी उपयोगोंके वार असंख्यात होते हैं, अथवा जिन भवोंमें क्रोध, मान, माया और लोभकषाय-सम्बन्धी उपयोगोंके वार संख्यात होते हैं, तत्सम्बन्धी इन आठों पदोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार है। उनमेंसे अब इन क्रोधादि कषायोंके संख्यात अथवा असंख्यात उपयोग-वारवाले भवोंके विषय-विभाग बतलानेका निर्णय करते हैं–एक वर्षमें जितने क्रोधकषायके उपयोगकाल-वार होते हैं, उतनेसे जघन्य असंख्यातको भाग देवे। जो भाग लब्ध हो, उतने वर्ष-प्रमाण जो भव हैं, उस भवमें क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगकालके वार असंख्यात होते हैं ॥१५२-१५४॥

विशेषार्थ–इस सूत्रके द्वारा क्रोधकषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगकाल-वार अथवा असंख्यात उपयोगकालवारवाले भवग्रहणोंका निर्णय किया गया है। वह इस प्रकार जानना चाहिए–एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर यदि क्रोधकषायका एक उपयोगकाल-वार पाया जाता है तो एक वर्षके भीतर कितने क्रोधकषायके उपयोगकाल-वार प्राप्त होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे एक वर्षके भीतर क्रोधके संख्यात सहस्र उपयोगकाल-वार प्राप्त होते हैं। पुनः इन एक वर्ष-सम्बन्धी क्रोधके उपयोगकाल-वारोंसे जघन्य असंख्यातका भाग करना चाहिए। अर्थात् यदि

१ किमुवसंदरिसणाकरणं णाम ? उवसंदरिसणाकरणं णिदरिसणकरणं णिण्णयकरणमिदि एयट्ठो। जयध०।

१५५. एवं माण-माया-लोभोवजोगाणं। १५६. एदेण कारणेण जे असंखेज्ज-लोभोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा। १५७. जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १५८. जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १५९. जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १६०. जे संखेज्ज-कोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १६१. जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। १६२. जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। १६३. जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया।

संख्यात सहस्र उपयोगकाल-वार एक वर्षके भीतर प्राप्त होते हैं, तो जघन्य परीतासंख्यात-प्रमाण उपयोगोंके काल-वारके कितने वर्ष प्राप्त होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेसे जघन्य-परीतासंख्यातके संख्यातवें भागप्रमाण वर्ष प्राप्त होते हैं। पुनः इतने अर्थात् जघन्यपरीता-संख्यातके संख्यातवें भागप्रमाण वर्षोंका जो एक भव होगा, उसमें क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगकाल-वार असंख्यात होते हैं। इसका कारण यह है कि यदि एक वर्षके भीतर संख्यात सहस्र क्रोधके उपयोगकाल-वार प्राप्त होते हैं, तो जघन्यपरीतासंख्यातके संख्यातवें भागप्रमाण वर्षोंके भीतर कितने उपयोग-वार प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर जघन्यपरीतासंख्यात-प्रमाण क्रोधकषाय-सम्बन्धी उपयोगकाल-वार प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इस सूत्रसे क्रोधके संख्यात और असंख्यात उपयोगवाले भवोंका विषय-विभाग बतलाया। सूत्र-निर्दिष्ट कालसे ऊपरकी आयुवाले सब जीवोंके असंख्यात ही उपयोगकाल-वार देखे जाते हैं। तथा इससे अधस्तन प्रमाणवाले वर्षोंके भवमें क्रोधकषायके उपयोगकाल-वार संख्यात ही होते हैं।

चूर्णिसू०—इसीप्रकार मान, माया और लोभकषायसम्बन्धी संख्यात और असं-ख्यात उपयोगवाले भवोंका विषय-विभाग जानना चाहिये। इसकारणसे जो असंख्यात लोभ-कषायसम्बन्धी उपयोग-वारवाले भव हैं, वे भव सबसे कम हैं। जो असंख्यात मायाकषाय-सम्बन्धी उपयोग-वारवाले भव हैं वे भव ऊपर बतलाये गये भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो असंख्यात मानकषायसम्बन्धी उपयोग-वारवाले भव हैं, वे भव ऊपर कहे गये भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो असंख्यात क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग-वारवाले भव हैं, वे भव ऊपर बतलाए गये मानकषायसम्बन्धी भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो क्रोधकषायसम्बन्धी संख्यात उपयोग-वारवाले भव हैं, वे भव क्रोधके असंख्यात उपयोग-वारवाले भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो मानकषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगवाले भव हैं, वे भव क्रोधके संख्यात उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं। जो मायाकषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगवाले भव हैं, वे भव मानके संख्यात उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं। जो लोभकषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगवाले भव हैं, वे भव मायाके संख्यात उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं ॥१५५-१६३॥

१६४. जहा णेरइएसु, तहा देवेसु। णवरि कोहादो आढवेयव्वो। १६५. तं जहा। १६६. जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा। १६७. जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १६८. जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १६९. जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १७०. जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। १७१. जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। १७२. जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। १७३. जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। १७४. विदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता।

१७५. 'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' त्ति एसा सव्वा वि गाहा पुच्छासुत्तं[1]। १७६. तस्स विहासा। १७७. तं जहा। १७८. उवजोग-

चूर्णिसू०-जिस प्रकारसे नारकियोंमें आठ पद-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकारसे देवोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि देवोंके अल्पबहुत्व कहते समय क्रोधकषायसे कथन प्रारम्भ करना चाहिए। वह इस प्रकार है—देवोंमें जो असंख्यात क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव सबसे कम होते हैं। जो मानकषायसम्बन्धी उपयोगवाले असंख्यात भव हैं, वे भव क्रोधकषायके उपयोगवाले भवोंसे असंख्यातगुणित होते हैं। जो असंख्यात मायाकषाय-सम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव मानकषायके उपयोगवाले भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो असंख्यात लोभकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव मायाकषायके उपयोगवाले भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो संख्यात लोभकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव असंख्यात लोभकषायके उपयोगवाले भवोंसे असंख्यातगुणित हैं। जो संख्यात मायाकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव संख्यात लोभकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं। जो संख्यात मानकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव संख्यात मायाकषायके उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं। जो संख्यात क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगवाले भव हैं, वे भव संख्यात मानकषायके उपयोगवाले भवोंसे विशेष अधिक हैं। इस प्रकार द्वितीय गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ॥१६४-१७४॥

चूर्णिसू०—'उपयोग-वर्गणाएँ किस कषायमें कितनी होती हैं' यह समस्त गाथा पृच्छासूत्र है। अर्थात् इससे क्रोधादिकषाय-विषयक उपयोगवर्गणाओंका ओघ और आदेशसे प्रमाण पूछा गया है। उसकी विभाषा कहते हैं। वह इस प्रकार है—उपयोगवर्गणाएँ

१ तत्थ गाहापुव्वद्धेण 'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' त्ति ओघेण पुच्छाणिद्देसो कओ। पच्छद्धेण वि 'कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति' त्ति आदेसविसया पुच्छा णिद्दिट्ठा त्ति दट्ठव्वा; गदिमग्गणाविसयस्सेदस्स पुच्छाणिद्देसस्स सेसासेसमग्गणाणं देसामासयभावेणावट्ठाणदंसणादो। जयध०

वग्गणाओ दुविहाओ कालोवजोगवग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ य[1]। १७९. कालोवजोगवग्गणओ णाम कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि[2]। १८०. भावोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोदयट्ठाणाणि[3]। १८१. एदासिं दुविहाणं पि वग्गणाणं परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च वत्तव्वं। १८२. तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता।

दो प्रकारकी है—कालोपयोगवर्गणाएँ और भावोपयोगवर्गणाएँ। कषायोंके उपयोगसम्बन्धी कालके जघन्य उत्कृष्ट आदि स्थानोंको कालोपयोगवर्गणाएँ कहते हैं ॥१७५-१७९॥

विशेषार्थ—क्रोधादि कषायोंके साथ जीवके सम्प्रयोग होनेको उपयोग कहते हैं। कषायोंके उपयोगको कषोयोपयोग कहते हैं। इसप्रकारके कषायोपयोगके कालको कषायोपयोगकाल कहते हैं। वर्गणा, विकल्प, स्थान और भेद ये सब एकार्थवाची नाम हैं। कषायके जघन्य उपयोगकालके स्थानसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकालके स्थान तक निरन्तर अवस्थित भेदोंको कालोपयोगवर्गणा कहते हैं।

चूर्णिसू०—कषायोंके उदयस्थानोंको भावोपयोगवर्गणा कहते हैं ॥१८०॥

विशेषार्थ—भावकी अपेक्षा तीव्र-मन्द आदि भावोंसे परिणत कषायोंके जघन्य विकल्पसे लेकर उत्कृष्ट विकल्प तक षड्-वृद्धिक्रमसे अवस्थित उदयस्थानोंको भावोपयोगवर्गणा कहते हैं। वे कषाय-उदयस्थान असंख्यात लोकोंके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण होते हैं। वे उदयस्थान मानकषायमें सबसे कम हैं, क्रोधकषायमें विशेष अधिक हैं, मायाकषायमें विशेष अधिक हैं और लोभकषायमें विशेष अधिक होते हैं।

चूर्णिसू०—इन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंकी प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इस प्रकार तीसरी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ॥१८१-१८२॥

---

१ उवजोगो णाम कोहादि-कसाएहि सह जीवस्स संपजोगो, तस्स वग्गणाओ वियप्पा भेदा त्ति एयट्ठो। जहण्णोवजोगट्ठाणप्पहुडि जाव उक्कस्सोवजोगट्ठाणे त्ति णिरंतरमवट्ठिदाणं तव्वियप्पाणमुवजोगवग्गणाववएसो त्ति वुत्तं होइ। सो च जहण्णुक्कस्सभावो दोहिं पयारेहिं संभवइ कालादो भावदो च। तत्थ कालदो जहण्णोवजोगकालप्पहुडि जावुक्कस्सोवजोगकालो त्ति णिरतरमवट्ठिदाणं वियप्पाणं कालोवजोगवग्गणा त्ति सण्णा; कालविसयादो उवजोगवग्गणाओ कालोवजोगवग्गणाओ त्ति गहणादो। भावदो तिव्व मंदादिभावपरिणदाणं कसायुदयट्ठाणाणं जहण्णवियप्प-पहुडि जावुक्कस्सवियप्पो त्ति छवड्ढिकमेणावट्ठियाणं भावोवजोगवग्गणा त्ति ववएसो; भावविसेसिदाओ उवजोगवग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ त्ति विवक्खियत्तादो। जयध०

२ कोहादिकसायोवजोगजहण्णकालमुक्कस्सकालादो सोहिय सुद्धसेसम्मि एगरूवे पक्खित्ते कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि होंति। जयध०

३ कोहादिकसायाणमेक्केक्कस्स कसायस्स असंखेज्जलोगमेत्ताणि उदयट्ठाणाणि अत्थि। ताणि पुण माणे थोवाणि, कोहे विसेसाहियाणि, मायाए विसेसाहियाणि, लोभे विसेसाहियाणि। एदाणि सव्वाणि समुदिदाणि सग-सगकसायपडिबद्धाणि भावोवजोगवग्गणाओ णाम; तिव्वमंदादिभावणिबंधणत्तादो त्ति। जयध०

१८३. चउत्थीए गाहाए विहासा ।

एकम्हि दु अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण ।
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ।। त्ति

१८४. एदं सव्वं पुच्छासुत्तं । १८५. एत्थ विहासाए दोण्णि उवएसा । १८६. एक्केण उवएसेण[1] जो कसायो सो अणुभागो । १८७. कोधो कोधाणुभागो । १८८. एवं माण-माया-लोभाणं । १८९. तदो का च गदी एगसमएण एगकसायोवजुत्ता वा दुकसायोवजुत्ता वा तिकसायोवजुत्ता वा चदुकसायोवजुत्ता वा त्ति एदं पुच्छासुत्तं । १९०. तदो णिदरिसणं । १९१. तं जहा । १९२. णिरय-देवगदीणमेदे वियप्पा अत्थि, सेसाओ गदीओ णियमा चदुकसायोवजुत्ताओ ।

चूर्णिसू०–अब चौथी गाथाकी अर्थविभाषा की जाती है "एक कषाय-सम्बन्धी एक अनुभागमें और एक ही कालमें कौन गति उपयुक्त होती है, अथवा कौन गति विसदृश अर्थात् विपरीत-क्रमसे उपयुक्त होती है ।" यह समस्त गाथा पृच्छसूत्र है । इस गाथाकी अर्थविभाषामें दो उपदेश पाये जाते हैं । एक अर्थात् अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार जो कषाय है, वही अनुभाग है । अतएव जो क्रोधकषाय है वही क्रोधानुभाग है । इसी प्रकारसे जो मानकषाय है, वही मानानुभाग है । जो मायाकषाय है, वही मायानुभाग है और जो लोभकषाय है, वही लोभानुभाग है । इसलिए कौन गति एक समयमें एक कषायसे उपयुक्त है, अथवा कौन गति एक समयमें दो कषायोंसे उपयुक्त है, अथवा तीन कषायोंसे उपयुक्त है, अथवा चार कषायोंसे उपयुक्त है ? इस प्रकार यह सर्व पृच्छासूत्र है ।।१८३-१८९।।

विशेषार्थ–कौन गति एक समयमें एक कषायसे उपयुक्त है, यह प्रथम पृच्छा है और कौन गति दो, तीन अथवा चार कषायोंसे उपयुक्त है, यह द्वितीय पृच्छा है । जो कि 'कौन गति विसदृश क्रमसे उपयुक्त होती है, इस अन्तिम चरणसे उत्पन्न हुई है ।

चूर्णिसू०–अब इन दोनों पृच्छाओंके अनन्तर उनका निदर्शन अर्थात् निर्णय करते हैं । वह इस प्रकार है–नरकगति और देवगतिमें ये उपर्युक्त विकल्प होते हैं । किन्तु शेष दोनों गतियाँ नियमसे चारों कषायोंसे उपयुक्त होती हैं ।।१९०-१९२।।

विशेषार्थ–नरक और देवगतिमें एक कषायसे उपयुक्त, अथवा दो कषायसे उपयुक्त, अथवा तीन कषायसे उपयुक्त, अथवा चारों कषायोंसे उपयुक्त जीव पाये जाते हैं । इसका कारण यह है कि नरकगतिमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवराशि कालकी अधिकतासे सबसे अधिक पाई जाती है । इसी प्रकार देवगतिमें भी लोभकषायसे उपयुक्त जीवराशि सबसे अधिक पाई जाती है । इसलिए इन दोनों गतियोंमें एक कषायसे उपयुक्त विकल्प पाया जाता है ।

---

१ एक्केण उवएसेण अपवाइज्जंतेणुवएसेणेत्ति वुत्तं होइ । जयध०

१९३. णिरयगईए जइ एक्को कसायो, णियमा कोहो । १९४. जदि दुकसायो, कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो । १९५. जदि तिकसायो, कोहेण सह अण्णदरो तिसंजोगो । १९६. जदि चउकसायो सव्वे चेव कसाया । १९७. जहा णिरयगदीए कोहेण, तहा देवगदीए लोभेण कायव्वा । १९८. एक्केण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि ।

१९९. पवाइज्जंतेण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा । २००. 'एक्कम्मि दु अणुभागे' त्ति, जं कसाय-उदयट्ठाणं सो अणुभागो णाम ? २०१. 'एगकालेणेत्ति' कसायोवजोगद्धट्ठाणेत्ति भणिदं होदि । २०२. एसा सण्णा । २०३. तदो पुच्छा । २०४. का च गदी एक्कम्हि कसाय-उदयट्ठाणे एक्कम्हि वा कसायुवजोगद्धट्ठाणे भवे ?

तथा उस एक कषायके साथ यथासम्भव मान, माया आदि कषायोंके पाये जानेसे दो, तीन और चारों कषायोंसे उपयुक्त जीव पाये जाते हैं । किन्तु शेष तिर्यंच और मनुष्यगतिमें चारों कषायोंसे उपयुक्त ही जीवराशि ध्रुवरूपसे पाई जाती है, इसलिये उनमें शेष विकल्प सम्भव नहीं हैं ।

चूर्णिसू०–नरकगतिमें यदि एक कषाय हो, तो वह नियमसे क्रोधकषाय होती है । यदि दो कषाय हों, तो क्रोधके साथ शेष कषायोंमेंसे कोई एक कषाय संयुक्तरूपसे रहती है । जैसे–क्रोध और मान, क्रोध और माया, अथवा क्रोध और लोभ । यदि तीन कषाय हो, तो क्रोधके साथ शेष कषायोंमेंसे कोई दो कषाय रहेंगी । जैसे क्रोध-मान, माया; अथवा क्रोध, मान, लोभ; अथवा क्रोध माया और लोभ । यदि चारों कषाय हो, तो क्रोध, मान, माया और लोभ ये सभी कषाय रहेंगी ॥१९४-१६४॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार नरकगतिमें क्रोधके साथ शेष विकल्पोंका निर्णय किया है, उसी प्रकार देवगतिमें लोभकषायके साथ शेष विकल्पोंका निर्णय करना चाहिए । इसप्रकार एक अर्थात् अप्रवाह्यमान उपदेशसे चौथी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त होती है ॥१९७-१९८॥

चूर्णिसू०-अब प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चौथी गाथाकी अर्थविभाषा की जाती है 'एक अनुभागमें' ऐसा कहनेपर जो कषाय-उदयस्थान है, उसीका नाम अनुभाग है ॥२००॥

विशेषार्थ–अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार 'जो कषाय है, वही अनुभाग है' इस प्रकार व्याख्यान किया था । किन्तु प्रवाह्यमान उपदेशानुसार 'जो कषायोंके उदयस्थान हैं, वह अनुभाग है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए ।

चूर्णिसू०–'एक कालसे' इस पदका अर्थ कषायोपयोग कालस्थान इतना लेना चाहिए । यह संज्ञा है । अर्थात् अनुभाग यह संज्ञा कषायोपयोगकालस्थानकी जानना चाहिए । इसलिए इस संज्ञा-विशेषका आलम्बन लेकर गाथासूत्रानुसार पृच्छा करना चाहिए ॥२०१-२०३॥

चूर्णिसू०–एक कषाय-उदयस्थानमें अथवा एक कषाययोगकालस्थानमें कौन गति

२०५. अथवा अणेगेसु कसाय-उदयट्ठाणेसु अणेगेसु वा कसाय-उवजोगद्धट्ठाणेसु। २०६. एसा पुच्छा। २०७. अयं णिद्देसो। २०८. तसा एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो। २०९. कसाय-उवजोगद्धट्ठाणेसु पुण उक्कस्सेण असंखेज्जाओ सेढीओ। २१०. एवं भणिदं होइ सव्वाओ गदीओ णियमा अणेगेसु कसायुदयट्ठाणेसु अणेगेसु च कसायउवजोगद्धट्ठाणेसु त्ति।

२११. तदो एवं परूवणं कादूण णवहिं पदेहिं[1] अप्पाबहुअं। २१२. तं जहा। २१३. उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा थोवा[2]। २१४.

उपयुक्त होती है, अथवा अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें और अनेक कषायोपयोगकालस्थानोंमें कौन गति उपयुक्त होती है? यह पृच्छा है। उसके निर्णय करनेके लिये अब यह निर्देश किया जाता है। वह इस प्रकार है–एक एक कषायके उदयस्थानमें त्रसकायिक जीव उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं ॥२०४-२०८॥

विशेषार्थ–यहाँपर 'एक कषाय-उदयस्थानमें कौन गति उपयुक्त है' इस पृच्छाका निर्णय त्रसजीवोंके आश्रयसे किया जा रहा है। जिसका अभिप्राय यह है कि यदि आवलीके असंख्यातवें भागमात्र त्रसजीवोंका एक कषाय-उदयस्थान पाया जाता है, तो जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रसजीवराशिके भीतर कितने कषाय-उदय-स्थान प्राप्त होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर असंख्यात जगच्छ्रेणीप्रमाण कषाय-उदयस्थान उपलब्ध होते हैं। यद्यपि सभी कषायोदयस्थानोंमें त्रसजीवोंका अवस्थान सदृशरूपसे सम्भव नहीं है, तो भी समीकरण करनेके लिए इस प्रकारसे त्रैराशिक किया गया है।

चूर्णिसू०–किन्तु एक एक कषायके उपयोगकाल स्थानमें उत्कर्षसे असंख्यात जगच्छ्रेणी प्रमाण त्रसजीव रहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त व्याख्यानसे यह अर्थ निकलता है कि सभी गतिवाले जीव नियमसे अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें और अनेक कषायोपयोग-कालस्थानोंमें उपयुक्त रहते हैं ॥२०९-२१०॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार गाथाके अर्थका प्ररूपण करके अब गाथासे सूचित अल्पबहुत्वको नौ पदोंके द्वारा कहते हैं। वह अल्पबहुत्व इस प्रकार है–उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायोपयोगकालमें जीव सबसे कम होते हैं। इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें

१ काणि ताणि णव पदाणि? माणादीणमेक्केक्कस्स कसायस्स जहण्णुक्कस्सा जहण्णाणुक्कस्सभेयभिण्णकसायुदयट्ठाणपडिबद्धाणं तिण्हं पदाणं कसायोवजोगद्धाट्ठाणेहिं तहा चेव तिहाविहत्तेहिं संजोगेण समुप्पण्णाणि णव पदाणि होंति। जयध०

२ उक्कस्सकसायोदयट्ठाणं णाम उक्कस्साणुभागोदयजणिदो कसायपरिणामो असंखेज्जलोयभेयभिण्णाणमज्झवसाणट्ठाणाणं चरिमज्झवसाणट्ठाणमिदि वुत्तं होदि। उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए त्ति वुत्ते माणकसायस्स उक्कस्सकालोवजोगवग्गणाए गहणं कायव्वं। तदो एदेहिं दोहि उक्कस्सपदेहिं माणकसायपडिबद्धेहिं अण्णोण्णसंजुत्तेहि परिणदा तसजीवा थोवा त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो? × × दोण्ह पि उक्कस्सभावेण परिणमंताणं सुट्ठु विरलाणमुवएसादो। जयध०

जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । २१५. अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । २१६. जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । २१७. जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । २१८. अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । २१९. अणुक्कस्समजहण्णेसु अणुभागट्ठाणेसु उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । २२०. जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । २२१. अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । २२२. एवं सेसाणं कसायाणं । २२३. एत्तो छत्तीसपदेहि अप्पाबहुअं कायव्वं ।

और जघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव उपर्युक्त पदसे असंख्यातगुणित होते हैं । इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट-मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे जघन्य कषायोदयस्थानमे और जघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानमें और जघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे अनुत्कृष्ट अजघन्य अनुभागस्थानमें और अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं ॥२११-२२१॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे उपर्युक्त नौ पदोंके द्वारा मानकषायोपयोगसे परिणत जीवोंका निर्णय किया गया है, उसी प्रकारसे क्रोध माया और लोभ, इन शेष तीन कषायोपयोगोंसे परिणत जीवोंके अल्पबहुत्वका भी निर्णय करना चाहिए ॥२२२॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे इसी उपर्युक्त स्वस्थानपदसम्बन्धी अल्पबहुत्वसे परस्थानपदसम्बन्धी अल्पबहुत्व भी छत्तीस पदोंके द्वारा सिद्ध करना चाहिए ॥२२३॥

विशेषार्थ–वह छत्तीस पदगत अल्पबहुत्व इसप्रकार है–उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें उपयुक्त जीव सबसे कम होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें उत्कृष्ट माया-कषायके उपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें उत्कृष्ट लोभकषायके उपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें जघन्य मानकषायके उपयोगकालसे परिणत जीव असंख्यातगुणित होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें जघन्य क्रोधोपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें जघन्य मायाकषायके उपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे उत्कृष्ट कषायोदय-

स्थानमें जघन्य लोभकषायके उपयोगकालसे परिणत जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधकषायके उपयोग कालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे उत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे, जघन्य कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे, जघन्य कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और जघन्य मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और जघन्य क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और जघन्य मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और जघन्य लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे जघन्य कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और उत्कृष्ट लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और जघन्य मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणित होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और जघन्य क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और जघन्य मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और जघन्य लोभकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानकषायके उपयोगकालमें जीव असंख्यात-

२२४. एवं चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता ।

२२५. 'केवडिगा उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणाकसाएसु' चेति एदिस्से गाहाए अत्थविहासा । २२६. एसा गाहा सूचणासुत्तं । २२७. एदीए सूचिदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि । २२८. तं जहा । २२९. संतपरूवणा, दव्वपमाणं खेत्तपमाणं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च । २३०. 'केवडिगा उवजुत्ता' त्ति दव्वपमाणाणुगमो । २३१. 'सरिसीसु च वग्गणाकसाएसु' त्ति कालाणुगमो । २३२. 'केवडिगा च कमाए' त्ति भागाभागो । २३३. 'के के च विसिस्सदे केणेत्ति' अप्पाबहुअं । २३४. एवमेदाणि चत्तारि अणिओगद्दाराणि सुत्तणिबद्धाणि । २३५. सेसाणि सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

गुणित होते हैं । इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं। इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदय-स्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायाकषायके उपयोगकालमें जीव विशेष अधिक होते हैं । इससे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषायोदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभकषायके उपयोग-कालमें जीव विशेष अधिक होते हैं । इस प्रकारसे ओघकी अपेक्षा परस्थानपद-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका निरूपण किया ।

चूर्णिसू०—इस प्रकार चौथी सूत्रगाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ॥२२४॥

चूर्णिसू०—अब 'सदृश कषायोपयोग-वर्गणाओंमें कितने जीव उपयुक्त हैं' इस पाँचवीं गाथाकी अर्थविभाषा कहते हैं । यह गाथा सूचनासूत्र है; क्योंकि, इस गाथासे आठ अनु-योगद्वार सूचित किये गये हैं । वे आठ अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं—सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमा-णाणुगम, क्षेत्रप्रमाणाणुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम । 'कितने जीव उपयुक्त हैं', गाथाके इस प्रथम चरणसे द्रव्यप्रमाणानुगम नामक अनुयोगद्वार सूचित किया गया है । 'सदृश अर्थात् एक कषायसे प्रतिबद्ध कषायो-पयोगवर्गणाओंमें जीव कितने काल तक उपयुक्त रहते हैं' गाथाके इस द्वितीय चरणसे काला-नुगम नामक अनुयोगद्वार सूचित किया गया है । 'किस कषायमें कषायोपयुक्त सर्व जीवोंका कितनेवां भाग उपयुक्त है' गाथाके इस तृतीय चरणसे भागाभागानुगम नामक' अनुयोग-द्वार सूचित किया गया है । 'किस-किस विवक्षित कषायसे उपयुक्त जीव किस अविवक्षित कषायसे उपयुक्त जीवोंसे विशिष्ट अधिक होते हैं' गाथाके इस अन्तिम चरणसे अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार सूचित किया गया है । इसप्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम, कालानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व, ये चार अनुयोगद्वार तो गाथासूत्रमें ही निबद्ध हैं । शेष अर्थात् सत्प्ररूपणा, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और अन्तरानुगम ये चार अनुयोगद्वार सूचनारूप अनुमानसे ग्रहण करना चाहिए ॥२२५-२३५॥

२३६. कसायोवजुत्ते अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-दंसण लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण*। २३७. महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा।

चूर्णिसू०-उक्त आठों अनुयोगद्वारोंसे कषायोपयुक्त जीवोंका गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार, इन तेरह मार्गणास्थानरूप अनुगमोंके द्वारा अन्वेषण करके और पुनः चतुर्गति-सम्बन्धी अल्पबहुत्वविषयक महादंडकका निरूपण करनेपर पाँचवीं गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त होती है ॥२३६-२३७॥

विशेषार्थ-उक्त समर्पणसूत्रसे चूर्णिकारने प्रथम गति आदि सर्व मार्गणास्थानोंमें सत्प्ररूपणा आदि आठों अनुयोगद्वारोंसे क्रोधादि कषायोपयुक्त जीवोंके अन्वेषण करनेकी सूचना की है। पुनः गति, इन्द्रिय आदि मार्गणा-विषयक कषायोपयुक्त जीवोंके अल्पबहुत्वके निरूपणकी सूचना की है। इस अल्पबहुत्वदंडकको महादंडक कहनेका कारण यह है कि जिस प्रकार चारों कषायोंसे उपयुक्त जीवोंका गतिमार्गणा-सम्बन्धी एक अल्पबहुत्व-दंडक होगा, उसी प्रकार, इन्द्रियमार्गणा-सम्बन्धी भी दूसरा अल्पबहुत्व-दंडक होगा, कायमार्गणा-सम्बन्धी तीसरा अल्पबहुत्व-दंडक होगा। इस प्रकार सर्व मार्गणाओंके अल्पबहुत्वदंडकोंके समुदायरूप इस अल्पबहुत्वदंडकको 'महादंडक' इस नामसे सूचित किया है। इस महादंडककी दिशा बतलानेके लिए यहाँपर गतिमार्गणा-सम्बन्धी अल्पबहुत्व-दंडकका निरूपण किया जाता है-मनुष्यगतिमें मानकषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम हैं, क्रोधकषायसे उपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं, मायाकषायसे उपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं, और लोभकषायसे उपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं। मनुष्यगतिके लोभकषायोपयुक्त जीवोंसे नरकगतिमें लोभकषायोपयुक्त जीव असंख्यातगुणित हैं, मायाकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं, मानकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं और क्रोधकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं। नरकगतिके क्रोधकषायोपयुक्त जीवोंसे देवगतिमें क्रोधकषायोपयुक्त जीव असंख्यातगुणित हैं, मानकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं, मायाकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं और लोभकषायोपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं। देवगतिके लोभकषायोपयुक्त जीवोंसे तिर्यग्गतिके मानकषायोपयुक्त जीव अनन्तगुणित हैं। क्रोधकषायोपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं, मायाकषायोपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं और लोभकषायोपयुक्त जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार इन्द्रिय, काय, आदि शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व-दंडकोंके द्वारा चारों कषायोंसे उपयुक्त जीवोंके अल्पबहुत्वका निर्णय करना चाहिए, ऐसा उक्त समर्पणसूत्रका अभिप्राय है।

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें-'एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १६४९)। परन्तु इस सूत्रकी टीकासे ही उक्त अंशके सूत्रता सिद्ध होती है।

२३८. 'जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते' त्ति एदिस्से छट्ठीए गाहाए कालजोणी[1] कायव्वा। २३९. तं जहा। २४०. जे अस्सि समए माणोवजुत्ता, तेसिं तीदे काले माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो इदि एवं तिविहो कालो[2]। २४१. कोहे च तिविहो कालो। २४२. मायाए तिविहो कालो। २४३. लोभे तिविहो कालो। २४४. एवमेसो कालो माणोवजुत्ताणं बारसविहो।

चूर्णिसू०—'जो जो जीव जिस कषायमें वर्तमानकालमें उपयुक्त हैं, क्या वे जीव अतीतकालमें उसी कषायसे उपयुक्त थे' इस छठी गाथाकी काल-योनि अर्थात् काल-मूलक प्ररूपणा करना चाहिए। वह काल-मूलक प्ररूपणा इस प्रकार है—जो जीव इस वर्तमान-समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं, उनका अतीतकालमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल, इस प्रकारसे तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है ॥२३८-२४०॥

विशेषार्थ-जिस कालविशेषमें विवक्षित वर्तमानकालिक मानकषायोपयुक्त समस्त जीवराशि एकमात्र मानकषायोपयोगसे ही परिणत पाई जाती है, उस कालको 'मानकाल' कहते हैं। इसी विवक्षित जीवराशिमेंसे जिस काल-विशेषमें एक भी जीव मानकषायमें उपयुक्त न होकर क्रोध, माया और लोभकषायोंमें ही यथाविभाग परिणत हो, उस कालको 'नोमानकाल' कहते हैं। इसका कारण यह है कि विवक्षित मानकषायके अतिरिक्त शेष कषाय 'नोमान' इस नामसे व्यवहृत किये जाते हैं। पुनः इसी विवक्षित जीवराशिमेंसे जिस कालमें थोड़ी जीवराशि मानकषायमे उपयुक्त हो और थोड़ी जीवराशि क्रोध, माया अथवा लोभ-कषायमें यथासंभव उपयुक्त होकर परिणत हो, उस कालको 'मिश्रकाल' कहते हैं। मान-कषायसे उपयुक्त जीवोंका उक्त तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है।

चूर्णिसू०—क्रोधकषायमें तीन प्रकारका काल होता है। मायाकषायमें तीन प्रकारका काल होता है। लोभकषायमें तीन प्रकारका काल होता है। इस प्रकार मानकषायसे उपयुक्त जीवोंका यह काल बारह प्रकारका है ॥२४१-२४४॥

विशेषार्थ—ऊपर जिस प्रकार वर्तमान समयमें मानकषायोपयुक्त जीवराशिका अतीत-कालमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल, यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ बत-लाया गया है, उसी प्रकारसे उसी मानकषायसे उपयुक्त जीवराशिका अतीत कालमें क्रोध-कषायसम्बन्धी क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ

---

१ कालो चेव जोणी आसयो पयदपरूवणाए कायव्वो त्ति वुत्तं होइ। जयध०

२ तत्थ जम्हि कालविसेसे एसो आदिट्ठो (विवक्खिदो) वट्टमाणसमयमाणोवजुत्तजीवरासी अण्णूणाहिओ होदूण माणोवजोगेणेव परिणदो लब्भइ, सो माणकालो त्ति भण्णइ। एसो चेव णिरुद्धजीवरासी जम्हि कालविसेसे एगो वि माणे अहोदूण कोह-माया-लोभेसु चेव जहापविभागं परिणदो सो णोमाण-कालो त्ति भण्णदे, माणवदिरित्तसेसकसायाणं णोमाणववएसारुहत्तेणावलंबणादो। पुणो इमो चेव णिरुद्ध-जीवरासी जम्हि काले थोवो माणोवजुत्तो, थोवो कोह-माया-लोभेसु जहासंभवमुवजुत्तो होदूण परिणदो दिट्ठो; सो मिस्सयकालो णाम। जयध०

२४५. अस्सि समए कोहोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णत्थि, णोमाणकालो मिस्सयकालो य । २४६. अवसेसाणं णवविहो कालो । २४७. एवं कोहोवजुत्ताणमेक्कारसविहो कालो विदिक्कंतो । २४८. जे अस्सि समए मायोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो, कोहकालो दुविहो, मायाकालो तिविहो, लोभकालो तिविहो ।

है । उसी मानकषायसे उपयुक्त जीवराशिका अतीतकालमें मायाकषाय-सम्बन्धी मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल; तथा लोभकषाय-सम्बन्धी लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकाल, इस प्रकारसे तीन तीन प्रकारका और भी काल व्यतीत हुआ है । इस प्रकारसे उपर्युक्त चारों कषाय-सम्बन्धी तीनों कालोंके भेद मिलाकर मानकषायसे उपयुक्त जीवोंका यह काल बारह प्रकारका हो जाता है ।

चूर्णिसू०—जो जीव इस वर्तमान समयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त हैं, उनका अतीत कालमें मानकाल नहीं है, किन्तु नोमानकाल और मिश्रकाल, ये दो ही प्रकारके काल होते हैं ॥२४५-२४६॥

विशेषार्थ—वर्तमान समयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें मानकाल न होनेका कारण यह है कि क्रोधकषायका काल अधिक होनेसे क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवराशि बहुत है, किन्तु मानकषायका काल अल्प होनेसे मानकषायसे उपयुक्त जीवराशि कम है । इसलिए वर्तमान समयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त होकर यदि कोई विवक्षित जीवराशि अवस्थित है, तो अतीतकालमें एक ही समयमें वही सबकी सब जीवराशि मानकषायसे उपयुक्त होकर नहीं रह सकती है । इसलिए यहाँपर 'मानकाल नहीं है' ऐसा कहा है । नोमानकाल और मिश्रकाल होते हैं । इसका कारण यह है कि विवक्षित जीवराशिका मानव्यतिरिक्त शेष कषायोंमें अवस्थान पाये जानेसे नोमानकाल बन जाता है, तथा मान तथा मानसे भिन्न माया और लोभादि कषायोंमें यथासंभव अवस्थान पाये जानेसे मिश्रकाल बन जाता है ।

चूर्णिसू०—उन्हीं वर्तमान समयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीत कालमें मानकषायके अतिरिक्त अवशेष कषायोंका नौ प्रकारका काल होता है । इस प्रकार क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें ग्यारह प्रकारका काल व्यतीत हुआ है ॥२४६-२४७॥

विशेषार्थ—क्रोधकाल, नोक्रोधकाल, मिश्रकाल, इस प्रकारसे प्रत्येक कषायके तीन-तीन प्रकारके काल होते हैं । अतएव चारों कषायोंके कालसम्बन्धी बारह भेद होते हैं । इनमेंसे वर्तमान समयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें 'मानकाल' नहीं होता है, इसका कारण ऊपर बतला आये हैं । अतः उस एक भेदको छोड़कर शेष ग्यारह भेदरूप काल क्रोधकषायसे वर्तमान समयमें उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें व्यतीत हुआ है; ऐसा कहा है ।

चूर्णिसू०—जो जीव वर्तमान समयमें मायाकषायके उपयोगसे उपयुक्त हैं, उनके अतीतकालमें दो प्रकारका मानकाल, दो प्रकारका क्रोधकाल, तीन प्रकारका माया और तीन प्रकारका लोभकाल व्यतीत हुआ है ॥२४८॥

२४९. एवं मायोवजुत्ताणं दसविहो कालो ।

२५०. जे अस्सिं समए लोभोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो, कोह-कालो दुविहो, मायाकालो दुविहो, लोभकालो तिविहो । २५१. एवमेसो कालो लोहोवजुत्ताणं णवविहो । २५२ एवमेदाणि सव्वाणि पदाणि बादालीसं भवंति । २५३. एत्तो बारस सत्थाणपदाणि गहियाणि ।

२५४. कधं सत्थाणपदाणि भवंति ? २५५. माणोवजुत्ताणं माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो । २५६. कोहोवजुत्ताणं कोहकालो णोकोहकालो मिस्सय-कालो । २५७. एवं मायोवजुत्त-लोहोवजुत्ताणं पि ।

विशेषार्थ–यहाँपर मान और क्रोधकषाय-सम्बन्धी दो दो प्रकारके ही काल बतलाये गये हैं, अर्थात् मानकाल और क्रोधकालको नहीं बतलाया गया है; इसका कारण यह है कि वर्तमान समयमें मायाकषायसे उपयुक्त जीवराशिका काल मान और क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवराशिके कालसे अधिक पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार वर्तमान समयमें मायाकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें चारों कषायसम्बन्धी दश प्रकारका काल पाया जाता है । जो जीव वर्तमानसमयमें लोभकषायके उपयोगसे उपयुक्त हैं, उनके अतीतकालमें मानकाल दो प्रकारका, क्रोधकाल दो प्रकारका, मायाकाल दो प्रकारका और लोभकाल तीन प्रकारका पाया जाता है ॥२४९ २५०॥

विशेषार्थ–ऊपर बतलाये गये चारों कषायोंके काल-सम्बन्धी बारह भेदोंमेंसे मानकाल, क्रोधकाल और मायाकाल, ये तीन भेद नहीं होते हैं । इसका कारण यह है कि वर्तमान-समयमें लोभकषायसे उपयुक्त जीवराशिका काल क्रोध, मान और मायाकषायके कालसे अधिक है ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार वर्तमानसमयमें लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालमें चारों कषायसम्बन्धी यह उपयोगका काल नौ प्रकारका होता है । इस प्रकारसे ये ऊपर बतलाये गये चारों कषायोंके कालसम्बन्धी पद ब्यालीस होते हैं ॥२५१-२५२॥

विशेषार्थ–ऊपर मानकषायके कालसम्बन्धी बारह भेद, क्रोधकषायके ग्यारह भेद, मायाकषायके दश भेद और लोभकषायके नौ भेद बतलाये गये हैं । उन सब भेदोंको मिलानेसे (१२+११+१०+९=४२) ब्यालीस भेद हो जाते हैं ।

चूर्णिसू०–इन उक्त ब्यालीस भेदोंमेंसे बारह स्वस्थानपदोंको अल्पबहुत्वके कहनेके लिए ग्रहण करना चाहिए ॥२५३॥

शंका–वे बारह स्वस्थानपद कैसे होते हैं ? ॥२५४॥

समाधान–मानकषायसे उपयुक्त जीवोंका मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल; क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंका क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल; इसी प्रकार मायाकषायसे उपयुक्त जीवोंका मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल; तथा लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंका लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकाल; इस प्रकार ये बारह स्वस्थानपद होते हैं ॥२५५-२५७॥

२५८. एदेसिं बारसण्हं पदाणमप्पाबहुअं। २५९. तं जहा। २६०. लोभोवजुत्ताणं लोभकालो थोवो। २६१. मायोवजुत्ताणं मायकालो अणंतगुणो। २६२. कोहोवजुत्ताणं कोहकालो अणंतगुणो। २६३. माणोवजुत्ताणं माणकालो अणंतगुणो। २६४. लोभोवजुत्ताणं णोलोभकालो अणंतगुणो। २६५. मायोवजुत्ताणं णोमायकालो अणंतगुणो। २६६. कोहोवजुत्ताणं णोकोहकालो अणंतगुणो। २६७. माणोवजुत्ताणं णोमाकालो अणंतगुणो। २६८. माणोवजुत्ताणं मिस्सयकालो अणंतगुणो। २६९. कोहोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ। २७०. मायोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ। २७१. लोभोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहियो।

२७२. एत्तो बादालीसपदप्पाबहुअं कायव्वं[1]।

चूर्णिसू०–अब इन बारह स्वस्थानपदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह अल्पबहुत्व इस प्रकार है वर्तमानसमयमें लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी लोभका काल सबसे कम है। वर्तमानसमयमें मायाकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मायाका काल उपर्युक्त लोभकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी क्रोधका काल उपर्युक्त मायाकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें मानकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मानका काल उपर्युक्त क्रोधकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी नोलोभकाल उपर्युक्त मानकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें मायाकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी नोमायाकाल उपर्युक्त नोलोभकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी नोक्रोधकाल उपर्युक्त नोमायाकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें मानकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी नोमानकाल उपर्युक्त नोक्रोधकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें मानकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मिश्रकाल उपर्युक्त नोमानकालसे अनन्तगुणा है। वर्तमानसमयमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मिश्रकाल उपर्युक्त मिश्रकालसे विशेष अधिक है। वर्तमानसमयमें माया-कषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मिश्रकाल उपर्युक्त मिश्रकालसे विशेष अधिक है। वर्तमानसमयमें लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंके अतीतकालसम्बन्धी मिश्रकाल उपर्युक्त मिश्रकालसे विशेष अधिक है ॥२५८-२७१॥

चूर्णिसू०–इस स्वस्थानपद-सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणाके पश्चात् पूर्वमें बतलाये गये ब्यालीस पदोंके कालसम्बन्धी अल्पबहुत्वका प्ररूपण करना चाहिए ॥२७२॥

विशेषार्थ–इस सूत्रकी टीका करते हुए जयधवलाकार लिखते हैं कि आज वर्तमान

१ एत्तो बादालीसपदणिबद्धं परत्थाणप्पाबहुअं पि चिंतिय णेदव्वमिदि वुत्तं होइ। तं पुण बादालीसपदमप्पाबहुअं संपहियकाले विसिट्ठोवएसाभावादो ण सम्मवगम्मदि त्ति ण तव्विवरणं कीरदे। जयध०

२७३. तदो छट्ठी गाहा समत्ता भवदि ।

२७४. 'उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहियं वा वि' त्ति एदम्मि अद्धे एक्को अत्थो, विदिये अद्धे एक्को अत्थो, एवं दो अत्था ।

२७५. पुरिमद्धस्स विहासा । २७६. एत्थ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ कसाय-उदयट्ठाणाणि च उवजोगद्धट्ठाणाणि च । २७७. एदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उव-जोगवग्गणाओ त्ति वुच्चंति । २७८. उवजोगद्धट्ठाणेहि* ताव केत्तिएहिं विरहिदं, केहिं

कालमें विशिष्ट उपदेशका अभाव होनेसे वह व्यालीस पद-सम्बन्धी अल्पबहुत्व सम्यक् ज्ञात नहीं है, इसीलिए उसका प्ररूपण नहीं किया गया है ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार छठी गाथाकी अर्थ विभाषा समाप्त हुई ॥२७३॥

चूर्णिसू०–'कितनी उपयोग-वर्गणाओंसे कौन स्थान अविरहित पाया जाता है, और कौन स्थान विरहित' ? इस गाथाके पूर्वार्धमें एक अर्थ कहा गया है और गाथाके उत्तरार्धमें एक अर्थ । इस प्रकार इस गाथामें दो अर्थ सम्बद्ध हैं ॥२७४॥

विशेषार्थ–गाथाके पूर्वार्धमें दो प्रकारकी वर्गणाओंको लेकर उनमें जीवोंसे रहित अथवा भरित (सहित) स्थानोंकी प्ररूपणा करनेवाला प्रथम अर्थ निबद्ध है । तथा गाथाके उत्तरार्धमें कषायोपयुक्त जीवोंकी गतियोंका आश्रय लेकर तीन प्रकारकी श्रेणियोंका अल्पबहुत्व सूचित किया गया है । यह दूसरा अर्थ है । इस प्रकारसे इस गाथामें दो अर्थ सम्बद्ध हैं, ऐसा कहा गया है । उपयोग-वर्गणास्थानोंका तथा तीनों प्रकारकी श्रेणियोंका वर्णन आगे चूर्णिकार स्वयं करेंगे ।

चूर्णिसू०–अब इस गाथासूत्रके पूर्वार्धकी अर्थविभाषा की जाती है–इस गाथामें कही गई उपयोगवर्गणाएँ दो प्रकारकी होती हैं–कषायोदयस्थान रूप और उपयोगकाल-स्थान रूप ॥२७५-२७६॥

विशेषार्थ–क्रोधादि प्रत्येक कषायके जो असंख्यात लोकोंके प्रदेश-प्रमाण उदय-अनुभाग-सम्बन्धी विकल्प हैं, उन्हें कषायोदय-स्थान कहते हैं । क्रोधादि प्रत्येक कषायके जो जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तकके भेद हैं, उन्हें उपयोगकाल-स्थान कहते हैं ।

चूर्णिसू०–इन दोनों ही प्रकारके स्थानोंको 'उपयोगवर्गणा' इस नामसे कहते हैं ॥२७७॥

शंका–किन जीवोंसे किस गतिमें अविच्छिन्नरूपसे उपयोगकालस्थानोंके द्वारा कौन स्थान विरहित अर्थात् शून्य पाया जाता है, और कौन स्थान अविरहित अर्थात् परिपूर्ण पाया जाता है ? ॥२७८॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'उवजोगद्धट्ठाणेहिं' के स्थानपर 'उवजोगट्ठाणणि' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १६५८) पर वह इसी सूत्रकी टीकाके अनुसार अशुद्ध है ।

कम्हि अविरहिदं ? २७९. एत्थ मग्गणा । २८०. णिरयगदीए एगस्स जीवस्स कोहोवजोगद्धट्ठाणेसु णाणाजीवाणं जवमज्झं । २८१. तं जहा ठाणाणं संखेज्जदिभागे २८२. एगगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमावलियवग्गमूलस्स[1] असंखेज्जदिभागो ।

२८३. हेट्ठा जवमज्झस्स सव्वाणि गुणहाणि-ट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि सदा । २८४. सव्व-अद्धट्ठाणाणं पुण असंखेज्ज भागा आवुण्णा । २८५. उवरिम-जवमज्झस्स जहण्णेण गुणहाणिट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागो आवुण्णा । उक्कस्सेण सव्वाणि गुणहाणि-ट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि । २८६.जहण्णेण अद्धट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो । उक्क-स्सेण अद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा आउण्णा। २८७.एसो उवएसो पवाइज्जइ । २८८. अण्णो उवदेसो सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि अविरहियाणि जीवेहिं उवजोगद्धट्ठाणाण-

समाधान–इस शंकाके उत्तरस्वरूप आगे कहे जानेवाली मार्गणा की जाती है । नरकगतिमें एक जीवके क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंमें नानाजीवोंकी अपेक्षा यवमध्य होता है । वह यवमध्य सम्पूर्ण उपयोग-अद्धास्थानोंके संख्यातवें भागमें होता है । यवमध्यके ऊपर और नीचे एक गुणवृद्धि और एक गुणहानिरूप स्थान आवलीके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

चूर्णिसू०–यवमध्यके अधस्तनवर्ती सर्व गुणहानिस्थानान्तर (कपायोदय-स्थान) आपूर्ण हैं, अर्थात् जीवोंसे भरे हुए हैं । किन्तु सर्व-अद्धास्थानों अर्थात् उपयोगकाल स्थानोंका असंख्यात बहुभाग ही आपूर्ण है । अर्थात् उपयोगकाल-स्थानोंका असंख्यात एक भाग जीवोंसे शून्य पाया जाता है । यवमध्यके ऊपरवाले गुणहानिस्थानान्तरोंका जघन्यसे संख्यातवाँ भाग जीवोंसे परिपूर्ण है और उत्कर्पसे सर्वगुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे परिपूर्ण हैं । जघन्यसे यवमध्यके उपरिम उपयोगकालस्थानोंका संख्यातवाँ भाग जीवोंसे परिपूर्ण है और उत्कर्षसे अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग जीवोंसे आपूर्ण है ॥२७९-२८६॥

चूर्णिसू०–यह उपयुक्त सर्व कथन प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा किया गया है । किन्तु अप्रवाह्यमान उपदेश तो यह है कि सभी यवमध्यके अर्थात् ऊपर और नीचेके सर्व गुणहानिस्थानान्तर सर्वकाल जीवोंसे परिपूर्ण ही पाये जाते हैं । उपयोगकाल-स्थानोंका असंख्यात बहुभाग तो जीवोंसे परिपूर्ण रहता है, किन्तु शेष असंख्यात एक भाग जीवोंसे विरहित पाया जाता है । इन दोनों ही उपदेशोंकी अपेक्षा त्रसजीवोंके कषायोदयस्थान जानना चाहिए ॥२८७-२८८॥

विशेषार्थ–ऊपर जिस प्रकार नरकगतिकी अपेक्षा कषायोदयस्थानोंका निरूपण किया है, उसी प्रकार अन्य मार्गणाओंकी अपेक्षा त्रसजीवोंके कपायोदयस्थानोंका वर्णन जानना चाहिए । इस विषयमें दोनों उपदेशोंकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।

१ आवलिया णाम पमाणविसेसो, तिस्से वग्गमूलमिदि वुत्ते तप्पढमवग्गमूलस्स गहणं कायव्वं । जयध०

मसंखेज्जा भागा अविरहिदा* । २८९.एदेहिं देहिं उवदेसेहिं कसाय-उदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि तसाणं । २९०. तं जहा । २९१. कसायुदयट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा[1] । २९२. तेसु जत्तिया तसा तत्तियमेत्ताणि आवुण्णाणि ।

२९३. कसायुदयट्ठाणेसु जवमज्झेण जीवा रांति । २९४. जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा[2] । २९५. विदिए वि तत्तिया चेव । २९६. एवमसंखेज्जेसु लोगट्ठाणेसु तत्तिया चेव । २९७. तदो पुणो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ । २९८. तदो पुण असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणे तत्तिया चेव । २९९. तदो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ । ३००. एवं गंतूण उक्कस्सेण जीवा एक्कम्हि ट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

चूर्णिसू०—वह इस प्रकार है—कषायोंके उदयस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं । उनमें जितने त्रस जीव हैं, उतने कषायोदयस्थान त्रस जीवोंसे आपूर्ण हैं ॥२९०-२९२॥

विशेषार्थ—असंख्यात लोकोंके जितने प्रदेश हैं उतने त्रसजीवोंके कषायोदयस्थान होते हैं । उनमेंसे एक-एक कषायोदयस्थानपर एक-एक त्रसजीव रहता है, यह अवस्था किसी काल-विशेषमें ही संभव है, क्योंकि उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही कषायोदयस्थान त्रस जीवोंसे भरे हुए पाये जाते हैं, ऐसा उपदेश है, यह जयधवलाकार कहते हैं । अतः प्रस्तुत सूत्रका ऐसा अर्थ लेना चाहिए कि सान्तर या निरन्तर क्रमसे त्रसजीवोंका जितना प्रमाण है उतने कषायोदयस्थान त्रस जीवोंसे सदा भरे हुए पाये जाते हैं । यह कथन वर्तमान कालकी अपेक्षा जानना चाहिए ।

अब अतीत कालकी अपेक्षासे कषायोदयस्थानोंपर जीवोंके अवस्थान-क्रमको बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—अतीतकालकी अपेक्षा कषायोदयस्थानोंपर त्रस जीव यवमध्यके आकारसे रहते हैं । उनमें जघन्य कषायोदयस्थानपर त्रस जीव सबसे कम रहते हैं । दूसरे कषायोदयस्थानपर भी त्रस जीव उतने ही रहते हैं । इस प्रकार लगातार असंख्यात लोकमात्र स्थानोंपर जीव उतने ही रहते हैं । तदनन्तर पुनः आगे आनेवाले स्थानपर एक जीव पूर्वोक्त प्रमाणसे अधिक रहता है । तदनन्तर पुनः असंख्यात लोकप्रमाण कषायोदय-स्थानोंपर इतने ही जीव रहते हैं । तत्पश्चात् प्राप्त होनेवाले अन्य स्थानपर एक जीव अधिक रहता है । इस प्रकार एक-एक जीव बढ़ते हुए जानेपर उत्कर्षसे एक कषायोदयस्थानपर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रस जीव पाये जाते हैं ॥२९३-३००॥

१ असंखेज्जाणं लोगाणं जत्तिया आगासपदेसा अत्थि, तत्तियमेत्ताणि चेव कसायुदयट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ । जयध०

२ कुदो ? सव्वजहण्णसंकिलेसेण परिणममाणजीवाणं बहूणमणुवलंभादो । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जीवेहिं उवजोगद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा अविरहिदा' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १६६१) । पर इस अंशकी सूत्रता टीकासे ही प्रमाणित होती है ।

३०१. जत्तिया एक्कम्मि ट्ठाणे उक्कस्सेण* जीवा तत्तिया चेव अण्णम्हि ट्ठाणे। एवमसंखेज्जलोगट्ठाणि। एदेसु असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणेसु जवमज्झं। ३०२. तदो अण्णं ट्ठाणमेक्केण जीवेण हीणं। ३०३. एवमसंखेज्जलोगट्ठाणाणि तुल्लजीवाणि। ३०४. एवं सेसेसु वि ट्ठाणेसु जीवा णेदव्वा।

३०५. जहण्णए कसायुदयट्ठाणे चत्तारि जीवा, उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा[1]। ३०६. जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो*। ३०७. जवमज्झजीवाणं जत्तियाणि अद्धच्छेदणाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि। तेसिमसंखेज्जभागमेत्ताणि उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि। ३०८. एवं पदुप्पण्णं तसाणं जवमज्झं।

चूर्णिसू०—एक कषायोदयस्थानपर उत्कर्षसे जितने जीव होते हैं, उतने ही जीव दूसरे अन्य स्थानपर भी पाये जाते हैं। इस प्रकार यह क्रम असंख्यात लोकप्रमाण कषायोदय-स्थानों तक चला जाता है। इन असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंपर यवमध्य होता है। तदनन्तर अन्य स्थान एक जीवसे हीन उपलब्ध होता है। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण कषायो-दयस्थान तुल्य जीववाले होते हैं। अर्थात् उन स्थानोंपर समान जीव पाये जाते हैं। इसी प्रकार शेष स्थानोंपर भी जीवोंका अवस्थान ले जाना चाहिए। अर्थात् जघन्य स्थानसे लेकर यवमध्यतक जिस क्रमसे वृद्धि होती है, उसी प्रकार यवमध्यसे ऊपर हानिका क्रम जानना चाहिए ॥३०१-३०४॥

अब इसी अर्थ-विशेषको संदृष्टि द्वारा बतलानेके लिए चूर्णिकार उत्तर सूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—जघन्य कषायोदयस्थानपर चार जीव हैं और उत्कृष्ट कषायोदयस्थानपर दो जीव हैं ॥३०५॥

भावार्थ—यद्यपि जघन्य भी कषायोदयस्थानपर वस्तुतः आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण जीव हैं और उत्कृष्ट कषायोदयस्थानपर भी। पर यहाँ अंकसंदृष्टिमें उक्त अर्थका बोध करानेके लिए चार और दोकी कल्पना की गई है।

चूर्णिसू०—यवमध्यवर्ती जीव आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। यवमध्यवर्ती जीवोंके जितने अर्धच्छेद होते हैं, उनके असंख्यातवें भागप्रमाण यवमध्यके अधस्तनवर्ती गुण-हानिस्थानान्तर हैं और उन अर्धच्छेदोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण यवमध्यके ऊपर गुणहानि-स्थानान्तर होते हैं। इस प्रकार त्रसजीवोंके कषायोदयस्थानसम्बन्धी यवमध्य निष्पन्न हो जाता है ॥३०६-३०८॥

---

१ जइ वि जहण्णए कसायुदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा होंति; तो वि संदिट्ठीए तेसिं पमाणं चत्तारिरूवमेत्तमिदि घेत्तव्वं। उक्कस्सए वि कसायुदयट्ठाणे दो जीवा त्ति संदिट्ठीए गहेयव्वा। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'उक्कस्सेण' के स्थानपर 'उक्कस्सिया' पाठ मुद्रित है।

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जदिभागा' पाठ मुद्रित है।

३०९. एसा सुत्तविहासा । ३१०. सत्तमीए गाहाए पढमस्स अद्धस्स अत्थ-विहासा समत्ता भवदि ।

३११. एत्तो विदियद्धस्स अत्थविहासा कायव्वा । ३१२. तं जहा । ३१३. 'पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा' त्ति एत्थ तिण्णि सेढीओ । ३१४. तं जहा । ३१५. विदियादिया पढमादिया चरिमादिया (३) ।

विशेषार्थ—यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिए कि त्रसजीवोंके समान स्थावर-जीवोंमें भी यवमध्यरचना क्यों नहीं बतलाई ? इसका समाधान यह है कि स्थावरजीवोंके योग्य बताये गये कषायोदयस्थानोंमेंसे एक-एक कषायोदयस्थानपर अनन्त जीव पाये जाते हैं, इसलिए उनकी यवमध्यरचना अन्य प्रकारसे होती है । अतएव मूलगाथासूत्रमें जो कषायो-दयस्थानोंके विरहित-अविरहितका वर्णन है, वह त्रसजीवोंकी अपेक्षासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—यह मूलगाथासूत्रकी विभाषा है इस प्रकार इस उपयोग अधिकारकी सातवीं गाथाके पूर्वार्धकी अर्थ-व्याख्या समाप्त होती है ॥३०९-३१०॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे उक्त सातवीं गाथाके द्वितीय-अर्ध अर्थात् उत्तरार्धकी अर्थ-विभाषा करना चाहिए । वह इस प्रकार है ।—'प्रथम समयमें उपयुक्त जीवोंके द्वारा और अन्तिम समयमें उपयुक्त जीवोंके द्वारा स्थानोंको जानना चाहिए' सातवीं गाथाके इस उत्तरार्धमें तीन श्रेणियाँ प्रतिपादन की गई हैं । वे इस प्रकार हैं द्वितीयादिका श्रेणी, प्रथमादिका श्रेणी और चरमादिका श्रेणी ॥३११-३१५॥

विशेषार्थ—श्रेणी नाम एक प्रकारकी पंक्ति या क्रम-परिपाटी का है । प्रकृतमें यहाँ श्रेणी पदसे अल्पबहुत्व-पद्धतिका अर्थ ग्रहण किया गया है । जिस अल्पबहुत्व-परिपाटीमें मान-संज्ञित दूसरी कषायसे उपयुक्त जीवोंको आदि लेकर अल्पबहुत्वका वर्णन किया गया है, उसे द्वितीयादिका श्रेणी कहते हैं । यह मनुष्य और तिर्यंचोंकी अपेक्षा वर्णन की गई है, क्योंकि इनमें ही मानकषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम पाये जाते हैं । जिस अल्पबहुत्व-परिपाटीमें क्रोधनामक प्रथम कषायसे उपयुक्त जीवोंको आदि लेकर अल्पबहुत्वका वर्णन किया गया है, उसे प्रथमादिका श्रेणी कहते हैं । यह देवोंके ही सम्भव है, क्योंकि, वहाँ ही क्रोधकषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम पाये जाते हैं । तथा जिस अल्पबहुत्वश्रेणीका लोभनामक अन्तिम कषायसे प्रारम्भ किया गया है, उसे चरमादिका श्रेणी कहते हैं । यह नारकियोंकी अपेक्षा जानना चाहिए, क्योंकि नरकगतिमें ही लोभकषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम पाये जाते हैं । इस प्रकार इन तीनों श्रेणियोंका वर्णन इस सूत्र-गाथाके उत्तरार्धमें किया गया है । दो श्रेणियोंका नामोल्लेख तो सूत्रमें किया ही गया है और गाथा-पठित 'च' शब्दसे द्वितीयादिका श्रेणीकी सूचना की गई है, ऐसा अर्थ यहाँ समझना चाहिए ।

३१६. विदियादियाए साहणं। ३१७. माणोवजुत्ताणं पवेसणगं थोवं। ३१८. कोहोवजुत्ताणं पवेसणगं विसेसाहियं। ३१९. [एवं माया-लोभोवजुत्ताणं]। ३२०. एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागपडिभागो। ३२१. पवाइज्जंतेण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

एवमुवजोगो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

चूर्णिसू०—अब द्वितीयादिका श्रेणी-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका साधन करते हैं—मान-कषायसे उपयुक्त जीवोंका प्रवेशन-काल सबसे कम है। क्रोधकषायसे उपयुक्त जीवोंका प्रवेशन-काल विशेष अधिक है। इसीप्रकार मायाकषायसे उपयुक्त जीवोंका प्रवेशन-काल विशेष अधिक है और लोभकषायसे उपयुक्त जीवोंका प्रवेशन-काल विशेष अधिक है ॥३१६-३१९॥

विशेषार्थ—यह द्वितीयादिका श्रेणी-सम्बन्धी अल्पबहुत्व मनुष्य-तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जानना चाहिए, क्योंकि वह उन्हींमें संभव है। प्रथमादिका श्रेणीका अल्पबहुत्व इस प्रकार है—देवगतिमें क्रोधकषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम हैं, मानकषायसे उपयुक्त जीव संख्यात-गुणित हैं, मायाकषायसे उपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं और लोभकषायसे उपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर संख्यातगुणित होनेका कारण यह है कि उनका काल और प्रवेश उत्तरोत्तर संख्यातगुणित पाया जाता है। चरमादिका श्रेणी-सम्बन्धी अल्प-बहुत्व नारकी जीवोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। उसका क्रम इस प्रकार है—नारकियोंमें लोभ-कषायसे उपयुक्त जीव सबसे कम हैं। उनकी अपेक्षा मायाकषायसे उपयुक्त जीव संख्यात-गुणित हैं। उनकी अपेक्षा मानकषायसे उपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं। उनकी अपेक्षा क्रोधकषायसे उपयुक्त जीव संख्यातगुणित हैं।

चूर्णिसू०—यह विशेष एक उपदेशकी अपेक्षा अर्थात् अप्रवाह्यमान उपदेशसे पल्यो-पमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागरूप है। किन्तु प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥३२०-३२१॥

इस प्रकार उपयोग नामक सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१ कथं पुनः प्रवेशनशब्देन प्रवेशकालो ग्रहीतुं शक्यत इति नाशंकनीयम्; प्रविशन्त्यस्मिन् काले इति प्रवेशनशब्दस्य व्युत्पादनात्। जयध०

८ चउट्ठाण-अत्थाहियारो

१. चउट्ठाणेत्ति अणियोगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं । २. तं जहा ।

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे ।
माया चउव्विहा वुत्ता लोहो वि य चउव्विहो ॥७०॥

(१८) णग-पुढवि-वालुगोदयराईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
सेलघण-अट्ठि-दारुअ लदासमाणो हवदि माणो ॥७१॥

---

८ चतुःस्थान अर्थाधिकार

चूर्णिसू०–कसायपाहुडके चतुःस्थान नामक अनुयोगद्वारमें पहले गाथा-सूत्र अन्वेषण करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं ॥१-२॥

क्रोध चार प्रकारका कहा गया है । मान भी चार प्रकारका होता है । माया भी चार प्रकारकी कही गई है और लोभ भी चार प्रकारका है ॥७०॥

विशेषार्थ– चतुःस्थान-अधिकारकी गुणधराचार्य-मुखकमल-विनिर्गत यह प्रथम सूत्र-गाथा है । इनमें क्रोधादि प्रत्येक कषायके चार-चार भेद होनेका निर्देश किया गया है । यहाँपर अनन्तानुबन्धी आदिकी अपेक्षासे क्रोधादिके चार-चार भेदोंका वर्णन नहीं किया जा रहा है; क्योंकि उन भेदोंका तो प्रकृतिविभक्ति आदिमें पहले ही निर्णय कर चुके हैं । अतएव इस चतुःस्थान अधिकारमें लता, दारु आदि अनुभागकी अपेक्षा बतलाये गये एक-स्थान, द्विस्थान आदिकी अपेक्षासे कषायोंके स्थानोंका वर्णन किया जा रहा है । इस प्रकारका अर्थ ग्रहण करनेपर ही आगे कही जानेवाली गाथाओंका अर्थ सुसंगत बैठता है, अन्यथा नहीं; क्योंकि अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायोंमें एक-स्थानीयता सम्भव नहीं है । लता, दारु आदि चार प्रकारके स्थानोंके समाहारको चतुःस्थान कहते हैं । इस प्रकारके चतुःस्थानके प्ररूपण करनेवाले अनुयोगद्वारको चतुःस्थान अनुयोगद्वार कहते हैं ।

अब क्रोधादिकषायोंके उक्त चार-चार भेदोंका गुणधराचार्य स्वयं गाथासूत्रोंके द्वारा निरूपण कहते हैं–

क्रोध चार प्रकारका है–नगराजिसदृश, पृथिवीराजिसदृश, बालुकाराजिसदृश और उदकराजिसदृश । इसी प्रकार मानके भी चार भेद हैं–शैलघनसमान, अस्थिसमान, दारुसमान और लतासमान ॥७१॥

विशेषार्थ–इस गाथामें कालकी अपेक्षा क्रोधके और भावकी अपेक्षा मानके चार-चार

प्रकार बतलाये गये हैं। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जैसे किसी पर्वतके शिलाखंडमें किसी कारणसे यदि भेद हो जाय, तो वह कभी भी किसी भी प्रयोग आदिसे पुनः मिल नहीं सकता है, किन्तु तदवस्थ ही बना रहता है। इसी प्रकार जो क्रोधपरिणाम किसी निमित्त-विशेषसे किसी जीव-विशेषमें उत्पन्न हो जाय, तो वह किसी भी प्रकारसे उपशमको प्राप्त न होगा, किन्तु निष्प्रतीकार होकर उस भवमें ज्योंका त्यों बना रहेगा। इतना ही नहीं, किन्तु जिसका संस्कार जन्म-जन्मान्तर तक चला जाय, इस प्रकारके दीर्घकालस्थायी क्रोधपरिणामको नगराजिसदृश क्रोध कहते हैं। पृथ्वीके रेखाके समान क्रोधको पृथ्वीराजिसदृश क्रोध कहते हैं। यह शैलरेखा-सदृश क्रोधकी अपेक्षा अल्पकालस्थायी है, अर्थात् चिरकालतक अवस्थित रहनेके पश्चात् किसी-न-किसी प्रयोगसे शान्त हो जाता है। पृथ्वीकी रेखाका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार ग्रीष्मकालमें गर्मीकी अधिकतासे पृथ्वीका रस सूख जानेके कारण पृथ्वीमें बड़ी-बड़ी दरारें हो जाती हैं, वे तबतक बराबर बनी रहती हैं जबतक कि वर्षाऋतुमें लगातार वर्षा होनेसे जलप्रवाह-द्वारा मिट्टी गीली होकर उनमें न भर जाय। गीली मिट्टीके भर जानेपर पृथ्वीकी वह रेखा मिट जाती है। इसी प्रकार जो क्रोध किसी कारण-विशेषसे उत्पन्न होकर बहुत दिनोंतक बना भी रहे, पर समय आनेपर गुरुके उपदेश आदिका निमित्त मिलनेसे दूर हो जाय, उसे पृथ्वीराजिसदृश क्रोध कहते हैं। वालुकी रेखाके समान क्रोधको वालुराजिसदृश क्रोध कहते हैं। जिस प्रकार नदीके पुलिन (वालुका मय) प्रदेशमें किसी पुरुषके प्रयोगसे, जलके पूरसे या अन्य किसी कारण-विशेषसे कोई रेखा उत्पन्न हो जाय तो वह तब तक बनी रहती है जब तक कि पुनः जोरका जल प्रवाह न आवे। जोरके जलपूर आनेपर, या प्रचंड आँधीके चलनेपर या इसी प्रकारके किसी कारण-विशेषके मिलनेपर वह वालुकी रेखा मिट जाती है। इसी प्रकार जो क्रोध-परिणाम गुरुके उपदेशरूप जलके पूरसे शीघ्र ही उपशान्त हो जाय, उसे वालुराजिसदृश क्रोध कहते हैं। यह पृथ्वीकी रेखाकी अपेक्षा और भी अल्पकालस्थायी होता है। जलकी रेखाके समान और भी अल्प कालस्थायी क्रोधको उदकराजिसदृश क्रोध कहते हैं। यह पूर्वोक्त क्रोधकी अपेक्षा और भी कम कालतक रहता है। जैसे जलमें किसी निमित्त-विशेषसे एक ओर रेखा होती जाती है और दूसरी ओर तुरन्त मिटती जाती है, इसी प्रकार जो कषाय अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही तुरन्त उपशान्त हो जाती है, उसे जलराजिसमान क्रोध जानना चाहिए। मान-कषायके चारों निदर्शनोंका इसी प्रकारसे अर्थ करना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार शैलघन-शिलास्तम्भ या पत्थरका खम्भा कभी भी किसी उपायसे कोमल नहीं हो सकता, इसी प्रकार जो मानकषाय कभी भी किसी गुरु आदिके उपदेश मिलनेपर भी दूर न हो सके, उसे शैल-घन-सदृश मानकषाय जानना चाहिए। जैसे पाषाणसे अस्थि (हड्डी) कुछ कोमल होती है, वैसे ही जो मानकषाय शैलसमान मानसे मन्द अनुभागवाली हो, उसे अस्थि के समान जानना चाहिए। जैसे अस्थिसे काष्ठ और भी मृदु होता है, इसी प्रकार जो मानकषाय

**(१९) वंसीजण्हुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती ।
अवलेहणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥७२॥
(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो ।
हालिद्दवत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥७३॥**

अस्थिसे भी मन्द अनुभागवाली हो और प्रयत्नसे कोमल हो सके, उसे काष्ठके समान मान कहा है । जो मान लताके समान मृदु हो, अर्थात् शीघ्र दूर हो जाय, उसे लता-समान मान जानना चाहिए । इस प्रकार कालकी हीनाधिकताकी अपेक्षा क्रोध और परिणामोंकी तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा मानके चार-चार भेद कहे गये हैं ।

माया भी चार प्रकारकी कही गई है—वाँसकी जड़के सदृश, मेंढ़ेके सींगके सदृश, गोमूत्रके सदृश और अवलेखनीके समान ॥७२॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार वाँसके जड़की कुटिलता पानीमें गलाकर, मोड़कर या किसी भी अन्य उपायसे दूर नहीं की जा सकती है, इसी प्रकार जो मायारूप कुटिल परिणाम किसी भी प्रकारसे दूर न किये जा सकें, ऐसे अत्यन्त वक्र या कुटिलतम भावोंकी परिणतिरूप मायाको वाँसकी जड़के समान कहा गया है । जो माया कषाय उपर्युक्त मायासे तो मन्द अनुभागवाली हो, फिर भी अत्यन्त वक्रता या कुटिलता लिये हुए हो, उसे मेंढ़ेके सींग सदृश कहा है । जैसे मेंढ़ेके सींग अत्यन्त कुटिलता लिये होते हैं, तथापि उन्हें अग्निके ताप आदि द्वारा सीधा किया जा सकता है । इसी प्रकार जो मायापरिणाम वर्तमानमें तो अत्यन्त कुटिल हों, किन्तु भविष्यमें गुरु आदिके उपदेश-द्वारा सरल बनाये जा सकते हों, उन्हें मेंढ़ेके सींग समान जानना चाहिए । जैसे चलते हुए मूतनेवाली गायकी मूत्र-रेखा वक्रता लिए हुए होती है उसी प्रकार जो मायापरिणाम मेंढ़ेके सींगसे भी कम कुटिलता लिये हुये हों, उन्हें गोमूत्रके समान कहा गया है । जिन माया-परिणामोंमें कुटिलता अपेक्षाकृत सबसे कम हो, उन्हें अवलेखनीके समान कहा गया है । अवलेखनी नाम दाँतुन या जीभका मैल साफ करनेवाली जीभीका है, इसमें औरोंकी अपेक्षा वक्रपना सबसे कम होता है और वह सरलतासे सीधी की जा सकती है । इसी प्रकार जिस मायामें कुटिलता सबसे कम हो और जो बहुत आसानीसे सरल की जा सकती हो, उसे अवलेखनीके समान जानना चाहिए ।

लोभ भी चार प्रकारका कहा गया है—कृमिरागके समान, अक्षमलके समान, पांशुलेपके समान और हारिद्रवस्त्रके समान ॥७३॥

विशेषार्थ—कृमि नाम एक विशेष जातिके छोटेसे कीड़ेका है । उसका ऐसा स्वभाव है कि वह जिस रंगका आहार करता है, उसी रंगका अत्यन्त सूक्ष्म चिकना सूत्र (डोरा) अपने मलद्वारसे बाहर निकालता है । उस सूत्रसे तन्तुवाय (जुलाहे या बुनकर) नाना प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र बनाते हैं । उन वस्त्रोंका रंग प्राकृतिक होनेसे इतना पक्का होता है कि तीक्ष्णसे

(२१) एदेसिं ट्ठाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि।
कं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥७४॥

तीक्ष्ण क्षार देकर भट्टीमें पकानेपर और वर्षोंतक जलधारामें प्रक्षालन करनेपर भी वह नहीं दूर होता है, अर्थात् वह वस्त्र भले ही सड़-गलकर नष्ट हो जाय, पर उसका रंग कभी नहीं उतरता। यहाँतक कि उस वस्त्रको अग्निसे जला देनेपर भी उसकी भस्म (राख) भी उसी वस्त्रके ही रंगकी बनी रहती है। इसी प्रकार जो जीवोंका हृदयवर्ती लोभपरिणाम अत्यन्त तीव्रतम हो, किसी भी उपायसे छूट न सके, 'चमड़ी चली जाय, पर दमड़ी न जाय,' इस जातिका हो, उस लोभपरिणामको कृमिरागके समान कहा गया है। इससे मन्द अनुभागवाला लोभपरिणाम अक्षमलके समान बतलाया गया है। अक्षनाम रथ, शकट तांगा आदिके चक्र (चक्का, पहिया) का है, उसमें जो सरलतासे घूमनेके लिए काले रंगका गाढ़ा तेल (औंगन) लगाया जाता है, उसे अक्षमल कहते हैं। वह चक्रके परिभ्रमणका निमित्त पाकर और भी चिकना और गाढ़ा हो जाता है। वह यदि किसी वस्त्रके लग जाय, तो उसका दूर होना बड़ा कठिन होता है; अत्यन्त तीक्ष्ण क्षार आदिका निमित्त मिलनेपर ही बहुत दिनोंमें वह दूर हो पाता है, इसी प्रकार जो लोभपरिणाम कृमिरागसे तो मन्द अनुभागवाला हो, पर फिर भी सरलतासे शुद्ध न हो सके, उसे अक्षमलके समान लोभ कहा गया है। पांशुनाम धूलिका है। जिस प्रकार पैरोंमें लगी हुई धूलि तैल पसीना आदिका निमित्त पाकर यद्यपि जम जाती है, फिर भी वह गर्म जल आदिके द्वारा द्वारा सरलतासे दूर ही जाती है, इसी प्रकार जो लोभ-परिणाम सरलतासे दूर किये जा सकें, उन्हें पांशु-लेपके समान कहा गया है। जो लोभ इससे भी मन्द अनुभागवाला होता है, उसे हारिद्र वस्त्रकी उपमा दी गई है। जैसे हरिद्रा (हलदी) से रंगा गया वस्त्र देखनेमें तो पीले रंगका मालूम होता है, पर पानीसे धोते ही उसका रंग बहुत शीघ्र सरलतासे छूट जाता है, या धूप आदिके निमित्तसे भी जल्दी उड़ जाता है। इसी प्रकार जो लोभ सरलतासे छूट जाय बहुत कालतक आत्मामें अवस्थित न रहे, अत्यन्त मन्द जातिका हो, उसे हारिद्रवस्त्रके समान कहा गया है। इस प्रकार अनुभागकी हीनाधिकताके तारतम्यसे लोभके चार भेद कहे गये हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब इन ऊपर कहे गये सोलह भेदरूप स्थानोंका अल्पबहुत्व निर्णय करनेके लिए गुणधराचार्य गाथासूत्र कहते हैं—

इन अनन्तर-निर्दिष्ट चारों कषायों सम्बन्धी सोलहों स्थानोंमें स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा कौन स्थान किस स्थानसे अधिक होता है, (और कौन किससे कम होता है) ? ॥७४॥

विशेषार्थ—यह गाथा प्रश्नात्मक है और इसके द्वारा ग्रन्थकारने अल्पबहुत्वसम्बन्धी प्रश्न उठाकर वक्ष्यमाण क्रमसे समाधान करनेके लिए उपक्रम किया है। गाथामें यद्यपि स्थितिकी अपेक्षा भी अल्पबहुत्व करनेका निर्देश किया गया है, तथापि स्थितिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व

(२२) माणे लदासमाणे उक्कस्सा वग्गणा जहण्णादो ।
हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥७५॥
(२३) णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो ।
सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७६॥

संभव नहीं है, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें भी एक-स्थानीय अनुभाग पाया जाता है और जघन्य स्थितिमें भी चतुःस्थानीय अनुभाग पाया जाता है । गुणधराचार्यने आगे अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षासे ही सोलहस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, स्थितिकी अपेक्षा नहीं, इसीसे उक्त अर्थ फलित होता है ।

लता-समान मानमें उत्कृष्ट वर्गणा अर्थात् अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा, जघन्य वर्गणासे अर्थात् प्रथम स्पर्धककी पहली वर्गणासे प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणी हीन है । (किन्तु अनुभागकी अपेक्षा जघन्य वर्गणासे उत्कृष्ट वर्गणा निश्चयसे अनन्तगुणी अधिक जानना चाहिए ।) ॥७५॥

विशेषार्थ—इस गाथाके द्वारा स्वस्थान-अल्पबहुत्वकी सूचना की गई है । इसलिए जिस प्रकार लतास्थानीय मानकी उत्कृष्ट और जघन्य वर्गणाओंमें अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसी प्रकारसे शेष पन्द्रह स्थानोंमें भी लगा लेना चाहिए ।

अब मानकषायके चारों स्थानोंका परस्थान-सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहनेके लिए उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

लतासमान मानसे दारुसमान मान प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणित हीन है । इसी क्रमसे शेष अर्थात् दारुसमान मानसे अस्थिसमान मान और अस्थिसमान मानसे शैलसमान मान नियमसे अनन्तगुणित हीन है ॥७६॥

विशेषार्थ—'लतासमान मानसे दारु-समान मान अनन्तगुणित हीन है' इसका अभिप्राय यह है कि लतास्थानीय मानके सर्व प्रदेश पिंडसे दारुस्थानीय मानका सर्व प्रदेश-पिंड अनन्तगुणा हीन होता है । इसका कारण यह है कि लतासमान मानकी जघन्य वर्गणासे दारुसमान मानकी जघन्य वर्गणा प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है । इसी प्रकार लतास्थानीय मानकी दूसरी वर्गणासे दारुस्थानीय मानकी दूसरी वर्गणा भी अनन्तगुणी हीन होती है । इसी क्रमसे आगे जाकर लतास्थानीय मानकी उत्कृष्ट वर्गणासे दारुस्थानीय मानकी उत्कृष्ट वर्गणा भी अनन्तगुणी हीन होती है; अतएव लतासमान मानके सर्व प्रदेश पिंडसे दारुसमान मानका सर्व प्रदेश-पिंड अनन्तगुणित हीन स्वतः सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार दारुसमान मानके सर्व प्रदेश-पिंडसे अस्थिसमान मानका सर्व प्रदेशपिंड और अस्थिसमान मानसे शैलसमान मानका सर्व प्रदेशपिंड अनन्तगुणित हीन जानना चाहिए ।

(२४) णियमा लदासमादो अणुभागग्गेण वग्गणग्गेण[1] ।
सेसा कमेण अहिया गुणेण णियमा[2] अणंतेण ॥७७॥
(२५) संधीदो संधी[3] पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे ।
हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥

उक्त प्रकारसे प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व बता करके अब अनुभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहनेके लिए आचार्य उत्तर गाथा-सूत्र कहते हैं–

लतासमान मानसे शेष स्थानीय मान अनुभागाग्रकी अपेक्षा और वर्गणाग्रकी अपेक्षा क्रमशः नियमसे अनन्तगुणित अधिक होते हैं ॥७७॥

विशेषार्थ - यहाँ पर 'अग्र' शब्द समुदायवाचक है, अतः 'अनुभागाग्रसे' अभिप्राय अनुभागसमुदायसे है और 'वर्गणाग्र'से 'वर्गणासमूह' यह अर्थ लेना चाहिए। तदनुसार यह अर्थ होता है कि लतास्थानीय मानके अनुभाग-समुदायसे दारुस्थानीय मानका अनुभाग-समूह अनन्तगुणित है, दारुस्थानीय अनुभाग-समूहसे अस्थिस्थानीय अनुभाग-समूह अनन्तगुणित है और अस्थिस्थानीय अनुभाग-समूहसे शैलस्थानीय अनुभाग-समूह अनन्तगुणित है। अथवा अनुभाग ही अनुभागाग्र है, इस अपेक्षा 'अग्र' शब्दका अविभागप्रतिच्छेद भी अर्थ होता है, इसलिए ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं कि लतास्थानीय मानके अनुभागसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंके समुदायसे दारुस्थानीय मानके अनुभागसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह अनन्तगुणित होता है; दारुस्थानीय मानके अविभागप्रतिच्छेदोंसे अस्थिसम्बन्धी और अस्थिसे शैलसम्बन्धी अविभाग-प्रतिच्छेद अनन्तगुणित होते हैं। इसी प्रकार 'वर्गणाग्र'के 'अग्र' शब्दका भी 'वर्गणासमूह अथवा वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह 'ऐसा अर्थ ग्रहण करके उपर्युक्त विधिसे उनमें अनन्तगुणितता समझना चाहिए।

अब लतासमान चरम सन्धिसे दारुसमान प्रथम सन्धि अनुभाग या प्रदेशोंकी अपेक्षा-हीन या अधिक किस प्रकारकी होती है, इस शंकाके निवारण करनेके लिए आचार्य उत्तर गाथा सूत्र कहते हैं–

विवक्षित सन्धिसे अग्रिम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा नियमसे अनन्तभागरूप विशेषसे अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तभागसे हीन होती है ॥७८॥

१ एत्थ अग्गसद्दो समुदायत्थवाचओ, अणुभागसमूहो अणुभागग्गं; वग्गणासमूहो वग्गणग्गमिदि। अथवा अणुभागो चेव अणुभागग्गं, वग्गणाओ चेव वग्गणग्गमिदि घेत्तव्वं। जयध०

२ एत्थ दोवारं णियमसद्दुच्चारणं किं फलमिदि चे वुच्चदे–लदासमाणट्ठाणादो सेसाणं जहाकममणुभाग-वग्गणग्गेहिं अहियत्तमेत्तावहारणफलो पढमो णियमसद्दो। विदियो तेसिमणंतगुणब्भहियत्तमेव, न विसेसाहियत्तं, णावि संखेज्जासंखेज्जगुणब्भहियत्तमिदि अवहारणफलो। जयध०

३ लदासमाणचरिमवग्गणा दारुअसमाणपढमवग्गणा च दो वि संधि त्ति वुच्चंति। एवं सेससंधीणं अत्थो वत्तव्वो। जयध०

(२६) सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे ।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥७९॥

(२७) एसो कमो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि ।
सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेसु बोद्धव्वं ॥८०॥

विशेषार्थ—विवक्षित कषायकी विवक्षित स्थानीय अन्तिम वर्गणा और तदग्रिम स्थानीय आदि वर्गणाको सन्धि कहते हैं, अर्थात्, जहाँपर विवक्षित लतादि स्थानीय अनुभागकी समाप्ति हो और दारु आदि स्थानवाले अनुभागका प्रारम्भ हो, उस स्थलको सन्धि कहते हैं। इस प्रकार लता, दारु, अस्थि आदि सभी स्थानोंकी अन्तिम वर्गणा और उससे आगेके स्थानवाले अनुभागकी आदि वर्गणाको सन्धि जानना चाहिए। विवक्षित पूर्व सन्धिसे तदग्रिम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा नियमसे अनन्तभागसे अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तवें भागसे हीन होती है। जैसे मानकषायके लतास्थानीय अन्तिम वर्गणारूप सन्धिसे दारुस्थानीय आदि वर्गणारूप सन्धि अनुभागकी अपेक्षा तो अनन्तवें भागसे अधिक है और प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तवें भागसे हीन है। यही नियम चारों कषायोंके सोलह स्थान-सम्बन्धी प्रत्येक सन्धिपर लगाना चाहिए।

अब लता आदि चारों स्थानोंमें देशघाती और सर्वघातीका विभाग बतलानेके लिए उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

दारुसमान स्थानमें जो उत्कृष्ट अनुभाग अंश है, वह सर्वावरणीय अर्थात् सर्वघाती है। उससे अधस्तन भाग देशघाती है और उपरितन भाग सर्वघाती है ॥७९॥

विशेषार्थ—लता, दारु, अस्थि और शैल इन चार स्थानोंमेंसे अस्थि और शैलस्थानीय अनुभाग तो सर्वघाती हैं ही। किन्तु दारुसमान अनुभागमें उत्कृष्ट अंश अर्थात् उपरितन अनन्त बहुभाग तो सर्वघाती है और अधस्तन एक अनन्तवां भाग देशघाती है। तथा लतासमान अनुभाग भी देशघाती है।

अब यह उपर्युक्त क्रम क्रोधादि चारों कषायोंके चारों स्थानोंमें समान है, यह बतलानेके लिए उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

यही क्रम नियमसे मान, माया, लोभ और क्रोधकषायसम्बन्धी चारों स्थानोंमें निरवशेष रूपसे जानना चाहिए ॥८०॥

विशेषार्थ—क्रोधादि चारों कषायोंके नगराजि, पृथिवीराजि आदि चार-चार स्थानोंका वर्णन पहले किया जा चुका है। उनमेंसे प्रत्येक कषायके द्वितीय स्थानसम्बन्धी अनुभागका उपरितन बहुभाग सर्वघातिरूप है और अधस्तन एक भाग देशघातिरूप है। तृतीय और चतुर्थ स्थानसम्बन्धी सर्व अनुभाग सर्वघाती ही है और प्रथमस्थानीय सर्व अनुभाग देश-

(२८) एदेसिं ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से ।
बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥
(२९) सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥
(३०) विरदीय अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे ।
सागारे जोगम्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥

घाती ही है । यह व्यवस्था चारों कषायोंके स्थानोंमें समान ही है, इसी बातके बतलानेके लिए इस गाथाकी स्वतंत्र रचना की गई है ।

गति आदि मार्गणाओंमें इन उपर्युक्त स्थानोंके बन्ध, सत्त्व आदिकी अपेक्षा विशेष निर्णयके लिए आचार्य आगेके गाथा-सूत्रोंको कहते हैं–

इन उपर्युक्त स्थानोंमेंसे कौन स्थान किस गतिमें बद्ध, बध्यमान, उपशान्त या उदीर्ण रूपसे पाया जाता है ? ॥८१॥

इस गाथामें उठाये गये सर्व प्रश्नोंका समाधान आगे कही जानेवाली गाथाओंके आधारपर किया जायगा ।

उपर्युक्त सोलह स्थान यथासंभव संज्ञियोंमें, असंज्ञियोंमें, पर्याप्तमें, अपर्याप्तमें सम्यक्त्वमें मिथ्यात्वमें और सम्यग्मिथ्यात्वमें जानना चाहिए ॥८२॥

विशेषार्थ–उपर्युक्त सोलह स्थान संज्ञी आदि मार्गणाओंमें पाये जाते हैं, यह बतलानेके लिए गाथापठित संज्ञी आदि पदोंके द्वारा कई मार्गणाओंकी सूचना की गई है । जैसे संज्ञी-असंज्ञी पदोंसे संज्ञिमार्गणाकी, पर्याप्त-अपर्याप्त पदोंसे काय और इन्द्रियमार्गणाकी और सम्यक्त्व, मिथ्यात्व आदि पदोंसे सम्यक्त्वमार्गणाकी सूचना की गई है । शेष मार्गणाओंकी सूचना आगेकी गाथामेंकी गई है । तदनुसार यह अर्थ होता है कि वे सोलह स्थान यथासंभव गति आदि चौदह मार्गणाओंमें पाये जाते हैं ।

वे ही सोलह स्थान अविरतिमें, विरतिमें, विरताविरतमें, अनाकार उपयोगमें, साकार उपयोगमें, योगमें और लेश्यामें भी जानना चाहिए ॥८३॥

विशेषार्थ–गाथा-पठित विरति आदि पदोंसे संयममार्गणाकी, अनाकार पदसे दर्शनमार्गणाकी, साकार पदसे ज्ञानमार्गणाकी, योग पदसे योगमार्गणाकी और लेश्या पदसे लेश्या मार्गणाकी सूचना की गई है । इस प्रकार इन दोनों गाथाओंसे उपर्युक्त नौ मार्गणाओंकी तो स्पष्टतः ही सूचना की गई है । शेष पाँच मार्गणाओंका समुच्चय गाथा-पठित 'च' या 'चेव' पदसे किया गया है ।

(३१) कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होइ।
कं ठाणमवेदंतो अबंधगा कस्स ट्ठाणस्स ॥८४॥
(३२) असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च।
सण्णी* चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं (१६) ॥८५॥

किस स्थानका वेदन करता हुआ कौन जीव किस स्थानका बंधक होता है और किस स्थानका अवेदन करता हुआ कौन जीव किस स्थानका अबंधक रहता है ? ॥८४॥

इस गाथाके द्वारा ओघ और आदेशकी अपेक्षा चारों कषायोंके सोलहों स्थानोंका बन्ध और उदयके साथ सन्निकर्ष करनेकी सूचना की गई है। जिसका विशेष विवरण जयधवलासे जानना चाहिए।

असंज्ञी जीव नियमसे लतासमान और दारुसमान अनुभागस्थानको बाँधता है। संज्ञी जीव चारों स्थानोंमें भजनीय है। इसी प्रकारसे सभी मार्गणाओंमें बन्ध और अबन्धका अनुगम करना चाहिए (१६) ॥८५॥

विशेषार्थ–इस गाथा-सूत्रके द्वारा देशामर्शकरूपसे उपर्युक्त सभी प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है। जिसका थोड़ासा वर्णन यहाँ जयधवलाके आधारपर किया जाता है– 'असंज्ञी जीव लता और दारुसमान अनुभाग-स्थानको बाँधता है', इस वाक्यसे यह भी अर्थ सूचित किया गया है कि अस्थि और शैल समान स्थानोंका बन्ध नहीं करता है। इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीवोंमें अस्थि और शैलस्थानीय अनुभागको बाँधनेके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशका अभाव है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि असंज्ञियोंमें दोनों स्थानोंका अविभक्तरूपसे ही बन्ध होता है, क्योंकि विभक्तरूपसे उनमें उक्त दोनों स्थानोंका बन्ध असंभव है। संज्ञियोंमें किस प्रकारसे उक्त स्थानोंका बन्ध होता है, इस शंकाका समाधान यह है कि 'संज्ञी जीव चारों स्थानोंमें भजनीय है'। अर्थात् स्यात् एकस्थानीय अनुभागका बंध करता है, स्यात् द्विस्थानीय अनुभागका बंध करता है, स्यात् त्रिस्थानीय अनुभागका और स्यात् चतुःस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है। इसका कारण यह है कि संज्ञी जीवोंमें चारों स्थानोंके बन्धके कारणभूत संक्लेश और विशुद्धिकी हीनाधिकता पाई जाती है। जिस प्रकार संज्ञिमार्गणाका आश्रय लेकर बन्ध-विषयक प्रश्नका निर्णय किया गया है, उसी प्रकारसे उदय, उपशम और सत्त्वकी अपेक्षा भी उक्त स्थानोंका निर्णय करना चाहिए। जैसे–असंज्ञी जीवोंमें उदय द्विस्थानीय ही होता है, क्योंकि उनमें शेष स्थानीय अनुभाग-उदयके कारणभूत परिणाम नहीं पाये जाते हैं। असंज्ञियोंमें उपशम एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय पाया जाता है। केवल इतना विशेष जानना चाहिए कि असं-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'सण्णीसु' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १६८२)।

३. एदं सुत्तं । ४. एत्थ अत्थविहासा । ५. चउट्ठाणेत्ति एक्कगणिक्खेवो च ट्ठाण-णिक्खेवो[1] च । ६. एक्कगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं च ।

ज्ञियोंमें शुद्ध या विभक्त एकस्थानीय उपशम नहीं पाया जाता है । किन्तु संज्ञियोंमें उपशम, सत्त्व और उदयकी अपेक्षा सभी स्थान पाये जाते हैं । अब 'किस स्थानका वेदन करता हुआ जीव किस स्थानका वन्ध करता है' इस प्रश्नका संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा निर्णय किया जाता है–असंज्ञी जीव द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे द्विस्थानीय अनु-भागको ही बाँधता है । किन्तु संज्ञी जीव एकस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे एकस्थानीय ही अनुभागको बाँधता है, शेष स्थानोंको नहीं । द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करनेवाला संज्ञी द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । त्रिस्थानीय अनुभागका वेदन करनेवाला त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । किन्तु चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करनेवाला नियमसे चतुःस्थानीय अनुभागको ही बाँधता है, शेष स्थानोंका अबन्धक रहता है । इसी वर्णनसे 'किस स्थानका अवेदन करता हुआ किस स्थानका अबन्धक रहता है । इस प्रश्नका भी समाधान किया गया समझना चाहिए । क्योंकि, एकस्थानीय अनुभागका अवेदन करता हुआ जीव एकस्थानीय अनुभागका अ-बन्धक रहता है, इस प्रकार व्यतिरेक मुखसे उसका प्रतिपादन हो ही जाता है । जिस प्रकार संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा उक्त प्रश्नोंका समाधान किया गया है, उसी प्रकार गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा भी जानना चाहिए, ऐसी सूचनाके लिए ग्रन्थकारने गाथासूत्रमें 'एवं सव्वत्थ कायव्वं' पद दिया है । अर्थात् तिर्यग्गतिमें तो संज्ञी और असंज्ञी मार्गणाके समान अनुभाग-स्थानोंका बन्धाबन्ध आदि जानना चाहिए । तथा नरक, देव और मनुष्य गतिमें संज्ञिमार्गणाके समान बन्धाबन्ध आदि जानना चाहिए । केवल इतना विशेष ध्यानमें रखना चाहिए कि मनुष्यगतिके सिवाय अन्य गतियोंमें एकस्थानीय अनुभागके शुद्ध बन्ध और उदय संभव नहीं हैं । इसी प्रकारसे इन्द्रियमार्गणा आदिकी प्ररूपणा भी कर लेना चाहिए ।

चूर्णिसू०–चतुःस्थान नामक अधिकारके ये सोलह गाथासूत्र हैं । अब इनकी अर्थ-विभाषा की जाती है । 'चतुःस्थान' इस अनुयोग द्वारके विषयमें एकैकनिक्षेप और स्थान-निक्षेप करना चाहिए । उनमेंसे एकैकनिक्षेप पूर्व-निक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित भी है ॥३-६॥

विशेषार्थ–चतुःस्थान पदका क्या अर्थ है, यह जाननेके लिए निक्षेप करना आवश्यक है । इस विषयमें दो प्रकारसे निक्षेप किया जा सकता है–एकैकरूपसे और स्थान-रूपसे । इनमेंसे पहले एकैकनिक्षेपका अर्थ कहते हैं–चतुःशब्दके अर्थरूपसे विवक्षित लता,

१ तत्थ एक्केगणिक्खेवो णाम चदुसद्दस्स अत्थभावेण विवक्खियाणं लदासमाणादिट्ठाणाणं कोहादि-कसायाणं वा एक्केक्कं घेत्तूण णाम ट्ठवणाभेदेण णिक्खेवपरूवणा । ट्ठाणणिक्खेवो णाम तेसिं अण्णोण्णादसरूवेण विवक्खियाणं वाचओ जो ट्ठाणसद्दो, तस्स अत्थविसयणिण्णयजणणट्ठ णाम-ट्ठवणादिभेदेण परूवणा। जयध०

७. ट्ठाणं णिक्खिविदव्वं । ८. तं जहा । ९. णामट्ठाणं ट्ठवणट्ठाणं दव्वट्ठाणं खेत्त-ट्ठाणं अद्धट्ठाणं पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं संजमट्ठाणं पयोगट्ठाणं भावट्ठाणं च। १०. णेगमो सव्वाणि ठाणाणि इच्छइ । ११. संगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणेंति ।

दारु आदि स्थानोंकी, अथवा क्रोधादि कषायोंकी एक-एक करके नाम, स्थापना आदिके द्वारा प्ररूपणा करनेको एकैकनिक्षेप कहते हैं। तथा इन्हीं लता, दारु आदि विभिन्न अनु-भाग-शक्तियोंके समुदायरूपसे वाचक 'स्थान' शब्दकी नाम, स्थापना आदिके द्वारा प्ररूपणा करनेको स्थाननिक्षेप कहते हैं। इनमेंसे एकैकनिक्षेपका अर्थात् क्रोधादि कषायोंका ग्रन्थके आदिमें 'कसाय-पाहुड' या 'पेज्जदोस-पाहुड' का अर्थ-निरूपण करते समय पहले विस्तारसे कई वार निक्षेपण और प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पुनः नहीं कहते हैं।

अब चूर्णिकार स्थाननिक्षेपका वर्णन करते हैं–

चूर्णिसू०–स्थानका निक्षेप करना चाहिए। वह इस प्रकार है–नामस्थान, स्थापना-स्थान, द्रव्यस्थान, क्षेत्रस्थान, अद्धास्थान, पलिवीचिस्थान, उच्चस्थान, संयमस्थान, प्रयोग-स्थान और भावस्थान ॥७-९॥

विशेषार्थ–जीव, अजीव और तदुभयके संयोगसे उत्पन्न हुए आठ[1] भंगोंकी निमि-त्तान्तर-निरपेक्ष 'स्थान' ऐसी संज्ञा करनेको नामस्थान कहते हैं। यह स्थान है, इस प्रकार सद्भाव या असद्भावरूपसे जिस किसी पदार्थमें स्थापना करना स्थापनास्थान है। द्रव्य-स्थान आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें आगम द्रव्यस्थान, तथा नो आगमद्रव्यस्थानके ज्ञायकशरीर और भाविभेद पूर्वमें अनेक वार प्ररूपित होनेसे सुगम हैं। भूमि आदिमें रखे हुये हिरण्य-सुवर्ण आदिके अवस्थानको नोआगम द्रव्यस्थान कहते हैं। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक आदिके अपने-अपने अकृत्रिम संस्थानरूपसे अवस्थानको क्षेत्रस्थान कहते हैं। समय, आवली, मुहूर्त आदि कालके भेदोंको अद्धास्थान कहते हैं। स्थितिबन्धके वीचार-स्थान, सोपानस्थान या अध्यवसायस्थानोंको पलिवीचिस्थान कहते हैं। पर्वत आदिके उच्च-प्रदेशको या मान्य स्थानको उच्चस्थान कहते हैं। सामायिक, छेदोपस्थापना आदि संयमके लब्धिस्थानोंको, अथवा संयमविशिष्ट प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानोंको संयमस्थान कहते हैं। मन, वचन, कायकी चंचलतारूप योगोंको प्रयोगस्थान कहते हैं। भावस्थान आगम नोआगम-के भेदसे दो प्रकारका है। आगमभावस्थानका अर्थ सुगम है। कषायोंके लता, दारु आदि अनुभाग-जनित उदयस्थानोंको, या औदयिक आदि भावोंको नो आगमभावस्थान कहते हैं।

अब चूर्णिकार इन अनेक प्रकारके स्थाननिक्षेपोंका नय-विभागद्वारा वर्णन करते हैं–

चूर्णिसू०–नैगमनय उपर्युक्त सभी स्थानोंको स्वीकार करता है, क्योंकि वह सामान्य और विशेषरूप पदार्थको ग्रहण करता है। संग्रह और व्यवहारनय पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानका अपनयन करते हैं, अर्थात् शेष स्थानोंको ग्रहण करते हैं ॥१०-११॥

---

१ वे आठ भंग इस प्रकार हैं—एक जीव, एक अजीव, अनेक जीव, अनेक अजीव, एक जीव-अनेक अजीव, अनेक जीव-एक अजीव, एक जीव-एक अजीव और अनेक जीव-अनेक अजीव।

१२. उजुसुदो एदाणि च ठवणं च अद्धट्ठाणं च अवणेइ । १३. सद्दणयो णामट्ठाणं संजमट्ठाणं खेत्तट्ठाणं भावट्ठाणं च इच्छदि । १४. एत्थ भावट्ठाणे पयदं ।

१५. एत्तो सुत्तविहासा । १६. तं जहा । १७. आदीदो चत्तारि सुत्तगाहाओ एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं णिदरिसण-उवणये* । १८. कोहट्ठाणाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसण-उवणओ कओ । १९. सेसाणं कसायाणं बारसण्हं ट्ठाणाणं भावदो णिदरिसण-उवणओ कओ ।

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि संग्रहनय पदार्थको संग्रहात्मक संक्षिप्त रूपसे ग्रहण करता है, अतः पलिवीचिस्थानका तो कषायपरिणामोंके तारतम्यकी अपेक्षा अद्धास्थानमें अन्तर्भाव हो जाता है, अथवा सोपानस्थानकी अपेक्षा क्षेत्रस्थानमें प्रवेश हो जाता है । तथा उच्चस्थानका क्षेत्रस्थानमें अन्तर्भाव हो जाता है, अतः संग्रहनय पृथक् रूपसे इन दोनों स्थानोंका अस्तित्व स्वीकार नहीं करता है । व्यवहारनय तो संग्रहनयका ही अनुगामी है, संगृहीत अर्थको ही अपना विषय बनाता है, अतः वह भी पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानको ग्रहण नहीं करता है ।

चूर्णिसू०–ऋजुसूत्रनय पलिवीचिस्थान, उच्चस्थान, स्थापनास्थान और अद्धास्थान-को छोड़कर शेष स्थानोंको ग्रहण करता है । इसका कारण यह है कि ऋजुसूत्र नय एक समयस्थायी पदार्थको ग्रहण करता है और ये सब स्थान भूत और भविष्यत् कालके ग्रहण किये विना संभव नहीं हैं । शब्दनय–नामस्थान, संयमस्थान क्षेत्रस्थान और भावस्थानको स्वीकार करता है । क्योंकि, ये स्थान शब्दनयके विषयकी मर्यादामें आते हैं । पर शेष स्थान स्थूल अर्थात्मक या संग्रहात्मक होनेसे शब्दनयकी मर्यादासे बाहिर पड़ जाते हैं, अतः शब्दनय उन्हें विषय नहीं करता है ॥१२-१३॥

ऊपर जिन अनेक प्रकारके स्थानोंका वर्णन किया गया है, उनमेंसे यहाँ किससे प्रयोजन है, इस शंकाका समाधान करनेके लिए चूर्णिकार उत्तरसूत्र कहते हैं–

चूर्णिसू०–यहाँपर भावस्थानसे प्रयोजन है ॥१४॥

विशेषार्थ–यद्यपि चूर्णिकारने सामान्यसे भावस्थानको प्रकृत कहा है, तथापि यहाँपर भावस्थानका दूसरा भेद जो नोआगम-भावस्थान है, उसीका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि लता दारु आदि अनुभागस्थानोंका इसीमें ही अवस्थान माना गया है ।

चूर्णिसू०–अब गाथा-सूत्रोंकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–आदिसे चार सूत्र-गाथाएँ इन उपर्युक्त सोलह स्थानोंका निदर्शन (दृष्टान्त) पूर्वक अर्थ-साधन करती हैं । इनमेंसे क्रोध कषायके चारों स्थानोंका निदर्शन कालकी अपेक्षा किया गया है और शेष तीन मानादि कषायोंके बारह स्थानोंका निदर्शन भावकी अपेक्षा किया गया है ॥१५-१९॥

---

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं णिदरिसण-उवणये' इतने सूत्रांशको टीका-का अंग बना दिया है । तथा अग्रिम सूत्रकी उत्थानिकाके अनन्तर 'एदेसिं सोलसट्ठाणाणं णिदरिस-णोवणये पडिबद्धाओ त्ति पढमगाहा' इस टीकाके अंशको सूत्र बना दिया गया है । (देखो पृ०१६८७)

२०. जो अंतोमुहुत्तिगं निधाय कोहं वेदयदि सो उदयराइसमाणं कोहं वेदयदि । २१. जो अंतोमुहुत्तादीदमंतो अद्धमासस्स कोधं वेदयदि सो वालुवराइसमाणं कोहं वेदयदि । २२. जो अद्धमासादीदमंतो छण्हं मासाणं कोधं वेदयदि सो पुढविराइ-

विशेषार्थ—क्रोधकषायके जो नगराजि, पृथ्वीराजि आदि चार स्थान ऊपर बतलाये गये हैं, वे कालकी अपेक्षा जानना चाहिए । जैसे नग (पाषाण) की रेखा बहुत लम्बा काल व्यतीत हो जानेपर भी ज्यों की त्यों बनी रहती है, पृथ्वीकी रेखा उससे कम समय तक अवस्थित रहती है, इसी प्रकार क्रोधकषायके संस्कार या वासनारूप स्थान भी तर तमभावको लिये हुए अल्प या अधिक कालतक पाये जाते हैं इसलिए इन्हें कालकी अपेक्षा कहा गया है । मान आदि तीनों कषायोंके स्थानोंको जो लता, दारु, आदि रूप दृष्टान्त दिये गये हैं, उन्हें भावकी अपेक्षा जानना चाहिए । अर्थात् लताके समान कोमल या मृदु भाववाले स्थानको लतासमान कहा । इससे कठोर भाववाले स्थानको दारु (काठ) के सदृश कहा और उससे भी कठोर भावोंको अस्थि या शैलके समान कहा । मायाके चारों दृष्टान्त भी परिणामोंकी सरलता या वक्रताकी हीनाधिकतासे कहे गये हैं । लोभके चारों उदाहरण भी तृष्णाजनित कृपणभावकी अधिकता या हीनताकी अपेक्षा कहे गये हैं । इस प्रकार चूर्णिकारने इन तीनों कषायोंके सभी स्थानोंको भावकी अपेक्षा कहा है ।

अब चूर्णिकार कालकी अपेक्षा ऊपर बतलाये गये क्रोधकषायके चारों स्थानोंका विशेष निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०-जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक रोषभावको धारण कर क्रोधका वेदन करता है, वह उदकराजिसमान क्रोधका वेदन करता है ॥२०॥

विशेषार्थ—जल-रेखा अन्तर्मुहूर्तसे अधिक ठहर नहीं सकती है । अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् जिस प्रकार जल-रेखाका अस्तित्व संभव नहीं है, उसी प्रकार जल-रेखाके सदृश क्रोध भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं ठहर सकता । यह जलरेखाके सदृश क्रोध संयमका घातक तो नहीं है, फिर भी संयममें मल, दोष या अतिचार अवश्य उत्पन्न करता है ।

चूर्णिसू०—जो अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अर्ध मास तक क्रोधका वेदन करता है, वह वालुकाराजिसमान क्रोधका वेदन करता है ॥२१॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार वालुमें उत्पन्न हुई रेखा एक पक्षसे अधिक नहीं ठहर सकती, उसी प्रकार जो कषायोदय-जनित कलुष परिणाम अन्तर्मुहूर्तसे लेकर अर्ध मास तक आत्मामें शल्यरूपसे या बदला लेनेकी भावनासे अवस्थित रहता है, उसे वालुकाराजिके समान कहा गया है । यह वालुकाराजि-सदृश कषायपरिणाम संयमका घातक है, अर्थात् इस जातिकी कषायके उदयमें जीव संयमको नहीं धारण कर सकता है, किन्तु संयमासंयमको ग्रहण भी कर सकता है और पालन भी ।

चूर्णिसू०—जो अर्ध माससे लेकर छह मास तक क्रोधका वेदन करता है, वह पृथिवीराजिसमान क्रोधका वेदन करता है ॥२२॥

समाणं कोहं वेदयदि । २३. जो सव्वेसिं [संखेज्जासंखेज्जाणंतेहि] भवेहिं उवसमं ण गच्छइ, सो पव्वदराइसमाणं कोहं वेदयदि (४) । २४. एदाणुमाणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं । २५. एवं चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिदाओ भवंति ।

एवं चउट्ठाणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

विशेषार्थ–जिस प्रकार हलके जोतनेसे या गर्मीकी अधिकतासे पृथिवीमें उत्पन्न हुई रेखा अधिकसे अधिक छह मास तक बनी रह सकती है, उसी प्रकार जो रोषपरिणाम प्रतिशोधकी भावनाको लिए हुए अर्ध माससे लेकर छह मास तक बना रहे, उसे पृथिवीकी रेखाके सदृश जानना चाहिए । इस जातिके कषायोदय-कालमें जीव संयमासंयमको भी नहीं धारण कर सकता है । हाँ, सम्यक्त्वको अवश्य धारण कर लेता है ।

चूर्णिसू०–जो जीव संख्यात, असंख्यात या अनन्त भवोंके द्वारा भी उपशमको प्राप्त नहीं होता है, वह पर्वतराजिसमान क्रोधका वेदन करता है ॥२३॥

विशेषार्थ–जिस प्रकार पर्वत-शिलामें उत्पन्न हुआ भेद कभी भी संधानको प्राप्त नहीं होता है, इसी प्रकार किसी कारणसे उत्पन्न होकर जो रोषपरिणाम किसी जीवमें अवस्थित रहता हुआ संख्यात, असंख्यात या अनन्त भव तक भी उपशान्त न हो, प्रत्युत इतने लम्बे कालके व्यतीत हो जानेपर भी अपने प्रतिपक्षी जीवको देखकर बदला लेनेके लिए उद्यत हो जाय, उसे पर्वतराजिसदृश कहा गया है । इस जातिकी कषायके उदय होनेपर जीव सम्यक्त्वको भी ग्रहण नहीं कर सकता है, किन्तु मिथ्यात्वमें ही पड़ा रहता है । यह क्रोध कषायका चौथा भेद है, यह बतलानेके लिए उक्त सूत्रके अन्तमें चूर्णिकारने (४) का अंक दिया है । ऊपर जो पृथिवीराजि आदिके सदृश क्रोधका पक्ष, छह मास आदि काल बतलाया गया है, और पहले उपयोग-अधिकारमें प्रत्येक कषायका अन्तर्मुहूर्त ही उत्कृष्ट काल बतलाया है, सो इसमें विरोध नहीं समझना चाहिए । वास्तवमें किसी भी कषायका उपयोग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रह सकता है । तथापि यहाँपर उक्त काल तक उन-उन कषायोंके अवस्थानका जो वर्णन किया गया है, वह प्रतिशोधकी भावनासे अवस्थित शल्य, वासना या संस्कारकी अपेक्षासे किया गया जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–इसी प्रकारके अनुमानका आश्रय लेकर शेष कषायोंके स्थानोंका भी उपनय अर्थात् दृष्टान्तपूर्वक अर्थका प्रतिपादन करना चाहिए । इस प्रकार चार सूत्रगाथाओंकी विभाषा की गई है । इसी दिशासे शेष बारह गाथाओंकी भी विभाषा कर लेना चाहिए ॥२४-२५॥

इस प्रकार चतुःस्थान नामक आठवाँ अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

९ वंजण-अत्थाहियारो

१. वंजणे त्ति अणिओगद्दारस्स सुत्तं । २. तं जहा ।

(३३) कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण-कलह-वड्डी य ।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥८६॥

(३४) माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तध समुक्कस्सो ।
अत्तुक्करिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो ॥८७॥

९ व्यञ्जन-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०—अब व्यञ्जन नामक अनुयोगद्वारके गाथासूत्रोंका व्याख्यान करते हैं । वह इस प्रकार है ॥१-२॥

क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद, ये दश क्रोधके एकार्थक नाम हैं ॥८६॥

विशेषार्थ—गुस्सा करनेको क्रोध या कोप कहते हैं । क्रोधके आवेशको रोष कहते हैं । क्षमा या शान्तिके अभावको अक्षमा कहते हैं । जो स्व और पर दोनोंको जलावे उसे संज्वलन कहते हैं । दूसरेसे लड़ने या दूसरेके लड़ानेको कलह कहते हैं । जिससे पाप, अपयश, कलह और वैर आदिक बढ़ें उसे वृद्धि कहते हैं । अत्यन्त तीव्र संक्लेश परिणामको झंझा कहते हैं । आन्तरिक अप्रीति या कलुषताको द्वेष कहते हैं । विवाद नाम स्पर्धा या संघर्षका है । इस प्रकार ये दश नाम क्रोधके पर्याय-वाचक हैं ।

मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त ये दश नाम मानकषायके हैं ॥८७॥

विशेषार्थ—जाति, कुल आदिकी अपेक्षा अपनेको बड़ा मानना मान कहलाता है । जाति-मदादिकसे युक्त होकर मदिरा-पानके समान मत्त होनेको मद कहते हैं । मदसे बढ़े हुए अहंकारके प्रकट करनेको दर्प कहते हैं । गर्वकी अधिकतासे सन्निपात-अवस्थाके समान अनर्गल या यद्वा-तद्वा वचनालाप करनेको स्तम्भ कहते हैं । अपनी विद्वत्ता, विभूति या ख्याति आदिके आधिक्यको चाहना उत्कर्ष है । उत्कर्षके प्रकट करनेको प्रकर्ष कहते हैं । उत्कर्ष और प्रकर्षके लिये महान् उद्योग करनेको समुत्कर्ष कहते हैं । मैं ही जात्यादिकी अपेक्षा सबसे बड़ा हूँ, मेरेसे उत्कृष्ट और कोई नहीं है इस प्रकारके अध्यवसायको आत्मोत्कर्ष कहते हैं । दूसरेके तिरस्कार या अपमान करनेको परिभव कहते हैं । आत्मोत्कर्ष और पर-परिभवके

(३५) माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा ।
गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहणच्छण्णो ॥८८॥

(३६) कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य ।
णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥८९॥

(३७) सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्जजिब्भा य ।
लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा ॥९०॥

एवं वंजणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

द्वारा उद्धत या गर्व-युक्त होनेको उत्सिक्त कहते हैं । ये सब ही नाम अहंकारके रूपान्तर होनेसे मानके पर्यायवाची कहे गये हैं ।

माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये ग्यारह नाम मायाकषायके हैं ॥८८॥

विशेषार्थ—कपटके प्रयोगको माया कहते हैं । सातियोग नाम कूटव्यवहारका है । दूसरेके ठगनेके अभिप्रायको निकृति कहते हैं । योग-वक्रता या मन, वचन, कायकी कुटिलताको अनृजुता कहते हैं । दूसरेके मनोज्ञ अर्थके ग्रहण करनेको ग्रहण कहते हैं । दूसरेके गुप्त अभिप्रायके जाननेका प्रयत्न करना मनोज्ञ-मार्गण है । अथवा मनोज्ञ पदार्थको दूसरेसे विनयादि मिथ्या-उपचारोंके द्वारा लेनेका अभिप्राय करना मनोज्ञ-मार्गण है । दम्भ करनेको कल्क कहते हैं । असद्भूत मंत्र-तंत्र आदिके उपदेश-द्वारा लोगोंको अनुरंजन करके आजीविका करनेको कुहक कहते हैं । अपने भीतरी खोटे अभिप्रायको बाहर नहीं प्रगट होने देना गूहन कहलाता है । गुप्त प्रयोगको या विश्वास-घात करनेको छन्न कहते हैं । ये सब नाम माया-प्रधान होनेके कारण मायाके पर्यायवाची कहे गये हैं ।

काम, राग, निदान, छन्द, स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति तृष्णा, विद्या, और जिह्वा ये बीस लोभके एकार्थक नाम कहे गये हैं ॥८९-९०॥

विशेषार्थ—इष्ट पुत्र, स्त्री आदि परिग्रहकी अभिलाषाको काम कहते हैं । इष्ट विषयोंमें आसक्तिको राग कहते हैं । जन्मान्तर-सम्बन्धी संकल्प करनेको निदान कहते हैं । मनोनुकूल वेष-भूषामें उपयोग रखना छन्द कहलाता है । विविध विषयोंके अभिलाषरूप कलुषित जलके द्वारा आत्म-सिंचनको स्वत कहते हैं । अथवा 'स्व' शब्द आत्मीय-वाचक भी है । स्व के भावको स्वत कहते हैं, तदनुसार स्वतका अर्थ ममता या ममकार होता है । प्रिय वस्तुके पानेके भावको प्रेय कहते हैं । दूसरेके वैभव आदिको देखकर ईर्षालु हो उसके समान या उससे अधिक परिग्रह जोड़नेके भावको द्वेष या दोष कहते हैं । इष्ट वस्तुमें मनके

राग-युक्त प्रणिधानको स्नेह कहते हैं। स्नेहके आधिक्यको अनुराग कहते हैं। अविद्यमान पदार्थकी आकांक्षा करनेको आशा कहते हैं। अथवा 'आश्यति' अर्थात् आत्माको जो कृश करे, उसे आशा कहते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहकी अभिलाषाको इच्छा कहते हैं। परिग्रह रखनेकी अत्यन्त तीव्र मनोवृत्ति (अभिष्वंग)को मूर्च्छा कहते हैं। इष्ट परिग्रहके निरन्तर वृद्धि या अतितृष्णा रखनेको गृद्धि कहते हैं। आशा-युक्त परिणाम या स्पृहाको साशता कहते हैं। अथवा शश्वत् (नित्य) के भावको शास्वत कहते हैं। अर्थात् जो लोभपरिणाम सदा काल बना रहे उसे शास्वत कहते हैं। लोभको शास्वत कहनेका कारण यह है कि परिग्रहकी प्राप्तिके पहिले और पीछे लोभपरिणाम सर्वकाल वीतराग होनेतक बराबर बना रहता है। धन-प्राप्तिकी अत्यन्त इच्छाको प्रार्थना कहते हैं। परिग्रह-प्राप्तिकी आन्तरिक वृद्धिको लालसा कहते हैं। परिग्रहके त्यागके परिणाम न होनेको अविरति कहते हैं। अथवा अविरति नाम असंयम-का भी है। लोभ ही सब प्रकारके असंयमका प्रधान कारण है, इसलिये अविरतिको भी लोभका पर्यायवाची कहा। विषय-पिपासाको तृष्णा कहते हैं। "वेद्यते वेदनं वा विद्या" अर्थात् जिसका निरन्तर पूर्वसंस्कार-वश वेदन या अनुभवन होता रहे, उसे विद्या कहते हैं। इस प्रकारके निरुक्त्यर्थकी अपेक्षा संसारी जीवोंको परिग्रहके अर्जन, संरक्षण आदिकी अपेक्षा लोभकषायका निरन्तर संवेदन होता रहता है, इसलिये लोभकी विद्या यह संज्ञा सार्थक है। अथवा जो विद्याके समान दुराराध्य हो। जिसप्रकार विद्याकी प्राप्ति अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं, उसी प्रकार धनकी प्राप्ति भी अत्यन्त परिश्रमसे होती है। जिह्वा भी लोभका पर्यायवाची नाम है। लोभको जिह्वा ऐसा नाम देनेका कारण यह है कि जिस प्रकार जिह्वा (जीभ) नाना प्रकारके सुन्दर और सुस्वादु व्यंजनोंको देखकर या नाम श्रवण कर उनके खानेके लिये लालायित रहती है, उसी प्रकार सांसारिक उत्तमोत्तम भोगोपभोग साधक वस्तुओं-को देखकर या उनकी कथा सुनकर जीवोंके उसकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त लोलुपता बनी रहती है। इसप्रकार 'जिह्वेव जिह्वा' उपमार्थके साधर्म्यकी अपेक्षा लोभको जिह्वा संज्ञा दी गई है। लोभके ये बीस नाम जानना चाहिये।

इस प्रकार व्यंजन नामका नवाँ अर्थाधिकार समाप्त हुआ

१० सम्मत्त-अत्थाहियारो

१. कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगद्दारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ। २. तं जहा।

(३८) दंसणमोह-उवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे।
जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥९१॥

(३९) काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥९२॥

१० सम्यक्त्व-अर्थाधिकार

जिनवर गणधरको प्रणमि, समकितमें मन लाय।
इस सम्यक्त्व-द्वारको, भाषूँ अति हर्षाय ॥

चूर्णिसू०—कसायपाहुडके इस सम्यक्त्वनामक अनुयोगद्वारमें अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें ये वक्ष्यमाण चार सूत्र-गाथाएँ प्ररूपण करना चाहिए। वे इसप्रकार हैं ॥१-२॥

दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें वर्तमान, किस लेश्यासे युक्त और कौनसे वेदवाला जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है ? ॥९१॥

इस गाथाके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेवाले जीवके चौदह मार्गणा-स्थानोंमें संभव भावोंके अन्वेषणकी सूचना की गई है, जिसका निर्णय आगे चूर्णिसूत्रोंके आधारपर किया जायगा।

दर्शनमोहके उपशम करनेवाले जीवके पूर्व-बद्ध कर्म कौन-कौनसे हैं और अब कौन-कौनसे नवीन कर्मांशोंको बाँधता है। उपशामकके कौन-कौन प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं और यह कौन-कौन प्रकृतियोंका प्रवेशक है, अर्थात् उदीरणारूपसे उदयावलीमें प्रवेश कराता है ? ॥९२॥

विशेषार्थ—इस गाथाके प्रथम चरणके द्वारा दर्शनमोहके उपशमसे पूर्ववर्ती प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसम्बन्धी सत्त्वकी पृच्छा की गई है; क्योंकि, पूर्वबद्ध कर्मको ही सत्त्व कहते हैं। गाथाके द्वितीय चरणसे नवीन बँधनेवाले कर्मोंके विषयमें प्रश्न किया गया है। तृतीय चरणसे उपशमन-कालमें उदयमें आनेवाले कर्मोंकी पृच्छा की गई है और अन्तिम चरणसे उस समय किस-किस प्रकृतिकी उदीरणा होती है, यह प्रश्न पूछा गया है। इन चारों पृच्छाओंका निर्णय आगे चूर्णिसूत्रों द्वारा किया जायगा।

(४०) के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा ।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं ॥९३॥
(४१) किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा ।
ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥९४॥

३. एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदव्वाओ। ४ तं जहा । ५. 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति विहासा । ६. तं जहा । ७. परिणामो विसुद्धो । ८. पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो ।

९. 'जोगे'त्ति विहासा । १०. अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा

दर्शनमोहके उपशमनकालसे पूर्व बन्ध अथवा उदयकी अपेक्षा कौन-कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं ? अन्तरको कहाँपर करता है और कहाँपर तथा किन कर्मोंका यह उपशामक होता है ? ॥९३॥

दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव किस-किस स्थिति-अनुभाग-विशिष्ट कौन-कौनसे कर्मोंका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है और अवशिष्ट कर्म किस स्थिति और अनुभागको प्राप्त होते हैं ? ॥९४॥

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त चार सूत्र-गाथाओंकी अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपणा करना चाहिए । वह प्ररूपणा इस प्रकार है–'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है ?' प्रथम गाथाके इस पूर्व-अंशकी विभाषा इस प्रकार है–दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है, क्योंकि वह इसके अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे ही अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ आरहा है ॥३-८॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमन करनेके लिए उद्यत जीव अधःप्रवृत्तकरण करनेके अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे ही अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा अन्तर्मुहूर्ततक निरन्तर वृद्धिंगत विशुद्धिवाला होता है । इसका कारण यह है कि अति दुस्तर, मिथ्यात्व गर्त्तसे अपना उद्धार करनेके लिए उद्यत, अलब्ध-पूर्व सम्यक्त्व-रत्नकी प्राप्तिके लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील, क्षयोपशम, देशना आदि लब्धियोंकी प्राप्तिके कारण महान् सामर्थ्यसे समन्वित और प्रतिसमय संवेग-निर्वेदके द्वारा उपचीयमान हर्षातिरेकसे संयुक्त सातिशय मिथ्यादृष्टिके अनन्तगुणी विशुद्धि अन्तर्मुहूर्त तक प्रतिक्षण होना स्वाभाविक ही है । इस प्रकार यह प्रथम सूत्र-गाथाके पूर्वार्धका व्याख्यान है ।

अब चूर्णिकार प्रथम गाथाके उत्तरार्धके प्रत्येक पदकी विभाषा करते हैं–

चूर्णिसू०–'जोग' इस पदकी विभाषा इस प्रकार है–अन्यतर मनोयोगी, अन्यतर वचनयोगी, औदारिककाययोगी या वैक्रियिककाययोगी जीव दर्शनमोहका उपशमन प्रारम्भ

ओरालियकायजोगो वा वेउव्वियकायजोगो वा । ११. 'कसाए'त्ति विहासा । १२. अण्णदरो कसायो । १३. किं सो वड्ढमाणो हायमाणो त्ति ? णियमा हायमाणकसायो । १४. 'उवजोगे' त्ति विहासा । १५. णियमा सागारुवजोगो । १६. 'लेस्सा'त्ति विहासा । १७. तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं णियमा वड्ढमाणलेस्सा । १८. 'वेदो य को भवे'त्ति विहासा । १९. अण्णदरो वेदो ।

२०. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि'त्ति विहासा । २१. एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं ।

२२. 'के वा अंसे णिबंधदि'त्ति विहासा । २३. एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो ।

२४. 'कदि आवलियं पविसंति'त्ति विहासा । २५. मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति । २६. उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति । २७. णवरि जइ परभवियाउअमत्थि, तं ण पविसदि ।

करता है । 'कषाय' इस पदकी विभाषा इस प्रकार है–चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायसे उपयुक्त जीव दर्शनमोहके उपशमका प्रारम्भ करता है ॥९-१२॥

शंका–क्या वह वर्धमान कषाय-युक्त होता है, या हीयमान ?

समाधान–नियमसे हीयमान कषाय-युक्त होता है ॥१३॥

चूर्णिसू०–'उपयोग' इस पदकी विभाषा इस प्रकार है–दर्शनमोहका उपशामक जीव नियमसे साकारोपयोगी होता है । 'लेश्या' इसकी विभाषा इस प्रकार है–दर्शनमोह-उपशामकके तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे कोई एक वर्धमान लेश्या होती है । 'कौनसा वेद होता है' इस अन्तिम पदकी विभाषा इस प्रकार है–तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेदवाला जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है ॥१४-१९॥

इस प्रकार प्रथम गाथाकी अर्थ विभाषा समाप्त हुई ।

चूर्णिसू०–अब दूसरी गाथाके 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' इस प्रथम पदकी विभाषा करते हैं–यहाँपर प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका अनुमार्गण करना चाहिए । अर्थात् उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके सत्तायोग्य प्रकृतियोंके संभवासंभवका विचार करना चाहिए ॥२०-२१॥

चूर्णिसू०–'के वा अंसे णिबंधदि' इस दूसरे पदकी विभाषा करते हैं–इस विषयमें प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, और प्रदेशबन्धकी मार्गणा करना चाहिए ॥२२-२३॥

चूर्णिसू०–'कदि आवलियं पविसंति' इस तीसरे पदकी विभाषा इस प्रकार है–दर्शनमोहका उपशमन करनेवाले जीवके सभी मूल प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं । उत्तरप्रकृतियोंमेंसे भी जो होती हैं, अर्थात् जिनका सत्त्व पाया जाता है, वे प्रवेश करती हैं, अन्य नहीं । विशेष इतना जानना कि यदि पर-भव-सम्बन्धी आयुका अस्तित्व हो, तो वह उदयावलीमें प्रवेश नहीं करती है ॥२४-२७॥

२८. 'कदिण्हं वा पवेसगो'त्ति विहासा'। २९. मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो। ३०. उत्तरपयडीणं पंच णाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्त-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघादुस्सास-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो। ३१. सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो* । ३२. चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो। ३३. भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो। ३४. चउण्हमाउआणमण्णदरस्स पवेसगो। ३५. चदुण्हं गइणामाणं दोण्हं सरीराणं छण्हं संठाणाणं दोण्हमंगोवंगाणमण्णदरस्स पवेसगो। ३६. छण्हं संघडणाणं अण्णदरस्स सिया। ३७. उज्जोवस्स सिया†। ३८. दोविहायगइ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-अण्णदरस्स पवेसगो। ३९. उच्चाणीचागोदाणमण्णदरस्स पवेसगो।

४०. 'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा। ४१.असादावेद-

चूर्णिसू०—'कदिण्हं वा पवेसगो' दूसरी गाथाके इस अन्तिम पदकी विभाषा इस प्रकार है—दर्शनमोहका उपशामक जीव सभी मूल प्रकृतियोंकी उदीरणा करता है। उत्तर प्रकृतियोंमेंसे पाँचों ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मण-शरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और अन्तरायकी पाँचों प्रकृतियोंका उदीरणाद्वारा नियमसे उदयावलीमें प्रवेश करता है। सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे किसी एकका प्रवेश करता है। चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायका, तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदका और हास्यादि दो युगलोंमेंसे किसी एक युगलका प्रवेश करता है। भय और जुगुप्साका स्यात् प्रवेश करता है। चारों आयुमेंसे किसी एकका प्रवेश करता है। चारों गतिनामोंमेंसे किसी एकका, औदारिक और वैक्रियिक इन दो शरीरोंमेंसे किसी एकका, छहों संस्थानोंमेंसे किसी एकका, तथा औदारिकांगोपांग और वैक्रियिकांगोपांगमेंसे किसी एकका प्रवेश करता है। छहों संहननोंमेंसे किसी एकका स्यात् प्रवेश करता है। उद्योतका स्यात् प्रवेश करता है। दोनों विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन युगलोंमेंसे किसी एक-एकका प्रवेश करता है। उच्चगोत्र और नीचगोत्रमेंसे किसी एकका प्रवेश करता है ॥२८-३९॥

चूर्णिसू०—अब तीसरी गाथाके 'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' इस पूर्वार्धकी विभाषा करते हैं—दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाले जीवके असातावेदनीय, स्त्री-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें यह सूत्र इस प्रकारसे मुद्रित है—[सादासादवेदणीयाणमण्णदरस्स पवेसगो] (देखो पृ० १७००)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'सिया' पदको टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १७०१)। पर टीकाके अनुसार इसे सूत्रका अंश होना चाहिए।

णीय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोग-चदुआउ-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण - णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-अप्पसत्थविहायगइ-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साहारण-अथिर-असुभ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्तिणामाणि एदाणि बंधेण वोच्छिण्णाणि।

वेद, अरति, शोक, चारों आयु, नरकगति, पंचेन्द्रियजातिके विना चार जाति, प्रथम संस्थानके विना पाँच संस्थान, प्रथम संहननके विना पाँच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्त्ति, ये प्रकृतियाँ बंधसे पहले ही व्युच्छिन्न हो जाती हैं ॥४०-४१॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहके उपशम होनेसे पूर्व ही इन उपर्युक्त प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति इस क्रमसे होती है–दर्शनमोहके उपशमनके लिए उद्यत सातिशय मिथ्यादृष्टि जीवके अभव्योंके बंधने योग्य अन्तकोड़ा कोड़ी-प्रमाण स्थितिबन्धकी अवस्था तक तो एक भी कर्म-प्रकृतिका बन्ध-विच्छेद नहीं होता है। इससे अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सागरोपमशत-पृथक्त्वप्रमाण स्थितिबन्धापसरण होनेपर अन्य स्थितिको बाँधनेके कालमें सबसे पहले नरकायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। इससे आगे सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर तिर्यगायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। इससे आगे सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर मनुष्यायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। इससे आगे सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर देवायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। इससे आगे सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। इससे आगे सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर इन तीन अन्योन्यानुगत प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। तत्पश्चात् सागरोपमशतपृथक्त्व स्थितिबन्धापसारण होनेपर सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीर इन तीन अन्योन्यानुगत प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। तत्पश्चात् सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होने पर बादर, अपर्याप्त और साधारणशरीर इन तीन अन्योन्यानुगत प्रकृतियोंका एकसाथ बन्ध-विच्छेद होता है। तत्पश्चात् सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर बादर, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन तीन अन्योन्यानुगत प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर द्वीन्द्रियजाति और अपर्याप्तनामका परस्पर-संयुक्त रूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर त्रीन्द्रियजाति और अपर्याप्तनामका परस्पर-संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर चतुरिन्द्रियजाति और अपर्याप्तनामका परस्पर संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर असंज्ञिपंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्तनामका परस्पर-संयुक्तरूपसे बन्ध विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर संज्ञिपंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्तनामका परस्पर-संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर

सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारणशरीर, इन तीनोंका परस्पर संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन तीनोंका परस्पर-संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर बादर, पर्याप्त और साधारणशरीर, इन तीनोंका परस्पर संयुक्तरूपसे बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, एकेन्द्रिय, आताप, और स्थावरनाम, इन छह प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त-नामका बन्ध विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर त्रीन्द्रिय-जाति और पर्याप्तनामका बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्तनामका बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर असंज्ञिपंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्तनामका बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीन प्रकृतियोंका एकसाथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धा-पसरण होनेपर नीचगोत्रका बन्ध-विच्छेद होता है। यहाँ इतना विशेष जानना कि सातवीं पृथिवीके नारकीकी अपेक्षा तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका बन्ध-विच्छेद नहीं होता है, इसीलिए चूर्णिसूत्रमें इन प्रकृतियोंके बन्ध-विच्छेदका निर्देश नहीं किया गया। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर अप्रशस्तविहा-योगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर हुंडकसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धासरण होनेपर नपुंसकवेदका बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर वामनसंस्थान और कीलकसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है–पुनः साग-रोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर स्त्रीवेदका बन्ध विच्छेद होता है। पुनः सागरोपम-पृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसारण होनेपर न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दो प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर मनुष्यगति, औदारिक-शरीर, औदारिकअंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, और मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, इन पाँच प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है। यह सब बन्धविच्छेदका वर्णन तिर्यंच और मनुष्योंकी अपेक्षासे किया है। क्योंकि, देव और नारकियोंमें इन प्रकृतियोंका बन्ध-

४२. पंचदंसणावरणीय-चदुजादिणामाणि चदुआणुपुव्विणामाणि आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणि एदाणि उदएण वोच्छिणाणि ।

४३. 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' त्ति विहासा । ४४. ण ताव अंतरं, उवसामगो वा; पुरदो होहिदि त्ति ।

एवं तदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

४५. 'किं ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा । ओवट्टेयूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि' त्ति विहासा । ४६. ट्ठिदिघादो* संखेज्जा भागे घादेदूण संखेज्जदि-

---

विच्छेद नहीं पाया जाता है, इसीलिए सूत्रमें इन उक्त प्रकृतियोंके बन्ध-विच्छेदका निर्देश नहीं किया गया है । बन्ध-प्रकृतियोंके विच्छेदका निर्देशक यह चूर्णिसूत्र चतुर्गति-सामान्य-की अपेक्षासे प्रवृत्त हुआ है । पुनः सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबन्धापसरण होनेपर असाता-वेदनीय, अरति; शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति, इन प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-विच्छेद होता है । इस प्रकार चौंतीस बन्धापसरणोंके द्वारा उपर्युक्त प्रकृतियाँ बन्धसे व्यु-च्छिन्न होती हैं, अर्थात् उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रक-तियोंका बन्ध नहीं करता है ।

इस प्रकार दर्शनमोहके उपशमनके पूर्व होनेवाले प्रकृतिबन्ध-व्युच्छेदको बतलाकर अब चूर्णिकार प्रकृति-विषयक उदय-व्युच्छेदका निरूपण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—पाँच दर्शनावरणीय, एकेन्द्रियादि चार जातिनामकर्म, चारों आनुपूर्व्य-नामकर्म, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीरनामकर्म, इतनी प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥४२॥

विशेषार्थ—यहाँपर दर्शनावरणीयकी पाँच प्रकृतियोंमेंसे पाँचों निद्राकर्मोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि दर्शनमोहका उपशमन करनेवाले जीवके साकार-उपयोग और जागृत-अवस्था बतलाई गई है, जो कि किसी भी प्रकारके निद्राकर्मके उदयमें संभव नहीं है । यही बात चार जाति आदि शेष प्रकृतियोंके उदय-विच्छेदके विषयमें जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' तीसरी गाथाके इस उत्तरार्धकी विभाषा करते हैं—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें न अन्तरकरण होता है और न यहाँ पर वह मोहकर्मका उपशामक ही होता है, किन्तु आगे जाकर अनिवृत्तिकरणके कालमें ये दोनों ही कार्य होंगे ॥४३-४४॥

इस प्रकार तीसरी गाथाकी अर्थ-विभाषा समाप्त हुई ।

चूर्णिसू०—अब 'किं ठिदियाणि कम्माणि' इस चौथी गाथाकी विभाषा की जाती है । स्थितिघात संख्यात बहुभागोंका घात करके संख्यातवें भागको प्राप्त होता है । अनुभाग-घात अनन्त बहुभागोंका घात करके अनन्तवें भागको प्राप्त होता है । इसलिए इस अधः-

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ट्ठिदिघादो'के स्थानपर 'ट्ठिदियादो' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १७०६) ।

भागं पडिवज्जइ । ४७. अणुभागघादो अणंते भागे घादिदूण अणंतभागं पडिवज्जइ । ४८. तदो इमस्स चरिमसमय-अधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदिघादो वा, अणुभागघादो वा । से काले दो वि घादा पवत्तीहिंति ।

४९. एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदाओ । ५०. दंसणमोहउवसामगस्स तिविहं करणं । ५१. तं जहा । ५२. अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टिकरणं च । ५३. चउत्थी उवसामणद्धा ।

प्रवृत्तकरणके चरम समयमें वर्तमान जीवके न तो स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है । किन्तु तदनन्तर समयमें अर्थात् अपूर्वकरणके कालमें ये दोनों ही घात प्रारम्भ होंगे ॥४५-४८॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार उक्त चारों सूत्र-गाथाएँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपित की गई । दर्शनमोहका उपशमन करनेवाले जीवके तीन प्रकारके करण अर्थात् परिणामविशेष होते हैं । वे इस प्रकार हैं–अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण । उक्त जीवके चौथी उपशामनाद्धा भी होती है ॥४९-५३॥

विशेषार्थ–जिन परिणामविशेषोंके द्वारा मोहकर्मका, उपशम, क्षय या क्षयोपशम किया जाता है उन्हें करण कहते हैं । वे परिणामविशेष तीन प्रकारके होते हैं–अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण । चूर्णिकार आगे स्वयं ही तीनों करणोंका विस्तृत विवेचन करेंगे । यहाँ इनका इतना अभिप्राय समझ लेना चाहिए कि जिस भावमें वर्तमान जीवोंके उपरितनसमयवर्ती परिणाम अधस्तनसमयवर्ती जीवोंके साथ संख्या और विशुद्धिकी अपेक्षा सदृश होते हैं, उन भावोंके समुदायको अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं । इस अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है । अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण अपूर्वकरणका काल है और अपूर्वकरण कालके संख्यातवें भागप्रमाण अनिवृत्तकरणका काल है । इन तीनों परिणामोंका समुदायात्मक काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है । जिस कालमें प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिए हुए अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते हैं, उन परिणामोंको अपूर्वकरण कहते हैं । अपूर्वकरणके विभिन्न समयोंमें वर्तमान जीवोंके परिणाम सदृश नहीं होते, किन्तु विसदृश या असमान और अनन्तगुणी विशुद्धितासे युक्त पाये जाते हैं । अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं । यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल अल्प है, तथापि परिणामोंके संख्याकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंसे अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोकगुणित होते हैं । अनिवृत्तिकरणके परिणामोंकी संख्या उसके कालके समयोंके समान है । अर्थात् एक समयवर्ती जीवके एक ही परिणाम पाया जाता है और एक समयवर्ती अनेक जीवोंके भी एक सदृश ही परिणाम पाये जाते हैं । एक कालवर्ती जीवोंके परिणामोंमें निवृत्ति, भेद या विसदृशता नहीं पाई जाती है, इसीलिए उन्हें अनिवृत्तिकरण कहते हैं । चौथी उपशामनाद्धा होती है । अद्धा नाम कालका है, जिस कालविशेषमें दर्शनमोहनीय कर्म

५४. एदेसिं करणाणं लक्खणं* । ५५. अधापवत्तकरणपढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा । ५६. विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । ५७. एवमंतोमुहुत्तं । ५८. तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । ५९. जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा, तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । ६०. विदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । ६१. एवं णिव्वग्गणखंडयमंतोमुहुत्तद्धमेत्तं अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति । ६२. तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा, तत्तो† उवरिमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । ६३. एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति । ६४. एदमधापवत्तकरणस्स लक्खणं ।

उपशम अवस्थाको प्राप्त होकर अवस्थित रहता है, उसे उपशामनाद्धा या उपशमकाल कहते हैं ।

चूर्णिसू०–अब इन तीनों करणोंका लक्षण कहते हैं–अधः प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे कम होती है। प्रथम समयसे द्वितीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । (द्वितीय समयसे तृतीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है ।) इस प्रकार यह क्रम अन्तर्मुहूर्त तक चलता है । तत्पश्चात् प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । जिस समयमें जघन्य विशुद्धि समाप्त हो जाती है, उससे उपरिम समयमें, अर्थात् प्रथम निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयके आगेके समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । इस प्रकार यह क्रम निर्वर्गणाकांडकमात्र अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण अध प्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक चलता है । तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल अपसरण करके जिस समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि समाप्त होती है, उससे अर्थात् द्विचरमनिर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयसे उपरिम समयमें अर्थात् अन्तिम निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । इस प्रकारसे उत्कृष्ट विशुद्धिका यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए । यह अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण है ॥५४-६४॥

विशेषार्थ–अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपको और ऊपर बतलाये गये अल्पबहुत्वको एक दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट करते हैं-दो जीव एक साथ अधःकरणपरिणामको प्राप्त हुए । उनमें एक तो सर्व-जघन्य विशुद्धिके साथ अधःप्रवृत्तकरणको प्राप्त हुआ और दूसरा सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके साथ । प्रथम जीवके प्रथम समयमें परिणामोंकी विशुद्धि सबसे मन्द होती है । इससे दूसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । इससे तीसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि अधःप्रवृत्त-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रको ५३ नं० के सूत्रकी टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १७०८ पंक्ति-पंक्ति) । पर ताड़पत्रीय प्रतिसे इसके सूत्रत्वकी पुष्टि हुई है ।

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तत्तो'के स्थानपर 'तदो' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १७१२) ।

६५. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। ६६. तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। ६७. विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। ६८. तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। ६९ समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि*। ७०. एवं णिव्वग्गणा च†। ७१. एदं अपुव्वकरणस्स लक्खणं।

करणका संख्यातवाँ भाग अर्थात् निर्वर्गणाकांडकका अन्तिम समय न प्राप्त हो जाय। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागको प्राप्त प्रथम जीवके जो विशुद्धि होगी, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस दूसरे जीवके प्रथम समयमें होगी जो कि उत्कृष्ट विशुद्धिके साथ अधःकरणको प्राप्त हुआ था। इस दूसरे जीवके प्रथम समयमें जितनी विशुद्धि होती है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस प्रथम जीवके होती है जो कि एक निर्वर्गणाकांडक या अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागसे ऊपर जाकर दूसरे निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धिसे वर्तमान है। इस प्रथम जीवके इस स्थानपर जितनी विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस दूसरे जीवके दूसरे समयमें होगी। इससे अनन्तगुणी विशुद्धि प्रथम जीवके एक समय ऊपर चढ़नेपर होगी। इस प्रकार इन दोनों जीवोंको आश्रय करके यह अनन्तगुणित विशुद्धिका क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय-सम्बन्धी जघन्य विशुद्धिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। उससे ऊपर उत्कृष्ट विशुद्धिके स्थान अनन्तगुणित क्रमसे होते हैं। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणमें विद्यमान जीवके परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर समयोंमें अनन्तगुणित क्रमसे बढ़ती जाती है।

अब अपूर्वकरणका लक्षण कहते हैं—

चूर्णिसू०—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम होती है। इसी प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धिसे द्वितीय समयकी ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। (इसप्रकार यह क्रम अपूर्वकरण-कालके अन्तिम समय तक चलता है।) अपूर्वकरणके कालमें समय-समय अर्थात् प्रतिसमय असंख्यात लोक-प्रमाण परिणामस्थान होते हैं। इस प्रकार वह क्रम निर्वर्गणाकांडक तक चलता है। यह अपूर्वकरणका लक्षण है ॥६५-७१॥

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके कालमें जिस प्रकार अनुकृष्टि रचना होती है उस

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रको सूत्र नं० ६८ की टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १७१३, पंक्ति १४)। पर उक्त स्थलकी टीकासे तथा ताड़पत्रीय प्रतिसे उसकी सूत्रता सिद्ध है।

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें यह सूत्र इस प्रकार मुद्रित है-'एवं णिव्वग्गणा च जत्तियमद्धाणमुवरि गंतूण णिरुद्धसमयपरिणामाणमणुकट्टी वोच्छिज्जदि, तमेव णिव्वग्गणखंडयं णाम'। (देखो पृ० १७१३) पर 'जत्तिय' पदसे आगेका अंश टीकाका अंग है, जिसमें कि निर्वर्गणाकांडकका स्वरूप बतलाया गया है।

७२. अणियट्टिकरणे समए समए एक्केकपरिणामट्ठाणाणि अणंतगुणाणि च । ७३. एदमणियट्टिकरणस्स लक्खणं। ७४. अणादियमिच्छादिट्ठिस्स उवसामगस्स परूवणं वत्तइस्सामो । ७५. तं जहा । ७६. अधापवत्तकरणे ट्ठिदिखंडयं वा अणुभाग-खंडयं वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा णत्थि, केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि । ७७. अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्ठाणिये अणंतगुणहीणे च । पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते चउट्ठाणिए अणंतगुणे च समये समये* । ७८. ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणं बंधदि ।

प्रकारसे अपूर्वकरणके कालमें अनुकृष्टिरचना नहीं होती है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक समयमें ही जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। फिर भी यह क्रम निर्वर्गणाकांडक तक चलता है, ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि यहाँपर प्रत्येक समयमें ही निर्वर्गणाकांडक जानना चाहिए। इसका कारण यह है कि विवक्षित किसी भी समयके परिणाम उपरितन किसी भी समयके साथ समान नहीं होते हैं, किन्तु असमान या अपूर्व ही अपूर्व होते हैं। निर्वर्गणाकांडक किसे कहते हैं ? इस शंकाका समाधान यह है कि जितने काल आगे जाकर निरुद्ध या विवक्षित समयके परिणामोंकी अनुकृष्टि विच्छिन्न हो जाती है, उसे निर्वर्गणा-कांडक कहते हैं।

अब अनिवृत्तिकरणका लक्षण कहते हैं–

चूर्णिसू०–अनिवृत्तिकरणके कालमें समय-समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक-एक ही परिणामस्थान होते हैं अर्थात् अनिवृत्तिकरणकालके जितने समय हैं, उतने ही उसके परिणामोंकी संख्या है। तथा वे उत्तरोत्तर अनन्तगुणित होते हैं। अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयके परिणामसे द्वितीय समयका परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धिसे युक्त होता है। यह क्रम अन्तिम समय तक जानना चाहिए। यह अनिवृत्तिकरणका लक्षण है ॥७२-७३॥

चूर्णिसू०–अब उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले अनादिमिथ्यादृष्टि जीवकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है–अनादिमिथ्यादृष्टिके अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रम नहीं होता है। वह केवल प्रतिसमय अनन्त-गुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ चला जाता है। यह जीव जिन अप्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है, उन्हें द्विस्थानीय अर्थात् निम्ब और कांजीररूप और समय-समय अनन्तगुणहीन अनुभागशक्तिसे युक्त ही बाँधता है। जिन प्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है, उन्हें गुड़, खांड आदि चतुःस्थानीय और समय-समय अनन्तगुणी अनुभागशक्तिसे युक्त बाँधता है। अधः-प्रवृत्तकरणकालमें स्थितिबन्धका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। एक एक स्थितिबन्धकालके पूर्ण-पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिबन्धको बाँधता है। इस प्रकार

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'समये समये' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है (देखो पृ० १७१५ पंक्ति २)।

७९. अपुव्वकरणपढमसमये ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं । ८०. ट्ठिदिबंधो अपुव्वो । ८१. अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाणमणंता भागा । ८२. तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि थोवाणि । ८३. अइच्छावणाफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ८४. णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ८५. आगाइदफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ८६. अपुव्वकरणस्स चेव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिअद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ । ८७. तम्हि ट्ठिदिखंडयद्धा ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला । ८८. एकम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि । ८९. ठिदिखंडगे समत्ते

संख्यात सहस्र स्थितिबन्धापसरणोंके होनेपर अधःप्रवृत्तकरणका काल समाप्त हो जाता है ॥७४-७८॥

चूर्णिसू०—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिखंड पल्योपमका संख्यातवाँ भाग है और उत्कृष्ट स्थितिखंड सागरोपमपृथक्त्व है । अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होनेवाले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अपूर्व स्थितिबन्ध अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अनुभागकांडकघात अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्त बहुभाग होता है । विशुद्धिके बढ़नेसे प्रशस्त कर्मोंके अनुभागकी वृद्धि तो होती है, पर अनुभागका घात नहीं होता है ॥७९-८१॥

अब चूर्णिकार अनुभागकांडकघातका माहात्म्य बतलानेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—अनुभागके एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमें जो अनुभागसम्बन्धी स्पर्धक हैं, वे वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । उनसे अतिस्थापनाके स्पर्धक अनन्तगुणित होते हैं, (क्योंकि जघन्य भी अतिस्थापनाके भीतर अनन्त गुणहानिस्थानान्तर पाये जाते हैं ।) अतिस्थापनाके स्पर्धकोंसे निक्षेप-सम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणित होते हैं । निक्षेप-सम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनुभागकांडकरूपसे ग्रहण किये गये स्पर्धक अनन्तगुणित होते हैं, (क्योंकि, यहाँपर संभव द्विस्थानीय अनुभागसत्त्वके अनन्तवें भागको छोड़कर शेष अनन्त बहुभागको कांडकस्वरूपसे ग्रहण किया गया है ।) अपूर्वकरणके ही प्रथम समयमें आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है । अपूर्वकरणमें स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबंधका काल, ये दोनों तुल्य होते हैं । (क्योंकि इन दोनोंका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है । इतना विशेष है कि प्रथम स्थितिकांडकके उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धके काल यथाक्रमसे विशेष हीन होते जाते हैं ।) एक स्थितिकांडकके कालमें सहस्रों अनुभागकांडकोंका घात करता है, (क्योंकि, स्थितिकांडकके उत्कीरण-कालसे अनुभागकांडकका उत्कीरण-काल संख्यातगुणित हीन होता है ।) स्थितिकांडक-घातके समाप्त होनेपर अनुभागकांडक-घात और स्थितिबन्धकका काल

अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबंधगद्धा च समत्ताणि भवंति। ९०. एवं ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि। ९१. अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं।

९२. अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं, अण्णो ट्ठिदिबंधो, अण्णमणुभागखंडयं। ९३. एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अंतरं[1] करेदि। ९४. जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुण-

समाप्त हो जाता है। इस प्रकार अनेक सहस्र स्थितिकांडक-घातोंके व्यतीत हो जानेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त हो जाता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिसत्त्वसे (और स्थितिबन्धसे) अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व (और स्थितिबन्ध) संख्यात-गुणित हीन होता है। इस प्रकार अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ॥८२-९१॥

चूर्णिसू०—अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिखंड, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकांडक-घात प्रारम्भ होता है। (किन्तु गुणश्रेणि निक्षेप अपूर्वकरणके समान ही प्रतिसमय असंख्यातगुणित प्रदेशोंके विन्याससे विशिष्ट और गलितावशेषरूप ही रहता है।) इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडक-घातोंके द्वारा अनिवृत्तिकरण-कालके संख्यात बहु-भागोंके व्यतीत होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्वकर्मका अन्तर करता है ॥९२-९३॥

विशेषार्थ—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषसे अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं। जब अनादिमिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः अधःकरण और अपूर्वकरणका काल समाप्त करके अनिवृत्तिकरणकालके भी संख्यात बहु भाग व्यतीत कर लेता है, उस समय मिथ्यात्व कर्मका अन्तर्मुहूर्त काल तक अन्तरकरण करता है। अर्थात् अन्तरकरण प्रारम्भ करनेके समयसे पूर्व उदयमें आनेवाले मिथ्यात्वकर्मकी अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण स्थितिके निषेकोंका उत्कीरण कर कुछ कर्म-प्रदेशोंको प्रथमस्थितिमें क्षेपण करता है और कुछको द्वितीयस्थितिमें। अन्तरकरणसे नीचेकी अन्तर्मुहूर्त-प्रमित स्थितिको प्रथमस्थिति कहते हैं और अन्तरकरणसे ऊपरकी स्थिति-को द्वितीयस्थिति कहते हैं। इस प्रकार प्रतिसमय अन्तरायाम-सम्बन्धी कर्म-प्रदेशोंको ऊपर-नीचेकी स्थितियोंमें तब तक क्षेपण करता रहता है, जबतक कि अन्तरायाम-सम्बन्धी समस्त निषेकोंका अभाव नहीं हो जाता है। यह क्रिया एक अन्तर्मुहूर्त काल तक जारी रहती है। इस प्रकार अन्तरायामके समस्त निषेकोंके प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थितिमें देनेको अन्तर-करण कहते हैं।

चूर्णिसू०—उस समय जितना स्थितिबन्धका काल है, उतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे अर्थात् गुणश्रेणीशीर्षसे लेकर (नीचे) संख्यातवें

१ किमंतरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अंतोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे। जयध०

सेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो [हेट्ठा] संखेज्जदिभागं खंडेदि । ९५. तदो अंतरं कीरमाणं कदं । ९६. तदोप्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ ।

९७. पढमट्ठिदीदो वि विदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगालो[1] ताव, जाव आवलियपडिआवलियाओ[2] सेसाओ त्ति । ९८. आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु तदोप्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेढी णत्थि । ९९. सेसाणं कम्माणं गुणसेढी अत्थि । १००.

भागप्रमाण प्रदेशाग्रको खंडित करता है । (गुणश्रेणीशीर्षसे ऊपर संख्यातगुणी उपरिम स्थितियोंको खंडित करता है । तथा अन्तरके लिए वहाँपर उत्कीर्ण किये गये प्रदेशाग्रको उस समय बँधनेवाले मिथ्यात्वकर्ममें उसकी आबाधाकालहीन द्वितीयस्थितिमें स्थापित करता है और प्रथमस्थितिमें भी देता है, किन्तु अन्तरकाल-सम्बन्धी स्थितियोंमें नहीं देता है ।) इस प्रकार किया जानेवाला कार्य किया गया, अर्थात् अन्तरकरणका कार्य सम्पन्न हुआ । अन्तरकरण समाप्त होनेके समयसे लेकर वह जीव 'उपशामक' कहलाता है ॥९४-९६॥

विशेषार्थ—यद्यपि अन्तरकरण समाप्त करनेसे पूर्व भी वह जीव 'उपशामक' ही था, किन्तु चूर्णिकारने यहाँ यह पद मध्यदीपकन्यायसे दिया है, तदनुसार यह अर्थ होता है कि अधःप्रवृत्तकरण प्रारम्भ करनेके समयसे लेकर अन्तरकरण करनेके समय तक भी वह उपशामक था और आगे भी मिथ्यात्वके तीन खंड करने तक उपशामक कहलायगा ।

चूर्णिसू०—प्रथमस्थितिसे भी और द्वितीयस्थितिसे भी तब तक आगाल-प्रत्यागाल होते रहते हैं, जबतक कि आवली और प्रत्यावली शेष रहती हैं ॥९७॥

विशेषार्थ—प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थितिका अर्थ पहले बतला आये हैं । अपकर्षणके निमित्तसे द्वितीयस्थितिके कर्म-प्रदेशोंके प्रथमस्थितिमें आनेको आगाल कहते हैं । तथा उत्कर्षणके निमित्तसे प्रथमस्थितिके कर्म-प्रदेशोंके द्वितीयस्थितिमें जानेको प्रत्यागाल कहते हैं । सूत्रमें 'आवली' ऐसा सामान्य पद होनेपर भी प्रकरणवश उसका अर्थ 'उदयावली' करना चाहिए । उदयावलीसे ऊपरके आवलीप्रमाण कालको प्रत्यावली या द्वितीयावली कहते हैं । जब अन्तरकरण करनेके पश्चात् मिथ्यात्वकी स्थिति आवलि-प्रत्यावलीमात्र रह जाती है, तब आगाल-प्रत्यागालरूप कार्य बन्द हो जाते हैं ।

चूर्णिसू०—आवली और प्रत्यावलीके शेष रह जानेपर उससे आगे मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी नहीं होती है, (क्योंकि उस समयमें उदयावलीसे बाहिर कर्म-प्रदेशोंका निक्षेप नहीं होता है ।) किन्तु शेष कर्मोंकी गुणश्रेणी होती है । (यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि आयुकर्मकी भी उस समय गुणश्रेणी नहीं होती है ।) उस समय प्रत्यावलीसे

---

१ आगालमागालो, विदियट्ठिदिपदेसाणं पढमट्ठिदीए ओकड्डुणावसेणागमणमिदि वुत्तं होइ । प्रत्यागलनं प्रत्यागालः, पढमट्ठिदिपदेसाणं विदियट्ठिदीए उक्कड्डुणावसेण गमणमिदि भणिदं होइ । तदो पढम-विदियट्ठिदिपदेसाणमुक्कड्डुणोकड्डुणावसेण परोप्परविसयसंकमो आगाल-पडिआगालो त्ति घेत्तव्वो । जयध०

२ तत्थावलिया त्ति वुत्ते उदयावलिया घेत्तव्वा । पडिआवलिया त्ति एदेण वि उदयावलियादो उवरिमविदियावलिया गहेयव्वा । जयध०

पडिआवलियादो चेव उदीरणा। १०१. आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि।

१०२. चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ[1]। १०३. ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा[2]। १०४. पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसग्गं देदि। सम्मत्ते असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं* देदि। १०५. विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि। १०६. सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि। १०७. तदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि। १०८. सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि। १०९. एवमंतोमुहुत्तद्धं गुणसंकमो णाम। ११०. तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदि-

---

ही मिथ्यात्वकर्मकी उदीरणा होती है। आवली अर्थात् उदयावलीमात्र प्रथमस्थितिके शेष रह जानेपर मिथ्यात्वकर्मके स्थिति-अनुभागका उदीरणारूपसे घात नहीं होता है॥९८-१०१॥

विशेषार्थ–मिथ्यात्वका स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात तो प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक संभव है; क्योंकि, चरमस्थितिके बन्धके साथ ही उनकी समाप्ति देखी जाती है। इसलिए यहाँ उदीरणाघातका ही निषेध किया गया है, ऐसा जानना चाहिए।

चूर्णिसू०–उपर्युक्त विधानसे आवलीमात्र अवशिष्ट मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिको क्रमसे वेदन करता हुआ उक्त जीव चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि होता है और तदनन्तर समयमें अर्थात् मिथ्यात्वकी सर्व प्रथमस्थितिको गला देनेपर वह दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता है। तभी ही वह अर्थात् दर्शनमोहनीयकर्मका उपशमन करनेके प्रथम समयमें ही, मिथ्यात्वकर्मके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति नामके तीन कर्मांश अर्थात् खंड उत्पन्न करता है। प्रथमसमयवर्ती उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वसे प्रदेशाग्र अर्थात् उदीरणाको प्राप्त कर्म प्रदेशोंको लेकर उनका बहु भाग सम्यग्मिथ्यात्वमें देता है और उससे असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्र सम्यक्त्वप्रकृतिमें देता है। इससे द्वितीय समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र देता है। इससे सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र देता है। इससे तीसरे समयमें सम्यक्त्व-प्रकृतिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र देता है और इससे भी असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र सम्यग्मि-थ्यात्वमें देता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक गुणसंक्रमण होता है। अर्थात् गुणश्रेणीके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मको गुणसंक्रमणके अन्तिम समय तक पूरित करता है। असंख्यातगुणित क्रमसे कर्म-प्रदेशोंके संक्रमणको गुणसंक्रमण कहते हैं। इस

---

१ को एत्थ दंसणमोहणीयस्स उवसमो णाम? करणपरिणामेहिं णिस्सत्तीकयस्स दंसणमोहणीयस्स उदयपज्जाएण विणा अवट्ठाणमुवसमो त्ति भण्णदे। जयध०

२ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदा। जयध०

३ कुदो एवमेदेसिमुप्पत्ती चे ण, अणियट्टिकरणपरिणामेहिं पेल्लिज्जमाणस्स दंसणमोहणीयस्स जंतेण दलिज्जमाणकोद्दवरासिस्सेव तिण्हं भेदाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पदेसग्गं' पाठ नहीं है। (देखो पृ० १७२३)

भागपडिभागेण संकमेदि, सो विज्झादसंकमो णाम। १११. जाव गुणसंकमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च।

११२. एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो। ११३. सव्वत्थोवा उवसामगस्स जं चरिम-अणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा। ११४. अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ। ११५. चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो तम्हि चेव ट्ठिदिबंधकालो च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा। ११६. अंतरकरणद्धा तम्हि चेव ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। ११७. अपुव्वकरणे ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। ११८. उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो। ११९. पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढिसीसयं संखेज्जगुणं। १२०. पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा। १२१. उवसामगद्धा विसेसाहिया। १२२. [विसेसो पुण] बे आवलियाओ समयूणाओ। १२३. अणियट्टि-अद्धा संखेज्जगुणा। १२४. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा।

गुणसंक्रमणके पश्चात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा संक्रमण करता है। इसीका नाम विध्यातसंक्रमण है। जब तक गुणसंक्रमण होता है, तब तक मिथ्यात्व (और आयु) कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणीरूप कार्य होते रहते हैं ॥१०२-१११॥

चूर्णिसू०—इस दर्शनमोहोपशामककी प्ररूपणाके समाप्त होनेपर यह पच्चीस पदिक अर्थात् पदोंवाला अल्पबहुत्व-दंडक जानने योग्य है—दर्शनमोहनीयके उपशमन करनेवाले जीवके मिथ्यात्व कर्मका जो अन्तिम अनुभाग खंड है, उसके उत्कीरणका काल वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है (१)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले अनुभाग खंडका उत्कीरण काल विशेष अधिक है (२) । इससे अनिवृत्तिकरणके अन्तिम स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और इसी समयमें संभव स्थितिबन्धका काल ये दोनों परस्परमें समान होते हुए भी संख्यातगुणित होते हैं (३-४)। इससे अन्तरकरणका काल और वहींपर संभव स्थितिबन्धका काल ये दोनों परस्पर तुल्य होते हुए भी विशेष अधिक हैं (५-६)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिखंडका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल ये दोनों परस्पर समान होते हुए भी विशेष अधिक हैं (७-८)। इससे दर्शनमोहका उपशामक जीव जब तक गुणसंक्रमणसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको पूरता है, वह काल संख्यातगुणा है (९)। इससे प्रथम समयवर्ती उपशामकका गुणश्रेणीशीर्षक संख्यातगुणा है (१०)। इससे मिथ्यात्वकी प्रथमस्थिति संख्यातगुणी है (११)। इससे उपशामकाद्धा अर्थात् दर्शनमोहके उपशमानेका काल विशेष अधिक है। (१२) वह विशेष एक समय कम दो आवलीप्रमाण है। इससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है (१३)। इससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है (१४)। इससे गुण-

१२५. गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। १२६. उवसंतद्धा[1] संखेज्जगुणा। १२७. अंतरं संखेज्जगुणं। १२८. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। १२९. उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। १३०. जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। १३१. उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। १३२. जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। १३३. उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। १३४. जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। १३५. उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। १३६. एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो समत्तो।

१३७. एत्तो सुत्तफासो कायव्वो भवदि।

(४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो।
पंचिंदिओ य सण्णी* णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥९५॥

(४३) सव्वणिरय-भवणेसु दीव-समुद्दे गह [गुह] जोदिसि-विमाणे।
अभिजोग्ग-अणभिजोग्गो† उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥९६॥

श्रेणीका निक्षेप अर्थात् आयाम विशेष अधिक है (१५)। इससे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है (१६)। इससे अन्तर-सम्बन्धी आयाम संख्यातगुणा है (१७)। इससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है (१८)। इससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है (१९)। इससे (अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभव) जघन्य स्थितिखंड असंख्यातगुणा है (२०)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिखंड संख्यातगुणा है (२१)। इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (२२)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (२३)। इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२४)। इससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२५)। यह जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही जानना चाहिए। इस प्रकार यह पचीस पदवाला अल्पबहुत्व-दंडक समाप्त हुआ ॥११२-१३६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे गाथा-सूत्रोंका अर्थ प्रकट करने योग्य है ॥१३७॥

दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। वह जीव नियमसे पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है ॥९५॥

उक्त गाथाके द्वारा सम्यग्दर्शनके उत्पन्न करनेकी योग्यतारूप प्रायोग्यलब्धिका निरूपण किया गया है। ग्रन्थकार उसीका और भी स्पष्टीकरण करनेके लिए उत्तरगाथासूत्र कहते हैं—

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध आदि सर्व नरकोंमें, सर्व प्रकारके भवनवासी देवोंमें, सर्व-

१ जम्मि काले मिच्छत्तमुवसंतभावेणच्छदि सो उवसमसम्मत्तकालो उवसंतद्धा त्ति भण्णदे। जयध०
* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पंचिंदियसण्णी [सुण-]' ऐसा पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १७२८)
† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें '-मणभिजोग्गो' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १७२९)

(४४) उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥९७॥

द्वीप और समुद्रोंमें, सर्व गुह्य अर्थात् व्यन्तर देवोंमें, समस्त ज्योतिष्क देवोंमें, सौधर्म कल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके सर्व विमानवासी देवोंमें, आभियोग्य अर्थात् वाहनादि कुत्सित कर्ममें नियुक्त वाहन देवोंमें, उनसे भिन्न किल्विषिक आदि अनुत्तम, तथा पारिषद् आदि उत्तम देवोंमें दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम होता है ॥९६॥

विशेषार्थ—यहाँ यह शंका की जा सकती है कि अढ़ाई द्वीप-समुद्रवर्ती संख्यात या असंख्यात वर्षायुष्क गर्भज मनुष्य-तिर्यंचोंके तो प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनके उत्पन्न करनेकी योग्यता है । किन्तु अढ़ाई द्वीपसे परवर्ती जो असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं और जिनमें कि त्रस जीवोंका अभाव बतलाया गया है, वहाँपर भी दर्शनमोहके उपशम होनेका विधान इस गाथा-में कैसे किया गया है ? इसका समाधान यह है कि जो अढ़ाई द्वीपवर्ती तिर्यंच यहाँपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्न-शील थे, उन्हें यदि पूर्व भवका वैरी कोई देव उठाकर उन असंख्यात द्वीप या समुद्रोंमें जहाँ कहीं भी फेंक आवे, तो उन जीवोंको वहाँ पर प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है । अतीत कालकी अपेक्षा ऐसा कोई द्वीप और समुद्र नहीं बचा है कि जहाँपर पूर्व-वैरी देवोंके द्वारा अपहृत तिर्यंचोंके दर्शनमोहका उप-शम न हुआ हो । अतः सर्व द्वीप-समुद्रोंमें अपहरणकी अपेक्षा दर्शनमोहके उपशमका विधान किया गया है ।

दर्शनमोहके उपशामक सर्व जीव निर्व्याघात तथा निरासान होते हैं । दर्शन-मोहके उपशान्त होनेपर सासादनभाव भजितव्य है । किन्तु क्षीण होनेपर निरासान ही रहता है ॥९७॥

विशेषार्थ—दर्शनमोहके उपशमन करनेवाले जीवके जिस समय 'उपशामक' संज्ञा प्राप्त हो जाती है, उस समयके पश्चात् जब तक दर्शनमोहका उपशम नहीं हो जाता है, तब तक वह निर्व्याघात रहता है । अर्थात् सर्व प्रकारके उपद्रव, उपसर्ग या घोरसे घोर विघ्न-बाधाएँ आनेपर भी उसके दर्शनमोहका उपशम हो करके ही रहता है । अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करण परिणामोंके प्रारंभ हो जानेके पश्चात् संसारकी कोई भी शक्ति उसके सम्यक्त्वोत्पत्तिमें व्याघात नहीं कर सकती है । न उसका उस अवस्थामें मरण ही होता है । दर्शनमोहके उप-शामकको निरासान कहनेका अर्थ यह है कि दर्शनमोहनीयका उपशमन करते हुए वह सासा-दन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है । किन्तु दर्शनमोहके उपशान्त हो जानेपर भजितव्य है अर्थात् यदि उपशमसम्यक्त्वके कालमें कुछ समय शेष रहा है, तो वह सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं । इसीको स्पष्ट करनेके लिए कहा गया है कि उपशमसम्यक्त्वका काल क्षीण अर्थात् समाप्त हो जानेपर निरासान अर्थात् सासादनगुण स्थानको नहीं प्राप्त होता

(४५) सागारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजियव्वो ।
जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥९८॥
(४६) मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥९९॥

है । जयधवलाकारने 'अथवा' कहकर गाथाके इस चतुर्थ चरणका यह भी अर्थ किया है कि दर्शनमोहनीयके क्षीण हो जानेपर अर्थात् क्षायिकसम्यक्त्वके उत्पन्न हो जानेपर जीव सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ।

साकारोपयोगमें वर्तमान जीव ही दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमनका प्रस्थापक होता है । किन्तु निष्ठापक और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजितव्य है । तीनों योगोंमें से किसी एक योगमें वर्तमान और तेजोलेश्याके जघन्य अंशको प्राप्त जीव दर्शनमोह-का उपशमन करता है ॥९८॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहका उपशम प्रारम्भ करनेवाला जीव अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रस्थापक कहलाता है । मति, श्रुत या विभंगमेंसे किसी एक ज्ञानोपयोगसे उपयुक्त जीव ही दर्शनमोहके उपशमको प्रारम्भ कर सकता है, दर्शनो-पयोगसे उपयुक्त जीव नहीं कर सकता । क्योंकि, अवीचारात्मक या निर्विकल्पक दर्शनोपयोगसे दर्शनमोहके उपशमका होना संभव नहीं है । गाथाके इस प्रथम चरणसे यह अर्थ ध्वनित किया गया कि जागृत-अवस्था-परिणत जीव ही सम्यक्त्वोत्पत्तिके योग्य है, निर्विकल्प, सुप्त, या मत्त आदि नहीं । दर्शनमोहके उपशमनाकरणको सम्पन्न करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है । दर्शनमोहका उपशामक जब सर्व प्रथमस्थितिको क्रमसे गलाकर अन्तर-प्रवेशके अभि-मुख होता है, उस समय उसे निष्ठापक कहते हैं । दर्शनमोहोपशमनके प्रस्थापन और निष्ठा-पन कालके मध्यवर्ती जीवको यहाँ मध्यम पदसे विवक्षित किया गया है । यह मध्यवर्ती और निष्ठापक जीव भजितव्य हैं, अर्थात् साकारोपयोगी भी हो सकता है और अनाकारोप-योगी भी । दर्शनमोहनीयके उपशमका प्रस्थापक चारों मनोयोगोंमेंसे किसी एक मनोयोगमें, चारों वचनयोगोंमेंसे किसी एक वचनयोगमें तथा औदारिककाययोग और वैक्रियिककाय-योगमेंसे किसी एक काययोगमें वर्तमान होना चाहिए । इसी प्रकार उसे जघन्य तेजोलेश्यासे परिणत होना आवश्यक है । तेजोलेश्याका यह नियम मनुष्य-तिर्यंचोंकी अपेक्षासे कहा गया जानना चाहिए । मनुष्य-तिर्यंचोंमें कोई भी जीव कितनी ही मन्द विशुद्धिसे परिणत क्यों न हो, उसे कमसे कम तेजोलेश्याके जघन्य अंशसे युक्त हुए विना सम्यक्त्वकी उत्पत्ति असंभव है । उक्त नियम देव और नारकियोंमें संभव इसलिए नहीं है कि देवोंके सदा काल शुभ लेश्या और नारकियोंके अशुभ लेश्या ही पाई जाती है ।

उपशामकके मिथ्यात्ववेदनीयकर्मका उदय जानना चाहिए । किन्तु उपशान्त अवस्थाके विनाश होनेपर तदनन्तर उसका उदय भजितव्य है ॥९९॥

(४७) सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा ।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा ॥१००॥
(४८) मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१०१॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहनीयका उपशमन करनेवाला जीव जब तक अन्तर-प्रवेश नहीं करता है, तब तक उसके नियमसे मिथ्यात्वकर्मका उदय बना रहता है। किन्तु दर्शनमोहके उपशान्त हो जानेपर उपशमसम्यक्त्वके कालमें मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है। जब उपशमसम्यक्त्वका काल नष्ट हो जाता है, तब उसके पश्चात् मिथ्यात्वका उदय भजनीय है, अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवके उसका उदय होता है, किन्तु सासादन, मिश्र या वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है। जयधवलाकारने अथवा कह कर और 'णत्थि' पदका अध्याहार करके गाथाके तृतीय चरणका यह अर्थ भी किया है कि उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर और सासादनकालके भीतर मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है।

दर्शनमोहके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीनों कर्मांश, दर्शनमोहकी उपशान्त अवस्थामें सर्वस्थितिविशेषोंके साथ उपशान्त रहते हैं, अर्थात् उस समय तीनों प्रकृतियोंमेंसे किसी एककी भी किसी स्थितिका उदय नहीं रहता है। तथा एक ही अनुभागमें उन तीनों कर्मांशोंके सभी स्थिति-विशेष नियमसे अवस्थित रहते हैं ॥१००॥

विशेषार्थ–यहाँ यद्यपि एक ही अनुभागमें सर्व स्थितिविशेष रहते हैं, अर्थात् अन्तरसे बाहिर अनन्तरवर्ती जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग होता है, वही अनुभाग उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त उससे ऊपरके समस्त स्थितिविशेषोंमें होता है, उससे भिन्न प्रकारका नहीं होता, ऐसा सामान्यसे कहा है; तथापि मिथ्यात्वके द्विस्थानीय सर्वघाती अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणित हीन होता है और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागसे सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघाती द्विस्थानीय अनुभाग अनन्तगुणित हीन होता है, इतना विशेष अर्थ जानना चाहिए।

उपशामकके मिथ्यात्वप्रत्ययक अर्थात् मिथ्यात्वके निमित्तसे मिथ्यात्वका और ज्ञानावरणादि कर्मोंका बन्ध जानना चाहिए। किन्तु दर्शनमोहनीयकी उपशान्त अव-स्थामें मिथ्यात्व-प्रत्ययक बन्ध नहीं होता है। उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेपर उसके पश्चात् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है ॥१०१॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहके उपशम करनेवाले जीवके अन्तरसे पूर्ववर्ती प्रथम स्थितिके अन्तिम समय तक मिथ्यात्व-निमित्तक बन्ध होता है, क्योंकि यहाँ तक वह मिथ्यादृष्टि है

(४९) सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ ।
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥
(५०) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥

और उसके मिथ्यात्वका, तथा मिथ्यात्वके निमित्तसे बंधनेवाले अन्य कर्मोंका बन्ध होता रहता है। यद्यपि यहाँपर असंयम, कषाय आदि अन्य प्रत्ययोंसे भी कर्मोंका बन्ध होता है, तथापि उनकी यहाँ विवक्षा नहीं की गई है, क्योंकि जहाँपर मिथ्यात्वप्रत्यय विद्यमान है वहाँ पर असंयमादि शेष प्रत्ययोंका अस्तित्व स्वतः सिद्ध है। अन्तरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लेकर उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता है। किन्तु जब उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त हो जाता है, तब मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवके तो होता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयको प्राप्त होनेवाले जीवके नहीं होता है। जयधवलाकारने 'आसाणे' पदका अर्थ 'णत्थि' पदका अध्याहार करके यह किया है कि सासादनसम्यग्दृष्टिके भी मिथ्यात्व-निमित्तक बन्ध नहीं होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहका अबन्धक होता है। इसी प्रकार वेदक-सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, तथा 'अपि' शब्दसे सूचित उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहका अबन्धक होता है ॥१०२॥

विशेषार्थ—जयधवलाकारने 'अथवा' कहकर इस गाथासूत्रके एक और भी अर्थ-विशेषको व्यक्त किया है। वह यह कि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यात्वकर्मका बन्ध करता है, उस प्रकार क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वके उदय होनेसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका और वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होनेसे सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध करता है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि न तो सम्यग्मिथ्यात्वका बन्ध करता है और न वेदकसम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध करता है। इसका कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंको कर्मसिद्धान्तमें बन्धप्रकृतियोंमें नहीं गिनाया गया है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि तो दर्शनमोहका अबंधक होता ही है, क्योंकि वह तो तीनों ही प्रकृतियोंका क्षय कर चुका है।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके दर्शनमोहनीयकर्म अन्तर्मुहूर्तकाल तक सर्वोपशमसे उपशान्त रहता है। इसके पश्चात् नियमसे उसके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति इन तीन कर्मोंमेंसे किसी एक कर्मका उदय हो जाता है ॥१०३॥

विशेषार्थ—गाथासूत्रमें पठित 'अन्तर्मुहूर्तकाल' इस पदसे अन्तर-कालकी दीर्घताके संख्यातवें भागका ग्रहण करना चाहिए। सर्वोपशमका अभिप्राय यह है कि उपशमसम्यक्त्वके कालमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-सम्बन्धी उदय सर्वथा नहीं पाया जाता है। उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर तीनों

(५१) सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्टेण।
भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥
(५२) सम्मत्तपढमलंभस्सऽणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

कर्मोंमेंसे किसी एक कर्मका नियमसे उदय हो जाता है। यदि सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होता है तो वह वेदकसम्यग्दृष्टि बन जाता है, यदि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय होता है तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन जाता है और यदि मिथ्यात्वका उदय होता है तो मिथ्यादृष्टि बन जाता है।

अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ सर्वोपशमसे होता है। सादिमिथ्यादृष्टियोंमें जो विप्रकृष्ट जीव है, वह भी सर्वोपशमसे ही प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है। किन्तु जो अविप्रकृष्ट सादि मिथ्यादृष्टि है, और जो अभीक्ष्ण अर्थात् वार-वार सम्यक्त्वको ग्रहण करता है, वह सर्वोपशम और देशोपशमसे भजनीय है, अर्थात् दोनों प्रकारसे प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है ॥१०४॥

विशेषार्थ—दर्शनमोहकी मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीनों ही प्रकृतियोंका अधःकरणादि तीनों परिणाम-विशेषोंके द्वारा उदयाभाव करनेको सर्वोपशम कहते हैं। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उदयाभावरूप उपशमके साथ सम्यक्त्वप्रकृति-सम्बन्धी देशघाती स्पर्धकोंके उदयको देशोपशम कहते हैं। अनादिमिथ्यादृष्टि जीव प्रथम वार जो उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है, वह नियमतः सर्वोपशमसे ही करता है। जो जीव एक वार भी सम्यक्त्वको पाकर पुनः मिथ्यादृष्टि होता है, उसे सादिमिथ्यादृष्टि कहते हैं। सादिमिथ्यादृष्टि भी दो प्रकारके होते हैं—विप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि और अविप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि। जो सम्यक्त्वसे गिरकर और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहाँपर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना कर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालतक, अथवा इससे भी ऊपर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक संसारमें परिभ्रमण करते हैं, उन्हें विप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि कहते हैं। जो मिथ्यात्वमें पहुँचनेके पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवें भागके भीतर ही भीतर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके अभिमुख होते हैं, उन्हें अविप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि कहते हैं। इनमेंसे विप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि तो नियमसे सर्वोपशमके द्वारा ही प्रथमोपशमसम्यक्त्वका लाभ करता है। किन्तु अविप्रकृष्ट सादिमिथ्यादृष्टि सर्वोपशमसे भी और देशोपशमसे भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है। इसका कारण यह है कि जो सम्यक्त्वसे गिरकर पुनः पुनः अल्पकालके द्वारा वेदक-प्रायोग्यकालके भीतर ही सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख होता है, वह तो देशोपशमके द्वारा सम्यक्त्वका लाभ करता है, अन्यथा सर्वोपशमसे सम्यक्त्वका लाभ करता है।

सम्यक्त्वकी प्रथम वार प्राप्तिके अनन्तर और पश्चात् मिथ्यात्वका उदय होता है। किन्तु अप्रथम वार सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पश्चात् वह भजितव्य है ॥१०५॥

(५३) कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो।
एवं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥

विशेषार्थ—अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ होता है, उसके पूर्व क्षणमें अर्थात् मिथ्यात्वके अन्तरके पूर्ववर्ती प्रथम-स्थितिके अन्तिम समयमें और उपशमकाल समाप्त होनेके पश्चात् मिथ्यात्वका उदय माना गया है। किन्तु अप्रथम अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि वार जो सम्यक्त्वका लाभ होता है, उसके पश्चात् मिथ्यात्वका उदय भजितव्य है, अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्व अथवा उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त करता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

जिस जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन कर्म सत्तामें होते हैं; अथवा गाथा-पठित 'तु' शब्दसे मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके विना शेष दो कर्म सत्तामें होते हैं, वह नियमसे संक्रमणकी अपेक्षा भजितव्य है। जिस जीवके एक ही कर्म सत्तामें होता है, वह संक्रमणकी अपेक्षा भजितव्य नहीं है ॥१०६॥

विशेषार्थ—जिस मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवमें दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंकी सत्ता होती है, उसके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति तथा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व-का यथाक्रमसे संक्रमण देखा जाता है। किन्तु सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव-में उक्त तीनों प्रकृतियोंकी सत्ता होते हुए भी उसके दर्शनमोहकी किसी भी प्रकृतिका संक्रमण नहीं होता है, क्योंकि दूसरे या तीसरे गुणस्थानवर्ती जीवके दर्शनमोहके संक्रमण करनेकी शक्तिका अत्यन्त अभाव माना गया है। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके जिस समय वह आवली-प्रविष्ट रहती है, उस समय उसके तीनकी सत्ता होकरके भी एक ही प्रकृतिका संक्रमण होता है। अथवा मिथ्यात्वका क्षपण करनेवाले सम्य-ग्दृष्टि जीवके जिस समय उदयावली बाह्य-स्थित सर्व द्रव्य क्षपण कर दिया जाता है, उस समय उसके तीनकी सत्ता होकरके भी एकका ही संक्रमण होता है। इसकारण दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्यात् दो प्रकृतियोंका और स्यात् एक ही प्रकृतिका संक्रमण करनेवाला होता है और स्यात् किसीका भी संक्रमण नहीं करता है, इस प्रकार उसके भज-नीयता सिद्ध हो जाती है। अब दर्शनमोहकी दो प्रकृतिकी सत्ता रखनेवाले जीवके संक्रमण-की अपेक्षा भजनीयताका निरूपण करते हैं—जिसने मिथ्यात्वका क्षपण कर दिया है, ऐसे वेदकसम्यग्दृष्टिमें, अथवा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके स्थित मिथ्यादृष्टिमें दो प्रकृतियों-की सत्ता होकरके भी एक ही प्रकृतिका तब तक संक्रमण होता है जब तक कि क्षय किया जाता हुआ, या उद्वेलना किया जाता हुआ सम्यग्मिथ्यात्व अनावली-प्रविष्ट रहता है। किन्तु जब वह सम्यग्मिथ्यात्व आवली-प्रविष्ट होता है, तब दो प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि

(५४) सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥
(५५) मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥

या मिथ्यादृष्टि जीवके एक भी प्रकृतिका संक्रमण नहीं होता है। इसलिए दो प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले जीवके भी भजनीयता सिद्ध हो जाती है। जिस सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके क्षपणा या उद्वेलनाके वशसे एक ही सम्यक्त्वप्रकृति या मिथ्यात्वप्रकृति अवशिष्ट रही है, वह संक्रमणकी अपेक्षा भजनीय नहीं है, क्योंकि वहाँ संक्रमण-शक्तिका अत्यन्त अभाव माना गया है, इसलिए वह असंक्रामक ही होता है, ऐसा कहा गया है।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो नियमसे श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थको स्वयं नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान करता है ॥१०७॥

विशेषार्थ–प्रकर्ष या अतिशययुक्त वचनको प्रवचन कहते हैं। प्रवचन, सर्वज्ञोपदेश, परमागम और सिद्धान्त, ये सब एकार्थक नाम हैं। सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञके उपदेशका तो श्रद्धान असंदिग्धरूपसे करता ही है। किन्तु यदि किसी गहन एवं सूक्ष्म तत्त्वको स्वयं समझनेमें असमर्थ हो और परमागममें उसका स्पष्ट उल्लेख मिल नहीं रहा हो, तो वह गुरुके वचनोंको ही प्रमाण मानकर गुरुके नियोगसे असत्यार्थ अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है, तथापि उसके सम्यग्दृष्टिपनेमें कोई दोष नहीं आता है, इसका कारण यह है कि उसकी दृष्टि इस स्थलपर परीक्षा-प्रधान न होकर आज्ञा-प्रधान है। किन्तु जब कोई अविसंवादी सूत्रान्तरसे उसे यथार्थ वस्तु-स्वरूप दिखा देता है और उसके देख लेनेपर भी यदि वह अपना दुराग्रह नहीं छोड़ता है, तो वह जीव उसी समयसे मिथ्यादृष्टि माना जाता है। ऐसा परमागममें कहा गया है। अतएव सम्यग्दृष्टिको वस्तु-स्वरूपका यथार्थ श्रद्धानी होना आवश्यक है।

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सर्वज्ञके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान नहीं करता है, किन्तु असर्वज्ञ पुरुषोंके द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भावका, अर्थात् पदार्थके विपरीत स्वरूपका श्रद्धान करता है ॥१०८॥

विशेषार्थ–मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहके उदय होनेके कारण वस्तु-स्वरूपका विपरीत ही श्रद्धान करता है। उसका यह विपरीत श्रद्धान कदाचित् इसी भवका गृहीत होता है और कदाचित् पूर्वभवसे चला आया हुआ अर्थात् अगृहीत होता है, इन दोनों बातोंके बतलानेके लिए सूत्रमें 'उपदिष्ट, और अनुपदिष्ट' ये दो पद दिये हैं।

(५६) सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।
अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो (१५) ॥१०९॥

१३८. एसो सुत्तप्फासो विहासिदो । १३९. तदो उवसमसम्माइट्ठि-वेदय-सम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो अंतरं अप्पाबहुअं चेदि । १४०. एदेसु अणियोगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोह-उवसामणे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव साकारोपयोगी भी होता है और अनाकारोपयोगी भी होता है । किन्तु व्यंजनावग्रहमें, अर्थात् विचारपूर्वक अर्थको ग्रहण करनेकी अवस्थामें साकारोपयोगी ही होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥१०९॥

विशेषार्थ–जयधवलाकारने इस गाथाके पूर्वार्धके दो अर्थ किये हैं । प्रथम तो यह कि कोई भी जीव साकारोपयोगसे भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है और अनाकारोपयोगसे भी । इसके लिए दर्शनमोहके उपशमन करनेवाले जीवके समान साकारोपयोगी होनेका एकान्त नियम नहीं है । दूसरा अर्थ यह किया है कि सम्यग्मिथ्यात्व-गुणस्थानके कालके भीतर दोनों ही उपयोगोंका परावर्तन संभव है, जिससे एक यह अर्थ-विशेष सूचित होता है कि छद्मस्थके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अधिक होता है । गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा इस बातको प्रकट किया गया है कि जब वही सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विचार-पूर्वक तत्त्व-ग्रहण करनेके अभिमुख हो, तब उस अवस्थामें उसके साकारोपयोगका होना आवश्यक है, क्योंकि पूर्वापर-परामर्शसे शून्य सामान्य-मात्रके अवग्राहक दर्शनोपयोगसे तत्त्व-निश्चय नहीं हो सकता है । चूर्णिकारने इस अन्तिम गाथाके अन्तमें (१५) का अंक स्थापित किया है, जो यह प्रकट करता है कि सम्यक्त्वके इस दर्शनमोहोपशमना अर्थाधिकारमें पन्द्रह ही सूत्रगाथाएँ हैं, हीन या अधिक नहीं हैं ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार यह गाथासूत्रोंका स्पर्श अर्थात् स्वरूप-निर्देश प्ररूपण किया । तदनन्तर उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि विषयक एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर; नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर और अल्पबहुत्व, इतने अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं । इन अनुयोगद्वारोंके वर्णन कर दिये जानेपर 'दर्शन-मोह-उपशामना' नामका अनुयोगद्वार समाप्त हो जाता है ॥१३८-१४०॥

भावार्थ–उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्वामित्व, काल आदि सूत्र-प्रतिपादित अनुयोगद्वारोंसे विशेष अनुगम करना आवश्यक है, तभी प्रकृत विषयका पूर्ण परिज्ञान हो सकेगा । अतएव विशेष जिज्ञासु जनोंको परमागमके आधार-से उनका विशेष निर्णय करना चाहिए ।

इस प्रकार सम्यक्त्व-अर्थाधिकारमें दर्शनमोह-उपशामना नामक
दशवां अर्थाधिकार समाप्त हुआ ।

---

११ दंसणमोहक्खवणा-अत्थाहियारो

१. दंसणमोहक्खवणाए पुव्वं गमणिज्जाओ पंच सुत्तगाहाओ । २. तं जहा ।

(५७) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु ।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥११०॥

११ दर्शनमोहक्षपणा-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०–दर्शनमोहकी क्षपणके विषयमें पहले ये पाँच सूत्रगाथाएँ प्ररूपण करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं ॥१-२॥

नियमसे कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ और मनुष्यगतिमें वर्तमान जीव ही दर्शन-मोहकी क्षपणाका प्रस्थापक (प्रारम्भ करनेवाला) होता है । किन्तु उसका निष्ठापक (पूर्ण करनेवाला) चारों गतियोंमें होता है ॥११०

विशेषार्थ–दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिज वेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही कर सकता है, अन्य नहीं । क्योंकि अन्य गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके दर्शनमोहकी क्षपणाके योग्य परिणामोंका होना असंभव है; इस बातको बतलानेके लिए ही गाथासूत्रमें 'नियमसे' यह पद दिया गया है । वह कर्मभूमिज मनुष्य भी सुषम-दुषमा और दुषम-सुषमा-कालमें उत्पन्न होना चाहिए । वह भी तीर्थंकर-केवली, सामान्य-केवली या श्रुत-केवलीके पादमूलमें दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ कर सकता है, अन्यत्र नहीं । इसका कारण यह है कि तीर्थंकरादि-के माहात्म्य आदिके देखनेपर ही दर्शनमोहकी क्षपणाके योग्य विशुद्ध परिणामों होना संभव है । यद्यपि इस गाथामें केवली आदिके पादमूलका उल्लेख नहीं है, तथापि षट्खंडागमकी सम्यक्त्व-चूलिकामें श्री भूतबलि आचार्यने 'जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि' ऐसा स्पष्ट कथन किया है । इस प्रकार दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ करनेवाला मनुष्य यदि बद्धायुष्क है, अर्थात् चारों गति-सम्बन्धी आयुमेंसे किसी भी एक आयुको बाँध चुका है, और दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ करनेके पश्चात् कृतकृत्यवेदक कालके भीतर ही मरणको प्राप्त करता है, तो वह चारों ही गतियोंमें दर्शनमोहका क्षपण पूर्ण करता है । यहाँ इतना विशेष जानना कि नरकोंमेंसे प्रथम नरकके भीतर, तिर्यंचोंमेंसे भोगभूमियाँ पुरुषवेदी तिर्यंचोंमें, मनुष्योंमेंसे भोगभूमियाँ पुरुषोंमें और देवोंमेंसे सौधर्मादि कल्पवासी देवोंमें ही उत्पन्न होकर दर्शनमोहकी क्षपणा पूर्ण करेगा, अन्यत्र नहीं । इस अर्थविशेषको बतलानेके लिए गाथासूत्रमें 'निष्ठापक चारों गतियोंमें होता है' ऐसा कहा है ।

(५८) मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते।
खवणाए पट्ठवगो जहण्णगो तेउलेस्साए ॥१११॥
(५९) अंतोमुहुत्तमद्धं दंसणमोहस्स णियमसा खवगो।
खीणे देव-मणुस्से सिया वि णामाउगो बंधो ॥११२॥

मिथ्यात्ववेदनीयकर्मके सम्यक्त्वप्रकृतिमें अपवर्तित अर्थात् संक्रमित कर देने पर जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है। दर्शनमोहकी क्षपणाके प्रस्थापकको जघन्य तेजोलेश्यामें वर्तमान होना चाहिए ॥१११॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहकी क्षपणा करनेको उद्यत हुए जीवके 'प्रस्थापक' संज्ञा कब प्राप्त होती है, इस बातके बतलानेके लिए इस गाथासूत्रका अवतार हुआ है। दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए उद्यत जीव जब मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्व द्रव्यको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण कर देता है और उसके पश्चात् जब सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व द्रव्यको सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण करता है, तब उसे 'प्रस्थापक' यह संज्ञा प्राप्त होती है। गाथासूत्रमें सम्यग्मिथ्यात्वके पृथक् उल्लेख न होनेका कारण यह है कि मिथ्यात्वके संक्रान्त द्रव्यको अपने भीतर धारण करनेवाले सम्यग्मिथ्यात्वको ही यहाँपर 'मिथ्यात्ववेदनीय' नामसे कहा गया है। यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे ही 'प्रस्थापक' संज्ञा प्रारंभ हो जाती है, तथापि यहाँ अन्तदीपककी अपेक्षा उक्त संज्ञाका निर्देश समझना चाहिए, अर्थात् यहाँतक वह प्रस्थापक कहलाता है। गाथाके चतुर्थ चरण-द्वारा लेश्याका विधान किया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि तीनों शुभ लेश्याओंमें वर्तमान जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभ करते हैं। यदि कोई अत्यन्त मंद विशुद्धिवाला जीव भी दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ करे तो उसे भी कमसे कम तेजोलेश्याके जघन्य अंशमें तो वर्तमान होना ही चाहिए, क्योंकि कृष्णादि अशुभ लेश्याओंमें क्षपणाका प्रारम्भ सर्वथा असंभव है।

अन्तर्मुहूर्तकाल तक दर्शनमोहका नियमसे क्षपण करता है। दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर देव और मनुष्यगति-सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंका और आयुकर्मका स्यात् बन्ध करता है और स्यात् बन्ध नहीं भी करता है ॥११२॥

विशेषार्थ–इस गाथाके पूर्वार्धसे यह सूचित किया गया है कि दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका काल अन्तर्मुहूर्त ही है, न इससे कम है और न अधिक है। गाथाके उत्तरार्धसे यह सूचित किया गया है कि दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर वह किन-किन कर्मप्रकृतियोंका बन्ध करता है। दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर यदि वह तिर्यंच या मनुष्यगतिमें वर्तमान है, तो देवगति-सम्बन्धी ही नामकर्मकी प्रकृतियोंका तथा देवायुका बन्ध करता है। और यदि वह देव या नरकगतिमें वर्तमान है, तो मनुष्यगति-सम्बन्धी ही नामकर्मकी प्रकृतियोंका तथा मनुष्यायुका बन्ध करता है। गाथा-पठित 'स्यात्' पदसे यह सूचित किया गया है

(६०) खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णो ।
णाधिच्छदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥११३॥

(६१) संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा ।
सेसासु खीणमोहा गदीसु णियमा असंखेज्जा (५) ॥११४॥

कि यदि वह मनुष्य चरम भवमें वर्तमान है, तो आयुकर्मका तो सर्वथा ही बन्ध नहीं करेगा । तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्व-प्रायोग्य गुणस्थानोंमें बन्ध-व्युच्छित्ति हो जानेके पश्चात् बन्ध नहीं करेगा ।

दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ करनेवाला जीव जिस भवमें क्षपणका प्रस्थापक होता है, उससे अन्य तीन भवोंको नियमसे उल्लंघन नहीं करता है । दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर तोन भवमें नियमसे मुक्त हो जाता है ॥११३॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ करनेवाला जीव संसारमें अधिकसे अधिक कितने काल तक रहता है, यह बतलानेके लिए इस गाथाका अवतार हुआ है । इसका अभिप्राय यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव जिस भवमें दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ करता है, उस भवको छोड़कर वह तीन भव और संसारमें रह सकता है, तत्पश्चात् वह नियमसे सर्व कर्मोंका नाशकर सिद्धपदको प्राप्त करेगा । इसका खुलासा यह है कि दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ कर यदि वह जीव बद्धायुके वशसे देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, तो वहाँ दर्शनमोहके क्षपणकी पूर्त्ति करके वहाँसे आकर मनुष्य भवको धारण कर तीसरे ही भवमें सिद्ध पदको प्राप्त कर लेगा । यदि वह पूर्वबद्ध आयुके वशसे भोगभूमियाँ तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न होवे, तो वहाँसे मरण कर वह देवोंमें उत्पन्न होगा, पुनः वहाँसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर सिद्ध पदको प्राप्त करेगा । इस जीवके क्षपण-प्रस्थापनके भवको छोड़कर तीन भव और भी संभव होते हैं, अतः गाथाकारने यह ठीक कहा है कि दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर प्रस्थापन-भवको छोड़ कर तीन भवसे अधिक संसारमें नहीं रहता है ।

मनुष्योंमें क्षीणमोही अर्थात् क्षायिकसम्यग्दृष्टि नियमसे संख्यात सहस्र होते हैं । शेष गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव नियमसे असंख्यात होते हैं ॥११४॥

विशेषार्थ–यद्यपि इस गाथामें प्रधानरूपसे चारों गति-सम्बन्धी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्या बतलाई गई है, तथापि देशामर्शक रूपसे क्षेत्र, स्पर्शन आदि आठों ही अनुयोगद्वारोंकी सूचना की गई है, अतएव षट्खंडागममें वर्णित आठों प्ररूपणाओंके द्वारा यहाँपर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका वर्णन करना चाहिए, तभी दर्शनमोह-क्षपणासम्बन्धी सर्व कथन पूर्ण होगा ।

३. पच्छा सुत्तविहासा[1] । तत्थ ताव पुव्वं गमणिज्जा परिहासा[2] । ४. तं जहा । ५. तिण्हं कम्माणं ट्ठिदीओ ओट्टिदव्वाओ । ६. अणुभागफद्दयाणि च ओट्टियव्वाणि[3] । ७. तदो अण्णमधापवत्तकरणं पढमं, अपुव्वकरणं विदियं, अणियट्टिकरणं तदियं । ८. एदाणि ओट्टेदूण अधापवत्तकरणस्स लक्खणं भाणियव्वं । ९. एवमपुव्वकरणस्स वि, अणियट्टिकरणस्स वि । १०. एदेसिं लक्खणाणि जारिसाणि उवसामगस्स, तारिसाणि चेव ।

११. अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ । १२. तं जहा । १३. दंसणमोहक्खवगस्स०१ । १४. काणि वा पुव्वबद्धाणि०२ । १५.

चूर्णिसू०—इस प्रकार गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तनाके पश्चात् सर्व-प्रथम सूत्रोंकी विभाषा अर्थात् पदच्छेद आदिके द्वारा अर्थकी परीक्षा करना चाहिए । उसमें भी पहले परिभाषा जानने योग्य है ॥३॥

विशेषार्थ-गाथासूत्रमें निबद्ध या अनिबद्ध प्रकृतोपयोगी समस्त अर्थ-समुदायको लेकर उसके विस्तारसे वर्णन करनेको परिभाषा कहते हैं ।

चूर्णिसू०—वह परिभाषा इस प्रकार है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीनों कर्मोंकी स्थितियाँ पृथक्-पृथक् स्थापित करना चाहिए । तथा उन्हीं तीनों कर्मोंके अनुभाग-स्पर्धक भी तिरछी रचनारूपसे स्थापित करना चाहिए । तत्पश्चात् प्रथम अधःप्रवृत्त-करण, द्वितीय अपूर्वकरण और तृतीय अनिवृत्तिकरण, इनके समयोंकी क्रमशः रचना करना चाहिए । इन तीनोंकी रचना करके सर्वप्रथम अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहना चाहिए । इसीप्रकार अपूर्वकरणका और अनिवृत्तिकरणका भी लक्षण कहना चाहिए । इन तीनों करणों-के लक्षण जिस प्रकारसे दर्शनमोहके उपशामककी प्ररूपणामें कहे हैं, उसीप्रकारसे यहाँपर भी जानना चाहिए ॥४–१०॥

चूर्णिसू०—अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें ये चार सूत्र-गाथाएँ प्ररूपण करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं–"दर्शनमोहके क्षपण करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें वर्तमान, किस लेश्यासे युक्त और कौनसे वेदवाला जीव दर्शनमोहका क्षपण करता है ? (१) दर्शनमोहके क्षपण करनेवाले जीवके पूर्व-बद्ध कर्म कौन-कौनसे हैं और अब कौन-कौनसे नवीन कर्मांशोंको बाँधता है । दर्शनमोह-क्षपणके कौन-कौन प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं और कौन-कौन प्रकृतियोंकी वह उदीरणा करता है ? (२) । दर्शनमोहके क्षपण-कालसे पूर्व बन्ध अथवा उदयकी अपेक्षा कौन-कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं ? अन्तरको कहाँपर करता है और कहाँपर तथा किन कर्मोंका यह क्षपण

---

१ का सुत्तविहासा णाम ? गाहासुत्ताणमुच्चारणं काढूण तेसिं पदच्छेदादिमुहेण जा अत्थपरिक्खा सा सुत्तविहासा त्ति भण्णदे । २ सुत्तपरिहासा पुण गाहासुत्तणिबद्धमणिबद्धं च पयदोवजोगि जमत्थजादं तं सव्वं घेत्तूण वित्थरदो अत्थपरूवणा । ३ ट्ठिदिं पडि तिरिच्छेण विरचेयव्वाणि ! जयध०

के अंसे झीयदे पुव्वं०३ । १६. किं ठिदियाणि कम्माणि०४ ।

करता है ? (३) दर्शनमोहका क्षपण करनेवाला जीव किस-किस स्थिति-अनुभागविशिष्ट कौन-कौनसे कर्मोंका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है और अवशिष्ट कर्म किस स्थिति और अनुभागको प्राप्त होते हैं ? (४)" ॥११-१६॥

विशेषार्थ—यद्यपि ये चारों सूत्र-गाथाएँ पहले दर्शनमोहकी उपशमनाका वर्णन करते हुए कही गई हैं, तथापि ये चारों ही गाथाएँ साधारणरूपसे दर्शनमोहकी क्षपणा, तथा चारित्रमोहकी उपशमना और क्षपणाके समय भी व्याख्यान करने योग्य हैं, ऐसा चूर्णिकारका मत है। अतएव यहाँपर संक्षेपसे प्रकरणके अनुसार उनके अर्थका व्याख्यान किया जाता है—दर्शनमोहके क्षपण करनेवाले जीवका परिणाम अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे ही विशुद्ध होता हुआ आरहा है। वह चारों मनोयोगोंमेंसे किसी एक मनोयोगसे, चारों वचनयोगोंमेंसे किसी एक वचनयोगसे और औदारिककाययोगसे युक्त होता है। चारों कषायोंमेंसे किसी एक हीयमान कषायसे युक्त होता है। उपयोगकी अपेक्षा दो मत हैं—एक मतकी अपेक्षा नियमसे साकारोपयोगी ही होता है। दूसरे मतकी अपेक्षा मतिज्ञान या श्रुतज्ञानसे और चक्षुदर्शन या अचक्षुदर्शनसे उपयुक्त होता है। लेश्याकी अपेक्षा तेज, पद्म और शुक्ल, इन तीनोंमेंसे किसी एक वर्धमान लेश्यासे परिणत होना चाहिए। वेदकी अपेक्षा तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदसे युक्त होता है। इस प्रकार प्रथम गाथाकी विभाषा समाप्त हुई। दर्शनमोहकी क्षपणा के सम्मुख हुए जीवके कौन-कौन कर्म पूर्वबद्ध हैं, इस पदकी विभाषा करते हुए प्रकृतिसत्त्व, स्थितिसत्त्व, अनुभागसत्त्व और प्रदेशसत्त्वका अनुमार्गण करना चाहिए। इसमेंसे प्रकृति-सत्त्व उपशामकके समान ही है, केवल विशेषता यह है कि दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवालेके अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका सत्त्व नहीं होता है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका नियम-से सत्त्व होता है। भुज्यमान मनुष्यके साथ परभव-सम्बन्धी चारों ही आयुकर्मोंका सत्त्व भजनीय है। नामकर्मकी अपेक्षा उपशामकके समान ही सत्त्व जानना चाहिए। हाँ, तीर्थंकर और आहारकद्विक स्यात् संभव हैं। इसी प्रकार स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा सर्व प्रकृतियोंका सत्त्व उपशामकके समान ही जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि उपशामकके स्थितिसत्त्वसे क्षपकका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणित हीन होता है और उपशामक-के अनुभागसत्त्वसे क्षपकका अनुभाग सत्त्व अनन्तगुणित हीन होता है। 'के वा अंसे णिबंधदि' इस दूसरे चरणकी व्याख्या करते समय प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका अनुमार्गण करना चाहिए। यह दूसरी गाथाकी विभाषा है। दर्शनमोहकी क्षपणासे पूर्व बन्ध अथवा उदयकी अपेक्षा कौन कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं, इसका निर्णय बंधने और उदयमें आनेवाली प्रकृतियोंकी अपेक्षा करना चाहिए। दर्शनमोहकी क्षपणा करने-वाले जीवके अन्तरकरण नहीं होता है किन्तु दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंका आगे जाकरके क्षय होगा। यह तीसरी गाथाकी विभाषा है। दर्शनमोहका क्षपण करनेवाला जीव किस-

१७. एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण अपुव्वकरणपढमसमए आढवे-यव्वो । १८. अधापवत्तकरणे ताव णत्थि ट्ठिदिघादो वा, अणुभागघादो वा, गुणसेढी वा, गुणसंकमो वा । १९. णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि । सुहाणं कम्मंसाणमणंत-गुणवड्ढिबंधो, असुहाणं कम्माणमणंतगुणहाणिबंधो । बंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागेण हायदि । २०. एसा अधापवत्तकरणे परूवणा ।

२१. अपुव्वकरणस्स पढमसमए दोण्हं जीवाणं ट्ठिदिसंतकम्मादो ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं वा, विसेसाहियं वा, संखेज्जगुणं वा । ट्ठिदिखंडयादो वि ट्ठिदिखंडयं दोण्हं जीवाणं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा । २२. तं जहा । २३. दोण्हं जीवाणमेक्को कसाए उवसामेयूण खीणदंसणमोहणीयो जादो । एक्को कसाए अणुवसामेयूण खीणदंसण-मोहणीओ जादो । जो अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । २४. जो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसाए उवसामेदि वा, जो

किस स्थिति-अनुभाग-विशिष्ट कौन-कौनसे कर्मोंका अपवर्तन करके किस-किस स्थानको प्राप्त करता है, तथा अवशिष्ट कर्म किस स्थिति और अनुभागको प्राप्त होते हैं, इन प्रश्नोंका निर्णय भी उपशामकके समान ही करना चाहिए । यह चौथी गाथाकी विभाषा है ।

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त चारों सूत्रगाथाओंकी विभाषा करके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रकृत प्ररूपणा आरम्भ करना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणमें किसी भी कर्मका स्थिति-घात, अनुभागघात, गुणश्रेणी या गुणसंक्रमण नहीं होता है । वह केवल अनन्तगुणी विशुद्धि-से प्रतिसमय बढ़ता रहता है । उस समय वह शुभ कर्म-प्रकृतियोंका अनन्तगुणित वृद्धिसे युक्त अनुभागको बाँधता है और अशुभ कर्म-प्रकृतियोंके अनुभागको अनन्तगुणित हीन बाँधता है । अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण एक-एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर दूसरा-दूसरा स्थितिबन्ध पल्यो-पमके संख्यातवें भागसे हीन बाँधता है । यह सब प्ररूपणा अधःप्रवृत्तकरणके कालमें जानना चाहिए ॥१७-२०॥

अब अपूर्वकरणकी प्ररूपणा दो जीवोंके एक साथ अपूर्वकरणमें प्रवेश करनेकी अपेक्षा की जाती है–

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें वर्तमान दो जीवोंमेंसे किसी एकके स्थिति-सत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म तुल्य भी हो सकता है, विशेष अधिक भी हो सकता है और संख्यातगुणित भी हो सकता है । उन्हीं दोनों जीवोंमें एकके स्थितिखंडसे दूसरे जीवका स्थितिखंड तुल्य भी हो सकता है, विशेष अधिक भी हो सकता है और संख्यात-गुणित भी हो सकता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–उपर्युक्त दोनों जीवोंमेंसे एक तो उपशमश्रेणीपर चढ़कर और कषायोंका उपशमन करके दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए समुद्यत हुआ । दूसरा कषायोंका उपशमन नहीं करके दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ । इनमेंसे जो कषायोंका उपशमन नहीं करके दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत हुआ है,

दंसणमोहणीयमक्खवेदूण कसाए उवसामेइ, तेसिं दोण्हं पि जीवाणं कसायेसु उवसंतेसु तुल्लकाले समधिच्छिदे तुल्लं ठिदिसंतकम्मं। २५. जो पुव्वं कसाए उवसामेयूण पच्छा दंसणमोहणीयं खवेइ, अण्णो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाए उवसामेइ, एदेसिं दोण्हं पि खीणदंसणमोहणीयाणं खवणकरणेसु उवसमकरणेसु च णिट्ठिदेसु तुल्ले काले विदिक्कंते जेण पच्छा दंसणमोहणीयं खविदं तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। जेण पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाया उवसामिदा, तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

२६. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णगेण कम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। [उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तं।] २७. ट्ठिदिबंधादो जाओ ओसरिदाओ ट्ठिदीओ ताओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। २८. अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडयपमाणमणुभागफद्दयाणमणंता भागा आगाइदा। २९. गुणसेढी उदयावलियबाहिरा। ३०. विदियसमए तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव

उसका स्थितिसत्कर्म प्रथम जीवकी अपेक्षा संख्यातगुणित अधिक है। जो जीव पहले दर्शनमोहनीयका क्षपण करके पीछे कषायोंका उपशमन करता है, अथवा जो दर्शनमोहनीयका क्षपण नहीं करके कषायोंका उपशमन करता है, इन दोनों ही जीवोंके कषायोंके उपशान्त होकर समान कालमें अवस्थित होनेपर दोनोंका स्थितिसत्कर्म समान होता है। जो जीव पहले कषायोंका उपशमन करके पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करता है, और दूसरा पहले दर्शनमोहनीयका क्षय करके पीछे कषायोंका उपशमन करता है, इन दोनों ही दर्शनमोहके क्षपण करनेवाले जीवोंके क्षपणा-सम्बन्धी कार्योंके और उपशमना-सम्बन्धी कार्योंके सम्पन्न होनेपर, तथा समान कालके व्यतीत होनेपर जिसने पीछे दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय किया है, उसके स्थितिसत्कर्म अल्प होता है। किन्तु जिसने पहले दर्शनमोहनीयका क्षय करके पीछे कषायोंका उपशमन किया है, उसके स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणित होता है ॥२१-२५॥

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिसत्कर्मसे उपस्थित जीवका स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है। यह जघन्य सत्त्व पहले कषायोंका उपशमन करके क्षपणाके लिए उद्यत जीवके होता है। [अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मसे उपस्थित जीवका स्थितिकांडक सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण होता है। यह उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कषायोंका उपशमन न करके क्षपणाके लिए समुद्यत जीवके होता है।] पूर्व स्थितिबन्धसे अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थितिबन्धसे जो स्थितियाँ इस समय अपसरण की गई हैं, वे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकांडकका प्रमाण अनुभागसत्त्वके स्पर्धकोंके अनन्त बहुभाग है, जो कि घातके लिए ग्रहण किये गये हैं। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही गुणश्रेणी भी प्रारंभ हो जाती है, वह गुणश्रेणी उदयावलीसे बाह्य गलितशेष-प्रमाण है। अपूर्वकरणके द्वितीय समयमें वही स्थितिकांडक है, वही अनुभागकांडक है और वही

अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो। गुणसेढी अण्णा। ३१. एवमंतोमुहुत्तं जाव अणुभागखंडयं पुण्णं। ३२. एवमणुभागखंडयसहस्सेसु पुण्णेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयं, ट्ठिदिबंधमणुभागखंडयं च पट्ठवेइ। ३३. पढमं ट्ठिदिखंडयं बहुअं, विदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं, तदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं। ३४. एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अंतो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जगुणहीणं पि अत्थि।

३५. एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं पत्तो। ३६. तत्थ अणुभागखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च समगं समत्तो। ३७. चरिमसमय-अपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। ३८. पढमसमय-अपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ३९. ट्ठिदिबंधो वि पढमसमय-अपुव्वकरणे बहुगो, चरिमसमय-अपुव्वकरणे संखेज्जगुणहीणो।

४०. पढमसमय-अणियट्टिकरणपविट्ठस्स अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयमपुव्वो ट्ठिदिबंधो, तहा चेव गुणसेढी। ४१. अणियट्टिकरणस्स पढमसमये दंसणमोहणीयमप्पसत्थमुवसामणाए[1] अणुवसंतं, सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुवसंताणि च।

स्थितिबन्ध है; किन्तु गुणश्रेणी अन्य होती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक एक अनुभागकांडक पूर्ण होता है। इस क्रमसे सहस्रों अनुभागकांडकोंके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिकांडकको, अन्य स्थितिबन्धको और अन्य अनुभागकांडकको प्रारम्भ करता है। प्रथम स्थितिकांडकका आयाम बहुत है, द्वितीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन है, तृतीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन है। इस प्रकार अपूर्वकरण-कालके भीतर प्रथम स्थितिकांडकसे संख्यातगुणित हीन भी स्थिति कांडक होता है ॥२६-३४॥

चूर्णिसू०—इसी क्रमसे अनेक सहस्र स्थितिकांडकघातोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणके कालका अन्तिम समय प्राप्त हो जाता है। उस अन्तिम समयमें चरम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल एक साथ समाप्त हो जाता है। अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व अल्प है। इससे इसी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। स्थितिबन्ध भी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें बहुत है और उससे अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें संख्यातगुणित हीन है॥३५-३९॥

इस प्रकार अपूर्वकरणकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

चूर्णिसू०—अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्मका अपूर्व स्थितिकांडक होता है, अपूर्व अनुभागकांडक होता है और अपूर्व स्थितिबन्ध होता है। किन्तु गुणश्रेणी अपूर्वकरणके समान ही प्रतिसमय असंख्यातगुणी रहती है। अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्म अप्रशस्तोपशामनाके द्वारा अनुपशान्त रहता है। शेष कर्म उपशान्त भी रहते हैं और अनुपशान्त भी रहते हैं ॥४०-४१॥

१ का अप्पसत्थ-उवसामणा णाम? कम्मपरमाणूणं बज्झंतरंगकारणवसेण केत्तियाण पि उदीरणावसेण उदयाणागमणपइण्णा अप्पसत्थ-उवसामणा त्ति भण्णदे। जयध०

४२. अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडीए* । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए । ४३. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४४. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४५. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण तीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४६. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण बीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४७. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण एइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं । ४८. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिदोवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं । ४९. जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिखंडयं, पलिदोवमे

विशेषार्थ–कितने ही कर्म-परमाणुओंका बाह्य और अन्तरंग कारणके वशसे, तथा कितने ही कर्म-परमाणुओंका उदीरणाके वशसे उदयमें नहीं आनेको अप्रशस्तोपशामना कहते हैं । इसीको देशोपशामना तथा अगुणोपशामना भी कहते हैं । दर्शनमोहसम्बन्धी यह अप्रशस्तोपशामना अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक बराबर चली आ रही थी, किन्तु अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें ही वह नष्ट हो जाती है । पर शेष कर्मोंकी अप्रशस्तोपशामना यथासंभव होती भी है और नहीं भी होती है, उसके लिए कोई एकान्त नियम नहीं है ।

चूर्णिसू०–अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व अन्तःकोडी अर्थात् सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्व, तथा शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ी अर्थात् सागरोपमकोटिशतसहस्रपृथक्त्व होता है । इसके पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकघातोंके द्वारा अनिवृत्तिकरण-कालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व असंज्ञी जीवोंके स्थितिबन्धके सदृश अर्थात् सागरोपमसहस्रप्रमाण हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकघातपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व चतुरिन्द्रियजीवके स्थितिबन्धके सदृश अर्थात् सौ सागरोपमप्रमाण हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकघातपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व त्रीन्द्रियजीवके स्थितिबन्धके सदृश अर्थात् पचास सागरोपमप्रमाण हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकघातपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व द्वीन्द्रिय जीवके स्थितिबन्धके सदृश अर्थात् पच्चीस सागरोपमप्रमाण हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकघातपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रिय जीवके स्थितिबन्धके सदृश अर्थात् एक सागरोपमप्रमाण हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकघातपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपम-प्रमाण स्थितिवाला हो जाता है । जब तक दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपम-प्रमाण रहता है, तबतक स्थितिकांडकका आयाम पल्योपमका संख्यातवाँ भाग रहता है । पुनः दर्शन-

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें '–मंतो कोडाकोडीए' ऐसा पाठ सूत्र और टीका दोनोंमें मुद्रित है । (देखो पृ० १७५०) । पर वह अशुद्ध है (देखो धवला भा० ६ पृ० २५४, पंक्ति ८)

ओलुत्ते* तदो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । ५०. तदो सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । ५१. एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्ठी पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तदो सेसस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा ।

मोहके स्थितिसत्त्वके पल्योपमप्रमाण अवशिष्ट रह जानेपर स्थितिकांडकके आयामका प्रमाण पल्योपमका संख्यात बहुभाग हो जाता है। तदनन्तर शेष स्थितिसत्त्वके संख्यात बहुभाग स्थितिकांडकघातके लिए ग्रहण करता है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर और पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र दर्शनमोहनीयकर्मके स्थितिसत्त्व शेष रह जानेपर दूरापकृष्टि नामकी स्थिति होती है। तत्पश्चात् शेष बचे हुए स्थितिसत्त्वके असंख्यात बहुभागोंको स्थितिकांडकरूपसे घात करनेके लिए ग्रहण करता है ॥४१-५१॥

विशेषार्थ—दर्शनमोहको क्षपणा करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके कालमें दर्शनमोहनीयकर्मके स्थितिसत्त्वके चार पर्व या विभाग होते हैं, जिनमें क्रमशः स्थितिसत्त्व कमती होता हुआ चला जाता है। इनमेंसे प्रथम पर्वमें दर्शनमोहका स्थितिसत्त्व सागरोपमलक्ष-पृथक्त्व रहता है। दूसरे पर्वमें घटकर पल्योपमप्रमाण रहता है। तीसरे पर्वमें दूरापकृष्टि-प्रमाण अर्थात् पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्व रह जाता है और चौथे पर्वमें आवलीमात्र स्थितिसत्त्व अवशिष्ट रह जाता है। ऊपर बतलाये गये क्रमसे संख्यातसहस्र स्थितिकांडकघातोंके होनेपर दूसरे पर्वमें पल्योपमप्रमाण दर्शनमोहका स्थितिसत्त्व बतला आये हैं। उसके पश्चात् पुनः अनेक सहस्र स्थितिकांडकघातोंके होनेपर तीसरे पर्वमें दूराप-कृष्टिप्रमाण स्थितिसत्त्व रह जाता है। दूरापकृष्टिका अर्थ यह है कि पल्यप्रमाण स्थितिसत्त्व-से अत्यन्त दूर तक अपकर्षणकर अर्थात् स्थितिको घटाते-घटाते जब वह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण रह जाय, ऐसे सबसे अन्तिम स्थितिसत्त्वको दूरापकृष्टि कहते हैं। दूरापकृष्टिका दूसरा अर्थ यह भी किया गया है कि इस स्थलसे आगे अवशिष्ट स्थितिसत्त्वके असंख्यात-बहुभागोंको ग्रहण करके एक-एक स्थितिकांडकघात होता है। यह दूरापकृष्टिरूप स्थिति-कांडकघात एक-विकल्परूप है या अनेक-विकल्परूप है, इस प्रश्नका उत्तर कितने ही आचार्यों-के मतसे एक-विकल्परूप दिया गया है, अर्थात् वे कहते हैं कि आगे आवलीप्रमाण स्थिति-सत्त्व रहनेतक स्थितिकांडकघातका प्रमाण सर्वत्र समान ही रहता है। परन्तु जयधवलाकारने इस मतका खंडन करके यह सयुक्तिक सिद्ध किया है कि दूरापकृष्टि अनेक-विकल्परूप है। दूरापकृष्टिके पश्चात् पल्यको असंख्यात का भाग देनेपर बहुभागमात्र आयामवाले संख्यात-सहस्र स्थितिकांडकघात होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। पुनः अनेकों स्थितिकांडकघातोंके होनेपर मिथ्यात्वके आवलीप्रमाण निषेक अवशिष्ट रहते हैं, शेष सर्व द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे परिणमित हो जाता है। इस अवशिष्ट आवलीप्रमाण सत्त्वको ही उच्छिष्टावली कहते हैं।

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ओलुत्ते'के स्थान पर सूत्र और टीका दोनोंमें ही 'ओलुलुत्ते' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १७५१)

५२. एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागिगेसु बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा । ५३. तदो बहुसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तस्स आवलियबाहिरं सव्वमागाइदं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो सेसो । ५४. तदो ट्ठिदिखंडए णिट्ठायमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सओ पदेससंकमो । ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सगं पदेस-संतकम्मं । ५५. तदो आवलियाए दुसमयूणाए गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंत-कम्मं । ५६. मिच्छत्ते पढमसमयसंकंते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जा भागा आगा-इदा । ५७. एवं संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडएहिं गदेहिं सम्मामिच्छत्तमावलियबाहिरं सव्व-मागाइदं ।

५८. ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा । के वि भणंति संखेज्जाणि वस्ससह-

---

चूर्णिसू०–इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाणवाले अनेक सहस्र स्थिति-कांडक-घातोंके व्यतीत होनेपर तत्पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदी-रणा आरम्भ होती है । तदनन्तर बहुतसे स्थितिकांडक-घातोंके व्यतीत हो जानेपर उदया-वलीसे बाहिर स्थित मिथ्यात्वका स्थितिसत्त्वरूप सर्व द्रव्य घात करनेके लिए ग्रहण किया गया । (तथा, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके पल्योपमके असंख्यात बहुभागोंको घात करनेके लिए ग्रहण करता है ।) तब सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति-सत्त्व पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण शेष रहता है । तत्पश्चात् मिथ्यात्वके समाप्त होने योग्य अन्तिम स्थितिकांडकके क्रमसे समाप्त होनेपर उसी कालमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति-संक्रम और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है । तथा उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेश-सत्त्व होता है । तत्पश्चात् दो समय कम आवली-प्रमाणकाल बीतनेपर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है, अर्थात् जब वह दो समय कम आवली-प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितियोंको क्रमसे गलाकर जिस समय दो समय कालवाली एक स्थिति अवशिष्ट रह जाती है उस समय मिथ्यात्वकर्मका सर्व-जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वके संक्रमण करनेपर प्रथम समयमें सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात बहुभागोंको घात करनेके लिए ग्रहण करता है, अर्थात् मिथ्यात्वकर्मके द्रव्यका सर्वसंक्रमण हो जानेपर सम्यग्मि-थ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिकांडक-घात प्रारंभ करता है । इस प्रकार वह क्रमशः घात करता हुआ संख्यात स्थितिकांडकोंके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके उदयावलीसे बाहिर स्थित सर्व द्रव्यको घात करनेके लिए ग्रहण करता है, अर्थात् उस समय सम्यग्मिथ्यात्वकी केवल एक उदयावली ही शेष रहती है ॥५२-५७॥

चूर्णिसू०–उस समय अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके एक आवलीप्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रह जानेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थितिसत्त्वके विषयमें दो प्रकारके उपदेश मिलते हैं । अप्रवाह्यमान-परम्पराके कितने ही आचार्य कहते हैं कि उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थिति संख्यातसहस्र-

स्साणि ट्ठिदाणि त्ति । पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठ वस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि, सेसाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति । ५९. एदम्मि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे जहण्णगो सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सगो पदेससंकमो। सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं ।

६०. अट्ठवस्स-उवदेसेण परूविज्जिहिदि । ६१. तं जहा । ६२. अपुव्वकरणस्स पढमसमए पलिदोवमस्स संखेज्जभागिगं ट्ठिदिखंडयं ताव जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं । पलिदोवमे ओलुत्ते पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । तम्हि गदे सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । एवं संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि । तदो दूरावकिट्ठी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागे संतकम्मे सेसे तदो ट्ठिदिखंडयं सेसस्स असंखेज्जा भागा । एवं ताव सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव मिच्छत्तं खविदं ति । सम्मामिच्छत्तं पि खवेंतस्स सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव सम्मामिच्छत्तं पि खविज्जमाणं खविदं, संछुब्भमाणं संछुद्धं । ताधे चेव सम्मत्तस्स संतकम्ममट्ठवस्सट्ठिदिगं जादं । ६३. ताधे चेव दंसणमोहणीयक्खवगो त्ति भण्णइ ।

वर्ष अवशिष्ट रहती है । किन्तु प्रवाह्यमान उपदेशसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थिति आठ वर्षप्रमाण शेष रहती है, शेष सर्व स्थितियाँ स्थितिकांडकघातोंसे नष्ट हो जाती हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके इस अन्तिम स्थितिकांडकघातके सम्पन्न होनेपर उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम, और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है । तथा उसी समय सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है ॥५८-५९॥

चूर्णिसू०—सम्यक्त्वप्रकृतिकी आठ वर्षप्रमाण स्थितिका निरूपण करनेवाले प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार आगेकी प्ररूपणा की जायगी । वह इस प्रकार है—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आरम्भ होनेवाला, पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाणका धारक स्थितिकांडकघात मिथ्यात्वकर्मके पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व होनेतक प्रारम्भ रहता है । पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्वके अवशिष्ट रह जानेपर पल्योपमके संख्यात बहुभाग स्थितिकांडकरूपसे घात करनेके लिए ग्रहण किये जाते हैं । उसके भी व्यतीत होनेपर पल्योपमके शेष रहे हुए एक भागके भी बहुभाग स्थितिकांडकरूपसे घात करनेके लिए ग्रहण किये जाते हैं । इस प्रकार संख्यातसहस्र स्थितिकांडक व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिके शेष रहनेपर दूरापकृष्टि नामक स्थिति आती है । तब स्थितिकांडकका प्रमाणपल्योपमके अवशिष्ट एक भागके असंख्यात बहुभाग-प्रमाण है । इस प्रकार स्थितिकांडकका यह पल्योपमके अवशिष्ट भागके असंख्यात बहुभागरूप प्रमाण मिथ्यात्वके क्षय होनेतक जारी रहता है । तत्पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको भी क्षय करते हुए अवशिष्ट स्थितिसत्त्वके असंख्यात बहुभाग स्थितिकांडकरूपसे घात करनेके लिए तब तक ग्रहण करता है, जब तक कि क्षपण किया जानेवाला सम्यग्मिथ्यात्व भी क्षय कर दिया जाता है और उदयावली को छोड़कर संक्रम्यमाण द्रव्य सर्वसंक्रमणके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रान्त किया जाता है । उस समय

६४. एत्तो पाए अंतोमुहुत्तिगं ट्ठिदिखंडयं । ६५. अपुव्वकरणस्स पढमसमयादो पाए जाव चरिमं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागट्ठिदिखंडयं ति एदम्मि काले जं पदेसग्गमोकड्डमाणो सव्वरहस्साए आवलियबाहिरट्ठिदीए पदेसग्गं देदि तं थोवं । समयुत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं । एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं, तदो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेसहीणं । सेसासु वि ट्ठिदीसु विसेसहीणं चेव, णत्थि गुणगारपरावत्ती[1] । ६६. जाधे अट्ठवासट्ठिदिगं संतकम्मं सम्मत्तस्स ताधे पाए सम्मत्तस्स अणुभागस्स अणुसमय-ओवट्टणा । एसो ताव एक्को किरियापरिवत्तो* । ६७. अंतोमुहुत्तिगं चरिमट्ठिदिखंडयं । ६८. ताधे पाए ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु उदये थोवं पदेसग्गं दिज्जदे ।

ही सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण होता है । इसी समय वह 'दर्शनमोहनीय-क्षपक' कहलाता है ॥६०-६३॥

चूर्णिसू०–इस पाये पर अर्थात् 'दर्शनमोहनीय-क्षपक' यह संज्ञा प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाला स्थितिकांडक आरम्भ होता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागवाले स्थितिकांडक तक इस कालमें जिस प्रदेशाग्रका अपकर्षण करता हुआ सबसे ह्रस्व उदयावलीसे बाहिरी स्थितिमें जो प्रदेशाग्र देता है, वह सबसे कम है । इससे एक समय अधिक स्थितिमें जिस प्रदेशाग्रको देता है, वह असंख्यातगुणित है । (इससे दो समय अधिक स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है ।) इस प्रकार गुणश्रेणीशीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । तत्पश्चात् गुणश्रेणीशीर्षकसे उपरिम-अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । तत्पश्चात् विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार शेष सर्व स्थितियोंमें भी विशेष-हीन विशेष-हीन ही प्रदेशाग्रको देता है । यहाँपर कहीं भी गुणकारमें या किसी क्रियाविशेषमें कोई परिवर्तन नहीं होता है । जिस समय सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण रह जाता है, उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिके अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना होती है । तब यह एक क्रियाविशेषरूप परिवर्तन होता है । इसी समय अन्तिम स्थितिकांडकका आयाम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है, अर्थात् जो पहलेसे दूरापकृष्टिसे लेकर इतनी दूर तक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाणवाला स्थितिकांडक चला आ रहा था, वह स्थितिकांडक इस समय संख्यात आवली आयामवाले अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है । यह एक दूसरा क्रिया-परिवर्तन है । उस समय अपवर्तन की जानेवाली स्थितियोंमेंसे उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है । उससे अनन्तर समयमें असंख्यात-

१ एदम्मि णिरुद्धकाले दिज्जमाणस्स दिस्समाणस्स वा पदेसग्गस्स अणंतरपरूविदो चेव गुणगारकमो, णत्थि तत्थ अण्णारिसेण कमेण गुणगारपवुत्ति त्ति जं वुत्तं होइ । गुणगारो णाम किरियाभेदो, सो णत्थि त्ति वा जाणावणट्ठं 'णत्थि गुणगारपरावत्ती' इदि सुत्ते णिद्दिट्ठं । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'किरियापरिवत्तो' इस पदसे आगे **'जं सम्मत्ताणुभागस्स पुव्वं विट्ठाणियसरूवस्स एण्हिमेगट्ठाणियसरूवेणाणुसमयोवट्टणा पारद्धा त्ति'** इतना अंश और भी सूत्र रूपसे मुद्रित है (देखो पृ० १७५८) । पर वस्तुतः यह टीकाका अंश है, यह इसी स्थलकी टीकासे सिद्ध है ।

से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो उवरिमाणंतर-ट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं देदि। तदो विसेसहीणं। ६९. एवं जाव दुचरिमट्ठिदि-खंडयं ति।

७०. सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदीओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदीओ थोवाओ। ७१. दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ७२. चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ७३. चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो गुणसेढीए संखेज्जे भागे आगाएदि, अण्णाओ च उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ।

७४. सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए पढमसमयमागाइदे ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं। से काले असंखेज्जगुणं ताव* जाव ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए चरिमसमय-अपत्तो त्ति। ७५. सा चेव ट्ठिदी गुणसेढिसीसयं जादं। ७६. जमिदाणिं गुणसेढिसीसयं तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं जाव पोराणगुणसेढिसीसयं ताव। तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए

गुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणीके शीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें भी असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। तत्पश्चात् विशेष-हीन देता है। इस प्रकार यह क्रम द्विचरम स्थितिकांडकके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए ॥६४-६९॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर जो स्थितियाँ सम्यक्त्वप्रकृतिकी शेष रही हैं, वे स्थितियाँ अल्प हैं। उनसे द्विचरम स्थितिकांडक संख्यात-गुणित है। उससे अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थिति-कांडकको घात करनेके लिए ग्रहण करता हुआ इस समयमें पाये जानेवाले गुणश्रेणी आयामके संख्यात बहुभागों तथा संख्यातगुणित अन्य उपरिम स्थितियोंको भी ग्रहण करता है ॥७०-७३॥

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकके प्रथम समयमें घात करनेके लिए ग्रहण करनेपर अपवर्तन की जानेवाली स्थितियोंमेंसे जो प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है, वह अल्प है। अनन्तर समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस क्रमसे तब तक असं-ख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है जब तक कि स्थितिकांडककी जघन्य अर्थात् आदि स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता है। वह स्थिति ही गुणश्रेणी-शीर्ष कहलाती है। जो इस समय गुणश्रेणी-शीर्ष है उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है। इसके पश्चात् तब तक विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है जब तक कि पुरातन गुणश्रेणी-शीर्ष

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ताव' पदके आगे 'असंखेज्जगुणं' इतना अधिक पाठ और मुद्रित है। (देखो पृ० १९६२)

असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं। सेसासु वि विसेसहीणं। ७७. विदियसमए जमुक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि। एवं ताव, जाव ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धाए दुचरिमसमयो त्ति। ७८. ठिदिखंडयस्स चरिमसमये ओकड्डमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं देदि, एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। ७९. गुणगारो वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि। ८० चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे।

८१. ताधे मरणं पि होज्ज*। ८२. लेस्सापरिणामं पि परिणामेज्ज। ८३. काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणमण्णदरो। ८४. उदीरणा पुण संकिलिट्ठस्सदु वा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धा असंखेज्जगुणाए सेढीए जाव समयाहिया आवलिया

न प्राप्त हो जाय। उससे उपरिम-अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है और उससे ऊपर विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। इसी प्रकार शेष भी स्थितियोंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। द्वितीय समयमें जिस प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण करता है, उसे भी इस ही क्रमसे देता है। इस प्रकार यह क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक कि स्थितिकांडकके उत्कीरण-कालका द्विचरम समय प्राप्त होता है। स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें अपकर्षण किये गये द्रव्यमेंसे उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है और उसके अनन्तर-कालमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणी-शीर्ष प्राप्त होने तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। द्विचरम स्थितिके प्रदेशाग्रसे चरिम स्थितिके प्रदेशाग्रका गुणकार भी पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। अन्तिम स्थितिकांडकके समाप्त होने पर वह 'कृतकृत्य वेदक' कहलाता है ॥७४-८०॥

विशेषार्थ—सम्यक्त्वप्रकृतिका अन्तिम स्थितिकांडक समाप्त होनेके समयसे लेकर जब तक सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण गुणश्रेणी-गोपुच्छाएँ क्रमसे गलाता है, तब तक उसकी 'कृतकृत्य वेदक' यह संज्ञा है, अर्थात् इसने दर्शनमोहनीयके क्षपण-सम्बन्धी सर्व कार्य कर लिए हैं, अब कोई काम करना उसे अवशिष्ट नहीं रहा है।

चूर्णिसू०—उस समय अर्थात् कृतकृत्यवेदक-कालके भीतर उसका मरण भी हो सकता है और लेश्या-परिणाम भी परिवर्तित हो सकता है, अर्थात् कपोत, तेज, पद्म और शुक्ललेश्यामेंसे कोई एक लेश्यारूप परिणाम हो सकता है। वह कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भले ही संक्लेशको प्राप्त हो, अथवा विशुद्धिको प्राप्त हो, तो भी उसके असंख्यातगुणश्रेणीके द्वारा जब तक एक समय अधिक आवलीकाल शेष रहता है, तबतक बराबर असं-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'होज्ज' पदसे आगे 'तदद्धाए पढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमयो त्ति' इतना अंश और भी सूत्ररूपसे मुद्रित है (देखो पृ० १७६६)। पर यह टीकाका अंश है, जिसमें कि 'ताधे' पदका अर्थ ही स्पष्ट किया गया है।

सेसा त्ति । ८५. उदयस्स पुण असंखेज्जदिभागो उक्कस्सिया वि उदीरणा ।

८६. पलिदोवमस्स असंखेज्जभागियमपच्छिमं ठिदिखंडयं तस्स ठिदिखंडयस्स चरिमसमए गुणगारपरावत्ती तदो आढत्ता ताव गुणगारपरावत्ती जाव चरिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स दुचरिमसमयो त्ति । सेसेसु समएसु णत्थि गुणगारपरावत्ती । ८७. पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि देवेसु उववज्जदि णियमा । ८८. जइ णेरइएसु वा तिरिक्खजोणिएसु वा मणुसेसु वा उववज्जदि, णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो । ८९. जइ तेउ-पम्म-सुक्के वि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो ।

ख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती रहती है। उत्कृष्ट भी उदीरणा उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ॥८१-८५॥

चूर्णिसू०-अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागवाले अन्तिम स्थितिकांडककी द्विचरम फाली तक तो गुणकार-परावृत्ति या क्रियामें परिवर्तन नहीं है। किन्तु पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाणवाला जो अपश्चिम स्थितिकांडक है, उस स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें गुणकार-परावृत्ति होती है। वहाँसे आरंभ कर यह गुणकार-परावृत्ति अन्तिम स्थितिकांडकके द्विचरम समय तक होती है। इसके अतिरिक्त शेष समयोंमें गुणकार-परावृत्ति नहीं होती है ॥८६॥

चूर्णिसू०-प्रथम समयवर्ती कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि यदि मरता है, तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है। (क्योंकि, अन्य गतियोंमें उत्पत्तिकी कारणभूत लेश्याका परिवर्तन उस समय असंभव है।) यदि वह नारकियोंमें, अथवा तिर्यग्योनियोंमें, अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, तो नियमसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक वह कृतकृत्यवेदक रह चुका है। (क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तकालके विना उक्त गतियोंमें उत्पत्तिके योग्य लेश्याका परिवर्तन उस समय संभव नहीं है।) यदि वह तेज, पद्म और शुक्ललेश्यामें भी परिणमित होता है, तो भी वह अन्तर्मुहूर्त तक कृतकृत्यवेदक रहता है ॥८७-८९॥

विशेषार्थ-दर्शनमोहके क्षपणके लिए समुद्यत जीवके अधःकरण प्रारंभ करते हुए तेज, पद्म और शुक्लमेंसे जो लेश्या थी, कृतकृत्यवेदक होनेके समय उसी लेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है। क्योंकि, उसके उत्तरोत्तर परिणामोंमें विशुद्धिके बढ़नेसे लेश्याका जघन्य अंश-भी बढ़कर उत्कृष्ट अंशको प्राप्त हो जाता है। अतएव कृतकृत्यवेदक होनेपर यदि लेश्याका परिवर्तन होगा, तो भी पूर्वसे चली आई हुई लेश्यामें वह अन्तर्मुहूर्त तक रहेगा, तत्पश्चात् ही लेश्याका परिवर्तन हो सकेगा। कुछ आचार्य इस सूत्रका अन्य प्रकारसे अर्थ करते हैं। उनका कहना है कि यदि कोई जीव तेजोलेश्याके जघन्य अंशसे युक्त होकर भी दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ करता है, तो भी उसके कृतकृत्यवेदक होनेतक उत्तरोत्तर विशुद्धिकी वृद्धिके कारण शुक्ललेश्या नियमसे हो जाती है। अतएव यदि उसके कृतकृत्यवेदक होनेके पश्चात् लेश्याका परिवर्तन होगा, तो भी वह उक्त तीनों लेश्याओंमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहेगा,

९०. एवं परिभासा समत्ता।

९१. दंसणमोहणीयक्खवगस्स पढमसमए अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं ट्ठिदिखंडयट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं जहण्णुक्कस्सयाणं आबाहाणं च जहण्णुक्कस्सियाणमण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। ९२. तं जहा। ९३. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा। ९४. उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया। ९५. ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। ९६. ताओ उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। ९७. कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा। ९८. सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा। ९९. अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा। १००. अपुव्व-

तत्पश्चात् ही लेश्याका परिवर्तन होगा, इसके पूर्व नहीं। शुभ लेश्याके परिवर्तित होनेके पश्चात् पूर्वबद्ध आयुके कारण वह यथायोग्य अशुभ लेश्यासे परिणत होकर यदि मरण कर मनुष्यगतिमें जायगा, तो नियमसे भोगभूमियाँ मनुष्योंमें उत्पन्न होगा। यदि तिर्यंगतिमें जायगा तो भोगभूमियाँ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होगा और यदि नरकगतिमें जायगा, तो प्रथम पृथिवीमें ही उत्पन्न होगा, अन्यत्र नहीं।

चूर्णिसू०–इस प्रकार गाथासूत्रोंकी परिभाषा समाप्त हुई ॥९०॥

विशेषार्थ–सूत्र-द्वारा उक्त या सूचित अर्थके व्याख्यान करनेको विभाषा कहते हैं। तथा जो अर्थ सूत्रमें उक्त या अनुक्त हो, अथवा देशामर्शकरूपसे सूचित किया गया हो उसके व्याख्यान करनेको परिभाषा कहते हैं। दर्शनमोहक्षपणा-सम्बन्धी पाँचों गाथा-सूत्रोंमें जो अर्थ कहा गया है, अथवा नहीं कहा गया है, अथवा सूचित किया गया है, वह सब उपर्युक्त चूर्णिसूत्रोंके द्वारा व्याख्यान कर दिया गया, ऐसा इस चूर्णिसूत्रका अभिप्राय जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि यहाँतक चार गाथासूत्रोंकी परिभाषा की गई है, क्योंकि पाँचवें गाथासूत्रकी परिभाषा चूर्णिकारने आगे की है।

चूर्णिसू०–दर्शनमोहनीयक्षपकके प्रथम समयमें अपूर्वकरणको आदि करके जब तक प्रथम समयवर्ती कृतकृत्यवेदक होता है, तब तक इस अन्तरालमें अनुभागकांडक और स्थितिकांडक-उत्कीरण कालोंके, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकांडक, स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वोंके, जघन्य वा उत्कृष्ट आबाधाओंके, तथा जघन्य और उत्कृष्ट अन्य भी पदोंके अल्पबहुत्वको कहेंगे। वह इस प्रकार है। जघन्य अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल सबसे कम है। इससे उत्कृष्ट अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है। इससे जघन्य स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धकाल, ये दोनों परस्पर तुल्य होते हुए भी संख्यातगुणित हैं। इनसे इन्हीं दोनोंके उत्कृष्टकाल परस्पर तुल्य होते हुए भी विशेष अधिक हैं। इससे कृतकृत्यवेदकका काल संख्यातगुणित है। कृतकृत्यवेदकके कालसे सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपणका काल संख्यातगुणित है। सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपणके कालसे अनि-

करणद्धा संखेज्जगुणा । १०१. गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । १०२. सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । १०३. तस्सेव चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । १०४. अट्ठवस्सट्ठिदिगे संतकम्मे सेसे जं पढमं ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं । १०५. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । १०६. उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । १०७. पढमसमय-अणुभागं अणुसमयोवट्टमाणगस्स अट्ठ वस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । १०८. सम्मत्तस्स असंखेज्जवस्सियं चरिमट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं । १०९. सम्मामिच्छत्तस्स चरिममसंखेज्जवस्सियं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं । ११०. मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । १११. मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । ११२. मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं । ११३. असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडयं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणं । ११४. संखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडयं जं तं संखेज्जगुणं । ११५. पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो विदियं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

वृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है । अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है । अपूर्वकरणके कालसे गुणश्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है । गुणश्रेणीनिक्षेपसे सम्यक्त्वप्रकृतिका द्विचरम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । सम्यक्त्वप्रकृतिके द्विचरम स्थितिकांडकसे सम्यक्त्वप्रकृतिका ही अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकसे सम्यक्त्वप्रकृतिके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्वके शेष रहनेपर जो प्रथम स्थितिकांडक होता है, वह संख्यातगुणित है । इससे कृतकृत्यवेदकके प्रथम समयमें संभव सर्व कर्म-सम्बन्धी जघन्य आबाधा संख्यातगुणित है । इस जघन्य आबाधासे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें बंधनेवाले कर्मोंकी उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है । इस उत्कृष्ट आबाधासे अनुभागको प्रतिसमय अपवर्तन करनेवाले जीवके प्रथम समयमें होनेवाला आठ वर्षप्रमाण सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है । इस आठ वर्षप्रमाण सम्यक्त्वप्रकृतिके स्थितिसत्त्वसे सम्यक्त्वप्रकृतिका असंख्यात वर्षवाला अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यातगुणा है । सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकसे सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात वर्षवाला अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है । (यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण एक आवलीसे कम आठ वर्षप्रमाण जानना चाहिए ।) सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकांडकसे मिथ्यात्वके क्षपण करनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणा है । इससे मिथ्यात्वप्रकृतिकी सत्तावाले जीवके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व-सम्बन्धी अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है । इससे मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है । मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकांडकसे असंख्यात गुणहानिरूप स्थितिकांडकवाले, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है । इससे संख्यात गुणहानिरूप स्थितिकांडकवाले उपर्युक्त तीनों कर्मोंका जो अन्तिम स्थितिकांडक है, वह संख्यातगुणित है । पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्वसे मिथ्यात्वादि तीनों कर्मोंका द्वितीय स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । इससे जिस

११६. जम्हि ट्ठिदिखंडए अवगदे दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं होइ, तं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ११७. अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ११८. पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ११९. पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। १२०. अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सगट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो। १२१. दंसणमोहणीयस्स अणियट्टिपढमसमयं पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। १२२. दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। १२३. तेसिं चेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। १२४. दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। १२५. तेसिं चेव उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। १२६.एदम्हि दंडए समत्ते सुत्तगाहाओ अणुसंवण्णेदव्वाओ।

१२७. संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा त्ति एदिस्से गाहाए अट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च। १२८. एदेसु अणिओगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहक्खवणा त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व रहता है, वह स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे अपूर्वकरणमें होनेवाला प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। अपूर्वकरणमें होनेवाले प्रथम स्थितिकांडकसे पल्योपममात्र स्थितिसत्त्वके होनेपर तत्पश्चात् होनेवाला प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्वसे अपूर्वकरणमें होनेवाले प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडकका विशेष संख्यातगुणित है। (क्योंकि उसका प्रमाण सागरोपम-पृथक्त्व है।) इससे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके दर्शनमोहनीय कर्मका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। (क्योंकि, उसका प्रमाण सागरोपमशतसहस्र-पृथक्त्व है। अनिवृत्तिकरण-प्रविष्ट प्रथम-समयवर्ती जीवके दर्शनमोहनीयके स्थितिसत्त्वसे दर्शनमोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। (क्योंकि, कृतकृत्यवेदकका प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम माना गया है।) इस जघन्य स्थितिबन्धसे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे दर्शनमोहनीयके विना शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इस जघन्य स्थितिसत्त्वसे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है ॥९१-१२५॥

चूर्णिसू०—इस अल्पबहुत्व-दंडकके समाप्त होनेपर सूत्र-गाथाओंका अवयवार्थ-परामर्शपूर्वक सम्यक् प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिए ॥१२६॥

चूर्णिसू०—'संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा' इस पाँचवी गाथामें आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। वे इस प्रकार हैं—सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व। इन अनुयोगद्वारोंके वर्णन करनेपर दर्शनमोहक्षपणा नामका अधिकार समाप्त होता है ॥१२७-१२८॥

---

१२ संजमासंजमलद्धि-अत्थाहियारो

१. देसविरदे त्ति अणिओगद्दारे एया सुत्तगाहा । २. तं जहा ।

(६२) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स ।
वड्ढावड्ढी उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं ॥११५॥

---

१२ संयमासंयमलब्धि-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०—देशविरत नामक संयमासंयमलब्धि अनुयोगद्वारमें एक सूत्रगाथा है । वह इस प्रकार है ॥१-२॥

संयमासंयम अर्थात् देशसंयमकी लब्धि, तथा चारित्र अर्थात् सकलसंयमकी लब्धि, परिणामोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि, और पूर्व-बद्ध कर्मोंकी उपशामना इस अनुयोगद्वारमें वर्णन करने योग्य है ॥११५॥

विशेषार्थ—वास्तवमें यह गाथा संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धि नामक दो अधिकारोंमें निबद्ध है, जैसा कि गाथासूत्रकार स्वयं ही ग्रन्थके प्रारम्भमें कह आये हैं । परन्तु यहाँपर संयमासंयमलब्धिके स्वतन्त्र अधिकारमें कहनेकी विवक्षासे चूर्णिकारने सामान्यसे ऐसा कह दिया है कि इस अनुयोगद्वारमें एक गाथा प्रतिबद्ध है, क्योंकि दोनों अनुयोगद्वारोंका एक साथ वर्णन किया नहीं जा सकता था । हिंसादि पापोंके एक देश त्यागको संयमासंयम कहते हैं । संयमासंयमके घातक अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयाभावसे प्राप्त होनेवाली परिणामोंकी विशुद्धिको संयमासंयमलब्धि कहते हैं । हिंसादि सर्व पापोंके सर्वथा त्यागको सकलसंयम कहते हैं । सकलसंयमके घातक प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयाभावसे उपलब्ध होनेवाली विशुद्धिको संयमलब्धि कहते हैं । इन दोनोंमेंसे प्रकृत अनुयोगद्वारमें केवल संयमासंयमलब्धिका ही वर्णन किया जायगा । अलब्ध-पूर्व संयमासंयम या संयमलब्धिके प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रतिसमय उत्तरोत्तर अनन्तगुणित क्रमसे परिणामोंकी विशुद्धि-वृद्धिको 'वड्ढावड्ढी' वृद्धापवृद्धि या 'बढ़ावढ़ी' कहते हैं । देशचारित्र या सकलचारित्रके प्रतिबन्धक, पूर्व-बद्ध कर्मोंके अनुदयरूप अभावको यहाँ 'उपशामना' नामसे ग्रहण किया गया है । इसके चार भेद हैं—प्रकृति-उपशामना, स्थिति-उपशामना, अनुभाग-उपशामना और प्रदेशोपशामना । देशसंयम और सकलसंयमके घात करनेवाली प्रकृतियोंकी उपशामनाको प्रकृति-उपशामना कहते हैं । इन्हीं प्रकृतियोंकी, अथवा सभी कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीसे ऊपरकी स्थितियोंके उदयाभावको स्थिति-उपशामना कहते हैं । चारित्रके अवरोधक

३. एदस्स अणिओगद्दारस्स पुव्वं गमणिज्जा परिभासा । ४. तं जहा । ५. एत्थ अधापवत्तकरणद्धा अपुव्वकरणद्धा च अत्थि, अणियट्टिकरणं णत्थि । ६. संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदोप्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चदुट्ठाणियं करेदि । असुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च दुट्ठाणियं करेदि । ७. तदो अधापवत्तकरणं णाम अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि । णत्थि ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा । केवलं ट्ठिदिबंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदि-

---

कषायोंके द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागके उदयाभावको, तथा उदयमें आनेवाले भी कषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावको अनुभागोपशामना कहते हैं। अनुदय-प्राप्त कषायोंके प्रदेशोंके उदयाभावको प्रदेशोपशामना कहते हैं। इन चारों प्रकारकी उपशामनाओंका इस अधिकारमें वर्णन किया जायगा । जयधवलाकारने संयमासंयमलब्धि और 'वड्ढावड्ढी' का एक और भी अर्थ किया है । वह यह कि लब्धिस्थान तीन प्रकारके होते हैं—प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान । इन तीनों प्रकारके स्थानोंकी प्ररूपणा उक्त दोनों अनुयोगद्वारोंमें निबद्ध समझना चाहिए । 'वड्ढावड्ढी' यह पद वृद्धि और अपवृद्धिके संयोगसे बना है, अतएव यहाँ वृद्धिपदसे संयमासंयम या संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके निरन्तर विशुद्धिरूपसे बढ़ते ही रहनेवाले एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंका ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार संक्लेशके वशसे प्रतिसमय अनन्तगुणी हानिके द्वारा संयमासंयम या संयमलब्धिके पतनशील परिणामोंको 'अपवृद्धि' कहते हैं । इस प्रकारके वृद्धि-हानिरूप परिणामोंका भी इस अधिकारमें वर्णन किया जायगा । इसी प्रकार 'उपशामना' पदसे भी यह सूचित किया गया है कि जिस प्रकार प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होने वाले जीवके दर्शनमोहकी उपशामनाका विधान किया गया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम या संयमलब्धिको प्राप्त करनेवाले जीवके उपशामनाका निरूपण करना चाहिए। इस प्रकार उक्त सर्व अर्थोंका निरूपण इस अधिकारमें किया जायगा ।

चूर्णिसू०—इस अनुयोगद्वारमें पहले गाथासूत्रसे सूचित अर्थकी परिभाषा जानने योग्य है। उसे इस प्रकार जानना चाहिए—यहाँपर, अर्थात् संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले वेदक-सम्यग्दृष्टिके अथवा वेदक-प्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके अधःप्रवृत्तकरणकाल और अपूर्वकरणकाल होता है, अनिवृत्तिकरण नहीं होता है । (क्योंकि, कर्मोंकी सर्वोपशामना या क्षपणा करनेके लिए समुद्यत जीवके ही अनिवृत्तिकरण होता है ।) संयमासंयमको अन्तर्मुहूर्त कालसे प्राप्त करेगा, इस कारण वहाँसे लेकर सर्व जीव आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंके स्थितिबन्धको और स्थितिसत्त्वको अन्तःकोड़ाकोड़ीके प्रमाण करते हैं । शुभ कर्मोंके अनुभागबन्धको और अनुभागसत्त्वको चतुःस्थानीय करते हैं । तथा अशुभ कर्मोंके अनुभागबन्धको और

भागहीणेण ट्ठिदिं बंधदि । जे सुभा कम्मंसा ते अणुभागेहिं अणंतगुणेहिं बंधदि । जे असुहकम्मंसा, ते अणंतगुणहीणेहिं* बंधदि ।

८. विसोहीए तिव्व-मंदं वत्तइस्सामो । ९. अधापवत्तकरणस्स जदोप्पहुडि विसुद्धो तस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा । १०. विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । ११. तदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । १२. एवमंतोमुहुत्तं जहण्णिया चेव विसोही अणंतगुणेण गच्छइ । १३. तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । १४. सेस-अधापवत्तकरणविसोही जहा दंसणमोह-उवसामगस्स अधापवत्तकरणविसोही तहा चेव कायव्वा† ।

अनुभागसत्त्वको द्विस्थानीय करते हैं । तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तकरण नामकी अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता है । यहाँपर न स्थितिकांडकघात होता है और न अनुभागकांडकघात होता है । (न गुणश्रेणी होती है ।) केवल स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिबन्धके द्वारा नवीन कर्मोंकी स्थितिको बाँधता है । जो शुभ कर्मरूप प्रकृतियाँ हैं, उन्हें अनन्तगुणित अनुभागोंके साथ बाँधता है और जो अशुभ कर्मरूप प्रकृतियाँ हैं, उन्हें अनन्तगुणित हीन अनुभागोंके साथ बाँधता है ॥३-७॥

चूर्णिसू०—अब संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करनेवाले जीवके विशुद्धिकी तीव्र-मन्दता कहते हैं—अधःप्रवृत्तकरणके जिस समयसे विशुद्ध हुआ है, उसके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे कम है । उससे द्वितीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । उससे तृतीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य विशुद्धि ही अनन्तगुणित क्रमसे बढ़ती जाती है । इसके पश्चात् अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है । शेष अधःप्रवृत्तकरण-सम्बन्धी विशुद्धियाँ, जिस प्रकार दर्शनमोहोपशामकके अधःप्रवृत्तकरणमें बतलाई गई हैं, उसी प्रकारसे यहाँपर भी उनका निरूपण करना चाहिए ॥८-१४॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अणंतगुणहीणेहिं' इस पाठके स्थानपर 'अणंतगुणेहिं [हीणा-]' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १७७८)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें सूत्रांक १४ के अनन्तर निम्नलिखित चार सूत्र और मुद्रित हैं—
'संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे १ । [जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को हवे ॥—]
काणि वा पुव्वबद्धाणि० २ [के वा अंसे णिबंधदि । कदि आवलिअं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥—]
के अंसे झीयदे पुव्वं० ३ [बंधेण उदएण वा । अंतरं वा कहिं किच्चा के के खवगो कहिं ॥—]
किं ठिदियाणि कम्माणि० ४ [अणुभागेसु केसु वा । ओवट्टिदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि' ॥—]

इस उद्धरणमें कोष्ठकान्तर्गत पाठको सम्पादकने अपनी ओरसे पूर्व-निर्दिष्ट गाथासूत्रोंके अनुसार जोड़ा है । शेष अंश टीकाका अंग है । जो कि प्रकृत स्थलपर उद्धरणके रूपसे निर्दिष्ट किया गया है । (देखो पृ० १७७९) ।

१५. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णयं ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सयं ठिदिखंडयं सागरोवमपुधत्तं । १६. अणुभागखंडयमसुहाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा आगाइदा । सुभाणं कम्माणमणुभागघादो णत्थि ।१७. गुणसेढी च णत्थि ।

१८. ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण* हीणो । १९. अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च अण्णो च अणुभागखंडय-उक्कीरणकालो समगं समत्ता भवंति । २०. तदो अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जभागिगं अण्णं ट्ठिदिबंधमण्णमणुभागखंडयं च पट्ठवेइ । २१. एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि ।

विशेषार्थ–जिस प्रकारसे दर्शनमोह-उपशामनाके प्रारम्भ करनेवाले जीवके विषयमें गाथासूत्राङ्क ९१ से लेकर ९४ तककी चार प्रस्थापक-गाथाओंके द्वारा परिणाम, योग, कषाय, लेश्या आदिका, पूर्व-बद्ध और नवीन बंधनेवाले कर्मोंका, तथा कर्मोंकी उदय-अनुदय, बन्ध-अबन्ध और अन्तर, उपशम आदिका विस्तृत विवेचन किया गया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें संयमासंयमलब्धिके प्रस्थापक जीवके परिणाम, योग, लेश्या आदिका विवेचन करनेकी चूर्णिकारने सूचना की है । दर्शनमोहोपशामना-प्रस्थापककी प्ररूपणासे संयमासंयमलब्धि-प्रस्थापककी इस प्ररूपणामें कोई विशेष भेद न होनेसे चूर्णिकारने उसे स्वयं नहीं कहा है । अतः विषयके स्पष्टीकरणार्थ यहाँ उसका प्ररूपण करना आवश्यक है ।

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकांडक पल्योपमका संख्यातवाँ भाग है और उत्कृष्ट स्थितिकांडक सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण है । अनुभागकांडक अशुभ कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग घात किया जाता है । शुभ कर्मोंका अनुभागघात नहीं होता है । यहाँपर गुणश्रेणीरूप निर्जरा भी नहीं होती है ॥१५-१७॥

विशेषार्थ–संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करनेवाली जीवके गुणश्रेणीरूप निर्जरा नहीं होती है । इसका कारण यह है कि वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करनेवाले जीवके गुणश्रेणी निर्जराका निषेध किया गया है । हाँ, उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करनेवाले जीवके गुणश्रेणी निर्जरा होती है, किन्तु यहाँपर चूर्णिकारने उसकी विवक्षा नहीं की है ।

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अधःप्रवृत्तकरणकी अपेक्षा स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन होता है । सहस्रों अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर अर्थात् घात कर दिये जानेपर स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल, स्थितिबन्धका काल और अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, ये तीनों एक साथ समाप्त होते हैं । तत्पश्चात् पल्योपमके संख्यातवें भागवाला अन्य स्थितिकांडक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकांडकको एक साथ आरम्भ करता है । इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकघातोंके हो जानेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ॥१८-२१॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पलिदोवमसंखेज्जभागेण' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १७८०)

२२. तदो से काले पढमसमयसंजदासंजदो जादो । २३. ताधे अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयमपुव्वं ट्ठिदिबंधं च पट्ठवेदि । २४. असंखेज्जे समयपबद्धे ओकड्डियूण गुणसेढीए उदयावलियबाहिरे रचेदि । २५. से काले तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो । गुणसेढी असंखेज्जगुणा । २६. गुणसेढिणिक्खेवो अवट्ठिदगुणसेढी तत्तिगो चेव । २७. एवं ठिदिखंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो[1] जायदे ।

२८. अधापवत्तसंजदासंजदस्स ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा णत्थि । २९. जदि संजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो, पुणो वि परिणामपच्चएण अंतोमुहुत्तेण

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें वह प्रथम समयवर्ती संयतासंयत हो जाता है । उस समय वह अपूर्व स्थितिकांडकघात, अपूर्व अनुभागकांडकघात और अपूर्व स्थितिबन्धको आरम्भ करता है । तथा असंख्यात समयप्रबद्धोंका अपकर्षण कर उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणीको रचता है । उसके अनन्तर समयमें वही पूर्वोक्त स्थितिकांडकघात होता है, वही अनुभागकांडकघात होता है और वही स्थितिबन्ध होता है । केवल गुणश्रेणी असंख्यातगुणी होती है। गुणश्रेणीनिक्षेप और अवस्थित गुणश्रेणी उतनी ही अर्थात् पूर्व-प्रमाण ही रहती है । इस प्रकार बहुतसे स्थितिकांडकघातोंके व्यतीत होनेपर तत्पश्चात् उक्त जीव अधःप्रवृत्त संयतासंयत होता है ॥२२-२७॥

विशेषार्थ–संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता हुआ, सहस्रों स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात और स्थितिबन्धापसरणोंको करता हुआ यह जीव एकान्तानुवृद्धिसे वृद्धिंगत संयतासंयत कहलाता है । क्योंकि संयतासंयत होनेके प्रथम समयसे लेकर इस समय तक उसके एकान्तसे अर्थात् निश्चयतः अविच्छिन्नरूपसे प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होती रहती है । इस अन्तर्मुहूर्त-कालके पूरा होनेपर वह विशुद्धिताकी वृद्धिसे पतित हो जाता है, अतः उसे अधः-प्रवृत्त-संयतासंयत कहते हैं । इसीका दूसरा नाम स्वस्थानसंयतासंयत भी है । अधःप्रवृत्त-संयतासंयतकी दशामें वह स्वस्थान-प्रायोग्य अर्थात् पंचम गुणस्थानके योग्य संक्लेश और विशुद्धिको भी प्राप्त करता है, ऐसा यहाँ अभिप्राय जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–अधःप्रवृत्त-संयतासंयतके स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता है । वह यदि संक्लेश परिणामोंके योगसे संयमासंयमसे गिर जाय, अर्थात् असंयत हो जाय,

[1] एतदुक्तं भवति–संजमासंजमग्गहणपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तचरिमसमया त्ति ताव पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए वड्ढमाणो ट्ठिदि-अणुभागखंडय-ट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि कुणमाणो तदवत्थाए एयंताणुवड्ढिसंजदासंजदो त्ति भण्णदे । एण्हिं पुण तक्कालपरिसमत्तीए सत्थाणविसोहीए पदिदो अधापवत्त-संजदासंजदववएसारिहो जादो त्ति । अधापवत्तसंजदासंजदो त्ति वा सत्थाणसंजदासंजदो त्ति वा एयट्ठो । तदो एत्तो पाए सत्थाणपाओग्गाओ संकिलेस-विसोहीओ समयाविरोहेण परावत्तेदुमेसो लहदि त्ति घेत्तव्वं । जयध०

आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जइ, तस्स वि णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा। ३०. जाव संजदासंजदो ताव गुणसेढिं समए समए करेदि। ३१. विसुज्झंतो* असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्जभागुत्तरं असंखेज्जभागुत्तरं वा करेदि। संकिलिस्संतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा करेदि। ३२. जदि संजमासंजमादो पडिवदिदूण आगुंजाए[1] मिच्छत्तं गंतूण तदो संजमासंजमं पडिवज्जइ, अंतोमुहुत्तेण वा, विप्पकट्ठेण

तो फिर भी वह विशुद्धिरूप परिणामोंके योगसे लघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा वापिस आकर संयमासंयमको प्राप्त हो जाता है। उस समय भी उसके स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता है। (क्योंकि, उस समय अधःप्रवृत्तादि करणोंका अभाव रहता है।) जब तक वह संयतासंयत है, तब तक समय-समय गुणश्रेणीको करता है। विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ वह असंख्यातगुणित, संख्यातगुणित, संख्यात भाग अधिक या असंख्यात भाग अधिक (द्रव्यको अपकर्षित कर अवस्थित गुणश्रेणीको) करता है। संक्लेशको प्राप्त होता हुआ वह इस ही प्रकारसे असंख्यातगुणहीन, संख्यातगुणहीन अथवा विशेषहीन गुणश्रेणीको करता है ॥२८-३१॥

विशेषार्थ—स्वस्थानसंयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम एक पूर्वकोटी वर्ष है। यदि कोई जीव संयमासंयमको ग्रहण करनेके पश्चात् उत्कृष्ट काल तक संयतासंयत बना रहता है, तो भी उसके प्रति समय असंख्यातगुणी निर्जरा होती रहती है। हाँ, इतना भेद अवश्य हो जाता है कि जब वह उक्त समयके भीतर जितने काल तक जैसी हीनाधिक विशुद्धिको प्राप्त होगा, तब उतने समय तक उसके तदनुसार असंख्यातगुणित, संख्यातगुणित या विशेष अधिक कर्म-निर्जरा होगी। इसी प्रकार जब वह तीव्र या मन्द संक्लेशको प्राप्त होगा, तब उसके तदनुसार असंख्यातगुणहीन, संख्यातगुणहीन या विशेषहीन कर्म-निर्जरा होगी। परन्तु सम्पूर्ण संयतासंयत-कालमें ऐसा कोई समय नहीं है, जब कि उसके हीनाधिक रूपसे कर्म-निर्जरा न होती रहे। कहनेका सारांश यह है कि संयतासंयतके उस उत्कृष्ट या यथासंभव अनुत्कृष्ट कालके भीतर सर्वदा विशुद्धि या संक्लेशके निमित्तसे षड्गुणी हानि या वृद्धि होती रहती है। अतएव उसके अनुसार ही सूत्रोक्त चार प्रकारकी वृद्धि या हानिको लिए हुए कर्म-निर्जरा भी होती रहती है। संयतासंयतका कोई भी समय कर्म-निर्जरासे शून्य नहीं होता है। गुणश्रेणीका आयाम सर्वत्र अवस्थित एक सदृश ही रहता है, इतना विशेष जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—यदि कोई जीव आगुञ्जासे अर्थात् अन्तरङ्गमें अति संक्लेशसे प्रेरित होनेके कारण संयमासंयमसे गिरकर और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकालसे

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'विसुज्झंतो वि' पाठ है। (देखो पृ० १७८३)

1 आगुंजनमागुंजा, संक्लेशभरेणांतराघूर्णनमित्यर्थः। जयध०

वा कालेण; तस्स वि संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स एदाणि चेव करणाणि कादव्वाणि।

३३. तदो एदिस्से परूवणाए समत्ताए संजमासंजमं पडिवज्जमाणगस्स पढमसमयअपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो एयंताणुवड्डीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्डदि, एदम्हि काले ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्म-ट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सयाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं अण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। ३४. तं जहा। ३५. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा। ३६. उक्कस्सिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा विसेसाहिया। ३७. जहण्णिया ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। ३८. उक्कस्सियाओ विसेसाहियाओ। ३९. पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि जं एगंताणुवड्डीए वड्डदि चरित्ताचरित्तपज्जएहिं एसो वड्डिकालो संखेज्जगुणो। ४०. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा। ४१. जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा संजमद्धा असंजमद्धा सम्मामिच्छत्तद्धा

या (अविनष्ट वेदक-प्रायोग्यरूप) विप्रकृष्ट कालसे संयमासंयमको प्राप्त होता है, तो संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके अधःकरण और अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिए ॥३२॥

चूर्णिसू०—इस उपर्युक्त प्ररूपणाके समाप्त होनेपर तत्पश्चात् संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर जब तक संयतासंयत एकान्तानुवृद्धिके द्वारा चारित्राचारित्र अर्थात् संयमासंयम लब्धिसे बढ़ता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालमें जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, स्थितिसत्त्व, स्थितिकांडकका; तथा जघन्य और उत्कृष्ट आबाधाओंका जघन्य और उत्कृष्ट उत्कीरणकालोंका, तथा अन्य भी पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है—एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तमें संभव जघन्य अर्थात् अन्तिम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे अल्प है। इससे अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें संभव अनुभागकांडकका उत्कृष्टकाल विशेष अधिक है (२)। इससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तमें संभव जघन्य स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धका काल, ये दोनों ही परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं (३)। इससे उपर्युक्त दोनोंके ही उत्कृष्टकाल अर्थात् अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं (४)। इससे प्रथमसमयवर्ती संयतासंयतसे लेकर जब तक एकान्तानुवृद्धिके द्वारा संयमासंयमरूप पर्यायसे बढ़ता है, तब तकका यह एकान्तानुवृद्धिरूप काल संख्यातगुणा है (५)। इससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है (६)। अपूर्वकरणके कालसे जघन्य संयमासंयमका काल, जघन्य सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकाल, जघन्य मिथ्यात्वका उदय-काल, जघन्य संयम-काल, जघन्य असंयम-काल और जघन्य सम्यग्मिथ्या-

च एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। ४२. गुणसेढी संखेज्जगुणा। ४३. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। ४४. उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। ४५. जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। ४६. अपुव्वकरणस्स पढमं जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ४७. पलिदोवमं संखेज्जगुणं। ४८. उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ४९. जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ५०. उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ५१. जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ५२. उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

५३. संजदासंजदाणमट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा। संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च। ५४. एदेसु अणिओगद्दारेसु समत्तेसु तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च कायव्वं।

५५. सामित्तं। ५६. उक्कस्सिया लद्धी कस्स? ५७. संजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजमग्गाहयस्स।

त्वका उदयकाल ये छहों परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं (७)। इससे संयतासंयत-सम्बन्धी गुणश्रेणी-आयाम संख्यातगुणित है (८)। इससे एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समयमें होनेवाली चरम स्थितिबन्धकी जघन्य आबाधा संख्यातगुणित है (९)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समय-सम्बन्धी स्थितिबन्धकी उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है (१०)। इससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयका जघन्य स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। (क्योंकि, वह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है) (११)। इससे अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है (१२)। इससे पल्योपम संख्यातगुणित है (१३)। पल्योपमसे अपूर्वकरणका प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। (क्योंकि वह सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाण होता है) (१४)। इससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तमें संभव जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है (१५)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है (१६)। इससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है (१७)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है (१८) (क्योंकि उसका प्रमाण अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम माना गया है।) ॥३३-५२॥

चूर्णिसू०—संयतासंयतोंके विशेष परिज्ञानार्थ आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। वे इस प्रकार हैं—सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भागाभाग और अल्पबहुत्व। इन आठों अनुयोगद्वारोंका निरूपण समाप्त होनेपर तीव्र-मन्दताके विशेष ज्ञानके लिए स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन दो अनुयोगद्वारोंका वर्णन करना चाहिए ॥५३-५४॥

चूर्णिसू०—उनमेंसे पहले स्वामित्व कहते हैं ॥५५॥

शंका—उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि किसके होती है? ॥५६॥

समाधान—अनन्तर समयमें ही सकलसंयमको ग्रहण करनेवाले सर्व-विशुद्ध संयतासंयत मनुष्यके होती है ॥५७॥

५८. जहण्णिया लद्धी कस्स ? ५९. तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स से काले मिच्छत्तं गाहिदि त्ति ।

६०. अप्पाबहुअं । ६१. तं जहा । ६२. जहण्णिया संजमासंजमलद्धी थोवा । ६३. उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी अणंतगुणा ।

६४. एत्तो संजदासंजदस्स लद्धिट्ठाणाणि वत्तइस्सामो । ६५. तं जहा । ६६. जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंताणि फद्दयाणि । ६७. तदो विदियलद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं । ६८. एवं छट्ठाणपदिदलद्धिट्ठाणाणि । ६९. असंखेज्जा लोगा । ७०. जहण्णए लद्धिट्ठाणे संजमासंजमं ण पडिवज्जदि । ७१. तदो असंखेज्जे लोगे अइच्छिदूण* जहण्णयं पडिवज्जमाणस्स पाओग्गं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।

७२. तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअं । ७३. सव्वमंदाणुभागं जहण्णगं संजमासंजमस्स लद्धिट्ठाणं । ७४. मणुसस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव । ७५. तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ७६. तिरि-

---

शंका–जघन्य संयमासंयमलब्धि किसके होती है ? ॥५८॥

समाधान–जघन्य संयमासंयमलब्धिके योग्य संक्लेशको प्राप्त और अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको ग्रहण करनेवाले संयतासंयतके जघन्य संयमासंयमलब्धि होती है ॥५९॥

चूर्णिसू०–अब अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–जघन्य संयमासंयमलब्धि अल्प है और उससे उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि अनन्तगुणित है ॥६०-६३॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे संयतासंयतके लब्धि-स्थान कहेंगे । वे इस प्रकार हैं–जघन्य संयमासंयमलब्धिस्थान अनन्त स्पर्धकरूप है । इससे द्वितीय संयमासंयमलब्धिस्थान अनन्तवें भागसे अधिक है । इस प्रकार षट्स्थानपतित संयमासंयम-लब्धिस्थान होते हैं । उनका प्रमाण असंख्यात लोक है । जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थानमें कोई भी तिर्यंच या मनुष्य संयमासंयमको नहीं प्राप्त करता है । (क्योंकि यह सर्व जघन्य स्थान ऊपरसे गिरनेवाले जीवके ही संभव है ।) इसके पश्चात् असंख्यात लोकप्रमाण संयमासंयम-लब्धिस्थानोंको उल्लंघन करके प्रतिपद्यमान अर्थात् संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके प्राप्त करनेके योग्य जघन्य लब्धिस्थान होता है ॥६४-७१॥

चूर्णिसू०–अब इन लब्धिस्थानोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–संयमासंयमका जघन्य लब्धिस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है । (यह महान् संक्लेशको प्राप्त होकर मिथ्यात्वमें जानेवाले संयतासंयतके अन्तिम समयमें होता है ।) नीचे गिरनेवाले मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान उतना ही है । इससे नीचे गिरनेवाले तिर्यग्योनिक जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपतमान तिर्यग्योनिकका

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अच्छिदूण' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १७१०) । पर वह अशुद्ध है, क्योंकि यहाँपर 'उल्लंघन करके' ऐसा अर्थ अपेक्षित है । 'रद्द करके' यह अर्थ नहीं ।

क्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ७७. मणुससंजदासंजदस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ७८. मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ७९. तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८०. तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८१. मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८२. मणुसस्स अपडिवज्जमाणअपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८३. तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८४. तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं । ८५. मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।

८६. संजदासंजदो अपच्चक्खाणकसाए ण वेदयदि । ८७. पच्चक्खाणावरणीया वि संजमासंजमस्स ण किंचि आवरेंति* । ८८. सेसा चदुकसाया णवणोकसायवेदणीयाणि च उदिण्णाणि देसघादिं करेंति संजमासंजमं । ८९. जइ पच्चक्खाणावरणीयं वेदेंतो सेसाणि चरित्तमोहणीयाणि ण वेदेज्ज तदो† संजमासंजमलद्धी खइया होज्ज ? ९०. एक्केण वि उदिण्णेण खओवसमलद्धी भवदि ।

उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपतमान मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपद्यमान अर्थात् संयमासंयमको प्राप्त करनेवाले मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपद्यमान तिर्यग्योनिक जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपद्यमान तिर्यग्योनिक जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे प्रतिपद्यमान मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान तिर्यग्योनिक जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान तिर्यग्योनिक जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है ॥७२-८५॥

चूर्णिसू०—संयतासंयत जीव अप्रत्याख्यानावरण कषायका वेदन नहीं करता है । प्रत्याख्यानावरणीय कषाय भी संयमासंयमका कुछ भी आवरण नहीं करती हैं । शेष चार संज्वलन कषाय और नव नोकषायवेदनीय, ये उदयको प्राप्त होकर संयमासंयमको देशघाती करती हैं । यदि प्रत्याख्यानावरणीय कषायको वेदन करता हुआ संयतासंयत शेष चारित्रमोहनीय-प्रकृतियोंका वेदन न करे, तो संयमासंयमलब्धि क्षायिक हो जाय । अतएव चार संज्वलन और नव नोकषाय, इनमेंसे एक भी कषायके उदय होनेसे संयमासंयमलब्धि क्षायोपशमिक सिद्ध होती है । (फिर जहाँ तेरह कषायोंका उदय होवे, वहाँ तो नियमसे वह क्षायोपशमिक ही होगी ।) ॥८६-९०॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'करेदि' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १७९४) † ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तदा' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९७४)

लद्धी च संजमासंजमस्सेत्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

विशेषार्थ—संयमासंयमलब्धि क्षायिकभाव है, क्षायोपशमिकभाव है, अथवा औदयिक भाव है ? इस प्रकारकी शंकाका उपर्युक्त सूत्रोंसे ऊहापोह-पूर्वक समाधान किया गया है । उसका खुलासा यह है कि संयतासंयतके अप्रत्याख्यानावरण कषायका तो उदय होता नहीं है, अतः संयमासंयमलब्धिको औदयिकभाव नहीं माना जा सकता है । यदि कहा जाय कि संयतासंयतके प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय रहता है, अतः उसे औदयिक मान लेना चाहिए ? तो चूर्णिकार इस आशंकाका समाधान करते हैं कि प्रत्याख्यानावरण कषाय तो संयमासंयमका आवरण या घात आदि कुछ भी करनेमें असमर्थ है, क्योंकि उसका कार्य संयमका घात करना है, न कि संयमासंयमका । इसलिए उसके उदय होनेपर भी संयमासंयमलब्धिको औदयिक नहीं माना जा सकता है । यहाँ अनन्तानुबन्धीके उदयकी तो संभावना ही नहीं है, क्योंकि उसका उदय दूसरे गुणस्थानमें ही विच्छिन्न हो चुका है । अतएव पारिशेषन्यायसे संयतासंयतके चारों संज्वलनों और नवों नोकषायोंका उदय रहता है । ये सभी कषाय देशघाती हैं, अतएव उनका उदय संयमासंयमलब्धिको भी देशघाती बना देता है । यहाँ देशघाती संज्वलनादि कषायोंके उदयसे उत्पन्न होनेवाले संयमासंयम-लब्धिरूप कार्यमें संज्वलनादि कषायरूप कारणका उपचार करके उसे देशघाती कहा गया है । इस प्रकार चार संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे, तथा इन्हींके देशघाति-स्पर्धकोंके उदयसे संयमासंयम लब्धिको क्षायोपशामिक माना गया है । यदि संयतासंयत प्रत्याख्यानावरणकषायका वेदन करते हुए संज्वलनादि शेष कषायोंका वेदन न करे, तो संयमासंयमलब्धिको क्षायिक मानना पड़ेगा ? ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि संयतासंयतके संयमासंयमको घात करनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायका तो उदय है ही नहीं । और प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय है, सो वह संयमका भले ही घात करे, पर संयमासंयमका वह उपघात या अनुग्रह कुछ भी न करनेमें समर्थ नहीं है । अतः प्रत्याख्यानावरणकषायका वेदन करते हुए यदि संज्वलनादि कषायोंका उदय न माना जाय, तो संयमासंयमलब्धि क्षायिक सिद्ध होती है । किन्तु आगममें उसे क्षायिक माना नहीं गया है, अतः असंदिग्धरूपसे वह क्षायोपशमिक ही सिद्ध होती है ।

इस प्रकार संयमासंयमलब्धि नामक बारहवाँ अर्थाधिकार समाप्त हुआ ।

१३–संजमलद्धि-अत्थाहियारो

१. लद्धी तहा चरित्तस्सेत्ति अणिओगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं। २. तं जहा। ३. जा चेव संजमासंजमे भणिदा गाहा सा चेव एत्थ वि कायव्वा। ४. चरिम-समयअधापवत्तकरणे चत्तारि गाहाओ। ५. तं जहा। ६. संजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे० (१)। ७. काणि वा पुव्वबद्धाणि० (२)। ८. के अंसे झीयदे पुव्वं० (३)। ९. किं ट्ठिदियाणि कम्माणि० (४)। १०. एदाओ सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो सजमं पडिवज्जमाणगस्स उवक्कमविधिविहासा।

---

१३ संयमलब्धि-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०—चारित्रकी लब्धि अर्थात् संयमलब्धि नामक अनुयोगद्वारमें पहले गाथा-रूप सूत्र ज्ञातव्य है। वह इस प्रकार है–जो गाथा पहले संयमासंयमलब्धि नामक अनुयोग-द्वारमें कही गई है, वही यहाँ भी प्ररूपण करना चाहिए ॥१-३॥

विशेषार्थ—श्रीगुणधराचार्यने संयमासंयम और संयमलब्धि इन दोनों अनुयोग-द्वारोंका वर्णन करनेवाली वह एक ही गाथा कही है। उस गाथामें संयमलब्धिकी सूचना-मात्र देकर परिणामोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि और पूर्व बद्ध कर्मोंकी उपशामनाका उल्लेख कर उनकी प्ररूपणाका संकेत किया गया है। अतएव संयमासंयमलब्धिमें वर्णित प्रकारसे यहाँ भी उनका वर्णन करना चाहिए। यहाँपर केवल संयमासंयमलब्धिके स्थानपर संयमलब्धिके नामका उल्लेख करना आवश्यक है।

चूर्णिसू०—संयमको ग्रहण करनेके लिए उद्यत जीवके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें पूर्वोक्त चारों प्रस्थापन-गाथाएँ ज्ञातव्य हैं। वे इस प्रकार हैं संयमको प्राप्त करने-वाले जीवका परिणाम कैसा होता है, उसके कौनसा योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद होता है ? (१)। संयमको प्राप्त करनेवाले जीवके पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौनसे हैं और कौन-कौनसे नवीन कर्म बाँधता है ? उसके कितने कर्म उदयमें आ रहे हैं और कितनोंकी उदीरणा करता है ? (२)। कौन-कौन कर्म उसके बंध या उदयसे व्युच्छिन्न होते हैं और कब कहाँपर अन्तर करके वह संयमलब्धिको प्राप्त करता है ? (३)। उसके किस किस स्थितिवाले कर्म होते हैं और वह किस किस अनुभागमें किसका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है ? (४)। इन चारों सूत्र-गाथाओंकी विभाषा करके तत्पश्चात संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके उपक्रमविधिकी विभाषा करना चाहिए ॥४-१०॥

११. तं जहा । १२. जो संजमं पढमदाए पडिवज्जदि तस्स दुविहा अद्धा, अधापवत्तकरणद्धा च अपुव्वकरणद्धा च ।

१३. अधापवत्तकरण-अपुव्वकरणाणि जहा संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स परूविदाणि तहा संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि कायव्वाणि । १४. तदो पढमसमए संजम-प्पहुडि अंतोमुहुत्तमणंतगुणाए चरित्तलद्धीए वड्ढदि । १५. जाव चरित्तलद्धीए एगंताणु-वड्ढीए वड्ढदि ताव अपुव्वकरणसण्णिदो भवदि । १६. एयंतरवड्ढीदो से काले चरित्त-लद्धीए सिया वड्ढेज्ज वा, हाएज्ज वा, अवट्ठाएज्ज वा ।

१७. संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि पढमसमय-अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव ताव अधापवत्तसंजदो त्ति एदम्हि काले इमेसिं पदाणमप्पाबहुअं कादव्वं । १८. तं जहा । १९. अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धाओ ट्ठिदिखंडयुकीरणद्धाओ जहण्णुक-

---

विशेषार्थ—उक्त चारों प्रस्थापन-गाथाओंकी विभाषा संयमासंयमलब्धिके समान ही करना चाहिए । हाँ, यहाँपर संयमासंयमके स्थानपर संयम कहना चाहिए । यतः संयम-लब्धि मनुष्यके ही होती है, अतः बन्ध-उदय-सत्त्वसम्बन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हुए मनुष्य-गतिमें संभव बन्धादिके योग्य प्रकृतियोंकी परिगणना करना चाहिए । इसके अतिरिक्त जो और भी थोड़ा-बहुत भेद है, वह जयधवला टीकासे जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—वह विभाषा इस प्रकार है—जो संयमको प्रथमतासे अर्थात् बहुलतासे प्राप्त होता है, उसके अधःप्रवृत्तकरणकाल और अपूर्वकरणकाल, ये दो काल होते हैं ॥११-१२॥

विशेषार्थ—पुनः पुनः संयमको प्राप्त करनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि या वेदक-प्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके अनिवृत्तिकरण नहीं होता है । अनादि-मिथ्यादृष्टिके उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमके प्राप्त होते समय यद्यपि तीनों करण होते हैं, परन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की गई है; क्योंकि, वह दर्शनमोहकी उपशमनाके ही अन्तर्गत आ जाता है ।

चूर्णिसू०—अधःप्रवृत्तकरण और अनिवृत्तिकरण जिस प्रकार संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके प्ररूपण किये गये हैं, उसी प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके भी प्ररूपण करना चाहिए । तत्पश्चात् प्रथम समयमें संयमके ग्रहण करनेसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक वह जीव अनन्तगुणी चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है । जब तक यह जीव एकान्ता-नुवृद्धिरूप चारित्रलब्धिसे बढ़ता रहता है, तब तक वह 'अपूर्वकरण' संज्ञावाला रहता है । एकान्तानुवृद्धिके पश्चात् अनन्तर कालमें वह चारित्रलब्धिसे कदाचित् वृद्धिको प्राप्त हो सकता है, कदाचित् हानिको प्राप्त हो सकता है और कदाचित् तदवस्थ भी रह सकता है ॥१३-१६॥

चूर्णिसू०-संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे आदि करके जब तक वह अधःप्रवृत्तसंयत अर्थात् स्वस्थानसंयत रहता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालमें वक्ष्यमाण पदोंका अल्पबहुत्व करना चाहिए । वक्ष्यमाण पद इस प्रकार हैं—जघन्य अनुभाग-कांडक-उत्कीरणकाल, उत्कृष्ट अनुभागकांडक-उत्कीरणकाल, उत्कृष्ट स्थितिकांडक-उत्कीरणकाल

सिसयाओ इच्चेवमादीणि पदाणि । २०. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा । २१. सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया । २२. जहण्णिया ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । २३. तेसिं चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया । २४. पढमसमयसंजदमादिं कादूण जं कालमेयंताणुवड्डीए वड्ढदि, एसा अद्धा संखेज्जगुणा । २५. अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । २६. जहण्णिया संजमद्धा संखेज्जगुणा । २७. गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । २८. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । २९. उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । ३०. जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । ३१. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । ३२. पलिदोवमं संखेज्जगुणं । ३३. पढमस्स ट्ठिदिखंडयस्स विसेसो सागरोवमपुधत्तं संखेज्जगुणं । ३४. जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । ३५. उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ३६. जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । ३७. उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

३८. संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जो ट्ठिदिसंतकम्मेण अणवट्ठिदेण*

इत्यादि । अनुभागकांडकका जघन्य उत्कीरणकाल वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । इससे इसीका, अर्थात् अनुभागकांडकका उत्कृष्ट उत्कीरणकाल विशेष अधिक है । स्थितिकांडकका जघन्य उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका जघन्य काल, ये दोनों परस्परमें तुल्य और पूर्वोक्त पदसे संख्यातगुणित हैं । इनसे इन्हीं दोनोंके उत्कृष्टकाल विशेष अधिक हैं । इससे प्रथम समयवर्ती संयतको आदि लेकर जिस कालमें एकान्तानुवृद्धिसे बढ़ता है, वह काल संख्यातगुणित है । इससे अपूर्वकरणकाल संख्यातगुणित है । इससे जघन्य संयमकाल संख्यातगुणित है । इससे गुणश्रेणीनिक्षेप संख्यातगुणित है । इससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणित है । इससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है । इससे जघन्य स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभव जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । इससे पल्योपम संख्यातगुणित है । इससे प्रथमस्थितिकांडकका सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण विशेष संख्यातगुणित है । इससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । इससे जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है और इससे उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है ॥१७-३७॥

चूर्णिसू०—जो जीव संयमसे निकलकर और असंयमको प्राप्त होकर यदि अवस्थित या अनवर्धित स्थितिसत्त्वके साथ पुनः संयमको प्राप्त होता है तो संयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके न अपूर्वकरण होता है, न स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है ।

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अणुवड्ढिदेण' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १८००) । पर अर्थकी दृष्टिसे वह अशुद्ध है ।

पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणगस्स णत्थि अपुव्वकरणं, णत्थि ट्ठिदि-घादो, णत्थि अणुभागघादो ।

३९. एत्तो चरित्तलद्धिगाणं जीवाणं अट्ठ अणिओगद्दाराणि । ४०. तं जहा । संतपरूवणा दव्वं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च अणुगंतव्वं । ४१. लद्धीए तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च । ४२. एत्तो जाणि ट्ठाणाणि ताणि तिविहाणि । तं जहा–पडिवादट्ठाणाणि उप्पादयट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि ३ । ४३. पडि-वादट्ठाणं णाम [जहा] जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छइ तं पडिवादट्ठाणं । ४४. उप्पादयट्ठाणं णाम जहा जम्हि ट्ठाणे संजमं पडिवज्जइ तमुप्पादयट्ठाणं णाम । ४५. सव्वाणि चेव चरित्तट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि ।

(किन्तु जो जीव संयमसे निकलकर संक्लेशके भारसे मिथ्यात्वसे अनुविद्ध असंयतपरिणामको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तसे या विप्रकृष्ट अन्तरकालसे पुनः संयमको प्राप्त होता है उसके पूर्वोक्त दोनों ही करण होते हैं और उसी प्रकार स्थितिघात और अनुभागघात होते हैं ।) ॥३८॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चारित्रलब्धिको प्राप्त होने वाले जीवोंके सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्ररूपणा, क्षेत्रप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा, कालप्ररूपणा, भागाभाग और अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार अनुगन्तव्य अर्थात् जानने योग्य हैं । चारित्रलब्धिकी तीव्रता और मन्दताके परिज्ञानके लिए स्वामित्व और अल्पबहुत्व भी ज्ञातव्य हैं ॥३९-४१॥

विशेषार्थ–संयमलब्धि दो प्रकारकी होती है–उत्कृष्ट संयमलब्धि और जघन्य संयम-लब्धि। कषायोंके तीव्र अनुभागके उदयसे उत्पन्न होनेवाली मंद विशुद्धिसे युक्त लब्धिको जघन्य संयमलब्धि कहते हैं । कषायोंके मन्दतर अनुभागसे उत्पन्न हुई विपुलतर विशुद्धिसे युक्त लब्धि-को उत्कृष्ट संयमलब्धि कहते हैं । इनमेंसे जघन्य संयमलब्धि सर्व-संक्लिष्ट तथा अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले अन्तिमसमयवर्ती संयतके होती है । उत्कृष्ट संयमलब्धि सर्व विशुद्ध स्वस्थानसंयतके होती है । किन्तु सर्वोत्कृष्ट संयमलब्धि तो उपशान्तमोही या क्षीणमोही जीवोंके होती है । इस प्रकार तीव्र-मंद चारित्रलब्धिके स्वामित्वका वर्णन किया । अब उनका अल्पबहुत्व कहते हैं–जघन्य लब्धिस्थान सबसे कम हैं । इससे उत्कृष्ट लब्धि-स्थान अनन्तगुणित हैं, क्योंकि जघन्य लब्धिस्थानसे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित लब्धिस्थान ऊपर जाकर उत्कृष्ट लब्धिस्थानकी उत्पत्ति होती है ।

चूर्णिसू०–इससे आगे जो संयम लब्धिस्थान हैं, वे तीन प्रकारके हैं–प्रतिपातस्थान, उत्पादकस्थान और लब्धिस्थान । (३) उनमेंसे पहले प्रतिपातस्थानको कहते हैं–जिस लब्धिस्थानपर स्थित जीव मिथ्यात्वको, अथवा असंयमसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होता है, वह प्रतिपातस्थान है । अब उत्पादकस्थानका स्वरूप कहते हैं–जिस स्थानपर जीव संयमको प्राप्त होता है, वह उत्पादकस्थान है । इसीको प्रतिपद्यमानस्थान भी कहते हैं। सर्व ही चारित्रस्थानोंको लब्धिस्थान कहते हैं ॥४२-४५॥

४६. एदेसिं लद्धिट्ठाणाणमप्पाबहुअं* । ४७. तं जहा । ४८. सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि । ४९. उप्पादयट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ५०. लद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । ५१. तिव्व-मंददाए सव्वमंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं । ५२. तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५३. असंजदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५४. तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५५. संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५६. तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५७. कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । ५८. अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्व ही पदसे असंख्यात लोकप्रमाण भेदवाले सभी प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए । अथवा प्रतिपात और प्रतिपद्यमानस्थानोंको छोड़कर शेष सर्व अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थानोंको लब्धिस्थान जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब इन लब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है—संयमलब्धिके प्रतिपातस्थान सबसे कम हैं । प्रतिपातस्थानोंसे उत्पादकस्थान असंख्यातगुणित हैं और उत्पादकस्थानोंसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणित हैं ॥४६-५०॥

चूर्णिसू०—अब लब्धिस्थानोंका तीव्र-मन्दता-विषयक अल्पबहुत्व कहते हैं—मिथ्यात्वको जानेवाले चरम समयवर्ती संयतके जघन्य संयमस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला होता है । इससे उसके ही, अर्थात् मिथ्यात्वको जानेवाले जीवके उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणित है । इससे असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है । इससे उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है । इससे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है । इससे उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है । इससे संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है । इससे संयमको प्राप्त करनेवाले अकर्मभूमिज मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है ॥५१-५८॥

विशेषार्थ—ऊपर जो अकर्मभूमिज मनुष्यके संयमलब्धिस्थान बतलाये गये हैं, सो वहाँपर अकर्मभूमिजका अर्थ भोगभूमिज न करके म्लेच्छखंडज करना चाहिए; क्योंकि म्लेच्छोंमें साधारणतः धर्म-कर्मकी प्रवृत्ति न पाई जानेसे उन्हें अकर्मभूमिज कहा गया है । अतएव यहाँ भरत, ऐरावत या विदेहसम्बन्धी कर्मभूमिके मध्यवर्ती सर्व म्लेच्छखंडोंका ग्रहण करना चाहिए । यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जब 'धर्म-कर्मबहिर्भूता इत्यमी

---

*ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'एत्थ दुविहमप्पाबहुअं लद्धिट्ठाणसंखाविसयं तिव्व-मंददाविसयं च । तत्थ तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअमुवरि कस्सामो' इतना टीकाका अंश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १८०२-१८०३)

५९. तस्सेवुक्कस्सयं पडिवज्जमाणयस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६० कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६१. परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६२. तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६३. सामाइयच्छेदोवट्ठावणियाणमुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६४. सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६५. तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। ६६. वीयरायस्स अजहण्णमणुक्कस्सयं चरित्तलद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

म्लेच्छका मताः। अन्यथाऽन्यैः समाचारैरार्यावर्तेन ते समाः॥ (आदिपु० पर्व ३१ श्लो० १४३) इस प्रमाणके आधारसे म्लेच्छोंको धर्म-कर्म-परान्मुख माना गया है, तो उनके संयमका ग्रहण कैसे संभव हो सकता है ? इसका समाधान जयधवलाकारने यह किया है कि दिग्विजयके लिए गये हुए चक्रवर्तीके स्कन्धावार (कटक-सेना) के साथ जो म्लेच्छराजादिक आर्यखंडमें आजाते हैं और उनका जो यहाँवालोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध हो जाता है, उनके संयम ग्रहण करनेमें कोई विरोध नहीं है। अथवा दूसरा समाधान यह भी किया गया है कि चक्रवर्ती आदिको विवाही गई म्लेच्छ-कन्याओंके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तानकी मातृपक्षकी अपेक्षा यहाँ 'अकर्मभूमिज' पदसे विवक्षा की गई है, क्योंकि इस प्रकारकी अकर्मभूमिज सन्तानको दीक्षा लेनेकी योग्यताका निषेध नहीं पाया जाता है।

चूर्णिसू०—संयमको प्राप्त होनेवाले अकर्मभूमिजके जघन्य संयमस्थानसे संयमको प्राप्त होनेवाले उसका ही अर्थात् अकर्मभूमिज मनुष्यका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिजका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे परिहारविशुद्धि-संयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि-संयतोंका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-संयतोंका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-संयतोंका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणित है। इससे वीतराग-छद्मस्थ और केवलीका अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र लब्धिस्थान अनन्तगुणित है॥५९-६६॥

विशेषार्थ—यहाँ यह शंका की जा सकती है कि वीतरागके जघन्य और उत्कृष्ट चारित्रलब्धि क्यों नहीं बतलाई गई ? इसका समाधान यह है कि कषायोंके अभाव हो जानेसे उनकी चारित्र लब्धिमें जघन्यपना या उत्कृष्टपना संभव नहीं है। अतएव वीतरागके सर्वदा एक रूपसे अवस्थित ही चारित्रलब्धि पाई जाती है। यदि कहा जाय कि उपशान्तकषायवीतराग-छद्मस्थका पतन अवश्य ही होता है, अतएव पतनकालमें उसके यथाख्यातचारित्रलब्धिका जघन्य अंश क्यों न माना जाय ? और इसी प्रकारसे क्षीणकषाय या केवलीके ऊपर चढ़नेकी अवस्थामें चारित्रलब्धिका उत्कृष्ट अंश क्यों न माना जाय ? तो इसका समाधान यह है कि परिणामोंकी तीव्रता-मन्दताका कारण कषायोंका उदय है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और केवलीके कषायोंका सर्वथा अभाव है, अतएव उनके परिणामोंमें तीव्रता या मन्दताका होना

लद्धी तहा चरित्तस्से त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

संभव नहीं है । परिणामोंकी तीव्रता-मन्दताके विना चारित्रलब्धिका जघन्य या उत्कृष्ट अंश होना संभव नहीं है । इसलिए भले ही एक समय पश्चात् उपशान्तकषायवीतरागसंयत नीचे गिर जाय, परन्तु अपने कालके अन्तिम समय तक उसके परिणामोंकी विशुद्धिमें कोई कमी नहीं आती । अतः पतनावस्थामें उनके यथाख्यातलब्धिका जघन्य अंश नहीं माना जा सकता । यही बात तेरहवें गुणस्थानके अभिमुख क्षीणकषायके या चौदहवें गुणस्थानके अभिमुख सयोगिकेवलीके विषयमें है, अर्थात् उनकी लब्धिको भी उत्कृष्ट अंशरूप नहीं माना जा सकता । अतएव यह सिद्ध हुआ कि कषायके अभावसे सभी वीतरागोंके यथाख्यात-संयमरूप लब्धि एकरूप होती है, उसमें कोई भेद नहीं होता । यही कारण है कि उनकी लब्धिको यहाँपर अजघन्य-अनुत्कृष्ट अर्थात् जघन्यपना और उत्कृष्टपनासे रहित बतलाया गया है ।

इस प्रकार संयमलब्धि नामक तेरहवाँ अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१४ चरित्तमोहोवसामणा-अत्थाहियारो

१. चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं । २. तं जहा ।

(६३) उवसामणा कदिविधा उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स ।
कं कम्मं उवसंतं अणउवसंतं च कं कम्मं ॥ ११६ ॥

(६४) कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो ।
कदिभागं वा बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥ ११७ ॥

(६५) केच्चिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं ।
केवचिरं उवसंतं अणउवसंतं च केवचिरं ॥ ११८ ॥

(६६) कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं च होइ कं करणं ।
कं करणं उवसंतं अणउवसंतं च कं करणं ॥ ११९ ॥

१४ चारित्रमोहोपशामना-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०—चारित्रमोहनीयकी उपशामनामें पहले गाथासूत्र जानने योग्य है । वह इस प्रकार है ॥१-२॥

उपशामना कितने प्रकारकी होती है ? उपशम किस-किस कर्मका होता है ? किस-किस अवस्था-विशेषमें कौन-कौन कर्म उपशान्त रहता है और कौन-कौन कर्म अनुपशान्त रहता है ? ॥११६॥

चारित्रमोहनीयकर्मकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्रोंका किस समय कितना भाग उपशमित करता है, कितना भाग संक्रमण और उदीरणा करता है, तथा कितना भाग बाँधता है ? ॥११७॥

चारित्रमोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंका कितने काल तक उपशमन करता है, संक्रमण और उदीरणा कितने काल तक होती है, तथा कौन कर्म कितने काल तक उपशान्त या अनुपशान्त रहता है ? ॥११८॥

किस अवस्थामें कौन करण व्युच्छिन्न हो जाता है और कौन करण अव्युच्छिन्न रहता है ? तथा किस अवस्था-विशेषमें कौन करण उपशान्त या अनुपशान्त रहता है ? ॥११९॥

(६७) पडिवादो च कदिविधो कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो ।
केसिं कम्मंसाणं पडिवदिदो बंधगो होइ ॥ १२० ॥
(६८) दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसमक्खयादो दु ।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा ॥ १२१ ॥
(६९) उवसामणाखएण दु पडिवदिदो होइ सुहुमरागम्हि ।
बादररागे णियमा भवक्खया होइ परिवदिदो ॥ १२२ ॥
(७०) उवसामणाक्खएण दु अंसे बंधदि जहाणुपुव्वीए ।
एमेव य वेदयदे जहाणुपुव्वीय कम्मंसे ॥ १२३ ॥

३. चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जा उवक्कमपरिभासा । ४.

चारित्रमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाले जीवका प्रतिपात कितने प्रकारका होता है, वह प्रतिपात सर्वप्रथम किस कषायमें होता है ? वह गिरते हुए किन-किन कर्म-प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला होता है ? ॥१२०॥

वह प्रतिपात दो प्रकारका होता है एक भवक्षयसे और दूसरा उपशमकालके क्षयसे । तथा वह प्रतिपात सूक्ष्मसाम्परायनामक दशवें गुणस्थानमें और बादरराग नामक नवें गुणस्थानमें होता है; ऐसा जानना चाहिए ॥२२१॥

उपशमकालके क्षय होनेसे जो प्रतिपात होता है वह सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है । किन्तु भवक्षयसे जो प्रतिपात होता है, वह नियमसे बादरसाम्परायनामक नवें गुणस्थानमें ही होता है ॥१२२॥

उपशमकालके क्षय होनेसे गिरनेवाला जीव यथानुपूर्वीसे कर्म-प्रकृतियोंको बाँधता है । तथा इसी प्रकार यथानुपूर्वीसे कर्म-प्रकृतियोंका वेदन भी करता है (किन्तु भवक्षयसे गिरनेवाले जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही सर्व करण प्रकट हो जाते हैं (८) ॥१२३॥

विशेषार्थ—उपशामना-अधिकारमें उपर्युक्त आठ गाथाएँ निबद्ध हैं । इनमेंसे प्रारम्भकी चार गाथाएँ तो चारित्रमोहनीयकर्मकी उपशमनावस्थाका क्रमशः वर्णन करनेके लिए पृच्छा-सूत्ररूप हैं; जिनका समाधान आगे चूर्णिसूत्रोंके आधारपर विस्तारसे किया जायगा । अन्तिम चार गाथाएँ ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरनेवाले जीवकी अवस्थाका वर्णन करती हैं । उनमेंसे प्रथम गाथासे किये गये प्रश्नोंका शेष तीन गाथाओंमें उत्तर दिया गया है । आठों गाथाओंसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा आगे चूर्णिकार स्वयं ही करेंगे ।

चूर्णिसू०-चारित्रमोहनीयकी उपशामनामें पहले उपक्रम-परिभाषा जानने योग्य है । वह इस प्रकार है—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कके विसंयोजन किये बिना

वेदयसम्माइट्ठी अणंताणुबंधी अविसंजोएदूण कसाए उवसामेदुं णो उवट्ठादि । ५. सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि । ६. तदो अणंताणुबंधी विसंजोएंतस्स जाणि करणाणि ताणि सव्वाणि परूवेयव्वाणि । ७. तं जहा । ८. अधापवत्तकरणमपुव्वकरण-मणियट्टिकरणं च । ९. अधापवत्तकरणे णत्थि ट्ठिदिघादो [अणुभागघादो] वा गुण-सेढी वा । [गुणसंकमो वा] १०. अपुव्वकरणे अत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुण-सेढी च गुणसंकमो वि । ११. अणियट्टिकरणे वि एदाणि चेव, अंतरकरणं णत्थि । १२. एसा ताव जो अणंताणुबंधी विसंजोएदि तस्स समासपरूवणा ।

१३. तदो अणंताणुबंधी विसंजोइदे अंतोमुहुत्तमधापवत्तो जादो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तियादीणि ताव कम्माणि बंधदि । १४. तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोह-णीयमुवसामेदि, तदो (ताधे) ण अंतरं* । १५. तदो दंसणमोहणीयमुवसामेंतस्स जाणि करणाणि पुव्वपरूविदाणि ताणि सव्वाणि इमस्स वि परूवेयव्वाणि† । १६. तहा ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च अत्थि ।

शेष कषायोंके उपशम करनेके लिए प्रवृत्त नहीं हो सकता है । अतः वह प्रथम ही अनन्तानु-बन्धीकषायका विसंयोजना करता है । अतएव अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करने-वाले जीवके जो करण होते हैं, वे सर्व करण प्ररूपण करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं— अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण । अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात [अनुभाग-घात] गुणश्रेणी और [गुणसंक्रमण] नहीं हैं, किन्तु अपूर्वकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण होते हैं । ये ही कार्य अनिवृत्तिकरणमें भी होते हैं, किन्तु यहाँपर अन्तरकरण नहीं होता है । जो अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करता है, उसकी यह संक्षेपसे प्ररूपणा है ॥३-१२॥

तत्पश्चात् अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करनेपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक अधः-प्रवृत्तसंयत होता है, अर्थात्, संक्लेश और विशुद्धिके वशसे प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानों-में सहस्रों परिवर्तन करता है । तभी प्रमत्तसंयतावस्थामें वह असातावेदनीय, अरति, शोक, अयशःकीर्ति तथा आदि पदसे सूचित अस्थिर और अशुभ इन छह प्रकृतियोंको बाँधता है । तत्पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मको उपशमाता है । इस समय उसके अन्तरकरण नहीं होता है । तदनन्तर दर्शनमोहनीयकर्मका उपशमन करनेवाले जीवके जो जो करणरूप कार्य-विशेष पहले प्ररूपण किये गये हैं, वे सर्व कार्य इसके भी प्ररूपण करना चाहिए । दर्शनमोहके उपशमनाके समान ही स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी भी होती है ॥१३-१६॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तदो ण अंतरं' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया गया है । (देखो पृ० १८१२) ।

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पुव्वपरूविदाणि' पद सूत्रमें नहीं है । किन्तु वह होना चाहिए; क्योंकि टीकासे उसकी पुष्टि प्रमाणित है । (देखो पृ० १८१३) ।

१७. अपुव्वकरणस्स जं पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं तं चरिमसमए संखेज्जगुणहीणं । १८. दंसणमोहणीयउवसामणअणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा । १९. तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करेदि ।

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिसत्त्व होता है, वह अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें उससे संख्यातगुणित हीन हो जाता है । (इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिसत्त्व होता है, उससे अन्तिम समयमें वह संख्यातगुणित हीन हो जाता है ।) दर्शनमोहनीयके उपशमन करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है । तत्पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा दर्शनमोहनीयका अन्तर करता है ॥१७-१९॥

विशेषार्थ–दर्शनमोहका अन्तरकरणको करनेवाला जीव सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिको छोड़कर, तथा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उदयावलीको छोड़कर शेष स्थितिका अन्तर करता है । इस अन्तरकालीन स्थितियोंके उत्कीरण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको बन्धका अभाव हो जानेसे द्वितीय स्थितिमें संक्रमण नहीं करता है, किन्तु सर्व द्रव्यको लाकर सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितिमें निक्षिप्त करता है । तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके द्वितीय स्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रका उत्कीरण कर अपनी प्रथमस्थितिमें गुणश्रेणीके रूपसे निक्षिप्त करता है । इसी प्रकार मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भी द्वितीयस्थितिके प्रदेशाग्रको उत्कीरण कर सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितिमें देता है, तथा अनुत्कीर्यमाण स्थितियोंमें भी देता है, किन्तु अपनी अन्तर-स्थितियोंमें नहीं देता है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितिके समान स्थितियोंमें स्थित मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके उदयावलीके बाहिर स्थित प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितियोंमें संक्रमण करता है । इस प्रकारसे यह क्रम अन्तरकरणकी द्विचरम फालीके प्राप्त होने तक रहता है । पुनः अन्तिम फालीके निपतनकालमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सब अन्तरस्थितियोंके प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितिमें संक्रमण करता है । इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिके चरमफालिसम्बन्धी द्रव्यको अन्यत्र संक्रमित नहीं करता है, किन्तु अपनी प्रथमस्थितिमें ही संक्रमित करता है । द्वितीयस्थितिके प्रदेशाग्रको भी प्रथमस्थितिमें ही तब तक निक्षिप्त करता है, जब तक कि प्रथमस्थितिमें आवली और प्रत्यावली शेष रहती हैं । इसके पश्चात् आगाल और प्रत्यागालका कार्य समाप्त हो जाता है । इस समय गुणश्रेणीरूप विन्यास नहीं होता है, किन्तु प्रत्यावलीसे ही उदीरणा होती रहती है । एक समय-अधिक आवलीके शेष रह जानेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है । तत्पश्चात् प्रथमस्थितिके अन्तिम समयमें अनिवृत्तिकरणका काल समाप्त हो जाता है और तदनन्तर समयमें वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है । उस समय प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिके समान अन्तर्मुहूर्तकाल तक क्या मिथ्यात्वका गुणसंक्रमण यहाँ भी

२०. सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए झीणाए जं तं मिच्छत्तस्स पदेसग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण [ण] संकमदि । २१. पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालमिमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि । २२. तेण परं हायदि वा वड्ढदि वा अवट्ठायदि वा । २३. तहा चेव ताव उवसंतदंसणमोहणिज्जो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्ति-आदीसु बंधपरावत्तसहस्साणि कादूण* तदो कसाए उवसामेदुं कच्चे अधापवत्तकरणस्स परिणामं परिणमइ† । २४. जं अणंताणुबंधी विसंजोएंतेण हदं दंसणमोहणीयं च उवसामेंतेण हदं कम्मं तमुवरिहदं ।

२५. इदाणिं कसाए उवसामेंतस्स जमधापवत्तकरणं तम्हि णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च । णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि । २६. तं चेव इमस्स

होता है; अथवा उसमें कोई अन्य विशेषता है, इस शंकाका समाधान चूर्णिकारने वक्ष्यमाण-सूत्रोंसे किया है ।

चूर्णिसू०–सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके क्षीण होनेपर जो मिथ्यात्वका प्रदेशाग्र अवशिष्ट रहता है, वह सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वमें गुणसंक्रमणसे संक्रान्त नहीं करता है, अर्थात् जिस प्रकार प्रथम वार सम्यक्त्वके उत्पादन करनेवाले जीवके गुणसंक्रमण होता है, उस प्रकारसे यहाँपर गुणसंक्रमण नहीं होता है, किन्तु इसके केवल विध्यातसंक्रमण ही होता है । प्रथम वार सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवका जो गुणसंक्रमणसे पूरणकाल है, उससे संख्यातगुणित काल तक यह उपशान्तदर्शनमोहनीय जीव विशुद्धिसे बढ़ता है । इसके पश्चात् वह (संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामोंके योगसे) कभी विशुद्धिसे हीनताको प्राप्त होता है, कभी वृद्धिको प्राप्त होता है और कभी अवस्थित परिणामरूप रहता है । पुनः वही उपशान्तदर्शनमोहनीय जीव असाता, अरति, शोक, और अयशःकीर्त्ति आदि प्रकृतियोंमें सहस्रों बन्ध-परावर्तन करके अर्थात् सहस्रों वार प्रमत्तसंयतसे अप्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयतसे प्रमत्तसंयत हो करके, तत्पश्चात् कषायोंके उपशमानेके लिए अधःप्रवृत्तकरणके परिणामसे परिणत होता है । जो कर्म अनन्तानुबन्धी कषायके विसंयोजन करनेवालेने नष्ट किया; वह 'हत' कहलाता है और जो कर्म दर्शनमोहनीयके उपशमन करनेवालेके द्वारा नष्ट किया जाता है, वह उपरि-हत कर्म कहलाता है ॥२०-२४॥

चूर्णिसू०–इस समय कषायोंके उपशमन करनेवाले जीवके जो अधःप्रवृत्तकरण होता है, उसमें स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी नहीं होती है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे प्रतिसमय बढ़ता रहता है । इस अधःप्रवृत्तकरणका भी वही लक्षण है, जो कि पहले दर्शन-मोहकी उपशमनाके समय प्ररूपण कर आये हैं । तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'कादूण' पदसे आगे 'जहा अणंताणुबंधी विसंजोएदूण सत्थाणे पदिदो असादादिबंधपाओग्गो होदि' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १८१५) ।

† जयधवलाकारने अपनी व्याख्याकी सुविधार्थ इस सूत्रको दो भागोंमें विभक्त किया है, पर वस्तुतः यह एक ही सूत्र है ।

वि अधापवत्तकरणस्स लक्खणं जं पुव्वं परूविदं । २७. तदो अधापवत्तकरणस्स चरिमसमये इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ । २८. तं जहा । २९. कसायउवसामणपट्ठवगस्स० (१) । ३०. काणि वा पुव्वबद्धाणि० (२) । ३१. के अंसे झीयदे० (३) । ३२. किं ट्ठिदियाणि० (४) । ३३. एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो अपुव्वकरणस्स पढमसमए [इमाणि आवासयाणि] परूवेदव्वाणि ।

३४. जो खीणदंसणमोहणिज्जो कसाय-उवसामगो तस्स खीणदंसणमोहणिज्जस्स कसाय-उवसामणाए अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ३५. ट्ठिदिबंधेण जमोसरदि सो वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ३६. असुभाणं कम्माणमणंता भागा अणुभागखंडयं । ३७. ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए, ट्ठिदिबंधो वि अंतोकोडाकोडीए । ३८. गुणसेढी च अंतोमुहुत्तमेत्ता*

ये चार सूत्रगाथाएँ प्ररूपण करना चाहिए । वे इस प्रकार हैं—"कषायोंका उपशम करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है ? किस योग, कषाय और उपयोगमें वर्तमान, किस लेश्यासे युक्त और कौनसे वेदवाला जीव कषायोंका उपशम करता है ? (१) । कषायोंके उपशमन करनेवाले जीवके पूर्व-बद्ध कर्म कौन-कौनसे हैं और अब कौन-कौनसे नवीन कर्मांशोंको बाँधता है । कषायोंके उपशामकके कौन-कौन प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं और कौन-कौन प्रकृतियोंकी वह उदीरणा करता है ? (२) । कषायोंके उपशमनकालसे पूर्व बन्ध अथवा उदयकी अपेक्षा कौन-कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं ? अन्तरको कहाँपर करता है और कहाँपर तथा किन कर्मोंका यह उपशम करता है ? (३) । कषायोंका उपशमन करनेवाला जीव किस-किस स्थिति-अनुभागविशिष्ट कौन-कौनसे कर्मोंका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है और अवशिष्ट कर्म किस स्थिति और अनुभागको प्राप्त होते हैं ?" (४) । इन चारों सूत्रगाथाओंकी पूर्वके समान ही यहाँपर सम्भव विशेषताओंके साथ विभाषा करके तत्पश्चात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ये वक्ष्यमाण स्थितिकांडक आदि आवश्यक कार्य होते हैं । उनमेंसे पहले स्थितिकांडकका प्रमाण बतलाते हैं ॥२५-३३॥

चूर्णिसू०—जो क्षीणदर्शनमोहनीय पुरुष कषायोंका उपशामक होता है, उस क्षीणदर्शनमोहनीय पुरुषके कषाय-उपशामनाके अपूर्वकरणकालमें प्रथम स्थितिकांडकका प्रमाण नियमसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग होता है । स्थितिबन्धके द्वारा जो अपसरण करता है, वह भी पल्योपमका संख्यातवाँ भाग होता है । अनुभागकांडकका प्रमाण अशुभ कर्मोंके अनन्त बहुभाग-प्रमाण है । उस समय स्थितिसत्त्व अन्तःकोडाकोडी सागरोपम है और स्थितिबन्ध भी अन्तःकोडाकोडी सागरोपम है, तथा गुणश्रेणी अन्तर्मुहूर्तमात्र निक्षिप्त करता है । तत्पश्चात् अनु-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'मेत्तणिक्खित्ता' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८२०)

णिक्खित्ता । ३९. तदो अणुभागखंडयपुधत्ते गदे अण्णमणुभागखंडयं पढमं ट्ठिदि-खंडयं जो च अपुव्वकरणस्स पढमो ट्ठिदिबंधो एदाणि समगं णिट्ठिदाणि । ४०. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो । ४१. तदो अंतोमुहुत्ते गदे पर भवियणामा-गोदाणं बंधवोच्छेदो* ।

४२. अपुव्वकरणपविट्ठस्स जम्हि णिद्दा-पयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो । ४३. परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो संखेजगुणो । ४४. अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया । ४५. तदो अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमए ठिदिखंडयमणुभागखंडयं ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदाणि । ४६. एदम्हि चेव समए हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं बंधवोच्छेदो । ४७. हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछाणमेदेसिं छण्हं कम्माणमुदयवोच्छेदो च । ४८. तदो से काले पढमसमय-अणियट्टी जादो† । ४९. पढमसमय-अणियट्टिकरणस्स ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ५०. अपुव्वो ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । ५१. अणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा । ५२. गुणसेढी असंखेज्जगुणाए सेढीए

भागकांडक-पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर दूसरा अनुभागकांडक प्रथम स्थितिकांडक और अपूर्वकरणका प्रथम स्थितिबन्ध ये सब आवश्यक कार्य एक साथ ही निष्पन्न होते हैं । तत्पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर निद्रा और प्रचलाप्रकृतिका बन्ध-विच्छेद होता है । तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर पर-भवसम्बन्धी नामकर्म संज्ञावाली प्रकृतियोंका बन्ध-विच्छेद होता है ॥३४-४१॥

चूर्णिसू०—अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रविष्ट संयत पुरुषके जिस भागमें निद्रा और प्रचलाप्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है, वह काल सबसे कम है । इससे परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धसे व्युच्छिन्न होनेका काल संख्यातगुणा है । इससे अपूर्वकरणका काल विशेष अधिक है । तत्पश्चात् अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबन्ध, ये सब एक साथ निष्पन्न होते हैं । इसी समयमें ही हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियोंका बन्ध-विच्छेद होता है और वहाँ ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह कर्मोंका उदयसे विच्छेद होता है । इसके अनन्तर समयमें वह प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणसंयत हो जाता है । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकांडक पल्योपमका संख्यातवाँ भागप्रमाण होता है । अपूर्व अर्थात् नवीन स्थितिबन्ध पल्यो-

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके अनन्तर 'एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो' यह एक और भी सूत्र मुद्रित है (देखो पृ० १८२१) । पर वस्तुतः यह इसी सूत्रकी टीकाका उपसंहारात्मक वाक्य है । क्योंकि, इससे भी आगे इसी सूत्राङ्ककी टीका पाई जाती है ।

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके अनन्तर 'एवमणियट्टिकरणं पविट्ठस्स' यह एक और भी सूत्र मुद्रित है (देखो पृ० १८२२) । पर वस्तुतः यह सूत्र नहीं है, अपितु आगेके सूत्रकी उत्थानिकाका प्रारम्भिक अंग है, यह बात प्रकृत स्थलकी टीकासे ही सिद्ध है । (देखो पृ० १८२२ की अन्तिम पंक्ति और पृ० १८२३ की प्रथम पंक्ति)

सेसे सेसे णिक्खेवो । ५३. तिस्से चेव अणियट्टि-अद्धाए पढमसमए अप्पसत्थ-उवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं[1] च वोच्छिण्णाणि ।

५४. आउगवज्जाणं कम्माणं ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए। ५५. ठिदिबंधो अंतोकोडीए* सदसहस्सपुधत्तं । ५६. तदो ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु ठिदिबंधो सहस्सपुधत्तं । ५७. तदो अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण समगो ठिदिबंधो । ५८. तदो ठिदिबंधपुधत्ते गदे चदुरिंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो ।

पमके संख्यातवें भागसे हीन होता है । अनुभागकांडक अनुभागसत्त्वके अनन्त बहुभागप्रमाण है । गुणश्रेणी असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे होती है और शेष शेष द्रव्यमें निक्षेप होता है । अर्थात् जिस प्रकारसे अपूर्वकरणमें प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा उदयावलीके बाहिर गलित-शेषायामके रूपसे गुणश्रेणीकी रचना होती है, उसी प्रकार यहाँपर भी गुणश्रेणीकी रचना होती है । उसी अनिवृत्तिकरणकालके प्रथम समयमें अप्रशस्तोपशमनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण ये तीनों ही करण एक साथ व्युच्छिन्न हो जाते हैं ॥४२-५३॥

विशेषार्थ—जो कर्म उत्कर्षण, अपकर्षण और पर-प्रकृति-संक्रमणके योग्य होकरके भी उदयस्थितिमें अपकर्षित करनेके लिए शक्य न हो, अर्थात् जिसकी उदीरणा न की जा सके उसे अप्रशस्तोपशामनाकरण कहते हैं । जिस कर्मका उत्कर्षण और अपकर्षण तो किया जा सके, किन्तु उदीरणा अर्थात् उदयस्थितिमें अपकर्षण और पर प्रकृतिमें संक्रमण न किया जा सके, उसे निधत्तीकरण कहते हैं । जिस कर्मका उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा और पर-प्रकृति-संक्रमण ये चारों ही कार्य न किये जा सकें, किन्तु जिस रूपसे उसे बाँधा था, उसी रूपसे वह सत्तामें तदवस्थ रहे, उसे निकाचनाकरण कहते हैं । ये तीनों करण अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक होते रहते हैं, किन्तु अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें ये तीनों बन्द हो जाते हैं ।

चूर्णिसू०—उस अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण और स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ी अर्थात् सागरोपमलक्षपृथक्त्व-प्रमाण होता है । तत्पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर स्थितिबन्ध सागरोपम सहस्रपृथक्त्व रह जाता है । तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर असंज्ञी जीवोंकी स्थितिके बन्धके समान सहस्र सागरोपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीत जानेपर चतुरिन्द्रिय जीवके स्थितिबन्धके

१ तत्थ जं कम्ममोकड्डुक्कड्डुण-परपयडिसंकमाणं पाओग्गं होदूण पुणो णो सक्कमुदयट्ठिदिमोकड्डिदुं; उदीरणाविरुद्धसहावेण परिणदत्तादो । तं तहाविहपइण्णाए पडिग्गहियमप्पसत्थ-उवसामणाए उवसंतमिदि भण्णदे । तस्स सो पज्जायो अप्पसत्थ-उवसामणाकरणं णाम । एवं जं कम्ममोकड्डुक्कड्डणासु अविरुद्धसंचरणं होदूण पुणो उदय-परपयडि-संकमाणमणागमणपइण्णाए पडिग्गाहियं तस्स सो अवत्थाविसेसो णिधत्तीकरणं णाम । जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अंतो कोडाकोडीए' पाठ मुद्रित है (देखो पृ० १८२४) । पर वह अशुद्ध है । (देखो धवला भा० ६ पृ० २९९) ।

५९. एवं तीइंदिय-बीइंदियट्ठिदिबंधसमगो ठिदिबंधो। ६०. एइंदियठिदिबंधसमगो ठिदिबंधो। ६१. तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण णामा-गोदाणं पलिदोवम-ट्ठिदिगो ट्ठिदिबंधो। ६२. णाणावरणीय-दंसणवरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं च दिवड्ढपलिदोवममेत्त-ट्ठिदिगो बंधो। ६३. मोहणीयस्स बेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। ६४. एदम्हि काले अदिच्छिदे* सव्वम्हि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ठिदिबंधेण ओसरदि। ६५. णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगादो बंधादो अण्णं जं ट्ठिदिबंधं बंधहिदि सो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो। ६६. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो‡।

६७. तदोप्पहुडि णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधे पुण्णे संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो होइ। सेसाणं कम्माणं जाव पलिदोवमट्ठिदिगं बंधं ण पावदि ताव पुण्णे ट्ठिदिबंधे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो ट्ठिदिबंधो। ६८. एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णाणा-

सदृश सौ सागरोपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीतनेपर त्रीन्द्रिय-जीवके स्थितिबन्धके सदृश पचास सागरोपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्ध-पृथक्त्वके बीतनेपर द्वीन्द्रियजीवके स्थितिबन्धके सदृश पच्चीस सागरप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीतनेपर एकेन्द्रियजीवके स्थितिबन्धके सदृश एक सागरोपम-प्रमाण स्थितिबन्ध होता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर नाम और गोत्रकर्मका पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है। उस समय ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तरायका डेढ़ पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है और मोहनीयकर्मका दो पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध होता है। इस कालमें और इससे पूर्व अतिक्रान्त सर्व कालमें पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्धसे अपसरण करता है, अर्थात् यहाँ तक सर्व कर्मोंके स्थितबन्धापसरणका प्रमाण पल्योपमका संख्यातवाँ भाग है। पल्योपमकी स्थितिवाले बन्धसे जो नाम और गोत्र कर्मके अन्य बन्धको बाँधेगा, वह स्थितिबन्ध संख्यातगुणित हीन है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन है ॥५४-६६॥

विशेषार्थ—इस स्थल पर सर्व कर्मोंके स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिए—नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम है। इससे ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

चूर्णिसू०—यहाँसे लेकर नाम और गोत्रके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संख्यातगुणा हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है। शेष कर्मोंका जब तक पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध नहीं प्राप्त होता है, तब तक एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है, वह पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिबन्धोंके बीतनेपर ज्ञानावरणीय, दर्शना-

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अहिच्छिदे' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १८२५)

‡ ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इसके अनन्तर [ठिदिबंधो] इतना पाठ और भी मुद्रित है। (देखो पृ० १८२५)

वरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं* पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो । ६९. मोहणीयस्स तिभागुत्तरं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो । ७०. तदो जो अण्णो णाणावरणादिचदुण्हं पि ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो । ७१. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो ।

७२. तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण गदेण मोहणीयस्स वि ट्ठिदिबंधो पलिदोवमं । ७३. तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ७४. तस्स अप्पाबहुअं । ७५. तं जहा । ७६. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । ७७. मोहणीयवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो । ७८. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । ७९. एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंध सहस्साणि बहूणि गदाणि । ८०. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो । ८१. इदरेसिं चउण्हं पि तुल्लो असंखेज्जगुणो । ८२. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो† । ८३. एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि ।

वरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इन कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण है । तथा मोहनीयकर्मका त्रिभाग-अधिक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध है । तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह पूर्व स्थितिबन्धसे संख्यातगुणित हीन है और मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है ॥६७-७१॥

विशेषार्थ–इस स्थलपर कर्मोंके स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व इस प्रकार है–नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम है । इससे चार कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । इससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है ।

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीतनेसे मोहनीयकर्मका भी स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण हो जाता है । तदनन्तर जो अन्य स्थितिबन्ध है, वह आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है । इस स्थलमें सम्भव स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम है । इससे मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा है । इससे मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्व-विधिसे बहुतसे स्थितिबन्ध-सहस्र व्यतीत होते हैं । (जबतक कि नाम और गोत्र कर्मका अपश्चिम और दूरापकृष्टि संज्ञावाला, पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है, तबतक यही उपर्युक्त अल्पबहुत्वका क्रम चला जाता है ।) तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्व प्रारम्भ होता है । वह इस प्रकार है–नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम है । इनसे इतर चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा है । इससे मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्वकी विधिसे अनेक सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं ॥७२-८३॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'वेदणीय' के आगे 'मोहणीय' पद भी मुद्रित है । वह नहीं होना चाहिए; क्योंकि, आगे सूत्राङ्क ६९ में उसके स्थितिबन्धका स्पष्ट निर्देश किया गया है ।

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें '[अ-] संखेज्जगुणो' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८९८)

८४. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो । ८५. इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ८६. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ८७. एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि । ८८. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो । ८९. मोहणीयस्स ट्ठिधिबंधो असंखेज्जगुणो । ९०. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ९१.एकसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो णाणावरणादि-ट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जादो असंखेज्जगुणहीणो च । णत्थि अण्णो वियप्पो । ९२. जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो उवरि आसी, ताव असंखेज्जगुणो आसी, असंखेज्जगुणादो* असंखेज्जगुणहीणो जादो । ९३. तदो जो एसो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो । ९४. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ९५. इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

९६. एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि जाधे बहूणि गदाणि । ९७. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एकसराहेण मोहणीयस्स थोवो । ९८. णामा-गोदाणमसं-

तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका दूरापकृष्टिनामक स्थितिबन्ध प्राप्त होनेपर तदनन्तर उसके असंख्यात बहुभाग स्थितिबन्धरूपसे अपसरण करनेवाले जीवके उस समयमें संभव अल्पबहुत्वको कहते हैं–

चूर्णिसू०–तदनन्तर अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध होता है । नाम और गोत्रकर्मका सबसे कम स्थितिबन्ध होता है । इससे चारों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इस क्रमसे बहुतसे स्थितिबन्ध-सहस्र व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध होता है । यथा–नाम और गोत्र-कर्मका सबसे कम स्थितिबन्ध होता है । इससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुण होता है । इससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । तत्पश्चात् एक शराघातसे अर्थात् एक साथ मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि कर्मोंके स्थितिबन्धसे नीचे आजाता है और वह ज्ञानावरणादि कर्म चतुष्कके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणित हीन होता है, इसमें कोई अन्य विकल्प संभव नहीं है । जब तक मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादिके स्थितिबन्धसे ऊपर था, तब तक वह असंख्यातगुणा था । इसलिए यहाँपर वह असंख्यातगुणित वृद्धिसे असंख्यातगुणित हीन हो गया है । तब यहाँ जो स्थितिबन्ध होता है, वह इस प्रकार है–नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम है । इससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे इतर शेष चारों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा है ॥८४-९५॥

चूर्णिसू०–इस अल्पबहुत्वके क्रमसे जिस समय अनेकों स्थितिबन्ध-सहस्र व्यतीत होते हैं उसके पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है । वह इस प्रकार है–मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध एक शराघातसे अर्थात् एकदम सबसे कम हो जाता है । इससे

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जादो' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १८२९)

खेज्जगुणो । ९९. इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं तुल्लो असंखेज्जगुणो । १००. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि । १०१. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो । १०२. एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । १०३. णामा-गोदाणं पि कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । १०४. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । १०५. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १०६. तिण्हं पि कम्माणं णत्थि* वियप्पो संखेज्जगुणहीणो वा विसेसहीणो वा, एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो १०७. एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंध-सहस्साणि बहूणि गदाणि ।

१०८. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो । १०९. एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । ११०. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । १११. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ११२. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ११३. एत्थ वि णत्थि वियप्पो, तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जायमाणो एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो

नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे इतर ज्ञानावरणादि चारों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है। इसी क्रमसे बहुतसे संख्यात-सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं। तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। वह इस प्रकार है—एक शराघातसे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम हो जाता है। इससे नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है। इससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है। इससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। वेदनीय कर्मके स्थितिबन्धसे अपसरण करनेवाले ज्ञानावरणादि तीनों ही कर्मोंके स्थितिबन्धके संख्यातगुणा हीन या विशेष-हीन रूप कोई अन्य विकल्प नहीं है, किन्तु एक शराघातसे ही असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। इस अल्पबहुत्वके क्रमसे अनेक संख्यात-सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं ॥९६-१०७॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध होता है, अर्थात् एक साथ ही मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध और भी कम हो जाता है। इससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय, इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है। इससे नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। यहाँ पर भी अन्य कोई विकल्प नहीं है। जब ज्ञानावरणादि तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध नाम-गोत्रकर्मोंके स्थितिबन्धसे नीचे होता

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें णत्थि [अण्णो-] ऐसा पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १८३१)

जादो वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो ताधे चेव णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ जादो। ११४. एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण जाणि पुण कम्माणि बज्झंति ताणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ११५. तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च। ११६. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होइ।

११७. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। ११८. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। ११९. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयं बंधेण देसघादिं करेदि। १२०. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। १२१. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयं बंधेण देसघादिं करेदि। १२२. एदेसिं कम्माणमक्खवगो अणुवसामगो सव्वो सव्वघादिं बंधदि। १२३. एदेसु कम्मेसु देसघादीसु जादेसु वि ट्ठिदिबंधो मोहणीये थोवो। १२४. णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइएसु ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। १२५. णामा-गोदेसु ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। १२६. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

हुआ एक साथ असंख्यातगुणित हीन हो जाता है, तभी नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध विशेष हीन हो जाता है। इस अल्पबहुत्वके क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंको करके पुनः जो कर्म बँधते हैं, वे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। तत्पश्चात् असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय कर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो जाता है ॥१०८-११६॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके बीतने पर अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तरायकर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाती करता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके बीतने पर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय कर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाती करता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके बीतने पर चक्षुदर्शनावरणीय कर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाती करता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय कर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाती करता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके बीतने पर वीर्यान्तराय कर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाती करता है। सर्व अक्षपक और अनुपशामक इन कर्मोंके सर्वघाती अनुभागको बाँधते हैं। इन कर्मोंके देशघाती हो जानेपर भी मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है ॥११७-१२६॥

१२७. तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं करेदि । १२८. बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणं च । णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं । १२९. जं संजलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि, एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तिगाओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि । १३०. पढमट्ठिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ अंतरट्ठं । १३१. सेसाणमेक्कारसण्हं कसायाण-मट्ठण्हं च णोकसायवेदणीयाणमुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि । १३२. उवरि समट्ठिदि-अंतरं, हेट्ठा विसमट्ठिदि-अंतरं ।

१३३. जाधे अंतरमुक्कीरदि ताधे अण्णो ट्ठिदिबंधो* पबद्धो, अण्णं ट्ठिदिखंडय-मण्णमणुभागखंडयं च गेण्हदि । १३४. अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभाग-खंडयं, तं चेव ट्ठिदिखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो, अंतरस्स उक्कीरणद्धा च समगं पुण्णाणि ।

चूर्णिसू०–पुनः सर्वघाती प्रकृतियोंको देशघाती करनेके पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होने पर अन्तरकरण करता है । यह अन्तरकरण अप्रत्याख्यानादि बारह कषायोंका और नवों नोकषायवेदनीयोंका होता है । अन्य किसी भी कर्मका अन्तर-करण नहीं होता है । अन्तरकरण करनेके लिए उद्यत उपशामक जिस संज्वलनकषायका वेदन करता है और जिस वेदका वेदन करता है उन दोनों ही कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थितियोंको स्थापित करके अन्तरकरण करता है । प्रथम स्थितिसे संख्यातगुणी स्थितियाँ अन्तरकरण करनेके लिए गुणश्रेणी शीर्षकके साथ ग्रहण की जाती हैं । शेष अनुदय-प्राप्त ग्यारह कषायोंको और आठ नोकषाय-वेदनीयोंकी उदयावलीको छोड़कर अन्तर करता है । ऊपर समस्थिति अन्तर है और नीचे विषमस्थिति अन्तर है ॥१२७-१३२॥

विशेषार्थ–उदय या अनुदयको प्राप्त सभी कषाय और नोकषायवेदनीय कर्म-प्रकृतियोंकी अन्तरसे ऊपरकी स्थिति तो समान ही होती है, क्योंकि द्वितीयस्थितिके प्रथम निषेकका सर्वत्र सदृशरूपसे अवस्थान देखा जाता है, इसलिए 'ऊपर समस्थिति अन्तर है,' ऐसा कहा गया है । किन्तु अन्तरसे नीचेकी स्थिति विषम होती है, इसका कारण यह है कि अनुदयवती सभी प्रकृतियोंके सदृश होनेपर भी उदयको प्राप्त किसी एक संज्वलन कषाय और किसी एक वेदकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थितिसे परे अन्तर की प्रथमस्थितिका ही अवस्थान देखा जाता है । इसलिए प्रथमस्थितिकी विसदृशताके आश्रयसे 'नीचे विषम-स्थिति अन्तर है' ऐसा कहा गया है ।

चूर्णिसू०–जब अन्तर उत्कीर्ण करता है, अर्थात् जिस समय अन्तरकरण आरम्भ करता है, उसी समयमें ही अन्य स्थितिबन्ध बाँधता है, तथा अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडकको ग्रहण करता है । इस प्रकार सहस्रों अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर अन्य अनुभागकांडक, तथा वही स्थितिकांडक, वही स्थितिबन्ध और अन्तरका उत्कीरणकाल,

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ट्ठिदिबंधपबंधो' ऐसा पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १८३५)

१३५. अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति, वेदिज्जंति, तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीओ उक्कीरेंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि, विदियट्ठिदीए च देदि। १३६. जे कम्मंसा ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति, तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि; बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। १३७. जे कम्मंसा ण बज्झंति, वेदिज्जंति च; तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए च देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदीसु देदि। १३८. जे कम्मंसा ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति, तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। १३९. एदेण कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं।

१४०. ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो, णवुंसयवेदस्स पढमसमय-उवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदयो, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो एदाणि सत्तविधाणि करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति।

ये सब एक साथ पूर्णताको प्राप्त होते हैं। अन्तरको करनेवाले जीवके जो कर्मांश बँधते हैं और जो वेदन किये जाते हैं, उन कर्मोंकी अन्तर-सम्बन्धी स्थितियोंको उत्कीरण करता हुआ उन स्थितियोंके प्रदेशाग्रको बँधनेवाली प्रकृतियोंकी प्रथमस्थितिमें भी देता है और द्वितीय स्थितिमें भी देता है। जो कर्मांश न बँधते हैं और न उदयको ही प्राप्त होते हैं, उनके उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको स्वस्थानमें नहीं देता है, किन्तु बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीरण की जानेवाली स्थितियोंमें देता है। जो कर्मांश बँधते नहीं हैं, किन्तु वेदन किये जाते हैं उनके उत्कीरण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको अपनी प्रथम स्थितिमें देता है और बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीरण न की जानेवाली स्थितियोंमें देता है। जो कर्मांश बँधते हैं, किन्तु वेदन नहीं किये जाते हैं उनके उत्कीरण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको बध्यमान प्रकृतियोंकी नहीं उत्कीरण की जानेवाली स्थितियोंमें देता है। इस क्रमसे उत्कीरण किया जानेवाला अन्तर उत्कीर्ण किया गया, अर्थात् चरम फालीके निरवशेषरूपसे उत्कीर्ण किये जानेपर अन्तर-करणका कार्य सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार अन्तरकी स्थितियोंका सर्व द्रव्य प्रथम और द्वितीय स्थितिमें संक्रमित कर दिया गया ॥१३३-१३९॥

चूर्णिसू०—उसी समय अर्थात् अन्तरकरणके समकाल ही मोहनीयका आनुपूर्वी-संक्रमण (१) लोभका संक्रमण (२) मोहनीयका एकस्थानीय बन्ध (३) नपुंसकवेदका प्रथम समय-उपशामक (४) छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा (५) मोहनीयका एकस्थानीय उदय (६) और मोहनीयका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध (७) ये सात प्रकारके करण अन्तर कर चुकनेके पश्चात् प्रथम समयमें प्रारम्भ होते हैं ॥१४०॥

विशेषार्थ—अन्तरकरणके अनन्तर प्रथम समयमें ये सात करण अर्थात् कार्यविशेष एक साथ प्रारम्भ होते हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मोहनीयकर्मके एक निश्चित

१४१. छसु आवलियासु गदासु उदीरणा णाम किं भणिदं होइ ? १४२. विहासा । १४३. जहा णाम समयपबद्धो बद्धो आवलियादिक्कंतो सक्को उदीरेदुमेवमंतरादो

क्रमके अनुसार द्रव्यके संक्रमण करनेको आनुपूर्वी-संक्रम कहते हैं । पुरुषवेदके उदयसे चढ़ा हुआ जीव स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके प्रदेशाग्रको नियमसे पुरुषवेदमें संक्रान्त करता है । इसी प्रकार क्रोधकषायके उदयसे चढ़ा हुआ जीव पुरुषवेद, छह नोकषाय, प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके प्रदेशाग्रको क्रोधसंज्वलनके ऊपर संक्रान्त करता है और कहीं नहीं । पुनः क्रोधसंज्वलन और दोनों मध्यम मानकषायके प्रदेशाग्रको नियमसे मानसंज्वलनमें संक्रान्त करता है, अन्यत्र कहीं नहीं । मानसंज्वलनको और द्विविध मध्यम मायाके प्रदेशाग्र-को नियमसे मायासंज्वलनमें निक्षिप्त करता है । मायासंज्वलन और द्विविध मध्यम लोभके प्रदे-शाग्रको नियमसे लोभसंज्वलनमें संक्रान्त करता है । इस प्रकारके क्रमसे होनेवाले संक्रमणको आनुपूर्वी-संक्रमण कहते हैं । इस स्थलके पूर्व अनानुपूर्वीसे प्रवर्तमान चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोंका संक्रमण इस समय इस उपर्युक्त प्रतिनियत आनुपूर्वीसे प्रवृत्त होता है, ऐसा यहाँ अभिप्राय जानना चाहिए (१) । 'लोभका असंक्रम' यह दूसरा करण है । सूत्रमें 'लोभ' ऐसा सामान्य निर्देश होनेपर भी यहाँ लोभसे संज्वलनलोभका ही ग्रहण करना चाहिए । लोभके असंक्रमणका अर्थ यह है कि इससे पूर्व अनानुपूर्वीसे लोभसंज्वलनका शेष संज्वलनकषायोंमें और पुरुषवेदमें प्रवर्तमान संक्रमण इस समय बन्द हो जाता है (२) । 'मोहनीयका एकस्थानीय बन्ध' यह तीसरा करण है, इसका अर्थ यह है कि इससे पूर्व मोहनीयकर्मका अनुभाग देशघाती द्विस्थानीयरूपसे बँधता था, वह इस समय परिणामोंकी विशुद्धिके योगसे हट कर एकस्थानीय हो जाता है (३)। 'नपुंसकवेदका प्रथम समय-उप-शामक' यह चतुर्थ करण है । इसका अभिप्राय यह है कि तीनों वेदोंमेंसे नपुंसकवेदकी ही सर्वप्रथम इस स्थलपर आयुक्तकरणके द्वारा उपशामन-क्रियामें प्रवृत्ति होती है (४) । 'छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा' यह पंचम करण है । इसका अर्थ आगे चूर्णिकार स्वयं ही करेंगे (५) । 'मोहनीयका एकस्थानीय उदय' यह षष्ठ करण है । इसका अर्थ यह है कि इससे पूर्व लता और दारुरूप द्विस्थानीय देशघातिस्वरूपसे प्रवर्तमान अनुभागका उदय अन्तरकरणके अनन्तर ही एकस्थानीय लतारूपसे परिणत हो जाता है (६) । 'मोहनीयका संख्यातवर्षीय स्थितिबन्ध' यह सप्तम करण है । इसका अर्थ यह है कि इससे पूर्व मोहनीय-कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षोंका होता था । वह कषायोंकी मन्दता या परिणामोंकी विशुद्धिताके प्रभावसे एकदम घटकर संख्यात वर्षप्रमाण रह जाता है । किन्तु शेष कर्मोंका-स्थितिबन्ध इस समय भी असंख्यात वर्षोंका ही होता है (७) ।

शंका—छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा होती है, इसका क्या अभि-प्राय है ? ॥१४१॥

समाधान—छह आवलीकालके व्यतीत होनेपर उदीरणा होती है, इसका अभि-प्राय यह है कि जिस प्रकार इससे पूर्व अधस्तन सर्वत्र संसारावस्थामें बँधा हुआ समयप्रबद्ध

पढमसमयकदादो पाए जाणि कम्माणि बज्झंति मोहणीयं वा मोहणीयवज्जाणि वा, ताणि कम्माणि छसु आवलियासु गदासु सक्काणि उदीरेदुं; ऊणिगासु छसु आवलियासु ण सक्काणि उदीरेदुं । १४४. एसा छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति सण्णा ।

१४५. केण कारणेण छसु आवलियासु गदासु उदीरणा भवदि ? १४६. णिदरिसणं* । १४७. जहा णाम बारस किट्टीओ भवे पुरिसवेदं च बंधइ, तस्स जं पदेसग्गं पुरिसवेदे बद्धं ताव आवलियं अच्छदि[1] । १४८. आवलियादिक्कंतं कोहस्स पढमकिट्टीए विदियकिट्टीए च संकामिज्जदि[2] । १४९. विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं तं कोहस्स तदियकिट्टीए च माणस्स पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदि[3] । १५०. माणस्स विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं माणस्स च तदियकिट्टीए मायाए

आवलीप्रमाण कालके अतिक्रान्त होनेपर ही उदीरणा करनेके लिए शक्य है, उस प्रकार अन्तर करनेके प्रथम समयसे लेकर इस स्थल तक मोहनीय या मोहनीयके अतिरिक्त जो कर्म बँधते हैं, वे कर्म छह आवलीप्रमाण कालके व्यतीत होनेपर ही उदीरणा करनेके लिए शक्य हैं; छह आवलियोंमें कुछ न्यूनता होनेपर उदीरणाके लिए शक्य नहीं हैं । यह 'छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा होती है' ऐसा कहनेका अभिप्राय है ।।१४२-१४४।।

शंका–किस कारणसे छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर ही उदीरणा होती है ? इसके पूर्व उदीरणा होना क्यों सम्भव नहीं है ? ।।१४५।।

समाधान–इस शंकाका समाधानात्मक निदर्शन इस प्रकार है–जिस बारह कृष्टिवाले भवमें जो पुरुषवेदको बाँधता है, उसके जो प्रदेशाग्र पुरुषवेदमें बद्ध हुआ है, वह एक आवलीकाल तक अचलरूपसे रहता है । अर्थात् यह एक आवली स्वस्थानमें ही उदीरणावस्थासे परान्मुख प्राप्त होती है । उक्त बन्धावलीकालके अतिक्रान्त होनेपर पुरुषवेदके बद्ध प्रदेशाग्रको संज्वलनक्रोधकी प्रथम कृष्टि और द्वितीय कृष्टिमें संक्रान्त करता है, अतएव वहाँपर वह कर्म-प्रदेशाग्र संक्रमणावलीमात्र काल तक अविचलितरूपसे अवस्थित रहता है, इसलिए यह दूसरी आवली उदीरणा-पर्यायसे विमुख उपलब्ध होती है । वह पुरुषवेदका संक्रान्त प्रदेशाग्र संज्वलनक्रोधकी प्रथम या द्वितीय कृष्टिमें एक आवली तक रहकर तत्पश्चात् द्वितीय कृष्टिसे क्रोधकी तृतीय कृष्टिमें और संज्वलनमानकी प्रथम और द्वितीय कृष्टिमें संक्रान्त किया जाता है, अतः यह संक्रमणरूप तीसरी आवली भी उदीरणाके अयोग्य है । पुरुषवेदका वह संक्रान्त प्रदेशाग्र एक आवली तक वहाँ रहकर पुनः मानकी द्वितीय कृष्टिसे मानकी तृतीय कृष्टिमें, तथा संज्वलन मायाकी प्रथम और द्वितीय कृष्टिमें संक्रान्त

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति' इतना टीकांश भी सूत्ररूप से मुद्रित है । (देखो पृ० १८४०–४१)

१ एसा ताव एक्का आवलिया उदीरणावत्थापरमुही समुवलब्भदे । जयध०

२ तम्हा एसा विदिया आवलिया उदीरणपज्जायविमुही समुवलब्भदि । जयध०

३ एसो तदियावलियविसयो दट्ठव्वो । जयध०

पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदे[1]। १५१. मायाए विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं मायाए तदियकिट्टीए लोभस्स च पढम-विदियकिट्टीसु संकामिज्जदि। १५२. लोभस्स विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं लोभस्स तदियकिट्टीए संकामिज्जदि। १५३. एदेण कारणेण समयपबद्धो छसु आवलियासु गदासु उदीरिज्जदे।

१५४. जहा एवं पुरिसवेदस्स समयपबद्धादो छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति कारणं णिदरिसिदं, तहा एवं सेसाणं कम्माणं जदि वि एसो विधी णत्थि, तहा वि अंतरादो पढमसमयकदादो पाए जे कम्मंसा बज्झंति तेसिं कम्माणं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा। १५५. एदं णिदरिसणमेत्तं तं पमाणं कादुं णिच्छयदो गेण्हियव्वं*।

१५६. अंतरादो पढमसमयकदादो पाए णवुंसयवेदस्स आउत्तकरण[2]-उवसामगो

किया जाता जाता है। वह कर्म-प्रदेशाग्र यहाँ पर भी इस संक्रमणावलीमात्र कालतक उदीरणाके अयोग्य है। अतः इस चौथी आवलीके भीतर भी उसकी उदीरणा नहीं हो सकती है। वही पूर्वोक्त पुरुषवेदका संक्रान्त कर्म-प्रदेशाग्र उक्त कृष्टियोंमें एक आवली तक रहकर पुनः मायाकी द्वितीय कृष्टिसे मायाकी तृतीय कृष्टिमें और संज्वलन लोभकी प्रथम वा द्वितीय कृष्टिमें संक्रान्त किया जाता है। उसकी यहाँ पर भी एक आवली कालतक उदीरणा नहीं हो सकती है। यह पाँचवी आवली उदीरणाके अयोग्य है। पुरुषवेदका वही संक्रान्त हुआ कर्म-प्रदेशाग्र उक्त कृष्टियोंमें एक आवली तक रहकर पुनः लोभकी द्वितीय कृष्टिसे लोभकी तीसरी कृष्टिमें संक्रान्त किया जाता है। वह यहाँ पर भी एक आवली तक उदीरणाके योग्य नहीं होता। अतः यह छठी आवली भी उदीरणाके अयोग्य बतलाई गई है। इस कारण नवीन बँधा हुआ समयप्रबद्ध छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणाको प्राप्त किया जाता है। अतएव यह कहा गया है कि छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर ही उदीरणा होती है ॥१४५-१५३॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे पुरुषवेदकी नवीन बँधे हुए समयप्रबद्धसे छह आवलियोंके व्यतीत हो जानेपर उदीरणा होती है, इस विषयका सकारण निदर्शन किया, उस ही प्रकारसे यद्यपि शेष कर्मोंके संक्रमणादिकी यह विधि नहीं है, तथापि प्रथम समय किये गये अन्तरसे इस स्थलपर जो कर्म-प्रकृतियाँ बँधती हैं, उन कर्म-प्रकृतियोंकी उदीरणा छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर ही होती है, ऐसा नियम है। यह उपर्युक्त वर्णन निदर्शन अर्थात् दृष्टान्तमात्र है, सो उसे प्रमाण मानकर निश्चयसे यथार्थ रूपमें ग्रहण करना चाहिए ॥१५४-१५५॥

चूर्णिसू०–अन्तरकरणके प्रथम समयसे लेकर इस स्थल तक अर्थात् अन्तर्मुहूर्त

१ एसो चउत्थावलियविसयो। जयध०

२ किमाउत्तकरणं णाम? आउत्तकरणमुज्जत्तकरणं पारंभकरणमिदि एयट्ठो। तात्पर्येण नपुंसकवेदमितः प्रभवत्युपशमयतीत्यर्थः। जयध०

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'सिस्समइवित्थारणट्ठं' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है। (देखो पृ० १८४२)

सेसाणं कम्माणं ण किंचि उवसामेदि । १५७. जं पढमसमये पदेसग्गमुवसामेदि, तं थोवं । जं विदियसमए उवसामेदि तमसंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेदि जाव उवसंतं । १५८. णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा । १५९. उदयो असंखेज्जगुणो । १६०. णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिसंकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं । १६१. उवसामिज्जमाणयमसंखेज्ज-गुणं । १६२. एवं जाव चरिमसमय-उवसंते त्ति ।

१६३. जाधे पाए मोहणीयस्स बंधो संखेज्जवस्स-ट्ठिदिगो जादो, ताधे पाए ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो* । १६४. मोहणीयवज्जाणं कम्माणं णवुंसयवेदमुवसामेंतस्स ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुण-हीणो । १६५. एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो उवसामिज्जमाणो उवसंतो ।

१६६. णवुंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो । १६७. ताधे

तक अनिवृत्तिकरणसंयत नपुंसकवेदका आयुक्तकरण उपशामक होता है, अर्थात् यहाँसे आगे नपुंसकवेदका उपशमन प्रारम्भ करता है । शेप कर्मोंका किंचिन्मात्र भी उपशमन नहीं करता है । जिस प्रदेशाग्रको प्रथम समयमें उपशान्त करता है, वह अल्प है । जिसे द्वितीय समयमें उपशमित करता है, वह असंख्यातगुणा है । इस प्रकार असंख्यातगुणित श्रेणीसे नपुंसकवेदके उपशान्त होने तक उपशमाता है । प्रथमसमयवर्ती नपुंसकवेद-उपशामकके जिस किसी भी वेद्यमान कर्म-प्रकृतिके प्रदेशाग्रकी उदीरणा उपरिम पदोंकी अपेक्षा थोड़ी होती है । उससे जिस किसी भी वेद्यमान कर्मका उदय असंख्यातगुणा होता है । इससे अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण किया जानेवाला नपुंसकवेदका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इससे, उपशममान नपुंसकवेदका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार नपुंसकवेदके उपशान्त होनेके अन्तिम समय तक अल्पबहुत्वका यही क्रम जानना चाहिए ॥१५६-१६२॥

चूर्णिसू०–जिस स्थलपर मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षकी स्थितिवाला होता है, वहाँसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है । पुनः नपुंसकवेदका उपशमन करनेवाले जीवके मोहनीयके अतिरिक्त शेष कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन होता है । इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा उपशमन किया जानेवाला नपुंसकवेद उपशान्त हो जाता है ॥१६३-१६५॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदके उपशान्त हो जानेपर तदनन्तरकालमें स्त्रीवेदका उपशामक होता है, अर्थात् स्त्रीवेदका उपशमन प्रारम्भ करता है । उस समयमें ही अपूर्व स्थितिकांडक

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'ट्ठिदिबंधे'के स्थानपर 'ट्ठिदिबंधेण' और 'संखेज्जगुणहीणो'के स्थानपर 'असंखेज्जगुणहीणो' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८४४)

चेव अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च पत्थिदो*। १६८. जहा णवुंसयवेदो उवसामिदो तेणेव कमेण इत्थिवेदं पि गुणसेढीए उवसामेदि। १६९. इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे† गदे तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं संखेज्जवस्स-ट्ठिदिगो बंधो भवदि। १७०. जाधे संखेज्जवस्स-ट्ठिदिओ बंधो, तस्समए चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो। १७१. जत्तो पाए णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तम्हि पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो। १७२. तम्हि समए सव्वकम्माणमप्पाबहुअं भवदि। १७३ तं जहा। १७४. मोहणीयस्स सव्वत्थोवो ट्ठिदिबंधो। १७५. णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। १७६. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। १७७. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। १७८. एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदो उवसामिज्जमाणो उवसामिदो।

अपूर्व अनुभागकांडक और अपूर्व स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। जिस क्रमसे नपुंसकवेदका उपशमन किया है, उसी क्रमसे गुणश्रेणीके द्वारा स्त्रीवेदको भी उपशमाता है। स्त्रीवेदके उपशमनकालके संख्यात भाग बीत जानेपर तत्पश्चात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मका बन्ध संख्यात वर्षकी स्थितिवाला हो जाता है। अर्थात् इस स्थलपर उक्त कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षसे घटकर संख्यात वर्ष-प्रमाण रह जाता है। (किन्तु शेष तीनों अघातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अब भी असंख्यात वर्षका होता है।) जिस समय संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उसी समय ही इन तीनों घातिया मूल प्रकृतियोंकी केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण प्रकृतियोंको छोड़कर जो शेष उत्तर प्रकृतियाँ हैं, उनका एक-स्थानीय अनुभाग बन्ध होने लगता है। जिस स्थलपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध है, उसके पूर्ण होनेपर जो अन्य बन्ध होता है, वह पूर्वसे संख्यातगुणित हीन होता है। (किन्तु तीनों अघातिया कर्मोंका अभी भी असंख्यात वर्ष-प्रमाण ही स्थितिबन्ध होता है।) उस समय सर्व कर्मोंके स्थितिबन्धका जो अल्पबहुत्व है, वह इस प्रकार है—मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीत जानेपर उपशम किया जानेवाला स्त्रीवेद उपशमित हो जाता है ॥१६६-१७८॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'जाधे इत्थिवेदमुवसामेदुमाढत्तो' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है। (देखो पृ० १८४५)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'संखेज्जदिभागे'के स्थानपर 'संखेज्जे भागे' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १८४६)

१७९. इत्थिवेदे उवसंते [से] काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो । १८०. ताधे चेव अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयं च आगाइदं । अण्णो च ट्ठिदिबंधो पबद्धो । १८१. एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे* गदे तदो णामागोदवेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो । १८२. ताधे ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुअं । १८३. तं जहा । १८४. सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो । १८५. णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । १८६. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । १८७. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

१८८. एदम्मि ट्ठिदिबंधो पुण्णो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो सव्वकम्माणं पि अप्पप्पणो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो । १८९. एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसंता । १९०. णवरि पुरिसवेदस्स वे आवलिया बंधा समयूणा अणुवसंता । १९१. तस्समए पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि । १९२. संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि । १९३. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १९४. पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे बे आवलियाओ. सेसाओ ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो ।

चूर्णिसू०–स्त्रीवेदके उपशम हो जानेपर तदनन्तरकालमें शेष सातों नोकषायोंका उपशामक होता है, अर्थात् उनका उपशमन प्रारम्भ करता है । उसी समयमें ही अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकाडक घातके लिए ग्रहण करता है, तथा अन्य स्थितिबन्धको बाँधता है । इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीतने पर और सातों नोकषायोंके उपशमनकालका संख्यातवाँ भाग बीतने पर नाम, गोत्र और वेदनीय, इन तीनों अघातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षोंका होने लगता है । उस समय स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व इस प्रकार है–मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है ॥१७९-१८७॥

चूर्णिसू०–इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है, वह सभी कर्मोंका अपने-अपने पूर्व स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन होता है । इस क्रमसे सहस्रों स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर (उपशमन की जानेवाली) सातों नोकषाय भी उपशान्त हो जाती हैं, अर्थात् उनका उपशम सम्पन्न हो जाता है । केवल पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलीमात्र समयप्रबद्ध अभी अनुपशान्त रहते हैं । उस समयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है, चारों संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें जब दो आवलियाँ शेष रहती हैं, तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं ॥१८८-१९४॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'संखेज्जदिभागे'के स्थानपर 'संखेज्जे भागे' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८४७)

१९५. अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुहदि पुरिसवेदे, कोहसंजलणे संछुहदि । १९६. जो पढमसमय-अवेदो तस्स पढमसमय-अवेदस्स संतं पुरिसवेदस्स दो आवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता । १९७. जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता तेसिं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जदि । १९८. पर-पयडीए वुण अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि । १९९. पढमसमय-अवेदस्स संकामिज्जदि बहुअं । से काले विसेसहीणं । २००. एस कमो एयसमयपबद्धस्स चेव ।

२०१. पढमसमय-अवेदस्स संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तू-

---

विशेषार्थ–द्वितीय स्थितिके प्रदेशाग्रका प्रथमस्थितिमें आना 'आगाल' कहलाता है और प्रथमस्थितिके प्रदेशाग्रके द्वितीयस्थितिमें जानेको प्रत्यागाल कहते हैं । इसप्रकार उत्कर्षण-अपकर्षणके वशसे प्रथम-द्वितीयस्थितिके प्रदेशाग्रोंका परस्पर विषय-संक्रमण होनेरूप आगाल-प्रत्यागाल पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिके समयाधिक दो आवलीकाल शेष रहने तक ही होते हैं । जब पूरा दो आवलीकाल पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिका अवशिष्ट रह जाता है, तब आगाल और प्रत्यागालका होना बन्द हो जाता है, ऐसा अभिप्राय यहाँ जानना चाहिए । अथवा उत्पा-दानुच्छेदका आश्रय लेकर जयधवलाकार सूत्रानुसार ऐसा भी अर्थ करनेकी प्रेरणा करते हैं कि आवली-प्रत्यावली काल तक तो आगाल-प्रत्यागाल होते हैं, किन्तु तदनन्तर समयमें उनका विच्छेद हो जाता है । इसी स्थलपर पुरुषवेदकी गुणश्रेणीका होना भी बन्द हो जाता है । केवल प्रत्यावलीसे ही असंख्यात समयप्रबद्धोंकी प्रतिक्षण उदीरणा होती है ।

चूर्णिसू०–अन्तर करनेके पश्चात् हास्यादि छह नोकषायोंके प्रदेशाग्रको पुरुषवेद-में संक्रमण नहीं करता है, किन्तु संज्वलनक्रोधमें संक्रमण करता है । (क्योंकि, यहाँ आनु-पूर्वी संक्रमण पाया जाता है ।) जो प्रथम-समयवर्ती अपगतवेदवाला जीव है, उस प्रथम समयवाले अपगतवेदीके पुरुषवेदका नवक समयप्रबद्धरूप सत्त्व दो समय कम दो आवली-प्रमाण है, वह यहाँ अनुपशान्त रहता है । जो दो समय कम दो आवली-प्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं, उनके प्रदेशाग्रको वह यहाँपर असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा उपशान्त करता है । अर्थात् बन्धावलीके अतिक्रांत होनेपर पुरुषवेदके नवीन बद्ध समय-प्रबद्धोंका उपशमन-काल आवलीमात्र है, ऐसा अभिप्राय यहाँ जानना चाहिए । वह उनके प्रदेशाग्रको स्वस्थानमें ही उपशान्त नहीं करता है, किन्तु अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा पर-प्रकृतिमें अर्थात् संज्वलनक्रोधमें संक्रमण करता है । (क्योंकि पुरुषवेदके द्रव्यका संक्र-मण अन्यत्र हो ही नहीं सकता है ।) प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदी जीवके संक्रमण किया जानेवाला प्रदेशाग्र बहुत है और तदनन्तरकालमें विशेष हीन है । यह क्रम एक समयप्रबद्धका ही है । (क्योंकि नाना समयप्रबद्धकी विवक्षामें वृद्धि-हानिके योगसे चतुर्विध वृद्धि और चतुर्विध हानिरूप भी क्रम देखा जाता है ।) ॥१९५-२००॥

चूर्णिसू०–प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदीके चारों संज्वलन कषायोंका स्थितिबन्ध

णाणि । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । २०२. पढमसमय-अवेदो तिविहं कोहमुवसामेइ । २०३ सा चेव पोराणिया पढमट्ठिदी हवदि । २०४. ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे संजलणाणं ठिदिबंधो विसेसहीणो । २०५. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । २०६. एदेण कमेण जाधे आवलि-पडिआवलियाओ सेसाओ कोहसंजलणस्स ताधे विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । २०७. पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोहसंजलणस्स । २०८. पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ठिदि-उदीरणा । २०९. चदुण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा । २१०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । २११. पडिआवलिया उदयावलियं पविसमाणा पविट्ठा[1] । २१२. ताधे चेव कोहसंजलणे दो आवलियबंधे दुसमयूणे मोत्तूण सेसा तिविहकोधपदेसा उवसामिज्जमाणा उवसंता । २१३. कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संछुहदि जाव कोहसंजलणस्स

अन्तर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदी जीव प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण और संज्वलनरूप तीन प्रकारके क्रोधको उपशमाता है, अर्थात् यहाँपर तीनों क्रोधोंका उपशमन प्रारंभ करता है । वही पुरानी प्रथमस्थिति होती है, अर्थात् अन्तर प्रारम्भ करते हुए जो पहले क्रोधसंज्वलनकी प्रथमस्थिति थी, वही यहाँ पर अवस्थित रहती है, कोई अपूर्व स्थिति यहाँ नहीं की जाती है । प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होने पर संज्वलन-चतुष्कका अन्य स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित हीन होता है । इस क्रमसे जब संज्वलनक्रोधकी आवली और प्रत्यावली ही शेष रहती है, तब द्वितीयस्थिति और प्रथमस्थितिसे आगाल-प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । उस समय प्रत्यावलीसे अर्थात् उदयावलीसे बाहिरी दूसरी आवलीसे ही संज्वलनक्रोधकी उदीरणा होती है । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहने पर संज्वलनक्रोधकी जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है । इस समय चारों संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चार मास है । तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । इस समय प्रत्यावली उदयावलीमें प्रवेश करती हुई प्रविष्ट हो चुकी । अर्थात् क्रोधसंज्वलनकी प्रथमस्थिति उदयावलीमात्र अवशिष्ट रह जाती है । इसे ही उच्छिष्टावली कहते हैं । उसी समय ही दो समय कम दो आवलीमात्र संज्वलनक्रोधके समयप्रबद्धोंको छोड़कर प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा उपशान्त किये जानेवाले तीन प्रकारके क्रोध-प्रदेशाग्र प्रशस्तोपशामनासे उपशान्त होते हैं । संज्वलनक्रोधमें प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणरूप दो प्रकारके क्रोधको तब तक संक्रमण करता है, जब तक कि संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें तीन आवलियाँ अवशिष्ट रहती हैं । एक समय कम तीन

१ णवरि पडिआवलियाए उदयावलिं पविट्ठाए आवलियमेत्ती च कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदी परिसिट्ठा । एसा च उच्छिट्ठावलिया णाम । जयध०

पढमट्ठिदीए तिण्णि आवलियाओ सेसाओ त्ति । २१४ तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोहो कोहसंजलणे* ण संछुभदि ।

२१५. जाधे कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणावलिया सेसा, ताधे चेव कोहसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा । २१६. माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च । २१७. पढमट्ठिदिं करेमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव पढमट्ठिदिचरिमसमओ त्ति । २१८ विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं तदो विसेसहीणं चेव । २१९. जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाये माणस्स तिविहस्स उवसामगो । २२०. ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

२२१. माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजलणे ण संछुभदि । २२२. पडिआवलियाए सेसाए आगाल-

आवलियोंके शेष रहने पर उस स्थल पर दो प्रकारके क्रोधको संज्वलनक्रोधमें संक्रान्त नहीं करता है । (किन्तु संज्वलनमानमें संक्रान्त करता है ।) ॥२००-२१४॥

चूर्णिसू०–जिस समय संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें केवल एक समय कम आवलीकाल शेष रहता है, उस समय संज्वलनक्रोधका बन्ध और उदय व्युच्छिन्न हो जाता है । उसी समय वह संज्वलनमानका प्रथम समयवेदक और प्रथमस्थितिका कारक भी होता है । प्रथमस्थितिको करता हुआ वह उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है और तदनन्तर कालमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक देता चला जाता है । द्वितीयस्थितिकी जो आदि स्थिति है उसमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । तदनन्तर विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । (यह क्रम चरम स्थितिमें अतिस्थापनावली कालके अवशिष्ट रहने तक जारी रहता है ।) जिस स्थलपर संज्वलनक्रोधके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न होते हैं, उस स्थलपर ही वह तीनों प्रकारके मानका उपशामक होता है, अर्थात् उनका उपशमन प्रारम्भ करता है । उस समय चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण है ॥२१५-२२०॥

चूर्णिसू०–संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारके मानको संज्वलनमानमें संक्रान्त नहीं करता है । (किन्तु संज्वलनमायाकषायमें संक्रान्त करता है । यहाँपर भी प्रत्यावलीके शेष रह जानेपर आगाल और प्रत्यागाल

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'दुविहो कोहो कोहसंजलणे' के स्थानपर 'दुविह कोह (हो) संजलणे' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८५३)

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'माणसंजलणे'के स्थानपर केवल 'संजलणे' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८५४)

पडिआगालो वोच्छिण्णो । २२३. पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे माणसंजलणस्स दो आवलियसमयूणबंधे मोत्तूण सेसं तिविहस्स माणस्स पदेससंतकम्मं चरिमसमय-उवसंतं । २२४. ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो । २२५. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

२२६. तदो से काले मायासंजलणमोकड्डियूण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि । २२७. ताधे पाए तिविहाए मायाए उवसामगो । २२८. माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो दो मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया । २२९. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । २३०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । २३१. जं तं माणसंतकम्ममुदयावलियाए समयूणाए तं मायाए त्थिवुकसंकमेण[1] उदए विपच्चिहिदि ।

२३२. जे माणसंजलणस्स दोण्हमावलियाणं दुसमयूणाणं समयपबद्धा अणुवसंता ते गुणसेढीए उवसामिज्जमाणा दोहिं आवलियाहिं दुसमयूणाहिं उवसामिज्जिहिंति ।

व्युच्छिन्न हो जाते हैं । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनमानके एक समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष तीन प्रकारके मानका प्रदेशसत्त्व अन्तिम समयमें उपशान्त हो जाता है । अर्थात् इस स्थलपर तीनों प्रकारके मानका स्थितिसत्त्व, अनुभाग-सत्त्व और प्रदेशसत्त्व संज्वलनमानके नवकबद्ध उच्छिष्टावलीको छोड़कर सर्वोपशमनाके द्वारा उपशमको प्राप्त हो जाता है । उस समय संज्वलनमान, माया और लोभकषायका स्थितिबन्ध दो मास है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है ॥२२१-२२५॥

चूर्णिसू०–इसके एक समय पश्चात् संज्वलनमायाका अपकर्षण कर संज्वलन-मायाकी प्रथमस्थितिको करता है, अर्थात् मायाकषायका वेदक हो जाता है । इस स्थल पर वह तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है, अर्थात् मायाका उपशमन प्रारम्भ करता है । उस समय संज्वलनमाया और संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध एक अन्तर्मुहूर्तसे कम दो मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । इसी समय शेष कर्मोंका स्थितिकांडक पल्योपमका संख्यातवाँ भाग है । चरमसमयवर्ती मानवेदकके द्वारा जो मान-कषायका स्थितिसत्त्व एक समय कम उदयावलीप्रमाण अवशिष्ट रहा था, वह स्तिवुक-संक्रमणके द्वारा मायाकषायके उदयमें विपाकको प्राप्त होगा ॥२२६-२३१॥

विशेषार्थ–विवक्षित प्रकृतिका उदयस्वरूपसे समान स्थितिवाली अन्य प्रकृतिमें जो संक्रमण होता है, उसे स्तिवुकसंक्रमण कहते हैं ।

चूर्णिसू०–संज्वलनमानके जो दो समय कम दो दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त हैं, वे गुणश्रेणीके द्वारा उपशमको प्राप्त होते हुए दो समय कम दो आवली-प्रमाणकालसे उपशमको प्राप्त हो जावेंगे । जो कर्म-प्रदेशाग्र संज्वलन मायाकषायमें संक्रमण

[1] को त्थिवुकसंकमो णाम ? उदयसरूवेण समट्ठिदीए जो संकमो सो त्थिवुकसंकमो त्ति भण्णदे । जयध०

२३३. जं पदेसग्गं मायाए संकमदि तं विसेसहीणाए सेढीए संकमदि । २३४. एसा परूवणा मायाए पढमसमग-उवसामगस्स । २३५. एत्तो ट्ठिदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि । तदो मायाए पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहा माया मायासंजलणे ण संछुहदि, लोहसंजलणे च संछुहदि । २३६. पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो ।

२३७. समयाहियाए आवलियाए सेसाए मायाए चरिमसमय-उवसामगो मोत्तूण दो आवलियबंधे समयूणे । २३८. ताधे माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो । २३९. सेसाण कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि । २४०. तदो से काले माया-संजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा । २४१. मायासंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणा आवलिया सेसा त्थिवुकसंकमेण लोभे विपच्चिहिदि ।

२४२. ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डियूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि । २४३. एत्तो पाए जा लोभवेदगद्धा होदि, तिस्से लोभवेदगद्धाए बे-त्तिभागा एत्तियमेत्ती लोभस्स पढमट्ठिदी कदा । २४४. ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो मासो अंतोमुहुत्तेण ऊणो । २४५. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि २४६. तदो संखेज्जेहि

करता है, वह विशेष हीन श्रेणीके द्वारा संक्रमण करता है । यह प्ररूपणा मायाकषायके प्रथमसमयवर्ती उपशामककी है । इसके पश्चात् अनेक सहस्र स्थितिकांडक व्यतीत होते हैं । तब मायासंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रह जानेपर दो प्रकारकी मायाको संज्वलनमायामें संक्रान्त नहीं करता है, किन्तु संज्वलनलोभमें संक्रान्त करता है । यहाँ पर भी प्रत्यावलीके शेष रह जानेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं ॥२३२-२३६॥

चूर्णिसू०--एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर, एक समय कम दो आवली-प्रमाण नवकबद्ध समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष तीनों प्रकारकी मायाका चरमसमयवर्ती उपशामक होता है । उस समय संज्वलनमाया और लोभका स्थितिबन्ध एक मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष है । तदनन्तर समयमें संज्वलनमायाके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न हो जाते हैं । संज्वलनमायाकी प्रथमस्थितिमें जो एक समय कम एक आवली शेष रही है, वह स्तिबुकसंक्रमणके द्वारा संज्वलनलोभमें विपाकको प्राप्त होगी ॥२३७-२४१॥

चूर्णिसू०—उसी समय संज्वलनलोभका अपकर्षण कर लोभकी प्रथम स्थितिको करता है, अर्थात् उसका वेदन करता है । इस स्थलपर जो लोभका वेदककाल है, उस लोभ-वेदक-कालके दो त्रिभाग ($\frac{2}{3}$) प्रमाण लोभकी प्रथमस्थिति की जाती है । अर्थात् लोभकी प्रथमस्थितिका प्रमाण लोभवेदककालके दो-बटे तीन भाग है । उस समय संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध एक अन्तर्मुहूर्त कम एक मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष है । तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीतनेपर उस लोभकी प्रथमस्थितिका अर्ध भाग

ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं तिस्से लोभस्स पढमट्ठिदीए अद्धं गदं । २४७. तदो अद्धस्स चरिमसमए लोहसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं । २४८. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्तं । २४९. ताधे पुण फद्दयगदं संतकम्मं ।

२५०. से काले विदिय-तिभागस्स पढमसमए लोभसंजलणाणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणुभागकिट्टीओ करेदि । २५१. तासिं पमाणमेयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो* । २५२. पढमसमए बहुआओ किट्टीओ कदाओ, से काले अपुव्वाओ असंखेज्जगुणहीणाओ । एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ त्ति असंखेज्जगुणहीणाओ । २५३. जं पदेसग्गं पढमसमए किट्टीओ करेंतेण किट्टीसु णिक्खित्तं तं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमया त्ति असंखेज्जगुणं । २५४. पढमसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं, विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं तं विसेसहीणं। २५५. विदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं, विदियाए विसेसहीणं । एवं जाव ओघुक्कस्सियाए विसेस-

व्यतीत हो जाता है । उस अर्ध भागके अन्तिम समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध दिवस-पृथक्त्व होता है । तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध सहस्र वर्षपृथक्त्व होता है । उस समय अनुभागसम्बन्धी सत्त्व स्पर्धकगत है । इससे आगे कृष्टिगत सत्त्व होता है ॥२४२-१४५॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें द्वितीय त्रिभागके प्रथम समयमें संज्वलनलोभके अनुभागसत्त्वका जो जघन्य स्पर्धक है, उसके नीचे अनन्तगुणहानिरूपसे अपवर्तित कर अनुभाग-सम्बन्धी सूक्ष्म कृष्टियोंको करता है । (क्योंकि उपशमश्रेणीमें बादरकृष्टियाँ नहीं होती हैं ।) उन अनुभागकृष्टियोंका प्रमाण एक स्पर्धककी वर्गणाओंका अनन्तवाँ भाग है । प्रथम समयमें बहुत अनुभागकृष्टियाँ की जाती हैं । दूसरे समयमें होनेवाली अपूर्व कृष्टियाँ असंख्यातगुणित हीन हैं। इस प्रकार द्वितीय त्रिभागके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणी हीन होती जाती हैं । कृष्टियोंको करते हुए प्रथम समयमें जिस प्रदेशाग्रको कृष्टियोंमें निक्षिप्त करता है, वह सबसे कम है । इसके अनन्तरकालमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र निक्षिप्त करता है । इस प्रकारसे अन्तिम समय तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको निक्षिप्त करता जाता है । प्रथम समयमें जघन्य कृष्टिमें बहुत प्रदेशाग्रको देता है, उससे ऊपरकी द्वितीय कृष्टिमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है, इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । द्वितीय समयमें जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र (प्रथम समयमें की गई प्रथम कृष्टिके प्रदेशाग्रसे) असंख्यातगुणित देता है, द्वितीय कृष्टिमें विशेष हीन देता है । इस प्रकार द्वितीय समय-सम्बन्धी समस्त कृष्टियोंमें ओघ-उत्कृष्ट वर्गणा तक विशेष हीन देता है । [तदनन्तर जघन्य स्पर्धककी आदि

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इससे आगे 'अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणंतभागवग्गणाहिं एगं फद्दयं होदि' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १८५९)

हीणं। [२५६. तदो जहण्णफद्दयादिवग्गणाए अणंतगुणहीणं, तत्तो विसेसहीणं।] २५७. जहा विदियसमए तहा सेसेसु समएसु।

२५८. तिव्व-मंददाए जहण्णिया किट्टी थोवा। विदियकिट्टी अणंतगुणा। तदिया किट्टी अणंतगुणा। एवमणंतगुणाए सेढीए गच्छदि जाव चरिमकिट्टि त्ति। २५९. एसो विदिय-तिभागो किट्टीकरणद्धा णाम। २६०. किट्टीकरणद्धासंखेज्जेसु भागेसु गदेसु लोभसंजलणस्स अंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो। २६१. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधा दिवसपुधत्तं। २६२. जाव किट्टीकरणद्धाए दुचरिमो ठिदिबंधो ताधे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ठिदिबंधो। २६३. किट्टीकरणद्धाए चरिमो ठिदिबंधो लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तिओ। २६४. णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाण-महोरत्तस्संतो। २६५. णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणमंतो। २६६. तिस्से किट्टी-करणद्धाए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो लोहो लोहसंजलणे ण संका-मिज्जदि, सत्थाणे चेव उवसामिज्जदि।

२६७. किट्टीकरणद्धाए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआ-गालो वोच्छिण्णो। २६८. पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे लोहसंजलणस्स जह-ण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा। २६९. ताधे चेव जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तिय-

---

वर्गणामें अनन्तगुणित हीन देता है, तत्पश्चात् विशेष हीन देता है।] जैसा क्रम द्वितीय समयमें है, वैसा ही क्रम शेष समयोंमें भी जानना चाहिए ॥२५०-२५७॥

चूर्णिसू०—अब कृष्टियोंकी तीव्रता-मन्दतासम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं—जघन्य कृष्टि स्तोक है। द्वितीय कृष्टि अनन्तगुणी है। तृतीय कृष्टि अनन्तगुणी है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक अनन्तगुणित श्रेणीका यह क्रम चला जाता है। इस द्वितीय त्रिभागका नाम कृष्टिकरणकाल है। कृष्टिकरणकालके संख्यात भागोंके बीत जानेपर संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व-प्रमाण होता है। कृष्टिकरणकालके द्विचरम स्थितिबन्ध तक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म-का स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष होता है। कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें संज्वलन-लोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबन्ध कुछ कम अहो-रात्रप्रमाण होता है। नाम, गोत्र और वेदनीयका स्थितिबन्ध कुछ कम दो वर्ष-प्रमाण होता है। उस कृष्टिकरणके कालमें एक समय कम तीन आव-लियोंके शेष रहने पर दोनों मध्यम लोभ, संज्वलनलोभमें संक्रमण नहीं करते हैं, किन्तु स्वस्थानमें ही उपशमको प्राप्त होंगे ॥२५८-२६६॥

चूर्णिसू०—कृष्टिकरणकालमें आवली और प्रत्यावलीके शेप रहने पर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहने पर संज्वलन-लोभकी जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। उसी समयमें जो एक समय कम दो आवलियाँ

मेत्ता लोहसंजलणस्स समयपबद्धा अणुवसंता;* किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ। तव्वदिरित्तं लोहसंजलणस्स पदेसग्गं उवसंतं दुविहो लोहो सव्वो चेव उवसंतो णवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं २७०. एसो चेव चरिमसमयबादरसांपराइयो।

२७१. से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो। २७२. तेण पढमसमयसुहुमसांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा। २७३. जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो थोवूणओ†। २७४. पढमसमयसुहुमसांपराइयो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। २७५. जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ पढमसमए उदिण्णाओ। २७६. जाओ पढमसमए कदाओ किट्टीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण। २७७. जाओ चरिमसमए कदाओ किट्टीओ तासिं च जहण्णकिट्टीप्पहुडि असंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ उदिण्णाओ। २७८. ताधे चेव सव्वासु किट्टीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेढीए।

हैं, एतावन्मात्र संज्वलनलोभके समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं और कृष्टियाँ सर्व ही अनुपशान्त रहती हैं। इनके अतिरिक्त नवकबद्ध और उच्छिष्टावलीको छोड़कर संज्वलन-लोभका सर्व प्रदेशाग्र उपशान्त हो जाता है। प्रत्याख्यानावरणीय और अप्रत्याख्यानावरणीय दोनों प्रकारका सर्व लोभ उपशान्त हो जाता है। यह ही अन्तिमसमयवर्ती बादर साम्परायिक संयत है ॥२६७-२७०॥

चूर्णिसू०–इसके पश्चात् अनन्तर समयमें वह प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत हो जाता है। उस प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतके द्वारा अन्य प्रथमस्थिति की जाती है। प्रथमसमयवर्ती लोभवेदकके जो समस्त लोभ वेदककालके दो त्रिभागसे कुछ अधिक प्रमाणवाली प्रथमस्थिति थी, उस प्रथमस्थितिके कुछ कम दो भाग प्रमाण यह प्रथम स्थिति सूक्ष्मसाम्परायिककी होती है। प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत कृष्टियोंके असंख्यात बहु भागोंका वेदन करता है। अप्रथम-अचरिम समयोंमें अर्थात् प्रथम और अन्तिम समयको छोड़कर शेष समयोंमें जो अपूर्व कृष्टियाँ की हैं, वे सब प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं। जो कृष्टियाँ प्रथम समयमें की गई हैं उनके अग्राग्रसे अर्थात् ऊपरसे असंख्यातवें भागको छोड़कर और जो कृष्टियाँ अन्तिम समयमें की गई हैं, उनके जघन्य कृष्टिसे लेकर असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियाँ उदीर्ण हो जाती हैं। उसी समयमें असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा सर्व कृष्टियोंमें स्थित प्रदेशाग्रको उपशान्त करता है ॥२७१-२७८॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'किट्टीओ सव्वाओ' से लेकर आगेके समस्त सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया गया है। (देखो पृ० १८६४)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'थोवूणओ' पदसे आगे 'कोहोदयपुणुवट्ठिदस्स पढमसमयलोभवेदगस्स बादरसांपराइयस्स' इतने टीकांशको भी सूत्रमें सम्मिलित कर दिया गया है। (देखो पृ० १८६५)

२७९. जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते वि उवसामेदि । २८०. जा उदयावलिया छंडिदा सा त्थिवुकसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि । २८१. विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदि-पडिभागमाफुंददि[1] । एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति । २८२. चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो । २८३. णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता । २८४. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस मुहुत्ता । २८५. से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं ।

२८६. तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो । २८७. सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदपरिणामो । २८८. गुणसेढिणिक्खेवो उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागो । २८९. सव्विस्से उवसंतद्धाए गुणसेढिणिक्खेवेण वि पदेसग्गेण वि अवट्ठिदा । २९०. पढमे गुणसेढिसीसए उदिण्णे उक्कस्सओ पदेसुदओ । २९१. केवलणाणावरण-केवलदंसणावर-

चूर्णिसू०–असंख्यातगुणित श्रेणीमें जो दो समय कम दो आवलीप्रमाण समयप्रबद्ध थे, उन्हें भी उपशान्त करता है । जो स्पर्धकगत उच्छिष्टावली बादरसाम्परायिकके द्वारा पहले छोड़ दी गई थी, वह अब कृष्टिरूपसे परिणमित होकर स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा कृष्टियोंमें विपाकको प्राप्त होगी । द्वितीय समयमें, वह प्रथम समयमें उदीर्ण कृष्टियोंके अग्राग्रसे, अर्थात् सर्वोपरिम कृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागको छोड़ता है, अर्थात् उतनी कृष्टियाँ उदयको प्राप्त नहीं होती हैं, किन्तु अधस्तन बहुभागप्रमाण कृष्टियोंका वेदन करता है । तथा अधस्तनवर्ती और प्रथम समयमें उदयको नहीं प्राप्त हुई कृष्टियोंके असंख्यातवें प्रतिभागप्रमाण अपूर्व कृष्टियोंका सम्यक् प्रकारसे स्पर्श या वेदन करता है, अर्थात् उतनी कृष्टियाँ उदयको प्राप्त होती हैं । इस प्रकारसे यह क्रम चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत होनेतक जारी रहता है । चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र है । नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्त है । वेदनीयका स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्त है । इसके एक समय पश्चात् सम्पूर्ण मोहनीयकर्म उपशान्त हो जाता है ॥२७९-२८५॥

चूर्णिसू०–उस समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त तक वह उपशान्तकषायवीतराग रहता है । तब समस्त उपशान्तकालमें अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें अवस्थित परिणाम होता है । उस समय ज्ञानावरणादि कर्मोंका गुणश्रेणीरूप निक्षेप उपशान्तकालके संख्यातवें भागप्रमित आयामवाला है । सम्पूर्ण उपशान्तकालमें किये जानेवाले गुणश्रेणीनिक्षेपरूप आयामसे और अपकर्षण किये जानेवाले प्रदेशाग्रसे भी वह अवस्थित रहता है । प्रथम गुणश्रेणीशीर्षकके उदय होनेपर उत्कृष्ट प्रदेशोदय होता है । सर्व उपशान्तकालमें केवलज्ञानावरण और केवल-

१ आफुंददि आस्पृशति वेदयत्यवष्टभ्य गृह्णातीत्यर्थः । जयध०

णीयाणमणुभागुदएण सव्व-उवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो । २९२. णिद्दा-पयलाणं पि जाव वेदगो, ताव अवट्ठिदवेदगो । २९३. अंतराइयस्स अवट्ठिदवेदगो । २९४. सेसाणं लद्धिकम्मंसाणमणुभागुदयो वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा ।

२९५. णामाणि गोदाणि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभा-

---

दर्शनावरणका अनुभागोदयकी अपेक्षा अवस्थित वेदक है । निद्रा और प्रचलाका भी जब तक वेदक है, तब तक अवस्थित वेदक ही है । अन्तराय कर्मका अवस्थित वेदक है । शेष लब्धि-कर्मांशोंका अर्थात् क्षयोपशमको प्राप्त होनेवाली चार ज्ञानावरणीय और तीन दर्शनावरणीय प्रकृतियोंका अनुभागोदय वृद्धिरूप भी है, हानिरूप भी है और अवस्थितस्वरूप भी है ॥२८६-२९४॥

विशेषार्थ—सर्वोपशमनाके द्वारा समस्त कषायोंके सम्पूर्ण रूपसे उपशान्त हो जानेपर उपशान्तकषायवीतरागके उपशमकाल पूरा होने तक परिणामोंकी विशुद्धि एक रूपसे अवस्थित रहती है, फिर भी जो यहाँपर जिन लब्धि-कर्मांशोंके अनुभागोदयको वृद्धि, हानि या अवस्थित रूप बतलाया, उसका कारण यह है कि मतिज्ञानावरण आदि चार ज्ञानावरणीय प्रकृतियाँ और चक्षुदर्शनावरणादि तीन दर्शनावरणीय प्रकृतियाँ, ये सात क्षायोपशमिक कर्मांश कहलाते हैं, क्योंकि ज्ञानावरण और दर्शनावरणके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं । उक्त सात प्रकृतियोंका ही क्षयोपशम होता है, शेषका नहीं, क्योंकि केवलज्ञानावरण और केवल-दर्शनावरणके सर्वघाती होनेसे उनका क्षयोपशम नहीं, किन्तु क्षय ही होता है । उक्त सात लब्धि-कर्मोंमेंसे एक अवधिज्ञानावरणीय कर्मको दृष्टान्तरूपसे लेकर वृद्धि, हानि और एक रूप अवस्थानका स्पष्टीकरण करते हैं—उपशान्तकषायवीतरागके यदि अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम नहीं है, तो उसके अनुभागका अवस्थित उदय होता है, क्योंकि वहाँ पर उसकी अनवस्थितताका कोई कारण नहीं पाया जाता है । यदि उपशान्तकषायवीतरागके अवधि-ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है, तो वहाँपर छह प्रकार की वृद्धिरूप, या हानिरूप या अवस्थितरूप अनुभागका उदय पाया जायगा । इसका कारण यह है कि देशावधि और परमावधि ज्ञानवाले जीवोंके अवधिज्ञानावरण कर्मका जो क्षयोपशम होता है, उसके असंख्यात लोकप्रमाण भेद होते हैं, अतएव बाह्य और अन्तरंग कारणोंकी अपेक्षासे उनके परिणाम वृद्धि, हानि या अवस्थितरूप पाये जाते हैं । अर्थात् अवधिज्ञानावरणके सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशमसे परिणत सर्वावधिज्ञानीके अवधिज्ञानावरणका अवस्थित अनुभागोदय पाया जायगा । तथा देशावधि और परमावधि ज्ञानवालोंके क्षयोपशमके प्रकर्षाप्रकर्षसे वृद्धि या हानिरूप अनुभागोदय पाया जायगा । जो बात अवधिज्ञानावरणके विषयमें कही गई है, वही बात शेष लब्धिकर्मोंके वृद्धि, हानि या अवस्थित अनुभागोदयके विषयमें भी आगमा-विरोधसे लगा लेना चाहिए ।

चूर्णिसू०—जो नामकर्म और गोत्रकर्म परिणाम-प्रत्यय हैं, उनका अनुभागोदयकी अपेक्षा अवस्थित वेदक है ॥२९५॥

गोदएण । २९६. एवमुवसामगस्स परूवणा विहासा समत्ता ।

२९७. एत्तो सुत्तविहासा । २९८. तं जहा । २९९. 'उवसामणा कदिविधा' त्ति ? उवसामणा दुविहा करणोवसामणा अकरणोवसामणा च । ३००. जा सा अकरणोवसामणा तिस्से दुवे णामधेयाणि अकरणोवसामणा त्ति वि अणुदिण्णोवसामणा त्ति वि । ३०१. एसा कम्मपवादे[1] । ३०२. जा सा करणोवसामणा सा दुविहा देसकरणोवसामणा[2]

विशेषार्थ—जो प्रकृतियाँ शुभ-अशुभ परिणामोंके द्वारा बन्ध या उदयको प्राप्त होती हैं, उन्हें परिणाम-प्रत्यय कहते हैं । इसीका दूसरा नाम गुण-प्रत्यय भी है । जो कर्मप्रकृतियाँ भवके निमित्तसे उदयमें आती हैं, उन्हें भव-प्रत्यय कहते हैं । सूत्रमें 'नाम' ऐसा सामान्य-पद कहनेपर भी यहाँ उदयमें आनेवाली अर्थात् वेदन की जानेवाली प्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिए । उपशान्तकषायवीतरागके मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, औदारिकशरीर-आंगोपांग, आदिके तीन संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, रूप, रस, गंध, वर्णमेंसे कोई एक-एक, अगुरुलघु, उपघात परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर अस्थिर, शुभ-अशुभ और सुस्वर-दुःस्वर, इन तीन युगलोंमेंसे एक-एक, आदेय, यशःकीर्त्ति और निर्माण, इन प्रकृतियोंका उदय रहता है । इनमें तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, शीत, उष्ण और स्निग्ध-रूक्ष स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्त्ति और निर्माण नामकर्म, इतनी प्रकृतियाँ परिणाम-प्रत्यय हैं । सूत्र-पठित 'गोत्र' पदसे यहाँ उच्चगोत्रका ग्रहण करना चाहिए । इन सब परिणाम-प्रत्ययवाली नामकर्म और गोत्रकर्मकी प्रकृतियोंका अनुभागोदयकी अपेक्षा उपशान्तकषायवीतराग अवस्थित वेदक होता है । किन्तु जो सातावेदनीय आदि भवप्रत्ययवाली प्रकृतियाँ हैं, उसके अनुभागको यह उपशान्तकषायवीतराग षड्वृद्धि हानिके क्रमसे वेदन करता है, ऐसा अनुक्त अर्थ भी 'परिणामप्रत्यय' पदसे सूचित किया गया है ।

चूर्णिसू०—इस प्रकार उपशामककी प्ररूपणा-विभाषा समाप्त हुई ॥२९६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे गाथा-सूत्रोंकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है 'उपशामना कितने प्रकारकी है' ? उपशामना दो प्रकारकी है—एक करणोपशामना और दूसरी अकरणोपशामना । इनमें जो अकरणोपशामना है, उसके दो नाम हैं—अकरणोपशामना और अनुदीर्णोपशामना । यह अकरणोपशामना कर्मप्रवाद नामक आठवें पूर्वमें विस्तारसे वर्णन की गई है । जो करणोपशामना है वह भी दो प्रकारकी है—देशकरणोपशामना और

१ कम्मपवादो णाम अट्ठमो पुव्वाहियारो, जत्थ सव्वेसिं कम्माणं मूलुत्तरपयडिभेयभिण्णाणं दव्व-खेत्त-काल भावे समस्सियूण विवागपरिणामो अविवागपज्जाओ च बहुवित्थरो अणुवण्णिदो, तत्थ एसा अकरणोवसामणा दट्ठव्वा, तत्थेदिस्से पबंधेण परूवणावलंभादो । जयध०

२ दंसणमोहणीये उवसामिदे उदयादिकरणेसु काणि वि करणाणि उवसंताणि, काणि वि करणाणि अणुवसंताणि तेणेसा देसकरणोवसामणा त्ति भण्णदे । जयध०

त्ति वि, सव्वकरणोवसामणा[1] त्ति वि। ३०३. देसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि–देसकरणोवसामणा त्ति वि अप्पसत्थ-उवसामणा[2] त्ति वि। ३०४. एसा कम्मपयडीसु[3]। ३०५. जा सा सव्वकरणोवसामणा तिस्से वि दुवे णामाणि–सव्वकरणोवसामणा त्ति वि पसत्थकरणोवसामणा त्ति वि। ३०६. एदाए एत्थ पयदं।

सर्वकरणोपशामना। देशकरणोपशामनाके दो नाम हैं–देशकरणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना। यह देशकरणोपशामना कम्मपयडी (कर्मप्रकृतिप्राभृत) नामक ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णन की गई है। जो सर्वकरणोपशामना है, उसके भी दो नाम हैं–सर्वकरणोपशामना और प्रशस्तकरणोपशामना। यहाँपर इस सर्वकरणोपशामनासे ही प्रयोजन है। (इस प्रकार यह 'उपशामना कितने प्रकारकी है' इस प्रथम पदकी विभाषा समाप्त हुई।) ॥२९७-३०६॥

विशेषार्थ–उदय, उदीरणा आदि परिणामोंके विना कर्मोंके उपशान्तरूपसे अवस्थानको उपशामना कहते हैं। उसके करण और अकरणके भेदसे दो भेद हैं। प्रशस्त और अप्रशस्त परिणामोंके द्वारा कर्मप्रदेशोंका उपशान्तभावसे रहना करणोपशामना है। अथवा करणोंकी उपशामनाको करणोपशामना कहते हैं। अर्थात् निधत्ति, निकाचित आदि आठ करणोंका प्रशस्त-उपशामनाके द्वारा उपशान्त करनेको करणोपशामना कहते हैं। इससे भिन्न लक्षणवाली अकरणोपशामना होती है। अर्थात् प्रशस्त-अप्रशस्त परिणामोंके विना ही अप्राप्तकालवाले कर्म-प्रदेशोंका उदयरूप परिणामके विना अवस्थित करनेको अकरणोपशामना कहते हैं। इसीका दूसरा नाम अनुदीर्णोपशामना है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका आश्रय लेकर कर्मोंके होनेवाले विपाक-परिणामको उदय कहते हैं। इस प्रकारके उदयसे परिणत कर्मको 'उदीर्ण' कहते हैं। इस उदीर्ण दशासे भिन्न अर्थात् उदयावस्थाको नहीं प्राप्त हुए कर्मको 'अनुदीर्ण' कहते हैं। इस प्रकारके अनुदीर्ण कर्मकी उपशामनाको अनुदीर्णोपशामना कहते हैं। इस अनुदीर्णोपशामनामें करण-परिणामोंकी अपेक्षा नहीं होती है, इसलिए इसे अकरणोपशामना भी कहते हैं। इस अकरणोपशामनाका विस्तृत वर्णन कर्मप्रवाद नामक आठवें पूर्वमें किया गया है। करणोपशामनाके भी दो भेद हैं–देशकरणोपशामना और सर्वकरणोपशामना। अप्रशस्तोपशामनादि करणोंके द्वारा कर्मप्रदेशोंके एक देश उपशान्त करनेको देशकरणोपशामना कहते हैं। कुछ आचार्य इसका ऐसा भी अर्थ करते हैं कि दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमित हो जानेपर अप्रशस्तोपशामना, निधत्ति, निकाचित, बन्धन, उत्कर्षण, उदीरणा और उदय ये सात करण उपशान्त हो जाते हैं, तथा अपकर्षण और परप्रकृतिसंक्रमण

१ सव्वेसिं करणाणमुवसामणा सव्वकरणोवसामणा। जयध०

२ संसारपाओग्ग-अप्पसत्थपरिणामणिबंधणत्तादो एसा अप्पसत्थोवसामणा त्ति भण्णदे। जयध०

३ कम्मपयडीओ णाम विदियपुव्व-पंचमवत्थुपडिबद्धो चउत्थो पाहुडसण्णिदो अहियारो अत्थि, तत्थेसा देसकरणोवसामणा दट्ठव्वा, सवित्थरमेदिस्से तत्थ पबंधेण परूविदत्तादो। कथमेत्थ एगस्स कम्मपयडिपाहुडस्स 'कम्मपयडीसु'त्ति बहुवयणणिद्देसो त्ति णासंकणिज्जं; एक्कस्स वि तस्स कदि-वेदणादि-अवंतराहियारभेदावेक्खाए बहुवयणणिद्देसाविरोहादो। जयध०

३०७. उवसामो कस्स कस्स कम्मस्सेत्ति विहासा । ३०८. तं जहा । ३०९. मोहणीयवज्जाणं कम्माणं णत्थि उवसामो । ३१०. दंसणमोहणीयस्स वि णत्थि उवसामो । ३११. अणंताणुबंधीणं पि णत्थि उवसामो । ३१२. बारसकसाय-णवणोकसायवेदणीयाणमुवसामो ।

३१३. 'कं कम्मं उवसंतं अणुवसंतं च कं कम्मं' त्ति विहासा । ३१४. तं जहा । ३१५. पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स पढमं ताव णवुंसयवेदो उवसमेदि । सेसाणि कम्माणि अणुवसंताणि* । ३१६. तदो इत्थिवेदो उवसमदि । ३१७. तदो सत्त णोकसाए उव-

ये दो करण अनुपशान्त रहते हैं, इसलिए कुछ करणोंके उपशम होनेसे और कुछ करणोंके अनुपशम होनेसे इसे देशकरणोपशामना कहते हैं । अथवा इसका ऐसा भी अर्थ किया जाता है कि उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्तोपशामना, निधत्ति और निकाचित ये तीन करण अपने-अपने स्वरूपसे विनष्ट हो जाते हैं और अपकर्षण आदि करण होते रहते हैं, इसलिए इसे देशकरणोपशामना कहते हैं । अथवा नपुंसकवेदके प्रदेशाग्रोंका उपशमन करते हुए जब तक उसका सर्वोपशम नहीं हो जाता है, तब तक उसका नाम देशकरणोपशामना है । अथवा वह भी अर्थ किया गया है कि नपुंसकवेदके उपशान्त होने और शेष करणोंके अनुपशान्त रहनेकी अवस्था-विशेषको देशकरणोपशामना कहते हैं । किन्तु जयधवलाकारका कहना है कि यहाँपर पूर्वोक्त अर्थ ही प्रधानरूपसे ग्रहण करना चाहिए । सर्व करणोंके उपशमनको सर्वकरणोपशामना कहते हैं । अर्थात् उदीरणा, निधत्ति, निकाचित आदि आठों करणोंका अपनी-अपनी क्रियाओंको छोड़कर जो प्रशस्तोपशामनाके द्वारा सर्वोपशम होता है, उसे सर्वकरणोपशामना कहते हैं । कषायोंके उपशमनका प्रकरण होनेसे प्रकृतमें यही सर्वकरणोपशामना विवक्षित है ।

चूर्णिसू०—अब 'किस किस कर्मका उपशम होता है' इस पदकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—मोहनीयको छोड़कर शेष सात कर्मोंका उपशम नहीं होता है । दर्शनमोहनीयकर्मका भी उपशम नहीं होता है । (क्योंकि, वह उपशमश्रेणीपर चढ़नेके पूर्व उपशान्त या क्षीण हो चुका है ।) अनन्तानुबन्धी कषायकी चारों प्रकृतियोंका भी उपशम नहीं होता है । (क्योंकि, उपशमश्रेणीपर चढ़नेसे पहले ही उनका विसंयोजन किया जा चुका है ।) किन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय और हास्यादि नव नोकषायवेदनीय, इन इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम होता है । (क्योंकि, चारित्रमोहोपशमनाधिकारमें इन्हींके उपशमसे प्रयोजन है ।) ॥३०७-३१२॥

चूर्णिसू०—अब 'कौन कर्म उपशान्त होता है और कौन कर्म अनुपशान्त रहता है', प्रथम गाथाके इस उत्तरार्धकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—पुरुषवेदके उदयके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके सबसे पहले नपुंसकवेद उपशमको प्राप्त होता है ।

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अणुवसंताणि'के स्थानपर 'अणुवसमाणि' पाठ है । (देखो पृ० १८७६)

सामेदि । ३१८. तदो तिविहो कोहो उवसमदि । ३१९. तदो तिविहो माणो उवसमदि । ३२०. तदो तिविहा माया उवसमदि । ३२१. तदो तिविहो लोहो उवसमदि किट्टीवज्जो । ३२२. किट्टीसु लोभसंजलणमुवसमदि । ३२३. तदो सव्वं मोहणीयमुवसंतं भवदि ।

३२४. कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो त्ति विहासा । ३२५. तं जहा । ३२६. जं कम्ममुवसामिज्जदि तमंतोमुहुत्तेण उवसामिज्जदि । तस्स† जं पढमसमए उवसामिज्जदि पदेसग्गं तं थोवं । विदियसमए उवसामिज्जदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । एवं गंतूण चरिमसमए पदेसग्गस्स असंखेज्जा भागा उवसामिज्जंति । ३२७. एवं सव्वकम्माणं ।

३२८. ट्ठिदीओ उदयावलियं बंधावलियं च मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ समये समये उवसामिज्जंति । ३२९. अणुभागाणं सव्वाणि फद्दयाणि सव्वाओ वग्गणाओ उवसामिज्जंति । ३३०. णवुंसयवेदस्स पढमसमय-उवसामगस्स जाओ ट्ठिदीओ बज्झंति ताओ थोवाओ । ३३१. जाओ संकामिज्जंति ताओ असंखेज्जगुणाओ । ३३२. जाओ

उस समय शेष कर्म अनुपशान्त रहते हैं । नपुंसकवेदके उपशमके पश्चात् स्त्रीवेद उपशमको प्राप्त होता है । स्त्रीवेदके उपशमके पश्चात् सात नोकषाय उपशमको प्राप्त होते हैं । सात नोकषायोंके उपशमके पश्चात् तीन प्रकारका क्रोध उपशमको प्राप्त होता है । तत्पश्चात् तीन प्रकारका मान उपशमको प्राप्त होता है । तदनन्तर तीन प्रकारकी माया उपशमको प्राप्त होती है । तदनन्तर कृष्टियोंको छोड़कर तीन प्रकारका लोभ उपशमको प्राप्त होता है । पुनः कृष्टियोंमें प्राप्त संज्वलन लोभ उपशमको प्राप्त होता है । तत्पश्चात् सर्व मोहनीयकर्म उपशान्त हो जाता है ॥३१३-३२३॥

चूर्णिसू०–'चारित्रमोहनीय कर्मका कितना भाग उपशमको प्राप्त करता है, कितना भाग संक्रमण और उदीरणा करता है, इस द्वितीय गाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–जो कर्म उपशमको प्राप्त कराया जाता है, वह अन्तर्मुहूर्तके द्वारा उपशान्त किया जाता है । उस कर्मका जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें उपशमको प्राप्त कराया जाता है, वह सबसे कम है । द्वितीय समयमें जो उपशान्त किया जाता है, वह असंख्यातगुणा है । इस क्रमसे जाकर अन्तिम समयमें कर्मप्रदेशाग्रके असंख्यात बहुभाग उपशान्त किये जाते हैं । इस प्रकार सर्व कर्मोंका क्रम जानना चाहिए ॥३२४-३२७॥

चूर्णिसू०–उदयावली और बन्धावलीको छोड़कर शेष सर्व स्थितियाँ समय-समय, अर्थात् प्रतिसमय उपशान्त की जाती हैं । अनुभागोंके सर्व स्पर्धक और सर्व वर्गणाएँ उपशान्त की जाती हैं । नपुंसकवेदका उपशमन करनेवाले प्रथमसमयवर्ती जीवके जो स्थितियाँ बँधती हैं वे सबसे कम हैं । जो स्थितियाँ संक्रान्त की जाती हैं वे असंख्यातगुणी

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'तस्स'के स्थानपर 'जस्स' पाठ है । (देखो पृ० १८७७)

उदीरिज्जंति ताओ तत्तियाओ चेव। ३३३. उदिण्णाओ विसेसाहियाओ। ३३४. जट्ठिदि-उदयो उदीरणा संतकम्मं च विसेसाहियाओ।

३३५. अणुभागेण बंधो थोवो। ३३६. उदयो उदीरणा च अणंतगुणा। ३३७. संकमो संतकम्मं च अणंतगुणं। ३३८. किट्टीओ वेदेंतस्स बंधो णत्थि। ३३९. उदयो उदीरणा च थोवा। ३४०. संकमो अणंतगुणो। ३४१. संतकम्ममणंतगुणं।

३४२. एत्तो पदेसेण णवुंसयवेदस्स पदेसउदीरणा अणुक्कस्स-अजहण्णा थोवा। ३४३. जहण्णओ उदओ असंखेज्जगुणो। ३४४. उक्कस्सओ उदयो विसेसाहिओ। ३४५. जहण्णओ संकमो असंखेज्जगुणो। ३४६. जहण्णयं उवसामिज्जदि असंखेज्जगुणं। ३४७. जहण्णयं संतकम्ममसंखेज्जगुणं। ३४८. उक्कस्सयं संकामिज्जदि असंखेज्जगुणं। ३४९. उक्कस्सगं उवसामिज्जदि असंखेज्जगुणं। ३५०. उक्कस्सयं संतकम्ममसंखेज्जगुणं। ३५१. एदं सव्वं अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदपदेसग्गस्स अप्पाबहुअं।

३५२. इत्थिवेदस्स वि णिरवयवमेदमप्पाबहुअमणुगंतव्वं। ३५३. अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणमुदयमुदीरणं च मोत्तूण एवं चेव वत्तव्वं। ३५४. पुरिसवेद-चदुसंजलणाणं च जाणिदूण णेदव्वं। ३५५. णवरि बंधपदस्स तत्थ सव्वत्थोवत्तं दट्ठव्वं।

हैं। जो स्थितियाँ उदीरणा की जाती हैं, वे उतनी ही हैं। उदीर्ण स्थितियाँ विशेष अधिक हैं। यत्स्थितिक-उदय, उदीरणा और सत्कर्म विशेष अधिक है ॥३२८-३३४॥

चूर्णिसू०—अनुभागकी अपेक्षा बन्ध सबसे कम है। बन्धसे उदीरणा और उदय अनन्तगुणा है। उदयसे संक्रमण और सत्कर्म अनन्तगुणा है। कृष्टियोंको वेदन करनेवाले जीवके लोभकषायका बन्ध नहीं होता है। उसके उदय और उदीरणा सबसे कम होती है। इससे संक्रमण अनन्तगुणा होता है। संक्रमणसे सत्कर्म अनन्तगुणा होता है ॥३३५-३४१॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे प्रदेशकी अपेक्षा वर्णन करेंगे—नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट-अजघन्य प्रदेश-उदीरणा सबसे कम होती है। इससे जघन्य उदय असंख्यातगुणित है। इससे उत्कृष्ट उदय विशेष अधिक है। इससे जघन्य संक्रमण असंख्यातगुणित है। इससे उपशान्त किया जानेवाला जघन्य द्रव्य असंख्यातगुणित है। इससे जघन्य सत्कर्म असंख्यातगुणित है। इससे संक्रान्त किया जानेवाला उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणित है। इससे उत्कृष्ट सत्कर्म असंख्यातगुणित है। यह सब अन्तरकरणके दो समय पश्चात् होनेवाले नपुंसकवेदके प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व कहा ॥३४२-३५१॥

चूर्णिसू०—स्त्रीवेदका भी यही अल्पबहुत्व अविकलरूपसे जानना चाहिए। आठों मध्यम कषाय और हास्यादि छह नो कषायोंका अल्पबहुत्व भी उदय और उदीरणाको छोड़कर इसी प्रकारसे कहना चाहिए। पुरुषवेद और चारों संज्वलन-कषायोंका अल्पबहुत्व जान करके लगाना चाहिए। उनके अल्पबहुत्वमें बन्धपद सबसे कम होता है, इतनी विशेषता जानना चाहिए ॥३५२-३५५॥

३५६. 'कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं च होइ कं करणं' त्ति विहासा । ३५७. तं जहा । ३५८. अट्ठविहं ताव करणं । जहा–अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्ती-करणं णिकाचणाकरणं बंधणकरणं उदीरणाकरणं ओकड्डणाकरणं उक्कड्डणाकरणं संकमण-करणं च । ८ । एवमट्ठविहं करणं[1]* ।

३५९. एदेसिं करणाणमणियट्टिपढमसमए सव्वकम्माणं पि अप्पसत्थउवसाम-णाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणंच वोच्छिण्णाणि । ३६०. सेसाणि ताधे आउग-वेदणीयवज्जाणं पंच वि करणाणि अत्थि । ३६१. आउगस्स ओवट्टणाकरणमत्थि,

अब क्रमप्राप्त 'केचिरमुवसामिज्जदि' इस तीसरी गाथाकी विभाषा छोड़कर 'कं करणं वोच्छिज्जदि' इस चौथी गाथाकी विभाषा करनेके लिए चूर्णिकार प्रतिज्ञा करते हैं । ऐसा करनेका कारण यह है कि चौथी गाथाकी विभाषा कर देनेपर तीसरी गाथाके अर्थका व्याख्यान प्रायः हो ही जाता है ।

चूर्णिसू०–'कहाँपर कौन करण व्युच्छिन्न हो जाता है और कहाँपर कौन करण अव्युच्छिन्न रहता है' इस चौथी गाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–करण आठ प्रकारके हैं–अप्रशस्तोपशामनाकरण, निधत्तीकरण, निकाचनाकरण, बन्धनकरण, उदीरणा-करण, अपकर्षणाकरण (अपवर्तनाकरण), उत्कर्षणाकरण (उद्वर्तनाकरण) और संक्रमण-करण (८) । इस प्रकारसे आठ करण होते हैं ॥३५६-३५८॥

विशेषार्थ–इस सूत्र-द्वारा करणके आठ भेद बतलाये गये हैं । कर्मबन्धादिके कारणभूत जीवके शक्ति-विशेषरूप परिणामोंको करण कहते हैं । उनमेंसे अप्रशस्तोपशामना-करण, निधत्तीकरण और निकाचितकरणका स्वरूप पहले बतला आये हैं । शेष करणोंका स्वरूप इस प्रकार है–मिथ्यात्वादि परिणामोंसे पुद्गल द्रव्यको ज्ञानवरणादिरूप परिणमाकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूपसे बाँधनेको बन्धनकरण कहते हैं । उदयावलीसे बाहिर स्थित कर्मद्रव्यका अपकर्षण करके उदयावलीमें लानेको उदीरणाकरण कहते हैं । कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके घटानेको अपकर्षणाकरण और उनके बढ़ानेको उत्कर्षणाकरण कहते हैं । विवक्षित कर्मके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका अन्य प्रकृतिरूपसे परिणमन करने-को संक्रमणकरण कहते हैं ।

चूर्णिसू०–इन आठों करणोंमेंसे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे सभी कर्मोंके अप्र-शस्तोपशामनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण व्युच्छिन्न हो जाते हैं । उस समय आयु और वेदनीकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके अवशिष्ट पाँचों ही करण होते हैं । आयुकर्मका

१ बंधण-संकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उदीरणया ।
उवसामणा निधत्ती निकाचणा च त्ति करणाइं ॥ २ ॥ कम्मपयडी

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'एवमट्ठविहं करणं' इस सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १८८४)

सेसाणि सत्त करणाणि णत्थि । ३६२. वेदणीयस्स बंधणाकरणमोवट्टणाकरणमुव्वट्टणाकरणं संकमणाकरणं एदाणि चत्तारि करणाणि अत्थि, सेसाणि चत्तारि करणाणि णत्थि ।

३६३. मूलपयडीओ पडुच्च एस कमो ताव जाव चरिमसमयबादरसांपराइयो त्ति । ३६४. सुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स दो करणाणि ओवट्टणाकरणमुदीरणाकरणं च । सेसाणं कम्माणं ताणि चेव करणाणि । ३६५. उवसंतकसायवीयरायस्स मोहणीयस्स वि णत्थि किंचि वि करणं, मोत्तूण दंसणमोहणीयं । दंसणमोहणीयस्स वि ओवट्टणाकरणं संकमणाकरणं च अत्थि । ३६६. सेसाणं कम्माणं पि ओवट्टणाकरणमुदीरणा च अत्थि । णवरि आउग-वेदणीयाणमोवट्टणा चेव । ३६७. कं करणं उवसंतं अणुवसंतं च कं करणं त्ति एसा सव्वा वि गाहा विहासिदा भवदि ।

३६८. केच्चिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं त्ति एदम्हि सुत्ते विहासिज्जमाणे एदाणि चेव अट्ठ करणाणि उत्तरपयडीणं पुध पुध विहासियव्वाणि ।

३६९. केवचिरमुवसंतं'ति विहासा । ३७०. तं जहा । ३७१. उवसंतं णिव्वाघादेण अंतोमुहुत्तं ।

केवल उद्वर्तनाकरण (उत्कर्षणाकरण) होता है, शेष सात करण नहीं होते हैं । वेदनीयकर्मके बन्धनकरण, अपवर्तनाकरण, उद्वर्तनाकरण और संक्रमणकरण, ये चार करण होते हैं, शेष चार करण नहीं होते हैं ॥३५९-३६२॥

चूर्णिसू०—मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह क्रम बादरसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समय तक जानना चाहिए । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें मोहनीयकर्मके अपवर्तनाकरण और उदीरणाकरण ये दो ही करण होते हैं । शेष कर्मोंके वे ही उपर्युक्त करण होते हैं । उपशान्तकपायवीतरागके मोहनीयकर्मका कोई भी करण नहीं होता है, केवल दर्शनमोहनीयको छोड़कर । क्योंकि, उपशान्तकषायवीतरागके दर्शनमोहनीयकर्मके अपवर्तनाकरण और संक्रमणकरण होते हैं । उपशान्तकषायके शेष कर्मोंके भी अपवर्तनाकरण और उदीरणाकरण होते हैं । केवल आयु और वेदनीय कर्मका अपवर्तनाकरण ही होता है । इस प्रकार चौथी गाथाके पूर्वार्धकी विभाषाके द्वारा ही 'कौन करण कहाँ उपशान्त रहता है और कौन करण कहाँ अनुपशान्त रहता है' इस उत्तरार्धकी भी विभाषा हो जाती है और इस प्रकार यह सर्व गाथा ही विभाषित हो जाती है ॥३६३-३६७॥

चूर्णिसू०—'चारित्रमोहकी विवक्षित प्रकृति कितने काल तक उपशान्त रहती है, तथा संक्रमण और उदीरणा कितने कालतक होती है' इस तीसरे गाथासूत्रके (पूर्वार्धकी) विभाषा करनेपर उत्तर-प्रकृतियोंके ये उपर्युक्त आठों ही करण पृथक्-पृथक् रूपसे व्याख्यान करना चाहिए ॥३६८॥

चूर्णिसू०—'अब कौन कर्म कितनी देर तक उपशान्त रहता है' तीसरी गाथाके इस तीसरे चरणकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—निर्व्याघात अर्थात् मरण आदि व्याघातसे रहित अवस्थाकी अपेक्षा नपुंसकवेदादि मोहप्रकृतियाँ अन्तर्मुहूर्त तक उपशान्त

३७२. अणुवसंतं च केवचिरंत्ति विहासा । ३७३. तं जहा । ३७४. अप्पसत्थउवसामणाए अणुवसंताणि कम्माणि णिव्वाघादेण अंतोमुहुत्तं ।

३७५. एत्तो पडिवदमाणगस्स विहासा । ३७६. परूवणा-विहासा ताव, पच्छा सुत्तविहासा[1] । ३७७. परूवणा-विहासा । ३७८. तं जहा । ३७९. दुविहो पडिवादो भवक्खएण च उवसामणक्खएणं च । ३८०. भवक्खएण पदिदस्स सव्वाणि करणाणि एगसमएण उग्घादिदाणि[3] । ३८१. पढमसमए चेव जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलियं पवेसिदाणि, जाणि ण उदीरिज्जंति ताणि वि ओकड्डियूण आवलियबाहिरे गोवुच्छाए सेढीए णिक्खित्ताणि ।

रहती हैं । (किन्तु व्याघातकी अपेक्षा एक समय भी पाया जाता है ।) ॥३६९-३७१॥

चूर्णिसू०—'अब कौन कर्म कितनी देर तक अनुपशान्त रहता है' तीसरी गाथाके इस चौथे चरणकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—अप्रशस्तोपशामनाके द्वारा निर्व्याघातकी अपेक्षा कर्म अन्तर्मुहूर्त तक अनुपशान्त रहते हैं । (किन्तु व्याघातकी अपेक्षा एक समय तक ही अनुपशान्त रहते हैं ।) ॥३७२-३७४॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे प्रतिपतमान अर्थात् उपशम-श्रेणीसे गिरनेवाले जीवकी विभाषा की जाती है । पहले प्ररूपणा-विभाषा करना चाहिए, पीछे सूत्र-विभाषा करना चाहिए ॥३७५-३७६॥

विशेषार्थ—विभाषा दो प्रकारकी होती है—एक प्ररूपणा-विभाषा, दूसरी सूत्र-विभाषा । जो सूत्रके पदोंका उच्चारण न करके सूत्र-द्वारा सूचित किये गये समस्त अर्थकी विस्तारसे प्ररूपणा की जाती है, उसे प्ररूपणा-विभाषा कहते हैं । जो गाथा-सूत्रके अवयवभूत पदोंके अर्थका परामर्श करते हुए सूत्र-स्पर्श किया जाता है, उसे सूत्र-विभाषा कहते हैं ।

चूर्णिसू०—यहाँ पहले प्ररूपणा-विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—प्रतिपात दो प्रकारसे होता है—भवक्षयसे और उपशमनकालके क्षयसे । भवक्षयसे गिरनेवाले जीवके सभी करण एक समयमें ही उद्घाटित हो जाते हैं, अर्थात् अपने-अपने स्वरूपसे पुनः प्रवृत्त हो जाते हैं । प्रतिपातके प्रथम समयमें ही जो कर्म उदीरणाको प्राप्त किये जाते हैं, वे सब उदयावलीमें प्रवेश कराये जाते हैं । जो कर्म उदीरणाको प्राप्त नहीं कराये जाते हैं, वे भी अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गोपुच्छारूप श्रेणीसे निक्षिप्त किये जाते हैं ॥३७७-३८१॥

१ विहासा दुविहा होदि परूवणविहासा सुत्तविहासा चेदि । तत्थ परूवणविहासा णाम सुत्तपदाणि अणुच्चारिय सुत्तसूचिदासेसत्थस्स वित्थरपरूवणा । सुत्तविहासा णाम गाहासुत्ताणमवयवत्थपरामरसमुहेण सुत्तफासो । जयध०

२ तत्थ भवक्खयणिबंधणो णाम उवसमसेढिसिहरमारूढस्स तत्थेव झीणाउअस्स कालं काढूण कसायेसु पडिवादो । जो उण संते वि आउए उवसामणद्धाखएण कसाएसु पडिवदिदो सो उवसामणक्खयणिबंधणो णाम । जयध०

३ अप्पप्पणो सरूवेण पुणो वि पयट्टदाणि त्ति भणिदं होइ । जयध०

३८२. जो उवसामणक्खएण पडिवददि तस्स विहासा । ३८३. केण कारणेण पडिवददि अवट्ठिदपरिणामो संतो । ३८४. सुणु कारणं जधा अद्धाक्खएण सो लोभे पडिवदिदो होइ । ३८५. तं परूवइस्सामो । ३८६. पढमसमयसुहुमसांपराइएण तिविहं लोभमोकड्डियूण संजलणस्स उदयादिगुणसेढी कदा । ३८७. जा तस्स किट्टीलोभवेदगद्धा, तदो विसेसुत्तरकालो गुणसेढिणिक्खेवो । ३८८. दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चेव णिक्खेवो । णवरि उदयावलियाए णत्थि । ३८९. सेसाणमाउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ । सेसे सेसे च णिक्खेवो । ३९०. तिविहस्स लोहस्स तत्तियो चेव णिक्खेवो । ३९१. ताधे चेव तिविहो लोभो एगसमएण पसत्थउवसामणाए अणुवसंतो । ३९२. ताधे तिण्हं घादिकम्माणमंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो । ३९३. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस मुहुत्ता । ३९४. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो अडदालीस मुहुत्ता । ३७५. से काले गुणसेढी असंखेज्जगुणहीणा ।३९६.ट्ठिदिबंधो सो चेव । ३९७. अणुभागबंधो अप्पसत्थाणमणंतगुणो ।३९८.पसत्थाणं कम्मंसाणमणंतगुणहीणो ।

चूर्णिसू०–अब जो उपशमनकालके क्षय हो जानेसे गिरता है, उसकी विभाषा की जाती है ॥३८२॥

शंका–उपशान्तकषायवीतराग छद्मस्थ जीव तो अवस्थित परिणामवाला होता है, फिर वह किस कारणसे गिरता है ? ॥३८३॥

समाधान–सुनो, उपशान्तकषायवीतरागके गिरनेका कारण उपशमन-कालका क्षय हो जाना है, अतएव वह सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें गिरता है ॥३८४॥

चूर्णिसू०–अब हम उसकी (विस्तारसे) प्ररूपणा करते हैं–प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा तीन प्रकारके लोभका अपकर्षण करके संज्वलनकी उदयादि गुण-श्रेणी की गई । जो उसके कृष्टिगत लोभके वेदनका काल है, उससे विशेष अधिक कालवाला गुणश्रेणी निक्षेप है । दो प्रकार अर्थात् प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण लोभका भी उतना ही निक्षेप है । विशेष बात यह है कि उनका निक्षेप उदयावलीके भीतर नहीं, किन्तु बाहिर ही होता है । आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है । शेष-शेषमें निक्षेप है, अर्थात् इससे आगे उदयावलीके बाहिर ज्ञानावरणादि कर्मोंका गलित-शेषायामरूप गुणश्रेणीनिक्षेप प्रवृत्त होता है । तीन प्रकारके लोभका उतना उतना ही निक्षेप है । उसी समयमें ही तीन प्रकारका लोभ एक समयमें प्रशस्तोपशामनाके द्वारा अनुपशान्त हो जाता है । उस समय तीन घातिया कर्मोंका बन्ध अन्तर्मुहूर्त-स्थितिवाला है । नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध बत्तीस मुहूर्त है और वेदनीयका स्थितिबन्ध अड़तालीस मुहूर्त है । तदनन्तर कालमें गुणश्रेणी असंख्यातगुणी हीन होती है । स्थितिबन्ध वही होता है । अनुभागबन्ध अप्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा और प्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा हीन होता है । (इस प्रकार यह क्रम सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समय तक प्रतिसमय ले जाना चाहिए ।) ॥३८५-३९८॥

३९९. लोभं वेदयमाणस्स इमाणि आवासयाणि। ४००. तं जहा। ४०१. लोभवेदगद्धाए पढमतिभागो किट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा। ४०२. पढमसमए उदिण्णाओ किट्टीओ थोवाओ। ४०३. विदियसमए उदिण्णाओ किट्टीओ विसेसाहियाओ। ४०४. सव्वसुहुमसांपराइयद्धाए विसेसाहियवड्ढीए किट्टीणमुदयो*।

४०५. किट्टीवेदगद्धाए गदाए पढमसमयबादरसांपराइयो जादो। ४०६. ताहे चेव सव्वमोहणीयस्स अणाणुपुव्विओ संकमो। ४०७. ताहे चेव दुविहो लोहो लोहसंजलणे संछुहदि। ४०८. ताहे चेव फद्दयगदं लोभं वेदेदि। ४०९. किट्टीओ सव्वाओ णट्ठाओ। ४१०. णवरि जाओ उदयावलियब्भंतराओ ताओ त्थिवुकसंकमेण फद्दएसु विपच्चिहिंति।

४११. पढमसमयबादरसांपराइयस्स लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो। ४१२. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दो अहोरत्ताणि देसूणाणि। ४१३. वेदणीय-णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि वस्साणि देसूणाणि। ४१४. एदम्हि पुण्णे ट्ठिदिबंधे जो अण्णो वेदणीय-णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जवस्ससहस्साणि। ४१५. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिगो। ४१६. लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो पुव्वबंधादो

चूर्णिसू०–लोभको वेदन करनेवाले जीवके ये वक्ष्यमाण आवश्यक होते हैं। वे इस प्रकार हैं–लोभ-वेदककालका अर्थात् सूक्ष्म-बादरलोभके वेदन करनेके कालका जो प्रथम त्रिभाग है अर्थात् सूक्ष्मलोभके वेदनका काल है, उसमें कृष्टियोंका असंख्यात बहुभाग उदयको प्राप्त होता है। प्रथम समयमें उदय-प्राप्त कृष्टियाँ स्तोक हैं। द्वितीय समयमें उदय-प्राप्त कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सर्व सूक्ष्मसाम्परायिक-कालमें प्रतिसमय विशेषाधिक वृद्धिसे कृष्टियोंका उदय होता है ॥३९९-४०४॥

चूर्णिसू०-कृष्टियोंके वेदककालके व्यतीत होनेपर वह प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक हो जाता है। उस ही समयमें मोहनीयकर्मका अनानुपूर्वी अर्थात् आनुपूर्वी-रहित संक्रमण प्रारम्भ हो जाता है। उसी समयमें दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण करता है। उस ही समयमें स्पर्धकगत लोभका वेदन करता है। उस समय सर्व कृष्टियाँ नष्ट हो जाती हैं। विशेष बात इतनी है कि जो कृष्टियाँ उदयावलीके भीतर हैं, वे स्तिवुक-संक्रमणके द्वारा स्पर्धकोंमें विपाकको प्राप्त होती हैं ॥४०५-४१०॥

चूर्णिसू०-प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकसंयतके संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध देशोन दो अहोरात्र है। वेदनीय, नाम और गोत्र इन कर्मोंका स्थितिबन्ध देशोन चार वर्ष है। इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो वेदनीय, नाम, और गोत्रकर्मोंका अन्य स्थितिबन्ध होता है, वह संख्यात सहस्र वर्ष है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अहोरात्र पृथक्त्वप्रमाण होता है। संज्वलन लोभका स्थितिबन्ध पूर्व बन्धसे विशेष अधिक होता है। लोभ-वेदककालके द्वितीय त्रिभागके

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'सव्वसुहुमसांपराइयद्धाए विसेसाहियवड्ढीए किट्टीणमुदयो' इस सूत्रको टीकामें सम्मिलित कर दिया है। (देखो पृ० १८९५)

विसेसाहिओ । ४१७. लोभवेदगद्धाए विदियस्स तिभागस्स संखेज्जदिभागं गंतूण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो मुहुत्तपुधत्तं । ४१८. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ४१९. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिगादो ट्ठिदिबंधादो वस्ससहस्सपुधत्तिगो ट्ठिदिबंधो जादो । ४२०. एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु लोभवेदगद्धा पुण्णा ।

४२१. से काले मायं तिविहमोकड्डियूण मायासंजलणस्स उदयादि-गुणसेढी कदा । दुविहाए मायाए आवलियबाहिरा गुणसेढी कदा । ४२२. पढमसमयमायावेदगस्स गुणसेढिणिक्खेवो तिविहस्स लोहस्स तिविहाए मायाए च तुल्लो । मायावेदगद्धादो विसेसाहिओ । ४२३. सव्वमायावेदगद्धाए तत्तिओ तत्तिओ चेव णिक्खेवो । ४२४. सेसाणं कम्माणं जो पुण पुव्विल्लो णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे चेव णिक्खिवदि गुणसेढिं*। ४२५. मायावेदगस्स लोभो तिविहो, माया दुविहा, मायासंजलणे संकमदि । माया तिविहा लोभो च दुविहो† लोभसंजलणे संकमदि । ४२६. पढमसमयमायावेदगस्स दोण्हं संजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो । ४२७. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जवस्ससहस्साणि । ४२८. पुण्णे पुण्णे ठिदिबंधे मोहणीयवज्जाणं कम्माणं संखेज्जगुणो ट्ठिदिबंधो । ४२९.

संख्यातवें भाग आगे जाकर मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्व होता है । नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अहोरात्र-पृथक्त्वरूप स्थितिबन्धसे वर्षसहस्र पृथक्त्व-प्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है । इस प्रकार सहस्रों स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर लोभका वेदककाल पूर्ण हो जाता है ॥४११-४२०॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके संज्वलन मायाकी तो उदयादि गुणश्रेणी करता है तथा शेष दो प्रकारके मायाकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । प्रथम समयवर्ती मायावेदकके तीन प्रकारके लोभका और तीन प्रकारकी मायाका गुणश्रेणीनिक्षेप तुल्य है, तथा मायावेदक-कालसे विशेष अधिक है । सम्पूर्ण मायावेदककालमें उतना उतना ही निक्षेप होता है । पुनः शेष कर्मोंका जो पूर्वका निक्षेप है, उसके शेष शेषमें ही गुणश्रेणीका निक्षेप करता है । मायावेदकके तीन प्रकारका लोभ और दो प्रकारकी माया संज्वलनमायामें संक्रमण करती है । तथा तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण करता है । प्रथम समयवर्ती मायावेदकके दोनों संज्वलन कषायोंका दो मासकी स्थितिवाला बन्ध होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण होता है । प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर मोहनीयको छोड़कर

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'गुणसेढिं' इतना अंश टीकाके प्रारम्भमें [गुणसेढिं] इस प्रकारसे मुद्रित है । (देखो पृ० १८९९)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'च दुविहो' इस पाठके स्थानपर 'चउव्विहो' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १८९९)

मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ४३०. एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयमायावेदगो जादो । ४३१. ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा । ४३२. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

४३३. तदो से काले तिविहं माणमोकड्डियूण माणसंजलणस्स उदयादिगुणसेढिं करेदि । ४३४. दुविहस्स माणस्स आवलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि । ४३५. णवविहस्स वि कसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो । ४३६. जा तस्स पडिवदमाणगस्स माणवेदगद्धा, तत्तो विसेसाहिओ णिक्खेवो । ४३७. मोहणीयवज्जाणं कम्माणं जो पढमसमयसुहुमसांपराइएण णिक्खेवो णिक्खित्तो तस्स णिक्खेवस्स सेसे सेसे णिक्खिवदि । ४३८. पढमसमयमाणवेदगस्स णवविहो वि कसायो संकमदि । ४३९. ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा पडिवुण्णा । ४४०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ४४१. एवं ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गंतूण माणस्स चरिमसमयवेदगस्स तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मासा अंतोमुहुत्तूणा । ४४२. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ४४३. से काले तिविहं कोहमोकड्डियूण कोहसंजलणस्स उदयादि-गुणसेढिं करेदि । दुविहस्स कोहस्स आवलियबाहिरे करेदि* ।

शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है । मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीतनेपर वह चरमसमयवर्ती मायावेदक होता है । उस समय दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष होता है ॥४३१-४३२॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् अनन्तर समयमें तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करके संज्वलनमानकी उदयादि गुणश्रेणी करता है । दो प्रकारके मानकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनसम्बन्धी लोभ, माया और मानरूप नौ प्रकारकी कषायका गुणश्रेणीनिक्षेप होता है । श्रेणीसे नीचे गिरनेवाले उस जीवका जो मानवेदककाल है, उससे विशेष अधिक निक्षेप होता है । मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जो निक्षेप प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा निक्षिप्त किया गया है, उसके शेष शेषमें निक्षेपण करता है । प्रथमसमयवर्ती मानवेदकके नवों प्रकारका कषाय संक्रमणको प्राप्त होता है । उस समय तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूरे चार मास होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण होता है । इस प्रकार बहुतसे स्थितिबन्ध-सहस्र व्यतीत होते हैं, तब अन्तिम समयमें मानका वेदन करनेवाले जीवके तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम आठ मास होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण होता है । तदनन्तरकालमें तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके संज्वलनक्रोधकी उदयादि-गुणश्रेणी करता है । अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण, इन दोनों प्रकारके क्रोधकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है ॥४३३-४४३॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'दुविहस्स कोहस्स आवलियबाहिरे करेदि' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १९०१)

४४४. एण्हिं गुणसेढिणिक्खेवो केत्तियो कायव्वो ? ४४५. पढमसमयकोधवेदगस्स बारसण्हं पि कसायाणं गुणसेढिणिक्खेवो* सेसाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण सरिसो होदि। ४४६. जहा मोहणीयवज्जाणं कम्माणं सेसे सेसे गुणसेढिं णिक्खिवदि तम्हा एत्तो पाए बारसण्हं कसायाणं सेसे सेसे गुणसेढी णिक्खिविदव्वा। ४४७. पढमसमयकोहवेदगस्स बारसविहस्स वि कसायस्स संकमो होदि। ४४८. ताधे ट्ठिदिबंधो चउण्हं संजलणाणमट्ठ मासा पडिवुण्णा। ४४९. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ४५०. एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स चरिमसमयचउव्विहबंधगो जादो। ४५१. ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो चदुसट्ठिवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। ४५२. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।

४५३. तदो से काले पुरिसवेदस्स बंधगो जादो। ४५४. ताधे चेव सत्तण्हं कम्माणं पदेसग्गं पसत्थ-उवसामणाए सव्वमणुवसंतं। ४५५. ताधे चेव सत्तकम्मंसे ओकड्डियूण पुरिसवेदस्स उदयादिगुणसेढिं† करेदि। ४५६. छण्हं कम्मंसाणमुदयावलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि। ४५७. गुणसेढिणिक्खेवो बारसण्हं कसायाणं सत्तण्हं

शंका–इस समय, अर्थात् क्रोधवेदकके प्रथम समयमें कितना गुणश्रेणी-निक्षेप करने योग्य है ? ॥४४४॥

समाधान–प्रथमसमयवर्ती क्रोधवेदकके बारहों ही कषायोंका गुणश्रेणीनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणीनिक्षेपके सदृश होता है ॥४४५॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार मोहनीयकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी गुणश्रेणीको शेष शेषमें निक्षेपण करता है उसी प्रकार यहाँसे लेकर बारह कषायोंकी गुणश्रेणी शेष शेषमें निक्षेपण करना चाहिए। प्रथमसमयवर्ती क्रोधवेदकके बारह प्रकारके कषायका संक्रमण होता है। उस समय चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूरे आठ मास है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है। इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीत जानेपर मोहनीयके चतुर्विध बन्धका अन्तिम समयवर्ती बन्धक होता है। उस समय मोहनीयका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चौंसठ वर्ष है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है ॥४४६-४५२॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें वह पुरुषवेदका बन्धक हो जाता है। उसी समयमें ही सात कर्मोंका सर्व प्रदेशाग्र प्रशस्तोपशामनासे अनुपशान्त हो जाता है। उस समय हास्यादि सात कर्मांशोंका अपकर्षण करके पुरुषवेदकी उदयादि-गुणश्रेणीको करता है और शेष छह कर्मांशोंकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है। बारह कषाय और सात नोकषायवेदनीयोंका गुणश्रेणीनिक्षेप आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके गुणश्रेणी-निक्षेपके तुल्य

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस पदके प्रारम्भमें 'जो' और अन्तमें 'सो' पद और भी मुद्रित है। (देखो पृ० १९०१)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'उदयादिगुणसेढिं' के स्थानपर 'उदयादिगुणसेढिसीसयं' पाठ मुद्रित है। (देखो पृ० १९०३)

णोकसायवेदणीया उसेसाण च आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण तुल्लो सेसे सेसे च णिक्खेवो* । ४५८. ताधे चेव पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि पडि-वुण्णाणि । ४५९. संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चदुसट्ठिवस्साणि । ४६०. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ४६१. पुरिसवेदे अणुवसंते जाव इत्थिवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जवस्सिय-ट्ठिदिगो बंधो ।

४६२. ताधे अप्पाबहुअं कायव्वं । ४६३. सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो । ४६४. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । ४६५. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ४६६. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ४६७. एत्तो ट्ठिदिबंध-सहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदमेगसमएण अणुवसंतं करेदि । ४६८. ताधे चेव तमोकड्डियूण आवलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि । ४६९. इदरेसिं कम्माणं जो गुणसेढिणिक्खेवो तत्तियो चेव इत्थिवेदस्स वि, सेसे सेसे च णिक्खिवदि ।

४७०. इत्थिवेदे अणुवसंते जाव णवुंसयवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमसंखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधो जादो । ४७१. ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । ४७२. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्ज-

होता है । शेष शेषमें निक्षेप होता है । उसी समयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध पूरे बत्तीस वर्ष होता है । संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चौंसठ वर्ष होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष होता है । पुरुषवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक स्त्रीवेद उपशान्त रहता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालके संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ॥४५३-४६१॥

चूर्णिसू०—उस समय इस प्रकार अल्पबहुत्व करना चाहिए—मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है । नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । इससे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इससे आगे सहस्रों स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर स्त्रीवेदको एक समयमें अनुपशान्त करता है । उसी समयमें ही स्त्रीवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । अन्य कर्मोंका जो गुणश्रेणीनिक्षेप है, उतना ही स्त्रीवेदका भी होता है । शेष शेषमें निक्षेप करता है ॥४६२-४६९॥

चूर्णिसू०—स्त्रीवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक नपुंसकवेद उपशान्त रहता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालके संख्यात बहुभागोंके बीतनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण हो जाता है । उस समयमें मोहनीयकर्मका स्थिति-बन्ध सबसे कम है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे नाम

* ताम्रवाली प्रतिमें 'णिक्खेवो' के स्थानपर 'णिक्खिवदि पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९०३)

गुणो । ४७३. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ४७४. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ४७५. जाधे घादिकम्माणमसंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो ताधे चेव एगसमएण णाणावरणीयं चउव्विहं दंसणावरणीयं तिविहं पंचंतराइयाणि एदाणि दुट्ठाणियाणि बंधेण जादाणि । ४७६. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदमणुवसंतं करेदि । ४७७. ताधे चेव णवुंसयवेदमोकड्डियूण आवलियबाहिरे गुणसेढिं णिक्खिवदि । ४७८. इदरेसिं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण सरिसो गुणसेढिणिक्खेवो । सेसे सेसे च णिक्खेवो ।

४७९. णवुंसयवेदे अणुवसंते जाव अंतरकरणद्धाणं ण पावदि एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो जादो । ४८०. ताधे चेव दुट्ठाणिया बंधोदया । ४८१. सव्वस्स पडिवदमाणगस्स छसु आवलियासु गदासु उदीरणा इदि णत्थि णियमो, आवलियादिक्कंतमुदीरिज्जंति ।

और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । जिस समय तीन घातिया कर्मोंका असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उस समय ही एक समयमें चार प्रकारका ज्ञानावरणीय, तीन प्रकारका दर्शनावरणीय और पाँचों अन्तराय कर्म, ये अनुभागबन्धकी अपेक्षा द्विस्थानीय अर्थात् लता और दारुरूप अनुभाग बन्धवाले हो जाते हैं । तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर नपुंसकवेदको अनुपशांत करता है । उसी समयमें नपुंसकवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी रूपसे निक्षिप्त करता है । यह गुणश्रेणीनिक्षेप अन्य कर्मोंके गुणश्रेणीनिक्षेपके सदृश होता है । शेष शेषमें गुणश्रेणी निक्षेप होता है ॥४७०-४७८॥

चूर्णिसू०–नपुंसकवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक अन्तरकरण-कालको नहीं प्राप्त करता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालके संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होने लगता है । उसी समय ही मोहनीय कर्मका बन्ध और उदय अनुभागकी अपेक्षा द्विस्थानीय हो जाता है । ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरनेवाले सभी जीवोंके छह आवलियोंके बीत जानेपर ही उदीरणा हो, ऐसा नियम नहीं है, किन्तु बन्धावलीके व्यतीत होनेपर उदीरणा होने लगती है ॥४७९-४८१॥

विशेषार्थ–उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जीवके लिए यह नियम बतलाया गया था कि नवीन बंधनेवाले कर्मोंकी उदीरणा बन्धावलीके छह आवलीकालके पश्चात् ही हो सकती है, उससे पूर्व नहीं । किन्तु श्रेणीसे उतरनेवालोंके लिए यह नियम नहीं है । उनके बन्धावलीके पश्चात् ही बंधे हुए कर्मकी उदीरणा होने लगती है । कुछ आचार्य इस चूर्णिसूत्रका ऐसा व्याख्यान करते हैं कि ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरते समय भी जब तक मोहनीय कर्मका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है; तब तक तो छह आवलियोंके बीतनेपर ही उदीरणाका नियम रहता है । किन्तु जब मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होने लगता है ।

४८२. अणियट्टिप्पहुडि मोहणीयस्स अणाणुपुव्विसंकमो, लोभस्स वि संकमो। ४८३. जाधे असंखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो मोहणीयस्स, ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। ४८४. घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। ४८५. णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। ४८६. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ४८७. एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अणुभागबंधेण वीरियंतराइयं सव्वघादी जादं। ४८८. तदो ठिदिबंधपुधत्तेण आभिणिबोधियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि। ४८९. तदो ठिदिबंधपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीयं सव्वघादी जादं। ४९०. तदो ठिदिबंधपुधत्तेण सुदणाणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि। ४९१. तदो ठिदिबंधपुधत्तेण ओधिणाणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि। ४९२. तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीयं दाणंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि।

४९३. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा पडि-

तब छह आवलीकालके पश्चात् उदीरणाका नियम नहीं रहता। इस पर जयधवलाकारका मत यह है कि यदि ऐसा माना जाय, तो 'सव्वस्स पडिवदमाणगस्स' इस चूर्णिसूत्रमें जो 'सर्व' पदका प्रयोग किया गया है, वह निष्फल हो जायगा। अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही प्रधानरूपसे मानना चाहिए।

चूर्णिसू०–अनिवृत्तिकरणके कालसे लेकर (सर्व उतरनेवाले जीवोंके) मोहनीय-कर्मका अनानुपूर्वी-संक्रमण होने लगता है और लोभका भी संक्रमण प्रारम्भ हो जाता है। जब मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होता है, तब मोहनीय कर्मका स्थिति-बन्ध सबसे कम होता है और शेष घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत हो जानेपर *वीर्यान्तरायकर्म अनुभागबन्धकी अपेक्षा सर्वघाती हो* जाता है। तत्पश्चात् स्थिति-बन्धपृथक्त्वसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय कर्म सर्वघाती हो जाते हैं। तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वसे चक्षुदर्शनावरणीयकर्म सर्वघाती हो जाता है। तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय कर्म सर्वघाती हो जाते हैं। तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय कर्म सर्वघाती हो जाते हैं। तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वसे मनःपर्ययज्ञाना-वरणीय और दानान्तराय कर्म सर्वघाती हो जाते हैं ॥४८२-४९२॥

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् सहस्रों स्थितिबन्धोंके बीत जानेपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा नष्ट हो जाती है और समयप्रबद्धके असंख्यात लोकभागी अर्थात् असंख्यातलोकसे

हम्मदि असंखेज्जलोगभागो समयपबद्धस्स उदीरणा पवत्तदि* । ४९४. जाधे असंखेज्ज-लोगपडिभागो समयपबद्धस्स उदीरणा, ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । ४९५. घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ४९६. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ४९७. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ४९८. एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । ४९९. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेखेज्जगुणो । ५००. घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ५०१. वेदणीयस्स ट्ठिदि-बंधो विसेसाहिओ । ५०२. एवं संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि कादूण तदो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । ५०३. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । ५०४. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ ।

५०५. एवं संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । ५०६. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । ५०७. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ५०८. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । ५०९. एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि । ५१०. तदो

भाजित करनेपर एक भागमात्र उदीरणा प्रवृत्त होती है । जिस समय समयप्रबद्धकी असंख्यातलोक-प्रतिभागी उदीरणा प्रवृत्त होती है उस समय मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम है । शेष घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे नाम और गोत्रकर्म-का स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी क्रमसे स्थितिबन्ध-सहस्रोंके बीत जानेपर एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है । नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हो जाता है । इससे तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध करके तत्पश्चात् एक साथ मोह-नीयका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है । इससे नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात-गुणा होता है । इससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मका स्थिति-बन्ध परस्परमें समान होते हुए विशेष अधिक होता है ॥४९३-५०४॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है और एक साथ नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम हो जाता है । इससे मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे बहुतसे स्थितिबन्ध-सहस्र बीत जाते हैं । तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है और एक साथ नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जलोगभागो समयपबद्धस्स उदीरणा पवत्तदि' इतना अंशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १९०८)

अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । ५११. चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । ५१२. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ५१३. जत्तो पाए असंखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो, तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधमसंखेज्जगुणं बंधइ । ५१४. एदेण कमेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियादो ट्ठिदिबंधादो एक्कसराहेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ ट्ठिदिबंधो जादो* । ५१५. एत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधं संखेज्जगुणं बंधइ ।

५१६. एवं संखेज्जाणं ट्ठिदिबंधसहस्साणमपुव्वा वड्ढी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ५१७. तदो मोहणीयस्स जाधे अण्णस्स ट्ठिदिबंधस्स अपुव्वा वड्ढी पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा । ५१८. ताधे चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधस्स वड्ढी पलिदोवमं चदुब्भागेण सादिरेगेण ऊणयं । ५१९. ताधे चेव णामा-गोदाणं ठिदिबंधपरिवड्ढी अद्धपलिदोवमं संखेज्जदिभागूणं । ५२०. जाधे एसा परिवड्ढी ताधे मोहणीयस्स जट्ठिदिगो बंधो पलिदोवमं । ५२१. चदुण्हं कम्माणं जट्ठिदिगो बंधो पलिदोवमं चदुण्हं भागूणं । ५२२. णामा-गोदाणं जट्ठिदिगो बंधो अद्धपलिदोवमं । ५२३. एत्तो पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे

सबसे कम होता है । इससे चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और विशेष अधिक होता है । इससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । जिस स्थलसे असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उस स्थलसे प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर असंख्यातगुणित अन्य स्थितिबन्धको बाँधता है । इस क्रमसे सातों ही कर्मोंकी प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित स्थितिबन्धसे एक साथ सातों ही कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होने लगता है । इस स्थलसे लेकर आगे प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य संख्यातगुणित स्थितिबन्धको बाँधता है ॥५०५-५१५॥

चूर्णिसू०-इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होती है । तत्पश्चात् जिस समय मोहनीयकर्मके अन्य स्थितिबन्धकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यात बहुभाग-प्रमाण होती है, उस समय चार कर्मोंके स्थितिबन्धकी वृद्धि सातिरेक चतुर्थ भागसे हीन पल्योपमप्रमाण होती है । उसी समयमें नाम और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धकी परिवृद्धि संख्यातवें भागसे हीन अर्धपल्योपम होती है । जिस समय यह वृद्धि होती है, उस समय मोहनीयका यत्स्थितिकबन्ध पल्योपमप्रमाण है । चार कर्मोंका यत्स्थितिकबन्ध चतुर्थभागसे हीन पल्योपमप्रमाण है । नाम और गोत्रका यत्स्थितिकबन्ध अर्धपल्योपमप्रमाण है । इस स्थलसे प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर तब तक

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमे इस सूत्रके 'पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियादो ट्ठिदिबंधादो एक्कसराहेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ ट्ठिदिबंधो जादो' इतने अंशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । तथा 'कम्माणं'के स्थानपर 'कम्मपयडीणं' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९१०)

पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण वड्ढइ जत्तिया अणियट्टिअद्धा सेसा, अपुव्वकरणद्धा सव्वा च तत्तियं* । ५२४. एदेण कमेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपरिवड्ढीए ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अण्णो एइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो जादो । ५२५. एवं बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो । ५२६. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअणियट्टी जादो । ५२७. चरिमसमयअणियट्टिस्स ट्ठिदिबंधो सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए† ।

५२८. से काले अपुव्वकरणं पविट्ठो । ५२९. ताधे चेव अप्पसत्थ-उवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च उग्घादिदाणि । ५३०. ताधे चेव मोहणीयस्स णवविहबंधगो जादो । ५३१. ताधे चेव हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमेकदरस्स संघादयस्स उदीरगो, सिया भय-दुगुंछाणमुदीरगो । ५३२. तदो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो परभवियणामाणं बंधगो जादो । ५३३. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णिद्दा-पयलाओ बंधइ । ५३४. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो ।

पल्योपमके संख्यातवें भागसे अधिक वृद्धि होती है जब तक कि जितना अनिवृत्तिकरणका काल शेष है और सर्व अपूर्वकरणका काल है । इस क्रमसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण वृद्धिके साथ सहस्रों स्थितिबन्धोंके बीत जानेपर अन्य स्थितिबन्ध एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान हो जाता है । इस प्रकार क्रमशः स्थितिबन्ध-सहस्रोंके व्यतीत होनेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञीपंचेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध हो जाता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्ध-सहस्रोंके बीतने पर यह चरमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणसंयत होता है । चरमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणसंयतके स्थितिबन्ध अन्तःकोटी सागरोपम अर्थात् लक्षपृथक्त्व सागरप्रमाण होता है ॥५१६-५२७॥

चूर्णिसू०—उसके अनन्तर समयमें वह अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रविष्ट होता है । उसी समय ही अप्रशस्तोपशामनाकरण, निधत्तिकरण, और निकाचनाकरण प्रगट हो जाते हैं । उसी समयमें नौ प्रकारके मोहनीयकर्मका बन्धक होता है । उसी समय हास्य-रति और अरति-शोक, इन दोनोंमेंसे किसी एक युगलका उदीरक होता है । भय और जुगुप्सा युगलका उदीरक होता भी है और नहीं भी होता है । तत्पश्चात् अपूर्वकरणके कालका संख्यातवाँ भाग व्यतीत होनेपर तब वह परभव-सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंका बन्धक होता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्ध-सहस्रोंके व्यतीत होनेपर और अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत होनेपर निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंको बाँधता है । तत्पश्चात् संख्यात् सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणके अन्तिम समयको प्राप्त होता है ॥५२८-५३४॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जत्तिया अणियट्टिअद्धा सेसा अपुव्वकरणद्धा सव्वा च तत्तियं' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १९१२)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें '-मंतोकोडीए'के स्थानपर 'मंतोकोडाकोडीए' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९१२)

५३५. से काले पढमसमयअधापवत्तो जादो । ५३६. तदो पढमसमयअधापवत्तस्स अण्णो गुणसेढिणिक्खेवो पोराणगादो णिक्खेवादो संखेज्जगुणो । ५३७. जाव चरिमसमयअपुव्वकरणादो त्ति सेसे सेसे णिक्खेवो । ५३८. जो पढमसमयअधापवत्तकरणे णिक्खेवो सो अंतोमुहुत्तिओ तत्तिओ चेव । ५३९. तेण परं सिया वड्ढदि, सिया हायदि, सिया अवट्ठायदि । ५४०. पढमसमयअधापवत्तकरणे गुणसंकमो वोच्छिण्णो । सव्वकम्माणमधापवत्तसंकमो जादो । णवरि जेसिं विज्झादसंकमो अत्थि तेसिं विज्झादसंकमो चेव* । ५४१. उवसामगस्स पढमसमयअपुव्वकरणप्पहुडि जाव पडिवदमाणगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति तदो एत्तो संखेज्जगुणं कालं पडिणियत्तो अधापवत्तकरणेण उवसमसम्मत्तद्धमणुपालेदि ।

५४२. एदिस्से उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरदो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, दो वि गच्छेज्ज । ५४३. छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि

चूर्णिसू०–तदनन्तर समयमें वह प्रथमसमयवर्ती अधःप्रवृत्तकरणसंयत अर्थात् अप्रमत्तसंयत हो जाता है । तब अधःप्रवृत्तकरणसंयतके प्रथम समयमें अन्य गुणश्रेणी-निक्षेप पुराने गुणश्रेणी-निक्षेपसे संख्यातगुणा होता है । (उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके प्रथम समयसे लेकर) अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक शेष-शेषमें निक्षेप होता है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो अन्तर्मुहूर्तमात्र निक्षेप होता है, उतना ही अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । उससे आगे कदाचित् बढ़ता है, कदाचित् हानिको प्राप्त होता है और कदाचित् अवस्थित रहता है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें गुणसंक्रमण व्युच्छिन्न हो जाता है और सर्व कर्मोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण प्रारम्भ होता है । विशेषता केवल यह है कि जिन कर्मोंका विध्यातसंक्रमण होता है उनका विध्यातसंक्रमण ही होता है । अर्थात् जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनका तो अधःप्रवृत्तकरण होता है और जिन नपुंसकवेदादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है उनका विध्यातसंक्रमण होता है । उपशामकके श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर सर्वोपशम करके उतरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जो काल है, उससे संख्यातगुणित काल तक लौटता हुआ यह जीव अधः-प्रवृत्तकरणके साथ उपशमसम्यक्त्वके कालको बिताता है । अर्थात् उपशमश्रेणीके चढ़नेके प्रथम समयसे लेकर लौटनेके अपूर्वकरण-संयतके अंतिम समयके पश्चात् भी अप्रमत्त गुणस्थान-वर्ती अधःप्रवृत्तकरण संयत रहने तक द्वितीयोपशमसम्यक्त्वका काल है ॥५३५-५४१॥

चूर्णिसू०–इस उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर वह असंयमको भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है और दोनोंको भी प्राप्त हो सकता है । छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको भी प्राप्त हो सकता है । पुनः सासादनको प्राप्त होकर यदि

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस समस्त सूत्रको इससे पूर्ववर्ती सूत्रकी टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १९१५ पंक्ति ११-१२) । पर इसके सूत्रत्वकी पुष्टि ताडपत्रीय प्रतिसे हुई है ।

गच्छेज्ज । ५४४. आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं । णियमा देवगदिं गच्छदि । ५४५. हंदि तिसु आउएसु एक्केण वि बद्धेण आउगेण ण सक्को कसाए उवसामेदुं । ५४६. एदेण कारणेण णिरयगदि-तिरिक्खजोणि-मणुस्सगदीओ ण गच्छदि ।

५४७. एसा सव्वा परूवणा पुरिसवेदस्स कोहेण उवट्ठिदस्स । ५४८. पुरिसवेदस्स चेव माणेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं । ५४९. तं जहा । ५५०. जाव सत्तणोकसायाणमुवसामणा ताव णत्थि णाणत्तं । ५५१. उवरि माणं वेदंतो कोहमुवसामेदि । ५५२. जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा तद्देही चेव माणेण वि उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा । ५५३. कोधस्स पढमट्ठिदी णत्थि । ५५४. जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोधस्स च माणस्स च पढमट्ठिदी, तद्देही माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी । ५५५. माणे उवसंते एत्तो सेसस्स उवसामेयव्वस्स मायाए लोभस्स च जो कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामणविधी सो चेव कायव्वो* । ५५६. माणेण उवट्ठिदो उवसामेयूण तदो पडिव-

मरता है, तो नरकगति, तिर्यंचगति अथवा मनुष्यगतिको नहीं जा सकता, किन्तु नियमसे देवगतिको जाता है । क्योंकि, ऐसा नियम है कि नरकायु, तिर्यगायु और मनुष्यायु इन तीनों आयुकर्मोंमें से एक भी आयुको बाँधनेवाला जीव कषायोंका उपशम करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकता । इस कारणसे उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादनगुणस्थानको प्राप्त जीव नरकगति, तिर्यग्योनि और मनुष्यगतिको नहीं जाता है ॥५४२-५४६॥

चूर्णिसू०—यह सब प्ररूपणा क्रोधकषायके उदयके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले पुरुषवेदी जीवकी है । मानकषायके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़नेवाले पुरुषवेदी जीवके कुछ विभिन्नता होती है, जो इस प्रकार है—जब तक सात नोकषायोंकी उपशमना होती है, तब तक तो कोई विभिन्नता नहीं है । ऊपर विभिन्नता है जो इस प्रकार है—मानकषायका वेदन करनेवाला जीव पहले क्रोधकषायको उपशमाता है । क्रोधकषायके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके जितना क्रोधका उपशमनकाल है, उतना ही मानकषायके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके क्रोधका उपशमनकाल है । इसके क्रोधकी प्रथमस्थिति नहीं होती है । क्रोधकषायके साथ चढ़नेवाले जीवके जितनी क्रोध और मानकी प्रथमस्थिति है, उतनी ही मानकषायके साथ चढ़नेवाले जीवके मानकी प्रथमस्थिति होती है । मानकषायके उपशम हो जानेपर इससे अवशिष्ट बचे हुए उपशमनके योग्य माया और लोभकी जो उपशमनविधि क्रोधकषायके साथ चढ़नेवाले जीवकी है, वही यहाँ भी प्ररूपणा करना चाहिए । मानकषायके साथ श्रेणी चढ़नेवाले जीवके कषायोंका उपशमन करके और वहाँसे गिरकर लोभकषायका

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'कायव्वो' पदसे आगे '**माणेण उवट्ठिदस्स माणे उवसंते जादे**' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १९१८)

दिदूण लोभं वेदयमाणस्स जो पुव्वपरूविदो विधी सो चेव विधी कायव्वो । ५५७.एवं मायं वेदेमाणस्स ।

५५८. तदो माणं वेदयंतस्स णाणत्तं । ५५९. तं जहा । ५६०. गुणसेढिणिक्खेवो ताव णवण्हं कसायाणं सेसाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण तुल्लो । सेसे सेसे च णिक्खेवो । ५६१. कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पुणो पडिवदमाणगस्स जद्देही माणवेदगद्धा एत्तियमेत्तेणेव कालेण माणवेदगद्धाए अधिच्छिदाए ताधे चेव माणं वेदंतो एगसमएण तिविहं कोहमणुवसंतं करेदि । ५६२. ताधे चेव ओकड्डियूण कोहं तिविहं पि आवलियबाहिरे गुणसेढीए इदरेसिं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण सरिसीए णिक्खिवदि, तदो सेसे सेसे णिक्खिवदि । ५६३. एदं णाणत्तं माणेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स, तस्स चेव पडिवदमाणगस्स ।

५६४. एदं ताव वियासेण णाणत्तं । एत्तो समासणाणत्तं वत्तइस्सामो । ५६५. तं जहा । ५६६. पुरिसवेदयस्स माणेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स अधापवत्तकरणमादिं कादूण जाव चरिमसमयपुरिसवेदो त्ति णत्थि णाणत्तं । ५६७. पढमसमयअवेदगप्पहुडि जाव कोहस्स उवसामणद्धा ताव णाणत्तं । ५६८. माण-माया-लोभाणमुवसामणद्धाए णत्थि णाणत्तं । ५६९. उवसंतेदाणिं णत्थि चेव णाणत्तं । ५७०. तस्स चेव माणेण

वेदन करते हुए जो विधि पूर्वमें प्ररूपित की गई है, वही विधि यहाँ भी प्ररूपण करना चाहिए । इसी प्रकार मायाकषायका वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिए ॥५४७-५५७॥

चूर्णिसू०–इससे आगे मानकषायका वेदन करनेवाले जीवके विभिन्नता होती है; जो कि इस प्रकार है–नवों कषायोंका गुणश्रेणीनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणीनिक्षेपके तुल्य होता है और शेष शेषमें निक्षेप होता है । क्रोधके साथ चढ़े हुए उपशामकके पुनः गिरते हुए जितना मानवेदककाल है, उतनेमात्र कालसे मानवेदककालके अतिक्रमण करनेपर उसी समयमें ही मानका वेदन करता हुआ एक समयके द्वारा तीन प्रकारके क्रोधको अनुपशान्त करता है । उसी समयमें ही तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर इतर कर्मोंके गुणश्रेणीनिक्षेपके सदृश गुणश्रेणीमें निक्षेप करता है और शेष शेषमें निक्षिप्त करता है । मानकषायके साथ चढ़नेवाले उपशामकके और गिरनेवाले उसी पुरुषवेदीके यह उपर्युक्त विभिन्नता है ॥५५८-५६३॥

चूर्णिसू०–ऊपर यह विभिन्नता विस्तारसे कही । अब इससे आगे संक्षेपसे विभिन्नता कहते हैं । वह इस प्रकार है–मानकषायके साथ श्रेणी चढ़नेवाले पुरुषवेदी उपशामकके अधःप्रवृत्तकरणको आदि लेकर पुरुषवेदके अन्तिम समय तक कोई भी विभिन्नता नहीं है । प्रथमसमयवर्ती अवेदकसे लेकर जब तक क्रोधका उपशमनकाल है, तब तक विभिन्नता है । मान, माया और लोभके उपशमनकालमें कोई विभिन्नता नहीं है । कषायोंके उपशान्त होनेके समयमें भी कोई विभिन्नता नहीं है । उसी जीवके मानकषायके साथ चढ़कर और

उवट्ठियूण तदो पडिवदिदूण लोभं वेदेंतस्स णत्थि णाणत्तं । ५७१. मायं वेदेंतस्स णत्थि णाणत्तं । ५७२. माणं वेदयमाणस्स ताव णाणत्तं–जाव कोहो ण ओकड्डिज्जदि, कोहे ओकड्डिदे कोधस्स उदयादिगुणसेढी णत्थि, माणो चेव वेदिज्जदि* । ५७३. एदाणि दोण्णि णाणत्ताणि कोधादो ओकड्डिदादो पाए जाव अधापवत्तसंजदो जादो त्ति ।

५७४. मायाए उवट्ठिदस्स उवसामगस्स केद्देही मायाए पढमट्ठिदी ? ५७५. जाओ कोहेण उवट्ठिदस्स कोधस्स च पढमाणस्स च मायाए च पढमट्ठिदीओ ताओ तिण्णि पढमट्ठिदीओ सपिंडिदाओ मायाए उवट्ठिदस्स मायाए पढमट्ठिदी† । ५७६. तदो मायं वेदेंतो कोहं च माणं च मायं च उवसामेदि । ५७७. तदो लोभमुवसामेंतस्स णत्थि णाणत्तं । ५७८. मायाए उवट्ठिदो उवसामेयूण पुणो पडिवदमाणगस्स लोभं वेदयमाणस्स णत्थि णाणत्तं । ५७९. मायं वेदेंतस्स णाणत्तं । ५८०. तं जहा । ५८१. तिविहाए मायाए तिविहस्स लोहस्स च गुणसेढिणिक्खेवो इदरेहिं कम्मेहिं सरिसो, सेसे सेसे च णिक्खेवो । ५८२. सेसे च कसाए मायं वेदेंतो ओकड्डिहिदि । ५८३. तत्थ

वहाँसे गिरकर लोभकषायका वेदन करनेवाले जीवके भी कोई विभिन्नता नहीं है । माया-को वेदन करनेवालेके भी विभिन्नता नही हैं । मानको वेदन करनेवालेके तब तक विभिन्नता है–जब तक क्रोधका अपकर्षण नहीं करता है । क्रोधके अपकर्षण करनेपर क्रोधकी उदयादि गुणश्रेणी नहीं होती है । वह मानको ही वेदन करता है । क्रोधके अपकर्षणसे लगाकर जब तक अधःप्रवृत्तसंयत होता है तब तक ये दो विभिन्नताएँ होती हैं ॥५६४-५७३॥

शंका–मायाकषायके साथ उपशमश्रेणी चढ़नेवाले उपशामकके मायाकी प्रथमस्थिति कितनी होती है ? ॥५७४॥

समाधान–क्रोधकषायके साथ उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जीवके क्रोध, मान और मायाकी जितनी प्रथमस्थितियाँ हैं, वे तीनों प्रथमस्थितियाँ यदि सम्मिलित कर दी जायँ, तो उतनी मायाकषायके साथ उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जीवके मायाकषायकी प्रथमस्थिति होती है । अतएव मायाका वेदन करनेवाला क्रोध, मान और मायाको एक साथ उपशमाता है ॥५७५॥

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् लोभका उपशमन करनेवाले जीवके कोई विभिन्नता नहीं है । मायाकषायके साथ चढ़ा हुआ और कषायोंका उपशम करके पुनः गिरता हुआ लोभकषाय-का वेदन करनेवाला जो जीव है, उसके कोई विभिन्नता नहीं है । तत्पश्चात् मायाका वेदन करनेवालेके विभिन्नता होती है जो कि इस प्रकार है–तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणी–निक्षेप इतर कर्मोंके सदृश है और शेष शेषमें निक्षेप होता है । मायाका

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'कोहे ओकड्डिदे कोधस्स उदयादि गुणसेढी णत्थि, माणो चेव वेदिज्जदि' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया है । (देखो पृ० १९२१)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अंतरकदमेत्ते चेव मायाए पढमट्ठिदिमेसो ट्ठवेदि' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १९२१)

गुणसेढिणिक्खेवविधिं च इदरकम्मगुणसेढिणिक्खेवेण सरिसं काहिदि ।

५८४. लोभेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । ५८५. तं जहा । ५८६. अंतरकदमेत्ते लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि । जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी, माणस्स च पढमट्ठिदी, मायाए च पढमट्ठिदी, लोभस्स च सांपराइयपढमट्ठिदी, तद्देही लोभस्स पढमट्ठिदी* । ५८७. सुहुमसांपराइयं पडिवण्णस्स णत्थि णाणत्तं । ५८८. तस्सेव पडिवदमाणगस्स सुहुमसांपराइयं वेदेंतस्स णत्थि णाणत्तं ।

५८९. पढमसमयबादरसांपराइयप्पहुडि णाणत्तं वत्तइस्सामो । ५९०. तं जहा । ५९१. तिविहस्स लोभस्स गुणसेढिणिक्खेवो इदरेहिं कम्मेहिं सरिसो । ५९२. लोभं वेदेमाणो सेसे कसाए ओकड्डिहिदि । ५९३. गुणसेढिणिक्खेवो इदरेहिं कम्मेहिं गुणसेढिणिक्खेवेण सव्वेसिं कम्माणं सरिसो, सेसे सेसे च णिक्खिवदि । ५९४. एदाणि णाणत्ताणि जो कोहेण उवसामेदुमुवट्ठादि तेण सह सण्णिकासिज्जमाणाणि† । ५९५. एदे पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स वियप्पा ।

वेदन करनेवाला शेष कषायोंका अपकर्षण करता है और वहाँपर गुणश्रेणी-निक्षेपको भी इतर कर्मोंके गुणश्रेणी-निक्षेपके सदृश करेगा ॥५७६-५८३॥

चूर्णिसू०–लोभकषायके साथ श्रेणी चढ़नेवाले उपशामककी विभिन्नता कहते हैं । वह इस प्रकार है–अन्तरकरण करनेके प्रथम समयमें लोभकी प्रथमस्थितिको करता है । क्रोधके साथ श्रेणी चढ़नेवाले जीवके जितनी क्रोधकी प्रथमस्थिति है, जितनी मानकी प्रथमस्थिति है, जितनी मायाकी प्रथमस्थिति है और जितनी बादरसाम्परायिकलोभकी प्रथमस्थिति है, उतनी सब मिलाकर लोभकी प्रथमस्थिति होती है । पुनः सूक्ष्मसाम्परायिकलोभको प्राप्त होनेवाले जीवके कोई विभिन्नता नहीं है । उसीके नीचे गिरते समय सूक्ष्मसाम्परायका वेदन करते हुए कोई विभिन्नता नहीं है ॥५८४-५८८॥

चूर्णिसू०–अब प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकसंयतसे लेकर आगे जो विभिन्नता है उसे कहते हैं । वह इस प्रकार है–तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणीनिक्षेप इतर कर्मोंके सदृश है । लोभका वेदन करते हुए शेष कषायोंका अपकर्षण करता है । सब कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप इतर कर्मोंके गुणश्रेणीनिक्षेपके सदृश है । शेष शेषमें निक्षेपण करता है । क्रोधकषायके उदयके साथ जो कषायोंके उपशमन करनेके लिए समुद्यत हुआ है, उसके ये उपर्युक्त विभिन्नताएँ होती हैं । अतः उसके साथ सन्निकर्ष करके इन विभिन्नताओंको जानना चाहिए । (यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि जो जीव जिस कषायके उदयके साथ श्रेणी चढ़ता है, वह उसी कषायके अपकर्षण करनेपर अन्तरको पूर्ण करता है ।) ये पुरुषवेदके साथ श्रेणी चढ़नेवाले पुरुषके विभिन्नता-सम्बन्धी विकल्प जानना चाहिए ॥५८९-५९५॥

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स' इसे आदि लेकर आगेके समस्त सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया गया है । (देखो पृ० १९२२-२३)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'जो कोहेण उवसामेदुमुवट्ठादि तेण सह सण्णिकासिज्जमाणाणि' इतने सूत्रांशको टीकामें सम्मिलित कर दिया गया है । (देखो पृ० १९२४)

५९६. इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । ५९७. तं जहा । ५९८. अवेदो सत्तकम्मंसे उवसामेदि । सत्तण्हं पि य उवसामणद्धा तुल्ला । ५९९. एदं णाणत्तं । सेसा सव्वे वियप्पा पुरिसवेदेण सह सरिसा* ।

६००. णवुंसयवेदेणोवट्ठिदस्स उवसामगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । ६०१. तं जहा । ६०२. अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदमुवसामेदि । जा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स उवसामणद्धा तद्देही अद्धा गदा ण ताव णवुंसयवेदमुवसामेदि । तदो इत्थिवेदं उवसामेदि, णवुंसयवेदं पि उवसामेदि चेव । तदो इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए पुण्णाए इत्थिवेदो च णवुंसयवेदो च उवसामिदा भवंति । ताधे चेव चरिमसमए सवेदो भवदि । तदो अवेदो सत्त कम्माणि उवसामेदि । तुल्ला च सत्तण्हं पि कम्माणमुवसामणा । ६०३. एदं णाणत्तं णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स । सेसा वियप्पा ते चेव कायव्वा ।

६०४. एत्तो पुरिसवेदेण सह कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पडिवदमाणगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति एदिस्से अद्धाए जाणि कालसंजुत्ताणि पदाणि तेसिमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ६०५. तं जहा । ६०६.

चूर्णिसू०–अब स्त्रीवेदसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवकी विभिन्नता कहते हैं । वह इस प्रकार है–स्त्रीवेदके उदयके साथ श्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव अपगतवेदी होकर सात कर्म-प्रकृतियोंको उपशमाता है । सातोंका ही उपशमनकाल तुल्य है । यहाँ इतनी ही विभिन्नता है, शेष सर्व विकल्प पुरुषवेदके सदृश हैं ॥५९६-५९९॥

चूर्णिसू०–अब नपुंसकवेदसे श्रेणी चढ़नेवाले उपशामककी विभिन्नता कहते हैं । वह इस प्रकार है–अन्तर करनेके पश्चात् दूसरे समयमें नपुंसकवेदको उपशमाता है । पुरुष-वेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके जो नपुंसकवेदका उपशामनकाल है, उतना काल बीत जाता है, तब तक नपुंसकवेदको नहीं उपशमाता है । तत्पश्चात् स्त्रीवेदको उपशमता है और नपुंसकवेदको भी उपशमाता है । पुनः स्त्रीवेदके उपशामनकालके पूर्ण होनेपर स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही उपशान्त हो जाते हैं । तभी ही यह चरमसमयवर्ती सवेदी होता है । पुनः अपगतवेदी होकर सात कर्मोंको उपशामता है । सातों कर्मोंकी उपशामना समान है । यह नपुंसकवेदसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवकी विभिन्नता है । शेष विकल्प वे ही अर्थात् पुरुषवेदके सदृश ही निरूपण करना चाहिए ॥६००-६०३॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे पुरुषवेदके साथ क्रोधके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले उप-शामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयको आदि लेकर गिरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक इस मध्यवर्ती कालमें जो कालसंयुक्त पद हैं उनके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें इस सूत्रके 'सरिसा' पदके आगे 'एत्तियमेत्तो चेव पत्थतणो विसेसो' इतना टीकांश भी सूत्ररूपसे मुद्रित है । (देखो पृ० १९२४)

सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा । ६०७. उक्कस्सिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा विसेसाहिया । ६०८. जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा च तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । ६०९. पडिवदमाणगस्स जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा विसेसाहिया । ६१०. अंतरकरणद्धा विसेसाहिया । ६११. उक्कस्सिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा च विसेसाहिया । ६१२. चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । ६१३. तं चेव गुणसेढिसीसयं ति भण्णदि । ६१४. उवसंतकसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । ६१५. पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयद्धा संखेज्जगुणा । ६१६. तस्सेव लोभस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ ।

६१७. उवसामगस्स सुहुमसांपराइयद्धा किट्टीणमुवसामणद्धा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी च तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । ६१८. उवसामगस्स किट्टीकरणद्धा विसेसाहिया । ६१९. पडिवदमाणगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा । ६२०. तस्सेव लोहस्स तिविहस्स वि तुल्लो गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । ६२१. उवसामगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया । ६२२. तस्सेव पढमट्ठिदी विसेसाहिया । ६२३. पडिवदमाणयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया । ६२४. पडिवदमाणगस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया । ६२५. तस्सेव मायावेदगस्स छण्णं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ ।

प्रकार है—अनुभागकांडकका जघन्य उत्कीरणकाल सबसे कम है (१) । अनुभागकांडकका उत्कृष्ट उत्कीरणकाल विशेष अधिक है (२) । जघन्य स्थितिबन्धकाल और स्थितिकांडक-उत्कीरणकाल परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं (३) । गिरनेवालेका जघन्य स्थिति-बन्धकाल विशेष अधिक है (४) । अन्तरकरणका काल विशेष अधिक है (५) । उत्कृष्ट स्थितिबन्धकाल और स्थितिकांडकोत्कीरणकाल विशेष अधिक है (६) । चरमसमयवर्ती सूक्ष्म-साम्परायिकका गुणश्रेणीनिक्षेप संख्यातगुणा है (७) । यही गुणश्रेणीनिक्षेप 'गुणश्रेणी शीर्षक' भी कहा जाता है । उपशान्तकषायका गुणश्रेणी निक्षेप संख्यातगुणा है (९) । उसी गिरने-वाले सूक्ष्मसाम्परायिकके लोभका गुणश्रेणी-निक्षेप विशेष अधिक है (१०) ॥६०४-६१६॥

चूर्णिसू०—लोभके गुणश्रेणीनिक्षेपसे उपशामकके सूक्ष्मसाम्परायका काल, कृष्टियोंके उपशमानेका काल और सूक्ष्मसाम्परायिककी प्रथमस्थिति ये तीनों ही परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं (११) । उपशामकका कृष्टिकरणकाल विशेष अधिक है (१२) । गिरनेवाले बादरसाम्परायिकका लोभवेदककाल संख्यातगुणा है (१३) । उसके ही तीनों प्रकारके लोभका गुणश्रेणी-निक्षेप परस्पर तुल्य और विशेष अधिक है (१४) । उपशामक बादरसाम्परायिकका लोभवेदककाल विशेष अधिक है (१५) । उसीके बादर लोभकी प्रथम-स्थिति विशेष अधिक है (१६) । गिरनेवालेका लोभवेदककाल विशेष अधिक है (१७) । गिरनेवालेका मायावेदककाल विशेष अधिक है (१८) । उसी मायावेदकके छह कर्मोंका गुणश्रेणी-निक्षेप विशेष अधिक है (१९) ॥६१७-६२५॥

६२६. पडिवदमाणगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया । ६२७. तस्सेव पडिवदमाणगस्स माणवेदगस्स णवण्हं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । ६२८. उवसामगस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया । ६२९. मायाए पढमट्ठिदी विसेसाहिया । ६३०. मायाए उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३१. उवसामगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया । ६३२. माणस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया । ६३३. माणस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३४. कोहस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३५. छण्णोकसायाणमुवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३६. पुरिसवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३७. इत्थिवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ३६८. णवुंसयवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६३९. खुद्दाभवग्गहणं विसेसाहियं ।

६४०. उवसंतद्धा दुगुणा । ६४१. पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया । ६४२. कोहस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया । ६४३. मोहणीयस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । ६४४. पडिवदमाणगस्स जाव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा सो कालो संखेज्जगुणो । ६४५. उवसामगस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणकालो विसेसाहिओ । ६४६. पडिवदमाणयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । ६४७. उवसामगस्स अणियट्टिअद्धा विसेसाहिया । ६४८. पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । ६४९. उवसामगस्स अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया । ६५०. पडिवदमाणगस्स उक्कस्सओ

चूर्णिसू०-छह कर्मोंके गुणश्रेणी-निक्षेपसे गिरनेवालेके मानका वेदककाल विशेष अधिक है (२०)। उसी गिरनेवाले मानवेदकके नवों कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप अधिक है (२१)। उपशामकका मायावेदककाल विशेष अधिक है (२२) । मायाकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (२३) । मायाका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२४) । उपशामकका मानवेदककाल विशेष अधिक है (२५) । मानकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (२६) । मानका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२७) । क्रोधका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२८) । छह नोकषायोंका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२९) । पुरुषवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३०)। स्त्रीवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३१) । नपुंसकवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३२)। क्षुद्रभवग्रहण विशेष अधिक है (३३) ॥६२५-६३९॥

चूर्णिसू०-क्षुद्रभवके ग्रहणकालसे उपशान्तकाल दुगुना है (३४) । पुरुषवेदकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (३५) । क्रोधकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (३६) । मोहनीयका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३७) । गिरनेवालेके जब तक असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है, तब तकका वह काल संख्यातगुणा है (३८) । उपशामकके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका काल विशेष अधिक है (३९) । गिरनेवालेके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है (४०) । उपशामकके अनिवृत्तिकरणका काल विशेष अधिक है (४१) गिरनेवालेके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है (४२) । उपशामकके

गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ।

६५१. उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमयगुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। ६५२. उवसामगस्स कोधवेदगद्धा संखेज्जगुणा। ६५३. अधापवत्तसंजदस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो। ६५४. दंसणमोहणीयस्स उवसंतद्धा संखेज्जगुणा। ६५५. चारित्तमोहणीयमुवसामगो अंतरं करेंतो जाओ ट्ठिदीओ उक्कीरदि ताओ ट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ। ६५६. दंसणमोहणीयस्स अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ। ६५७. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। ६५८. उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। ६५९. उवसामगस्स मोहणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६६०. पडिवदमाणयस्स मोहणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६६१. उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६६२. एदेसिं चेव कम्माणं पडिवदमाणयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६६३. अंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणो।

६६४. उवसामगस्स जहण्णगो णामा-गोदाणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६६५. वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ६६६. पडिवदमाणगस्स णामा-गोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ६६७. तस्सेव वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ६६८. उवसामगस्स मायासंजलणस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो मासो। ६६९.

अपूर्वकरणका काल विशेष अधिक है (४३)। गिरनेवालेके उत्कृष्ट गुणश्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है (४४) ॥६४०-६५०॥

चूर्णिसू०—गिरनेवालेके गुणश्रेणीनिक्षेपसे उपशामक अपूर्वकरणके प्रथम समयका गुणश्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है (४५)। उपशामकका क्रोधवेदककाल संख्यातगुणा है (४६)। अधःप्रवृत्तसंयतका गुणश्रेणीनिक्षेप संख्यातगुणा है (४७)। दर्शनमोहनीयका उपशान्तकाल संख्यातगुणा है (४८)। चारित्रमोहनीयका उपशामक अन्तर करता हुआ जिन स्थितियोंका उत्कीरण करता है वे स्थितियाँ संख्यातगुणी हैं (४९)। दर्शनमोहनीयकी अन्तरस्थितियाँ संख्यातगुणी हैं (५०)। जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है (५१)। उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है (५२)। उपशामकसे मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५३)। गिरनेवालेके मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५४)। उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५५)। गिरनेवालेके इन्हीं कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५६)। इससे अन्तर्मुहूर्त संख्यातगुणा है (५७) ॥६५१-६६३॥

चूर्णिसू०—अन्तर्मुहूर्तसे उपशामकके नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५८)। वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५९)। गिरनेवालेके नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (६०)। उसीके वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (६१)। उपशामकके संज्वलन मायाका जघन्य

तस्सेव पडिवदमाणगस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बे मासा। ६७०. उवसामगस्स माणसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बे मासा। ६७१. पडिवदमाणगस्स तस्सेव जहण्णओ ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। ६७२. उवसामगस्स कोहसंजलणस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। ६७३. पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मासा। ६७४. उवसामगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि। ६७५. तस्समये चेव संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि।

६७६. पडिवदमाणगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि। ६७७. तस्समए चेव संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चउसट्ठिवस्साणि। ६७८. उवसामगस्स पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६७९. पडिवदमाणयस्स चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६८०. उवसामगस्स णाणावरण दंसणावरण-अंतराइयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। ६८१. पडिवदमाणयस्स तिण्हं घादिकम्माणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। ६८२. उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। ६८३. पडिवदमाणगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो संखेज्जगुणो।

स्थितिबन्ध एक मास है (६२) गिरनेवालेके उसी संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६३)। उपशामकके संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६४)। गिरनेवालेके उसी संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है (६५)। उपशामकके संज्वलन क्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है। (६६)। गिरनेवालेके उसी संज्वलन क्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मास है (६७)। उपशामकके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है (६८)। उसी समयमें ही उपशामकके चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष है (६९) ॥६६४-६७५॥

चूर्णिसू०—गिरनेवालेके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष है (७०)। उसी समयमें ही चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चौंसठ वर्ष है (७१)। उपशामकके संख्यात वर्षकी स्थितिवाला मोहनीयका प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७२)। गिरनेवालेके संख्यात वर्षकी स्थितिवाला मोहनीयका अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७३)। उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७४)। गिरनेवालेके तीन घातियाँ कर्मोंका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७५)। उपशामकके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७६)। गिरनेवालेके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७७) ॥६७६-६८३॥

६८४. उवसामगस्स चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। ६८५. पडिवदमाणगस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। ६८६. उवसामगस्स घादिकम्माणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। ६८७. पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो घादिकम्माणमसंखेज्जगुणो। ६८८. उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। ६८९. पडिवदमाणगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। ६९०. उवसामगस्स णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ पढमो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।

६९१. णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ६९२. मोहणीयस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। ६९३. चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। ६९४. जाओ ट्ठिदीओ परिहाइदूण पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो, ताओ ट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ। ६९५. पलिदोवमं संखेज्जगुणं। ६९६. अणियट्टिस्स पढमसमये ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६९७. पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमये ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

चूर्णिसू०—उपशामकके असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला मोहनीयका अन्तिम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (७८)। गिरनेवालेके असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला मोहनीयका प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (७९)। उपशामकके असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला घातिया कर्मोंका अन्तिम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८०)। गिरनेवालेके असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला घातिया कर्मोंका प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८१) उपशामकके नाम, गोत्र और वेदनीयका असंख्यातवर्षकी स्थितिवाला अन्तिम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८२)। गिरनेवालेके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका असंख्यातवर्षकी स्थितिवाला प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८३)। उपशामकके नाम और गोत्रकर्मका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८४) ॥६८४-६९०॥

चूर्णिसू०—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका पल्योपमका संख्यातवें भागप्रमाण प्रथम स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (८५)। मोहनीयका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण प्रथम स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (८६)। सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें होनेवाला ज्ञानावरणादि कर्मोंका चरम स्थितिकांडक और मोहनीयका अन्तरकरणके समकालभावी चरम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है (८७)। जिन स्थितियोंको कम करके पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध हुआ है, वे स्थितियाँ संख्यातगुणी हैं (८८)। पल्योपम संख्यातगुणा है (८९)। अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (९०)। गिरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (९१)। अपूर्व-

६९८. अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ६९९. पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

७००. पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ७०१. पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमये ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। ७०२. पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमये ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। ७०३. उवसामगस्स अणियट्टिस्स पढमसमये ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ७०४. उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। ७०५. उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

७०६. एत्तो पडिवदमाणयस्स चत्तारि सुत्तगाहाओ अणुभासियव्वाओ। तदो उवसामणा समत्ता भवदि।

करणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (९२)। गिरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (९३) ॥६९१-६९९॥

चूर्णिसू०–गिरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९४)। गिरनेवालेके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। (९५)। गिरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है (९६)। उपशामकके अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९७)। उपशामकके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है (९८)। उपशामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९९) ॥७००-७०५॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार उपशामक-सम्बन्धी अल्पबहुत्वके पश्चात् उपशान्तमोहसे गिरनेवाले जीवके 'पडिवादो कदिविधो' इत्यादि चार सूत्रगाथाओंकी विभाषा करना चाहिए। उनकी विभाषा करनेपर उपशामना समाप्त होती है ॥७०६॥

इस प्रकार चारित्रमोह-उपशामना नामक चौदहवाँ अर्थाधिकार समाप्त हुआ।

---

१५ चरित्तमोहक्खवणा-अत्थाहियारो

१. चरित्तमोहणीयस्स खवणाए अधापवत्तकरणद्धा अपुव्वकरणद्धा अणियट्टिकरणद्धा च एदाओ तिण्णि वि अद्धाओ एगसंबद्धाओ एगावलियाए ओट्टिदव्वाओ। २. तदो जाणि कम्माणि अत्थि तेसिं ठिदीओ ओट्टिदव्वाओ। ३. तेसिं चेव अणुभागफद्दयाणं जहण्णफद्दयप्पहुडि एगफद्दयआवलिया ओट्टिदव्वा।

४. तदो अधापवत्तकरणस्स चरिमसमये अप्पा इदि कट्टु इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियव्वाओ। ५. तं जहा। ६. संकामणपट्ठवगस्स परिणामो केरिसो भवदि त्ति विहासा। ७. तं जहा। ८. परिणामो विसुद्धो पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि विसुज्झमाणो आगदो अणंतगुणाए विसोहीए। ९. जोगे त्ति विहासा। १०. अण्णदरो मणजोगो, अण्णदरो वचिजोगो, ओरालियकायजोगो वा*। ११. कसाये त्ति विहासा।

१५ चारित्रमोहक्षपणा-अर्थाधिकार

कर्म-क्षय कर जो बने, शुद्ध बुद्ध अविकार।
भाषूँ तिनको नमन कर, यह क्षपणा अधिकार॥

चूर्णिसू०–चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अधःप्रवृत्तकरणकाल, अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकाल, ये तीनों काल परस्पर-सम्बद्ध और एकावली अर्थात् ऊर्ध्व एक श्रेणीके आकारसे विरचित करना चाहिए। तदनन्तर जो कर्म सत्तामें विद्यमान हैं, उनकी स्थितियोंकी पृथक्-पृथक् रचना करना चाहिए। उन्हीं कर्मोंके अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंकी जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक तक एक स्पर्धकावली रचना चाहिए ॥१-३॥

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें 'आत्मा विशुद्धिके द्वारा बढ़ता है' इसे आदि करके इन वक्ष्यमाण प्रस्थापनासम्बन्धी चार सूत्र-गाथाओंकी विभाषा करना चाहिए। वह इस प्रकार हैं–'संक्रामण-प्रस्थापकके अर्थात् कषायोंका क्षपण प्रारम्भ करनेवालेके परिणाम किस प्रकारके होते हैं' इस प्रथम गाथाकी विभाषा की जाती है। वह इस प्रकार है परिणाम विशुद्ध होते हैं और कषायोंका क्षपण प्रारम्भ करनेके भी अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होते हुए आरहे हैं। 'योग' इस पदकी विभाषा की जाती है–कषायोंका क्षपण करनेवाला जीव चारों मनोयोगोंमेंसे किसी एक मनोयोगवाला, चारों वचनयोगोंमेंसे किसी एक वचनयोगवाला और औदारिककाययोगी होता है। 'कषाय' इस पदकी विभाषा की जाती है–चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायके उदयसे संयुक्त होता है। क्या

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अण्णदरो ओरालियकायजोगो वा' ऐसा पाठ है। (देखो पृ० १९४२)

१२. अण्णदरो कसायो । १३. किं वड्ढमाणो हायमाणो ? णियमा हायमाणो । १४. उवजोगेत्ति विहासा । १५. एक्को उवएसो णियमा सुदोवजुत्तो होदूण खवगसेढिं चडदि त्ति । १६. एक्को उवदेसो सुदेण वा, मदीए वा, चक्खुदंसणेण वा, अचक्खुदंसणेण वा । १७. लेस्सा त्ति विहासा । १८. णियमा सुक्कलेस्सा । १९. णियमा वड्ढमाणलेस्सा । २०. वेदो व को भवे त्ति विहासा । २१. अण्णदरो वेदो ।

२२. काणि वा पुव्वबद्धाणि त्ति विहासा । २३. एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं । २४. के वा अंसे णिबंधदि त्ति विहासा । २५. एत्थ पयडिबंधो ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो । २६. कदि आवलियं पविसंति त्ति विहासा । २७. मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति । उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि, ताओ पविसंति । २८. कदिण्हं वा पवेसगो त्ति विहासा । २९. आउग-वेदणीयवज्जाणं वेदिज्जमाणाणं कम्माणं पवेसगो ।

३०. के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा त्ति विहासा । ३१. थीणगिद्धि-

---

वर्धमान कषाय होती है, अथवा हीयमान ? नियमसे हीयमान कषाय होती है । 'उपयोग' इस पदकी विभाषा की जाती है–इस विषयमें एक उपदेश तो यह है कि नियमसे श्रुतज्ञानरूप उपयोगसे उपयुक्त होकर ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है । एक दूसरा उपदेश यह है कि श्रुतज्ञानसे, अथवा मतिज्ञानसे, चक्षुदर्शनसे अथवा अचक्षुदर्शनसे उपयुक्त होकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है । 'लेश्या' इस पदकी विभाषा की जाती है–चारित्रमोहकी क्षपणा प्रारम्भ करनेवालेके नियमसे शुक्ललेश्या होती है । वह भी वर्धमान लेश्या होती है । 'कौन-सा वेद होता है' इस पदकी विभाषा की जाती है–क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद होता है ॥४-२१॥

चूर्णिसू०–'कौन कौन कर्म पूर्वबद्ध हैं' इस दूसरी प्रस्थापन-गाथाके प्रथम पदकी विभाषा की जाती है–यहाँपर अर्थात् क्षपणा प्रारम्भ करनेवालेके प्रकृतिसत्त्व, स्थितिसत्त्व, अनुभागसत्त्व और प्रदेशसत्त्वका अनुमार्गण करना चाहिए । 'कौन कौन कर्मांशोंको बाँधता है' दूसरी गाथाके इस दूसरे पदकी विभाषा की जाती है–यहाँपर प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका अनुमार्गण करना चाहिए । 'कितनी प्रकृतियाँ उदयावलीमें प्रवेश करती हैं' दूसरी गाथाके इस तीसरे पदकी विभाषा की जाती है–क्षपणा प्रारम्भ करनेवाले जीवके उदयावलीमें मूलप्रकृतियाँ तो सभी प्रवेश करती हैं । उत्तरप्रकृतियाँ भी जो सत्तामें विद्यमान हैं, वे प्रवेश करती हैं । 'कितनी प्रकृतियोंका उदयावलीमें प्रवेश करता है' इस चौथे पदकी विभाषा की जाती है–आयु और वेदनीय कर्मको छोड़कर वेदन किये जानेवाले सर्व कर्मोंको प्रवेश करता है ॥२२-२९॥

चूर्णिसू०–'कौन कौन कर्मांश बन्ध अथवा उदयकी अपेक्षा पहले निर्जीर्ण होते हैं' तीसरी गाथाके इस पूर्वार्धकी विभाषा की जाती है–स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय,

तियमसाद-मिच्छत्त-बारसकसाय-अरदि-सोग-इत्थिवेद-णवुंसयवेद-सव्वाणि चेव आउ-आणि परियत्तमाणियाओ णामाओ असुहाओ सव्वाओ चेव मणुसगइ-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी आदावुज्जोवणामाओ च सुहाओ णीचागोदं च एदाणि कम्माणि बंधेण वोच्छिण्णाणि। ३२. थीणगिद्धितियं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय मणुसाउगवज्जाणि आउगाणि णिरयगइ-तिरिक्खगइ-देवगइपाओग्गणामाओ आहारदुगं च वज्जरिसहसंघडणवज्जाणि सेसाणि संघडणाणि मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अपज्जत्तणामं असुहतियं तित्थयरणामं च सिया, णीचागोदं एदाणि कम्माणि उदएण वोच्छिण्णाणि। ३३. अंतरं वा कहिं किच्चा के के संकामगो कहिं त्ति विहासा। ३४. ण ताव अंतरं करेदि, पुरदो काहिदि त्ति अंतरं।

३५. किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा। ओवट्टेयूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि त्ति विहासा। ३६. एदीए गाहाए ट्ठिदिघादो अणुभागघादो च सूचिदो भवदि। ३७. तदो इमस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदि-घादो अणुभागघादो वा। से काले दो वि घादा पवत्तिहिंति।

अरति, शोक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, सभी आयुकर्म, परिवर्तमान सभी अशुभ नाम-प्रकृतियाँ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपाँग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, और उद्योत नामकर्म, ये शुभ प्रकृतियाँ; तथा नीचगोत्र, इतने कर्म क्षपणा प्रारम्भ करनेवालेके बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाते हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, मनुष्यायुको छोड़कर शेष आयु; नरकगति, तिर्यंचगति और देवगतिके प्रायोग्य नामकर्मकी प्रकृतियाँ; आहारद्विक, वज्रवृषभनाराचसंहननके अतिरिक्त शेष संहनन, मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अपर्याप्तनाम, अशुभत्रिक, कदाचित् तीर्थंकर-नामकर्म और नीचगोत्र; इतने कर्म क्षपणा प्रारम्भ करनेवालेके उदयसे व्युच्छिन्न हो जाते हैं। 'कहाँपर अन्तर करके किन-किन कर्मोंको कहाँ संक्रमण करता है' तीसरी गाथाके इस उत्तरार्धकी विभाषा की जाती है–यह अधःप्रवृत्तकरणसंयत यहाँपर अन्तर नहीं करता है, किन्तु आगे अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर अन्तर करेगा ॥३०-३४॥

चूर्णिसू०–कषायोंकी क्षपणा करनेवाला जीव 'किस-किस स्थिति और अनुभाग-विशिष्ट कौन-कौनसे कर्मोंका अपवर्तन करके किस-किस स्थानको प्राप्त करता है और शेष कर्म किस स्थिति तथा अनुभागको प्राप्त होते हैं।' इस चौथी प्रस्थापन-गाथाकी विभाषा की जाती है–इस गाथाके द्वारा स्थितिघात और अनुभागघात सूचित किया गया है। इसलिए अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें वर्तमान कर्म-क्षपणार्थ समुद्यत इस जीवके न तो स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है। किन्तु तदनन्तरकालमें ये दोनों ही घात प्रारम्भ होंगे ॥३५-३७॥

३८. पढमसमयअपुव्वकरणं पविट्ठेण ट्ठिदिखंडयमागाइदं । ३९. अणुभागखंडयं च आगाइदं । ४०. तं पुण अप्पसत्थाणं कम्माणमणंता भागा । ४१. कसायक्खवगस्स अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयस्स पमाणाणुगमं वत्तइस्सामो । ४२. तं जहा । ४३. अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं थोवं । ४४. उक्कस्सयं संखेज्जगुणं । ४५. उक्कस्सयं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।

४६. जहा दंसणमोहणीयस्स उवसामणाए च दंसणमोहणीयस्स खवणाए च कसायाणमुवसामणाए च एदेसिं तिण्हमावासयाणं जाणि अपुव्वकरणाणि तेसु अपुव्वकरणेसु पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सयं सागरोवमपुधत्तं । एत्थ पुण कसायाणं खवणाए जं अपुव्वकरणं तम्हि अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं पि उक्कस्सयं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।

४७. दो कसायक्खवगा अपुव्वकरणं समगं पविट्ठा । एक्कस्स पुण ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं, एक्कस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । जस्स संखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिसंतकम्मं, तस्स ट्ठिदिखंडयादो पढमादो संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मियस्स ट्ठिदिखंडयं पढमं संखेज्जगुणं । विदियादो विदियं संखेज्जगुणं । एवं तदियादो तदियं । एदेण कमेण सव्वम्हि

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रवेश करनेवाले क्षपकके द्वारा स्थितिकांडक घात करनेके लिए ग्रहण किया गया और अनुभागकांडक भी घात करनेके लिए ग्रहण किया गया । यह अनुभागकांडक अप्रशस्त कर्मोंके अनन्त बहुभागप्रमाण है । कषायोंका क्षपण करनेवाले जीवके अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रथम स्थितिकांडकके प्रमाणानुगमको कहते हैं । वह इस प्रकार है–अपूर्वकरणमें जघन्य प्रथम स्थितिकांडक सबसे कम है । उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणा है । वह उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है ॥३८-४५॥

चूर्णिसू०–जिस प्रकार दर्शनमोहनीयकी उपशामनामें, दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें और कषायोंकी उपशामनामें इन तीनों आवश्यकोंके जो अपूर्वकरण-काल हैं, उन अपूर्वकरणोंमें जघन्य प्रथम स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट सागरोपम-पृथक्त्व-प्रमाण है, उस प्रकार यहाँ नहीं है । किन्तु यहाँपर कषायोंकी क्षपणामें जो अपूर्वकरण-काल है, उस अपूर्वकरणमें जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही प्रथम स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥४६॥

चूर्णिसू०–कषायोंका क्षपण करनेके लिए समुद्यत दो क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थानमें एक साथ प्रविष्ट हुए । इनमेंसे एकका तो स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है और एकका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित हीन है । जिसका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन है, उसके प्रथम स्थितिकांडकसे संख्यातगुणित स्थितिसत्त्ववाले क्षपकका प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है । इसी प्रकार प्रथमके दूसरे स्थितिकांडकसे द्वितीयका दूसरा स्थितिकांडक संख्यातगुणा है । इसी प्रकार तीसरेसे तीसरा स्थितिकांडक संख्यातगुणा है । इस क्रमसे अपूर्वकरणके

अपुव्वकरणे जाव चरिमादो ठिदिखंडयादो त्ति तदिमादो तदिमं संखेज्जगुणं। ४८. एसा ट्ठिदिखंडयपरूवणा अपुव्वकरणे।

४९. अपुव्वकरणस्स पढमसमये जाणि आवासयाणि ताणि वत्तइस्सामो। ५०. तं जहा। ५१. ट्ठिदिखंडयमागाइदं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो अप्पसत्थाणं कम्माणमणंता भागा अणुभागखंडयमागाइदं। ५२. पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधेण ओसरिदो। ५३. गुणसेढी उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसुत्तरकालो*। ५४. जे अप्पसत्थकम्मंसा ण बज्झंति, तेसिं कम्माणं गुणसंकमो जादो†। ५५ तदो ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठिदिबंधो च सागरोवमकोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए। बंधादो पुण संतकम्मं संखेज्जगुणं। ५६. एसा अपुव्वकरणपढमसमए परूवणा।

५७. एत्तो विदियसमए णाणत्तं। ५८. तं जहा। ५९. गुणसेढी असंखेज्जगुणा। सेसे च णिक्खेवो। विसोही च अणंतगुणा। सेसेसु आवासएसु णत्थि णाणत्तं। ६०. एवं जाव पढमाणुभागखंडयं समत्तं त्ति। ६१. से काले अण्णमणुभागखंडयमागाइदं सेसस्स अणंता भागा। ६२. एवं संखेज्जेसु अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणु-

सर्व कालमें अन्तिम स्थितिकांडक तक एकसे दूसरा संख्यातगुणित जानना चाहिए। इस प्रकार यह अपूर्वकरणमें स्थितिकांडककी प्ररूपणा की गई ॥४७-४८॥

चूर्णिसू०–अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो आवश्यक होते हैं, उन्हें कहेंगे। वे इस प्रकार हैं–आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ग्रहण करता है। अनुभागकांडक अप्रशस्त कर्मोंके अनन्त बहुभागप्रमाण ग्रहण करता है। पल्योपमका संख्यातवाँ भाग स्थितिबन्धसे घटाता है। उदयावलीके बाहिर निक्षिप्त गुणश्रेणी अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक है। जो अप्रशस्त कर्म नहीं बँधते हैं, उस कर्मोंका गुणसंक्रमण होता है। तदनन्तर स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी अर्थात् सागरोपमकोटिशतसहस्रप्रमाण होता है। किन्तु बन्धसे सत्त्व संख्यातगुणा होता है। यह अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आवश्यकोंकी प्ररूपणा हुई ॥४९-५६॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे द्वितीय समयमें जो विभिन्नता है, उसे कहते हैं। वह इस प्रकार है–यहाँ गुणश्रेणी असंख्यातगुणी है। शेषमें निक्षेप करता है और विशुद्धि अनन्तगुणी है। शेष आवश्यकोंमें कोई विभिन्नता नहीं है। यह क्रम प्रथम अनुभागकांडकके समाप्त होने तक जानना चाहिए। तदनन्तरकालमें अन्य अनुभागकांडकको ग्रहण करता है जो कि घात करनेसे शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागप्रमाण है। इस प्रकार संख्यात सहस्र

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसुत्तरकालो' इतने सूत्रांशको टीकाका अंग बना दिया गया है। (देखो पृ० १९५१)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें यह पूरा सूत्र सूत्राङ्क ५३ की टीकाके अन्तर्गत मुद्रित है (देखो पृ० १९५१)। पर इस स्थलकी टीकासे ही उसकी सूत्रता सिद्ध है।

भागखंडयं पढमट्ठिदिखंडयं च, जो च पढमसमए अपुव्वकरणे ट्ठिदिबंधो पबद्धो एदाणि तिण्णि वि समगं णिट्ठिदाणि । ६३. एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो । ६४. ताधे चेव ताणि गुणसंकमेण संकमंति । ६५. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु परभवियणामाणं बंधवोच्छेदो जादो । ६६. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो । ६७. से काले पढम-समयअणियट्टी जादो ।

६८. पढमसमयअणियट्टिस्स आवासयाणि वत्तइस्सामो । ६९. तं जहा । ७०. पढमसमयअणियट्टिस्स अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ७१. अण्ण-मणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा । ७२. अण्णो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागेण हीणो । ७३. पढमट्ठिदिखंडयं विसमं जहण्णयादो उक्कस्सयं संखेज्जभागुत्तरं ।

७४. पढमे ठिदिखंडये हदे सव्वस्स तुल्लकाले अणियट्टिपविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं ट्ठिदिखंडयं पि सव्वस्स अणियट्टिपविट्ठस्स विदियट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदि-खंडयं तुल्लं । तदोप्पहुडि तदियादो तदियं तुल्लं । ७५. ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्स-

---

अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर अन्य अनुभागकांडक, प्रथम स्थितिकांडक और जो अपूर्व-करणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध बांधा था वह, ये तीनों ही एक साथ समाप्त हो जाते हैं । इस प्रकार स्थितिबन्ध-सहस्रोंके द्वारा अपूर्वकरणके कालका संख्यातवाँ भाग व्यतीत होनेपर निद्रा और प्रचलाका बन्धव्युच्छेद हो जाता है । उसी समयमें ही वे दोनों प्रकृतियाँ गुण-संक्रमणके द्वारा अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमण करती हैं । तदनन्तर स्थितिबन्ध-सहस्रोंके व्यतीत होनेपर पर-भवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाती है । तदनन्तर स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका चरम समय प्राप्त होता है । तदनन्तर कालमें वह प्रथम समयवर्ती अनिवृत्तिकरणसंयत हो जाता है ॥५७-६७॥

चूर्णिसू०–प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणसंयतके जो आवश्यक होते हैं, उन्हें कहते हैं । वे इस प्रकार हैं–अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण अन्य स्थितिकांडक होता है, अन्य अनुभागकांडक होता है, जो कि घातसे शेष रहे अनु-भागके अनन्त बहुभागप्रमाण है । पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है। (अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयवर्ती नानाजीवोंके परिणाम सदृश होते हुए भी) प्रथम स्थितिकांडक विषम ही होता है और जघन्य प्रथम स्थितिकांडकसे उत्कृष्ट प्रथम स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागसे अधिक होता है ॥६८-७३॥

चूर्णिसू०–प्रथम स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर अनिवृत्तिकरणमें समानकालमें वर्तमान सब जीवोंका स्थितिसत्त्व और स्थितिकांडक भी समान होता है । अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए सब जीवोंका द्वितीय स्थितिकांडकसे द्वितीय स्थितिकांडक समान होता है, और उससे आगे तृतीय स्थितिकांडकसे तृतीय स्थितिकांडक समान होता है । (यही क्रम आगे

पुधत्तमंतो सदसहस्सस्स । ७६. ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए । ७७. गुणसेढिणिक्खेवो जो अपुव्वकरणे णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे च भवदि । ७८. सव्वकम्माणं पि तिण्णि करणाणि वोच्छिण्णाणि । जहा—अप्पसत्थउवसामणकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च । ७९. एदाणि सव्वाणि पढमसमयअणियट्टिस्स आवासयाणि परूविदाणि ।

८०. से काले एदाणि चेव । णवरि गुणसेढी असंखेज्जगुणा । सेसे सेसे च णिक्खेवो । विसोही च अणंतगुणा । ८१. एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो असण्णिट्ठिदिबंधसमगो जादो । ८२. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो जादो । ८३. एवं तीइंदियसमगो बीइंदियसमगो एइंदियसमगो जादो । ८४. तदो एइंदिय-ट्ठिदिबंधसमगादो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । ८५. ताधे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो । ८६. मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो । ८७. ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं ।

भी जानना चाहिए ।) अनिवृत्तिकरणमें स्थितिबन्ध सागरोपम-सहस्रपृथक्त्व अर्थात् लक्ष-सागरोपमके अन्तर्गत रहता है । स्थितिसत्त्व सागरोपम-शतसहस्रपृथक्त्व अर्थात् अतःकोडी सागरोपम रहता है । गुणश्रेणीनिक्षेप, जो अपूर्वकरणमें निक्षेप था, उसके शेष शेषमें ही निक्षेप होता है । अनिवृत्तिकरणमें सभी कर्मोंके अप्रशस्तोपशामनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण, ये तीनों ही करण व्युच्छिन्न हो जाते हैं । ये सब प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके आवश्यक कहे ॥७४-७९॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें ये उपर्युक्त ही आवश्यक होते हैं, विशेषता केवल यह है कि यहाँ गुणश्रेणी असंख्यातगुणी होती है । शेष शेषमें निक्षेप होता है । विशुद्धि भी अनन्तगुणी होती है । इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर तब अन्य स्थितिबन्ध असंज्ञी जीवके स्थितिबन्धके सदृश होता है । पुनः संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है । इस प्रकार क्रमशः त्रीन्द्रियके सदृश, द्वीन्द्रियके सदृश और एकेन्द्रियके सदृश स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्धसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर नाम और गोत्र कर्मका पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध होता है । उसी समय ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मका डेढ़ पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । मोहनीयका दो पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । उस समयमें सर्व कर्मोंका स्थितिसत्त्व सागरोपमशत-सहस्रपृथक्त्व है ॥८०-८७॥

८८. जाधे णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ताधे अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ८९. तं जहा । ९०. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । ९१. णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ९२. मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ९३. अदिक्कंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेण अप्पाबहुअविहिणा गदा ।

९४. तदो णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगे बंधे* पुण्णे जो अण्णो ठिदिबंधो, सो संखेज्जगुणहीणो । ९५. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो विसेसहीणो । ९६. ताधे अप्पाबहुअं । णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । ९७. चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो । ९८. मोहणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ । ९९. एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । १०० तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । १०१. ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । १०२. तदो अण्णो ठिदिबंधो चदुण्हं कम्माणं संखेज्जगुणहीणं । १०३. ताधे अप्पाबहुअं । णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । १०४. चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो† । १०५. मोहणीयस्स ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । १०६. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि ।

चूर्णिसू०–जिस समय नाम और गोत्रका पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उस समयका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम है । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तरायका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । अतिक्रान्त अर्थात् इससे पूर्वमें वर्णित सभी स्थितिबन्ध इसी अल्पबहुत्वविधानसे व्यतीत हुए हैं ॥८८-९३॥

चूर्णिसू०–पुनः नाम और गोत्रका पल्योपमकी स्थितिवाला बन्ध पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है, वह संख्यातगुणा हीन होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है–नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम है । ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा है । मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मका स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण होता है । उसी समय मोहनीयका त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका जो अन्य स्थितिबन्ध है वह संख्यातगुणाहीन है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है–नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम है । ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं ॥९४-१०६॥

---

* ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो' ऐसा पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९५७)

† ताम्रपत्रवाली प्रतिमें 'असंखेज्जगुणो' पाठ मुद्रित है । (देखो पृ० १९५८)

१०७. तदो मोहणीयस्स पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। १०८. सेसाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिबंधो। १०९. एदम्हि ठिदिबंधे पुण्णे मोहणीयस्स ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। ११०. तदो सव्वेसिं कम्माणं ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव। १११. ताधे वि अप्पाबहुअं। णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो। ११२. णाणावरण-दंसणावरण वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ११३. मोहणीयस्स ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ११४. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि।

११५. तदो अण्णो ठिदिबंधो जाधे णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ताधे सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। ११६. ताधे अप्पाबहुअं णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो। ११७. चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। ११८. मोहणीयस्स ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। ११९. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तिण्हं घादिकम्माणं वेदणीयस्स च पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो। १२०. ताधे अप्पाबहुअं णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो। १२१. चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। १२२. मोहणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। तत्पश्चात् सब कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही होता है। उस समय भी अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं ॥१०७-११४॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध होता है। जिस समय नाम और गोत्रकर्मका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है, उस समय शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर तीन घातिया कर्मोंका और वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है। ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यात गुणा होता है ॥११५-१२२॥

१२३. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो । १२४ ताधे सव्वेसिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो । १२५. ताधे ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसहस्सपुधत्तमंतोसदसहस्सस्स । १२६. जाधे पढमदाए मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो, ताधे अप्पाबहुअं । १२७. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । १२८. चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । १२९. मोहणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।

१३०. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । १३१. तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । १३२. मोहणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १३३. चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । १३४. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो । १३५. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १३६. चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

१३७. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो । १३८. णामा-गोदाणं

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर मोहनीयका भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है । उसी समय शेष सर्व कर्मोंका भी स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । उस समय सर्व कर्मोंका स्थितिसत्त्व सागरोपम-सहस्रपृथक्त्व है, जो कि सागरोपम-लक्षके अन्तर्गत है । जिस समय प्रथम वार मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर समान और असंख्यातगुणा है । मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है ॥१२३-१२९॥

चूर्णिसू०—इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् जिस समयमें अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उस समयमें एक साथ नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है । मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर समान और असंख्यातगुणा होता है । इस क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उस समयमें एक साथ ही मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम हो जाता है । नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है और शेष चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है ॥१३०-१३६॥

चूर्णिसू०—इस उपर्युक्त क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उस समय एक साथ मोहनीयका

ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १३९. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १४०. वेदणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १४१. एवं संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । १४२. तदो अण्णो ठिदिबंधो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो । १४३. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १४४. णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । १४५. वेदणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

१४६. एदेणेव कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । १४७. तदो ठिदिसंतकम्ममसण्णिठिदिबंधेण समगं जादं । १४८. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियठिदिबंधेण समगं जादं । १४९. एवं तीइंदिय-बीइंदियठिदिबंधेण समगं जादं । १५०. तदो संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु एइंदियठिदिबंधेण समगं ठिदिसंतकम्मं जादं । १५१. तदो संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं ।

१५२. ताधे चदुण्हं कम्माणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं । १५३. मोहणीयस्स वि वेपलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं । १५४. एदम्मि ठिदिखंडए उक्किण्णे णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं ठिदिसंतकम्मं । १५५. ताधे अप्पाबहुअं । सव्वत्थोवं

स्थितिबन्ध सबसे कम हो जाता है । नाम और गोत्रका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । वेदनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । इस प्रकार संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है । उस समय एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है ॥१३७-१४५॥

चूर्णिसू०—इस ही क्रमसे संख्यात सहस्र स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं । तब सब कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके स्थितिबन्धके समान हो जाता है । तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिबन्धोंके बीत जानेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके समान स्थितिसत्त्व हो जाता है । इसी प्रकार क्रमशः त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्त्व होता है । पुनः संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्त्व हो जाता है । तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर नाम और गोत्र कर्मका स्थितिसत्त्व पल्योपमप्रमाण हो जाता है ॥१४६-१५१॥

चूर्णिसू०—उस समय ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व डेढ़ पल्योपम-प्रमाण है । मोहनीयका भी स्थितिसत्त्व दो पल्योपम-प्रमाण है । इस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेपर नाम और गोत्र कर्मका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व सबसे कम है । चार कर्मोंका स्थिति-

णामा-गोदाणं ठिदिसंतकम्मं । १५६. चउण्हं कम्माणं ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं । १५७. मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । १५८. एदेण कमेण ठिदिखंडयपुधत्ते गदे तदो चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं । १५९. ताधे मोहणीयस्स पलिदोवमं तिभागुत्तरं ठिदिसंतकम्मं ।

१६०. तदो ट्ठिदिखंडए पुण्णे चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं । १६१. ताधे अप्पाबहुअं । सव्वत्थोवं णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं । १६२. चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं । १६३. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । १६४. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं पलिदोवमं जादं ।

१६५. तदो ट्ठिदिखंडए पुण्णे सत्तण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । १६६. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । १६७. ताधे अप्पाबहुअं । सव्वत्थोवं णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं । १६८. चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । १६९. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । १७०. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । १७१. ताधे अप्पाबहुअं । णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । १७२. चउण्हं कम्माणं ट्ठिदि-

---

सत्त्व परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है । इस क्रमसे स्थितिकांडकपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमप्रमाण होता है । उसी समय मोहनीयका स्थितिसत्त्व त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण होता है॥ १५२-१५९॥

चूर्णिसू०-तत्पश्चात् स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है-नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व सबसे कम है । चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर समान और संख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है । तत्पश्चात् स्थितिकांडक-पृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्त्व पल्योपमप्रमाण हो जाता है ॥१६०-१६४॥

चूर्णिसू०-तदनन्तर स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर सात कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । पुनः संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है-नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व सबसे कम है । चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर समान और असंख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके पश्चात् चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है-नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व सबसे कम है । चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा है ।

संतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं। १७३. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १७४. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं। १७५. ताधे अप्पाबहुअं। जधा–णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। १७६. चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं। १७७. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणं।

१७८. एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि। १७९. तदो णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। १८०. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १८१. चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं। १८२. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण गदे एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। १८३. णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १८४. चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं।

१८५. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। १८६. णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणं। १८७. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १८८. वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १८९. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। १९०. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १९१. णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं। १९२. वेदणीयस्स

मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके पश्चात् मोहनीयका भी स्थितिसत्त्व पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है–नाम और गोत्रकर्मका स्थितिसत्त्व सबसे कम है। चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा है ॥१६५-१७७॥

चूर्णिसू०–इस क्रमसे संख्यातसहस्र स्थितिकांडक व्यतीत होते हैं। तब नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व सबसे कम होता है। मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है। तत्पश्चात् स्थितिकांडक पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर एक साथ मोहनीयका स्थितिसत्त्व सबसे कम हो जाता है। नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा होता है ॥१७८-१८४॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर स्थितिकांडक-पृथक्त्वके पश्चात् मोहनीयका स्थितिसत्त्व सबसे कम हो जाता है। नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। वेदनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके पश्चात् मोहनीयका स्थितिसत्त्व सबसे कम होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। नाम और गोत्रकर्मका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है। वेदनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे

ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। १९३. एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि। १९४. तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा।

१९५. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अट्ठण्हं कसायाणं संकामगो। १९६. तदो अट्ठकसाया ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण संकामिज्जंति। १९७. अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडए उक्किण्णे तेसिं संतकम्ममावलियपविट्ठं सेसं। १९८. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीणं णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गणामाणं संतकम्मस्स संकामगो। १९९. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे एदेसिं सोलसण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममावलियब्भंतरं सेसं।

२००. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणं च अणुभागो बंधेण देसघादी जादो। २०१. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। २०२. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-भोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। २०३. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीय-अणुभागो बंधेण देसघादी जादो। २०४. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण आभिणिबोहियणाणावरणीय-परिभो-

संख्यात सहस्र स्थितिकांडक व्यतीत होते हैं। तत्पश्चात् असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है ॥१८५-१९४॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर आठ मध्यम कषायोंका संक्रामक अर्थात् क्षपणाका प्रारम्भक होता है। तत्पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वसे आठ कषाय संक्रान्त की जाती हैं। आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेपर उनका स्थितिसत्त्व आवली-प्रविष्ट शेष अर्थात् उदयावलीप्रमाण रहता है। पुनः स्थितिकांडक-पृथक्त्वके पश्चात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि तथा नरकगति और तिर्यंचगति-के प्रायोग्य नामकर्मकी तेरह प्रकृतियोंके स्थितिसत्त्वका संक्रामक होता है। (वे तेरह प्रकृ-तियाँ ये हैं—नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण।) पुनः स्थिति-कांडकपृथक्त्वसे अपश्चिम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेपर इन उपर्युक्त सोलह कर्मोंका स्थितिसत्त्व उदयावली-प्रविष्ट शेष रहता है ॥१९५-१९९॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दाना-न्तरायकर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो जाता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय कर्मका अनुभाग बंधकी अपेक्षा देशघाती हो जाता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षु-दर्शनावरणीय और भोगान्तराय कर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो जाता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा चक्षुदर्शनावरणीय कर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो

गंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो । २०५. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण वीरियंतराइयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी जादो ।

२०६. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयमण्णो ट्ठिदिबंधो अंतरट्ठिदीओ च उक्कीरिदुं चत्तारि वि एदाणि करणाणि समगमाढत्तो । २०७. चउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणमेदेसिं तेरसण्हं कम्माणमंतरं[1] । २०८. सेसाणं कम्माणं णत्थि अंतरं । २०९. पुरिसवेदस्स च कोहसंजलणाणं च पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूणमंतरं करेदि । सेसाणं कम्माणमावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि । २१०. जाओ अंतरट्ठिदीओ उक्कीरंति तासिं पदेसग्गमुक्कीरमाणियासु ट्ठिदीसु ण दिज्जदि । २११. जासिं पयडीणं पढमट्ठिदी अत्थि तिस्से पढमट्ठिदीए जाओ संपहि-ट्ठिदीओ उक्कीरंति तमुक्कीरमाणगं पदेसग्गं संछुहदि । २१२. अध जाओ बज्झंति पयडीओ तासिमाबाहामधिच्छियूण जा जहण्णिया णिसेगठिदी तमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु उक्कड्डिज्जदे । २१३. संपहि अवट्ठिदअणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं जो च अंतरे

जाता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय कर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो जाता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा वीर्यान्तरायकर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाती हो जाती है ॥२००-२०६॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके बीत जानेपर अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक, अन्य स्थितिबन्ध और उत्कीरण करनेके लिए अन्तर-स्थितियाँ, इन चारों करणोंको एक साथ आरम्भ करता है । चारों संज्वलन और नवों नोकषाय वेदनीय, इन तेरह कर्मोंका अन्तर करता है । शेष कर्मोंका अन्तर नहीं होता है । पुरुषवेद और संज्वलनकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर करता है । (क्योंकि यहाँ इनका उदय पाया जाता है ।) शेष कर्मोंकी आवलीप्रमाण प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर करता है । (क्योंकि यहाँ उनका उदय नहीं है ।) जिन अन्तर-स्थितियोंको उत्कीर्ण किया जाता है, उनके प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण की जानेवाली स्थितियोंमें नहीं देता है । किन्तु जिन उदयप्राप्त प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति है, उस प्रथमस्थितिमें और जो इस समय स्थितियाँ उत्कीर्ण की जा रही हैं, उनमें उस उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको यथासंभव समस्थिति-संक्रमणके द्वारा संक्रान्त करता है । तथा जो प्रकृतियाँ बँधती हैं, उनकी आबाधाका अतिक्रमण कर जो जघन्य निपेकस्थिति है, उसे आदि करके बध्यमान स्थितियोंमें अनन्तर-स्थितियोंमें उत्कीर्ण किये जानेवाले उस प्रदेशाग्रको उत्कर्षणके द्वारा संक्रान्त करता है । इस प्रकार अवस्थित रूपसे सहस्रों अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर अन्य अनुभागकांडक, अन्तरकरणमें स्थितियोंके उत्कीर्ण करते समय जो स्थितिबन्ध बाँधा था,

१ तत्थ किमंतरकरणं णाम ? अंतरं विरहो सुण्णभावो त्ति एयट्ठो । तस्स करणमंतरकरणं, हेट्ठा उवरिं च केत्तियाओ ट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झिल्लाणं ट्ठिदीणं अंतोमुहुत्तपमाणाणं णिसेगे सुण्णत्तसंपादणमंतरकरणमिदि भणिदं होइ । जयध०

उक्कीरिज्जमाणे ट्ठिदिबंधो पवद्धो जं च ठिदिखंडयं जाव अंतरकरणद्धा एदाणि समगं णिट्ठाणियमाणाणि णिट्ठिदाणि । २१४. से काले [अंतर-] पढमसमय-दुसमयकदं ।

२१५. ताधे चेव णवुंसयवेदस्स आजुत्तकरणसंकामगो, मोहणीयस्स संखेज्ज-वस्सट्ठिदिगो बंधो, मोहणीयस्स एगट्ठाणिया बंधोदया, जाणि कम्माणि बज्झंति तेसिं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोहसंजलणस्स असंकमो एदाणि सत्त करणाणि अंतर-दुसमयकदे आरद्धाणि । २१६. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो संकामिज्जमाणो संकामिदो ।

२१७. तदो से काले इत्थिवेदस्स पढमसमयसंकामगो । २१८. ताधे अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयमण्णो ट्ठिदिबंधो च आरद्धाणि । २१९. तदो ट्ठिदिखंडय-पुधत्तेण इत्थिवेदक्खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं घादिकम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो । २२०. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थि-वेदस्स जं ट्ठिदिसंतकम्मं तं सव्वमागाइदं । २२१. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मस्स

तत्सम्बन्धी स्थितिकांडक और अन्तरकरणकाल, समाप्त किये जानेवाले ये सब एक साथ समाप्त हो जाते हैं । तदनन्तर कालमें अन्तर-प्रथमसमयकृत और अन्तर-द्विसमयकृत होता है ॥२०७-२१४॥

विशेषार्थ–जिस समयमें अन्तरसम्बन्धी चरमफाली नष्ट होती है, उस समय उसे प्रथमसमयकृत-अन्तर कहते हैं और तदनन्तर समयमें उसे द्विसमयकृत-अन्तर कहते हैं ।

चूर्णिसू०–उसी समय ही अर्थात् अन्तरसम्बन्धी चरमफालीके पतन होनेपर नपुंसक वेदका आयुक्तकरण-संक्रामक होता है, अर्थात् नपुंसकवेदकी क्षपणामें प्रवृत्त होता है (१) । उसी समय मोहनीयका संख्यात वर्षवाला स्थितिबन्ध (२), मोहनीयका एक-स्थानीय बन्ध और उदय (३-४), जो कर्म बँधते हैं, उनकी छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा (५), मोहनीयका आनुपूर्वी-संक्रमण (६) और लोभके संक्रमणका अभाव (७), ये सात करण द्विसमयकृत-अन्तरमें एक साथ प्रारम्भ होते हैं । तत्पश्चात् संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत हो जानेपर संक्रमणको प्राप्त कराया जानेवाला नपुंसकवेद पुरुषवेदमें संक्रान्त हो जाता है ॥२१५-२१६॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर समयमें वह स्त्रीवेदका प्रथमसमयवर्ती संक्रामक होता है । उस समय अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होते हैं । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा स्त्रीवेदके क्षपणा-कालका संख्यातवाँ भाग व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इन तीन घातिया कर्मोंका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा स्त्रीवेदका जो स्थितिसत्त्व है, वह सब क्षपण करनेके लिए ग्रहण कर लिया जाता है । तथा शेष कर्मोंके स्थितिसत्त्वका असंख्यात बहुभाग भी क्षपणाके लिए ग्रहण कर लिया जाता है । उस स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर संक्रम्यमाण

असंखेज्जा भागा आगाइदा । २२२. तम्हि ट्ठिदिखंडए पुण्णे इत्थिवेदो संछुब्भमाणो संछुद्धो । २२३. ताधे चेव मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि ।

२२४. से काले सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामगो । २२५. सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामगस्स ट्ठिदिबंधो मोहणीयस्स थोवो । २२६. णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । २२७. णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । २२८. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । २२९. ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं मोहणीयस्स थोवं । २३०. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । २३१. णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । २३२. वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । २३३. पढमट्ठिदिखंडए पुण्णे मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । २३४. सेसाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणहीणं । २३५. ट्ठिदिबंधो णामा-गोद-वेदणीयाणं असंखेज्जगुणहीणो । २३६. घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।

२३७. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्साणि ट्ठिदिबंधो । २३८. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिसंतकम्मं जादं । २३९. तदो पाए [घादि-

स्त्रीवेद संक्रान्त हो जाता है । उसी समयमें मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण हो जाता है ॥२१७-२२३॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें वह सात नोकषायोंका प्रथम समयवर्ती संक्रामक होता है। सात नोकषायोंके प्रथम-समयवर्ती संक्रामकके मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे कम होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। उस समय मोहनीयका स्थितिसत्त्व सबसे कम है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा है। नाम और गोत्रका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा है। वेदनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। प्रथम स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन हो जाता है। शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा हीन होता है। तभी नाम, गोत्र और वेदनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन होता है और घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है ॥२२४-२३६॥

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके बीतनेपर सात नोकषायोंके क्षपणकालके संख्यातवें भागके बीत जानेपर नाम, गोत्र और वेदनीयका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण हो जाता है। तत्पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके बीतनेपर और सात नोकषायोंके क्षपणाकालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षकी स्थितिवाला हो जाता है। इस स्थलसे लेकर घातिया कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्ध

कम्माणं] ठिदिबंधे ठिदिखंडए च पुण्णे पुण्णे ठिदिबंध-ठिदिसंतकम्माणि संखेज्जगुण-हीणाणि । २४०. णामा-गोद-वेदणीयाणं पुण्णे ठिदिखंडए असंखेज्जगुणहीणं ठिदि-संतकम्मं । २४१. एदेसिं चेव ठिदिबंधे पुण्णे अण्णो ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । २४२. एदेण कमेण ताव जाव सत्तण्हं णोकसायाणं संकामयस्स चरिमट्ठिदिबंधो त्ति ।

२४३. सत्तण्हं णोकसायाणं संकामयस्स चरिमो ठिदिबंधो पुरिसवेदस्स अट्ठ वस्साणि । २४४. संजलणाणं सोलस वस्साणि । २४५. सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ठिदिबंधो । २४६. ठिदिसंतकम्मं पुण घादिकम्माणं चदुण्हं पि संखे-ज्जाणि वस्ससहस्साणि । २४७. णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जाणि वस्साणि । २४८. अंतरादो दुसमयकदादो पाए छण्णोकसाए कोधे संछुहदि, ण अण्णम्हि कम्हि वि । २४९. पुरिसवेदस्स दो आवलियासु पढमट्ठिदीए सेसासु आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। पढमट्ठिदीदो चेव उदीरणा । २५०. समयाहियाए आवलियाए सेसाए जहण्णिया ठिदि उदीरणा । २५१. तदो चरिमसमयसवेदो जादो । २५२. ताधे छण्णोकसाया संछुद्धा । २५३. पुरिसवेदस्स जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तिगा समयपबद्धा विदिय-ठिदीए अत्थि, उदयट्ठिदी च अत्थि । सेसं पुरिसवेदस्स संतकम्मं सव्वं संछुद्धं । २५४. से काले अस्सकण्णकरणं* पवत्तिहिदि ।

और स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित हीन होते जाते हैं । स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर नाम, गोत्र और वेदनीयका अन्य स्थितिसत्त्व असंख्यात-गुणा हीन हो जाता है । तथा इन्हीं कर्मोंके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन हो जाता है । इस क्रमसे तब तक जाते हैं, जब तक कि सात नोकषायों-के संक्रामकका अन्तिम स्थितिबन्ध प्राप्त होता है ॥२३७-२४२॥

चूर्णिसू०—सात नोकषायोंके संक्रामकके पुरुषवेदका अन्तिम स्थितिबन्ध आठ वर्ष है । संज्वलन कषायोंका स्थितिबन्ध सोलह वर्षप्रमाण है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । किन्तु चारों ही घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेदनीयका असंख्यात वर्ष है । द्विसमयकृत अन्तरके स्थलसे आगे छह नोकषायोंको क्रोधमें संक्रान्त करता है, अन्य किसी प्रकृतिमें नहीं । पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें दो आव-लियोंके शेष रह जानेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । प्रथमस्थितिसे ही उदीरणा होती है । एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है । तत्पश्चात् वह चरमसमयवर्ती सवेदी हो जाता है । उस समय छह नोकषाय संक्रान्त हो जाते हैं । पुरुषवेदकी एक समय कम दो आवलियाँ हैं, उतने मात्र समयप्रबद्ध द्वितीयस्थितिमें हैं और उदयस्थिति भी है, शेष सब पुरुषवेदका स्थितिसत्त्व संक्रान्त हो जाता है । तदनन्तरकालमें वह अश्वकर्णकरणमें प्रवृत्त होगा ॥२४३-२५४॥

* अश्वस्य कर्णः अश्वकर्णः, अश्वकर्णवत्करणमश्वकर्णकरणम् । यथाश्वकर्णः अग्रात्प्रभृत्यामूलात्

२५५. अस्सकण्णकरणं ताव थवणिज्जं । इमो ताव सुत्तफासो । २५६. अंतरदुसमयकदमादिं कादूण जाव छण्णोकसायाणं चरिमसमयसंकामगो त्ति एदिस्से अद्धाए अप्पा त्ति कट्टु सुत्तं । २५७. तत्थ सत्त मूलगाहाओ[1] ।

(७१) संकामयपट्ठवगस्स किंट्ठिदियाणि पुव्वबद्धाणि ।
केसु व अणुभागेसु य संकंतं वा असंकंतं ॥१२४॥

चूर्णिसू०—इस समय अश्वकर्णकरणको स्थगित रखना चाहिए और इस गाथासूत्रका स्पर्श करना चाहिए । द्विसमयकृत-अन्तरको आदि करके जब तक छह नोकपायोंका चरमसमयवर्ती संक्रामक है, इस मध्यवर्ती कालमें आत्मा विशुद्धिको प्राप्त होता है, इत्यादि गाथासूत्रको निरुद्ध करके वक्ष्यमाण गाथा-सूत्रोंका अनुमार्गण करना चाहिए इस विषयमें सात मूलगाथाएँ हैं ॥२५५-२५७॥

विशेषार्थ—जो प्रश्नमात्रके द्वारा अनेक अर्थोंकी सूचना करती हैं, ऐसी सूत्रगाथाओंको मूलगाथा कहते हैं ।

संक्रमण-प्रस्थापकके पूर्वबद्ध कर्म किस स्थितिवाले हैं ? वे किस अनुभागमें वर्तमान हैं और उस समय कौन कर्म संक्रान्त हैं और कौन कर्म असंक्रान्त हैं ॥१२४॥

विशेषार्थ—अन्तरकरण समाप्त करके नोकषायोंके क्षपणको प्रारम्भ करनेवाला जीव संक्रमण-प्रस्थापक कहलाता है । उसके पूर्वबद्ध कर्म किस स्थितिवाले हैं ? अर्थात् उनका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष है या असंख्यात वर्ष है ? गाथाके इस पूर्वार्ध-द्वारा संक्रमण-प्रस्थापकके स्थितिसत्त्व जाननेकी सूचना की गई है । उस संक्रमण-प्रस्थापकके शुभ-अशुभ कर्मोंका स्थितिसत्त्व किस-किस अनुभागमें वर्तमान है ? इस दूसरे पदके द्वारा उसके कर्मोंके अनुभागकी सूचना की गई है । कौन कर्म संक्रान्त अर्थात् क्षय कर दिया गया है और कौन कर्म असंक्रान्त अर्थात् क्षय नहीं किया गया है ? इस तीसरे प्रश्नके द्वारा संक्रमण-प्रस्थापकके क्षपित और अक्षपित कर्मोंके जाननेकी सूचना की गई है । इन प्रश्नोंका उत्तर आगे भाष्यगाथाओंके द्वारा दिया जायगा ।

क्रमेण हीयमानस्वरूपो दृश्यते, तथेदमपि करणं क्रोधसंज्वलनात्प्रभृत्या लोभसंज्वलनाद्यथाक्रममनन्तगुणहीनानुभागस्पर्धकसंस्थानव्यवस्थाकरणमश्वकर्णकरणमिति लक्ष्यते। संपहि आदोलनकरणसण्णाए अत्थो वुच्चदे—आदोलं णाम हिंदोलमादोलमिवकरणमादोलकरणं । यथा हिंदोलत्थंभस्स वरत्ताए च अंतराले तिकोणं होदूण कण्णायारेण दीसइ, एवमेत्थ वि कोहादिसंजलणाणमणुभागसंणिवेसो कमेण हीयमाणो दीसइ त्ति एदेण कारणेण अस्सकण्णकरणस्स आदोलकरणसण्णा जादा । एवमोवट्टण-उव्वट्टणकरणेत्ति एसो वि पज्जायसद्दो अणुगयद्दो दट्ठव्वो, कोहादिसंजलणाणमणुभागविण्णासस्स हाणिवड्ढिसरूवेणावट्ठाणं पेक्खियूण तत्थ ओवट्टणुव्वट्टणसण्णाए पुव्वाइरिएहिं पयट्टिदत्तादो । जयध०

1 मूलगाहाओ णाम सुत्तगाहाओ पुच्छामेत्तेण सूचिदाणेगत्थाओ । जयध०

२५८. एदिस्से पंच भासगाहाओ[1] । २५९. तं जहा । २६०. भासगाहाओ परूविज्जंतीओ चेव भणिदं होंति गंथगउरवपरिहरणट्ठं । २६१. मोहणीयस्स अंतरदुसमयकदे संकामगपट्ठवगो होदि । एत्थ सुत्तं ।

(७२) संकामगपट्ठवगस्स मोहणीयस्स दो पुण ट्ठिदीओ ।
किंचूणियं मुहुत्तं णियमा से अंतरं होइ ॥१२५॥

२६२. किंचूणगं मुहुत्तं ति अंतोमुहुत्तं ति णादव्वं । २६३. अंतरदुसमयकदादो आवलियं समयूणमधिच्छियूण इमा गाहा । २६४. यथा ।

(७३) झीणट्ठिदिकम्मंसे जे वेदयदे दु दोसु वि ट्ठिदीसु ।
जे चावि ण वेदयदे विदियाए ते दु बोद्धव्वा ॥१२६॥

चूर्णिसू०—इस मूलगाथाके अर्थको प्रकट करनेवाली पाँच भाष्यगाथाएँ हैं । वे इस प्रकार हैं—ग्रन्थ-गौरवके परिहार करनेके लिए पृथक्-पृथक् अर्थ प्ररूपण की गई भाष्यगाथाएँ ही मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करती हैं ॥२५८-२६०॥

विशेषार्थ—प्रश्नरूप अर्थका उत्तररूप अर्थ-व्याख्यान करनेवाली गाथाओंको भाष्यगाथा कहते हैं । विभाषाके नियमसे पहले गाथाओंकी समुत्कीर्तना करना चाहिए । पीछे उनके पदोंका आश्रय लेकर अर्थकी प्ररूपणा करना चाहिए । परन्तु ऐसा करनेसे ग्रन्थका विस्तार हो जाता है, अतः चूर्णिकार उस नियमका उल्लंघन कर समुत्कीर्तना और अर्थ-विभाषाको एक साथ कहेंगे, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अन्तरकरणको समाप्त करके द्वितीय समयमें वर्तमान जीव मोहनीयका संक्रमण-प्रस्थापक होता है । इस विषयमें यह गाथासूत्र है ॥२६१॥

संक्रमण-प्रस्थापकके मोहनीय कर्मकी दो स्थितियाँ होती हैं—एक प्रथमस्थिति और दूसरी द्वितीयस्थिति । इन दोनों स्थितियोंका प्रमाण कुछ कम मुहूर्त है । तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है ॥१२५॥

चूर्णिसू०—'कुछ कम मुहूर्त' इसका अर्थ अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए ॥२६२॥

चूर्णिसू०—द्विसमयकृत अन्तरसे लेकर एक समय कम आवली प्रमाण काल तक ठहर कर, अर्थात् अवेद्यमान ग्यारह प्रकृतियोंकी समयोन आवलीमात्र प्रथमस्थितिका पालन कर और वेद्यमान अन्यतर वेद और किसी एक संज्वलन प्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथमस्थितिको करके अवस्थित जीवके उस अवस्थाविशेषमें यह दूसरी वक्ष्यमाण भाष्यगाथा जानने योग्य है । वह इस प्रकार है ॥२६३-२६४॥

जो उदय या अनुदयरूप कर्म-प्रकृतियाँ परिक्षीण स्थितिवाली हैं, उन्हें उपर्युक्त जीव दोनों ही स्थितियोंमें वेदन करता है । किन्तु वह जिन कर्मांशोंको वेदन नहीं करता है, उन्हें तो द्वितीयस्थितिमें ही जानना चाहिए ॥१२६॥

---

१ भासगाहाओ त्ति वा, वक्खाणगाहाओ त्ति वा, विवरणगाहाओ त्ति वा एयट्ठो । जयध०

२६५. एत्तो ट्ठिदिसंतकम्मे च अणुभागसंतकम्मे च तदियगाहा कायव्वा । २६६. तं जहा ।

(७४) संकामगपट्ठवगस्स पुव्वबद्धाणि मज्झिमट्ठिदीसु ।
साद-सुहणाम-गोदा तहाणुभागेसुदुक्कस्सा ॥१२७॥

२६७. मज्झिमट्ठिदीसु त्ति अणुक्कस्स-अजहण्णट्ठिदीसु त्ति भणिदं होइ । २६८. साद-सुभणाम-गोदा तहाणुभागेसुदुक्कस्सा त्ति ण चेदे ओघुक्कस्सा, तस्समय-पाओग्ग-उक्कस्सगा एदे अणुभागेण ।

विशेषार्थ—अन्तरकरणके दूसरे समयसे लेकर एक समय कम आवली कालके भीतर अवस्थित जीव जिन वेद्यमान या अवेद्यमान प्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिको गलाता है, उनक सत्ता तो प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थिति इन दोनोंमें ही पाई जाती है । किन्तु वह जिन कर्म-प्रकृतियोंको नहीं गलाता है, उनकी सत्ता द्वितीयस्थितिमें पाई जाती है । जयधवलाकार 'झीणट्ठिदिकम्मंसे' पदको, 'अथवा' कहकर और उसे सप्तमी विभक्ति मानकर इस प्रकार भी अर्थ करते हैं कि वेद्यमान किसी एक वेद और किसी एक संज्वलनकषायके अतिरिक्त अवेद्य-मान शेष ग्यारह प्रकृतियोंके समयोन आवलीप्रमाण प्रथमस्थितिके क्षीण हो जानेपर जिन कर्मोंका वेदन करता है, वे तो दोनों ही स्थितियोंमें पाये जाते हैं, किन्तु जिन्हें वेदन नहीं करता है वे उसकी द्वितीयस्थितिमें ही पाये जाते हैं । इस प्रकार ये दो भाष्यगाथाएँ मूल-गाथाके पूर्वार्धका अर्थ-व्याख्यान करती हैं ।

अब मूलगाथाके उत्तरार्धका अर्थ कहनेके लिए चूर्णिकार उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—इससे आगे स्थितिसत्त्व और अनुभागसत्त्वके विषयमें तीसरी भाष्य-गाथाको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है ॥२६५-२६६॥

संक्रमण-प्रस्थापकके पूर्व-बद्ध कर्म मध्यम स्थितियोंमें पाये जाते हैं । तथा अनु-भागोंमें सातावेदनीय, शुभ नामकर्म और उच्चगोत्र उत्कृष्ट रूपसे पाये जाते हैं॥१२७॥

चूर्णिसू०—यहाँ 'मध्यम स्थितियोंमें' इस पदका अर्थ 'अनुत्कृष्ट-अजघन्य स्थितियों-में' ऐसा कहा गया समझना चाहिए । 'सातावेदनीय, शुभ नामकर्म प्रकृतियाँ और उच्च-गोत्र कर्म, ये अनुभागोंमें उत्कृष्ट पाये जाते हैं' गाथाके इस उत्तरार्धमें जो 'उत्कृष्ट' पद है, उससे ये सातावेदनीय आदि कर्म अनुभागकी अपेक्षा ओघरूपसे उत्कृष्ट नहीं ग्रहण करना चाहिए, किन्तु आदेशकी अपेक्षा तत्समय-प्रायोग्य उत्कृष्ट ग्रहण करना चाहिए॥२६७-२६८॥

विशेषार्थ—गाथामें सातावेदनीय आदि जिन पुण्य-प्रकृतियोंके अनुभागको 'उत्कृष्ट' बताया गया है, उसका स्पष्टीकरण इस चूर्णिसूत्रके द्वारा किया गया है । जिसका अभि-प्राय यह है कि उत्कृष्ट अनुभाग दो प्रकारका होता है ओघ-उत्कृष्ट और आदेश-उत्कृष्ट । यहाँ पर ओघ-उत्कृष्ट अनुभाग संभव नहीं है, क्योंकि वह तो चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके होता है, अतः यहाँपर अनिवृत्तिकरण-परिणामोंके द्वारा संभव 'तत्समय-प्रायोग्य'

(७५) अथ थीणगिद्धि कम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य ।
तह णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु[1] ॥१२८॥

२६९. एदाणि कम्माणि पुव्वमेव झीणाणि । एदेणेव सूचिदा अट्ठ वि कसाया पुव्वमेव खविदा त्ति ।

(७६) संकंतम्हि य णियमा णामा-गोदाणि वेयणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसगा होंति संखेज्जे ॥१२९॥

२७०. एसा गाहा छसु कम्मेसु पढमसमयसंकंतेसु तम्हि समये ट्ठिदिसंतकम्म-पमाणं भणइ ।

अर्थात् अन्तरकरणके अनन्तर द्वितीय समयमें उत्पन्न होनेवाली विशुद्धिसे जो अधिकसे अधिक उत्कृष्ट अनुभाग हो सकता है, उसे ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार तीसरी भाष्यगाथाकी विभाषा समाप्त हो जाती है ।

अब मूलगाथाके 'संकंतं वा असंकंतं' इस चतुर्थ चरणकी विशेष व्याख्या करनेके लिए ग्रन्थकार चौथी भाष्यगाथाका अवतार कहते हैं–

अथ अर्थात् आठ मध्यम कषायोंकी क्षपणाके पश्चात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला, तथा नरकगति और तिर्यग्गति-सम्बन्धी नामकर्मकी तेरह प्रकृतियाँ, इस प्रकार ये सोलह प्रकृतियाँ संक्रमण-प्रस्थापकके द्वारा अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही सर्व-संक्रमण आदिमें क्षीण की जा चुकी हैं ॥१२८॥

चूर्णिसू०–ये स्त्यानगृद्धि आदि सोलह कर्म संक्रामकके द्वारा पहले ही नष्ट कर दिये गये हैं । गाथामें आये हुये 'अथ' इस पदके द्वारा सूचित आठ मध्यम कषाय भी पहले ही अर्थात् उक्त सोलह प्रकृतियोंके क्षीण होनेके पूर्व ही क्षय कर दिये गये, ऐसा जानना चाहिए ॥२६९॥

मूलगाथाके उक्त-चतुर्थ चरणका अवलम्बन करके इस समय होनेवाले स्थितिसत्त्व-का प्रमाण-निर्धारण करनेके लिए पाँचवीं भाष्यगाथाका अवतार करते हैं–

हास्यादि छह नोकषायके पुरुषवेदके चिरंतन सत्त्वके साथ संक्रामक होनेपर नियमसे नाम, गोत्र और वेदनीय ये तीनों ही अघातिया कर्म असंख्यात वर्षप्रमाण अपने-अपने स्थितिसत्त्वमें प्रवृत्त होते हैं । शेष ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म संख्यात-वर्षप्रमाण स्थिति सत्त्ववाले होते हैं ॥१२९॥

चूर्णिसू०–यह गाथा हास्यादि छह कर्मोंके प्रथम समय संक्रान्त होनेपर उस कालमें स्थितिसत्त्वके प्रमाणको कहती है, अर्थात् उस समय मोह बिना तीन अघातिया कर्मोंका स्थिति-सत्त्व असंख्यात वर्ष और घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण होता है ॥२७०॥

---

१ संछोहणा णाम परपयडिसंकमो सव्वसंकमपज्जवसाणो । आदिसद्देणट्ठिदि-अणुभागखंडय-गुणसेढि-णिज्जराणं गहणं कायव्वं । जयध०

२७१. एत्तो विदिया मूलगाहा । २७२. तं जहा ।

(७७) संकामगपट्ठवगो के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि व के के केसु असंकामगो होइ ॥१३०॥

२७३. एदिस्से तिण्णि अत्था । २७४. तं जहा । २७५. के बंधदि त्ति पढमो अत्थो । २७६. के व वेदयदि त्ति विदिओ अत्थो । २७७. पच्छिमद्धे तदिओ अत्थो । २७८. पढमे अत्थे तिण्णि भासगाहाओ । २७९. विदिये अत्थे वे भासगाहाओ । २८०. तदिये अत्थे छब्भासगाहाओ । २८१. पढमस्स अत्थस्स तिण्हं भासगाहाणं समुक्कित्तणं[1] विहासणं च एक्कदो वत्तइस्सामो । २८२. तं जहा ।

(७८) वस्ससदसहस्साइं ट्ठिदिसंखाए दु मोहणीयं तु ।
बंधदि च सदसहस्सेसु असंखेज्जेसु सेसाणि ॥१३१॥

२८३. एसा गाहा अंतर-दुसमयकदे ट्ठिदिबंधपमाणं भणइ ।

(७९) भय-सोगमरदि-रदिगं हस्स-दुगुंछा-णवुंसगित्थीओ ।
असादं णीचागोदं अजसं सारीरगं णाम ॥१३२॥

इस प्रकार पहली मूलगाथाका पाँच भाष्यगाथाओंके द्वारा अर्थ-व्याख्यान किया गया।

चूर्णिसू०—अब दूसरी मूलगाथा कहते हैं । वह इस प्रकार है ॥२७१-२७२॥

संक्रमण-प्रस्थापक जीव किन-किन कर्मांशोंको बांधता है, किन-किन कर्मांशोंका वेदन करता है और किन-किन कर्मांशोंका असंक्रामक रहता है ॥१३०॥

चूर्णिसू०—इस मूलगाथाके तीन अर्थ हैं । वे इस प्रकार हैं—'किन कर्मांशोंको बाँधता है । यह बन्ध-विषयक प्रथम अर्थ है । 'किन कर्मांशोंका वेदन करता है' यह उदयसम्बन्धी द्वितीय अर्थ है और गाथाके पश्चिमार्धमें संक्रमण-असंक्रमण सम्बन्धी तृतीय अर्थ निहित है। इनमेंसे प्रथम अर्थमें तीन भाष्यगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं । द्वितीय अर्थमें दो भाष्यगाथाएँ और तृतीय अर्थमें छह भाष्यगाथाएँ निबद्ध हैं । प्रथम अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीनों भाष्यगाथाओंकी समुत्कीर्तना और विभाषा एक साथ कहेंगे । वह इस प्रकार है ॥२७३-२८२॥

द्विसमयकृत-अन्तरावस्थामें वर्तमान संक्रमण-प्रस्थापकके मोहनीय कर्म तो वर्षशत-सहस्र स्थितिसंख्यारूप बंधता है और शेष कर्म असंख्यात शतसहस्र वर्षप्रमाण स्थितियोंमें बंधते हैं ॥१३१॥

चूर्णिसू०—यह गाथा द्विसमयकृत अन्तरमें स्थितिबन्धके प्रमाणको कहती है । अर्थात् अन्तरकरणके दो समय पश्चात् संक्रामकके मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यात लाख वर्षप्रमाण और शेष कर्मोंका असंख्यात लाख वर्षप्रमाण होता है ॥२८३॥

अब दूसरी भाष्यगाथाका अवतार करते हैं—

भय, शोक, अरति, रति, हास्य, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, असातावेदनीय, नीचगोत्र, अयशःकीर्त्ति और शरीर नामकर्म ॥१३२॥

---

१ समुक्कित्तणं णाम उच्चारणविहासणं णामविवरणं । जयध०

२८४. एदाणि णियमा ण बंधइ ।

(८०) सव्वावरणीयाणं जेसिं ओवट्टणा दु णिद्दाए ।
पयलायुगस्स अ तहा अबंधगो बंधगो सेसे ॥१३३॥

२८५. जेसिमोवट्टणा त्ति का सण्णा ? २८६. जेसिं कम्माणं देसघादिफद्दयाणि अत्थि तेसिं कम्माणमोवट्टणा अत्थि त्ति सण्णा । २८७. एदीए सण्णाए सव्वावरणीयाणं जेसिमोवट्टणा दु त्ति एदस्स पदस्स विहासा । २८८. तं जहा । २८९. जेसिं कम्माणं देसघादिफद्दयाणि अत्थि, ताणि कम्माणि सव्वघादीणि ण बंधदि; देसघादीणि बंधदि । २९०. तं जहा । २९१. णाणावरणं चउव्विहं, दंसणावरणं तिविहं अंतराइयं पंचविहं, एदाणि कम्माणि देसघादीणि बंधदि ।

चूर्णिसू०–इतने कर्मोंको नियमसे नहीं बांधता है ॥२८४॥

विशेषार्थ–द्विसमयकृत अन्तरवाला संक्रमण-प्रस्थापक जीव पुरुषवेदको छोड़कर शेष आठ नोकषायोंका नियमसे बन्ध नहीं करता है । इसी प्रकार असातावेदनीय, नीचगोत्र, अयशःकीर्त्ति और शरीर-नामकर्मको भी नहीं बांधता है । यहाँ गाथा-पठित 'अयशःकीर्त्ति' से सभी अशुभ नामकर्मकी प्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार 'शरीर-नामकर्मसे वैक्रियिकशरीरादि सभी शरीरनामकर्म और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले आंगोपांग नामकर्म आदि तथा यशःकीर्त्तिके सिवाय सभी शुभनाम-प्रकृतियोंका भी ग्रहण करना चाहिए । अर्थात् द्विसमयकृत-अन्तरवर्ती संक्रामक एकमात्र यशःकीर्त्ति नामकर्मको छोड़कर शेष समस्त शुभाशुभ नामकर्मकी प्रकृतियोंको नहीं बांधता है । इनके अतिरिक्त जिनकी अपवर्तना होती है, ऐसे सर्वघातिया कर्मोंका और निद्रा, प्रचला तथा आयुकर्मका भी वह बन्ध नहीं करता है, इनके सिवाय जो प्रकृतियाँ शेष रहती है, उनका बन्ध करता है । यह बात आगेकी गाथामें बतलाई गई है ।

जिन सर्वावरणीय अर्थात् सर्वघातिया कर्मोंकी अपवर्तना होती है, उनका और निद्रा, प्रचला तथा आयुकर्मका भी अबन्धक रहता है; इनके अतिरिक्त शेष कर्मोंका बन्ध करता है ॥१३३॥

शंका–'जिनकी अपवर्तना होती है' इस वाक्य-द्वारा प्रगट की गई यह अपवर्तना संज्ञा किसकी है ? ॥२८५॥

समाधान–जिन कर्मोंके देशघाती स्पर्धक होते हैं, उन कर्मोंकी 'अपवर्तना' यह संज्ञा है ॥२८६॥

चूर्णिसू०–इस संज्ञाके द्वारा जिन सर्वावरणीय अर्थात् सर्वघातिया ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्मोंकी अपवर्तना होती है, इस पदकी विभाषा की गई । वह इस प्रकार है– जिन कर्मोंके देशघाती स्पर्धक होते हैं, उन सर्वघातिया कर्मोंको नहीं बाँधता है, किन्तु देशघातिया कर्मोंको बाँधता है । जैसे–मतिज्ञानावरणादि चार ज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरणादि चार दर्शनावरण और पाँच प्रकारका अन्तराय, इन देशघातिया कर्मोंको बाँधता है॥२८७-२९१॥

२९२. एत्तिगे मूलगाहाए पढमो अत्थो समत्तो भवदि ।

(८१) णिद्दा य णीचगोदं पचला णियमा अगि त्ति णामं च ।
छच्चेय णोकसाया अंसेसु अवेदगो होदि ॥१३४॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार तीन भाष्यगाथाओंके द्वारा इतने अर्थके व्याख्यान करनेपर मूलगाथाका प्रथम अर्थ समाप्त होता है ॥२९२॥

मूलगाथाके द्वितीय अर्थमें प्रतिबद्ध दोनों भाष्यगाथाओंकी यथाक्रमसे व्याख्या करनेके लिए एक साथ समुत्कीर्तना और विभाषा करते हैं—

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नीचगोत्र, अयशःकीर्त्ति और छह नोकषाय, इतने कर्मोंका तो संक्रमण-प्रस्थापक नियमसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप सर्व अंशोंमें अवेदक रहता है ॥१३४॥

विशेषार्थ—यह मूलगाथाके 'के च वेदयदि अंसे' अर्थात् 'कितने कर्माशोंका वेदन करता है, इस द्वितीय अर्थका व्याख्यान करनेवाली प्रथम भाष्यगाथा है। वह संक्रमण-प्रस्थापक संयत गाथामें कही गई उक्त प्रकृतियोंका वेदन नहीं करता है, अर्थात् उसके उक्त प्रकृतियोंका उदय नहीं है। गाथामें यद्यपि 'निद्रा' ऐसा सामान्य ही पद है, पर उससे 'निद्रानिद्रा'का ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि नामके एक देशके निर्देशसे भी पूरे नामका बोध हो जाता है। इसी प्रकार 'प्रचला' इस पदसे प्रचलाप्रचलाका ग्रहण करना चाहिए। इन दोनों पदोंके बीचमें पठित 'च' शब्द अनुक्त-समुच्चयार्थक है, अतः उससे स्त्यानगृद्धिका ग्रहण किया गया है। 'अगि' यह संकेत 'अजसगित्ति' अर्थात् अयशःकीर्त्तिका बोधक है। यहाँपर इस पदको उपलक्षण मानकर अवेद्यमान सभी प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति आदि तीस प्रकृतियोंको छोड़कर शेषका यहां पर उदय नहीं पाया जाता। यहां यह शंका की जा सकती है कि जब गाथामें 'निद्रा और प्रचला' ये दो नाम ही स्पष्टरूपसे कहे गये हैं, तब निद्रासे निद्रानिद्राका और प्रचलासे प्रचलाप्रचलाका क्यों ग्रहण किया जाय? इसी प्रकार स्त्यानगृद्धि' यह नाम गाथामें कहीं दृष्टिगोचर भी नहीं होता, फिर क्यों 'च' पदसे उसका ग्रहण किया जाय? इसका समाधान यह है, कि निद्रा और प्रचलाका उदय बारहवें गुणस्थानके द्विचरम समय तक पाया जाता है, अतः वैसा माननेमें आगमसे विरोध आता है। दूसरे, गाथामें इनके साथ जिन नीचगोत्र आदि प्रकृतियोंका उल्लेख किया गया है, उनमेंसे अयशः-कीर्तिका चौथे गुणस्थानमें, नीचगोत्रका पांचवें गुणस्थानमें, तथा निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका छठे गुणस्थानमें तथा हास्यादि छहका आठवें गुणस्थानमें ही उदय-व्युच्छेद हो जाता है, जिससे उनका यहाँ उदय संभव ही नहीं है। अतः वही उक्त अर्थ आगम तथा युक्तिसे सुसंगत जानना चाहिए। इसी अभिप्रायको स्पष्ट करनेके लिए गाथामें

२९३. एदाणि कम्माणि सव्वत्थ णियमा ण वेदेदि । २९४. एस अत्थो एदिस्से गाहाए ।

(८२) वेदे च वेदणीए सव्वावरणे तहा कसाए च ।
भयणिज्जो वेदंतो अभज्जगो सेसगो होदि ॥१३५॥

२९५. विहासा । २९६. तं जहा । २९७. वेदे च ताव तिण्हं वेदाण-मण्णदरं वेदेज्ज । २९८. वेदणीये सादं वा असादं वा । २९९. सव्वावरणे आभिणिबोहियणाणावरणादीणमणुभागं सव्वघादिं वा देसघादिं वा । ३००. कसाये चउण्हं कसायाणमण्णदरं । ३०१. एवं भजिदव्वो वेदे च वेदणीये सव्वावरणे कसाए

'णियमा' पद दिया गया है। यदि कहा जाय कि स्त्यानगृद्धित्रिकका संक्रमणप्रस्थापन-अवस्थाके पूर्व ही सत्त्व-विच्छेद हो चुका है, तब फिर यहाँपर उनके उदय-व्युच्छेदका निर्देश सार्थक नहीं माना जा सकता है ? दूसरे, गाथामें स्त्यानगृद्धि आदि तीनों पदोंमेंसे किसी एकका भी निर्देश नहीं है, ऐसी दशामें 'णिद्दा' पदसे निद्राका, तथा 'पयला' पदसे प्रचलाका ही ग्रहण करना चाहिए ? और संक्रमण-प्रस्थापक इन दोनों ही प्रकृतियोंका अवेदक रहता है, ऐसा ही गाथासूत्रका अर्थ करना चाहिए । अन्यथा बारहवें गुणस्थानके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाका उदय-व्युच्छेद कहना शक्य नहीं है ? तो इसका उत्तर यह है कि इस संक्रमण-प्रस्थापकदशाके पूर्व और उत्तरकालीन अवस्थामें अव्यक्तस्वरूपसे यद्यपि निद्रा और प्रचला-का उदय विद्यमान रहता है तथापि इस मध्यवर्ती अवस्थामें ध्यानके उपयोगविशेषसे उनकी शक्ति प्रतिहत होजानेके कारण उनका उदयाभाव माननेमें कोई विरोध नहीं है । अथवा क्षपक श्रेणीमें सर्वत्र निद्रा और प्रचलाका उदय नहीं होता है, ऐसा ही गाथासूत्रका अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि ध्यानकी उपयुक्त दशामें निद्रा और प्रचलाका उदय संभव नहीं है ।

चूर्णिसू०—इन गाथा-पठित कर्मोंको संक्रमण-प्रस्थापक जीव अपनी सर्व अवस्था-ओंमें नियमसे वेदन नहीं करता है । यह इस भाष्यगाथाका अर्थ है ॥२९३-२९४॥

अब दूसरी मूलगाथाके द्वितीय अर्थ-निबद्ध दूसरी भाष्यगाथाका अवतार करते हैं—

वह संक्रमण-प्रस्थापक वेदोंको, वेदनीयकर्मको, सर्वघातिया प्रकृतियोंको, तथा कषायोंको वेदन करता हुआ भजनीय है । उक्त कर्म-प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंका वेदन करता हुआ अभजनीय है ॥१३५॥

चूर्णिसू०—इस गाथाकी विभाषा करते हैं । वह इस प्रकार है—वह संक्रमण-प्रस्थापक तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदका वेदन करता है, अर्थात् जिस वेदके उदयसे श्रेणी चढ़ता है, उस वेदका ही वेदन करता है । सातावेदनीय और असातावेदनीय इन दोनोंमेंसे किसी एकका वेदन करता है । आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय आदि सर्व आवरणीय कर्मोंके सर्वघाती या देशघाती अनुभागका वेदन करता है और चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायका अनुभव करता है । इस प्रकार वेद, वेदनीय, सर्व आवरण कर्म और कषायोंकी अपेक्षा वह संक्रमण-

च । ३०२. विदियाए मूलगाहाए विदियो अत्थो समत्तो भवदि ।

३०३. तदिये अत्थे छब्भासगाहाओ ।

(८३) सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वीय संकमो होदि ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ णायव्वो ॥१३६॥

३०४. विहासा । ३०५. तं जहा । ३०६. अंतरदुसमयकदप्पहुडि मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो । ३०७. आणुपुव्वीसंकमो णाम किं ? ३०८. कोह-माण-माया-लोभा एसा परिवाडी आणुपुव्वीसंकमो णाम । ३०९. एस अत्थो चउत्थीए भासगाहाए भणिहिदि । ३१०. एत्तो विदियभासगाहा ।

(८४) संकामगो च कोधं माणं मायं तहेव लोभं च ।
सव्वं जहाणुपुव्वी वेदादी संछुहदि कम्मं ॥१३७॥

प्रस्थापक जीव भजितव्य है । इस प्रकार इस दूसरी भाष्यगाथाकी विभाषा करनेपर दूसरी मूलगाथाका दूसरा अर्थ समाप्त होता है ॥२९५-३०२॥

चूर्णिसू०—दूसरी मूलगाथाके तीसरे अर्थमें छह भाष्यगाथाएँ निबद्ध हैं ॥३०३॥ उनमेंसे प्रथम भाष्यगाथाकी विभाषा करनेके लिए उसका अवतार किया जाता है—

मोहनीय कर्मकी सर्व प्रकृतियोंका आनुपूर्वीसे संक्रमण होता है, किन्तु लोभ-कषायका संक्रमण नहीं होता है, ऐसा नियमसे जानना चाहिए ॥१३६॥

चूर्णिसू०—अब उक्त गाथाकी विभाषा करते हैं । वह इस प्रकार है—संक्रमण-प्रस्थापकके अन्तरकरणके दूसरे समयसे लेकर आगे मोहकर्मका सर्वथा विनाश होने तक उसका आनुपूर्वीसंक्रमण होता है ॥३०४-३०६॥

शंका—आनुपूर्वीसंक्रमण नाम किसका है ? ॥३०७॥

समाधान—क्रोध, मान, माया और लोभ इस परिपाटीसे संक्रमण होना आनुपूर्वी-संक्रमण कहलाता है । आनुपूर्वीसंक्रमणका यह अर्थ चौथी भाष्यगाथामें कहेंगे॥३०८-३०९॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाका अवतार करते हैं ॥३१०॥

नव नोकषाय और चार संज्वलन इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रमण करनेवाला क्षपक नपुंसकवेदको आदि करके क्रोध, मान, माया और लोभ, इन सब कर्मोंको यथानुपूर्वीसे संक्रान्त करता है ॥१३७॥

विशेषार्थ—उक्त तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला जीव सबसे सबसे पहले नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका पुरुषवेदमें संक्रमण करता है । पुनः पुरुषवेद और हास्यादि छहका क्रोधसंज्वलनमें संक्रमण करता है । तदनन्तर क्रोधसंज्वलनका मानसंज्वलनमें, मानसंज्वलनका मायासंज्वलनमें और मायासंज्वलनका लोभसंज्वलनमें संक्रमण करता है । यहाँ संक्रमणसे परप्रकृतिरूप संक्रमणका अभिप्राय है ।

३११. वेदादि त्ति विहासा । ३१२. णवुंसयवेदादी संछुहदि त्ति अत्थो ।

(८५) संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोहम्हि संछुहदि ॥१३८॥

३१३. एदिस्से तदियाए गाहाए विहासा । ३१४. जहा । ३१५. इत्थीवेदं णवुंसयवेदं च पुरिसवेदे संछुहदि, ण अण्णत्थ । ३१६. सत्त णोकसाये कोधे संछुहदि, ण अण्णत्थ ।

(८६) कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥१३९॥

३१७. एदिस्से सुत्तपबंधो चेव विहासा ।

(८७) जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधसरिसम्हि संछुहइ ।
बंधेण हीणदरगे अहिए वा संकमो णत्थि ॥१४०॥

चूर्णिसू०–उपर्युक्त गाथामें आये हुये 'वेदादि' इस पदकी विभाषा इस प्रकार है–नपुंसकवेदको आदि करके तेरह प्रकृतियाँको संक्रान्त करता है, अर्थात् पर-प्रकृतिरूपसे संक्रमण करता है ॥३११-३१२॥

अब उक्त अर्थको ही दो भाष्यगाथाओंके द्वारा विशेष रूपसे स्पष्ट करते हैं–

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका नियमसे पुरुषवेदमें संक्रमण करता है । पुरुषवेद और हास्यादि छह, इन सात नोकषायोंका नियमसे संज्वलनक्रोधमें संक्रमण करता है ॥१३८॥

चूर्णिसू०–इस तीसरी भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पुरुषवेदमें ही संक्रान्त करता है, अन्यत्र नहीं । सात नोकषायोंको संज्वलनक्रोधमें ही संक्रान्त करता है, अन्यत्र नहीं ॥३१३-३१६॥

संज्वलनक्रोधको नियमसे संज्वलनमानमें संक्रान्त करता है, संज्वलनमानको संज्वलनमायामें संक्रान्त करता है, संज्वलनमायाको संज्वलनलोभमें संक्रान्त करता है । इस प्रकार उक्त तेरह प्रकृतियोंका आनुपूर्वी-संक्रमण जानना चाहिए । इनका प्रतिलोम अर्थात् विपरीतक्रमसे अथवा यद्वा-तद्वा क्रमसे संक्रमण नहीं होता है॥१३९॥

चूर्णिसू०–इस भाष्यगाथाकी विभाषा सूत्र-प्रबन्ध ही है, अर्थात् गाथासूत्र इतना सरल और स्पष्ट है कि उसके विषयमें अन्य कुछ वक्तव्य शेष नहीं है ॥३१७॥

अब मूलगाथाके तीसरे अर्थके विषयमें ही कुछ अन्य विशेषताको बतलानेके लिए पांचवी भाष्यगाथाका अवतार करते हैं–

जो जीव जिस बध्यमान प्रकृतिमें संक्रमण करता है, वह नियमसे बन्ध-सदृश प्रकृतिमें ही संक्रमण करता है; अथवा बन्धकी अपेक्षा हीनतर स्थितिवाली प्रकृतिमें संक्रमण करता है । किन्तु अधिक स्थितिवाली प्रकृतिमें संक्रमण नहीं होता ॥१४०॥

३१८. विहासा । ३१९. तं जहा । ३२०. जो जं पयडिं संछुहदि णियमा बज्झमाणीए ट्ठिदीसु संछुहदि । ३२१. एसा पुरिमद्धस्स विहासा । ३२२. पच्छिमद्धस्स विहासा । ३२३. जहा । ३२४. जं बंधदि ट्ठिदिं तिस्से वा तत्तो हीणाए वा संछुहदि । ३२५. अबज्झमाणासु ट्ठिदीसु ण उक्कड्डिज्जदि । ३२६. समट्ठिदिगं तु संकामेज्ज ।

चूर्णिसू०—अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं, वह इस प्रकार है—जो जीव जिस प्रकृतिको संक्रमित करता है, वह नियमसे बध्यमान स्थितिमें संक्रान्त करता है । यह गाथाके पूर्वार्धकी विभाषा है । पश्चिमार्धकी विभाषा इस प्रकार है—जिस स्थितिको बाँधता है, उसमें, अथवा उससे हीन स्थितिमें संक्रान्त करता है । किन्तु अबध्यमान स्थितियोंमें उत्कीर्ण कर संक्रान्त नहीं करता है । हाँ, समान स्थितिमें संक्रान्त करता है ॥३१८-३२६॥

विशेषार्थ—यह पाँचवीं भाष्यगाथा बध्यमान प्रकृतियोंमें संक्रमण किये जानेवाली बध्यमान या अबध्यमान प्रकृतियोंका किस प्रकारसे संक्रमण होता है, इस अर्थविशेषके बतलानेके लिए अवतीर्ण हुई है । इसके अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्षपकश्रेणीमें अथवा उससे पूर्व संसारावस्थामें वर्तमान जो जीव जिस विवक्षित प्रकृतिके कर्म-प्रदेशोंको उत्कीर्ण कर जिस प्रकृतिमें संक्रमण करता है, उसे क्या विना किसी विशेषताके सर्व-स्थितियोंमें संक्रमण करता है, अथवा उसमें कोई विशेषता है, इस प्रकारकी शंकाके समाधान-के लिए ग्रन्थकारने गाथाका यह द्वितीय चरण कहा कि 'नियमसे बन्ध-सदृशमें संक्रान्त करता है ।' यहाँपर 'बन्ध' इस पदसे साम्प्रतिक बन्धकी अग्रस्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि स्थितिबन्धके प्रति उसकी ही प्रधानता है । अतएव यह अर्थ होता है कि इस समय बंधनेवाली प्रकृतिकी जो स्थिति हैं, उसमें उसके समान प्रमाणवाली विवक्षित संक्रम्यमाण प्रकृतिके प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण कर संक्रान्त करता है । यह कथन उत्कर्पणसंक्रमणकी प्रधानता-से किया गया है । 'बंधेण हीणदरगे' इस तीसरे चरणका अभिप्राय यह है कि बंधनेवाली अग्रस्थितिसे एक समय आदि कम अधस्तन बन्धस्थितियोंमें भी—जो कि आबाधाकालसे बाहिर स्थित हैं—अधस्तन प्रदेशाग्रको स्वस्थान या परस्थानसे उत्कीर्ण कर संक्रमण करता है । किन्तु वर्तमानमें बंधनेवाली स्थितिसे उपरिम सत्त्व-स्थितियोंमें उत्कर्षणसंक्रमण नहीं होता है, यह 'अहिए वा संकमो णत्थि' इस चतुर्थ चरणका अर्थ है । यहाँपर पठित 'वा' शब्द समुच्च-यार्थक है, अतएव बन्धसे हीनतर किसी भी स्थितिविशेषमें उत्कर्षणसंक्रमण नहीं होता है, ऐसा अर्थ करना चाहिए, क्योंकि, आबाधाकालके भीतरकी स्थितियोंमें बद्ध प्रथम निषेकसे हीनतर स्थितियोंमें उत्कर्षणसंक्रमणका सर्वथा अभाव माना गया है । अतएव आबाधाकाल-का उल्लंघन करके नवकबद्ध समयप्रबद्धके प्रथम निपेकको आदि लेकर नवकबद्ध समयप्रबद्धकी अन्तिम स्थिति तककी स्थितियोंमें उत्कर्षणसंक्रमणका प्रतिषेध नहीं है, किन्तु इससे ऊपरकी स्थितियोंमें और आबाधाकालकी भीतरी स्थितियोंमें उत्कर्पणसंक्रमण नहीं होता है । पर-प्रकृतिरूप संक्रमण तो समस्थितिमें प्रवृत्त होता हुआ बध्यमान प्रकृतिके उदयावलीसे बाहिरी

(८८) संकामगपट्ठवगो माणकसायस्स वेदगो कोधं।
संछुहदि अवेदेंतो माणकसाये कमो सेसे ॥१४१॥

३२७. विहासा। ३२८. जहा। ३२९. माणकसायस्स संकामगपट्ठवगो माणं चेव वेदेंतो कोहस्स जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते माणे संछुहदि। ३३०. विदिय-मूलगाहा त्ति विहासिदा समत्ता भवदि।

स्थितिको आदि करके अंतिम स्थिति तक बंधकस्थितिसे उपरिम स्थितियोंमें भी प्रतिषिद्ध नहीं है, यह अर्थ चतुर्थ चरणमें पठित 'वा' शब्दसे संगृहीत किया गया है। समस्थितिमें प्रवर्तमान पर-प्रकृतिरूप संक्रमण बंधकस्थितिसे अधस्तन-उपरितन समस्त स्थितियोंमें किस प्रकार प्रवृत्त होता है, इसका उदाहरण इस प्रकार जानना चाहिए। जैसे सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंको बाँधते हुए किसी जीवके असातावेदनीय आदिका स्थितिसत्त्व अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे कुछ कम होता है। पुनः बध्यमान सातावेदनीयकी जो अन्तःकोड़ा-कोड़ीसे लगाकर पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण तक की उत्कृष्ट स्थिति है, उसके ऊपर असातावेदनीयकी स्थितिको संक्रमण करता हुआ बन्धस्थितियोंमें भी संक्रमण करता है और बन्धसे उपरिम स्थितियोंमें भी समयाविरोधसे संक्रमण करता है अन्यथा एक आवलीसे कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका होना असंभव हो जायगा। इस प्रकार यह सामान्यसे संसारावस्थामें विवक्षित प्रकृतिके स्थितिबन्धके ऊपर इतर प्रकृतिके संक्रमणका दृष्टान्त दिया। इसी प्रकार क्षपकश्रेणीमें भी बध्यमान और अबध्यमान प्रकृतियोंको यथासंभव संक्रमण करता हुआ बध्यमान प्रकृतियोंके प्रत्यग्रबन्धस्थितिसे अधस्तन और उपरितन स्थिति-योंमेंसे समस्थितिमें संक्रमण करता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

मानकषायका वेदन करनेवाला वही संक्रमण-प्रस्थापक जीव क्रोधसंज्वलनको नहीं वेदन करते हुए ही उसे मानकषायमें संक्रान्त करता है। यही क्रम शेष कषायमें भी जानना चाहिए ॥१४१॥

चूर्णिसू०—इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—मानकषायका संक्रमण-प्रस्था-पक मानको ही वेदन करता हुआ क्रोधसंज्वलनके जो दो समय कम दो आवलीप्रमाण नवक-बद्ध समयप्रबद्ध हैं, उन्हें मानसंज्वलनमें संक्रान्त करता है। इस प्रकार दूसरी मूलगाथा और उससे सम्बद्ध भाष्यगाथाओंकी विभाषा समाप्त होती है ॥३२७-३३०॥

विशेषार्थ—अन्तर-द्विसमयकृत अवस्थामें वर्तमान वही संक्रमण-प्रस्थापक जीव यथाक्रमसे नव नोकषायोंका संक्रमण कर और तत्पश्चात् अश्वकर्णकरण आदि क्रियाओंको यथावसर ही करके संज्वलनक्रोधके चिरन्तन सत्त्वको सर्वसंक्रमणके द्वारा संक्रान्त करके जिस समय मानकषायका संक्रमण-प्रस्थापक हुआ, उस समय संज्वलनक्रोधके जो दो समय कम दो आवलीप्रमाण नवकबद्ध समयप्रबद्ध हैं, उन्हें संज्वलनमानमें संक्रमण करता हुआ

३३१. एत्तो तदियमूलगाहा । ३३२. जहा ।

(८९) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस-अणुभागे ।
अधिगो समो व हीणो गुणेण किं वा विसेसेण ? ॥१४२॥

३३३. एदिस्से चत्तारि भासगाहाओ । ३३४. भासगाहा समुकित्तणा । समुकित्तिदाए व अत्थविभासं भणिस्सामो । ३३५. तं जहा ।

क्रोधको नहीं वेदन करते हुए और मानका वेदन करते हुए ही संक्रमण करता है । क्योंकि जब मानकषायके वेदनकालमें दो समय कम दो आवलीमात्र काल रह जाता है, उसके भीतर ऐसी ही प्रवृत्ति देखी जाती है । जैसा यह क्रम मानकषायके संक्रमण-प्रस्थापककी सन्धिमें नवकबद्ध समयप्रबद्धोंके संक्रमणका कहा है, वैसा ही क्रम शेष कषायोंके भी संक्रमण-प्रस्थापकोंकी सन्धिके समय प्ररूपण करना चाहिए । इस प्रकार यह अर्थ निकलता है कि मानका वेदन करता हुआ क्रोधसंज्वलनके दो समय कम दो आवलीमात्र नवकबन्धका संक्रमण करता है । मायाका वेदन करता हुआ मानसंज्वलनके नवकबन्धका संक्रमण करता है और लोभका वेदन करनेवाला मायासंज्वलनके नवकबन्धका संक्रमण करता है । इस प्रकार दूसरी मूलगाथाके तीनों अर्थोंमें प्रतिबद्ध ग्यारह भाष्यगाथाओंकी विभाषा समाप्त होनेके साथ ही दूसरी मूलगाथाका अर्थ व्याख्यान भी सम्पन्न हो जाता है ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे तीसरी मूलगाथा अवतीर्ण होती है । वह इस प्रकार है ॥३३१-३३२॥

संक्रमण-प्रस्थापकके अनुभाग और प्रदेश-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण परस्परमें क्या समान हैं, अथवा अधिक हैं, अथवा हीन हैं ? इसी प्रकार प्रदेशोंकी अपेक्षा वे संख्यात, असंख्यात या अनन्तगुणितरूप विशेषसे परस्पर हीन हैं, या अधिक हैं ? ॥१४३॥

विशेषार्थ—संक्रमण-प्रस्थापकके अनुभाग और प्रदेश-विषयक बन्ध, उदय और संक्रमण-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका निरूपण करनेके लिए इस मूलगाथासूत्रका अवतार हुआ है । यह समस्त गाथा प्रश्नात्मक है । इसमें दो प्रकारकी पृच्छाएँ की गई हैं । प्रथम तो यह कि संक्रमण-प्रस्थापकके अनुभागसम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण परस्पर समान हैं, अथवा हीन या अधिक हैं । दूसरी पृच्छा प्रदेशबन्धके विषयमें की गई है कि उसी संक्रमण-प्रस्थापकके प्रदेशबन्ध-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण परस्पर समान है या हीनाधिक ? तथा उनके प्रदेश भी परस्पर संख्यात, असंख्यात और अनन्तगुणित रूपसे हीन हैं, अथवा अधिक, अथवा कुछ विशेष अधिक हैं ? इन दोनों पृच्छाओंका समाधान आगे भाष्यगाथाओंके द्वारा किया जायगा ।

चूर्णिसू०—इस तीसरी मूलगाथाकी चार भाष्यगाथाएँ हैं । उन भाष्यगाथाओंका उच्चारण करना ही समुत्कीर्तना है । इस प्रकार उनकी समुत्कीर्तना करनेपर अर्थ-विभाषा कहेंगे । वह इस प्रकार है ॥३३३-३३५॥

(९०) बंघेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥१४३॥

३३६. विहासा । ३३७. अणुभागेण बंधो थोवो । ३३८. उदओ अणंतगुणो । ३३९. संकमो अणंतगुणो ।

३४०. विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(९१) बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१४४॥

३४१. विहासा । ३४२. जहा । ३४३. पदेसग्गेण बंधो थोवो । ३४४. उदयो असंखेज्जगुणो । ३४५. संकमो असंखेज्जगुणो ।

बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है । इस प्रकार अनुभागके विषयमें गुणश्रेणी अनन्तगुणी जानना चाहिए ॥१४३॥

चूर्णिसू०—इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—अनुभागकी अपेक्षा बन्ध अल्प है, (क्योंकि, यहाँपर तत्काल होनेवाले बन्धको ग्रहण किया गया है ।) बन्धसे उदय अनन्तगुणा है । (क्योंकि, वह चिरंतन सत्त्वके अनुभागस्वरूप है ।) उदयसे संक्रमण अनन्तगुणा है । (इसका कारण यह है कि अनुभागसत्त्व उदयमें तो अनन्तगुणा हीन होकरके आता है किन्तु चिरंतनसत्त्वका संक्रमण तदवस्थरूपसे ही परप्रकृतिमें संक्रमित होता है ॥३३६-३३९॥

चूर्णिसू०—अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥३४०॥

बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है । इस प्रकार प्रदेशाग्रकी अपेक्षा गुणश्रेणी असंख्यातगुणी जानना चाहिए ॥१४४॥

चूर्णिसू०—इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—प्रदेशोंकी अपेक्षा बन्ध अल्प है । बन्धसे उदय असंख्यातगुणा है और उदयसे संक्रमण असंख्यातगुणा है ॥३४१-३४५॥

विशेषार्थ—इस दूसरी भाष्यगाथाके द्वारा प्रदेश-विषयक अल्पबहुत्व बतलाया गया है । अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके उक्त स्थलपर पुरुषवेद आदि जिस किसी भी कर्मका नवकबन्ध होता है वह एक समयप्रबद्धमात्र होनेसे वक्ष्यमाण पदोंसे प्रदेशोंकी अपेक्षा सबसे कम है । इस बन्धसे उदय प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणा है, क्योंकि, आयुकर्मको छोड़कर वेद्यमान जिस किसी भी कर्मका उदय गुणश्रेणी-गोपुच्छाके माहात्म्यसे असंख्यातगुणा हो जाता है । उदयरूप प्रदेशोंसे संक्रमणरूप प्रदेश भी असंख्यातगुणित होते हैं, इसका कारण यह है कि जिन कर्मोंका गुणसंक्रमण होता है, उन कर्मोंका गुणसंक्रमण-द्रव्य और जिनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, उनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण-द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होनेसे उदयकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हो जाता है ।

३४६. तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(९२) उदओ च अणंतगुणो संपहि-बंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहि-बंधो अणंतगुणो ॥१४५॥

३४७. विहासा । ३४८. जहा । ३४९. से काले अणुभागबंधो थोवो । ३५०. से काले चेव उदओ अणंतगुणो । ३५१. अस्सिं समए बंधो अणंतगुणो । ३५२. अस्सिं चेव समए उदओ अणंतगुणो ।

३५३. चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(९३) गुणसेढि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे ।
गणणादियंतसेढी पदेस-अग्गेण बोद्धव्वा ॥१४६॥

३५४. विहासा । ३५५. जहा । ३५६. अस्सिं समए अणुभागुदयो बहुगो । से काले अणंतगुणहीणो । एवं सव्वत्थ । ३५७. पदेसुदयो अस्सिं समये थोवो । से

चूर्णिसू०–अब तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥३४६॥

अनुभागकी अपेक्षा साम्प्रतिक-बन्धसे साम्प्रतिक-उदय अनन्तगुणा होता है । इसके अनन्तरकालमें होनेवाले उदयसे साम्प्रतिक-बन्ध अनन्तगुणा है ॥१४५॥

चूर्णिसू०–इस गाथाकी विभाषा इस प्रकार है–विवक्षित समयके अनन्तरकालमें होनेवाला अनुभागबन्ध अल्प है । इस अनुभागबन्धसे तदनन्तरकालमें ही होनेवाला अनुभाग-उदय अनन्तगुणा है । अनन्तर-समयभावी अनुभाग-उदयसे इस समयमें होनेवाला अनुभाग-बन्ध अनन्तगुणा है और इस समयमें होनेवाले अनुभागबन्धसे इसी समयमें ही होनेवाला अनुभाग-उदय अनन्तगुणा है ॥३४७-३५२॥

विशेषार्थ–भाष्यगाथामें जो बात पूर्वानुपूर्वीके क्रमसे कही है, चूर्णिसूत्रोंमें वही बात पश्चादानुपूर्वीके क्रमसे कही है । अनन्तरकाल भावी उदयसे साम्प्रतिक-बन्धके अनन्त-गुणित होनेका कारण यह है कि समय-समय बढ़नेवाली अनन्तगुणी विशुद्धिके माहात्म्यसे आगे आगे प्रतिक्षण अनुभागका उदय क्षीण होता हुआ चला जाता है ।

चूर्णिसू०–अब चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥३५३॥

यह संक्रामक संयत अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणीरूपसे वेदक होता है । किन्तु प्रदेशाग्रकी अपेक्षा गणनातिक्रान्त अर्थात् असंख्यातगुणित श्रेणीरूपसे वेदक जानना चाहिए ॥१४६॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–इस वर्तमान समयमें अनु-भागका उदय बहुत होता है । इसके अनन्तरकालमें अनुभागका उदय अनन्तगुणा हीन होता है । इस प्रकार सर्वत्र अर्थात् आगे आगेके समयोंमें अनुभागका उदय अनन्तगुणा हीन जानना चाहिए । प्रदेशोदय इस वर्तमान समयमें अल्प होता है । इसके अनन्तरकालमें

काले असंखेज्जगुणो । एवं सव्वत्थ ।

३५८. एत्तो चउत्थी मूलगाहा । ३५९. तं जहा ।

(९४) बंधो व संकमो वा उदओ वा किं सगे सगे ट्ठाणे ।
से काले से काले अधिओ हीणो समो वा पि ॥१४७॥

असंख्यातगुणा होता है । इसी प्रकार उत्तरोत्तर समयोंमें सर्वत्र असंख्यातगुणा प्रदेशोदय जानना चाहिए ॥३५४-३५७॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी मूलगाथाका अवतार किया जाता है। वह इस प्रकार है ॥३५८-३५९॥

बन्ध, संक्रम और उदय स्वक स्वक स्थानपर तदनन्तर तदनन्तर कालकी अपेक्षा क्या अधिक हैं, हीन हैं, अथवा समान हैं ? ॥१४७॥

विशेषार्थ–यह चौथी मूलगाथा अनुभाग और प्रदेशसम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण-विषयक स्वस्थान-अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनेके लिए अवतीर्ण हुई है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–साम्प्रतिक या वर्तमान समय-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमणसे तदनन्तर काल-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण अपने-अपने स्थानपर क्या अधिक होकर प्रवृत्त होते हैं, या हीन होकर प्रवृत्त होते हैं, अथवा समान होकर प्रवृत्त होते हैं ? इस प्रकारके प्रश्नों-द्वारा यह गाथा बन्ध आदि पदोंका तदनन्तर कालके साथ भेद-आश्रय करके स्वस्थानअल्पबहुत्वका निरूपण करती है । यहाँपर पूर्व गाथासूत्रसे अनुभाग और प्रदेश पदकी, तथा 'गुणेण किं वा विसेसेण' इस पदकी अनुवृत्ति करना चाहिए । तदनुसार गाथाका अर्थ इस प्रकार करना चाहिए–अनुभाग-विषयक साम्प्रतिकबन्धसे तदनन्तर समयभावी बन्ध षड्गुणी वृद्धि और हानिकी अपेक्षा क्या अधिक है, हीन है या समान है ? साम्प्रतिक-उदयसे तदनन्तर-समयसम्बन्धी उदय षड्गुणी वृद्धि और हानिकी अपेक्षा क्या अधिक है, हीन है, या समान है ? तथा साम्प्रतिक-संक्रमणसे तदनन्तर-काल-भावी संक्रमण षड्गुणी वृद्धि और हानिकी अपेक्षा सन्निकर्ष किये जानेपर क्या अधिक है, हीन है अथवा समान है ? इसी प्रकार प्रदेशोंकी अपेक्षा भी साम्प्रतिक बन्ध, उदय और संक्रमणसे तदनन्तर-समय-सम्बन्धी बन्ध, उदय और संक्रमण अनन्तगुणी वृद्धि और हानिको छोड़कर शेष चतुःस्थान-पतित वृद्धि और हानिकी अपेक्षा अधिक हैं, हीन है या समान हैं ? प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी वृद्धि और हानिको छोड़नेका यह अभिप्राय है कि विवक्षित समयसे तदनन्तर समयमें कर्म-प्रदेशोंकी अनन्तगुणी वृद्धि या हानि बन्ध, उदय या संक्रमणमें कहीं भी संभव नहीं है । इस मूल गाथा-द्वारा उठाये गये प्रश्नोंका उत्तर वक्ष्यमाण तीन भाष्यगाथाओंके द्वारा स्वयं ही ग्रन्थकारने दिया है । विवक्षित अर्थकी पृच्छाओंके द्वारा सूचना करना ही मूलगाथाका उद्देश्य होता है ।

३६०. एदिस्से गाहाए तिण्णि भासगाहाओ । ३६१. तासिं समुक्कित्तणा तहेव विहासा च । ३६२. जहा ।

(९५) बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि ॥१४८॥

३६३. विहासा । ३६४. जहा । ३६५. अस्सिं समए अणुभागबंधो बहुओ । ३६६. से काले अणंतगुणहीणो । ३६७. एवं समए समए अणंतगुणहीणो । ३६८. एवमुदयो वि कायव्वो । ३६९. संकमो जाव अणुभागखंडयमुक्कीरेदि ताव तत्तिगो तत्तिगो अणुभागसंकमो । अण्णम्हि अणुभागखंडये आढत्ते अणंतगुणहीणो अणुभागसंकमो ।

३७०. एत्तो विदियाए गाहाए समुक्कित्तणा ।

(९६) गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण संकमो उदओ ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे ॥१४९॥

३७१. विहासा । ३७२. पदेसुदयो अस्सिं समए थोवो । से काले असंखेज्जगुणो । एवं सव्वत्थ । ३७३. जहा उदयो तहा संकमो वि कायव्वो । ३७४. पदेस-

---

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीन भाष्यगाथाएँ हैं । उनकी समुत्कीर्तना और विभाषा इस प्रकार है ॥३६०-३६२॥

अनुभाग, बन्ध और उदयकी अपेक्षा तदनन्तर-काल तदनन्तर-कालमें नियमसे अनन्तगुणित हीन होता है । किन्तु संक्रमण भजनीय है ॥१४८॥

चूर्णिसू०–उक्त गाथाकी विभाषा इस प्रकार है–इस वर्तमान समयमें अनुभागबन्ध बहुत होता है और तदनन्तर कालमें अनन्तगुणित हीन होता है । इस प्रकार समय-समयमें अनन्तगुणित हीन होता जाता है । इसी प्रकार अनुभाग-उदयकी भी प्ररूपणा करना चाहिए । अर्थात् वर्तमान क्षणमें अनुभागोदय बहुत होता है और तदुत्तर क्षणमें अनन्तगुणा हीन होता जाता है । संक्रमण जब तक एक अनुभागकांडकका उत्कीरण करता है, तब तक तो अनुभाग-संक्रमण उतना-उतना ही होता रहता है । परन्तु अन्य अनुभागकांडकके आरम्भ करनेपर उत्तरोत्तर क्षणोंमें अनुभागसंक्रमण अनन्तगुणा हीन होता जाता है ॥३६३-३६९॥

अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥३७०॥

प्रदेशाग्रकी अपेक्षा संक्रमण और उदय उत्तरोत्तर कालमें असंख्यातगुणित श्रेणिरूप होते हैं । किन्तु बन्ध प्रदेशाग्रमें भजनीय है ॥१४९॥

चूर्णिसू०–इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–प्रदेशोदय इस समयमें अल्प होता है, तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणित होता है । इसी प्रकार सर्वत्र अर्थात् आगे आगेके समयोंमें जानना चाहिए । जैसी उदयकी प्ररूपणा की है, वैसी ही संक्रमणकी भी

बंधो चउव्विहाए वड्डीए चउव्विहाए हाणीए अवट्ठाणे च भजियव्वो।

३७५. एत्तो तदियाए गाहाए समुक्कित्तणा।

(९७) गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदि णियमसा दु अणुभागे।
अहिया च पदेसग्गे गुणेण गणणादियंतेण ॥१५०॥

३७६. एदिस्से अत्थो पुव्वभणिदो।

३७७. एत्तो पंचमी मूलगाहा। ३७८. तिस्से समुक्कित्तणा। ३७९. जहा।

(९८) किं अंतरं करेंतो वड्डदि हायदि ट्ठिदी य अणुभागे।
णिरुवक्कमा च वड्डी हाणी वा केच्चिरं कालं ॥१५१॥

करना चाहिए। अर्थात् प्रदेशोंका संक्रमण वर्तमान कालमें कम होता है और तदुत्तर समयोंमें असंख्यातगुणा होता जाता है। प्रदेशबन्ध चतुर्विध वृद्धि, चतुर्विध हानि और अवस्थानमें भजितव्य है अर्थात् वर्तमान समयके प्रदेशबन्धसे तदुत्तर समय-सम्बन्धी प्रदेशबन्ध कदाचित् चतुर्विध वृद्धिसे बढ़ भी सकता है, कदाचित् चतुर्विध हानिरूपसे घट भी सकता है और कदाचित् तदवस्थ भी रह सकता है। इसका कारण यह है कि क्षपकश्रेणी चढ़ते हुए भी योगों की वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही संभव हैं ॥३७१-३७४॥

चूर्णिसू०—अब तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥३७५॥

अनुभागमें गुणश्रेणीकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणा हीन वेदन करता है। किन्तु प्रदेशाग्रमें गणनातिक्रान्त गुणितरूप श्रेणीके द्वारा अधिक है ॥१५०॥

चूर्णिसू०—इस गाथाका अर्थ पहले कहा जा चुका है। अर्थात् यह गाथा पूर्वोक्त अर्थका ही उपसंहार करती है ॥३७६॥

विशेषार्थ—इस तीसरी भाष्यगाथाके चतुर्थ चरणमें पठित 'गणणादियंतेण' पदका गणनातिक्रान्त अर्थके अतिरिक्त 'एयादीया गणना बीयादीया हवेज्ज संखेज्जा' के नियमसे एक और विशिष्ट अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—गणना अर्थात् एक, सवा, डेढ़, आदिसे अतिक्रान्त अर्थात् रहित ऐसे दो, तीन आदि संख्यात और संख्यातीत असंख्यात-रूप गुणश्रेणीके द्वारा प्रदेशबन्ध उत्तरोत्तर समयोंमें वृद्धि और हानि अवस्थासे परिणत होता है, किन्तु अनुभाग उत्तरोत्तर क्षणोंमें अनन्तगुणित हीन होता जाता है।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे पाँचवीं मूलगाथा अवतीर्ण होती है, उसकी समुत्कीर्तना इस प्रकार है ॥३७७-३७९॥

अन्तरको करता हुआ वह कर्मोंकी स्थिति और अनुभागको क्या बढ़ाता है, अथवा घटाता है? तथा स्थिति और अनुभागको बढ़ाते और घटाते हुए निरुपक्रम अर्थात् अन्तर-रहित वृद्धि अथवा हानि कितने काल तक होती है? ॥१५१॥

विशेषार्थ—प्रकृत गाथा संक्रमण-सम्बन्धी गाथाओंमें तो पाँचवीं है और अप-

३८०. एत्थ तिण्णि भासगाहाओ। ३८१. तासिं समुक्कित्तणं विहासणं च वत्तइस्सामो। ३८२. तं जहा। ३८३. पढमाए गाहाए समुक्कित्तणा।

(९९) ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण।
एसा ट्ठिदीसु जहण्णा तहाणुभागे सणंतेसु ॥१५२॥

३८४. विहासा। ३८५. जा समयाहिया आवलिया उदयादो एवमादिट्ठिदी ओकड्डिज्जदि समयूणाए आवलियाए वे-त्तिभागे एत्तिगे अइच्छावेदूण णिक्खिवदि

वर्तना-सम्बन्धी मूलगाथाओंमें पहली है। यह द्विसमयकृत-अन्तरावस्थाको आदि करके छह नोकषायोंके क्षपणाकालके अन्तिम समय तक इस मध्यवर्ती अवस्थामें वर्तमान क्षपकके स्थिति-अनुभाग-विषयक उत्कर्षण-अपकर्षण-सम्बन्धी प्रवृत्तिके क्रमको बतलानेके लिए, तथा उन घटाये-बढ़ाये गये स्थिति, अनुभागयुक्त प्रदेशोंके निरुपक्रमरूपसे अवस्थानकालका प्रमाण अवधारण करनेके लिए अवतीर्ण हुई है। इस गाथासे यह भी ध्वनि निकलती है कि उत्कर्षित या अपकर्षित स्थिति-अनुभाग-सम्बन्धी इस प्रवृत्तिक्रमका विचार केवल क्षपकश्रेणीके प्रस्तुत स्थलपर ही नहीं करना चाहिए, किन्तु इसके पूर्व संसारावस्थामें भी उसका विचार करना चाहिए। गाथामें यद्यपि शब्दतः वृद्धि और हानिरूप उत्कर्षण और अपकर्षणका ही उल्लेख है, तथापि अर्थतः पर-प्रकृति-संक्रमणको भी ग्रहण करना चाहिए और तदनुसार यह भी एक पृच्छा करना चाहिए कि पर-प्रकृतियोंमें संक्रान्त हुआ प्रदेशाग्र कितने काल तक निरुपक्रमरूपसे अवस्थित रहता है। यहाँ ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए कि गाथामें अपठित यह अर्थ विशेष क्यों ग्रहण किया जाय? क्योंकि प्रथम तो यह गाथासूत्र ही देशामर्शक है। दूसरे उत्तरार्धमें पठित 'च' शब्द अनुक्तका समुच्चय करता है। इस गाथाके द्वारा उठाई गई पृच्छाओंका उत्तर आगे कही जानेवाली भाष्यगाथाओंके द्वारा दिया जायगा।

चूर्णिसू०-इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीन भाष्यगाथाएँ हैं, उनकी समुत्कीर्तना और विभाषा एक साथ कहेंगे। वह इस प्रकार है। उनमें प्रथम भाष्य-गाथा की यह समुत्कीर्तना है ॥३८०-३८३॥

जघन्य अपवर्तनाका प्रमाण त्रिभागसे हीन आवली है। यह जघन्य अपवर्तना स्थितियोंके विषयमें ग्रहण करना चाहिए। किन्तु अनुभाग-विषयक जघन्य अपवर्तना अनन्त स्पर्धकोंसे प्रतिबद्ध है। अर्थात् जब तक अनन्त स्पर्धक अतिस्थापनारूपसे निक्षिप्त नहीं हो जाते हैं, तब तक अनुभाग-विषयक-अपवर्तनाकी प्रवृत्ति नहीं होती है ॥१५२॥

चूर्णिसू०-इस गाथाकी विभाषा कहते हैं-उदयसे अर्थात् उदयावलीसे लेकर एक समय अधिक आवली, दो समय-अधिक आवली आदिरूप जो स्थिति अपकृष्ट की जाती है, वह एक समय कम आवलीके दो त्रिभाग इतने प्रमाणकालमें अतिस्थापना करके निक्षिप्त करता

णिक्खेवो समयूणाए आवलियाए तिभागो समयुत्तरो। ३८६. तदो जा अणंतर-उवरिमट्ठिदी तिस्से णिक्खेवो तत्तिगो चेव। अइच्छावणा समयाहिया। ३८७. एवं ताव अइच्छावणा वड्ढदि जाव आवलिया अधिच्छावणा जादा त्ति। ३८८. तेण परमधिच्छावणा आवलिया, णिक्खेवो वड्ढदि। ३८९. उक्कस्सओ णिक्खेवो कम्मट्ठिदी दोहिं आवलियाहिं समयाहियाहिं ऊणिगा। ३९०. जहण्णओ णिक्खेवो थोवो। ३९१. जहण्णिया अइच्छावणा समयूणाए आवलियाए बे-त्तिभागा विसेसाहिया। ३९२. उक्कस्सिया अइच्छावणा विसेसाहिया। ३९३. उक्कस्सओ णिक्खेवो असंखेज्जगुणो।

है। उस निक्षेपका प्रमाण समयोन आवलीका समयाधिक त्रिभाग है। तत्पश्चात् जो अनन्तर-उपरिम स्थिति है, उसका निक्षेप तो उतना ही होता है, किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है। इस प्रकार तब तक अतिस्थापना बढ़ती जाती है, जब तक कि अतिस्थापना पूर्ण आवलीप्रमाण होती है। इससे परे अतिस्थापना तो आवलीप्रमाण ही रहती है, किन्तु निक्षेप बढ़ने लगता है। इस निक्षेपका उत्कृष्ट प्रमाण समयाधिक दो आवलियोंसे हीन कर्मस्थिति है। इस प्रकार जघन्य निक्षेप अल्प है। जघन्य अतिस्थापना समयोन आवलीके विशेषाधिक दो त्रिभागप्रमाण है। उत्कृष्ट अतिस्थापना विशेष अधिक है और उत्कृष्ट अतिस्थापनासे उत्कृष्ट निक्षेप असंख्यातगुणा है ॥३८४-३९३॥

विशेषार्थ—अपवर्तन किया हुआ द्रव्य जिन निषेकोंमें मिलाते हैं, वे निषेक निक्षेपरूप कहलाते हैं। उक्त द्रव्य जिन निषेकोंमें नहीं मिलाया जाता है, वे निषेक अतिस्थापनारूप कहलाते हैं। निक्षेप और अतिस्थापनाका क्रम यह है कि उदयावली-प्रमाण निषेकोंमेंसे एक कम कर तीनका भाग दीजिए। इनमें एक रूप-सहित प्रथम त्रिभाग तो निक्षेपरूप है अर्थात् वह अपवर्तित द्रव्य एकरूप-सहित प्रथम त्रिभागमें मिलाया जाता है और अन्तिम दो भाग अतिस्थापनारूप हैं, अर्थात् उनमें वह अपवर्तित द्रव्य नहीं मिलाया जाता है। यह स्थूल कथन है। उक्त अर्थको सूक्ष्मरूपसे सरलतासे समझनेके लिए उदयावलीके सोलह (१६) निषेकोंकी कल्पना कीजिए और तदनुसार सत्तरहसे लेकर बत्तीस तकके निषेक दूसरी आवलीके कल्पना कीजिए। इस कल्पनाके अनुसार दूसरी आवलीके सत्तरहवें निषेकका द्रव्य अपकर्षण करके नीचे उदयावलीमें देना है, तो उक्त क्रमके अनुसार १६ मेंसे एक कम करनेपर १५ रहे, उसमें ३ का भाग देनेपर प्रथम त्रिभाग पाँच हुआ। उसमें एकके मिलाने पर ६ होते हैं। प्रारम्भके इन ६ निषेकोंमें उस अपवर्तित द्रव्यका निक्षेप होगा, इसलिए वे निषेक निक्षेपरूप कहे जाते हैं। शेष ७ से लेकर १६ तकके जो प्रथमावलीके निषेक हैं, उनमें उक्त द्रव्यका निक्षेप नहीं होगा, अतएव वे अतिस्थापनारूप कहे जाते हैं। यह जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण है। इससे ऊपर दूसरी आवलीके दूसरे निषेकका अपकर्षण किया, तब इसके नीचे एक समय अधिक आवलीमात्र सर्व निषेक हैं,

३९४. विदियाए गाहाए समुक्कित्तणा । ३९५. जहा ।

उनमें निक्षेप तो एक समय कम आवलीका एक अधिक त्रिभागमात्र ही रहेगा, किन्तु अतिस्थापनाका प्रमाण पहलेसे एक समय अधिक हो जायगा। पुनः उसी दूसरी आवलीके तीसरे निषेकको अपकर्षण कर नीचे दिया, तब भी निक्षेपका प्रमाण वही रहेगा, किन्तु अतिस्थापना एक समय और अधिक हो जावेगी। पुनः उसी दूसरी आवलीके चौथे निषेकका अपकर्षण कर नीचे देनेपर भी निक्षेपका तो प्रमाण पूर्वोक्त ही रहेगा, किन्तु अतिस्थापनाका प्रमाण एक समय अधिक हो जायगा। इस प्रकार ऊपर-ऊपरके निषेकोंको अपकर्षण कर नीचे देनेपर निक्षेपका प्रमाण तब तक वही रहेगा, जब तक कि अतिस्थापनाका प्रमाण एक-एक समय बढ़ते हुए पूरा एक आवलीप्रमाण काल न हो जाय। जब अतिस्थापना आवलीप्रमाण हो जाती है, तब उससे ऊपर निक्षेपका ही प्रमाण एक-एक समयकी अधिकतासे तब तक बढ़ता जाता है, जब तक कि उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त न हो जावे। चूर्णिकारने उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण प्रकृत प्रकरणमें उत्कृष्ट अतिस्थापनासे असंख्यातगुणा ही सामान्यरूपसे कहा है, पर जयधवलाकारने उसका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलीसे हीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण बतलाया है। एक समय अधिक दो आवलीसे हीन करनेका कारण यह है कि विवक्षित कर्मका बन्ध होनेके पश्चात् एक आवली तक तो उसकी उदीरणा हो नहीं सकती है, अतः वह एक अचलावलीकाल तो आबाधाकालरूप रहा। और अन्तिम आवली अतिस्थापनारूप है, अतः उसका भी द्रव्य अपकर्षण नहीं किया जा सकता। तथा अन्तिम निषेकका द्रव्य अपकर्षण कर नीचे निक्षिप्त किया ही जा रहा है, अतः उसे ग्रहण नहीं किया। इस प्रकार एक समय अधिक दो आवलीसे हीन शेष समस्त उत्कृष्ट कर्मस्थितिमात्र उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण जानना चाहिए। यहाँ उत्कृष्ट कर्मस्थितिसे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमका ग्रहण न करके चालीस कोड़ाकोड़ी सागरका ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति इतनी ही बतलाई गई है। और चारित्रमोहका क्षपण करनेवाला दर्शनमोहकी क्षपणा पूर्वमें ही कर चुका है, अतः उसके अपवर्तनाकी यहाँ संभावना ही नहीं है। जयधवलाकार कहते हैं कि यहाँ ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए कि क्षपकश्रेणी-विषयक प्ररूपणा करते हुए संसारावस्थामें संभव यह उत्कृष्ट निक्षेपका प्ररूपण यहाँपर असंबद्ध है? क्योंकि उत्कर्षणाके सम्बन्धसे उसका प्रसंगवश प्ररूपणा करनेमें कोई असंगति या दोष नहीं है। किन्तु यथार्थतः प्रस्तुत स्थलपर तो चारित्रमोहनीयकी अवशिष्ट प्रकृतियोंकी नवक बन्धस्थिति तो अत्यन्त अल्प है ही, साथ ही सत्त्वस्थिति भी बहुत कम है। वह कितनी है, इसका प्रमाण यहाँ बतलाया नहीं गया है, तथापि प्रकृत प्रकरणके उक्त अल्पबहुत्वसे इतना स्पष्ट है कि उसकी प्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापनाकालसे जो कि पूर्ण आवलीप्रमाण है—असंख्यातगुणा है।

चूर्णिसू०—अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है। वह इस प्रकार है ॥३९४-३९५॥

(१००) संकामेदुकड्डदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजिदव्वा ॥१५३॥

३९६. विहासा । ३९७. जं पदेसग्गं परपयडीए संकमिज्जदि ठिदीहिं वा अणुभागेहिं वा उक्कड्डिज्जदि तं पदेसग्गमावलियं ण सक्को ओकड्डिदुं वा, उक्कड्डिदुं वा, संकामेदुं वा ।

३९८. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१०१) ओकड्डदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा ।
वड्डीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ॥१५४॥

३९९. विहासा । ४००. ठिदीहिं वा अणुभागेहिं वा पदेसग्गमोकड्डिज्जदि, तं पदेसग्गं से काले चेव ओकड्डिज्जेज्ज वा, उक्कड्डिज्जेज्ज वा, संकामिज्जेज्ज वा, उदीरिज्जेज्ज वा ।

४०१. एत्तो छट्ठीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा । ४०२ तं जहा ।

जो कर्मरूप अंश संक्रमित, अपकर्षित, या उत्कर्षित किये जाते हैं, वे आवली-प्रमित काल तक अवस्थित रहते हैं, अर्थात् उनमें हानि, वृद्धि आदि कोई क्रिया नहीं होती है । उसके पश्चात् तदनन्तर समयमें वे भजितव्य हैं । अर्थात् संक्रमणावलीके व्यतीत होनेपर उनमें वृद्धि, हानि आदि अवस्थाएँ कदाचित् हो भी सकती हैं और कदाचित् नहीं भी हो सकती हैं ॥१५३॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—जो प्रदेशाग्र परप्रकृतिमें संक्रान्त किया जाता है, अथवा स्थिति या अनुभागके द्वारा अपवर्तित किया जाता है, वह प्रदेशाग्र एक आवलीकाल तक अपकर्षण करनेके लिए, उत्कर्षण करनेके लिए या संक्रमण करनेके लिए शक्य नहीं है ॥३९६-३९७॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है ॥३९८॥

जो कर्मांश अपकर्षित किये जाते हैं वे अनन्तर कालमें स्थिति आदिकी वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय, इनकी अपेक्षा भजितव्य हैं । अर्थात् जिन कर्मांशोंका अपकर्षण किया जाता है, उनके अपकर्षण किये जानेके दूसरे ही समयमें ही वृद्धि, हानि आदि अवस्थाओंका होना संभव है ॥१५४॥

चूर्णिसू०—उक्त गाथाकी विभाषा इस प्रकार है जो कर्म-प्रदेशाग्र स्थिति अथवा अनुभागकी अपेक्षा अपकर्षित किया जाता है, वह कर्म-प्रदेशाग्र तदनन्तरकालमें ही अप-कर्षणको भी प्राप्त किया जा सकता है, उत्कर्षणको भी प्राप्त किया जा सकता है, संक्रमणको भी प्राप्त किया जा सकता है और उदीरणाको भी प्राप्त किया जा सकता है॥३९९-४००॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे छठी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥४०१-४०२॥

(१०२) एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु ट्ठिदिविसेसेसु कदिसु वड्ढेदि।
हरसेदि कदिसु एगं तहाणुभागेसु बोद्धव्वं ॥१५५॥

४०३. एदिस्से एक्का भासगाहा। ४०४. तिस्से समुक्कित्तणा च विहासा च कायव्वा। ४०५. तं जहा।

(१०३) एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु।
वड्ढेदि हरस्सेदि च तहाणुभागे सणंतेसु ॥१५६॥

एक स्थितिविशेषको कितने स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है और एकस्थितिविशेषको कितने स्थितिविशेषोंमें घटाता है? इसी प्रकारकी पृच्छाएँ अनुभागविशेषोंमें जानना चाहिए ॥१५५॥

विशेषार्थ—यह छठी मूलगाथा स्थिति-अनुभागविषयक उत्कर्षण-अपकर्षणसम्बन्धी जघन्य-उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका अवधारण करनेके लिए अवतीर्ण हुई है। यह मूलगाथा होनेसे केवल पृच्छारूपसे ही वक्तव्य अर्थकी सूचना करती है। एक स्थितिविशेषको कितनी स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है? इसका अभिप्राय यह है कि किसी विवक्षित एक स्थितिका उत्कर्षण करता हुआ क्या एक स्थितिविशेषमें बढ़ाता है, अथवा दो स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है, अथवा तीन स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है, अथवा संख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है, या असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है, इस प्रकार गाथाके पूर्वार्ध-द्वारा स्थिति-उत्कर्षणके विषयमें जघन्य उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणकी पृच्छा की गई है। इसी पूर्वार्ध-पठित 'च' और 'तु' शब्दके द्वारा उत्कर्षण-विषयक जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापनाके संग्रहकी भी सूचना की गई समझना चाहिए। 'हरसेदि कदिसु एगं' गाथाके उत्तरार्धके इस प्रथम अवयवके द्वारा अपकर्षण-विषयक जघन्य-उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका निर्णय करनेके लिए पृच्छा की गई है। उत्तरार्धके अन्तिम अवयव-द्वारा अनुभाग-विषयक उत्कर्षण-अपकर्षणसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेपके विषयमें तथा जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापनाके प्रमाण-सम्बन्धमें पृच्छा की गई समझना चाहिए। इस प्रकार इस मूलगाथाके द्वारा की गई पृच्छाओंका उत्तर वक्ष्यमाण भाष्यगाथाओंके द्वारा स्वयं ग्रन्थकार ही देंगे।

चूर्णिसू०—इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली एक भाष्यगाथा है। उसकी समुत्कीर्तना और विभाषा एक साथ करना चाहिए। वह इस प्रकार है ॥४०३-४०५॥

एक स्थितिविशेषको असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता है और घटाता भी है। इसी प्रकार अनुभागविशेषको अनन्त अनुभागस्पर्धकोंमें बढ़ाता और घटाता है ॥१५६॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त मूलगाथामें जिन पृच्छाओंका उद्भावन किया गया था, उनका

४०६. विहासा । ४०७. जहा । ४०८. ट्ठिदिसंतकम्मस्स अग्गट्ठिदीदो समयुत्तरट्ठिदिं बंधमाणो तं ट्ठिदिसंतकम्म-अग्गट्ठिदिं ण उक्कड्डदि । ४०९. दुसमयुत्तरट्ठिदिं बंधमाणो वि ण उक्कड्डदि । ४१०. एवं गंतूण आवलियुत्तरट्ठिदिं बंधमाणो ण उक्कड्डदि । ४११. जइ संतकम्म-अग्गट्ठिदीदो बज्झमाणिया ट्ठिदी अदिरित्ता आवलियाए आवलियाए असंखेज्जदिभागेण च तदो सो संतकम्म-अग्गट्ठिदिं सक्को उक्कड्डिदुं । ४१२. तं पुण उक्कड्डियूण आवलियमधिच्छावेयूण आवलियाए असंखेज्जदिभागे णिक्खिवदि । ४१३. णिक्खेवो आवलियाए असंखेज्जदिभागमादिं कादूण समयुत्तराए वड्ढीए णिरंतरं जाव

उत्तर इस भाष्यगाथाके द्वारा दिया गया है। मूलगाथाकी प्रथम पृच्छा यह थी कि एक स्थितिविशेषको कितने स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है ? इसका उत्तर इस भाष्य-गाथाके प्रथम तीन चरणोंमें दिया गया है कि एक स्थितिविशेषका उत्कर्षण या अपकर्षण करनेवाला नियमसे उस स्थितिको असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है। मूलगाथाके चतुर्थ चरण-द्वारा अनुभाग-विषयक उत्कर्षण और अपकर्षणके सम्बन्धमें प्रश्न किया गया था, उसका उत्तर इस भाष्यगाथाके चतुर्थ चरण-द्वारा दिया गया है कि एक अनुभागविशेषको अनन्त अनुभाग-स्पर्धकोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है। मूलगाथा-पठित 'च' और 'तु' शब्दके द्वारा जिन और नवीन पृच्छाओंकी सूचना की गई थी, उनका उत्तर भी इस भाष्यगाथा-पठित 'च और तु' शब्दके द्वारा ही दिया गया है, अर्थात् एक स्थिति-का उत्कर्षण-विषयक जघन्य निक्षेप आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट निक्षेप एक समय-अधिक आवलीसे ऊन और चार हजार वर्षोंसे हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण है। अपकर्षण करनेमें जघन्य निक्षेपका प्रमाण एक समय कम आवलीके त्रिभागसे एक समय अधिक है। तथा उत्कृष्ट निक्षेप एक समय और दो आवली कम उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। अनुभागसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेप अनन्त स्पर्धक-प्रमाण है।

चूर्णिसू०—उक्त गाथाकी विभाषा इस प्रकार है—स्थिति-सत्कर्मकी अग्रस्थितिसे एक समय-अधिक स्थितिको बाँधता हुआ उस स्थिति-सत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता है। दो समय-अधिक स्थितिको बाँधता हुआ भी स्थितिसत्त्वकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता है। इस प्रकार तीन समय-अधिक, चार समय-अधिक आदिके क्रमसे जाकर एक आवली-अधिक स्थितिको बाँधता हुआ भी विवक्षित स्थितिसत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता है। यदि स्थितिसत्त्वकी अग्रस्थितिसे बाँधी जानेवाली स्थिति आवलीसे और आवलीके असंख्यात भागसे अतिरिक्त (अधिक) हो तो वह उस स्थितिसत्त्वकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण कर सकता है। क्योंकि वह उस अग्रस्थितिका उत्कर्षण कर आवली-प्रमाण (जघन्य) अतिस्थापना करके आवलीके असंख्यातवें भागमें अर्थात् तत्प्रमाण जघन्य निक्षेपमें निक्षिप्त करता है। वह निक्षेप आवलीके असंख्यातवें भागको आदि करके एक समय अधिक वृद्धिसे निरन्तर उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होनेतक बढ़ता जाता है। अर्थात् जघन्य

उक्कस्सगो णिक्खेवो त्ति सव्वाणि ट्ठाणाणि अत्थि ।

४१४. उक्कस्सओ पुण णिक्खेवो केत्तिओ ? ४१५. कसायाणं ताव उक्कड्डिज्जमाणियाए ट्ठिदीए उक्कस्सगं णिक्खेवं वत्तइस्सामो । ४१६. चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ चदुहि वस्ससहस्सेहिं आवलियाए समयुत्तराए च ऊणिगाओ, एसो उक्कस्सगो णिक्खेवो ।

४१७. जाओ आबाहाए उवरि ट्ठिदीओ तासिमुक्कड्डिज्जमाणीणमइच्छावणा सव्वत्थ आवलिया । ४१८. जाओ आबाहाए हेट्ठा संतकम्मट्ठिदीओ तासिमुक्कड्डिज्जमाणीणमइच्छावणा किस्से वि ट्ठिदीए आवलिया, किस्से वि ट्ठिदीए समयुत्तरा, किस्से वि ट्ठिदीए दुसमयुत्तरा, किस्से वि ट्ठिदीए तिसमयुत्तरा । एवं णिरंतरमइच्छावणाट्ठा-

---

निक्षेपसे लेकर उत्कृष्ट निक्षेप तक सर्व स्थान निक्षेपरूप हैं ॥४०६-४१३॥

शंका—उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण कितना है ? ॥४१४॥

समाधान—कषायोंकी उत्कर्षण की जानेवाली स्थितिका उत्कृष्ट निक्षेप कहेंगे । अर्थात् सर्व कर्मोके उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण तो भिन्न भिन्न है, अतः हम उदाहरणके रूपमें कषायोंके उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण कहेंगे । एक समय अधिक आवली और चार हजार वर्षों-से हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण यह उत्कृष्ट निक्षेप होता है ॥४१५-४१६॥

विशेषार्थ—निक्षेपका यह प्रमाण इस प्रकार संभव है कि कोई जीव कषायोंकी चालीस कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावली व्यतीत होनेके अनन्तरसमयमें ही उस प्रदेशाग्रको अपवर्तित कर नीचे निक्षिप्त करता है । इस प्रकारसे निक्षेप करनेवाला उदयावलीके बाहिर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त प्रदेशाग्रको क्षपण करनेके लिए ग्रहण करता है । पुनः उस प्रदेशाग्रको तदनन्तर समयमें बन्ध होनेवाली चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके ऊपर उत्कर्षण करता हुआ चार हजार वर्षप्रमाण उत्कृष्ट आबाधाकालका उल्लंघन करके इससे उपरिम निषेकस्थितियोंमें ही निक्षिप्त करता है । इस प्रकार उत्कृष्ट आबाधाकालसे हीन चारित्रमोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ही उत्कर्षणसम्बन्धी उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण होता है । हाँ, इतनी बात विशेष है कि एक समय अधिक बन्धावली कालसे उक्त कर्मस्थितिको कम करना चाहिए, क्योंकि निरुद्ध समयप्रबद्धकी सत्त्व-स्थितिका समयाधिक बन्धावली-प्रमित काल नीचे ही गल चुका है । इस प्रकार समयाधिक आवली और चार हजार वर्षोंसे हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—आबाधाकालसे उपरिवर्ती जो स्थितियाँ हैं, उत्कर्षण की जानेवाली उन स्थितियोंकी अतिस्थापना सर्वत्र आवलीप्रमाण है । आबाधाकालसे अधस्तनवर्ती जो सत्कर्म-स्थितियाँ हैं, उत्कर्षण की जानेवाली उन स्थितियोंकी अतिस्थापना किसी स्थितिकी तो एक आवली, किसी स्थितिकी एक समय-अधिक आवली, किसी स्थितिकी दो समय अधिक

णाणि जाव उक्कस्सिगा अइच्छावणा त्ति । ४१९. उक्कस्सिया पुण अइच्छावणा केत्तिगा ? ४२०. जा जस्स उक्कस्सिगा आबाहा सा उक्कस्सिया आवाहा समयाहियावलियूणाए उक्कस्सिया अइच्छावणा ।

४२१. उक्कड्डिज्जमाणियाए ट्ठिदीए जहण्णगो णिक्खेवो थोवो । ४२२. ओकड्डिज्जमाणियाए ठिदीए जहण्णगो णिक्खेवो असंखेज्जगुणो । ४२३. ओकड्डिज्ज-माणियाए ट्ठिदीए जहण्णिया अधिच्छावणा थोवूणा दुगुणा । ४२४. ओकड्डिज्जमाणि-याए ट्ठिदीए उक्कस्सिया अइच्छावणा णिव्वाघादेण उक्कड्डिज्जमाणाए ट्ठिदीए जहण्णिया अइच्छावणा च तुल्लाओ विसेसाहियाओ । ४२५. आवलिया तत्तिया चेव । ४२६. उक्कड्डणा उक्कस्सिया अधिच्छावणा संखेज्जगुणा । ४२७. ओकड्डणादो वाघादेण उक्कस्सिया अधिच्छावणा असंखेज्जगुणा । ४२८. उक्कड्डणादो उक्कस्सगो णिक्खेवो

आवली, किसी स्थितिकी तीन समय अधिक आवली है । इस प्रकार निरन्तर एक-एक समय अधिक बढ़ते हुए उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण प्राप्त होनेतक सर्व अतिस्थापना-स्थान जानना चाहिए ॥४१७-४१८॥

शंका—उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण कितना है ? ॥४१९॥

समाधान—जिस कर्मकी जो उत्कृष्ट आबाधा है वह एक समय-अधिक आवलीसे हीन आबाधा उस कर्मकी उत्कृष्ट अतिस्थापनाका प्रमाण है ॥४२०॥

जिस प्रकार उत्कर्षण-विषयक जघन्य उत्कृष्ट निक्षेप और अतिस्थापनाका प्रमाण बतलाया है, उसी प्रकार अपकर्षण-सम्बन्धी निक्षेप और अतिस्थापनाका भी जान लेना चाहिए । अब इन्हीं उत्कर्षण-अपकर्षण-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—

चूर्णिसू०—उत्कर्षण की जानेवाली स्थितिका जघन्य निक्षेप सबसे कम है, (क्योंकि वह आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।) इससे अपकर्षण की जानेवाली स्थितिका जघन्य निक्षेप असंख्यातगुणा है, (क्योंकि उसका प्रमाण एक समय अधिक आवलीका त्रिभाग है ।) इससे अपकर्षण की जानेवाली स्थितिकी जघन्य अतिस्थापना कुछ कम दुगुनी है । (क्योंकि उसका प्रमाण आवलीके एक समय कम दो त्रिभाग-प्रमाण है ।) अपकर्षण की जानेवाली स्थितिकी उत्कृष्ट अतिस्थापना और निर्व्याघातकी अपेक्षा उत्कर्षणकी जानेवाली स्थितिकी जघन्य अतिस्थापना ये दोनों परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं । आवलीका प्रमाण उतना ही है । इससे उत्कर्षण-सम्बन्धी उत्कृष्ट अतिस्थापना संख्यातगुणी है । (क्योंकि उसका प्रमाण एक समय अधिक आवलीसे हीन उत्कृष्ट आबाधाकाल है ।) व्याघातकी अपेक्षा अपकर्षण-सम्बन्धी उत्कृष्ट अतिस्थापना असंख्यातगुणी है । (क्योंकि वह एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकांडकप्रमाण है ।) उत्कर्षणविषयक उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है । (यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण अन्तःकोड़ाकोड़ी जानना चाहिए, इसका कारण यह है

विसेसाहिओ। ४२९. ओकड्डणादो उक्कस्सगो णिक्खेवो विसेसाहिओ। ४३०. उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। ४३१. दो आवलियाओ समयुत्तराओ विसेसो।

४३२. एत्तो सत्तमी मूलगाहा। ४३३. तं जहा।

(१०४) ट्ठिदि अणुभागे अंसे के के वड्ढदि के व हरस्सेदि।
केसु अवट्ठाणं वा गुणेण किं वा विसेसेण ॥१५७॥

४३४. एदिस्से चत्तारि भासगाहाओ। ४३५. तासिं समुक्कित्तणा च विहासा च। ४३६. पढमभासगाहाए समुक्कित्तणा।

(१०५) ओवट्टेदि ट्ठिदिं पुण अधिगं हीणं च बंधसमगं वा।
उक्कड्डदि बंधसमं हीणं अधिगं ण वड्ढेदि ॥१५८॥

कि यहाँपर एक समय अधिक आवली-सहित उत्कृष्ट आबाधासे हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट निक्षेपरूपसे विवक्षित है।) अपकर्षणविषयक उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है। (यहाँपर विशेषका प्रमाण संख्यात आवली है, क्योंकि यहाँपर एक आवलीसे हीन उत्कृष्ट आबाधाका प्रवेश सम्मिलित हो जाता है।) उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म विशेष अधिक है। वह विशेष एक समय अधिक दो आवलीप्रमाण है। (क्योंकि यहाँपर समयाधिक अतिस्थापनावलीके साथ बन्धावली भी सम्मिलित हो जाती है।)॥४२१-४३१॥

इस प्रकार अपवर्तना-सम्बन्धी मूलगाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे सातवीं मूलगाथा अवतरित होती है। वह इस प्रकार है॥४३२-४३३॥

स्थिति और अनुभाग-सम्बन्धी कौन-कौन अंश अर्थात् कर्म-प्रदेशोंको बढ़ाता अथवा घटाता है? अथवा किन-किन अंशोंमें अवस्थान करता है? और यह वृद्धि, हानि और अवस्थान किस-किस गुणसे विशिष्ट होता है? ॥१५७॥

चूर्णिसू०—इस सातवीं मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली चार भाष्यगाथाएँ हैं। अब उनकी समुत्कीर्तना और विभाषा की जाती है। उसमें प्रथम भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना इस प्रकार है॥४३४-४३६॥

स्थितिका अपकर्षण करता हुआ कदाचित् अधिक स्थितिका भी अपकर्षण करता है, कदाचित् हीन स्थितिका भी, और कदाचित् बन्ध-समान स्थितिका भी। स्थितिका उत्कर्षण करता हुआ बन्ध-समान या बन्धसे अल्प स्थितिका ही उत्कर्षण करता है, किन्तु अधिक स्थितिको नहीं बढ़ाता है ॥१६८॥

१ का पुण ओवट्टणा णाम? ट्ठिदि-अणुभागदुवारेण कम्मपदेसाणमोकड्डणा उक्कड्डणासहभाविणी ओवट्टणा त्ति भण्णदे। जयध०

४३७. विहासा । ४३८. जा ट्ठिदी ओक्कड्डिज्जदि सा ट्ठिदी बज्झमाणियादो अधिमा वा हीणा वा तुल्ला वा । उक्कड्डिज्जमाणिया ट्ठिदी बज्झमाणिगादो ट्ठिदीदो तुल्ला हीणा वा, अहिया णत्थि ।

४३९. एत्तो विदियभासगाहा । ४४०. जहा ।

(१०६) सव्वे वि य अणुभागे ओकड्डदि जे ण आवलियपविट्ठे ।
उक्कड्डदि बंधसमं णिरुवक्कम होदि आवलिया ॥१५९॥

४४१. विहासा । ४४२. एदिस्से गाहाए अण्णो बंधाणुलोमेण अत्थो अण्णो सब्भावदो[1] । ४४३. बंधाणुलोमं ताव वत्तइस्सामो । ४४४. उदयावलियपविट्ठे अणुभागे मोत्तूण सेसे सव्वे चेव अणुभागे ओकड्डदि । एवं चेव उक्कड्डदि ।

चूर्णिसू०–इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–जो स्थिति अपकर्षित की जाती है, वह स्थिति बध्यमान स्थितिसे अधिक, हीन या तुल्य होती है । किन्तु उत्कर्षण की जानेवाली स्थिति बध्यमान स्थितिसे तुल्य या हीन होती है; अधिक नहीं होती ॥४३७-४३८॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथा अवतरित होती है । वह इस प्रकार है ॥४३९-४४०॥

उदयावलीके बाहिर स्थित सभी अर्थात् बन्ध-सदृश या उससे अधिक अनुभागका अपकर्षण करता है । किन्तु जो अनुभाग आवली-प्रविष्ट हैं, अर्थात् उदयावलीके अन्तःस्थित है, वह अपकर्षित नहीं करता है । बन्धसदृश अनुभागका उत्कर्षण करता है, उससे अधिकका नहीं । आवली अर्थात् बन्धावली निरुपक्रम होती है, क्योंकि वह उत्कर्षण-अपकर्षणके विना निर्व्याघातरूपसे अवस्थित रहती है ॥१५९॥

चूर्णिसू०–इस गाथाका बन्धानुलोमसे अन्य अर्थ है और सद्भावकी अपेक्षा अन्य अर्थ है । इनमेंसे पहले बन्धानुलोम अर्थको कहेंगे ॥४४१-४४३॥

विशेषार्थ–गाथासूत्रमें निबद्ध पदोंके अनुसार जो अर्थ किया जाता है, उसे बन्धानुलोम अर्थात् स्थूल अर्थ कहते हैं और जो गाथाके सद्भाव अर्थात् अभिप्राय, आशय या तत्त्व-निचोड़की अपेक्षा अर्थ किया जाता है, उसे सद्भाव अर्थात् सूक्ष्म अर्थ कहते हैं । अथवा स्थितिकी अपेक्षा किये जानेवाले अर्थकी बन्धानुलोम और अनुभागकी अपेक्षा किये जानेवाले अर्थकी सद्भावसंज्ञा जानना चाहिए । चूर्णिकार इनमेंसे पहले गाथाके बन्धानुलोम अर्थका व्याख्यान करेंगे ।

चूर्णिसू०–उदयावलीमें प्रविष्ट अनुभागोंको छोड़कर शेष सर्व ही अनुभागोंका अपकर्षण करता है और इसी प्रकार उत्कर्षण करता है ॥४४४॥

---

१ गाहासुत्तपबंधाणुसारेण जहसुदत्थपरूवणा बंधाणुलोमं णाम । जयध०

४४५. सब्भावसण्णं[1] वत्तइस्सामो । ४४६. तं जहा । ४४७. पढमफद्दयप्पहुडि अणंताणि फद्दयाणि ण ओकड्डिज्जंति । ४४८. ताणि केत्तियाणि ? ४४९. जत्तियाणि जहण्णअधिच्छावणफद्दयाणि जहण्णणिक्खेवफद्दयाणि च तत्तियाणि । ४५०. तदो एत्तियमेत्तियाणि फद्दयाणि अधिच्छिदूण तं फद्दयमोकड्डिज्जदि । एवं जाव चरिमफद्दयं ति ओकड्डदि अणंताणि फद्दयाणि । ४५१. चरिमफद्दयं ण उक्कड्डदि । ४५२. एवमणंताणि फद्दयाणि चरिमफद्दयादो ओसक्कियूण तं फद्दयमुक्कड्डदि ।

विशेषार्थ–उदयावलीसे बाहिरी समस्त स्थितियोंमें स्थित सभी अनुभाग-स्पर्धकोंका उत्कर्षण और अपकर्षण हो सकता है, इस प्रकारका यह बन्धानुलोमी स्थूल अर्थ है, वास्तविक नहीं; क्योंकि, अनुभाग-विषयक उत्कर्षण-अपकर्षणकी प्रवृत्ति जघन्य अतिस्थापना-निक्षेपप्रमाण स्पर्धकोंको छोड़कर शेष स्पर्धकोंकी ही होती है । यहाँ यह शंका की जा सकती है कि इस प्रकारका यह उपदेश गाथाकारने क्यों दिया ? इसका उत्तर यह है कि उनका यह उपदेश स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिए; क्योंकि, उदयावलीसे लेकर सभी स्थितिविशेषोंमें सभी अनुभागस्पर्धक पाये जाते हैं । इसलिए उन स्थितियोंके अपकर्षण या उत्कर्षण किये जानेपर उनमें स्थित सभी अनुभाग-स्पर्धक भी अपकर्षित या उत्कर्षित होते हैं । दूसरे, स्थितियोंमें अवस्थित परमाणुओंसे पृथग्भूत अनुभागस्पर्धक नहीं पाये जाते हैं । इस अभिप्रायकी अपेक्षा उदयावलीमें प्रविष्ट अनुभागोंको छोड़कर शेष सभी अनुभाग स्थितिकी अपेक्षा उत्कर्पित या अपकर्षित होते हैं, ऐसा ग्रन्थकारने कहा है ।

चूर्णिसू०–अब सद्भावसंज्ञक सूक्ष्म अर्थको कहेंगे । वह इस प्रकार है–प्रथम स्पर्धकसे लेकर अनन्त स्पर्धक अपकर्षित नहीं किये जाते हैं । वे स्पर्धक कितने हैं ? जितने जघन्य अतिस्थापना-स्पर्धक हैं और जितने जघन्य निक्षेप-स्पर्धक हैं, उतने हैं । इसलिए एतावन्मात्र अतिस्थापनारूप स्पर्धकोंको छोड़कर तदुपरिम स्पर्धक अपकर्षित किया जाता है । इस प्रकार क्रमशः बढ़ते हुए अन्तिम स्पर्धक तक अनन्त स्पर्धक अपकर्षित किये जाते हैं । (इस प्रकार अपकर्षण-सम्बन्धी सूक्ष्म अर्थ कहकर अब उत्कर्षण-सम्बन्धी सूक्ष्म अर्थ कहते हैं–) चरम स्पर्धक उत्कर्षित नहीं किया जाता है, उपचरिम स्पर्धक नहीं उत्कर्षित किया जा सकता है । इस प्रकार अन्तिम स्पर्धकसे नीचे अनन्त स्पर्धक उतरकर अर्थात् चरम स्पर्धकसे जघन्य अतिस्थापनानिक्षेपप्रमाण स्पर्धक छोड़कर जो स्पर्धक प्राप्त होता है, वह स्पर्धक उत्कर्षित किया जाता है और उसे आदि लेकर उससे नीचेके शेष सर्व स्पर्धक उत्कर्षित किये जाते हैं ॥४४५-४५२॥

अब अनुभाग-सम्बन्धी उत्कर्षण-अपकर्षण-विषयक जघन्य, उत्कृष्ट अतिस्थापनानिक्षेप आदि पदोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं–

१ ट्ठिदिविवक्खमकादूण अणुभागं चेव पहाणभावेण घेत्तूण तव्विसयाणमोकड्डुक्कड्डणाणं पवुत्तिक्कमणिरूवणं सब्भावसण्णा णाम । जयध०

४५३. उक्कड्डणादो ओकड्डणादो च जहण्णगो णिक्खेवो थोवो। ४५४. जहण्णिया अधिच्छावणा ओकड्डणादो च उक्कड्डणादो च तुल्ला अणंतगुणा। ४५५. वाघादेण ओकड्डणादो उक्कस्सिया अधिच्छावणा अणंतगुणा। ४५६. अणुभागखंडयमेगाए वग्गणाए अदिरित्तं। ४५७. उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं बंधो च विसेसाहिया।

४५८. एत्तो तदियभासगाहाए समुक्कित्तणा विहासा च।

(१०७) वड्डीदु होदि हाणी अधिगा हाणीदु तह अवट्ठाणं।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१६०॥

४५९. विहासा। ४६०. जं पदेसग्गमुक्कड्डिज्जदि सा वड्डि त्ति सण्णा। ४६१. जमोकड्डिज्जदि सा हाणि त्ति सण्णा। ४६२. जं ण ओकड्डिज्जदि, ण उक्कड्डिज्जदि पदेसग्गं तमवट्ठाणं त्ति सण्णा। ४६३. एदीए सण्णाए एक्कं ट्ठिदिं वा पडुच्च सव्वाओ वा ट्ठिदीओ पडुच्च अप्पाबहुअं। ४६४. तं जहा। ४६५. वड्डी थोवा। ४६६. हाणी असंखेज्जगुणा। ४६७. अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं। ४६८. अक्खवगाणुवसामगस्स पुण सव्वाओ ट्ठिदीओ एगट्ठिदिं वा पडुच्च वड्डीदो हाणी तुल्ला वा, विसेसाहिया वा, विसेसहीणा वा। अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं।

चूर्णिसू०—उत्कर्षण और अपकर्षणकी अपेक्षा जघन्य निक्षेप स्तोक है। इससे जघन्य अतिस्थापना अपकर्षण और उत्कर्षणकी अपेक्षा परस्पर समान होते हुए भी अनन्तगुणी है। व्याघातसे अपकर्षणकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना अनन्तगुणी है। इससे अनुभाग-कांडक एक वर्गणासे अधिक है। उससे उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व और बन्ध विशेष अधिक हैं॥४५३-४५७॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना और विभाषा एक साथ करते हैं ॥४५८॥

वृद्धि अर्थात् उत्कर्षणसे हानि अर्थात् अपकर्षण अधिक होता है और हानिसे अवस्थान अधिक है। यह अधिकका प्रमाण प्रदेशाग्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणित श्रेणीरूप जानना चाहिए ॥१६०॥

चूर्णिसू०—उक्त गाथाकी विभाषा इस प्रकार है—जो प्रदेशाग्र उत्कर्षित किये जाते हैं, उनकी 'वृद्धि' यह संज्ञा है। जो प्रदेशाग्र अपकर्षित किये जाते हैं, उनकी 'हानि' यह संज्ञा है। जो प्रदेशाग्र न अपकर्षित किये जाते हैं और न उत्कर्षित किये जाते हैं, उनकी 'अवस्थान' यह संज्ञा है। इस संज्ञाके अनुसार एक स्थितिकी अपेक्षा, अथवा सर्व स्थितियोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व होता है। वह इस प्रकार है—वृद्धि अल्प होती है, उससे हानि असंख्यातगुणी होती है और उससे अवस्थान असंख्यातगुणा होता है। (यह उपर्युक्त अल्पबहुत्व क्षपक और उपशामककी अपेक्षा जानना चाहिए।) किन्तु अक्षपक और अनुपशामकके तो सभी स्थितियोंकी अपेक्षा अथवा एक स्थितिकी अपेक्षा वृद्धिसे हानि तुल्य भी है, अथवा विशेष अधिक भी है, अथवा विशेष हीन भी है। किन्तु अवस्थान असंख्यातगुणा है॥४५९-४६८॥

४६९. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

विशेषार्थ—उपर्युक्त भाष्यगाथा उत्कर्षण-अपकर्षण-सम्बन्धी अल्पबहुत्वके प्रमाणका निर्देश करती है। इसका अभिप्राय यह है कि क्षपक या उपशामक जीवोंमें जिस किसी भी स्थितिविशेषका उत्कर्षण किया जानेवाला प्रदेशाग्र कम होता है और इससे अपकर्षण किया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि स्थिति-अपकर्षणके समय विशुद्धि प्रधान है, अर्थात् उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अपकर्षण किये जानेवाले प्रदेशाग्रसे अवस्थानरूप रहनेवाला अर्थात् उत्कर्षण-अपकर्षणके विना स्वस्थानमें ही अवस्थित प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा होता है। इसका कारण यह है कि जिस किसी एक स्थितिके या नाना स्थितियोंके प्रदेशाग्र-में पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भागप्रमाण प्रदेशाग्र तो उत्कर्षणको प्राप्त होते हैं और शेष बहुभाग प्रदेशोंका अपकर्षण किया जाता है, अतः उनका असंख्यातगुणा होना स्वाभाविक ही है। किन्तु जिन स्वस्थान-स्थित असंख्यात बहुभाग-प्रमाण प्रदेशोंका उत्कर्षण-अपकर्षण ही नहीं होता है और इसीलिए जिनकी 'अवस्थान' यह संज्ञा है, वे प्रदे-शाग्र अपकर्षण किये जानेवाले प्रदेशाग्रसे भी असंख्यातगुणित होते हैं, अतः उन्हें इस अल्प-बहुत्वमें असंख्यातगुणा बतलाया गया है। यह अल्पबहुत्व उपशामक या क्षपककी अपेक्षा कहा गया है। इससे नीचे संसारावस्थाके अर्थात् सातवें गुणस्थान तकके जीवोंके उत्कर्षण-अप-कर्षणसम्बन्धी अल्पबहुत्वमें भेद है। जो कि इस प्रकार है—अक्षपक या अनुपशामक जीवोंके वृद्धि या उत्कर्षणकी अपेक्षा हानि या अपकर्षण कदाचित् तुल्य भी होता है, कदाचित् विशेष अधिक भी होता है और कदाचित् विशेष हीन भी हो सकता है। किन्तु अवस्थान असं-ख्यातगुणित ही होता है। इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक सभी जीवोंके एक या नाना स्थितिकी अपेक्षा प्रकृत अल्पबहुत्वके करनेपर पल्योपमके असं-ख्यातवें भागप्रमाण भागहारसे गृहीत प्रदेशाग्रका यदि संक्लेश-विशुद्धि-रहित मध्यम परिणाम कारण होता है तो नीचे या ऊपर निषिच्यमान उत्कर्षण-अपकर्षणरूप द्रव्य सदृश ही होता है, क्योंकि उसमें विसदृशताका कोई कारण ही नहीं पाया जाता है। यदि परिणाम विशुद्ध होते हैं तो नीचे अपकर्षण किया जानेवाला द्रव्य अधिक होता है और ऊपर उत्कर्षण किया जानेवाला द्रव्य अल्प होता है। और यदि परिणाम संक्लिष्ट होते हैं, तो ऊपर निषिच्य-मान द्रव्य बहुत होता है और नीचे अपकर्षण किये जानेवाला द्रव्य अल्प होता है। इसलिए यह कहा गया है कि वृद्धिसे हानि कदाचित् सदृश भी पाई जाती है, कदाचित् विशेष अधिक और कदाचित् विशेष हीन भी। इसी प्रकारका क्रम हानिसे वृद्धिमें भी जानना चाहिए। यहाँपर वृद्धि या हानिके हीन या अधिकका प्रमाण असंख्यातभागमात्र ही जानना चाहिए। किन्तु अवस्थान नियमसे असंख्यातगुणा ही होता है; क्योंकि, उसमें दूसरा प्रकार संभव ही नहीं है। हाँ, यहाँ इतना विशेष अवश्य है कि करण-परिणामोंके अभि-मुख जीवके अपकर्षणरूप किये जानेवाले द्रव्यसे उत्कर्षणरूप द्रव्य असंख्यातगुणा होता है।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥४६९॥

(१०८) ओवट्टणमुव्वट्टण किट्टीवज्जेसु होदि कम्मेसु ।
ओवट्टणा च णियमा किट्टीकरणम्हि बोद्धव्वा ॥१६१॥

४७०. एदिस्से गाहाए अत्थविहासा कायव्वा । ४७१. सत्तसु मूलगाहासु विहासिदासु तदो अस्सकण्णकरणस्स परूवणा । ४७२. अस्सकण्णकरणे त्ति वा आदोलकरणे त्ति ओवट्टण-उव्वट्टणकरणे त्ति वा तिण्णि णामाणि अस्सकण्णकरणस्स ।

४७३. छसु कम्मेसु संछुद्धेसु से काले पढमसमयअवेदो । ताधे चेव पढमसमय-

अपवर्तन अर्थात् अपकर्षण और उद्वर्तन अर्थात् उत्कर्षण कृष्टि-वर्जित कर्मोंमें होता है । किन्तु अपवर्तना नियमसे कृष्टिकरणमें जानना चाहिए ॥१६१॥

चूर्णिसू०–इस गाथाकी अर्थ-विभाषा करना चाहिए ॥४७०॥

विशेषार्थ–यह उपर्युक्त गाथा उद्वर्तन और अपवर्तन इन दोनों करणोंका विभाग प्रतिपादन करनेके लिए अवतरित हुई हैं । जिसका अभिप्राय यह है कि कृष्टिकरण-कालके पहले पहले तो दोनों ही करण होते हैं, किन्तु कृष्टिकरणके समय और उससे ऊपर सर्वत्र केवल अपवर्तनकरण ही होता है, उद्वर्तनकरण नहीं । यह व्यवस्था या विधानरूप उपदेश क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा जानना चाहिए । क्योंकि उपशमश्रेणीमें कुछ विशेषता है और वह यह कि उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणके प्रथम समय तक मोहनीय कर्मकी केवल अपवर्तना ही होती है । पुनः अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लगाकर नीचे सर्वत्र अपवर्तना और उद्वर्तना ये दोनों ही होती हैं । इस प्रकार इस भाष्यगाथाका अर्थ सरल समझ कर चूर्णिकारने उसपर चूर्णिसूत्रों-द्वारा विभाषा न करके केवल यह सूचना कर दी कि मन्दबुद्धि शिष्योंके लिए व्याख्यानाचार्य इस गाथासे सम्बद्ध अर्थ-विशेषकी व्याख्या करें ।

चूर्णिसू०–इस प्रकार संक्रमण-प्रस्थापक-सम्बन्धी सातों मूलगाथाओंकी विभाषा कर दिये जानेपर तत्पश्चात् अब अश्वकर्णकरणकी प्ररूपणा करना चाहिए । अश्वकर्णकरण, अथवा आदोलकरण, अथवा अपवर्तनोद्वर्तनकरण, ये अश्वकर्णकरणके तीन नाम हैं ॥४७१-४७२॥

विशेषार्थ–अश्वकर्णकरण, आदोलकरण और अपवर्तनोद्वर्तनाकरण, ये तीनों एकार्थक नाम हैं । अश्व अर्थात् घोड़ेके कानके समान जो करण-परिणाम क्रमसे हीयमान होते हुए चले जाते हैं, उन परिणामोंको अश्वकर्णकरण कहते हैं । आदोल नाम हिंडोलाका है । *जिस प्रकार हिंडोलेका स्तम्भ और रस्सीका अन्तरालमें त्रिकोण आकार घोड़ेके कान सरीखा दिखता है, इसी प्रकार यहाँपर भी क्रोधादि संज्वलनकषायके अनुभागका सन्निवेश भी क्रमसे घटता हुआ दिखता है, इसलिए इसे आदोलकरण भी कहते हैं । क्रोधादि कषायोंका अनुभाग हानि-वृद्धि रूपसे दिखाई देनेके कारण इसको अपवर्तनोद्वर्तनाकरण भी कहते हैं ।*

चूर्णिसू०–हास्यादि छह कर्मोंके संक्रान्त होनेपर तदनन्तर समयमें उपर्युक्त जीव प्रथमसमयवर्ती अवेदी होता है । उस ही समयमें प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरण-कारक

अस्सकण्णकरणकारगो । ४७४. ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं संजलणाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ४७५. ठिदिबंधो सोलस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।

४७६. अणुभागसंतकम्मं सह आगाइदेण माणे थोवं । ४७७. कोहे विसेसाहियं । ४७८. मायाए विसेसाहियं । ४७९. लोभे विसेसाहियं । ४८०. बंधो वि एवमेव । ४८१. अणुभागखंडयं पुण जमागाइदं तस्स अणुभागखंडयस्स फद्दयाणि कोधे थोवाणि । ४८२. माणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि । ४८३. मायाए फद्दयाणि विसेसाहियाणि । ४८४. लोभे फद्दयाणि विसेसाहियाणि । ४८५. आगाइदसेसाणि पुण फद्दयाणि लोभे थोवाणि । ४८६. मायाए अणंतगुणाणि । ४८७. माणे अणंतगुणाणि । ४८८. कोधे अणंतगुणाणि । ४८९. एसा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स ।

होता है । अर्थात् अवेदी होनेके प्रथम समयमें ही अश्वकर्णकरण करता है । उस समय संज्वलन कषायोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष होता है और स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्ष होता है ॥४७३-४७५॥

विशेषार्थ–यद्यपि सात नोकषायोंके क्षपण-कालमें सर्वत्र संज्वलनकषायोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण ही था, किन्तु इस समय अर्थात् अश्वकर्णकरण करनेके प्रथम समयमें वह संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंसे संख्यातगुणित हानिके द्वारा पर्याप्तरूपसे घटकर उससे संख्यातगुणित हीन जानना चाहिए । उक्त कषाय-चतुष्कका स्थितिबन्ध पहले पूरे सोलह वर्षप्रमाण था, वह अब अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्ष होता है । इस समय शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेदनीयका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष और स्थितिसत्त्व असंख्यात सहस्र वर्षप्रमाण होता है ।

इस प्रकार अश्वकर्णकरणकारकके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका निर्णय करके अब उसीके अनुभागसत्त्वका निर्णय करते हैं–

चूर्णिसू०–अश्वकर्णकरणका आरम्भ करनेवाले जीवने अनुभागकांडकका घात करनेके लिए जिस अनुभागसत्त्वको ग्रहण किया है वह मानसंज्वलनमें सबसे कम है, उससे क्रोधसंज्वलनमें विशेष अधिक है, उससे मायासंज्वलनमें विशेष अधिक है और उससे लोभसंज्वलनमें विशेष अधिक है । (यहाँ सर्वत्र विशेष अधिकका प्रमाण अनन्त स्पर्धक है ।) अनुभागबन्ध-सम्बन्धी अल्पबहुत्व भी इसी प्रकार ही जानना चाहिए । किन्तु जो अनुभागकांडक ग्रहण किया है, उस अनुभागकांडकके स्पर्धक क्रोधमें सबसे कम हैं, इससे मानमें विशेष अधिक स्पर्धक हैं, इससे मायामें विशेष अधिक स्पर्धक हैं और लोभमें विशेष अधिक स्पर्धक हैं । घात करनेके लिए ग्रहण किये गये स्पर्धकोंसे अवशिष्ट अनुभाग-स्पर्धक लोभमें अल्प हैं, मायामें उससे अनन्तगुणित हैं, मानमें उससे अनन्तगुणित हैं और क्रोधमें उससे अणिनन्तगुत हैं । यह प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणकारककी प्ररूपणा है ॥४७६-४८९॥

४९०. तम्मि चेव पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि[1] णाम करेदि । ४९१. तेसिं परूवणं वत्तइस्सामो । ४९२. तं जहा । ४९३. सव्वस्स अक्खवगस्स सव्वकम्माणं देसघादिफद्दयाणमादिवग्गणा तुल्ला । सव्वघादीणं पि मोत्तूण मिच्छत्तं सेसाणं कम्माणं सव्वघादीणमादिवग्गणा तुल्ला । एदाणि पुव्वफद्दयाणि णाम । ४९४. तदो चदुण्हं संजलणाणमपुव्वफद्दयाइं णाम करेदि ।

४९५. ताणि कधं करेदि ? ४९६. लोभस्स ताव लोहसंजलणस्स पुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पढमस्स देसघादिफद्दयस्स हेट्ठा अणंतभागे अण्णाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तयदि । ४९७. ताणि पगणणादो अणंताणि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणमसंखेज्जदिभागो[2] एत्तियमेत्ताणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि ।

चूर्णिसू०—अश्वकर्णकरण करनेके उसी ही प्रथम समयमें चारों संज्वलन-कषायोंके अपूर्वस्पर्धक करता है ॥४९०॥

विशेषार्थ—जिन स्पर्धकोंको पहले कभी प्राप्त नहीं किया, किन्तु जो क्षपकश्रेणीमें ही अश्वकर्णकरणके कालमें प्राप्त होते हैं और जो संसारावस्थामें प्राप्त होनेवाले पूर्वस्पर्धकोंसे अनन्तगुणित हानिके द्वारा क्रमशः हीयमान स्वभाववाले हैं, उन्हें अपूर्व-स्पर्धक कहते हैं ।

चूर्णिसू०—अब उन अपूर्वस्पर्धकोंकी प्ररूपणा कहेंगे । वह इस प्रकार है—सर्व अक्षपक जीवोंके सभी कर्मोंके देशघाती स्पर्धकोंकी आदिवर्गणा तुल्य है । सर्वघातियोंमें भी केवल मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सर्वघाती कर्मोंकी आदि वर्गणा तुल्य है । इन्हींका नाम पूर्वस्पर्धक है । तत्पश्चात् वही प्रथमसमयवर्ती अवेदी जीव उन पूर्वस्पर्धकोंसे चारों संज्वलन-कषायोंके अपूर्वस्पर्धकोंको करता है ॥४९१-४९४॥

शंका—उन अपूर्वस्पर्धकोंको किस प्रकार करता है ? ॥४९५॥

समाधान—यद्यपि यह प्रथमसमयवर्ती अवेदक क्षपक चारों ही कषायोंके अपूर्वस्पर्धकोंको एक साथ ही निर्वृत्त करता है, तथापि (सबका एक साथ कथन अशक्य है, अतः) पहले लोभके अपूर्वस्पर्धक करनेका विधान कहेंगे—संज्वलनलोभके पूर्वस्पर्धकोंसे प्रदेशाग्रके असंख्यातवें भागको ग्रहणकर प्रथम देशघाती स्पर्धकके नीचे अनन्तवें भागमें अन्य अपूर्वस्पर्धक निर्वृत्त करता है । वे यद्यपि गणनाकी अपेक्षा अनन्त हैं, तथापि प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धकोंके असंख्यातवें भागका जितना प्रमाण है, उतने प्रमाण वे अपूर्वस्पर्धक होते हैं ॥४९६-४९७॥

१ काणि अपुव्वफद्दयाणि णाम ? संसारावत्थाए पुव्वमलद्धप्पसरूवाणि खवगसेढीए चेव अस्सकण्णकरणद्धाए समुवलब्भमाणसरूवाणि पुव्वफद्दएहिंतो अणंतगुणहाणीए ओवट्टिज्जमाणसहावाणि जाणि फद्दयाणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि त्ति भण्णंते । जयध० । वर्धमानं मतं पूर्वं हीयमानमपूर्वकम् । स्पर्धकं द्विविधं ज्ञेयं स्पर्धकक्रमकोविदैः ॥ पंचसं० १,४६ ।

२ पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणा एगेगवग्गणविसेसेण हीयमाणा जम्हि उद्देसे दुगुणहीणा होदि तमद्धाणमेगं गुणहाणिट्ठाणंतरं णाम । जयध०

४९८. पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि तत्थ पढमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । ४९९. विदियस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गमणंतभागुत्तरं । ५००. एवमणंतराणंतरेण गंतूण दुचरिमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदादो चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणा विसेसाहिया अणंतभागेण ।

विशेषार्थ–यहाँ यह शंका की गई है कि वह प्रथमसमयवर्ती अवेदी जीव पूर्वस्पर्धकोंसे अपूर्वस्पर्धक कैसे बनाता है ? उसका समाधान इस प्रकार किया गया है कि उस क्षपकके उस समय जो डेढ़ गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्ध हैं और जो कि पूर्वस्पर्धकोंमें यथायोग्य विभागके अनुसार अवस्थित हैं, उन्हें उत्कर्षणापकर्षण भागहारके प्रतिभाग-द्वारा असंख्यातवें भागका अपकर्षण कर, अपूर्वस्पर्धक बनानेके लिए ग्रहण करता है । पुनः उन्हें अनन्त गुण· हानिके द्वारा हीन शक्तिवाले करके पूर्वस्पर्धकोंके प्रथम देशघाती स्पर्धकोंके नीचे उनके अनन्तवें भागमें अपूर्वस्पर्धक बनाता है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम देशघाती स्पर्धककी आदिवर्गणामें जितने अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं, उन अविभागप्रतिच्छेदोंके अनन्तवें भागमात्र ही अविभागप्रतिच्छेद सबसे अन्तिम अपूर्वस्पर्धककी अन्तिमवर्गणामें होते हैं । इस प्रकारसे निर्वृत्त किये गये अपूर्वस्पर्धकोंका प्रमाण प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके भीतर जितने स्पर्धक होते हैं उनके असंख्यातवें भागमात्र बतलाया गया है । पूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणा एक एक वर्गणा-विशेषसे हीन होती हुई जिस स्थानपर दुगुण हीन होती है, उसे एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर कहते हैं ।

अब उपर्युक्त अर्थके ही विशेष निर्णय करनेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं–

चूर्णिसू०–प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्धक निर्वृत्त किये गये हैं उनमें प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणामें अविभाग-प्रतिच्छेदाग्र अल्प हैं । द्वितीय स्पर्धककी आदि वर्गणामें अविभाग-प्रतिच्छेदाग्र अनन्त बहुभागसे अधिक हैं । इस प्रकार अनन्तर अनन्तररूपसे जाकर द्विचरम स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा चरम अपूर्वस्पर्धककी आदि वर्गणा अनन्त भागसे विशेष अधिक है ॥४९८-५००॥

विशेषार्थ–द्वितीय स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे तृतीय स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभाग-प्रतिच्छेद अनन्त बहुभागसे अधिक होते हुए भी कुछ कम द्वितीय भागसे अधिक हैं, तृतीय स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे चतुर्थ स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम तृतीय भागसे अधिक हैं । इस प्रकार जब तक जघन्य परीतासंख्यात-प्रमाण स्पर्धकोंकी अन्तिम स्पर्धकवर्गणा अपने अनन्तर नीचेके स्पर्धककी आदि वर्गणासे उत्कृष्ट संख्यातवें भागसे अधिक होकर संख्यात भागवृद्धिके अन्तको न प्राप्त हो जावे, तब तक इसी प्रकार चतुर्थ-पंचमादि भागाधिक क्रमसे से ले जाना चाहिए । इससे आगे जब तक आदिसे लेकर जघन्य परीतानन्तप्रमाण स्पर्धकोंमें अन्तिम

५०१. जाणि पढमसमये अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ पढमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणा थोवा। ५०२. चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणा अणंतगुणा। ५०३. पुव्वफद्दयस्सादिवग्गणा अणंतगुणा। ५०४. जहा लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि परूविदाणि पढमसमये, तहा मायाए माणस्स कोधस्स परूवेयव्वाणि।

५०५. पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ कोधस्स थोवाणि। ५०६. माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि। ५०७. मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि। ५०८. लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि। ५०९. विसेसो अणंतभागो।

५१०. तेसिं चेव पढमसमए णिव्वत्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं लोभस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं थोवं। ५११. मायाए आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। ५१२. माणस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। ५१३. कोहस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। ५१४. एवं चदुण्हं

स्पर्धककी प्रथमवर्गणा अपने अनन्तर नीचेके स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातवें भागसे अधिक होकर असंख्यात भागवृद्धिके अन्तको न प्राप्त हो जावे, तब तक असंख्यात भागोत्तर वृद्धिका क्रम चालू रहता है। इसके आगे अन्तिम स्पर्धक तक अनन्त भागवृद्धिका क्रम जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्धक निर्वर्तित किये गये, उनमें प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणा अल्प है। इससे अन्तिम अपूर्वस्पर्धककी आदि वर्गणा अनन्तगुणी है। इससे पूर्वस्पर्धककी आदि वर्गणा अनन्तगुणी है। अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें जिस प्रकार संज्वलन लोभके अपूर्वस्पर्धकोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार संज्वलन माया, मान और क्रोधके अपूर्वस्पर्धकोंकी भी प्ररूपणा करना चाहिए ॥५०१-५०४॥

अब प्रथम समयमें निर्वृत्त चारों संज्वलन-कषायोंके अपूर्वस्पर्धक-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको कहते हैं—

चूर्णिसू०—प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्धक निर्वृत्त किये हैं, उनमें क्रोधके अपूर्वस्पर्धक सबसे कम हैं। इससे मानके अपूर्व स्पर्धक विशेष अधिक हैं। इससे मायाके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं और लोभके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं। यहाँ सर्वत्र विशेषका प्रमाण अनन्तवाँ भाग है ॥५०५-५०९॥

चूर्णिसू०—प्रथम समयमें निर्वर्तित उन्हीं अपूर्वस्पर्धकोंके लोभकी आदि वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र अल्प हैं। इससे मायाकी आदिवर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र विशेष अधिक हैं। इससे मानकी आदि वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र विशेष अधिक हैं और इससे क्रोधकी आदि वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र विशेष अधिक हैं। इस प्रकार चारों ही

पि कसायाणं जाणि अपुव्वफद्दयाणि तत्थ चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं चदुण्हं पि कसायाणं तुल्लमणंतगुणं।

५१५. पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स जं पदेसग्गमोकड्डिज्जदि तेण कम्मस्स अवहारकालो थोवो। ५१६. अपुव्वफद्दएहिं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो। ५१७. पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं। ५१८. पढमसमये णिव्वत्तिज्जमाणगेसु अपुव्वफद्दएसु पुव्वफद्दएहिंतो ओकड्डियूण पदेसग्गमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुअं देदि। विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि। एवमणंतराणंतरेण गंतूण

कषायोंके जो अपूर्वस्पर्धक हैं उनमें अन्तिम अपूर्वस्पर्धककी आदिवर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र चारों ही कषायोंके परस्पर तुल्य और अनन्तगुणित हैं ॥५१०-५१४॥

विशेषार्थ—उक्त कथनको स्पष्टरूपसे समझनेके लिए चारों संज्वलन कषायोंकी जो आदि वर्गणाएँ हैं, उनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें १०५।८४।७०।६०। तथा क्रोध संज्वलनादिके अपूर्वस्पर्धकोंकी शलाकाओंका प्रमाण क्रमशः १६।२०।२४।२८। यथाक्रमसे कल्पना करना चाहिये। आदिवर्गणाको अपनी अपनी अपूर्वस्पर्धक-शलाकाओंसे गुणा करनेपर प्रत्येक कषायके अन्तिम स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण आ जाता है, जो परस्परमें तुल्य होते हुए भी अपने आदिवर्गणाकी अपेक्षा अनन्तगुणित होता है। यथा—

	क्रोध	मान	माया	लोभ
आदिवर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद	१०५	८४	७०	६०
अपूर्वस्पर्धकशलाका	×१६	×२०	×२४	×२८
अन्तिमस्पर्धककी आदिवर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद	१६८०	१६८०	१६८०	१६८०

अब अपूर्वस्पर्धकोंका प्रमाण निकालनेके लिए एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर-स्थापित भागहारका प्रमाण जाननेके लिए उपरिम अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरण-कारकके जो प्रदेशाग्र अपकृष्ट किये जाते हैं उससे कर्मका अवहारकाल अल्प है। अपूर्वस्पर्धकोंकी अपेक्षा प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरका अवहारकाल असंख्यातगुणा है और इससे पल्योपमका वर्गमूल असंख्यातगुणा है ॥५१५-५१७॥

विशेषार्थ—उक्त अल्पबहुत्वका आशय यह है कि उत्कर्षण-अपकर्षण भागहारसे असंख्यातगुणित और पल्योपमके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणित हीन पल्योपमके असंख्यातवें भागसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धकोंके अपवर्तित करनेपर जो भाग लब्ध हो, तावन्मात्र क्रोधादिके अपूर्वस्पर्धक होते हैं।

अब पूर्व-अपूर्वस्पर्धकोंमें तत्काल अपकर्षित द्रव्यके निषेकविन्यासक्रमको बतलाते हैं—

चूर्णिसू०—प्रथम समयमें निर्वर्तित किये जानेवाले अपूर्वस्पर्धकोंसे अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणामें बहुत प्रदेशाग्रको देता है। द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन देता है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अपूर्वस्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें विशेष हीन देता है।

चरिमाए अपुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि । ५१९. तदो चरिमादो अपुव्वफद्दयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं देदि । तदो विदियाए पुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि । सेसासु सव्वासु पुव्वफद्दयवग्गणासु विसेसहीणं देदि । ५२०. तम्हि चेव पढमसमए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दयाणं पढमाए वग्गणाए बहुअं । पुव्वफद्दयआदिवग्गणाए विसेसहीणं । ५२१. जहा लोहस्स, तहा मायाए माणस्स कोहस्स च ।

५२२. उदयपरूवणा । ५२३. जहा । ५२४. पढमसमए चेव अपुव्वफद्दयाणि उदिण्णाणि च अणुदिण्णाणि च । अपुव्वफद्दयाणं पि आदीदो अणंतभागो उदिण्णो च अणुदिण्णो च । उवरि अणंता भागा अणुदिण्णा ।

उस अन्तिम अपूर्वस्पर्धक-वर्गणासे प्रथम पूर्वस्पर्धककी आदि वर्गणामें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्र देता है, उससे द्वितीय पूर्वस्पर्धक-वर्गणाओंमें विशेष हीन देता है । इस प्रकार शेष सब पूर्वस्पर्धक-वर्गणाओंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन देता है । उस ही प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र दिखता है, वह अपूर्वस्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणामें बहुत और पूर्वस्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें विशेष हीन है । पूर्व और अपूर्वस्पर्धकोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी यह प्ररूपणा जैसी संज्वलन लोभकी की गई है, उसी प्रकारसे संज्वलन माया, मान और क्रोधकी भी जानना चाहिए ॥५१८-५२१॥

चूर्णिसू०—अब उसी अश्वकर्णकरणकालके प्रथम समयमें चारों संज्वलन कषायोंके अनुभागोदयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—प्रथम समयमें ही अपूर्वस्पर्धक उदीर्ण भी पाये जाते हैं और अनुदीर्ण भी पाये जाते हैं । इसी प्रकार पूर्वस्पर्धकोंका भी आदिसे लेकर अनन्तवाँ भाग उदीर्ण और अनुदीर्ण पाया जाता है । तथा उपरिम अनन्त बहुभाग अनुदीर्ण रहता है ॥५२२-५२४॥

विशेषार्थ—इस चूर्णिसूत्रके द्वारा यह विशेष बात सूचित की गई है कि अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें लतासमान-अनन्तिम भाग प्रतिबद्ध पूर्वस्पर्धकरूपसे और उससे अधस्तन सर्व अपूर्वस्पर्धकस्वरूपसे संज्वलन कषायोंके अनुभागकी उदय-प्रवृत्ति होती है, इससे उपरिम स्पर्धकोंकी उदयरूपसे प्रवृत्ति नहीं होती है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि अपूर्वस्पर्धकस्वरूपसे तत्काल ही परिणमित होनेवाले अनुभागसत्त्वसे प्रदेशाग्रके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करके उदीरणा करनेवाले जीवके उदयस्थितिके भीतर सभीका अपूर्वस्पर्धकोंके स्वरूपसे अनुभागसत्त्व पाया जाता है । इस प्रकार पाये जानेवाले सभी अपूर्वस्पर्धक उदीर्ण कहे जाते हैं । किन्तु सभी अनुभागसत्त्व तो अपूर्वस्पर्धक-स्वरूपसे उदयमें आया नहीं है, अतः उनकी अपेक्षा वे अनुदीर्ण भी पाये जाते हैं । यही बात पूर्वस्पर्धकोंके विषयमें भी जानना चाहिए ।

अब उसी अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें चारों संज्वलनोंका अनुभागबन्ध किस प्रकार होता है, यह बतलाते हैं—

५२५. बंधेण णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वफद्दयं पढममादिं कादूण जाव लदासमाण-फद्दयाणमणंतभागो त्ति । ५२६. एसा सव्वा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स ।

५२७. एत्तो विदियसमए तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो । ५२८. अणुभागबंधो अणंतगुणहीणो । ५२९. गुणसेढी असंखेज्जगुणा । ५३०. अपुव्वफद्दयाणि जाणि पढमसमए णिव्वत्तिदाणि विदियसमये ताणि च णिव्वत्तयदि अण्णाणि च अपुव्वाणि तदो असंखेज्जगुणहीणाणि ।

५३१. विदियसमये अपुव्वफद्दएसु पदेसग्गस्स दिज्जमाणयस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । ५३२. तं जहा । ५३३. विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि । विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं दिज्जदि ताव जाव जाणि विदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि । ५३४. तदो चरिमादो वग्गणादो पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि तेसिमादिवग्गणाए दिज्जदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । ५३५. तदो विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि । तत्तो पाए अणंतरोवणिधाए सव्वत्थ विसेसहीणं दिज्जदि । पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि । सेसासु वि विसेसहीणं दिज्जदि । ५३६. विदियसमये अपुव्वफद्दएसु वा

चूर्णिसू०—बन्धकी अपेक्षा प्रथम अपूर्वस्पर्धकको आदि करके लता समान स्पर्धकोंके अनन्तवें भागतक स्पर्धक निर्वृत्त होते हैं । (हाँ, इतना विशेष है कि उदय-स्पर्धकोंकी अपेक्षा ये बन्ध-स्पर्धक अनन्तगुणित हीन अनुभाग शक्तिवाले होते हैं ।) यह सब प्ररूपणा अश्वकर्णकरणके प्रथम समयकी है ॥५२५-५२६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे अश्वकर्णकरणके दूसरे समयकी प्ररूपणा करते हैं—द्वितीय समयमें वही स्थितिकांडक होता है, वही अनुभागकांडक होता है और वही स्थितिबन्ध होता है। अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन होता है और गुणश्रेणी असंख्यातगुणी होती है । जिन अपूर्वस्पर्धकोंको प्रथम समयमें निर्वृत्त किया था, द्वितीय समयमें उन्हें भी निर्वृत्त करता है और उनसे असंख्यातगुणित हीन अन्य भी अपूर्वस्पर्धकोंको निर्वृत्त करता है ॥५२७-५३०॥

चूर्णिसू०—अब द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्धकोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणाको कहेंगे। वह इस प्रकार है—द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणामें बहुत प्रदेशाग्रको देता है । द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार अनन्तरोपनिधारूप क्रमसे विशेष हीन प्रदेशाग्र तब तक दिया जाता है जब तक कि द्वितीय समयमें निर्वृत्त किये गये अपूर्वस्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणा प्राप्त न हो जाय । पुनः उस अन्तिम वर्गणासे प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्धक किये हैं उनकी आदिवर्गणामें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । उससे द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । इस स्थलपर यहाँसे लेकर आगे सर्वत्र अनन्तरोपनिधासे सर्व वर्गणाओंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । पूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्र देता है और शेष वर्गणाओंमें भी विशेष हीन प्रदेशाग्र-

पुव्वफद्दएसु वा एक्केक्किस्से वग्गणाए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दय-आदिवग्गणाए बहुअं। सेसासु अणंतरोवणिधाए सव्वासु विसेसहीणं।

५३७. तदियसमए वि एसेव कमो। णवरि अपुव्वफद्दयाणि ताणि च अण्णाणि च णिव्वत्तयदि। ५३८. तस्स वि पदेसग्गस्स दिज्जमाणयस्स सेढिपरूवणं। ५३९. तदियसमए अपुव्वाणमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि। विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं। एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं ताव जाव जाणि य तदियसमये अपुव्वाणमपुव्वफद्दयाणं चरिमादो वग्गणादो त्ति। तदो विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं। तत्तो पाए सव्वत्थ विसेसहीणं। ५४०. जं दिस्सदि पदेसग्गं तमादिवग्गणाए बहुअं। उवरिमणंतरोवणिधाए सव्वत्थ विसेसहीणं। ५४१. जहा तदियसमए एस कमो ताव जाव पढममणुभागखंडयं चरिमसमयअणुकिण्णं त्ति।

५४२. तदो से काले अणुभागसंतकम्मे णाणत्तं। ५४३. तं जहा। ५४४. लोभे अणुभागसंतकम्मं थोवं। ५४५. मायाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। ५४६. माणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। ५४७. कोहस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। ५४८.

को देता है। द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्धकोंमें अथवा पूर्वस्पर्धकोंमें एक-एक वर्गणामें जो प्रदेशाग्र दिखता है वह अपूर्वस्पर्धककी आदि वर्गणामें बहुत है और शेष सर्व वर्गणाओंमें अनन्तरोपनिधाके क्रमसे विशेष हीन है ॥५३१-५३६॥

चूर्णिसू०—तृतीय समयमें भी यही क्रम है। विशेषता केवल यह है कि उन्हीं अपूर्वस्पर्धकोंको तथा अन्य भी अपूर्वस्पर्धकोंको निर्वृत्त करता है। अब उन अपूर्वस्पर्धकोंको दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा करते हैं—तृतीय समयमें अपूर्व अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणामें बहुत प्रदेशाग्र दिया जाता है। द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस प्रकार अनन्तरोपनिधासे विशेष हीन प्रदेशाग्र तब तक दिया जाता है, जब तक कि तृतीय समयमें निर्वृत्त अपूर्व अपूर्वस्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणा नहीं प्राप्त हो जाती है। उससे द्वितीय समयमें निर्वृत्त अपूर्वस्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। यहाँसे लेकर इस स्थलपर सर्वत्र द्वितीयादि वर्गणाओंमें विशेष हीन ही ही प्रदेशाग्र दिया जाता है। जो प्रदेशाग्र दिखाई देता है वह प्रथम वर्गणामें बहुत है और इससे आगे अनन्तरोपनिधासे सर्वत्र विशेष हीन है। जिस प्रकार तृतीय समयमें यह क्रम निरूपण किया गया है, उसी प्रकार प्रथम अनुभागकांडकका अन्तिम समय जब तक उत्कीर्ण न हो जाय, तब तक यही क्रम जानना चाहिए ॥५३७-५४१॥

चूर्णिसू०—अब इसके अनन्तरकालमें अनुभागसत्त्वमें जो विशेषता है; वह कहेंगे। वह इस प्रकार है-संज्वलन लोभमें अनुभागसत्त्व सबसे कम है। इससे संज्वलन मायामें अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। इससे संज्वलनमानमें अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। इससे

तेण परं सव्वम्हि अस्सकण्णकरणे एस कमो । ५४९. पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि बहुआणि । ५५०. विदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । ५५१. तदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । ५५२. एवं समए समए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । ५५३. गुणगारो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ।

५५४. चरिमसमए लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं थोवं । ५५५. विदियस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं दुगुणं । ५५६. तदियस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं तिगुणं । ५५७. एवं मायाए माणस्स कोहस्स च ।

५५८. अस्सकण्णकरणस्स पढमे अणुभागखंडए हदे अणुभागस्स अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ५५९. तं जहा । ५६०. सव्वत्थोवाणि कोहस्स अपुव्वफद्दयाणि । ५६१. माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । ५६२.मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । ५६३. लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । ५६४. एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि असंखेज्जगुणाणि । ५६५. एयफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५६६. कोधस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५६७. माणस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसा-

संज्वलन क्रोधमें अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है । इससे आगे सम्पूर्ण अश्वकर्णकरणके कालमें भी यही क्रम है । अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें निर्वर्त्तित अपूर्वस्पर्धक बहुत हैं । द्वितीय समयमें जिन अपूर्व अपूर्वस्पर्धकोंको निर्वृत्त किया है, वे असंख्यातगुणित हीन हैं । तृतीय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्धक निर्वृत्त किये हैं, वे असंख्यातगुणित हीन हैं । इस प्रकार उत्तरोत्तर समयोंमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्धक निर्वृत्त किये हैं वे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हीन हैं । यहाँपर गुणकार पल्योपमके वर्गमूलका असंख्यातवाँ भाग है ॥५४२-५५३॥

चूर्णिसू०–अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें लोभके अपूर्वस्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र अल्प हैं । इससे द्वितीय अपूर्वस्पर्धककी आदिवर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र दुगुने हैं । इससे तृतीय अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र तिगुने हैं । (इस प्रकार चतुर्थ-पंचमादि अपूर्वस्पर्धकोंके चौगुने पंचगुने आदि अविभागप्रतिच्छेदाग्र जानना चाहिए ।) इसी प्रकार माया, मान और क्रोधके अपूर्वस्पर्धकोंमें अविभागप्रतिच्छेदाग्र-सम्बन्धी अल्पबहुत्वको जानना चाहिए ॥५५४-५५७॥

चूर्णिसू०–अब अश्वकर्णकरणके प्रथम अनुभागकांडकके नष्ट होनेपर अनुभागका अल्पबहुत्व कहेंगे । वह इस प्रकार है–क्रोधके अपूर्वस्पर्धक सबसे कम हैं । इससे मानके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं । इससे मायाके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं । इससे लोभके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं । इससे एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धक असंख्यातगुणित हैं । इससे एक स्पर्धककी वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं । इससे क्रोधकी अपूर्व स्पर्धक-वर्गणाएँ

हियाओ । ५६८. मायाए अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । ५६९. लोभस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ ।

५७०. लोभस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ५७१. तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५७२. मायाए पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ५७३. तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५७४. माणस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ५७५. तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५७६. कोहस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । ५७७. तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । ५७८. एवमंतोमुहुत्तमस्सकण्णकरणं ।

५७९. अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि । ५८०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ५८१. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि । ५८२. चउण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदि-संतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

५८३. एत्तो से कालप्पहुडि किट्टीकरणद्धा । ५८४. छसु कम्मेसु संछुद्धेसु जो कोधवेदगद्धा तिस्से कोधवेदगद्धाए तिण्णि भागा । जो तत्थ पढमतिभागो अस्स-कण्णकरणद्धा, विदियो तिभागो किट्टीकरणद्धा, तदियतिभागो किट्टीवेदगद्धा । ५८५. अस्सकण्णकरणे णिट्ठिदे तदो से काले अण्णो ट्ठिदिबंधो । ५८६. अण्णमणुभागखंडय-

अनन्तगुणी हैं । इससे मानकी अपूर्वस्पर्धक वर्गणाएँ विशेष अधिक हैं । इससे मायाकी अपूर्वस्पर्धक-वर्गणाएँ विशेष अधिक हैं । इससे लोभकी अपूर्वस्पर्धक-वर्गणाएँ विशेष अधिक हैं ॥५५८-५६९॥

चूर्णिसू०—लोभकी अपूर्वस्पर्धक-वर्गणाओंसे लोभके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणित हैं । लोभके पूर्वस्पर्धकोंसे उन्हींकी वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं । लोभके पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाओंसे मायाके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणित हैं । मायाके पूर्वस्पर्धकोंसे उन्हींकी वर्गणाएँ अनन्तगुणित हैं । मायाके पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाओंसे मानके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणित हैं । मानके पूर्वस्पर्धकों से उन्हींकी वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं । मानके पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाओंसे क्रोधके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणित हैं । क्रोधके पूवस्पर्धकोंसे उन्हींकी वर्गणाएँ अनन्तगुणी हैं । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकालतक अश्वकर्णकरण प्रवर्तमान रहता है ॥५७०-५७८॥

चूर्णिसू०—अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध आठ वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष है और चारों घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । इस प्रकार अश्वकर्णकरणका काल समाप्त होता है ॥५७९-५८२॥

चूर्णिसू०—यहाँसे आगे अनन्तर समयसे लेकर कृष्टिकरणकाल है । हास्यादि छह कर्मोंके संक्रमणको प्राप्त होनेपर जो क्रोधवेदककाल है उस क्रोधवेदककालके तीन भाग हैं । उनमें जो प्रथम त्रिभाग है, वह अश्वकर्णकरणकाल, द्वितीय त्रिभाग कृष्टिकरणकाल और तृतीय त्रिभाग कृष्टिवेदककाल है । अश्वकर्णकरणके समाप्त होनेपर तदनन्तरकालमें अन्य

मस्सकण्णकरणेणेव आगाइदं । ५८७. अण्णं ट्ठिदिखंडयं चदुण्हं घादिकम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ५८८. णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जा भागा । ५८९. पढमसमय-किट्टीकारगो कोधादो पुव्वफद्दएहिंतो च अपुव्वफद्दएहिंतो च पदेसग्गमोकड्डियूण कोह-किट्टीओ करेदि । माणादो ओकड्डियूण माणकिट्टीओ करेदि । मायादो ओकड्डियूण मायाकिट्टीओ करेदि । लोभादो ओकड्डियूण लोभकिट्टीओ करेदि । ५९०. एदाओ सव्वाओ वि चउव्विहाओ किट्टीओ एयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो पमाणादो ।

५९१. पढमसमए णिव्वत्तिदाणं किट्टीणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ५९२. तं जहा । ५९३. लोभस्स जहण्णिया किट्टी थोवा । ५९४. विदिया किट्टी अणंतगुणा । ५९५. एवमणंतगुणाए सेढीए जाव पढमाए संगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति । ५९६. तदो विदियाए संगहकिट्टीए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । ५९७. एस गुणगारो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणं सत्थाणगुणगारेहिं अणंतगुणो । ५९८. विदियाए संगहकिट्टीए सो चेव कमो जो पढमाए संगहकिट्टीए । ५९९. तदो पुण विदियाए च तदियाए च संगहकिट्टीणमंतरं तारिसं चेव । ६००. एवमेदाओ लोभस्स तिण्णि संगहकिट्टीओ ।

स्थितिबन्ध होता है । (यहाँपर चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्वके स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन है ।) अन्य अनुभाग-कांडक अश्वकर्णकरणकारकके द्वारा ही ग्रहण किया गया है । उस समय अन्य स्थिति-कांडक होता है जो कि चारों घातिया कर्मोंका संख्यात सहस्र वर्ष है और नाम, गोत्र तथा वेदनीयका असंख्यात बहुभाग है । प्रथमसमयवर्ती कृष्टिकारक क्रोधके पूर्वस्पर्धकोंसे और अपूर्वस्पर्धकोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर क्रोध-कृष्टियोंको करता है । मानसे प्रदेशाग्रका अप-कर्षण कर मान-कृष्टियोंको करता है । मायासे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर माया-कृष्टियोंको करता है और लोभसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर लोभ-कृष्टियों को करता है । ये सब चारों ही प्रकारकी कृष्टियाँ गणनाकी अपेक्षा एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥५८३-५९०॥

चूर्णिसू०—अब प्रथम समयमें निर्वृत्त हुई कृष्टियोंकी तीव्र-मन्दताके अल्पबहुत्वको कहेंगे । वह इस प्रकार है—(यहाँपर संज्वलन क्रोधादि प्रत्येक कषायकी तीन-तीन कृष्टियों-की रचना करना चाहिए । इस प्रकार चारों कषायोंकी बारह कृष्टियाँ होती हैं ।) लोभकी जघन्य कृष्टि वक्ष्यमाण कृष्टियोंकी अपेक्षा सबसे अल्प है । द्वितीय कृष्टि अनन्तगुणी है । इस प्रकार अनन्तगुणित श्रेणीसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक जानना चाहिए । पुनः उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टिसे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है । यह गुणकार बारहों ही संग्रह-कृष्टियोंके स्वस्थानगुणकारोंसे अनन्तगुणा है । प्रथम संग्रहकृष्टिमें जो क्रम है वही क्रम द्वितीय संग्रहकृष्टिमें भी है । पुनः इससे आगे द्वितीय और तृतीय संग्रह-कृष्टियोंका तादृश ही क्रम है अर्थात् प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टियोंके अन्तरके सदृश ही

६०१. लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा चरिमा किट्टी तदो मायाए जहण्णकिट्टी अणंतगुणा । ६०२. मायाए वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । ६०३. मायाए जा तदिया संगहकिट्टी तिस्से चरिमादो किट्टीदो माणस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । ६०४. माणस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । ६०५. माणस्स जा तदिया संगहकिट्टी तिस्से चरिमादो किट्टीदो कोधस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । ६०६. कोहस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । ६०७. कोधस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा चरिमकिट्टी तदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणा अणंतगुणा ।

६०८. किट्टीअंतराणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ६०९. अप्पाबहुअस्स लहुआलाव-संखेवपदत्थसण्णाणिक्खेवो ताव कायव्वो । ६१०. तं जहा । ६११. एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए अणंताओ किट्टीओ । तासिं अंतराणि वि अणंताणि । तेसिमंतराणं सण्णा किट्टी-अंतराइं णाम । संगहकिट्टीए च संगहकिट्टीए च अंतराणि एक्कारस । तेसिं सण्णा संगहकिट्टी-अंतराइं णाम । ६१२. एदीए णामसण्णाए किट्टीअंतराणं संगहकिट्टीअंतराणं च अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ६१३. तं जहा । ६१४. लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए जहण्णयं किट्टीअंतरं थोवं । ६१५. विदियं किट्टीअंतरमणंतगुणं । ६१६. एवमणंतराणं-

है । इस प्रकार ये लोभकी तीन संग्रहकृष्टियाँ हैं । लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम कृष्टि है उससे मायाकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है । मायाकी भी उसी ही क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं । मायाकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे मानकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । मानकी भी उसी ही क्रमसे तीन संग्रह कृष्टियाँ होती हैं । मानकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे क्रोधकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । क्रोधकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं । क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम कृष्टि है उससे लोभके अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणा अनन्तगुणी होती है ॥५९१-६०७॥

चूर्णिसू०–अब कृष्टियोंके अन्तरोंका अर्थात् कृष्टि-सम्बन्धी गुणकारोंका अल्पबहुत्व कहेंगे । प्रकृत अल्पबहुत्वके लघु-आलाप करनेके लिए संक्षेप पदोंका अर्थ-संज्ञारूप निक्षेप पहले करना चाहिए । अर्थात् प्रस्तुत किये जानेवाले विस्तृत अल्पबहुत्वको संक्षेपमें कहनेके लिए पदोंकी संक्षेपरूपमें अर्थ-संज्ञा कर लेना चाहिए जिससे प्रकृत कथनका सुगमतासे बोध हो सके । वह संज्ञा इस प्रकार करना चाहिए–एक-एक संग्रहकृष्टिकी अनन्त कृष्टियाँ होती हैं और उनके अन्तर भी अनन्त होते हैं । उन अन्तरोंकी 'कृष्टि-अन्तर' यह संज्ञा है । संग्रहकृष्टियोंके और संग्रह-कृष्टियोंके अधस्तन-उपरिम अन्तर ग्यारह होते हैं, उनकी संज्ञा 'संग्रहकृष्टि-अन्तर' ऐसी है । इस प्रकारसे की गई नामसंज्ञाके द्वारा कृष्टि-अन्तरोंका और संग्रहकृष्टि-अन्तरोंका अल्पबहुत्व कहेंगे । वह इस प्रकार है–लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें जघन्य कृष्टि-अन्तर अर्थात् जिस गुणकारसे गुणित जघन्य कृष्टि अपने द्वितीय कृष्टिका प्रमाण प्राप्त करती है, वह गुणकार सबसे कम हैं । इससे द्वितीय कृष्टिका अन्तर अनन्तगुणा है । इस

तरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६१७. लोभस्स चेव विदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६१८. एवमणंतराणंतरेण जाव चरिमादो त्ति अणंतगुणं । ६१९. लोभस्स चेव तदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२०. एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं ।

६२१. एत्तो मायाए पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२२. एवमणंतराणंतरेण मायाए वि तिण्हं संगहकिट्टीणं किट्टिअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि । ६२३. एत्तो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२४. माणस्स वि तिण्हं संगहकिट्टीणमंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि । ६२५. एत्तो कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२६. कोहस्स वि तिण्हं संगहकिट्टीणमंतराणि जहाकमेण जाव चरिमादो अंतरादो त्ति अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि ।

६२७. तदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२८. विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६२९. तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३०. लोभस्स मायाए च अंतरमणंतगुणं । ६३१. मायाए पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३२. विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३३. तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३४. मायाए माणस्स

प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे अन्तिम कृष्टि-अन्तर तक अनन्तगुणा अन्तर जानना चाहिए । पुनः लोभकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तर रूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है ॥६०८-६२०॥

चूर्णिसू०–यहाँसे आगे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे मायाकी भी तीनों संग्रह-कृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर यथाक्रमसे अनन्तगुणित श्रेणीके द्वारा ले जाना चाहिए । यहाँसे आगे मानकी प्रथम संग्रह-कृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार मानकी भी तीनों संग्रहकृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर यथाक्रमसे अनन्तगुणित श्रेणीके द्वारा ले जाना चाहिए । यहाँसे आगे क्रोधकी प्रथम संग्रह-कृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार क्रोधकी भी तीनों संग्रहकृष्टियोंके अन्तर यथाक्रमसे अन्तिम अन्तर तक अनन्तगुणित श्रेणीके द्वारा ले जाना चाहिए ॥६२१-६२६॥

चूर्णिसू०–उससे, अर्थात् स्वस्थानगुणकारोंके अन्तिम गुणकारसे लोभकी प्रथम-संग्रहकृष्टिका अन्तर अनन्तगुणा है । इससे द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है और इससे तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । लोभका और मायाका अन्तर अनन्तगुणा है । मायाका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । मायाका और मानका

स्स अंतरमणंतगुणं । ६३५. माणस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३६. विदिय-संगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३७. तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६३८. माणस्स कोहस्स च अंतरमणंतगुणं । ६३९. कोहस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६४०. विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६४१. तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । ६४२. कोधस्स चरिमादो किट्टीदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अंतरमणंतगुणं ।

६४३. पढमसमए किट्टीसु पदेसग्गस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । ६४४. तं जहा । ६४५. लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं । ६४६. विदियाए किट्टीए विसेसहीणं । ६४७. एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणमणंतभागेण जाव कोहस्स चरिमकिट्टि त्ति । ६४८. परंपरोवणिधाए जहण्णियादो लोभकिट्टीदो उक्कस्सियाए कोधकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण । ६४९. विदियसमए अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि पढमसमये णिव्वत्तिदकिट्टीणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ । ६५०. एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए हेट्ठा अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि ।

६५१. विदियसमए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । ६५२. तं जहा । ६५३. लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि । ६५४. विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण । ६५५. ताव अणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं

अन्तर अनन्तगुणा है । मानका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । मानका और क्रोधका अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इससे तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधकी अन्तिम कृष्टिसे लोभके अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणाका अन्तर अनन्तगुणा है ॥६२७-६४२॥

चूर्णिसू०–अब प्रथम समयमें निर्वृत्त हुई कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा कहेंगे । वह इस प्रकार है–लोभकी जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत हैं । द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन हैं । इस प्रकार अनन्तरोपनिधाके द्वारा अनन्त-भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र क्रोधकी अन्तिम कृष्टि तक जानना चाहिए । परंपरोपनिधाके द्वारा जघन्य लोभकृष्टिसे उत्कृष्ट लोभकृष्टिके प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन हैं । द्वितीय समयमें, प्रथम समयमें निर्वृत्त कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्य अपूर्व कृष्टियों-को करता है । एक-एक संग्रहकृष्टिके नीचे अपूर्व कृष्टियोंको करता है ॥६४३-६५०॥

चूर्णिसू०–अब द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा कहेंगे । वह इस प्रकार है–लोभकी जघन्यकृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है । द्वितीय कृष्टिमें विशेष हीन अर्थात् अनन्तवें भागसे हीन दिया जाता है । इस प्रकार तब तक अनन्तवें भागसे हीन दिया जाता है जब तक कि द्वितीय समयमें लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे

चरिमादो त्ति । ६५६. तदो पढमसमए णिव्वत्तिदाणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीण-मसंखेज्जदिभागेण । ६५७. तदो विदियाए अणंतभागहीणं तेण परं पढमसमयणिव्वत्ति-दासु लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए किट्टीसु अणंतराणंतरेण अणंतभागहीणं दिज्जमाणगं जाव पढमसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति । ६५८. लोभस्स चेव विदियसमए विदियसंगह-किट्टीए तिस्से जहण्णियाए किट्टीए दिज्जमाणगं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण । ६५९. तेण परमणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति । ६६०. तदो पढमसमयणिव्वत्ति-दाणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण । ६६१. तेण परं विसेसहीण-मणंतभागेण जाव विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति ।

६६२. तदो जहा विदियसंगहकिट्टीए विधी तहा चेव तदियसंगहकिट्टीए विधी च । ६६३. तदो लोभस्स चरिमादो किट्टीदो मायाए जा विदियसमए जहण्णिया किट्टी तिस्से दिज्जदि पदेसग्गं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण । ६६४. तदो पुण अणंतभाग-हीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति । ६६५. एवं जम्हि जम्हि अपुव्वाणं जहण्णिया किट्टी तम्हि तम्हि विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण अपुव्वाणं चरिमादो असंखेज्जदिभाग-

निर्वर्त्तमान अपूर्वकृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि प्राप्त होती है। उससे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर-कृष्टियोंमेंसे जघन्य कृष्टिमें विशेष हीन अर्थात् असं-ख्यातवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे द्वितीय कृष्टिमें अनन्तभागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उसके आगे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंमें अनन्तर-अनन्तररूपसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम अन्तरकृष्टि तक अनन्तभाग-हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे लोभकी ही द्वितीय समयमें निर्वर्त्तमान उस द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टिमें दीयमान प्रदेशाग्र असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक है। उसके आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिके नीचे निर्वर्त्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभाग-हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे, प्रथम समयमें निर्वर्तित पूर्वकृष्टियोंकी जघन्य कृष्टिमें असंख्यातभागप्रमाण विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इससे आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है ॥६५१-६६१॥

चूर्णिसू०—तत्पश्चात् द्वितीय संग्रहकृष्टिमें जैसी विधि बतलाई गई है वैसी ही विधि तृतीय संग्रहकृष्टिमें भी जानना चाहिए। तदनन्तर लोभकी अन्तिम कृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे द्वितीय समयमें निर्वर्त्तमान अपूर्वकृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें असं-ख्यातवें भागसे विशेष अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है। पुनः इसके आगे अपूर्वकृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त क्रमसे जहाँ जहाँ पर पूर्वकृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही गई है, वहाँ वहाँपर असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है और जहाँ जहाँपर अपूर्वकृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे पूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही गई है वहाँ वहाँपर असं-

हीणं । ६६६. एदेण कमेण विदियसमए णिक्खिवमाणगस्स पदेसग्गस्स वारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागहीणं। एक्कारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागुत्तरं दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स । ६६७. सेसेसु किट्टिट्ठाणेसु अणंतभागहीणं दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स । ६६८. विदियसमए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स एसा उट्टकूटसेढी ।

६६९. जं पुण विदियसमए दीसदि किट्टिसु पदेसग्गं तं जहण्णियाए बहुअं, सेसासु सव्वासु अणंतरोवणिधाए अणंतभागहीणं । ६७०. जहा विदियसमए किट्टीसु पदेसग्गं तहा सव्विस्से किट्टीकरणद्धाए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स तेवीसमुट्टकूटाणि । ६७१. दिस्समाणयं सव्वम्हि अणंतभागहीणं । ६७२. जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्टीसु दिज्जदि तं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं । तदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमादो त्ति असंखेज्जगुणं ।

६७३. किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तब्भहिया । ६७४. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ६७५.

ख्यातवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस क्रमसे द्वितीय समयमें निक्षिप्यमान प्रदेशाग्रका बारह कृष्टि-स्थानोंमें असंख्यातवें भागसे हीन और ग्यारह कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका असंख्यातवें भागसे अधिक अवस्थान है । शेष कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका अनन्तवें भागसे हीन अवस्थान है । द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी यह उष्ट्रकूटश्रेणी है ॥६६२-६६८॥

भावार्थ–जिस प्रकार ऊँटकी पीठ पिछले भागमें पहले ऊँची होती है पुनः मध्यमें नीची होती है, फिर आगे नीची ऊँची होती है, उसी प्रकार यहाँपर भी प्रदेशोंका निषेक आदिमें बहुत होकर फिर थोड़ा रह जाता है । पुनः सन्धिविशेषोंमें अधिक और हीन होता हुआ जाता है. इस कारणसे यहाँपर होनेवाली प्रदेशश्रेणीकी रचनाको उष्ट्रकूटश्रेणी कहा है ।

चूर्णिसू०–द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें जो प्रदेशाग्र दिखता है वह जघन्य कृष्टिमें बहुत है और शेष सर्व कृष्टियोंमें अनन्तरोपनिधासे अनन्तभाग हीन है। जिस प्रकार द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें दीयमान प्रदेशाग्रकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सम्पूर्ण कृष्टिकरणकालमें दीयमान प्रदेशाग्रके तेईस उष्ट्रकूटोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । किन्तु दृश्यमान प्रदेशाग्र सर्वकालमें अनन्तभाग हीन जानना चाहिए । जो प्रदेशाग्र सर्वसमास अर्थात् सामस्त्यरूपसे प्रथम समयमें कृष्टियोंमें दिया जाता है वह सबसे कम है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । तृतीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार (कृष्टिकरण कालके) अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ॥६६९-६७२॥

चूर्णिसू०–कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तसे अधिक चार मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । उसी

तम्हि चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण अट्ठवस्सिगमंतोमुहुत्तब्भहियं जादं । ६७६. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ६७७. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

६७८. किट्टीओ करेंतो पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च वेदेदि, किट्टीओ ण वेदयदि । ६७९. किट्टीकरणद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदीए आवलियाए सेसाए । ६८०. से काले किट्टीओ पवेसेदि । ६८१. ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । ६८२. ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि । ६८३. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो ट्ठिदिसंतकम्मं च संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ६८४. [वेदणीय-] णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ६८५. ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

६८६. अणुभागसंतकम्मं कोहसंजलणस्स जं संतकम्मं समयूणाए उदयावलियाए च्छुट्ठिदल्लिगाए तं सव्वघादी । ६८७. संजलणाणं जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते देसघादी । तं पुण फद्दयगदं । ६८८. सेसं किट्टीगदं । ६८९. तम्हि चेव पढमसमए कोहस्स पढमसंगहकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । ६९०. ताहे कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा उदिण्णा । ६९१. एदिस्से चेव कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा बज्झंति । ६९२. सेसाओ दो संगहकिट्टीओ ण

कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्षोंसे घटकर अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षप्रमाण हो जाता है । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । तथा नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका स्थितिसत्त्व असंख्यात सहस्र वर्ष है ॥६७३-६७७॥

चूर्णिसू०—कृष्टियोंको करनेवाला पूर्व-स्पर्धकों और अपूर्व-स्पर्धकोंका वेदन करता है, किन्तु कृष्टियोंका वेदन नहीं करता । संज्वलन क्रोधकी प्रथमस्थितिमें आवलीमात्र शेष रहनेपर कृष्टिकरणकाल समाप्त हो जाता है । कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तर समयमें कृष्टियोंको द्वितीय स्थितिसे अपकर्षण कर उदयावलीके भीतर प्रवेश करता है । उस समयमें चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चार मास है और स्थितिसत्त्व आठ वर्ष है । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष और स्थितिसत्त्व असंख्यात सहस्र वर्ष है ॥६७८-६८५॥

चूर्णिसू०—संज्वलनक्रोधका जो अनुभागसत्त्व समयोन उदयावलीके भीतर उच्छिष्टावलीके रूपसे अवशिष्ट अवस्थित है वह सत्त्व सर्वघाती है । संज्वलन कषायोंके जो दो समय कम दो आवली-प्रमाण नवक-बद्ध समयप्रबद्ध हैं, वे देशघाती हैं । उनका वह अनुभागसत्त्व स्पर्धकस्वरूप है । शेष सर्व अनुभागसत्त्व कृष्टिस्वरूप है । उसी कृष्टिवेदक-कालके प्रथम समयमें ही क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है । उस समयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग उदीर्ण अर्थात् उदयको प्राप्त होते हैं । तथा इसी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग बन्धको प्राप्त होते हैं । शेष

बज्झंति, ण वेदिज्जंति । ६९३. पढमाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो जाओ किट्टीओ ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति, ताओ थोवाओ । ६९४. जाओ किट्टीओ वेदिज्जंति, ण बज्झंति ताओ विसेसाहियाओ । ६९५. तिस्से चेव पढमाए संगहकिट्टीए उवरि जाओ किट्टीओ ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति ताओ विसेसाहियाओ । ६९६. उवरि जाओ वेदिज्जंति, ण बज्झंति ताओ विसेसाहियाओ । ६९७. मज्झे जाओ किट्टीओ बज्झंति च वेदिज्जंति च ताओ असंखेज्जगुणाओ ।

६९८. किट्टीवेदगद्धा ताव थवणिज्जा । ६९९. किट्टीकरणद्धाए ताव सुत्तफासो । ७००. तत्थ एक्कारस मूलगाहाओ । ७०१. पढमाए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१०९) केवदिया किट्टीओ कम्हि कसायम्हि कदि च किट्टीओ ।
किट्टीए किं करणं लक्खणमध किं च किट्टीए ॥१६२॥

७०२. एदिस्से गाहाए चत्तारि अत्था । ७०३. तिण्णि भासगाहाओ । ७०४. पढमभासगाहा वेसु अत्थेसु णिबद्धा । तिस्से समुक्कित्तणा ।

दो संग्रहकृष्टियाँ न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त होती हैं । प्रथम संग्रहकृष्टिकी अधस्तन जो कृष्टियाँ न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त होती हैं, वे अल्प हैं । जो कृष्टियाँ उदयको प्राप्त होती हैं, किन्तु बंधती नहीं हैं, वे विशेष अधिक हैं । उस ही प्रथम संग्रहकृष्टिके ऊपर जो कृष्टियाँ न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त होती हैं, वे विशेष अधिक हैं । इससे ऊपर जो उदयको प्राप्त होती हैं, परन्तु बंधती नहीं है, वे विशेष अधिक हैं । मध्यमें जो कृष्टियाँ बंधती हैं और उदयको प्राप्त होती हैं वे असंख्यातगुणी हैं ॥६८६-६९७॥

चूर्णिसू०—यहाँपर कृष्टिवेदक-कालको स्थगित रखना चाहिए । (क्योंकि कृष्टिकरण-कालसे प्रतिबद्ध गाथासूत्रोंके अर्थका निरूपण किये विना उसका सम्यक् प्रकारसे विवेचन नहीं हो सकता ।) कृष्टिकरणकालमें पहले गाथा-सूत्रोंके अर्थका स्पर्श करना चाहिए । इस विषयमें ग्यारह मूलगाथाएँ हैं । उनमेंसे प्रथम मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥६९८-७०१॥

कृष्टियाँ कितनी होती हैं, और किस कषायमें कितनी कृष्टियाँ होती हैं ? कृष्टि करनेमें कौनसा करण होता है और कृष्टिका लक्षण क्या है ? ॥१६२॥

चूर्णिसू०—इस गाथाके चार अर्थ हैं ॥७०२॥

विशेषार्थ—चारों कषायोंकी समुदायरूपसे सर्व कृष्टियाँ कितनी हैं, यह प्रथम अर्थ है । पृथक्-पृथक् एक-एक कषायमें कितनी कृष्टियाँ होती हैं, यह दूसरा अर्थ है । कृष्टि-कालमें उत्कर्षण-अपकर्षण आदि कौनसा करण होता है, यह तीसरा अर्थ है और कृष्टिका क्या लक्षण है, यह चौथा अर्थ है ॥

चूर्णिसू०—उपर्युक्त मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीन भाष्यगाथाएँ हैं । उनमें प्रथम भाष्यगाथा दो अर्थोंमें निबद्ध है । उसकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥७०३-७०४॥

(११०) बारस णव छ तिण्णि य किट्टीओ होंति अध व अणंताओ।
एक्केकम्हि कसाये तिग तिग अधवा अणंताओ ॥१६३॥

७०५. विहासा। ७०६. जइ कोहेण उवट्ठायदि तदो बारस संगहकिट्टीओ होंति। ७०७. माणेण उवट्ठिदस्स णव संगहकिट्टीओ। ७०८. मायाए उवट्ठिदस्स छ संगहकिट्टीओ। ७०९. लोभेण उवट्ठिदस्स तिण्णि संगहकिट्टीओ। ७१०. एवं बारस णव छ तिण्णि च। ७११. एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए अणंताओ किट्टीओ त्ति एदेण कारणेण अधवा अणंताओ त्ति। ७१२. केवडियाओ किट्टीओ त्ति अत्थो समत्तो। ७१३. कम्हि कसायम्हि कदि च किट्टीओ त्ति एदं सुत्तं। ७१४. एक्केकम्हि कसाये तिण्णि तिण्णि संगहकिट्टीओ त्ति एवं तिग तिग। ७१५. एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए अणंताओ किट्टीओ त्ति एदेण अधवा अणंताओ जादा।

७१६. किट्टीए किं करणं ति एत्थ एक्का भासगाहा। ७१७. तिस्से समुक्कित्तणा।

संज्वलनक्रोधादि कषायोंकी बारह, नौ, छह और तीन कृष्टियाँ होती हैं, अथवा अनन्त कृष्टियाँ होती हैं। एक एक कषायमें तीन तीन कृष्टियाँ होती हैं, अथवा अनन्त कृष्टियाँ होती हैं ॥१६३॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–यदि क्रोधकषायके उदयके साथ क्षपकश्रेणी चढ़ता है, तो उसके बारह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। मानकषायके उदयके साथ क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवके नौ संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। मायाकषायके उदयके साथ उपस्थित होनेवाले जीवके छह संग्रहकृष्टियाँ होती हैं और लोभकषायके उदयके साथ उपस्थित होनेवाले जीवके तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं। इस प्रकार यह भाष्यगाथाके प्रथम चरण 'बारह, नौ, छह, तीन' का अर्थ है। एक एक संग्रहकृष्टिकी अवयव या अन्तरकृष्टियाँ अनन्त होती है इस कारणसे गाथामें 'अथवा अनन्त होती हैं' ऐसा पद कहा है। इस प्रकार मूलगाथाके 'कृष्टियाँ कितनी होती हैं' इस प्रथम प्रश्नका अर्थ समाप्त हो जाता है। अब 'किस कषायमें कितनी कृष्टियाँ होती हैं' मूलगाथाके इस दूसरे पदका अर्थ करते हैं– एक एक कषायमें तीन तीन संग्रहकृष्टियाँ होती हैं, अतएव भाष्यगाथामें 'तीन तीन' ऐसा पद कहा गया है। एक एक संग्रहकृष्टिकी अनन्त अवयवकृष्टियाँ होती हैं, इस कारणसे भाष्यगाथामें 'अथवा अनन्त होती हैं' ऐसा पद कहा है ॥७०५-७१५॥

चूर्णिसू०–कृष्टि करनेकी अवस्थामें कौनसा करण होता है, मूलगाथा-द्वारा उठाए गये इस तीसरे प्रश्नरूप अर्थमें एक भाष्यगाथा निबद्ध है। उसकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥७१६-७१७॥

(१११) किट्टी करेदि णियमा ओवट्टंतो ठिदी य अणुभागे ।
वड्ढंतो किट्टीए अकारगो होदि बोद्धव्वो ॥१६४॥

७१८. विहासा । ७१९. जहा । ७२०. जो किट्टीकारगो सो पदेसग्गं ठिदीहिं वा अणुभागेहिं वा ओकड्डदि, ण उकड्डदि । ७२१. खवगो किट्टीकारगप्पहुडि जाव संकमो ताव ओकड्डगो पदेसग्गस्स, ण उकड्डगो । ७२२. उवसामगो पुण पढमसमय-किट्टीकारगमादिं कादूण जाव चरिमसमयसकसायो ताव ओकड्डगो, ण पुण उकड्डगो । ७२३. पडिवदमाणगो पुण पढमसमयसकसायप्पहुडि ओकड्डगो वि, उकड्डगो वि ।

७२४. लक्खणमध किं च किट्टीए त्ति एत्थ एक्का भासगाहा । ७२५. तिस्से समुक्कित्तणा ।

(११२) गुणसेढि अणंतगुणा लोभादी कोधपच्छिमपदादो ।
कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं ॥१६५॥

चारों संज्वलनकषायोंकी स्थिति और अनुभागका नियमसे अपवर्तन करता हुआ ही कृष्टिओंको करता है । स्थिति और अनुभागका बढ़ानेवाला कृष्टिका अकारक होता है ऐसा नियम जानना चाहिए ॥१६४॥

चूर्णिसू०—इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं । वह इस प्रकार है—जो जीव कृष्टियोंका करनेवाला है, वह प्रदेशाग्रको स्थिति अथवा अनुभागकी अपेक्षा अपवर्तन या अपकर्षण ही करता है; उद्वर्तन या उत्कर्षण नहीं करता । कृष्टियोंको करनेवाला क्षपक संयत कृष्टिकरणके प्रथम समयसे लेकर जब तक चरमसमयवर्ती संक्रामक है, तब तक मोहनीयकर्मके प्रदेशाग्रका अपकर्षक ही है, उत्कर्षक नहीं । अर्थात् जब तक वह एक समय-अधिक आवलीवाला सूक्ष्मसाम्परायिक संयत है, तब तक अपवर्तना करणमें प्रवृत्त रहता है । किन्तु कृष्टियोंका करनेवाला उपशामक संयत कृष्टिकारकके प्रथम समयको आदि करके जब चरमसमयवर्ती सकषाय रहता है, तब तक वह अपकर्षक रहता है, उत्कर्षक नहीं रहता। किन्तु उपशम श्रेणीसे गिरनेवाला जीव प्रथमसमयवर्तीसे सकषाय अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायिक होनेके प्रथम समयसे लेकर नीचे सर्वत्र अपकर्षक भी है और उत्कर्षक भी ॥७१८-७२३॥

भावार्थ—उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जीवके कृष्टिकरणके प्रथम समयसे लेकर सूक्ष्म-साम्परायिकके अन्तिम समय तक अपकर्षणकरण ही होता है, उत्कर्षणकरण नहीं होता । किन्तु गिरनेवाले जीवके सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम सममसे दोनों ही करण प्रवृत्त हो जाते हैं।

चूर्णिसू०—'कृष्टिका लक्षण क्या है' मूलगाथाके इस चौथे प्रश्नके अर्थरूपमें एक भाष्यगाथा निबद्ध है, अब यहाँपर उसकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥७२४-७२५॥

लोभकषायकी जघन्य कृष्टिको आदि लेकर क्रोधकषायकी सर्व पश्चिम पद

७२६. विहासा। ७२७. लोभस्स जहण्णिया किट्टी अणुभागेहिं थोवा। ७२८. विदियकिट्टी अणुभागेहिं अणंतगुणा। ७२९. तदिया किट्टी अणुभागेहिं अणंतगुणा। ७३०. एवमणंतराणंतरेण सव्वत्थ अणंतगुणा जाव कोधस्स चरिमकिट्टि त्ति। ७३१. उक्कस्सिया वि किट्टी आदिफद्दयआदिवग्गणाए अणंतभागो। ७३२. एवं किट्टीसु थोवो अणुभागो। ७३३. किसं कम्मं कदं जम्हा, तम्हा किट्टी। ७३४. एदं लक्खणं।

७३५. एत्तो विदियमूलगाहा। ७३६. तं जहा।

(११३) कदिसु च अणुभागेसु च ट्ठिदीसु वा केत्तियासु का किट्टी।
सव्वासु वा ट्ठिदीसु च आहो सव्वासु पत्तेयं ॥१६६॥

अर्थात् अन्तिम उत्कृष्ट कृष्टि तक यथाक्रमसे अवस्थित चारों संज्वलन कषायरूप कर्मके अनुभागमें गुणश्रेणी अनन्तगुणित है, यह कृष्टिका लक्षण है ॥१६५॥

विशेषार्थ–गाथामें कृष्टिका लक्षण पश्चादानुपूर्वीसे कहा गया है। जिसके द्वारा संज्वलन कषायोंका अनुभाग सत्त्व उत्तरोत्तर कृश अर्थात् अल्पतर किया जाय, उसे कृष्टि कहते हैं। पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा संज्वलन क्रोधकी उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर लोभकषायकी जघन्य कृष्टि तक कषायोंका अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणित हानिरूपसे कृश होता जाता है, इस बातको गाथाकारने पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा कहा है कि लोभ कषायकी जघन्य कृष्टिसे लेकर क्रोधकषायकी उत्कृष्ट कृष्टि तक कषायोंका अनुभाग अनन्तगुणित वृद्धिरूप है। इस प्रकार इस गाथाके द्वारा कृष्टिका लक्षण कहा गया है।

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं–लोभकी जघन्य कृष्टि अनुभागकी अपेक्षा सबसे कम है। द्वितीय कृष्टि अनुभागकी अपेक्षा अनन्तगुणी है। तीसरी कृष्टि अनुभागकी अपेक्षा अनन्तगुणी है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तर क्रमसे सर्वत्र तब तक कृष्टियोंका अनुभाग अनन्तगुणित जानना चाहिए, जबतक कि क्रोधकी अन्तिम उत्कृष्ट कृष्टि प्राप्त हो। संज्वलन क्रोधकी उत्कृष्ट भी कृष्टि प्रथम अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाके अनन्तवें भाग हैं। इस प्रकार कृष्टियोंमें अनुभाग उत्तरोत्तर अल्प है। यतः जिसके द्वारा संज्वलन कषायरूप कर्म कृश किया जाता है, अतः उसकी कृष्टि यह संज्ञा सार्थक है। यह कृष्टिका लक्षण है ॥७२६-७३४॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी मूलगाथा अवतरित होती है। वह इस प्रकार है ॥७३५-७३६॥

कितने अनुभागोंमें और कितनी स्थितियोंमें कौन कृष्टि वर्तमान है? यदि प्रथम, द्वितीयादि सभी स्थितियोंमें सभी कृष्टियाँ संभव हैं, तो क्या उनकी सभी अवयवस्थितियोंमें भी अविशेषरूपसे सभी कृष्टियाँ संभव हैं, अथवा प्रत्येक स्थितिपर एक-एक कृष्टि संभव है? ॥१६६॥

७३७. एदिस्से बे भासगाहाओ । ७३८. मूलगाहापुरिमद्धे एक्का भासगाहा । ७३९. तिस्से समुक्कित्तणा ।

(११४) किट्टी च ट्ठिदिविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि ।
णियमा अणुभागेसु च होदि हु किट्टी अणंतेसु ॥१६७॥

७४०. विहासा । ७४१. कोधस्स पढमसंगहकिट्टिं वेदेंतस्स तिस्से संगहकिट्टीए एक्केका किट्टी विदियट्ठिदीसु सव्वासु पढमट्ठिदीसु च उदयवज्जासु एक्केका किट्टी सव्वासु ट्ठिदीसु ।

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाका अर्थ-व्याख्यान करनेवाली दो भाष्यगाथाएँ हैं । उनमेंसे मूलगाथाके पूर्वार्धके अर्थमें एक भाष्यगाथा निबद्ध है । उसकी समुत्कीर्तना इस प्रकार है ॥७३७-७३९॥

सभी कृष्टियाँ सर्व असंख्यात स्थिति-विशेषोंपर नियमसे होती हैं । तथा प्रत्येक कृष्टि नियमसे अनन्त अनुभागोंमें होती है ॥१६७॥

विशेषार्थ–सभी कृष्टियाँ सर्व असंख्यात स्थितिविशेषोंपर नियमसे होती हैं, इसका अभिप्राय यह है कि चारों संज्वलनोंकी द्वितीयस्थिति संख्यात आवलीप्रमाण होती है । उनमें एक-एक स्थितिपर सर्व संग्रहकृष्टियाँ और उनकी अवयवकृष्टियाँ पाई जाती हैं । यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिए कि वेद्यमान संग्रहकृष्टि और उसकी अवयवकृष्टियाँ प्रथमस्थिति-सम्बन्धी सर्व स्थितियोंमें भी संभव हैं । इसीप्रकार प्रत्येक संग्रहकृष्टि और उनकी अवयवकृष्टियाँ अनन्त अविभागप्रतिच्छेदवाले सर्व अनुभागोंमें पाई जाती हैं, इसलिए जघन्य भी कृष्टि अविभाग-प्रतिच्छेदोंके गणनाकी अपेक्षा अनन्त संख्यावाले अनुभागसे समन्वित होती है । इसी प्रकार शेष भी कृष्टियाँ अनन्त अविभागप्रतिच्छेद शक्ति-समन्वित अनुभाग-वाली जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०- अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि-को वेदन करनेवाले जीवके उस संग्रहकृष्टिकी एक-एक अवयवकृष्टि द्वितीयस्थिति-सम्बन्धी सर्व अवयवस्थितियोंमें और प्रथमस्थिति-सम्बन्धी केवल एक उदयस्थितिको छोड़कर शेष सर्व स्थितियोंमें पाई जाती हैं ॥७४०-७४१॥

विशेषार्थ–क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको वेदन करनेवाले जीवके उस अवस्थामें क्रोध संज्वलनकी प्रथमस्थिति और द्वितीय-स्थितिसंज्ञावाली दो स्थितियाँ होती हैं । उनमें द्वितीय स्थितिसम्बन्धी एक-एक समयरूप जितनी अवयवस्थितियाँ हैं, उन सबमें वेदनकी जानेवाली क्रोध-प्रथम संग्रहकृष्टिकी जितनी अवयव-कृष्टियाँ हैं, वे सब पाई जाती हैं। किन्तु प्रथमस्थिति-सम्बन्धी जितनी अवान्तर-स्थितियाँ हैं, उनमें केवल एक उदयस्थितिको छोड़कर शेष सर्व अवान्तर-स्थितियोंमें क्रोधकषायसम्बन्धी प्रथम संग्रहकृष्टिकी सर्व अवयवकृष्टियाँ पाई जाती

७४२. उदयट्ठिदीए पुण वेदिज्जमाणियाए संगहकिट्टीए जाओ किट्टीओ तासिमसंखेज्जा भागा। ७४३. सेसाणमवेदिज्जमाणिगाणं संगहकिट्टीणमेक्केका किट्टी सव्वासु विदियट्ठिदीसु पढमट्ठिदीसु णत्थि। ७४४. एक्केका किट्टी अणुभागेसु अणंतेसु। ७४५. जेसु पुण एक्का ण तेसु विदिया।

७४६. विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

(११५) सव्वाओ किट्टीओ विदियट्ठिदीए दु होंति सव्विस्से।
जं किट्टिं वेदयदे तिस्से अंसो च पढमाए ॥१६८॥

७४७. एदिस्से विहासा वुत्ता चेव पढमभासगाहाए।

हैं। सूत्रमें जो 'एक-एक कृष्टि' ऐसा कहा है उसका अभिप्राय यह है कि क्रोध संज्वलनकी जघन्य कृष्टि इन विवक्षित स्थितियोंमें होती है। इसी प्रकार द्वितीय कृष्टि, तृतीय कृष्टिको आदि देकर अन्तिम कृष्टि तक प्रथम संग्रहकृष्टिकी सर्व अवयवकृष्टियाँ उन स्थितिविशेषोंमें होती हैं, जिनकी कि संख्या असंख्यात है।

अब ऊपर 'उदयस्थितिको छोड़कर' ऐसा जो कहा है, उसका चूर्णिकार स्वयं ही स्पष्टीकरण करते हैं–

चूर्णिसू०–किन्तु उदयस्थितिमें वेद्यमान संग्रहकृष्टिकी जितनी अवयव-कृष्टियाँ हैं, उनका असंख्यात बहुभाग पाया जाता है। (क्योंकि, विवक्षित संग्रहकृष्टिके अधस्तन-उपरिम असंख्यात एक भागप्रमाण अवयवकृष्टियोंको छोड़कर मध्यवर्ती असंख्यात बहुभाग-प्रमाण कृष्टियोंके रूपसे ही उदयानुभाग परिणमित होता है।) शेष अवेद्यमान ग्यारहों संग्रहकृष्टियोंकी एक-एक अवयवकृष्टि सर्व द्वितीयस्थितिसम्बन्धी अवान्तर-स्थितियोंमें पाई जाती हैं, प्रथम स्थितिसम्बन्धी अवान्तर स्थितियोंमें नहीं पाई जातीं। (इस प्रकार भाष्य-गाथाके पूर्वार्धकी विभाषा करके अब उत्तरार्धकी विभाषा करते हैं–) एक-एक संग्रहकृष्टि अथवा उनकी अवयवकृष्टि (नियमसे) अनन्त अनुभागोंमें रहती हैं। (क्योंकि, सर्व जघन्य भी कृष्टिमें सर्व जीवोंसे अनन्तगुणित अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं।) जिन अनन्त अनुभागोंमें एक विवक्षित कृष्टि वर्तमान है, उनमें दूसरी अन्य कृष्टि नहीं रहती है। (किन्तु वह उनसे भिन्न स्वभाववाले अनुभागोंमें ही रहती है।) ॥७४२-७४५॥

चूर्णिसू०–अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥७४६॥

सभी संग्रहकृष्टियाँ और उनकी अवयवकृष्टियाँ समस्त द्वितीयस्थितिमें होती हैं। किन्तु वह जिस कृष्टिका वेदन करता है, उसका अंश प्रथमस्थितिमें होता है। (क्योंकि, अवेद्यमान कृष्टियोंका प्रथमस्थितिमें होना संभव नहीं है।) ॥१६८॥

चूर्णिसू०–इस भाष्यगाथाकी विभाषा प्रथम भाष्यगाथाकी विभाषा करते हुए कही जा चुकी है। अर्थात् वेद्यमान संग्रहकृष्टिका अंश उदय-वर्ज्य सर्व स्थितियोंमें अविशेषरूपसे पाया जा जाता है। किन्तु उदयस्थितिमें वेद्यमान कृष्टिके असंख्यात बहुभाग ही पाये जाते हैं ॥७४७॥

७४८. एत्तो तदियाए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(११६) किट्टी च पदेसग्गेणणुभागग्गेण का च कालेण ।
अधिगा समा व हीणा गुणेण किं वा विसेसेण ॥१६९॥

७४९. एदिस्से तिण्णि अत्था । ७५०. किट्टी च पदेसग्गेणेत्ति पढमो अत्थो । एदम्मि पंच भासगाहाओ । ७५१. अणुभागग्गेणेत्ति विदियो अत्थो । एत्थ एका भासगाहा । ७५२. का च कालेणेत्ति तदिओ अत्थो । एत्थ छब्भासगाहाओ । ७५३. तासिं समुक्कित्तणं विहासणं च । ७५४. पढमे अत्थे भासगाहाणं समुक्कित्तणा ।

(११७) विदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा भवे पदेसग्गे ।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥१७०॥

७५५. विहासा । ७५६. तं जहा । ७५७. कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं थोवं । ७५८. पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं तेरसगुणमेत्तं ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तीसरी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है॥७४८॥

कौन कृष्टि किस कृष्टिसे प्रदेशाग्रकी अपेक्षा, अनुभागाग्रकी अपेक्षा और कालकी अपेक्षा अधिक है, हीन है, अथवा समान है ? इस प्रकार गुणोंकी अपेक्षा एक कृष्टिसे दूसरी कृष्टिमें क्या विशेषता है ? ॥१६९॥

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके तीन अर्थ हैं। 'कौन कृष्टि किस कृष्टिसे प्रदेशाग्रकी अपेक्षा समान है, हीन है या अधिक है, यह प्रथम अर्थ है । इस प्रथम अर्थमें पाँच भाष्य-गाथाएँ निबद्ध हैं। 'कौन कृष्टि किस कृष्टिसे अनुभागाग्रकी अपेक्षा समान है, हीन है या अधिक है,' यह द्वितीय अर्थ है। इस द्वितीय अर्थमें एक भाष्यगाथा निबद्ध है। 'कौन कृष्टि किस कृष्टिसे कालकी अपेक्षा समान है, हीन है या अधिक है' यह तृतीय अर्थ है। इस तृतीय अर्थमें छह भाष्यगाथाएँ निबद्ध हैं। 'गुणेण किं वा विसेसेण' यह पद प्रदेशादि तीनों अर्थोंके विशेषणरूपसे निर्दिष्ट किया गया है ॥७४९-७५२॥

चूर्णिसू०–अब उन भाष्यगाथाओंकी समुत्कीर्तना और विभाषा एक साथ की जाती है। उनमेंसे पहले प्रथम अर्थमें निबद्ध भाष्यगाथाओंकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥७५३-७५४॥

क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे उसकी ही प्रथम संग्रहकृष्टि प्रदेशाग्रकी अपेक्षा संख्यातगुणी होती है। किन्तु द्वितीय संग्रहकृष्टिसे तृतीय संग्रहकृष्टि विशेष अधिक होती है। इस प्रकार यथाक्रमसे शेष अर्थात् मान, माया और लोभसम्बन्धी तीनों तीनों संग्रहकृष्टियाँ विशेष अधिक होती हैं ॥१७०॥

चूर्णिसू०-अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं। वह इस प्रकार है–क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र अल्प हैं। इससे प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणित हैं, जिनका कि प्रमाण तेरहगुणा है ॥७५५-७५८॥

७५९. माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं थोवं। ७६०. विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६१. तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६२. विसेसो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो। ७६३. कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६४. तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६५. मायाए पढमसंगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६६. विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६७. तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं। ७६८.

विशेषार्थ—क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र तेरहगुणा कैसे संभव है, इसका स्पष्टीकरण यह है कि मोहनीयकर्मका सर्वप्रदेशरूप द्रव्य अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ४९ कल्पित कीजिए। इसके दो भागोंमेंसे असंख्यातवें भागसे अधिक एक भाग (२५) तो कषायरूप द्रव्य है और असंख्यातवें भागसे हीन शेष दूसरा भाग (२४) नोकषायरूप द्रव्य है। अब यहाँपर कषायरूप द्रव्य क्रोधादि चार कषायोंकी बारह संग्रहकृष्टियोंमें विभाग करनेपर क्रोध प्रथमसंग्रहकृष्टिका द्रव्य २ अंकप्रमाण रहता है जो कि मोहनीयकर्मके सकल (४९) द्रव्यकी अपेक्षा कुछ अधिक चौवीसवाँ भागप्रमाण है। प्रकृत कृष्टिकरणकालमें नोकषायोंका सर्व द्रव्य भी संज्वलनक्रोधमें संक्रमित हो जाता है जो कि सर्व ही द्रव्य कृष्टि करनेवालेके क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिस्वरूपसे ही परिणत होकर अवस्थित रहता है। इसका कारण यह है कि वेदन की जानेवाली प्रथम संग्रहकृष्टिरूपसे ही उसके परिणमनका नियम है। इस प्रकार क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिके प्रदेशाग्रका स्वभाग (२) इस नोकषायद्रव्य (२४) के साथ मिलकर (२+२४=२६) क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिके दो अंकप्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा तेरहगुणा (२ x १३ = २६) सिद्ध हो जाता है। अतएव चूर्णिकारने उसे तेरहगुणा बतलाया है।

इस प्रकार उपर्युक्त सूत्रसे सूचित स्वस्थान-अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिए—क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र सबसे कम है। तृतीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक हैं। क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे ऊपर उसकी ही प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणित हैं। मानका स्वस्थान-अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र सबसे कम हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार माया और लोभसम्बन्धी स्वस्थान-अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

अब परस्थान-अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र सबसे कम हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। यहाँ सर्वत्र विशेषका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी है। मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। इससे इसीकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टि-

लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । ७६९. विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । ७७०. तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । ७७१. कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं ।

७७२. विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ७७३. तं जहा ।

(११८) विदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा दु वग्गणग्गेण ।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥१७१॥

७७४. विहासा । ७७५. जहा पदेसग्गेण विहासिदं तहा वग्गणग्गेण विहासिदव्वं । ७७६. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ७७७. तं जहा ।

में प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं । मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं । द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं । तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेप अधिक हैं । लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणित हैं ॥७५९-७७१॥

विशेषार्थ–यहाँ सर्वत्र स्वस्थानमें विशेष अधिकका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी और परस्थानमें आवलीके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी जानना चाहिए । क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणित बतलाया है, सो वहाँपर संख्यातगुणितका अभिप्राय तेरहगुणा लेना चाहिए, जैसा कि ऊपर बतला आये हैं ।

चूर्णिसू०–अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥७७२-७७३॥

क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे प्रथम संग्रहकृष्टि वर्गणाओंके समूहकी अपेक्षा संख्यातगुणी है । किन्तु क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे तृतीय संग्रहकृष्टि विशेष अधिक है । इसी क्रमसे शेष अर्थात् मान, माया और लोभकी संग्रहकृष्टियाँ विशेष-विशेष अधिक जानना चाहिए ॥१७१॥

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा कहते हैं–जिस प्रकार प्रदेशाग्रकी अपेक्षा कृष्टियोंके अल्पबहुत्वकी प्रथम भाष्यगाथाके द्वारा विभाषा की गई है, उसी प्रकार वर्गणाग्रकी अपेक्षासे इस भाष्यगाथाकी विभाषा करना चाहिए ॥७७४-७७५॥

विशेषार्थ–इसका कारण यह है कि दोनों अपेक्षाओंसे अल्पबहुत्वके निरूपण-क्रममें कोई भेद नहीं है । दूसरी बात यह है कि प्रदेशोंकी हीनाधिकताके अनुसार ही वर्गणाओंमें भी हीनाधिकता होती है । यहाँपर वर्गणा पदसे अनन्त परमाणुओंके समुदायात्मक एक अन्तरकृष्टिका ग्रहण करना चाहिए । वर्गणाओंके समुदायको वर्गणाग्र कहते हैं ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं । वह इस प्रकार है ॥७७६-७७७॥

(११९) जा हीणा अणुभागेणहिया सा वग्गणा पदेसग्गे ।
भागेणऽणंतिमेण दु अधिगा हीणा च बोद्धव्वा ॥१७२॥

७७८. विहासा । ७७९. तं जहा । ७८०. जहण्णियाए वग्गणाए पदेसग्गं बहुअं । ७८१. विदियाए वग्गणाए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण । ७८२. एवमणंतराणंतरेण विसेसहीणं सव्वत्थ ।

७८३. एत्तो चउत्थी भासगाहा ।

(१२०) कोधादिवग्गणादो सुद्धं कोधस्स उत्तरपदं तु ।
सेसो अणंतभागो णियमा तिस्से पदेसग्गे ॥१७३॥

जो वर्गणा अनुभागकी अपेक्षा हीन है, वह प्रदेशाग्रकी अपेक्षा अधिक है । ये वर्गणाएँ अनन्तवें भागसे अधिक या हीन जानना चाहिए ॥१७२॥

विशेषार्थ–यह तीसरी भाष्यगाथा बारहों ही संग्रहकृष्टियोंकी जघन्य कृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टि तक यथाक्रमसे अवस्थित अन्तर-कृष्टियोंके प्रदेशाग्रकी हीनाधिकताको अनन्तरोपनिधाके द्वारा बतलानेके लिए अवतीर्ण हुई है । इसका अर्थ यह है कि जो वर्गणा अनुभागकी अपेक्षा अधिक अनुभाग-युक्त होती है उसमें प्रदेश कम पाये जाते हैं और जो प्रदेशोंकी अपेक्षा अधिक प्रदेश-समन्वित होती है उसमें अनुभागशक्ति हीन पाई जाती है । यहाँ जघन्यकृष्टिगत सदृश-सघनतावाले सर्व परमाणुओंके समूहकी 'एक वर्गणा' यह संज्ञा दी गई है । इस प्रकार जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टि तक क्रमसे अवस्थित कृष्टियोंमें सर्व-अधस्तन वर्गणा अनुभागकी अपेक्षा हीन है और उपरिम-उपरिम वर्गणाएँ क्रमशः अनन्तगुणित वृद्धिरूपसे अधिक अनुभागसे युक्त हैं । जिस प्रकार उपरिम-उपरिम वर्गणाएँ अनुभागकी अपेक्षा अधिक हैं । उसी प्रकार वे प्रदेशोंकी अपेक्षा ऊपर-ऊपर हीन हैं, क्योंकि वर्गणाओंका ऐसा ही स्वभाव है कि जिनमें अनुभाग अधिक होगा, उनमें प्रदेशाग्र कम होगा और जिनमें प्रदेश-समुदाय अधिक होगा, उनमें अनुभाग कम होगा । इस प्रकार यह गाथाके पूर्वार्धका अर्थ हुआ । गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा यह सूचित किया गया है कि यह उपर्युक्त हीनाधिकता अनन्तवें भागप्रमाण जानना चाहिए । अर्थात् एक अन्तर-कृष्टिसे दूसरी अन्तर-कृष्टि अनुभाग या प्रदेशाग्रकी अपेक्षा एक वर्गणासे हीन या अधिक होती है ।

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–जघन्य वर्गणामें प्रदेशाग्र बहुत हैं । द्वितीय वर्गणामें प्रदेशाग्र विशेष हीन अर्थात् अनन्तवें भागसे हीन होते हैं । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तर क्रमसे सर्वत्र विशेष हीन प्रदेशाग्र जानना चाहिए ॥७७८-७८१॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथा अवतरित होती है ॥७८३॥

क्रोधकषायका उत्तरपद अर्थात् चरम कृष्टिका प्रदेशाग्र क्रोधकषायकी आदि अर्थात् जघन्य वर्गणामेंसे घटाना चाहिए । इस प्रकार घटानेपर जो शेष अनन्तवाँ भाग बचता है, वह नियमसे क्रोधकी जघन्य वर्गणाके प्रदेशाग्रमें अधिक है ॥१७३॥

७८४. विहासा । ७८५. एदीए गाहाए परंपरोवणिधाए सेढीए भणिदं होदि । ७८६. कोहस्स जहण्णियादो वग्गणादो उकस्सियाए वग्गणाए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण ।

७८७. एत्तो पंचमीए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ७८८. तं जहा ।

(१२१) एसो कमो च कोधे माणे णियमा च होदि मायाए ।
लोभम्हि च किट्टीए पत्तेगं होदि बोद्धव्वो ॥१७४॥

७८९. विहासा । ७९०. जहा कोहे चउत्थीए गाहाए विहासा, तहा माण-माया-लोभाणं पि णेदव्वा । ७९१. माणादिवग्गणादो सुद्धं माणस्स उत्तरपदं तु । सेसो अणंतभागो णियमा तिस्से पदेसग्गे ॥ ७९२. एवं चेव मायादिवग्गणादो० । ७९३. लोभादिवग्गणादो० ।

७९४. मूलगाहाए विदियपदमणुभागग्गेणेत्ति, एत्थ एक्का भासगाहा । ७९५. तं जहा ।

चूर्णिसू०—अब इस गाथाकी विभाषा की जाती है—इस गाथाके द्वारा परम्परोपनिधारूप श्रेणीकी अपेक्षा प्रदेशाग्र कहे गए हैं । क्रोधकी जघन्य वर्गणासे उसकी उत्कृष्ट वर्गणामें प्रदेशाग्र विशेष हीन अर्थात् अनन्तवें भागसे हीन हैं ॥७८४-७८६॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥७८७-७८८॥

क्रोधसंज्वलनकी कृष्टिके विषयमें जो यह क्रम कहा गया है, वही क्रम नियमसे मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनकी कृष्टिमें भी प्रत्येकका है, ऐसा जानना चाहिए ॥१७४॥

चूर्णिसू०—अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनमें चौथी भाष्यगाथाकी विभाषा की है, उसी प्रकार मान, माया और लोभसंज्वलनमें भी करना चाहिए । वह इस प्रकार जानना चाहिए—मानकषायका उत्तरपद मानकषायकी आदिवर्गणामेंसे घटाना चाहिए । जो शेष अनन्तवाँ भाग बचता है वह नियमसे मानकी जघन्य वर्गणाके प्रदेशाग्रमें अधिक है । इसी प्रकार मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका उत्तरपद उनकी आदिवर्गणामेंसे घटाना चाहिए । जो शेष अनन्तवाँ भाग अवशिष्ट रहे, वह नियमसे उनकी जघन्य वर्गणाके प्रदेशाग्रमें अधिक है ॥७८९-७९३॥

इस प्रकार पाँच भाष्यगाथाओंके द्वारा मूलगाथाके 'किट्टी च पदेसग्गेण' इस प्रथम पदका अर्थ समाप्त हुआ ।

चूर्णिसू०—मूलगाथाके 'अणुभागग्गेण' इस द्वितीय पदके अर्थमें एक भाष्यगाथा है, वह इस प्रकार है ॥७९४-७९५॥

(१२२) पढमा च अणंतगुणा विदियादो णियमसा दु अणुभागो।
तदियादो पुण विदिया कमेण सेसा गुणेणऽहिया ॥१७५॥

७९६. विहासा। ७९७. संगहकिट्टिं पडुच्च कोहस्स तदियाए संगहकिट्टीए अणुभागो थोवो। ७९८. विदियाए संगहकिट्टीए अणुभागो अणंतगुणो। ७९९. पढमाए संगहकिट्टीए अणुभागो अणंतगुणो। ८००. एवं माण-माया-लोभाणं पि।

८०१. मूलगाहाए तदियपदं का च कालेणेत्ति एत्थ छ भासगाहाओ। ८०२. तासिं समुक्कित्तणा च विहासा च।

(१२३) पढमसमयकिट्टीणं कालो वस्सं व दो व चत्तारि।
अट्ठ च वस्साणि ट्ठिदी विदियट्ठिदीए समा होदि ॥१७६॥

८०३. विहासा। ८०४. जदि कोधेण उवट्ठिदो किट्टीओ वेदेदि, तदो तस्स पढमसमए वेदगस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि। ८०५. माणेण उवट्ठिदस्स पढमसमयकिट्टीवेदगस्स ट्ठिदिसंतकम्मं चत्तारि वस्साणि। ८०६. मायाए उवट्ठिदस्स

क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टि द्वितीय संग्रहकृष्टिसे अनुभागकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणी है। पुनः तृतीय संग्रहकृष्टिसे द्वितीय संग्रहकृष्टि भी अनन्तगुणी है। इसी क्रमसे मान, माया और लोभ संज्वलनकी तीनों तीनों संग्रहकृष्टियाँ तृतीयसे द्वितीय और द्वितीयसे प्रथम उत्तरोत्तर अनन्तगुणी जानना चाहिए ॥१७५॥

चूर्णिसू०—अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—संग्रहकृष्टिकी अपेक्षा क्रोधसंज्वलनकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अनुभाग अल्प है। द्वितीयसंग्रहकृष्टिमें अनुभाग अनन्तगुणा है। प्रथम संग्रहकृष्टिमें अनुभाग अनन्तगुणा है। इसी प्रकार मान, माया और लोभसंज्वलनकी तीनों संग्रहकृष्टियोंमें अनुभागका क्रम जानना चाहिए ॥७९६-८००॥

चूर्णिसू०—मूलगाथाका तृतीयपद 'का च कालेण' है, इसके अर्थमें छह भाष्यगाथाएँ हैं। उनकी समुत्कीर्तना और विभाषा की जाती है ॥८०१-८०२॥

प्रथम समयमें कृष्टियोंका स्थितिकाल एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष और आठ वर्ष है। द्वितीयस्थिति और अन्तर स्थितियोंके साथ प्रथमस्थितिका यह काल कहा गया है ॥१७६॥

चूर्णिसू०—अब इसकी विभाषा करते हैं—यदि क्रोधसंज्वलनके उदयके साथ उपस्थित हुआ कृष्टियोंको वेदन करता है, तो उसके प्रथम समयमें कृष्टिवेदकके मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व आठ वर्ष है। मानसंज्वलनके उदयके साथ उपस्थित प्रथम समय कृष्टिवेदकके मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व चार वर्ष है। मायासंज्वलनके उदयके साथ उपस्थित प्रथम समय

पढमसमयकिट्टीवेदगस्स वे वस्साणि मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं। ८०७. लोभेण उवट्ठिदस्स पढमसमयकिट्टीवेदगस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममेक्कं वस्सं।

८०८. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

(१२४) जं किट्टिं वेदयदे जवमज्झं सांतरं दुसु ट्ठिदीसु।
पढमा जं गुणसेढी उत्तरसेढी य विदिया दु ॥१७७॥

८०९. विहासा। ८१०. जहा। ८११. जं किट्टिं वेदयदे तिस्से उदयट्ठिदीए पदेसग्गं थोवं। ८१२. विदियाए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। ८१३. एवमसंखेज्जगुणं जाव पढमट्ठिदीए चरिमट्ठिदि त्ति। ८१४. तदो विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणं। ८१५. तदो सव्वत्थ विसेसहीणं। ८१६. जवमज्झं पढमट्ठिदीए चरिमट्ठिदीए च, विदियट्ठिदीए आदिट्ठिदीए च। ८१७. एदं तं जवमज्झं सांतरं दुसु ट्ठिदीसु।

८१८. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

कृष्टिवेदकके मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व दो वर्ष है और लोभसंज्वलनके उदयके साथ उपस्थित प्रथम समय कृष्टिवेदकके मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक वर्ष है ॥८०३-८०७॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे द्वितीय भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥८०८॥

जिस कृष्टिको वेदन करता है, उसमें प्रदेशाग्रका अवस्थान यवमध्यरूपसे होता है और वह यवमध्य प्रथम तथा द्वितीय इन दोनों स्थितियोंमें वर्तमान हो करके भी अन्तर-स्थितियोंसे अन्तरित होनेके कारण सान्तर है। जो प्रथमस्थिति है, वह गुणश्रेणीरूप है अर्थात् उत्तरोत्तर समयोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित क्रमसे उसमें अवस्थित हैं और जो द्वितीयस्थिति है, वह उत्तर श्रेणीरूप है अर्थात् आदि समयमें स्थूलरूप होकर भी वह उत्तरोत्तर समयोंमें विशेष हीनरूपसे अवस्थित है ॥१७७॥

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–जिस कृष्टिको वेदन करता है, उसकी उदयस्थितिमें प्रदेशाग्र अल्प हैं। द्वितीय स्थितिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं। इस प्रकार असंख्यातगुणित क्रमसे प्रदेशाग्र प्रथम स्थितिके चरम समय तक बढ़ते हुए पाये जाते हैं। तदनन्तर द्वितीय स्थितिकी जो आदि स्थिति है, उसमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित है। तत्पश्चात् सर्वत्र अर्थात् उत्तरोत्तर सर्व स्थितियोंमें विशेष हीन क्रमसे प्रदेशाग्र अवस्थित हैं। यह प्रदेशाग्रोंके विन्यासरूप यवमध्य प्रथम स्थितिके चरम स्थितिमें द्वितीय स्थितिके आदि स्थितिमें पाया जाता है। वह यह यवमध्य दोनों स्थितियोंके अन्तिम और आदिम समयोंमें वर्तमान है, अतएव सान्तर है ॥८०९-८१८॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तृतीय भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥८१८॥

(१२५) विदियट्ठिदि आदिपदा सुद्धं पुण होदि उत्तरपदं तु ।
सेसो असंखेज्जदिमो भागो तिस्से पदेसग्गे ॥१७८॥

८१९. विहासा । ८२०. विदियाए ट्ठिदीए उकस्सियाए पदेसग्गं तिस्से चेव जहण्णियादो ट्ठिदीदो सुद्धं सुद्धसेसं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागियं ।

८२१. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुकित्तणा । ८२२. तं जहा ।

(१२६) उदयादि या ट्ठिदीओ णिरंतरं तासु होइ गुणसेढी ।
उदयादि पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥१७९॥

८२३. विहासा । ८२४. उदयट्ठिदिपदेसग्गं थोवं । ८२५. विदियाए ट्ठिदीसु पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । ८२६. एवं सव्विस्से पढमट्ठिदीए ।

द्वितीय स्थितिके आदिपद अर्थात् प्रथम निषेकके प्रदेशाग्रमेंसे उसके उत्तर पद अर्थात् चरम निषेकके प्रदेशाग्रको घटाना चाहिए। इस प्रकार घटानेपर जो असंख्यातवाँ भाग शेष रहता है, वह उस प्रथम निषेकके प्रदेशाग्रमें अधिक है ॥१७८॥

चूर्णिसू०—अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—द्वितीय स्थितिकी उत्कृष्ट अर्थात् चरम स्थितिमें प्रदेशाग्र उस ही द्वितीय स्थितिकी जघन्य अर्थात् आदि स्थितिमेंसे शोधित करना चाहिए । वह शुद्ध शेष पल्योपमके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी है ॥ ८१९-८२०

विशेषार्थ—इस तीसरी भाष्यगाथामें द्वितीय स्थितिके उत्तरश्रेणी रूपसे अवस्थित प्रदेशाग्रका परम्परोपनिधारूपसे वर्णन किया गया है । जिसका अभिप्राय यह है कि द्वितीय स्थितिका आयाम यतः वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, अतः उसके चरम निषेकके प्रदेशाग्रसे प्रथम निषेकका प्रदेशपिंड संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा या अन्य प्रकारका न होकर नियमसे असंख्यातवाँ भाग अधिक होता है । यह असंख्यातवाँ भाग पल्योपमके असंख्यातवें भागके बराबर जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८२१-८२२॥

उदयकालसे आदि लेकर प्रथमस्थितिसम्बन्धी जितनी स्थितियाँ हैं, उनमें निरन्तर गुणश्रेणी होती हैं । उदयकालसे लेकर उत्तरोत्तर समयवर्ती स्थितियोंमें प्रदेशाग्र गणनाके अन्त अर्थात् असंख्यातगुणितरूपसे अवस्थित हैं ॥१७९॥

चूर्णिसू०—अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—उदयस्थितिमें प्रदेशाग्र अल्प हैं । द्वितीय स्थितिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण प्रथमस्थितिमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र जानना चाहिए ॥८२३-८२६॥

विशेषार्थ—चौथी भाष्यगाथाके द्वारा पूर्वोक्त यवमध्यका स्पष्टीकरण करते हुए प्रथमस्थितिके प्रदेशाग्रका अवस्थान-क्रम सूचित किया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि

८२७. एत्तो पंचमीए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ८२८. तं जहा ।

(१२७) उदयादिसु ट्ठिदीसु य जं कम्मं णियमसा दु तं हरस्सं ।
पविसदि ट्ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥१८०॥

८२९. विहासा । ८३०. तं जहा । ८३१. जं अस्सिं समए उदिण्णं पदेसग्गं तं थोवं । ८३२. से काले ट्ठिदिक्खएण उदयं पविसदि पदेसग्गं तमसंखेज्जगुणं । ८३३. एवं सव्वत्थ ।

८३४. एत्तो छट्ठीए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ८३५. तं जहा ।

(१२८) वेदगकालो किट्टीय पच्छिमाए दु णियमसा हरस्सो ।
संखेज्जदिभागेण दु सेसग्गाणं कमेणऽधिगो ॥१८१॥

८३६. विहासा । ८३७. पच्छिमकिट्टिमंतोमुहुत्तं वेदयदि तिस्से वेदगकालो

प्रथम स्थितिके प्रथम समयमें उदय आनेवाले प्रदेशाग्र सबसे कम हैं और आगे-आगेके समयोंमें उदय आनेवाले प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हैं ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८२७-८२८॥

उदयको आदि लेकर यथाक्रमसे अवस्थित प्रथमस्थितिकी अवयवस्थितियोंमें जो कर्मरूप द्रव्य है, वह नियमसे आगे आगे ह्रस्व अर्थात् कम-कम है । उदयस्थितिसे ऊपर अनन्तर स्थितिमें जो प्रदेशाग्र स्थितिके क्षयसे प्रवेश करते हैं, वे असंख्यातगुणित रूपसे प्रवेश करते हैं ॥१८०॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है—जो प्रदेशाग्र इस वर्तमान समयमें उदयको प्राप्त होता है, वह सबसे कम है । जो प्रदेशाग्र स्थितिके क्षयसे अनन्तर समयमें उदयको प्राप्त होगा, वह असंख्यातगुणा है । इसी प्रकार सर्वत्र अर्थात् कृष्टिवेदक-कालके सर्व समयोंमें उदयको प्राप्त होनेवाले प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए ॥८२९-८३३॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे छठी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८३४-८३५॥

पश्चिम कृष्टि अर्थात् संज्वलन लोभकी सूक्ष्मसाम्परायिक नामवाली अन्तिम बारहवीं कृष्टिका वेदककाल नियमसे अल्प है, अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका जितना काल है, वही बारहवीं कृष्टिके वेदनका काल है । पश्चादानुपूर्वीसे शेष ग्यारह कृष्टियोंका वेदनकाल क्रमशः संख्यातवें भागसे अधिक है ॥१८१॥

चूर्णिसू०—अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—(यद्यपि) पश्चिम अर्थात् अन्तिम बारहवीं कृष्टिको अन्तर्मुहूर्त तक वेदन करता है, (तथापि) उसका वेदककाल सबसे

थोवो । ८३८. एक्कारसमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८३९. दसमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४०. णवमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४१. अट्ठमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४२. सत्तमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४३. छट्ठीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४४. पंचमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४५. चउत्थीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४६. तदियाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४७. विदियाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४८. पढमाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ । ८४९. विसेसो संखेज्जदिभागो ।

८५०. एत्तो चउत्थीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा । ८५१. तं जहा ।

(१२९) कदिसु गदीसु भवेसु य ट्ठिदि-अणुभागेसु वा कसाएसु ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि कदीसु किट्टीसु च ट्ठिदीसु ॥१८२॥

कम है । ग्यारहवीं कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । दशवीं कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । नवमी कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । आठवीं कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । सातवीं कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । छठी कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । पाँचवीं कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । चौथी कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । तीसरी कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । दूसरी कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । प्रथम कृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । यहाँ सर्वत्र विशेषका प्रमाण (स्वकृष्टि वेककालके) संख्यातवें भाग है, अर्थात् संख्यात आवली है ॥८३६-८४९॥

विशेषार्थ—इन चूर्णिसूत्रोंके द्वारा भाष्यगाथोक्त बारह कृष्टियोंके वेदनकालका प्रमाण बताया गया है । गाथाके उत्तरार्धमें पठित 'तु' शब्दसे जयधवलाकारने अश्वकर्णकरणकाल, षण्णोकषायक्षपणकाल, स्त्रीवेदक्षपणकाल, नपुंसकवेदक्षपणकाल, अन्तरकरणकाल और अष्ट-कषायक्षपणकाल इनका भी अल्पबहुत्व बताया है । वह इस प्रकार है—क्रोधकी प्रथम संग्रह-कृष्टिके वेदककालसे कृष्टिकरणका काल संख्यातगुणा है अर्थात् साधिक तिगुना है । कृष्टिकरण-कालसे अश्वकरणकाल आदि शेष सब काल विशेष-विशेष अधिक हैं । केवल अन्तरकरण-कालसे अष्टकषायक्षपणकाल संख्यातगुणा है ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे चौथी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८५०-८५१॥

कितनी गतियोंमें, भवोंमें, स्थितियोंमें, अनुभागोंमें और कषायोंमें पूर्वबद्ध कर्म कितनी कृष्टियोंमें और उनकी कितनी स्थितियोंमें पाये जाते हैं ? ॥१८२॥

विशेषार्थ—इस और इससे आगे कही जानेवाली दो और मूलगाथाओंके द्वारा कृष्टिवेदकके गति आदि मार्गणाओंमें पूर्वबद्ध कर्मोंका भजनीय-अभजनीयरूपसे अस्तित्व

८५२. एदिस्से तिण्णि भासगाहाओ । ८५३. तं जहा ।

(१३०) दोसु गदीसु अभज्जाणि दोसु भज्जाणि पुव्वबद्धाणि ।
एइंदिय कायेसु च पंचसु भज्जा ण च तसेसु ॥१८३॥

८५४. विहासा । ८५५. एदस्स खवगस्स दुगदिसमज्जिदं कम्मं णियमा अत्थि । तं जहा–तिरिक्खगदिसमज्जिदं च मणुसगदिसमज्जिदं च । ८५६. देवगदिसमज्जिदं च णिरयगदिसमज्जिदं च भजियव्वं । ८५७. पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइएसु एत्तो एक्केक्केण काएण समज्जिदं भजियव्वं । ८५८. तसकाइयं समज्जिदं णियमा अत्थि ।

अन्वेषण किया गया है । प्रस्तुत गाथामें गति, इन्द्रिय, काय और कषायमार्गणामें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-संयुक्त संचित पूर्वबद्ध कर्मोंके संभव-असंभवताका निर्णय करनेके लिए प्रश्न उपस्थित किये गये हैं, जिनका कि उत्तर आगे कही जानेवाली तीन भाष्यगाथाओं-के द्वारा दिया जायगा । गाथा-पठित 'गति' पदसे गतिमार्गणा ग्रहण की गई है । 'भव' पदसे इन्द्रिय और कायमार्गणा सूचित की गई है, क्योंकि भव एकेन्द्रियादि जाति और स्थावरादिकायरूप ही होता है । 'कषाय' पदसे कषायमार्गणाका ग्रहण किया गया है । इस प्रकार समग्र गाथाका यह अर्थ निकलता है कि गति आदि मार्गणाओंमें संचित पूर्वबद्ध कर्म किन-किन कृष्टियोंमें और उनकी किन-किन स्थितियोंमें संभव है और किन-किनमें नहीं ? इसका स्पष्टीकरण आगे कही जानेवाली भाष्यगाथाओंमें किया गया है ।

चूर्णिसू०–उपर्युक्त मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली तीन भाष्यगाथाएँ हैं । वे इस प्रकार हैं ॥८५२-८५३॥

पूर्वबद्ध कर्म दो गतियोंमें अभजनीय है और दो गतियोंमें भजनीय हैं । तथा एक एकेन्द्रियजाति और पाँच स्थावरकायोंमें भजनीय हैं, शेष चार जातियोंमें और त्रसकायमें भजनीय नहीं हैं ॥१८३॥

चूर्णिसू०–अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–इस कृष्टिवेदक क्षपकके दो गतियोंमें समुपार्जित कर्म नियमसे होता है । वह इस प्रकार है–तिर्यग्गतिसमुपार्जित कर्म भी है और मनुष्यगति समुपार्जित कर्म भी है । देवगतिसमुपार्जित और नरकगतिसमुपार्जित कर्म भजितव्य है । पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक इन पाँचोंमेंसे एक-एक कायके साथ समुपार्जित कर्म भजितव्य है । त्रसकायिक समुपार्जित कर्म नियमसे पाया जाता है ॥८५४-८५८॥

विशेषार्थ–कृष्टिवेदक क्षपकके पूर्व भवमें तिर्यग्गति और मनुष्यगतिमें उत्पन्न होकर बाँधे हुए कर्मोंका अस्तित्व नियमसे रहता है, अतएव उनके संचयको संभव या असंभव की

अपेक्षा गाथाकारने अभजितव्य कहा है। इसी बातको चूर्णिकारने 'नियम' पदसे द्योतित किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जो जीव तिर्यग्गतिसे आकर और मनुष्योंमें ही उत्पन्न होकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके नियमसे तिर्यग्गतिमें बाँधे हुए कर्मोंका संचय पाया जाता है। किन्तु जो तिर्यग्गतिसे निकलकर और शेष नरक-देवादि गतियोंमें सागरोपम-शतपृथक्त्वकाल तक परिभ्रमण कर क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके भी तिर्यग्गतिमें संचय किया हुआ कर्म नियमसे पाया जाता है। इसका कारण यह है कि तिर्यग्गतिमें उपार्जित कर्मस्थितिप्रमाण संचयका सागरोपमशतपृथक्त्वकालके भीतर सर्वथा निर्जीर्ण होना असंभव है। इस प्रकार जहाँ कहीं भी कर्मस्थिति-प्रमाणकाल तक रह कर आये हुए क्षपकके मनुष्यगति-उपार्जित पूर्वभव संचित कर्मका सद्भाव नियमसे पाया जाता है। इस कारण 'दो गतियोंमें पूर्वबद्ध कर्म अभजितव्य' कहे गये हैं। किन्तु कृष्टिवेदक क्षपकके देवगति-उपार्जित और नरकगति-उपार्जित पूर्वबद्ध कर्मका संचय भजितव्य कहा गया है। इसका कारण यह है कि देव या नरकगतिसे आकर तिर्यंच या मनुष्योंमें ही कर्मस्थितिप्रमाण काल तक रहकर तदनन्तर क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके देवगति-उपार्जित और नरकगति-उपार्जित कर्म नियमसे नहीं होता है। तथा जो देव-नारकियोंमें उत्पन्न होकर और वहाँ कितने ही काल तक रहकर तदनन्तर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर वहाँ कर्मस्थिति-प्रमित या उससे अधिक काल तक रहकर और वहाँ नरक-देवगति-संचित कर्मपुंजको गलाकर तत्पश्चात् मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके भी नरक और देवगतिमें उपार्जित पूर्वबद्ध कर्मका एक भी परमाणु नहीं पाया जाता; क्योंकि, कर्मस्थितिकाल व्यतीत हो जानेके पश्चात् उससे पहले बाँधे हुए कर्मके संचयका रहना असंभव है। किन्तु जो नरक और देवगतिमें प्रवेश करके वहाँ कुछ काल तक रहकर और फिर वहाँसे निकलकर कर्मस्थितिप्रमित कालके भीतर ही उस पूर्वोपार्जित कर्मसंचयके नष्ट हुए विना ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके नरकगति-संचित और देवगति-संचित कर्म नियमसे पाया जाता है, क्योंकि वह पूर्व-भव-संचित कर्मके गलाये विना ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है। इस प्रकार देव और नरकगति-संचित पूर्वबद्ध कर्मकी भजनीयता सिद्ध हो जाती है। जिसप्रकार गतिमार्गणाकी अपेक्षासे पूर्वबद्ध कर्म-संचयके अस्तित्व-नास्तित्वका विचार किया गया है, इसी प्रकार इन्द्रिय और कायमार्गणाका आश्रय लेकरके भी पूर्वबद्ध संचित कर्मकी भजनीयता-अभजनीयताका निर्णय कर लेना चाहिए। त्रसकायिकोंमें इतनी बात विशेष जानना चाहिए कि संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवोंमें समुपार्जित पूर्वबद्ध कर्म भजनीय नहीं है, किन्तु द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रियोंमें तथा लब्ध्यपर्याप्तक-संज्ञिपंचेन्द्रियोंमें पूर्वबद्ध कर्म भजनीय ही हैं, ऐसा जयधवलाकारका कहना है। जहाँ जिन पूर्वबद्ध कर्मोंकी संभवता है, वहाँ उनके एक परमाणुको आदि लेकर अनन्त-कर्म-परमाणुओं तकका अस्तित्व संभव है, और जहाँ जिनकी संभवता नहीं है, वहाँ उनके एक भी परमाणुका अस्तित्व शेष नहीं समझना चाहिए।

८५९. एत्तो एक्केकाए गदीए काएहिं च समज्जिदल्लग्गस्स जहण्णुकस्सपदेसग्गस्स पमाणाणुगमो च अप्पाबहुअं च कायव्वं ।

८६०. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१३१) एइंदियभवग्गहणेहिं असंखेज्जेहिं णियमसा बद्धं ।
एगादेगुत्तरियं संखेज्जेहि य तसभवेहिं ॥१८४॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे एक-एक गति और एक-एक कायके साथ समुपार्जित पूर्वबद्ध कर्मके जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्वानुगम करना चाहिए ॥८५९॥

विशेषार्थ–उक्त चूर्णिसूत्रसे सूचित प्रमाणानुगमका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–जिन गति और कायोंमें समुपार्जित कर्म भजनीय है, उनमें समुपार्जित प्रदेशपिंडका जघन्य प्रमाण एक परमाणु है, और उत्कृष्ट प्रमाण अनन्त कर्म-परमाणु हैं। किन्तु जिन गति और कायोंमें संचित द्रव्य नियमसे पाया जाता है, उनमें जघन्य और उत्कृष्ट दोनोंकी ही अपेक्षा समुपार्जित कर्मप्रदेशोंका प्रमाण अनन्त होता है । अब अल्पबहुत्वका स्पष्टीकरण करते हैं–भजनीय पूर्वबद्ध संचित कर्मद्रव्यके जघन्य प्रदेशाग्र अल्प हैं । उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणित हैं । अभजनीय कर्मोंका जघन्य प्रदेशपिंड अल्प है । उत्कृष्ट प्रदेशपिंड असंख्यातगुणा है । किस कृष्टिवेदकके जघन्य और किसके उत्कृष्ट संचित द्रव्य पाया जाता है, इसका उत्तर यह है–जो जीव एकेन्द्रियोंमें क्षपित-कर्मांशिक होकर कर्मस्थिति कालतक रहा । पुनः वहाँसे निकलकर और शेष गतियोंमें सागरोपम शतपृथक्त्व तक परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें कर्म-क्षपणके लिए उद्यत होता हुआ श्रेणी चढ़ा; ऐसे कृष्टिवेदक क्षपकके वे तिर्यग्गति-संचित जघन्य कर्मद्रव्य पाया जाता है । किन्तु जो तिर्यंचोंमें गुणित-कर्मांशिक होकर कर्मस्थिति कालतक रहा और वहाँसे निकलकर अन्य गतियोंमें परिभ्रमण करके क्षपकश्रेणीपर चढ़ा, उसके तिर्यग्गतिसंचित उत्कृष्ट कर्मद्रव्य पाया जाता है । मनुष्यगति-समुपार्जित जघन्य कर्म-संचय उस जीवके पाया जाता है, जो कि अन्य गतिसे मनुष्योंमें आकर वर्ष-पृथक्त्वके पश्चात् अतिशीघ्र क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है । किन्तु जो अन्य गतिसे आकर मनुष्यगतिमें पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम-प्रमित भवस्थितिका प्रतिपालन कर समयाविरोधसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके मनुष्यगति-समुपार्जित उत्कृष्ट संचित कर्मद्रव्य पाया जाता है । इसी प्रकार स्थावरकायसे आकर त्रसकायिकोंमें वर्षपृथक्त्व रहकर क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके त्रसकायसंचित जघन्य कर्मद्रव्य पाया जाता है । किन्तु जो गुणितकर्मांशिक होकर त्रसकायस्थितिप्रमित काल तक त्रसोंमें परिभ्रमण कर क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके त्रसकाय-समुपार्जित उत्कृष्ट कर्मद्रव्य पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥८६०॥

कृष्टिवेदक क्षपकके असंख्यात एकेन्द्रिय-भवग्रहणोंके द्वारा बद्ध कर्म नियमसे पाया जाता है । तथा एकको आदि लेकर दो, तीन आदि संख्यात भवोंके द्वारा संचित कर्म पाया जाता है ॥१८४॥

८६१. एदिस्से गाहाए विहासा चेव कायव्वा ।

८६२. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१३२) उक्कस्सय अणुभागे ट्ठिदि उक्कस्साणि पुव्वबद्धाणि ।
भजियव्वाणि अभज्जाणि होंति णियमा कसाएसु ॥१८५॥

८६३. विहासा । ८६४. उक्कस्सट्ठिदिबद्धाणि उक्कस्सअणुभागबद्धाणि च भजिदव्वाणि । ८६५. कोह-माण-माया-लोभोवजुत्तेहिं बद्धाणि अभजियव्वाणि ।

८६६. एत्तो पंचमीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा । ८६७. तं जहा ।

चूर्णिसू०–इस गाथाकी विभाषा ही करना चाहिए । (गाथाके सुगम होनेसे चूर्णिकारने पृथक् विभाषा नहीं की है) ॥८६१॥

विशेषार्थ–इस भाष्यगाथाके द्वारा इन्द्रिय और कायमार्गणाकी अपेक्षा भव-संचित पूर्वबद्ध कर्मका निरूपण किया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि कृष्टिवेदक क्षपकके असंख्यात एकेन्द्रिय-भवोंमें संचित कर्मोंका सद्भाव पाया जाता है । इसका कारण यह है कि कर्मस्थितिके भीतर कमसे कम पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एकेन्द्रियोंके भव-ग्रहण पाये जाते हैं । तथा एक, दो को आदि लेकर संख्यात त्रस-भवोंमें संचित कर्मोंका अस्तित्व पाया जाता है ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥८६२॥

उत्कृष्ट अनुभागविशिष्ट और उत्कृष्ट स्थितिविशिष्ट पूर्वबद्ध कर्म भजितव्य हैं । कषायोंमें पूर्वबद्ध कर्म नियमसे अभाज्य हैं ॥१८५॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–कृष्टिवेदक क्षपकके उत्कृष्ट स्थितिबद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबद्ध कर्म भजितव्य हैं । क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंके उपयोगके साथ बद्ध कर्म अभजितव्य हैं ॥८६३-८६५॥

विशेषार्थ–उत्कृष्ट स्थिति और अनुभागसंयुक्त बद्ध कर्म भजितव्य हैं अर्थात् स्यात् होते हैं और स्यात् नहीं भी होते हैं । इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागको बाँधकर कर्मस्थितिके भीतर ही क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके तो उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-विशिष्ट कर्मप्रदेशोंका पाया जाना संभव है । किन्तु कर्मस्थितिके भीतर सर्वत्र ही अनुत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट अनुभागको बाँधकर आये हुए क्षपकके उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-विशिष्ट कर्मप्रदेशोंका पाया जाना संभव नहीं है । कषायमार्गणाकी अपेक्षा चारों कषायोंके उपयोगके साथ पूर्वमें बाँधे हुए कर्म नियमसे अभाज्य हैं, अर्थात् पाये ही जाते हैं । इसका कारण यह है कि चारों कषायरूप उपयोग अन्तर्मुहूर्तमें परिवर्तित होता रहता है, अतएव भजनीयता संभव नहीं है ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे पाँचवीं मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८६६-८६७॥

(१३३) पज्जत्तापज्जत्तेण तधा त्थीपुण्णवुंसयमिस्सेण ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते केण व जोगोवजोगेण ॥१८६॥

८६८. एत्थ चत्तारि भासगाहाओ । ८६९. तं जहा ।

(१३४) पज्जत्तापज्जत्ते मिच्छत्त णवुंसए च सम्मत्ते ।
कम्माणि अभज्जाणि दु त्थी-पुरिसे मिस्सगे भज्जा ॥१८७॥

८७०. विहासा । ८७१. पज्जत्तेण अपज्जत्तेण मिच्छाइट्ठिणा सम्माइट्ठिणा णवुंसयवेदेण च एवंभावभूदेण बद्धाणि णियमा अत्थि । ८७२. इत्थीए पुरिसेण सम्मामिच्छाइट्ठिणा च एवंभावभूदेण बद्धाणि भज्जाणि ।

८७३. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । ८७४. तं जहा ।

(१३५) ओरालिये सरीरे ओरालियमिस्सए च जोगे दु ।
चदुविधमण-वचिजोगे च अभज्जा सेसगे भज्जा ॥१८८॥

पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थाके साथ, तथा स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदके साथ, मिश्रप्रकृति, सम्यक्त्वप्रकृति और मिथ्यात्वप्रकृतिके साथ, तथा किस योग और किस उपयोगके साथ पूर्व बद्ध कर्म कृष्टिवेदक क्षपकके पाये जाते हैं ? ॥१८६॥

भावार्थ—इस मूलगाथाके द्वारा पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्थामें तथा वेद, सम्यक्त्व, योग और उपयोग रूप-ज्ञान और दर्शनमार्गणामें पूर्वबद्ध कर्मकी भजनीयता-अभजनीयता पृच्छारूपसे वर्णन की गई है, जिसका उत्तर आगे कही जानेवाली भाष्यगाथाओंके द्वारा दिया जायगा ।

चूर्णिसू०—उक्त मूलगाथाके अर्थकी विभाषा करनेवाली चार भाष्यगाथाएँ हैं । वे इस प्रकार हैं ॥८६८-८६९॥

पर्याप्त-अपर्याप्त दशामें, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद और सम्यक्त्व अवस्थामें बाँधे हुए कर्म अभाज्य हैं । तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और सम्यग्मिथ्यात्व अवस्थामें बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं ॥१८७॥

चूर्णिसू०—इसकी विभाषा इस प्रकार है—पर्याप्त, अपर्याप्त, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि और नपुंसकवेदके भावरूपसे परिणत जीवके द्वारा बाँधे हुए कर्म नियमसे पाये जाते हैं, अतः अभाज्य हैं । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और देशामर्शकरूपसे सूचित सासादनसम्यग्दृष्टिके भावरूपसे परिणत जीवके द्वारा बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं, अर्थात् स्यात् पाये जाते हैं और स्यात् नहीं भी पाये जाते हैं ॥८७०-८७२॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥८७३-८७४॥

औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, चतुर्विध मनोयोग और चतुर्विध वचनयोगमें बाँधे हुए कर्म अभाज्य हैं । शेष योगोंमें बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं ॥१८८॥

८७५. विहासा। ८७६. ओरालिएण ओरालियमिस्सएण चउव्विहेण मणजोगेण चउव्विहेण वचिजोगेण बद्धाणि अभज्जाणि। ८७७. सेसजोगेसु बद्धाणि भज्जाणि।

८७८. एत्तो तदियभासगाहा। ८७९. तं जहा।

(१३६) अध सुद-मदिउवजोगे होंति अभज्जाणि पुव्वबद्धाणि।
भज्जाणि च पच्चक्खेसु दोसु छदुमत्थणाणेसु ॥१८९॥

८८०. विहासा। ८८१. सुदणाणे अण्णाणे, मदिणाणे अण्णाणे, एदेसु चदुसु उवजोगेसु पुव्वबद्धाणि णियमा अत्थि। ८८२. ओहिणाणे अण्णाणे मणपज्जवणाणे एदेसु तिसु उवजोगेसु पुव्वबद्धाणि भजियव्वाणि।

८८३. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

(१३७) कम्माणि अभज्जाणि दु अणगार-अचक्खुदंसणुवजोगे।
अध ओहिदंसणे पुण उवजोगे होंति भज्जाणि ॥१९०॥

चूर्णिसू०-उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है-औदारिककाययोग, औदारिक-मिश्रकाययोग, चतुर्विध मनोयोग और चतुर्विध वचनयोगके साथ बाँधे हुए कर्म कृष्टिवेदक क्षपकके अभाज्य हैं, अर्थात् नियमसे पाये जाते हैं। शेष अर्थात् वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग इन पाँच योगोंके साथ बाँधे हुए कर्म भजितव्य हैं, अर्थात् हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं ॥८७५-८७७॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथा कही जाती है। वह इस प्रकार है ॥८७८-८७९॥

मति और कुमतिरूप उपयोगमें तथा श्रुत और कुश्रुतरूप उपयोगमें पूर्व बद्ध कर्म अभाज्य हैं। किन्तु दोनों प्रत्यक्ष छद्मस्थ-ज्ञानोंमें पूर्व बद्ध कर्म भाज्य हैं ॥१८९॥

चूर्णिसू०-श्रुतज्ञान, कुश्रुतज्ञान, मतिज्ञान, कुमतिज्ञान, इन चारों ज्ञानोपयोगोंमें पूर्वबद्ध कर्म क्षपकके नियमसे पाये जाते हैं, अतः अभाज्य हैं। अवधिज्ञान विभंगावधि और मनःपर्ययज्ञान इन तीनों ज्ञानोपयोगोंमें पूर्वबद्ध कर्म भजितव्य हैं, अर्थात् किसीके पाये जाते हैं और किसीके नहीं पाये जाते ॥८८०-८८२॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥८८३॥

अनाकार अर्थात् चक्षुदर्शनोपयोग और अचक्षुदर्शनोपयोगमें पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं। किन्तु अवधिदर्शनोपयोगमें पूर्वबद्ध कर्म कृष्टिवेदक क्षपकके भाज्य हैं ॥१९०॥

८८४. विहासा एसा । ८८५. एत्तो छट्ठी मूलगाहा ।

(१३८) किंलेस्साए बद्धाणि केसु कम्मेसु वट्टमाणेण ।
सादेण असादेण च लिंगेण च कम्हि खेत्तम्हि ॥१९१॥

८८६. एदिस्से दो भासगाहाओ । ८८७. तासिं समुक्कित्तणा ।

(१३९) लेस्सा साद असादे च अभज्जा कम्म-सिप्प-लिंगे च ।
खेत्तम्हि च भज्जाणि दु समाविभागे अभज्जाणि ॥१९२॥

८८८. विहासा । ८८९. तं जहा । ८९०. छसु लेस्सासु सादेण असादेण च बद्धाणि अभज्जाणि । ८९१. कम्म-सिप्पेसु भज्जाणि । ८९२. कम्माणि जहा–अंगारकम्मं वण्णकम्मं पव्वदकम्ममेदेसु कम्मेसु भज्जाणि । ८९३. सव्वलिंगेसु च भज्जाणि । ८९४. खेत्तम्हि सिया अधोलोगिगं, सिया उड्ढलोगिगं; णियमा तिरियलोगिगं । ८९५. अधोलोगमुड्ढलोगिगं च सुद्धं णत्थि । ८९६. ओसप्पिणीए च उस्सप्पिणीए च सुद्धं णत्थि ।

चूर्णिसू०–इस गाथाकी यह समुत्कीर्तना ही उसकी विभाषा है । अर्थात् उक्त गाथाके अति सुबोध होनेसे उसकी विभाषा नहीं की गई है ॥८८४॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे छठी मूलगाथा अवतरित होती है ॥८८५॥

किस लेश्यामें, किन-किन कर्मोंमें तथा किस क्षेत्रमें (और किस कालमें) वर्तमान जीवके द्वारा बाँधे हुए, तथा साता, असाता और किस लिंगके द्वारा बाँधे हुए कर्म कृष्टिवेदक क्षपकके पाये जाते हैं ॥१९१॥

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके अर्थको व्याख्यान करनेवाली दो भाष्यगाथाएँ हैं । उनकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥८८६-८८७॥

सर्व लेश्याओंमें, तथा साता और असातामें वर्तमान जीवके पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं । असि, मषि आदिक सभी कर्मोंमें, सभी शिल्पकार्योंमें, सभी पाखण्डी लिंगोंमें, और सर्व क्षेत्रमें बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं । समा अर्थात् उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप कालके सर्व विभागोंमें पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं ॥१९२॥

चूर्णिसू०–उक्त गाथाकी विभाषा इस प्रकार है—छहों लेश्याओंमें, तथा सातावेदनीय और असातावेदनीयके उदयमें वर्तमान जीवके द्वारा पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य हैं, अर्थात् कृष्टिवेदक क्षपकके नियमसे पाये जाते हैं । सर्व कर्मोंमें और सर्व शिल्पोंमें पूर्वबद्ध कर्म भाज्य हैं । वे कर्म इस प्रकार हैं—अंगारकर्म, वर्णकर्म और पर्वतकर्म (आदिक) । इन कर्मोंमें बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं । क्षेत्रमेंसे अधोलोक और ऊर्ध्वलोकमें बाँधे हुए कर्म स्यात् पाये जाते हैं । किन्तु तिर्यग्लोकमें बद्ध कर्म नियमसे पाये जाते हैं । अधोलोक और ऊर्ध्वलोकमें संचित कर्म शुद्ध नहीं पाया जाता, किन्तु तिर्यग्लोकके संचयसे सम्मिश्रित ही पाया जाता है । पर तिर्यग्लोकका संचय शुद्ध भी पाया जाता है । अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीमें संचित कर्म शुद्ध नहीं पाया जाता, किन्तु सम्मिश्रित पाया जाता है ॥८८८-८९६॥

८९७. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१४०) एदाणि पुव्वबद्धाणि होंति सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु णियमसा सव्वकिट्टीसु ॥१९३॥

८९८. विहासा । ८९९. जाणि अभज्जाणि पुव्वबद्धाणि ताणि णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु णियमा सव्वासु किट्टीसु ।

विशेषार्थ—छठी मूलगाथामें जितने प्रश्न उठाये गये थे, उन सबका उत्तर प्रस्तुत भाष्यगाथामें दिया गया है और उसीका स्पष्टीकरण प्रस्तुत चूर्णिसूत्रोंमें किया गया है । गाथा-पठित 'कर्म' शब्दसे अभिप्राय अंगारकर्म आदि पाप-प्रचुर आजीविकासे लिया गया है, अतएव चूर्णिकारने जिनका उल्लेख नहीं किया ऐसे असि मषि आदिका ग्रहण स्वतःसिद्ध है । अंगार-उत्पादनके लिए जो काष्ठ-दहनरूप कार्य किया जाता है उसे अंगारकर्म कहते हैं । कुछ आचार्य ऐसा भी अर्थ करते हैं कि अंगार अर्थात् कोयलाके द्वारा जो कार्य किया जाता है, वह सब अंगारकर्म कहलाता है । जैसे सुनार, लुहार आदिके कार्य । नाना प्रकारके रंग-विरंगे चित्र बनाना, विविध वर्णके वस्त्र रँगना, दीवाल आदि पर कारीगरी करना, हरिताल, हिंगुल आदिके सम्मिश्रणसे विभिन्न प्रकारके रंग तैयार करना वर्णकर्म कहलाता है । पत्थरोंको काटना, उनमें नाना प्रकारके चित्रोंको उकेरना, मूर्तियाँ बनाना, स्तम्भ, तोरण आदि बनाना पर्वतकर्म है । इन तीन प्रकारके कर्मोंका उल्लेख उपलक्षणमात्र है, अतएव साँचे ढालना, विविध प्रकारके यंत्र बनाना, इसी प्रकारसे नक्काशीके काम करना, कसीदा काढ़ना, लकड़ीके विविध प्रकारके आसन, शय्या बनाना इत्यादिक जितने भी हस्तनैपुण्यके कार्य हैं, उन सबको शिल्प पदसे ग्रहण किया गया है । इन विविध शिल्प और कर्मरूप कार्य करते हुए जिन कर्मोंका बन्ध होता है, उनका अस्तित्व कृष्टिवेदकके स्यात् हो भी सकता है और स्यात् नहीं भी, अतएव उन्हें भाज्य कहा गया है । भाष्यगाथा और चूर्णिसूत्रमें यद्यपि सामान्यसे 'सर्व लिंगोंमें पूर्वबद्ध कर्म भाज्य' बतलाये गये हैं, तथापि यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जिनवेषरूप निर्ग्रन्थलिंगकी दशामें बाँधे गये कर्मोंका सद्भाव तो कृष्टिवेदक क्षपकके नियमसे ही पाया जाता है, अतएव अन्य विकार-युक्त सर्व पाखंडी वेषोंका ही यहाँ लिंग पदसे ग्रहण करना चाहिए । ऐसे पाखंडी लिंगोंमें समुपार्जित कर्म भाज्य हैं, किसीके उनका अस्तित्व पाया जाता है और किसीके नहीं ।

चूर्णिसू०—अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ॥८९७॥

ये पूर्वबद्ध (अभाज्य) कर्म सर्व स्थितिविशेषोंमें, सर्व अनुभागोंमें और सर्व कृष्टियोंमें नियमसे होते हैं ॥१९३॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—जो अभाज्य पूर्वबद्ध कर्म हैं, वे नियमसे सर्व स्थितिविशेषोंमें और नियमसे सर्वकृष्टियोंमें पाये जाते हैं ॥८९८-८९९॥

९००. एत्तो सत्तमीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१४१) एगसमयप्पबद्धा पुण अच्छुत्ता केत्तिगा कहिं ट्ठिदीसु ।
भवबद्धा अच्छुत्ता ट्ठिदीसु कहिं केत्तिया होंति ॥१९४॥

९०१. एदिस्से चत्तारि भासगाहाओ । ९०२. तासिं समुक्कित्तणा ।

(१४२) छण्हं आवलियाणं अच्छुत्ता णियमसा समयपबद्धा ।
सव्वेसु ट्ठिदिविसेसाणुभागेसु च चउण्हं पि ॥१९५॥

विशेषार्थ–ऊपर जो अभजनीय पूर्वबद्ध कर्म तीन मूलगाथाओंमें बताये गये हैं, वे नियमसे सर्वकर्मोंकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक सर्वस्थितियोंमें पाये जाते हैं। 'सर्व अनुभागोंमें' इस पदसे चारों संज्वलनकषायोंकी सर्व सदृश सघन कृष्टियोंका ग्रहण करना चाहिए। 'सर्वकृष्टियोंमें' इस पदसे अभिप्राय समस्त संग्रहकृष्टियों और उनकी अवयवकृष्टियोंकी एक ओली (पंक्ति या श्रेणी) से है। अतएव संज्वलनक्रोधादिकी एक एक कृष्टिमें संभव अनन्त सदृश सघन कृष्टियोंमें पूर्वबद्ध अभाज्य कर्म नियमसे पाये जाते हैं, ऐसा समझना चाहिए। इसी प्रकार भजनीय संभव कर्मोंका भी एकादि-उत्तरक्रमसे सर्वस्थिति-विशेषोंमें, सर्व अनुभागोंमें और सर्व कृष्टियोंमें संभव अवस्थिति जान लेना चाहिए।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे सातवीं मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥९००॥

एक समयमें बाँधे हुए कितने कर्मप्रदेश किन किन स्थितियोंमें अछूते अर्थात् उदयस्थितिको अप्राप्त रहते हैं। इसी प्रकार कितने भवबद्ध कर्म-प्रदेश किन-किन स्थितियोंमें असंक्षुब्ध रहते हैं ॥१९४॥

भावार्थ–इस मूलगाथामें अन्तरकरणके प्रथम समयसे लगाकर उपरिम अवस्थामें वर्तमान क्षपकके समयप्रबद्ध और भवबद्ध कर्म-प्रदेशोंकी उदय और अनुदयरूपताकी पृच्छा की गई है, जिसका उत्तर आगे कही जानेवाली भाष्यगाथाओंके द्वारा दिया जायगा। एक समयमें बाँधे हुए कर्मपुंजको एक समयप्रबद्ध कहते हैं। अनेक भवोंमें बाँधे हुए कर्मपुंजको भवबद्ध कहते हैं। अछुत्तपदका अर्थ अस्पृष्ट अर्थात् उदयस्थितिको अप्राप्त अर्थ होता है। जयधवलाकारने अथवा कहकर असंक्षुब्ध अर्थ भी किया है, जिसका अभिप्राय यह है कि जिनका संक्रमण संभव नहीं है, ऐसे कितने कर्म-प्रदेश किन-किन स्थितियोंमें पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके अर्थको व्याख्यान करनेवाली चार भाष्यगाथाएँ हैं। उनकी क्रमशः समुत्कीर्तना की जाती है ॥९०१-९०२॥

अन्तरकरण करनेसे उपरिम अवस्थामें वर्तमान क्षपकके छह आवलियोंके भीतर बँधे हुए समयप्रबद्ध नियमसे अछूते हैं। (क्योंकि अन्तरकरणके पश्चात् छह आवलीके भीतर उदीरणा नहीं होती है।) वे अछूते समयप्रबद्ध चारों ही संज्वलन-कषायसम्बन्धी सभी स्थितिविशेषोंमें और सभी अनुभागोंमें अवस्थित रहते हैं ॥१९५॥

९०३. विहासा । ९०४. जत्तो पाए अंतरं कदं, तत्तो पाए समयपबद्धो छसु आवलियासु गदासु उदीरिज्जदि । ९०५. अंतरादो कदादो तत्तो छसु आवलियासु गदासु तेण परं छण्हमावलियाणं समयपबद्धा उदये अच्छुद्धा भवंति । ९०६. भवबद्धा पुण णियमा सव्वे उदये संछुद्धा भवंति ।

९०७. एत्तो विदियभासगाहा ।

चूर्णिसू०–जिस पाये (स्थल) पर अन्तर किया है, उस पायेपर बँधा हुआ समयप्रबद्ध छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणाको प्राप्त होगा । अतएव अन्तरकरण समाप्त करनेके अनन्तर समयसे लेकर छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उससे परे सर्वत्र छह आवलियोंके समयप्रबद्ध उदयमें अछूते रहते हैं । किन्तु भवबद्ध सभी समयप्रबद्ध नियमसे उदयमें संक्षुब्ध रहते हैं ॥९०३-९०६॥

विशेषार्थ–अन्तरकरण करनेके प्रथम समयमें आवलीप्रमाण नवकबद्ध समयप्रबद्ध उदयमें अछूते रहते हैं । पुनः द्वितीय समयमें भी इतने ही समयप्रबद्ध उदयमें अछूते रहते हैं । इस प्रकार अन्तरकरणके प्रथम समयसे लेकर आवलीप्रमितकालके चरम समय तक आवलीप्रमाण नवकबद्ध समयप्रबद्ध उदयमें अछूते रहते हैं । प्रथम आवलीके व्यतीत होनेपर अनन्तर समयोंमें एक-एक समयप्रबद्ध यथाक्रमसे तब तक अधिक होता जाता है जब तक कि अन्तरकरणसे लेकर दो आवलीप्रमाण काल व्यतीत न हो जाय । दो आवलीकाल पूरा होनेपर दो आवलीप्रमित नवकबद्ध समयप्रबद्ध उदयमें अछूते रहते हैं । तदनन्तर तीसरी आवलीके प्रथम समयसे लेकर उसके पूरे होने तक एक-एक समयप्रबद्ध अधिक होता हुआ चला जाता है और तीसरे आवलीके अन्तिम समयमें तीन आवलियोंके नवकबद्ध समयप्रबद्ध अनुदीरित या उदयमें अछूते पाए जाते हैं । इसी प्रकार चौथी आवलीके प्रथम समयसे लेकर उसके अन्तिम समय तक एक एक समयप्रबद्ध बढ़ता हुआ चला जाता है और चौथी आवलीके अन्तिम समयमें चार आवलियोंके समयप्रबद्ध अनुदीरित पाये जाते हैं । पुनः प्रतिसमय एक एक समयप्रबद्ध बढ़ता हुआ पाँचवीं आवलीके अन्तिम समय तक चला जाता है और इस प्रकार पाँचवीं आवलीके अन्तिम समयमें पाँच आवलियोंके नवकबद्ध समयप्रबद्ध उदीरणा-रहित पाये जाते हैं । पुनः उक्त क्रमसे एक-एक समयप्रबद्ध बढ़ता हुआ छठी आवलीके अन्तिम समय तक चला जाता है और छठी आवली पूर्ण होनेपर छह आवलियोंके नवकबद्ध समयप्रबद्ध उदयमें अछूते अर्थात् उदीरणावस्थासे रहित पाये जाते हैं । इस कारण चूर्णिकारने ठीक ही कहा है कि अन्तरकरणसे लगाकर छह आवलीकालके बीतनेपर उससे परे छह आवलियोंके नवकबद्ध सर्व समयप्रबद्ध उदयमें अछूते या अनुदीरित पाये जाते हैं । इसका अभिप्राय यह समझना चाहिए कि इन नवकबद्ध समयप्रबद्धोंके अतिरिक्त शेष सर्व समयप्रबद्ध उदयमें संक्षुब्ध अर्थात् उदय या उदीरणा पर्यायसे परिणत पाये जाते हैं । परन्तु भवबद्ध समस्त ही समयप्रबद्ध नियमसे उदयमें संक्षुब्ध पाये जाते हैं ।

चूर्णिसू०–अब इससे आगे द्वितीय भाष्यगाथा अवतीर्ण होती है ॥९०७॥

(१४३) जा चावि बज्झमाणी आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुव्वावलिया णियमा अणंतरा चदुसु किट्टीसु ॥१९६॥

९०८. विहासा । ९०९. जं पदेसग्गं बज्झमाणयं कोधस्स तं पदेसग्गं सव्वं बंधावलियं कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए दिस्सइ । ९१०. तदो आवलियादिक्कंतं तिसु वि कोहकिट्टीसु दीसइ । ९११. एवं विदियावलिया चदुसु किट्टीसु दीसइ माणस्स च पढमकिट्टीए । ९१२. तदो जं पदेसग्गं कोहादो माणस्स पढमकिट्टीए गदं तं पदेसग्गं तदो आवलियाए पुण्णाए माणस्स विदिय-तदियासु मायाए च पढमसंगहकिट्टीए संकमदि । ९१३. एवं तदिया आवलिया सत्तसु किट्टीसु त्ति भण्णइ ।

९१४. जं कोहपदेसग्गं संछुब्भमाणयं मायाए पढमकिट्टीए संपत्तं तं पदेसग्गं तत्तो आवलियादिक्कंतं मायाए विदिय-तदियासु च किट्टीसु लोभस्स च पढमकिट्टीए संकमदि । ९१५. एवं चउत्थी आवलिया दससु किट्टीसु त्ति भण्णइ । ९१६. जं कोहपदेसग्गं संछुब्भमाणं लोभस्स पढमकिट्टीए संपत्तं तदो आवलियादिक्कंतं लोभस्स विदिय-तदियासु किट्टीसु दीसइ । ९१७. एवं पंचमी आवलिया सव्वासु किट्टीसु त्ति भण्णइ ।

जो बध्यमान आवली है, उसके कर्मप्रदेश क्रोधसंज्वलनकी प्रथम कृष्टिमें पाये जाते हैं । इस पूर्व आवलीके अनन्तर जो उपरिम अर्थात् द्वितीयावली है, उसके कर्मप्रदेश नियमसे क्रोधसंज्वलनकी तीन और मानसंज्वलनकी प्रथम, इन चार संग्रहकृष्टियोंमें पाये जाते हैं ॥१९६॥

चूर्णिसू०—अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—संज्वलन क्रोधके जो बध्यमान प्रदेशाग्र हैं, वे सर्व बन्धावलीके प्रदेशाग्र कहलाते हैं और वे क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें दिखाई देते हैं । इसके पश्चात् एक आवली व्यतीत होनेपर वे कर्मप्रदेशाग्र क्रोधकी तीनों संग्रहकृष्टियोंमें भी दिखाई देते हैं और मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें भी । इस प्रकार द्वितीय आवली चार कृष्टियोंमें दिखाई देती है । तदनन्तर जो कर्मप्रदेशाग्र क्रोधसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें गया है, वह प्रदेशाग्र आवलीके पूर्ण हो जानेपर मानकी दूसरी और तीसरी तथा मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संक्रमित होता है । इस प्रकार तृतीय आवली सात संग्रहकृष्टियोंमें दिखाई देती है, ऐसा कहा जाता है ॥९०८-९१३॥

चूर्णिसू०—जो संज्वलनक्रोधके प्रदेशाग्र संक्रमित होते हुए संज्वलनमायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिको प्राप्त हुए हैं, वह प्रदेशाग्र उससे आगे एक आवली अतिक्रान्त होनेपर संज्वलनमायाकी द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टिमें तथा संज्वलनलोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिमें संक्रान्त होता है । इस प्रकार चौथी आवली दश कृष्टियोंमें दिखाई देती है, ऐसा कहा जाता है । जो संज्वलनक्रोधके प्रदेशाग्र संक्रमित होते हुए संज्वलनलोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिको प्राप्त हुए हैं, वह प्रदेशाग्र उससे आगे एक आवली व्यतीत होनेपर संज्वलनलोभकी द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टिमें दिखाई देते हैं । इस प्रकार पाँचवीं आवली सर्व कृष्टियोंमें दिखाई देती है, ऐसा कहा जाता है ॥९१४-९१७॥

९१८. तदियाए वि भासगाहाए अत्थो एत्थेव परूविदो । णवरि समुक्कित्तणा कायव्वा । ९१९. तं जहा ।

(१४४) तदिया सत्तसु किट्टीसु चउत्थी दससु होइ किट्टीसु ।
तेण परं सेसाओ भवंति सव्वासु किट्टीसु ॥१९७॥

९२०. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१४५) एदे समयपबद्धा अच्छुत्ता णियमसा इह भवम्हि ।
सेसा भवबद्धा खलु संछुद्धा होंति बोद्धव्वा ॥१९८॥

९२१. एदिस्से गाहाए अत्थो पढमभासगाहाए चेव परूविदो ।

९२२. एत्तो अट्ठमीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१४६) एगसमयपबद्धाणं सेसाणि च कदिसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
भवसेसगाणि कदिसु च कदि कदि वा एगसमएण ॥१९९॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार तीसरी भाष्यगाथाका अर्थ भी इसी दूसरी भाष्यगाथाकी विभाषामें कह दिया गया । अब केवल समुत्कीर्तना करना चाहिए । वह इस प्रकार है ॥९१८-९१९॥

तीसरी आवली सात कृष्टियोंमें, चौथी आवली दश कृष्टियोंमें और उससे आगेकी शेष सर्व आवलियाँ सर्व कृष्टियोंमें पाई जाती हैं ॥१९७॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥९२०॥

ये ऊपर कहे गये छहों आवलियोंके इस वर्तमान भवमें ग्रहण किये गये समयप्रबद्ध नियमसे असंक्षुब्ध रहते हैं, अर्थात् उदय या उदीरणाको प्राप्त नहीं होते हैं । किन्तु शेष भवबद्ध अर्थात् कर्मस्थितिके भीतर होनेवाले भवोंमें बाँधे हुए सर्व समयप्रबद्ध उदयमें संक्षुब्ध होते हैं ॥१९८॥

चूर्णिसू०–इस चौथी भाष्यगाथाका अर्थ पहली भाष्यगाथाकी विभाषामें कहा जा चुका है ॥९२१॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे आठवीं मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥९२२॥

एक समयमें बँधे हुए और नाना समयोंमें बँधे हुए समयप्रबद्धोंके शेष कितने कर्म-प्रदेश कितने स्थितिविशेषोंमें और अनुभागविशेषोंमें पाये जाते हैं ? इसी प्रकार एक भव और नाना भवोंमें बँधे हुए कितने कर्मप्रदेश कितने स्थितिविशेषोंमें और अनुभागविशेषोंमें पाये जाते हैं ? तथा एक समयरूप एक स्थितिविशेषमें वर्तमान कितने कर्मप्रदेश एक-अनेक समयप्रबद्ध और भवबद्धोंके शेष पाये जाते हैं ? ॥१९९॥

९२३. एत्थ चत्तारि भासगाहाओ । ९२४. तासिं समुक्कित्तणा ।

(१४७) एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे भवसेसगसमयपबद्धसेसाणि ।
णियमा अणुभागेसु य भवंति सेसा अणंतेसु ॥२००॥

९२५. विहासा । ९२६. समयपबद्धसेसयं णाम किं ? ९२७. जं समयपबद्धस्स वेदिदसेसग्गं पदेसग्गं दिस्सइ, तम्मि अपरिसेसिदम्मि एगसमएण उदयमागदम्मि तस्स समयपबद्धस्स अण्णो कम्मपदेसो वा णत्थि तं समयपबद्धसेसगं णाम ।

९२८. एवं चेव भवबद्धसेसयं । ९२९. एदीए सण्णापरूवणाए पढमाए भासगाहाए विहासा । ९३०. तं जहा । ९३१. एक्कम्हि ट्ठिदिविसेसे कदिण्हं समयपबद्धाणं सेसाणि होज्जासु ? ९३२. एक्कस्स वा समयपबद्धस्स दोण्हं वा तिण्हं वा, एवं गंतूण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं समयपबद्धाणं ।

चूर्णिसू०—इस मूलगाथाके अर्थकी विभाषा करनेवाली चार भाष्यगाथाएँ हैं । उनकी समुत्कीर्तना इस प्रकार हैं ॥९२३-९२४॥

एक स्थितिविशेषमें नियमसे एक-अनेक भवबद्धोंके समयप्रबद्ध-शेष और एक-अनेक समयोंमें बँधे हुए कर्मोंके समयप्रबद्ध-शेष असंख्यात होते हैं । और वे समयप्रबद्ध-शेष नियमसे अनन्त अनुभागोंमें वर्तमान होते हैं ॥२००॥

चूर्णिसू०—अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है ॥९२५॥

शंका—समयप्रबद्ध-शेष नाम किसका है ? ॥९२६॥

समाधान—समयप्रबद्धका वेदन करनेसे अवशिष्ट जो प्रदेशाग्र दिखाई देता है उसके अपरिशेषित अर्थात् सामस्त्यरूपसे एक समयमें उदय आनेपर उस समयप्रबद्धका फिर कोई अन्य कर्मप्रदेश अवशिष्ट नहीं रहता है, उसे समयप्रबद्ध-शेष कहते हैं ॥९२७॥

चूर्णिसू०—इसी प्रकारसे भवबद्ध-शेष भी जानना चाहिए ॥९२८॥

विशेषार्थ—समयप्रबद्ध-शेषमें तो एक समयप्रबद्धके कर्मपरमाणुओंको ही ग्रहण किया जाता है । किन्तु भवबद्ध-शेषमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र एक भव-बद्ध समयप्रबद्धोंके कर्म-परमाणु ग्रहण किये जाते हैं । यह समयप्रबद्ध-शेष और भवबद्ध-शेषमें अन्तर जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०—इस संज्ञाप्ररूपणाके द्वारा प्रथम भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है ॥९२९-९३०॥

शंका—एक स्थितिविशेषमें कितने समयप्रबद्धोंके शेष बचे हुए कर्म-परमाणु होते हैं ? ॥९३१॥

समाधान—एक स्थितिविशेषमें एक समयप्रबद्धके शेष कर्मपरमाणु रहते हैं, दो समयप्रबद्धोंके भी शेष रहते हैं, तीन समयप्रबद्धोंके भी शेष रहते हैं, इस प्रकार एक-एक समयप्रबद्धके बढ़ते हुए क्रमसे अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्धों-के कर्म-परमाणु शेष रहते हैं ॥९३२॥

९३३. भवबद्धसेसयाणि वि एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे एक्कस्स वा भवबद्धस्स दोण्हं वा तिण्हं वा एवं गंतूण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं भवबद्धाणं। ९३४. णियमा अणंतेसु अणुभागेसु भवबद्धसेसगं वा समयपबद्धसेसगं वा।

९३५. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा। ९३६. तं जहा।

(१४८) ट्ठिदि-उत्तरसेढीए भवसेस-समयपबद्धसेसाणि।
एगुत्तरमेगादी उत्तरसेढी असंखेज्जा ॥२०१॥

९३७. विहासा। ९३८. तं जहा। ९३९. समयपबद्धसेसयमेक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे दोसु वा तीसु वा एगादिएगुत्तरमुक्कस्सेण विदियट्ठिदीए सव्वासु ट्ठिदीसु पढमट्ठिदीए च समयाहियउदयावलियं मोत्तूण सेसासु सव्वासु ठिदीसु णाणासमयपबद्धसेसाणं णाणेग-भवबद्धसेसयाणं च।

९४०. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

(१४९) एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसाणि ण जत्थ होंति सामण्णा।
आवलिगासंखेज्जदिभागो तहिं तारिसो समयो ॥२०२॥

चूर्णिसू०–इसी प्रकार भवबद्ध-शेष भी जानना चाहिए। अर्थात् एक स्थितिविशेषमें एक भवबद्धके, दो भवबद्धके, तीन भवबद्धके इस प्रकार बढ़ते हुए उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भवबद्धोंके शेष कर्मपरमाणु पाये जाते हैं। वह भवबद्ध-शेष या समय-प्रबद्ध-शेष कर्म-परमाणु नियमसे अनन्त अविभागप्रतिच्छेदरूप अनुभागोंमें वर्तमान रहता है ॥९३३-९३४॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है। वह इस प्रकार है ॥९३५-९३६॥

एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ाते हुए जो स्थितियोंकी वृद्धि होती है, उसे स्थिति-उत्तरश्रेणी कहते हैं। इस प्रकारकी स्थिति-उत्तरश्रेणीमें भवबद्ध-शेष और समयप्रबद्ध-शेष असंख्यात होते हैं ॥२०१॥

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है। वह इस प्रकार है—समयप्रबद्धशेष एक स्थितिविशेषमें पाया जाता है, दो स्थितिविशेषोंमें भी पाया जाता है, तीन स्थितिविशेषोंमें भी पाया जाता है। इस प्रकार एकको आदि लेकर एकोत्तर वृद्धिके क्रमसे उत्कर्षसे द्वितीयस्थितिकी सर्व स्थितियोंमें पाया जाता है और प्रथमस्थितिकी समयाधिक उदयावलीको छोड़कर शेष सर्व स्थितियोंमें पाया जाता है। इसी प्रकार नाना समयप्रबद्ध-शेषोंकी तथा नाना और एक भवबद्ध-शेषोंकी प्ररूपणा करना चाहिए ॥९३७-९३९॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥९४०॥

जिस किसी एक स्थितिविशेषमें समयप्रबद्ध-शेष और भवबद्ध-शेष सम्भव हैं, वह सामान्यस्थिति और जिसमें वे सम्भव नहीं वह असामान्यस्थिति कहलाती है। उस क्षपकके वर्षपृथक्त्वमात्र स्थितिविशेषमें तादृश अर्थात् भवबद्ध और समयप्रबद्ध-

९४१. विहासा । ९४२. सामण्णसण्णा ताव । ९४३. एक्कम्हि ठिदिविसेसे जम्हि समयपबद्धसेसयमत्थि सा ट्ठिदी सामण्णा त्ति णादव्वा । ९४४. जम्मि णत्थि सा ट्ठिदी असामण्णा त्ति णादव्वा । ९४५. एवमसामण्णाओ ट्ठिदीओ एक्का वा दो वा उक्कस्सेण अणुबद्धाओ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तीओ ।

९४६. एक्केक्केण असामण्णाओ थोवाओ । ९४७. दुगेण विसेसाहियाओ । ९४८. तिगेण विसेसाहियाओ । आवलियाए असंखेज्जदिभागे दुगुणाओ ।

शेषसे विरहित असामान्य स्थितियाँ अधिकसे अधिक आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती हैं ॥२०२॥

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है । उसमें सबसे पहले सामान्यसंज्ञाका अर्थ करते हैं—जिस एक स्थितिविशेषमें समयप्रबद्ध-शेष (और भवबद्ध-शेष) पाये जाते हैं, वह स्थिति 'सामान्य' संज्ञावाली जानना चाहिए । जिस स्थितिविशेषमें समयप्रबद्ध-शेष (और भवबद्ध-शेष) नहीं पाये जाते हैं, वह 'असामान्य' संज्ञावाली जानना चाहिए । इस प्रकार असामान्यस्थितियाँ एक, दोको आदि लेकर अधिकसे अधिक अनुबद्ध अर्थात् निरन्तररूपसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती हैं ॥९४१-९४५॥

अब इन्हीं असामान्य स्थितियोंके जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाणका निर्देश करते हैं—

चूर्णिसू०–एक-एक रूपसे पाई जानेवाली असामान्य स्थितियाँ थोड़ी हैं । द्विक अर्थात् दो-दो रूपसे पाई जानेवाली असामान्य स्थितियाँ विशेष अधिक हैं । त्रिक अर्थात् तीन-तीन रूपसे पाई जानेवाली असामान्य स्थितियाँ विशेष अधिक हैं । इस प्रकार विशेष अधिक रूप यह क्रम आवलीके असंख्यातवें भागपर दुगुना हो जाता है ॥९४६-९४८॥

विशेषार्थ–इस उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण करनेके लिए उस कृष्टिवेदक क्षपकके किसी एक संज्वलनप्रकृतिकी वर्षपृथक्त्वप्रमाण स्थितिकी काल्पनिक रचना कीजिए । पुनः उस स्थितिके भीतर सान्तर या निरन्तररूपसे अवस्थित सर्व असामान्य स्थितियोंको बुद्धिसे पृथक् करके क्रमशः स्थापित कीजिए । इस प्रकार क्रमसे स्थापित की गई इन असामान्य स्थितियोंपर दृष्टिपात कीजिए, तब ज्ञात होगा कि उस वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्यतर संज्वलनकी स्थितिमें एक-एक रूपसे पाई जानेवाली असामान्य स्थितियाँ सबसे कम हैं । द्विकरूपसे पाई जानेवाली विशेष अधिक हैं, त्रिकरूपसे पाई जानेवाली विशेष अधिक हैं, चतुष्क रूपसे पाई जानेवाली विशेष अधिक हैं । इस प्रकार यह क्रम आवलीके असंख्यातवें भाग तक चला जाता है । आवलीके असंख्यातवें भागपर पाई जानेवाली असामान्यस्थितियोंका प्रमाण, प्रारम्भके प्रमाणसे दुगुना हो जाता है । यहाँ जो एक-एकरूपसे, द्विक या त्रिक आदिके रूपसे वर्तमान असामान्य स्थितियोंका उल्लेख किया गया है, उसके विषयमें जयधवलाकारने दो प्रकारका अर्थ किया है । उनमें प्रथम अर्थके अनुसार–'एक-एक रूपसे अर्थात् सामान्य स्थितियोंसे

९४९. आवलियाए असंखेज्जदिभागे जवमज्झं । ९५०. समयपबद्धस्स एक्केक्कस्स सेसगमेक्किस्से ट्ठिदीए ते समयपबद्धा थोवा । ९५१. जे दोसु ट्ठिदीसु ते समयपबद्धा विसेसाहिया । ९५२. आवलियाए असंखेज्जदिभागे दुगुणा । ९५३. आवलियाए असंखेज्जदिभागे जवमज्झं । ९५४. तदो हायमाणट्ठाणाणि वासपुधत्तं ।

९५५. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१५०) एदेण अंतरेण दु अपच्छिमाए दु पच्छिमे समए ।
भव-समयसेसगाणि दु णियमा तम्हि उत्तरपदाणि ॥२०३॥

अन्तरित जो एक-एक असामान्य स्थिति पाई जाती है, उसका ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार 'द्विकरूप' का अर्थ सामान्यस्थितियोंसे अन्तरित लगातार दो-दोके रूपसे पाई जानेवाली असामान्य स्थितियोंको ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार त्रिक आदिका भी अर्थ जानना । द्वितीय अर्थके अनुसार—'एक-एक रूपसे' अर्थात् एक-एक सामान्य स्थितिसे अन्तरित असामान्य स्थितियाँ सबसे कम हैं । द्विक अर्थात् दो-दो सामान्य स्थितियोंसे अन्तरित असामान्यस्थितियाँ विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार त्रिक, चतुष्क आदिका अर्थ तीन-तीन या चार-चार आदि सामान्य स्थितियोंसे अन्तरित असामान्य स्थितियोंका ग्रहण करना चाहिए ।

चूर्णिसू०—आवलीके असंख्यातवें भागमें यवमध्य होता है ॥९४९॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये हुए क्रमसे दुगुण-दुगुण वृद्धिरूप आवलीके असंख्यातवें भागप्रमित स्थानोंके व्यतीत होनेपर इस वृद्धिरूप रचनाका यवमध्य प्राप्त होता है । इस यवमध्यके ऊपर जिस क्रमसे पहले वृद्धि हुई थी, उसी क्रमसे हानि होती हुई तब तक चली जाती है, जब तक कि यवरचनाके प्रथम विकल्पके समान प्रमाणवाला अन्तिम विकल्प उपलब्ध न हो जाय । यहाँ इतना और विशेष ज्ञातव्य है कि जिस प्रकार चूर्णिकारने असामान्य स्थितियोंकी यह यवमध्यरचना बताई है, उसी प्रकार सामान्य स्थितियोंकी भी यवमध्यप्ररूपणा करना चाहिए ।

चूर्णिसू०—जिन एक-एक समयप्रबद्धका शेष एक-एक स्थितिमें पाया जाता है, वे समयप्रबद्ध अल्प हैं । जिन समयप्रबद्धोंके शेष दो स्थितियोंमें पाये जाते हैं, वे समयप्रबद्ध विशेष अधिक हैं । (जिन समयप्रबद्धोंके शेष तीन स्थितियोंमें पाये जाते हैं, वे समयप्रबद्ध विशेष अधिक हैं ।) इस प्रकारसे बढ़ता हुआ यह क्रम आवलीके असंख्यातवें भाग पर दुगुना हो जाता हैं । (यह एक दुगुणवृद्धिस्थान है ।) इस प्रकारके आवलीके असंख्यातवें भागप्रमित दुगुण वृद्धिस्थानोंके होनेपर यवमध्य प्राप्त होता है । तदनन्तर हायमान स्थान वर्षपृथक्त्वप्रमाण हैं । (तब घटते हुए क्रमका अन्तिम विकल्प प्राप्त होता है) ॥९५०-९५४॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥९५५ ।

इस अनन्तर-प्ररूपित आवलीके असंख्यातवें भागप्रमित उत्कृष्ट अन्तरसे उपलब्ध होनेवाली अपश्चिम (अन्तिम) असामान्य स्थितिके समयमें अर्थात् तदनन्तर समयमें पाई जानेवाली उपरिम स्थितिमें भवबद्ध-शेष और समयप्रबद्ध-शेष नियमसे

९५६. विहासा । ९५७. समयपबद्धसेसयं जिस्से ट्ठिदीए णत्थि तदो विदियाए ट्ठिदीए ण होज्ज, तदियाए ट्ठिदीए ण होज्ज, तदो चउत्थीए ण होज्ज । एवमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तीसु ट्ठिदीसु ण होज्ज समयपबद्धसेसयं । ९५८. आवलियाए असंखेज्जदिभागं गंतूण णियमा समयपबद्धसेसएण अविरहिदाओ ट्ठिदीओ । ९५९. जाओ ताओ अविरहिदट्ठिदीओ ताओ एगसमयपबद्धसेसएण अविरहिदाओ थोवाओ । ९६०. अणेगाणं समयपबद्धाणं सेसएण अविरहिदाओ असंखेज्जगुणाओ । ९६१. पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं समयपबद्धाणं सेसएण अविरहिदाओ असंखेज्जा भागा ।

पाये जाते हैं और उसमें अर्थात् उस क्षपककी अष्टवर्षप्रमित स्थितिके भीतर उत्तरपद होते हैं ॥२०३॥

विशेषार्थ—तीसरी भाष्यगाथामें सामान्यस्थितियोंके अन्तर्गत असामान्य स्थितियाँ प्रधानरूपसे कही गई थीं। इस चौथी गाथामें असामान्य स्थितियोंमेंसे अन्तरित सामान्य स्थितियोंका निरूपण किया गया है। इस गाथाका अभिप्राय यह है कि सामान्य स्थितियोंके अन्तररूपसे असामान्य स्थितियाँ पाई जाती हैं। वे कमसे कम एकसे लगाकर दो, तीन आदिके क्रमसे बढ़ते हुए अधिक से अधिक आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण निरन्तररूपसे पाई जाती हैं, यह बात पहले बतलाई जा चुकी है। इस प्रकारसे पाई जानेवाली उन असामान्य स्थितियोंकी चरिमस्थितिसे ऊपर जो अनन्तर समयवर्ती स्थिति पाई जाती है, उसमें भी नियमसे समयप्रबद्ध-शेष और भवबद्ध-शेष पाये जाते हैं। ये भवबद्धशेष और समयप्रबद्धशेष कितने और किस रूपसे पाये जाते हैं, इस बातके बतलानेके लिए गाथा-सूत्रकारने 'उत्तरपदाणि' यह पद दिया है, जिसका भाव यह है कि वे भवबद्धशेष और समयप्रबद्धशेष एक, दो आदिके क्रमसे बढ़ते हुए अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पाये जाते हैं। यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिए कि ये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भवबद्धशेष और समयप्रबद्धशेप उस एक अनन्तर-उपरिम स्थितिमें ही नहीं पाये जाते हैं, अपि तु एक आदिके क्रमसे बढ़ते हुए उत्कृष्टतः वर्षपृथक्त्वप्रमाणवाली स्थितियोंमें सर्वत्र क्रमशः अवस्थित रूपसे पाये जाते हैं।

चूर्णिसू०–अब इस चौथी भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है—समयप्रबद्धशेष जिस स्थितिमें नहीं हैं, उससे उपरिम द्वितीय स्थितिमें न हो, तृतीय स्थितिमें न हो, उससे आगे चतुर्थ स्थितिमें न हो, इस प्रकार उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र स्थितियोंमें भी समयप्रबद्धशेष नहीं पाये जा सकते हैं। किन्तु आवलीके असंख्यातवें भागकाल आगे जाकर नियमसे समयप्रबद्धशेषसे अविरहित (संयुक्त) स्थितियाँ प्राप्त होंगी। जो वे समयप्रबद्धशेषसे अविरहित स्थितियाँ पाई जाती हैं, उनमें एक समयप्रबद्ध-शेषसे अविरहित स्थितियाँ थोड़ी हैं। अनेक समयप्रबद्धोंके शेषसे अविरहित स्थितियाँ असंख्यातगुणी हैं। पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्धोंके शेषसे अविरहित स्थितियाँ असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥९५६-९६१॥

९६२. एसा सव्वा चदुहिं गाहाहिं खवगस्स परूवणा कदा । ९६३. एदाओ चेव चत्तारि वि गाहाओ अभवसिद्धियपाओग्गे[1] णेदव्वाओ । ९६४. तत्थ पुव्वं गमणिज्जा[2] णिल्लेवणट्ठाणाणमुवदेसपरूवणा । ९६५. एत्थ दुविहो उवएसो । ९६६. एक्केण उवदेसेण कम्मट्ठिदीए असंखेज्जा भागा णिल्लेवणट्ठाणाणि । ९६७. एक्केण उवएसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ९६८. जो पवाइज्जइ उवएसो तेण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि वग्गमूलाणि णिल्लेवणट्ठाणाणि ।

चूर्णिसू०–इन उपर्युक्त चार भाष्यगाथाओंके द्वारा यह सब कृष्टिवेदक क्षपककी प्ररूपणा की गई । अब ये चारों ही भाष्यगाथाएँ अभव्यसिद्धिक जीवकी योग्यतारूपसे भी विभाषा या व्याख्या करनेके योग्य हैं ॥९६२-९६३॥

विशेषार्थ–अभव्य जीवोंके कर्म-बन्धके योग्य परिणामोंको अभव्यसिद्धिक-प्रायोग्य परिणाम कहते हैं । अर्थात् जिस स्थानपर भव्य जीव और अभव्य जीवोंके स्थिति-अनुभाग-बन्धादिके परिणाम सदृशरूपसे प्रवृत्त होते हैं, या एकसे रहते हैं, उन्हें अभव्यसिद्धिक-प्रायोग्य जानना चाहिए । ऊपर जिस प्रकारसे चार भाष्यगाथाओंके द्वारा कृष्टिवेदक क्षपकके भवबद्धशेष और समयप्रबद्धशेषकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे अभव्यसिद्धिकोंके कर्मोंके बँधने योग्य स्थलपर भी भवबद्धशेष और समयप्रबद्धशेष की प्ररूपणा करना चाहिए । वह किस प्रकार करना चाहिए, यह चूर्णिकार आगे स्वयं कहेंगे ।

चूर्णिसू०–इस विषयमें सर्वप्रथम निर्लेपनस्थानोंके उपदेशकी प्ररूपणा जाननेके योग्य है । इस विषयमें दो प्रकारके उपदेश पाये जाते है । एक उपदेशके अनुसार तो निर्लेपनस्थान कर्मस्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं । एक उपदेशसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं । अर्थात् जो उपदेश प्रवाहरूपसे चल रहा है, उस उपदेशके अनुसार निर्लेपनस्थान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं, जिनका कि प्रमाण पल्योपमके असंख्यात वर्गमूलप्रमाण है ॥९६४-९६८॥

विशेषार्थ–कर्म-लेपके दूर होनेके स्थानको निर्लेपनस्थान कहते हैं । अर्थात् एक समयमें बँधे हुए कर्म-परमाणु बन्धावलीके पश्चात् क्रमशः उदयमें प्रविष्ट होकर और सान्तर या निरन्तररूपसे अपना फल देते हुए जिस समयमें सभी निःशेषरूपसे निर्जीर्ण होते हैं, उसे निर्लेपनस्थान कहते हैं । विभिन्न समयोंमें बँधे हुए कर्म विभिन्न समयोंमें ही निःशेषरूपसे निर्लेपको प्राप्त होते हैं, अतः उनकी संख्या बहुत होती है । उन निर्लेपनस्थानोंकी संख्या कितनी होती है, इस विषयमें दो प्रकारके उपदेश पाये जाते हैं–एक प्रवाह्यमान उपदेश और

---

१ को अभवसिद्धियपाओग्गविसयो णाम ? भवसिद्धियाणमभवसिद्धियाणं च जत्थ ठिदि-अणुभाग-बंधादिपरिणामा सरिसा होदूण पयट्टंति, सो अभवसिद्धियपाओग्गविसयो त्ति भण्णदे । जयध०

२ तत्थ किं णिल्लेवणट्ठाणं णाम ? एगसमये बद्धकम्मपरमाणवो बंधावलियमेत्तकाले वोलिदे पच्छा उदयं पविसमाणा केत्तियं पि कालं सांतरणिरंतरसरूवेणुदयमागंतूण जम्हि समयम्हि सव्वे चेव णिस्सेसमुदयं कादूण गच्छंति तेसिं णिरुद्धभवसमयपबद्धपदेसाणं तण्णिल्लेवणट्ठाणमिदि भण्णदे ।

९६९. अदीदे काले एगजीवस्स जहण्णए णिल्लेवणट्ठाणे णिल्लेविदपुव्वाणं समयपबद्धाणमेसो कालो थोवो । ९७०. समयुत्तरे विसेसाहिओ । ९७१. पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते दुगुणो । ९७२. ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं ।

९७३. णाणादुगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमच्छेदणाणमसंखेज्जदिभागो । ९७४. णाणागुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि । ९७५. एयगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ।

९७६. एक्कम्हि ट्ठिदिविसेसे एक्कस्स वा समयपबद्धस्स सेसयं दोण्हं वा तिण्हं वा, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं समयपबद्धाणं । ९७७. एवं चेव

दूसरा अप्रवाह्यमान उपदेश । प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार निर्लेपनस्थानोंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । किन्तु अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार निर्लेपनस्थानोंकी संख्या कर्मस्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण है ।

अब प्रवाह्यमान उपदेशका अवलम्बन करके प्रत्येक जीवने अतीतकालमें जघन्य निर्लेपनस्थानसे लेकर उत्कृष्ट निर्लेपनस्थान तक एक-एक स्थान पर जो अनन्तानन्त बार किये हैं, उनमें प्रत्येक स्थानका अतीतकालसम्बन्धी समुदित निर्लेपनकाल यद्यपि अनन्तसमयप्रमाण है, तथापि उनमें परस्पर जो हीनाधिकता है, उसके बतलानेके लिए निर्लेपन किये गए समयप्रबद्धोंके समुच्चयकालका अल्पबहुत्व कहते हैं–

चूर्णिसू०–अतीतकालमें एक जीवके जघन्य निर्लेपनस्थानपर अवस्थित होकर निर्लेपित पूर्व अर्थात् पहले निर्लेपन किये गये समयप्रबद्धोंका जो समुदित काल है, वह अनन्तप्रमाण होकरके भी वक्ष्यमाण कालोंकी अपेक्षा सबसे कम है । समयोत्तर अर्थात् अनन्तरसमयवर्ती दूसरे निर्लेपनस्थानपर निर्लेपितपूर्व समयप्रबद्धोंका समुदित काल विशेष अधिक है । (तीसरे निर्लेपनस्थानपर विशेष अधिक है । इस प्रकार विशेष अधिकके क्रमसे बढ़ता हुआ वह समुदित काल) पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित निर्लेपनस्थानोंके व्यतीत होनेपर दुगुना हो जाता है । उक्त क्रमसे निर्लेपनस्थानोंके असंख्यातवें भागपर कालसम्बन्धी यवमध्य प्राप्त होता है ॥९६९-९७२॥

अब इस यवमध्यसे अधस्तन और उपरितन नानागुणहानिशलाका आदिका प्रमाण कहते हैं–

चूर्णिसू०–नाना दुगुण-हानिस्थानान्तर पल्योपमके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग हैं । नाना गुणहानिस्थानान्तर अल्प हैं । एक गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणित हैं ॥९७३-९७५॥

अब अभव्यसिद्धोंकी अपेक्षा उपर्युक्त चार भाष्यगाथाओंमेंसे प्रथम भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं–

चूर्णिसू०–एक स्थितिविशेषमें एक समयप्रबद्धका शेष होता है, दो समयप्रबद्धोंके भी शेष होते हैं, तीन समयप्रबद्धोंके भी शेष होते हैं, इस प्रकार बढ़ते हुए उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमित समयप्रबद्धोंके शेष होते हैं । इस ही प्रकार भवबद्धोंके भी

भवबद्धसेसाणि । ९७८. पढमाए गाहाए अत्थो समत्तो भवदि । ९७९. जवमज्झं कायव्वं, विस्सरिदं लिहिदुं ।

शेष जानना चाहिए । इस प्रकार प्रथम भाष्यगाथाका अर्थ समाप्त हो जाता है । यहाँपर यवमध्यकी प्ररूपणा करना चाहिए । (पहले क्षपकप्रायोग्यप्ररूपणाके अवसरमें) हम लिखना भूल गये ॥९७६-९७९॥

विशेषार्थ—अभव्यसिद्धोंके योग्य की जानेवाली इस प्ररूपणामें प्रथम भाष्यगाथाकी विभाषा करते हुए यवमध्यकी प्ररूपणा करना आवश्यक है । क्षपक-प्रायोग्यप्ररूपणामें भी इस यवमध्यप्ररूपणाका किया जाना आवश्यक था, पर चूर्णिकार कहते हैं, कि वहाँपर हम लिखना भूल गये, इसलिए यहाँपर उसकी सूचना कर रहे हैं । वह इस प्रकार जानना चाहिए—अतीतकालकी अपेक्षा एक जीवके एक स्थितिविशेषमें एक-एक रूपसे रहकर उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित हुए जो समयप्रबद्ध-शेष हैं, ये अनन्त होकर भी वक्ष्यमाण समयप्रबद्धोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । पुनः दो दोके रूपमें रहकर उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित हुए जो समयप्रबद्ध-शेष हैं, वे विशेष अधिक हैं । तीन-तीनके रूपमें रहकर उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित हुए जो समयप्रबद्ध-शेष हैं, वे विशेष अधिक हैं। इस प्रकार चार, पाँच आदिके क्रमसे बढ़कर पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग प्राप्त होने तक एक स्थितिविशेषमें रहकर और उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित हुए समयप्रबद्ध-शेष दुगुने होते हैं। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित विशेष अधिक स्थान जानेपर उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित होनेवाले समयप्रबद्ध-शेष दुगुने प्राप्त होते हैं । इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित दुगुण वृद्धियोंके व्यतीत होनेपर समयप्रबद्ध-शेषोंकी वृद्धिका यवमध्य प्राप्त होता है । उस यवमध्यसे ऊपर सर्वत्र विशेषहीनके क्रमसे स्थान प्राप्त होते हैं। समयप्रबद्ध-शेषोंके ये विशेषहीन स्थान तब तक प्राप्त होते हुए चले जाते हैं, जब तक कि पल्योपमका उत्कृष्ट असंख्यातवाँ भाग न प्राप्त हो जाय । समयप्रबद्ध-शेषोंकी यवमध्यप्ररूपणाके समान भवबद्ध-शेषोंकी भी यवमध्यप्ररूपणा करना चाहिए । कितने ही आचार्य इस यवमध्यप्ररूपणाका नाना स्थितिविशेषोंको आश्रय लेकरके व्याख्यान करते हैं । उनका कहना है कि एक स्थितिविशेषमें शेषरूपसे रहकर अपवर्तनाके द्वारा उदयको प्राप्त होकर निर्लेपनभावको प्राप्त होनेवाले समयप्रबद्ध थोड़े हैं । दो स्थितिविशेषोंमें शेषरूपसे रहकर अपवर्तनाके वशसे उदयको प्राप्त होकर निर्लेपित होनेवाले समयप्रबद्ध विशेष अधिक हैं । इस प्रकार विशेष अधिकके क्रमसे तीन, चार आदिको लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित स्थितिविशेषोंमें शेषरूपसे रहकर अपवर्तनाके वशसे उदयको प्राप्त कर निर्लेपनपर्यायको प्राप्त होनेवाले समयप्रबद्धोंकी शलाकाएँ दुगुनी होती हैं । इस प्रकार दुगुणवृद्धिरूप पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित स्थान जानेपर यवमध्य प्राप्त होता है । पुनः विशेष हानिका क्रम अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक चलता है । पर जयधवलाकार इस व्याख्यानको असमीचीन ठहराते हैं । उनका कहना है कि प्रथम भाष्यगाथा एकस्थितिविशेष-विषयक है, उस समय नानास्थिति-विषयक समयप्रबद्धशेषोंकी प्ररूपणा

९८०. विदियाए भासगाहाए अत्थो जहावसरपत्तो। ९८१. तं जहा। ९८२. समयपबद्धसेसयमेक्किस्से ट्ठिदीए होज्ज, दोसु तीसु वा, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जभागेसु।

९८३. णिल्लेवणट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागे समयपबद्धसेसयाणि। ९८४. समयपबद्धसेसयाणि एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे जाणि ताणि थोवाणि। ९८५. दोसु ट्ठिदिविसेसेसु विसेसाहियाणि। ९८६. तिसु ट्ठिदिविसेसेसु विसेसाहियाणि। ९८७. पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे जवमज्झं। ९८८. णाणंतराणि थोवाणि। ९८९. एगंतरमसंखेज्जगुणं।

करना असंगत है। हाँ, यह नानास्थितिविशेष-विषयक प्ररूपणा द्वितीय भाष्यगाथामें निबद्ध दृष्टिगोचर होती है, अतः वहाँपर की जा सकती है। इसलिए यहाँपर तो हमारे द्वारा कही गई एकस्थितिविशेष-विषयक यवमध्यप्ररूपणा ही करना चाहिए।

चूर्णिसू०—अब अभव्यसिद्धोंकी अपेक्षा दूसरी भाष्यगाथाके अर्थका अवसर प्राप्त हुआ है। वह इस प्रकार है—समयप्रबद्ध-शेष एक स्थितिविशेषमें हो सकता है, दो स्थितिविशेषोंमें भी हो सकता है, तीन स्थितिविशेषोंमें भी हो सकता है, इस प्रकार एक-एकके क्रमसे बढ़ते हुए उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यात भागप्रमित स्थितिविशेषोंमें हो सकता है ॥९८०-९८२॥

विशेषार्थ—यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि भव्यसिद्धोंके उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व-प्रमित स्थितियोंमें समयप्रबद्ध-शेष पाये जाते हैं और अभव्यसिद्धोंके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित स्थितियोंमें समयप्रबद्ध-शेष पाये जाते हैं। एक बात यह भी जानने योग्य है कि यह सूत्र एकसमयप्रबद्ध-शेषकी प्रधानतासे कहा गया है, क्योंकि नानासमय-प्रबद्ध-शेषोंकी प्रधानता करनेपर तो जघन्यतः एक स्थितिमें उनका रहना असंभव है।

अब इन पल्योपमके असंख्यात-भागप्रमित स्थितिविशेषोंका निर्लेपनस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—निर्लेपनस्थानोंका जितना प्रमाण है, उनके असंख्यातवें भागमें समय-प्रबद्ध-शेष पाये जाते हैं। (इसका अभिप्राय यह है कि नाना समयप्रबद्ध-शेष और एक समय-प्रबद्ध-शेषसे अविरहित सर्व स्थितिविशेषोंका प्रमाण निर्लेपनस्थानोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इससे अधिक नहीं है।) जो समयप्रबद्ध-शेष एक स्थितिविशेषमें पाये जाते हैं, वे सबसे कम हैं। दो स्थितिविशेषोंमें पाये जानेवाले समयप्रबद्ध-शेष विशेष अधिक हैं। तीन स्थितिविशेषों-में पाये जानेवाले समयप्रबद्ध-शेष विशेष अधिक हैं। इस प्रकार विशेष अधिकके क्रमसे बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भागमें समयप्रबद्ध-शेषोंका यवमध्य प्राप्त होता है। यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम भागमें नाना गुणहानिस्थानान्तर अल्प हैं। (क्योंकि, उनका प्रमाण पल्योपमके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। एक गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणित हैं। (क्योंकि, उनका प्रमाण असंख्यात पल्योपमोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।) इस समय-

९९०. एवं भवबद्धसेसयाणि । ९९१. विदियाए गाहाए अत्थो समत्तो भवदि ।

९९२. तदियाए गाहाए अत्थो । ९९३. असामण्णाओ ट्ठिदीओ एक्का वा, दो वा, तिण्णि वा; एवमणुबद्धाओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ९९४. एवं तदियाए गाहाए अत्थो समत्तो ।

९९५. एत्तो चउत्थीए गाहाए अत्थो । ९९६. सामण्णट्ठिदीओ एक्कंतरिदाओ थोवाओ । ९९७. दुअंतरिदा विसेसाहिया । ९९८. एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे [जवमज्झं] । ९९९. णाणागुणहाणिसलागाणि थोवाणि । १०००. एक्कंतरमसंखेज्जगुणं ।

प्रबद्ध-शेषकी प्ररूपणाके समान भवबद्ध-शेषोंकी प्ररूपणा भी करना चाहिए । इस प्रकार दूसरी भाष्यगाथाका अर्थ समाप्त होता है ॥९८३-९९१॥

चूर्णिसू०-अब तीसरी भाष्यगाथाका अर्थ अभव्यसिद्धोंकी अपेक्षासे करते हैं । असामान्य स्थितियाँ एक, दो, तीन आदिके अनुक्रमसे बढ़ती हुई अनुबद्ध-परम्परारूपमें उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग होती हैं । इस प्रकार तीसरी भाष्यगाथाका अर्थ समाप्त होता है ॥९९२-९९४

विशेषार्थ-असामान्य स्थिति और सामान्य स्थितिका स्वरूप पहले बताया जा चुका है । उनमेंसे इस गाथामें असामान्य स्थितियोंके प्रमाणको बतलाया गया है । उसे इस प्रकार जानना चाहिए-समयप्रबद्ध और भवबद्ध-शेषकी अपेक्षा जघन्यसे सामान्यस्थितियोंसे निरुद्ध एक भी असामान्य स्थिति पाई जाती है, दो भी पाई जाती हैं, तीन भी पाई जाती हैं । इस प्रकार एक-एकके क्रमसे निरन्तर बढ़ते हुए उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र असामान्य स्थितियाँ अभव्यसिद्ध जीवोंके सामान्य स्थितियोंसे परस्परमें सम्बद्ध पाई जाती हैं । तथा जिस प्रकार क्षपक-प्रायोग्यप्ररूपणामें असामान्यस्थितियोंका अल्पबहुत्व यव-मध्य-प्ररूपणा-गर्भित बतलाया गया है, उसी प्रकार यहाँ अभव्यसिद्धिक जीवोंकी अपेक्षासे भी उसका प्ररूपण करना चाहिए । केवल इतनी बात विशेष ज्ञातव्य है कि यहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र असामान्यस्थितिकी शलाकाओंसे दुगुण वृद्धि होती है और क्षपक-प्रायोग्यप्ररूपणामें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अध्वान आगे जाकर दुगुण वृद्धि होती है । वहाँपर यवमध्यसे अधस्तन और उपरितन अध्वानका प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागमात्र है, किन्तु यहाँपर उसका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित है ।

चूर्णिसू०-अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाका अर्थ कहते हैं । यवमध्यके उभय-पार्श्वमें एकान्तरित सामान्य स्थितियाँ अल्प हैं । दो-अन्तरित सामान्य स्थितियाँ विशेष अधिक हैं । इस क्रमसे बढ़ते हुए जाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागपर यवमध्य प्राप्त होता है । यहाँपर नाना गुणहानिशलाकाएँ अल्प हैं और एकान्तर असंख्यात-गुणित है ॥९९५-१०००॥

१००१. एदमक्खवगस्स णादव्वं । १००२. खवगस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागो अंतरं । १००३. इमस्स पुण सामण्णाणं ट्ठिदीणमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

विशेषार्थ—इस चौथी भाष्यगाथामें असामान्यस्थितियोंसे अन्तरित सामान्य-स्थितियोंकी संख्याका निर्णय किया गया है । यवमध्यके दोनों ओर एक-एक असामान्य स्थितिसे अन्तरित अर्थात् अन्तर या विभागको प्राप्त होनेवाली जितनी सामान्यस्थितियाँ पाई जाती हैं, उन सबके समुदायको एक शलाका जानना चाहिए । पुनरपि इसी प्रकार दोनों ही पार्श्वभागोंमें एक-एक असामान्य स्थितिसे अन्तरित जितनी सामान्यस्थितियाँ पाई जावें, उनकी दूसरी शलाका ग्रहण करना चाहिए । पुनरपि उभय पार्श्वमें एक-एक असामान्यस्थिति-से अन्तरित जितनी सामान्यस्थितियाँ पाई जावें, उन सबके समूहकी तीसरी शलाका ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार दोनों ओर आगे-आगे बढ़ने पर एक-एक असामान्यस्थितिसे अन्तरित सामान्यस्थितियोंकी समस्त शलाकाएँ यद्यपि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं, तथापि वे उपरि-वक्ष्यमाण विकल्पोंकी अपेक्षा सबसे कम होती हैं । 'दो-अन्तरित सामान्य स्थितियाँ विशेष अधिक हैं,' इसका अभिप्राय यह है कि यवमध्यके उभय पार्श्व-भागोंमें दो-दो असामान्य स्थितियोंसे अन्तरको प्राप्त होकर पाई जानेवाली सामान्यस्थितियों-की शलाकाएँ भी यद्यपि पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं, तथापि एकान्तरित शलाकाओंकी अपेक्षा विशेष अधिक हैं । यहाँ विशेषका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित एक भागप्रमाण जानना चाहिए । पुनः तीन-तीन असामान्यस्थितियोंसे अन्तरित सामान्य स्थितिशलाकाओंका प्रमाण विशेष अधिक है । पुनः चार-चार असामान्यस्थितियोंसे अन्त-रित सामान्य स्थितिशलाकाओंका प्रमाण विशेष अधिक है । इस प्रकार विशेष अधिकके क्रमसे बढ़ती हुई पाँच-पाँच, छह-छह आदि असामान्यस्थितियोंसे अन्तरित सामान्य स्थिति-शलाकाओंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग आगे जानेपर दुगुना हो जाता है । तदनन्तर इसी क्रमसे असंख्यात दुगुण-वृद्धियोंके व्यतीत होनेपर यवमध्य उत्पन्न होता है । इस यव-मध्य से ऊपर और नीचे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण ही नाना गुणवृद्धि-हानिरूप शलाकाएँ पाई जाती हैं और इनसे एक गुणवृद्धि-हानिरूप स्थानान्तर असंख्यातगुणित होता है । जयधवलाकार इसी प्रकारसे सामान्यस्थितियोंसे अन्तरित असामान्य स्थितियोंकी यवमध्यप्ररूपणाका भी संकेत इसी गाथाके द्वारा कर रहे हैं ।

चूर्णिसू०—यह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सामान्य स्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर अभव्यसिद्धोंके योग्य स्थितिमें वर्तमान भव्य अक्षपक जीवका जानना चाहिए । क्षपकके सामान्यस्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इस उपर्युक्त अक्षपकके सामान्य स्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥१००१-१००३॥

१००४. जहा समयपबद्धसेसयाणि, तहा भवबद्धसेसाणि कादव्वाणि । १००५. एवं चउत्थीए गाहाए अत्थो समत्तो भवदि । १००६. अट्ठमीए मूलगाहाए विहासा समत्ता भवदि ।

१००७. इमा अण्णा अभवसिद्धियपाओग्गे परूवणा । १००८. तं जहा । १००९. भवबद्धाणं[1] णिल्लेवणट्ठाणं जहण्णगं समयपबद्धस्स णिल्लेवणट्ठाणाणं जहण्णयादो असंखेज्जाओ ट्ठिदीओ अब्भुस्सरिदूण ।

चूर्णिसू०–जिस प्रकारसे समयप्रबद्ध-शेषोंकी यह प्ररूपणा की है, इसी प्रकारसे भवबद्धशेषोंकी भी सामान्य असामान्य स्थितियोंके अन्तर आदिकी प्ररूपणा करनी चाहिए । इस प्रकार चौथी भाष्यगाथाका अर्थ समाप्त होता है। और उसके साथ ही आठवीं मूलगाथाकी विभाषा भी समाप्त होती है ॥१००४-१००६॥

चूर्णिसू०–अब अभव्यसिद्ध जीवोंके योग्य विषयमें यह अन्य प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—भवबद्ध समयप्रबद्धोंका जघन्य निर्लेपनस्थान प्रथम समय-बद्ध समयप्रबद्धके जघन्य निर्लेपनस्थानसे असंख्यात स्थितियाँ आगे जाकर प्राप्त होता है ॥१००७-१००९॥

विशेषार्थ–पहले यह बताया जा चुका है कि अभव्यसिद्ध जीवोंके योग्य निर्लेपनस्थानोंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । अब यह बताया जाता है कि जिस समय समयप्रबद्धका जघन्य निर्लेपनस्थान होता है, उस समय भवबद्धका भी जघन्य निर्लेपनस्थान नहीं होता है किन्तु उससे असंख्यात स्थितियाँ आगे जाकर होता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्तकी आयुवाले किसी सम्मूर्च्छिम मनुष्य या तिर्यंचके उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक प्रति समय बँधनेवाले समयप्रबद्धोंके समुदायको भवबद्ध समयप्रबद्ध कहते हैं । इन भवबद्ध समयप्रबद्धोंका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होते हैं, तत्प्रमाण है । उक्त जीवके उस भवमें जन्म लेनेके प्रथम समयमें जो सर्वजघन्य कर्म-प्रदेशपिंड बंधा, वह क्रमशः कर्मस्थितिके असंख्यात भागोंमें आगमाविरोधसे निर्जीर्ण होता हुआ जिस समयमें निःशेषरूपसे गलित होता है, वह प्रथम समय-बद्ध समयप्रबद्धका जघन्य निर्लेपनस्थान कहलाता है । उस समय भवबद्ध समयप्रबद्धोंका प्रमाण एक समयप्रबद्ध कम अन्तर्मुहूर्तप्रमित भवबद्ध समयप्रबद्ध-प्रमाण है । तदनन्तर प्रथम समयमें बँधे हुए समयप्रबद्धके निर्लेपित होनेपर पुनः शेष समयोन अन्तर्मुहूर्तमात्र समयप्रबद्ध जिस समयमें निःशेषरूपसे गलकर निर्लेपित हो जायेंगे, उस समयमें भवबद्धका जघन्य निर्लेपनस्थान होगा । अतएव दोनोंके जघन्य निर्लेपनस्थान एक साथ नहीं होते हैं । इसलिए यह निष्कर्ष निकला

१ तिरिक्खस्स मणुस्सस्स वा अंतोमुहुत्ताउगभवे उप्पज्जिदूण बंधमाणस्स जाव तमाउअं समप्पइ ताव तम्मि भवम्मि बद्धसमयपबद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता भवंति । तदो एत्तियमेत्तसमयपबद्धाणं समूहमेकदो कादूण गहिदे एगं भवबद्धयं णाम भण्णदे । जयध०

१०१०. तदो जवमज्झं कायव्वं । १०११. जम्हि चेव समयपबद्धणिल्लेवणट्ठाणाणं जवमज्झं, तम्हि चेव भवबद्धणिल्लेवणट्ठाणाणं जवमज्झं ।

१०१२. अदीदे काले जे समयपबद्धा एक्केण पदेसग्गेण णिल्लेविदा ते थोवा । १०१३. वेहिं पदेसेहिं विसेसाहिया । १०१४. एवमणंतरोवणिधाए अणंताणि ट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । १०१५. ठाणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागे जवमज्झं । १०१६. णाणंतरं थोवं । १०१७. एगंतरमणंतगुणं । १०१८. अंतराणि अंतरट्ठदाए

कि समयप्रबद्धके जघन्य निर्लेपनस्थानसे ऊपर नियमतः अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके जानेपर भवबद्धका जघन्य निर्लेपनस्थान होता है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ।

चूर्णिसू०—तदनन्तर यवमध्यप्ररूपणा करना चाहिए । जिस ही समयमें समयप्रबद्धके निर्लेपनस्थानोंका यवमध्य प्राप्त होता है, उस ही समयमें भवबद्धके निर्लेपनस्थानोंका यवमध्य प्राप्त होता है ॥१०१०-१०११॥

विशेषार्थ—इस यवमध्यप्ररूपणाको इस प्रकार जानना चाहिए— जघन्य निर्लेपनस्थानसे लगाकर उत्कृष्ट निर्लेपनस्थान तक निर्लेपित हुए समयप्रबद्ध और भवबद्धोंकी अतीत काल-विषयक शलाकाओंको ग्रहण करके यह यवमध्यप्ररूपणा की गई है । उसका स्पष्टीकरण यह है कि जघन्य निर्लेपनस्थान पर पूर्वमें निर्लेपित हुए समयप्रबद्ध और भवबद्ध सबसे कम हैं । समयोत्तर निर्लेपनस्थानपर विशेष अधिक हैं । द्विसमयोत्तर निर्लेपनस्थानपर विशेष अधिक हैं । इस प्रकार निरन्तर समय-समय प्रति विशेष अधिकके क्रमसे बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भाग आगे जानेपर दुगुनी वृद्धि हो जाती है । इन दुगुण वृद्धिरूप भी स्थानोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित आगे जाकर निर्लेपनस्थानोंके असंख्यातवें भागके प्राप्त होनेपर यवमध्य प्राप्त होता है । तत्पश्चात् विशेष हीन क्रमसे उत्कृष्ट निर्लेपनस्थानके प्राप्त होने तक इसी प्रकारकी प्ररूपणा करना चाहिए । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्व निर्लेपनस्थानोंपर पूर्वमें निर्लेपित हुए समयप्रबद्ध और भवबद्धोंका प्रमाण अनन्त है; क्योंकि अतीतकालकी अपेक्षा उनका अनन्त होना स्वाभाविक ही है ।

चूर्णिसू०—अतीतकालमें जो समयप्रबद्ध एक-एक प्रदेशाग्ररूपसे निर्लेपित हुए हैं, वे सबसे कम हैं । जो समयप्रबद्ध दो-दो प्रदेशाग्ररूपसे निर्लेपित हुए हैं, वे विशेष अधिक हैं । इस प्रकार अनन्तरोपनिधारूप श्रेणीकी अपेक्षा अनन्त स्थान विशेष-विशेष अधिक होते हैं । इन समयप्रबद्धशेषस्थानोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागमें यवमध्यस्थान प्राप्त होता है । यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नानान्तर अर्थात् समस्त नानागुणहानिशलाकाएँ अल्प हैं । एकान्तर अर्थात् एकगुणहानिस्थानकी शलाकाएँ अनन्तगुणित हैं । क्योंकि अन्तरके लिए अर्थात् एक-एक गुणहानिस्थानका अन्तर निकालनेके लिए अवस्थापित अन्तर अर्थात् नानागुणहानिशलाकाओंका प्रमाण पल्योपमके अर्धच्छेदोंके भी असंख्यातवें

पलिदोवमच्छेदणाणं वि असंखेज्जदिभागो। १०१९. णाणंतराणि थोवाणि। १०२०. एक्कंतरमणंतगुणं।

१०२१. खवगस्स वा अक्खवगस्स वा समयपबद्धाणं वा भवबद्धाणं वा अणुसमयणिल्लेवणकालो[1] एगसमइओ बहुगो। १०२२. दुसमइओ विसेसहीणो। १०२३. एवं गंतूण आवलियाए असंखेज्जदिभागे दुगुणहीणो। १०२४. उक्कस्सओ वि अणुसमयणिल्लेवणकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

१०२५. अक्खवगस्स एगसमइएण अंतरेण णिल्लेविदा समयपबद्धा वा भवबद्धा वा थोवा। १०२६. दुसमएण अंतरेण णिल्लेविदा विसेसाहिया। १०२७. एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे दुगुणा। १०२८. ट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं। १०२९. उक्कस्सयं पि णिल्लेवणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

१०३०. एक्केण समएण णिल्लेविज्जंति समयपबद्धा वा भवबद्धा वा एक्को

भाग है। अतएव नानागुणहानिस्थानान्तर अल्प हैं और एकगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणित हैं। (इसी प्रकारसे भवबद्धशेषोंकी भी यवमध्यप्ररूपणा जानना चाहिए।)॥१०१२-१०२०॥

अब भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीवोंके योग्य जो समान प्ररूपणा है, उसका निरूपण करते हैं—

चूर्णिसू०—क्षपकके अथवा अक्षपकके समयप्रबद्धोंका अथवा भवबद्धोंका एकसमयिक अनुसमयनिर्लेपनकाल बहुत है। द्विसमयिक अनुसमयनिर्लेपनकाल विशेष हीन है। इस प्रकार विशेष हीन क्रमसे जाकर अनुसमयनिर्लेपनकाल आवलीके असंख्यातवें भागपर दुगुण हीन है। उत्कृष्ट भी अनुसमयनिर्लेपनकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है॥१०२१-१०२४॥

अब एकको आदि लेकर एकोत्तरके क्रमसे परिवर्धित अनिर्लेपित स्थितियोंके द्वारा अन्तरित निर्लेपनस्थितियोंका उदयकी अपेक्षा निर्लेपित-पूर्व भवबद्ध और समयप्रबद्धोंका अतीतकालविषयक अल्पबहुत्व अक्षपककी दृष्टिसे कहते हैं—

चूर्णिसू०—अक्षपकके एकसमयिक अन्तरसे निर्लेपित समयप्रबद्ध और भवबद्ध अल्प हैं। द्विसमयिक अन्तरसे निर्लेपित समयप्रबद्ध और भवबद्ध विशेष अधिक हैं। इस प्रकार विशेष अधिकके क्रमसे आगे जाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागपर उनका प्रमाण दुगुना होता है। दुगुणवृद्धिरूप स्थानोंको पल्योपमके असंख्यातवें भागपर यवमध्य प्राप्त होता है। उत्कृष्ट भी निर्लेपन-अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है॥१०२५-१०२९॥

अब आचार्य एक समयमें निर्लेप्यमान समयप्रबद्ध और भवबद्धोंका प्रमाण बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

चूर्णिसू०—एक समयके द्वारा जो समयप्रबद्ध या भवबद्ध निर्लेपित किये जाते हैं,

---

१ अणुसमयणिल्लेवणकालो णाम समयपबद्धाणं वा भवपबद्धाणं वा अणुसंततं णिल्लेवणकालो। जयध०

वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । १०३१. एदेण वि जवमज्झं । १०३२. एक्केक्केण णिल्लेविज्जंति ते थोवा । १०३३. दोण्णि णिल्लेविज्जंति विसेसाहिया । १०३४. तिण्णि णिल्लेविज्जंति विसेसाहिया । १०३५. एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे दुगुणा ।

१०३६. णाणंतराणि थोवाणि । १०३७. एक्कंतरछेदणाणि वि असंखेज्जगुणाणि ।

१०३८. अप्पाबहुअं । सव्वत्थोवमणुसमयणिल्लेवणकंडयमुक्कस्सयं । १०३९. जे एगसमएण णिल्लेविज्जंति भवबद्धा ते असंखेज्जगुणा । १०४०. समयपबद्धा एगसमएण णिल्लेविज्जंति असंखेज्जगुणा । १०४१. समयपबद्धसेसएण विरहिदाओ णिरं-

वे एक भी होते हैं, दो भी होते हैं, तीन भी होते हैं । (इस प्रकार एक-एक कर बढ़ते हुए) उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक होते हैं । (यह प्ररूपणा क्षपक और अक्षपक दोनोंके लिए समान जानना चाहिए ।) इस प्ररूपणामें भी यवमध्यरचना होती है । (वह इस प्रकार है--) जो समयप्रबद्ध या भवबद्ध एक-एकके रूपसे निर्लेपित किये गये हैं, वे सबसे कम हैं । जो समयप्रबद्ध या भवबद्ध दो-दोके रूपसे निर्लेपित किये गए हें, वे विशेष अधिक हैं । जो समयप्रबद्ध या भवबद्ध तीन-तीनके रूपसे निर्लेपित किये गये हैं, वे विशेष अधिक हैं । इस प्रकार विशेष अधिककी वृद्धिसे निर्लेपित किये गये समयप्रबद्धों या भवबद्धोंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित काल आगे जानेपर दुगुना हो जाता है ॥१०३०-१०३५॥

विशेषार्थ--इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित दुगुण-वृद्धिरूप स्थानोंके व्यतीत होनेपर यवमध्य प्राप्त होता है । उससे ऊपर विशेष हीनके क्रमसे असंख्यात गुणहानिरूप स्थान जानेपर प्रकृत यवमध्यप्ररूपणाका चरम विकल्प प्राप्त होता है । यवमध्यके अधस्तन सकल अध्वानोंसे उपरिम सकल अध्वान असंख्यातगुणित होते हैं । तथा अधस्तन दुगुणवृद्धिशलाकाओंसे उपरिम दुगुणवृद्धिशलाकाएँ भी असंख्यातगुणी होती हैं, इतना विशेष जानना चाहिए ।

अब इस यवमध्यप्ररूपणा-सम्बन्धी नानागुणहानिशलाकाओंका और एकगुणहानिस्थानान्तरका प्रमाण बतलाते हैं---

चूर्णिसू०--नानान्तर अर्थात् नानागुणहानिशलाकाएँ (पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित होकरके भी वक्ष्यमाणपदकी अपेक्षा) अल्प हैं । इनसे एकान्तरच्छेद अर्थात् एक गुणहानिस्थानान्तरकी अर्धच्छेद-शलाकाएँ असंख्यातगुणित हैं ॥१०३६-१०३७॥

चूर्णिसू०--अब उपर्युक्त समस्त पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं---उत्कृष्ट अनुसमय निर्लेपनकाण्डक अर्थात् प्रतिसमय निर्लेपित होनेवाले समयप्रबद्धों या भवबद्धोंका उत्कृष्ट निर्लेपनकाल (आवलीके असंख्यातवें भागप्रमित होकरके भी वक्ष्यमाण पदोंकी अपेक्षा) सबसे कम है । जो भवबद्ध एक समयके द्वारा निर्लेपित किये जाते हैं वे असंख्यातगुणित

तराओ ट्ठिदीओ असंखेज्जगुणाओ । १०४२. पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं । १०४३. णिसेगगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं । १०४४. भवबद्धाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । १०४५. समयपबद्धाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । १०४६. समयपबद्धस्स कम्मट्ठिदीए अंतो अणुसमय-अवेदगकालो असंखेज्जगुणो । १०४७. समयपबद्धस्स कम्मट्ठिदीए अंतो अणुसमयवेदगकालो असंखेज्जगुणो । १०४८. सव्वो अवेदगकालो असंखेज्जगुणो । १०४९. सव्वो वेदगकालो असंखेज्जगुणो । १०५०. कम्मट्ठिदी विसेसाहिया ।

१०५१. णवमीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१५१) किट्टीकदम्मि कम्मे ट्ठिदि-अणुभागेसु केसु सेसाणि ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि बज्झमाणाणुदिण्णाणि ॥२०४॥

१०५२. एदिस्से दो भासगाहाओ । १०५३. तासिं समुक्कित्तणा ।

हैं । (क्योंकि उनका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ।) जो समयप्रबद्ध एक समयके द्वारा निर्लेपित किये जाते हैं, वे असंख्यातगुणित हैं । समयप्रबद्ध-शेषसे विरहित (उपलब्ध होनेवाली) निरन्तर स्थितियाँ असंख्यातगुणित हैं । पल्योपमका प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणित है । निषेकोंका गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणित है । (क्योंकि, वह असंख्यात पल्योपम-प्रथमवर्गमूल प्रमाण है ।) भवबद्धोंके निर्लेपनस्थान असंख्यातगुणित हैं । समयप्रबद्धोंके निर्लेपनस्थान विशेष अधिक हैं । (इस विशेष अधिकका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है, क्योंकि समयप्रबद्धोंके जघन्य निर्लेपनस्थानसे ऊपर अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितियोंके पश्चात् ही भवबद्धोंका जघन्य निर्लेपनस्थान प्राप्त होता है ।) समयप्रबद्धकी कर्मस्थितिके भीतर अनुसमय अवेदककाल असंख्यातगुणित है । समयप्रबद्धकी कर्मस्थितिके भीतर अनुसमय वेदककाल असंख्यातगुणित है । सर्व अवेदककाल असंख्यातगुणित है । इससे सर्व वेदककाल असंख्यातगुणित है । (क्योंकि वह कर्मस्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण है ।) सर्ववेदककालसे कर्मस्थिति असंख्यातगुणित है ॥१०२८-१०५०॥

चूर्णिसू०—अब नवमी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१०५१॥

मोहनीय कर्मके निरवशेष अनुभागसत्कर्मके कृष्टिकरण करनेपर अर्थात् अकृष्टिरूपसे अवस्थित अनुभागको कृष्टिरूपसे परिणमित कर देने पर कृष्टिवेदनके प्रथम समयमें वर्तमान जीवके पूर्व बद्ध ज्ञानावरणीयादि कर्म किन स्थितियोंमें और किन अनुभागोंमें शेष अर्थात् अवशिष्ट रूपसे पाये जाते हैं ? तथा बध्यमान अर्थात् वर्तमान समयमें बँधनेवाले और उदीर्ण अर्थात् वर्तमानमें उदय आनेवाले कर्म किन-किन स्थितियों और अनुभागोंमें पाये जाते हैं ? ॥२०४॥

चूर्णिसू०—इस प्रश्नात्मक मूलगाथाके अर्थकी विभाषा करनेवाली दो भाष्यगाथाएँ हैं । अब उनकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१०५२-१०५३॥

(१५२) किट्टीकदम्मि कम्मे णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसगा होंति संखेज्जा ॥२०५॥

१०५४. विहासा । १०५५. किट्टीकरणे णिट्ठिदे किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि । १०५६. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि । १०५७. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

१०५८. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१५३) किट्टीकदम्मि कम्मे सादं सुहणाममुच्चगोदं च ।
बंधदि च सदसहस्से ट्ठिदिमणुभागेसुदुक्कस्सं ॥२०६॥

१०५९. विहासा । १०६०. किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा । १०६१. णामा-गोद-वेदणीयाणं तिण्हं चेव घादिकम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १०६२. णामा-गोद-वेदणीयाणमणुभागबंधो तस्समय-उक्कस्सगो ।

मोहनीयकर्मके कृष्टिकरण कर देने पर नाम, गोत्र और वेदनीय ये तीन कर्म असंख्यात वर्षोंवाले स्थितिसत्त्वोंमें पाये जाते हैं । शेष चार घातिया कर्म संख्यात वर्षप्रमित स्थितिसत्त्वरूप पाये जाते हैं ॥२०५॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—कृष्टिकरणके निष्पन्न होनेपर प्रथम समयमें कृष्टियोंका वेदन करनेवाले जीवके नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन कर्मोंका स्थितिसत्कर्म असंख्यात वर्षप्रमाण है । मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण है । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण है ॥१०५४-१०५७॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१०५८॥

मोहनीयकर्मके कृष्टिकरण कर देनेपर वह कृष्टिवेदक क्षपक सातावेदनीय, यशःकीर्तिनामक शुभनामकर्म और उच्चगोत्र ये तीन अघातिया कर्म संख्यात शतसहस्र वर्षप्रमाणमें स्थितिको बाँधता है । तथा वह कृष्टिवेदक इन तीनों कर्मोंके स्वयोग्य उत्कृष्ट अनुभागको बाँधता है ॥२०६॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—कृष्टियोंके प्रथम समयमें वेदन करनेवाले क्षपकके चारों संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चार मास है । नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन अघातिया कर्मोंका तथा शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीनों अघातिया कर्मोंका अनुभागबन्ध तत्समय-उत्कृष्ट है, अर्थात् उस प्रथमसमयवर्ती कृष्टिवेदक क्षपकके यथायोग्य जितना उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होना चाहिए, उतना होता है ॥१०५९-१०६२॥

१०६३. एत्तो ताव दो मूलगाहाओ थवणिज्जाओ । १०६४. किट्टीवेदगस्स ताव परूवणा कायव्वा । १०६५. तं जहा । १०६६. किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि । १०६७. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १०६८. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १०६९. संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । १०७०. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

१०७१. किट्टीणं पढमसमयवेदगप्पहुडि मोहणीयस्स अणुभागाणमणुसमयोवट्टणा । १०७२. पढमसमयकिट्टीवेगस्स कोहकिट्टी उदये उक्कस्सिया बहुगी । १०७३. बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा । १०७४. विदियसमये उदये उक्कस्सिया अणंत-

---

चूर्णिसू०–अब इससे आगे अर्थात् नवमी मूलगाथाके पश्चात् क्रमागत एवं कथन करने योग्य दो मूलगाथाएँ स्थापनीय हैं, अर्थात् उनकी समुत्कीर्तना स्थगित की जाती है। (क्योंकि, उनका अर्थ सरलतासे समझनेके लिए कुछ अन्य कथन आवश्यक है ।) अतएव पहले कृष्टिवेदककी प्ररूपणा करनी चाहिए । वह इस प्रकार है—कृष्टियोंके प्रथम समयमें वेदन करनेवाले क्षपकके चारों संज्वलन कषायोंका स्थितिसत्त्व आठ वर्ष है । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यातसहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेदनीय, इन तीन अघातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात सहस्र वर्ष है । चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चार मास है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्ष है ॥१०६३-१०७०॥

चूर्णिसू०–कृष्टियोंके प्रथमसमयवर्ती वेदक होनेके कालसे लेकर कृष्टिवेदक क्षपकके मोहनीय कर्मके अनुभागोंकी प्रतिसमय अपवर्तना होती है ॥१०७१॥

विशेषार्थ–इससे पूर्व अर्थात् अश्वकर्णकरणकालमें और कृष्टिकरणकालमें अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीर्णनाकालप्रतिबद्ध अनुभागघात संज्वलनप्रकृतियोंका अश्वकर्णकरणके आकारसे हो रहा था, किन्तु वह इस समय अर्थात् कृष्टिवेदकके प्रथम समयसे लेकर आगे प्रति समय अनन्तगुणहानिरूपसे प्रवृत्त होता है । इसका अभिप्राय यह है कि कृष्टिकरणकालमें मोहनीयके चारों संज्वलनकषायोंका जो अनुभाग संग्रहकृष्टिके रूपसे बारह भेदोंमें विभक्त किया था, उसकी एक-एक संग्रह-कृष्टिके अग्रकृष्टिसे लगाकर असंख्यातवें भाग समयप्रबद्धोंके अनुभागको छोड़कर शेष अनुभागकी समय-समयमें अनन्तगुणहानिके रूपमें अपवर्तना होने लगती है । किन्तु ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंका पूर्वोक्त क्रमसे ही अन्तर्मुहूर्तप्रमित अनुभागघात होता है । तथा उसी पूर्वोक्त क्रमसे ही सभी कर्मोंका स्थितिघात जारी रहता है, उसमें कोई भेद नहीं पड़ता है ।

चूर्णिसू०–प्रथमसमयवर्ती कृष्टिवेदकके अनन्त मध्यम कृष्टियोंमेंसे जो क्रोधकृष्टि उदयमें उत्कृष्ट अर्थात् सर्वोपरिमरूपसे प्रवेश कर रही है वह तीव्र अनुभागवाली है। परन्तु बन्धको प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है। द्वितीय समयमें उदयमें प्रवेश करनेवाली उत्कृष्ट क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है, तथा बन्धको प्राप्त

गुणहीणा । १०७५. बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा । १०७६. एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए ।

१०७७. पढमसमये बंधे जहण्णिया किट्टी तिव्वाणुभागा । १०७८. उदये जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा । १०७९. विदियसमये बंधा जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा । १०८०. उदये जहण्णिया अणंतगुणहीणा । १०८१. एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए । १०८२. समये समये णिव्वग्गणाओ जहण्णियाओ वि य । १०८३. एसा कोहकिट्टीए परूवणा ।

१०८४. किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए किट्टीणमसंखेज्जा भागा बज्झंति । १०८५. सेसाओ संगहकिट्टीओ ण बज्झंति । १०८६. एवं मायाए । १०८७. एवं लोभस्स वि ।

होनेवाली उत्कृष्ट क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है । इसी प्रकार अर्थात् जिस प्रकारसे प्रथम और द्वितीय समयमें बन्ध और उदयकी अपेक्षा क्रोधकृष्टिका अल्पबहुत्वरूपसे अनुभाग कहा है, उसी प्रकार सर्व कृष्टिवेदककालमें कृष्टियोंके अनुभागका हीनाधिक क्रम जानना चाहिए ॥१०७२-१०७६॥

अब बध्यमान तथा उदयको प्राप्त होनेवाली कृष्टियोंका अनुभागसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—प्रथम समयमें बन्धमें अर्थात् बध्यमानकालमें बँधनेवाली जघन्य क्रोधकृष्टि तीव्र अनुभागवाली है और उदयमें प्रवेश करनेवाली जघन्य क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है । द्वितीय समयमें बध्यमान जघन्य क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है और उदयमें प्रवेश करनेवाली जघन्य क्रोधकृष्टि अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली है । इसी प्रकार सम्पूर्ण कृष्टिवेदककालमें बन्ध और उदयकी अपेक्षा जघन्य कृष्टियोंका अनुभागसम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिए । समय-समयमें अर्थात् कृष्टिवेदनकालमें प्रतिसमय जघन्य भी निर्वर्गणाएँ उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हीन अनुभागवाली होती हैं । (बध्यमान और उदीयमान कृष्टियोंके अनन्तगुणित हानिके रूपसे प्राप्त होनेवाले अपसरण विकल्पोंको *निर्वर्गणा* कहते हैं ।) यह सब संज्वलनक्रोधसम्बन्धी प्रथमसंग्रहकृष्टिकी जघन्य-उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा प्ररूपणा की गई है ॥१०७७-१०८३॥

चूर्णिसू०—कृष्टियोंका प्रथम समयमें वेदन करनेवाले क्षपकके संज्वलनमानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग बँधते हैं । शेष संग्रहकृष्टियाँ नहीं बँधती हैं । इसी प्रकार संज्वलनमाया और संज्वलनलोभकी भी प्ररूपणा जानना चाहिए, अर्थात् प्रथम संग्रहकृष्टिमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग बँधते हैं और शेष संग्रहकृष्टियाँ नहीं बँधती हैं ॥१०८४-१०८७॥

१०८८. किट्टीणं पढमसमयवेदगो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणमग्गकिट्टिमादिं कादूण एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए असंखेज्जदिभागं विणासेदि । १०८९. कोहस्स पढमसंगहकिट्टिं मोत्तूण सेसाणमेक्कारसण्हं संगहकिट्टीणं अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तेदि । १०९०. ताओ अपुव्वाओ किट्टीओ कदमादो पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि ? १०९१. बज्झमाणयादो च संकामिज्जमाणयादो च पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि ।

१०९२. बज्झमाणयादो थोवाओ णिव्वत्तेदि । संकामिज्जमाणयादो असंखेज्ज-गुणाओ । १०९३. जाओ ताओ बज्झमाणयादो पदेसग्गादो णिव्वत्तिज्जंति ताओ चदुसु पढमसंगहकिट्टीसु । १०९४. ताओ कदमम्मि ओगासे ? १०९५. एक्केक्किस्से संगह-किट्टीए किट्टीअंतरेसु । १०९६. किं सव्वेसु किट्टीअंतरेसु, आहो ण सव्वेसु ? १०९७. ण सव्वेसु । १०९८. जइ ण सव्वेसु, कदमेसु अंतरेसु अपुव्वाओ णिव्वत्तयदि ? १०९९.

चूर्णिसू०—कृष्टियोंका प्रथम समयवेदक बारहों ही संग्रहकृष्टियोंके अग्रकृष्टिको आदि करके एक-एक संग्रहकृष्टिके असंख्यातवें भागको विनाश करता है, अर्थात् उतनी कृष्टियोंकी शक्तियोंको अपवर्तनाघातसे प्रतिसमय अपवर्तन करके अधस्तन कृष्टिरूपसे स्थापित करता है । (इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी अपवर्तनाघात जानना चाहिए । केवल इतना भेद है कि प्रथम समयमें विनाश की गई कृष्टियोंसे द्वितीयादि समयमें विनाश की जानेवाली कृष्टियाँ उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित हीन होती हैं ।) ॥१०८८॥

चूर्णिसू०—संज्वलनक्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको छोड़कर शेष ग्यारह संग्रहकृष्टियोंके नीचे और अन्तरालमें अन्य अपूर्व कृष्टियोंको बनाता है ॥१०८९॥

शंका—उन अपूर्व कृष्टियोंको किस प्रदेशाग्रसे बनाता है ? ॥१०९०॥

समाधान—बध्यमान और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे उन अपूर्व कृष्टियोंको बनाता है ॥१०९१॥

चूर्णिसू०—बध्यमान प्रदेशाग्रसे थोड़ी अपूर्व कृष्टियोंको बनाता है । किन्तु संक्रम्य-माण प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणी अपूर्व कृष्टियोंको बनाता है । वे जो अपूर्व कृष्टियाँ बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्तित की जाती हैं, चारों ही प्रथम संग्रहकृष्टियोंमेंसे निर्वर्तित की जाती हैं ॥१०९२-१०९३॥

शंका—उन अपूर्व कृष्टियोंको किस अवकाशमें अर्थात् किस अन्तरालमें निर्वृत्त करता है ? ॥१०९४॥

समाधान—उन अपूर्व कृष्टियोंको एक-एक संग्रहकृष्टिकी अवयवकृष्टियोंके अन्तरालोंमें निर्वृत्त करता है ॥१०९५॥

शंका—क्या सब कृष्टि-अन्तरालोंमें उन अपूर्व कृष्टियोंको रचता है ? अथवा सब कृष्टि-अन्तरालोंमें नहीं रचता है ? ॥१०९६॥

समाधान—सब कृष्टि-अन्तरालोंमें अपूर्व कृष्टियोंको नहीं रचता है ॥१०९७॥

शंका—यदि सब कृष्टि-अन्तरालोंमें अपूर्व कृष्टियोंको नहीं रचता है, तो फिर किन अन्तरालोंमें उन अपूर्वकृष्टियोंको रचता है ? ॥१०९८॥

उवसंदरिसणा[1] । ११००. बज्झमाणियाणं जं पढमं किट्टीअंतरं, तत्थ णत्थि । ११०१. एवमसंखेज्जाणि किट्टीअंतराणि अधिच्छिदूण । ११०२. किट्टीअंतराणि अंतरट्ठदाए असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । ११०३. एत्तियाणि किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जदि । ११०४. पुणो वि एत्तियाणि किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जदि । ११०५. बज्झमाणयस्स पदेसग्गस्स णिसेगसेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । ११०६. तत्थ जहण्णियाए किट्टीए बज्झमाणियाए बहुअं । ११०७. विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण । ११०८. तदियाए विसेसहीणमणंतभागेण । ११०९. चउत्थीए विसेसहीणं । १११०. एवमणंतरोवणिधाए ताव विसेसहीणं जाव अपुव्वकिट्टिमपत्तो त्ति । ११११. अपुव्वाए किट्टीए अणंतगुणं । १११२. अपुव्वादो किट्टीदो जा अणंतरकिट्टी, तत्थ अणंतगुणहीणं । १११३, तदो पुणो अणंतभागहीणं । १११४. एवं सेसासु सव्वासु ।

समाधान–उक्त शंकाका स्पष्टीकरण यह है–बध्यमान संग्रहकृष्टियोंका जो प्रथम कृष्टि-अन्तर है, वहाँपर अपूर्वकृष्टियोंको नहीं रचता है । इस प्रकार असंख्यात कृष्टि-अन्तरालोंको लाँघकर आगे अभीष्ट कृष्टि-अन्तरालमें अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । अन्तररूपसे प्रवृत्त ये कृष्टि-अन्तराल असंख्यात पल्योपमके प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । इतने कृष्टि-अन्तरालों-को लाँघकर अपूर्व कृष्टि रची जाती है । पुनः इतने ही अर्थात् असंख्यात कृष्टि-अन्तरालोंको उल्लंघन कर दूसरी अपूर्वकृष्टि रची जाती है । (इस प्रकार असंख्यात पल्योपमके प्रथम वर्गमूलप्रमाण असंख्यात कृष्टि-अन्तरालोंको छोड़-छोड़कर तृतीय-चतुर्थ आदि अपूर्व कृष्टिकी रचना होती है । और यह क्रम तब तक चला जाता है जब तक कि अन्तिम अपूर्वकृष्टि निष्पन्न होती है ॥१०९९-११०४॥

चूर्णिसू०–अब बध्यमान प्रदेशाग्रके निषेकोंकी श्रेणिप्ररूपणाको कहेंगे । उनमेंसे बध्यमान जघन्य कृष्टिमें बहुत प्रदेशाग्र देता है । द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र देता है । तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र देता है । चतुर्थ कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र देता है । इस प्रकार अनन्तरोपनिधारूप श्रेणीके क्रमसे विशेष हीन, विशेष हीन प्रदेशाग्र अपूर्वकृष्टिके प्राप्त होने तक दिया जाता है । पुनः अपूर्व-कृष्टिमें अनन्तगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है । अपूर्वकृष्टिसे जो अनन्तरकृष्टि है, उसमें अनन्त-गुणा हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । तदनन्तर प्राप्त होनेवाली कृष्टिमें अनन्त भागहीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इसी प्रकार शेष सर्वकृष्टियोंमें जानना चाहिए ॥११०५-१११४॥

चूर्णिसू०–जो संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्वकृष्टियाँ रची जाती हैं, वे दो अवकाशों अर्थात् स्थलोंपर रची जाती हैं । यथा–कृष्टि-अन्तरालोंमें भी और संग्रहकृष्टि-अन्तरालोंमें भी

१ एत्तियाणि किट्टी-अंतराणि उल्लंघियूण पुणो एत्तियमेत्तेसु किट्टी-अंतरेसु तासिं णिव्वत्ती होदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स फुडीकरणमुवसंदरिसणा णाम । जयध०

११११५. जाओ संकामिज्जमाणियादो पदेसग्गादो अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ दुसु ओगासेसु । १११६. जं जहा । १११७. किट्टीअंतरेसु च, संगहकिट्टीअंतरेसु[1] च । १११८. जाओ संगहकिट्टीअंतरेसु ताओ थोवाओ । १११९. जाओ किट्टीअंतरेसु ताओ असंखेज्जगुणाओ । ११२०. जाओ संगहकिट्टीअंतरेसु तासिं जहा किट्टीकरणे अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । ११२१. जाओ किट्टीअंतरेसु तासिं जहा बज्झमाणएण पदेसग्गेण अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । ११२२. णवरि थोवदरगाणि किट्टीअंतराणि गंतूण संछुब्भमाणपदेसग्गेण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जमाणिगा दिस्सदि । ११२३. ताणि किट्टीअंतराणि पगणणादो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ।

११२४. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स जा कोहपढमसंगहकिट्टी तिस्से असंखेज्जदिभागो विणासिज्जदि । ११२५. किट्टीओ जाओ पढमसमये विणासिज्जंति ताओ बहुगीओ । ११२६. जाओ विदियसमये विणासिज्जंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । ११२७. एवं

रची जाती हैं । जो अपूर्वकृष्टियाँ संग्रहकृष्टि-अन्तरालोंमें रची जाती हैं, वे अल्प हैं और जो कृष्टि-अन्तरालोंमें रची जाती हैं वे असंख्यातगुणी हैं । जो अपूर्वकृष्टियाँ संग्रहकृष्टि-अन्तरालोंमें रची जाती हैं, उनका जैसा विधान कृष्टिकरणमें निर्वर्त्यमान अपूर्वकृष्टियोंका किया गया है वैसा ही प्ररूपण यहाँ करना चाहिए । और जो अपूर्वकृष्टियाँ कृष्टि-अन्तरालोंमें रची जाती हैं, उनका जैसा विधान बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्त्यमान अपूर्वकृष्टियोंका किया गया है, वैसा ही विधान यहाँ करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहाँपर स्तोकतर कृष्टि-अन्तरोंको लाँघकर संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे निर्वर्त्यमान अपूर्वकृष्टि दृष्टिगोचर होती है । वे कृष्टि-अन्तर प्रगणनासे अर्थात् संख्याकी अपेक्षा पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । (इस प्रकार कृष्टिवेदकके प्रथम समयकी यह सब प्ररूपणा द्वितीयादिक समयोंमें भी जानना चाहिए ।) ॥१११५-११२३॥

अब कृष्टिवेदकके प्रथम समयसे लेकर प्रति समय विनाश की जानेवाली कृष्टियोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—

चूर्णिसू०—प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदकके जो क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है, उसका असंख्यातवाँ भाग प्रतिसमय अपवर्तनाघातसे विनाश किया जाता है । जो कृष्टियाँ प्रथम समयमें विनाश की जाती हैं, वे बहुत हैं । जो कृष्टियाँ द्वितीय समयमें विनाश की जाती हैं, वे असंख्यातगुणी हीन हैं । इस प्रकार यह क्रम अपने विनाशकालके द्विचरम समयमें अविनष्ट क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि तक चला जाता है ।।११२४-११२७।।

१ कोहपढमसंगहकिट्टिं मोत्तूण सेसाणमेक्कारसण्हं संगहकिट्टीणं हेट्ठा तासिमसंखेज्जदिभागपमाणेण जाओ णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वकिट्टीओ, ताओ संगहकिट्टीअंतरेसु त्ति भण्णंति । तासिं चेव एक्कारसण्हं संगहकिट्टीणं किट्टीअंतरेसु पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तद्धाणं गंतूण अंतरंतरे जाओ अपुव्वकिट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ किट्टीअंतरेसु त्ति वुच्चंति । जयध०

ताव दुचरिमसमयअविणट्ठकोहपढमसंगहकिट्टि त्ति । ११२८. एदेण सव्वेण तिचरिम-समयमेत्तीओ सव्वकिट्टीसु पढम-विदियसमयवेदगस्स कोधस्स पढमकिट्टीए अबज्झमाणि-याणं किट्टीणमसंखेज्जदिभागो ।

११२९. कोहस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए एदम्हि समये जो विही, तं विहिं वत्तइस्सामो । ११३०. तं जहा । ११३१. ताधे चेव कोहस्स जहण्णगो ट्ठिदिउदीरगो [१] । ११३२. कोहपढमकिट्टीए चरिमसमयवेदगो जादो [२] । ११३३. जा पुव्वपवत्ता संजलणाणुभाग-संतकम्मस्स अणुसमयमोवट्टणा सा तहा चेव [३] । ११३४. चदुसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो वे मासा चत्तालीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तणा [४] । ११३५. संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्मं छ वस्साणि अट्ठ च मासा अंतोमुहुत्तूणा [५] । ११३६. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो दस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि [६] ११३७. घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि [७] । ११३८. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि [८] ।

११३९. से काले कोहस्स विदियकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डियूण कोहस्स पढमट्ठिदिं

अब कृष्टिवेदकके प्रथम समयसे लगाकर निरुद्ध प्रथम संग्रहकृष्टिके विनाश करनेके कालके द्विचरम समय तक विनष्ट की गई समस्त कृष्टियोंका प्रमाण बतलाते हैं—

चूर्णिसू०-इस सर्व कालके द्वारा जो त्रिचरम समयमात्र कृष्टियाँ (विनष्ट की जाती) हैं, वे सर्व कृष्टियोंमें प्रथम और द्वितीय समयवेदकके क्रोधकी प्रथम कृष्टिकी अबध्यमान कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र है ॥११२८॥

विशेषार्थ—प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदकके क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके ऊपर और नीचे अवस्थित कृष्टियाँ अबध्यमान कृष्टियाँ कहलाती हैं ।

चूर्णिसू०—क्रोधकी प्रथमकृष्टिका वेदन करनेवालेकी जो प्रथमस्थिति है, उस प्रथम-स्थितिमें एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर इस समयमें जो विधि होती है, उस विधिको कहेंगे । वह इस प्रकार है—उस ही समयमें क्रोधकी जघन्य स्थितिका उदीरक होता है (१) और क्रोधकी प्रथम कृष्टिका चरम समयवेदक होता है (२) । संज्वलनचतुष्कके अनुभागसत्त्वकी जो पूर्व-प्रवृत्त अनुसमय अपवर्तना है, वह उसी प्रकारसे होती रहती है (३) । चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दो मास और चालीस दिवसप्रमाण होता है (४) । चारों संज्वलनोंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त कम छह वर्ष और आठ मासप्रमाण होता है (५) । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्षप्रमाण होता है (६) । घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण होता है (७) । शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है (८) ॥११२९-११३८॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर समयमें क्रोधकी द्वितीय कृष्टिके प्रदेशाग्रको अपकर्षणकर क्रोधकी प्रथमस्थितिको करता है । उस समय क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें सत्त्वरूप जो दो समय कम दो

करेदि । ११४०. ताधे कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए संतकम्मं दो आवलियबंधा दुसमयूणा सेसा, जं च उदयावलियं पविट्ठं तं च सेसं पढमकिट्टीए । ११४१. ताधे कोहस्स विदियकिट्टीवेदगो । ११४२. जो कोहस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी सो चेव कोहस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी कायव्वो । ११४३. तं जहा । ११४४. उदिण्णाणं किट्टीणं बज्झमाणीणं किट्टीणं, विणासिज्जमाणीणं अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं बज्झमाणेण च पदेसग्गेण संछुब्भमाणेण च पदेसग्गेण णिव्वत्तिज्जमाणियाणं ।

११४५. एत्थ संकममाणयस्स पदेसग्गस्स विधिं वत्तइस्सामो । ११४६. तं जहा । ११४७. कोधविदियकिट्टीदो पदेसग्गं कोहतदियं च माणपढमं च गच्छदि । ११४८. कोहस्स तदियादो किट्टीदो माणस्स पढमं चेव गच्छदि । ११४९. माणस्स पढमादो किट्टीदो माणस्स विदियं तदियं, मायाए पढमं च गच्छदि । ११५०. माणस्स विदियकिट्टीदो माणस्स तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि । ११५१. माणस्स तदियकिट्टीदो मायाए पढमं गच्छदि । ११५२. मायाए पढमादो पदेसग्गं मायाए विदियं तदियं च, लोभस्स पढमकिट्टिं च गच्छदि । ११५३. मायाए विदियादो किट्टीदो पदेसग्गं मायाए तदियं लोभस्स पढमं च गच्छदि । ११५४. मायाए तदियादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स पढमं गच्छदि । ११५५. लोभस्स पढमादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स विदियं च तदियं च गच्छदि । ११५६. लोभस्स विदियादो पदेसग्गं लोभस्स तदियं गच्छदि ।

आवलीप्रमित नवकबद्ध प्रदेशाग्र शेष हैं, वे और उदयावलीमें प्रविष्ट जो प्रदेशाग्र हैं वे प्रथम कृष्टिमें शेष रहते हैं। उस समय क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका प्रथम समयवेदक होता है। क्रोधकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो विधि कही गई है, वही विधि क्रोधकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी भी कहना चाहिए। वह इस प्रकार है–उदीर्ण कृष्टियोंकी, बध्यमान कृष्टियोंकी, विनाशको जानेवाली कृष्टियोंकी, बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्त्यमान अपूर्व-कृष्टियोंकी तथा संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे भी निर्वर्त्यमान अपूर्वकृष्टियोंकी विधि प्रथम संग्रह-कृष्टिकी प्ररूपणाके समान कहना चाहिए ॥११३९-११४४॥

चूर्णिसू०–अब यहाँपर संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रकी विधिको कहेंगे। वह विधि इस प्रकार है–क्रोधकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र क्रोधकी तृतीय और मानकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मानकी प्रथम कृष्टिको ही प्राप्त होता है। मानकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र मानकी द्वितीय और तृतीय तथा मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मानकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मानकी तृतीय और मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मानकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी द्वितीय और तृतीय तथा लोभकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी तृतीय और लोभकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। लोभकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र

११५७. जहा कोहस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणो चदुण्हं कसायाणं पढमकिट्टीओ बंधदि किमेवं चेव कोधस्स विदियकिट्टिं वेदेमाणो चदुण्हं कसायाणं विदियकिट्टीओ बंधदि, आहो ण, वत्तव्वं ? ११५८. किध खु[1] । ११५९. समासलक्खणं भणिस्सामो । ११६०. जस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स कसायस्स तं किट्टिं बंधदि, सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ बंधदि ।

११६१. कोधविदियकिट्टीए पढमसमए वेदगस्स एक्कारससु संगहकिट्टीसु अंतर-किट्टीणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । ११६२. तं जहा । ११६३. सव्वत्थोवाओ माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ । ११६४. विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११६५. तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११६६. कोहस्स तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११६७. मायाए पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११६८. विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११६९. तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसा-हियाओ । ११७०. लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११७१. विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११७२. तदियाए

लोभकी द्वितीय और तृतीय कृष्टिको प्राप्त होता है । लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभ-की तृतीय कृष्टिको ही प्राप्त होता है ॥११४५-११५६॥

शंका—जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाला चारों कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको बाँधता है, उसी प्रकार क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवाला क्या चारों ही कषायोंकी द्वितीय कृष्टियोंको बाँधता है, अथवा नहीं बाँधता है ? इसका उत्तर क्या है, कहिए ? ॥११५७–११५८॥

समाधान—उक्त आशंकाका संक्षेप समाधान कहेंगे—जिस कषायकी जिस कृष्टिका वेदन करता है उस कषायकी उस कृष्टिको बाँधता है । तथा शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टियों-को बाँधता है ॥११५९-११६०॥

चूर्णिसू०—अब क्रोधकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवाले क्षपकके प्रथम समयमें दिखाई देनेवाली ग्यारह संग्रहकृष्टियोंमें अन्तरकृष्टियोंके अल्पबहुत्वको कहेंगे । वह इस प्रकार है—मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ सबसे कम हैं । इससे मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तर-कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे मायाकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे

१ कथं खलु स्यात्, कोऽत्र निर्णय इति ? जयध०

संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । ११७३. कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ संखेज्जगुणाओ । ११७४. पदेसग्गस्स वि एवं चेव अप्पाबहुअं ।

११७५. कोहस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगालपडिआगालो वोच्छिण्णो । ११७६. तिस्से चेव पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए ताहे कोहस्स विदियकिट्टीए चरिम-समयवेदगो । ११७७. ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बे मासा वीसं च दिवसा देसूणा । ११७८. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो वासपुधत्तं । ११७९. सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । ११८०. संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्मं पंच वस्साणि चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा । ११८१. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्सस-हस्साणि । ११८२. णामा-गोद-वेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।

११८३. तदो से काले कोहस्स तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । ११८४. ताधे कोहस्स तदियसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । ११८५. तासिं चेव असंखेज्जा भागा बज्झंति । ११८६. जो विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी सो चेव विधी तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स वि कायव्वो ।

लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं । इससे क्रोधकी द्वितीय संग्रह-कृष्टिमें अन्तरकृष्टियाँ संख्यातगुणी हैं । इन अन्तरकृष्टियोंके प्रदेशाग्रका भी अल्पबहुत्व इसी प्रकार जानना चाहिए ॥११६१-११७४॥

चूर्णिसू०–क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवाले क्षपकके जो प्रथम स्थिति है, उस प्रथम स्थितिमें आवली और प्रत्यावलीकालके शेष रह जानेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । उस ही प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर उस समय क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका चरमसमयवर्ती वेदक होता है । उस समयमें चारों संज्व-लन कषायोंका स्थितिबन्ध दो मास और कुछ कम बीस दिवसप्रमाण है । शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण है । उस समय चारों संज्वलनोंका स्थितिसत्त्व पाँच वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम चार मास-प्रमाण है । शेष तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्षप्रमाण है । नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण है ॥११७५-११८२॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर समयमें क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है । उस समयमें क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंके असं-ख्यात बहुभाग उदीर्ण होते हैं और उन्हींके असंख्यात बहुभाग बँधते हैं । (इतना विशेष है कि उदीर्ण होनेवाली अन्तरकृष्टियोंसे बँधनेवाली अन्तरकृष्टियोंका परिमाण विशेष हीन होता है ।) जो विधि द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी कही गई है; वही विधि तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी भी प्ररूपणा करना चाहिए ॥११८३-११८६॥

११८७. तदियकिट्टिं वेदेमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए चरिमसमयकोधवेदगो। ११८८. जहण्णगो ठिदिउदीरगो। ११८९. ताधे ट्ठिदिबंधो संजलणाणं दो मासा पडिवुण्णा। ११९०. संतकम्मं चत्तारि वस्साणि पुण्णाणि।

११९१. से काले माणस्स पढमकिट्टिमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। ११९२. जा एत्थ सव्वमाणवेदगद्धा तिस्से वेदगद्धाए तिभागमेत्ता पढमट्ठिदी। ११९३ तदो माणस्स पढमकिट्टिं वेदेमाणो तिस्से पढमकिट्टीए अंतरकिट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। ११९४. तदो उदिण्णाहिंतो विसेसहीणाओ बंधदि। ११९५. सेसाणं कसायाणं पढमसंगहकिट्टीओ बंधदि। ११९६. जेणेव विहिणा कोधस्स पढमकिट्टी वेदिदा, तेणेव विधिणा माणस्स पढमकिट्टिं वेदयदि। ११९७. किट्टीविणासणे बज्झमाणएण संकामिज्जमाणएण च पदेसग्गेण अपुव्वाणं किट्टीणं करणे किट्टीणं बंधोदयणिव्वग्गणकरणे एदेसु करणेसु णत्थि णाणत्तं, अण्णेसु च अभणिदेसु। ११९८. एदेण कमेण माणपढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाधे समयाहियावलियसेसा ताधे तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो मासो वीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा। ११९९. संतकम्मं तिण्णि वस्साणि चत्तारि मासा च अंतोमुहुत्तूणा।

चूर्णिसू०–तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथम स्थिति है, उस प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवलीके शेप रह जानेपर चरमसमयवर्ती क्रोधवेदक होता है और उसी समयमें ही संज्वलनक्रोधकी जघन्य स्थितिका उदीरक होता है। उस समय चारों संज्वलन कपायोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण दो मास है और स्थितिसत्त्व परिपूर्ण चार वर्षप्रमाण है ॥११८७-११९०॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर समयमें मानकी प्रथम कृष्टिका अपकर्पण करके प्रथमस्थितिको करता है। यहाँपर जो संज्वलनमानका सर्ववेदककाल है, उस वेदककालके त्रिभागमात्र प्रथमस्थिति है। तब मानकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवाला उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग वेदन करता है और तभी उन उदीर्ण हुई कृष्टियोंसे विशेष हीन कृष्टियोंको बाँधता है। तथा शेप कपायोंकी प्रथम संग्रहकृष्टियोंको ही बाँधता है। जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन किया है उस ही विधिसे मानकी प्रथम कृष्टिका वेदन करता है। कृष्टियोंके विनाश करनेमें, बध्यमान और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्वकृष्टियोंके करनेमें, तथा कृष्टियोंके बन्ध और उदयसम्बन्धी निर्वर्गणाकरणमें अर्थात् अनन्त गुणहानिरूप अपसरणोंके करनेमें, इतने करणोंमें तथा अन्य नहीं कहे गये करणोंमें कोई विभिन्नता नहीं है। इस क्रमसे मानकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथम स्थिति है, उस प्रथम स्थितिमें जब एक समय अधिक आवली शेष रहती है, तब तीनों संज्वलन कषायोंका स्थितिबन्ध एक मास और अन्तर्मुहूर्त कम बीस दिवस है, तथा स्थितिसत्त्व तीन वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम चार मास है ॥११९१-११९९॥

१२००. से काले माणस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । १२०१. तेणेव विहिणा संपत्तो माणस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से समयाहियावलियसेसा त्ति । १२०२. ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो दस च दिवसा देसूणा । १२०३. संतकम्मं दो वस्साणि अट्ठ च मासा देसूणा ।

१२०४. से काले माणतदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । १२०५. तेणेव विहिणा संपत्तो माणस्स तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से आवलिया समयाहियमेत्ती सेसा त्ति । १२०६. ताधे माणस्स चरिमसमयवेदगो । १२०७. ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो पडिवुण्णो । १२०८. संतकम्मं वे वस्साणि पडिवुण्णाणि ।

१२०९. तदो से काले मायाए पढमकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । १२१०. तेणेव विहिणा संपत्तो मायापढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से समयाहियावलिया सेसा त्ति । १२११. ताधे ठिदिबंधो दोण्हं संजलणाणं पणुवीसं दिवसा देसूणा । १२१२. ट्ठिदिसंतकम्मं वस्समट्ठ च मासा देसूणा ।

१२१३. से काले मायाए विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथम स्थितिको करता है और उसी ही विधिसे, मानकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथम स्थिति है, उसमें एक समय अधिक आवली शेष रहने तक संप्राप्त होता है, अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है । उस समय तीनों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध एक मास और कुछ कम दश दिवस है । तथा स्थितिसत्त्व दो वर्ष और कुछ कम आठ मास है ॥१२००-१२०३॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें मानकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है । और उसी ही विधिसे मानकी तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथमस्थिति है, उसमें एक समय अधिक आवली शेष रहने तक सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है । उस समय वह मानका चरमसमयवेदक होता है । तब तीनों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण एक मास है और स्थितिसत्त्व परिपूर्ण दो वर्ष है ॥१२०४-१२०८॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है और उसी ही विधिसे, मायाकी प्रथमकृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथमस्थिति है, उसमें एक समय अधिक आवली शेष रहने तक सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है । उस समय दोनों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध कुछ कम पच्चीस दिवस है । तथा स्थितिसत्त्व एक वर्ष और कुछ कम आठ मास है ॥१२०९-१२१२॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है । वह मायाकी द्वितीय कृष्टिका वेदक भी उसी ही विधिसे मायाकी

१२१४. सो वि मायाए विदियकिट्टिवेदगो तेणेव विहिणा संपत्तो मायाए विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिया समयाहिया सेसा त्ति। १२१५.ताधे ट्ठिदिबंधो बीसं दिवसा देसूणा। १२१६.ट्ठिदिसंतकम्मं सोलस मासा देसूणा।

१२१७. से काले मायाए तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। १२१८. तेणेव विहिणा संपत्तो मायाए तदियकिट्टिं वेदगस्स पढमट्ठिदीए समयाहिया-वलिया सेसा त्ति। १२१९. ताधे मायाए चरिमसमयवेदगो। १२२०. ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अद्धमासो पडिवुण्णो। १२२१. ट्ठिदिसंतकम्ममेकं वस्सं पडि-वुण्णं। १२२२. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो मासपुधत्तं। १२२३. तिण्हं घादि-कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। १२२४. इदरेसिं कम्माणं [ट्ठिदि-बंधो संखेज्जाणि वस्साणि] ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्साणि।

१२२५. तदो से काले लोभस्स पढमकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। १२२६. तेणेव विहिणा संपत्तो लोभस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स पढमट्ठिदीए समयाहियावलिया सेसा त्ति। १२२७. ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं १२२८. ट्ठिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं। १२२९. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवस-पुधत्तं। १२३०. सेसाणं कम्माणं वासपुधत्तं। १२३१. घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं

द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवली शेष रहने तक सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है। उस समय दोनों संज्वलनों-का स्थितिबन्ध कुछ कम बीस दिवसप्रमाण है। तथा स्थितिसत्त्व कुछ कम सोलह मास है ॥१२१३-१२१६॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथम स्थितिको करता है। और उसी ही विधिसे मायाकी तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवाले-की प्रथमस्थितिके एक समय अधिक आवली शेष रहने तक सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है। तब वह मायाका चरमसमयवेदक होता है। उस समयमें दोनों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण अर्ध मास है। स्थितिसत्त्व परिपूर्ण एक वर्ष है। शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध मासपृथक्त्व तथा स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है। इतर अर्थात् आयुके विना शेष तीन अघातिया कर्मोंका (स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष है और) स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष है ॥१२१७-१२२४॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथम स्थितिको करता है और उसी ही विधिसे लोभकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेकी प्रथम स्थितिके एक समय अधिक आवली शेष रहने तक सर्व कार्य करता हुआ चला जाता है। उस समय संज्वलन लोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है। तथा स्थितिसत्त्व भी अन्तर्मुहूर्त है। तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्व

संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १२३२. सेसाणं कम्माणं असंखेज्जाणि वस्साणि ।

१२३३. तत्तो से काले लोभस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि । १२३४. ताधे चेव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च पदेसग्गमोकड्डियूण सुहुमसांपराइयकिट्टीओ[1] णाम करेदि । १२३५. तासिं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं कम्हि ट्ठाणं ? १२३६. तासिं ट्ठाणं लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो ।

१२३७. जारिसी कोहस्स पढमसंगहकिट्टी, तारिसी एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी ।

है । घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष है ॥१२२५-१२३२॥

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् अनन्तरकालमें लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथम स्थितिको करता है । उस ही समयमें लोभकी द्वितीय कृष्टिसे और तृतीय कृष्टिसे भी प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके सूक्ष्मसाम्परायिक नामवाली कृष्टियोंको करता है ॥१२३३-१२३४॥

शंका–उन सूक्ष्मसाम्परायिक-कृष्टियोंका अवस्थान कहाँ है ? ॥१२३५॥

समाधान–उनका अवस्थान लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके नीचे है ॥१२३६॥

विशेषार्थ–संज्वलन लोभकषायके अनुभागको बादरसाम्परायिक कृष्टियोंसे भी अनन्तगुणित हानिके रूपसे परिणमित कर अत्यन्त सूक्ष्म या मन्द अनुभागरूपसे अवस्थित करनेको सूक्ष्मसाम्परायिक-कृष्टिकरण कहते हैं । सर्व-जघन्य बादरकृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टिका भी अनुभाग अनन्तगुणित हीन होता है । इसी बातको चूर्णिकारने उक्त शंका-समाधानसे स्पष्ट किया है कि सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका स्थान लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके नीचे है । इन सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी रचना संज्वलन-लोभकी द्वितीय और तृतीय कृष्टिके प्रदेशाग्रको लेकर होती है । लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिका वेदन करनेवाला उस कृष्टि वेदनके प्रथम समयमें ही सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी रचना करना प्रारंभ करता है । यदि संज्वलनलोभके द्वितीय त्रिभागमें सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी रचना प्रारम्भ न करे, तो तृतीय त्रिभागमें सूक्ष्मकृष्टिके वेदकरूपसे परिणमन नहीं हो सकता है ।

अब चूर्णिकार सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके आयाम विशेषको बतलाते हुए उसका और भी स्पष्टीकरण करते हैं–

चूर्णिसू०–जैसी संज्वलन क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है, वैसी ही यह सूक्ष्मसाम्परायिक-कृष्टि भी है ॥१२३७॥

विशेषार्थ–इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि शेष संग्रहकृष्टियोंके आयामको देखते हुए अपने आयामसे द्रव्यमाहात्म्यकी अपेक्षा संख्यातगुणी थी, उसी प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टि भी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको छोड़कर

१ सुहुमसांपराइयकिट्टीणं किं लक्खणमिदि चे बादरसांपराइयकिट्टीहिंतो अणंतगुणहाणीए परिणमिय लोभसंजलणाणुभागस्सावट्ठाणं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं लक्खणमवहारेयव्वं । जयध०

१२३८. कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ थोवाओ। १२३९. कोहे संछुद्धे माणस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। १२४०. माणे संछुद्धे मायाए पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। १२४१. मायाए संछुद्धाए लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। १२४२. सुहुमसांपराइय-किट्टीओ जाओ पढमसमये कदाओ ताओ विसेसाहियाओ। १२४३. एसो विसेसो अणंतराणंतरेण संखेज्जदिभागो।

शेष सर्व संग्रहकृष्टियोंके कृष्टिकरणकालमें समुपलब्ध आयामसे संख्यातगुणित आयामवाली जानना चाहिए। इसका कारण यह है कि मोहनीयकर्मका सर्व द्रव्य इसके आधाररूपसे ही परिणमन करनेवाला है। अथवा जैसे लक्षणवाली क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि अपूर्व स्पर्धकोंके अधस्तनभागमें अनन्तगुणित हीन की गई थी, उसी प्रकारके लक्षणवाली यह सूक्ष्मसाम्परा-यिक कृष्टि भी लोभकी तृतीय बादरसाम्परायिक कृष्टिके अधस्तनभागमें अनन्तगुणित हीन की जाती है। अथवा जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि जघन्य कृष्टिसे लगाकर उत्कृष्ट कृष्टिपर्यन्त अनन्तगुणी होती गई थी, उसी प्रकारसे यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि भी अपनी जघन्यकृष्टिसे लगाकर उत्कृष्ट कृष्टि तक अनन्तगुणित होती जाती है। यहाँ चूर्णिकारने जिस किसी भी कृष्टिके साथ सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकी समानता न बताकर क्रोधकी प्रथम कृष्टिके साथ बतलाई, उसका कारण सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिका आयाम विशेष-बतलाना है।

अब चूर्णिकार इसी सूक्ष्मसाम्परायिक-कृष्टिके आयामविशेष-जनित माहात्म्यको बत-लानेके लिए अल्पबहुत्वका कथन करते हैं—

चूर्णिसू०—क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियाँ सबसे कम हैं। (क्योंकि, उनके आयामका प्रमाण तेरह-बटे चौबीस ($\frac{13}{24}$) है।) क्रोधके संक्रमित होनेपर अर्थात् क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिको मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रक्षिप्त करनेपर मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। (क्योंकि, उनका प्रमाण सोलह बटे चौबीस ($\frac{16}{24}$) है।) मानके संक्रमित होनेपर मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। (उनका प्रमाण उन्नीस बटे चौबीस ($\frac{19}{24}$) है।) मायाके संक्रमित होनेपर लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर कृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। (क्योंकि उनका प्रमाण बाईस बटे चौबीस ($\frac{22}{24}$) है।) जो सूक्ष्मसाम्परायिक-कृष्टियाँ प्रथम समयमें की गई हैं वे विशेष अधिक हैं। (क्योंकि उनके आयामका प्रमाण चौबीस बटे चौबीस ($\frac{24}{24}$) है।) यह विशेष अनन्तर अनन्तररूपसे संख्यातवें भाग है ॥१२३८-१२४३॥

विशेषार्थ—इस उपर्युक्त अल्पबहुत्वमें क्रोधादि कषायोंकी प्रथम संग्रहकृष्टि-सम्बन्धी अन्तरकृष्टियोंकी हीनाधिकता बतलानेके लिए जो अंक-संख्या दी गई है, उसका स्पष्टीकरण यह है कि प्रदेशबन्धकी अपेक्षा आये हुए समयप्रबद्धके द्रव्यका जो पृथक्-पृथक् कर्मोंमें विभाग होता है, उसके अनुसार मोहनीय कर्मके हिस्सेमें जो भाग आता है, उसका भी

१२४४. सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमए कदाओ ताओ बहुगाओ। १२४५. विदियसमए अपुव्वाओ कीरंति असंखेज्जगुणहीणाओ। १२४६. अणंतरोवणि-

---

दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय आदि अवान्तर प्रकृतियोंमें विभाग होता है, तदनुसार मोहनीय कर्मको प्राप्त द्रव्यका आठवाँ भाग संज्वलनक्रोधको मिलता है। पुनः संज्वलनक्रोधका यह आठवाँ भाग भी उसकी तीनों संग्रहकृष्टियोंमें विभक्त होता है, अतएव क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिका द्रव्य मोहनीय कर्मके सकल द्रव्यकी अपेक्षा चौबीसवाँ भाग पड़ता है। नोकषायका सत्त्वरूपसे अवस्थित सर्व द्रव्य भी क्रोधकी इस प्रथम संग्रहकृष्टिमें ही पाया जाता है। उसके साथ इसका द्रव्य मिलानेपर तेरह-बटे चौबीस भाग ($\frac{13}{24}$) हो जाते हैं, अतः क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके अन्तर्गत रहनेवाली अन्तरकृष्टियोंका प्रमाण भी उतना ही सिद्ध हुआ। तेरह-बटे चौबीस भाग प्रमाणवाली क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि जिस समय क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें संक्रमित की, उस समय उसकी अन्तरकृष्टिका प्रमाण चौदह-बटे चौबीस ($\frac{14}{24}$) होता है। पुनः क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिको तृतीय संग्रहकृष्टिमें संक्रान्त करनेपर उसका प्रमाण पन्द्रह-बटे चौबीस ($\frac{15}{24}$) होता है। पुनः क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिको मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संक्रान्त करनेपर उसका प्रमाण सोलह-बटे चौबीस ($\frac{16}{24}$) हो जाता है। इस प्रकार तेरह-बटे चौबीस ($\frac{13}{24}$) भागप्रमाणवाली क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अपेक्षा सोलह-बटे चौबीस ($\frac{16}{24}$) भागप्रमाणवाली मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिका प्रमाण विशेष अधिक सिद्ध हो जाता है; क्योंकि इसमें उसकी अपेक्षा तीन-बटे चौबीस ($\frac{3}{24}$) और अधिक मिल गये हैं। मानके मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संक्रान्त होनेपर उसकी अन्तरकृष्टियोंका प्रमाण विशेष अधिक अर्थात् उन्नीस-बटे चौबीस ($\frac{19}{24}$) हो जाता है, क्योंकि मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अपेक्षा मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें मानकी द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टिका एक-एक भाग, तथा अपना एक भाग इस प्रकार तीन बटे चौबीस ($\frac{3}{24}$) भाग और उसमें मिल जाते हैं, इस कारणसे मायाकी प्रथमसंग्रहकृष्टिसम्बन्धी अन्तरकृष्टियोंका प्रमाण विशेष अधिक सिद्ध हो जाता है। मायाके संक्रान्त होनेपर लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टियोंका प्रमाण विशेष अधिक अर्थात् बाईस-बटे चौबीस ($\frac{22}{24}$) भाग हो जाता है, क्योंकि उसमें मायाकी द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टिका एक-एक भाग, तथा अपना एक भाग, ऐसे तीन भाग और उसमें अधिक बढ़ जाते हैं। जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियाँ प्रथम समयमें की जाती हैं, उनका प्रमाण विशेष अधिक अर्थात् चौबीस-बटे चौबीस ($\frac{24}{24}$) भागप्रमाण हो जाता है, क्योंकि उनमें लोभकी द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टिसम्बन्धी दो भाग और मिल जाते हैं। इस प्रकारसे उत्तरोत्तर अधिक होनेवाले इस विशेषका प्रमाण अपने पूर्ववर्ती प्रमाणके संख्यातवें भागप्रमित सिद्ध हो जाता है।

चूर्णिसू०–प्रथम समयमें जो सूक्ष्मसाम्पायिककृष्टियाँ की जाती है, वे बहुत हैं। द्वितीय समयमें जो अपूर्वकृष्टियाँ की जाती हैं, वे असंख्यातगुणी हीन होती हैं। इस प्रकार

धाए सव्विस्से सुहुमसांपराइयकिट्टीकरणद्धाए अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए कीरंति । १२४७. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु जं पढमसमये पदेसग्गं दिज्जदि तं थोवं । १२४८. विदियसमये असंखेज्जगुणं । १२४९. एवं जाव चरिमसमयादो त्ति असंखेज्जगुणं ।

१२५०. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमये दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । १२५१. तं जहा । १२५२. जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए विसेसहीणमणंतभागेण । तदियाए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए गंतूण चरिमाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं । १२५३. चरिमादो सुहुमसांपराइयकिट्टीदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए दिज्जमाणगं पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । १२५४. तदो विसेसहीणं । १२५५. सुहुमसांपराइयकिट्टीकारगो विदियसमये अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाओ । १२५६. ताओ दोसु ट्ठाणेसु करेदि । १२५७. तं जहा । १२५८. पढमसमये कदाणं हेट्ठा च अंतरे च । १२५९. हेट्ठा थोवाओ । १२६०. अंतरेसु असंखेज्जगुणाओ ।

१२६१. विदियसमये दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेढिपरूवणा । १२६२.

अनन्तरोपनिधारूप श्रेणीकी अपेक्षा सम्पूर्ण सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकरणके कालमें अपूर्व सूक्ष्मसाम्पायिक कृष्टियाँ असंख्यातगुणित हीन श्रेणीके क्रमसे की जाती हैं । प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके भीतर जो प्रदेशाग्र दिया जाता है, वह स्तोक है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकरण-कालके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ॥१२४४-१२४९॥

चूर्णिसू०—अब सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा करेंगे । वह इस प्रकार है—जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है । द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तरोपनिधारूप श्रेणीके क्रमसे लगाकर अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष-हीन विशेष-हीन दिया जाता है । अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिसे जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित हीन है । पुनः इसके आगे अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टि तक सर्वत्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि-कारक द्वितीय समयमें असंख्यातगुणित हीन अपूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करता है । उन कृष्टियोंको वह दो स्थानोंमें करता है । यथा—प्रथम समयमें की गई कृष्टियोंके नीचे और अन्तरालमें भी । कृष्टियोंके नीचे की जानेवाली कृष्टियाँ थोड़ी होती हैं और अन्तरालोंमें की जानेवाली कृष्टियाँ असंख्यातगुणी होती हैं ॥१२५०-१२६०॥

चूर्णिसू०—अब द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा करते हैं—

जा विदियसमये जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी तिस्से पदेसग्गं दिज्जदि बहुअं। १२६३. विदियाए किट्टीए अणंतभागहीणं। १२६४. एवं गंतूण पढमसमये जा जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी तत्थ असंखेज्जदिभागहीणं। १२६५. तत्तो अणंतभागहीणं जाव अपुव्वं णिव्वत्तिज्जमाणगं ण पावदि। १२६६. अपुव्वाए णिव्वत्तिज्जमाणिगाए किट्टीए असंखेज्जदिभागुत्तरं। १२६७ पुव्वणिव्वत्तिदं पडिवज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागहीणं। १२६८. परं परं पडिवज्जमाणगस्स अणंतभागहीणं। १२६९. जो विदियसमए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स विधी सो चेव विधी सेसेसु वि समएसु जाव चरिमसमयबादरसांपराइयो त्ति।

१२७०. सुहुमसांपराइयकिट्टीकारगस्स किट्टीसु दिस्समाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं। १२७१. तं जहा। १२७२. जहण्णियाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं बहुगं। तत्तो अणंतभागहीणं जाव चरिमसुहुमसांपराइयकिट्टि त्ति। १२७३. तदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। १२७४. एसा सेढिपरूवणा जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति। १२७५. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स वि किट्टीसु दिस्समाणपदेसग्गस्स सा चेव सेढिपरूवणा। १२७६. णवरि सेचीयादो[1] जदि

द्वितीय समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है, उसमें बहुत प्रदेशाग्र दिया जाता है। द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे हीन दिया जाता है। इस क्रमसे जाकर प्रथम समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है, उसमें असंख्यातवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। और इसके आगे निर्वर्त्यमान अपूर्वकृष्टि जब तक प्राप्त नहीं होती है, तब तक अनन्तवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। अपूर्व निर्वर्त्यमान कृष्टिमें असंख्यातवें भाग अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है। पूर्व निर्वर्तित कृष्टिको प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्रका असंख्यातवाँ भाग हीन दिया जाता है। इससे आगे उत्तरोत्तर प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्रका अनन्तवाँ भाग हीन दिया जाता है। द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी जो विधि पहले कही गई है, वही विधि शेष समयोंमें भी जानना चाहिए। और यह क्रम बादरसाम्परायिकके चरम समय तक ले जाना चाहिए ॥१२६१-१२६९॥

चूर्णिसू०—अब सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि-कारककी कृष्टियोंमें दृश्यमान (दिखाई देने वाले) प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें दृश्यमान प्रदेशाग्र बहुत है। इससे आगे चरम सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टि तक वह दृश्यमान प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे हीन है। तदनन्तर जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। यह श्रेणीप्ररूपणा (सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि-कारकके प्रथम समयसे लगाकर) चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक तक करना चाहिए ॥१२७०-१२७४॥

चूर्णिसू०—प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिककी भी कृष्टियोंमें दृश्यमान प्रदेशाग्रकी

१ सेचीयादो सेचीयसंभवमस्सियूण, संभवसच्चमस्सियूण। जयध०

बादरसांपराइयकिट्टीओ धरेदि तत्थ पदेसग्गं विसेसहीणं होज्ज। १२७७. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणीसु लोभस्स चरिमादो बादरसांपराइयकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं। १२७८. लोभस्स विदियकिट्टीदो चरिमबादरसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। १२७९. लोभस्स विदियकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं।

१२८०. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहस्स विदियकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं। १२८१. कोहस्स तदियकिट्टीदो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८२. माणस्स पढमादो [संगह-] किट्टीदो मायाए पढमकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८३. माणस्स विदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८४. माणस्स तदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८५. मायाए पढमसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८६. मायाए विदियादो संगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए [संगहकिट्टीए] संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८७. मायाए तदियादो संगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं।

यह उपर्युक्त ही श्रेणीप्ररूपणा है। केवल इतनी विशेषता है कि यदि वह सेचीयसे अर्थात् संभावना-सत्यसे बादरसाम्परायिक-कृष्टियोंको धारण करता है, तो वहाँपर प्रदेशाग्र विशेष हीन होगा। की जानेवाली सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें लोभकी चरम बादरसाम्परायिक कृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टिमें अल्प प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। लोभकी द्वितीय कृष्टिसे चरम बादरसाम्परायिक कृष्टिमें संख्यातगुणित प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। (इसका कारण यह है कि लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके प्रदेशाग्रसे द्वितीय संग्रहकृष्टिके प्रदेशाग्र संख्यातगुणित हैं।) लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें संख्यातगुणित प्रदेशाग्र संक्रमण करता है ॥१२७५-१२७९॥

चूर्णिसू०—प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदकके अर्थात् कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तर कालमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका अपकर्षण कर उसका वेदन करनेवालेके क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अल्प प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मायाकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष

१२८८. लोभस्स पढमकिट्टीदो लोभस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२८९. लोभस्स चेव पढमसंगहकिट्टीदो तस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२९०. कोहस्स पढमसंगहकिट्टीदो माणस्स पढम-संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। १२९१. कोहस्स चेव पढमसंगहकिट्टीदो कोहस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं। १२९२. कोहस्स पढम [संगह-] किट्टीदो कोहस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखे-ज्जगुणं। १२९३. एसो पदेससंकमो अइक्कंतो वि उक्खेदिदो सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणीसु आसओ त्ति कादूण।

१२९४. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमये दिज्जदि पदेसग्गं थोवं। विदिय-समये असंखेज्जगुणं जाव चरिमसमयादो त्ति ताव असंखेज्जगुणं। १२९५. एदेण कमेण लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिया समयाहिया सेसा त्ति तम्हि समये चरिमसमयबादरसांपराइओ। १२९६. तम्हि चेव समये लोभस्स चरिमबादरसांपराइयकिट्टी संछुब्भमाणा संछुद्धा। १२९७. लोभस्स

अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे उसकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणित प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी ही प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणित प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। यह बादरकृष्टि-सम्बन्धी प्रदेशाग्र-संक्रमण यद्यपि अतिक्रान्त हो चुका है, तथापि की जानेवाली सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें आश्रयभूत मान करके पुनः कहा गया है[1] ॥१२८०-१२९३॥

चूर्णिसू०—सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें अल्प प्रदेशाग्र दिया जाता है। द्वितीय समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस प्रकार बादरसाम्परायिकके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस क्रमसे लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें जिस समय एक समय अधिक आवली शेष रहती है, उस समयमें वह चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक होता है। उस ही समयमें अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अन्तिम समयमें लोभकी संक्रम्यमाण चरम बादर-साम्परायिककृष्टि सामस्त्यरूपसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रान्त हो जाती है। लोभकी

१ पुणरुक्खिविदूण भणिदो। पुणरुच्चाइदूण भणिदो त्ति वुत्तं होइ। जयध०

विदियकिट्टीए वि दो आवलियबंधे समयूणे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च मोत्तूण सेसाओ विदियकिट्टीए अंतरकिट्टीओ संछुब्भमाणीओ संछुद्धाओ ।

१२९८. तम्हि चेव लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं । १२९९. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तस्स अंतो । १३००. णामा-गोद-वेदणीयाणं बादर-सांपराइयस्स जो चरिमो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं हाइदूण वस्सस्स अंतो जादो । १३०१. चरिमसमयबादरसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तं । १३०२. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । १३०३. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।

१३०४. से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो । १३०५. ताधे चेव सुहुम-सांपराइयकिट्टीणं जाओ ट्ठिदीओ तदो ट्ठिदिखंडयमागाइदं । १३०६. तदो पदेसग्ग-मोकड्डियूण उदये थोवं दिण्णं । १३०७. अंतोमुहुत्तद्धमेत्तमसंखेज्जगुणाए सेढीए [देदि] । १३०८. गुणसेढिणिक्खेवो सुहुमसांपराइयद्धादो विसेसुत्तरो । १३०९. गुणसेढिसीसगादो जा अणंतरट्ठिदी तत्थ असंखेज्जगुणं । १३१०. तत्तो विसेसहीणं ताव जाव पुव्वसमये अंतरमासी, तस्स अंतरस्स चरिमादो अंतरट्ठिदीदो त्ति । १३११.

द्वितीय कृष्टिके भी एक समय कम दो आवलीप्रमित नवकबद्ध समयप्रबद्धोंको छोड़कर, तथा उदयावली-प्रविष्ट द्रव्यको छोड़कर शेष द्वितीयकृष्टिकी संक्रम्यमाण अन्तरकृष्टियाँ संक्षुब्ध अर्थात् संक्रमणको प्राप्त हो जाती हैं ॥१२९४-१२९७॥

चूर्णिसू०–उस ही समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है । शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तः अहोरात्र अर्थात् कुछ कम एक दिन-रातप्रमाण होता है । नाम, गोत्र और वेदनीय, इन तीन कर्मोंका बादरसाम्परायिकके जो चरम स्थिति-बन्ध था, वह संख्यात वर्षसहस्रोंसे घटकर अन्तःवर्ष अर्थात् कुछ कम एक वर्षमात्र रह जाता है । चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकके मोहनीय कर्मका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त है । शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात सहस्र वर्ष है । नाम, गोत्र और वेद-नीय इन तीन अघातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष है ॥१२९८-१३०३॥

चूर्णिसू०–तदनन्तर कालमें वह प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत हो जाता है । उस ही समयमें सूक्ष्मसाम्परायिककी जो अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितियाँ हैं, उनसे स्थितिकांडकरूपसे घात करनेके लिए ग्रहण करता है, अर्थात् उन स्थितियोंके संख्यातवें भागको ग्रहण करके स्थितिकांडकघात प्रारम्भ करता है । तदनन्तर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी उत्कीर्यमाण और अनुत्कीर्यमाण स्थितियोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल तक असंख्यातगुणित श्रेणीसे देता है । गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम सूक्ष्मसाम्प-रायिककालसे विशेष अधिक है । गुणश्रेणिशीर्षसे जो अनन्तर स्थिति है उसमें असंख्यात-गुणित प्रदेशाग्रको देता है । इससे आगे अन्तरस्थितियोंमें उत्तरोत्तर विशेष-हीन क्रमसे प्रदे-शाग्र तब तक देता चला जाता है, जब तक कि पूर्व समयमें जो अन्तर था उस अन्तरकी

चरिमादो अंतरट्ठिदीदो पुव्वसमये जा विदियट्ठिदी तिस्से आदिट्ठिदीए दिज्जमाणगं पदेसग्गं संखेज्जगुणहीणं १३१२. तत्तो विसेसहीणं।

१३१३. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जमोकड्डिज्जदि पदेसग्गं तमेदीए सेढीए णिक्खिवदि। १३१४. विदियसमए वि एवं चेव, तदियसमए वि एवं चेव। एस कमो ओकड्डिदूण णिसिंचमाणगस्स पदेसग्गस्स ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं णिल्लेविदं त्ति। १३१५. विदियादो ठिदिखंडयादो ओकड्डिगूण [जं] पदेसग्गमुदये दिज्जदि तं थोवं। १३१६. तदो दिज्जदि असंखेज्जगुणाए सेढीए ताव जाव गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरा एक्का ट्ठिदि त्ति। १३१७. तदो विसेसहीणं। १३१८. एत्तो पाए सुहुमसांपराइयस्स जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिघादो ताव एस कमो।

१३१९. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जं दिस्सदि पदेसग्गं तस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो। १३२०. तं जहा। १३२१. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स उदये दिस्सदि पदेसग्गं थोवं। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं दीसदि। (एवं) ताव जाव (गुणसेढिसीसयं ति।) गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ट्ठिदि त्ति। १३२२. तत्तो विसेसहीणं ताव जाव चरिमअंतरट्ठिदि त्ति। १३२३. तत्तो असंखेज्जगुणं। १३२४. तत्तो

अन्तिम स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती है। चरम अन्तरस्थितिसे पूर्व समयमें जो द्वितीय स्थिति है, उसकी प्रथम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र संख्यातगुणित हीन है। इससे आगे उपरिम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र विशेष हीन है ॥१३०४-१३१२॥

चूर्णिसू०—प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक जिस प्रदेशाग्रका अपकर्षण करता है, उसे इसी श्रेणीके क्रमसे देता है। द्वितीय समयमें भी इसी क्रमसे देता है और तृतीय समयमें भी इसी क्रमसे देता है। इस प्रकार अपकर्षण करके निषिच्यमान प्रदेशाग्रका यह क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक कि सूक्ष्मसाम्परायिकका प्रथम स्थितिकांडक निर्लेपित (समाप्त) होता है। द्वितीय स्थितिकांडकसे अपकर्षण कर जो प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है, वह अल्प है। इससे आगे असंख्यातगुणित श्रेणीके क्रमसे तब तक प्रदेशाग्र दिया जाता है, जब तक कि गुणश्रेणीशीर्षसे उपरिम एक अनन्तर स्थिति प्राप्त होती है। इससे आगे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इस स्थलसे लगाकर सूक्ष्मसाम्परायिकके जब तक मोहनीयकर्मका स्थितिघात होता है, तब तक यह क्रम जारी रहता है ॥१३१३-१३१८॥

चूर्णिसू०—प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके जो प्रदेशाग्र दिखाई देता है, उसकी श्रेणीप्ररूपणाको कहेंगे। वह इस प्रकार है—प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्परायिकके उदयमें अल्प प्रदेशाग्र दिखाई देता है। द्वितीय स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र दखाई देता है। इस प्रकार यह क्रम गुणश्रेणीशीर्ष तक जारी रहता है। तथा गुणश्रेणीशीर्षसे आगे अन्य एक स्थिति तक जारी रहता है। इससे आगे चरम अन्तर-स्थिति तक विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखाई देता है। तदनन्तर असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र दिखाई देता है। तत्पश्चात विशेष हीन प्रदे-

विसेसहीणं । १३२५. एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयअणिल्लेविदं ति । १३२६. पढमे ट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे [जं] उदये पदेसग्गं दिस्सदि तं थोवं । विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं । एवं ताव जाव गुणसेढिसीसयं । गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ट्ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि । १३२७. तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयस्स ट्ठिदि त्ति ।

१३२८. सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडए पढमसमयणिल्लेविदे गुणसेढिं मोत्तूण केण कारणेण सेसिगासु ट्ठिदीसु एयगोवुच्छा सेढी जादा त्ति ? एदस्स साहणट्ठमिमाणि अप्पाबहुअपदाणि । १३२९. तं जहा । १३३०. सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयद्धा । १३३१. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । १३३२. अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । १३३३. सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं मोहणीये संखेज्जगुणं । १३३४. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । १३३५. लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ ताव लोभस्स विदियकिट्टीदो लोभस्स तदियकिट्टीए संछुब्भदि पदेसग्गं, तेण परं ण संछुब्भदि; सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संछुब्भदि । १३३६. लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढम-

शाग्र दिखाई देता है । यह क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक कि सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके समाप्त होनेका चरम समय नहीं प्राप्त होता है । प्रथम स्थितिकांडकके निर्लेपित होनेपर जो प्रदेशाग्र उदयमें दिखाई देता है, वह अल्प है । द्वितीय स्थितिमें जो प्रदेशाग्र दिखाई देता है, वह असंख्यातगुणित है । इस प्रकार यह क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक कि गुणश्रेणीशीर्ष प्राप्त होता है । गुणश्रेणीशीर्षसे आगे एक अन्य स्थिति प्राप्त होने तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र दिखाई देता है । तत्पश्चात् मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-तक विशेप हीन प्रदेशाग्र दिखाई देता है ॥१३१९-१३२७॥

चूर्णिसू०–सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेके पश्चात् प्रथम समयमें गुणश्रेणीको छोड़कर शेष स्थितियोंमें किस कारणसे एक गोपुच्छारूप श्रेणी हुई है, इस बातके साधनार्थ ये वक्ष्यमाण अल्पबहुत्व-पद जानने योग्य हैं । वे इस प्रकार हैं-सूक्ष्मसाम्परायिकका काल सबसे कम है । प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका गुणश्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है । अन्तरस्थितियाँ संख्यातगुणी हैं । सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है । प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥१३२८-१३३४॥

चूर्णिसू०—लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथम स्थिति है, उस प्रथम स्थितिकी जब तक तीन आवलियाँ शेष हैं, तब तक लोभकी द्वितीय कृष्टिसे लोभकी तृतीय कृष्टिमें प्रदेशाग्रको संक्रमित करता है । उसके पश्चात् तृतीय कृष्टिमें संक्रमित नहीं

ट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदिय-किट्टी सा सव्वा णिरवयवा सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंता । १३३७. जा विदिय-किट्टी तिस्से दो आवलिया मोत्तूण समयूणे उदयावलियपविट्ठं च सेसं सव्वं सुहुमसांप-राइयकिट्टीसु संकंतं । १३३८. ताधे चरिमसमयबादरसांपराइओ मोहणीयस्स चरिम-समयबंधगो ।

१३३९. से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ । १३४०. ताधे सुहुमसांपराइय-किट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । १३४१. हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ । १३४२. उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ । १३४३. मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टी-ओ असंखेज्जगुणाओ १३४४. सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमं ट्ठिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ट्ठिदिखंडए उक्कीरमाणे जो मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो तस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो । १३४५. तम्हि ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे तदोप्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो । १३४६. जत्तियं सुहुमसांपराइयद्धाए सेसं तत्तियं मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सेसं १३४७. एत्तिगे ।

करता, किन्तु सर्व प्रदेशाग्रको सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित करता है । लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालके जो प्रथम स्थिति है, उस प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवली-के शेष रहने पर उस समय जो लोभकी तृतीय कृष्टि है वह सब निरवयव रूपसे सूक्ष्मसाम्प-रायिक कृष्टियोंमें संक्रान्त होती है । जो द्वितीय कृष्टि है, उसके एक समय कम दो आवली-प्रमित नवकबद्ध समयप्रबद्धको छोड़कर, और उदयावलीप्रविष्ट द्रव्यको भी छोड़कर शेष सर्व-प्रदेशाग्र सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रान्त हो जाता है। उस समय यह क्षपक चरम समय-वर्ती बादरसाम्परायिक और मोहनीयकर्मका चरमसमयवर्ती बन्धक होता है॥१३३५-१३३८॥

चूर्णिसू०–तदनन्तरकालमें वह क्षपक प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होता है । उस समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग उदीर्ण होते हैं । अधस्तनभागमें जो कृष्टियाँ अनुदीर्ण हैं, वे अल्प हैं । उपरिम भागमें जो कृष्टियाँ अनुदीर्ण हैं, वे विशेष अधिक हैं । मध्यमें जो उदीर्ण सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियाँ हैं, वे असंख्यातगुणित हैं । सूक्ष्म-साम्परायिकके संख्यात सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत हो जानेपर जो मोहनीयकर्मका अन्तिम स्थितिकांडक है, उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण किये जानेपर जो मोहनीयकर्मका गुणश्रेणीनिक्षेप है, उस गुणश्रेणीनिक्षेपके उत्तरोत्तर अग्र-अग्र प्रदेशाग्रसे संख्यातवें भाग घात करनेके लिए ग्रहण करता है । उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण हो जानेपर आगे मोहनीयका स्थितिघात नहीं होता है । (केवल अधःस्थितिके द्वारा ही अवशिष्ट रही अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितियाँ निर्जीर्ण होती हैं । किन्तु ज्ञानावरणादिकर्मोंके अनुभागघात इससे ऊपर भी होते रहते हैं ।) सूक्ष्म-साम्परायिकगुणस्थानके कालमें जितना समय शेष है, उतना ही मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व शेष है । (और उस स्थितिसत्त्वको अधःस्थितिके द्वारा निर्जीर्ण करता है ।) इतनी प्ररू-पणा करनेपर सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपककी प्ररूपणा समाप्त हो जाती है ॥१३३९-१३४७॥

१३४८. इदाणिं सेसाणं गाहाणं सुत्तफासो[1] कायव्वो । १३४९. तत्थ ताव दसमी मूलगाहा ।

(१५४) किट्टीकदम्मि कम्मे के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि च के के केसु असंकामगो होदि ॥२०७॥

१३५०. एदिस्से पंच भासगाहाओ । १३५१. तासिं समुक्कित्तणा ।

(१५५) दससु च वस्सस्संतो बंधदि णियमा दु सेसगे अंसे ।
देसावरणीयाइं जेसिं ओवट्टणा अत्थि ॥२०८॥

१३५२. एदिस्से गाहाए विहासा । १३५३. एदीए गाहाए तिण्हं घादि-कम्माणं ट्ठिदिबंधो च अणुभागबंधो च णिद्दिट्ठो । १३५४. तं जहा । १३५५. कोहस्स

चूर्णिसू०–अब शेष गाथाओंका सूत्रस्पर्श करना चाहिए ॥१३४८॥

विशेषार्थ–पूर्वमें अर्थरूपसे विभाषित गाथासूत्रोंका उच्चारण करके गाथाके पदरूप अवयवोंका शब्दार्थ कर लेनेको सूत्रस्पर्श कहते हैं । वह सूत्रस्पर्श इस समय करना आवश्यक है । इसका अभिप्राय यह है कि कृष्टि-सम्बन्धी जो ग्यारह मूलगाथाएँ हैं–उनमेंसे प्रारम्भ-की नौ गाथाओंकी तो विभाषा की जा चुकी है । अन्तिम दो गाथाओंकी विभाषा स्थगित कर दी गई थी, सो वह अब की जाती है ।

चूर्णिसू०–उनमेंसे यह दशवीं मूलगाथा है ॥१३४९॥

मोहनीय कर्मके कृष्टि रूपसे परिणमा देनेपर कौन-कौन कर्मको बाँधता है और कौन-कौन कर्मोंके अंशोंका वेदन करता है ? किन-किन कर्मोंका संक्रमण करता है और किन किन कर्मोंमें असंक्रामक रहता है, अर्थात् संक्रमण नहीं करता है ? ॥२०७॥

इस मूल गाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली पाँच भाष्य-गाथाएँ हैं । उनकी समुत्कीर्तना इस प्रकार है ॥१३५०-१३५१॥

क्रोध-प्रथम कृष्टिवेदकके चरम समयमें शेष कर्मांशोंकी अर्थात् मोहनीयको छोड़कर शेष तीन घातिया कर्मोंकी नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्षप्रमाण स्थितिका बन्ध करता है । घातिया कर्मोंमें जिन-जिन कर्मोंकी अपवर्तना संभव है, उनका देश-घातिरूपसे ही बन्ध करता है । (तथा जिनकी अपवर्तना संभव नहीं है, उनका सर्वघातिरूपसे ही बन्ध करता है ।) ॥२०८॥

चूर्णिसू०–अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–इस गाथाके द्वारा मोहनीय-कर्मको छोड़कर शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध निर्दिष्ट किया

---

१ को सुत्तफासो णाम ? सूत्रस्य स्पर्शः सूत्रस्पर्शः, पुव्वमत्थमुहेण विहासिदाणं गाहासुत्ताणमेण्हि-मुच्चारणपुरस्सरमवयवत्थपरामरसो सुत्तफासो त्ति भणिदं होइ । जयध०

पढमकिट्टिचरिमसमयवेदगस्स तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं परिहाइदूण दसण्हं वस्साणमंतो जादो ।

१३५६. अथाणुभागबंधो-तिण्हं घादिकम्माणं किं सव्वघादी देसघादि त्ति ? १३५७. एदेसिं घादिकम्माणं जेसिमोवट्टणा अत्थि ताणि देसघादीणि बंधदि, जेसिमोवट्टणा णत्थि, ताणि सव्वघादीणि बंधदि । १३५८. ओवट्टणा सण्णा पुव्वं परूविदा ।

१३५९. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । १३६०. तं जहा ।

(१५६) चरिमो बादररागो णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥२०९॥

१३६१. विहासा । १३६२. जहा । १३६३. चरिमसमय-बादरसांपराइयस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिबंधो वासं देसूणं । १३६४. तिण्हं घादिकम्माणं मुहुत्तपुधत्तो ट्ठिदिबंधो ।

१३६५. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । १३६६. तं जहा ।

गया है । वह इस प्रकार है-क्रोधकी प्रथम कृष्टिके चरमसमयवर्ती वेदकके शेष तीनों घातिया कर्मोका स्थितिबन्ध संख्यात-सहस्र वर्षोंसे घटकर दश वर्षोंके अन्तर्वर्ती हो जाता है, अर्थात् अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्षप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ॥१३५२-१३५५॥

शंका-तीनों घातिया कर्मोंका अनुभागबन्ध क्या सर्वघाती होता है, अथवा देशघाती होता है ? ॥१३५६॥

समाधान-इन घातिया कर्मोंमेंसे जिनकी अपवर्तना संभव है, उनका देशघाती अनुभागबन्ध करता है और जिनकी अपवर्तना संभव नहीं है, उनको सर्वघातिरूपसे बाँधता है । अपवर्तना संज्ञाका अर्थ पहले प्ररूपण किया जा चुका है ॥१३५७-१३५८॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१३५९-१३६०॥

चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मको वर्षके अन्तर्गत बाँधता है । तथा शेष जो तीन घातिया कर्म हैं, उन्हें एक दिवसके अन्तर्गत बाँधता है ॥२०९॥

चूर्णिसू०-इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है-चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकके नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध कुछ कम एक वर्षप्रमाण होता है । शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है ॥१३६१-१३६४॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१३६५-१३६६॥

(१५७) चरिमो य सुहुमरागो णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
दिवसस्संतो बंधदि भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं ॥२१०॥

१३६७. विहासा । १३६८. चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं (अट्ठ मुहुत्ता)। १३६९. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता। १३७०. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो।

१३७१. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

(१५८) अध सुदमदि-आवरणे च अंतराइए च देसमावरणं ।
लद्धी यं वेदयदे सव्वावरणं अलद्धी य ॥२११॥

१३७२. लद्धीए विहासा। १३७३. जदि सव्वेसिमक्खराणं खओवसमो गदो तदो सुदावरणं मदिआवरणं च देसघादिं वेदयदि। १३७४. अध एक्कस्स वि अक्खरस्स ण गदो खओवसमो तदो सुद-मदि-आवरणाणि सव्वघादीणि वेदयदि। १३७५. एवमेदेसिं तिण्हं घादिकम्माणं जासिं पयडीणं खओवसमो गदो तासिं पयडीणं देसघादि-

---

चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मको एक दिवसके अन्तर्गत बाँधता है। शेष जो घातिया कर्म हैं, उन्हें भिन्नमुहूर्त-प्रमाण बाँधता है ॥२१०॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके नाम और गोत्र कर्मका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्तप्रमाण होता है। वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध बारह मुहूर्तप्रमाण होता है। शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। ॥१३६७-१३७०॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१३७१॥

मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्ममें जिनकी लब्धि अर्थात् क्षयोपशम-विशेषको वेदन करता है, उनके देशघाति-आवरणरूप अनुभागका वेदन करता है। जिनकी अलब्धि है, अर्थात् क्षयोपशमविशेष सम्पन्न नहीं हुआ है उनके सर्वघाति आवरणरूप अनुभागका वेदन करता है। अन्तराय कर्मका देशघाति-अनुभाग वेदन करता है ॥२११॥

चूर्णिसू०–'लब्धि' इस पदकी विभाषा की जाती है–यदि सर्व अक्षरोंका क्षयोपशम प्राप्त हुआ है, तो वह श्रुतज्ञानावरण और मतिज्ञानावरणको देशघातिरूपसे वेदन करता है। यदि एक भी अक्षरका क्षयोपशम नहीं हुआ अर्थात् अवशिष्ट रह गया, तो मति-श्रुतज्ञानावरण कर्मोंको सर्वघातिरूपसे वेदन करता है। इसी प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मोंकी जिन प्रकृतियोंका क्षयोपशम प्राप्त हुआ है, उन

उदयो। जासिं पयडीणं खओवसमो ण गदो, तासिं पयडीणं सव्वघादि-उदयो।

प्रकृतियोंका देशघाति-अनुभागोदय होता है। तथा जिन प्रकृतियोंका क्षयोपशम प्राप्त नहीं हुआ है, उन प्रकृतियोंका सर्वघाति-अनुभागोदय होता है ॥१३७२-१३७५॥

विशेषार्थ-मतिज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं। क्षयोपशमशक्तिके प्राप्त न होनेको अलब्धि कहते हैं। क्षपकश्रेणीपर चढ़नेके समय जिसके मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणकर्मका सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशम प्राप्त है, अर्थात् जो चौदह पूर्वरूप श्रुतज्ञानका धारक है, और कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, संभिन्नसंश्रोतृबुद्धि और पदानुसारित्व इन चार मतिज्ञानावरणकर्मोंके क्षयोपशमविशेषसे उत्पन्न होनेवाली ऋद्धि या लब्धियोंसे सम्पन्न है, वह नियमसे इन प्रकृतियोंके देशघातिरूप अनुभागका वेदन करता है। किन्तु जिसके कोष्ठबुद्धि आदि चार मतिज्ञान लब्धियाँ प्राप्त नहीं हुई हैं, और जिसके द्वादशांग श्रुतके अक्षरोंमेंसे एक भी अक्षरका क्षयोपशमका होना शेष है, वह इन प्रकृतियोंके सर्वघातिरूप अनुभागका वेदन करता है। क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दोनों प्रकारके देखे जाते हैं, अतः उनके तदनुसार ही देशघाति-अनुभागका उदय सूत्रकारने 'लब्धि' पदसे और सर्वघाति-अनुभागका उदय 'अलब्धि' पदसे सूचित किया है। इस विवेचनसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि दशवें गुणस्थानके पूर्व मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्मका सम्पूर्ण या सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशम हो भी सकता है और नहीं भी। किन्तु इसके अनन्तर नियमसे दोनों कर्मोंका सम्पूर्ण क्षयोपशम प्राप्त हो जाता है, और तब वह क्षपक चतुरमलबुद्धि-ऋद्धिधारी एवं पूर्ण द्वादशांग श्रुतज्ञानका पारगामी बन जाता है। यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिए कि श्रेणीपर चढ़ते समय मति-श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम जितना होता है, उससे आगे-आगेके गुणस्थानोंमें उसका क्षयोपशम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और इसी कारण उसका मतिज्ञान वा श्रुतज्ञान उत्तरोत्तर विस्तृत एवं विशुद्ध होता जाता है। किन्तु यदि कोई क्षपक एक अक्षरके क्षयोपशमसे हीन सकल श्रुतका धारक होकरके भी क्षपकश्रेणीपर चढ़ना प्रारंभ करता है, तो भी उसके उक्त दोनों कर्मोंके सर्वघाति आवरणरूप अनुभागका उदय दशवें गुणस्थानके अन्त तक पाया जाता है। इसी प्रकार क्षपकश्रेणीपर चढ़ते समय जिनके अवधिज्ञानावरण आदि कर्मोंका क्षयोपशम होगा उनके उसका देशघाति-अनुभागोदय पाया जायगा, अन्यथा सर्वघाति-अनुभागोदय पाया जायगा। दर्शनावरणीयकर्मकी चक्षुदर्शनावरणीय आदि उत्तर प्रकृतियोंके क्षयोपशमकी संभवता-असंभवतामें भी यही क्रम जानना चाहिए। क्योंकि सभी जीवोंमें इन सभी प्रकृतियोंके समान क्षयोपशमका नियम नहीं देखा जाता है। इसी प्रकार अन्तरायकर्मके विषयमें भी जानना चाहिए। अर्थात् जिसके श्रेणी चढ़ते समय अन्तरायकर्मका सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशम हो गया है, और जो उत्कृष्ट मनोबललब्धिसे सम्पन्न है, वह अन्तरायकर्मके देशघाति-अनुभागको वेदन करता है। किन्तु जिसके पूर्ण क्षयोपशम नहीं प्राप्त हुआ है, तो वह उसके सर्वघाति-अनुभागको ही वेदन करता है।

१३७६. एत्तो पंचमीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१५९) जसणाममुच्चगोदं वेदयदि णियमसा अणंतगुणं ।
गुणहीणमंतरायं से काले सेसगा भज्जा ॥२१२॥

१३७७. विहासा । १३७८. जसणाममुच्चागोदं च अणंतगुणाए सेढीए वेदयदि । १३७९. सेसाओ णामाओ कधं वेदयदि ? १३८०. जसणामं परिणामपच्चइयं मणुस-तिरिक्खजोणियाणं । १३८१. जाओ असुभाओ परिणामपच्चइगाओ ताओ अणंतगुणहीणाए सेढीए वेदयदि त्ति ।

१३८२. अंतराइयं सव्वमणंतगुणहीणं वेदयदि । १३८३. भवोपग्गहियाओ णामाओ छव्विहाए वड्डीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वाओ । १३८४. केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं च अणंतगुणहीणं वेदयदि । १३८५. सेसं चउव्विहं णाणावरणीयं जदि सव्वघादिं वेदयदि णियमा अणंतगुणहीणं वेदयदि । १३८६. अध देस-

---

चूर्णिसू०–अब इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१३७६॥

कृष्टिवेदक क्षपक यशःकीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्र कर्म इन दोनों कर्मोंके अनन्तगुणित वृद्धि रूप अनुभागका नियमसे वेदन करता है । अन्तराय कर्मके अनन्तगुणित हानिरूप अनुभागका वेदन करता है । अनन्तर समयमें शेष कर्मोंके अनुभाग भजनीय हैं ॥२१२॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–यशःकीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्रकर्मको अनन्तगुणित श्रेणीसे वेदन करता है । (सातावेदनीयको भी अनन्तगुणित-श्रेणीसे वेदन करता है ।) ॥१३७७-१३७८॥

शंका–नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंको किस प्रकार वेदन करता है ? ॥१३७९॥

समाधान–मनुष्य और तिर्यग्योनिवाले जीवोंके यशःकीर्ति नामकर्म परिणाम-प्रत्ययिक है । (अतएव जितनी परिणाम-विपाकी सुभग, आदेय आदि शुभ नामकर्म-प्रकृतियाँ हैं उन सबको अनन्तगुणित श्रेणीके रूपसे वेदन करता है ।) जो दुर्भग, अनादेय आदि अशुभ परिणाम-प्रत्ययिक प्रकृतियाँ हैं उन्हें अनन्तगुणित हीन श्रेणीके द्वारा वेदन करता है ॥१३८०-१३८१॥

चूर्णिसू०–अन्तरायकर्मकी सर्व प्रकृतियोंको अनन्तगुणित हीन श्रेणीके रूपसे वेदन करता है । भवोपग्रहिक अर्थात् भवविपाकी नामकर्मकी प्रकृतियोंका छह प्रकारकी वृद्धि और छह प्रकारकी हानिके द्वारा अनुभागोदय भजितव्य है । केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय कर्मको अनन्तगुणित हीन श्रेणीके रूपसे वेदन करता है । शेष चार प्रकारका ज्ञानावरणीय कर्म यदि सर्वघातिरूपसे वेदन करता है, तो नियमसे अनन्तगुणित हीन वेदन करता है । यदि देशघातिरूपसे वेदन करता है, तो यहाँपर उनका अनुभागोदय छह प्रकारकी वृद्धि

घादिं वेदयदि, एत्थ छव्विहाए वड्डीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वं । १३८७. एवं चेव दंसणावरणीयस्स जं सव्वघादिं वेदयदि तं णियमा अणंतगुणहीणं । १३८८. जं देसघादिं वेदयदि तं छव्विहाए वड्डीए छव्विहाए हाणीए भजियव्वं । १३८९. एवमेसा दसमी मूलगाहा किट्टीसु विहासिदा समत्ता ।

१३९०. एत्तो एक्कारसमी मूलगाहा ।

(१६०) किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारा[1] दु मोहणीयस्स ।
सेसाणं कम्माणं तहेव के के दु वीचारा ॥२१३॥

१३९१. एदिस्से भासगाहा णत्थि । १३९२. विहासा । १३९३. एसा गाहा पुच्छासुत्तं । १३९४. तदो मोहणीयस्स पुव्वभणिदं । १३९५. तदो वि पुण इमिस्से गाहाए फस्सकण्णकरणमणुसंवण्णेयव्वं । १३९६. ठिदिघादेण १ ट्ठिदिसंतकम्मेण २ उदएण ३ उदीरणाए ४ ट्ठिदिखंडगेण ५ अणुभागघादेण ६ ट्ठिदिसंतकम्मेण । ७ अणुभागसंतकम्मेण ८ बंधेण ९ बंधपरिहाणीए १० ।

और छह प्रकारकी हानिके रूपसे भजितव्य है । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियोंको यदि सर्वघातिरूपसे वेदन करता है, सो नियमसे अनन्तगुणित हीन रूपसे वेदन करता है । और यदि देशघातिरूपसे वेदन करता है तो दर्शनावरणीय कर्मका अनुभागोदय छह प्रकारकी वृद्धिसे और छह प्रकारकी हानिसे भजितव्य है ॥१३८२-१३८८॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार यह दशमी मूलगाथा कृष्टियोंके विषयमें विभाषिता की गई॥१३८९॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे ग्यारहवीं मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१३९०॥

संज्वलनकषायरूप कर्मके कृष्टिरूपसे परिणत हो जाने पर मोहनीयकर्मके कौन-कौन वीचार अर्थात् स्थितिघातादि लक्षणवाले क्रियाविशेष होते हैं ? इसी प्रकार ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंके भी कौन कौन वीचार होते हैं ? ॥२१३॥

चूर्णिसू०–(सुगम होनेसे) इस मूलगाथाकी भाष्यगाथा नहीं है । उक्त मूलगाथा की विभाषा इस प्रकार है– यह मूलगाथा पृच्छासूत्ररूप है । अतएव यद्यपि मोहनीयकर्मका स्थिति-अनुभागघातादि-विषयक सर्व वक्तव्य पहले कहा जा चुका है, तथापि पुनः इस गाथाके अर्थव्याख्यानके अवसरमें उक्त विधानोंका स्पर्शकर्णकरण अर्थात् कुछ संक्षेप प्ररूपण कर लेना आवश्यक है । यहाँपर ये दश वीचार ज्ञातव्य हैं–१ स्थितिघात, २ स्थितिसत्त्व, ३ उदय, ४ उदीरणा, ५ स्थितिकांडक, ६ अनुभागघात, ७ स्थितिसत्कर्म या स्थिति संक्रमण ८ अनुभागसत्कर्म, ९ वन्ध और १० बन्धपरिहाणि ॥१३९१-१३९६॥

विशेषार्थ–स्थितिघात यह पहला वीचार है, इसमें अन्तर्मुहूर्तप्रमित एक स्थितिकांडकघातकालके द्वारा स्थितिके घातका विचार किया जाता है । स्थितिसत्त्व यह दूसरा वीचार है, इसके द्वारा स्थितियोंके सत्त्वका अवधारण किया जाता है । उदय नामका

---

१ वीचारा किरियावियप्पा ट्ठिदिघादादिलक्खणा । जयध०

१३९७. सेसाणि कम्माणि एदेहिं वीचारेहिं अणुमग्गियव्वाणि। १३९८. अणुमग्गिदे समत्ता एक्कारसमी मूलगाहा भवदि। १३९९. एक्कारस होंति किट्टीए त्ति पदं समत्तं।

१४००. एत्तो चत्तारि क्खवणाए त्ति। १४०१. तत्थ पढममूलगाहा।

(१६१) किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि संछुहंतो वा।
संछोहणमुदएण च अणुपुव्वं अणणुपुव्वं वा ॥२१४॥

१४०२. एदिस्से एक्का भासगाहा। १४०३. तं जहा।

तीसरा वीचार है, इसके द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुणित हानिके रूपसे कृष्टियोंके उदयकी प्ररूपणा की जाती है। उदीरणा यह चौथा वीचार है, इसके द्वारा प्रयोगसे बलात् अपकर्षण कर उदीर्यमाण स्थिति और अनुभागका विचार किया जाता है। स्थितिकांडक यह पाँचवाँ वीचार है, इसके द्वारा स्थितिकांडकघातके आयामके प्रमाणका विचार किया जाता है। अनुभागघात यह छठा वीचार है, इसके द्वारा कृष्टिगत अनुभागके प्रतिसमय अपवर्तनाका विचार किया जाता है। स्थितिसत्कर्म यह सातवाँ वीचार है, इसके द्वारा कृष्टिवेदकके सर्व संधियोंमें घातसे अवशिष्ट स्थितिके सत्त्वका प्रमाण अन्वेषण किया जाता है। अथवा इसके द्वारा स्थितिके संक्रमणका विचार किये जानेसे इसे स्थितिसंक्रमण-वीचार भी कहते हैं। अनुभागसत्कर्म नामक आठवें वीचारमें चारों संज्वलन कषायोंके अनुभागसत्त्वका निर्देश किया गया है। बन्ध नामक नवमें वीचारमें कृष्टिवेदकके सर्व सन्धिगत स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके प्रमाणका विचार किया गया है। बन्ध-परिहाणि नामक दशवें वीचारके द्वारा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी क्रमशः परिहाणिका विचार किया जाता है। इस प्रकार उक्त दश वीचारोंसे मोहनीय कर्मकी प्ररूपणाका निर्देश सूत्रकारने इस मूलगाथामें पृच्छारूपसे किया है सो आगमानुसार इनका यहाँ विचार करना चाहिए।

चूर्णिसू०—शेष कर्म भी इन वीचारोंके द्वारा अन्वेषणीय हैं। उनके अनुमार्गण कर चुकने पर ग्यारहवीं मूलगाथाकी विभाषा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार कृष्टियोंके विषयमें ग्यारह मूलगाथाएँ हैं, इस पदका अर्थ समाप्त हुआ ॥१३९७-१३९९॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे क्षपणामें प्रतिबद्ध चार मूलगाथाओंकी समुत्कीर्तना की जाती है। उनमें यह प्रथम मूलगाथा है ॥१४००-१४०१॥

क्या यह क्षपक कृष्टियोंको वेदन करता हुआ क्षय करता है? अथवा वेदन न कर संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है? अथवा वेदन और संक्रमण दोनोंको करता हुआ क्षय करता है, कृष्टियोंको क्या आनुपूर्वीसे क्षय करता है, अथवा अनानुपूर्वीसे क्षय करता है? ॥२१४॥

चूर्णिसू०—इस मूलगाथाकी एक भाष्यगाथा है। वह इस प्रकार है ॥१४०२-१४०३॥

(१६२) पढमं विदियं तदियं वेदेंतो वावि संछुहंतो वा ।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभएण सेसाओ ॥२१५॥

१४०४. विहासा । १४०५. तं जहा । १४०६. पढमं कोहस्स किट्टिं वेदेंतो वा खवेदि, अधवा अवेदेंतो संछुहंतो । १४०७. जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा तें अवेदेंतो खवेदि, केवलं संछुहंतो चेव । १४०८. पढमसमयवेदगप्पहुडि जाव तिस्से किट्टीए चरिमसमयवेदगो त्ति ताव एदं किट्टिं वेदेंतो खवेदि । १४०९. एवमेदं पि पढम-किट्टिं दोहिं पयारेहिं खवेदि किंचि कालं वेदेंतो, किंचि कालमवेदेंतो संछुहंतो । १४१०. जहा पढमकिट्टिं खवेदि तहा विदियं तदियं चउत्थं जाव एक्कारसमि त्ति ।

१४११. बारसमीए बादरसांपराइयकिट्टीए अव्ववहारो । १४१२. चरिमं वेदे-माणो त्ति अहिप्पायो–जा सुहुमसांपराइयकिट्टी सा चरिमा, तदो तं चरिमकिट्टिं वेदें-तो खवेदि, ण संछुहंतो । १४१३. सेसाणं दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे चरिमे संछु-हंतो चेव खवेदि, ण वेदेंतो । १४१४. चरिमकिट्टिं वज्ज दो आवलिय-दुसमयूणबंधे च

क्रोधकी प्रथम कृष्टि, द्वितीय कृष्टि और तृतीय कृष्टिको वेदन करता हुआ और संक्रमण करता हुआ भी क्षय करता है । चरम अर्थात् अन्तिम बारहवीं सूक्ष्म-साम्परायिक कृष्टिको वेदन करता हुआ ही क्षय करता है । शेष कृष्टियोंको दोनों प्रकारसे क्षय करता है ॥२१५॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–क्रोधकी प्रथम कृष्टिको वेदन करता हुआ भी क्षय करता है, अथवा अवेदन करता हुआ भी क्षय करता है, अथवा संक्रमण करता हुआ भी क्षय करता है । जो दो समय कम दो आवलि-बद्ध (नवक-बद्ध) कृष्टियाँ हैं, उन्हें वेदन न करके केवल संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है । क्रोधकी प्रथमकृष्टिके वेदन करनेके प्रथम समयसे लेकर जबतक उस कृष्टिका चरमसमयवर्ती वेदक रहता है, तब तक इस कृष्टिको वेदन करता हुआ ही क्षय करता है । इस प्रकार इस प्रथम कृष्टिको दोनों प्रकारोंसे क्षय करता है, कुछ काल तक वेदन करते हुए, और कुछ काल तक वेदन न कर संक्रमण करते हुए क्षय करता है । जिस प्रकार प्रथम कृष्टिका क्षय करता है, उसी प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थको आदि लेकर ग्यारहवीं कृष्टि तक सब कृष्टियोंका दोनों विधियोंसे क्षय करता है ॥१४०४-१४१०॥

चूर्णिसू०–बारहवीं बादरसाम्परायिक कृष्टिमें उक्त व्यवहार नहीं है । (क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिरूपसे परिणत होकरके ही उसका क्षय देखा जाता है । 'चरम कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है' इस पदका अभिप्राय यह है कि जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है वह चरमकृष्टि कहलाती है, अतएव उस चरम कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है, संक्रमण करता हुआ नहीं । शेष कृष्टियोंके दो समय-कम दो आवलीमात्र नवकबद्ध कृष्टियों-को चरम कृष्टिमें संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है, वेदन करता हुआ नहीं । इस प्रकार

वज्ज जं सेसकिट्टीणं तदुभयएण खवेदि । १४१५. किं उभयएणेत्ति ? १४१६. वेदेंतो च संछुहंतो च एदमुभयं।

१४१७. एत्तो विदियमूलगाहा।

(१६३) जं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि बंधगो तिस्से ।
जं चावि संछुहंतो तिस्से किं बंधगो होदि ॥२१६॥

१४१८. एदिस्से गाहाए एक्का भासगाहा । १४१९. जहा ।

(१६४) जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टिं अबंधगो तिस्से ।
सुहुमम्हि संपराए अबंधगो बंधगिदरासिं ॥२१७॥

१४२०. विहासा । १४२१. जं जं खवेदि किट्टिं णियमा तिस्से बंधगो, मोत्तूण दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे सुहुमसांपराइयकिट्टीओ च ।

१४२२. एत्तो तदिया मूलगाहा । १४२३. तं जहा ।

अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिको छोड़कर; तथा दो समय-कम दो आवली-बद्ध कृष्टियोंको छोड़कर शेष कृष्टियोंको उभय प्रकारसे क्षय करता है ॥१४११-१४१४॥

शंका-'उभय प्रकारसे' इसका क्या अर्थ है ? ॥१४१५॥

समाधान-वेदन करता हुआ और संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, यह 'उभय प्रकारसे, इस पदका अर्थ है ॥१४१६॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे क्षपणासम्बन्धी दूसरी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४१७॥

कृष्टिवेदक क्षपक जिस कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है, क्या उसका बन्धक भी होता है ? तथा जिस कृष्टिका संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, उसका भी वह क्या बन्ध करता है ? ॥२१६॥

चूर्णिसू०-इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली एक भाष्यगाथा है। वह इस प्रकार है ॥१४१८-१४१९॥

जिस कृष्टिको भी संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, उसका वह बन्ध नहीं करता है। सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिके वेदनकालमें वह उसका अबन्धक रहता है। किन्तु इतर कृष्टियोंके वेदन या क्षपणकालमें वह उनका बन्धक रहता है ॥२१७॥

चूर्णिसू०-इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है-जिस जिस कृष्टिका क्षय करता है, नियमसे उसका बन्ध करता है। केवल दो समय-कम दो-दो आवलि-बद्ध कृष्टियों-को और सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिको छोड़कर। अर्थात् इनके क्षपण-कालमें उनका बन्ध नहीं करता है ॥१४२०-१४२१॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे तीसरी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है। वह इस प्रकार है ॥१४२२-१४२३॥

(१६५) जं जं खवेदि किट्टिं ट्ठिदि-अणुभागेसु केसुदीरेदि ।
संछुहदि अण्णकिट्टिं से काले तासु अण्णासु ॥२१८॥

१४२४. एदिस्से दस भासगाहाओ । १४२५. तत्थ पढमाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१६६) बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ ॥२१९॥

१४२६. 'बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु त्ति एदं ण्णज्जदि वागरणसुत्तं[1] त्ति एदं पुण पुच्छासुत्तं ? १४२७. तं जहा । १४२८. बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु त्ति एदं णव्वदि णिद्दिट्ठं ति । एदं पुण पुच्छिदं किं सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु, आहो ण सव्वेसु ? १४२९. तदो वत्तव्वं ण सव्वेसु त्ति । १४३०. किट्टीवेदगे पगदं ति चत्तारि मासा एत्तिगाओ ट्ठिदीओ बज्झंति आवलिय-

जिस-जिस कृष्टिका क्षय करता है, उस-उस कृष्टिको किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंमें उदीरणा करता है ? विवक्षित कृष्टिको अन्य कृष्टिमें संक्रमण करता हुआ किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंसे युक्त कृष्टिमें संक्रमण करता है ? तथा विवक्षित समयमें जिस स्थिति और अनुभागयुक्त कृष्टियोंमें उदीरणा, संक्रमणादि किये हैं, अनन्तर समयमें क्या उन्हीं कृष्टियोंमें उदीरणा-संक्रमणादि करता है, अथवा अन्य कृष्टियोंमें करता है ? ॥२१८॥

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली दश भाष्यगाथाएँ हैं। उनमेंसे प्रथम भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४२४-१४२५॥

विवक्षित कृष्टिका बन्ध अथवा संक्रमण नियमसे क्या सभी स्थितिविशेषोंमें होता है ? विवक्षित कृष्टिका जिस कृष्टिमें संक्रमण किया जाता है, उसके सर्व अनुभागविशेषोंमें संक्रमण होता है। किन्तु उदय मध्यम कृष्टिरूपसे जानना चाहिए ॥२१९॥

चूर्णिसू०–'बंधो व संकमो वा' इत्यादि यह गाथाका पूर्वार्ध व्याकरणसूत्र नहीं है, किन्तु यह पृच्छासूत्र है। वह इस प्रकार है–'बन्ध और संक्रमण नियमसे सर्व स्थितिविशेषोंमें होते हैं, इस वाक्यके द्वारा यह निर्दिष्ट किया गया है, अर्थात् यह पूछा गया है कि क्या बन्ध और संक्रमण सर्व स्थितिविशेषोंमें होता है, अथवा सर्व स्थितिविशेषोंमें नहीं होता है ? अतएव इस प्रकारकी पृच्छा होनेपर यह उत्तर कहना चाहिए कि बन्ध और संक्रमण सर्व स्थितिविशेषोंमें नहीं होता है। इसका कारण यह है कि यहाँपर कृष्टिवेदकका प्रकरण है और उसके 'चार मास' इतने काल प्रमाणवाली ही संज्वलनकषायकी स्थितियाँ बंधती हैं और उदयावली-प्रविष्ट स्थितियोंको छोड़कर शेष स्थितियाँ संक्रमणको प्राप्त होती हैं।

१ वागरणसुत्तं ति व्याख्यानसूत्रमिति व्याक्रियतेऽनेनेति व्याकरणं प्रतिवचनमित्यर्थः । जयध०

पविट्ठाओ मोत्तूण सेसाओ संकामिज्जंति । १४३१. सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदयो त्ति एदं सव्वं वागरणसुत्तं । १४३२. सव्वाओ किट्टीओ संकमंति । १४३३. जं किट्टिं वेदयदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदिण्णाओ ।

१४३४. एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । १४३५. जहा ।

(१६७) संकामेदि उदीरेदि चावि सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं ।
किट्टीए अणुभागे वेदेंतो मज्झिमो णियमा ॥२२०॥

१४३६. विहासा । १४३७. एसा वि गाहा पुच्छासुत्तं । १४३८. किं सव्वे ट्ठिदिविसेसे संकामेदि उदीरेदि वा, आहो ण ? वत्तव्वं । १४३९. आवलियपविट्ठं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ ट्ठिदीओ संकामेदि उदीरेदि च । १४४०. जं किट्टिं वेदेदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदीरेदि ।

१४४१. एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । १४४२. जहा ।

(१६८) ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
ओकड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२१॥

'सव्वेसु चाणुभागेसु' इत्यादि यह सर्व गाथाका उत्तरार्ध व्याकरणसूत्र है, अतएव यह अर्थ करना चाहिए कि वेद्यमान और अवेद्यमान सभी कृष्टियाँ संक्रमणको प्राप्त होती हैं । तथा जिस कृष्टिको वेदन करता है, उसकी मध्यम कृष्टियाँ उदीर्ण होती हैं । (इसका कारण यह है कि वेद्यमान संग्रह कृष्टिके नीचे और ऊपरकी कितनी ही कृष्टियोंको छोड़ करके मध्यवर्ती कृष्टियाँ ही उदय या उदीरणा रूपसे प्रवृत्त होती हैं ॥१४२६-१४३३॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१४३४-१४३५॥

सर्व स्थितिविशेषोंके द्वारा क्या यह क्षपक संक्रमण और उदीरणा करता है ? कृष्टिके अनुभागोंको वेदन करता हुआ नियमसे मध्यम अर्थात् मध्यवर्ती अनुभागोंको ही वेदन करता है ॥२२०॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–यह गाथा भी पृच्छासूत्ररूप है । क्या यह कृष्टिवेदक क्षपक सर्व स्थितिविशेषोंमें संक्रमण और उदीरणा करता है, अथवा नहीं ? इस प्रश्नका उत्तर कहना चाहिए ? उदयावलीमें प्रविष्ट स्थितिको छोड़कर शेष सर्व स्थितियाँ संक्रमणको भी प्राप्त होती हैं और उदीरणाको भी प्राप्त होती हैं । तथा जिस कृष्टिको वेदन करता है, उसकी मध्यमकृष्टियोंकी उदीरणा करता है ॥१४३६-१४४०॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१४४१-१४४२॥

जिन कर्मांशोंका अपकर्षण करता है उनका अनन्तर समयमें क्या उदीरणामें प्रवेश करता है ? पूर्व समयमें अपकर्षण किये गये कर्मांश अनन्तर समयमें उदीरणा करता हुआ सदृशको प्रविष्ट करता है, अथवा असदृशको प्रविष्ट करता है ? ॥२२१॥

१४४३. विहासा । १४४४. एसा वि गाहा पुच्छासुत्तं । १४४५. ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि, आहो ण ? वत्तव्वं । १४४६. पवेसेदि ओकड्डिदे च पुव्वमणंतरपुव्वगेण । १४४७. सरिसमसरिसे त्ति णाम का सण्णा ? १४४८. जदि जे अणुभागे उदीरेदि एक्किस्से वग्गणाए सव्वे ते सरिसा णाम । अध जे उदीरेदि अणेगासु वग्गणासु, ते असरिसा णाम । १४४९. एदीए सण्णाए से काले जे पवेसेदि ते असरिसे पवेसेदि ।

१४५०. एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा । १४५१. तं जहा ।

(१६९) उक्कड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
उक्कड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२२॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–यह गाथा भी पृच्छासूत्ररूप है । जिन अंशोंको अपकर्षण करता है, अनन्तर समयमें क्या उन्हें उदीरणामें प्रविष्ट करता है, अथवा नहीं ? उत्तर कहना चाहिए ? पूर्वमें अर्थात् अनन्तर पूर्ववर्ती समयमें अपकर्षण किये गये कर्म-प्रदेश तदनन्तर समयमें उदीरणाके भीतर प्रवेश करनेके योग्य हैं ॥१४४३-१४४६॥

शंका–सदृश और असदृश इस नामकी संज्ञाका क्या अर्थ है ? ॥१४४७॥

समाधान–जितने अनुभागोंको एक वर्गणाके रूपसे उदीर्ण करता है, उन सब अनुभागोंकी सदृशसंज्ञा है । और जिन अनुभागोंको अनेक वर्गणाओंके रूपमे उदीर्ण करता है, उनकी असदृशसंज्ञा है ॥१४४८॥

भावार्थ–उदयमें आनेवाली यदि सभी कृष्टियाँ एक कृष्टिस्वरूपसे परिणत होकर उदयमें आती हैं, तो उनकी सदृशसंज्ञा होती है और यदि उदयमें आनेवाली कृष्टियाँ अनेक वर्गणाओं या कृष्टियोंके स्वरूपसे परिणमित होकर उदयमें आती हैं तो वे असदृश संज्ञासे कही जाती हैं ।

चूर्णिसू०–इस प्रकारकी संज्ञाकी अपेक्षा अनन्तर समयमें जिन अनुभागोंको उदयमें प्रविष्ट करता है, उन्हें असदृश ही प्रविष्ट करता है । अर्थात् उदयमें आनेवाली कृष्टियाँ अनेक वर्गणाओंके रूपसे परिणमित हो करके ही उदयमें आती हैं ॥१४४९॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१४५०-१४५१॥

जिन कर्मांशोंका उत्कर्षण करता है, उनको अनन्तर समयमें क्या उदीरणामें प्रवेश करता है ? पूर्व समयमें उत्कर्षण किये गये कर्मांश अनन्तर समयमें उदीरणा करता हुआ सदृशरूपसे प्रविष्ट करता है, अथवा असदृशरूपसे प्रविष्ट करता है ॥२२२॥

१४५२. एदं पुच्छासुत्तं । १४५३. एदिस्से गाहाए किट्टीकारगप्पहुडि णत्थि अत्थो । १४५४. हंदि किट्टीकारगो किट्टीवेदगो वा ठिदि-अणुभागे ण उक्कड्डदि त्ति । १४५५. जो किट्टीकम्मंसिगवदिरित्तो जीवो तस्स एसो अत्थो पुव्वपरूविदो ।

१४५६. एत्तो पंचमी भासगाहा ।

(१७०) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस-अणुभागे ।
बहुगत्ते थोवत्ते जहेव पुव्वं तहेवेण्हिं ॥२२३॥

१४५७. विहासा । १४५८. तं जहा । १४५९. संकामगे च चत्तारि मूलगाहाओ, तत्थ जा चउत्थी मूलगाहा तिस्से तिण्णि भासगाहाओ । तासिं जो अत्थो सो इमिस्से विं पंचमीए गाहाए अत्थो कायव्वो ।

१४६०. एत्तो छट्ठी भासगाहा ।

(१७१) जो कम्मंसो पविसदि पओगसा तेण णियमसा अहिओ ।
पविसदि ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥२२४॥

चूर्णिसू०–यह सम्पूर्णगाथा पृच्छासूत्ररूप है । इस गाथाका कृष्टिकारकसे लेकर आगे अर्थका कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि कृष्टिकारक या कृष्टिवेदक क्षपक कृष्टिगत स्थिति और अनुभागका उत्कर्षण नहीं करता है । (केवल अपकर्षण कर उदीरणा करता हुआ ही चला जाता है ।) किन्तु जो कृष्टि-कर्मांशिक-व्यतिरिक्त जीव है, अर्थात् कृष्टिकरणरूप क्रियासे रहित क्षपक है, उसके विषयमें यह अर्थ पूर्वमें ही अपवर्तना-प्रकरणमें प्ररूपण किया जा चुका है ॥१४५२-१४५५॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४५६॥

कृष्टिकारकके प्रदेश और अनुभाग-विषयक बन्ध, संक्रमण और उदय (किस प्रकार प्रवृत्त होते हैं ? इस विषयका) बहुत्व या स्तोकत्वकी अपेक्षा जिस प्रकार पहले निर्णय किया गया है, उसी प्रकार यहाँपर भी निर्णय करना चाहिए ॥२२३॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है । वह इस प्रकार है–संक्रामकके विषयमें पहले चार मूलगाथाएँ कही गई हैं । उनमें जो चौथी मूलगाथा है, उसकी तीन भाष्यगाथाएँ हैं । उनका जो अर्थ वहाँ पर किया गया है, वही अर्थ इस पाँचवीं भाष्यगाथाका भी करना चाहिए ॥१४५७-१४५९॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे छठी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४६०॥

जो कर्मांश प्रयोगके द्वारा उदयावलीमें प्रविष्ट किया जाता है, उसकी अपेक्षा स्थितिक्षयसे जो कर्मांश उदयावलीमें प्रविष्ट होता है, वह नियमसे गणनातीत गुणसे अर्थात् असंख्यातगुणितरूपसे अधिक होता है ॥२२४॥

१ हंदि वियाण निश्चिनु । जयध०

१४६१. विहासा । १४६२. जत्तो पाए असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणो तत्तो पाए जमुदीरिज्जदि पदेसग्गं तं थोवं । १४६३. जमधट्ठिदिगं पविसदि तमसंखेज्जगुणं। १४६४. असंखेज्जलोगभागे उदीरणा अणुत्तसिद्धी ।

१४६५. एत्तो सत्तमी भासगाहा । १४६६. तं जहा ।

(१७२) आवलियं च पविट्ठं पओगसा णियमसा च उदयादी ।
उदयादिपदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥२२५॥

१४६७. विहासा । १४६८. तं जहा । १४६९. जमावलियपविट्ठं पदेसग्गं तमुदए थोवं । विदियट्ठिदीए असंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव सव्विस्से आवलिगाए ।

१४७०. एत्तो अट्ठमी भासगाहा । १४७१. तं जहा ।

(१७३) जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का ।
पुव्वपविट्ठा णियमा एक्किस्से होंति च अणंता ॥२२६॥

चूर्णिसू०—इस भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—जिस पाये (स्थल) पर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा करता है, उस पाये पर जो प्रदेशाग्र उदीरित करता है, वह अल्प है । जो अधःस्थितिगलनकी अपेक्षा प्रदेशाग्र उदयावलीमें प्रविष्ट करता है, वह असंख्यातगुणित होता है । इससे आगे अधस्तन भागमें सर्वत्र असंख्यात लोकप्रतिभागकी अपेक्षा उदीरणा अनुक्त-सिद्ध है । अर्थात् आगे आगेके समयोंमें उदीर्यमाण द्रव्यकी अपेक्षा कर्मोदयसे प्रविश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणित अधिक होता है और उदीर्यमाण द्रव्य उसके असंख्यातवें भाग होता है ॥१४६१-१४६४॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे सातवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१४६५-१४६६॥

कृष्टिवेदक क्षपकके प्रयोगके द्वारा उदय है आदिमें जिसके ऐसी आवलीमें अर्थात् उदयावलीमें प्रविष्ट प्रदेशाग्र नियमसे उदयसे लगाकर आगे आवलीकाल-पर्यन्त असंख्यातगुणित श्रेणीरूपसे पाया जाता है ॥२२५॥

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है—कृष्टिवेदक क्षपकके उदयावली-में प्रविष्ट जो प्रदेशाग्र पाया जाता है, वह उदयमें अर्थात् उदयकालके प्रथम समयमें सबसे कम पाया जाता है । द्वितीय स्थितिमें असंख्यातगुणित पाया जाता है । इस प्रकार सम्पूर्ण आवलीके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणितश्रेणीरूपसे वृद्धिंगत प्रदेशाग्र पाये जाते हैं ॥१४६७-१४६९॥

चूर्णिसू०—अब इससे आगे आठवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है । वह इस प्रकार है ॥१४७०-१४७१॥

जिन अनन्त वर्गणाओंको उदीर्ण करता है, उनमें एक-एक अनुदीर्यमाण कृष्टि संक्रमण करती है । तथा जो पूर्व-प्रविष्ट अर्थात् उदयावलीमें प्रविष्ट अनन्त

१४७२. विहासा। १४७३. तं जहा। १४७४. जा संगहकिट्टी उदिण्णा तिस्से उवरि असंखेज्जदिभागो, हेट्ठा वि असंखेज्जदिभागो किट्टीणमणुदिण्णो। १४७५. मज्झागारे असंखेज्जा भागा किट्टीणमुदिण्णा। १४७६. तत्थ जाओ अणुदिण्णाओ किट्टीओ तदो एक्केका किट्टी सव्वासु उदिण्णासु किट्टीसु संकमेदि। १४७७. एदेण कारणेण जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एका त्ति भण्णदि।

१४७८. एक्किस्से वि उदिण्णाए किट्टीए केत्तियाओ किट्टीओ संकमंति? १४७९. जाओ आवलिय-पुव्वपविट्ठाओ उदएण अधट्ठिदिगं विपच्चंति ताओ सव्वाओ एक्किस्से उदिण्णाए किट्टीए संकमंति। १४८०. एदेण कारणेण पुव्वपविट्ठा एक्किस्से अणंता त्ति भण्णंति।

१४८१. एत्तो णवमी भासगाहा।

(१७४) जे चावि य अणुभागा उदीरिदा णियमसा पओगेण।
तेयप्पा अणुभागा पुव्वपविट्ठा परिणमंति ॥२२७॥

अवेद्यमान वर्गणाएँ (कृष्टियाँ) हैं, वे एक-एक वेद्यमान मध्यम कृष्टिके स्वरूपसे नियमतः परिणत होती हैं ॥२२६॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–जो संग्रहकृष्टि उदीर्ण हुई है, उसके ऊपर भी कृष्टियोंका असंख्यातवाँ भाग और नीचे भी कृष्टियोंका असंख्यातवाँ भाग अनुदीर्ण रहता है। अर्थात् विवक्षित वेद्यमान संग्रहकृष्टिके उपरितन-अधस्तन असंख्यात-भाग कृष्टियाँ अपने रूपसे सर्वत्र उदयमें प्रवेश नहीं करती हैं। मध्य आकारमें अर्थात् विवक्षित संग्रहकृष्टिके मध्यम भागमें कृष्टियोंका असंख्यात बहुभाग उदीर्ण होता है, अर्थात् अपने रूपसे ही उदयमें प्रवेश करता है। उनमें जो अनुदीर्ण कृष्टियाँ हैं, उनमेंसे एक-एक कृष्टि सर्व उदीर्ण कृष्टियोंपर संक्रमण करती है। इस कारणसे गाथाके पूर्वार्धमें ऐसा कहा गया है कि 'जिन अनन्त वर्गणाओंको उदीर्ण करता है, उनपर एक-एक वर्गणा संक्रमण करती है'॥१४७२-१४७७॥

शंका–एक-एक भी उदीर्ण कृष्टिपर कितनी कृष्टियाँ संक्रमण करती हैं? ॥१४७८॥

समाधान–जितनी कृष्टियाँ उदयावलीमें प्रविष्ट होकर उदयसे अधःस्थिति-गलनरूप विपाकको प्राप्त होती हैं, वे सब एक-एक उदीर्ण कृष्टिपर संक्रमण करती हैं। इस कारणसे गाथाके उत्तरार्धमें ऐसा कहा गया है कि 'उदयावलीमें प्रविष्ट अनन्त वर्गणाएँ एक-एक कृष्टिपर संक्रमण करती हैं' ॥१४७९-१४८०॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे नवमीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४८१॥

जितनी भी अनुभागकृष्टियाँ प्रयोगकी अपेक्षा नियमसे उदीर्ण की जाती हैं, उतनी ही पूर्व-प्रविष्ट अर्थात् उदयावली-प्रविष्ट अनुभागकृष्टियाँ परिणत होती हैं॥२२७॥

१४८२. विहासा । १४८३. जाओ किट्टीओ उदिण्णाओ ताओ पडुच्च अणुदीरिज्जमाणिगाओ वि किट्टीओ जाओ अधट्ठिदिगमुदयं पविसंति ताओ उदीरिज्जमाणियाणं किट्टीणं सरिसाओ भवंति ।

१४८४. एत्तो दसमी भासगाहा ।

(१७५) पच्छिम-आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा ।
उक्कस्स-हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमंति ॥२२८॥

१४८५. विहासा । १४८६. पच्छिम-आवलिया त्ति का सण्णा ? १४८७. जा उदयावलिया सा पच्छिमावलिया । १४८८. तदो तिस्से उदयावलियाए उदयसमयं मोत्तूण सेसेसु समएसु जा संगहकिट्टी वेदिज्जमाणिगा, तिस्से अंतरकिट्टीओ सव्वाओ ताव धरिज्जंति जाव ण उदयं पविट्ठाओ त्ति । १४८९. उदयं जाधे पविट्ठाओ ताधे चेव तिस्से संगहकिट्टीए अग्गकिट्टिमादिं कादूण उवरि असंखेज्जदिभागो जहण्णियं किट्टिमादिं कादूण हेट्ठा असंखेज्जदिभागो च मज्झिमकिट्टीसु परिणमदि ।

१४९०. खवणाए चउत्थीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है–जो कृष्टियाँ उदीर्ण हुई हैं, उनकी अपेक्षा अनुदीर्यमाण भी कृष्टियाँ जो अधःस्थितिगलनरूपसे उदयमें प्रवेश करती हैं, वे उदीर्यमाण कृष्टियोंके सदृश होती हैं ॥१४८२-१४८३॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दशमी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४८४॥

एक समय कम पश्चिम आवलीमें जो उत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग-स्वरूप कृष्टियाँ हैं, वे मध्यवर्ती बहुभाग कृष्टियोंमें नियमसे परिणमित होती हैं ॥२२८॥

चूर्णिसू०–अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है ॥१४८५॥

शंका–पश्चिम-आवली इस संज्ञाका क्या अर्थ है ? ॥१४८६॥

समाधान–जो उदयावली है, उसे ही पश्चिम-आवली कहते हैं ॥१४८७॥

चूर्णिसू०–इसलिए उस उदयावलीमें उदयरूप समयको छोड़कर शेष समयोंमें जो वेद्यमान संग्रहकृष्टि है, उसकी सर्व अन्तरकृष्टियाँ तब तक धारण की जाती हैं, जब तक कि वे उदयमें प्रविष्ट नहीं हो जाती हैं । जिस समय वे उदयमें प्रविष्ट होती हैं, उस समयमें ही उस संग्रहकृष्टिकी अग्रकृष्टिको आदि करके उपरितन असंख्यातवाँ भाग और जघन्य-कृष्टिको आदि करके अधस्तन असंख्यातवाँ भाग मध्यम कृष्टियोंमें परिणमित होता है ॥१४८८-१४८९॥

चूर्णिसू०–अब क्षपणा-सम्बन्धी चौथी मूलगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४९०॥

(१७६) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदि खएण किं पयोगेण ।
किं सेसगम्हि किट्टीय संकमो होदि अण्णिस्से ॥२२९॥

१४९१. एदिस्से वे भासगाहाओ ।

(१७७) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदे णियमसा पओगेण ।
किट्टीए सेसगं पुण दो आवलियासु जं बद्धं ॥२३०॥

१४९२. विहासा । १४९३. जं संगहकिट्टिं वेदेदूण तदो से काले अण्णं संगहकिट्टिं पवेदयदि, तदो तिस्से पुव्वसमयवेदिदाए संगहकिट्टीए जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा आवलियपविट्ठा च अस्सिं समए वेदिज्जमाणिगाए संगहकिट्टीए पओगसा संकमंति । १४९४. एसो पढमभासगाहाए अत्थो ।

१४९५. एत्तो विदियभासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१७८) समयूणा च पविट्ठा आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुण्णा जं वेदयदे एवं दो संकमे होंति ॥२३१॥

एक कृष्टिसे दूसरी कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षपक पूर्व-वेदित कृष्टिके शेष अंशको क्या क्षय अर्थात् उदयसे संक्रमण करता है, अथवा प्रयोगसे संक्रमण करता है ? तथा पूर्ववेदित कृष्टिके कितने अंशके शेष रहनेपर अन्य कृष्टिमें संक्रमण होता है ? ॥२२९॥

चूर्णिसू०–इस मूलगाथाके अर्थका व्याख्यान करनेवाली दो भाष्यगाथाएँ हैं । उनमें यह प्रथम भाष्यगाथा है ॥१४९१॥

एक कृष्टिके वेदित-शेष प्रदेशाग्रको अन्य कृष्टिमें संक्रमण करता हुआ नियमसे प्रयोगके द्वारा संक्रमण (क्षय) करता है । दो समय कम दो आवलियोंमें बँधा हुआ जो द्रव्य है, वह कृष्टिके वेदित-शेष प्रदेशाग्रका प्रमाण है ॥२३०॥

चूर्णिसू०–उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा इस प्रकार है–जिस संग्रहकृष्टिको वेदन करके उससे अनन्तर समयमें अन्य संग्रहकृष्टिको प्रवेदन करता है, तब उस पूर्व समयमें वेदित संग्रहकृष्टिके जो दो समय कम दो आवली-बद्ध नवक समयप्रबद्ध हैं वे और उदयावली-प्रविष्ट जो प्रदेशाग्र हैं, वे इस वर्तमान समयमें वेदन की जानेवाली संग्रहकृष्टिमें प्रयोगसे संक्रमित होते हैं । यह प्रथम भाष्यगाथाका अर्थ है ॥१४९२-१४९४॥

चूर्णिसू०–अब इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१४९५॥

एक समय कम आवली उदयावलीके भीतर प्रविष्ट होती है और जिस संग्रह-कृष्टिका अपकर्षणकर इस समय वेदन करता है, उस प्रथम कृष्टिकी सम्पूर्ण आवली प्रविष्ट होती है, इस प्रकार दो आवलियाँ संक्रमणमें होती हैं ॥२३१॥

१४९६. विहासा । १४९७. तं जहा । १४९८. अण्णं किट्टिं संकममाणस्स पुव्ववेदिदाए समयूणा उदयावलिया वेदिज्जमाणिगाए किट्टीए पडिवुण्णा उदयावलिया एवं किट्टीवेदगस्स उक्कस्सेण दो आवलियाओ । १४९९. ताओ वि किट्टीदो किट्टिं संकममाणस्स से काले एक्का उदयावलिया भवदि ।

१५००. चउत्थी मूलगाहा खवणाए समत्ता ।

१५०१. एसा परूवणा पुरिसवेदगस्स कोहेण उवट्ठिदस्स । १५०२. पुरिसवेदयस्स चेव माणेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । १५०३. तं जहा । १५०४. अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं । १५०५. अंतरे कदे णाणत्तं । १५०६. अंतरे कदे कोहस्स पढमट्ठिदी णत्थि, माणस्स अत्थि ।

१५०७. सा केम्महंती[1] ? १५०८. जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स चेव खवणद्धा तद्देही चेव एम्महंती माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी ।

चूर्णिसू०—उक्त भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है, वह इस प्रकार है—अन्य कृष्टिको संक्रमण करनेवाले क्षपकके पूर्व वेदित कृष्टिकी एक समय कम उदयावली और वेद्यमान कृष्टिकी परिपूर्ण उदयावली इस प्रकार कृष्टिवेदकके उत्कर्षसे दो आवलियाँ पाई जाती हैं। वे दोनों आवलियाँ भी एक कृष्टिसे दूसरी कृष्टिको संक्रमण करनेवाले क्षपकके तदनन्तर समयमें एक उदयावलीरूप रह जाती है। (क्योंकि एक समय कम आवलीमात्र गोपुच्छाओंके स्तिवुकसंक्रमणसे वेद्यमान कृष्टिके ऊपर संक्रमित करनेपर तदनन्तर समयमें एक उदयावली ही पाई जाती है।) ॥१४९६-१४९९॥

चूर्णिसू०—इस प्रकार क्षपणामें प्रतिबद्ध चौथी मूलगाथाकी भाष्यगाथाओंका अर्थ समाप्त हुआ ॥१५००॥

चूर्णिसू०—यह सब उपर्युक्त प्ररूपणा क्रोधके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए पुरुषवेदी क्षपककी जानना चाहिए। अब मानके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले पुरुषवेदी क्षपकके जो विभिन्नता है, उसे कहेंगे। वह इस प्रकार है—अन्तरकरणके नहीं करने तक कोई विभिन्नता नहीं है। अन्तरकरणके करनेपर विभिन्नता है। (उसे कहते हैं) अन्तरकरणके करनेपर क्रोधकी प्रथम स्थिति नहीं होती है, किन्तु मानकी होती है ॥१५०१-१५०६॥

शंका—वह मानकी प्रथमस्थिति कितनी बड़ी है ? ॥१५०७॥

समाधान—क्रोधके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जितनी बड़ी क्रोधकी प्रथमस्थिति है और जितना बड़ा क्रोधका ही क्षपणाकाल है, उतनी ही बड़ी मानके उदयसे श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके मानकी प्रथम स्थिति है ॥१५०८॥

---

[1] कियन्महती किंप्रमाणेति प्रश्नः कृतो भवति । जयध०

१५०९. जम्हि कोहेण उवट्ठिदो अस्सकण्णकरणं करेदि, माणेण उवट्ठिदो तम्हि काले कोहं खवेदि। १५१०. कोहेण उवट्ठिदस्स जा किट्टीकरणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा। १५११. कोहेण उवट्ठिदस्स जा कोहस्स खवणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले किट्टीकरणद्धा। १५१२. कोहेण उवट्ठिदस्स जा माणस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा। १५१३. एत्तो पाए जहा कोहेण उवट्ठिदस्स विही, तहा माणेण उवट्ठिदस्स।

१५१४. पुरिसवेदस्स मायाए उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। १५१५. तं जहा। १५१६. कोहेण उवट्ठिदस्स जम्महंती कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स चेव खवणद्धा माणस्स च खवणद्धा मायाए उवट्ठिदस्स एम्महंती मायाए पढमट्ठिदी। १५१७. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि। १५१८. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि। १५१९. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि। १५२०. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि। १५२१. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, तम्हि चेव मायाए उवट्ठिदो

चूर्णिसू०–जिस समयमें क्रोधके साथ श्रेणी चढ़नेवाला क्षपक अश्वकर्णकरणको करता है, उस समयमें मानके साथ श्रेणी चढ़नेवाला क्षपक क्रोधका क्षय करता है। क्रोधके साथ चढ़े हुए जीवका जो कृष्टिकरण काल है, मानके साथ चढ़े हुए जीवका उस समयमें अश्वकर्ण करणकाल होता है। क्रोधके साथ चढ़े हुए जीवके जो क्रोधका क्षपणकाल है, मानके साथ चढ़े हुए जीवका उस समयमें कृष्टिकरणकाल होता है। क्रोधके साथ श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके मानका जो क्षपणकाल है, मानके साथ चढ़नेवाले जीवके उसी समयमें मानका क्षपणकाल होता है। इस स्थलसे लेकर आगे जैसी क्रोधके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके क्षपणाविधि कही गई है, वैसी ही विधि मानके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवकी जानना चाहिए ॥१५०९-१५१३॥

चूर्णिसू०–अब मायाके उदयके साथ श्रेणी चढ़नेवाले पुरुषवेदीकी विभिन्नताको कहेंगे। वह इस प्रकार है—क्रोधके उदयके साथ श्रेणी चढ़े हुए क्षपककी जितनी बड़ी क्रोधकी प्रथम स्थिति, क्रोधका ही क्षपणकाल और मायाका क्षपणकाल है, उतनी बड़ी मायाके साथ श्रेणी चढ़नेवाले क्षपकके मायाकी प्रथम स्थिति है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें अश्वकर्णकरण करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस समयमें क्रोधका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें कृष्टियोंको करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस समयमें मानका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें क्रोधका क्षय करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस समयमें अश्वकर्णकरण करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें मानका क्षय करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस समयमें कृष्टियोंको करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें मायाका क्षय करता है, मायासे उपस्थित

मायं खवेदि । १५२२. एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं ।

१५२३. पुरिसवेदयस्स लोभेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । १५२४. जाव अंतरं ण करेदि, ताव णत्थि णाणत्तं । १५२५. अंतरं करेमाणो लोभस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि । १५२६. सा केम्महंती ? १५२७. जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स माणस्स मायाए च खवणद्धा तद्देही लोभेण उवट्ठिदस्स पढमट्ठिदी । १५२८. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि । १५२९. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । १५३०. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोहं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । १५३१. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि । १५३२. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि । १५३३. कोहेण उवट्ठिदो जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवट्ठिदो लोभं खवेदि । १५३४. एसा सव्वा सण्णिकासणा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स ।

हुआ उस ही समयमें मायाका क्षय करता है । इस स्थल पर लोभको क्षपण करनेवाले जीवके कोई विभिन्नता नहीं है ॥१५१४-१५२२॥

चूर्णिसू०–अब लोभकषायके साथ श्रेणी चढ़नेवाले पुरुषवेदीकी विभिन्नताको कहेंगे । जब तक अन्तर नहीं करता है, तब तक कोई विशेपता नहीं है । अन्तरको करता हुआ वह लोभकी प्रथम स्थितिको स्थापित करता है ॥१५२३-१५२४॥

शंका–वह लोभकी प्रथम स्थिति कितनी बड़ी है ? ॥१५२६॥

समाधान–क्रोधके उदयसे चढ़े हुए क्षपककी जितनी क्रोधकी प्रथम स्थिति है, तथा क्रोध, मान और मायाका क्षपणकाल है, उतनी बड़ी लोभके साथ उपस्थित क्षपकके लोभकी प्रथम स्थिति है ॥१५२७॥

चूर्णिसू०–क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें अश्वकर्णकरणको करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस समयमें क्रोधका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें कृष्टियोंको करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस समयमें मानका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें क्रोधका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस समयमें मायाका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें मानका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस समयमें अश्वकर्णकरण करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें मायाका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस समयमें कृष्टियोंको करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस समयमें लोभका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित हुआ उस ही समयमें लोभका क्षय करता है । यह सब सन्निकर्षप्ररूपणा पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी कही गई है ॥१५२८-१५३४॥

१५३५. इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । १५३६. तं जहा । १५३७. जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं । १५३८. अंतरं करेमाणो इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि । १५३९. जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स खवणद्धा तद्देही इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी । १५४०. णवुंसयवेदं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं । १५४१. णवुंसयवेदे खीणे इत्थीवेदं खवेइ । १५४२. जम्महंती पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदक्खवणद्धा तम्महंती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स खवणद्धा । १५४३. तदो अवगदवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि । १५४४. सत्तण्हं पि कम्माणं तुल्ला खवणद्धा । १५४५. सेसेसु पदेसु णत्थि णाणत्तं ।

१५४६. एत्तो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । १५४७. जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं । १५४८. अंतरं करेमाणो णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि । १५४९. जम्महंती इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी तम्महंती णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदी । १५५०. तदो अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदं खवेदुमाढत्तो । १५५१. जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा तद्देही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा

चूर्णिसू०-अब स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपककी विभिन्नताको कहेंगे । वह इस प्रकार है—जब तक अन्तर नहीं करता है, तब तक कोई विभिन्नता नहीं है । अन्तरको करता हुआ क्षपक स्त्रीवेदकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके जितना स्त्रीवेदके क्षपणका काल है, उतनी ही स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति है । नपुंसकवेदका क्षय करनेवाले क्षपककी प्ररूपणामें कोई विभिन्नता नहीं है । नपुंसकवेदके क्षय करने पर स्त्रीवेदका क्षय करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके जितना बड़ा स्त्रीवेदका क्षपणकाल है, उतना ही बड़ा स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणकाल है । तत्पश्चात् अर्थात् स्त्रीवेदकी प्रथम स्थितिके क्षीण होनेपर अपगतवेदी होकर हास्यादि छह नोकषाय और पुरुषवेद इन सात कर्मप्रकृतियोंका क्षय करता है । सातों ही कर्मोंका क्षपणकाल तुल्य है । शेष पदोंमें कोई विभिन्नता नहीं है ॥१५३५-१५४५॥

चूर्णिसू०-अब इससे आगे नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपककी विभिन्नता कहेंगे । जब तक अन्तरको नहीं करता है, तब तक कोई विभिन्नता नहीं है । अन्तरको करता हुआ नपुंसकवेदकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है । स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकसे जितनी बड़ी स्त्रीवेदकी प्रथम स्थिति है, उतनी ही बड़ी नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदकी प्रथमस्थिति है । पुनः अन्तर करनेके दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करना प्रारम्भ करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके जितना नपुंसकवेदका क्षपणाकाल है, उतना नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदका क्षपणाकाल बीत जाता है, तो भी तब तक नपुं-

ण ताव णवुंसयवेदो खीयदि । १५५२. तदो से काले इत्थीवेदं खवेदुमाढत्तो णवुंसयवेदं पि खवेदि । १५५३. पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स जम्हि इत्थिवेदो खीणो तम्हि चेव णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेद-णवुंसयवेदा च दो वि सह खिज्जंति । १५५४. तदो अवगदवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि । १५५५. सत्तण्हं कम्माणं तुल्ला खवणद्धा । १५५६. सेसेसु पदेसु जधा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स अहीणमदिरित्तं तत्थ णाणत्तं ।

१५५७. जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो ताधे णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ता । १५५८. वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता । १५५९. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं । १५६०. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि । १५६१. मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं णस्सदि ।

१५६२. तदो से काले पढमसमयखीणकसायो जादो । १५६३. ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसस्स अबंधगो । १५६४. एवं जाव चरिमसमयाहियावलियछदुमत्थो ताव तिण्हं घादिकम्माणमुदीरगो । १५६५. तदो दुचरिमसमये णिद्दा-पयलाणमुदयसंतवोच्छेदो । १५६६. तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमेगसमएण संतोदयवोच्छेदो ।

सकवेद क्षीण नहीं होता है । पश्चात् अनन्तर समयमें स्त्रीवेदका क्षपण प्रारम्भ करता हुआ नपुंसकवेदका भी क्षय करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकका जिस समयमें स्त्रीवेद क्षीण होता है उस ही समयमें नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही एक साथ क्षयको प्राप्त होते हैं । पुनः अपगतवेदी होकर सात नोकपायरूप कर्मांशोंका क्षय करता है । सातों ही नोकषायोंका क्षपणाकाल समान है । शेष पदोंमें जैसी विधि पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी कही गई है, वैसी ही विधि हीनता और अधिकतासे रहित यहाँ भी कहना चाहिए ॥१५४६-१५५६॥

चूर्णिसू०—जिस कालमें चरम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होता है, उस कालमें नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त-प्रमाण है । वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध बारह मुहूर्तप्रमाण है । शेष तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । तीनों घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष है । यहाँपर मोहनीय कर्मका स्थितिसत्त्व नाशको प्राप्त हो जाता है॥१५५७-१५६१॥

चूर्णिसू०—तदनन्तर कालमें वह प्रथमसमयवर्ती क्षीणकषाय हो जाता है । उस ही समयमें वह सब कर्मोंकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशका अबन्धक हो जाता है । इस प्रकार वह एक समय अधिक आवलीमात्र छद्मस्थकालके शेष रहने तक तीनों घातिया कर्मोंकी उदीरणा करता रहता है । तत्पश्चात् क्षीणकषायके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाके उदय और सत्त्वका एक साथ व्युच्छेद हो जाता है । तदनन्तर एक समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मोंके उदय तथा सत्त्वका एक साथ व्युच्छेद हो जाता है ॥१५६२-१५६६॥

१५६७. [एत्थुद्देसे खीणमोहद्धाए पडिबद्धा एका मूलगाहा ।] १५६८. तिस्से समुकित्तणा ।

(१७९) खीणेसु कसाएसु य सेसाणं के व होंति वीचारा ।
खवणा व अखवणा वा बंधोदयणिज्जरा वापि ॥२३२॥

१५६९. [संपहि एत्थेवुद्देसे एका संगहमूलगाहा विहासियव्वा ।] १५७०. तिस्से समुकित्तणा ।

(१८०) संकामणमोवट्टण-किट्टीखवणाए खीणमोहंते ।
खवणा य आणुपुव्वी बोद्धव्वा मोहणीयस्स ॥२३३॥

अब क्षीणमोह-कालसे प्रतिबद्ध जो एक मूलगाथा है, उसकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१५६७-१५६८॥

कषायोंके क्षीण हो जानेपर शेष ज्ञानावरणादि कर्मोंके कौन-कौन क्रिया विशेषरूप वीचार होते हैं ? तथा क्षपणा, अक्षपणा, बन्ध उदय और निर्जरा किन-किन कर्मोंकी कैसी होती है ? ॥२३२॥

विशेषार्थ–इस मूलगाथाका अर्थ कृष्टि-सम्बन्धी ग्यारह गाथाओंके समान ही जानना चाहिए। केवल यहाँपर १ स्थितिघात, २ स्थितिसत्त्व, ३ उदय, ४ उदीरणा, ५ स्थितिकांडकघात और ६ अनुभागकांडकघात ये छह क्रियाविशेष ही कहना चाहिए । क्षपणा-पद कषायोंके क्षीण हो जानेपर शेष तीन घातिया कर्मोंकी क्षपणाविधिका निर्देश करता है । अक्षपणापद बारहवें गुणस्थानमें चारों अघातिया कर्मोंके क्षयके अभावको सूचित करता है । बन्धपद कर्मोंके स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके अभावको सूचित करता है । उदयपद प्रकृतिबन्धके उदय और उदीरणाकी सूचना करता है । निर्जरापद क्षीणकषाय-वीतरागके गुणश्रेणी निर्जराका विधान करता है । इस प्रकार इस मूलगाथामें इतने अर्थोंका विचार करना चाहिए ।

अब क्षपणासम्बन्धी अट्ठाईसवीं जो एक संग्रहणी मूलगाथा है, वह विभाषा करनेके योग्य है । उसकी समुत्कीर्तना की जाती है ॥१५६९-१५७०॥

इस प्रकार मोहनीय कर्मके सर्वथा क्षीण होने तक संक्रमणाविधि, अपवर्तना-विधि और कृष्टिक्षपणाविधि इतनी ये क्षपणाविधियाँ मोहनीय कर्मकी आनुपूर्वीसे जानना चाहिए ॥२३३॥

विशेषार्थ–इस संग्रहणी-गाथाके द्वारा चारित्रमोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंके क्षपणाका विधान क्रमशः आनुपूर्वीसे किया गया है, अतएव इसे संग्रहणी-गाथा कहा गया है ।

---

१ को संगहो णाम ? चरित्तमोहणीयस्स वित्थरेण पुव्वं परूविदखवणाए दव्वट्ठियसिस्सजणाणुग्गहट्ठं संखेवेण परूवणा संगहो णाम । तदो पुव्वुत्तासेसत्थोवसंहारमूलगाहा संगहणमूलगाहा त्ति भण्णदे । जयध०

१५७१. तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुत्तो जिणो केवली सव्वण्हू सव्व-दरिसी भवदि सजोगिजिणो त्ति भण्णइ। १५७२. असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गं णिज्जरेमाणो विहरदि त्ति।

चरित्तमोहक्खवणा-अत्थाहियारो समत्तो।

अन्तरकरणको करके जब तक छह नोकषायोंका क्षय करता है, तब तक उस अवस्थाकी संक्रमण संज्ञा है, क्योंकि यहाँ पर नपुंसकवेदादि नोकषायोंका संक्रमण देखा जाता है। अपवर्तनापदसे अश्वकर्णकरणकाल और कृष्टिकरणकालका ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि, यहाँपर संज्वलन कषायोंकी अश्वकर्णके आकारसे ही अपवर्तना देखी जाती है। कृष्टिक्षपण-पदसे कृष्टिवेदनकालका ग्रहण करना चाहिए। इसके भीतर दशवें गुणस्थानके अन्तिम समय तककी सर्व प्ररूपणा आ जाती है, क्योंकि यहाँ पर ही सूक्ष्म लोभकृष्टिका क्षय होता है। 'क्षीणमोहान्त' इस पदके द्वारा सूत्रकारने यह भाव व्यक्त किया है कि क्षीण-कषाय गुणस्थानके नीचे ही चारित्रमोहनीयकी क्षपणा होती है, इसके ऊपर नहीं होती। इस प्रकार उक्त क्रिया-विशेषोंकी आनुपूर्वी मोहनीयकर्मकी क्षपणामें जानना चाहिए।

चूर्णिसू०—तदनन्तर समयमें अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्यसे युक्त होकर वह क्षपक जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है। तभी वह सयोगी जिन कहलाता है। वे सयोगिकेवली जिन प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीसे कर्म-प्रदेशाग्रकी निर्जरा करते हुए (धर्मरूप तीर्थप्रवर्तनके लिए यथोचित धर्मक्षेत्रमें महाविभूतिके साथ) विहार करते हैं ॥१५७१-१५७२॥

इस प्रकार चारित्रमोहक्षपणा नामक पन्द्रहवाँ अर्थाधिकार समाप्त हुआ।

खवणाहियार-चूलिया

अण मिच्छ मिस्स सम्मं अट्ठ णवुंसित्थिवेदछक्कं च ।
पुंवेदं च खवेदि हु कोहादीए च संजलणे ॥ १ ॥
अध थीणगिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य ।
अध णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु[1] ॥ २ ॥
सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वीय संकमो होई ।
लोभकसाए णियमा असंकमो होइ बोद्धव्वो[2] ॥ ३ ॥

क्षपणाधिकार-चूलिका

अब क्षपणाधिकारकी चूलिकाके प्ररूपण करनेके लिए ये वक्ष्यमाण सूत्र-गाथाएँ ज्ञातव्य हैं—

अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, इन सात प्रकृतियोंको क्षपकश्रेणी चढ़नेसे पूर्व ही क्षपण करता है। पुनः क्षपकश्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अन्तरकरणसे पूर्व ही आठ मध्यम कषायोंका क्षय करता है। पुनः नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय और पुरुषवेदका क्षय करता है। तदनन्तर संज्वलनक्रोध आदिका क्षय करता है ॥१॥

मध्यम आठ कषायोंके क्षय करनेके अनन्तर स्त्यानगृद्धि कर्म, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला इन तीन दर्शनावरणीय प्रकृतियोंको, तथा नरकगति और तिर्यग्गति-सम्बन्धी नामकर्मकी तेरह प्रकृतियोंको संक्रमण आदि करते समय क्षीण करता है॥२॥

विशेषार्थ—वे तेरह प्रकृतियाँ ये हैं—१ नरकगति, २ नरकगत्यानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, ५ द्वीन्द्रियजाति, ६ त्रीन्द्रियजाति, ७ चतुरिन्द्रियजाति, ८ उद्योत, ९ आतप, १० एकेन्द्रियजाति, ११ साधारण, १२ सूक्ष्म और १३ स्थावर-नामकर्म। भूतबलि-पुष्पदन्त आचार्यके मतानुसार पहले इन उपर्युक्त सोलह प्रकृतियोंका क्षय करके पीछे आठ मध्यम कषायोंका क्षय करता है। किन्तु गुणधर और यतिवृषभ आचार्यके मतानुसार पहले आठ मध्यम कषायोंका क्षय करके पुनः सोलह प्रकृतियोंका क्षय करता है, ऐसा सिद्धान्त-भेद जानना चाहिए।

मोहनीयकर्मकी सम्पूर्ण प्रकृतियोंका आनुपूर्वीसे संक्रमण होता है। किन्तु लोभकषायका संक्रमण नहीं होता है, ऐसा नियमसे जानना चाहिए ॥३॥

---

१ कसायपाहुडगाथाङ्क १२८। २ कसाय० गा० १३६।

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोधम्हि संछुहदि[1] ॥ ४ ॥
कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि[2] ॥ ५ ॥
जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधम्हि होइ संछुहणा ।
बंधेण हीणदरगे अहिए वा संकमो णत्थि[3] ॥ ६ ॥
बंधेण होइ उदयो अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे[4] ॥ ७ ॥
बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा[5] ॥ ८ ॥

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका पुरुषवेदमें संक्रमण करता है। पुरुषवेद तथा हास्यादि छह इन सात नोकषायोंका नियमसे संज्वलनक्रोधमें संक्रमण करता है ॥४॥

संज्वलनक्रोधको संज्वलनमानमें, संज्वलनमानको संज्वलनमायामें, संज्वलनमायाको संज्वलन लोभमें नियमसे संक्रमण करता है। इस प्रकार इन सब मोह-प्रकृतियोंका अनुलोम ही संक्रमण होता है, प्रतिलोम संक्रमण नहीं होता ॥५॥

जो जीव जिस बंधनेवाली प्रकृतिमें संक्रमण करता है वह नियमसे बन्ध-सदृश ही प्रकृतिमें संक्रमण करता है; अथवा बन्धकी अपेक्षा हीनतर स्थितिवाली प्रकृतिमें संक्रमण करता है। किन्तु बन्धसे अधिक स्थितिवाली प्रकृतिमें संक्रमण नहीं होता। ॥६॥

बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार अनुभागके विषयमें गुणश्रेणी अनन्तगुणी जानना चाहिए ॥७॥

भावार्थ—विवक्षित एक समयमें अनुभागके बन्धकी अपेक्षा अनुभागका उदय अनन्तगुणा होता है और अनुभागके उदयसे अनुभागका संक्रमण अनन्तगुणा होता है।

बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है। इस प्रकार प्रदेशाग्रकी अपेक्षा गुणश्रेणी असंख्यातगुणी जानना चाहिए ॥८॥

भावार्थ—विवक्षित एक समयमें किसी एक विवक्षित प्रकृतिके प्रदेशबन्धसे उसके प्रदेशोंका उदय असंख्यातगुणा अधिक होता है और प्रदेशोंके उदयकी अपेक्षा प्रदेशोंका संक्रमण और भी असंख्यातगुणा अधिक होता है।

१ कसाय० गा० १३८। २ कसाय० गा० १३९।
३ कसाय० गा० १४०। ४ कसाय० गा० १४३। ५ कसाय० गा० १४४।

उदयो च अणंतगुणो संपहि-बंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहि-बंधो अणंतगुणो[1] ॥ ९ ॥
चरिमे बादररागे णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं[2] ॥१०॥
जं चावि संछुहंतो खवेइ किट्टिं अबंधगो तिस्से ।
सुहुमम्हि संपराए अबंधगो बंधगियराणं ॥११॥
जाव ण छदुमत्थादो तिण्हं घादीण वेदगो होइ ।
अधऽणंतरेण खइया सव्वण्हू सव्वदरिसी य ॥१२॥[3]

चरित्तमोहक्खवणा त्ति समत्ता ।

एवं कसायपाहुडसुत्ताणि सपरिभासाणि समत्ताणि सव्वसमासेण वेसद-तेत्तीसाणि ।

एवं कसायपाहुडं समत्तं ।

अनुभागकी अपेक्षा साम्प्रतिक-बन्धसे साम्प्रतिक-उदय अनन्तगुणा होता है । इसके अनन्तरकालमें होनेवाले उदयसे साम्प्रतिक-बन्ध अनन्तगुणा होता है ॥९॥

चरमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मको वर्षके अन्तर्गत बांधता है । तथा शेष जो तीन घातिया कर्म हैं उन्हें एक दिवसके अन्तर्गत बांधता है ॥१०॥

जिस कृष्टिको भी संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, उसका वह बन्ध नहीं करता । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिके वेदनकालमें वह उसका अबन्धक रहता है । किन्तु इतर कृष्टियोंके वेदन वा क्षपणकालमें वह उनका बन्ध करता है ॥११॥

जब तक वह क्षीणकषायवीतरागसंयत छद्मस्थ अवस्थासे नहीं निकलता है, तब तक ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मोंका वेदक रहता है । इसके पश्चात् अनन्तर समयमें तीनों घातिया कर्मोंका क्षय करके सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन जाता है ॥१२॥

इस प्रकार चारित्रमोहक्षपणाधिकारकी चूलिका समाप्त हुई ।

इस प्रकार परिभाषा-सहित दो सौ तेतीस गाथासूत्रात्मक कसायपाहुड समाप्त हुआ ।

---

१ कसाय० गा० १४५ । २ कसाय० गा० २०९ । ३ कसाय० गा० २१७ ।

पच्छिमक्खधो अत्थाहियारो

१. पच्छिमक्खंधे त्ति अणियोगद्दारे तम्हि इमा मग्गणा । २. अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे तदो आवज्जिदकरणे कदे तदो केवलिसमुग्घादं करेदि । ३. पढमसमये दंडं करेदि ।

पश्चिमस्कन्ध-अर्थाधिकार

चूर्णिसू०—अब इस पश्चिमस्कन्ध नामक अनुयोगद्वारमें यह वक्ष्यमाण प्ररूपणा मार्गणा करनेके योग्य है ॥१॥

विशेषार्थ—चूर्णिकारने इस अधिकारका नाम पश्चिमस्कन्ध कहा है। इसे जयधवलाकारने समस्त श्रुतस्कन्धकी चूलिका कहा है। इस कसायपाहुडकी समाप्ति होनेपर जो कथन अवशेष रहा है, वह चूर्णिकारने चूलिकारूपसे इसमें निबद्ध किया है। महाकम्मपयडिपाहुडके चौबीस अनुयोगद्वारोंमें भी पश्चिमस्कन्ध नामका अन्तिम अनुयोगद्वार है और वहाँपर भी वही अर्थ कहा गया है, जो कि यहाँपर चूर्णिकारने कहा है। दोनों सिद्धान्त-ग्रन्थोंकी एकरूपता या एक-उद्देश्यता बताना ही संभवतः चूर्णिकारको अभीष्ट रहा है। घातिया कर्मोंके क्षय हो जानेपर सयोगिकेवली भगवान्‌के जो अन्तमें अघातिया कर्मोंका स्कन्धरूप कर्म-समुदाय पाया जाता है, उसे पश्चिमस्कन्ध कहते हैं। अथवा पश्चिम अर्थात् अन्तिम औदारिकशरीरके, तैजस और कार्मणशरीररूप नोकर्मस्कन्धयुक्त जो कर्मस्कन्ध है, उसे पश्चिमस्कन्ध जानना चाहिए। क्योंकि इस अधिकारमें केवलीकी समुद्घात-गत क्रियाओंका वर्णन करते हुए औदारिकशरीरसम्बन्धी मन, वचन, कायरूप योगनिरोध आदिका विस्तारसे वर्णन किया गया है। पन्द्रह महाधिकारोंके द्वारा कसायपाहुडका वर्णन कर देनेके पश्चात् भी इस अधिकारके निरूपण करनेकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि चारित्रमोह-क्षपणाके पश्चात् यद्यपि शेष तीन घातिया कर्मोंके अभावका वर्णन कर दिया गया है, तथापि अभी अघातिया कर्म सयोगी जिनके अवशिष्ट हैं, उनके क्षपणका वर्णन किये विना प्रतिपाद्य विषयकी अपूर्णता रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिए ही इस अधिकारका निरूपण चूर्णिकारने युक्ति-युक्त समझा और परिशिष्टरूप इस निरूपणको पश्चिमस्कन्ध संज्ञा दी।

चूर्णिसू०—सयोगि-जिन आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रह जानेपर पहले आवर्जितकरण करते हैं और तदनन्तर केवलिसमुद्घात करते हैं ॥२॥

विशेषार्थ—केवलिसमुद्घातके अभिमुख होनेको आवर्जितकरण कहते हैं, अर्थात् केवलिसमुद्घात करनेके लिए जो आवश्यक तैयारी की जाती है, उसे शास्त्रकारोंने 'आवर्जितकरण' संज्ञा दी है। इसके किये विना केवलिसमुद्घातका होना संभव नहीं है, अतः पहले अन्तर्मुहूर्त तक केवली आवर्जितकरण करते हैं। आवर्जितकरण करनेके पश्चात् केवली भगवान्

४. तम्हि ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ । ५. सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंता भागे हणदि । ६. तदो विदियसमए कवाडं करेदि । ७. तम्हि सेसिगाए ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ । ८. सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणइ ।

अघातिया कर्मोंकी हीनाधिक स्थितिके समीकरणके लिए जो समुद्घात करते हैं अर्थात् अपने आत्मप्रदेशोंको ऊपर, नीचे और तिर्यक् रूपसे विस्तृत करते हैं, उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं । इस समुद्घातकी दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण-रूप चार अवस्थाएँ होती हैं । इनका वर्णन आगे चूर्णिकार स्वयं कर रहे हैं ।

चूर्णिसू०–सयोगिकेवली जिन प्रथम समयमें दंडसमुद्घात करते हैं । उसमें कर्मोंकी स्थितिके असंख्यात बहुभागोंका घात करते हैं । कर्मोंके अवशिष्ट अनुभागके अप्रशस्त अनुभाग-सम्बन्धी अनन्त बहुभागोंका घात करते हैं ॥३-५॥

विशेषार्थ–सयोगिकेवली जिन पद्मासन या खड्गासन दोनों ही आसनोंसे पूर्वाभिमुख या उत्तरदिशाभिमुख होकरके समुद्घात करते हैं । इनमेंसे केवलीके खड्गासनसे दंडसमुद्घात करनेपर आत्मप्रदेश मूलशरीर-प्रमाण विस्तृत और वातवलयसे कम चौदह राजुप्रमाण आयत दंडके आकाररूप फैलते हैं, इसलिए इसे दंडसमुद्घात कहते हैं । यदि सयोगी जिन पद्मासनसे समुद्घात करते हैं, तो दंडाकार प्रदेशोंका बाहुल्य मूलशरीरके बाहुल्यसे तिगुना रहता है । दंडसमुद्घातमें पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख करनेकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं पड़ता है । हाँ, आगेके समुद्घातोंमें अवश्य भेद होता है, सो वह आगे बताया जायगा । इस दंड-समुद्घातमें अघातिया कर्मोंकी जो पल्योपमके असंख्यातवें भाग स्थिति थी, उसके बहुभागोंका घात करता है । तथा बारहवें गुणस्थानके अन्तमें घात करनेसे जो अनुभाग बचा था, उसमेंसे अप्रशस्त अनुभागके भी बहुभागका घात करता है । इस प्रकार इतने कार्य दंडसमुद्घातमें होते हैं । इस समुद्घातमें औदारिककाययोग ही होता है ।

चूर्णिसू०–तदनन्तर द्वितीय समयमें कपाटसमुद्घात करते हैं । उसमें अघातिया कर्मोंकी शेष स्थितिके भी असंख्यात बहुभागोंका घात करते हैं और अवशिष्ट अनुभागसम्बन्धी अप्रशस्त अनुभागके अनन्त बहुभागोंका घात करते हैं ॥६-८॥

विशेषार्थ–जिस प्रकार कपाट (किवाड़) बाहुल्यकी अपेक्षा अल्प परिमाण ही रहता है, परन्तु विष्कम्भ और आयामकी अपेक्षा विस्तृत होता है, इसी प्रकार कपाटसमु-द्घातमें केवली जिनके आत्मप्रदेश वातवलयसे कम चौदह राजु लम्बे और सात राजु चौड़े हो जाते हैं । बाहुल्य खड्गासन केवलीके मूल शरीरप्रमाण और पद्मासनके उससे तिगुना जानना चाहिए । इस समुद्घातमें पूर्व या उत्तरदिशाकी ओर मुख करनेसे विस्तारमें अन्तर पड़ जाता है । अर्थात् जिनका मुख पूर्वकी ओर होता है, उनका विस्तार उत्तर और दक्षिण दिशामें सात राजु रहता है । किन्तु जिनका मुख समुद्घात करते समय उत्तर दिशाकी ओर रहता है, उनका विस्तार पूर्व और पश्चिम दिशामें लोकके विस्तारके समान हीनाधिक रहता है । इस समुद्घातमें केवली भगवान्के औदारिकमिश्रकाययोग होता है ।

९. तदो तदियसमये मंथं[1] करेदि । १०. ट्ठिदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि । ११. तदो चउत्थसमये लोगं पूरेदि । १२. लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो । १३. लोगे पुण्णे अंतोमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि । १४. संखेज्जगुणमाउआदो ।

चूर्णिसू०–तत्पश्चात् तृतीय समयमें मन्थसमुद्घात करते हैं । इसमें अघातिया कर्मोंकी स्थिति और अनुभागकी कपाटसमुद्घातके समान ही निर्जरा करते हैं ॥९-१०॥

विशेषार्थ–जिस अवस्था-विशेषके द्वारा अघातिया कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका मन्थन किया जाय, उसे मन्थसमुद्घात कहते हैं । इसे प्रतरसमुद्घात और रुजकसमुद्घात भी कहते हैं । इस समुद्घातमें आत्मप्रदेश प्रतराकारसे चारों ही ओर फैल जाते हैं अर्थात् वातवलय-रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर समस्त लोकमें विस्तृत हो जाते हैं । इस समुद्घातमें पूर्व या उत्तर मुख होनेकी अपेक्षा कोई भेद नहीं पड़ता है । इस अवस्थामें सयोगी जिन कार्मणकाय-योगी और अनाहारी हो जाते हैं, अर्थात् मूल शरीरके अवष्टम्भके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दका अभाव हो जाता है और औदारिकशरीरकी स्थितिके योग्य नोकर्म-पुद्गलपिंडका भी ग्रहण नहीं होता है ।

चूर्णिसू०–तदनन्तर चतुर्थ समयमें लोकको पूरित करते हैं । लोकके आत्म-प्रदेशोंसे पूरित करनेपर योगकी एक वर्गणा हो जाती है । इस अवस्थाको ही 'समयोग' जानना चाहिए ॥११-१२॥

विशेषार्थ–चौथे समयमें केवली भगवान्‌के आत्मप्रदेश वातवलयरुद्ध क्षेत्रमें भी व्याप्त हो जाते हैं, अतएव इसे लोकपूरणसमुद्घात कहते हैं । इस समुद्घातकी अपेक्षा ही जीवके प्रदेशोंका परिमाण लोकाकाशके प्रदेशोंके समान कहा गया है । इस अवस्थामें जीवके नाभिके नीचेके आठ मध्यम प्रदेश सुमेरुके मूलगत आठ मध्यम प्रदेशोंके साथ एकत्र होकर अवस्थित रहते हैं । इसी अवस्थामें केवली भगवान् सर्वगत या सर्वव्यापी कहे जाते हैं । इस समुद्घातमें भी कार्मणकाययोग होता है और अनाहारक दशा रहती है । इस अवस्थामें वर्त-मान केवलीके समस्त जीवप्रदेश योगसम्बन्धी अविभाग-प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि-हानिसे रहित होकर सदृश हो जाते हैं, अतएव सर्व जीव-प्रदेशोंके परस्परमें सदृश योग हो जानेसे उन्हें 'समयोग' कहा जाता है और इसी कारण उनकी एक वर्गणा कही जाती है । यह समयोगपरिणाम सूक्ष्मनिगोदिया जीवकी जघन्य वर्गणासे असंख्यातगुणित तत्प्रायोग्य मध्यमवर्गणा-स्वरूप जानना चाहिए ।

चूर्णिसू०–लोकके पूर्ण होनेपर अर्थात् लोकपूरण-समुद्घात करनेपर अघातिया कर्मों-की अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है । यह अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थिति आयुकर्मकी स्थितिसे संख्यातगुणी है ॥१३-१४॥

विशेषार्थ–लोकपूरणसमुद्घातके करनेपर यद्यपि अघातिया कर्मोंकी स्थिति अन्तर्मु-

१ एदस्स चेव पदरसण्णा रुजगसण्णा च आगमरूढिबलेण दट्ठव्वा । जयध०

१५. एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमयओवट्टणा । १६. एगसमइओ ट्ठिदिखंडयस्स घादो । १७. एत्तो सेसिगाए ट्ठिदीए संखेज्जे भागे हणइ । १८. सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणइ । १९. एत्तो पाए ट्ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा ।

हूर्त प्रमाण हो जाती है, पर वह सयोगी जिनके आयुकर्मकी स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है, ऐसा चूर्णिकारका मत है, क्योंकि उसके संख्यातगुणित अधिक हुए विना आगे जो योग-निरोध-सम्बन्धी कार्य-विशेष बतलाये गये हैं, उनका होना अशक्य है। पर कुछ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं–महावाचक आर्यमंक्षुक्षपणके उपदेशानुसार तो लोकपूरणसमुद्घातके होनेपर आयुकर्मके समान ही शेष सब कर्मोंकी स्थिति हो जाती है। किन्तु महावाचक नागहस्तिक्षपणके उपदेशानुसार शेष कर्मों की स्थिति अन्त-मुहूर्त-प्रमित होते हुए भी आयुकर्मकी स्थितिसे संख्यातगुणित अधिक होती है। चूर्णिकारने इसी दूसरे मतका अनुसरण किया है।

चूर्णिसू०–केवलिसमुद्घातके समयोंमें अप्रशस्त कर्मांशोंके अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना होती है। एक समयवाले स्थितिकांडकका घात होता है, अर्थात् एक-एक स्थितिकांडकका घात करता है। इससे आगे अर्थात् लोकपूरणसमुद्घातके पश्चात् आत्मप्रदेश संकोचनेके प्रथम समयसे लेकर आगेके समयोंमें शेष रही हुई अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिके संख्यात भागोंका घात करता है। तथा शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभाग अनुभागका भी नाश करता है। इस स्थलपर स्थितिकांडक और अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है ॥१५-१९॥

विशेषार्थ–ऊपर चार समयोंमें क्रमशः दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण अवस्थाका वर्णन किया जा चुका है। पाँचवें समयमें सयोगिजिन आत्मप्रदेशोंका संकोच करते हुए प्रतर-अवस्थाको प्राप्त होते हैं। इस समयमें समयोगपना नष्ट हो जाता है और सभी पूर्व-स्पर्धक उघड़ आते हैं। छठे समयमें प्रदेशोंका और भी संकोच होकर कपाट-दशा प्रगट होती है। तीसरे, चौथे और पाँचवें समयमें कार्मणकाययोग रहता है। परन्तु छठे समयमें औदारिकमिश्रकाययोग हो जाता है। सातवें समयमें कपाटरूप अवस्थाका भी संकोच होकर दंडसमुद्घातरूप अवस्था होती है। इसमें औदारिककाययोग प्रगट हो जाता है। तदनन्तर सममर्में दंड-अवस्थाका संकोच हो जाता है और केवली भगवान् स्वस्थानभावसे अवस्थित हो जाते हैं। कितने ही आचार्य इस अन्तिम समयको नहीं गिनकर समुद्घात-संकोचके तीन ही समय कहते हैं और कितने ही आचार्य उसे गिनकर चार समय ही लोकपूरणसमुद्घातके संकोचके मानते हैं। उनके अभिप्रायसे जिस समयमें अवस्थित होकर दंडका उपसंहार करते हैं वह समय भी समुद्घात-दशाके ही अन्तर्गत है। समुद्घात-संकोचके इन चार समयोंमें प्रति-समय कर्मोंकी स्थितिका घात होता है और अप्रशस्त अनुभागका भी घात होता है। किन्तु

२०. एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभइ। २१. तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभइ। २२. तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादर-उस्सास-णिस्सासं णिरुंभइ। २३. तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकाय-जोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभइ। २४. तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभइ। २५. तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभइ। २६. तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमउस्सासं णिरुंभइ।

२७. तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि। २८. पढमसमये अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो। २९. आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि। ३०. जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकड्डदि। ३१. एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि। ३२. असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेढीए। ३३. अपुव्व-

---

समुद्घात-क्रियाके समाप्त हो जानेपर प्रतिसमय स्थिति और अनुभागका घात नहीं होता, केवल अन्तर्मुहूर्तकाल तक स्थितिकांडक और अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल प्रवर्तमान रहता है। केवलीके स्वस्थान-समवस्थित हो जानेपर वे अन्तर्मुहूर्त तक योग-निरोधकी तैयारी करते हैं। इस समय अनेक स्थितिकांडक-घात और अनुभागकांडक-घात व्यतीत होते हैं। योग-निरोधमें क्या-क्या कार्य किस क्रमसे होते हैं, यह चूर्णिकार आगे स्वयं बतायेंगे।

चूर्णिसू०—इससे अन्तर्मुहूर्त आगे जाकर अर्थात् समुद्घातदशाके उपसंहारके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वे सयोगिजिन बादरकाययोगके द्वारा बादरमनोयोगका निरोध करते हैं। तत्पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा बादरकाययोगसे बादरवचनयोगका निरोध करते हैं। पुनः एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा बादरकाययोगसे बादर उच्छ्वास-निःश्वासका निरोध करते हैं। पुनः एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा बादरकाययोगसे उसी बादरकाययोगका निरोध करते हैं। पुनः एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्ममनोयोगका निरोध करते हैं। पुनः एक अन्त-र्मुहूर्तके द्वारा सूक्ष्मवचनयोगका निरोध करते हैं। पुनः एक अन्तर्मुहूर्तके द्वारा सूक्ष्म-काययोगसे सूक्ष्म उच्छ्वास-निःश्वासका निरोध करते हैं ॥२०-२६॥

चूर्णिसू०—पुनः एक अन्तर्मुहूर्त आगे जाकर सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्मकाययोगका निरोध करते हुए इन करणोंको करते हैं—प्रथम समयमें पूर्वस्पर्धकोंके नीचे अपूर्वस्पर्धकोंको करते हैं। पूर्वस्पर्धकोंसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्धकोंको करते हुए पूर्व-स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करते हैं। जीवप्रदेशोंके भी असंख्यातवें भागका अपकर्षण करते हैं। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अपूर्वस्पर्धकोंकी रचना करते हैं। इन अपूर्वस्पर्धकोंको प्रतिसमय असंख्यातगुणित हीन श्रेणीके क्रमसे निर्वृत्त करते हैं। किन्तु जीव-प्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित वृद्धि रूप श्रेणीके क्रमसे करते हैं। ये सब अपूर्वस्पर्धक जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भाग हैं।

फद्दयाणि सेढीए असंखेज्जदिभागो । ३४. सेढिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो । ३५. पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो सव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि ।

३६. एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि । ३७. अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । ३८. जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभाग-मोकड्डदि । ३९. एत्थ अंतोमुहुत्तं करेदि किट्टीओ असंखेज्जगु[णही]णाए सेढीए । ४०. जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेढीए । ४१. किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो । ४२. किट्टीओ सेढीए असंखेज्जदिभागो । ४३. अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो । ४४. किट्टीकरणद्धे णिट्ठिदे से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि । ४५. अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि ।

४६. सुहुमकिरियं[म]पडिवादिझाणं झायदि । ४७. किट्टीणं चरिमसमये असं-खेज्जे भागे णासेदि । ४८. जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउअसमाणि कम्माणि होंति । ४९. तदो अंतोमुहुत्तं सेलेसिं[1] य पडिवज्जदि ।

जगच्छ्रेणीके वर्गमूलके भी असंख्यातवें भाग हैं और पूर्वस्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग हैं ॥२७-३५॥

चूर्णिसू०–इससे आगे अर्थात् अपूर्वस्पर्धकोंकी रचना करनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त तक कृष्टियोंको करते हैं । अपूर्वस्पर्धकोंकी आदिवर्गणासम्बन्धी अविभाग-प्रतिच्छेदोंके असं-ख्यातवें भागका अपकर्षण करते हैं । तथा जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करते हैं । यहाँ पर अन्तर्मुहूर्त तक असंख्यातगुणित हीन श्रेणीके द्वारा कृष्टियोंको करते हैं । जीवप्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणीसे करते हैं । यहाँ पर कृष्टियोंका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है । ये कृष्टियाँ जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भाग हैं और अपूर्वस्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग हैं । कृष्टिकरणके निष्पन्न होने पर उसके अनन्तर समयमें पूर्व-स्पर्धकों और अपूर्व-स्पर्धकोंका नाश करते हैं । उस समय सयोगिकेवली जिन अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टिगतयोगवाले होते हैं ॥३६-४५॥

चूर्णिसू०–उसी समय सयोगिकेवली जिन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल-ध्यानको ध्याते हैं और तेरहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका नाश करते हैं । इस प्रकार योगका निरोध हो जानेपर आयुकी स्थितिके समान स्थितिवाले तीनों अघातिया कर्म हो जाते हैं । तत्पश्चात् वे भगवान् अयोगिकेवली बनकर अन्तर्मुहूर्त-काल तक शैलेश्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं ॥४६-४९॥

विशेषार्थ–योगनिरोध करनेके अनन्तर वे सयोगिकेवली भगवान् शैलेशी अवस्थाको

१ किं पुनरिदं शैलेश्यं नाम ? शीलानामीशः शीलेशः, तस्य भावः शैलेश्यं; सकलगुणशीलानामेका-धिपत्यप्रतिलम्भनमित्यर्थः । शीलेशः सर्वसंवररूपचरणप्रभुस्तस्येयमवस्था । शैलेशो वा मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासाधर्म्यात् सा शैलेशी । सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचह्रस्वाक्षरोच्चारकालमाना । व्याख्याप्रज्ञप्ति. १,८,७२ अभयदेवीया वृत्तिः ।

५०. समुच्छिण्णकिरियमणियट्टिसुक्कज्झाणं झायदि । ५१. सेलेसिं अद्धाए झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छइ[1] । ५२. खवणदंडओ समत्तो ।

पच्छिमक्खंधो अत्थाहियारो समत्तो ।

प्राप्त होते हैं, अर्थात् चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं । उस समय उनके अठारह हजार शीलके भेद और चौरासी लाख उत्तर गुण परिपूर्णताको प्राप्त हो जाते हैं । यद्यपि उक्त शील और उत्तर गुणोंकी पूर्णता सयोगिजिनके भी मानी जाती है, पर योगके सान्निध्यसे वहाँ पूर्ण संवर नहीं है, अतः परमोपेक्षालक्षण यथाख्यात-विहारशुद्धि संयमकी चरम सीमा योगनिरोध होनेपर ही संभव है । 'सेलेसि' इस प्राकृतपदका 'शैलेशी' ऐसा संस्कृतरूप मानकर कुछ आचार्य इसका यह भी अर्थ करते हैं कि शैल अर्थात् पर्वतोंका ईश सुमेरु जैसे सर्वदा अचल, अकंप रहता है, उसी प्रकार योगका अभाव हो जानेसे अयोगिजिनकी अवस्था एकदम शान्त, स्थिर और अकंप हो जाती है । इस शैलेशी अवस्थाका काल पंच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणकाल-प्रमाण है ।

चूर्णिसू०–उस समय शैलेश्य अवस्थाको प्राप्त अयोगिकेवली जिन समुच्छिन्नक्रिया-निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यानको ध्याते हैं । शैलेश्यकालके क्षीण हो जाने पर सर्व कर्मोंसे विप्रमुक्त होकर एक समयमें सिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं ॥५०-५१॥

चूर्णिसू०–इस प्रकार क्षपणाधिकारके चूलिकास्वरूप इस पश्चिमस्कन्धमें अघातिया कर्मोंके क्षपणका विधान करनेवाला यह क्षपण-दण्डक समाप्त हुआ ॥५२॥

इस प्रकार पश्चिमस्कन्ध नामक अर्थाधिकार समाप्त हुआ

---

१ अयोगिकेवलिगुणावस्थानकालः शैलेश्यद्धा नाम । सा पुनः पंचह्रस्वाक्षरोच्चारणकालावच्छिन्नपरिमाणेत्यागमविदां निश्चयः । तस्यां यथाक्रममधःस्थितिगलनेन क्षीणायां सर्वमलकलंकविप्रमुक्तः स्वात्मोपलब्धिलक्षणां सिद्धिं सकलपुरुषार्थसिद्धेः परमकाष्ठानिष्ठमेकसमयेनैवोपगच्छति; कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षानन्तरमेव मोक्षपर्यायाविर्भावोपपत्तेः । जयध०

परिशिष्ट

१ कसायपाहुड-सुत्तगाहा

पुव्वम्मि पंचमम्मि दु दसमे वत्थुम्मि पाहुडे तदिए ।
पेज्जं ति पाहुडम्मि दु हवदि कसायाण पाहुडं णाम ॥ १ ॥
गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि ।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥ २ ॥
पेज्ज-दोसविहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च बंधगे चेव ।
तिण्णेदा गाहाओ पंचसु अत्थेसु णादव्वा ॥ ३ ॥
चत्तारि वेदयम्मि दु उवजोगे सत्त होंति गाहाओ ।
सोलय य चउट्ठाणे वियंजणे पंच गाहाओ ॥ ४ ॥
दंसणमोहस्सुवसामणाए पण्णारस होंति गाहाओ ।
पंचेव सुत्तगाहा दंसणमोहस्स खवणाए ॥ ५ ॥
लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स ।
दोसु वि एक्का गाहा अट्ठेवुवसामणद्धम्मि ॥ ६ ॥
चत्तारि य पट्ठवए गाहा संकामए वि चत्तारि ।
ओवट्टणाए तिण्णि दु एक्कारस होंति किट्टीए ॥ ७ ॥
चत्तारि य खवणाए एक्का पुण होदि खीणमोहस्स ।
एक्का संगहणीए अट्ठावीसं समासेण ॥ ८ ॥
किट्टी कयवीचारे संगहणी खीणमोहपट्ठवए ।
सत्तेदा गाहाओ अण्णाओ सभासगाहाओ ॥ ९ ॥
संकामण ओवट्टण किट्टी खवणाए एक्कवीसं तु ।
एदाओ सुत्तगाहाओ सुण अण्णा भासगाहाओ ॥ १० ॥
पंच य तिण्णि य दो छक्क चउक्क तिण्णि तिण्णि एक्का य ।
चत्तारि य तिण्णि उभे पंच य एक्कं तह य छक्कं ॥ ११ ॥
तिण्णि य चउरो तह दुग चत्तारि य होंति तह चउक्कं च ।
दो पंचेव य एक्का अण्णा एक्का य दस दो य ॥ १२ ॥
(१) पेज्ज दोस विहत्ती ट्ठिदि अणुभागे च बंधगे चेय ।
वेदग उवजोगे वि य चउट्ठाण वियंजणे चेय ॥ १३ ॥
(२) सम्मत्त देस विरयी संजम उवसामणा च खवणा च ।
दंसण-चरित्त मोहे अद्धापरिमाणणिद्देसो ॥ १४ ॥

आवलिय अणायारे चक्खिदिय-सोद-घाण-जिब्भाए ।
मण-वयण-काय पासे अवाय-ईहा सुदुस्सासे ॥ १५ ॥
केवलदंसण-णाणे कसाय सुक्केकए पुधत्ते य ।
पडिवादुवसामेंतय खवेंतए संपराए य ॥ १६ ॥
माणद्धा कोहद्धा मायद्धा तहय चेव लोहद्धा ।
खुद्धभवग्गहणं पुण किट्टीकरणं च बोद्धव्वा ॥ १७ ॥
संकामग-ओवट्टण-उवसंत कसाय-खीणमोहद्धा ।
उवसामेंतय-अद्धा खवेंत-अद्धा य बोद्धव्वा ॥ १८ ॥
णिव्वाघादेणेदा होंति जहण्णाओ आणुपुव्वीए ।
एत्तो अणाणुपुव्वी उक्कस्सा होंति भजियव्वा ॥ १९ ॥
चक्खू सुदं पुधत्तं माणोवाओ तहेव उवसंते ।
उवसामेंतय-अद्धा दुगुणा सेसा हु सविसेसा ॥ २० ॥

१—३ पेज्ज-दोस-विहत्ति-अत्थाहियारा

(३) पेज्जं वा दोसो वा कम्मि कसायम्मि कस्स व णयस्स ।
दुट्ठो व कम्मि दव्वे पियायदे को कहिं वा वि ॥ २१ ॥
(४) पयडीए मोहणिज्जा विहत्ती तह ट्ठिदीए अणुभागे ।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ठिदियं वा ॥ २२ ॥

४—५ बंध-संकम-अत्थाहियारा

(५) कदि पयडीओ बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं ।
संकामेइ कदिं वा गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ॥ २३ ॥
संकम उवक्कमविही पंचविहो चउव्विहो य णिक्खेवो ।
णयविहिपयदं पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो ॥ २४ ॥
एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए ।
संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम-जहण्णो ॥ २५ ॥
पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो असंकमो तहा दुविहो ।
दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥ २६ ॥
अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ ॥ २७ ॥
सोलसग बारसट्ठग वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणि पडिग्गहा होंति ॥ २८ ॥

छव्वीस सत्तवीसा य संकमो णियम चदुसु ट्ठाणेसु ।
वावीस पण्णरसगे एक्कारस ऊणवीसाए ॥ २९ ॥
सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए ।
णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे ॥ ३० ॥
वावीस पण्णरसगे सत्तग एक्कारसूणवीसाए ।
तेवीस संकमो पुण पंचसु पंचिंदिएसु हवे ॥ ३१ ॥
चोद्दसग दसग सत्तग अट्ठारसगे च णियम वावीसा ।
णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य ॥ ३२ ॥
तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एक्कवीसाए ।
एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते ॥ ३३ ॥
एत्तो अवसेसा संजमम्हि उवसामगे च खवगे च ।
वीसा य संकम दुगे छक्के पणगे च बोद्धव्वा ॥ ३४ ॥
पंचसु च उणवीसा अट्ठारस चदुसु होंति बोद्धव्वा ।
चोद्दस छसु पयडीसु य तेरसय छक्क-पणगम्हि ॥ ३५ ॥
पंच चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के ।
दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगम्मि बोद्धव्वा ॥ ३६ ॥
अट्ठ दुग तिग चदुक्के सत्त चदुक्के तिगे च बोद्धव्वा ।
छक्कं दुगम्हि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा ॥ ३७ ॥
चत्तारि तिग चदुक्के तिण्णि तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा ।
दो दुसु एगाए वा एगा एगाए बोद्धव्वा ॥ ३८ ॥
अणुपुव्वमणणुपुव्वं झीणमझीणं च दंसणे मोहे ।
उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवाया ॥ ३९ ॥
एक्केक्कम्हि य ट्ठाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।
भविया वाऽभविया वा जीवा वा केसु ठाणेसु ॥ ४० ॥
कदि कम्हि होंति ठाणा पंचविहे भावविधिविसेसम्हि ।
संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाऽध केवचिरं ॥ ४१ ॥
णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु पंचेव संकमट्ठाणा ।
सव्वे मणुसगइए सेसेसु तिगं असण्णीसु ॥ ४२ ॥
चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्ते मिस्सगे य सम्मत्ते ।
वावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥ ४३ ॥
तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ पम्मलेस्सासु ।
पणयं पुण काऊए णीलाए किण्हलेस्साए ॥ ४४ ॥

अवगयवेद-णवुंसय-इत्थी-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।
अट्ठारसयं णवयं एक्कारसयं च तेरसया ॥ ४५ ॥
कोहादी उवजोगे चदुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।
सोलस य ऊणवीसा तेवीसा चेव तेवीसा ॥ ४६ ॥
णाणम्हि य तेवीसा तिविहे एक्कम्हि एक्कवीसा य ।
अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा ॥ ४७ ॥
आहारय-भविएसु य तेवीसं होंति संकमट्ठाणा ।
अणाहारएसु पंच य एक्कं ट्ठाणं अभविएसु ॥ ४८ ॥
छव्वीस सत्तवीसा तेवीसा पंचवीस बावीसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा अवगदवेदस्स जीवस्स ॥ ४९ ॥
उगुवीसट्ठारसयं चोद्दस एक्कारसादिया सेसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा णवुंसए चोद्दसा होंति ॥ ५० ॥
अट्ठारस चोद्दसयं ट्ठाणा सेसा य दसगमादीया ।
एदे सुण्णट्ठाणा बारस इत्थीसु बोद्धव्वा ॥ ५१ ॥
चोद्दसगणवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।
एदे सुण्णट्ठाणा दस वि य पुरिसेसु बोद्धव्वा ॥ ५२ ॥
णव अट्ठ सत्त छक्कं पणग दुगं एक्कयं च बोद्धव्वा ।
एदे सुण्णट्ठाणा पढमकसायोवजुत्तेसु ॥ ५३ ॥
सत्त य छक्कं पणगं च एक्कयं चेव आणुपुव्वीए ।
एदे सुण्णट्ठाणा विदियकसाओवजुत्तेसु ॥ ५४ ॥
दिट्ठे सुण्णासुण्णे वेद-कसाएसु चेव ट्ठाणेसु ।
मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुव्वीए ॥ ५५ ॥
कम्मंसियट्ठाणेसु य बंधट्ठाणेसु संकमट्ठाणे ।
एक्केक्केण समाणय बंधेण य संकमट्ठाणे ॥ ५६ ॥
सादि य जहण्ण संकम कदिखुत्तो होइ ताव एक्केक्के ।
अविरहिद सांतरं केवचिरं कदिभाग परिमाणं ॥ ५७ ॥
एवं दव्वे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।
संकमणयं णयविदू णेया सुददेसिदमुदारं ॥ ५८ ॥

६ वेदग-अत्थाहियारो

(६) कदि आवलियं पवेसेइ कदि च पविस्संति कस्स आवलियं ।
खेत्त-भव काल पोग्गल-ट्ठिदिविवागोदयखयो दु ॥ ५९ ॥

(७) को कदमाए ट्ठिदीए पवेसगो को व के य अणुभागे ।
सांतर णिरंतरं वा कदि वा समया दु बोद्धव्वा ॥ ६० ॥

(८) बहुगदरं बहुगदरं से काले को णु थोवदरगं वा ।
अणुसमयमुदीरेंतो कदि वा समयं उदीरेदि ॥ ६१ ॥

(९) जो जं संकामेदि य जं बंधदि जं च जो उदीरेदि ।
तं केण होइ अहियं ट्ठिदि अणुभागे पदेसग्गे (४) ॥ ६२ ॥

७ उवजोग-अत्थाहियारो

(१०) केवचिरं उवजोगे कम्मि कसायम्मि को व केणहियो ।
को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥ ६३ ॥

(११) एक्कम्हि भवग्गहणे एक्ककसायम्हि कदि च उवजोगा ।
एक्कम्हि य उवजोगे एक्ककसाए कदि भवा च ॥ ६४ ॥

(१२) उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया होंति ।
कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति ॥ ६५ ॥

(१३) एक्कम्हि य अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण ।
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥ ६६ ॥

(१४) केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु ।
केवडिया च कसाए के के च विसिस्सदे केण ॥ ६७ ॥

(१५) जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते ।
होंहिंति च उवजुत्ता एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा ॥ ६८ ॥

(१६) उवजोगवग्गणाहिं च अविरहिदं काहि विरहिदं चावि ।
पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा (७) ॥ ६९ ॥

८ चउट्ठाण-अत्थाहियारो

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे ।
माया चउव्विहा वुत्ता लोहो विय चउव्विहो ॥७०॥

(१८) णग-पुढवि-वालुगोदयराईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
सेलघण-अट्ठि-दारुअ-लदासमाणो हवदि माणो ॥७१॥

(१९) वंसीजण्हुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती ।
अवलेहिणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥७२॥

(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो ।
हालिद्दवत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥७३॥

(२१) एदेसिं ट्ठाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि ।
कं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥७४॥

(२२) माणे लदासमाणे उक्कस्सा वग्गणा जहण्णादो ।
हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥७५॥

(२३) णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो ।
सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७६॥

(२४) णियमा लदासमादो अणुभागग्गेण वग्गणग्गेण ।
सेसा कमेण अहिया गुणेण णियमा अणंतेण ॥७७॥

(२५) संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होई अणुभागे ।
हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥

(२६) सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे ।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥७९॥

(२७) एसो कमो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि ।
सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेसु बोद्धव्वं ॥८०॥

(२८) एदेसिं ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से ।
बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥

(२९) सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥

(३०) विरदीय अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे ।
सागारे जोगम्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥

(३१) कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होइ ।
कं ठाणं वेदंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्स ॥८४॥

(३२) असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च ।
सण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं (१६) ॥८५॥

९ वंजण-अत्थाहियारो

(३३) कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण-कलह वड्ढी य ।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥८६॥

(३४) माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तधसमुक्कस्सो ।
अत्तुक्करिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो ॥८७॥

(३५) माया य सादिजोगे णियदी विय वंचणा अणुज्जुगदा ।
गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहणच्छण्णो ॥८८॥

(३६) कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य ।
णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥८९॥

(३७) सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा ।
लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा (५) ॥९०॥

१० सम्मत्त-अत्थाहियारो

(३८) दंसणमोह-उवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे ।
जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥९१॥

(३९) काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि ।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥९२॥

(४०) के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा ।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं ॥९३॥

(४१) किंट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा ।
ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥९४॥

(४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥९५॥

(४३) सव्वणिरय-भवणेसु दीव-समुद्दे गुह-जोदिसि-विमाणे ।
अभिजोग्ग-अणभिजोग्गे उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥९६॥

(४४) उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥९७॥

(४५) सागारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजियव्वो ।
जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥९८॥

(४६) मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥९९॥

(४७) सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा ।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा ॥१००॥

(४८) मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१०१॥

(४९) सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ ।
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥

(५०) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥

(५१) सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण ।
भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥

(५२) सम्मत्तपढमलंभस्सऽणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

(५३) कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो ।
एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥

(५४) सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥

(५५) मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥

(५६) सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।
अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो (१५) ॥१०९॥

११ दंसणमोहक्खवणा-अत्थाहियारो

(५७) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु ।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥११०॥

(५८) *मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते ।*
खवणाए पट्ठवगो जहण्णगो तेउलेस्साए ॥१११॥

(५९) अंतोमुहुत्तमद्धं दंसणमोहस्स णियमसा खवगो ।
खीणे देव-मणुस्से सिया वि णामाउगो बंधो ॥११२॥

(६०) खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णो ।
णाधिच्छदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥११३॥

(६१) संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा ।
सेसासु खीणमोहा गदीसु णियमा असंखेज्जा (५) ॥११४॥

१२-१३ संजमासंजमलद्धि-संजमलद्धि-अत्थाहियारो

(६२) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स ।
वड्ढावड्ढी उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं ॥११५॥

१४ चरित्तमोहोवसामणा-अत्थाहियारो

(६३) उवसामणा कदिविधा उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स ।
कं कम्मं उवसंतं अणउवसंतं च कं कम्मं ॥११६॥

(६४) कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो ।
कदिभागं वा बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥११७॥

(६५) केचिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं ।
केवचिरं उवसंतं अणउवसंतं च केवचिरं ॥११८॥

(६६) कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं च होइ कं करणं ।
कं करणं उवसंतं अणउवसंतं च कं करणं ॥११९॥

(६७) पडिवादो च कदिविधो कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो ।
केसिं कम्मंसाणं पडिवदिदो बंधगो होइ ॥१२०॥

(६८) दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसमक्खयादो दु ।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा ॥१२१॥

(६९) उवसामणाखएण दु पडिवदिदो होइ सुहुमरागम्हि ।
बादररागे णियमा भवक्खया होइ परिवदिदो ॥१२२॥

(७०) उवसामणाक्खएण दु अंसे बंधदि जहाणुपुव्वीए ।
एमेव य वेदयदे जहाणुपुव्वीय कम्मंसे (८) ॥१२३॥

१५ चरित्तमोहक्खवणा-अत्थाहियारो

१ मूलगाहा–

(७१) संकामयपट्ठवगस्स किंट्ठिदियाणि पुव्वबद्धाणि ।
केसु व अणुभागेसु य संकंतं वा असंकंतं ॥१२४॥

भासगाहा–

(७२) १. संकामगपट्ठवगस्स मोहणीयस्स दो पुण ट्ठिदीओ ।
किंचूणियं मुहुत्तं णियमा से अंतरं होइ ॥१२५॥

(७३) २. झीणट्ठिदिकम्मंसे जे वेदयदे दु दोसु वि ट्ठिदीसु ।
जे चावि ण वेदयदे विदियाए ते दु बोद्धव्वा ॥१२६॥

(७४) ३. संकामगपट्ठवगस्स पुव्वबद्धाणि मज्झिमट्ठिदीसु ।
साद-सुहणाम-गोदा तहाणुभागेसुदुक्कस्सा ॥१२७॥

(७५) ४. अथ थीणगिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य ।
तह णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु ॥१२८॥

(७६) ५. संकंतम्हि य णियमा णामा-गोदाणि वेयणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसगा होंति संखेज्जे ॥१२९॥

२ मूलगाहा–

(७७) संकामग-पट्ठवगो के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि व के के केसु असंकामगो होइ ॥१३०॥

भासगाहा–

(७८) १. वस्ससदसहस्साइं ट्ठिदिसंखाए दु मोहणीयं तु ।
बंधदि च सदसहस्सेसु असंखेज्जेसु सेसाणि ॥१३१॥
(७९) २. भयसोगमरदिरदिगं हस्स दुगुंछा णवुंसगित्थी अ ।
असादं णीचागोदं अजसं सारीरगं णाम ॥१३२॥
(८०) ३. सव्वावरणीयाणं जेसिं ओवट्टणा दु णिद्दाए ।
पयलायुगस्स अ तहा अबंधगो बंधगो सेसे ॥१३३॥

(८१) १. णिद्दा च णीचगोदं पचला णियमा अगि त्ति णामं च ।
छच्चेय णोकसाया अंसेसु अवेदगो होदि ॥१३४॥
(८२) २. वेदे च वेदणीए सव्वावरणे तहा कसाए च ।
भयणिज्जो वेदंतो अभज्जगो सेसगो होदि ॥१३५॥

(८३) १. सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वीय संकमो होदि ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ णायव्वो ॥१३६॥
(८४) २. संकामगो च कोधं माणं मायं तहेव लोभं च ।
सव्वं जहाणुपुव्वी वेदादी संछुहदि कम्मं ॥१३७॥
(८५) ३. संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्हि संछुहदि ॥१३८॥
(८६) ४. कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥१३९॥
(८७) ५. जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधसरिसम्हि संछुहइ ।
बंधेण हीणदरगे अहिए वा संकमो णत्थि ॥१४०॥
(८८) ६. संकामगपट्ठवगो माणकसायस्स वेदगो कोधं ।
संछुहदि अवेदेंतो माणकसाये कमो सेसे ॥१४१॥

३ मूलगाहा–

(८९) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस-अणुभागे ।
अधिगो समो व हीणो गुणेण किं वा विसेसेण ॥१४२॥

भासगाहा–

(९०) १. बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥१४३॥

(९१) २. बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१४४॥

(९२) ३. उदओ च अणंतगुणो संपहि-बंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहिबंधो अणंतगुणो ॥१४५॥

(९३) ४. गुणसेढिअणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे ।
गणणादियंत सेढी पदेस-अग्गेण बोद्धव्वा ॥१४६॥

४ मूलगाहा–

(९४) बंधो व संकमो वा उदओ वा किं सगे सगे ट्ठाणे ।
से काले से काले अधिओ हीणो समो वा पि ॥१४७॥

भासगाहा–

(९५) १. बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि ॥१४८॥

(९६) २. गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण संकमो उदओ ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे ॥१४९॥

(९७) ३. गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदि णियमसा दु अणुभागे ।
अहिया च पदेगग्गे गुणेग गणणादियंतेण ॥१५०॥

५ मूलगाहा–

(९८) किं अंतरं करेंतो वड्ढदि हायदि ट्ठिदी य अणुभागे ।
णिरुवक्कमा च वड्ढी हाणी वा केच्चिरं कालं ॥१५१॥

भासगाहा–

(९९) १. ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण ।
एसा ट्ठिदीसु जहण्णा तहाणुभागे सणंतेसु ॥१५२॥

(१००) २. संकामेदुकड्डदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजिदव्वा ॥१५३॥

(१०१) ३. ओकड्डदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा ।
वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ॥१५४॥

६ मूलगाहा–

(१०२) एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु ट्ठिदिविसेसेसु कदिसु वड्ढेदि ।
हरसेदि कदिसु एगं तहाणुभागेसु बोद्धव्वं ॥१५५॥

भासगाहा–

(१०३) १. एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढेदि हरस्सेदि च तहाणुभागे अणंतेसु ॥१५६॥

७ मूलगाहा–

(१०४) ट्ठिदि-अणुभागे अंसे के के वड्ढदि के व हरस्सेदि ।
केसु अवट्ठाणं वा गुणेण किं वा विसेसेण ॥१५७॥

भासगाहा–

(१०५) १. ओवट्टेदि ट्ठिदिं पुण अधिगं हीणं च बंधसमगं वा ।
उक्कड्डदि बंधसमं हीणं अधिगं ण वड्ढेदि ॥१५८॥

(१०६) २. सव्वे वि य अणुभागे ओकड्डदि जे ण आवलियपविट्ठे ।
उक्कड्डदि बंधसमं णिरुवक्कम होदि आवलिया ॥१५९॥

(१०७) ३. वड्ढीदु होदि हाणी अधिगा हाणीदु तह अवट्ठाणं ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१६०॥

(१०८) ४. ओवट्टणमुव्वट्टण किट्टीवज्जेसु होदि कम्मेसु ।
ओवट्टणा च णियमा किट्टीकरणम्हि बोद्धव्वा ॥१६१॥

१ मूलगाहा–

(१०९) केवदिया किट्टीओ कम्हि कसायम्हि कदि च किट्टीओ ।
किट्टीए किं करणं लक्खणमध किं च किट्टीए ॥१६२॥

भासगाहा–

(११०) १. बारस णव छ तिण्णि य किट्टीओ होंति अध व अणंताओ ।
एक्केक्कम्हि कसाये तिग तिग अधवा अणंताओ ॥१६३॥

(१११) २. किट्टी करेदि णियमा ओवट्टंतो ठिदी य अणुभागे ।
वड्ढंतो किट्टीए अकारगो होदि बोद्धव्वो ॥१६४॥

(११२) ३. गुणसेढि अणंतगुणा लोभादी कोध पच्छिमपदादो ।
कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं ॥१६५॥

२ मूलगाहा–

(११३) कदिसु च अणुभागेसु च ट्ठिदीसु वा केत्तियासु का किट्टी ।
सव्वासु वा ट्ठिदीसु च आहो सव्वासु पत्तेयं ॥१६६॥

भासगाहा–

(११४) १. किट्टी च ट्ठिदिविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि ।
णियमा अणुभागेसु च होदि हु किट्टी अणंतेसु ॥१६७॥

(११५) २. सव्वाओ किट्टीओ विदियट्ठिदीए दु होंति सव्विस्से ।
जं किट्टिं वेदयदे तिस्से अंसो च पढमाए ॥१६८॥

३ मूलगाहा–

(११६) किट्टी च पदेसग्गेणणुभागग्गेण का च कालेण ।
अधिगा समा व हीणा गुणेण किं वा विसेसेण ॥१६९॥

भासगाहा–

(११७) १. विदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा भवे पदेसग्गे ।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥१७०॥

(११८) २. विदियादो पुण पढमा संखेज्जगुणा दु वग्गणग्गेण ।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसहिया ॥१७१॥

(११९) ३. जा हीणा अणुभागेणहिया सा वग्गणा पदेसग्गे ।
भागेणऽणंतिमेण दु अधिगा हीणा च बोद्धव्वा ॥१७२॥

(१२०) ४. कोधादिवग्गणादो सुद्धं कोधस्स उत्तरपदं तु ।
सेसो अणंतभागो णियमा तिस्से पदेसग्गे ॥१७३॥

(१२१) ५. एसो कमो च कोधे माणे णियमा च होदि मायाए ।
लोभम्हि च किट्टीए पत्तेगं होदि बोद्धव्वो ॥१७४॥

(१२२) १. पढमा च अणंतगुणा विदियादो णियमसा दु अणुभागो ।
तदियादो पुण विदिया कमेण सेसा गुणेणऽहिया ॥१७५॥

(१२३) १. पढमसमयकिट्टीणं कालो वस्सं व दो व चत्तारि ।
अट्ठ च वस्साणि ट्ठिदी विदियट्ठिदीए समा होदि ॥१७६॥

(१२४) २. जं किट्टिं वेदयदे जवमज्झं सांतरं दुसु ट्ठिदीसु ।
पढमा जं गुणसेढी उत्तरसेढी य विदिया दु ॥१७७॥

(१२५) ३. विदियट्ठिदि आदिपदा सुद्धं पुण होदि उत्तरपदं तु ।
सेसो असंखेज्जदिमो भागो तिस्से पदेसग्गे ॥१७८॥

(१२६) ४. उदयादि या ट्ठिदीओ णिरंतरं तासु होइ गुणसेढी ।
उदयादि पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥१७९॥

(१२७) ५. उदयादिसु ट्ठिदीसु य जं कम्मं णियमसा दु तं हरस्सं ।
पविसदि ट्ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥१८०॥

(१२८) ६. वेदगकालो किट्टीय पच्छिमाए दु णियमसा हरस्सो ।
संखेज्जदिभागेण दु सेसग्गाणं कमेणऽधिगो ॥१८१॥

४ मूलगाहा–

(१२९) कदिसु गदीसु भवेसु य ट्ठिदि-अणुभागेसु वा कसाएसु ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि कदीसु किट्टीसु च ट्ठिदीसु ॥१८२॥

भासगाहा–

(१३०) १. दोसु गदीसु अभज्जाणि दोसु भज्जाणि पुव्वबद्धाणि ।
एइंदिय कायेसु च पंचसु भज्जा ण च तसेसु ॥१८३॥

(१३१) २. एइंदियभवग्गहणेहिं असंखेज्जेहिं णियमसा बद्धं ।
एगादेगुत्तरियं संखेज्जेहिं य तसभवेहिं ॥१८४॥

(१३२) ३. उक्कस्सय अणुभागे ट्ठिदि उक्कस्साणि पुव्वबद्धाणि ।
भजियव्वाणि अभज्जाणि होंति णियमा कसाएसु ॥१८५॥

५ मूलगाहा–

(१३३) पज्जत्तापज्जत्तेण तधा त्थी पुण्णवुंसयमिस्सेण ।
सम्मत्ते मिच्छत्ते केण व जोगोवजोगेण ॥१८६॥

भासगाहा–

(१३४) १. पज्जत्तापज्जत्ते मिच्छत्त णवुंसए च सम्मत्ते ।
कम्माणि अभज्जाणि दु त्थी-पुरिसे मिस्सगे भज्जा ॥१८७॥

(१३५) २. ओरालिए सरीरे ओरालियमिस्सए च जोगे दु ।
चदुविधमण-वचिजोगे च अभज्जा सेसगे भज्जा ॥१८८॥

(१३६) ३. अध सुद-मदि उवजोगे होंति अभज्जाणि पुव्वबद्धाणि ।
भज्जाणि च पच्चक्खेसु दोसु छदुमत्थणाणेसु ॥१८९॥

(१३७) ४. कम्माणि अभज्जाणि दु अणगार-अचक्खुदंसणुवजोगे ।
अध ओहिदंसणे पुण उवजोगे होंति भज्जाणि ॥१९०॥

६ मूलगाहा–

(१३८) किलेस्साए बद्धाणि केसु कम्मेसु वट्टमाणेण ।
सादेण असादेण च लिंगेण च कम्हि खेत्तम्मि ॥१९१॥

भासगाहा–

(१३९) १. लेस्सा साद असादे च अभज्जा कम्म-सिप्प-लिंगे च ।
खेत्तम्हि च भज्जाणि दु समाविभागे अभज्जाणि ॥१९२॥

(१४०) २. एदाणि पुव्वबद्धाणि होंति सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु णियमसा सव्वकिट्टीसु ॥१९३॥

७ मूलगाहा–

(१४१) एगसमयप्पबद्धा पुण अच्छुत्ता केत्तिगा कहिं ट्ठिदीसु ।
भवबद्धा अच्छुत्ता ट्ठिदीसु कहिं केत्तिया होंति ॥१९४॥

भासगाहा–

(१४२) १. छण्हं आवलियाणं अच्छुत्ता णियमसा समयपबद्धा ।
सव्वेसु ट्ठिदिविसेसाणुभागेसु च चउण्हं पि ॥१९५॥

(१४३) २. जा चावि बज्झमाणी आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुव्वावलिया णियमा अणंतरा चदुसु किट्टीसु ॥१९६॥

(१४४) ३. तदिया सत्तसु किट्टीसु चउत्थी दससु होइ किट्टीसु ।
तेण परं सेसाओ भवंति सव्वासु किट्टीसु ॥१९७॥

(१४५) ४. एदे समयपबद्धा अच्छुत्ता णियमसा इह भवम्मि ।
सेसा भवबद्धा खलु संछुद्धा होंति बोद्धव्वा ॥१९८॥

८ मूलगाहा–

(१४६) एगसमयपबद्धाणं सेसाणि च कदिसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
भवसेसगाणि कदिसु च कदि कदि वा एगसमएण ॥१९९॥

भासगाहा–

(१४७) १. एकम्मि ट्ठिदिविसेसे भवसेसग-समयपबद्धसेसाणि ।
णियमा अणुभागेसु य भवंति सेसा अणंतेसु ॥२००॥

(१४८) २. ट्ठिदिउत्तरसेढीए भवसेस-समयपबद्धसेसाणि ।
एगुत्तरमेगादी उत्तरसेढी असंखेज्जा ॥२०१॥

(१४९) ३. एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसाणि ण जत्थ होंति सामण्णा ।
आवलिगा संखेज्जदिभागो तहिं तारिसो समयो ॥२०२॥
(१५०) ४. एदेण अंतरेण दु अपच्छिमाए दु पच्छिमे समए ।
भव-समयसेसगाणि तु णियमा तम्हि उत्तरपदाणि ॥२०३॥

९ मूलगाहा-

(१५१) किट्टीकदम्मि कम्मे ट्ठिदि-अणुभागेसु केसु सेसाणि ।
कम्माणि पुव्वबद्धाणि वज्झमाणाणुदिण्णाणि ॥२०४॥

भासगाहा-

(१५२) १. किट्टीकदम्मि कम्मे णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सेसु असंखेज्जेसु सेसग्गा होंति संखेज्जा ॥२०५॥
(१५३) २. किट्टीकदम्मि कम्मे सादं सुहणामम्रुच्चगोदं च ।
बंधदि च सदसहस्से ट्ठिदिमणुभागेसुदुक्कस्सं ॥२०६॥

१० मूलगाहा-

(१५४) किट्टीकदम्मि कम्मे के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि च के के केसु असंकामगो होदि ॥२०७॥

भासगाहा-

(१५५) १. दससु च वस्सस्संतो बंधदि णियमा दु सेसगे अंसे ।
देसावरणीयाइं जेसिं ओवट्टणा अत्थि ॥२०८॥
(१५६) २. चरिमो बादररागो णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥२०९॥
(१५७) ३. चरिमो य सुहुमरागो णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
दिवस्संतो बंधदि भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं ॥२१०॥
(१५८) ४. अध सुद-मदिआवरणे च अंतराइए च देसमावरणं ।
लद्धी यं वेदयदे सव्वावरणं अलद्धी य ॥२११॥
(१५९) ५. जसणामम्रुच्चगोदं वेदयदि णियमसा अणंतगुणं ।
गुणहीणमंतरायं से काले सेसगा भज्जा ॥२१२॥

११मूलगाहा-

(१६०) किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारो दु मोहणीयस्स ।
सेसाणं कम्माणं तहेव के के दु वीचारा ॥२१३॥

१ मूलगाहा–

(१६१) किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि संछुहंतो वा।
संछोहणमुदएण च अणुपुव्वमणणुपुव्वं वा ॥२१४॥

भासगाहा–

(१६२) १. पढमं विदियं तदियं वेदेंतो वा वि संछुहंतो वा।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभएण सेसाओ ॥२१५॥

२ मूलगाहा–

(१६३) जं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि बंधगो तिस्से।
जं चावि संछुहंतो तिस्से किं बंधगो होदि ॥२१६॥

भासगाहा–

(१६४) १. जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टिं अबंधगो तिस्से।
सुहुमम्हि संपराए अबंधगो बंधगिदरासिं ॥२१७॥

३ मूलगाहा–

(१६५) जं जं खवेदि किट्टिं ट्ठिदि-अणुभागेसु केसुदीरेदि।
संछुहदि अण्णकिट्टिं से काले तासु अण्णासु ॥२१८॥

भासगाहा–

(१६६) १. बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु।
सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ ॥२१९॥

(१६७) २. संकामेदि उदीरेदि चावि सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं।
किट्टीए अणुभागे वेदेंतो मज्झिमो णियमो ॥२२०॥

(१६८) ३. ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि।
ओकड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२१॥

(१६९) ४. उक्कड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि।
उक्कड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२२॥

(१७०) ५. बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस-अणुभागे।
बहुगत्ते थोवत्ते जहेव पुव्वं तहेवेहिं ॥२२३॥

(१७१) ६. जो कम्मंसो पविसदि पओगसा तेण णियमसा अहिओ।
पविसदि ट्ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥२२४॥

(१७२) ७. आवलियं च पविट्ठं पयोगसा णियमसा च उदयादी ।
उदयादि पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥२२५॥

(१७३) ८. जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का ।
पुव्वपविट्ठा णियमा एक्किस्से होंति च अणंता ॥२२६॥

(१७४) ९. जे चावि य अणुभागा उदीरिदा णियमसा पओगेण ।
तेयप्पा अणुभागा पुव्वपविट्ठा परिणमंति ॥२२७॥

(१७५) १०. पच्छिम-आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा ।
उक्कस्स हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमंति ॥२२८॥

४ मूलगाहा–

(१७६) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदि खएण किं पयोगेण ।
किं सेसगम्हि किट्टी य संकमो होदि अण्णिस्से ॥२२९॥

भासगाहा–

(१७७) १. किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदे णियमसा पओगेण ।
किट्टीए सेसगं पुण दो आवलियासु जं बद्धं ॥२३०॥

(१७८) २. समयूणा च पविट्ठा आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुण्णा जं वेदयदे एवं दो संकमे होंति ॥२३१॥

१ खीणमोहपडिबद्धा मूलगाहा–

(१७९) खीणेसु कसाएसु य सेसाणं के व होंति वीचारा ।
खवणा व अखवणा वा बंधोदयणिज्जरा वापि ॥२३२॥

१ संगहणी मूलगाहा–

(१८०) संकामणमोवट्टण किट्टीखवणाए खीणमोहंते ।
खवणा य आणुपुव्वी बोद्धव्वा मोहणीयस्स ॥२३३॥

एवं कसायपाहुडं समत्तं

खवणाहियार-चूलिया

अणमिच्छ मिस्स सम्मं अट्ठ णवुंसित्थिवेदछक्कं च ।
पुंवेदं च खवेदि हु कोहादीए च संजलणे ॥ १ ॥
अथ थीणगिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयल-पयला य ।
अथ णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु ॥ २ ॥
सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वी य संकमो होइ ।
लोभकसाए णियमा असंकमो होइ बोद्धव्वो ॥ ३ ॥
संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोधम्हि संछुहदि ॥ ४ ॥
कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥ ५ ॥
जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधम्हि होइ संछुहणा ।
बंधेण हीणदरगे अहिए वा संकमो णत्थि ॥ ६ ॥
बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥ ७ ॥
बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥ ८ ॥
उदयो च अणंतगुणो संपहिबंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहिबंधो अणंतगुणो ॥ ९ ॥
चरिमे बादररागे णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥१०॥
जं चावि संछुहंतो खवेइ किट्टिं अबंधगो तिस्से ।
सुहुमम्हि संपराए अबंधगो बंधगियराणं ॥११॥
जाव ण छदुमत्थादो तिण्हं घादीण वेदगो होइ ।
अधऽणंतरेण खइया सव्वण्हू सव्वदरिसी य ॥१२॥

सचूलियं कसायपाहुडं समत्तं

---

२ गाथानुक्रमणिका

३ चूर्णि-उद्धृत-गाथा-सूची

४ ग्रन्थनामोल्लेख

५ विशिष्ट-प्रकरण-उल्लेख

(१) पृ० १०१, सू० ६२–सेसं जहा उदीरणाए तहा कायव्वं।

(२) पृ० १११, सू० १४०–सेसाणि जहा उदीरणा तहा णेदव्वाणि।

(३) पृ० १७१, सू० १४८–अप्पाबहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधे तहा।

(४) पृ० १७४, सू० १८४–सेसाणि जधा सम्मादिट्ठीए बंधे तधा णेदव्वाणि।

(५) पृ० २४९, सू० ११–सो पुण पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधो बहुसो परूविदो।

(६) पृ० ३१८, सू० ४१ –एत्तो अद्धाछेदो। जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो।

(७) पृ० ३१९, सू० ५२–उक्कस्सट्ठिदिसंकामयस्स सामित्तं जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा णेदव्वं।

(८) पृ० ३२२, सू० ७६–जहा उक्कस्सिया ट्ठिदि-उदीरणा तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो।

(९) पृ० ३२३, सू० ८९–तेसिमट्ठपदं काऊण उक्कस्सओ जहा उक्कस्सट्ठिदि-उदीरणा तहा कायव्वा।

(१०) पृ० ३६८, सू० २२८–जहा उक्कस्साणुभागविहत्ती तहा उक्कस्साणुभागसंकमो।

(११) पृ० ३७३, सू० २९०–सेसाणं जहा सम्माइट्ठिबंधे तहा कायव्वो।

(१२) पृ० ३९४, सू० ५४०–अप्पाबहुअं जहा सम्माइट्ठिगे बंधे तहा।

६ विशिष्ट-समर्पण-सूत्र-सूची

(जिनके आधार पर अधिकांश उच्चारणा-वृत्तिका निर्माण हुआ है ।)

(१) पृ० २६, सू० ७२-७८-एत्थ छ अणियोगद्दाराणि । किं कसाओ ? कस्स कसाओ ? केण कसाओ ? कम्हि कसाओ ? केवचिरं कसाओ ? कइविहो कसाओ ?

(२) पृ० ४१, सू० ११२-एवं सव्वाणियोगद्दाराणि अणुगंतव्वाणि ।

(३) पृ० ५०, सू० ३४-३५-मूलपयडिविहत्तीए इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा-सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगे त्ति। एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु मूलपयडिविहत्ती समत्ता होदि ।

(४) पृ० ५१, सू० ३७-३८-तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा-एगेगउत्तरपयडिविहत्ती चेव पयडिट्ठाणउत्तरपयडिविहत्ती चेव । तत्थ एगेगउत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि । तं जहा-एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो सण्णियासो अप्पाबहुए त्ति । एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु तदो एगेगउत्तरपयडिविहत्ती समत्ता ।

(५) पृ० ७९, सू० १२९. एवं सव्वाणि अणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि । १३०. पदणिक्खेवे वड्ढीए च अणुमग्गिदाए समत्ता पयडिविहत्ती ।

(६) पृ० ९१, सू० ५. एदाणि चेव उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीए कादव्वाणि ।

(७) पृ० १४७, सू० २. एत्तो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदव्वा ।

(८) पृ० १७७, सू० २. तत्थ मूलपयडिपदेसविहत्तीए गदाए ।

(९) पृ० १९९, सू० ११०. एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं । ११२. अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं । ११३. णाणाजीवेहि भंगविचयो दुविहो जहण्णुक्कस्सभेदेहि । अट्ठपदं कादूण सव्वकम्माणं णेदव्वो । ११४. सव्वकम्माणं णाणाजीवेहि कालो कायव्वो ।

(१०) पृ० २११, सू० २९१. एत्तो भुजगारं पदणिक्खेव-वड्ढीओ च कायव्वाओ ।

(११) पृ० ३४८, सू० २९. एदेण अट्ठपदेण मूलपयडिअणुभागसंकमो । ३०. तत्थ च तेवीसमणियोगद्दाराणि सण्णा जाव अप्पाबहुए त्ति । ३१. भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति भाणिदव्वो ।

(१२) पृ० ३६१, सू० १५२. एवं सेसाणं कम्माणं णादूण णेदव्वं ।

(१३) पृ० ३६४. सू० १७३. एवं सेसाणं कम्माणं । १७४. णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामगा-पुव्वं ति भाणिदव्वं ।

(१४) पृ० ४११, सू० ७७. सेसाणं कम्माणं जाणिऊण णेदव्वं ।

(१५) पृ० ४३२, सू० ३६५. एवं चदुसु गदीसु ओघेण साधेदूण णेदव्वो ।

(१६) पृ० ४३८, सू० ४४२. गदीसु च साहेयव्वं ।

(१७) पृ० ४४०, सू० ४६६. णाणाजीवेहि कालो एदाणुमाणिय णेदव्वो ।

(१८) पृ० ४५६, सू० ६३२. सामित्ते अप्पाबहुए च विहासिदे वड्ढी समत्ता भवदि ।

(१९) पृ० ४६७, सू० ९. एदाणि वेवि पत्तेगं चउवीसमणिओगद्दारेहि मग्गिऊण । १०. तदो पयडिट्ठाणउदीरणा कायव्वा ।

(२०) पृ० ४८२, सू० १०८. णाणाजीवेहि भंगविचयादि-अणियोगद्दाराणि अप्पाबहुअवज्जाणि कायव्वाणि । ११७. पदणिक्खेव-वड्ढीओ कादव्वाओ ।

(२१) पृ० ४९१, सू० १६३. एवमणुमाणिय सामित्तं णेदव्वं ।

(२२) पृ० ४९५, सू० १९२. अंतरमणुचिंतिऊण णेदव्वं ।

(२३) पृ० ४९६, सू० १९६. णाणाजीवेहि कालो अंतरं च अणुचिंतिऊण णेदव्वं ।

(२४) पृ० ४९८, सू० २१६. भुजगारो कायव्वो । २१७. पदणिक्खेवो कायव्वो । २१८. वड्ढी वि कायव्वा ।

(२५) पृ० ५००, सू० २३४. एत्थ मूलपयडि-अणुभागउदीरणा भाणियव्वा ।

(२६) पृ० ५१२, सू० ३२८, णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं सण्णियासो च एदाणि कादव्वाणि ।

(२७) पृ० ५१९, सू० ३८४. मूलपयडिपदेसुदीरणं मग्गियूण । ३८५. तदो उत्तर पयडिपदेसुदीरणा च समुक्कित्तणादिअप्पाबहुअंतेहि अणिओगद्दारेहि मग्गियव्वा ।

(२८) पृ० ५२४, सू० ४४०. एवं सेसासु गदीसु उदीरगो साहेयव्वो ।

(२९) पृ० ५२६, सू० ४५५. सेसेहिं कम्मेहिं अणुमग्गियूण णेदव्वं । ४५६. णाणाजीवेहिं भंगविचयो भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं च एदाणि भाणिदव्वाणि ।

(३०) पृ० ५५३, सू० ६५७. एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं वंजणदो च अत्थदो च कायव्वं ।

(३१) पृ० ५८३, सू० २२३. एत्तो छत्तीसपदेहिं अप्पाबहुअं कायव्वं ।

(३२) पृ० ५८५, सू० २३५. सेसाणि सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

(३३) पृ० ५८६, सू० २३६. कसायोवजुत्ते अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-दंसण-लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण । २३७. महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा ।

(३४) पृ० ५९०, सू० २७२. एत्तो बादालीसपदप्पाबहुअं कायव्वं ।

(३५) पृ० ६१०, सू० २४. एदाणुमाणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं ।

(३६) पृ० ६१६, सू० २१. एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं ।

(३७) पृ० ६१६, सू ४३. एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो ।

(३८) पृ० ६३८, सू० १३९.तदो उवसमसम्माइट्ठि-वेदय-सम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो अंतरं अप्पाबहुअं चेदि । १४०. एदेसु अणियोगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहउवसामणे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

(३९) पृ० ६४२, सू० ८. एदाणि ओट्टेदूण अधापवत्तकरणस्स लक्खणं भाणियव्वं ।

(४०) पृ० ६५७, सू० १२६. एदम्हि दंडए समत्ते सुत्तगाहाओ अणुसंवण्णेदव्वाओ ।

(४१) पृ० ६५७, सू० १२७. संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा त्ति एदिस्से गाहाए अट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा-संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च । १२८. एदेसु अणिओगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहक्खवणा त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

(४२) पृ० ६६५, सू० ५३. संजदासंजदाणमट्ठ अणिओगद्दाराणि । तं जहा–संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च । ५४. एदेसु अणिओगद्दारेसु समत्तेसु तिव्वमंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च कायव्वं ।

(४३) पृ० ६७२, सू० ३९. एत्तो चरित्तलद्धिगाणं जीवाणं अट्ठ अणिओगद्दाराणि । ४०. तं जहा संतपरूवणा दव्वं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च अणुगंतव्वं ।

(४४) पृ० ६७८, सू० १५. तदो दंसणमोहणीममुवसामेतस्स जाणि करणाणि पुव्वपरूविदाणि ताणि सव्वाणि इमस्स वि परूवेयव्वाणि ।

(४५) पृ० ७११, सू० ३५२. इत्थिवेदस्स वि णिरवयवमेदमप्पाबहुअमणुगंतव्वं । ३५३. अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणमुदयमुदीरणं च मोत्तूण एवं चेव वत्तव्वं । ३५४. पुरिसवेद-चदुसंजलणाणं च जाणिदूण णेदव्वं । ३५५. णवरि बंधपदस्स तत्थ सव्वत्थोवत्तं दट्ठव्वं ।

(४६) पृ० ७१३, सू० ३६८. केच्चिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं ति एदम्हि सुत्ते विहासिज्जमाणे एदाणि चेव अट्ठकरणाणि उत्तरपयडीणं पुध पुध विहासियव्वाणि ।

(४७) पृ० ७३९, सू० २३. एत्थ (चरित्तमोहक्खवणापट्ठवगविसये) पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं । २५. एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो ।

(४८) पृ० ८२३, सू० ८५९. एत्तो एक्केक्काए गदीए काएहिं च समज्जिदल्लग्गस्स पदेसग्गस्स पमाणाणुगमो च अप्पाबहुअं च कायव्वं ।

---

७ पवाइज्जंत-अपवाइज्जंत-उपदेशोल्लेख

(१) पृ० ५६२, सू० १९. पवाइज्जंतेण उवदेसेण अद्धाणं विसेसो अंतोमुहुत्तं । २०. तेणेव उवदेसेण चउगइसमासेण अप्पाबहुअं भणिहिदि ।

(२) पृ० ५६४, सू० ४५. तेसिं चेव उवदेसेण चोद्दसजीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि ।

(३) पृ० ५८०, सू० १८५. एत्थ विहासाए दोण्णि उवएसा । १८६. एक्केण उवएसेण जो कसायो सो अणुभागो ।

(४) पृ० ५८१, सू० १९८. एक्केण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि । १९९. पवाइज्जंतेण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा ।

(५) पृ० ५९६, सू० ३२०. एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो । ३२१. पवाइज्जंतेण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

(६) पृ० ६४९. सू० ५८. ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा । के वि भणंति संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदाणि त्ति । पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठवस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि । × × × ६०. अट्ठवस्सउवदेसेण परूविज्जिहिदि ।

(७) पृ० ७३९, सू० १५. एक्को उवएसो णियमा सुदोवजुत्तो होदूण खवगसेढिं चढदि त्ति । १६. एक्को उवदेसो सुदेण वा, मदीए वा, चक्खुदंसणेण वा अचक्खुदंसणेण वा ।

(८) पृ० ८३८, सू० ९६५. एत्थ दुविहो उवएसो । ९६६. एक्केण उवदेसेण कम्मट्ठिदीए असंखेज्जा भागा णिल्लेवणट्ठाणाणि । ९६७. एक्केण उवएसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ९६८. जो पवाइज्जइ उवएसो तेण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि वग्गमूलाणि णिल्लेवणट्ठाणाणि ।